श्रीः

चरकसंहिता

(हिन्दी टीका सहित)

भाग : २



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

श्रीमन्महर्षिप्रवरचरकप्रणीता

चरकसंहिता

आयुर्वेदोद्धारकवैद्यपञ्चाननवैद्यरत्नराजवैद्यपण्डितरामप्रसाद-
वैद्योपाध्यायविरचिता एवं आयुर्वेदाचार्य
पं० शिवशर्मणा संशोधिता

प्रसादनी

भाषाटीकासहिता

द्वितीयोः भागः २

खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई प्रकाशन

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.



पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिपण्डितद्वारकादासा-
त्मजाऽऽयुर्वेदोद्धारकवैद्यपञ्चाननवैद्यरत्नराजवैद्य-
पण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायः ।



PT. SHIV SHARMA, AYURVEDACHARYA.
who presided at the Essay-Reading Section of the
All India Ayurvedic Conference Mysore.

पं. शिव शर्म्मा, आयुर्वेदाचार्य्य
जो नि. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन, मैसूर में
निबन्ध पठन विभाग के प्रधान थे ।

श्रीः ॥

चरकसंहिता-विषयानुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठ.
९. गुल्म चिकित्सिताध्याय।	

८ राजयक्ष्माचिकित्सिताध्याय ।

१४. उन्मादचिकित्सिताध्याय।

१९. अपस्मारचिकित्सिताध्याय।

२६. त्रिमर्मीयचिकित्सिताध्याय।

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदान।

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
२९. वातशोणितचिकित्सिताध्याय ।		मलावृत वातरक्तकी चिकित्सा	१६५६
वातरक्तके हेतु	१६४३	मधुयष्टी तैल	,,
वातरक्तके स्थान	,,	सुकुमार तैल	१६५७
वातरक्तकी संप्राप्ति	,,	अमृतादि तैल	१६५८
वातरक्तके पूर्वरूप	१६४५	महापद्म तैल	१६५९
उत्तान और गंभीर वातरक्तके भेद	,,	महाखुड्डाक तैल	१६६०
उत्तान वातरक्तके लक्षण	,,	मधुयष्टि तैल	,,
गंभीरवातरक्तके लक्षण	१६४६	शतपाक मधुपर्णी तैल	,,
वातरक्तके वातादि भेद	,,	सहस्रपाकी तैल	१६६१
वाताधिक वातरक्तके लक्षण	,,	अन्य तैल	,,
रक्ताधिक वातरक्त	१६४७	आरनाल तैल	,,
पित्ताधिकवातरक्तके लक्षण	,,	पिण्डतैल	,,
कफाधिक, द्वंद्वज, सन्निपातज, वातरक्तके लक्षण	,,	पित्ताधिक वातरक्तके यत्न	१६६२
वातरक्तकी साध्यासाध्यता	,,	दाहनाशक यत्न	,,
वातरक्तके चिकित्सा क्रम	१६४८	लाली, दाह, शूल नाशक अन्य यत्न	१६६३
रक्तस्रावके अयोग्य वातरक्त	१६४९	वाताधिक वातरक्तके यत्न	,,
वातरक्तकी विशेष चिकित्सा	,,	कफाधिक वातरक्तमें चिकित्सा	१६६५
वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा	,,	वातकफाधिक वातरक्तका यत्न	,,
रक्तपित्तोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा	१६५०	त्रिदोषज वातरक्तमें यत्न	१६६६
कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा	,,	अध्यायका उपसंहार	१६६८
वातरक्तमें त्याज्य वस्तु	,,	३०. योनिव्यापत्चिकित्सिताध्याय ।	
वातरक्तमें पथ्य	,,	वात दूषित योनिके लक्षण	१६६९
श्रावण्यादि घृत	१६५१	पित्तदूषित योनिके लक्षण	१६७०
बलादि घृत	,,	कफदूषित योनिके लक्षण	,,
भून्यामलकी घृत	१६५२	त्रिदोषदूषित योनिके लक्षण	,,
पारुषकघृत	,,	रक्तपित्तदूषित योनिके लक्षण	,,
द्विपंचमूली घृत	,,	अरजस्का योनि	१६७१
द्राक्षाघृत	१६५३	अचरणा योनि	,,
गुडूची घृत	,,	अतिचरणा योनि	,,
जीवकादि स्नेह	१६५४	प्राक्चरणा योनि	,,
स्थिरादि स्नेह	,,	उपप्लुतायोनि	,,
वातरक्तनाशक योग	१६५५	परिप्लुतायोनि	१६७२
पित्ताधिक वातरक्तकी चिकित्सा	,,	उदावृता योनि	,,
कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा	१६५६	कर्णिनी योनि	,,

अथ कल्पस्थान ।

१ मदनकल्प ।

२. जीमूत कल्प ।

३. इक्ष्वाकु कल्प ।

४. धामार्गव कल्प ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

वर्तमान समयके तौलसे वैद्यकीय तौलका मिलान ।

३ राजिका	... १ सरसों
३ सरसों	... १ यव
३ यव	.... १ गुंजा (रत्ती)
८ रत्ती	... १ माषा
३ माषा	... १ टंक (शाण)
२ शाण	... १ कोल (६ माषा)
२ कोल	... १ कर्ष (१ तोला)
२ कर्ष	.... १ अर्धपल
४ कर्ष	.... १ पल (४ तोला), बिल्व, मुष्टि
२ पल	... १ प्रसृति
२ प्रसृति	... १ अंजली (१६ तोला) कुडव
२ अंजली	... १ मानिका (३२ तोला)
२ मानिका	... १ प्रस्थ (६४ तोला)
४ प्रस्थ	... १ आढक (४ सेर)
१ तुला	... अस्सी तोलाके सेरसे ५ सेर
४ आढक	... १ द्रोण (१६ सेर)
२ द्रोण	... १ सूर्प (३२ सेर)
२ सूर्प	... १ द्रोणी (६४ सेर)
४ द्रोणी	... १ खारी (२५६ सेर)
१ भार	... २००० पल

कोई पांच तोलेका १ पल मानकर २० तोलाका कुडव (१ पाव पक्का) ४ कुडवोंका १ प्रस्थ (८० तोलेका सेर) लेते हैं । इसी प्रकार ४ सेर पक्केका १ आढक, १६ सेर पक्केका द्रोण मानतेहैं । पुराने जमानेके कच्चे तौलसे पल ८ तोलेका लेते हैं ।

॥ श्रीः ॥

चिकित्सितस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोऽभयामलकीयं रसायनपादं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम अभयामलकीय रसायनपादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे । ज्वरादि चिकित्सासे रसायन महाफलप्रद होनेसे प्रथम रसायन पादका कथन करते हैं ॥

औषधका नाम ।

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।
प्रायश्चित्तं प्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥ १ ॥
विद्याद्भेषजनामानि भेषजं द्विविधञ्च तत् ।
स्वस्थस्योर्ज्जस्करं किञ्चित्किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत् ॥ २ ॥

भेषज, चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृतिस्थापन, हित यह सब औषधके ही नाम हैं । वह औषध दो प्रकारके होते हैं । जैसे–एक स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढानेवाले । दूसरे रोगी मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेवाले ॥ १ ॥ २ ॥

दोप्रकारकी अभेषज ।

अभेषजञ्च द्विविधं बाधनं सानुबाधनम् ॥ ३ ॥

अभेषज भी दो प्रकारके होते हैं एक बाधन अर्थात् शीघ्र हानि करनेवाले । दूसरे सानुबाधन जो कालान्तरमें अपने विकार आदिकोंको प्रगट करें ॥ ३ ॥

---

१ अथ चिकित्सा धर्मार्थयशस्करी कर्त्तव्येत्यनन्तरं चिकित्साभिधायकं स्थानमुच्यते। तत्रापि ज्वरादिचिकित्सायाः प्राक् रसायनवाजीकरणयोर्महाफलत्वेनादावभिधानम् ॥ तयोरपि रसायनमेव वर्षसहस्रायुष्ट्वादिकारणतया महाफलमिति तदभिधीयते । तत्रापि चाभयामलकीयचिकित्सास्थानार्थसूत्राभिधायकतयाऽग्रऽभिधीयते । २ स्वस्थत्वेन व्यवह्रियमाणस्य पुंसो जरादिस्वाभाविकव्याधिहरत्वेन तथाऽप्रहर्षव्यवायक्षयित्वानुपचितशुक्रत्वाद्यप्रशस्तशारीरभावहरत्वेन 'ऊर्जः' ।

द्विविध औषध ।

स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम् ॥ ४ ॥

उनमें जो स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढानेवाले औषध हैं उनको वृष्य और रसायन कहते हैं ॥ ४ ॥

प्रायः प्रायेण रोगाणां द्वितीयं प्रशमे मतम् ।
प्रायःशब्दो विशेषार्थो ह्युभयं ह्युभयार्थकृत् ॥ ५ ॥

जो औषध रोगी मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेवाली होती हैं वह प्रायः रोगोंकी शान्तिके लिये उपयोग कीजाती हैं अर्थात् वृष्य औषध वीर्यक्षयनिवृत्त्यर्थ प्रायः प्रयोग की जाती है, इस जगह प्रायःशब्द विशेष अर्थका बोधक है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि रोगनाशक औषधियां भी स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढानेवाली होसक्ती हैं तथा रसायन और बलवर्द्धक औषधियां रोगनाशक भी होती हैं। इस लिये यह दोनों प्रकारका औषधियां दोनों प्रकारके गुण करती हैं । अथवा रसायन और वृष्य यह दोनोंही उभयगुणकर्ता होती हैं। अर्थात् वृष्य औषध रसायनके गुणको भी कर सकती है और रसायन औषध वृष्य गुणवाली भी होती है ॥ ५ ॥

रसायनके गुण ।

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
प्रभा वर्णस्वरौदार्य्यं देहेन्द्रियबलं परम् ॥
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्ति लभते ना रसायनात् ।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ ६ ॥

रसायनके सेवनसे मनुष्यको—दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, यौवन, प्रभा, वर्ण, स्वर और उदारता इन सबकी प्राप्ति तथा देह और इंद्रियोंके बलकी प्राप्ति होती है एवं वाक्सिद्धि, योग्यता और कांतिका लाभ होता है । रसायनके सेवनसे रसादि धातुओंकी प्राप्ति होती है अथवा यों कहिये कि रस आदिक सम्पूर्ण उत्तम धातुओंको लाभ करनेवालोंमें परमोत्तम होनेसे इसको रसायन कहते हैं ॥ ६ ॥

वाजीकरण गुण ।

अपत्यसन्तानकरं यत्सद्यः संप्रहर्षणम् ।
वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतः स्त्रियः ॥ ७ ॥

---

१ जो द्रव्य वीर्यको प्रगट करनेवाला हो उसको वृष्य कहतेहैं । २ जो द्रव्य वृद्धावस्थाको न आने देवे और रोगोंको उत्पन्न न होने देवे तथा आयुको बढावे उसको रसायन कहतेहैं । ३ प्रणतिर्लोकवन्द्यता । ४ रसादिग्रहणेन स्मृत्यादयोऽपि गृह्यन्ते ।

भवंत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन येनोपचीयते।
जीर्य्यतोऽप्यक्षयं शुक्रं फलवद्येन दृश्यते॥ ८॥
प्रभूतशाखः शाखीव येन चैत्यो यथा महान्।
भवत्यर्च्यो बहुमतः प्रजानां सुबहुप्रजः॥ ९॥
सन्तानमूलं येनेह प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते।
यशः श्रियं बलं पुष्टिं वाजीकरणमेव तत्॥ १०॥

जिस द्रव्यके सेवनसे अधिक सन्तान उत्पन्न हों, शरीरमें तत्काल हर्ष उत्पन्न हो घोडेके समान स्त्रियोंमें रमण करनेका अप्रतिहित (जो बल कभी न घटे) बल उत्पन्न हो तथा स्त्रियोंका अत्यन्त प्रिय हो एवं जिसके सेवनसे वीर्य अधिक बढे, वृद्धावस्थामें भी वीर्यक्षय न हो और स्त्रीगमनकी शक्ति बनीरहे जैसे देवताके मन्दिरमें लगाहुआ पीपल अपनी अनेक शाखाओंसे शोभायमान होता है उसी प्रकार यह मनुष्य भी जिसके द्वारा बहुतसी संतानोंकरके युक्त हो और अनेक बेटे, पोते आदिकोंसे सेवा किया जावे एवं इस लोकमें संतानके सुखको भोगकर परलोकमें भी संतानके दियेहुए अनंत सुखको भोगे तथा यश, शरीर, लक्ष्मी, तेज, बल और पुष्टिको प्राप्त हो उस द्रव्यको वाजीकरण कहते हैं॥ ७–१०॥

द्विविध प्रयोग।

स्वस्थस्योजस्करन्त्वेतद्द्विविधं प्रोक्तमौषधम्।
यद्व्याधिनिर्घातकरं वक्ष्यते तच्चिकित्सिते॥ ११॥

इस प्रकार स्वस्थ मनुष्योंके सेवन करनेयोग्य और और उनके, ओज, बल, कांति आदिको बढानेवाले दोनों प्रकारके औषधोंका वर्णन करचुके और जो व्याधिनाशक औषध हैं उनको चिकित्सास्थानमें क्रमसे कथन करेंगे॥ ११॥

चिकित्सितार्थ एतावान्विकाराणां यदौषधम्।
रसायनविधिश्चाग्रे वाजीकरणमेव च॥ १२॥

उन रोगनाशक औषधियोंका वर्णन यथाक्रमसे चिकित्सास्थानमें ही कथन करेंगे। अब रसायन और वाजीकरणविधिको प्रथम कथन करते हैं॥ १२॥

अनौषधसेवननिषेध।

अभेषजमिति ज्ञेयं विपरीतं यदौषधात्।

---

१ अतिप्रियत्वं चेहोपचितशुक्रतया निरन्तरव्यवायकर्तृत्वात् उक्तमपि "विरूपमपि योद्धारं भृत्यमिच्छन्ति पार्थिवाः। व्यवायं व्यायतं मूर्खं धृष्टं पतिमिव स्त्रियः॥"

२ रोगजननलक्षणार्थकारी।

तदसेव्यं निषेव्यन्तु प्रवक्ष्यामि यदौषधम् ॥ १३ ॥

जो द्रव्य औषधसे विपरीत गुणको करनेवाला हो उसको अभेषज कहते हैं। वह अभेषज सेवन करने योग्य नहीं है अर्थात् अभेषजको कभी नहीं खाना चाहिये। जो सेवन करने योग्य औषध हैं उनको वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

द्विविधरसायनविधि।

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयो विदुः।
कुटीप्रावेशिकश्चैव वातातपिकमेव च ॥ १४ ॥

ऋषिलोग रसायन विधिका प्रयोग दो प्रकारका कहते हैं-एक कुटीप्रवेशविधि अर्थात् वायु, धूप आदिसे बचकर कुटी (मकान) प्रवेशकरके रसायनका सेवन करना। दूसरा वातातपिक अर्थात् जिसमें पवन और धूप आदिका कोई बचाव नहीं कियाजाता इस प्रकारका रसायन सेवन करना ॥ १४ ॥

कुटीनिर्माणविधि।

कुटीप्रावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते।
नृपवैद्यद्विजातीनां साधूनां पुण्यकर्मणाम् ॥ १५ ॥
निवासे निर्भये शस्ते प्राप्योपकरणे पुरे।
दिशि पूर्वोत्तरस्यां तु सुभूमौ कारयेत्कुटिम् ॥ १६ ॥
विस्तारोत्सेधसम्पन्नां त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनाम्।
घनभित्तिमृतुसुखां सुस्पष्टां मनसः प्रियाम् ॥ १७ ॥
शब्दादीनामशस्तानामगम्यां स्त्रीविवर्जिताम्।
इष्टोपकरणोपेतां सज्जवैद्यौषधद्विजाम् ॥ १८ ॥

अब प्रथम कुटीप्रावेशिक रसायन प्रयोगकी विधिको कथन करते हैं-राजा, वैद्य, द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), साधु, पुण्यात्मा इनके आश्रयमें जो निर्भय स्थान हो और उत्तम हो जहां सब प्रकारके रसायन संबंधी द्रव्य प्राप्त होसकते हों ऐसे स्थानमें पूर्व या उत्तरकी दिशाको देखकर कुटी बनावे। उस कुटीमें सब प्रकार रसायनके उपयोगके लिये यथावत् सामग्री होनी चाहिये। वह कुटी उत्तम रीतिसे लम्बी, चौडी और ऊंची तथा क्रमपूर्वक एकके भीतर दूसरा और दूसरेको भीतर तीसरा इस प्रकार तीन कमरोंवाली होनी चाहिये तथा जिसमें युक्तिपूर्वक छोटी २ झरोखे ताकियें हों उसकी दीवारें उत्तम मजबूत होनी चाहिये और जिस ऋतुमें जिस प्रकारके गुणोंकी आवश्यकता हो वह ऋतुक्रमसे सुखदायक गुणोंवाली हो एवं स्वच्छ और

मनोहर होनी चाहिये। उसमें निन्दित शब्द आदिक तथा स्त्रियें आदि न जा सकती हों तथा इच्छित योग्य रसायनोपकारी संपूर्ण सामग्रीसे युक्त हो । जिसमें श्रेष्ठ वैद्य, औषध और योग्य ब्राह्मण उपस्थित हों ऐसी कुटी (उत्तम स्थान) बनाना चाहिये ॥ १६–१८ ॥

कुटीप्रवेशविधि ।

अथातोदगयने शुक्ले तिथिनक्षत्रपूजिते ।
मुहूर्तकरणोपेते प्रशस्ते कृतवापनः ॥ १९ ॥
धृतिस्मृतिबलं कृत्वा श्रद्दधानः समाहितः ।
विधूय मानसान्दोषान् मैत्रीं भूतेषु चिन्तयन् ॥ २० ॥
देवताः पूजयित्वाग्रे द्विजातींश्च प्रदक्षिणम् ।
देवगोब्राह्मणान्कृत्वा ततस्तां प्रविशेत्कुटीम् ॥ २१ ॥

इसके अनंतर उत्तरायण, शुक्लपक्ष और उत्तम तिथि तथा शुभ नक्षत्रमें उत्तम शुभ करण मुहूर्त्त आदिको देखकर, क्षौर और स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रद्धावान् मनुष्य धृति और स्मृतिके बलको धारणकर सावधानीके साथ और श्रद्धासंयुक्त एकाग्रचित्त होकर काम क्रोधादि मनके दोषोंको त्यागकर संपूर्ण जीवोंको मैत्रीभावसे देखताहुआ देवता आदिकोंका और तत्पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजन कर देव, गौ, ब्राह्मण आदिकोंकी प्रदक्षिणा करके कुटीमें प्रवेश करे ॥ १९–२१ ॥

रसायनसे प्रथम शोधनका उपदेश ।

तस्यां संशोधनैः[1] शुद्धः सुखी जातबलः पुनः ।
रसायनं प्रयुञ्जीत तत्प्रवक्ष्यामि शोधनम्[2] ॥ २२ ॥

फिर प्रथम शोधनोंद्वारा शुद्ध होकर सुखपूर्वक शरीरमें बल प्राप्त होनेपर रसायनका सेवन करे । अब प्रथम शोधनका कथन करते हैं ॥ २२ ॥

शोधनद्रव्य व क्रम ।

हरीतकीनां चूर्णानि सैन्धवामलके गुडम् ।
वचां विडङ्गं रजनीं पिप्पलीं विश्वभेषजम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना जन्तुः स्नेहस्वेदोपपादितः ॥ २३ ॥

प्रथम स्नेहन और स्वेदनसे संपन्न शरीरवाला मनुष्य हरड, सेन्धानमक, आमले

---

१ यद्यपीह संशोधनैरिति बहुवचनप्रयोगात् सर्वाण्येव संशोधनानि सम्मतानि, तथापीह रसायनविशेषेण यौगिकहरीतक्यादिप्रयोग एवोक्तः । २ वमनविरेचनास्थापनशिरोविरेचनैः ॥

गुड, वच, विडंग, हल्दी, पीपल, सोंठ इन सबको मिलाकर इनका चूर्ण उचित मात्रासे खाकर ऊपरसे गरम पानी पीवे ॥ २३ ॥

तेन शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च ।
त्रिरात्रं यावकं दद्यात्पञ्चाहं वापि सर्पिषा ।
सप्ताहं वा पुराणस्य यावच्छुद्धेस्तु वर्चसः ॥ २४ ॥

इस प्रकार जब मनुष्य शुद्ध शरीर होजाय तो इसको क्रमपूर्वक मलशुद्धिके लिये तीन दिन पर्यन्त घृतयुक्त यवागू पिलावे । अथवा पांच दिनतक या सात दिन तक पुराने यवादिकोंका घृतयुक्त यूष देवे । जबतक मल शुद्ध न होजाय तबतक यही यूष दिया करे ॥ २४ ॥

शुद्धकोष्ठं तु तं ज्ञात्वा रसायनमुपाचरेत् ।
वयःप्रकृतिसात्म्यज्ञो यौगिकं यस्य यद्भवेत् ॥ २५ ॥

इस प्रकार जब देखे कि, उस मनुष्यका कोष्ठ शुद्ध होगया है तो अवस्था, प्रकृति और सात्म्यको विचारकर जिसको जिस प्रकारका रसायन प्रयोग हितकारक हो उसको उस प्रकारका रसायन प्रयोग करावे ॥ २५ ॥

हरीतकीके गुण।

हरीतकीं पञ्चरसामुष्णामलवणां शिवाम् ।
दोषानुलोमिनीं लघ्वीं विद्याद्दीपनपाचनीम् ॥ २६ ॥
आयुष्यां पौष्टिकीं धन्यां वयसः स्थापनीं पराम् ।
सर्वरोगप्रशमनीं बुद्धीन्द्रियबलप्रदाम् ॥ २७ ॥
कुष्ठं गुल्ममुदावर्त्तं शोषं पाण्ड्वामयं मदम् ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पुराणं विषमज्वरम् ॥ २८ ॥
हृद्रोगं सशिरोरोगमतीसारमरोचकम् ।
कासं प्रमेहमानाहं प्लीहानमुदरं नवम् ॥ २९ ॥
कफप्रसेकं वैस्वर्य्यं वैवर्ण्यं कामलां क्रिमीन् ।
श्वयथुं तमकं छर्दिं क्लैब्यमङ्गावसादनम् ॥ ३० ॥

---

१ "यद्यपि आमलकं वयःस्थापनानाम्" इत्युक्तं तथापि रोगहरत्वे हरीतक्येवोत्कर्षवतीति कृत्वा हरीतक्यग्रेऽभिहिता ।

स्रोतोविबन्धान्विविधान्प्रलेपं हृदयोरसोः।
स्मृतिबुद्धिप्रमोहञ्च जयेच्छीघ्रं हरीतकी॥ ३१॥

अब हरीतकी (हरड) के गुणोंको कहते हैं–हरडमें लवणरसके सिवाय पांच रस हैं। यह उष्ण, कल्याणकारक, दोषोंको अनुलोमन करनेवाली, हल्की, दीपन और पाचन होती है तथा आयुवर्द्धक, पुष्टिकारक, धन्य, परम अवस्थास्थापक, सर्वरोगनाशक, बुद्धिवर्द्धक, इन्द्रियबलवर्द्धक, बलदायक एवं कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त्त, शोष, पाण्डुरोग, मदरोग, बवासीर, ग्रहणी, जीर्णज्वर, विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरोचक, खांसी, प्रमेह, आनाह, प्लीहरोग, नवीन उदररोग, कफका गिरना, स्वरभंग, विवर्णता, कामला, कृमिरोग, सूजन, तमकश्वास, छर्दि, नपुंसकता, अंगोंका रहजाना, अनेक प्रकारके स्रोतोंका विबंध, हृदय और छातीका प्रलेप, स्मृति और बुद्धिका मोह इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाली है॥ २६-३१॥

हरडके सेवनका निषेध।

अजीर्णिनो रूक्षभुजः स्त्रीमद्यविषकर्षिताः।
सेवेरन्नाभयामेते क्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्च ये॥ ३२॥

जिस मनुष्यको बिल्कुल भी अन्न न पचता हो तथा रूक्ष भोजन करनेवाला स्त्रीसंग और मद्य तथा विषसे व्याकुल मनुष्य एवं जो क्षुधा, तृषा तथा उष्णतासे पीडित हो उसको हरडका सेवन नहीं करना चाहिये॥ ३२॥

आमलेके गुण।

तान्गुणांस्तानि कर्माणि विद्यादामलकीष्वपि।
यान्युक्तानि हरीतक्या वीर्य्यस्य तु विपर्य्ययः॥ ३३॥

जो गुण हरडमें हैं और जितने प्रकारके हरडके कर्म हैं वह आमलेमें भी हरडके ही समान हैं केवल विशेषता इतनीही है कि हरड उष्णवीर्य होती है और आमले शीतवीर्य होते हैं॥ ३३॥

दोनों फलोंको अमृतकल्पत्व।

अतश्चामृतकल्पानि विद्यात्कर्मभिरीदृशैः।
हरीतकीनां शस्यानि भिषगामलकस्य च॥ ३४॥

इसीलिये हरड और आमलेके गुणकर्मोंको अमृतके तुल्य देखतेहुए वैद्यलोग इन दोनों फलोंको अमृतकल्प कहते हैं॥ ३४॥

औषधयोग्य उत्तम भूमि।

औषधीनां परा भूमिर्हिमवाञ्छैलसत्तमः।

तस्मात्फलानि तज्जानि ग्राहयेत्कालजानि च ॥ ३५ ॥
आपूर्णरसवीर्य्याणि काले काले यथाविधि ।
आदित्यसलिलच्छायापवनप्रीणितानि च ॥ ३६ ॥
यान्यदग्धान्यपूतीनि निर्व्रणान्यगदानि च ।
तेषां प्रयोगं वक्ष्यामि फलानां कर्म चोत्तमम् ॥ ३७ ॥

संपूर्ण औषधियोंके ग्रहण करनेकी अथवा उनके उत्पन्न होनेकी सबसे उत्तम भूमि हिमवान् पर्वत है । इस लिये उस हिमवान् पर्वतमें उत्पन्नहुए फल और अन्य वनस्पति जब अपने २ ठीक समयपर पूर्णरस और वीर्यसे संपन्न हों और धूप, जल, छाया, पवन आदिसे यथोचितपरिपुष्ट होगई हों एवं उन फलादिकोंमें किसी प्रकारका दुर्गंध, दाग, कीट आदि न लगाहुआ हो एवं अन्य किसी प्रकारके दोषसे दूषित न हों ऐसे फल तथा बूटियोंको विधिके अनुसार ग्रहण करना चाहिये । उन हिमवान्के उत्तम फलोंका कर्म और जिस प्रकार उत्तम विधिसे प्रयोग करना चाहिये उसका वर्णन करते हैं ॥ ३५–३७ ॥

ब्राह्यरसायन ।

पञ्चानां पञ्चमूलानां भागान् दशपलोन्मितान् ।
हरीतकीसहस्रञ्च त्रिगुणामलकं नवम् ॥ ३८ ॥
विदारिगन्धां बृहतीं पृश्निपर्णीं निदिग्धिकाम् ।
विद्याद्विदारिगन्धाद्यं श्वदंष्ट्रापञ्चमं गणम् ॥ ३९ ॥
बिल्वाग्निमन्थश्योनाकं काश्मर्य्यमथ पाटलीम् ।
पुनर्नवा सूपपर्ण्यौ बलामेरण्डमेव च ॥ ४० ॥
जीवकर्षभकौ मेदां जीवन्तीं सशतावरीम् ।
शरेक्षुदर्भकाशानां शालीनां मूलमेव च ॥ ४१ ॥
इत्येषां पञ्चमूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत् ।
भागान्यथोक्तांस्तत्सर्वं साध्यं दशगुणेऽम्भसि ॥ ४२ ॥
दशभागावशेषन्तु पूतं तद्ग्राहयेद्रसम् ।
हरीतकीश्च ताः सर्वाः सर्वाण्यामलकानि च ॥ ४३ ॥
तानि सवाण्यनस्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चैः ।

विनीय तस्मिन्निर्य्यूहे चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ४४ ॥
मण्डूकपर्ण्याः पिप्पल्याः शंखपुष्प्याः प्लवस्य च ।
मुस्तानां सविडङ्गानां चन्दनागुरुणोस्तथा ॥ ४५ ॥
मधुकस्य हरिद्रायाः वचायाः कनकस्य च ।
भागांश्चतुष्पलान्कृत्वा सूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा ॥४६ ॥
सितोपलासहस्रञ्च चूर्णितं तुलयाधिकम् ।
तैलस्य द्व्याढकं तत्र दद्यात्त्रीणि च सर्पिषः ॥ ४७ ॥
साध्यमौडुम्बरे पात्रे तत्सर्वं मृदुनाग्निना ।
ज्ञात्वा लेह्यमदग्धञ्च शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥ ४८ ॥
क्षौद्रप्रमाणं स्नेहार्द्धं तत्सर्वं घृतभाजने ।
तिष्ठत्संमूर्च्छितं तस्य मात्रां काले प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥
या नोपरुन्ध्यादाहारमेवं मात्रां जरां प्रति ।
षष्टिकः पयसा चात्र जीर्णे भोजनमिष्यते ॥ ५० ॥

पञ्चमूल पांच प्रकारके हैं । जैसे शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली और गोखरू यह लघुपञ्चमूल है । बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, कुम्भेर और पाढला यह बृहत् पंचमूल है । पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, बला, एरंडकी जड यह पुनर्नवादिपंचमूल है । जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती और शतावर यह जीवकादि पञ्चमूल है । सरपतेकी जड तथा ईख, दर्भ,काश और शालिधानकी जड यह तृणपञ्चमूल कहाजाता है इन सबको मिलानेसे पच्चीस औषधियें हुई । इनमेंसे प्रत्येक औषधको दो पल (८ तोले) लेवे । और उत्तम हरड १००० तथा उत्तम परिपक्व आमले २००० लेने चाहिये । प्रथम उन सब औषधियोंको दशगुने जलमें डालकर पकावे । जब पानी नौ भाग जलकर एक भाग शेष रहे तो उसको शुद्ध वस्त्रमें छान लेवे फिर आमले और हरडोंकी गुठलियें दूरकर उनका बारीक चूर्ण कूटलेवे । यह चूर्ण उन औषधियोंके क्राथमें मिला देवे । फिर उसीमें ब्राह्मी, पीपल, शंखपुष्पी, केवटी मोथा, नागरमोथा, वायविडंग, लालचन्दन, अगर, मुलहटी, हल्दी, वच, नागकेशर और छोटी इलायची दालचीनी इन सबको चारचार पल लेकर चूर्ण करे । और ११०० पल (१ मन १५ सेर) मिसरी लेवे । तेल २ आढक (८ सेर) घी ३ आढक इन सबको मिलाकर उत्तम कलीकिये हुए तांबेके पात्रमें मंदमंद अग्निसे पकावे । जब

यथार्थ गाढा होजाय तब इसको नीचे उतारकर ठण्डा होनेपर इसमें २ ॥ आढक उत्तम शहद मिलावे। फिर सबको विधिवत् एकमेल कर किसी घृतके चिकने पात्रमें भरकर रख देवे। इसको पंद्रह दिनतक ऐसेही धरा रहनेदे। फिर इसमेंसे समयपर उचित मात्रानुसार खाना चाहिये। जितनी मात्रा खानेसे भूख बंद न होजाय उतनी मात्रासे नित्य विधिवत् खाना चाहिये। जब मात्रा जीर्ण होजाय अर्थात् प्रातःकालकी खायी हुई औषध पचकर भूख लगजाय तब साठीचावलोंका भात और दूधका भोजन करना चाहिये ॥ ३८-५० ॥

ब्राह्मरसायनका फल।

वैखानसा वालखिल्यास्तथा चान्ये तपोधनाः।
रसायनमिदं प्राप्य बभूवुरमितायुषः ॥ ५१ ॥
मुक्त्वा जीर्णं वपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणं वयः।
वीततन्द्राक्लमश्वासा निरातङ्काः समाहिताः ॥ ५२ ॥
मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रं तपोधनाः।
ब्राह्म्यं तपो ब्रह्मचर्यं चेरुश्चात्यन्तनिष्ठया ॥ ५३ ॥
रसायनमिदं ब्राह्ममायुष्कामः प्रयोजयेत्।
दीर्घमायुर्वयश्चाग्र्यं कामांश्चेष्टान्समश्नुते ॥ ५४ ॥

इति ब्राह्मरसायनम् ॥

इस ब्राह्मरसायनके सेवनसे वैखानस और वालखिल्य तथा अन्यान्य तपोधन महर्षि अमित आयुको प्राप्त हुए और उनके शरीरकी जीर्णता दूर होकर तरुणावस्था प्राप्त हुई, एवं तन्द्रा, क्लान्ति, श्वास आदिसे रहित होकर निरातंक (निरोग) शुद्ध-काय हुए। तथा सम्पूर्ण शारीरिक सम्पत्तियुक्त, मेधा, स्मृति और बलसे संपन्न होकर चिरकालतक तप और ब्रह्मचर्यको पालन करते रहे। एवं इसी रसायनके प्रभावसे ब्रह्मतेजको प्राप्त हुए। इस ब्राह्मरसायनको आयुकी कामनाके लिये प्रयोग करना चाहिये। इसके प्रभावसे मनुष्य दीर्घायु नवीन अवस्थावाला होकर अपनी इच्छानुसार इष्टकामनाओंके फलको भोगता है ॥ ५१-५४ ॥

द्वितीय ब्राह्मरसायन।

यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रं पिष्ट्वा स्वेदनविधिना पयस ऊष्मणा

---

१ मात्रा छः मासासे ४ तोला अथवा ६ तोला है। शुद्धशरीर मनुष्य प्रातःकाल इसको खाकर ऊपरसे गौ या बकरीका ताजा दूध गरमकर पीवे अथवा गरमजलसे खावे।

सुस्विन्नमनातपशुष्कमनस्थि चूर्णयेत्। तदामलकसहस्रं स्वरसपरिपीतं स्थिरापुनर्नवाजीवन्तीनागबलाब्रह्मसुवर्चलामण्डूकपर्णीशतावरीशंखपुष्पीपिप्पलीवचाविडङ्गस्वयंगुप्तामृताचन्दनागुरुमधुकमधूकपुष्पोत्पलपद्ममालतीयुवतीयूथिकाचूर्णाष्टभागसंयुक्तम्। पुनर्नागबलासहस्रपलस्वरसपरिपीतमनातपशुष्कं द्विगुणितसर्पिषा क्षौद्रसर्पिषा वा क्षुद्रगुडाकृतिं कृत्वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे भस्मराशेरधः स्थापयेत् अन्तर्भूमेः पक्षं कृतरक्षाविधानमथर्ववेदवित्। पक्षात्यये चोद्धृत्य कनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्टभागसंयुक्तमर्द्धकर्षवृद्ध्या यथोक्तेन विधिना प्रातः प्रातः प्रयुञ्जानोऽग्निबलमभिसमीक्ष्य जीर्णे च षष्टिकं पयसा ससर्पिष्कमुपसेवमानो यथोक्तान् गुणान् समश्नुते इति॥ ५५

उत्तम रस और वीर्यसे संपन्न पकेहुए १००० आमले लेकर उनको एक स्वच्छ बारीक मलमलके वस्त्रमें ढीला बांधकर दूधमें औटावे। जब आमले पकजायँ तब वस्त्रसे निकालकर उनकी गुठलियें दूर कर देवे और छायामें सुखाडाले। फिर उनका बारीक चूर्ण करके उस चूर्णमें १००० उत्तम पकेहुए आमलोंका स्वरस खपादेवे। उसमें मिलानेकी यह विधि है कि, इस आमलेके चूर्णमें आमलेका रस डालता जाय और उसको घोटकर छायामें सुखाता जाय फिर शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, नागबला, सुवर्चला, ब्राह्मी, शतावर, शंखपुष्पी, पीपल, वच, वायविडंग, कौंचके बीजोंकी गिरी, गिलोय, लालचंदन, अगर, मुलहटी, मोहुवेके फूल, नीलोफर, कमल, मालतीफूल, प्रियंगु, जुही इन सबका चूर्ण उस आमलोंके चूर्णसे आठवां भाग लेकर उसी आमलोंके चूर्णमें मिलादेवे। फिर इस संपूर्ण चूर्णको नागबला (गंगेरन)के १००० पल (सवामन) स्वरसमें घोंट २ कर छायामें सुखाताजाय। जब संपूर्ण रस सूखजाय तब उसमें दो भाग घृत और एक भाग शहद मिलाकर अथवा घृतही मिलाकर नरम होजानेपर गुडमें लड्डूसे बनाकर घृतके चिकने पात्रमें रखदे और उस पात्रको बंदकर पवित्र भूमिमें भस्मके ढेरके नीचे दबा दे। अथवा जमीनमें गढा खोदकर उसमें ऊपर नीचे राख रख बीचमें घडेको दबा देवे। फिर इस घडेको पंद्रह दिनके बाद अथर्ववेदका जाननेवाला योग्यब्राह्मण या वैद्य निकाले फिर उसमें शुद्ध सोनेकी भस्म और चांदीकी वर्क, भस्म, ताम्रभस्म, प्रवालभस्म, लोहभस्म इन सबको मिला-

---

१ स्वरस न मिलसके तो क्वाथ लेना चाहिये। गंगेरणके गुलशकरी और कंघी प्रसिद्ध नामहै।

कर आमलेंके चूर्णसे आठवां भाग मिला देवे। एकजीव होनेपर इसमेंसे शुद्धकाय मनुष्य प्रातःकाल छःमासा खाया करे और अपने अग्निबलके अनुसार इसकी मात्राको इस प्रकार बढाता चलाजाय जिससे भूख बन्द न होजाय। जब यह औषध जीर्ण होकर दोपहर समय भूख लगे तो शाठीचावल, घृत और दूधका भोजन किया करे इसके सेवनसे मनुष्य रसायनके यथोक्त गुणोंको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

भवन्ति चात्र–इदं रसायनं ब्राह्यं महर्षिगणसेवितम्।
भवत्यरोगो दीर्घायुः प्रयुञ्जानो महाबलः ॥ ५६ ॥
कान्तः प्रजानां सिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः।
श्रुतं धारयते सत्त्वमार्षञ्चास्य प्रवर्त्तते ॥ ५७ ॥
धरणीधरसारश्च वायुना समविक्रमः।
स भवत्यविषश्चास्य गात्रे संपद्यते विषम् ॥ ५८ ॥
इति द्वितीयब्राह्यरसायनयोगः ॥

यहांपर कहा है कि, महर्षिगणोंका सेवित यह ब्राह्यरसायन जो मनुष्य सेवन करता है वह रोगरहित दीर्घायु और महाबलवान् होता है। तथा सबका प्यारा सुन्दर सिद्ध मनोरथ, सूर्य और चंद्रमाके समान कांतिवाला और वेदोंका जाननेवाला अथवा श्रवणमात्रसे धारण करनेवाला होजाता है। इसका मन ऋषियोंके समान होजाता है। इसका शरीर पर्वतके समान सारयुक्त और वायुके समान पराक्रमवाला होजाता है। इसके शरीरमें विष भी निर्विष होजाता है ॥ ५६–५८ ॥

चयवनप्राश।

बिल्वाग्निमन्थौ श्योनाकः काश्मर्य्यं पाटलिर्बला।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ५९ ॥
शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्कराग्रुरुः।
अभया चामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शठी ॥ ६० ॥
मुस्तं पुनर्नवा मेदा एला चन्दनमुत्पलम्।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥ ६१ ॥
एषां पलोन्मितान्भागाञ्छतान्यामलकस्य च।
पञ्च दद्यात्तदैकत्र जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ६२ ॥

ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम्।

तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः॥ ६३॥

पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्द्धतुलां भिषक्।

मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत्॥ ६४॥

षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते समावपेत्।

चतुष्पलं तुगाक्षीर्य्याः पिप्पलीद्विपलं तथा॥ ६५॥

पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात्।

इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः॥ ६६॥

बिल्व, अग्निमंथ, श्योनाक (इसे अलूं भी कहते हैं) कुंभेर, पाटला, बला, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, पीपल, गोखरू, बडी कटेली, छोटी कटेली, काकडासिंगी, भूमिआमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, हरड, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागरमोथा. पुनर्नवा, (या साँठी) मेदा, इलायची, चन्दन, कमलगट्टे, विदारीकन्द, अडूसेकी जड, काकोली, काकनासा इन सब औषधियोंको एक एक पल लेवे और शुद्ध पकेहुए उत्तम आमले[२]५०० लेवे। इन सबको एक द्रोण (१६ सेर) पानीमें पकावे। इस पानीमें सब दवाइयें जौकूट कर डालदेना चाहिये और आमले बारीक थैलीमें ढीले बांधकर उसी जलमें डाल देने चाहिये। जब बारह सेर पानी जलकर ४ सेर पानी रहजाय तो उस पानीको छानकर अलग पात्रमें रख लेवे और थैलीमेंसे आंवले निकालकर उनकी गुठलियें निकालकर फेंक देवे। फिर इन आमलोंको सिलपर पीसकर या हाथसे मथकर १२ पल घृत और तेलमें भूनलेवे। फिर पूर्वोक्त औषधियोंके क्काथमें ५० पल मिसरी[१] मिला चासनी बनावे। उस चासनीमें यह भुनेहुए आमले मिला देवे। विधिवत् अवलेह सिद्ध होनेपर उसको नीचे उतार लेवे। जब वह ठण्डा होजाय तो उसमें २४ तोला शहद मिला देवे और १६ तोला वंशलोचन, ८ तोला पीपल, ४ तोला दालचीनी, ४ तोला इलायचीके बीज, ४ तोला तेजपत्र, ४ तोला नागकेशर इन सबका बारीक चूर्ण कर इसमें मिला देवे। इस अवलेहको च्यवनप्राश कहते हैं। यह परम उत्तम रसायन है॥ ५९–६६॥

च्यवनप्राशके गुण।

कासश्वासहरश्चैष विशेषेणोपदिश्यते।

क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनः॥ ६७॥

---

१ शर्करासंहतिः चासनीति लोके प्रसिद्धा। २ कोई आमले ५०० पल (२० सेर पक्के) लेते हैं।

स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान् दोषांश्चाप्यपकर्षति ॥ ६८ ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत याऽवरुन्ध्यान्न भोजनम् ।
अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा ॥ ६९ ॥
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ७० ॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात् ।
जराकृतं रूपमपास्य सर्वं बिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ ७१ ॥

इति च्यवनप्राशः ॥

इस च्यवनप्राशके सेवनसे खांसी और श्वास दूर होते हैं । विशेषकरके च्यवनप्राशके सेवनसे क्षत, क्षीण, वृद्ध और बालकोंके अंगोंकी पुष्टि होती है । तथा हृदयके रोग, छातीके रोग, वातरक्त, प्यास, मूत्रके दोष, वीर्यदोष और स्वरकी क्षीणता यह सब नष्ट होते हैं । इसकी इतनी मात्रा सेवन करना चाहिये जिससे अजीर्ण न होजाय । जब इसकी मात्रा पचजाय तो क्षुधा लगनेपर दूध चावल और घृतका भोजन करना चाहिये । च्यवनप्राशको प्रायः दूधके अनुपानसे खाना चाहिये इसके प्रयोगसे ही च्यवनऋषि वृद्ध अवस्थावाले होते हुए भी फिर युवावस्थाको प्राप्त होगये । इसके सेवनसे मेधा, स्मृति, कांति, आरोग्यता, आयु यह सब वृद्धिको प्राप्त होते हैं । तथा इन्द्रियोंका बल बढता है । स्त्रीगमनकी शक्ति होती है । जठराग्निकी वृद्धि होती है । शरीरके वर्णका प्रकाश होता है । वायु अनुलोम होता है । इस च्यवनप्राश रसायनको यदि वृद्ध मनुष्य भी शुद्ध शरीर होकर कुटीप्रवेशविधिसे सेवन करे तो वृद्धावस्थाके रूपको त्यागकर सम्पूर्ण युवावस्थाके रूपोंसे सम्पन्न होजाता है । पहिले यह रसायन अश्विनीकुमारोंने च्यवनऋषिको सेवन कराया था इसलिये इसको च्यवनप्राश कहते हैं ॥ ६७–७१ ॥

चतुर्थ आमलकीरसायन ।

अथामलकहरीतकीनामामलकविभीतकानामामलकहरीतकीविभीतकानां वा पलाशत्वगवनद्धानां मृदावलिप्तानां कुकूलके स्विन्नानामकुलंकानां पलसहस्रमुलूखले संपोथ्य दधिघृतमधुपललतैलशर्करासं-

---

१ अस्थिरहितानाम् ।

प्रयुक्तं भक्षयेदनन्नभुग्यथोक्तेन विधिना। तस्यान्ते यवाग्वादिभिः प्रकृत्यवस्थापनमभ्यङ्गोत्सादनं सर्पिषा यवचूर्णैश्च, अयञ्च रसायनप्रयोगप्रकर्षो द्विस्तावदग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रतिभोजनं यूषेण पयसा वा षष्टिकः ससर्पिष्कोऽतःपरं यथासुखविहारः कामभक्ष्यः स्यात्। अनेन प्रयोगेण ऋषयः पुनर्युवत्वमवापुर्बभूवुश्चानेकवर्षशतजीविनो निर्विकाराः परं शरीरबुद्धीन्द्रियबलसमुदिताश्चेरुश्चात्यन्तनिष्ठं तप इति॥ ७२॥ इति चतुर्थामलकरसायनम्॥

आमले और हरड अथवा आमले और बहेडे या हरड, बहेडे, आमले इन तीनोंको पलाशकी छालसे लपेटकर ऊपर कपडमिट्टी करके गोलासा बनालेवे। फिर इस गोलेको कुकूलक—करीषाग्नि अर्थात् जंगली एरने उपलोंकी आगमें पकावें। जब वह पक जावें तो उनको निकालकर गुठली आदि निकाल डाले और ऊपरके छिलकेको बारीक पीस लेवे या ऊखलमें कूटलेवे। इस प्रकार शुद्ध, स्वेदित कियाहुआ यह हरड बहेडे आमलोंका छिलका १००० पल लेना चाहिये फिर, इसको घृत, दही, शहद, तिलोंका कल्क, तैल, मिसरी आदिसे विधिवत् सिद्धकरके विधिपूर्वक प्रातःकाल योग्य मात्रासे खाया करे। और इसके सेवनमें अन्नका त्याग कर देवे। भूख लगे तो दूध पीवे। इसके अनन्तर जब शरीर शुद्ध होजावे तब यवागू और विलेपी आदिसे शारीरिक स्वभावको ठीक करे अर्थात् क्रमसे स्वाभाविक भोजन करनेलगे। जितने दिन इस रसायनका सेवन कियाजाय, यवका आटा और घृत मिला शरीरपर उवटन लगाता रहे। इस रसायन सेवनके पश्चात् क्षुधाके समय अग्निबलके अनुसार यूष, घृत अथवा दूध घृत या दूध और साठी चावल तथा घृत मिलाकर क्रमपूर्वक सेवन करे और हितकारक आहार विहारका सेवन करे। इसके अनन्तर इच्छापूर्वक सुखकारी आहार विहार सेवन करे। इसके प्रयोगसे अनेक ऋषि वृद्धावस्थाको त्याग युवावस्थाको प्राप्त हुए। और निर्विकार रहकर पूर्णायुको भोगते रहे। तथा इसके सेवनसे शरीर बुद्धि और इन्द्रियोंके बलसे संपन्न होकर परम तप तपते थे॥ ७२॥

५ हरीतक्यादि रसायन।

हरीतक्यामलकविभीतकपञ्चपञ्चमूलनिर्य्यूहेण पिप्पलीमधुमधूककाकोलीक्षीरकाकोली आत्मगुप्ताजीवकर्षभकक्षीरशुक्लाकल्कसंप्रयुक्तेन विदारीस्वरसेन क्षीराष्टगुणसंप्रयुक्तेन च सर्पिषः कुम्भं साधयित्वा

---

१ द्रोणद्वयम्। उक्तं च—"द्रोणस्तु द्विगुणः सूर्पो विज्ञेयः कुम्भ एव च।"

प्रयुञ्जानोऽग्निबलं समवेक्ष्यैव। जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमुष्णोदकानुपानमश्नञ्जराव्याधिपापाभिचारभयव्यपगतशरीरः बुद्धीन्द्रियबलमतुलमुपलभ्याप्रतिहतसर्वारम्भः परमायुरवाप्नुयादिति ॥७३॥

इति पञ्चमहरीतकी ॥

हरड, आमले, बहेडे और पूर्वोक्त पांचों पंचमूलका क्वाथ बनावे। तथा पिप्पली, मुलहठी, काकोली, क्षीरकाकोली, कौंचके बीजोंकी गिरी, जीवक, ऋषभक, क्षीरविदारी इन सबका कल्क बनावे। फिर कल्कसे आठगुना विदारीकंदका रस और आठगुना गौका दूध और कल्कसे चौगुना घृत डालकर घृतपाकविधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको शुद्धकाय मनुष्य अग्निबल विचारकर सेवन करे। जब घृत जीर्ण होजाय तब दूध शाली अथवा साठीके चावल घृत और दूध मिलाकर खावे। परन्तु जल भोजनके समय भी गर्म ही पीवे। शीतल न पीवे। इस घृतके सेवनसे बुढापा, रोग, पाप, किसीका किया मंत्र, तंत्र आदि यह कोई शरीरपर अपना असर नहीं करसकते तथा शरीर, बुद्धि और इन्द्रियोंका बल अत्यन्त बढजाता है। संपूर्ण कामोंमें अप्रतिहत सिद्धि प्राप्त होती है। एवं आयुकी वृद्धि होती है ॥ ७३ ॥

६ हरीतक्यादि रसायन।

हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृतवल्लीविश्वभेषजमधुकपिप्पलीसोमवल्कसिद्धेन क्षीरसर्पिषा मधुशर्कराभ्यामपि च सन्नियामलकस्वरसशतपलपीतमामलकचूर्णमयश्चूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तं पाणितलमात्रं प्रातः प्रातः प्राश्य यथोक्तेन विधिना सायं मुद्गयूषेण पयसा वा ससर्पिष्कं शालिषष्टिकमश्नीयात्। त्रिवर्षप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति श्रुतमवतिष्ठते सर्वामयाः प्रशाम्यन्ति विषमविषं भवति गात्रे। गात्रमश्मवत् स्थिरीभवति अदृश्यो भूतानां भवतीति॥

हरड, आँवला, बहेडा, हल्दी, शालिपर्णी, वच, वायविडंग, गिलोय, सोंठ, मुलहठी, पीपल और कंथ इन सबके कल्कसे और इनसे आठगुना दूध डालकर घृतको सिद्ध करे। जब वह शीतल होजाय तब शहद और मिसरी मिलावे फिर १०० पल आमलेके चूर्णको आमलेके स्वरसकी भावना दे वह चूर्ण भी इस घृतमें मिलावे और आमलेके चूर्णसे चौथा भाग शुद्ध लोहभस्म मिलावे। फिर इसमेंसे ६ मासासे आरंभ कर

---

१ बलेति पाठान्तरम्।

दो तोलातक कुटीप्रवेशविधिसे नित्य प्रातःकाल खायाकरे। सायंकालमें मूंगके यूष अथवा दूधके साथ घृतयुक्त शाली अथवा साठी चावल भोजन करे। इस रसायनको तीनवर्षपर्यन्त सेवन करना चाहिये। इससे १०० वर्षपर्यन्त सफेद बाल या सलवट वगैरह कोई वृद्धावस्थाका चिह्न नहीं होगा रोगरहित पूर्णआयुको भोगेगा। जिस बातको एकबार सुने उसको कभी नहीं भूले, शरीरमें कोई रोग न हो, इस मनुष्यके शरीरमें विष भी निर्विष होजाय, देह पत्थरके समान दृढ हो, भत आदि इसको देख न सके और मनुष्योंका प्यारा हो ॥ ८४ ॥

भवन्ति चात्र–यथामराणाममृतं यथा भोगवतां सुधा ।
तथाभवन्महर्षीणां रसायनविधिः पुरा ॥ ७५ ॥
न जरां न च दौर्बल्यं नातुर्य्यं निधनं न च ।
जग्मुर्वर्षसहस्राणि रसायनपराः पुरा ॥ ७६ ॥
न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते रसायनं यो विधिवन्निषेवते ।
गतिं स देवर्षिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथेति चाक्षरम्[१] ॥ ७७ ॥

यहांपर कहते हैं कि जैसे देवताओंको अमृत, भोगी (वासुकी आदि नागों) को सुधा होती है उसीप्रकार पूर्वसमयमें महर्षिलोगोंके लिये रसायन प्रयोग होता था रसायन सेवन करनेवाले ऋषियोंको हजारवर्षपर्यन्त भी बुढापा, रोग, मृत्यु, दुर्बलता कोई नहीं होसकती थी। रसायन सेवन करनेसे केवल आयुकी वृद्धि होती है इतना ही नहीं किन्तु विधिवत् रसायन सेवनसे देवता और ऋषियोंकरके सेवित हुआ अक्षय सुखको प्राप्त होता है ॥ ७५–७७ ॥

तत्र श्लोकः–अभयामलकीयेऽस्मिन् षड्योगाः परिकीर्तिताः ।
रसायनानां सिद्धानामायुर्यैरनुवर्त्तते ॥ ७८ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सिते अभयामलकीये रसायनपादः प्रथमः॥ १॥

यहां एक श्लोक है कि इस अभयामलकीय नामक अध्यायके प्रथम पादमें इन छः रसायनके योगोंका वर्णन किया गया है। जो मनुष्य इन सिद्ध रसायनोंको सेवन करता है उसकी वृद्धावस्था दूर होकर फिर युवावस्था प्राप्त होजाती है और दीर्घायु होता है ॥ ७८ ॥

इत्यभयामलकीये रसायनपादः प्रथमः ॥ १ ॥

---

१ "ब्रह्मप्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च भवत्येव रसायनात्"।

अथातः प्राणकामीयं रसायनपादं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥ ७९ ॥

अब हम प्राणकामीय रसायनपादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ७९ ॥

प्राणकामाः शुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदितिसुतहितकरमचिन्त्याद्भुतप्रभावमायुष्यमारोग्यकरं वयसः स्थापनं निद्रातन्द्राश्रमक्लमालस्यदौर्बल्यापहरमनिलकफपित्तसाम्यकरं स्थैर्य्यकरमबद्धमांसकरमन्तराग्निसन्धुक्षणं प्रभावर्णस्वरोत्तमकरं रसायनविधानम् । अनेन च्यवनादयो महर्षयः पुनर्युवत्वमापुः नारीणां चेष्टतमा बभूवुः स्थिरसमसुविभक्तमांसाः सुसंहतस्थिरशरीराः सुप्रसन्नबलवर्णेन्द्रियाः सर्वत्राप्रतिहतपराक्रमाः सर्वक्लेशसहाश्च ॥ ८० ॥

हे आयुके बढानेकी इच्छावाले मनुष्यो ! अब जिस प्रकारके रसायनका वर्णन करते हैं यह भी दूसरे अमृतके समान है । यह रसायन अचिंत्य, अद्भुतप्रभाववाला आयुष्य, आरोग्यकारक, अवस्थास्थापक, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, क्लम और दुर्बलताको हरण करनेवाला वातादिदोषोंको दूर करके सम अवस्थामें रखता हुआ शरीरको दृढ तथा आलस्यरहित बनाता है । तथा मांसकी शिथिलता दूर कर अग्निको दीपन करता है, एवं प्रभा, वर्ण और स्वरको उत्तम करता है । यह रसायन देवताओंको भी हितकारी है और इसीके द्वारा च्यवनादि ऋषियोंने फिर वृद्धावस्थासे युवावस्था प्राप्त कर स्त्रियोंके प्रियतम हुए । इसके सेवनसे शरीर और मांस दृढ, सम और सुविभक्त रहता है तथा बल, वर्ण और इन्द्रियें सब प्रसन्न रहती हैं, पुरुषका पराक्रम कभी घटता नहीं एवं क्लेशोंको सहन करनेकी शक्ति रहती है ॥ ८० ॥

सर्वे शरीरदोषा भवन्ति ग्राम्याद्याहारादम्ललवणकटुकक्षारशुष्कशाकमाषतिलपललपिष्टान्नभोजिनां विरूढनवशूकशमीधान्यविरुद्धासात्म्यरूक्षक्षीराभिष्यन्दिभोजिनां क्लिन्नगुरुपूतिपर्य्युषितभोजिनां विषमाशनाध्यशनप्रियाणां दिवास्वप्नस्त्रीमद्यनित्यानां विषमातिमात्रव्यायामसंक्षोभितशरीराणां भयक्रोधशोकलोभमोहायासबहुलानामतो

---

१ " अबद्धमांसमनिबिडमांसम् " ।

निमित्ताद्धि शिथिलीभवन्ति मांसानि । विमुच्यन्ते सन्धयो विदह्यते रक्तं, विष्यन्दते चानल्पं मेदो, न सन्धीयतेऽस्थिषु मज्जा, शुक्रं न प्रवर्त्तते क्षयमुपैत्योजः । स एवंभूतो ग्लायति सीदति निद्रातन्द्रालस्य- समन्वितो निरुत्साहः श्वसिति । असमर्थश्चेष्टानां शारीरमानसानां नष्टस्मृतिबुद्धिच्छायो रोगाणामधिष्ठानभूतो न सर्वमायुरवाप्नोति । तस्मादेतान् दोषानवेक्षमाणः सर्वान्यथोक्तानहितानपास्याहारविहा- रान् रसायनानि प्रयोक्तुमर्हति ॥ ८१ ॥

असात्म्य आहारोंके सेवनसे अथवा खट्टे, नमकीन, चरपरे, क्षार रूक्ष तथा शुष्क शाक, उडद, तिल, अनूपसंचारी जीवोंका मांस, विरूढ या नवीन शूक और शमी- धान्य या अभिष्यन्दी, क्लिन्न, भारी, दुर्गंधयुक्त, बासी अन्न, विषमान्न आदिके सेव- नसे अथवा अध्यशन, दिनमें सोना, स्त्रीसंग, मद्य, विषम वा अत्यन्त व्यायाम, एवं भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह और अत्यन्त परिश्रम इनके अधिक सेवनसेही शरी- रमें सब प्रकारके दोष उत्पन्न होकर देहके मांसको शिथिल करदेते हैं, संधियें ढीली होजाती हैं, रक्त विदाही तथा क्लेदयुक्त हो बिगडजाता है, मेद अत्यन्त निष्यंदित होजाता है और मज्जा आस्थियोंमें संपन्न नहीं होती, एवं शुक्र, प्रवृत्त नहीं होता तथा ओजका क्षय होजाता है । इस प्रकार ग्लानि, दुःख, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, निरु- त्साह और श्वासकी वृद्धि होती है । शारीरिक और मानसिक चेष्टायें निर्बल होजाती हैं। स्मृति, बुद्धि और कांतिका नाश हो शरीर रोगोंका घर बनजाता तथा मनुष्य अल्पायु होजाता है । इसलिये मनुष्यको उचित है कि उपरोक्त दोषोंको देखताहुआ असात्म्य आहार विहारोंका त्याग कर रसायनका सेवन करे ॥ ८१ ॥

आमलक घृत रसायन ।

इत्युक्त्वा भगवान्पुनर्वसुरात्रेय उवाच । आमलकानां सुभूमिजानां कालजानामनुपहतगन्धवर्णरसानामापूर्णरसप्रमाणवीर्य्याणां स्वरसेन पुनर्नवाकल्कपादसंप्रयुक्तेन सर्पिषा साधयेदाढकमतःपरं विदारीस्व- रसेन जीवन्तीकल्कसंप्रयुक्तेन । अतः परं चतुर्गुणेन पयसा वा बलातिबलाकषायेण शतावरीकल्कसंप्रयुक्तेन । अनेन क्रमेणैकैकं शतपाकं सहस्रपाकं वा शर्कराक्षौद्रचतुर्भागसंयुक्तं सौवर्णे राजते मार्त्तिके वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापयेत् । तद्यथोक्तेन

विधिना यथाग्नि प्रातःप्रातः प्रयोजयेत् । जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात् । अस्य प्रयोगाद्वर्षशतं वयोऽजरं तिष्ठति श्रुतमवतिष्ठते सर्वामयाः प्रशाम्यन्ति अप्रतिहतगतिः स्त्रीष्वपत्यवान् भवति ॥ ८२ ॥

इस प्रकार कहकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि, उत्तम समयमें उत्तम पृथ्वीमें उत्पन्न हुए संपूर्ण गन्ध, वर्ण, रस संपन्न, पूर्ण प्रमाण, वीर्य संपन्न, आमलोंका स्वरस और उस स्वरससे चौथाभाग पुनर्नवाका कल्क लेवे । १६ सेर दूध, १६ सेर बला और अतिबलाका क्काथ, १ सेर शतावरका कल्क इन सबको मिलाकर ४ सेर पक्का घृत सिद्ध करे तथा विदारीकन्दके स्वरससे और जीवन्तीके कल्कसे चारगुना दूध मिला इस एक आढ़क घृतको सिद्ध करे । इस प्रकार क्रमसे१००बार अथवा१००० बार उपरोक्त औषधियोंके स्वरस क्काथद्वारा घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे । फिर चौथा भाग मिसरी और मिलावे । फिर इन सब औषधियोंको सोना, चांदीके अथवा घृतसे चिकने मिट्टीके पात्रमें भरकर रख देवे । इस रसायनको यथोक्त विधिके अनुसार जठराग्निका बलाबल विचारकर प्रातःकाल सेवन करे । जीर्ण होनेपर साठी अथवा शाली चावलोंका भात घृतके संयोगसे भोजन करे । इसके प्रभावसे मनुष्य १०० वर्षतक वृद्धावस्थारहित रहता है। सुनीहुई बातको धारण कर लेता है। अर्थात् सुननेमात्रसेही शास्त्रोंको याद कर लेता है। सब रोग शान्त होते हैं। संपूर्ण इच्छाओंको निर्विघ्नतासे पूर्ण करसके अथवा कोई आरंभ निष्फल न हो, स्त्रियोंमें सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्तिवाला होजाता है॥ ८२ ॥

भवति चात्र—बृहच्छरीरं गिरिसारसारं स्थिरेन्द्रियञ्चातिबलेन्द्रियञ्च ।
अधृष्यमन्यैरतिकान्तरूपं प्रशस्तपूजासुखचित्तभाक् च ॥८३॥
बलं महद्वर्णविशुद्धिरध्या स्वरो घनौघस्तनितानुकारी ।
भवत्यपत्यं विपुलं स्थिरञ्च समश्नतो योगमिमं नरस्य॥ ८४ ॥

इसके गुणोंके विषयमें यहांपर कहते हैं कि जो मनुष्य विधिपूर्वक इस आमलक घृत रसायनको सेवन करता है वह बृहत्काय पर्वतके समान सारयुक्त, दृढ इन्द्रियोंवाला तथा इन्द्रियोंके बलसे सम्पन्न होता है। कोई मनुष्य भी इसको जीत न सके, अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवाला,योग्य पुरुषोंसे पूजित,सुखी और शुद्ध चित्तवाला होता है।

---

१ त्रिवर्षप्रयोगात् इति पाठान्तरम् ।

तथा महाबलवान् सुन्दर शुद्ध वर्णवाला, मेघके समान गंभीर स्वरवाला, बिजलीके समान गरजनेवाला बहुत और दृढ सन्तानके सुखको भोगता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

आमलकावलेह।

आमलकसहस्रं पिप्पलीसहस्रसंप्रयुक्तं पलाशतरुणभस्मनः क्षारोदकोत्तरं तिष्ठेत्। तदनुगतक्षारोदकमनातपशुष्कमनस्थि चूर्णीकृतं चतुर्गुणाभ्यां मधुसर्पिर्भ्यां संनीय शर्कराचूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तं घृतभाजनस्थं षण्मासान् स्थापयेदन्तर्भूमेस्तस्योत्तरकालमग्निबलसमां मात्रां खादेत्पौर्वाह्णिकः प्रयोगः। सात्म्यपथ्यश्चाहारविधिर्नापराह्णिकः। अस्य प्रयोगाद्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति समानं पूर्वेण ॥ ८५ ॥

१००० उत्तम पकेहुए आमले और १००० पीपल इन दोनोंको ढाक (पलाश)के छिलकोंकी क्षार और पानी मिलाकर उसमें भिगो देवे और छायामें रक्खे। जब वह क्षार इन पीपल और आमलेमें सूखजाय तो इन आमलोंकी गुठलियें दूरकर खूब सुखाकर पीपल और आमलेका बारीक चूर्ण करलेवे। फिर इसमें चौगुना घृत और शहद मिलावे और चौथा भाग मिसरी मिलाकर घीके चिकने बरतनमें बन्दकर पृथ्वीमें गाड देवे और छः महीने पर्यन्त गडा रहनेदेवे। फिर इसको निकालकर अग्निबलके समान उचित मात्रासे प्रातःकाल खायाकरे। औषधिके जीर्ण होनेपर सात्म्य और पथ्य भोजन किया करे फिर रात्रिके समय कुछ न खाय, इसके सेवनसे १०० वर्षतक मनुष्य अजर अर्थात् वृद्धावस्थारहित रहता है ॥ ८५ ॥

दूसरा आमलकावलेह।

आमलकचूर्णाढकमेकविंशतिरात्रमामलकसहस्रस्वरसपरिपीतं मधुघृताढकाभ्यां द्वाभ्यामेकीकृतमष्टभागपिप्पलीकं शर्कराचूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तं घृतभाजनस्थं प्रावृषि भस्मराशौ निदध्यात्तद्वर्षान्ते सात्म्यपथ्याशी प्रयोजयेत्। अस्य प्रयोगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण ॥ ८६ ॥

चार सेर आमलोंके चूर्णको १००० आमलोंके स्वरसमें २१ दिन भावना देवे। फिर इस चूर्णको शहद और घृत दो आढक लेकर उसमें आठवाँ भाग पीपलका चूर्ण और चतुर्थ भाग मिसरी इन सबको मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें भर देवे और

---

१ अनेन बालवृद्धपलाशवर्जनमुच्यते।

बर्सातमें इस औषधीसे भरे पात्रको भस्ममें गाड देवे। बर्सातके पीछे अर्थात् आश्विनके महीनेमें इसको निकालकर विधिपूर्वक सेवन करे और पथ्य भोजन करे। इसके प्रभावसे मनुष्य पहिली अवस्थाके समान वृद्धावस्थारहित १०० वर्षतक नीरोग रहता है ॥ ८६ ॥

विडङ्गावलेह।

विडङ्गतण्डुलचूर्णानामाढकं पिप्पलीतण्डुलानामध्यर्द्धाढकं सितोपलासर्पिस्तैलमध्वर्द्धाढकैः षड्भिरेकीकृतघृतभाजनस्थं प्रावृषि भस्मराशाविति सर्वं समानं पूर्वेण यावदाशीः ॥ ८७ ॥

वायविडंगके चावलों (तुषरहित वायविडंग) का चूर्ण एक आढक, पीपलके स्वच्छ कणकोंका चूर्ण आधा आढक, मिसरी आधा आढक, घृत आधा आढक, तेल आधा आढक, शहद आधा आढक इन छः द्रव्योंको एककर घीके चिकने पात्रमें बन्द कर श्रावणके महीनेमें भस्मके ढेरके नीचे दबा दे और आश्विनके महीनेमें निकालकर विधिवत् प्रयोग करनेसे पूर्वोक्त सम्पूर्ण गुणोंको करता है ॥ ८७ ॥

तीसरा आमलकावलेह।

यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रमार्द्रपलाशद्रोण्यां सपिधानायां बाष्पमनुद्वमन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत् । तानि सुस्विन्नशीतानि उद्धृतकुलकान्यापोथ्याढकेन पिप्पलीचूर्णानामाढकेन च विडङ्गतण्डुलचूर्णानामध्यर्द्धेन चाढकेन शर्कराचूर्णानां द्वाभ्यां द्वाभ्यामाढकाभ्यां तैलस्य मधुनः सर्पिषश्च संयोज्य शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापयेदेकविंशतिरात्रमत ऊर्द्ध्वं प्रयोगः । अस्य प्रयोगाद्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीति समं पूर्वेण ॥ ८८ ॥

उत्तम सर्वगुणसम्पन्न १००० आँवलोंको गीली ढाककी लकडी या छिलकोंमें लपेटकर कपडमिट्टी कर जंगली ऊपलोंकी अग्निद्वारा पकावे परन्तु इतने ऊपले लगावे जिसमें वह आंवले जलने न पावें केवल अग्निकी गर्मीसे पकजाने चाहिये। फिर इनको निकालकर ठण्डे होनेपर इनकी गुठलियें दूरकर इनमें एक आढक पीपलका चूर्ण और एक आढक तुषरहित विडंगका चूर्ण, १॥ डेढ आढक मिसरी, दो आढक तैल, दो आढक शहद और दो आढक घृत इन सबको मिलाकर एक बनजानेपर घीके चिकने पात्रमें भरके २१ दिन धरा रहने देवे फिर विधिवत् प्रयोग करनेसे मनुष्य पूर्वावस्थाके समान बल, वीर्य संपन्न, वृद्धावस्थारहित १०० वर्षपर्यन्त आयुके सुखको भोगता है ॥ ८८ ॥

नागबला रसायन।

धन्वनि कुशास्तीर्णे स्निग्धकृष्णमधुरमृत्तिके सुवर्णवर्णमृत्तिके वा व्यपगतविषश्वापदपवनसलिलाग्निदोषे कर्षवल्मीकश्मशानचैत्योषररस-वर्जिते देशे यथर्तुसुखपवनसलिलादित्यसेविते जातान्यनिम्नेऽनुपहता-न्यनध्यारूढान्यबालान्यजीर्णान्यविगतवीर्याणि शीर्णपुराणपर्णा-न्यसञ्जातफलानि तपसि तपस्ये वा मासे शुचिः प्रयतः कृतदेवार्चनः स्वस्ति वाचयित्वा द्विजातीन् सुमुहूर्त्ते नागबलामूलान्युद्धरेत्। तेषां सुप्रक्षालितानां त्वक्पिण्डमाम्रमात्रमक्षमात्रं वा श्लक्ष्णपिष्टमालोड्य पयसा प्रातः प्रयोजयेच्चूर्णीकृतानि वा पिबेत्। पयसा मधुसर्पिर्भ्यां वा संयोज्य भक्षयेत्। जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात्। धवखदिरशिंशपासनसाराणाञ्चासंवत्सरप्रयोगादस्य वर्षशतमजरमा-युस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण ॥ ८९ ॥

उत्तम जांगल भूमिमें जिस जगह कुशा उत्पन्न होरही हो और काली या सुव-र्णके समान पीली एवं मधुर और चिकनी मिट्टी हो, जिस स्थानमें किसी प्रकारका विष या विषधर जानवर अथवा कुत्ते आदि न फिरते हों और किसी पवन, जल, या अग्निसे दग्ध आदि उपद्रवयुक्त न हो, जिस स्थानमें खेती, सांपकी बँमई, श्मशान, किसी देवताका स्थान अथवा ऊषर मिट्टीका संसर्ग न हो तथा ऋतुकालके अनु-कूल पवन, जल, धूप आदिका यथोचित संसर्ग होताहो ऐसी भूमिमें जो पृथ्वी अधिक नीची न हो सर्वगुणसंपन्न योग्य रीतिपर नागबला उत्पन्न होरही हो वह नागबला किसी वृक्षकी छाया अथवा बेल आदिसे ढकीहुई न हो, एवं कच्ची, पुरानी, सूखी, हीनवीर्य सूखे सडे पत्रोंवाली किसी कीटआदिकी खायी हुई न हो जिसमें अभी फल न आये हों, ऐसी नागबलाको माघ अथवा फाल्गुनके महीनेमें विधिपूर्वक प्रातःकाल पवित्र हो देवता आदिकोंका पूजन कर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवा-चन करा उत्तम मुहूर्त्तमें नागबला (गंगेरन) की जडोंको उखाडकर लावे। उन जडोंको सुन्दर जलसे धोकर उन जडोंकी छाल एक तोला अथवा दो तोला या चार तोला मात्र लेकर बारीक पीसलेवे। उसको दूधमें घोलकर अथवा उसका चूर्ण दूधमें घोलकर प्रातःकाल पीजावे। अथवा शहद घृत और दूधमें मिला कर पीवे। मात्रा जीर्ण होनेपर दूध, घृत और साठीके चावलोंका भोजन करे। इसी प्रकार धव, खदिर, शीशम, बिजेसार, अम्बाडाकी जडका प्रयोग भी किया जाता है। इसका एक वर्ष

प्रयोग करनेसे मनुष्य बलवर्णादि सम्पन्न पूर्व अवस्थाके समान वृद्धावस्थारहित १०० वर्ष आयुके सुखको भोगता है ॥ ८९ ॥

बलादिक रसायनद्रव्य।

बलातिबलाचन्दनागुरुधवतिनिशखदिरशिंशपासनस्वरसाः पुनर्नवान्ताश्चौषधयो दश ये वयःस्थापना व्याख्यातास्तेषां स्वरसा नागबलावत्स्वरसानामलाभे त्वयं स्वरसविधिश्चूर्णानामाढकमुदकस्याहोरात्रस्थितं मृदितपूतं स्वरसवत्प्रयोज्यम् ॥ ९० ॥

बला, अतिबला, चन्दन, अगर, धव, तिनिश, खैर, शीशम, बिजेसार इन सब वृक्षोंका स्वरस और लघु पञ्चमूल बृहत्पञ्चमूल तथा पुनर्नवा इन ग्यारह औषधियोंका स्वरस इन सबको मिलाकर नागबला रसायनके समान सेवन करे। इनके सेवन करनेसे नागबला रसायनके समान गुण होता है। यदि इनका स्वरस न मिल सके तो औषधोंका चूर्ण एक आढक लेकर एक आढक जलमें भिगो रक्खे एक दिन रात्रिके बाद मलकर छान लेवे। इस रसका स्वरसके समान प्रयोग करे ॥ ९० ॥

भल्लातकक्षीर।

भल्लातकानि अनुपहतानि अनामयानि आपूर्णरसप्रमाणवीर्याणि पक्वजाम्बवप्रकाशानि शुचौ शुक्रे वा मासे संगृह्य यवपल्वे माषपल्वे वा निधापयेत्। तानि चतुर्मासस्थितानि सहस्ये[1] वा मासे प्रयोक्तुमारभेत। शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरः पूर्वं दशभल्लातकान्यापोथ्याष्टगुणेनाम्भसा साधु साधयेत्। तेषां रसमष्टभागावशिष्टं पूतं सपयस्कं पिबेत्सर्पिषाऽन्तर्मुखमभ्यज्य तानि एकैकभल्लातकोत्कर्षापकर्षेण दश भल्लातकानि आत्रिंशतः प्रयोज्यानि। नातःपरमुत्कर्षः प्रयोगविधानेनासहस्रपर एव भल्लातकप्रयोगः। जीर्णे च सर्पिषा पयसा शालिषष्टिकाशनमुपचारः प्रयोगान्ते च द्विस्तावत्पयसैवोपचारस्तत्प्रयोगाद्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण ॥ ९१ ॥

ज्येष्ठ अथवा आषाढके महीनेमें उत्तम शुद्ध रस, वीर्यसे पूरित काले जामुनके समान पकेहुए पूर्ण प्रमाणके भिलावेको ला, पहिले यव अथवा उडदकी राशिमें चार महीने पर्यंत गाडकर रख देवे फिर चार महीनेके उपरान्त मार्गशीर्ष या पौष महीनेमें उनको

---

१ सहे सहस्ये वेति क्वचित्पाठः।

निकालकर इस प्रकार सेवन करना आरंभ करे। पहिले दिन दश भिलावोंको कूटकर उससे आठ गुने जलमें डालकर अग्निपर चढा दे जब पानी एक भाग रहजाय तो उसे उतारकर छान ले फिर दूधमें डाल इसका सेवन करे। भिलावा सेवन करनेसे शीत स्निग्ध मधुरकाय मनुष्य प्रथम मुखको और तालुमें अच्छी रीतिसे घृत चुपड लेना चाहिये। दूसरे दिन ११ तीसरे दिन १२ इसी प्रकार क्रमसे प्रतिदिन एकएक भिलावेको अधिक करताहुआ तीसपर्यन्त बढावे फिर क्रमशः घटाते हुए दशपर लेआवे। इस प्रकारसे एक महीना ३० तक बढावे और एकमें घटानेमें १००० भिलावे पर्यन्त सेवन होजाता है इससे अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। जब औषधी भले प्रकार जीर्ण होजाय तब शालिचावल दूध और घृतके साथ भोजन करे। तथा भिलावेका सेवन करना छोड देनेपर भी शालिचावलका भात दूधके साथ सेवन करना उचित है। इस प्रकार कही हुई इस भल्लातक रसायनसेवनसे १०० वर्षपर्यन्त मनुष्य निरोगी होकर अजर अर्थात् वृद्धावस्थासे रहित हो सुख भोगता है ॥ ९१॥

द्वितीय भल्लातकक्षौद्र।

भल्लातकानां जर्जरीकृतानां पिष्टस्वेदनं पूरयित्वा भूमौ आकण्ठं निखातस्य स्नेहभावितस्य दृढस्योपरि कुम्भस्यारोप्योडुपेनापिधाय कृष्णमृत्तिकावलिप्तं गोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत्। तेषां यः स्वरसः कुम्भं प्रपद्येत ततोऽष्टभागमधुसम्प्रयुक्तं द्विगुणघृतमद्यात्। तत्प्रयोगाद्वर्षशतमक्षरं वयस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण ॥ ९२ ॥

ऊपरकी टोपी वगैरह दूरकर शुद्ध भिलावेको बारीक पीसकर पीठी बना एक ऐसी हाँडीमें जिसके नीचे छेद हों भरकर ऊपरसे ढक देवे। और काली मिट्टीसे उसके मुखको बंद करदेवे। फिर एक घृतकी चिकनी हांडीको मुखपर्यन्त जमीनमें गाड देवे। उसके ऊपर इस भिलावोंसे भरीहुई हांडीको रख देवे और विधिवत् सन्धियें जोडकर इसके चारों ओर गोबरी लगाकर आग लगा देवे। फिर शीतल होनेपर नीचेके गढेमें आगकी गर्मीसे जो भिलावेका रस या तेल टपकाहुआ हो उसको

---

१ भिलावा अनुचित रीतिसे सेवन किया हुआ विषसे भी अधिक हानिकारक है इसका छींटा लगनेसे या हवा लगने मात्रसे ही शरीरमें सूजन खाज कभी जख्म तक होजाते हैं इसके खानेका क्रम पहले दिन एक, दूसरे दिन २, तीसरे दिन तीन, इस क्रमसे ३० बढावे फिर घटाते २ एक पर लाकर छोडदे इसका क्वाथ उपरोक्तरीतिसे दूधमें मिलाकर पीवे कोई भिलावेकी मींगीको ही इस कमसे सेवन करना कहते हैं किसी वैद्यके विना स्वयं ही भिलावा कभी नहीं खाना चाहिये।

निकालकर उसमेंसे उचित मात्रा लेकर उसमें आठ भाग शहद और दोगुना घृत मिलाकर पहिले दूसरे घृतसे मुख चिकनाकर फिर इस घृतशहदयुक्त भिलावेके जलको पीजांवे । इसके विधिवत् सेवनसे मनुष्य बल, वर्ण संपन्न, दृढइन्द्रिय, पूर्वअवस्थाके समान, वृद्धावस्थारहित १०० वर्ष आयुके सुखको भोगता है ॥ ९२ ॥

भल्लातकतेल ।

भल्लातकतैलं पात्रं सपयस्कं मधुकेन कल्केनाक्षमात्रेण शतपाकं कुर्य्यात् समानं पूर्वेण ॥ ९३ ॥

भिलावेके चार सेर तैलको दूध और मुलहठीके कल्कसे १०० बार पकावे फिर इसमेंसे एक तोला नित्य दूधमें मिलाकर पीया करे तो पूर्व अवस्थाके समान, बल, वर्ण, इन्द्रिय संपन्न रोगरहित और वृद्धावस्थारहित होकर १०० वर्षकी आयुके सुखको भोगता है ॥ ९३ ॥

भल्लातकविधान ।

भल्लातकक्षीरं भल्लातकक्षौद्रं भल्लातकतैलमेवं गुडं भल्लातकयूषो भल्लातकसर्पिर्भल्लातकपललं भल्लातकसक्तवो भल्लातकलवणं भल्लातकतर्पणमिति भल्लातकविधानमुक्तम् ॥ ९४ ॥

इस प्रकार भिलावेका दूध, भिलावेका शहद, भिलावेका तैल, भिलावेका गुड, भिलावेका यूष, भिलावेका घृत, भिलावेकी पीठी, भिलावेकी सत्तू, भिलावेका नमक, भिलावेका तर्पण यह सब भिलावेकी पृथक् २ क्रियायें होती हैं । बुद्धिमान् वैद्य, युक्तिपूर्वक जहां जो जिस प्रकार होसकताहो उस प्रकार प्रयोग करे । इस प्रकार भिलावोंकी विधि कहीगई है ॥ ९४ ॥

भिलावेके गुण ।

भवन्ति चात्र—भल्लातकानि तीक्ष्णानि[२] पाकीन्यग्निसमानि च ।
भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि ॥ ९५ ॥
एते दशविधास्त्वेषां प्रयोगाः परिकीर्त्तिताः ।
रोगप्रकृतिसात्म्यज्ञस्तान् प्रयोगान् प्रकल्पयेत् ॥ ९६ ॥

---

१ भिलावेकी हरएक क्रिया पहिले हाथोंको घृत या तैल चुपडकर करना चाहिये।चिकनाई लगानेसे भिलावेका तेल जिस जगह लगजायगा उसी जगह सूजन और खाज उत्पन्न होजाती है भिलावेके सेवन समय जितना घी पचसके सेवन करे । २ दाहस्फोटकर्तृतया ।

कफजो न स रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन ।
यं न भल्लातकं हन्याच्छीघ्रं मेधाग्निवर्द्धनम् ॥ ९७ ॥

यहांपर कहा है कि, भिलावे अत्यंत तीक्ष्ण और अग्निके समान पाचक होते हैं। इनका विधिपूर्वक प्रयोग कियाहुआ अमृतके समान गुण करता है। इनकी दश प्रकारसे प्रयोग करनेकी विधि कही जाचुकी है। उनमें रोग, प्रकृति और सात्म्यको जाननेवाला वैद्य जिस मनुष्यके लिये जिस प्रकार प्रयोग करना उचित समझे उस प्रकार सेवन करावे। कफसे उत्पन्न हुआ कोई रोग अथवा किसी प्रकारका विबंध ऐसा नहीं है जिसको भिलावेका सेवन नष्ट न करे। यह भिलावेका सेवन मेधा और अग्निको अत्यन्त बढानेवाला है ॥ ९६–९७ ॥

रसायनकी उत्कृष्टता।

प्राणकामाः पुरा जीर्णाश्च्यवनाद्या महर्षयः ।
रसायनैः शिवैरेतैर्बभूवुरमितायुषः ॥ ९८ ॥
ज्ञानं तपो ब्रह्मचर्य्यमध्यात्मं ध्यानमेव च ।
दीर्घायुषो यथाकामं संभुज्य त्रिदिवं गताः ॥ ९९ ॥
तस्मादायुःप्रकर्षार्थंप्राणकामैः सुखार्थिभिः ।
रसायनविधिः सेव्यो विधिवत्सुसमाहितैः ॥ १०० ॥

इस प्रकार कल्याणप्रद इन रसायनोंके प्रयोगसे आयुकी कामनावाले च्यवनादिक वृद्ध महर्षि भी अमित आयुको प्राप्तहुए। तथा इन रसायनोंके प्रभावसे ही वह दीर्घायु ऋषि ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, अध्यात्मज्ञान और ध्यान (योग समाधि) को प्राप्त होकर अपनी इच्छानुसार स्वर्गको प्राप्त हुए। इसलिये दीर्घायु होनेकी इच्छावाले और सुखकी इच्छावाले मनुष्योंको आयुको उत्तम बनानेके लिये सावधान होकर विधिपूर्वक रसायन सेवन करना चाहिये ॥ ९८–१०० ॥

तत्र श्लोकः–रसायनानां संयोगाः सिद्धा भूतहितैषिणा ।
निर्दिष्टाः प्राणकामीये सप्त[1] चैवं दशर्षिणा ॥ १०१ ॥
इति प्राणकामीये रसायनपादो द्वितीयः ॥ २ ॥

यहांपर पादके उपसंहारमें एक श्लोक है कि, इस प्राणकामीय रसायन पादमें सत्रह प्रकारकी सिद्धरसायनोंको सम्पूर्ण मनुष्योंके हितके लिये भगवान् आत्रेयजीने कथन किया है ॥ १०१ ॥

इति प्राणकामीयो नाम रसायनपादो द्वितीयः ॥ २ ॥

---

१ सप्तत्रिंशन्महर्षिणेति पाठान्तरम् ।

अथातः करप्रचितीयं रसायनपादं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥ १०२॥

अब हम करप्रचितीय नामक रसायनपादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे॥ १०२॥

आमलकायसकीय रसायन।

करप्रचितानां यथोक्तगुणानामामलकानामुद्धृतास्थ्नां शुष्कचूर्णितानां पुनर्माघे फाल्गुने वा मासे त्रिःसप्तकृत्वः स्वरसपरिपीतानां पुनः शुष्कचूर्णीकृतानामाढकमेकं ग्राहयेत्। अथ जीवनीयानां बृंहणीयानां स्तन्यजननानां शुक्रवर्द्धनानां वयःस्थापनानां षड्विरेचनशताश्रितीयोक्तानामौषधगणानां चन्दनागुरुधवखदिरशिंशपासनसाराणाञ्चाणुशश्छिन्नानां क्षिप्तानामभयाविभीतकापिप्पलीवचाचव्यचित्रकविडङ्गानाञ्च समस्तानामाढकमेकं दशगुणेनाम्भसा साधयेत्। तस्मिन् आढकावशेषे रसे सुपूते तानि आमलकचूर्णानि दत्त्वा गोमयाग्निभिर्वंशविदलशरतेजनाग्निभिर्वा साधयेत्। यावदपनयाद्रसस्य तमनुपदग्धमुपहृत्यायसीषु पात्रीष्वास्तीर्य्य शोषयेत्। सुशुष्कं तं कृष्णाजिनस्योपरि दृषदि श्लक्ष्णपिष्टमयःस्थाल्यां निधापयेत्। सम्यक् तच्चूर्णमयश्चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तं मधुसर्पिर्भ्यामग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रयोजयेदिति॥ १०३॥

समयपर उत्तम पकेहुए सर्वगुणसम्पन्न आमलोंको माघ या फाल्गुनके महीनेमें वृक्षके ऊपरसे हाथसे छांट २ कर तोडे। फिर इनकी गुठलियें निकालकर फेंक देवें और इन गुठलीरहित आमलोंको सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको गीले आवलोंके रसकी इक्कीस भावना देकर बारीक पीस लेवे। यह चूर्ण पीसाहुआ सूखा ४ सेर (१ आढक) लेवे। फिर षड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायमें कहीहुई जीवनीय, बृंहणीय, स्तन्यवर्द्धक, शुक्रजनक और अवस्थास्थापक ये सब औषधियें तथा लालचन्दन, अगर, धव, खदिर, शीशम, विजयसार इन सब औषधियोंको एक आढक लेकर जौकूट करके दशगुने जलमें क्काथ बनावे। जब नौभाग जलकर एक

---

१ करैः प्रचितानां ग्रहणं कर्तव्यं नहि वृक्षात् स्वयं पतितानां ग्रहणं कार्य्यम् अतएवोक्तं करप्राचितीयम्।

आढक जल शेष रहजाय तो उसको छानलेवे, फिर इस क्राथमें पूर्वोक्त आवलोंका चूर्ण मिलाकर, जंगली उपले अथवा बंसपत्री या नरसलकी मन्दमन्द आंचसे इसको पकावे। जब पानी सूखनेपर आवे तब इसको उतारकर लोहेके पात्रमें बिछाकर सुखावे। जब अच्छी प्रकार सूखजाय तो इसको पहिले काले मृगका चर्म नीचे बिछाकर उसके ऊपर सिल रख उस सिलपर खूब बारीक पीसे फिर इस पीसेहुए चूर्णको उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे। इस चूर्णमें आठवां भाग लोहभस्म मिलाकर शहद और घृतके संयोगसे अग्निबल विचार सेवन करे ॥ १०३ ॥

इसके गुण।

तत्र श्लोकाः—एतद्रसायनं पूर्वं वसिष्ठः कश्यपोऽङ्गिराः।
जमदग्निर्भरद्वाजो भृगुरन्ये च तद्विधाः ॥ १०४ ॥
प्रयुज्य प्रयता मुक्ताः श्रमव्याधिजराभयात्।
यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः ॥ १०५ ॥
तपसा ब्रह्मचर्य्येण ध्यानेन प्रशमेन च।
रसायनविधानेन कालयुक्तेन चायुषा ॥ १०६ ॥
स्थिता महर्षयः पूर्वं न हि किञ्चिद्रसायनम्।
ग्राम्याणामन्यकार्य्याणां सिद्धिश्चाप्रयतात्मनाम् ॥ १०७ ॥
इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम्।
जराव्याधिप्रशमनं बुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ॥ १०८ ॥

पूर्व समयमें इस रसायनके प्रभावसे वसिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि, भरद्वाज, भृगु तथा इसी प्रकार अन्य ऋषि श्रम, व्याधि, वृद्धावस्था तथा अन्य सब प्रकारके भयसे विमुक्त हो महाबलसम्पन्न होकर अपनी इच्छानुरूप तपश्चर्य्या, ब्रह्मचर्य्य, ध्यान और शान्तिको प्राप्त हुए। रसायनके प्रयोगसे आयुकी जो वृद्धि होती है उसमें कोई आयुके समयका प्रमाण नहीं है क्योंकि रसायन सेवन करनेवाले महर्षियोंकी पूर्वकालमें सहस्रों वर्षकी आयु हुई है। अजितात्मा, विषयोंमें आसक्त, ग्रामीण, अजितेन्द्रिय मनुष्योंको रसायनकी सिद्धि नहीं होसकती, ,वर्षसहस्रतक रसायनका ब्रह्माने निर्माण और सेवन किया है। यह आयुको करनेवाली बुढापा और व्याधियोंको नष्ट करनेवाली बुद्धि और बलको देनेवाली है ॥ १०४–१०८ ॥

केवल आमलकीयरसायन।

संवत्सरं पयोवृत्तिर्गवां मध्ये वसेत्सदा।

सावित्रीं मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ १०९ ॥
संवत्सरान्ते पौषीं वा माघीं वा फाल्गुनीं तिथिम् ।
त्र्यहोपवासी शुक्लस्य प्रविश्यामलकीवनम् ॥ ११० ॥
बृहत्फलाढ्यमारुह्य द्रुमं शाखागतं फलम् ।
गृहीत्वा पाणिना तिष्ठेज्जपन्ब्रह्मामृतागमात् ॥ १११ ॥
तदा ह्यवश्यममृतं वसत्यामलके क्षणम् ।
शर्करामधुकल्पानि स्नेहवन्ति मृदूनि च ॥ ११२ ॥
भवन्त्यमृतसंयोगात्तानि यावन्ति भक्षयेत् ।
जीवेद्वर्षसहस्राणि तावन्त्यागतयौवनः ॥ ११३ ॥
सौहित्यमेषां गत्वा तु भवत्यमरसन्निभः ।
स्वयञ्चास्योपतिष्ठन्ते श्रीर्वेदवाक्यरूपिणी ॥ ११४ ॥

पहिले एक वर्ष पर्यन्त केवल दूध ही पीकर रहे । अन्न आदि और कुछ न खावे तथा निरन्तर गौओंके बीचमें ही वास कियाकरे और मनसे हरसमय गायत्रीका ध्यान करतेहुए ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय रहे । फिर इस वर्षके व्यतीत होनेपर तीन दिन-रात्रि बिल्कुल निराहार उपवास करे पौष अथवा माघकी या फाल्गुनकी पूर्णिमाको यह तीन दिन व्यतीत होने चाहिये । अर्थात् इस प्रकारसे इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये जो पौष या माघ अथवा फाल्गुनकी एकादशीको वर्ष पूरा हो । फिर द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशीको उपवास करके पूर्णिमाको प्रातःकाल ऐसे पवित्र आमलोंके वनमें प्रवेश करे जिसमें वृक्षोंमें सर्वगुणसंपन्न पके हुए बडे २ आँवले लगरहे हों फिर वृक्षपर चढकर आँवलेको तोडकर हाथमें ले लेवे फिर इस ब्रह्मामृत वेदोक्त मन्त्रका जप करे उससे उस आँवलेमें अमृतका संचार होजाता है । फिर इस आँवलेको खालेवे । इसी विधिसे उस वृक्षकी टहनियोंमेंसे आँवले तोड २ कर खाताजाय । उस समय अवश्य ही क्षणमात्रके लिये आँवलेमें अमृतका संचार होजाता है । उसमें खांड और शहदके समान मीठापन और चिकनाई तथा मृदुता होती है । जितने कालतक उस आमलक वृक्षके ऊपर आमलोंको खाय उतने समय तक उनमें अमृतका संचार रहता है । इसलिये इस विधिसे खानेसे १००० वर्षकी आयु तथा निरन्तर यौवनावस्थाको प्राप्त होता है । इस प्रकार अच्छी तरह भरपेट आँवलोंको खानेसे यह मनुष्य देवताओंके समान होजाता है । और कांति, लक्ष्मी, वेद और सरस्वती यह सब स्वयं आकर इसके शरीरमें वास करने लगती हैं ॥ १०९–११४ ॥

लोहादि रसायन।

त्रिफलाया रसे मूत्रे गवां क्षारे च लावणे।
क्रमेण चेङ्गुदीक्षारे किंशुकक्षार एव च॥ ११५॥
तीक्ष्णायसस्य पत्राणि वह्निवर्णानि तापयेत्।
चतुरङ्गुलदीर्घाणि तिलोत्सेधसमानि च॥ ११६॥
ज्ञात्वा तान्यञ्जनाभानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
तानि चूर्णानि मधुना रसेनामलकस्य च॥ ११७॥
युक्तानि लेहवत्कुम्भे स्थितानि घृतभाविते।
संवत्सरं निधेयानि यवपल्ले तदेव च॥ ११८॥
दद्यात्सालोडनं मासे सर्वत्रालोडयन्बुधः।
संवत्सरात्यये तस्य प्रयोगो मधुसर्पिषा॥ ११९॥
प्रातः प्रातर्बलापेक्षी सात्म्यं जीर्णे च भोजनम्।
एष एव च लोहानां प्रयोगः संप्रकीर्तितः॥ १२०॥
अनेनैव विधानेन हेम्नश्च रजतस्य च।
आयुःप्रकर्षकृत्सिद्धः प्रयोगः सर्वरोगनुत्॥ १२१॥
नाभिघातैर्न चातङ्कैर्जरया न च मृत्युना।
अधृष्यः स्याद्गजप्राणः सदा चातिबलेन्द्रियः॥ १२२॥
धीमान्यशस्वी वाक्सिद्धः श्रुतधारी महाबलः।
भवेत्समां प्रयुञ्जानो नरो लौहरसायनम्॥ १२३॥

उत्तम तीक्ष्णलोह (फौलाद) के चार अंगुल लंबे और तिलके समान मोटे पत्र बनालेवे। उन पत्रोंको आगमें तपाकर लाल बनजानेपर क्रमसे त्रिफलाके क्वाथमें, गोमूत्रमें एवं लवणक्षार, गोंदनीका क्षार, ढाकका क्षार इन प्रत्येकमें अनेकवार बुझावे। जब वह इसप्रकार तपातपाकर बुझातेहुए अञ्जनके समान काला होजाय और भुरभुरा होजाय तब उसका बारीक चूर्ण बनावे फिर इसे आँवलेके रस और शहदके साथ मिलाकर घीके चिंकने पात्रमें भरकर जौकी राशिमें दवाकर रखदेवे। और इससे बराबर महीने २ खोलकर किसी चीजसे खुब चलादिया करे इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत होजानेपर फिर इसे निकाल लेवे इसमेंसे उचित मात्रा लेकर घृत और शहद मिलाकर जठराग्निका बलाबल विचारकर नित्य प्रातःकाल सेवन करे। जब

औषध जीर्ण होजाय तब सात्म्य भोजनका सेवन करे । इसी विधिके अनुसार सोना, चांदी आदिका भी प्रयोग होता है । यह सिद्ध प्रयोग आयुको बढानेवाला और सब रोगोंको नाश करनेवाला है । इस रसायनके सेवनसे मनुष्य अप्रतिहतबल और हाथीके समान दृढ तथा सब इन्द्रियें बलिष्ठ होकर अजर, अर्थात् बुढापारहित नीरोग होकर सुख भोगता है एवं बुद्धि,यश और श्रुतको धारण करनेवाला महाबली होता है। यह लोह रसायन एक वर्षपर्यन्त मनुष्य सेवन करे तो उपरोक्त गुणसंपन्न होताहै १२३

ऐन्द्रिय रसायन।

ऐन्द्री मत्स्याक्षिको ब्राह्मी वचा ब्रह्म सुवर्चला।
पिप्पल्यो लवणं हेम शंखपुष्पी विषं घृतम् ॥ १२४ ॥
एषां त्रियवकान्भागान् हेमसर्पिर्विषैर्विना।
द्वौ यवौ तत्र हेम्नस्तु तिलं दद्याद्विषस्य च ॥ १२५ ॥
सर्पिषश्च पलं दद्यात्तदैकध्यं प्रयोजयेत्।
घृतप्रभूतं सक्षौद्रं जीर्णे चान्नं प्रशस्यते ॥ १२६ ॥
जराव्याधिप्रशमनं स्मृतिमेधाकरं परम् ।
आयुष्यं पौष्टिकं बल्यं स्वरवर्णप्रसादनम् ॥ १२७ ॥
परमोजस्करश्चैतत्सिद्धमेतद्रसायनम् ।
नैनं प्रसहते कृत्या नालक्ष्मीर्न विषं न रुक् ॥ १२८ ॥
श्वित्रं सकुष्ठं जठराणि गुल्माः प्लीहा पुराणो विषमज्वरश्च।
मेधास्मृतिज्ञानहराश्च रोगाः शाम्यन्त्यनेनातिबलाश्च वाताः ॥ १२९ ॥

इन्द्रायण, मत्स्याक्षी, ब्राह्मी, वच, ब्रह्म, सोंचली, पीपल, निमक, शंखपुष्पी यह प्रत्येक वस्तु, तीन २ यव प्रमाण लेवे और सोनेके वर्क दो यव, शुद्ध सिंगिया विष एक तिल इन सबको ४ तोले घृतमें बारीक पीसकर मिलाडाले। इसको शुद्धकाय मनुष्य प्रातःकाल खालेवे जब यह जीर्ण होजाय तब घृत और मीठेके संग शाली अथवा साठीचावलोंका भात भोजन करे । इसके सेवनसे बुढापा और संपूर्ण रोग नष्ट होकर स्मृति और मेधा तथा आयुकी परम वृद्धि होती है। और यह पुष्टिदायक, बलवर्द्धक, स्वर, वर्णको प्रसन्न करनेवाली है जो मनुष्य इसके सेवन करता है उसके ओजकी वृद्धि होती है इस सिद्ध रसायनके सेवनसे अलक्ष्मी, विष और रोग मनुष्यके शरीरको स्पर्शतक नहीं करते तथा श्वेतकुष्ठ, कुष्ठ, जठररोग, गुल्मरोग, प्लीहरोग, जीर्ण-

ज्वर विषमज्वर तथा जो मेधा, स्मृति और ज्ञानके नष्ट कर देनेवाले रोग हैं वह सब नष्ट होजाते हैं और अत्यन्त बलवान् वातविकार यह सब शान्त होजाते हैं १२४-१२९

ब्राह्मी आदि मेध्यरसायन द्रव्य।

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः १३०
आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शंखपुष्पी ॥ १३१ ॥

ब्राह्मीका स्वरस अथवा मुलहठीका चूर्ण या गिलोयका रस अथवा फूल और जड़सहित शंखपुष्पीका कल्क इनमेंसे किसी एकको दूधके संयोगसे सेवन करना चाहिये। यह सब द्रव्य उत्तम रसायन आयुवर्द्धक,रोगनाशक तथा बल, अग्नि, वर्ण और स्वरके बढानेवाले हैं एवं मेधाजनक हैं। इनमें शंखपुष्पी विशेषकर मेधाकी बढानेवाली है३१

पिप्पलीरसायन।

पञ्च षट् सप्त दश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥ १३२ ॥
तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च।
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ॥ १३३ ॥
प्रयोज्या मधुसर्पिर्भ्यां रसायनगुणैषिणा।
जेतुं कासं क्षयं शोषं श्वासं हिक्कां गलामयान् ॥ १३४ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुतां विषमज्वरम्।
वैस्वर्य्यं पीनसं शोफं गुल्मं वातबलासकम् ॥ १३५ ॥

रसायनके गुणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको ६ या ७ अथवा १० पीपल लेकर घृत और शहदके साथ क्रमपूर्वक एक वर्षपर्यन्त सेवन करनी चाहिये। वह पिप्पली भोजन करनेसे पहिले दोनों समय तीन तीन खाना चाहिये। अथवा पीपलोंको लेकर पलाशके क्षारकी भावना देकर घीमें भून लेवे। फिर रसायनके गुणकी इच्छावाला मनुष्य शहद और घृतके साथ इनका सेवन करे। इनके सेवनसे खांसी,क्षय,शोषरोग, श्वास, हिचकी, गलेके रोग, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, विषमज्वर, स्वरभंग, पीनस, सूजन, गुल्म और वात तथा कफके रोग अथवा वातबलासक ज्वर यह सब नष्ट होते हैं ॥ १३२–१३५ ॥

वर्द्धमानपिप्पली ।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपिप्पलिकं दिनम् ।
वर्द्धयेत्पयसा सार्द्धं तथा चापनयेत्पुनः ॥ १३६ ॥
जीर्णे जीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ।
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनम् ॥ १३७ ॥
पिष्टास्ता बलिभिः सेव्याः शृता मध्यबलैर्नरैः ।
चूर्णीकृता ह्रस्वबलैर्योज्या दोषामयान्प्रति ॥ १३८ ॥
दशपैप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट् प्रकीर्त्तितः ।
प्रयोगो यस्त्रिपर्य्यन्तः स कनीयान् स चाबलैः ॥ १३९ ॥
बृंहणं स्वर्य्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम् ।
वयसः स्थापनं मेध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥ १४० ॥

पहिले दिन १० पीपल, दूसरे दिन २० इस प्रकार क्रमसे दश दश पीपल दश दिनों तक बढाता चलाजाय । फिर दश दश घटाता चलाआवे । इन पीपलोंको दूधके साथ खाना चाहिये । जब भूख लगे तो साठीके चावल, दूध और घृतके साथ खाना चाहिये । यह हजार पीपलका रसायन प्रयोग है । इनके सेवनका यह प्रकार है कि, दीर्घकाय बलवान् मनुष्य इनको पीस दूधमें मिला पीवे और मध्यबल मनुष्य दूधमें उबालकर ठण्डाकर वह दूध पीयाकरे । और लघुबल मनुष्य बलके अनुसार, दोष, रोगादि विचारकर चूर्ण करी हुई प्रयोग करे । यह दश पीपलोंका प्रयोग उत्तम मात्रा कहाजाता है सो बलवान् मनुष्योंको सेवन करना चाहिये छः पीपलोंसे ६ दिनतक छः छः पीपल बढाना और उसी क्रमसे घटाना यह मध्यम मात्रा है । सो मध्यबल मनुष्योंको सेवन करना चाहिये । एवं तीन पीपलकी सबसे कनिष्ठ मात्रा है सो निर्बल मनुष्योंके लिये प्रयुक्त करनी चाहिये । इस पिप्पली रसायनके सेवनसे वीर्य और स्वरकी वृद्धि होती है तथा प्लीहरोग और उदररोग नष्ट होते हैं अवस्था स्थिर होती है तथा मेधाकी वृद्धि होती है ॥ १३८–१४० ॥

त्रिफलारसायन । १

जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भुक्ते द्वे विभीतके ।
भुक्त्वा तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्य्यामलकानि च ॥ १४१ ॥
प्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलाया रसायनम् ।
जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥ १४२ ॥

प्रातःकाल एक हरड सेवन करे। भोजनसे प्रथम दो बहेडे। भोजन करनेके अनन्तर चार आँवले घृत और शहदके साथ मिलाकर खाय। इस प्रकार इस त्रिफला रसायनको एक वर्षपर्यन्त सेवन करे। इसके सेवनसे मनुष्य जरा और व्याधिसे रहित हो पूर्ण १०० वर्षकी आयुके सुखको भोगता है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अन्य त्रिफलारसायन। २

त्रैफलेनायसीं पात्रीं कल्केनालेपयेन्नवाम्।
तमहोरात्रिकं लेपं पिबेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम् ॥ १४३ ॥
प्रभूतस्नेहमशनं जीर्णे तत्र प्रशस्यते।
अजरोरुक्समाभ्यासाज्जीवेच्चैव समाः शतम् ॥ १४४ ॥

त्रिफलाको पीसकर कल्क बना ले उस कल्कको किसी एक नवीन लोहेके पात्रमें लेपकर दिनरात्रि रहनेदे। फिर शहद और पानीमें मिला मात्रानुसार पीवे। फिर भूखके समय घी, चावलका भोजन करे। इसके एक वर्ष सेवनसे जरा और व्याधिरहित होकर १०० वर्षतक जीता रहता है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

अन्य त्रिफलारसायन। ३

मधुकेन तुगाक्षीर्या पिप्पल्या क्षौद्रसर्पिषा।
त्रिफला सितया चापि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥ १४५ ॥

मुलहठीके चूर्णके अथवा वंशलोचनके संग या शहदके संग अथवा पीपलके संग या घृत और शहदके संग अथवा मिसरीके संग त्रिफलाका एक वर्षपर्यन्त सेवन करना परम सिद्ध रसायन है ॥ १४५ ॥

अन्य त्रिफलारसायन। ४

सर्वलोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा।
विडङ्गपिप्पलीभ्याञ्च त्रिफलालवणेन च ॥ १४६ ॥
संवत्सरप्रयोगेण मेधास्मृतिबलप्रदा।
भवत्यायुष्प्रदा धन्या जरारोगनिबर्हणी ॥ १४७ ॥

त्रिफला सर्व लोहभस्मके संग, अथवा केवल सुवर्णके संग या वच शहद, घृत, विडंग, पिप्पली, लवण इनमेंसे किसी एकके संग अथवा सबके संग एक वर्षपर्यन्त प्रयोग करनेसे मेधा, स्मृति, बल और आयुकी वृद्धि होती है। यह रसायन कांतिजनक तथा जरा (बुढापा) और व्याधिके नष्ट करनेवाली है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

शिलाजीत प्रयोग।

अनम्लश्च कषायश्च कटुपाके शिलाजतु।

नात्युष्णशीतं धातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्य सम्भवः ॥ १४८ ॥
हेम्नश्च रजतात्ताम्राद्वरं कृष्णायसादपि।
रसायनं तद्विधिभिस्तद्वृष्यं तच्च रोगनुत् ॥ १४९ ॥
वातपित्तकफघ्नैस्तु निर्य्यूहैस्तत्सुभावितम्।
वीर्य्योत्कर्षपरं याति सर्वैरेकैकशोऽपि वा ॥ १५० ॥
प्रक्षिप्योद्धृतमप्येनं पुनस्तत्प्रक्षिपेद्रसे।
कोष्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य भावना ॥ १५१ ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन लोहैश्चूर्णीकृतैः सह।
तत्पीतं पयसा दद्याद्दीर्घमायुः सुखान्वितम् ॥ १५२ ॥
जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकरं परम्।
मेधास्मृतिकरं बल्यं क्षीराशी तत्प्रयोजयेत् ॥ १५३ ॥
प्रयोगः सप्तसप्ताहास्त्रयश्चैकश्च सप्तकः।
निर्दिष्टस्त्रिविधिस्तस्य परो मध्योऽवरस्तथा।
पलमर्द्धपलं कर्षो मात्रा तस्य त्रिधा मता ॥ १५४ ॥

शिलाजीत, अम्लरस रहित है और कसैला, कटुपाकी, न अधिक गरम न अधिक शीतल होता है। यह चार धातुओंसे उत्पन्न होता है। जैसे–सोना, चांदी, तांबा और लोहा, इन सबमें लोहेसे उत्पन्न हुई शिलाजीत सर्वोत्तम है। शिलाजीतका विधिपूर्वक सेवन आयुको बढता है, वीर्यको उत्पन्न करता है तथा संपूर्ण रोगोंको नष्ट करता है। शिलाजीत वातनाशक, कफनाशक और पित्तनाशक औषधियोंके क्काथोंसे भावना दी जानेपर परम उत्तम वीर्यवाली होजाती है। क्काथोंमें भावना देनेका यह क्रम है कि, इन तीनों प्रकारके क्काथोंको इकट्ठाकर अथवा पृथक् २ लेकर जब वह क्काथ किंचित् गरम रहे तो उनकी शिलाजीतमें भावना देवे। शिलाजीतकी भावना इसप्रकार देनी चाहिये। शीलाजीतको उन क्काथोंमें डाल कर धूपमें धरे, जो मलाईरूपमें आवे उसे लेवे परन्तु इसे चैत्र या वैशाखमें शोधे और उनमेंसे विधिवत् निकाल लेवे इसीप्रकार सातबार करनेसे शिलाजीत परम उत्तम बनजाती है। इस शिलाजीतको पूर्वोक्त विधिसे लोहभस्मोंके साथ अथवा दूधके साथ मनुष्यको पीनेको दे। इसके सेवनसे सुखयुक्त, दीर्घायु होती है बुढापा और रोग शान्त होते हैं। देह परम दृढ़ होती है। मेधा और स्मृति तथा बल बढता है। इसके सेवन करनेवालेको केवल दूध

मात्र पीनेको देना चाहिये। इसका सेवन ४९ दिन अथवा २१ दिन या ७ दिन करना चाहिये। ४९ दिन उत्तम, २१ दिन मध्यम और ७ दिन कनिष्ठ मात्रा कही है। चार तोले उत्तम, दो तोले मध्यम और एक तोला कनिष्ठ। इसी विधिसे तीन प्रकारकी मात्रा कही है ॥ १४८-१५४ ॥

शिलाजीतकी उत्पत्ति।

जातेर्विशेषं सविधिं तस्य वक्ष्याम्यतः परम्।
हेमाद्याः सूर्य्यसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः।
जत्वाभं मृदु मृत्स्नाच्छं यन्मलं तच्छिलाजतु ॥ १५५ ॥

अब हम शिलाजीतके अलग २ जातिभेदको कथन करते हैं। सूर्यके संतापसे तपेहुए पर्वतोंमेंसे सुवर्ण आदि धातुएँ तपकर जो स्राव करती हैं उनमें जो स्राव लाखके समान वर्णवाला तथा नरम और मिट्टीकीसी कांतिवाला स्वच्छ मल निकलता है उसीको शिलाजीत कहते हैं ॥ १५५ ॥

सौवर्णशिलाजीत।

मधुरश्च सतिक्तश्च जपापुष्पनिभश्च यः।
कटुर्विपाके शीतश्च स सुवर्णस्य निस्रवः ॥ १५६ ॥

सुवर्ण प्रधान पहाडोंसे उत्पन्न हुई शिलाजीत-मीठी, किंचित् कडवी, जपाके फूलके समान वर्णवाली, कटु, विपाकी और शीतल होती है ॥ १५६ ॥

रौप्य शिलाजीत।

रूप्यस्य कटुकः श्वेतः शीतः स्वादुविपच्यते ॥ १५७ ॥

चांदीवाले पहाडसे उत्पन्न हुई शिलाजीत कटु, श्वेत, शीतल और स्वादुपाकी होती है ॥ १५७ ॥

ताम्रोद्भवशिलाजीत।

ताम्रस्य बर्हिकण्ठाभस्तिक्तोष्णकटुपच्यते ॥ १५८ ॥

ताम्र प्रधान पहाडसे उत्पन्न हुई शिलाजीत मोरके गर्दनकी समान चमकीली, कडुई, गरम और कटुपाकी होती है ॥ १५८ ॥

यस्तु गुग्गुलुकाभासस्तिक्तको लवणान्वितः।
कटुर्विपाके शीतश्च सर्वश्रेष्ठः स चायसः।
गोमूत्रगन्धयः सर्वे सर्वकर्मसु यौगिकाः ॥ १५९ ॥

---

१ सुश्रुते यद्यपि त्रपुसीसम्भवं प्राक्षिप्य षड्विधशिलाजतु सामान्येन रोगे रसायनाधिकारे चोक्तम्-" तथापीह रसायनाधिकारे तदधिकृतचतुर्विधमेवोक्तम्। "

लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीत गूगलके समान वर्णवाली, कडुई, लवणरसयुक्त, कटुविपाकी, शीतल होती है। यह शिलाजीत सबमें उत्तम है। सब प्रकारकी शिलाजीत गोमूत्रके समान गंधवाली और सब कर्मोंमें प्रयोग करने योग्य होती है॥ १५९॥

दोषभेदसे प्रयोग।

रसायनप्रयोगेषु पश्चिमस्तु विशिष्यते।
यथाक्रमं वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफे त्रिषु।
विशेषतः प्रशस्यन्ते मला हेमादिधातुजाः॥ १६०॥

रसायन प्रयोगमें विशेषकर लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीत उत्तम होती हैं, और वातपित्तमें सुवर्णसे उत्पन्न हुई शिलाजीत, कफपित्तमें चांदीकी और केवल कफमें तांबेसे उत्पन्न हुई एवं तीनों दोषोंमें लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीतका प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार सुवर्ण आदि धातुओंसे उत्पन्न हुई शिलाजीतके प्रयोगकी प्रशंसा की जाती है॥ १६०॥

शिलाजीतमें कुपथ्य।

शिलाजतुप्रयोगेषु विदाहीनि गुरूणि च।
वर्जयेत्सर्वकालं तु कुलत्थान्[1] परिवर्जयेत्॥ १६१॥
ते ह्यत्यन्तविरुद्धत्वादश्मनो भेदनाः परम्।
लोके दृष्टास्ततस्तेषां प्रयोगः प्रतिषिध्यते॥ १६२॥

शिलाजीत सेवनके समय विदाही और भारी पदार्थोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। और खासकर कुल्थी तो बिलकुलही नहीं खानी चाहिये। क्योंकि कुल्थी शिलाजीतसे अत्यंत विरोधी है और यह शिलाजीतको भेदन करनेवाली लोकमें भी प्रसिद्ध है। इसलिये इसका सेवन करना अत्यंत ही निषिद्ध है॥ १६१॥ १६२॥

शिलाजीतमें पथ्य।

पयांसि शुक्तानि[2] रसाः सयूषास्तोयं समूत्रं विविधाः कषायाः।
आलोडनार्थे गिरिजस्य शस्तास्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीक्ष्य कार्य्यम् १६३

शिलाजीतको दूधमें घोलकर अथवा सिरका, मांसरस, यूष, जल, गोमूत्र और अनेक प्रकारके क्वाथ अथवा अन्य जिस रोगमें जिस प्रकारके अनुपानकी आवश्यकता हो ऐसे अनुपानोंसे शिलाजीतका सेवन करना चाहिये और घृत दूध आदि हल्के चिकने पदार्थ सेवन करना चाहिये॥ १६३॥

---

१ कुनखान् इति पाठान्तरम्। तंत्रान्तरे उक्तमपि--"यावज्जीवितं कुनखांश्च विवर्जयेत्।"
२ तक्रानि इति कश्चित्पाठः।

शिलाजीतके गुण।

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपः शिलाह्वयं यं न जयेत् प्रसह्य।
तत्कालयोगैर्विधिभिः प्रयुक्तं स्वस्थस्य चोर्जां विपुलां ददाति॥ १६४॥

पृथ्वीमें ऐसा साध्यरोग कोई नहीं है जिस रोगको शिलाजीतका प्रयोग बलात्कारसे नष्ट न कर देता हो। शिलाजीत समयानुसार विधिवत् उचित द्रव्योंके अनुपानसे प्रयोग कियाहुआ स्वस्थ मनुष्यको अत्यंत बल और ओजको देनेवाला है॥ १६४॥

तत्र श्लोकः—करप्रचितिके पादे दश षट् च महर्षिणा।
रसायनानां सिद्धानां संयोगाः समुदाहृताः॥ १६५॥

इति करप्रचितीये रसायनपादस्तृतीयः॥ ३॥

यहांपर पादकी पूर्तिमें एक श्लोक है कि, इस करप्रचितिक पादमें महर्षि आत्रेयजीने सोलह प्रकारके सिद्ध रसायन प्रयोगोंका वर्णन किया है॥ १६५॥

इति करप्रचितीये रसायनपादस्तृतीयः॥ ३॥

अथात आयुर्वेदसमुत्थानीयं चतुर्थरसायनपादं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥ १६६॥

अब हम आयुर्वेद समुत्थानीय नामक चौथे रसायनपादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे॥ १६६॥

ऋषियोंका हिमालय गमन।

ऋषयः खलु कदाचिच्छालीना यायावराश्च ग्राम्यौषध्याहाराः सन्तः साम्पन्निका मन्दचेष्टा नातिकल्याणाश्च प्रायेण बभूवुः। ते सर्वासामितिकर्त्तव्यतानामसमर्थाः सन्तो ग्राम्यवासकृतं दोषं मत्वा पूर्वनिवासमपगतग्राम्यदोषं मत्वा शिवं पुण्यमुदारं मेध्यमगम्यमसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वयक्षकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचिन्त्याद्भुतप्रभावं ब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरितं दिव्यतीर्थौषधिप्रभावमतिशरण्यं हिमवन्तममराधिपतिगुप्तं जग्मुः भृग्वङ्गिरोऽत्रिवसिष्ठकश्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासितगौतमप्रभृतयो महर्षयः॥ १६७॥

एक समय ऋषिलोग समयके स्वभावसे शालीन और यायावर आदि ग्राम्य औषध और आहारका सेवन करनेसे आलस्यग्रस्त, संचयशील, कल्याणरहित होगये। उस समय उन्होंने यह सोचा कि, हमें क्या करना चाहिये ? फिर ग्रामवाससे उत्पन्न हुए यह दोष जानकर आदिस्थान, ग्राम्यदोषरहित, पवित्र, पुण्य, मंगलमय, उदार, पुण्यरहित मनुष्य जिसको न प्राप्त होसके, जिसमेंसे गंगाका प्रवाह निकलता है तथा देवता, गंधर्व यक्ष और किन्नरोंसे सेवित तथा अचिंत्य अद्भुत प्रभाव, ब्रह्मर्षि और सिद्ध तथा चारणगणोंसे सेवित दिव्य तीर्थ, औषधोंके तेजसे प्रकाशमान, अत्यन्त शरण्य और देवताओंके पतिसे रक्षित जो हिमालय पर्वत है उसपर भृगु, अंगिरा, आत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, आसित और गौतम आदि महर्षि प्राप्तहुए ॥ १६७ ॥

इन्द्र रसायनका उपदेश ।

तानिन्द्रः सहस्रदृक् अमरगुरुवरोऽब्रवीत्।स्वागतं ब्रह्मविदां ज्ञानतपोधनानां ब्रह्मर्षीणाम्। अस्ति ननु वो ग्लानिरप्रभावत्वं वैस्वर्य्यं वैवर्ण्यञ्च ग्राम्यवासकृतमसुखानुबन्धश्च । ग्राम्यो हि वासो मूलमशस्तानाम् । तत्कृतं पुण्यकृद्भिरनुग्रहः प्रजानां स्वशरीरमराक्षिभिः कालश्चायमायुर्वेदोपदेशस्य । ब्रह्मर्षीणामात्मनः प्रजानाञ्चानुग्रहार्थमायुर्वेदमश्विनौ मह्यं प्रयच्छताम्। प्रजापतिरश्विभ्याम्। प्रजापतये ब्रह्मा प्रजानामल्पमायुर्जराव्याधिबहुलमसुखमसुखानुबन्धमल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयं मत्वा। पुण्यतममायुः प्रकर्षकरं जराव्याधिप्रशमनमूर्जस्करममृतं शिवं शरण्यमुदात्तं भवन्तो मत्तः श्रोतुमर्हन्ति । उपधारयितुं प्रकाशयितुञ्च प्रजानुग्रहार्थमार्षं ब्रह्म च मैत्रीं कारुण्यमात्मनश्चानुत्तमं पुण्यमुदारं ब्राह्ममक्षयं कर्मेति ॥ १६८ ॥

उन ऋषियोंको उस पवित्र स्थलमें उपस्थित हुए देख देवताओंके पति सहस्रनेत्र इन्द्रभगवान् कहनेलगे कि, हे ब्रह्मके जाननेवाले ज्ञान और तपोधन ब्रह्मर्षियो ! ऋषियोंमें कुशल तो हैं ? क्योंकि आपलोगोंके शरीरोंमें ग्रामवाससे उत्पन्न हुई मलिनता, कांति, स्वर और वर्णोंकी हीनता, असुखसे उत्पन्न हुए अशुभ लक्षण प्रतीत होते हैं। इन अशुभ लक्षणोंका कारण आपलोगोंका ग्रामनिवास ही है । सो उन सब ऋषियोंके तथा प्रजाके जनोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छावाले, पुण्यात्मा, परहितके लिये अपने शरीरको कष्ट देनेवाले जो आपलोग यहांपर पधारे हैं सो आपलोगोंको आयु-

वेंदके उपदेश करनेका यही समय है। जो आयुर्वेद ब्रह्मर्षि और प्रजागणोंके हितके लिये अश्विनीकुमारोंने मुझे प्रदान किया है और अश्विनीकुमारोंको दक्ष प्रजापतिने प्रदान किया। और ब्रह्माने प्रजाको जरा व्याधिकी अधिकता तथा असुख और अशुभ कर्मोंके फलसे अल्पायु, अल्पतपस्या, इन्द्रियोंका दमन, नियम, दान, अध्ययन इनकी हीनता देखकर प्रजाके कल्याणके लिये दक्ष प्रजापतिको जिस आयुर्वेदका उपदेश किया है। जो आयुर्वेद कल्याणकारी, पुण्य आयुको बढाने-वाला जरा और व्याधियोंको नष्ट करनेवाला, ओजवर्द्धक, अमृतरूप, मंगलमय, शरणागतकी रक्षा करनेवाला और निर्मल है। उस आयुर्वेदको प्रजाके हितके लिये आप मुझसे श्रवण करो। और इस आयुर्वेदका जगत्में प्रचार करो। क्योंकि ऋषियोंका सम्पूर्ण आत्माओंके हितके लिये सम्पूर्ण प्राणियोंपर क्रिया करना उनकी आत्माओंके हितके लिये उत्तम ज्ञानका उपदेश करना ही अक्षय पुण्य कर्म है। अथवा ब्रह्म या वेदका ज्ञान ऋषियोंका मुख्य कर्म है, उससे सम्पूर्ण आत्माओंमें मैत्री, दया, उदारता रखतेहुए जो उन सबका हित साधन है वही अक्षय ब्रह्मकर्म होता है। तात्पर्य यह हुआ कि आपलोग मुझसे आयुर्वेद ग्रहणकर जगत्का हितसाधन करो यही तुम्हारा पुण्यकर्तव्य है ॥ १६८ ॥

तच्छ्रुत्वा विबुधपतिवचनमृषयः सर्व एवामरवरमृग्भिस्तुष्टुवुः प्रहृष्टास्तद्वचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रस्तदायुर्वेदामृतं ऋषिभ्यः संक्रम्योवाचैतत्सर्वमनुष्ठेयञ्च । अयञ्च शिवः कालो रसायनानां दिव्याश्चोषधयो हिमवतः प्रभवाः प्राप्तवीर्य्याः ॥ १६९ ॥

इन्द्रके इस वाक्यको सुनकर ऋषिलोग उस देवताओंके पतिकी ऋचाओंद्वारा स्तुति करनेलगे और प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके कहेहुए वाक्योंका अभिनन्दन करनेलगे। उसके उपरान्त इन ऋषियोंके प्रति सम्पूर्ण आयुर्वेदरूपी अमृत और रसायन क्रियाका उपदेश किया। तथा यह कहा कि हे ऋषियो ! आपलोगोंको सम्पूर्ण रसायन क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये। यह रसायनक्रियाही कल्याणदायक है। और इसक करनेका उत्तम यही समय है क्योंकि इस हिमालयमेंही रसायन गुणकारी रसवीर्यसम्पन्न दिव्य औषधियें प्राप्त होसकती हैं ॥ १६९ ॥

ऐन्द्री रसायन।

तद्यथा—ऐन्द्री ब्राह्मी पयस्या क्षीरपुष्पी श्रावणी महाश्रावणी शतावरी विदारी जीवन्ती पुनर्नवा नागबला स्थिरा वचा च्छत्रातिच्छत्रा मेदा महामेदा जीवनीयाश्चान्याः पयसा प्रयुक्ताः। षण्मासात्परम-

मायुर्वयश्च तरुणमनामयत्वं स्वरवर्णसंपदामुपचयं मेधां स्मृति-
मुत्तमबलमिष्टांश्चापरान्भावानावहन्ति सिद्धाः ॥ १७० ॥

वह रसायन प्रयोग इस प्रकार है जैसे—इन्द्रायण, ब्राह्मी, क्षीरकाकोली, गोरख-मुण्डी, महाश्रावणी (महामुण्डी), शतावर, विदारीकंद, जीवन्ती, पुनर्नवा, गंगेरन, शालपर्णी, वच, छत्रा[1], अतिच्छत्रा (अवाकपुष्पी) मेदा, महामेदा और जीवनीयगणकी औषधियें इन सबको दूधके संयोगसे छः महीनेतक सेवन करनेसे परम आयु, युवावस्था, नीरोगिता और स्वर वर्णमें उत्तमताकी प्राप्ति होती है तथा पुष्टि, मेधा, स्मृति, उत्तम बल एवं अन्य भी अभीष्ट सिद्धियोंको प्राप्त होता है ॥ १७० ॥

द्रोणीप्रावेशिकद्रव्यरसायन ।

ब्रह्मसुवर्चलानामौषधिर्य्या हिरण्यक्षीरा पुष्करसदृशपत्रा । आदित्य-पर्णी नामौषधिर्य्या सूर्य्यकान्तेति विज्ञायते सुवर्णवर्णक्षीरा सूर्य्यमण्डलाकारपुष्पा च । नारीनामौषधिरश्वबलेति विज्ञायते।या पुनः रजसदृशपत्रा।काष्ठगोधानामौषधिर्गोधाकारा । सर्पानामौषधिः सर्पाकारा। सोमो नामौषधिराजः पञ्चदशपर्णः स सोम इव हीयते वर्धते च। पद्मा नामौषधिः पद्माकारा पद्मरक्ता पद्मगन्धा । अजा नामोषधिरजश्रृङ्गीति विज्ञायते । नीला नामौषधिस्तु नीलक्षीरा नीलपुष्पा लताप्रतानबहुला । इत्यासामष्टानामौषधीनां यां यामेवौषधिं लभेत तस्यास्तस्याः स्वरसस्य सौहित्यं गत्वा स्नेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यां सपिधानायां शयीत । तत्र प्रलीयते षण्मासेन पुनःपुनः सम्भवति। तस्याजं पयः प्रत्यवस्थापनम् । षण्मासेन देवतानुकारी भवति यो वर्णस्वराकृतिबलप्रभाभिः । स्वयञ्चास्य सर्ववाचोगतानि प्रादुर्भवन्ति । दिव्यञ्चास्य चक्षुः श्रोत्रं भवति योजनसहस्रगतिर्दशवर्षसहस्राण्यायुरनुपद्रवञ्चेति । इति द्रोणीप्रावेशिकरसायनम् ॥ १७१ ॥

ब्रह्मसुवर्चला[2] नामकी एक औषधी है इसका पीले रंगका दूध और कमलके समान

---

१ बर्फानी पहाडोंमें इसके ऊपर छतरीके आकारका पत्र निकलता है । जो बर्सातमें छतरीके आकारका मलिन भूमिमें सब जगह उत्पन्न होता है वह नहीं है । २ इसको ब्रह्मसोंचली भी कहते हैं यद्यपि ब्रह्मसोंचली हुलहुलका नाम है परन्तु यह ब्रह्मसोंचली नामकी एक लता है । इसमें कमलके पत्तोंके समान गोल पत्ते लगते हैं । तोडनेसे पीलेरंगका दूध निकलता है ।

पत्र होते हैं। आदित्यपर्णी नामक जो औषधी है इसको सूर्यकान्ता भी कहते हैं। इसमेंसे भी सुवर्णके समान पीला दूध निकलता है और सूर्यमण्डलके आकारवाले फूल होते हैं। नारीनामकी जो औषध है उसको अश्वबला भी कहते हैं और स्त्रियोंके रजके वर्णके उसमें पत्र लगते हैं। काष्ठगोधा नामक औषधी गोहके आकारवाली होती है। सर्पा औषधी सांपके आकारवाली होती है। सोमनामक औषधीराजमें पंद्रह पत्ते लगते हैं वह चन्द्रमाके समान कृष्णपक्षमें घटते और शुक्ल पक्षमें बढते रहते हैं। पद्मा नामक औषधी पद्मके आकारवाली और कमलके समान गन्ध और वर्ण (रंग) वाली होती है। अंजा नामक औषधीका नाम अजासिंगी भी है। नीला नामक औषधीके फूल और दूध नीले रंगके होते हैं और इसकी बेल प्रतानयुक्त फैलीहुई होती है। इन आठ औषधियोंमेंसे जो २ मिलसके उस उसका स्वरस निकाल शुद्धकाय मनुष्य कुटीप्रवेशविधिसे पीजावे।और मकानके अन्दर एक ढाककी गीली लकडीसे जिसमें मनुष्य लेटसके उस प्रकारकी द्रोणी (सन्दूकसा) बनाईहुई पहले तैयार रहनी चाहिये। उस द्रोणीमें घृत लगाकर औषधी पियाहुआ मनुष्य लेटजाय। इस मनुष्यको छः महीनेतक इसमें पडे रहने देना चाहिये। और बार २ इसके मुखमें बकरीका थोडा २ दूध देता रहे। और सावधानीसे इसकी रक्षा रक्खे। इस प्रकार छः महीने करनेसे यह मनुष्य देवताओंके समान आयु,वर्ण, स्वर, स्वरूप, आकृति, बल और कांतिवाला होजाता है। सम्पूर्ण विद्यायें अपने आप इसमें प्रगट होजाती हैं। इसके नेत्र और कान दिव्य होजाते हैं। एक हजार योजनतक इसकी गति होजाती है।एवं दशहजार वर्षकी आयुवाला तथा संपूर्ण रोगरहित होता है॥१७१॥

इन दिव्यरसायनोंको सेवन करनेकी योग्यता।

भवन्ति चात्र–दिव्यानामोषधीनां यः प्रभावः स भवद्विधैः।

–सूर्यकीसी कान्तिवाले गोल फूल होते हैं वह फूल सूर्य उदय होनेपर खिलते हैं। फूल नीले, पीले. सफेद इन तीन जातियोंके होते हैं॥

१ आदित्यपर्णी ब्रह्मसोंचलीका ही भेद है। इसलिये मूलमें इन दोनोंको एकही मानकर आठ प्रकारकी औषधियें कही गई हैं। कोई २ वैद्य ब्रह्मसोंचली और आदित्यपर्णी इन दोनोंको ही दो जातिका हुलहुल मानते हैं। परन्तु जो हुलहुल सब जगह देखनेमें आता है उसमें और इसमें बडाभारी अन्तर है। इसकी लता सजल, शीतल स्थानोंमें होती है॥ २ नारी नामकी लाल पत्रोंवाली बूटी। ३ बर्फानी पहाडोंमें गोहके आकारकी बूटी। ४ सर्पाकार बूटी बर्फानी पहाडोंमें। ५ सोमलता, सोमकन्द आदि नामोंसे प्रसिद्ध है, बर्फानी स्थानोंमें मानससरोवरके किनारे अमरनाथके पहाडमें प्रायः मिलती है। इसकी यथोचित सेवनकी विधि सुश्रुतमें लिखी है। ६, ७ इन दोनोंको मैं नहीं जानता। ८ यह भी सजल, शीतल पहाडोंपर होती है।

शक्यः सोढुमशक्यस्तु न सोढुमकृतात्मभिः ॥ १७२ ॥
ओषधीनां प्रभावेण तिष्ठतां स्वे च कर्मणि ।
भवतां निखिलं श्रेयः सर्वमेवोपपत्स्यते ॥ १७३ ॥

इस प्रकारकी दिव्य औषधियोंको हे ब्रह्मर्षियो ! आपके समान योग्य महात्माही सेवन और सहन करसकते हैं, अजितेन्द्रिय अजितात्मा मनुष्य इन दिव्य रसायनोंको सहन नहीं करसकते। इन औषधियोंके प्रभावसे आपलोग सहस्रों वर्ष अपनेर योगादि मार्गोंमें प्रवृत्त रहतेहुए सम्पूर्ण कल्याणको प्राप्त होंगे ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च प्रयतैर्नियतात्मभिः ।
शक्या औषधयो ह्येताः सेवितुं विषयाभिजाः ॥ १७४ ॥
तास्तु क्षेत्रगुणैस्तेषां मध्यमेन च कर्मणा ।
मृदुवीर्य्यतया तासां विधिर्ज्ञेयः स एव तु ॥ १७५ ॥

यदि वानप्रस्थ या गृहस्थ मनुष्य जितेन्द्रिय हो जिसके मन और शरीर अपने वशमें हों वह इन औषधियोंको सेवन करना चाहे तो उनको क्षेत्र, गुण विशेषसे मृदु वीर्य मध्यम कर्मद्वारा औषधी सेवन कराना चाहिये । परन्तु सेवनविधिमें कोई भेद नहीं है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

साधारणजनोंके लिये अन्य रसायन ।

पर्य्येष्टुं ताः प्रयोक्तुं वा येऽसमर्थाः सुखार्थिनः ।
रसायनविधिस्तेषामयमन्यः प्रशस्यते ॥ १७६ ॥

जो मनुष्य इन उपरोक्त दिव्य रसायनोंको ढूंढ नहीं सकते और प्रयोग करनेमें असमर्थ हैं परन्तु रसायनके सुखकी इच्छा करते हैं उनके लिये यह आगे कही रसायन विधि श्रेष्ठ होती है ॥ १७६ ॥

इन्द्रोक्तरसायन ।

बल्यानां जीवनीयानां बृंहणीयाश्च या दश ।
वयसः स्थापनानाञ्च खदिरस्यासनस्य च ॥ १७७ ॥
खर्जूराणां मधूकानां मुस्तानामुत्पलस्य च ।
मृद्वीकानां विडङ्गानां वचायाश्चित्रकस्य च ॥ १७८ ॥
शतावर्य्याः पयस्यायाः पिप्पल्या जोङ्गकस्य च ।

ऋद्ध्या नागबलायाश्च हरिद्राया धवस्य च ॥ १७९ ॥
त्रिफलाकण्टकार्य्योश्च विदार्य्याश्चन्दनस्य तु।
इक्षूणां शरमूलानां श्रीपर्ण्यास्तिनिशस्य च ॥ १८० ॥
रसाः पृथक् पृथक् ग्राह्याः पलाशक्षार एव च।
एषां पलोन्मितान् भागान् पयो गव्यं चतुर्गुणम् ॥ १८१ ॥
द्वे पात्रे तिलतैलस्य द्वे च गव्यस्य सर्पिषः।
तत्साध्यं सर्वमेकत्र सुसिद्धं स्नेहमुद्धरेत् ॥ १८२ ॥
तत्रामलकचूर्णानामाढकं शतभावितम्।
स्वरसेनैव दातव्यं क्षौद्रस्याभिनवस्य च ॥ १८३ ॥
शर्कराचूर्णपात्रञ्च प्रस्थमेकं प्रदापयेत्।
तुगाक्षीर्य्याः सपिप्पल्याः स्थाप्यं संमूर्च्छितञ्च तत् ॥ १८४ ॥
शुचौ च मार्त्तिके कुम्भे मासार्द्धं घृतभावितं।
मात्रामग्निसमां तस्य तत ऊर्द्धं प्रयोजयेत् ॥ १८५ ॥
हेमताम्रप्रवालानामयसः स्फटिकस्य च।
मुक्तावैदूर्य्यशंखानां चूर्णानां रजतस्य च ॥ १८६ ॥
प्रक्षिप्य षोडशीं मात्रां विहायायासमैथुनम्।
जीर्णेजीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ॥ १८७ ॥

षड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायमें जो सूत्रस्थानमें कह आये हैं उसमें कहीहुई बलवर्द्धक दश औषधियें एवं जीवनीयदशक, बृंहणीयदशक, वयःस्थापनदशक इन चार दशकोंकी चालीस औषधियें और खैरसार, बिजेसार, पिण्डखजूर, महुए, नागरमोथा, नीलकमल, मुनक्का, वायविडंग, वच, चीता, शतावर, क्षीरकाकोली, पीपल, काकनासा[२], ऋद्धि, नागबला, हल्दी, धव, त्रिफला, कटेली, विदारीकन्द, चंदन, ईखकी जड, सरपतकी जड, कम्भारी, तिनिश इन प्रत्येक औषधिका स्वरस तथा पलाशका क्षार एकएक पल[३] लेवे। और इन सबको एकत्रकर इनसे चौगुना दूध लेवे। तिलोंका तेल और गोघृत दो दो आढक लेवे। इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे पकावे। जब

१ (द्राक्षा) पाठभेदः तच्छाकतरुविशेषः। २ अस्मिन्स्थाने अगरुरपि स्वीकृतः कुत्रचित्।
३ पल चार तोलेका होता है।

औषधियोंका रस और दूध जलकर स्नेह मात्र शेष रहे तो उसको स्वच्छ वस्त्रमें छानलेवे। फिर इसमें १०० बार आँवलेके स्वरसकी भावना दियाहुआ आँवलेका चूर्ण एक आढक नवीन उत्तम शहद एक आढक, पिसीहुई मिसरी एक आढक, वंशलोचन और पीपलका चूर्ण एक प्रस्थ इन सबको उसमें मिलादेवे और किसी घीके चिकने मिट्टीके पात्रमें भरकर पन्द्रह दिनतक धरा रहने देवे। फिर जठराग्निका बलाबल विचार कर उचित मात्रासे सेवन करे और सेवन करते समय मात्रा (खुराक) से सोलहवां भाग सोना, तांबा, मूंगा, लोहा, स्फटिक, मोती, वैडूर्य, शंख और चांदी इन सबकी बहुत उत्तम भस्म मिलाकर खाना चाहिये। इसके सेवनके समय सब प्रकारका परिश्रम और स्त्रीसंगको बिल्कुल त्याग देवे तथा किसी प्रकारका कुपथ्य सेवन न करे। जब मात्रा जीर्ण होकर भूख लगे तब शाठीके चावलोंका भात, दूध और घृत मिला भोजन कियाकरे॥ १७७-१८७॥

इसके गुण।

सर्वरोगप्रशमनं वृष्यमायुष्यमुत्तमम्।
सत्त्वस्मृतिशरीराग्निबुद्धीन्द्रियबलप्रदम्॥ १८८॥
परमूर्जस्करश्चैव वर्णस्वरकरं तथा।
विषालक्ष्मीप्रशमनं सर्ववाचो गतिप्रदम्॥ १८९॥
सिद्धार्थताञ्चाभिनवं वयश्च प्रजाप्रियत्वञ्च यशश्च लोके।
प्रयोज्यमिच्छद्भिरिदं यथावद्रसायनं ब्राह्ममुदारवीर्य्यम्॥ १९०॥

यह रसायन सर्वरोगनाशक, बलवर्द्धक, परमआयुकारक और सत्त्व, स्मृति, शरीर, अग्नि, बुद्धि तथा इंद्रियोंके बलको देनेवाली है। एवं ओजको बढानेवाली, स्वर और वर्णको उत्तम करनेवाली, विषविकार तथा शरीरकी अलक्ष्मीको दूर करनेवाली और वाक्सिद्धिको देनेवाली है। इसके सेवनसे मनोरथ सिद्धि, नवीन अवस्था और प्रजाका प्रियपात्र एवं लोकमें यशकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इन सब गुणोंकी इच्छा रखता हो वह इस उदारवीर्य ब्राह्मरसायनका सेवन करे॥ १८८-१९०॥

कुटीप्रवेशयोग्य मनुष्य।

समर्थानामरोगाणां धीमतां नियतात्मनाम्।
कुटीप्रवेशः क्षमिणां परिच्छदवतां हितः॥ १९१॥

जो मनुष्य सब प्रकार समर्थ हैं तथा आरोग्य (तन्दुरुस्त) बुद्धिमान्, जितात्मा,

---

१ आढक चार सेरका होता है। २ प्रस्थ एक सेर कहाता है।

क्षमायुक्त तथा संपूर्ण सामग्रीयुक्त हों उनको कुटीप्रवेशविधिसे रसायन सेवन करना हितकारक होता है ॥ १९१ ॥

कुटीप्रवेशके अयोग्य।

अतोऽन्यथा तु ये तेषां सौर्य्यमारुतको विधिः।
ताभ्यां श्रेष्ठतरः पूर्वो विधिः स तु सुदुष्करः ॥ १९२ ॥

जो मनुष्य चञ्चल प्रकृतिवाले, रोगी, बुद्धिरहित, असमर्थ और असहनशील है तथा जिनके पास सब प्रकारकी सामग्री नहीं है उनका सौर्यमारुतिक अर्थात् जिसमें पवन, धूपका कोई विचार न हो, इस प्रकारकी साधारण रसायन सेवन करना चाहिये। यद्यपि कुटीप्रावेशिक रसायन सब प्रकार गुणोंमें परमोत्तम होती है परन्तु उसको साधारण मनुष्य कर नहीं सकते ॥ १९२ ॥

कुपथ्यसे उत्पन्न रोगोंमें चिकित्सा।

रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन् व्याधयो यदि।
यथास्वमौषधं तेषां कार्य्यं मुक्त्वा रसायनम् ॥ १९३ ॥

रसायन सेवन करते समय किसी प्रकारका कुपथ्य होनेसे जो रोग उत्पन्न होंय तो उनकी उन रोगोंके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये और रसायनका त्याग करदेना चाहिये ॥ १९३ ॥

रसायनके योग्य मनुष्य।

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम् ॥ १९४ ॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्य्यगुरुवृद्धार्चने रतम् ॥ १९५ ॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं कारुण्यवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम् ॥ १९६ ॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम्।
शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥ १९७ ॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यात्नरं नित्यरसायनम् ॥ १९८ ॥
गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुङ्क्ते यो रसायनम्।
रसायनगुणान् सर्वान्यथोक्तान् स समश्नुते ॥ १९९ ॥

जो जन सत्यवादी, क्रोधरहित, मद्य, मैथुनसे रहित, अहिंसक, श्रम न करनेवाला, प्रियवादी, जप, शौचाचार, धीरता इनको धारण करनेवाला तथा नित्य दानको देनेवाला, तपस्वी, देवता, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु और वृद्धजनोंकी पूजामें रत हो, निर्लज्ज कामोंको न करनेवाला, दयाशील, ज्ञानी, उचितरीतिपर ठीक समय जागने और सोनेवाला हो, दूध, घृतको भोजन करनेवाला हो, एवं देश, काल, प्रमाण और युक्तिको जाननेवाला हो, अहंकाररहित हो, प्रशंसनीय आचारको धारण करनेवाला हो, एक धर्मपर दृढ हो, अध्यात्मको जाननेवाला हो, समस्त इन्द्रियोंको जीतकर ज्ञानमें लगानेवाला हो, तथा वृद्ध, आस्तिक, जितात्मा इनकी उपासना करनेवाला हो. धर्मशास्त्रकी आज्ञा पालन करनेवाला हो । इस प्रकारके मनुष्यको रसायनके विना भी रसायनके गुण प्राप्त होते हैं । जिन लोगोंमें इस प्रकारके गुण वर्तमान हैं यदि उनको रसायनका प्रयोग कियाजाय तो उनकी रसायनके संपूर्ण गुण प्राप्त होते हैं ॥ १९४–१९९ ॥

यथास्थूलमनिर्वाह्य दोषाञ्छारीरमानसान् ।
रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यते न कदाचन ॥ २०० ॥
योगा ह्यायुःप्रकर्षार्था जरारोगनिबर्हणाः ।
मनःशरीरशुद्धानां सिध्यन्ति प्रयतात्मनाम् ॥ २०१ ॥

जबतक शरीर और मनके दोषोंके समुदायसे मनुष्य शुद्ध नहीं होता तबतक वह कभी भी रसायनके गुणोंको प्राप्त नहीं करसकता । क्योंकि जिन लोगोंके मन और शरीर शुद्ध हैं तथा जो पुरुष जितात्मा हैं । उन्हींको यह आयुवर्द्धक, जराव्याधिनाशक रसायनके संपूर्ण योग सिद्ध होसकते हैं ॥ २०० ॥ २०१ ॥

रसायनके अयोग्य ।

तदेतन्न भवेद्वाच्यं सर्वमेव हतात्मसु ।
अरुजेभ्यो द्विजातिभ्यः शुश्रूषा येषु नास्ति च ॥ २०२ ॥

जो मनुष्य अजितेन्द्रिय हैं, जिनका चित्त अपने वशमें नहीं है, जिनको आरोग्यतामें और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा नहीं है । ऐसे मनुष्योंको रसायनका'कथन मात्र भी नही करना चाहिये ॥ २०२ ॥

वैद्यकी सेवाका उपदेश ।

ये रसायनसंयोगा वृष्या योगाश्च ये मताः ।
यच्चौषधं विकाराणां सर्वं तद्वैद्यसंश्रयम् ॥ २०३ ॥

प्राणाचार्य्यं बुधस्तस्माद्धीमन्तं वेदपारगम्।
अश्विनाविव देवेन्द्रः पूजयेदति शक्तितः॥ २०४॥

यह संपूर्ण रसायनयोग और वाजीकरणयोग एवं व्याधियोंको नष्ट करनेवाले औषध चिकित्सा यह सब वैद्यके आश्रय हैं। इसलिये जिस प्रकार इन्द्र अश्विनीकुमारोंका पूजन करता है उसीप्रकार आयुर्वेदके जाननेवाले बुद्धिमान् प्राणाचार्य वैद्यकी सेवा यथाशक्ति मनुष्योंको करनी चाहिये॥ २०४॥

अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसा।

अश्विनौ देवभिषजौ यज्ञवाहाविति स्मृतौ।
दक्षस्य हि शिरश्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम्॥ २०५॥
प्रशीर्णा दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च।
वज्रिणश्च भुजस्तम्भस्ताभ्यामेव चिकित्सितः॥ २०६॥
चिकित्सितस्तु शीतांशुर्गृहीतो राजयक्ष्मणा।
सोमाभिपतितश्चन्द्रः कृतस्ताभ्यां पुनः सुखी॥ २०७॥
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः।
वीतवर्णस्वरोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा॥ २०८॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषगुत्तमौ।
बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां महात्मनाम्॥ २०९॥
ग्रहाः स्तोत्राणि मन्त्राणि तथान्यानि हवींषि च।
धूम्राश्च पशवस्ताभ्यां प्रकल्प्यन्ते द्विजातिभिः॥ २१०॥

अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं। इनको यज्ञमें भाग भी दिया जाता है। इन्होंने दक्षके कटेहुए शिरको जोड दिया था। पूषादेवके गिरेहुए दांतोंको और भगदेवके नष्ट नेत्रोंको फिर उत्तम बना दिया था। इन्द्रकी स्तंभित भुजाओंकी चिकित्सा की थी, राजयक्ष्मासे व्याकुलहुए चंद्रमाको अश्विनीकुमारोंने ही अच्छा किया, सोमभावसे नष्टहुए चन्द्रमाको इन्होंने सुखी किया और भृगुके पुत्र च्यवन ऋषि कामवश होनेसे वृद्धावस्थामें विकृत होगये थे उनको भी इन्होंनेही वर्ण स्वरयुक्त फिरसे युवा बना दिया। इस प्रकारके बहुतसे योग्य और उत्तम चिकित्सा कर्म किये। उन कर्मोंके प्रभावसे यह अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवता और महात्माओंके विशेष पूजनीय हुए। इसीलिये द्विजाति भी उनके अर्पण मन्दिर, स्तोत्र, मंत्र, घृतकी आहुति, धूप और यज्ञभाग करते हैं॥ २०५-२१०॥

प्रातश्च सवने सोमं शक्रोऽश्विभ्यां सहाश्नुते ।
सौत्रामण्याञ्च भगवानश्विभ्यां सह मोदते ॥ २११ ॥
इन्द्राग्नी चाश्विनौ चैव स्तूयन्ते प्रायशो द्विजैः ।
स्तूयन्ते वेदवाक्येषु न तथान्या हि देवताः ॥ २१२ ॥
अमरैरजरैस्तावद्विबुधैः साधिपैर्ध्रुवैः।
पूज्येते प्रयतैरेवमश्विनौ भिषजाविति ॥ २१३ ॥

प्रातःकाल इन्द्रभगवान् अश्विनीकुमारोंके साथ सोमको पान करते हैं और सौत्रामणी यज्ञमें अश्विनीकुमारों सहित प्रसन्न होते हैं। ब्राह्मण प्रायः इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारोंकी ही स्तुति करते हैं। वेदवाक्योंमें भी जिसप्रकार अश्विनीकुमारोंकी स्तुति है वैसी अन्य देवताओंकी नहीं है। जरारहित, अमर, ज्ञानी, देवता, अपने अधिपति इन्द्रके साथ यत्नपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी पूजा करते हैं ॥ २११-२१३ ॥

मृत्युव्याधिजरावश्यैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।
किंपुनर्भिषजो मर्त्यैः पूज्याः स्युर्नातिशक्तितः ॥ २१४ ॥

मनुष्य प्रायः मृत्यु, व्याधि बुढापा आदि दुःखोंसे दुःखित हुए रहते हैं उनको अपने सुखकी इच्छा करतेहुए यथाशक्ति वैद्योंका पूजन करना चाहिये ॥ २१४ ॥

प्राणाचार्यके लक्षण।

शीलवान्मतिमान् युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः ।
प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यः प्राणाचार्य्यः स हि स्मृतः ॥ २१५ ॥

शीलवान्, मतिमान्, चिकित्साकी संपूर्ण युक्ति जाननेवला, द्विजाति, आयुर्वेद शास्त्रमें पारंगत वैद्य प्राणाचार्य कहाजाता है। वह संपूर्ण प्राणियोंको प्राणोंके समान पूजन करनेयोग्य है ॥ २१५ ॥

वैद्यको त्रिजातित्व।

विद्यासमाप्तौ भिषजस्तृतीया जातिरुच्यते ।
अश्नुते वैद्यशब्दं हि न वैद्यः पूर्वजन्मना ॥ २१६ ॥
विद्यासमाप्तौ ब्राह्मं वा सत्त्वमार्षमथापि वा ।
ध्रुवमाविशति ज्ञानात्तस्माद्वैद्यस्त्रिजः स्मृतः ॥ २१७ ॥

वैद्य विद्याको समाप्त करनेपर त्रिजाति कहाजाता है। क्योंकि,पूर्वजन्मसे कोई वैद्य नहीं कहाजासकता। ब्राह्मण बालकका जन्म संस्कार होनेके अनन्तर जब यज्ञोपवीत

संस्कार होता है तो वह द्विज कहाजाता है फिर वैद्यविद्याकी समाप्ति होनेपर जब उसमें आयुर्वेदशास्त्रका प्रभाव होजाता है तो उस समय उससे ब्राह्मसत्त्व अथवा आर्षसत्त्व आकर प्रवेश कर लेता है। उस समयसे वैद्य त्रिजाति कहाजाता है॥२१७॥

नाभिध्यायेन्न चाक्रोशेदहितं न समाचरेत्।
प्राणाचार्य्यं बुधः कश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम्॥ २१८॥
चिकित्सितस्तु संश्रुत्य यो वा संश्रुत्य मानवः।
नोपाकरोति वैद्याय नास्ति तस्येह निष्कृतिः॥ २१९॥

दीर्घायुकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको वैद्यका कभी भी खोटा चिंतवन नहीं करना चाहिये। और निंदा अहित तथा अपशब्द यह प्राणाचार्यको कभी न कहे। जब मनुष्य रोगावस्थामें ऐसी प्रतिज्ञा करे कि मैं अच्छा होजानेपर वैद्यकी सेवा करूंगा अथवा विना प्रतिज्ञा किये भी जो मनुष्य रोगमुक्त होनेपर वैद्यकी सेवा नहीं करता तो उस पापीके इस प्रकार पापका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है॥ २१८॥ २१९॥

वैद्यके लिये कर्तव्य।

भिषगप्यातुरान् सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान्।
आबाधेभ्यो हि संरक्षेदिच्छन् धर्ममनुत्तमम्॥ २२०॥

वैद्यको भी चाहिये कि, वह सर्वोत्तम धर्मकी इच्छा करताहुआ अपने पुत्रोंके समान रोगियोंकी संपूर्ण रूपसे व्याधियोंसे रक्षा करे॥ २२०॥

धर्मार्थश्चार्थकामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः।
प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिः स्थानमक्षरम्॥ २२१॥
नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति।
वर्त्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्त्तते॥ २२२॥
कुर्वते ये तु वृत्त्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयम्।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांसुराशिमुपासते॥ २२३॥

धर्मपरायण महर्षियोंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा करतेहुए आयुर्वेदका उपदेश किया है न केवल अपने स्वार्थ अथवा कामनाके साधनकी इच्छासे आयुर्वेदका उपदेश किया है उनका प्रयोजन प्राणी मात्रपर दया करनाही है। इसलिये उनकी आज्ञानुसार चिकित्सा करनेवाला वैद्य सबसे उत्तम या ऊंचे दर्जेका मानाजाता है। जो वैद्य केवल आजीविकाके लिये चिकित्साकी दूकानदारी करता है वह मूर्ख सुवर्णके ढेरको छोडकर धूलके ढेरकी उपासना करता है॥ २२१-२२३॥

वैद्यको पुण्य ।

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम् ।
छित्त्वा वैवस्वतान् पाशाञ्जीवितञ्च प्रयच्छति ॥ २२४ ॥
धर्मार्थसदृशस्तस्य दाता नेहोपलभ्यते ।
न हि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते ॥ २२५ ॥

रोगरूपी दारुण फांसियोंसे यमलोककी ओर खींचेहुए प्राणियोंको यमफांससे छुडाकर जो जीवनका दान देता है उससे बढकर धर्मात्मा और दानी कौन हो सकता है अर्थात् कोई नहीं होसकता । क्योंकि जीवदानसे बढकर दुनियामें और कोई दान नहीं है ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

परो भूतदया धर्म इति मत्वा चिकित्सया ।
वर्त्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ २२६ ॥

जीवमात्रपर दया करनाही परमधर्म है यह मानकर जो वैद्य चिकित्सा करता है वह वैद्य सिद्ध अर्थको अथवा अपने पर्यतनकी सिद्धिको प्राप्त होकर इस लोकके और परलोकके अत्यन्त सुखको प्राप्त होता है ॥ २२६ ॥

पादका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ–आयुर्वेदसमुत्थानं दिव्यौषधिविधिः शुभः ।
अमृताल्पान्तरगुणं सिद्धं रत्नरसायनम् ॥ २२७ ॥
सिद्धेभ्यो ब्रह्मचारिभ्यो यदुवाचामरेश्वरः ।
आयुर्वेदसमुत्थाने तत्सर्वं सम्प्रकाशितम् ॥ २२८ ॥

इति चरकसं० चिकित्सिते आयुर्वेदसमुत्थानीयो रसायनपादश्चतुर्थः ॥ ४ ॥
समाप्तश्च रसायनोऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि, इस आयुर्वेद समुत्थानीय रसायन-पादमें–आयुर्वेदकी उत्पत्ति, दिव्य और शुभ तथा अमृततुल्य गुणवाली सिद्ध रसायनोंका ब्रह्मचारी सिद्ध ऋषियोंके प्रति इन्द्रका कथन करना यह सब वर्णन किया-गया है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायामायुर्वेदसमुत्थानीयो नाम चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

समाप्तश्चायं रसायनाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

वाजीकरणम्।

अथातः सम्प्रयोगशरमूलीयं वाजीकरणपादं व्याख्यास्यामः। इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम सम्प्रयोगशरमूलीय वाजीकरणपादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे॥

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषो नित्यमात्मवान्।
तदायत्तो हि धर्मार्थौ प्रीतिश्च यश एव च॥ १॥
पुत्रस्यायतनं ह्येतद्गुणाश्चैते सुताश्रयाः।
वाजीकरणमग्र्यञ्च क्षेत्रं स्त्री या प्रहर्षिणी॥ २॥

आत्मवान् मनुष्यको नित्यप्रति वाजीकरण पदार्थोंका सेवन करना चाहिये। क्योंकि धर्म, अर्थ, प्रीति और यश यह सब वाजीकरणके ही आधीन हैं। और पुत्रोत्पत्तिका परमस्थान वाजीकरण ही है। और पुत्रके आश्रय ही धर्म, अर्थ, प्रीति और यश यह गुण रहते हैं। तथा सबसे मुख्यक्षेत्र वाजीकरणका प्रहर्षको उत्पन्न करनेवाली स्त्रियें हैं॥ १॥ २॥

स्त्रीकी प्रशंसा।

इष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्थाः परं प्रीतिकराः स्मृताः।
किं पुनः स्त्रीशरीरे ये संघातेन व्यवस्थिताः॥ ३॥
संघातो हीन्द्रियार्थानां स्त्रीषु नान्यत्र विद्यते।
स्त्र्याश्रयो हीन्द्रियार्थो यः स प्रीतिजननोऽधिकः॥ ४॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पांचों इन्द्रियोंके विषय हैं। इनमेंसे एककी प्राप्ति होना भी परम प्रीतिके आनन्दको देनेवाला होता है। स्त्रीके शरीरमें यह पांचों ही संघातरूपसे विराजमान रहते हैं। इसलिये स्त्रीसे बढकर इन्द्रियोंकी प्यारीवस्तु और क्या होसकती है? सब इन्द्रियोंके विषय संघातरूपसे स्त्रीके सिवाय और किसी जगह नहीं रहसकते। स्त्रीके आश्रित जो इन्द्रियोंके विषय हैं, वह ही अत्यन्त प्रीतिको उत्पन्न करनेवाले हैं॥ ३॥ ४॥

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः॥ ५॥

स्त्रियोंमें ही विशेषरूपसे प्रीति निवास करती है। स्त्रियोंमें ही सन्तान प्रतिष्ठित है। धर्म, अर्थ और लक्ष्मी यह सब स्त्रियोंमेंही विद्यमान हैं। स्त्रियोंमेंही यह संसार प्रतिष्ठित है ॥ ५ ॥

सुरूपा यौवनस्था या लक्षणैर्या विभूषिता ।
या वश्या शिक्षिता या च सा स्त्री वृष्यतमा मता ॥ ६ ॥

सुन्दर रूपवती, युवावस्थावाली, सम्पूर्ण योग्य लक्षणोंसे शोभायमान अपने वश तथा गुणवान् जो स्त्री है वह सबसे उत्तम वाजीकरण अर्थात् प्रहर्षोत्पादक है ॥६॥

नानाभुक्त्या तु लोकस्य दैवयोगाच्च योषिताम् ।
तं तं प्राप्य विवर्तन्ते नरं रूपादयो गुणाः ॥ ७ ॥
वयोरूपवचोहावैर्या यस्य परमाङ्गना ।
प्रविशत्याशु हृदयं दैवाद्वा कर्मणोऽपि वा ॥ ८ ॥
हृदयोत्सवरूपा या या समानमनोरमा ।
समानसत्त्वा या वश्या या यस्य प्रीतये प्रियैः ॥ ९ ॥

संसारमें अनेक प्रकारकी स्त्रियें होती हैं और दैवयोगसे उन्हीं अनेक प्रकारके रूपादि गुणोंको देखकर अनेक प्रकारके मनुष्योंको प्रीति उत्पन्न होती है। उनमें भाग्याधीन वा कर्मवशसे जिस पुरुषको जैसी अवस्थारूपवाली स्त्रीका हृदयमें प्रेम उत्पन्न होता है उसके लिये वही रूपवती और वही मनको प्रसन्न करनेवाली मनोरमा होती है। जो जिसके सत्त्वके अनुरूप सत्त्ववाली होती है और जो जिसके वश होती है वही स्त्री उसके अनुकूल प्यारे गुणोंके योगसे अपने प्यारे पुरुषमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली होती है ॥ ७-९ ॥

या पाशभूता सर्वेषामिन्द्रियाणां परैर्गुणैः ।
यया वियुक्तो निस्त्रीकमरतिर्मन्यते जगत् ॥ १० ॥
यस्या ऋते शरीरं नाधत्ते शून्यमिवेन्द्रियैः ।
शोकोद्वेगारातिभयैर्यां दृष्ट्वा नाभिभूयते ॥ ११ ॥
याति यां प्राप्य विस्रम्भं दृष्ट्वा हृष्यत्यतीव याम् ।
अपूर्वामिव यां याति नित्यं हर्षातिवेगतः ॥ १२ ॥
गत्वागत्वापि बहुशो यां तृप्तिं नैव गच्छति ।
सा स्त्री वृष्यतमा तस्य नानाभावा हि मानवाः ॥ १३ ॥

जो स्त्री सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने गुणरूपी फांसीसे आकर्षण करती है जिस स्त्रीके विना पुरुषका चित्त अस्थिर होजाता है। जिसके विना मनुष्य अपने शरीरको इन्द्रियोंसे शून्य मानकर शरीरकी इच्छा नहीं रखता, जिसके देखने मात्रसे मनुष्यके शोक, उद्वेग, अस्थिरता (अरति) भय यह सब दूर भागजाते हैं । जिसको देखतेही विश्वासको प्राप्त हो मनुष्य अपने संपूर्ण भावोंको प्रगट करने लगजाता है। जिसको देखकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त होता है । जिसको नित्य देखतेहुए भी अपूर्वके समान नित्य नया नया हर्षका वेग उत्पन्न होता है। जिस स्त्रीसे नित्य सहवास करते हुए भी मनुष्य तृप्तिको प्राप्त नहीं होता वह स्त्री अपने २ भावोंके समान पुरुषोंको अत्यंत वाजीकरण अर्थात् कामोत्पादक होती है क्योंकि संपूर्ण प्राणियोंकी प्रकृति एकसी नहीं होती ॥ १०–१३ ॥

सन्तानार्थ योग्य स्त्रीगमन।

अतुल्यगोत्रां वृष्यां च प्रहृष्टां निरुपद्रवाम् ।
शुद्धस्नातां व्रजेन्नारीमपत्यार्थी निरामयः ॥ १४ ॥

जो स्त्री अपने स्वभावके अनुरूप हो तथा अपने गोत्रकी न हो, जिसमें प्रीति हो, जो रोगरहित हो, प्रसन्नमन हो, उपद्रवरहित हो और ऋतुसे शुद्ध स्नान करचुकी हो, संतानकी इच्छावाला पुरुष ऐसी स्त्रीसे संसर्ग करे ॥ १४ ॥

संतानके विना पुरुषकी निंदा।

अच्छायश्चैकशाखश्च निष्फलश्च यथा द्रुमः ।
अनिष्टगन्धश्चैकश्च निरपत्यस्तथा नरः ॥ १५ ॥
चित्रदीपः सरः शुष्कमधातुर्धातुसन्निभः ।
निष्प्रजस्तृणपूलीति ज्ञातव्यः पुरुषाकृतिः ॥ १६ ॥

जैसे छायारहित एक शाखावाला निष्फल और अनिष्ट गंधवाला वृक्ष निन्दनीय होता है उसी प्रकार संतानके विना पुरुष भी निन्दनीय होता है। संतानके विना मनुष्य जैसा चित्रमें लिखा दीपक नाममात्रका ही होता है परन्तु प्रकाशयुक्त नहीं होता उसी प्रकार संतानहीन मनुष्य भी निरर्थक होता है। जैसे जलके विना सरोवर और विना धातुसे धातुके समान दीखनेवाला पदार्थ और घास या लकडीसे बना-हुआ पुरुषके आकारका पुतला केवल देखनेमात्रका ही होता है। उसी प्रकार संतानके विना पुरुष होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

अप्रतिष्ठश्च नग्नश्च शून्यश्चैकेन्द्रियश्च ना ।
मन्तव्यो निष्क्रियश्चैव यस्यापत्यं न विद्यते ॥ १७॥

जिस मनुष्यको सन्तान नहीं है वह प्रतिष्ठारहित नग्नके समान शून्य, एकेन्द्रिय और क्रियारहित होता है ॥ १७ ॥

सन्तानयुक्त पुरुषकी प्रशंसा ।

बहुमूर्त्तिर्बहुमुखो बहुव्यूहो बहुक्रियः ।
बहुचक्षुर्बहुज्ञानो बह्वात्मा च बहुप्रजः ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यकी बहुतसी सन्तान हैं उसको बहुतसी मूर्त्तियोंवाला, बहुतसे मुखवाला, बहुत व्यूह और बहुत क्रियावाला तथा बहुनेत्र, बहुज्ञान और बहुआत्मा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

मङ्गल्योऽयं प्रशस्तोऽयं धन्योऽयं वीर्य्यवानयम् ।
बहुशाखोऽयमिति च स्तूयते ना बहुप्रजः ॥ १९ ॥
प्रीतिर्बलं सुखं वृत्तिर्विस्तारो विभवः कुलम् ।
यशो लोकाः सुखोदर्कास्तुष्टिश्चापत्यसंश्रिता ॥ २० ॥

जिस मनुष्यकी बहुतसी सन्तान हैं वह संसारमें यह मंगलमय, प्रशंसाके योग्य, पवित्र, धन्य और वीर्यवान् तथा बहुतसी शाखाओंवाला है । इस प्रकार कहकर स्तुति कियाजाता है । संसारमें प्रीति, बल, सुख, वृत्ति, विस्तार, विभव, कुल, यश यह सब लोकसुखके समूह हैं । यह सब तथा तुष्टि सन्तानके ही आश्रित हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

तस्मादपत्यमन्विच्छन् गुणांश्चापत्यसंश्रितान् ।
वाजीकरणनित्यः स्यादिच्छेत्कामसुखानि च ॥ २१ ॥

इस लिये सन्तानकी इच्छावाला मनुष्य तथा सन्तानके गुणोंकी इच्छा एवं कामसुखकी इच्छा करताहुआ, नित्य वाजीकरण पदार्थोंका सेवन करे ॥ २१ ॥

उपभोगसुखान् सिद्धान् वीर्य्यापत्यविवर्द्धनान् ।
वाजीकरणसंयोगान् प्रवक्ष्याम्यत उत्तरम् ॥ २२ ॥

अब उपभोगके सुखको करनेवाले तथा वीर्य और सन्तानके बढानेवाले सिद्ध वाजीकरण प्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥

वृष्यगुटिका ।

शरमूलेक्षुमूलानि काण्डेक्षुं सेक्षुवालिकम् ।
शतावरीं पयस्यां च विदारीं कण्टकारिकाम् ॥ २३ ॥
जीवन्तीं जीवकं मेदां वीराञ्चर्षभकं बलाम् ।
ऋद्धिं गोक्षुरकं रास्नामात्मगुप्तां पुनर्नवाम् ॥ २४ ॥

पृथक् त्रिपलिकान् कृत्वा माषाणामाढकं नवम् ।
विपाचयेज्जलद्रोणे चतुर्भागञ्च शोषयेत् ॥ २५ ॥
तत्र पेष्याणि मधुकं द्राक्षां फल्गूनि पिप्पलीम् ।
आत्मगुप्तां मधूकानि खर्जूराणि शतावरीम् ॥ २६ ॥
विदार्य्यामलकेक्षूणां रसस्य च पृथक्पृथक् ।
सर्पिषश्चाढकं दद्यात् क्षीरद्रोणञ्च तद्भिषक् ॥ २७ ॥
साधयेद्घृतशेषञ्च सपूतं योजयेत्पुनः ।
शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याश्चूर्णैः प्रस्थोन्मितैर्भिषक् ॥ २८ ॥
पलैश्चतुर्भिर्मागध्याः पलेन मरिचस्य च ।
त्वगेलाकेशराणाञ्च चूर्णैरर्द्धपलोन्मितैः ॥ २९ ॥
मधुनः कुडवाभ्याञ्च द्वाभ्यां तत्कारयेद्भिषक् ।
पलिका गुटिकाः कृत्वा ता यथाग्नि प्रयोजयेत् ॥ ३० ॥
एष वृष्यः परो योगो बृंहणो बलवर्द्धनः ।
अनेनाश्व इवोदीर्णो लिङ्गमर्पयते स्त्रियाम् ॥ ३१ ॥

सरकंडेकी जड, ईखकी जड, काण्डेक्षु,इक्षुबालिका, शतावरी, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, कटेली, जीवन्ती, जीवक, मेदा, काकोली, ऋषभक, बला (खरेटी), ऋद्धि, गोखरू, रासना, कौंचकी बीजोंकी गिरू, पुनर्नवा इन प्रत्येकको तीनतीन पल लेवे, उडद एक आढक[1] (४ सेर) इन सबको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें डाल पकावे । जब चौथा हिस्सा बाकी रहे तब उतार लेवे । फिर इसमें मुलहठी, मुनक्का, गूलर, पीपल, कौंचके बीजोंकी गिरू, महुए, छोहाडे और शतावर इन सबका कल्क बना उसी क्राथमें मिला देवे । फिर विदारीकंदका रस, आमलोंका रस, ईखका रस यह सब एक एक आढक मिलावे (और घृत १ आढक मिलावे) तथा दूध एक द्रोण मिलाकर सबको घृतपाक विधिसे पकावे । जब घृतमात्र शेष रहे तो घृतको छानकर किसी उत्तम पात्रमें डाल लेवे । और उस घृतमें मिसरी और वंशलोचन एक प्रस्थ[2] मिलावे तथा पीपल ४ पल, मिर्च १ पल, दालचीनी, इलायची, नागकेशर यह प्रत्येक दो तोला, शहद दो कुडव[3] (आधा सेर पक्का) इन सबको उस घृतमें मिलाकर चार चार

---

१ चार सेरका एक आढक होताहै। २ एक सेरका एक प्रस्थ होताहै । ३ पावभरका एक कुडव होता है ।

तोलेकी गोलियें बना लेवे। फिर इनको अग्निबल विचारकर सेवन करे यह गुटिका (लड्डू) परम वीर्यवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाली और बलके बढानेवाली है। इसके प्रयोगसे मनुष्य घोंडेके समान मैथुन कर सकता है ॥ २३-३१ ॥

वाजीकरण घृत।

माषाणामात्मगुप्ताया बीजानामाढकं नवम् ।
जीवकर्षभकौ वीरां मेदामृद्धिं शतावरीम् ॥ ३२ ॥
मधूकश्चाश्वगन्धाञ्च साधयेत्कुडवोन्मिताम् ।
रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं गव्यं दशगुणं पयः ॥ ३३ ॥
विदारीणां रसप्रस्थं प्रस्थमिक्षुरसस्य च ।
दत्त्वा मृद्वग्निना साध्यं सिद्धं सर्पिर्निधापयेत् ॥ ३४ ॥
शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याः क्षौद्रस्य च पृथक्पृथक् ।
भागांश्चतुष्पलांस्तत्र पिप्पल्याश्चावपेत्पलम् ॥ ३५ ॥
पलं पूर्वमतो लीढ्वा ततोऽन्नमुपयोजयेत् ।
य इच्छेदक्षयं शुक्रं शेफसश्चोत्तमं बलम् ॥ ३६ ॥

नये उडद और कौंचके बीज यह दोनों एक एक आढक लेवे। जीवक, ऋषभक, काकोली, मेदा, ऋद्धि, शतावरी, मुलहठी और असगंध यह प्रत्येक एक एक कुडव इन सब औषधियोंको लेकर दशगुने जलमें पकावे । जब नौभाग जलकर एक भाग बाकी रहे तब उस रसको छान लेवे । फिर उस रसमें एक प्रस्थ घी, दश प्रस्थ दूध, एक प्रस्थ विदारीकंदका रस, एक प्रस्थ इक्षुरस, इन सबको मिलाकर मंदमंद आंचसे पकावे। जब घृतमात्र शेष रहे उसको उतार लेवे। उस घृतमें चार पल वंशलोचन, चार पल शहद, एक पल पीपलका चूर्ण यह सब मिला देवें। इसमेंसे एक पल चाटलियाकरे फिर घृत दूधयुक्त पथ्य भोजन किया करे। इसके सेवनसे वीर्यकी वृद्धि होती है तथा वीर्यक्षय नहीं होता एवं इन्द्रिय अत्यंत बलवान् होती है ३२-३६॥

वाजीकरण पिण्डरस ।

शर्करामाषविदलास्तुगाक्षीरी पयो घृतम् ।
गोधूमचूर्णषष्ठीनि सर्पिष्युत्कारिकां पचेत् ॥ ३७ ॥
तां नातिपक्कां मृदितां कौक्कुटे मधुरे रसे ।
सुगन्धे प्रक्षिपेदुष्णे यथा सान्द्रीभवेद्रसः ॥ ३८ ॥

एष पिण्डरसो वृष्यः पौष्टिको बलवर्द्धनः ।
अनेनाश्व इवोदीर्णो बली लिङ्गं समर्पयेत् ।
शिखितित्तिरिहंसानामेवं पिण्डरसो मतः ॥ ३९ ॥

उडदकी बारीक पीसी पिट्ठी अथवा उडदके दालका चूर्ण और गेहूंका मैदा इनमें मिसरी और दूध मिलाकर पूडियें बनालेवे और उन पूडियोंको घृतमें पकाकर कुक्कुट-(मुर्गा) के त्रिसुगंधयुक्त गर्म २ मांसरसमें भिगो देवे । जब वह उस गर्म मांसर-समें मिलकर गाढा होजाय तो इसको पिण्डरस कहते हैं । यह पिण्डरस वीर्यवर्द्धक पुष्टिकारक और बलको बढानेवाला है । इसके सेवनसे घोडेके समान लिंगेन्द्रिय तीक्ष्ण और बलवान् होती है । इसीप्रकार मोर, तीतर और हंसके मांसरसमें भी यह पिण्डरस बनता है ॥ ३७–३९ ॥

वृष्य रस ।

घृतं माषान् सबस्ताण्डान् साधयेन्माहिषे रसे ।
भर्जयेत्तं रसं पूतं फलाम्लं नवसर्पिषि ॥ ४० ॥
ईषत्सलवणं युक्तं धान्यजीरकनागरैः ।
एष वृष्यश्च बल्यश्च बृंहणश्च रसोत्तमः ॥ ४१ ॥

घृत, उडद, बकरेके अण्डकोश इनको भैंसेके मांसरसमें पकाकर छान लेवे । फिर उसको नवीन घृतमें सिद्धकरके अनार और आँवलेका रस थोडा नमक, धानिया, जीरा और सोंठ मिलाकर उसका सेवन करे । यह रस वीर्यवर्द्धक, बलकारक, पुष्टिजनक है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अन्य वृष्य रस ।

चटकांस्तित्तिरिरसे तित्तिरीन् कौक्कुटे रसे ।
कुक्कुटान् बार्हिणरसे हांसे बर्हिणमेव च ॥ ४२ ॥
नवसर्पिषि सन्तप्तान् फलाम्लान् कारयेद्रसान् ।
मधुरान् वा यथासात्म्यं गन्धाढयान् बलवर्द्धनान् ॥ ४३ ॥

चिडेका मांस तीतरके मांसरसमें, तीतरका मांस मुर्गेके मांसरसमें पकावे । एवं मुर्गेका मांस मोरके मांसरसमें, मोरका मांस हंसके मांसरसमें पकाकर नवीन घृतमें सिद्धकरे।और उपरोक्त विधिसे खट्टे फलोंका रस अथवा मीठा रस वा जैसे सात्म्य हो वैसे गंध द्रव्य आदि मिलाकर सेवन करनेसे बल वीर्यकी वृद्धि होती है ॥४२॥४३॥

अन्य वृष्य रस।

तृप्तिं चटकमांसानां गत्वा योऽनुपिबेत्पयः।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं स्यान्न शुक्रक्षयो निशि॥ ४४॥

जो मनुष्य तृप्तिपूर्वक चिडेका मांस खाकर ऊपरसे दूध पीता है उसकी लिंगेन्द्रियमें कभी शिथिलता उत्पन्न नहीं होती और रात्रिमें वीर्यक्षय नहीं होता॥ ४४॥

वृष्य माष।

माषयूषेण यो भुक्त्वा घृताढ्यं षष्टिकौदनम्।
पयः पिबति रात्रिं स कृत्स्नां जागर्ति वेगवान्॥ ४५॥

जो मनुष्य उडदोंके दूधमें घृत मिलाकर उसके साथ साठीचावलोंके भातका भोजन करता है और ऊपरसे दूध पीता है वह कामके वेगसे व्याकुलहुआ सो नहीं सकता॥ ४५॥

कुक्कुटमांसरस।

न ना स्वपिति रात्रीषु नित्यस्तब्धेन च शेफसा।
तृप्तः कुक्कुटमांसानां भृष्टानां नक्ररेतसि॥ ४६॥

मगरके शुक्रमें मुर्गेके मांसको भूनकर तृप्तिपूर्वक भोजन करनेसे मनुष्यकी इन्द्रिय क्षुभित रहनेसे वह रात्रिभर सो नहीं सकता॥ ४६॥

अंडयोग।

निःस्राव्य मत्स्याण्डरसं भृष्टं सर्पिषि भक्षयेत्।
हंसबर्हिणदक्षाणि चैवमण्डानि भक्षयेत्॥ ४७॥

मछलीके अण्डोंके रसको घृतमें भूनकर अथवा हंस मोर और मुर्गीके अण्डोंको घीमें भूनकर खाना वीर्यको उत्पन्न करनेवाला होता है॥ ४७॥

वृष्यसेवनक्रम।

स्रोतःसु शुद्धेष्वमले शरीरे वृष्यं यदा नामितमत्ति काले।
वृषायते तेन परं मनुष्यस्तद्बृंहणञ्चैव बलप्रदञ्च॥ ४८॥
तस्मात्पुरा शोधनमेव कार्य्यं बलानुरूपं न हि सिद्धियोगाः।
सिध्यन्ति देहे मलिने प्रयुक्ताः क्लिष्टे यथा वाससि रागयोगाः॥४९॥

शरीर और शरीरके संपूर्ण छिद्र शुद्ध होनेपर ही वृष्यपदार्थोंका सेवन करना चाहिये। इस प्रकार सेवन करनेसे मनुष्य बैल समान वीर्यवान् होता है और इसी-

---

१ यद्यपि शुक्र वीर्यको ही कहते हैं; परंतु कोई इसका प्रयोग अंडा मानते हैं।

प्रकार सेवनसे संपूर्ण वृष्य योग मनुष्योंको पुष्टि और बलकारक होते हैं। इसलिये वमन-विरेचनद्वारा पहिले शरीरको शोधनकर फिर अपने बलके अनुरूप सिद्ध वृष्य-योगोंको सेवन करना चाहिये। यदि विना शोधनकिये मलिन देहवाला मनुष्य वृष्ययोगोंका सेवन करे तो वह जैसे मैले कपडेमें अच्छा रंग नहीं चढता उसीप्रकार वृष्य-योग भी सिद्धिदायक नहीं होते ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

पादका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ—वाजीकरणसामर्थ्यं क्षेत्रं स्त्री यस्य चैव या।
ये दोषा निरपत्यानां गुणाः पुत्रवताञ्च ये ॥ ५० ॥
उक्तास्ते शरमूलीये पादे पुष्टिबलप्रदाः।
दश पञ्च च संयोगा वीर्य्यापत्यविवर्द्धनाः ॥ ५१ ॥

इति चरकसंहितायां शरमूलीये वाजीकरणपादः प्रथमः ॥ १ ॥

अब पादके उपसंहारमें दो श्लोक कहते हैं कि, इस शरमूलीय वाजीकरणपादमें स्त्रीकी योग्यता और वाजीकरणका क्षेत्र, संतानका कारण कहागया है। एवं संतानहीन मनुष्यके दोष संतानवाले मनुष्योंके गुण और पंद्रह प्रकारके वीर्यवर्द्धक संतानदायक, पुष्टिकारक और बलके देनेवाले योगोंका कथन कियागया है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इति वाजीकरणाध्याये शरमूलीयवाजीकरणपादो नाम प्रथमपादः ॥ १ ॥

अथात आसिक्तक्षीरीयं द्वितीयं वाजीकरणपादं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥ ५२ ॥

अब हम आसिक्तक्षीरीय नामक दूसरे वाजीकरणपादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ५२ ॥

अपत्यकारी गुटिका।

आसिक्तक्षीरमापूर्णमशुष्कं शुद्धषष्टिकम्।
उलूखले समापोथ्य पीडयेत्क्षीरमर्दितम् ॥ ५३ ॥
क्षुण्णं विमर्दितं क्षीरे पीडयेत्सुसमाहितः।
गृहीत्वान्तरसंपूतं गव्येन पयसा सह ॥ ५४ ॥
बीजानामात्मगुप्ताया धान्यमाषरसेन च।
बलायाः शूर्पपर्ण्योश्च जीवन्त्या जीवकस्य च।
ऋद्धार्षभककाकोलीश्वदंष्ट्रा मधुकस्य च ॥ ५५ ॥

शतावर्य्या विदार्य्याश्च द्राक्षाखर्ज्जूरयोरपि ।
संयुक्तं मात्रया वैद्यः साधयेत्तत्र चावपेत् ॥ ५६ ॥
तुगाक्षीर्य्याः समाषाणां शालीनां षष्टिकस्य च ।
गोधूमानाञ्च चूर्णानि यः स सान्द्रीभवेद्रसः ॥ ५७ ॥
सान्द्रीभूतञ्च तं कुर्य्यात्प्रभूतमधुशर्करम् ।
गुटिका बदरैस्तुल्यास्ताश्च सर्पिषि भर्जयेत् ॥ ५८॥
ता यथाग्नि प्रयुञ्जानः क्षीरमांसरसाशनः ।
पश्यत्यपत्यं विपुलं वृद्धोऽप्यात्मजमक्षयम् ॥ ५९ ॥

सुन्दर, शुद्ध, साठीके चावलोंको दूधमें भिगोकर गीले गीलोंको ही दूध डालकर किसी बडे कूंडेमें घोटडाले । जब वह खूब बारीक होजायँ तो उनको छानलेवे । उस छनेहुए गाढे रसमें और गौका दूध मिलादेवे । फिर उसमें कौंचके बीजोंकी गिरू, धनिया और उडद इनका क्वाथ तथा बला (खरेटी), मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, जीवक, ऋद्धि, ऋषभक, काकोली, गोखरू, मुलहठी, शतावर, विदारीकंद, मुनक्का, पिण्डखजूर इन सबका अलग २ क्वाथ अथवा रस लेकर उस चावलोंके रसवाले दूधमें मिलाकर पकावे । जब तीन भाग जलकर एक भाग शेष रहे तो उसको उतार लेवे । उसमें वंशलोचन और घीमें भुनाहुआ उडदोंका शालिचावलोंका और साठीचावलोंका तथा गेहूंका आटा मिलावे । परन्तु इस प्रमाणसे मिलाना चाहिये जिसमें वह खूब गाढा होजाय । फिर इन सबमें शहद और मिसरी मिला इसकी बेरके समान गोली बना लेवे । उनको घीमें पकालेवे । फिर इनको जठराग्निका बलाबल विचारकर खावे । ऊपरसे दूध अथवा मांसरस पीया करे । इसका सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य भी बहुतसी सन्तान उत्पन्न करे और अपने संतानके अक्षय सुखको देखे ॥ ५३–५९ ॥

वृष्यपूपालिका ।

चटकानां सहंसानां दक्षाणां शिखिनां तथा ।
शिशुमारस्य नक्रस्य भिषक् शुक्राणि संहरेत् ॥ ६० ॥
गव्यं सर्पिर्वराहस्य कुलिङ्गस्य वसामपि ।
षष्टिकानाञ्च चूर्णानि चूर्णं गोधूममेव च ॥ ६१ ॥
एभिः पूपलिकाः कार्य्याः शष्कुल्यो वर्त्तिकास्तथा ।
पूपाधानाश्च विविधा भक्ष्याश्चान्ये पृथग्विधाः ॥ ६२ ॥

एषां प्रयोगाद्भक्ष्याणां स्तब्धेनापूर्णरेतसा।
शेफसा वाजिवद्याति यावदिच्छन् स्त्रियो नरः ॥ ६३ ॥

चिडा, हंस, मुर्गा, मोर, शिंशुमार (सौंस), नक्र (मगरमच्छ) इन सबके शुक्रको इकट्ठा करावे। फिर इन सब वीर्योंको घी और सूअर तथा चिडेकी चर्बीमें मिलाकर उनमें साठीके चावलोंका आटा और गेहूंका आटा मिलाकर पूडियें बनावे। उन पूडियोंको गौके घृत अथवा सूअरकी चर्बीमें पकालेवे। इस प्रकार पूडियों अथवा सोहालियें या खुरमें अथवा अनेक प्रकारके पूडे आदि बनाकर सेवन करनेसे लिंगेन्द्रिय पूर्णवीर्य और उद्दण्ड रहे। और पुरुष घोडेके समान स्त्रियोंमें गमन कर सके ॥ ६०–६३ ॥

अपत्यकारक पेया।

आत्मगुप्ताफलं माषः खर्जूराणि शतावरीम्।
शृङ्गाटकानि मृद्वीकां साधयेत्प्रस्थसम्मिताम् ॥ ६४ ॥
क्षीरप्रस्थं जलप्रस्थं एतत्प्रस्थावशेषितम्।
शुद्धेन वाससा पूतं योजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः ॥ ६५ ॥
शर्करायास्तुगाक्षीर्य्या सर्पिषोऽभिनवस्य च।
तत्पाययेत सक्षौद्रं षष्टिकान्नञ्च भोजयेत् ॥ ६६ ॥
जरापरीतोऽप्यबलो योगेनानेन विन्दति।
नरोऽपत्यं सुविपुलं युवेव च स हृष्यति ॥ ६७ ॥

कौंचके बीज, उडद, पिण्डखजूर, शतावर, सिंघाडा, मुनक्का यह सब दो दो पल लेवे। दूध एक प्रस्थ, पानी एक प्रस्थ मिलाकर उसमें फिर उपरोक्त औषधियोंको मिलाकर पकावे जब पानी जलकर दूध मात्र शेष रहजाय तब इसको शुद्ध वस्त्रद्वारा छान लेवे। फिर इसमें छः पल मिसरी, वंशलोचन और नवीन घृत मिलावे। फिर इसमें शहद मिलाकर पीजावे। और साठीचावलोंके भातका भोजन करे। इस योगके सेवन करनेसे वृद्ध और निर्बल मनुष्य भी बहुतसी संतानोंको पैदा कर सकता है और हृष्ट पुष्टांग होजाता है ॥ ६४–६७ ॥

---

१ शुक्राणीति यद्यप्युक्तम् तथापि चटकाशुक्रस्य ग्रहणाशक्यत्वात् समानगुणानि तदण्डान्यपीह गृह्यंते इति चक्रपाणिः। अर्थात् कोई कहते हैं कि शुक्रका अर्थ अण्डा है अर्थात् शुक्रकी जगह अंडा लना चाहिये।

वृष्यक्षीर।

खर्जूरीमस्तकं माषान् पयस्यां सशतावरीम्।
खर्जूराणि मधूकानि मृद्वीकामजडाफलम् ॥ ६८ ॥
पलोन्मितानि मतिमान् साधयेत् सलिलाढके।
तेन पादावशेषेण क्षीरप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६९ ॥
क्षीरशेषेण तेनाद्याद् घृताढ्यं षष्टिकौदनम्।
सशर्करेण संयोग एष वृष्यः परं स्मृतः ॥ ७० ॥

खजूरकी गोभ[1] (नर्मकोपल), उडद, क्षीरकाकोली, शतावरी, छोहाडा, महुए, मुनक्का और कौंचके बीज प्रत्येक एकएक पल लेकर बुद्धिमान् मनुष्य एक आढक जलमें डालकर पकावे जब तीन भाग पानी जलजावे और एक भाग शेष रहे उसको छान लेवे। इस क्काथमें एक प्रस्थ दूध मिलाकर फिर पकावे। जब केवल दूधमात्र शेष रहे उस दूधमें घृत और मिसरी मिलाकर साठीचावलोंके भातके साथ खावे। यह प्रयोग परम वृष्य अर्थात् वीर्यवर्द्धक कहा है ॥ ६८-७० ॥

वृष्यघृत।

जीवकर्षभकौ मेदां जीवन्ती श्रावणीद्वयम्।
खर्जूरं मधुकं द्राक्षां पिप्पलीं विश्वभेषजम् ॥ ७१ ॥
शृङ्गाटकीं विदारीञ्च नवं सर्पिः पयो जलम्।
सिद्धं घृतावशेषं तच्छर्कराक्षौद्रपादिकम् ॥ ७२ ॥
षष्टिकान्नेन संयुक्तमुपयोज्यं यथाबलम्।
वृष्यं बल्यञ्च वर्ण्यञ्च कण्ठ्यं बृंहणमुत्तमम् ॥ ७३ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, दोनों श्रावणी (छोटी और बडी गोरखमुण्डी)-छुहाडा, मुलहठी, मुनक्का, पीपल, सोंठ, सिंघाडा, विदारीकन्द यह प्रत्येक चार चार तोला और घृत दो सेर, दूध ८ सेर, पानी ८ सेर इन सबको मिलाकर घृतपाकविधिसे घृतको सिद्ध करलेवे फिर उस सिद्धघृतमें घृतसे चौथा भाग शहद और मिसरी मिलावे। इसको साठीचावलोंके साथ अग्निबल विचार सेवन करे। यह योग वीर्य-वर्द्धक, बलकारक, वर्ण और कण्ठको उत्तम बनानेवाला, बृंहण है ॥ ७१-७३ ॥

---

१ कोई गोभका अर्थ भीतरकी मज्जा करते हैं, और कोई मूलको कहते हैं।

वाजीकरण रसाला ।

दध्नः सरं शरच्चन्द्रसन्निभं दोषवर्जितम् ।
शर्करा क्षौद्रमरिचैस्तुगाक्षीर्य्याश्च बुद्धिमान् ॥ ७४ ॥
युक्त्या युक्तं सुसूक्ष्मैलं नवे कुम्भे शुचौ पटे ।
मार्जितं प्रक्षिपेच्छीते घृताढ्ये षष्टिकौदने ॥ ७५ ॥
पिबेन्मात्रां रसालायास्तं भुक्त्वा षष्टिकौदनम् ।
वर्णस्वरबलोपेतः पुमांस्तेन वृषायते ॥ ७६ ॥

शरदऋतुके चन्द्रमाके समान निर्दोष और स्वच्छ मलाईयुक्त दही लेकर उसमें मिसरी, शहद, मिर्च, वंशलोचन, छोटी इलायची इनको युक्तिपूर्वक मिलाकर और शुद्ध स्वच्छ बारीक वस्त्रमें छानकर नये मट्टीके पात्रमें डालकर रख देवे । फिर इसको घृतयुक्त साठीके भातके साथ सेवन करे । और भोजन करनेके अनन्तर भी इस रसालाको उचितमात्रासे पीजावे । इसके सेवनसे मनुष्य वर्ण, स्वर, बल और वीर्ययुक्त होजाता है ॥ ७४-७६ ॥

वृष्यदुग्धौदन ।

चन्द्रांशुकल्पं पयसा घृताढ्यं षष्टिकौदनम् ।
शर्करामधुसंयुक्तं प्रयुञ्जानो वृषायते ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कढाहुआ दूध, घृत मिश्री और साठीके भातमें मिलाकर खाताहै वह मनुष्य सांडके समान वीर्यसम्पन्न होजाता है ॥ ७७ ॥

राक्षसयोग ।

तप्ते सर्पिषि नक्राण्डं ताम्रचूडाण्डमिश्रितम् ।
युक्तं षष्टिकचूर्णेन सर्पिषाभिनवेन च ॥ ७८ ॥
पक्त्वा पूपलिकाः खादेद्वारुणीमण्डपो नरः ।
य इच्छेदश्ववद्गन्तुं प्रसेक्तुं गजवच्च यः ॥ ७९ ॥

जिस मनुष्यको अश्वके समान स्त्रीगमन करनेकी शक्ति बढानेकी इच्छा हो और हाथीके समान वीर्यप्रवाह प्रगट करना चाहता हो वह मगरके अण्डे और मुरगेके अण्डे और साठीचावलोंके आटेको घृत और दूधमें उसनकर पूडियें बना उनको घृतमें पकालेवे।फिर इनको खाकर ऊपरसे वारुणी मद्यके मण्डको पीवे ॥७८-७९॥

पादका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र—आसिक्तक्षीरिके पादे ये योगाः परिकीर्त्तिताः ।

अष्टावपत्यकामैस्ते प्रयोज्याः पौरुषार्थिभिः ॥ ८० ॥

यहांपर पादके उपसंहारमें तीन श्लोक हैं। कि इस आसिक्त क्षीरिक वाजीकरण-पादमें जो आठ प्रकारके योग कहेहैं। संतानकी इच्छा करनेवाले पुरुषार्थी मनुष्योंको इन सबका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८० ॥

एतैः प्रयोगैर्विविधैर्वपुष्मान्स्नेहोपपन्नो बलवर्णयुक्तः ।
हर्षान्वितो वाजिवदष्टवर्षो भवेत्समर्थश्च वराङ्गनासु ॥ ८१ ॥

इन प्रयोगोंके सेवन करनेसे मनुष्य सुन्दर, पुष्ट देहवाला, स्निग्धवर्णवाला और बलयुक्त होजाता है तथा हर्षयुक्त घोडेके समान आठवर्षका भी योग्य स्त्रियोंमें मैथुन करनेकी सामर्थ्यवाला रहता है ॥ ८१ ॥

यद्यच्च किञ्चिन्मनसः प्रियं स्याद्रम्या वनान्ताः पुलिनानि शैलाः ।
इष्टाः स्त्रियो भूषणगन्धमाल्यं प्रिया वयस्याश्च तदत्र योगम् ॥ ८२ ॥

इति च० सं० आसिक्तक्षीरिके वाजीकरणपादो द्वितीयः ॥ २ ॥

इनके सिवाय जो मनकी प्यारी लगनेवाली अन्य वस्तुऐं हैं तथा सुन्दर मनोहर वन, सजल नदियोंके किनारे, सजल और सुगंधित लता, वृक्षजालयुक्त पर्वत और बगीचे, सुन्दर स्त्रियें, आभूषण, सुगंधित फलमाला अपनी अवस्थावाली प्यारी मण्डली यह सब वाजीकरणके अर्थात् कामदेवके उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ८२ ॥

इति च० सं० चि० स्थाने आसिक्तक्षीरीये द्वितीयो वाजीकरणपादः ॥ २ ॥

अथातो माषपर्णतृतीयं वाजीकरणपादं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥ ८३ ॥

अब हम माषपर्ण नामक तीसरे वाजीकरण पादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ८३ ॥

वीर्यवर्द्धक दूध ।

माषपर्णभृतां धेनुं गृष्टिं पुष्टां चतुःस्तनीम् ।
समानवर्णवत्साञ्च जीववत्सां च बुद्धिमान् ॥ ८४ ॥
रोहिणीमथवा कृष्णामूर्द्धश्रृङ्गीमदारुणाम् ।
इक्ष्वादामर्जुनादां वा सान्द्रक्षीराञ्च धारयेत् ॥ ८५ ॥

---

१ वेश्यासु इत्यर्थः कचित् दृश्यते ।

केवलन्तु पयस्तस्याः शृतं वा शृतमेव वा।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं तद्वृष्यमुत्तमम् ॥ ८६ ॥

जो गौ उडदके पत्ते चरती हो, जो खूब मोटी ताजी बडे २ चार थनोंवाली हो जो गौ और उसका बछडा एकही रंगके लाल अथवा काले हों और जिस गौके सब बछडे जीते हों, जो गौ ईख और अर्जुन वृक्षके पत्ते चरती हो, एवं जिसके सुन्दर सुडौल सींग हों, जो मारनेवाली न हो तथा दूध गाढा हो तो ऐसी गौका दूध कच्चा या गर्मकरके मिश्री, घृत और शहद मिलाकर पीनेसे अत्यन्त वृष्य होताहै। अर्थात् यह दूध बल वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि करनेवाला होता है ॥ ८४-८६ ॥

वृष्यलप्सी।

शुक्रलैर्जीवनीयैश्च बृंहणैर्बलवर्द्धनैः।
क्षीरसञ्जननैश्चैव पयः सिद्धं पृथक् पृथक् ॥ ८७ ॥
युक्तं गोधूमचूर्णेन सघृतक्षौद्रशर्करम्।
पर्य्यायेण प्रयोक्तव्यमिच्छता शुक्रमक्षयम् ॥ ८८ ॥

शुक्रवर्द्धकगण, जीवनीयगण, बृंहणीयगण, बल्यगण तथा स्तन्यवर्द्धकगण इन सब गणोंकी औषधियोंसे अलग २ सिद्ध किया दूध और घृतमें भूना गेहूंका चूर्ण इनमें घृत शहद और मिसरी मिलाकर अक्षयवीर्यकी इच्छा करेवाला मनुष्य सेवन करे ॥ ८७॥ ८८ ॥

वृष्यक्षीर।

मेदां पयस्यां जीवन्तीं विदारीं कण्टकारिकाम्।
श्वदंष्ट्रां क्षीरिकां माषान् गोधूमाञ्छालिषष्टिकान् ॥ ८९ ॥
पयस्यर्द्धोदके पक्त्वा कार्षिकानाढकोन्मिते।
विवर्जयेत्पयःशेषं तत्पूतं क्षौद्रसर्पिषा ॥ ९० ॥
युक्तं सशर्करं पीत्वा वृद्धः साप्ततिकोऽपि वा।
विपुलं लभतेऽपत्यं युवेव च स हृष्यति ॥ ९१ ॥

मेदा, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, कटेली, गोखरू, वंशलोचन, उडद, गेहूँ, शाली और षष्टी चावल, इनको एक एक तोला ले चार सेर दूध और चार सेर पानी मिलाकर सबको पकनेको रख देवे। जब सम्पूर्ण पानी जलकर दूधमात्र शेषरहे तो उसको

१ यह सब प्रकारके औषधियोंके गण सूत्रस्थानमें कहआये हैं।

छानकर उसमें, मिसरी, शहद घृत मिलाकर पीया करे। इस दूधको ७० वर्षका बुड्ढा भी पीवे तो बहुतसी सन्तानको उत्पन्न करे। और युवापुरुषके समान हर्षके प्राप्त हो॥ ८९-९१॥

सिद्धदूध।

मण्डलैर्जातरूपस्य तस्या एव पयः शृतम्।

अपत्यजननं सिद्धं सघृतक्षौद्रशर्करम्॥ ९२॥

शुद्ध सुवर्णके वर्क मिलाकर उपरोक्त विधिसे सिद्ध किया दूध घृत मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे अवश्य सन्तान होती है यह सिद्धयोग है॥ ९२॥

पिप्पलीयुक्तधारोष्ण दूध।

त्रिंशत्सुपिष्टाः पिप्पल्यः प्रकुञ्चे तैलसर्पिषोः।

भृष्ट्वा सशर्कराः क्षौद्राः क्षीरधारावदोहिताः॥ ९३॥

पीत्वा यथाबलञ्चोर्ध्वं षष्टिके क्षीरसर्पिषा।

भुक्त्वा न रात्रिमस्तब्धं लिङ्गं पश्यति ना क्षरम्॥ ९४॥

तीस पीपलोंको अच्छी तरह बारीक पीसकर एक पल तेल और घृतमें भूनकर उसमें मिसरी और शहत मिला लेवे। और एक बहुत बारीक स्वच्छ मलमलके कपडेको जिस पात्रमें दूध दुहाजाय उसके मुखपर बांधकर इस कपडेपर वह शहत घृतयुक्त पीपलका चूर्ण रखकर ऊपरसे दूधकी धारें निकाले। इस प्रकार दुहते २ इस पीपल, शहत, मिश्रीका सब सार दूधमें आजाता है वह दूध विना जमीनपर रक्खे ताजा धारोष्ण ही नित्य पीलिया करे। भूख लगनेपर साठीके चावलोंका भात घृत और दूध मिला खाया करे। इस प्रकार इस धारोष्ण दूधके सेवनसे संपूर्ण रात्रि लिंगेन्द्रिय शिथिल नहीं होती। और वीर्य शीघ्र स्वलित नहीं होता॥ ९३॥९४॥

वृष्यपायस (खीर)।

श्वदंष्ट्राया विदार्य्याश्च रसे क्षीरचतुर्गुणे।

घृताढ्यः साधितो वृष्यो माषषाष्टिकपायसः॥ ९५॥

गोखरू और विदारीकन्दका स्वरस मिलाकर सिद्धकिये चौगुने दूधमें उडद और साठीके चावलोंकी घृत मिलाकर खीर पकावे! इस खीरके खानेसे अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि होती है॥ ९५॥

वाजीकरणपूपलिका।

फलानां जीवनीयानां स्निग्धानां रुचिकारिणाम्।

कुडवश्चूर्णितानां स्यात्स्वयंगुप्ताफलस्य च॥ ९६॥

कुडवश्चैव माषाणां द्वौ द्वौ च तिलमुद्गयोः ।
गोधूमशालिचूर्णानां कुडवः कुडवो भवेत् ॥ ९७ ॥
सर्पिषः कुडवश्चैकस्तत्सर्वं क्षीरसंयुतम् ।
पक्त्वा पूपलिकाः खादेद्बह्वयः स्युर्यदि योषितः ॥ ९८ ॥

बादाम आदि जीवनवर्द्धक, रुचिकारक और स्निग्ध फलोंका एक कुडव चूर्ण, कौंचके बीजोंका चूर्ण एक कुडव, उडदोंका चूर्ण दो कुडव, तिलोंका चूर्ण दो कुडव, मूंगका चूर्ण एक कुडव, गेहूं और शाली चावलोंका चूर्ण एक एक कुडव, इन सबको एक कुडव घीमें मसलकर दूधमें मिलाकर पूडियें बनावे । उन पूडियोंको घृतमें पकाकर जिसके घरमें बहुतसी स्त्रियें हों वह मनुष्य खावे ॥ ९६-९८ ॥

वृष्यघृत।

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत् ।
शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद्वृष्यमुत्तमम् ॥ ९९ ॥

शतावरके कल्कको मिलाकर दशगुने दूधद्वारा घृतको सिद्ध करे । उस घृतमें मिसरी, पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर चाटनेसे अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होती है। यह परम उत्तम योग है ॥ ९९ ॥

मधूकयोग।

कर्षं मधूकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमांशिकम् ।
प्रयुंक्ते यः पयश्चानु नित्यवेगः स ना भवेत् ॥ १०० ॥

एक कर्ष मुलहठीके चूर्णको घृत और शहद मिलाकर चाटे ऊपरसे मिसरी मिला दूध पीवे तो वह मनुष्य नित्य कामके वेगसे युक्त रहता है ॥ १०० ॥

नित्य दूध घृतके सेवनका गुण।

घृतक्षीराशनो निर्भीर्निर्व्याधिर्नित्यगो युवा ।
संकल्पप्रवणो नित्यं नरः स्त्रीषु वृषायते ॥ १०१ ॥

जो मनुष्य नित्य भय और व्याधिसे रहितहुए घृत और दूधका सेवन करते हैं वह युवा पुरुष सदा कामान्ध हुए स्त्रियोंमें वृषके समान मैथुन करते हैं ॥ १०१ ॥

मित्रमण्डलीका निवास।

कृतैककृत्याः सिद्धार्था ये चान्योन्यानुवर्त्तिनः ।
कलासु बाह्या ये तुल्याः सत्त्वेन वयसा च ये ॥ १०२ ॥
कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशीलशौचसमन्विताः ।

ये कामनित्या ये हृष्टा ये विशोका गतव्यथाः ॥ १०३ ॥
ये तुल्यशीला ये भुक्त्वा ये प्रिया ये प्रियंवदाः।
तैर्नरः सह विश्रब्धः सुवयस्यैर्वृषायते ॥ १०४ ॥

एक बराबरके एकसे कर्मोंके करनेवाले, सिद्ध मनोरथ आपसमें परस्पर प्रेम रखने- वाले सबही एक दूसरेकी आज्ञा पालन करनेवाले, नृत्य, गीत आदि कलामें समान तथा सत्त्व और अवस्थामें तुल्य, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, चतुर, अच्छे स्वभाव- वाले, पवित्र, नित्य स्त्रीसंगकी इच्छा रखनेवाले, हृष्टपुष्ट, शोक और व्याधिसे रहित, एकसे स्वभाववाले, एक दूसरेके हित चाहनेवाले, सब आपसमें प्यार करनेवाले और प्यारे बोलनेवाले, मित्रोंकी मण्डलीमें आनन्दसे रहना भी परम वाजीकरण है ॥

कामोत्पादक कर्म।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः।
गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ॥ १०५ ॥
विहङ्गानां रुतैरिष्टैः स्त्रीणाञ्चाभरणस्वनैः।
संवाहनैर्वरस्त्रीणामिष्टानाञ्च वृषायते ॥ १०६ ॥

तेल आदिकी मालिश करना, उबटन लगाना, स्नान करना, सुगन्धित द्रव्योंका धारण करना, फूलोंका हार पहिनना, उत्तम आभूषणोंको पहिनना, एवं सुन्दर घर, सुन्दर शय्या, सुन्दर आसन आदिका सुख, उत्तम नये वस्त्रोंका धारण करना, बगीचें आदिकोंमें मनको हरण करनेवाले पक्षियोंके शब्द, सुन्दर स्त्रियोंके भूषणोंका झन- कार खूबसूरत स्त्रियोंसे हाथ पांव दबवाना यह सब कामदेवकी चेष्टाको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

हर्षोत्पादक कामदेवके अस्त्र।

मत्तद्विरेफाचरिताः सपद्माः सलिलाशयाः।
जात्युत्पलसुगन्धीनि शीतगर्भगृहाणि च ॥ १०७ ॥
नद्यः फेनोत्तरीयाश्च गिरयो नीलसानवः।
उन्नतिर्नीलमेघानां रम्यचन्द्रोदया निशाः ॥ १०८ ॥
वायवः सुखसंस्पर्शाः कुमुदाकरगन्धिनः।
रतिभोगक्षमा रात्र्यः सङ्कोचागुरुवल्लभाः ॥ १०९ ॥
सुखाः सहाया परपुष्टजुष्टाः फुल्ला वनान्ता विशदान्नपानाः।
गान्धर्वशब्दाश्च सुगन्धमाल्याः सत्त्वं विशालं निरुपद्रवञ्च ११०

सिद्धार्थता चाभिनवश्च कामः स्त्री चायुधं सर्वमिहात्मजस्य ।
वयो नवं जातमदश्च कालो हर्षस्य योनिः परमा नराणाम् ॥ १११ ॥

एवं मतवाले भ्रमरोंके गुंजारयुक्त कमलोंसे शोभायमान जलाशय, चमेली अथवा सब प्रकारके कमलोंकी जाति और उत्तम सुगन्धी खस आदिसे शीतल और सुगंधित घर, झागयुक्त तरंगोंसे शोभायमान नदियें, सजल, नीलवर्ण, शिखरोंसे युक्त पहाड, जिन पहाडोंके ऊपर नील बादलोंकी घटा छायीहुई हो तथा चंद्रमासे शोभायमान रात्रि, सुगंधित फूलोंकी गंधयुक्त सुशीतल मंदमंद पवनका स्पर्श, रतिके उपभोग योग्य रात्रि, जिन स्थानोंमें किसी गुरुजन आदिका निवास न हो ऐसा संकोच रहित एकांत स्थान, सुन्दर, सुखदायक, कामके सहायक कोकिल आदिके मनोहर शब्दयुक्त प्रफुल्लित बाग, उत्तम मधुर चिकने अन्नपान, मधुर गायन और बाजे आदिके शब्द, सुगंधित फूलोंकी माला, शोकादि उपद्रव रहित हृष्ट और विशाल चित्त, सिद्धार्थता, सुंदर नवयौवना स्त्री यह सब कामदेवके अस्त्र हैं। अर्थात् कामके उत्पन्न करनेवाले हैं। एवं युवावस्था, वसन्तऋतु अथवा सञ्जातमदका समय यह सब मनुष्योंके शरीरमें कामदेवके हर्ष उत्पन्न करनेवाले होते हैं ॥ १०७-१११ ॥

पादका उपसंहार ।

भवति चात्र—प्रहर्षयोनयो योगा व्याख्याता दश पञ्च च ।
माषपर्णतृतीयेऽस्मिन् पादे शुक्रबलप्रदाः ॥ ११२ ॥

इति च० सं० माषपर्णनाम तृतीयो वाजीकरणपादः ॥ ३ ॥

यहां पादके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस माषपर्णनामक तृतीय वाजीकरण पादमें वीर्य और बलके देनेवाले कामदेवका हर्ष उत्पन्न करनेवाले पन्द्रह प्रयोगोंका वर्णन किया गया है ॥ ११२ ॥

इति माषपर्ण नाम तृतीयो वाजीकरणपादः ॥ ३ ॥

अथातः पुमाञ्जातबलादिकं चतुर्थं वाजीकरणपादं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥ ११३ ॥

अब हम पुमान्जातबलादिक चौथे वाजीकरण पादका वर्णन करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ११३ ॥

पुमान् यथा जातबलो यावदिच्छँस्त्रियो व्रजेत् ।
यथा चापत्यवान् सद्यो भवेत्तदुपदेक्ष्यते ॥ ११४ ॥

जिस प्रकार पुरुष बलवान् होकर अपनी इच्छानुसार स्त्रियोंमें गमन करसके और शीघ्र संतानवाला होसके वह वर्णन करते हैं ॥ ११४ ॥

न हि जातबलाः सर्वे नराश्चापत्यभागिनः ।
बृहच्छरीरा बलिनः सन्ति नारीषु दुर्बलाः ॥ ११५ ॥
सन्ति चाल्पायुषः स्त्रीषु बलवन्तो बहुप्रजाः ।
प्रकृत्या चाबलाः सन्ति सन्ति चामयदुर्बलाः ॥ ११६ ॥
नराश्चटकवत्केचिद् व्रजन्ति बहुशः स्त्रियम् ।
गजवच्च प्रसिञ्चन्ति केचिन्न बहुगामिनः ॥ ११७ ॥
कामयोगबलाः केचित् केचिदभ्यसनध्रुवाः ।
केचित्प्रयत्नैर्वाह्यन्ते वृषाः केचित्स्वभावतः ॥ ११८ ॥
तस्मात्प्रयोगान्वक्ष्यामो दुर्बलानां बलप्रदान् ।
सुखोपभोगान्बलिनां भूयश्च बलवर्द्धनान् ॥ ११९ ॥

सम्पूर्ण मनुष्य बल, वीर्य सम्पन्न न होनेसे ही सन्तानके भागी नहीं होसकते, बहुतसे मनुष्य ऐसे भी है जो शरीरसे हृष्टपुष्ट और बलवान् दिखाई देते हैं परन्तु कामशक्तिमें हीन होनेसे स्त्रीगमनमें दुर्बल होते हैं । बहुतसे ऐसे हैं जो शरीरमें कृश और थोडी आयुवाले होतेहुए भी स्त्रीसंगमें बलवान् और बहुतसी सन्तानवाले होते हैं। बहुतसे मनुष्य स्वभावसे ही दुर्बल होते हैं और कोई मनुष्य व्याधिग्रस्त होनेसे दुर्बल होजाते हैं। कोई मनुष्य चिडेके समान स्त्रियोंसे बारबार गमन करते हैं। कोई मनुष्य ऐसे हैं जिनके वीर्यका प्रवाह हाथीके समान है। कोई ऐसे हैं जो स्त्रियोंमें बारबार संसर्ग नहीं करसकते। कोई मनुष्य कामयोगसे बलवान् हैं और बहुतसे अभ्याससे ही कामी बनेहुए हैं। कोई मनुष्य प्रयत्न करनेसे अर्थात् औषधी आदि प्रयोगसे कामके बलयुक्त होते हैं कोई स्वभावसे ही होते हैं। इसलिये अब दुर्बल मनुष्योंको बलके देनेवाले और बलवान् मनुष्योंको उपभोगके सुखको उत्पन्न करनेवाले और बलको बढ़ानेवाले प्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥ ११५–११९ ॥

वृष्यप्रयोगविधि।

पूर्वं शुद्धशरीराणां निरूहान् सानुवासनान् ।
बलापेक्षी प्रयुञ्जीत शुक्रापत्यादिवर्द्धनान् ॥ १२० ॥
घृततैलरसक्षीरशर्करामधुसंयुताः ।
बस्तयः संविधातव्याः क्षीरमांसरसाशिनाम् ॥ १२१ ॥

प्रथम बल, वीर्य और संतानादिकोंकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य वमन विरेचनद्वारा शुद्ध शरीर होकर वीर्य, बलादिवर्द्धक निरूहण और अनुवासन बस्ति कर्मको करावे। इन मनुष्योंके लिये घृत, तेल, दूध, मिसरी, शहत आदिके संयोगसे युक्त कीहुई वस्तियें करना चाहिये।तथा दूध और मांसरस खानेको देना चाहिये॥१२१॥

वृष्यमांस गुटिका।

पिष्ट्वा वराहमांसानि दत्त्वा मरिचसैन्धवे।
कोलवद्गुटिकाः कृत्वा तप्ते सर्पिषि भर्जयेत्॥ १२२॥
भर्जनस्तम्भितास्ताश्च प्रक्षेप्याः कौक्कुटे रसे।
घृताढ्ये गन्धपिशुने दधिदाडिमसाधिते॥ १२३॥
यथा न भिन्द्याद्गुटिकास्तथा तं साधयेद्रसम्।
तं पिबन्भक्षयंस्ताश्च लभते शुक्रमक्षयम्॥ १२४॥
मांसानामेवमन्येषां मेध्यानां कारयेद्भिषक्।
गुटिकाः सुरसास्तासां प्रयोगः शुक्रवर्द्धनः॥ १२५॥

वराहके मांसको बारीक पीसकर उसमें कालीमिर्च और सेन्धानमक मिला बेरके समान गोलियें बना लेवे। उन गोलियोंको घृतमें पकाकर सख्त होजानेपर मुर्गेके मांसरसमें भिगो देवे। यह मांसरस घृतयुक्त इलायची आदिसे सुगन्धित कियाहुआ दही और अनारदाना मिलाकर बनायाहुआ होना चाहिये उन गोलियोंको खाकर ऊपरसे यह मांसरस पीनेसे अक्षयवीर्यकी प्राप्ति होती है। इसीप्रकार अन्य जानवरोंके मांसोंकी भी गोलियें बनाकर ऐसे ही मांसरसयुक्त करके सेवन करना अत्यंत वीर्यको बढाता है॥ १२२-१२५॥

माहिषरसयोग।

माषानङ्कुरिताञ्छुद्धान्निस्तुषान् सजडाफलान्।
घृताढ्ये माहिषरसे दधिदाडिमसाधिते॥ १२६॥
प्रक्षिपेन्मात्रया युक्तो धान्यजीरकनागरैः।
पीतो भुक्तश्च सरसः कुरुते शुक्रमक्षयम्॥ १२७॥

छिलके रहित नये उडदोंकी उत्तम दाल और कौंचके बीजोंकी गिरी इनको पीसकर घृत और दूध मिला इनकी टिकिया घृतमें पकालेवे। फिर उनको धनियां, जीरा, सोंठ, अनारदाना, दही और घृत इनसे सिद्धकिये भैंसेके मांसरसमें डुबा देवे। फिर इनको खाकर ऊपरसे रस पीवे तो अक्षय वीर्यकी वृद्धि होती है॥ १२६-१२७॥

मत्स्यमांसयोग।

आर्द्राणि मत्स्यमांसानि भृष्टाश्च शफरीश्च ना।
तप्ते सर्पिषि यः खादेत् सगच्छेत्स्त्रीषु न क्षयम् ॥ १२८ ॥
घृतभृष्टान् रसे छागे रोहितान् फलसाधिते।
अनुपीतरसान् सिद्धानपत्यार्थी प्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

तत्काल मारीहुई मछली अथवा शफरी मछलीके मांसको घृतमें भूनकर खानेसे स्त्रीगमन करतेहुए भी वीर्य नष्ट नहीं होता। इसीप्रकार रोहित मछलीको घृतमें भूनकर अनारदानायुक्त बकरेके मांसरसमें पकाकर पीये तो संतान उत्पन्न करनेका सामर्थ्य होजाती है॥ १२८-१२९ ॥

राक्षसीपूपलिका।

कुट्टकं मत्स्यमांसानां हिङ्गुसैन्धवधान्यकैः।
युक्तं गोधूमचूर्णेन घृते पूपलिकाः पचेत् ॥ १३० ॥
माहिषे च रसे मत्स्यान् स्निग्धाम्ललवणान् पचेत्।
रसे चानुगते मांसं पोथयेत्तत्र चावपेत् ॥ १३१ ॥
मरिचं जीरकं धान्यमल्पं हिङ्गु नवं घृतम्।
माषपूपलिकानां तद्गर्भार्थमुपकल्पयेत् ॥ १३२ ॥
एतौ पूपलिकायोगौ वृष्यौ बलवर्द्धनौ।
हर्षसौभाग्यजननौ परं शुक्राभिवर्द्धनौ ॥ १३३ ॥
(मांसादीनां प्रयोगांस्तु मांसादेषु प्रयोजयेत्।
द्विजेषु घृतदुग्धादीनेवं सर्वत्र निश्चयः)॥

मछली और मुर्गेके मांसको कूटकर उसमें सेंधानिमक धनियां और गेंहूका चूर्ण मिला घृतमें पूडियें पकावे। अथवा मछली, घृत, सेंधानमक, खटाई इन सबके साथ माहिष मांसरसको पकावे। जब मांस रस सूखजाय तो उस मांसको कूटकर उसमें मिर्च, जीरा, धनियां, थोडा हींग, नवीन घृत यह सब मिलाकर उडदोंकी पूरियोंके भीतर भरे। उन पूडियोंको घृतमें पकालेवे। यह दोनों प्रकारकी पूडियें वीर्य और बलको बढानेवाली तथा कामोत्पादक कही हैं॥ १३०-१३३ ॥ (यह मांसादिकोंका प्रयोग राक्षस प्रकृति या राक्षसगुण प्रधान जातियोंमें ही करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये दूध घृत आदिकोंका प्रयोग ही निश्चित है यह सब जगह जानना)॥

वीर्यवर्द्धक परमोत्तम पूपलिका।

माषात्मगुप्तागोधूमशालिषष्टिकपैष्टिकम्।
शर्कराया विदार्य्याश्च चूर्णमिक्षुरसस्य च॥ १३४॥
संयोज्य मसृणे क्षीरे घृते पूपलिकाः पचेत्।
पयोऽनुपानास्ताः शीघ्रं कुर्वन्ति वृषतां परम्॥ १३५॥

उडद, कौंचके बीज, गेहूं, शालिचावल, साठीचावल, विदारीकंद, तालमखाने इन सबके बारीक चूर्णमें मिसरी और दूध मिलाकर पूडियें बनावे। उन पूडियोंको घृतमें पका दूधके साथ खावे तो अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होती है॥ १३४-१३५॥

परमवृष्ययोग।

शर्करायास्तुलैका स्यादेका गव्यस्य सर्पिषः।
प्रस्थो विदार्याश्चूर्णस्य पिप्पल्याः प्रस्थ एव च॥ १३६॥
अर्द्धाढकं तुगाक्षीर्य्याः क्षौद्रस्याभिनवस्य च।
तत्सर्वं मूर्च्छितं तिष्ठेन्मार्त्तिके घृतभाजने॥ १३७॥
मात्रामग्निसमां तस्य प्रातःप्रातः प्रयोजयेत्।
एष वृष्यः परं योगो बल्यो बृंहण एव च॥ १३८॥

मिसरी एक तोला, गौका घृत एक तोला, विदारीकंदका चूर्ण १ प्रस्थ, पीपलका चूर्ण एक प्रस्थ, वंशलोचनका चूर्ण दो प्रस्थ, नवीन शहद दो प्रस्थ, इन सबको मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें रख देवे जठराग्निका बलाबल विचार प्रातःकाल उचित मात्रासे खावे। यह योग अत्यंत वीर्यवर्द्धक, बलकारक और शरीरको पुष्ट करनेवाला है॥ १३६-१३८॥

वृष्यघृत।

शतावर्य्या विदार्य्याश्च तथा माषात्मगुप्तयोः।
श्वदंष्ट्रायाश्च निष्काथानश्चलेषु पृथक् पृथक्॥ १३९॥
साधयित्वा घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पुनः।
शर्करामधुसंयुक्तमपत्यार्थी प्रयोजयेत्॥ १४०॥

शतावर, विदारीकंद, उडद, कौंचकेबीज और गोखरू इन सबके अलग २ क्काथ सब मिलाकर १६ सेर होने चाहियें। दूध आठसेर, घृत एक सेर इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे। संतानकी इच्छावाला मनुष्य मिसरी और शहद मिलाकर इसको खावे॥ १३९॥ १४०॥

वीर्यवर्द्धक व मोत्तम गुटिका ।

घृतपात्रं शतगुणे विदारीस्वरसे पचेत् ।
सिद्धं पुनः शतगुणे गव्ये पयसि साधयेत् ॥ १४१ ॥
शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याः क्षौद्रस्येक्षुरसस्य च ।
पिप्पल्याः सजडायाश्च भागैः पादांशिकैर्युतम् ॥ १४२ ॥
गुटिकाः कारयेद्वैद्यो यथास्थूलमुदुम्बरम् ।
तासां प्रयोगात्पुरुषः कुलिङ्ग इव हृष्यति ॥ १४३ ॥

एकपात्र (आढक या चार सेर) घृत लेकर उसको सौगुने विदारीकंदके रसमें पकावे । जब रस जलकर घृतमात्र शेष रहे उसमें १०० गुना दूध मिलाकर पकावे । फिर घृत सिद्ध होनेपर इसमें घीसे चौथा भाग मिसरी, वंशलोचन, शहद और ताल-मखाने, पीपलका चूर्ण, कौंचके बीजोंकी गिरी इन सबको बारीक पीसकर मिलावे और गूलरके फलके समान इसकी गोलियें बनालेवे । अग्निका बलाबल विचार नित्य इन गोलियोंको खाया करे ॥ १४१-१४३ ॥

वाजीकरण उत्कारिका ।

सितोपलापलशतं तदर्द्धं नवसर्पिषः ।
क्षौद्रपादेन संयुक्तं साधयेज्जलपादिकम् ॥ १४४ ॥
सान्द्रं गोधूमचूर्णानां पादं स्तीर्णे शिलातले ।
शुचौ श्लक्ष्णे समुत्कीर्य्य मर्दनेनोपपादयेत् ॥ १४५ ॥
शुद्धा उत्कारिकाः कार्य्याश्चन्द्रमण्डलसन्निभाः ।
तासां प्रयोगाद्गजवन्नारीः सन्तर्पयेन्नरः ॥ १४६ ॥

१०० पल मिसरी, ५० पल नवीन घी, २५ पल जल इसका पाक करे । जब पाक होजाय तो इस घीमें भुनाहुआ, २५ पल गेहूंका चूर्ण, २५ पल शहतं मिला देवे । फिर इन सबको किसी बडे स्वच्छ साफ पत्थरके ऊपर मर्दन करे । जब मर्दन करते २ इसमें सफेदी आजाय तो चन्द्रमाके समान टिकिया बना लेवे । इन टिकियाओंके सेवनसे स्त्रीको गजके समान तृप्त करसकता है ॥ १४४-१७६ ॥

मधुर द्रव्योंको वृष्यत्व ।

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु ।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥ १४७ ॥

द्रव्यैरेवंविधैस्तस्माद्भावितः प्रमदां व्रजेत्।
आत्मवेगेन चोदीर्णः स्त्रीगुणैश्च प्रहर्षितः ॥ १४८ ॥
गत्वा स्नात्वा पयः पीत्वा रसञ्चानुशयीत ना।
तथास्याप्यायते भूयः शुक्रञ्च बलमेव च ॥ १४९ ॥

जितने द्रव्य मीठे, चिकने, जीवनवर्द्धक, बृंहण गुरु और मनमें हर्षके उत्पन्न करनेवाले हैं, उन द्रव्योंसे पुष्टवीर्य हुआ मनुष्य स्त्रीसंग करे। कामदेवके वेगसे उत्ते-जित हुआ और स्त्रियोंके गुणोंसे हर्षको प्राप्त हुआ मनुष्य स्त्रीसंग करके स्नान करे और दूध पीवे अथवा मांसरस पीवे एवं फिर सोजावे। इस प्रकार करनेसे मनुष्यका वीर्य और बल फिर शरीरमें यथोचित सम्पन्न हो जाता है ॥ १४७–१४९ ॥

वीर्यप्रकाशकी अवस्था।

यथा मुकुलपुष्पस्य सुगन्धो नोपलभ्यते।
लभ्यते तद्विकासात्तु तथा शुक्रं हि देहिनाम् ॥ १५० ॥

जैसे–बहुत छोटी विना खिली फूलकी कली भीतर सुगंधी रहनेपर भी सुगंधि नहीं देती और फूल खिल जानेपर उसमेंसे सुगंधि आनेलगती है वैसे ही बाल अव-स्थामें वीर्य रहनेपर भी युवावस्थामें जाकर विकासको प्राप्त होता है ॥ १५० ॥

अवस्थाभेदसे स्त्रीसंगका निषेध।

नर्ते वै षोडशाद्वर्षात्सप्तत्याः परतो न च।
आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ १५१ ॥
अतिबालो ह्यसम्पूर्णसर्वधातुः स्त्रियो व्रजन्।
उपतप्येत सहसा तडागमिव काजलम् ॥ १५२ ॥
शुष्करूक्षं यथा काष्ठं जन्तुजग्धं विजर्जरम्।
स्पृष्टमाशु विशीर्य्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन् ॥ १५३

सोलहवर्षकी अवस्थासे पहिले, सत्तरवर्षकी अवस्थासे पीछे मनुष्य अपनी आयुकी इच्छा करताहुआ स्त्रीसंसर्ग कभी न करे। क्योंकि अतिबालअवस्थामें धातुओंका बल सम्पूर्ण बलवान् न होनेसे यह इस प्रकार शोषको प्राप्त होता है जैसे थोडे जल-वाला तालाव तीक्ष्ण गर्मीके पडनेसे सूख जाता है। जैसे सूखाहुआ, रूक्ष कीडेका खायाहुआ अत्यन्त जीर्ण काष्ठ मामूली स्पर्श करनेसे टूट जाता है उसीप्रकार वृद्ध मनुष्य भी स्त्रीगमन करनेसे नाशको प्राप्त होता है ॥ १५१–१५३ ॥

शुक्रक्षयके कारण ।

जरया चिन्तया शुक्रं व्याधिभिः कर्म्मकर्षणात् ।
क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणाञ्चातिनिषेवणात् ॥ १५४ ॥

बुढापेके कारण, चिंताके होनेसे, व्याधिसे, शरीरके अपकर्षण होनेसे, उपवास आदिकोंसे क्षीण होजानेसे, स्त्रियोंको अधिक सेवन करनेसे मनुष्यका वीर्य क्षय होजाता है ॥ १५४ ॥

कामोत्पत्ति न होनेके कारण ।

क्षयाद्भयादविश्रम्भाच्छोकात्स्त्रीदोषदर्शनात् ।
नारीणामरसज्ञत्वादभिचारादसेवनात् ॥ १५५ ॥
तृप्तस्यापि स्त्रियो गन्तुं न शक्तिरुपजायते ।
देहसत्त्वबलापेक्षी हर्षः शक्तिश्च हर्षजा ॥ १५६ ॥

वीर्यके क्षयसे, भयसे, विश्वास न होनेसे, स्त्रियोंका कोई दोष दिखाई देनेसे, स्त्री-संसर्गजन्य रसज्ञान न होनेसे, अथवा रसिकता न होनेसे किसीप्रकारके अभिचारसे स्त्रीसंग बिलकुल न करनेसे, मैथुनद्वारा अत्यंत तृप्त होनेसे मनुष्योंको कामेच्छा उत्पन्न नहीं होती क्योंकि कामका वेग मन और देहके बलकी अपेक्षा करता है । और उस वेगसे ही कामेच्छा या कामशक्ति उत्पन्न होती है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

शुक्रके स्थान और निकलनेका क्रम ।

रस इक्षौ यथा दध्नि सर्पिस्तैलं तिले यथा ।
सर्वत्रानुगतं देहे शुक्रं संस्पर्शने तथा ॥ १५७ ॥
तत्स्त्रीपुरुषसंयोगे चेष्टासंकल्पपीडनात् ।
शुक्रं प्रच्यवते स्थानाज्जलमार्द्रात्पटादिव ॥ १५८ ॥

जैसे ईखमें रस, दहीमें घृत और तिलोंमें तेल व्यापक रहता है उसी प्रकार वीर्य भी मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक रहता है । तथा स्पर्शनेन्द्रियसे विशेषकरके सम्बन्ध रखता है, वीर्य स्त्री, पुरुषके संयोगमें चेष्टा और संकल्पसे पीडित हुआ इस प्रकार मुचड जाता है जैसे भिगेहुए कपडेको मीडनेसे उसमेंसे जल निकलजाता है॥

वीर्य निकलनेके कारण ।

हर्षात्तर्षात्सरत्वाच्च पैच्छिल्याद्गौरवादपि ।
अनुप्लवत्वात्सौक्ष्म्याच्च द्रुतत्वान्मारुतस्य च ॥ १५९ ॥
अष्टाभ्य एभ्यो हेतुभ्यः शुक्रं देहात्प्रसिच्यते ।

चरतो विश्वरूपस्य रूपं द्रव्यं यदुच्यते ॥ १६० ॥

कामका हर्ष होनेसे, स्त्रीकी अत्यन्त इच्छा होनेसे, वीर्यका सरत्व स्वभाव होनेसे, तथा पिच्छलता, गुरुता, अनुप्लवता और सूक्ष्मता होनेसे एवं वायुके द्रुतताके कारण वीर्य देहसे निकलता है। अर्थात् इन आठ हेतुओंसे वीर्य शरीरमेंसे चलायमान हो- जाता है।वह वीर्य विश्वरूपकी चलनशील मूर्तिरूपी द्रव्य कहाजाता है॥१५९-१६०॥

फलवान् वीर्यके लक्षण।

बहलं मधुरं स्निग्धमविस्रं गुरु पिच्छिलम्।

शुक्लं बहु च यच्छुक्रं फलवत्तदसंशयम् ॥ १६१ ॥

जो वीर्य सघन, मधुर, स्निग्ध, दुर्गंध राहित, भारी, गाढा और अधिक होता है वह अवश्य ही सन्तानरूपी फलको देनेवाला होता है ॥ १६१ ॥

वाजीकरणके लक्षण।

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः।

व्रजेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ॥ १६२ ॥

जिस द्रव्यका सेवन करनेसे मनुष्य घोडेके समान मैथुन करनेकी सामर्थ्यवाला हो और अधिक मैथुन करसके उसीको वाजीकरण कहते हैं ॥ १६२ ॥

तत्र श्लोकौ—हेतुर्योगोपदेशस्य योगा द्वादश चोत्तमाः।

यत्पूर्वं मैथुनात्सेव्यं सेव्यं यन्मैथुनादनु ॥ १६३ ॥

यदा न सेव्याः प्रमदाः कृत्स्नः शुक्रविनिश्चयः।

निरुक्तश्चेह निर्दिष्टं पुमाञ्जातबलादिके ॥ १६४ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने वाजीकरणाध्यायो द्वितीयः समाप्तः ॥ २ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं। इस पुमान्जातबलादिनामक वाजी- करण चतुर्थपादमें वाजीकरण द्रव्योंके समूह वर्णन करनेका कारण और बारह उत्तम वाजीकरण प्रयोग, मैथुनसे प्रथम सेवन करनेयोग्य पदार्थ, मैथुनके अन्तमें सेवन करनेयोग्य द्रव्य, स्त्रियोंको न सेवन करनेका समय, सम्पूर्ण वीर्यकी विधि और उसकी निरुक्ति यह सब कथन किया गया है ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल- निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य- भाषाटीकायां वाजीकरणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः।

अथातो ज्वरचिकित्सितमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम ज्वरचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

ज्वरविषयमें अग्निवेशका प्रश्न।

विज्वरं ज्वरसन्देहं पर्य्यपृच्छत्पुनर्वसुम्।
विविक्ते शान्तमासीनमग्निवेशः कृताञ्जलिः॥ १॥

काम क्रोधादि ज्वररहित, शान्तस्वभाव, एकांतमें बैठेहुए भगवान् पुनर्वसुजीसे हाथ जोडकर अग्निवेश ज्वरके विषयमें पूछनेलगे ॥ १॥

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।
ज्वरः प्रधानं रोगाणामुक्तो भगवता पुरा॥ २॥

हे प्रभो! देह, इन्द्रिय और मनके तपानेवाला, संपूर्ण रोगोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ सब रोगोंमें बलवान् ज्वर ही संपूर्ण व्याधियोंमें आपने पहिले प्रधान कहा है॥ २॥

तस्य प्राणिसपत्नस्य ध्रुवस्य प्रलयोदये।
प्रकृतिश्च प्रवृत्तिश्च प्रभावं कारणानि च॥ ३॥
पूर्वरूपमधिष्ठानं बलकालात्मलक्षणम्।
व्यासतो विधिभेदश्च पृथग् भिन्नस्य चाकृतिम्॥ ४॥
लिङ्गमामस्य जीर्णस्य चौषधं सक्रियाक्रमम्।
विमुञ्चतः प्रशान्तस्य चिह्नं यच्च पृथक् पृथक्॥ ५॥

सो हे भगवन्! उस प्राणिमात्रके शत्रु और जन्म मरणके समय अवश्य होनेवाले ज्वरकी प्रकृति, प्रवृत्ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान, बल, काल, लक्षण, विधिभेद, भिन्न २ ज्वरोंकी पृथक् पृथक् आकृति, आमज्वरके लक्षण, जीर्णज्वरके लक्षण, उसको शान्त करनेवाली औषधी, चिकित्साका क्रम, ज्वरके विमुक्त होने समयके लक्षण और ज्वररहित मनुष्यके लक्षणोंको कृपाकर विस्तारपूर्वक अलग अलग वर्णन कीजिये॥३-५॥ ———

ज्वरावशिष्टो रक्ष्यश्च यावत्कालं यतो यतः।
प्रशान्तः कारणैर्यैश्च पुनरावर्त्तते ज्वरः॥ ६॥
याश्चापि पुनरावृत्तिं क्रियाः प्रशमयन्ति तम्।
जगद्धितार्थं तत्सर्वं भगवन्! वक्तुमर्हसि॥ ७॥

एवं ज्वर दूर होजानेपर मनुष्यको कितने कालतक किन किन वस्तुओंसे परहेज रखना चाहिये और ज्वर एकबार शान्त हो फिर किन कारणोंसे लौटकर आजाता है। फिर उसको किस क्रियाद्वारा शान्त करना चाहिये। हे भगवन्! जगत्के हितके लिये यह संपूर्ण विषय कृपाकर मुझसे कहिये॥ ६॥ ७॥

आत्रेयजीका कथन।

तदग्निवेशस्य वचो निशम्य गुरुरब्रवीत्।
ज्वराधिकारे यद्वाच्यं तत्सौम्य! निखिलं शृणु॥ ८॥

इस प्रकार अग्निवेशके कथनको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि, हे अग्नि-वेश! ज्वराधिकारमें ज्वरके विषयमें जो कुछ कहना योग्य है वह तुम सावधान होकर श्रवण करो॥ ८॥

ज्वरके पर्यायवाचक नाम।

ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च।
एकार्थनामपर्य्यायैर्विविधैरभिधीयते॥ ९॥

ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और आतंक यह सब एकही अर्थके वाचक शब्द हैं। इन विविध पर्यायवाचक शब्दोंसे ज्वर ही कहाजाता है॥ ९॥

ज्वरकी प्रकृति और प्रवृत्ति।

तस्य प्रकृतिरुद्दिष्टा दोषाः शारीरमानसाः।
देहिनं न हि निर्दोषं ज्वरः समुपसेवते॥ १०॥
क्षयस्तमो ज्वरः पाप्मा मृत्युश्चोक्तोऽयमात्मजः।
कर्मभिः क्लिश्यमानानां पञ्चत्वप्रत्ययान्नृणाम्॥ ११॥
इत्यस्य प्रकृतिः प्रोक्ता प्रवृत्तिस्तु परिग्रहः।
निदाने पूर्वमुद्दिष्टा रुद्रकोपाच्च दारुणात्॥ १२॥

शरीर और मनके दोष ही ज्वरकी प्रकृति (कारण) मानेजाते हैं। निर्दोष शरीरमें ज्वर उत्पन्न नहीं होता। और न निवास करता है मनुष्योंके अपनेही कर्मोंसे

क्लेशित होनेपर ज्वर, क्षय, तम, पाप और मृत्यु प्राप्त होती है और अपने कियेहुए ही कर्मोंके अधीन इस शरीरको त्याग जाती है। इस प्रकार ज्वरकी प्रकृति (कारण) कहीगयी। तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्योंके अपने ही कर्म क्लेशसे ज्वरकी उत्पत्ति होती है। प्रवृत्ति-उत्पत्तिका नाम है सो पहिले निदानस्थानमें कहआये हैं कि महादेवके दारुण कोपसे ज्वरकी उत्पत्ति है ॥ १०-१२ ॥

महादेवके कोपसे दक्षयज्ञध्वंशका वर्णन।

द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितम्।
दिव्यं सहस्रं वर्षाणामसुरा अभिदुद्रुवुः ॥ १३ ॥
तपोविघ्नं शमीकर्त्तुं तपोविघ्नं महात्मनाम्।
पश्यन् समर्थश्चोपेक्षां चक्रे रुद्रः प्रजापतिः ॥ १४ ॥
पुनर्माहेश्वरं भागं ध्रुवं दक्षः प्रजापतिः।
प्रायो न कल्पयामास प्रोच्यमानः सुरैरपि ॥ १५ ॥
पाशुपत्य ऋचो याश्च शैव्यश्चाहुतयश्च याः।
यज्ञसिद्धिकृतास्ताभिर्हीनं चैव स इष्टवान् ॥ १६ ॥

यह कथा ऐसी है कि, त्रेतायुगमें महादेवजीने देवताओंके एक सहस्रवर्ष क्रोधादिकोंको छोडकर शान्तव्रत किया, ऐसा समय पाकर दैत्य अनेक उपद्रव करनेलगे जिससे विचारे ऋषियोंके यज्ञ तप आदिकोंमें विघ्न होनेलगा परन्तु महादेवने राक्षसोंके उपद्रवोंको शान्त करनेकी सामर्थ्य रखतेहुए भी अपने शान्तिव्रतको भंग नहीं करना चाहा.जब दक्ष प्रजापतिने देखा कि, महादेव सब सामर्थ्य रखते हुए आर देवताओंके समझानेपरभी ऋषियोंके तपोविघ्नोंको दूर नहीं करते तो उसने यज्ञमें महादेवका भाग देना बन्द करादिया। और पाशुपत्य नामक वेदकी ऋचाओं और यज्ञको पूर्ण करनेवाली महादेवके नामकी आहुतियोंके विनाही वह यज्ञ करनेलगा॥१३-१६

अथोत्तीर्णव्रतो देवो बुद्ध्वा दक्षव्यतिक्रमम्।
रुद्रो रौद्रं पुरस्कृत्य भावमात्मविदात्मनः ॥ १७ ॥
सृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान् प्रभुः।
बाणं क्रोधाग्निसन्तप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् ॥ १८ ॥
ततो यज्ञः स विध्वस्तो व्यथिताश्च दिवौकसः।
दाहव्यथापरीताश्च भ्रान्ता भूतगणा दिशः ॥ १९ ॥

इसके पीछे जब महादेव अपने अक्रोधनव्रत करचुके तब उन्होंने दक्षके कियेहुए इस अपराधको जानकर अपने रौद्रभावसे मस्तकमें अग्निमय नेत्रको प्रकट किया फिर इन आत्मवित् महादेवने उस अग्निमय नेत्रद्वारा पहिले तो सम्पूर्ण राक्षसोंको भस्मीभूत किया । फिर क्रोधरूपी अग्निसे संतप्त होकर शत्रुओंको नष्ट करनेवाला यज्ञनाशन बाण छोडा, उस क्रोधाग्निरूपी बाणसे दक्षके यज्ञका विध्वंस हुआ और देवतालोग भी व्याकुल हुए एवं संपूर्ण भूतगण दाह और व्यथासे पीडित हुए । एवं संपूर्ण दिशाओंको भागनेलगे ॥ १७-१९ ॥

अथेश्वरं देवगणाः सह सप्तर्षिभिर्विभुम् ।
तमृग्भिरस्तुवन् यावच्छिवे भावे शिवः स्थितः ॥ २० ॥
शिवं शिवाय भूतानां स्थितं ज्ञात्वा कृताञ्जलिः ।
क्रोधाग्निरुक्तवान् देवमहं किं करवाणि ते ॥ २१ ॥

फिर तो संपूर्ण देवता और सप्तऋषि विभु महादेवकी अनेक प्रकारसे स्तुति करनेलगे । फिर नम्र वचनोंद्वारा स्तुति करनेपर जगत्के कल्याणके लिये जब महादेव अपने शैवभावको प्राप्त हुए यह जानकर वह महादेवसे उत्पन्नहुआ क्रोधाग्निरूपी बाण हाथ जोडकर महादेवके आगे खडाहुआ और कहनेलगा कि, हे देव ! मुझे क्या आज्ञा है और मैं आपके किस कार्यको करूं ? ॥ २० ॥ २१ ॥

तमुवाचेश्वरः क्रोध ज्वरो लोके भविष्यसि ।
जन्मादौ निधने च त्वमपि चावान्तरेषु च ॥ २२ ॥
सन्तापः सारुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदि व्यथा ।
ज्वरप्रभावो जन्मादौ निधने च महत्तमः ॥ २३ ॥

उसको महादेव भगवान् बोले कि, हे क्रोध ! तू संसारमें ज्वररूपसे प्रसिद्ध होगा। सब मनुष्योंके जन्म और मरणके समय तथा जीवन समयमें भी प्रगट हुआकरेगा और संताप, अरुचि, अंगमर्द, हृदयमें व्यथा यह सब तुम्हारे प्रभाव होंगे । इस ज्वरके प्रभावसेही मनुष्यके जन्म और मरणके समय महाअज्ञान उपस्थित होजाता है॥

प्रकृतिश्च प्रवृत्तिश्च प्रभावश्च प्रदर्शितः ।
निदाने कारणान्यष्टौ पूर्वोक्तानि विभागशः ॥ २४ ॥

इस प्रकार ज्वरकी प्रकृति, प्रवृत्ति और प्रभाव दिखायेगये हैं । इसके पहिले निदानस्थानमें विभागपूर्वक आठ कारण कहआये हैं ॥ २४ ॥

ज्वरके पूर्वरूप ।

आलस्यं नयने सास्रे जृम्भणं गौरवं क्लमः ।
ज्वलनातपवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनिश्चितौ ॥ २५ ॥
अविपाकास्यवैरस्यं हानिश्च बलवर्णयोः ।
शीलवैकृतमल्पञ्च ज्वरलक्षणमग्रजम् ॥ २६ ॥

अब ज्वरके पूर्वरूप कहते हैं–आलस्य, नेत्रोंसे आसुओंका बहना, जम्भाई आना, शरीर भारी होना, क्लम (कापली), अग्नि, धूप, छाया तथा जल इनकी इच्छा होना, एवं द्वेष होना अर्थात् इच्छा और द्वेष यह दोनों अनिच्छित भावसे होना, अन्नका विपाक न होना, मुखमें विरसता, बल और वर्णकी हानि, स्वभावका किंचित् विकृतसा प्रतीत होना यह ज्वरके पूर्वरूप हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

केवलं समनस्कञ्च ज्वराधिष्ठानमुच्यते ।
शरीरबलकालस्तु निदाने सम्प्रदर्शितः ॥ २७ ॥

ज्वरका अधिष्ठान अर्थात् आश्रयस्थान केवल शरीर और मनही है। ज्वरके समय शरीरकी अवस्था, बल और काल यह सब निदानस्थानमें कथन करचुके हैं ॥ २७॥

ज्वरका रूप ।

ज्वरप्रत्यात्मिकं लिङ्गं सन्तापो देहमानसः ।
ज्वरेणाविशता भूतं न हि किञ्चिन्न तप्यते ॥ २८ ॥

शरीरका और मनका तपायमान होना ही सामान्यरूपसे प्रति मनुष्यमें ज्वरका लक्षण जानना । ज्वरके होनेसे ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसका मन और शरीर तपायमान न होता हो इसलिये देह इन्द्रिय और मनका तपायमान होनाही ज्वरका रूप है ॥ २८ ॥

ज्वरके दो भेद ।

द्विविधो विधिभेदेन ज्वरः शारीरमानसः ।
पुनश्च द्विविधो दृष्टः सौम्यश्चाग्नेय एव च ॥ २९ ॥
अन्तर्वेगो बहिर्वेगो द्विविधः पुनरुच्यते ।
प्राकृतो वैकृतश्चैव साध्यश्चासाध्य एव च ॥ ३० ॥

शारीर और मानसिक भेदसे ज्वर दो प्रकारका है। सौम्य और आग्नेय भेदसे

दो प्रकारका है। अन्तर्वेगी और बहिर्वेगी यह दो भेद हैं। एवं प्राकृत और वैकृत तथा साध्य और असाध्य इस प्रकार ज्वर विधिभेदसे दो दो प्रकारका होता है २९-३०

ज्वरके ५ भेद।

पुनः पञ्चविधो दृष्टो दोषकालबलाबलात्।
सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ३१ ॥

फिर वह ज्वर, दोष, काल, बल और अबल भेदसे पांच प्रकारका देखनेमें आता है। जैसे-संतत, सतत, अन्येद्यु (इकतरा) तृतीयक और चातुर्थिक ॥ ३१ ॥

सप्तविध और अष्टविध ज्वर।

पुनराश्रयभेदेन धातूनां सप्तधा मतः।
भिन्नः कारणभेदेन पुनरष्टविधो ज्वरः ॥ ३२ ॥

आश्रयभेदसे ज्वर सात प्रकारका है। क्योंकि रसादि सात धातुगत होनेसे सात प्रकारका होजाता है। और कारणभेदसे ज्वर आठ प्रकारका होता है। जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, वातकफसे, पित्तकफसे, सन्निपातसे और आगन्तुज कारणोंसे आठ प्रकारका होता है ॥ ३२ ॥

शारीर और मानसिक ज्वरके लक्षण।

शारीरो जायते पूर्वं देहे मनसि मानसः।
वैचित्त्यमरतिर्ग्लानिर्मनसस्तापलक्षणम् ॥
इन्द्रियाणाञ्च वैकृत्यं देहसन्तापलक्षणम् ॥ ३३ ॥

शारीरिकज्वर पहिले शरीरमें प्रगट होकर और मानसज्वर पहिले मनमें प्रगट हो फिर संपूर्ण देहमें व्यापक होजाता है। तब चित्तकी विकृति, किसी वस्तुकी इच्छा न होना, ग्लानि, मनका संताप यह सब लक्षण मानसज्वरके होते हैं। एवं इन्द्रियोंमें व्याकुलता, देहका अत्यन्त संतापित होना यह शारीरिकज्वरके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

सौम्य और आग्नेयके लक्षण।

वातपित्तात्मकः शीतमुष्णं वातकफात्मकः।
इच्छत्युभयमेतत्तु ज्वरो व्यामिश्रलक्षणः ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार वातपित्तात्मक ज्वर-सौम्य अर्थात् शीतल पदार्थकी इच्छा करनेवाला और शीतल द्रव्योंद्वारा शान्त होनेवाला होता है। एवं वातकफात्मक-आग्नेय अर्थात् उष्णताकी इच्छा करनेवाला और उष्ण द्रव्योंद्वारा शान्त होनेवाला होता है। दोनोंके मिलेहुए लक्षणोंवाला दोनों प्रकारकी इच्छाको करता है ॥ ३४ ॥

योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत् ।
दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥ ३५ ॥

वायु परम योगवाही है । इसलिये संयोगसे दोनों प्रकारके लक्षणोंको करता है । जब वह तेजके साथमें मिलजाता है तो दाहको करनेवाला होजाता है और सोमके साथ मिलजानेसे शीतताको करनेवाला होजाता है ॥ ३५ ॥

अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ।
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ।
अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ॥ ३६ ॥

शरीरके भीतर अत्यन्त दाह होना, प्यास अधिक लगना, प्रलाप (बकवाद), श्वास, भ्रम, संधियें और अस्थियोंमें पीडा होना, पसीनेका न आना, मलका रुक-जाना, यह सब अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षण होते हैं ॥ ३६ ॥

बहिर्वेगीज्वरके लक्षण ।

सन्तापोऽभ्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनाञ्च मार्दवम् ।
बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥ ३७ ॥

शरीरके बाहर संताप अधिक होना, प्यास आदिका कम होना यह बहिर्वेगी ज्वरके लक्षण हैं । बहिर्वेगीज्वर सुखसाध्य होता है ॥ ३७ ॥

प्राकृतज्वरके लक्षण और काल ।

प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसन्तशरदुद्भवः ।
कालप्रकृतिमुद्दिश्य प्रोच्यते प्राकृतो ज्वरः ॥ ३८ ॥

प्राकृतज्वर समय और स्वभावके उद्देश्यसे कथन कियाजाता है । जैसे वसन्त ऋतुका और शरदऋतुका ज्वर प्राकृत होनेसे सुखसाध्य होता है ॥ ३८ ॥

उष्णमुष्णेन संवृद्धं पित्तं शरदि कुप्यति ।
चितः शीते कफश्चैवं वसन्ते समुदीर्य्यते ॥ ३९ ॥

क्योंकि उष्णतासे बढाहुआ पित्त उष्ण स्वभाववाला होनेसे उष्णस्वभाववाले शरदऋतुमें कुपित होता है और शीतकालका संचितहुआ कफ वसन्तऋतुमें कुपित होता है ॥ ३९ ॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरोषधीभिः सवारिभिः ।
सञ्चितं पित्तमुद्रिक्तं शरद्यादित्यतेजसा ॥ ४० ॥

ज्वरं सञ्जनयत्याशु तस्य चानुबलः कफः।
प्रकृत्यैव विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ॥ ४१ ॥

वर्षाकालमें संपूर्ण औषधियें और जलोंका विपाक अम्ल होता है। अम्ल विपाकसे पित्तका कोप होता है। परन्तु वर्षाकालमें शीतल पवन और जलकी आर्द्रता आदि होनेसे पित्त कोपको प्राप्त न होकर संचित होता रहता है फिर शरदऋतुमें सूर्यके संतापकी सहायतासे कोपको प्राप्त होकर पित्तप्रधान ज्वरको उत्पन्न करता है। और कफ उसका सहायक होजाता है। क्योंकि उस समय स्वभावसेही विसर्गकाल होता है इसलिये उस समय लंघन न करनेसे रोगकी वृद्धि होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अद्भिरोषधिभिश्चैव मधुराभिश्चितः कफः।
हेमन्ते सूर्य्यसन्तप्तः न वसन्ते प्रकुप्यति ॥ ४२ ॥
वसन्ते श्लेष्मणा तस्माज्ज्वरः समुपजायते।
आदानमध्ये तस्यापि वातपित्तं भवेदनु ॥ ४३ ॥
आदावन्ते च मध्ये च ज्ञात्वा दोषबलाबलम्।
शरद्वसन्तयोर्विद्वान् ज्वरस्य प्रतिकारयेत् ॥ ४४ ॥

इसी प्रकार शीतकालमें औषधी और जल आदि सब मधुर विपाकी होते हैं। उस मधुर विपाकसे हेमन्त कालका संचितहुआ कफ वसन्तकालमें सूर्यके संतापसे पिघलकर कोपको प्राप्त हो कफके ज्वरको उत्पन्न करता है। इस समय सूर्यके आदान कालका समय होनेसे वात पित्त इस कफके अनुयायी होजाते हैं। इसलिये शरद और वसन्त ऋतुके आदि अन्त और मध्यमें दोषोंका बलाबल विचारकर विद्वान् वैद्य विधिवत् चिकित्सा करे ॥ ४२-४४ ॥

प्राकृतवैकृतभेद।

कालप्रकृतिमुद्दिश्य निर्दिष्टः प्राकृतो ज्वरः।
प्रायेणानिलजो दुःखः कालेष्वन्येषु वैकृतः ॥ ४५ ॥

---

१ प्रायः वर्षाऋतुमें वायुका स्वाभाविक कोपकाल होता है। शरदऋतुमें पित्तका स्वाभाविक कोपकाल होता है और वसन्त ऋतुमें स्वाभाविक कफका कोपकाल होता है। इस प्रकार अपने समयपर कुपित होना इनका प्राकृतधर्म है और इससे विपरीत वैकृत धर्म है। शरद और वसन्त ऋतुमें आमदोषकी अधिकता होनेसे लंघन करना अत्यावश्यक है। परन्तु वातज्वरमें लंघनकी आवश्यकता नहीं है।

काल प्रकृतिके उद्देश्यसे अर्थात् दोषोंके स्वाभाविक कोप होनेके कालका निर्देश करके प्राकृतज्वरका कथन किया गया है सो वसन्तऋतुमें कफके और शरदऋतुमें पित्तके यह प्राकृतज्वर कहेजाते हैं। इनमें लंघन आदि विरोधी न होनेसे अर्थात् लंघन कियाजाना हितकारक होनेसे यह प्रायः सुखसाध्य होते हैं। परन्तु वातज्वर प्राकृत होते हुए भी दुःसाध्य होते हैं। क्योंकि उनमें लंघन करना प्रायः हितकारक नहीं होता। और अन्यकालमें प्रगटहुए ज्वर भी वैकृत होते हैं। एवं प्रायः दुःसाध्य होते हैं॥ ४५ ॥

हेतु।

हेतवो विविधास्तस्य निदाने सम्प्रदर्शिताः ॥ ४६ ॥

ज्वरके अनेक प्रकारके हेतुओंको निदानस्थानमें कह आये हैं ॥ ४६ ॥

साध्यज्वर।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥

बलवान् मनुष्यका अल्प दोषोंवाला और उपद्रवरहित ज्वर साध्य होता है ॥

असाध्य लक्षण।

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः।

ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ४७ ॥

बहुतसे बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न हुआ और बहुतसे लक्षणोंसे युक्त तथा जो ज्वर शीघ्र इन्द्रियोंको नष्ट कर देवे वह मनुष्योंके प्राणोंका नष्ट करनेवाला अर्थात् असाध्य होता है ॥ ४७ ॥

सप्ताहाद् द्वादशाहाद्वा द्वादशाहात्तथैव च।

सप्रलापभ्रमश्वासः तीक्ष्णो हन्याज्ज्वरो नरम् ॥ ४८ ॥

जो ज्वर प्रलाप, भ्रम, श्वास तथा तीक्ष्ण वेगवाला हो वह सात दिनमें अथवा दश दिनमें या बारह दिनमें मनुष्यको मारडालता है ॥ ४८ ॥

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घ्यरात्रिकः।

असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य क्षीण होगया हो, शरीरमें सूजन उत्पन्न हो आईहो, गंभीर ज्वर रहे और सम्पूर्ण रात्रि उसको बडे कष्टसे व्यतीत होतीहो तो वह ज्वर असाध्य जानना। एवं जिस मनुष्यके मस्तकपर केशोंमें बहुतसी सीमन्तरचनासी होजाय अर्थात् भौंरियेंसी और बूंटके समान रचनासी होजाय वह ज्वरवाला मनुष्य यदि बलवान् भी हो तव भी असाध्य जानना ॥ ४९ ॥

संततज्वर।

स्रोतोभिर्विसृता दोषा गुरवो रसवाहिभिः।
सर्वगात्रानुगाः स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम् ॥ ५० ॥
द्वादशाहं दशाहं वा सप्ताहं वा सुदुःसहः।
स शीघ्रं शीघ्रकारित्वात्प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ५१ ॥
कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषस्तुल्यो हि सन्ततम्।
निष्प्रत्यनीकं कुरुते तस्माज्ज्ञेयः सुदुःसहः ॥ ५२ ॥
यथा धातुं तथा मूत्रं पुरीषञ्चानिलादयः।
अनुबध्नन्ति युगपदवश्यं सन्तते ज्वरे ॥ ५३ ॥

वातादि दोष रसवाही स्रोतोंके बीचमें व्याप्त होकर सम्पूर्ण देहमें पहुंच जाते हैं फिर देहको स्तंभितकर सन्ततज्वरको उत्पन्न कर देते हैं। वह सन्ततज्वर बारह दिनमें अथवा दश दिनमें या सात दिनमें बराबर चढा रहकर या तो शान्त होजाता है अथवा मनुष्यको मारडालता है। यह शीघ्रकारी ज्वर दुःसाध्य होता है। क्योंकि दोष, काल, दूष्य और प्रकृति यह जब एक स्वभाववाले मिल जाते हैं तब अपने बलको प्राप्त हुए दोष दुःसाध्य संततज्वरको उत्पन्न करते हैं। क्योंकि इसकी चिकित्सामें अत्यन्त कठिनाई पडती है इस लिये यह दुःसाध्य है। सातों धातु, तीनों दोष, मल, मूत्र यह सब संततज्वरमें एककालमेंही अनुबन्धको प्राप्त होजाते हैं ॥५०-५३

स शुद्ध्या वाप्यशुद्ध्या वा रसादीनामशेषतः।
सप्ताहादिषु कालेषु प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ५४ ॥
यदा तु नातिशुध्यन्ति न वा शुध्यन्ति सर्वशः।
द्वादशैते समुद्दिष्टाः सन्ततस्याश्रयास्तदा ॥ ५५ ॥
विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसे व्यक्तलक्षणः।
दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमप्यनुवर्त्तते ॥ ५६ ॥
इति बुद्ध्वा ज्वरं वैद्य उपक्रामेत्तु सन्ततम्।
क्रियाक्रमविधौ युक्तः प्रायः प्रागपतर्पणैः ॥ ५७ ॥

रसादिक सातों धातुओं और तीनों दोष तथा मल मूत्र इन बारह द्रव्योंके सम्पूर्ण रूपसे अशुद्ध अथवा सर्वथा शुद्ध न रहनेसेही संततज्वर सात अथवा दश या बारह

दिनोंमें शान्त होजाता है या मनुष्यको मारडालता है । इन बारह द्रव्योंके शुद्ध न होनेसे अथवा सर्वथा दोषयुक्त होनेसे ही संततज्वर इन रसादिक बारह द्रव्योंके आश्रित होता है । कोई २ संततज्वर १२ दिन प्रगटरूपसे रहकर फिर गुप्तरूपसे शरीरमें रहने लगता है और कुछ कालपाकर फिर प्रगट होजाता है, इसकी चिकित्सा कष्टसाध्य होती है । इस प्रकार बुद्धिमान् वैद्य संततज्वरके क्रिया क्रम आदि विधिमें प्रवृत्त हुआ प्रायः लंघनद्वारा दोष शान्त कर चिकित्सा करे ॥ ५४–५७ ॥

सततकज्वर लक्षण ।

रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततकं ज्वरम् ।
सप्रत्यनीकं कुरुते कालवृद्धिक्षयात्मकः ॥ ५८ ॥
अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्त्तते ।
कालप्रकृतिदूष्याणां प्राप्यैवान्यतमाद्बलम् ॥ ५९ ॥

वातादि दोष रक्तधातुओंमें आश्रित होकर सततकज्वरको उत्पन्न करते हैं । यह ज्वर जिस दोषसे जिस कालमें उत्पन्न होता है उसीको वृद्धिसे वृद्धिको और क्षयसे क्षयको प्राप्त होता है । सततकज्वर एक दिनरात्रिमें दोबार कोप और शान्तिको प्राप्त होता है । यह काल, प्रकृति और दूष्यके बलसेही वेग और शान्तिको धारण करता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

इकतराज्वर लक्षण ।

दोषो मेदोवहा रुद्धा नाडीरन्येद्युकं ज्वरम् ।
सप्रत्यनीकः कुरुते एककालमहर्निशम् ॥ ६० ॥

वातादि दोष मेदके वहन करनेवली नाडियोंको रोककर अन्येद्यु (इकतरा) ज्वरको उत्पन्न करते हैं । यह ज्वर अपने दोष, काल आदि बलका आश्रय लेकर एक दिनरात्रमें एक बार आता है ॥ ६० ॥

तृतीयक चातुर्थिक ज्वरलक्षण ।

दोषोऽस्थिमज्जगः कुर्य्यात्तृतीयकचतुर्थकौ ।
गतिर्द्व्येकान्तरान्येद्युर्दोषस्योक्तान्यथा परैः ॥ ६१ ॥

दोष मज्जामें प्राप्त होकर दोष, काल, प्रकृति आदिके बलको क्रमपूर्वक प्राप्त होकर तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करते हैं । तृतीयकज्वर तीसरे दिन और चातुर्थिक चौथे दिन आता है । इसप्रकार एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वरकी गतिको कहा ॥ ६१ ॥

इनका धातुभेदसे कथन।

रक्तमेवाभिसंसृज्य कुर्य्यादन्येद्युकं ज्वरम्।
मांसस्रोतांस्यनुसृतो जनयेत्तु तृतीयकम्॥ ६२॥
ज्वरदोषः संसृतो हि मेदोमार्गं चतुर्थकम्।
अन्येद्युष्कः प्रतिदिनं दिनं क्षिप्त्वा तृतीयकः।
दिनद्वयं यो विश्राम्य प्रत्येति स चतुर्थकः॥ ६३॥

दोष रक्तमें मिलकर अन्येद्युज्वरको उत्पन्न करते हैं। मांसके स्रोतोंमें प्रवेशकर तृतीयक ज्वरको उत्पन्न करते हैं। इसीप्रकार मेदवाहीस्रोतोंमें प्रवेशकर चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अन्येद्युज्वर दिनरात्रिमें एकवार कोपको करता है। तृतीयकज्वर एक दिन बीचमें छोडकर दूसरेदिन कोपको धारण करता है। चातुर्थिक ज्वर दो दिन मेद, मज्जा आदि धातुओंमें छिपा रहकर चौथे दिन अपने वेगको धारण करता है॥ ६२॥ ६३॥

इनके कोपमें दृष्टांत।

अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले च रोहति।
अधिशेते तथा धातुं दोषः काले च कुप्यति॥ ६४॥
ते वृद्धिं बलकालञ्च प्राप्य दोषास्तृतीयकम्।
चतुर्थकञ्च कुर्वन्ति प्रत्यनीकं बलक्षयात्॥ ६५॥
कृत्वा वेगं गतबलाः श्लेष्मस्थाने व्यवस्थिताः।
पुनर्विवृद्धाः स्वे काले ज्वरयन्ति नरं मलाः॥ ६६॥

जैसे अनेक प्रकारके बीज पृथ्वीमें रहतेहुए अथवा पृथ्वीमें गिरकर अपने समयके ऊपर काल पाकर प्रगट होजाते हैं उसीप्रकार दोष धातुओंमें शयन करतेहुए प्रकृति और काल आदिकाः बल पाकर कोपको प्राप्त होते हैं। जब उनका समय आता है तो वातादि तीनों दोष तृतीयक या चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि, दोष धातु आदिकोंमें शयन करतेहुए एक अथवा दो दिन अपना बल न पाकर क्षीणताको प्राप्तहुए रहते हैं। फिर बल, कालको प्राप्त होकर अपने वेगको धारण करते हैं फिर वेगके क्षय होनेसे कफके स्थानमें गतबल होकर स्थित रहते हैं फिर वृद्धिको प्राप्त होकर अपने समयपर ज्वरके वेगको उत्पन्न करते हैं॥ ६४–६६॥

तृतीयक ज्वरके तीन प्रकार।

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः।
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः॥ ६७॥

यदि तृतीयक ज्वर कफ, पित्त प्रधान हो तो प्रथम कमरके तिहड्डेमें अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करता है । यदि वातकफप्रधान हो तो पहिले पीठको जकड देता है । और वातपित्तप्रधान होनेसे प्रथम शिरमें पीडाको प्रगट करता है इस प्रकार तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका होता है ॥ ६७ ॥

चातुर्थिकके दो प्रकार ।

चतुर्थको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः ।
जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरस्तोऽनिलसम्भवः ॥ ६८ ॥

चातुर्थिकज्वर भी अपने दो प्रकारके प्रभावोंको दिखाता है । यदि वह कफप्रधान हो तो प्रथम जांघोंसे प्रवृत्त होता है । और वातप्रधान होनेसे पहिले शिरसे प्रवृत्त होता है ॥ ६८ ॥

चातुर्थिक विपर्यय ।

विषमज्वर एवान्यश्चातुर्थिकविपर्य्ययः।
त्रिविधो धातुरेकैको द्विधातुस्थः करोत्ययम् ॥ ६९ ॥

एक चातुर्थिकज्वरसे विपरीत प्रकारका और विषमज्वर है । यह बीचमें दो दिन ज्वरके वेगको धारणकरके आदि और अन्तके दिनोंमें अपने वेगको नहीं करता । यह चातुर्थिक और तृतीयक ज्वरके विपर्ययसेही होता है । दोष एक एक धातु अथवा दो दो धातुमें स्थित होकर विषमज्वरको प्रगट करते हैं ॥ ६९ ॥

विषमज्वरोंको त्रिदोषत्व ।

प्रायशः सन्निपातेन दृष्टः पञ्चविधो ज्वरः ।
सन्निपाते तु यो भूयान् स दोषः परिकीर्तितः ॥ ७० ॥

प्रायः यह पांच प्रकारकेही विषमज्वर वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके सन्निपातसेही होते हैं । इन तीनों दोषोंमें जो दोष प्रधान होता है वही दोष मुख्य माना-जाता है ॥ ७० ॥

ऋत्वहोरात्रदोषाणां मनसश्च बलाबलात् ।
कालमर्थवशाच्चैव ज्वरस्तं तं प्रपद्यते ॥ ७१ ॥

सब मनुष्योंको ऋतु, दिन, रात्रि, दोष और मनके बल तथा समय और कर्मके आधीन होकर अनेक प्रकारके ज्वर उत्पन्न होते हैं । जिस समय जिस ज्वरके जिस प्रकार काल, कारण आदि उपस्थित होते हैं उस समय उसी प्रकारका ज्वर उत्पन्न होजाता है ॥ ७१ ॥

रसगतज्वरके लक्षण।

गुरुत्वं शीतमुद्वेगः सदनं छर्द्यरोचकौ।
रसस्थिते बहिस्तापः साङ्गमर्दो विजृम्भणम्॥ ७२॥

शरीरमें गौरव, शीत लगना, मनमें उद्वेग होना, अंगोंका रहजाना, छर्दिहोना, एवं अरुचि, शरीरके बाहर सन्ताप होना, अंगमर्द और जँभाई आना यह रसगत ज्वरके लक्षण होते हैं॥ ७२॥

रक्तगतज्वरके लक्षण।

रक्तोत्थाः पिडकास्तृष्णा सरक्तं ष्ठीवनं मुहुः।
दाहरागभ्रममदाः प्रलापो रक्तसंस्थिते॥ ७३॥

शरीरपर रक्त विकारकी फुंसियेंसी होना, प्यास लगना, बारबार थूकमें रक्तका आना, दाह होना एवं राग, भ्रम, मद और प्रलापका होना यह लक्षण रक्तमें प्राप्त-हुए ज्वरके होते हैं॥ ७३॥

मांसगतज्वरके लक्षण।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा ग्लानिः संसृष्टविट्कता।
दौर्गन्ध्यं गात्रविक्षेपो ज्वरे मांसस्थिते भवेत्॥ ७४॥

भीतर बहुत दाह होना, प्यास, ग्लानि, मलका पतला होकर निकलना अथवा अधिक आना, शरीरमें दुर्गंधका होना यह मांसमें प्राप्त ज्वरके लक्षण होते हैं॥७४॥

मेदगतज्वरके लक्षण।

स्वेदस्तीव्रा पिपासा च प्रलापारत्यभीक्ष्णशः।
स्वगन्धास्यासहत्वञ्च मेदःस्थे ग्लान्यरोचकौ॥ ७५॥

पसीना आना, तीव्र प्यास, बकवाद, निरंतर अरति, अपने शरीरकी गन्ध सहन न कर सकना, ग्लानि और अरुचि यह सब मेदगत ज्वरके लक्षण होते हैं॥ ७५॥

अस्थिगत ज्वरके लक्षण।

विरेकवमने चोभे सास्थिभेदं प्रकूजनम्।
विक्षेपणञ्च गात्राणां श्वासश्चास्थिगते ज्वरे॥ ७६॥

वमन विरेचनका होना, अस्थियांमें भेदनकीसी पीडा, कण्ठ अथवा आंतोंका कूजना, हाथ पांव आदि शरीरके अंगोंका इधर उधर फेंकना और श्वास यह सब अस्थिगत ज्वरके लक्षण होते हैं॥ ७६॥

मज्जागत ज्वरके लक्षण।

हिक्काश्वासस्तथा कासस्तमसश्चातिदर्शनम्।

मर्मच्छेदो बहिः शैत्यं दाहोऽन्तश्चैव मज्जगे ॥ ७७ ॥

हिचकी, श्वास, खांसी, अंधकार दिखाई देना, बारबार आंखोंके आगे अन्धेरा होना, मर्मस्थानोंमें पीडा होना, शरीरके बाहर शीतलता और भीतर अत्यन्त दाह यह सब मज्जागत ज्वरके लक्षण होते हैं ॥ ७७ ॥

शुक्रगतज्वरके लक्षण ।

शुक्रस्थानगते शुक्रमोक्षं कृत्वा विनाश्य च ।

प्राणवाय्वग्निसोमैश्च सार्द्धं गच्छत्यसौ विभुः ॥ ७८ ॥

शुक्रस्थानमें प्राप्तहुआ ज्वर वीर्यको बारबार निकालता है फिर वीर्यको नष्ट करके यह विभुज्वर प्राणवायु और अग्नि तथा सोमके साथ चलाजाता है अर्थात् मनुष्यको मारडालता है ॥ ७८ ॥

इनकी साध्यासाध्यता ।

रसरक्ताश्रितः साध्यो मेदोमांसगतश्च यः ।

अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रः शुक्रस्थो नैव सिध्यति ॥ ७९ ॥

रसगत और रक्तगत यह ज्वर साध्य होते हैं । एवं मेद और मांसगत ज्वर भी साध्य हो सकते हैं अस्थिगत और मज्जागत ज्वर कृच्छ्रसाध्य होते हैं । परन्तु शुक्रगत ज्वर सर्वथा असाध्य ही होता है ॥ ७९ ॥

विशेषतासे ज्वरोंका वर्णन ।

हेतुभिर्लक्षणैश्चोक्तः पूर्वमष्टविधो ज्वरः ।

समासेनोपदिष्टस्य व्यासतः शृणु लक्षणम् ॥ ८० ॥

पहिले हेतु और लक्षणोंसे संक्षेपसे आठ प्रकारका ज्वर कहचुके हैं । अब विस्तारपूर्वक उनके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ८० ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

शिरोरुक्पर्वणां भेदो दाहो रोम्णां प्रहर्षणम् ।

कण्ठास्यशोषो वमथुस्तृष्णा मूर्च्छा भ्रमोऽरुचिः ॥ ८१ ॥

स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भा वातपित्तज्वराकृतिः ॥ ८२ ॥

शिरमें पीडा होना, सम्पूर्ण गांठोंमें भेदनेकीसी पीडा, दाह, रोमोंका खडा होना, कण्ठ और मुखका सूखना, वमनका आना, प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, अरुचि, नींदका न आना, बकवाद, जंभाई यह सब वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

वातकफज्वरके लक्षण ।

शीतको गौरवं तन्द्रा स्तैमित्यं पर्वणाञ्च रुक् ।

शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्त्तनम् ।
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ८३ ॥

शीतका लगना, गौरव, तंद्रा, स्तैमित्य (शरीर गीले कपडेसे लिपटाहुआसा प्रतीत होना) संधियोंमें पीडा होना, शिरका भारी और पीडायुक्त होना, प्रतिश्याय (जुकाम) खांसी, पसीनेका न आना, संताप और ज्वरका वेग मध्यम होना यह वातकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ८३ ॥

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं स्वेदस्तम्भौ मुहुर्मुहुः ।
मोहः कासोऽरुचिस्तृष्णाश्लेष्मापित्तप्रवर्तनम् ।
लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ ८४ ॥

बारंबार गर्मीकी दाह होना, बारंबार शीत लगना, बारंबार पसीना आना, बारबार शरीरका स्तंभ होना, एवं मोह (बेहोशी), खांसी, अरुचि, प्यास और मुख कफ तथा पित्तसे लिपायमान होना, तथा मुखसे कफ और पित्तका गिरना, मुख कडुआ रहना और तंद्रा यह कफ और पित्तज्वरके लक्षण होते हैं ॥ ८४ ॥

इत्येते द्वन्द्वजाः प्रोक्ताः सन्निपातज उच्यते ।
सान्निपातज्वरस्योर्द्ध्वं त्रयोदशविधस्य हि ॥ ८५ ॥
प्राक्सूत्रितस्य वक्ष्यामि लक्षणं वै पृथक् पृथक् ॥ ८६ ॥

इस प्रकार द्वंद्वज (द्विदोषज) ज्वरोंका कथन कियागया है । अब सन्निपात (त्रिदोष)से उत्पन्न हुए ज्वरका कथन करते हैं। पहिले तेरह प्रकारके सन्निपातोंका सूत्ररूपसे कथन कर आये हैं । अब उन तेरह सन्निपातोंके लक्षणोंको पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

वातपित्तोल्बण सन्निपातके लक्षण ।

वातपित्तोल्बणे विद्याल्लिङ्गं मन्दकफे ज्वरे ।
भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक् ॥ ८७ ॥

जिस सन्निपातमें वात और पित्त यह दो दोष बहुत बढेहुए हों तथा कफ हीनलक्षणवाली हो उस सान्निपातिक ज्वरके यह लक्षण होतेहैं । जैसे भ्रम, प्यास, दाह, गुरुता, शिरमें अत्यंत पीडा ॥ ८७ ॥

---

१ यद्यपि वातज्वरमें और कफज्वरमें पसीना नहीं आता. परन्तु वात और कफ दोनोंकी विषमतासे मिलकर प्रवृत्ति होनेसे पसीनेका आगमन होजाता है । इसलिये "स्वेदाप्रवर्त्तनम्" का अर्थ इस जगह स्वेदकी आसमन्तात् प्रवृत्ति जानना ।

वातकफोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

शैत्यं कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासा दाहरुग्व्यथा ।
वातश्लेष्मोल्बणे व्याधौ लिङ्गं पित्तावरे विदुः ॥ ८८ ॥

शीत लगना, खांसी, अरुचि, तंद्रा, प्यास, दाह, पीडा और व्याकुलता यह लक्षण वातकफोल्बण और हीनपित्त सन्निपातके होते हैं ॥ ८८ ॥

पित्तकफोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना ।
मन्दवाते व्यवस्यन्ते लिङ्गं पित्तकफोल्बणे ॥ ८९ ॥

छर्दि होना, बारबार शीत लगना और दाह होना, प्यास, मोह, हाड्डियोंमें पीडा यह पित्तकफोल्बण और हीनवात सन्निपातज्वरके लक्षण हैं ॥ ८९ ॥

वातोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

सन्ध्यस्थिशिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः ।
वातोल्बणे स्याद्व्यनुगे तृष्णाकण्ठास्यशोषता ॥ ९० ॥

संधियोंमें, अस्थियोंमें तथा शिरमें पीडा होना, बकवाद, गौरव, प्यास, कण्ठ और मुखका सूखना यह वातोल्वण और हीन पित्तकफ सन्निपातके लक्षण हैं ॥९०॥

पित्तोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

रक्तविण्मूत्रता दाहः स्वेदस्तृड्बलसंक्षयः ।
मूर्च्छा चातित्रिदोषेस्याल्लिङ्गं पित्ते गरीयसि ॥ ९१ ॥

मलमूत्रका रक्तके समान होना, दाह, स्वेद, प्यास, बलकी हानि, अत्यन्त मूर्च्छा यह पित्तोल्बण हीनवातकफ सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९१ ॥

कफोल्वणस० ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहस्तृष्णावमिभ्रमैः ।
कफोल्बणं सन्निपातं तन्द्रा कासेन चादिशेत् ॥ ९२ ॥

आलस्य, अरुचि, हृल्लास (जीमचलाना), दाह, वमन, तृषा, भ्रम, तन्द्रा और खांसी यह कफोल्वण हीनवातपित्त सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९२ ॥

हीनवातमध्यकफपित्तोल्वणस० ।

प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यं तन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् ।
हीनवाते पित्तमध्ये चिह्नं श्लेष्माधिके मतम् ॥ ९३ ॥

प्रतिश्याय, वमन, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि और अग्निका मंद होना यह हीनवात मध्यपित्त कफोल्वण सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९३ ॥

हीनवातमध्यकफपित्ताधिकसं०।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं दाहस्तृष्णा भ्रमोऽरुचिः।
हीनवाते मध्यकफे लिङ्गं पित्ताधिके मतम् ॥ ९४ ॥

मूत्र और नेत्र हल्दीके समान होना, दाह, भ्रम और अरुचि यह हीनवात, मध्यकफ, पित्तोल्वण सान्निपातके लक्षण हैं ॥ ९४ ॥

हीनपित्त मध्यकफ वाताधिकसं०।

शिरोरुग्वेपथुः श्वासः प्रलापच्छर्घरोचकाः।
हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ ९५ ॥

शिरमें पीडा, कम्प, श्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि यह हीनपित्त, मध्यकफ, वाताधिक्य सन्निपातके लक्षण होते हैं ॥ ९५ ॥

हीनपित्त मध्यवात कफाधिक सं०।

शीतकं गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक्।
हीनपित्ते वातमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके विदुः ॥ ९६ ॥

शीतका लगना, गुरुता, तंद्रा, बकवाद, हड्डियोंमें पीडा, शिरमें पीडा यह हीनपित्त मध्यवात, कफाधिक्य सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९६ ॥

कफहीन वातमध्य पित्ताधिक सं०।

पर्वभेदोऽग्निमान्द्यं च तृष्णादाहोऽरुचिर्भ्रमः।
कफहीने वातमध्ये लिङ्गं पित्ताधिके विदुः ॥ ९७ ॥

संधियोंमें पीडा, मंदाग्नि, प्यास, दाह, अरुचि और भ्रम यह हीनकफ, मध्यवात और पित्ताधिक्य सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९७ ॥

कफहीन वातमध्य पित्ताधिक सं०।

श्वासकासप्रतिश्याया मुखशोषोऽतिपार्श्वरुक्।
कफहीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ ९८ ॥

श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, मुखका सूखना, पसलीमें अत्यन्त पीडा होना, यह हीनकफ, मध्यपित्त, वाताधिक्य सन्निपातके लक्षण होते हैं ॥ ९८ ॥

सन्निपातके लक्षण।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वमतो वक्ष्यामि लक्षणम्।
क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजः।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि दर्शने ॥ ९९ ॥

सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः ।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १०० ॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम् ।
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ १०१ ॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ १०२ ॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम् ।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ १०३ ॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ।
चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ १०४ ॥

इसके उपरान्त अब सन्निपात ज्वरके लक्षणोंको कथन करते हैं। जैसे-क्षणमें दाह और क्षणमें शीत लगने लगे, हड्डियोंमें संधियोंमें तथा शिरमें अत्यन्त पीडा हो, नेत्रोंसे जलका स्राव हो, नेत्र कलुषित लालवर्णके और टेढेसे होजांय एवम् भ्रमितसी दृष्टि होजाय। कानोंमें पीडा होना, और शब्दोंका सुनाई देना, कांटोंसे रुकासा प्रतीत होना, तन्द्रा, बेहोशी, बकवाद, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम, जीभका खरदरा होना, और जलीहुईसी प्रतीत होना, संपूर्ण अंगोंका ढीला पडजाना, कफसे मिलेहुए रक्तपित्तका मुखसे निकलना, शिरका इधर उधर पटकना, प्यास, नींदका न आना, हृदयमें पीडा होना, पसीना, मूत्र और पुरीष इनका बहुत देरमें और बहुत थोडा निकलना, शरीरका नशेमें पुष्टसा प्रतीत होना, कण्ठका निरन्तर गूंजना, शरीरमें काले अथवा लालवर्णके चकत्ते और मण्डलसे दिखाई देना, बोलना बंद होजाना, स्रोतोंका परिपाक होना, पेटका भारी होना, दोषोंका बहुत देरमें पकना यह सन्निपातज्वरमें लक्षण होते हैं ॥ ९९-१०४ ॥

इसकी असाध्यता।

दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्त्वतोऽन्यथा ॥ १०५ ॥

जिस सन्निपातमें जठराग्नि नष्ट होजाय और दोष बलवान् हों एवं सम्पूर्ण लक्षण प्रगट हों वह सन्निपात असाध्य होता है। इससे विपरीत अर्थात् दोष बलवान् न हों जठराग्नि नष्ट न हुई हो सम्पूर्ण लक्षण न हों तो सन्निपातज्वर कष्टसाध्य होता है १०५

निजज्वरोंका निर्देश।

निदाने त्रिविधा प्रोक्ता या पृथक्त्वज्वराकृतिः।
संसर्गसन्निपातानां तथा चोक्तं स्वलक्षणम्॥ १०६॥

वातज्वरके और पित्तज्वरके तथा कफज्वरके लक्षणोंको निदानस्थानमें कह आये हैं और द्वन्द्वज तथा सन्निपातोंके लक्षणोंको यहांपर कह दिया है॥ १०६॥

आगंतुकज्वरोंके ४ प्रकार।

आगन्तुरष्टमो यस्तु स निर्दिष्टश्चतुर्विधः।
अभिघाताभिषङ्गाभ्यामभिचाराभिशापतः॥ १०७॥

आगन्तु जो आठवां ज्वर है वह चार प्रकारका कहा है। जैसे—अभिघातनिमित्तक, अभिषंगनिमित्तक, अभिचारनिमित्तक और अभिशापनिमित्तक॥ १०७॥

अभिघातज्वरके लक्षण।

शस्त्रलोष्टकशाकाष्ठमुष्टयरत्नितलद्विजैः।
तद्विधैश्च हते गात्रे ज्वरः स्यादभिघातजः॥ १०८॥
तत्राभिघातजो वायुः प्रायो रक्तं प्रदूषयन्।
सव्यथाशोफवैवर्ण्यं करोति सरुजं ज्वरम्॥ १०९॥

शस्त्र, पत्थर, पोरडा, लकडी, मुक्का, थप्पड, दांत आदिके लगनेसे तथा इसी प्रकारके अन्य किसी चोट आदिके लगजानेसे शरीरमें जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको अभिघात निमित्तक कहते हैं। उस चोट आदिके लगनेसे शरीरमें वायु कुपित होकर प्रायः रक्तको दूषित करताहुआ पीडा, व्याकुलता, सूजन, विवर्णता आदि वेदनायुक्त ज्वरको उत्पन्न करता है। इस ज्वरको अभिघात ज्वर कहते हैं१०८॥१०९॥

कामशोकभयक्रोधैरभिषक्तस्य यो ज्वरः।
सोऽभिषङ्गज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषङ्गजः॥ ११०॥
कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात् कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः॥ १११॥
भूताधिकारे व्याख्यातं तदष्टविधलक्षणम्॥ ११२॥

काम, क्रोध, शोक, भय आदिसे व्याकुल होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको अभिषंगज्वर कहते हैं। और भूतादिकोंके आवेश होनेसे भी अभिषंगज्वर उत्पन्न होजाता है। काम, क्रोध और भयसे वायु क्रोधसे पित्त और भूतोंके आवेशसे तीनों दोष कुपित होते हैं। उन भूतोंके आवेशसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें जिन २ भूतादिकोंसे

वह उत्पन्न होते हैं उन्हींके समान उनमें लक्षण होते हैं। इन आठ प्रकारके भूतादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको भूताधिकारमें प्रथम कहचुके हैं ॥ ११०–११२ ॥

विषवृक्षानिलस्पर्शात्तथान्यैर्विषसम्भवैः ।
अभिषक्तस्य चाप्याहुर्ज्वरमेकेऽभिषङ्गजम् ।
चिकित्सया विषघ्न्यैव प्रशमं लभते नरः ॥ ११३ ॥

विषैले वृक्षोंकी वायुकी स्पर्श होनेसे अन्य विषैली वायु लगनेसे ज्वर उत्पन्न होजाता है। या किसी विषके संसर्गसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको भी अभिषंग ज्वर कहते हैं। ऐसे ज्वरोंमें विषनाशक चिकित्सा करनेसे ही मनुष्यको शान्ति प्राप्त होती है ॥ ११३ ॥

अभिचार और अभिशापज्वरके लक्षण।

अभिचाराभिशापाभ्यां सिद्धानां यः प्रवर्त्तते ।
सन्निपातज्वरो घोरः स विज्ञेयः सुदुःसहः ॥ ११४ ॥

अभिचार अर्थात् किसी मारण मन्त्र आदि प्रयोगसे अथवा देवता, सिद्ध आदिकोंके अभिशापसे जो ज्वर उत्पन्न होता है वह सन्निपातके लक्षणवाला घोरज्वर दुःसह और दुश्चिकित्स्य होता है ॥ ११४ ॥

सन्निपातज्वरस्योक्तं लिङ्गं यत्तस्य तत्स्मृतम् ।
चित्तेन्द्रियशरीराणामर्त्तयोऽन्याश्च नैकशः ॥ ११५ ॥

सन्निपातज्वरके जो लक्षण कहचुके हैं वही लक्षण अभिशाप और अभिचारसे उत्पन्न हुए ज्वरमें भी होते हैं तथा मन, इन्द्रिय और शरीरमें अनेक प्रकारकी विचित्र पीडायें होतीहैं ॥ ११५ ॥

प्रयोगस्त्वभिचारस्य दृष्ट्वा शापस्य चैव हि ।
स्वयं श्रुत्वानुमानेन लक्ष्यते प्रशमेन वा ॥ ११६ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको देखकर, सुनकर, अनुमान और युक्तिद्वारा विचारकर निश्चय करे। अथवा मन्त्र तन्त्र आदिसे वा अन्य बलिदानादि कर्म करनेसे यदि वह शान्त हो तब भी उसको अभिचारादिसे उत्पन्न हुआ जान॥ ११६॥

वैविध्यादभिचारस्य शापस्य च तदात्मके।
यथाकर्मप्रयोगेण लक्षणं स्यात्पृथग्विधम् ॥ ११७ ॥

अभिचार और अभिशाप अनेक प्रकारके होते हैं इसलिये उनके लक्षण और

कर्म भी जो २ जिस प्रकार उत्पन्न हुए हों उस उस प्रकारके अलग अलग होते हैं। उनको वैद्य अनुमान और बुद्धिद्वारा निश्चय करे ॥ ११७ ॥

काम शोक और भय ज्वरके लक्षण।

ध्यानानिःश्वासबहुलं लिङ्गं कामज्वरे स्मृतम्।
शोकजे बाष्पबहुलं त्रासप्रायं भयज्वरे ॥ ११८ ॥

एकओर ध्यान लगा रहना, श्वास अधिक चलना, यह कामज्वरमें लक्षण होते हैं। शोकज्वरमें–अत्यन्त बाष्प (मुखसे आह ऐसी फुंकार) निकलती है। भयज्वरमें डर अधिक लगा करता है ॥ ११८ ॥

क्रोध, भूतावेश तथा विषसे उत्पन्नहुए ज्वरके ल०

क्रोधजे बहुसंरम्भं भूतावेशे त्वमानुषम्।
मूर्च्छामोहमदग्लानिभूयिष्ठं विषसम्भवे ॥ ११९ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें संरम्भ (अत्यन्त क्रोध और कंप) उत्पन्न होता है। भूतावेशसे उत्पन्न हुए ज्वरमें अमानुषीय लक्षण प्रगट होते हैं। विषसे उत्पन्न हुए ज्वरमें बेहोशी, मद और ग्लानिकी अधिकता होती है ॥ ११९ ॥

इन ज्वरोंमें विशेष वक्तव्य।

केषाञ्चिदेषां लिङ्गानां सन्तापो जायते पुरः।
पश्चात्तुल्यं तु केषाञ्चिदेषु कामज्वरादिषु ॥ १२० ॥
कामादिजानामुद्दिष्टं ज्वराणां यद्विशेषणम्।
कामादिजानां रोगाणामन्येषामपि तत्स्मृतम् ॥ १२१ ॥

इन कामज्वर आदिकोंमें किसी २ मनुष्यको तो ज्वरके प्रथम ही सन्ताप और इन लक्षणोंका आविर्भाव होजाता है और किसी २ मनुष्यको ज्वरके पीछे या किसीको साथ ही ये लक्षण प्रगट होते हैं। कामादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें जो उनके लक्षण कहेगये हैं वह कामादिकोंसे उत्पन्न हुए अन्य रोगोंमें भी जानने ॥ १२० ॥ १२१ ॥

आगन्तुजज्वरोंकी भेदता।

ते पूर्वं केवलाः पश्चान्निजैर्व्यामिश्रलक्षणाः।
हेत्वौषधिविशिष्टाश्च भवन्त्यागन्तवो ज्वराः ॥ १२२ ॥
मनस्यभिद्रुते पूर्वं कामाद्यैर्न तथा बलम्।
ज्वरः प्राप्नोति कामाद्यैर्मनो यावन्न दूष्यति ॥ १२३ ॥

आगन्तुजज्वर पहिले तो केवल आगन्तुज लक्षणोंसे संयुक्त होते हैं और आग-

न्तुज कहेजाते हैं फिर वह वातादिकोंसे संयुक्त होनेपर निज रोगोंके लक्षणोंसे भी सम्मिलित होजाते हैं। आगन्तुक ज्वरोंके हेतु अर्थात् कारण और चिकित्सा निज ज्वरोंके समान नहीं होती। आगन्तुक ज्वरोंमें पहिले मनमें कामादि व्यथा उत्पन्न होकर पीछे ज्वर उत्पन्न होता है। निज ज्वरोंके समान वह ज्वर शरीरमें पहिले बल नहीं पाता। जबतक मन दूषित नहीं होता तबतक कामादि ज्वर बलको प्राप्त नहीं होते ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

ज्वरोंकी सम्पत्ति।

संसृष्टाः सन्निपतिताः पृथग्वा कुपिता मलाः।
रसाख्यं धातुमन्वेत्य पक्तिं स्थानान्निरस्य च ॥ १२४ ॥
स्वेन तेनोष्मणा चैव कृत्वा देहोष्मणे बलम्।
स्रोतांसि रुद्ध्वा सम्प्राप्ताः केवलं देहमुल्बणाः ॥ १२५ ॥
सन्तापमधिकं देहे जनयन्ति नरस्तदा।
भवत्यत्युष्णसर्वाङ्गो ज्वरितस्तेन चोच्यते ॥ १२६ ॥

संपूर्ण वातादि दोष अलग २ अथवा दो दो मिलकर या तीनों जब अपने कारणोंसे कुपित होते हैं तो आमाशयमें स्थित होकर रसनामक धातुके साथ मिलजाते हैं फिर पाचकअग्निको उसके स्थानसे बाहर निकालकर उसकी गर्मीसे संपूर्ण देहको गर्म कर देते हैं। और स्वयं वृद्धिको प्राप्त हुए स्रोतोंको रोक देते हैं तब स्रोतोंके रुकजानेसे वह अपने स्थानसे निकलीहुई अग्नि मनुष्योंके शरीरमें अत्यंत संतापको उत्पन्न कर देती है। उससे मनुष्यका संपूर्ण शरीर तपाहुआ होनेपर इस मनुष्यको ज्वर चढा ऐसा कहाजाता है ॥ १२५-१२६ ॥

आमज्वरके लक्षण।

स्रोतसां संनिरुद्धत्वात्स्वेदं नानाधिगच्छति।
स्वस्थानात्प्रच्युते चाग्नौ प्रायशस्तरुणे ज्वरे ॥ १२७ ॥

स्रोतोंके रुकेरहनेसे और जठराग्निके अपने स्थानसे अलग होजानेसे तरुणज्वरमें प्रायः मनुष्यको पसीना नहीं आता ॥ १२७ ॥

अरुचिश्चाविपाकश्च गुरुत्वमुदरस्य च।
हृदयस्याविशुद्धिश्च तन्द्रा चालस्यमेव च ॥ १२८ ॥
ज्वरोऽविसर्गी बलवान् दोषाणामप्रवर्त्तनम्।
लालाप्रसेको हृल्लासो क्षुन्नाशोऽविशदं मुखम् ॥ १२९ ॥

स्तब्धसुप्तगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुमूत्रता।
न विड्जीर्णा न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम् ॥ १३० ॥

अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, पेटका भारीपन, हृदयकी अशुद्धि, तंद्रा, आलस्य, ज्वरका वेग रहना और बलवान् होना, दोषोंका न निकलना, मुखसे लार गिरना, जी मचलाना, भूख न लगना, मुख लवाबसे लिपासा रहना, शरीर जकडा-हुआसा होना, अंगोंका सोना, शरीरमें भारीपन, पेशाब अधिक आना, मलका न पकना यह आमज्वरके लक्षण हैं ॥ १२८-१३० ॥

निरामज्वरलक्षण।

क्षुत्क्षामता लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम्।
दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ १३१ ॥

क्षुधा लगना, शरीरका हलका होना, ज्वरका नरम पडजाना एवं शरीर और अंगोंका नरम होना और पसीनायुक्त होना, दोषोंका निकलना, शरीरमें उत्साह होना यह निराम (पकेहुए) ज्वरके लक्षण हैं ॥ १३१ ॥

नवज्वरमें वर्जित वस्तु।

नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम्।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत् ॥ १३२ ॥

नवीन ज्वरमें दिनमें सोना, स्नान करना, तेल आदि मलना, अन्न, मैथुन, क्रोध, अधिक वायुका सेवन, परिश्रम और ज्वरनाशक उत्कट काथोंका पीना इन सबको त्यागदेना चाहिये ॥ १३२ ॥

लंघनका निर्देश।

ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ १३३ ॥

ज्वरके आदिमें लंघन करना ही हितकर कहा है। परन्तु क्षयज्वर, वातज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर और शोकज्वरमें लंघन नहीं करना चाहिये ॥ १३३ ॥

लंघनके गुण।

लङ्घनेन क्षयं नीते दोषे सन्धुक्षितेऽनले।
विज्वरत्वं लघुत्वञ्च क्षुच्चैवास्योपजायते ॥ १३४ ॥

लंघनके करनेसे दोष क्षय होकर चैतन्य होजाता है। फिर मनुष्यका ज्वर दूर होजाता है। शरीर हल्का होजाता है और भूख लगने लगती है ॥ १३४ ॥

अधिक लंघन करनेका दोष।

प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ १३५ ॥

ज्वरवाले मनुष्यको लंघन इतना करना चाहिये जिससे उसके प्राणोंको बाधा न हो क्योंकि मनुष्यकी आरोग्यता प्राणबलके ही आश्रय है और उस आरोग्यताके लिये ही चिकित्साका प्रयोजन है ॥ १३५ ॥

तरुणज्वरमें निर्देश।

लङ्घनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः ।
पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणे ज्वरे ॥ १३६ ॥

तरुणज्वरमें लंघन (उपवास), पसीनादेना (वालुकास्वेद आदि), समय, यवागू, तिक्तरस तथा अन्य पाचन द्रव्य यह सब विना पके दोषोंको पाचन करनेवाले हैं ॥ १३६ ॥

ज्वरमें जलके नियम।

तृष्यते सलिलञ्चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे ।
मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ १३७ ॥
दीपनं पाचनञ्चैव ज्वरघ्नमुभयं हि तत् ।
स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदकरं शिवम् ॥ १३८ ॥

वायु और कफके ज्वरमें प्यास लगनेपर गरम जल पीनेको देना चाहिये, मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वर और पित्तके ज्वरमें तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध किया जल शीतलकर पीनेको देना चाहिये। यह दोनों प्रकारके जल दीपन, पाचन और ज्वरको नष्ट करनेवाले हैं तथा स्रोतोंको शुद्ध करनेवाले बलकारक, रुचिकारक, पसीनेके लानेवाले और कल्याणकारी होते हैं ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

मुस्तकादिसे शृत जल।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतं जलं दद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥ १३९ ॥

नागरमोथा, पापडा, खस, चन्दन, नेत्रवाला और सोंठ इनसे उबाले जलको शीतल कर ज्वरवाले मनुष्यको प्यासकी शान्तिके लिये देना चाहिये ॥ १३९ ॥

ज्वरमें वमनका योग।

कफप्रधानानुत्क्लिष्टान् दोषानामाशयस्थितान् ।
बुद्ध्वा ज्वरकरान् काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ १४० ॥

जिस ज्वरमें कफ प्रधान हो और दोष उत्क्लेशित होकर वमन द्वारा निकलना चाहते हों तथा वह दोष उखडकर आमाशयमें स्थित हों ऐसे समय यदि वैद्य रोगीको वमन कराने योग्य देखे और वसन्तऋतु आदि वमनका काल उपस्थित हो तो विचारपूर्वक उन ज्वरकारक दोषोंको वमनद्वारा निकाल डाले ॥ १४० ॥

तरुण ज्वरमें वमनके दोष।

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणे ज्वरे।
हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहञ्च जनयेद्भृशम् ॥ १४१ ॥

जिस मनुष्यके दोष निकलनेके लिये उत्क्लेशित होकर उपस्थित न हो और ज्वर कच्चा हो, ऐसे समय यदि वमन करायाजाय तो हृद्रोग, अफारा, बेहोशी इनको प्रगट कर देता है इसलिये तरुणज्वरमें वमन नहीं कराना चाहिये ॥ १४१ ॥

सर्वदेहानुगाः सामा धातुस्था दुःखनिर्हराः।
दोषाः फलेभ्य आमेभ्यः स्वरसा इव सात्ययाः ॥ १४२ ॥

जैसे कच्चे फलमेंसे रस निकालने लगें तो वह फल सर्वथा नष्ट होजाता है उसी प्रकार कच्चे ज्वरमें दोष कच्चे होनेसे संपूर्ण देह और धातुओंमें व्यापक होते हैं। उस समय निकाले जानेसे शरीरमें अनेक प्रकारके दुःख उत्पन्न करते हैं ॥ १४२ ॥

यवागूका निर्देश और गुण।

वमितं लङ्घितं काले यवागूभिरुपाचरेत् ।
यथा स्वौषधसिद्धाभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः ॥ १४३ ॥
यावज्ज्वरमृदूभावात्षडहं वा विचक्षणः।
तस्याग्निर्दीप्यते ताभिः समिद्भिरिव पावकः ॥ १४४ ॥
ताश्च भेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः।
वातमूत्रपुरीषाणां दोषाणाञ्चानुलोमनाः ॥ १४५ ॥

वमन करायेहुए अथवा लंघन किये मनुष्यको उचित समयपर चतुर वैद्य यवागू पिलावे। यह यवागू दोषानुसार औषधियोंद्वारा सिद्ध की हुई होनी चाहिये और इसी प्रकार औषधियोंसे सिद्ध किया समयपर चावलोंका अथवा मूंगका मण्ड (पीछ) पिलावे जबतक ज्वर नरमी न पकडे। अथवा छः दिनपर्यन्त बुद्धिमान् वैद्य उचित द्रव्योंसे सिद्ध किया यवागू पान करावे। क्योंकि यवागूके पान करनेसे मनुष्यकी अग्नि इस प्रकार चैतन्य होजाती है जैसे लकडियोंके लगानेसे अग्नि चैतन्य होजाती है यवागू औषधियोंके संयोगसे और हलकी होनेसे अग्निको दीपन करनेवाली होती है और अधोवात मूत्र, पुरीष तथा दोषोंको अनुलोमन करती है ॥ १४३-१४५ ॥

स्वेदनाय द्रवौष्णत्वाद् द्रवत्वात्तृट्प्रशान्तये।
आहारभावात्प्राणाय सरत्वाल्लाघवाय च ॥ १४६ ॥

द्रव और उष्ण होनेसे स्वेदन करती है। पतला होनेसे प्यासको शान्त करती है। आहारभाव होनेसे प्राणोंकी रक्षा करती है। सर होनेसे शरीरमें लघुताको उत्पन्न करती है॥ १४६ ॥

ज्वरघ्न्यो ज्वरसात्म्यत्वात्तस्मात्पेयाभिरादितः।
ज्वरानुपचरेद्धीमानृते मद्यसमुत्थितात् ॥ १४७ ॥

पया (यवागू) ज्वरको नष्ट करनेवाली है और सब प्रकार सात्म्य होती है इस लिये ज्वरके उपचारमें लंघनके अनन्तर यवागू पान कराना चाहिये। परन्तु मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वरमें यवागू न पिलावे ॥ १४७ ॥

यवागूका निषेध।

मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफाधिके।
ऊर्द्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूरहिता ज्वरे ॥ १४८ ॥

मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वरमें, नित्य मद्यसेवन करनेवालेको, ग्रीष्मऋतुमें, पित्त कफ प्रधान ज्वरमें और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तवाले ज्वरमें यवागू पिलाना हित नहीं है १४८॥

ज्वरमें तर्पण।

तत्र तर्पणमेवाग्रे प्रयोज्यं लाजसक्तुभिः।
ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करम् ॥ १४९ ॥

एसे ज्वरोंमें धानोंकी खीलोंके सत्तुओंसे अथवा ज्वरनाशक फलोंके रससे बनाये हुए तर्पणोंको शहत और मिसरी मिला पिलाना चाहिये ॥ १४९ ॥

द्राक्षादि तर्पण।

द्राक्षादाडिमखर्ज्जूरपियालैः सपरूषकैः।
तर्पणार्हेषु कर्त्तव्यं तर्पणं ज्वरशान्तये ॥ १५० ॥

मुनक्का, अनार, खजूर, चिरोंजी, फालसा इन सबसे बनायाहुआ तर्पण (शरबत) तर्पण योग्य ज्वरोंमें ज्वरकी शान्तिके लिये पिलाना चाहिये ॥ १५० ॥

तर्पणके अनन्तर यूष।

ततः सात्म्यबलापेक्षी भोजयेज्जीर्णतर्पणम्।
तनुना मुद्गयूषेण जाङ्गलानां रसेन वा ॥ १५१ ॥

तपणके अनन्तर जब तर्पण पचजाय तो उसके सात्म्य और बल विचारकर थोडेसे मूंगोंका यूष अथवा जांगल जीवोंका मांसरस पीनेको देवे ॥ १५१ ॥

अन्नकालमें दन्तधावन।

अन्नकालेषु चाप्यस्मै विधेयं दन्तधावनम् ।
योऽस्य वक्त्ररसस्तस्माद्विपरीतं प्रियश्च यत् ॥ १५२ ॥
तदस्य मुखवैशद्यं प्रकांक्षां चान्नपानयोः
धत्ते रसविशेषाणामभिज्ञत्वं करोति यत् ॥ १५३ ॥
विशोध्य द्रुमशाखाग्रैरास्यं प्रक्षाल्य चासकृत् ।
मस्त्विक्षुरसमद्याद्यैर्यथाहारमवाप्नुयात् ॥ १५४ ॥

फिर भोजनके समय इस मनुष्यको ऐसी औषधीकी शाखा लेकर दांतन करावें जो रोगीके मुखके रससे विपरीत रसवाली हो और रोगीको अप्रिय न हो, ऐसी दांतन करानेसे रोगीका मुख स्वच्छ होजाता है और अन्नपानकी रुचि उत्पन्न होती है। इसप्रकार दांतनके करनेवाले मनुष्यको यथोचित रीतिपर रसोंका स्वाद आने लगजाता है इसलिये उचित वृक्षकी शाखाके अग्रभागकी उत्तम नरम कूंची बनाकर मुखके मैलको शोधन करे और वारवार जलसे कुल्ले करडाले। जब मुख स्वच्छ होजाय फिर उसको मस्तु (मण्ड, पीछ अथवा दहीका जल), यवागू, इक्षुरस अथवा मद्य आदिक जो जिससमय उचित हो वैसा आहार देवे ॥१५२-१५४॥

अन्य निर्देश।

पाचनीयं शमनीयं कषायं पाययेत तम् ।
ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजयेत् ॥ १५५ ॥

छः दिन व्यतीत होनेके अनन्तर ज्वरवाले मनुष्यको पाचन और शमनकारक कषायोंको पिलावे। एवं हलका और थोडा भोजन करावे ॥ १५५ ॥

स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ।
दोषा बद्धाः कषायेण स्तम्भित्वा तरुणे ज्वरे ॥ १५६ ॥

तरुणज्वरमें दोष बंधेहुए और स्तंभित होते हैं। उस समय शमनीय कषाय देनेसे विपाकको प्राप्त न होकर ज्वरको विषमगतिवाला बना देते हैं इसलिये छः दिनतक शमनीय कषाय देना उचित नहीं ॥ १५६ ॥

कैसे कषाय तरुणज्वरमें न देवे।

न तु कल्पनमुद्दिश्य कषायः प्रतिषिध्यते ।
यः कषायः कषायः स्यात्स वर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥ १५७ ॥

तरुणज्वरमें कषैले क्काथके देनेका निषेध है मधुर आदि दोषोंको परिपाक करनेवाले क्काथोंका निषेध नहीं है ॥ १५७ ॥

ज्वरमें अन्न ।

यूषैरम्लैरनम्लैर्वा जाङ्गलैर्वा रसैर्हितैः ।
दशाहं तावदश्नीयाल्लघ्वन्नं ज्वरशान्तये ॥ १५८ ॥

छः दिनसे उपरान्त दश दिनतक मूंग आदिका यूष खटाईके विना अथवा इमली आदि उचित खटाईके साथ अथवा हितकारक जांगल मांसरसोंके साथ ज्वरकी शान्तिके लिये हितकारक हलके अन्नका भोजन करावे ॥ १५८ ॥

घृतपानका समय ।

अत ऊर्द्धं कफे मन्दे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ।
परिपक्वेषु दोषेषु सर्पिष्पानं यथामृतम् ॥ १५९ ॥

दश दिनके अनन्तर जब कफ क्षीण होजाय और वात पित्तकी अधिकता हो एवं सब दोष पकचुके हों ऐसे समय औषधियोंसे सिद्ध किया घृत देना ज्वरवाले मनुष्यको अमृतके समान गुण करता है ॥ १५९ ॥

घृतका निषेध ।

निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलङ्घितम् ।
न सर्पिः पाययेद्वैद्यः कषायैस्तमुपाचरेत् ॥ १६० ॥

यदि ज्वरमें दश दिन व्यतीत न हुए हों अथवा इसके उपरांत भी कफकी अधिकता हो और लंघनद्वारा दोष क्षीण न किये गये हों ऐसे समय वैद्य घृत न पिलावे किन्तु कषायोंद्वारा रोगकी शान्ति करे ॥ १६० ॥

मांसरस ।

यावल्लघुत्वादशनं दद्यान्मांसरसेन च ।
परं ह्यलं दोषहरं परं तच्च बलप्रदम् ॥ १६१ ॥

मांसाहारी मनुष्यको जबतक दोष क्षीण होकर शरीरमें हलकापन न हो तबतक ज्वरमें हितमांसरसोंका पान करावे । ऐसा करनेसे मांसरस दोषोंको नष्ट कर बलको देता है । परन्तु वह मांसरस ज्वरनाशक औषधियोंद्वारा सिद्ध होना चाहिये ॥१६१॥

ज्वरमें दूधका निर्देश ।

दाहतृष्णापरीतस्य वातपित्तोत्तरं ज्वरम् ।
बद्धप्रच्युतदोषं वा निरामं पयसा जयेत् ॥ १६२ ॥

जिस ज्वरमें वातपित्तकी अधिकता हो, दाह तथा प्यासकी अधिकता हो, दोष बद्ध हों अथवा दोष पककर निकल गये हों ऐसे ज्वरको ज्वरनाशक दूधोंसे जीतना चाहिये ॥ १६२ ॥

ज्वरोंमें विरेचनादिका निर्देश।

क्रियाभिराभिः प्रशमं न प्रयाति यदा ज्वरः।
अक्षीणबलमांसस्य शमयेत्तं विरेचनैः॥ १६३॥

यदि इन उपरोक्त क्रियाओंद्वारा भी ज्वर शान्तिको प्राप्त न हो तो जिस मनुष्यका बल और मांस क्षीण न हुआ हो ऐसे मनुष्यके ज्वरको ज्वरनाशक विरेचनोंद्वारा शान्त करे॥ १६३॥

बस्तिकर्मका निर्देश।

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम्।
कामन्तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान्॥ १६४॥
निरूहो बलमग्निश्च विज्वरत्वं मुदं रुचिम्।
परिपक्वेषु दोषेषु प्रयुक्तः शीघ्रमावहेत्॥ १६५॥

जो मनुष्य क्षीण होगया हो ऐसे मनुष्यके ज्वरमें वमन, विरेचन कराना हित नहीं है। ज्वरसे क्षीण मनुष्यके दोषोंको औषधियोंसे सिद्धकिये दूधके साथ निरूहणबस्तिद्वारा दोषोंको हरण करे। क्योंकि, निरूहणबस्ति बलको देनेवाली है, अग्निको बढाती है, ज्वरको नष्ट करती है, शरीरमें आनन्द और रुचिको उत्पन्न करती है एवं पकेहुए दोषोंको शीघ्र निकाल डालती है॥ १६४॥ १६५॥

पित्तं वा कफपित्तं वा पित्ताशयगतं हरेत्।
स्रंसनं त्रीन्मलान्बस्तिर्हरेत्पक्वाशयस्थितान्॥ १६६॥

पित्ताशयमें प्राप्त हुए पित्तको अथवा पित्तकफको या पक्वाशयमें प्राप्त हुए तीनों दोषोंको स्रंसनबस्ति शीघ्र निकाल डालती है॥ १६६॥

ज्वरे पुराणे संक्षीणे कफपित्ते दृढाग्नये।
रूक्षबद्धपुरीषाणां प्रदद्यादनुवासनम्॥ १६७॥

पुराने ज्वरमें तथा कफ पित्तके क्षीण होनेपर रूक्ष अथवा बद्धमलवाले मनुष्यको अग्निके बलवान् करनेके लिये अनुवासन बस्तिका प्रयोग करना चाहिये॥ १६७॥

शिरोविरेचनका निर्देश।

गौरवे शिरसः शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च।
जीर्णे ज्वरे रुचिकरं कुर्य्यान्मूर्द्धविरेचनम्॥ १६८॥

इसी प्रकार इन्द्रियोंके बद्ध होनेपर शिर भारी तथा शूलयुक्त होनेपर जीर्णज्वरमें रुचिकारक नस्यद्वारा शिरको विरेचन करना चाहिये॥ १६८॥

अभ्यंगादि अन्य अनेक ज्वरनाशक चिकित्सा।

अभ्यङ्गांश्च प्रदेहांश्च सस्नेहान् सावगाहनान्।
विभज्य शीतोष्णकृतान् कुर्य्याज्जीर्णज्वरे भिषक्॥ १६९॥
तैराशु हि शमं याति बहिर्मार्गगतो ज्वरः।
लभन्ते सुखमङ्गानि बलं वर्णश्च वर्द्धते॥ १७०॥

वैद्यको उचित है कि, जीर्णज्वरमें शीतल अथवा उष्ण जैसे उचित समझे उस प्रकारके अभ्यंग (तैल आदि मालिश), प्रदेह (लेपन) इनका औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए चिकने द्रव्यों (लाक्षादि तैल, आदि) से उपयोग करे। इसी प्रकार शीत अथवा उष्ण अवगाहन (औषधियोंसे सिद्ध किये जलसे स्नान) करावें। इनके करनेसे बहिर्मार्गगत ज्वर शीघ्र शान्त होजाता है और अंगोंको सुख प्राप्त होता है एवं बलवर्णकी वृद्धि होती है॥ १६९॥ १७०॥

धूपनाञ्जनयोगैश्च यान्ति जीर्णज्वराः शमम्।
त्वङ्मात्रशेषो येषाञ्च भवत्यागन्तुरन्वयः॥ १७१॥
इति क्रियाक्रमः सिद्धो ज्वरघ्नः सम्प्रकाशितः॥ १७२॥

जिन जीर्णज्वरोंमें केवल त्वचामात्र शेष रहगई हो वह ज्वर औषध सिद्ध तैलादि-कोंकी मालिशसे और धूपन तथा अंजन आदिकोंके योगसे शान्तिको प्राप्त होते हैं। तथा आगन्तुक ज्वर भी धूपन और अंजनोंसे शान्त हो सकते हैं इस प्रकार ज्वरना-शक सिद्ध क्रियाके क्रमका उपदेश किया गया है॥ १७१॥१७२॥

ज्वरनाशक द्रव्य।

येषां त्वेष क्रमस्तानि द्रव्याण्यूर्द्धमतः शृणु॥१७३॥

जिन द्रव्योंसे उपरोक्त चिकित्साक्रमका निर्देश किया है अर्थात् जिन द्रव्योंद्वारा चिकित्सा की जाती है अब उनको श्रवण करो॥ १७३॥

ज्वरमें अन्न।

रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्टिकैः सह।
यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः॥ १७४॥

ज्वरवालोंके लिये लाल शालि आदिके शुद्ध और पुराने चावल तथा साठी चावल; यवागू, भात और खीलोंके लिये हित तथा ज्वरनाशक हैं॥ १७४॥

ज्वरनाशक खटाई।

अम्लाभिलाषी तामेव दाडिमाम्लां सनागराम्।
सृष्टविट्पैत्तिको वाथ शीतामधुयुतां पिबेत्॥ १७५॥

खटाई खानेकी इच्छावाले ज्वररोगीको अनारकी खटाई सोंठयुक्त कर देनी चाहिये। जिस रोगीको पित्तका ज्वर हो और मल पतला होकर निकलता हो उसको खट्टे अनारके रसमें जल और शहद मिला पिलाना चाहिये ॥ १७५ ॥

ज्वरनाशक अनेक पेया।

लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः शृताम्।
पिबेज्ज्वरी ज्वरहरान् क्षुद्वानल्पाग्निरादितः ॥ १७६ ॥

थोडी अग्निवाले क्षुधायुक्त ज्वर रोगीको धानोंकी खीलोंकी पेया पीपल और सोंठका चूर्ण बुरकाकर पिलानेसे ज्वरको नष्ट करती है और सुखपूर्वक पचजाती है॥

पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्वबस्तिशिरोरुजि।
श्वदंष्ट्राकण्टकारिभ्यां सिद्धां ज्वरहरां पिबेत् ॥ १७७ ॥

जिस मनुष्यके शिरमें बस्तिमें अथवा पसलीमें पीडा हो उसको गोखरू कटेलीके साथ सिद्ध की हुई लाल चावलोंकी पेया देनी चाहिये ॥ १७७ ॥

ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः।
पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः ॥ १७८ ॥

ज्वरातिसारवाले रोगीको पृश्निपर्णी, खरैंटी, बेलगिर, सोंठ, नीलोफर और धनियेसे सिद्ध की हुई पेया किंचित् अनारकी खटाईसे भावित की हुई पिलानी चाहिये॥१७८॥

शृतां विदारीगन्धाद्यैर्दीपनीं स्वेदनीं नरः।
कासी श्वासी च हिक्की च यवागूं ज्वरितः पिबेत् ॥ १७९ ॥

खांसी, हिचकी, श्वास तथा ज्वरके उपद्रवयुक्तज्वरमें विदारीगन्धादि गणसे सिद्ध की हुई दीपनकर्त्ता और स्वेदकारक पेया पीनेको देनी चाहिये ॥ १७९ ॥

विबद्धवर्चाः सयवाः पिप्पल्यामलकैः शृताम्।
सर्पिष्मतीं पिबेत्पेयां ज्वरी दोषानुलोमनीम् ॥ १८० ॥

जिस ज्वरवाले मनुष्यका दस्त साफ न उतरता हो उसको पीपल और आँवलोंके साथ सिद्ध की हुई यवोंकी पेयाको घृतयुक्त कर पिलावे ॥ १८० ॥

कोष्ठे विबद्धे सरुजि पिबेत्पेयां शृतां ज्वरी।
मृद्वीकापिप्पलीमूलचव्यामलकनागरैः ॥ १८१ ॥

जिस ज्वरवालेका कोष्ठ बद्ध हो तथा पीडायुक्त हो उसको मुनक्का, पीपलमूल, चव्य आँवले और सोंठके साथ सिद्ध की हुई शाली चावलोंकी पेया पिलाना चाहिये ॥ १८१ ॥

पिबेत्सबिल्वां पेयां वा ज्वरे सपरिकर्त्तिके।
बलावृक्षाम्लकोलाम्लकलशीधावनीशृताम् ॥ १८२ ॥

जिस मनुष्यको पेचिस अथवा पेटमें कतरनेकीसी पीडायुक्त ज्वर हो उसको बेलगिर, बला, तंतडीक, बेरका चूर्ण, पृश्निपर्णी और शालपर्णीसे सिद्ध की हुई पेया पिलावे ॥ १८२ ॥

अस्वेदनिद्रस्तृष्णार्त्तः पिबेत्पेयां सशर्कराम्।
नागरामलकैः सिद्धां घृतभृष्टां ज्वरापहाम् ॥ १८३ ॥

जिस ज्वरवाले रोगीको पसीना न आता हो और निद्रा नाश होगई हो तथा प्यास अधिक लगती हो उसको सोंठ और आमलोंके योगसे सिद्ध की हुई पेयाको घृतमें छौंक तथा मिसरी मिलाकर पिलावे। यह पेया ज्वर और प्यास आदि नष्ट करती है ॥ १८३ ॥

ज्वरमें यूष।

मुद्गान्मसूरांश्चणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान्।
यूषार्थे यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रकल्पयेत् ॥ १८४ ॥

ज्वरवाले रोगीको जब भोजनकी इच्छा हो तो उसको मूंग, मसूर, चना, कुलथी और मोठ आदि द्रव्योंमें जो जिसके लिये सात्म्य हो उसका यूष बनाकर देवे १८४

ज्वरनाशक शाक।

पटोलपत्रं सफलं कुलकं पापचेलिकाम्।
कर्कोटकं कटिल्लञ्च विद्याच्छाकं ज्वरे हितम् ॥ १८५ ॥

ज्वरमें पटोलपत्र, पडोल, परवल, पाढ, कर्कोटक (ककौडा, कोढ) करैला यह शाक ज्वरवाले रोगीको हितकारक है ॥ १८५ ॥

ज्वरमें मांस।

लावाकपिञ्जलानेणांश्चकोरानुपचक्रकान्।
कुरङ्गान् कालपुच्छांश्च हरिणान् पृषताञ्छशान् ॥ १८६ ॥
प्रदद्यान्मांससात्म्याय ज्वरिताय ज्वरापहान्।
ईषदम्लाननम्लान् वा रसान् काले विचक्षणः ॥ १८७ ॥
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकान्।
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ॥ १८८ ॥

मांसाहारी ज्वररोगियोंको लवा, कपिंजल, एण, चकोर, उपचक्र (चकवा), कुरंग, कालपुच्छ, हरिण, पृषत् और खरगोश यह सब मांस खानेवाले मनुष्योंको किंचित् अम्लरस युक्तकरके देवे। कोई २ चिकित्सक, मुर्गा, मोर, तीतर, बगुला, बत्तक इनको भारी और गर्म होनेके कारण ज्वरमें देना बहुत बुरा मानते हैं॥८६-८८॥

लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत्।

भिषङ्मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित्॥ १८९॥

लंघन करनेसे यदि ज्वरमें वायुका बल अधिक होजाय तो उनकी मात्रा, विकल्प और कालके जाननेवाला वैद्य औषधियोंसे सिद्ध किया मांसरस पान करावे। अथवा अन्य उचित पेयाका पान करावे॥ १८९॥

ज्वरमें अन्य उपदेश।

घर्माम्बु चानुपानार्थं तृषिताय प्रदापयेत्।

मद्यं वा मद्यसात्म्याय यथादोषं यथाबलम्॥ १९०॥

ज्वररोगी आहारके अनन्तर यदि जल पीना चाहे तो उसको गर्म जल पिलाना चाहिये। एवं मद्य पीनेवालेको थोडासा विचारपूर्वक मद्य पिलावे॥ १९०॥

गुरूष्णस्निग्धमधुरकषायांश्च नवज्वरे।

आहारान् दोषपक्त्यर्थं प्रायशः परिवर्जयेत्॥ १९१॥

अनुपानक्रमः सिद्धो ज्वरे यः सम्प्रकाशितः।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यन्ते कषाया ज्वरनाशनाः॥ १९२॥

नवीन ज्वरमें-भारी, चिकने, मधुर, कषाय आहारोंको दोषके परिपाक होनेके लिये प्रायः त्यागदेना चाहिये अर्थात् नवज्वरमें इन रसोंवाले आहारका भोजन नहीं करना चाहिये; इस प्रकार ज्वरनाशक सिद्ध अनुपान क्रमका वर्णन कियागया है। अब ज्वरनाशक क्काथोंका वर्णन करते हैं॥ १९१॥ १९२॥

ज्वरनाशक अनेक क्काथ।

पाक्यं शीतकषायं वा मुस्तपर्पटकं पिबेत्।

सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुरालभम्॥ १९३॥

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूचीविश्वभेषजम्।

पाठामुशीरं सोदीच्यं पिबेद्वा ज्वरशान्तये॥ १९४॥

ज्वरघ्ना दीपनाश्चैते कषाया दोषपाचनाः।

तृष्णारुचिप्रशमना मुखवैरस्यनाशनाः॥ १९५॥

पित्तपापडा और नागरमोथेके क्वाथको अथवा सोंठ, पित्तपापडा और यवासाके क्वाथको पकाकर या शीतकषाय करके पीवे। अथवा चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाठा, खस और सुगंधवालाका क्वाथ बनाकर पीवे। यह तीन क्वाथ ज्वरको नाश करनेवाले तथा दीपन, दोषोंको पाचन करनेवाले, तृषानाशक, अरुचिनाशक एवं मुखकी विरसताको दूर करनेवाले हैं॥ १९३-१९५॥

विषमज्वरनाशक पांच क्वाथ।

कलिंगकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी।
पटोलः शारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी।
निम्बः पटोलस्त्रिफला मृद्वीकामुस्तवत्सकाः॥ १९६॥
किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम्।
गुडूच्यामलकं मुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः॥ १९७॥
कषायाः शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधाञ्ज्वरान्।
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान्॥ १९८॥

इन्द्रयव, पटोलपत्र और कुटकीका क्वाथ संततज्वरको नष्ट करता है। पटोलपत्र, शारिवा, नागरमोथा, पाढ और कुटकीका क्वाथ सततज्वरको नष्ट करता है। नीमका छिलका, पटोलपत्र, हरड, बहेडे, आमले, मुनक्का, नागरमोथा और इन्द्रयव इनका क्वाथ अन्येद्यु अर्थात् इकतरा ज्वरको नष्ट करता है। चिरायता, गिलोय, लाल चंदन और सोंठका क्वाथ तृतीयक ज्वरको नष्ट करता है। गिलोय, आमले, नागरमोथा इनका क्वाथ चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है। इस प्रकार यह आधे २ श्लोकमें कहे पांच क्वाथ पांच प्रकारके विषमज्वरको शीघ्र शान्त करनेवाले कहे हैं॥ १९६-१९८॥

वत्सकादि क्वाथ।

वत्सकारग्वधं पाठां षड्ग्रन्थां कटुरोहिणीम्।
मूर्वां सातिविषां निम्बं पटोलं धन्वयासकम्॥ १९९॥
वचामुस्तमुशीराणि मधुकं त्रिफला बलाम्।
पाक्यं शीतकषायं वा पिबेज्ज्वरहरं नरः॥ २००॥

इन्द्रयव, अमलतास, पाठा, पीपलामूल, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, पटोलपत्र, जवासा, वच, नागरमोथा, खस, मुलहठी, त्रिफला, बला इनका पकायाहुआ क्वाथ अथवा शीतल क्वाथ यदि मनुष्य पीवे तो ज्वर नष्ट होजाता है॥ १९९॥ २००॥

शीतकषाय।

मधूकमुस्तमृद्वीकाकाश्मर्याणि परूषकम्।
त्रायमाणामुशीराणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् ॥२०१॥
पीत्वा निशि स्थितं जन्तुर्ज्वराच्छीघ्रं विमुच्यते ॥२०२॥

मुलहठी, नागरमोथा, मुनक्का, कुंभेर, फालसा, त्रायमाण, खस, त्रिफला और कुटकीका शीतकषाय (रातको भिगोकर प्रातःकाल मल छानकर) पीनेसे मनुष्योंका ज्वर शीघ्र दूर होजाता है ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

सन्निपातज्वरनाशक गण।

बृहत्यौ वत्सकं मुस्तं देवदारु महौषधम्।
कोलवल्ली च योगोऽयं सन्निपातज्वरापहः।
जात्यामलकमुस्तानि तद्वद्धन्वयवासकम् ॥ २०३ ॥

दोनों कटेली, इन्द्रयव, नागरमोथा, देवदारु, सोंठ और चव्यका क्काथ बनाकर पीनेसे सान्निपातज्वर दूर होता है। तथा जायफल, आमले और नागरमोथेका क्काथ पीनेसे सान्निपातज्वरको नष्ट करता है ॥ २०३ ॥

कफपित्तज्वरनाशक।

विबद्धदोषो ज्वरितः कषायं सगुडं पिबेत्।
त्रिफलां त्रायमाणाञ्च मृद्वीकां कटुरोहिणीम् ॥ २०४ ॥
पित्तश्लेष्महरस्त्वेष कषायो ह्यानुलोमिकः।
त्रिवृताशर्करायुक्तः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ २०५ ॥

जिस ज्वरमें दोष बंधाहुआ हो और मल न निकलता हो उसमें त्रिफला, त्रायमाण, मुनक्का और कुटकीका क्काथ गुड मिला पिलावे। यह क्काथ पित्त और कफके ज्वरको नष्ट करता है और मलको अनुलोमन कर निकालता है। इसी प्रकार निशोथका क्काथ खांड मिलाकर पीनेसे पित्त और कफके ज्वरको नष्ट करता है२०४।२०५

शट्यादिवर्ग।

शटी पुष्करमूलञ्च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा।
गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ २०६ ॥
एषः शट्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासतन्द्रासु शस्यते ॥ २०७ ॥

कचूर, पोहकरमूल, कटेली, काकडासिंगी, जवासा, गिलोय, सोंठ, पाढ, चिरायता, कुटकी यह शटी आदि वर्ग सन्निपातज्वरको नष्ट करता है तथा खांसी हृदय और पसुलीकी पीडा, श्वास और तंद्राको दूर करता है ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

बृहत्यादिगण।

बृहत्यौ पुष्करं भार्ङ्गी शटी शृङ्गी दुरालभा।
वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ २०८ ॥
बृहत्यादिर्गणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः।
कासादिषु च सर्वेषु दद्यात्सोपद्रवेषु च ॥ २०९ ॥

दोनों कटेली, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, जवासा, इन्द्रयव, पटोलपत्र और कुटकी यह बृहत्यादिगण सन्निपात ज्वरको नष्ट करता है तथा सब प्रकारके खांसी आदि उपद्रवोंको दूर करता है ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

कषायाश्च यवाग्वश्च पिपासाज्वरनाशनाः।
निर्दिष्टा भेजषाध्याये भिषक्तानपि योजयेत् ॥ २१० ॥

प्यास और ज्वरनाशक काढे और यवागू जो सूत्रस्थानमें कहे हैं ज्वरके नाश-करनेके लिये बुद्धिमान् वैद्य उनका भी उपयोग करे ॥ २१० ॥

ज्वरनाशक अन्यक्रम।

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम् ॥ २११॥
रूक्षं तेजो ज्वरकरं तेजसा रूक्षितस्य च।
यः स्यादनुबलो धातुः स्नेहसाध्यः स चानिलः ॥ २१२ ॥

जिन रूक्ष मनुष्योंका ज्वर क्काथ, वमन, लंघन और हल्के आहारद्वारा शान्त न हो वैद्यजन उस ज्वरको औषधियोंसे सिद्ध किये घृतद्वारा शान्त करें क्योंकि ज्वरको करनेवाली गर्मी आग्नेय होनेके कारण अपने तेजद्वारा शरीरको रूक्ष बना देती है उसके अनुगत जो रूक्षकर्त्ता वायु है वह स्नेहनद्वारा ही साध्य होती है ॥२११॥२१२॥

ज्वरनाशक अनेक सिद्धघृतोंका वर्णन।

कषायाः सर्व एवैते सर्पिषा सह योजिताः।
प्रयोज्या ज्वरशान्त्यर्थमग्निसन्धुक्षणाः शिवाः ॥ २१३ ॥

इन नीचे लिखे हुए औषधियोंके क्काथोंमें या कल्कोंमें डालकर सिद्ध किये घृत ज्वरोंकी शान्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये। यह घृत–अग्निवर्द्धक और कल्याण-दायक होते हैं ॥ २१३ ॥

पिप्पल्यादिघृत ।

पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी ।
कलिङ्गमस्त्वामलकी शारिवातिविषा स्थिरा ॥ २१४ ॥
द्राक्षामलकबिल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका ।
सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो जीर्णज्वरमपोहति ॥ २१५ ॥
क्षयं कासं शिरःशूलं पार्श्वशूलं हलीमकम् ।
अंसाभितापमग्निश्च विषमं सन्नियच्छति ॥ २१६ ॥

पीपल, चन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, इन्द्रयव, भूमिआमलकी, शारिवा, अतीश, शालिपर्णी, मुनक्का, आंवला, बेलगिर, त्रायमाण और कटेलीसे सिद्ध किया घृत शीघ्र जीर्णज्वरको नष्ट करता है और क्षय, खांसी, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल, हलीमक, दोनों अंसोंका तपना, विषमाग्नि इन सबको शान्त करता है॥२१४–२१६॥

वासादिघृत ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम् ।
पक्त्वा तेन कषायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ २१७ ॥
पिप्पलीमुस्तमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।
कल्कीकृतैश्च विपचेद् घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ २१८ ॥

अडूसा (वांसा), गिलोय, त्रिफला, त्रायमाण, जवासा इनके क्वाथमें दोगुना दूध मिला उस दूध और क्वाथको घृतमें डालदे और उसी घृतमें पीपल, मुनक्का, नागरमोथा, चन्दन, कमल, सोंठ इन सबका कल्क डालकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर छानकर किसी पात्रमें रख देवे । इस घृतका प्रयोग जीर्णज्वरको नष्ट-कर डालता है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

बलादिघृत ।

बलां श्वदंष्ट्रां बृहतीं कलसीं धावनीं स्थिराम् ।
निम्बं पर्पटकं मुस्तं त्रायमाणां दुरालभाम् ॥ २१९ ॥
कृत्वा कषायं पेष्यार्थे दद्यादामलकीं शटीम् ।
द्राक्षां पुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च ॥ २२० ॥

---

१ इत्यस्मिन् स्थाने "बनयसापुष्पं" योजनीयम् ।

घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम् ।
क्षयकासशिरःशूलपार्श्वशूलांसतापनुत् ॥ २२१ ॥

बला (खरैंटी), गोखरू, बडी कटेली, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, शालपर्णी, नीमका छिलका, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा इन सब ओषधियोंका क्काथ बनावे और भूमिआमला, कचूर, मुनक्का, पोहकरमूल, मेदा और आँवलोंको पानी मिलाकर पीसे फिर यह पिसाहुआ कल्क और उपरोक्त औषधियोंका क्काथ और दूध यह सब मिलाकर घृतमें डाल पकावे सिद्ध होनेपर घृतका सेवन करे। यह घृत जीर्णज्वरको अवश्य नष्ट करता है । तथा राजयक्ष्मा, खांसी, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल और दोनों अंसोंकी तपनको दूर करता है ॥ २१९-२२१ ॥

ज्वरनाशक अन्यवमनादि निर्देश ।

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वं चाधश्च बुद्धिमान् ।
दद्यात्संशोधनं काले कल्पे यदुपदेक्ष्यते ॥ २२२ ॥

बहुत दोषयुक्त ज्वरवाले मनुष्यको बुद्धिमान् वैद्य संशोधनका समय विचार उचित कालमें कल्पस्थानोक्त वमन और विरेचनद्वारा ऊपर नीचेका शोधन करावे ॥२२२॥

वमनद्रव्य ।

मदनं पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा ।
युक्तमुष्णाम्बुना पेयं वमनं ज्वरशान्तये ॥ २२३ ॥

पीपल अथवा इन्द्रयव या मुलहठीके साथ मैनफलके चूर्णको गर्म जलके अनुपानसे पीवे । इससे वमन होकर ज्वर शान्त होजाता है ॥ २२३ ॥

क्षौद्राम्बुना रसेनेक्षोरथवा लवणाम्बुना ।
ज्वरे प्रच्छर्दनं शस्तं मद्यैर्वा तर्पणेन वा ॥ २२४ ॥

शहत और जल मिला अथवा ईखके रससे या नमक और जलसे अथवा मद्यको पीकर या अन्य तर्पण द्रव्योंको पीकर विधिवत् छर्दकर देना ज्वरको नष्ट करता है२२४

मृद्वीकामलकानां वा रसं प्रच्छर्दनं पिबेत् ।
रसमामलकानां वा घृतभृष्टं ज्वरापहम् ॥ २२५ ॥

मुनक्का और आँवलोंका रस पीकर छर्द करे अथवा आँवलोंके रसको घीमें छौंक-कर उसमें नमक और गर्मजल मिला पीवे और छर्दकर डाले यह भी ज्वरके नष्ट करनेवाला छर्दन है ॥ २२५ ॥

विरेचन द्रव्य।

लिह्याद्वा त्रैवृतं चूर्णं संयुक्तं मधुसर्पिषा।
पिबेद्वा क्षौद्रमासाद्य सघृतं त्रिफलारसम्॥ २२६॥

निशोथके चूर्णको शहत और घृतमें मिला चाटनेसे अथवा घी और शहत मिलाकर त्रिफलेका रस पीनेसे विरेचन होकर ज्वर शांत होता है॥ २२६॥

आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा।
त्रिवृतां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत्॥ २२७॥

अमलतासको दूधमें मिलाकर अथवा मुनक्काके रसमें घोलकर पीवे या निशोथका चूर्ण मुनक्काके रसमें घोलकर पीवे अथवा त्रायमाणको दूधमें मिलाकर पीवे तो इनसे विरेचन होकर ज्वर शान्त होजाता है॥ २२७॥

ज्वराद्विमुच्यते पीत्वा मृद्वीकाभिः सहाभयाम्।
पयोऽनुपानमुष्णं वा पीत्वा द्राक्षारसं नरः॥ २२८॥
कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात् पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात्॥ २२९॥

इसी प्रकार मुनक्काके रसके साथ हरडका चूर्ण खावे अथवा द्राक्षाके रसको पीकर ऊपरसे गर्म दूध पीवे इन उपरोक्त संपूर्ण विरेचन योगोंसे खांसी, श्वास, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल और ज्वर यह सब नष्ट होजाते हैं॥ २२८॥ २२९॥

ज्वरनाशकदूध।

मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलशृतं पयः।
एरण्डमूलोत्क्वथितं ज्वरात्सपरिकर्त्तिकात्।
पयो विमुच्यते पीत्वा तद्वद्बिल्वशलाटुभिः॥ २३०॥

पंचमूलसे सिद्धकिया दूध पीनेसे मनुष्य ज्वरसे छूटजाता है। अथवा एरण्डकी जडके क्वाथसे सिद्धकिया दूध या कच्चे बेलकी गिर मिलाकर सिद्धकिया दूध परिकर्तिका (कतरनी पेचिश) युक्त ज्वरको दूर करता है॥ २३०॥

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम्।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोफज्वरहरं पयः॥ २३१॥

गोखरू, बला, कटेली, गुड और सोंठसे सिद्ध कियाहुआ दूध मलमूत्रके विबंध और सूजनवाले ज्वरको शान्त करता है॥ २३१॥

सनागरं समृद्वीकं सघृतक्षौद्रशर्करम्।
शृतं पयः सखर्जूरं पिपासाज्वरनाशनम्॥ २३२॥

सोंठ, मुनक्का, घृत, खाँड, शहद और छोहारोंसे सिद्धकिया दूध पुराने ज्वर और प्यासको शान्त करता है। परन्तु इस दूधको शहतके सिवाय अन्य द्रव्य मिलाकर औटालेना चाहिये। फिर छानकर पीने योग्य ठण्ढा होजानेपर शहत मिलाकर पीवे॥

चतुर्गुणेनाम्भसा वा शृतं ज्वरहरं पयः।
धारोष्णं वा पयः सद्यो वातपित्तज्वरं जयेत्॥ २३३॥

चारगुने जलसे युक्तकर दूधको पकावे जब पानी जलकर दूध रहे उसको पीनेसे ज्वर शान्त होता है। धारोष्ण दूधके पीनेसे भी पुराना वातपित्तज्वर शीघ्र शान्त होजाता है॥ २३३॥

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्।
पेयं तदुष्णं शीतं वा यथास्वं भेषजैः शृतम्॥ २३४॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरको दूधका पीना परम शान्तिकारक है। वह दूध गर्म अथवा ठण्डा या दोषानुसार औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ उचित रीतिसे सेवन करना चाहिये॥ २३४॥

ज्वरनाशक अनेक बस्तिकर्मका निर्देश।

प्रयोजयेज्ज्वरहरान्निरूहान् सानुवासनान्।
पक्वाशयगते दोषे वक्ष्यन्ते ये च सिद्धिषु॥ २३५॥

जब देखे कि दोष पक्वाशयमें पहुंचे हुए हैं तो उनको ज्वरनाशक निरूहण और अनुवासन बस्तिका प्रयोग करावे। बस्तिकर्म करनेकी विधि आगे सिद्धिस्थानमें कही जावेगी॥ २३५॥

बस्तिकर्मके द्रव्य।

पटोलारिष्टपत्राणि सोशीरश्चतुरङ्गुलः।
ह्रीबेरं रौहिणं तिक्ताश्वदंष्ट्रामदनानि च॥ २३६॥
स्थिरा बला च तत्सर्वं पयस्यर्द्धोदके शृतम्।
क्षीरावशेषं निर्यूहं संयुक्तं मधुसर्पिषा॥ २३७॥
कल्कैर्मदनमुस्तानां पिप्पल्या मधुकस्य च।
वत्सकस्य च संयुक्तं बस्तिं दद्याज्ज्वरापहम्॥ २३८॥
शुद्धे मार्गे हृते दोषे विप्रसन्नेषु धातुषु।
गताङ्गशूलो लघ्वङ्गः सद्यो भवति विज्वरः॥ २३९॥

पटोलपत्र, नीम अथवा रीठेके पत्र, खस, अमलतास, नेत्रवाला, लालचन्दन, कुटकी, गोखरू, मैनफल, शालपर्णी, खरैंटी इन सबको आधा दूध आधा जल मिलाकर पकावे। जब पानी जलकर दूधमात्र शेष रहजाय उसमें शहत और घृत मिलादेवे। और मैनफल, नागरमोथा, पीपल, मुलहठी, इन्द्रयव इन सबका कल्क बनाकर उसी दूधमें घोलदेवे। फिर इस दूध द्वारा बास्तिकर्म (अधोमार्गसे पिचकारी) करे। इसके करनेसे मलमार्ग शुद्ध होकर दोष निकल जाते हैं। और संपूर्ण धातुयें प्रसन्न होती हैं। संपूर्ण अंगोंकी पीडा आदि दूर होकर शरीरमें हलकापन आजाता है और ज्वर नष्ट होजाता है ॥ २३६-२३९ ॥

अन्ययोग।

आरग्वधमुशीराणि मदनस्य[1] फलानि च।
चतस्रः पर्णिनीश्चैव निर्यूहमुपकल्पयेत् ॥ २४० ॥
प्रियङ्गुर्मदनं मुस्तं शताह्वा मधुयष्टिका।
कल्कः सर्पिर्गुडः क्षौद्रं ज्वरघ्नो बस्तिरुत्तमः ॥ २४१ ॥

अमलतास, खस, मैनफल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी इनका क्वाथ बनाकर अथवा दूध और जल मिलाकर उपरोक्त औषधियोंका क्वाथ बनावे। इस क्वाथमें प्रियंगु, मैनफल, नागरमोथा, सौंफ, गुलाबके फूल और मुलहठीका कल्क बनाकर उपरोक्त क्वाथमें घोलदेवे और उसमें घी, गुड, शहद भी मिलावे। फिर इससे बास्तिकर्म करे। यह बस्ती ज्वर नाश करनेकी परम उत्तम कही है ॥२४०-२४१॥

अन्यबस्ति।

गुडूचीं त्रायमाणञ्च चन्दनं मधुकं वृषम्।
स्थिरां बलां पृश्निपर्णीं मदनं चेति साधयेत् ॥ २४२ ॥
रसं जाङ्गलमांसस्य रसेन सहितं भिषक्।
पिप्पलीफलमुस्तानां कल्केन मधुकस्य च ॥ २४३ ॥
ईषत्सलवणं युक्त्या निरूहं मधुसर्पिषा।
ज्वरप्रशमनं दद्याद्बलस्वेदरुचिप्रदम् ॥ २४४ ॥

गिलोय, त्रायमाण, चंदन, मुलहठी, बांसा, शालपर्णी, बला, पृष्ठपर्णी, मैनफल इनसे सिद्धकिये दूध अथवा क्वाथको लेकर उसमें जांगलजीवोंका मांसरस मिलाकर और उसीमें पीपल, मैनफल, नागरमोथा और मुलहठीका कल्क बना घोलदेवे। फिर उसको घी, शहत, तथा किंचित् सेंधानमक मिला निरूहण बस्ति कर्म-

---

१ मधुकं मधुपर्णि च इ०पा०। २ सब प्रकारकी बस्तियोंकी विधि सिद्धिस्थानमें वर्णन की है उसे देखो।

करे। यह बस्ति ज्वरको नष्ट करनेवाली, बलको बढानेवाली, स्वेदन और रुचिकारक है ॥ २४२-२४४ ॥

अनुवासनबस्तियोग।

जीवन्तीं मधुकं मेदां पिप्पलीं मरिचं वचाम्।
ऋद्धिं रास्नां बलां विश्वं शतपुष्पां शतावरीम् ॥ २४५ ॥
पिष्ट्वा क्षीरं जलं सर्पिस्तैलञ्च विपचेद्भिषक्।
आनुवासनिकं स्नेहमेतद्विद्याज्ज्वरापहम् ॥ २४६ ॥

जीवन्ती, मुलहठी, मेदा, पीपल, कालीमिर्च, वच, ऋद्धि, रासना, बला, सोंठ, सौंफ और शतावरका बारीक चूर्ण कर उसमें दूध, जल, घृत और तेल मिलाकर पकावे। फिर सिद्ध होनेपर इस स्नेहसे अनुवासन बस्ति करे। यह ज्वरको शान्त करनेवाली है ॥ २४५-२४६ ॥

अन्य अनुवासन।

पटोलपिचुमन्दाभ्यां गुडूच्या मधुकेन च।
मदनैश्च शृतः स्नेहो ज्वरघ्नमनुवासनम् ॥ २४७ ॥

पटोल, नीमकी छाल, गिलोय, मुलहठी, मैनफल इनके क्वाथसे अथवा कल्कसे सिद्धकिये हुए घृतद्वारा कियाहुआ अनुवासन कर्म ज्वरको शान्त करता है ॥ २४७ ॥

चन्दनागुरुकाश्मर्य्यपटोलमधुकोत्पलैः।
सिद्धः स्नेहो ज्वरहरः स्नेहबस्तिः प्रयुज्यते ॥ २४८ ॥

चंदन, अगर, कंभारी, पटोल, मुलहठी और कमलसे सिद्धकिया घृत अनुवासनद्वारा स्नेहन करनेसे ज्वरको शान्त करता है ॥ २४८ ॥

अन्य उपदेश।

यदुक्तं भेषजाध्याये विमाने रोगभेषजे।
शिरोविरेचनं कुर्य्याद्युक्तिज्ञस्तज्ज्वरापहम् ॥ २४९ ॥

सूत्रस्थानके भेषजाध्यायमें और विमानस्थानके रोगभिषग्जितीय अध्यायमें जो शिरोविरेचनीय कर्म कहा गया है उसका युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे पुराना ज्वर नष्ट होता है ॥ २४९ ॥

यच्च नावनिकं तैलं याश्च प्राग्धूमवर्त्तयः।
मात्राशितीये निर्दिष्टाः प्रयोज्यास्ता ज्वरेष्वपि ॥ २५० ॥

सूत्रस्थानके मात्राशितीय अध्यायमें जो नस्यके लिये अणुतैल आदि तथा धूमवर्तियोंका कथन किया गया है उनका प्रयोग करना भी पुराने ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ २५० ॥

अभ्यङ्गांश्च प्रदेहांश्च परिषेकांश्च कारयेत्।
यथाभिलाषं शीतोष्णं विभज्य द्विविधं ज्वरम् ॥ २५१ ॥

और इसी प्रकार अभ्यंग (मालिश) प्रदेह (उबटन लेप), परिषेक (सिंचन करना) भी युक्तिपूर्वक शीतल अथवा उष्ण या जिस प्रकार जैसे ज्वरमें उचित हो विचारपूर्वक प्रयोग करे। इनसे भी ज्वर शान्त होजाते हैं ॥ २५१ ॥

सहस्रधौतं सर्पिर्वा तैलं वा चन्दनादिकम् ।
दाहज्वरप्रशमनं दद्यादभ्यञ्जनं भिषक् ॥ २५२ ॥

सहस्रबार धोयाहुआ गोघृतका लेप अथवा चंदनादि तैलकी मालिश करना दाह युक्त ज्वरको शान्त करता है ॥ २५२ ॥

चन्दनादि तैल।

अथ चन्दनाद्यं तैलमुपदेक्ष्यामः। चन्दनशैलेयभद्राश्रयकालानुसार्य्यकालीयकपद्मापद्मकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्डरीकनागपुष्पोदीच्यचव्यपद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रबिसमृणालशालूकशैवालकशेरुकानन्ताकुशकाशेक्षुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतसवानीरगुन्द्राककुभाशनाश्वकर्णस्यन्दनवातपोथशालतालधवतिनिशखदिरकदरकदम्बकाश्मर्य्यफलसर्जप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधधातकीदूर्वोत्कण्टकशृङ्गाटकमञ्जिष्ठाज्योतिष्मतीपुष्करबीजक्रौञ्चादनबदरीकोविदारकदलीसंवर्त्तकारिष्टशतपर्वाशीतकुम्भिकाशतावरीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणीरोहिणीशीतपाक्योदनपाकीकालावलापयस्याविदारीजीवकर्षभमेदामहामेदामधुरऋष्यप्रोक्तातृणशून्यमोचरसाटरूषकबकुलकुटजपटोलनिम्बशाल्मलीनारिकेलखर्जूरमृद्वीकापियालप्रियंगुधन्वनात्मगुप्तामधुकानामन्येषाञ्च शीतवीर्य्याणां यथालाभमौषधानां कषायं कारयेत्। तेन कषायेण द्विगुणितपयसा तेषामेव च कल्केन कषायार्द्धमात्रं मृद्वग्निना साधयेत्तैलम् । एतत्तैलं सद्यो दाहज्वरमप-

नयत्येतैरेव चौषधैः सुश्लक्ष्णपिष्टैः सुशीतैः प्रदेहं कारयेदेतैरेव च शृतशीतं सलिलमवगाहपरिषेकार्थं प्रयुञ्जीत ॥ २५३ ॥

लालचंदन, छारछबीला, सफेद चंदन, अगर, पीतचंदन, कुसुम्भा, पद्माख, खस, शारिवा, मुलहठी, प्रपौण्डरीक (पण्डचारा), नागकेशर, सुगंधवाला, चव्य, लालकमल, नीलकमल, सहस्रदल कमल, कुमोदनी, सौगन्धिक, सफेद कमल, शतदल कमल, बिस, कमलकी डण्डी, कमलका कंद, जलके ऊपरकी कायी (सिवाल), कसेरू, कृष्णशारिवा, कुशा, कांस, ईखकी जड, दर्भ, सरकण्डेकी जड, नरसलकी जड, शालिधान्योंकी जड, जामुन, वेतकी कोंपल, बेतसमजनू, व्यूंस, गुन्द्रपटेर, कोह, विजयसार, अश्वकर्ण (छोटी जातिका शालवृक्ष), स्यंदन, पलाश, बडा शाल, ताडवृक्ष, धन, तिनिवा, खैर, कदर, कदंब, काश्मरी फल, मैनफल, सर्ज (राल), पाखर (पिलखन), अम्बाडा, गूलर, पीपल, बड, धावेके फूल, दूब, काण्डदूब, सिंघाडे, मंजीठ, मालकांगुनी, पुष्करबीज, कमलगट्टे, बेर, लाल कचनार, केलाकंद, नागरमोथा, रीठावृक्षकी छाल, शतपर्वा (बरू), शीतकुंभिका (पानीमें होनेवाला नारीघास), शतावर, अर्णी, छोटी और बडी गोरखमुण्डी, कुटकी, काकोली, कंघी, कठसरैया, कुडा, बला, क्षीरकाकोली, विदारीकंद, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, लाल सोहांजना, अतिबला, मल्लिका, मोचरस, अडूसा, मौलसरी, कुडा, पटोलपत्र, नीमकी छाल, सेंमरके फूल, नारियल, खजूर, दाख, चिरौंजी, फूलप्रियंगु, धन्वनवृक्ष, कौंचके बीज, महुएकी छाल इन सबको लेकर तथा अन्य भी इस प्रकारकी शीतवीर्य औषधियें जो मिलसकें उन सब औषधियोंको दो दो तोला लेकर सोलह गुने जलमें पकावे । चतुर्थ भाग शेष रहनेपर छान लेवे इस क्वाथसे आधा धुली तिलका तेल और दुगुना दूध तथा तैलसे चौथा भाग इन औषधियोंका कल्क मिलाकर मंद मंद आंचसे पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस तेलकी मालिश करनेसे दाह और ज्वर दोनों निवृत्त होतेहैं । और इन्हीं ऊपर कही औषधियोंके सुन्दर पीसकर शीतल लेप करनेसे भी दाह और ज्वर शान्त होते हैं । एवं इन सब औषधियोंके क्वाथको शीतल करके उसमें स्नान करनेसे भी दाह और ज्वर शान्त होते हैं । इति चंदनादितैल ॥ २५३ ॥

दाहनाशक अन्य योग ।

मध्वारनालक्षीरदधिघृतसलिलसेकावगाहाश्च सद्यो दाहं ज्वरमपनयन्ति शीतस्पर्शत्वादिति ॥ २५४ ॥

शहत, कांजी, दूध, दही, घृत और जल यह भी शीतल स्पर्श होनेसे परिषेक अवगाहन आदि करनेपर दाहज्वरको शीघ्र शान्त करते हैं ॥ २५४ ॥

अत्यन्तपित्तसे बढेहुये दाहज्वरके उपचार।

भवन्ति चात्र–पौष्करेषु सुशीतेषु पद्मोत्पलदलेषु च।
कह्लाराणाञ्च पत्रेषु क्षौमेषु विमलेषु च॥ २५५॥
चन्दनोदकशीतेषु सुप्याद्दाहार्दितः सुखम्।
हिमाम्बुसिक्ते सदनं शीते धारागृहेऽपि वा॥ २५६॥
हेमशंखप्रवालानां मणीनां मौक्तिकस्य च।
चन्दनोदकशीतानां संस्पर्शानुरसान् स्पृशेत्॥२५७॥
स्रग्भिर्नीलोत्पलैः पद्मैर्व्यजनैर्विविधैरपि।
शीतवातापहैर्व्यज्येचन्दनोदकवर्षिभिः॥ २५८॥
नद्यस्तडागाः पद्मिन्यो ह्रदाश्च विमलोदकाः।
अवगाहे हिता दाहतृष्णाग्लानिज्वरापहाः॥ २५९॥

दाहज्वरमें शीतल जलसे छिडकेहुए पुष्कर, उत्पल आदि कमलोंके पत्रोंपर अथवा इनके फूलोंकी पंखडियोंपर वा कह्लारके जलसे छिडके हुए पत्रोंपर अथवा जिस स्थानमें शीतल जलकी धारा, फुहारे आदि चलते हों ऐसे शीतल स्थानमें उपरोक्त कमलोंके शीतल किये पत्रादि बिछाकर उनके ऊपर सोना, नरम रेशमी वस्त्रोंपर सोना, शीतल चन्दन, जल आदिको शरीरपर छिडकना, सुवर्ण, शंख, मूंगा, मणि, मोती आदिकोंकी माला, चन्दन और शीतल जलसे शीतलकर शरीरपर धारण करना अथवा अन्य शीतल पदार्थोंका स्पर्श करना, कमल, नीलकमल आदिक फूलोंकी माला धारण करना, अथवा कमलादिकोंको शीतल जलमें भिगो वदनपर छींटा देना, शीतल पंखोंपर चन्दन, जल छिडककर शीतल वायु करना, निर्मल जलसे भरीहुई नदी तालाब और जिनमें कमल, कुमुद खिलरहे हों इस प्रकारके तालाब आदिकोंमें अवगाहन करना। पित्तके दाह, प्यास, ग्लानि और ज्वरको शान्त करते हैं॥ २५५–२५९॥

प्रियाः प्रदक्षिणाचाराः प्रमदाश्चन्दनोक्षिताः।
सान्त्वयेयुः परैः कामैर्मणिमौक्तिकभूषणाः॥ २६०॥
शीतानि चान्नपानानि शीतान्युपवनानि च।
वायवश्चन्द्रपादाश्च शीतदाहज्वरापहाः॥ २६१॥

इसी प्रकार चंदनसे और मणि, मुक्तादि आभूषणोंसे शोभायमान प्यारी, चतुर,

सुन्दर, नवयौवनाका आलिंगन करना भी दाहज्वरको शान्त करता है। तथा शीतल अन्नपान, शीतल बगीचे, शीतल चन्द्रमाकी किरणें यह सब दाहज्वरके शान्त करनेवाले हैं। इस प्रकार अत्यन्त पित्तके बढनेसे उत्पन्न हुए दाहज्वरकी शान्तिका उपचार कथन किया गया ॥ २६० ॥ २६१ ॥

अथोष्णाभिप्रायिणां ज्वरितानामभ्यङ्गादीनुपक्रमानुपदेक्ष्यामः ॥

अब जिन ज्वरोंमें उष्ण उपचार करना चाहिये उनके अभ्यंगादि क्रमोंको कहतेहैं॥

अगरादितैल।

अगुरुकुष्ठतगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौणेयकक्षेमिकैलावरावराङ्गदपूरतमालपत्रभूतीकरोहिषसरलशल्लकीदेवदार्वग्निमन्थबिल्वश्योणाककाश्मर्य्यपाटलापुनर्नवावृश्चीरकण्टकारिबृहतीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमाषपर्णीमुद्गपर्णीगोक्षुरकैरण्डशोभाञ्जनकवरुणार्कचिरिबिल्वातिल्वकशटीपुष्करमूलभाण्डीरोरुबुकपत्तूराक्षीवाश्मन्तकशिग्रुमातुलुङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमेषश्रृङ्गीहिंस्रादन्तशठैरावतकभल्लातकास्फोतकण्डीरात्मजकेषीकाकरञ्जधान्यकाजमोदपृथ्वीकासुमुखसुरसकुठेरककण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्झकभूस्तृणशृङ्गवेरपिप्पलीसर्षपाश्वगन्धारास्नारुहारोहावचाबलातिबलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुलीगन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाध्यण्डाम्लचाङ्गेरीबदरकुलत्थमाषाणामेवंविधानामन्येषां चोष्णवीर्य्याणां यथालाभमौषधानां कषायं कारयेत्तेन कषायेण तेषामेव च कल्केन सुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकदधिमण्डारनालकटरप्रतिविनीतेन तैलपात्रं विपाचयेत्। तेन सुखोष्णेन तैलेनोष्णाभिप्रायिणं ज्वरितमभ्याञ्ज्यात्। तथा शीतज्वरः प्रशाम्यति तैरेव चौषधैः श्लक्ष्णपिष्टैः सुखोष्णैः प्रदेहं कारयेत्। एतेषामेव च सुखोष्णमुष्णमुत्क्काथमवगाहनपरिषेकार्थं प्रयुञ्जीत ज्वरप्रशमार्थमिति ॥ २६२ ॥

अगर, कूठ, तगर, तेजपात, नरसल, शिलापुष्प, गन्धतृण, रेणुका, गटौना, हल्दी, छोटी इलायची, त्रिफला, प्रियंगुका पत्र, धूप, अगर, तमालपत्र, अजवायन, रोहिषतृण, सरलकाष्ठ, शिलारस, देवदारु, अरनी, बेलकी छाल, श्योनाक, खंभारी,

पाढर, पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरू, एरंडकी जड, सहांजना, बरना, आक, करञ्ज, लोध, कचूर, पोहकर मूल, बडकी जटा, लाल एरंड, पचूर (शालिंच शाक) अक्षीव (सहांजनेका भेद), अश्मन्तक, सिग्रू (सहांजना), बिजौरा नींबू, सलजम, मूलपर्णी, पीलूपर्णी, तिलपर्णी, मेंढासिंगी, हिंस्रा (हींस), जंभीरी नींबू, ऐरावतफल, भेलावे, आस्फोतक तथा कण्डीर, आत्मजक, एषिका, लताकरंज, धनियाँ, अजमोद, जीरा और सुमुख, सुरस, कुठेरक, कण्डीर, कालमालक, क्षवक, फणिज्झक यह सब तुलसीके भेद, भूतृण, सोंठ, पीपल, सरसों, असगन्ध, रासना, दूब, वच, खरैटी, सहदेई, गिलोय, सौंफ, शीतवल्ली, नाकुलीकन्द, गन्धनाकुली, श्वेता, ज्योतिष्मती, चित्रक, कौंचके बीज, अम्ल चांगेरी, बेर, कुल्थी और उडद। इन सब औषधियोंको लेकर तथा इनके सिवाय अन्य भी जो उष्णवीर्य औषधी हैं उन सबको मिलाकर क्वाथ और कल्क बनावे। यह क्वाथ और कल्क तथा सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, दहीका तोड, कांजी और घोल यह सब मिलाकर इनमें चारसेर पक्का तिलका तेल सिद्ध करे। इस तेलको किंचित् उष्ण रहते शरीरपर मालिश करे। यदि यह शीतल होजाय तो इसको धूपमें गरमकर फिर शरीरपर मालिश करे। इस तेलका मालिश करना ज्वरको शान्त करता है और शरीरकी अकडन दूरकर हलका बनाता है। तथा इन्हीं औषधोंके कल्कको गरमकर सुहाता २ लेप करना और इन्हींके क्वाथसे स्नान तथा सिंचन करना भी शीतज्वरको शान्त करता है॥ २६२॥

शीतज्वरनाशक अन्य कर्म।

भवन्ति चात्र—त्रयोदशविधः स्वेदः स्वेदाध्याये निदर्शितः।

मात्राकालविदा युक्तः स च शीतज्वरापहः॥ २६३॥

सा कुटी तच्च शयनं तच्चावच्छादनं ज्वरम्।

शीतं प्रशमयन्त्याशु धूपाश्चागुरुजा घनाः॥ २६४॥

शीतज्वरके अन्य उपचारोंको कथन करते हैं। जो तेरह प्रकारके स्वेद (पसीना देना) स्वेदाध्यायमें कहेगये हैं बुद्धिमान् वैद्य मात्रा, काल आदि विचारकर उनका प्रयोग करे तो भी शीतज्वर नष्ट होजाता है तथा उसी अध्याय (सूत्रस्थानका १४-वां अध्याय) में जो कुटीप्रवेशका विधान लिखा है तथा शयन, आच्छादन आदिका जो विधान है उनका उपयोग करना शीतज्वरको नष्ट करता है। अगरकी अत्यंत गाढी धुनी देना भी शीतज्वरको शान्त करता है॥ २६३॥ २६४॥

पवित्रचारुगात्राश्च तरुण्यो यौवनोष्मणा।

आश्लेषाच्छमयन्त्याशु प्रमदाः शिशिरज्वरम्॥ २६५॥

सुन्दर पवित्र अंगोंवाली युवा स्त्री भी शीतज्वरवालेको गाढ आलिंगन करके जवानीकी गर्मीद्वारा शीतज्वरको शांत करसकती हैं ॥ २६५ ॥

स्वेदनान्यन्नपानानि वातश्लेष्महराणि च ।
शीतज्वरं जयन्त्याशु संसर्गबलयोजनात् ॥ २६६ ॥

अन्य भी वात-कफज्वरके हरनेवाले जितने प्रकारके स्वेदन कर्म हैं उनके उपयोगसे तथा अन्य किसी प्रकारके औषधादिकोंके संसर्गसे शीतज्वर शान्त हो जाता है ॥ २६६ ॥

कुछ ज्वरोंमें लंघनका निषेध ।

वातजे श्रमजे चैव पुराणे क्षतजे ज्वरे ।
लङ्घनं न हितं विद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत् ॥ २६७ ॥

वायुके ज्वरमें श्रमसे उत्पन्न हुए ज्वरमें, पुराने ज्वरमें तथा क्षतज ज्वरमें लंघन कराना हितकारक नहीं होता । इसलिये ऐसे ज्वरोंको शमन औषधियोंद्वारा शान्त करे ॥ २६७ ॥

अन्य ज्वरोंमें लंघनकी आवश्यकता ।

विक्षिप्यामाशयोष्माणं यस्माद्गत्वा रसं नृणाम् ।
ज्वरं कुर्वन्ति दोषास्तु हीयतेऽग्निबलं ततः ॥ २६८ ॥
यथा प्रज्वलितो वह्निः स्थाल्यामिन्धनवानपि ।
न पचत्योदनं सम्यगनिलप्रेरितो बहिः ॥ २६९ ॥
पक्तिस्थानात्तदा दोषैरूष्मा क्षिप्तो बहिर्नृणाम् ।
न पचत्यभ्यवहृतं कृच्छ्रात्पचति वा लघु ॥ २७० ॥
अतोऽग्निबलरक्षार्थं लंघनादिक्रमो हितः ।
सप्ताहेन हि पच्यन्ते सर्वधातुगता मलाः ॥ २७१ ॥
निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ २७२ ॥

दोष रससे मिलकर आमाशयकी अग्निको उसके स्थानसे निकालकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं । इस कारणसे अग्निका बल नष्ट होजाता है । जैसे-हवाके वेगसे जलतीहुई अग्नि इन्धन युक्त होतेहुए भी अपने स्थानसे बाहरकी ओर चलीजानेपर चूल्हेपर रक्खे पात्रके अन्नको नहीं पका सकती; उसी प्रकार दोषोंके वेगद्वारा अपने स्थानसे निकलीहुई जठराग्नि भी भोजनको पका नहीं सकती । अथवा अत्यंत हलके भोजनको भी कठिनतासे पचाती है । इसलिये अग्निके बलकी रक्षाके वास्ते लंघन

आदि क्रम अर्थात् प्रथम लंघन कराना ही हितकर है। सात दिन लंघन करानेसे सब धातुओंमें गयेहुए दोष पकजाते हैं। फिर यह ज्वर प्रायः आठवें दिन निराम कहाजाता है ॥ २६८--२७२ ॥

अल्पाग्निमें भारी पदार्थ भोजन करनेके दोष।

उदीर्णदोषस्त्वल्पाग्निरश्नन् गुरु विशेषतः।
मुच्यते सहसा प्राणैश्चिरं क्लिश्यति वा नरः ॥ २७३ ॥

जिसके वातादि दोष प्रकट होगये हों ऐसा अल्पाग्नि मनुष्य यदि भारी पदार्थोंका भोजन करे तो शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है अथवा वह मनुष्य बहुत कालतक कष्टको पाता है ॥ २७३

वातज्वरमें चिकित्साक्रम।

एतस्मात्कारणाद्विद्वान् वातिकेऽप्यादितो ज्वरे।
नातिगुर्वीति वा स्निग्धं भोजयेत्सहसा नरम् ॥ २७४ ॥
ज्वरे मारुतजे त्वादावनपेक्ष्यापि हि क्रमम्।
कुर्य्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमान् ॥ २७५ ॥
पाययित्वा कषायञ्च भोजयेद्रसभोजनम्।
जीर्णज्वरहरं कुर्य्यात्सर्वशश्चाप्युपक्रमम् ॥ २७६ ॥

इसलिये विद्वान् वैद्य वातिक ज्वरमें भी प्रथम ही सहसा (झटपट) भारी और अत्यंत स्निग्ध पदार्थोंका सेवन न करावे। किंतु क्रमपूर्वक जैसा जिस समय उचित हो उस प्रकार प्रथम अल्प और हलका फिर क्रमपूर्वक किंचित् भारी स्निग्ध भोजनपर पहुंचावे। यदि वातसे उत्पन्नहुए ज्वरमें पित्त और कफका अनुबन्ध न होवे तो लंघन न कराकर प्रथम तो वातज्वरनाशक तैलादिकका शरीरपर मालिश करावे और वातज्वर-नाशक क्वाथ पिलावे तथा मांसरसका भोजन करावे। एवं जीर्णज्वरके शांत करनेको जो चिकित्साक्रम कहा है उस विधिसे ही वातज्वरकी भी चिकित्सा करे २७४-२७६

कफज्वरमें चिकित्साक्रम।

श्लेष्मलानामवातानां ज्वरोऽनुष्णे कफाधिकः।
परिपाकं न सप्ताहे नापि याति मृदूष्मणाम् ॥ २७७ ॥
तं क्रमेण यथोक्तेन लङ्घनाल्पाशनादिना।
आदशाहमपक्रम्य कषायाद्यैरुपाचरेत् ॥ २७८ ॥

वातरहित कफप्रधान मनुष्यके कफज्वरमें शरीर अग्निके उष्णतासे रहित होता है। इसलिये कफज्वरमें दोष सात दिनमें भी परिपाकको प्राप्त नहीं होते क्योंकि कफज्वरवाले मनुष्योंकी जठराग्नि अत्यन्त मन्द होती है इसलिये उनको दशदिनपर्यन्त लंघन और अल्प तथा हलके आहार आदि क्रमसे दोषोंको क्षीणकर फिर क्वाथ आदिकोंसे चिकित्सा करे ॥ २७७ ॥ २७८ ॥

अन्य ज्वरोंमें उपदेश।

सामा ये ये च कफजाः कफपित्तज्वराश्च ये।
लङ्घनं लङ्घनीयोक्तं तेषु कार्य्यं प्रति प्रति ॥ २७९ ॥
वमनैश्च विरेकैश्च वस्तिभिश्च यथाक्रमम्।
ज्वरानुपचरेद्धीमान् कफपित्तानिलोद्भवान् ॥ २८० ॥

संपूर्ण सामज्वरोंमें, कफज्वरमें, कफपित्तज्वरमें लंघनकी विधिसे दोषानुसार लंघन कराना चाहिये। तथा कफज्वरको वमनद्वारा, पित्तज्वरको विरेचनद्वारा, वातज्वरको स्नेहवस्तिद्वारा जीतना चाहिये। परन्तु जबतक दोष अत्यंत नवीन कच्चे और बद्ध हों तबतक वमनादि क्रिया उचित नहीं। दोषोंके चलायमान होनेपर ही वमनादिद्वारा दोष निकाल देने चाहिये ॥ २७९ ॥ २८० ॥

द्वंद्वज और सन्निपातज ज्वरोंमें चिकित्साक्रम।

संसृष्टान् सन्निपतितान् बुद्ध्वा तरतमैः समैः।
ज्वरान् दोषक्रमापेक्षी यथोक्तैरौषधैर्जयेत् ॥ २८१ ॥
वर्द्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य वा।
कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ २८२ ॥

और दोदो दोषोंके तथा तीनों दोषोंके मिलेहुए होनेपर उनकी न्यूनता अधिकता विचारकर (उनमें कौन दोष अधिक कौन कम और कौन सम है ऐसा देखकर) दोषोंके क्रमानुसार जो औषधियें उनको जीतनेवाली हों उनके द्वारा चिकित्सा करे। अर्थात् द्वंद्वज और सन्निपातज ज्वरोंमें क्षीणदोषको बढावे और बढेहुए दोषको शांत करे। एवं दोषोंको बराबर जाने तो प्रथम कफको फिर पित्तको तदनंतर वातको जीतनेकी क्रिया करे ॥ २८१ ॥ २८२ ॥

कर्णमूलशोथमें उपचार।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ २८३ ॥

रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत् ।
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्नावनैः कवलग्रहैः ॥ २८४ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जडमें एक दारुण सूजन उत्पन्न होजाती है उस सूजनवाले सन्निपातज्वरवाला मनुष्य सैकडोंमें कोई एकाध ही बचता है । इस दारुण सूजनमें जोंक अथवा सींगीद्वारा शीघ्र रक्त निकलवा देना चाहिये और कफ पित्त तथा रुधिरके जीतनेवाले घृतोंका उपयोग (पिलाना) करना चाहिये । एवं कफ-पित्तनाशक लेप, सेक नसवार आदिका उपयोग, कफ-पित्तनाशक क्काथोंके कवल (कुल्ले) कराना इत्यादि क्रमसे उस कर्णशोथको शीघ्र शांत करे ॥२८३॥ २८४॥

शाखाश्रित ज्वरका उपचार ।

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरो यस्य न शाम्यति ।
शाखानुसारी रक्तस्य सोऽवसेकात् प्रशाम्यति ॥ २८५ ॥

जिस ज्वरकी शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदि क्रिया करनेपर भी शांति न होय उस ज्वरको केवल दोषाश्रितही न समझे वह शाखाओं (रक्तादि) के आश्रित होता है। इसलिये ऐसे ज्वरोंमें रक्तमोक्षण (फस्तखोलना) तथा औषधियोंके क्काथोंसे स्नान कराना हित होता है ॥ २८५ ॥

विसर्पादिकोंसे उत्पन्नहुए ज्वरमें चिकित्साक्रम।

वीसर्पणाभिघातेन यश्च विस्फोटकैर्ज्वरः ।
तत्रादौ सर्पिषः पानं कफपित्तोत्तरो न चेत् ॥ २८६ ॥

विसर्परोगसे तथा चोट लगनेसे अथवा विस्फोटक (फोडे शीतला) आदिसे उत्पन्नहुए ज्वरोंमें यदि कफपित्तका अनुबंध न हो तो घृतोंका पिलानाही हितकर होता है ॥ २८६ ॥

जीर्णज्वरमें चिकित्सा ।

दौर्बल्याद्देहधातूनां ज्वरो जीर्णोऽनुवर्त्तते ।
बल्यैः सबृंहणैस्तस्माद्राहारैस्तमुपाचरेत् ॥ २८७ ॥

देहके धातुओंके दुर्बल होनेसेही जीर्णज्वर प्रगट होता है इसलिये बलकारक बृंहण घृतादिकोंद्वारा जीर्णज्वरोंको शांत करना चाहिये ॥ २८७ ॥

विषम ज्वरमें निर्देश ।

कर्म साधारणं कुर्य्यात्तृतीयकचतुर्थके ।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ।
वातप्रधानं सर्पिभिर्बस्तिभिः सानुवासनैः ॥ २८८ ॥

स्निग्धोष्णैरनुपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ।
विरेचनेन पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च ॥ २८९ ॥
विषमं तिक्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् ।
वमनं पाचनं रूक्षमनुपानं विलङ्घनम् ॥ २९० ॥
कषायोष्णञ्च विषमे ज्वरे शस्तं कफोत्तरे ॥ २९१ ॥

तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें बस्ति आदिक तथा औषधादिकोंद्वारा साधारण चिकित्सा करे । क्योंकि प्रायः विषमज्वरोंमें आगंतुक हेतुओंका भी अनुबंध होता है । यदि यह विषमज्वर वातप्रधान हो तो घृतोंद्वारा तथा स्नेहन और अनुवासन बस्तियोंद्वारा एवं गर्म और चिकने अनुपानोंद्वारा शांत करना चाहिये । यदि विषमज्वर पित्तप्रधान होय तो विरेचनद्वारा तथा तिक्त और शीतल, द्रव्योंके क्वाथ अथवा उनसे सिद्धकिये घृत दूधोंद्वारा चिकित्सा करे । एवं कफप्रधान विषमज्वरमें वमन कराना, पाचन और रूक्ष द्रव्योंके तथा कषैले और उष्ण द्रव्योंके क्वाथ पिलाना एवं लंघन कराना हितकर होता है ॥ २८८-२९१ ॥

विषमज्वरनाशक अन्य योग ।

योगाः पराः प्रवक्ष्यन्ते विषमज्वरनाशनाः ।
प्रयोक्तव्या मतिमता दोषादीन् प्रविभज्य ये ।
सुरा समण्डा पानार्थे भक्ष्यार्थे चरणायुधाः ॥ २९२ ॥
तित्तिरिश्च मयूरश्च प्रयोज्यो विषमज्वरे ।
पिबेद्वा षट्पलं सर्पिरभयां वा प्रयोजयेत् ॥ २९३ ॥
त्रिफलायाः कषायं वा गुडूच्या रसमेव वा ।
नीलिनीमजगन्धाञ्च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ॥ २९४ ॥
पिबेज्ज्वरागमे युक्त्या स्नेहस्वेदोपपादितः ।
सर्पिषो महतीं मात्रां पीत्वा वा च्छर्दयेत्पुनः ॥ २९५ ॥
उपयुज्यान्नपानं वा प्रभूतं पुनरुल्लिखेत् ।
सान्नं मद्यं प्रभूतं वा पीत्वा स्वप्याज्ज्वरागमे ॥ २९६ ॥
आस्थापनं यापनं वा कारयेद्विषमज्वरे ।
पयसा वृषदंशस्य शकृद्वा तदहः पिबेत् ॥ २९७ ॥

वृषस्य दधिमण्डेन सुरया वा ससैन्धवम् ।
पिप्पल्यास्त्रिफलायाश्च दध्नस्तक्रस्य सर्पिषः ॥ २९८ ॥
पञ्चगव्यस्य पयसः प्रयोगो विषमज्वरे ।
लशुनस्य सतैलस्य प्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥ २९९ ॥
मेध्यानामुष्णवीर्य्याणामामिषाणाञ्च भक्षणम् ॥ ३०० ॥

अब विषमज्वरनाशक अन्य उत्तम २ योगोंका कथन करते हैं । जिन उत्तम योगों-का प्रयोग दोषोंको अलग २ विचारकर बुद्धिमान् वैद्यको करना चाहिये । विषम-ज्वरमें पीनेके लिये सुरामण्ड देना चाहिये । भोजनके लिये-मुर्गा, तीतर और मोरका मांसरस देवे । अथवा सिद्ध षट्फल, घृत, हरडे, त्रिफलेका क्वाथ, या गिलोयका रस पिलावे । अथवा ज्वर आनेके समय रोगीको स्नेहन स्वेदन करके फिर नीलिनी, अजगंधा, निशोथ, कुटकी इनका क्वाथ करके पिलावे । अथवा पहिले स्नेहन स्वेदन करके फिर अधिकमात्रासे घृत पिलाकर वमन करावे । अथवा अधिक मात्रासे अन्न-पान खिलापिलाकर फिर वमन करावे अथवा ज्वरके आगमनके समय अन्न और मद्यका भोजन करके विषमज्वरवाला मनुष्य सोजाय । अथवा उचित द्रव्योंसे सिद्ध की हुई दूध आदि औषधीद्वारा आस्थापन अथवा यापन वस्तिकर्म करे । अथवा जिसदिन ज्वरकी वारी हो उस दिन दूधके साथ बिल्लीकी विष्ठाको पीवे । अथवा बैलके गोबरका रस सेंधानमक मिलाके पीवे या दहीका मंड सैंधानमक युक्त करके अथवा सेंधानमकयुक्त सुरा पीवे । अथवा पीपल, त्रिफला, दही, छाछ इनसे सिद्ध किया घृत अथवा पञ्चगव्य और चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत या दूधका पीना विषमज्वरको शांत करता है । अथवा भोजनके प्रथम लहसुनयुक्त तैलका सेवन करे अथवा उष्णवीर्य पवित्र मांसोंका सेवन भी विषमज्वरोंको शांत करता है ॥ २९२-३०० ॥

विषमज्वरनाशक नस्य ।

हिङ्गुतुल्या नु वैयाघ्री वसा नस्यं ससैन्धवा ।
पुराणसर्पिः सिंहस्य वसा तद्वत्ससैन्धवा ॥ ३०१ ॥

अथवा हींग, व्याघ्रकी चरबी और सेंधानमक इन तीनोंको बराबर लेकर इनकी नस्य लेना भी विषमज्वरको शांत करता है । एवं पुराना घृत, शेरकी चरबी, सेंधान-मक मिलाकर नस्य (हुलास) लेना भी विषमज्वरको शांत करता है ॥ ३०१ ॥

अञ्जन ।

सैन्धवं पिप्पलीनाञ्च तण्डुलाः समनःशिलाः ।

नेत्राञ्जनं तैलपिष्टं शस्यते विषमज्वरे ॥ ३०२॥

सेंधानमक, मधु, पीपलके कणके, मनशिल इनको तेलमें पीसकर अंजन आँजना विषमज्वरको नाश करता है ॥ ३०२ ॥

धूप।

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी।
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ ३०३ ॥

गूगल, नीमके पत्र, वच, कूठ, हरडेका छिलका, सरसों, जौ और घृतकी धूप देना विषमज्वरको नाश करता है ॥ ३०३ ॥

अन्ययोग।

ये धूमा धूपनं यच्च नावनञ्चाञ्जनञ्च यत्।
मनोविकारे व्याख्यातं कार्य्यं तद्विषमज्वरे।
मणीनामौषधीनाञ्च मङ्गल्यानां विषस्य च ॥ ३०४ ॥
धारणादगदानाञ्च सेवनान्न भवेज्ज्वरः ॥ ३०५ ॥

जो उन्माद तथा मृगीरोगके अधिकारमें कहेहुए धूम, धूपन, नस्य, अंजन आदि कर्म हैं वह सब कर्म विषमज्वरको शांत करते हैं। एवं मणियोंका धारण करना, मंगल औषधियोंका धारण करना, वच्छनाग आदि विष अथवा विषनाशक अगदोंको धारण करना एवं विषनाशक अगदोंको सेवन करना भी विषमज्वरको शान्त करता है ॥ ३०४॥ ३०५ ॥

दैवीयत्न।

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम्।
पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात्।
विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम् ॥ ३०६ ॥
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति।
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्षं हिमाचलम् ॥ ३०७॥
गङ्गां मरुद्गणांश्चेष्ट्वा पूजयञ्जयति ज्वरान्।
भक्त्या मातापितॄणाञ्च गुरूणां पूजनेन च ॥ ३०८॥
ब्रह्मचर्य्येण तपसा सत्येन नियमेन च।
जपहोमप्रदानेन वेदानां श्रवणेन च ॥ ३०९ ॥

ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च ॥ ३१० ॥

सौम्यभावमें स्थित नंदी आदिगणों सहित तथा मातृका गणोंयुक्त गणोंके पति महादेवका नित्य प्रातःकाल विधिवत् पूजन करनेसे विषमज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है। एवं सहस्र मस्तकोंवाले चराचरके पति विष्णु भगवान्‌की विष्णुसहस्रनाम द्वारा स्तुति करनेसे संपूर्ण ज्वर दूर होजाते हैं। ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, इंद्र, अग्नि, हिमाचल, गंगा, मरुद्गण तथा अपने इष्टदेवका पूजन करनेसे भी मनुष्यके विषमज्वरकी शांति होती है। एवं भक्तिपूर्वक मातापिता और गुरुजनोंको पूजन सेवा आदिसे प्रसन्न करनेसे, ब्रह्मचर्य पालन करनेसे, तप, सत्य और नियममें स्थित रहनेसे, जप, होम और दानके करनेसे, वेदादि सत्‌शास्त्रोंके श्रवण करनेसे तथा महात्माओंके दर्शनोंके करनेसे मनुष्य विषमज्वरसे छूटजाता है ॥ ३०६-३१० ॥

पृथक् २ रसादिधातुगतज्वरोंके यत्न।

ज्वरे रसस्थे वमनमुपवासञ्च कारयेत् ।
सेकप्रदेहौ रक्तस्थे तथा संशमनानि च ॥ ३११ ॥
विरेचनं सोपवासं मांसमेदःस्थिते हितम् ।
अस्थिमज्जगते देया निरूहाः सानुवासनाः ॥ ३१२ ॥

रसमें स्थित ज्वर हो तो लंघन और वमन कराना चाहिये रक्तगत ज्वरमें प्रदेह (उबटन), प्रसेक (दवाइयोंके क्वाथोंसे स्नान करना) और संशमन क्रिया करना हितकारक है। मांसमें और मेदमें स्थित ज्वर हो तो लंघन और विरेचनद्वारा शांत करना चाहिये। अस्थिगत और मज्जागत ज्वरमें निरूहणवस्ति तथा अनुवासन बस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥

शाप और अभिचारसे उत्पन्न ज्वरकी चिकित्सा।

शापाभिचाराद्भूतानामभिषङ्गाच्च यो ज्वरः ।
दैवव्यपाश्रयं तत्र सर्वमौषधमिष्यते ॥ ३१३ ॥

गुरुजनादिकोंके शापसे तथा अभिचार (टोने मन्त्रादिक) से अथवा भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न हुए संपूर्ण ज्वरोंमें दैव व्यपाश्रय (दैवीयत्न) तथा दैवी औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१३ ॥

अभिघातसे उत्पन्न ज्वरकी चिकित्सा।

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः ।
रक्तावसेकैर्मद्यैश्च सात्म्यैर्मांसरसोदनैः ।

सानाहो मद्यसात्म्यानां मदिरारसभोजनैः ॥ ३१४ ॥

चोट आदि लगनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें घृतोंका पीना और अभ्यंग करना, रक्त-मोक्षण कराना, सात्म्य मांसरस युक्त भोजन तथा मद्यका सेवन करना हितकारक होता है। मद्यसात्म्य मनुष्योंको यदि अफारायुक्त ज्वर हो तो मांसरस और मद्यके संग भोजन देना हितकारी होता है ॥ ३१४ ॥

क्षतादिकोंसे उत्पन्न ज्वरमें चिकित्सा।

क्षतानां व्रणितानाञ्च क्षतव्रणचिकित्सया ॥ ३१५ ॥

उरक्षत और व्रणजन्य ज्वरमें क्षतरोग और व्रणरोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३१५ ॥

काम शोक भय क्रोधसे हुए ज्वरमें।

आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च।
हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः।
काम्यैरर्थैर्मनोज्ञैश्च पित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः।
सद्वाक्यैः शाम्यति ह्याशु ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ॥ ३१६ ॥

काम शोक और भयसे उत्पन्नहुए ज्वरोंमें आश्वासन (दिलासा) देना, इष्टवस्तुको प्राप्त करना, वायुको शांत करनेवाले यत्न करना और हर्ष (आनन्द) दायक बातोंका सुनाना हितकारक होता है। क्रोधसे उत्पन्नहुए ज्वरमें इच्छित पदार्थोंकी प्राप्ति, मनोज्ञ तथा पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये तथा शान्तिदायक सद्वाक्यों द्वारा शान्ति करना भी क्रोधज्वरको शान्त करता है ॥ ३१६ ॥

कामात् क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात् कामसमुद्भवः।
याति ताभ्यामुभाभ्याञ्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ३१७ ॥

क्रोधसे उत्पन्नहुआ ज्वर-कामके उत्पन्न होनेसे शान्त होजाता है। कामसे उत्पन्नहुआ ज्वर क्रोधके होनेसे शान्त होजाता है। इसी प्रकार भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर और शोकसे उत्पन्नहुआ ज्वर यह दोनों क्रोध और कामके उत्पन्न होनेसे शान्त होजाते हैं ॥ ३१७ ॥

स्मृतिज्वरका यत्न।

ज्वरकालञ्च वेगञ्च चिन्तयञ्ज्वर्य्यते तु यः।
तस्येष्टैस्तु विचित्रैश्च विषयैर्नाशयेत् स्मृतिम् ॥ ३१८ ॥

जिस मनुष्यको ज्वरका समय चिंतन करनेसे कि मुझे दुपहरको ज्वर आवेगा इत्यादि शोच करते २ समयपर ज्वर आजाय तो उस मनुष्यको इच्छित वस्तुओंका

देना, सुन्दर कथा कहानी सुनाकर वक्त टालदेना और खेल आदिकमें भुला रखना हितकारक होता है॥ ३१८॥

ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप।

ज्वरप्रमोक्षे पुरुषः कूजन् वमति चेष्टते।
श्वसन् विवर्णः स्विन्नाङ्गो वेपते लीयते मुहुः॥ ३१९॥
प्रलपत्युष्णसर्वाङ्गः शीताङ्गश्च भवत्यपि।
विसंज्ञो ज्वरवेगार्त्तः सक्रोध इव वीक्षते॥ ३२०॥
सदोषशब्दश्च शकृद्द्रवं स्रवति वेगवत्।
लिङ्गान्येतानि जानीयाज्ज्वरमोक्षे विचक्षणः॥ ३२१॥

जब रोगीका ज्वर बेसमय मुक्त होने लगता है उससे प्रथम रोगीके यह लक्षण होते हैं। जैसे–आतोंका कूंजना, वमन, अंगोंका इधर उधर हिलाना, श्वास, विवर्णता, सब अंगोंमें स्वेदआना, कंप, बार २ जडता प्राप्त होना, बकवाद, सब अंगोंका अत्यन्त गर्म अथवा शीत होना, बेहोशी, ज्वरके वेगसे व्याकुलता, क्रोधयुक्तके समान देखना, दुर्गंधयुक्त और शब्दके साथ वेगपूर्वक पतला दस्त आना यह लक्षण ज्वर-मोक्षके समय होते हैं। सो बुद्धिमान् वैद्यको जानना चाहिये॥ ३१९–३२१॥

बहुदोषस्य बलवान् प्रायेणाभिनवो ज्वरः।
सत्क्रिया दोषपक्त्या चेद्विमुञ्चति सुदारुणम्॥ ३२२॥

प्रायः उपरोक्त लक्षण तब होते हैं जब बहुत दोषयुक्त बलवान् तथा नवीन ज्वरको दोषोंके विना पकाए औषधोंद्वारा शांत कियाजाय तब यह दारुण लक्षण होते हैं॥ ३२२॥

समयपर ज्वरमुक्तिके लक्षण।

कृत्वा दोषवशाद्वेगं क्रमादुपरमन्ति ये।
तेषामदारुणो मोक्षो ज्वराणां चिरकारिणाम्॥ ३२३॥
विगतक्लमसन्तापमव्यथं विमलेन्द्रियम्।
युक्तं प्रकृतिसत्त्वेन विद्यात्पुरुषमज्वरम्॥ ३२४॥

परंतु दोषोंका परिपाक होकर लंघनादि क्रमद्वारा समयपर मोक्ष होता है तो ज्वर मुक्तिके समय उपरोक्त दारुण लक्षण नहीं होते किंतु यह लक्षण होते हैं जैसे क्लांति दूर होजाना, संताप न रहना, शरीरमें व्यथा न रहना, सब इंद्रियोंका निर्मल होना,

मन प्रसन्न होना, संपूर्ण भाव प्रकृतिस्थ होना यह विगतज्वर मनुष्यके अर्थात् ज्वर छूटजानेके लक्षण होते हैं ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥

ज्वरमुक्तके त्याज्य विषय।

सज्वरो ज्वरमुक्तश्च विदाहीनि गुरूणि च ।
असात्म्यान्यन्नपानानि विरुद्धानि विवर्जयेत् ॥ ३२५ ॥
व्यवायमतिचेष्टाश्च स्नानमत्यशनानि च ।
तथा ज्वरः शमं याति प्रशान्तो जायते न च ॥ ३२६ ॥

ज्वरयुक्त मनुष्यको अथवा ज्वरमुक्त होनेपर भी विदाही, भारी और असात्म्य तथा विरुद्ध अन्नपानोंको त्यागदेना चाहिये। एवं मैथुन, अधिक चेष्टा (चलना फिरना), एकसाथ अधिक बैठा रहना, अथवा अधिक देरतक स्नान करना और अधिक भोजन करना त्याग देना चाहिये। तथा ऐसे उपाय करने चाहिये जिनसे ज्वर चढा हो तो शांत होजाय और ज्वर उतर गया हो तो फिर न आवे॥ ३२६॥

व्यायामश्च व्यवायश्च स्नानं चंक्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत् ॥ ३२७ ॥

ज्वरमुक्त मनुष्य जबतक बलवान् न होजाय तबतक व्यायाम (दंड कसरत), मैथुन, स्नान और अधिक घूमना त्याग देवे ॥ ३२७ ॥

ज्वरमुक्तके कुपथ्यसेवनके दोष।

असञ्जातबलो यस्तु ज्वरमुक्तो निषेवते ।
वर्ज्यमेतन्नवस्तस्य पुनरावर्त्तते ज्वरः ॥ ३२८ ॥
दुर्हृतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते ।
स्वल्पेनाप्यपचारेण तस्य व्यावर्तते पुनः ॥ ३२९ ॥
चिरकालपरिक्लिष्टं दुर्बलं दीनचेतसम् ।
अचिरेणैव कालेन स हन्ति पुनरागतः ॥ ३३० ॥

यदि ज्वरसे मुक्त होनेपर मनुष्य विना बल प्राप्तहुए व्यायामादि कुपथ्य सेवन करता है तो उस मनुष्यको ज्वर फिर उत्पन्न होजाता है। जो ज्वर अनुचित रीतिसे हरण कियाजानेपर शांत होजाता है वह अत्यंत अल्प अपथ्य होनेसे भी फिर प्रगट होजाता है यह फिर आयाहुआ ज्वर मनुष्यको बहुत कालतक क्लेशित करके दुर्बल और दीनचित्त बनाकर शीघ्र ही नष्ट कर डालता है ॥ ३२८-३३० ॥

---

१ स्थानमिति पाठान्तरम् ।

अथवापि परीपाकं धातुष्वेव क्रमान्मलाः।
यान्ति ज्वरमकुर्वन्तस्ते तथाप्यपकुर्वते ॥ ३३१ ॥
दीनतां श्वयथुं ग्लानिं पाण्डुतां नान्नकामताम्।
कण्डूरुत्कोष्ठपिडकाः कुर्वन्त्यग्निश्च ते मृदुम् ॥ ३३२ ॥
एवमन्येऽपि च गदा व्यावर्त्तन्ते पुनर्गताः।
अनिर्घातेन दोषाणामल्पैरप्यहितैर्नृणाम् ॥ ३३३ ॥

अथवा ज्वरमुक्त मनुष्यके कुपथ्य सेवनसे दोष-ज्वरको उत्पन्न किये विना भी रसादिक धातुओंमें प्राप्त होकर उन धातुओंका परिपाक करते हैं। फिर रसादिक धातुओंके परिपाक होनेसे-दीनता, सूजन, ग्लानि, पाण्डुता, अन्नमें अरुचि, खाज, उत्कोष्ठ, पिडका और मंदाग्नि यह रोग उत्पन्न होजाते हैं, तथा इसीप्रकार अन्य रोग भी फिर आकर प्रवृत्त होजाते हैं। यह सब ज्वरमुक्त मनुष्योंके थोडेसे कुपथ्य करनेसे भी फिर आकर प्रकट होजाते हैं ॥ ३३१-३३३ ॥

ज्वरमुक्तहोनेपर कर्तव्य।

निवृत्तेऽपि ज्वरे तस्माद्यथावस्थं यथाबलम्।
यथाप्राणं हरेद्दोषं प्रयोगैर्वा शमं नयेत् ॥ ३३४ ॥
मृदुभिः शोधनैः शुद्धिर्यापना वस्तयो हिताः।
हिताश्च लघवो यूषा जाङ्गलामिषजा रसाः ॥ ३३५ ॥

इसलिये ज्वर छूटजानेपर भी अवस्था, बल और प्राणोंकी शक्तिके अनुसार दोषादि विचारकर प्रमाणानुसार क्रमसे दोषोंका हरण करे अथवा योग्य औषधियोंद्वारा दोषोंको इसप्रकार शमन करे जिससे वह फिर कुपित न होने पावें अथवा मृदु शोधनोंद्वारा शरीरको शोधन करे और यापन, बस्तिकर्म करना भी हितकारक है तथा हलके यूषोंको पीना और जांगलजीवोंका मांसरस भोजन करना हितकारक है ३३५॥

पुनरागत ज्वरकी चिकित्सा।

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनस्नानधूपनाभ्यञ्जनानि च।
हितानि पुनरावृत्ते ज्वरे तिक्तघृतानि च ॥ ३३६ ॥
गुर्व्यभिष्यन्दसात्म्यानां भोजनात्पुनरागते।
लंघनोष्णोपचारादिः क्रमः कार्य्यश्च पूर्ववत् ॥ ३३७ ॥

पुनरागतज्वरमें योग्य औषधोंसे सिद्ध किये हुए तैलोंकी मालिश, उबटना, औष-

घोंसे स्नान, धूपन, अंजन और पंच तिक्तक घृतादिकोंका प्रयोग करना हितकारक होता है यदि भारी, अभिष्यंदी और असात्म्य भोजन करनेसे फिर ज्वर होगया हो तो पहिलेकी समान लंघन और उष्ण उपचारादि कर्म करे ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥

अन्य योग।

किराततिक्तकं तिक्ता मुस्तं पर्पटकोऽमृता।
घ्नन्ति पीतानि चाभ्यासात्पुनरावर्त्तकं ज्वरम् ॥ ३३८ ॥

चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, पापडा और गिलोय इनका क्वाथ अथवा इनसे सिद्ध घृत नित्य पीनेसे पुनरागत ज्वर नष्ट होजाता है ॥ ३३८ ॥

वैद्यको उपदेश।

तस्यां तस्यामवस्थायां ज्वरितानां विचक्षणः।
ज्वरक्रियाक्रमापेक्षी कुर्य्यात्तत्र चिकित्सितम् ॥ ३३९ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, फिरसे आयेहुए ज्वरमें तथा अन्यान्य ज्वरोंमें भी ज्वरकी जैसी २ अवस्था हो उसकी उसी २ अवस्थाको विचारकर क्रमपूर्वक चिकित्सा करे ॥ ३३९ ॥

रोगराट् सर्वभूतानामन्तकृद्दारुणो ज्वरः।
तस्माद्विशेषतस्तस्य यतेत प्रशमे भिषक् ॥ इति ॥ ३४० ॥

ज्वर संपूर्ण रोगोंका राजा है यह दारुण ज्वर ही संपूर्ण मनुष्योंको नष्ट करनेवाला है इसलिये वैद्यको ज्वरकी शांतिके लिये विशेषतासे यत्न करना चाहिये ॥ ३४० ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवति चात्र—यथाक्रमं यथाप्रश्नमुक्तं ज्वरचिकित्सितम्।
अत्रिजेनाग्निवेशाय भूतानां हितमिच्छता ॥ ३४१ ॥

इति च० सं० चिकित्सितस्थाने ज्वरचिकित्सितं
नाम तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

अध्यायकी पूर्तिमें एक श्लोक है कि इसप्रकार भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशके प्रश्नानुसार क्रमपूर्वक संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये ज्वरोंकी चिकित्साका वर्णन किया है ॥ ३४१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां ज्वरचिकित्सितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

रक्तपित्तचिकित्सितम् ।

अथातो रक्तपित्तचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम रक्तपित्तचिकित्साका कथन करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

विहरन्तं जितात्मानं पञ्चगङ्गे पुनर्वसुम् ।
प्रणम्योवाच निर्मोहमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥ १ ॥
भगवन् रक्तपित्तस्य हेतुरुक्तः सलक्षणः ।
वक्तव्यं यत्परं तस्य वक्तुमर्हसि तद्गुरो ॥ २ ॥

एक समय पंचगंग (पंजाब) के पहाडोंपर विचरतेहुए अग्निके समान तेजस्वी मोहरहित भगवान् पुनर्वसुजीको प्रणामपूर्वक अग्निवेश कहनेलगे कि, हे भगवन् ! आपने रक्तपित्तके हेतु और लक्षणोंको तो कथन करदिया है परंतु हे गुरो ! इस (रक्तपित्तके) विषयमें अन्य भी जो कुछ कहना योग्य हो सो भी कथन कीजिये॥२॥

पुनर्वसुजीका उत्तर ।

गुरुरुवाच–महागदं महावीर्य्यमग्निवच्छीघ्रकारि च ।
हेतुलक्षणविच्छीघ्रं रक्तपित्तमुपाचरेत् ॥ ३ ॥

हेतु और लक्षणोंके जाननेवाले वैद्यको उचित है कि इस महाभयंकर बलवान् तथा अग्निके समान शीघ्र शरीरको नष्ट करनेवाले रक्तपित्तरोगकी शीघ्र चिकित्सा करे॥३॥

रक्तपित्तकी संप्राप्ति और निरुक्ति ।

तस्योष्णं तीक्ष्णमम्लञ्च कटूनि लवणानि च ।
घर्मश्चान्नविदाहश्च हेतुः पूर्वं निदर्शितः ॥ ४ ॥
तैर्हेतुभिः समुद्दिष्टं पित्तं रक्तं प्रपद्यते ।
तद्योनित्वात्प्रपन्नञ्च वर्द्धते तत्प्रदूषयेत् ॥ ५ ॥

गरम, तीक्ष्ण, अम्ल, कटु और नमकीन पदार्थोंका अधिक सेवन करना तथा धूप, गर्मी, विदाही द्रव्योंका सेवन करना यह रक्तपित्तरोगको उत्पन्न करनेवाले

कारण हैं। यह तो पहले कथन करचुके हैं। इन कारणोंसे कुपित और उत्तेजित हुआ पित्त रक्तको दूषित कर रक्तमें ही मिलजाता है फिर वह रक्तयुक्त वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ ५॥

तस्योष्मणां द्रवो धातुर्धातोर्धातोः प्रसिच्यते ।
स्विद्यतस्तेन संवृद्धिं भूयस्तदधिगच्छति ॥ ६ ॥
संयोगाद्दूषणात्तत्तु सामान्याद्गन्धवर्णयोः ।
रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभिः ॥ ७ ॥

पित्तकी गर्मीसे सम्पूर्ण धातुएँ स्वेदित होकर उनका द्रवीभूत अंश उस पित्तमें मिलजाता है उससे वह पित्ततुल्य स्वभाववाला होनेसे और भी वृद्धिको प्राप्त होता है। वह पित्तके संयोगसे और रक्तके गंध तथा वर्णके तुल्य होनेसे एवं रक्त और पित्तकी तुल्यता होनेसे उस दूषित रक्तपित्तके संयोगसे उत्पन्नहुए रोगको बुद्धिमान् रक्तपित्त कहते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

रक्तपित्तके अधिष्ठान।

प्लीहानञ्च यकृच्चैव तदधिष्ठाय वर्त्तते ।
स्रोतांसि रक्तवाहीनि तन्मलानि हि देहिनाम् ॥ ८ ॥

उस रक्तपित्तके प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) अधिष्ठान हैं क्योंकि, देहधारियोंके रक्तवाही स्रोतोंके मूल प्लीहा और यकृत् ही हैं ॥ ८ ॥

दोषभेदसे रक्तपित्तके लक्षण।

सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलञ्च कफान्वितम् ।
श्यावारुणं सफेनञ्च तनु रूक्षञ्च वातिकम् ॥ ९ ॥
रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् ।
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्च पैत्तिकम् ॥ १० ॥
संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ ११ ॥

यदि वह रक्तपित्त सांद्र, पांडुवर्ण, चिकना और गाढा हो तो कफप्रधान रक्त-पित्त जानना और नीला, लाल, झागदार, थोडा और रूक्ष हो तो वातप्रधान जानना। एवं कषायवर्ण, काला, गोमूत्रके समान चमकदार, धूंवेके वर्णका अथवा अञ्जनके समान वर्णवाला हो तो पित्तप्रधान होता है। कफप्रधान रक्तपित्त मुख, नाक आदि ऊपरके भागोंसे प्रवृत्त होता है। और वायुकी प्रधानतासे अधोभाग (गुदा लिङ्ग) द्वारा निकालता है। पित्तप्रधान रक्तपित्त सब भागोंसे प्रवृत्त होता है। यदि दो

दोषोंके लक्षणोंवाला हो तो द्विदोषज जानना । तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला सन्निपातसे हुआ रक्तपित्त होता है ॥ ९-११ ॥

रक्तपित्तकी साध्यासाध्यता।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ।
यत् त्रिदोषमसाध्यं तन्मन्दाग्नेरतिवेगवत् ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥ १२ ॥

एकदोषयुक्त रक्तपित्त साध्य होता है । दो दोषोंवाला कष्टसाध्य होता है और त्रिदोषज रक्तपित्त असाध्य होता है । तथा रोगोंसे दुबले पतले मनुष्यका और मंदाग्निवालेका तथा वृद्धका, एवं जिसकी आहारशक्ति नष्ट होगई हो उसका वेगयुक्त रक्तपित्त असाध्य होता है ॥ १२ ॥

मार्गभेदसे साध्यासाध्य।

गतिरूर्द्धमधश्चैव रक्तपित्तस्य दर्शिता ।
ऊर्द्धा: सप्तविधा द्वारा द्विद्वारा त्वधरा गतिः ॥ १३ ॥
सप्तच्छिद्राणि शिरसि द्वे चाधः साध्यमूर्द्धगम् ।
याप्यन्त्वधोगमं मार्गौ द्वावसाध्यं प्रपद्यते ॥ १४ ॥

रक्तपित्तकी ऊर्ध्वगति और अधोगति इन भेदोंसे दो प्रकारकी गति कही है । उनमें दो नासिका, दोनों नेत्र, दोनों कान, एक मुख यह सात मार्ग ऊर्ध्वभागके हैं और गुदा, लिंग यह दो मार्ग अधोभागके हैं । ऊर्ध्वभागके मार्गोंसे गमन करनेवाला रक्तपित्त साध्य है । अधोगामी कष्टसाध्य होता है और दोनों भागोंसे गमन करनेवाला असाध्य होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

यदा तु सर्वच्छिद्रेभ्यो रोमकूपेभ्य एव च ।
वर्त्तते तामसंख्येयां गतिं तस्याहुरन्तिकीम् ॥ १५ ॥

जिस रक्तपित्तकी सम्पूर्ण छिद्रों और रोममार्गसे प्रवृत्ति हो उस असंख्येय गतिवाले रक्तपित्तको रोगीका अन्त करनेवाला जानना ॥ १५ ॥

यच्चोभयाभ्यां मार्गाभ्यामतिमात्रं प्रवर्त्तते ।
तुल्यं कुणपगन्धेन रक्तं कृष्णमतीव च ॥ १६ ॥
संसृष्टं कफवाताभ्यां कण्ठे सज्जति चापि यत् ।
यच्चाप्युपद्रवैः सर्वैर्यथोक्तैः समभिद्रुतम् ॥ १७ ॥

हारिद्रनीलहरितताम्रैर्वर्णैरुपद्रुतम् ।
क्षीणस्य कासमानस्य यच्च तच्च न सिद्ध्यति ॥ १८ ॥

जो रक्तपित्त अधोमार्ग और ऊर्ध्वमार्ग इन दोनों ओर अधिक वेगसे प्रवृत्त हो, रक्तमें मुर्देकीसी गंध आवे, रक्त अत्यंत काला हो, कफ वायुसे युक्त हो, कण्ठमें अत्यन्त रुकावटसी होकर रुधिरकी प्रवृत्ति हो, जिसमें संपूर्ण उपद्रव होगये हों तथा वह रक्तपित्त हलदीके वर्णवाला नीला, हरा, ताम्रवर्णका उपद्रवयुक्त हो, उससे मनुष्य क्षीण होगया हो तथा खांसीसे युक्त हो वह रोगी किसी प्रकारके यत्नसे भी नहीं बचसकता ॥ १६-१८ ॥

याप्य साध्य ।

यद्विदोषानुगं यद्वा शान्तं शान्तं प्रकुप्यति ।
मार्गान्मार्गं चरेद्यद्वा याप्यं पित्तमसृक् च तत् ॥ १९ ॥

जो रक्तपित्त दो दोषोंसे युक्त हो और शांत होहोकर फिर कुपित होता हो पहले एक मार्गसे फिर दूसरे मार्गसे प्रवृत्त हो वह रक्तपित्त याप्यसाध्य होता है ॥ १९ ॥

साध्य रक्तपित्तके लक्षण ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ।
रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ २० ॥

जो रक्तपित्त एकमार्गगामी हो और बलवान् मनुष्यका हो थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो और उपद्रवरहित हो तथा अच्छी समयमें प्रगटहुआ हो तो साध्य होताहै२०

उभयमार्गगमनके कारण ।

स्निग्धोष्णमुष्णरूक्षञ्च रक्तपित्तस्य कारणम् ।
अधोगस्योत्तरप्रायः पूर्वं स्यादूर्द्धगस्य तु ॥ २१ ॥

ऊर्द्धगामी रक्तपित्तके उष्ण स्निग्ध कारण होते हैं और अधोगामी रक्तपित्तके उष्ण रूक्ष कारण होते हैं ॥ २१ ॥

ऊर्द्धगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम् ।
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुबध्यते ॥ २२ ॥

कफसे संमिलित रक्तपित्त ऊपरके मार्गोंसे गमन करता है। वायुसे संमिलित रक्तपित्त अधोमार्गोंसे गमन करता है। यदि कफ और वायु इन दोनोंसे संमिलित हो तो दोनों ओरके मार्गोंसे प्रवृत्त होता है ॥ २२ ॥

चिकित्साक्रम।

अक्षीणबलमांसस्य रक्तपित्तं यदश्नतः।
तद्दोषदुष्टमुत्क्लिष्टं नादौ स्तम्भनमर्हति ॥ २३ ॥

जिस रोगीका मांस और बल क्षीण न हुआ हो और जठराग्नि बलवान् हो ऐसे रोगीके बढेहुए दोषयुक्त उदीर्ण (निकलेहुए) रक्तपित्तको रोकना नहीं चाहिये २३॥

रक्तपित्तके वेगको प्रथमही रोकदेनेके दोष।

गलग्रहं पूतिनस्यं मूर्च्छायमरुचिं ज्वरम्।
गुल्मं प्लीहानमानाहं किलासं कृच्छ्रमूत्रताम् ॥ २४ ॥
कुष्ठान्यर्शांसि वीसर्पं वर्णनाशं भगन्दरम्।
बुद्धीन्द्रियोपरोधश्च कुर्य्यात्स्तम्भितमादितः ॥ २५ ॥

यदि रक्तपित्तके वेगको प्रगट होते ही रोकदेवे तो उससे गलग्रह, नाकसे दुर्गंध आना, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, प्लीहा (तिल्ली), अफारा, किलास, मूत्रका कष्टसे उतरना, कुष्ठ, बवासीर, वीसर्प, वर्णका विगडना, भगंदर, बुद्धि और इन्द्रियोंका उपरोध यह उपद्रव प्रथम ही रक्तपित्तके रोकदेनेसे प्रगट होजाते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

तस्मादुपेक्ष्यं बलिनो बलदोषविचारिणा।
रक्तपित्तं प्रथमतः प्रवृद्धं सिद्धिमिच्छता ॥ २६ ॥
प्रायेण हि समुत्क्लिष्टमामदोषाच्छरीरिणाम्।
वृद्धिं प्रयाति पित्तासृक् तस्माल्लङ्घनमादितः ॥ २७ ॥
मार्गदोषानुबन्धश्च निदानं प्रसमीक्ष्य च।
लङ्घनं रक्तपित्तादौ तर्पणं वा प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

इसलिये सिद्धकार्यकी इच्छा करताहुआ बुद्धिमान् वैद्य दोष बल विचारकर बलवान् मनुष्यके रक्तपित्तको प्रथम ही रोक देनेका यत्न न करे। क्योंकि मनुष्योंके शरीरमें चलाहुआ रक्तपित्त प्रायः आमदोषसे ही वृद्धिको प्राप्त होता है इस कारण प्रथम रक्तपित्तमें लंघन करना चाहिये। तथा रक्तपित्तके मार्ग और दोषोंको विचार कर एवं उसके निदानको विचारकर प्रथम लंघन अथवा तर्पण करना चाहिये ॥ २६-२८ ॥

रक्तपित्तमें तृषाकी शांतिके लिये जल।

ह्रीबेरं चन्दनोशीरमुस्तपर्पटकैः शृतम्।
केवलं शृतशीतं वा दद्यात्तोयं पिपासवे ॥ २९ ॥

सुगंधवाला, लालचंदन, खस, नागरमोथे और पापडा इन सबको एकत्र करके पकायाहुआ जल ठंढा करके अथवा केवल जल पकाकर ठंढा होनेपर रक्तपित्तवाले रोगीको प्यासकी शांतिके लिये पिलावे ॥ २९ ॥

तर्पण और पेयाका निर्देश।

ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं पेयां पूर्वमधोगते ।
कालसात्म्यानुबन्धज्ञो दद्यात्प्रकृतिकल्पवित् ॥ ३० ॥

काल, सात्म्य, दोषोंका अनुबंध और प्रकृतिके विभागको जाननेवाला वैद्य ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण देवे और अधोगत रक्तपित्तमें पहले पेया पिलावे ॥३०॥

तर्पण।

जलं खर्ज्जूरमृद्वीकामधूकैः सपरूषकैः ।
शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थे सशर्करम् ॥ ३१ ॥
तर्पणं सघृतक्षौद्रं लाजाचूर्णैः प्रयोजयेत् ।
ऊर्द्ध्वगं रक्तपित्तं तत्पीतं काले व्यपोहति ॥ ३२ ॥

खजूर, मुनक्का, महुवेके फूल और फालसे डालकर पकाएहुए जलको ठंढा करके उसमें मिसरी मिलाकर तर्पणके लिये रक्तपित्तवालेको पिलावे ॥ अथवा धानकी खीलोंके चूर्णसे वनाया हुआ तर्पण घृत और शहद मिलाकर पिलावे। यह दोनों प्रकारके तर्पण समयपर प्रयोग कियेजायँ तो ऊर्ध्वगत रक्तपित्तको जडसे नष्ट कर देते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

रक्तपित्तमें खटाई।

मन्दाग्नेरम्लसात्म्याय तत्साम्लमपि कल्पयेत् ।
दाडिमामलकैर्विद्यादम्लार्थञ्चानु दापयेत् ॥ ३३ ॥

जो रोगी मन्दाग्निवाला हो और उसको खटाई सात्म्य (अनुकूल) हो तो इन उपरोक्त तर्पणोंमें खटाई मिलादेना चाहिये। रक्तपित्तमें खटाईके लिये अनार अथवा आँवलेका रस प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ३३ ॥

रक्तपित्तमें अन्न।

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशान्तिकाः ।
श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ ३४ ॥

शालीचावल, साठीचावल, नीवार, कोदो, प्रशांतिक चावल, कांगुनीके चावल और शौकके चावलका भात भोजनके लिये रक्तपित्तमें देना चाहिये ॥ ३४ ॥

रक्तपित्तमें यूष।

मुद्गा मसूराश्चणकाः समकुष्ठाढकीफलाः।
प्रशस्ताः सूपयूषार्थे कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ ३५ ॥

मूंग, मसूर, चना, मोठ और अरहरकी दाल बनाकर रक्तपित्तके रोगमें देना चाहिये ॥ ३५ ॥

रक्तपित्तमें शाक।

पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः।
किराततिक्तकं शाकं गण्डीरः सकटिल्लकः ॥ ३६ ॥
कोविदारस्य पुष्पाणि काश्मर्य्यस्याथ शाल्मलेः।
अन्नपानविधौ शाकं यच्चान्यद्रक्तपित्तनुत् ॥ ३७ ॥
शाकार्थं शाकसात्म्यानां तच्छस्तं रक्तपित्तिनाम्।
स्विन्नं वा सर्पिषा भृष्टं यूषवद्वा विपाचितम् ॥ ३८॥

पटोलपत्र, नीमके पत्ते, (मधुनिम्ब), बेतकी कोंपल, पिलखनके पत्र, व्यूंसके पत्र और चिरायतेके पत्रोंका शाक तथा-करेला, गण्डीर, लालकचनारकी कली, कुम्भेरके फूल और सेमलकी कलियोंका शाक देना चाहिये एवं अन्य भी अन्नपान विधिमें कहेहुए जो जो अन्न पान रक्तपित्तनाशक हो सो देने चाहिये। जिनको शाक प्रिय हो ऐसे रक्तपित्तके रोगीको रक्तपित्तनाशक शाक स्वेदित कर घृतमें भूनकर अथवा दालके समान पकाकर देना चाहिये ॥ ३६-३८ ॥

मांसरस।

पारावतान् कपोतांश्च लावान् रक्ताक्षवर्त्तकान्।
शशान् कपिञ्जलानेणान् हरिणान् कालपुच्छकान् ॥ ३९॥
रक्तपित्तहितान् विद्याद्रसांस्तेषां प्रयोजयेत्।
ईषदम्लाननम्लान्वा घृतभृष्टान् सशर्करान् ॥ ४० ॥

रक्तपित्तमें पारावत, कबूतर, लवा, चकोर, बटेर, खगोंश, तीतर, एणहिरन, हिरन और कालपुच्छ हिरन, इनका मांसरस हित है। यह मांसरस अनारकी खटाईसे किंचित् खट्टा करके अथवा विना खटाई घृतमें भूनकर मिसरीयुक्त करके देवे॥ ४०॥

कफानुगे यूषशाकं दद्याद्वातानुगे रसम्।
रक्तपित्ते यवागूनामतः कल्पः प्रवक्ष्यते ॥ ४१ ॥

यदि रक्तपित्तमें कफ भी निकलता हो तो उसमें रक्तपित्तके हरनेवाले यूष (दाल) और शाक भोजनमें देवे । और वातानुगामी रक्तपित्तमें मांसरस देवे । जो जो यवागू रक्तपित्तमें हितकारक हैं अब उनकी कल्पनाको कहते हैं ॥ ४१ ॥

रक्तपित्त नाशक यवागुओंका वर्णन ।

पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः पृश्निपर्णी प्रियङ्गुका: ।
जले साध्यरसे तस्मिन् पेया स्याद्रक्तपित्तिनाम् ॥ ४२ ॥
चन्दनोशीरलोध्राणां रसे तद्वत्सनागरे ।
किराततिक्तकोशीरमुस्तानां तद्वदेव च ॥ ४३ ॥

लालकमलकी केशर, नीलकमलकी केशर, पृष्ठपर्णी और प्रियंगुसे सिद्धकिये जलमें बनाई पेया रक्तपित्तवाले रोगीको हितकारक है । अथवा चन्दन, खस, लोध और नागरमोथेके जलमें बनाईहुई पेया अथवा चिरायता, खस और नागर-मोथेसे सिद्ध किये जलमें बनाई हुई पेया रक्तपित्तमें हितकारक है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

धातकीधन्वयासाम्बुबिल्वानां वा रसे श्रृताः ।
मसूरपृश्निपर्ण्योर्वा स्थिरा मुद्गरसेन वा ॥ ४४ ॥
रसे हरेणुकानां वा सघृते सबलारसे ।
सिद्धाः पारावतादीनां रसे वा स्युः पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥
इत्युक्ता रक्तपित्तघ्न्यः शीताः समधुशर्कराः ।
यवाग्वः कल्पना चैषां कार्य्या मांसरसेष्वपि ॥ ४६ ॥

इसीप्रकार धावेके फूल,जवासा, नेत्रवाला और बेलगिरीसे सिद्ध किये जलमें बनाई हुई पेया भी रक्तपित्तरोगोंमें हितकारक है । एवम् मसूर और पृष्ठपर्णीसे सिद्ध जलमें या शालपर्णी और मूंगसे सिद्ध जलमें बनाई हुई पेया अथवा हरेणुसे सिद्ध जलमें या घृतयुक्त बला (खरैटी) के जलमें सिद्ध की हुई पेया रक्तपित्तरोगमें देना चाहिये । अथवा पारावत आदिक पहले कहे हुए मांसरसोंमें सिद्ध की हुई अलग २ पेया देना चाहिये । यह सब प्रकारकी पेया शीतल करके मिसरी अथवा शहद मिला-कर रक्तपित्तकी शांतिके लिये देना चाहिये, इस प्रकार यवागुओंकी कल्पना कही-गई है यह कल्पना इसी प्रकार मांसरसोंकी भी करनी चाहिये ॥ ४४–४६ ॥

रक्तपित्तमें रसोंकी विशेष कल्पना ।

शशः सवास्तुकः शस्तो विबन्धे रक्तपित्तिनाम् ।
वातोल्बणे तित्तिरिः स्यादुदुम्बररसे श्रृतः ॥ ४७ ॥

मयूरः प्लक्षनिर्यूहे न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः।
रसे बिल्वोत्पलादीनां वर्त्तकक्रकरौ हितौ ॥ ४८ ॥

यदि रक्तपित्तरोगमें मलका विबंध होजाय तो बथुवेके शाकसे सिद्ध किये जलमें बनाहुआ खर्गोशका मांसरस पिलावे वा वातप्रधान रक्तपित्तमें गूलरसे सिद्ध जलमें बनाया हुआ तीतरका मांसरस देवे अथवा पिलखनके सिद्धजलमें बनायाहुआ मोरका मांस या बडके छिलकोंसे सिद्ध किये जलमें बनायाहुआ मुरगेका मांसरस, अथवा बेलके काथमें और नीलकमलादिकोंके क्वाथमें बनायाहुआ बटेर और क्रकरका मांसरस वातप्रधान रक्तपित्तमें हितकारक है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

रक्तपित्तमें तृषानाशक योग।

तृष्यते तिक्तकैः सिद्धं तृष्णाघ्नं वा फलोदकम्।
सिद्धं विदारिगन्धाद्यैरथवा शृतशीतलम् ॥ ४९ ॥
ज्ञात्वा दोषावनुबलौ बलमाहारमेव च।
जलं पिपासवे दद्याद्विसर्गादल्पशोऽपि वा ॥ ५० ॥

रक्तपित्तके रोगीकी तृषा शांत करनेके लिये तिक्तगणसे सिद्धकियाहुआ जल अथवा अनार आँवला या फालसेका शर्बत या अंगूरकी शर्बत या इनसे सिद्ध कियाहुआ जल अथवा शालपर्णी आदि गणसे सिद्ध कियाहुआ जल ठंढा करके देना चाहिये। रक्तपित्तरोगीके दोष, बल और आहार शक्तिको विचारकर प्यासकी शांतिके लिये थोडा २ अथवा अधिक या जिससे जितना उचित हो पीनेको उक्त जल देवे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

रक्तपित्तमें अन्य उपदेश।

निदानं रक्तपित्तस्य यत् किञ्चित्संप्रकाशितम्।
जीवितारोग्यकामैस्तन्न सेव्यं रक्तपित्तिभिः ॥ ५१ ॥
इत्यन्नपानं निर्दिष्टं क्रमशो रक्तपित्तिषु।
वक्ष्यते बहुदोषाणां कार्य्यं बलवताञ्च यत् ॥ ५२ ॥

जिन द्रव्योंके सेवनसे रक्तपित्त रोगकी उत्पत्ति होती है जो रक्तपित्तके निदानस्थानमें कारण कहे हैं जीवन और आरोग्यता (तंदुरुस्ती) की इच्छावाले रक्तपित्तरोगीको उन सबका त्याग करदेना चाहिये। इस प्रकार जो अन्नपान रक्तपित्तरोगमें हितकारक हैं उनका वर्णन किया गया है। अब बहुत दोषयुक्त बलवान् रक्तपित्तरोगियोंके लिये चिकित्साके क्रमको कहते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

वमनविरेचनका निर्देश ।

अक्षीणबलमांसस्य यस्य सन्तर्पणोत्थितम् ।
बहुदोषं बलवतो रक्तपित्तं शरीरिणः ॥ ५३ ॥
काले संशोधनार्हस्य तद्धरेन्निरुपद्रवम् ।
विरेचनेनोर्द्ध्वगममधोगं वमनेन च ॥ ५४ ॥

जिस रक्तपित्तवाले रोगीका बल और मांस क्षीण न हुआ हो तथा संतर्पणजनित (दिनमें अधिक सोने आदिसे स्थूल शरीरवाले मनुष्यका) रक्तपित्त, एवं जिस मनुष्यका शरीर बलवान् हो,जिसके शरीरमें दोष बढहुए हों तथा जो मनुष्य संशोधनके योग्य हो ऐसे रक्तपित्तरोगीका रक्तपित्त यदि उपद्रवयुक्त न हो तो उसको उचित समयमें संशोधन करावे । यदि ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त हो तो विरेचनद्वारा नरमसा शोधन करे और अधोगामी रक्तपित्तमें वमन करावे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

रक्तपित्तमें विरेचकद्रव्य ।

त्रिवृतामभयां प्राज्ञः फलान्यारग्वधस्य वा ।
त्रायमाणागवाक्ष्योर्वा मूलमामलकानि वा ॥ ५५ ॥
विरेचनं प्रयुञ्जीत प्रभूतमधुशर्करम् ।
रसः प्रशस्यते तेषां रक्तपित्ते विशेषतः ॥ ५६ ॥

निशोथ और हरडका चूर्ण या क्वाथ, अथवा अमलतासकी फलीका गूदा शीतलजलमेंही घोलकर या त्रायमाण और इन्द्रायणकी जडका क्वाथ अथवा आँवलोंका बहुतसा स्वरस लेकर उसमें शहद और खांड मिलाकर पेट भरकर पीजावे । यह चार प्रकारके विरेचन ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तकी शांतिके लिये कहे हैं । इनमें आँवलेके रसका प्रयोग विशेष गुणकारी है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

वमनकारकद्रव्य

वमनं मदनोन्मिश्रो मन्थः सक्षौद्रशर्करः ।
सशर्करं वा सलिलमिक्षूणां रस एव वा ॥ ५७ ॥

---

१ यद्यपि ऊर्द्धगामी रक्तपित्तमें विरेचन करना लिखता है अधोगामी रक्तपित्तमें वमन कराना कहा है परंतु यह निर्देश केवल रक्तपित्तके वेगोंको शांत करनेके लिये है ।यदि अधोगामी रक्तपित्तमें मलाशय दोषयुक्त हो तो मृदुविरेचनद्वारा दोष निकालडालना चाहिये । और आमाशय दूषित होय तो ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें भी वमन कराना हितकर है,परंतु यह सब क्रिया समय और युक्तिके विचारपर निर्भर है ॥

वत्सकस्य फलं मुस्तं मदनं मधुकं मधु ।
अधोवहे रक्तपित्ते वमनं परमुच्यते ॥ ५८ ॥

मैनफलके चूर्णयुक्त शहत और खाँड मिलाहुआ मंथ (जलमें घोलेहुए पतलेसे घृतयुक्त सत्तू) अथवा मैनफलका कल्क मिलाकर खांडमिला जल, या मैनफलके चूर्णयुक्त ईखका रस; अथवा इंद्रजौ, नागरमोथा, मैनफल, मुलैठी, शहद इनको जलमें घोलकर वमन करानेके लिये पिलावे । यह चार वामकयोग अधोगत रक्तपित्तकी शांतिके लिये कहे हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अन्य उपदेश ।

ऊर्ध्वगे शुद्धकोष्ठस्य तर्पणादिक्रमो हितः ।
अधोवहे यवाग्वादिर्न चेत् स्यान्मारुतो बली ॥ ५९ ॥

शुद्धकोष्ठमनुष्यके ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें तर्पण (शर्बतादिपिलाना) आदि क्रम हितकारी होता है । और अधोगत रक्तपित्तमें यदि वायु प्रबल न हो तो यवागू आदि क्रम हितकारक होता है । यदि वायु प्रबल हो तो स्निग्ध मांसरसादि प्रयोग करे । अथवा अधोगत रक्तपित्तमें यवागू पान करावे इससे विपरीत कियाजाय तो वायुकी उग्रता होती है यह अर्थभी होसकता है ॥ ५९ ॥

संशमनचिकित्सायोग्य रोगी ।

बलमांसपरिक्षीणं शोकभाराध्वकर्षितम् ।
ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यैर्वा क्षीणमामयैः ॥ ६० ॥
गर्भिणीं स्थविरं बालं रूक्षाल्पप्रमिताशनम् ।
अवम्यमविरेच्यं वा यं पश्येद्रक्तपित्तिनम् ॥ ६१ ॥
शोषेण सानुबन्धं वा यस्य संशमनी क्रिया ।
शस्यते रक्तपित्तस्य पुरो या तु प्रवक्ष्यते ॥ ६२ ॥

जिन रोगियोंका बल और मांस क्षीण होगया हो अथवा शोक और भारसे व्याकुल हो या मार्ग चलनेसे थकाहुआ हो या तेजधूपसे संतप्त हो अथवा अन्य रोगोंसे क्षीण हो एवं गर्भवती, बालक, रूक्षशरीर अथवा मंदाग्निवाला रक्तपित्त रोगी हो या जो रोगी वमन विरेचनके अयोग्य हो अथवा जिसको रक्तपित्तके साथ शोषरोगकाभी संसर्ग हो उसके रोगको संशमनीय चिकित्साद्वारा शांत करना चाहिये । अब उस संशमनीय चिकित्साके योगोंको कहते हैं ॥६०-६२॥

रक्तपित्तनाशक औषधी प्रयोग ।

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्काथः सशर्करः ।

मधुमिश्रः श्वासकासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥ ६३ ॥
आटरूषकनिर्यूहे प्रियङ्गुं मृत्तिकाञ्जने ।
विनीय लोध्रं क्षौद्रञ्च रक्तपित्तनुदं पिबेत् ॥ ६४ ॥

अडूसा, मुनक्का और हरडका काथ खांड और शहत मिलाकर पीनेसे श्वास, खांसी और रक्तपित्त शांत होता है। अडूसे (वसूटे) के काथमें प्रियंगु, गेरु, रसौत, लोध और शहद मिलाकर पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होती है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पद्मकं पद्मकिञ्जल्कं दूर्वा वास्तूकमुत्पलम् ।
नागपुष्पञ्च लोध्रञ्च तेनैव विधिना पिबेत् ॥ ६५ ॥
प्रपौण्डरीकं मधुकं मधु चाश्वशकृद्रसे ।
यवासभृङ्गरजसोर्मूलं वा गोशकृद्रसे ॥ ६६ ॥
विनीय रक्तपित्तघ्नं पेयं स्यात्तण्डुलाम्बुना ।
युक्तं वा मधुसर्पिर्भ्यां लिह्याद्गोऽश्वशकृद्रसम् ॥ ६७ ॥

पद्माक, कमलकी केसर, दूध, बथुआके पत्ते, नीलकमल, नागकेशर और लोधका कल्क मिलाकर शहत युक्त अडूसेके क्वाथको पीवे तो रक्तपित्त शान्त होता है। प्रपौंडरीक, मुलैठी और शहतको घोडेकी लीदके रसमें मिलाकर पीनेसे; अथवा जवासेकी जड और भांगरेकी जडका चूर्ण गोबरके रसमें मिलाकर पीनेसे,इन औषधियोंको चावलोंके धोवनके साथ पीनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। एवम् घोडेकी लीदका रस और गोबरका रस शहद और घृत मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शांत होता है ॥

खदिरस्य प्रियंगूणां कोविदारस्य शाल्मलेः ।
पुष्पचूर्णानि मधुना लिह्यान्ना रक्तपित्तिकः ॥ ६८ ॥
शृङ्गाटकानां लाजानां मुस्तखर्जूरयोरपि ।
लिह्याच्चूर्णानि मधुना पद्मानां केशरस्य च ॥ ६९ ॥
धन्वजानामसृग्लिह्यान्मधुना मृगपक्षिणाम् ।
सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते लिह्यात्पारावतं शकृत् ॥ ७० ॥

कत्था, फूलप्रियंगु, लालकचनारके फूल और सेमलके फूलोंको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त रोग शांत होता है ॥ सिंघाडे, धानकी खीलें, नागरमोथे, खजूर और कमलकी केशरके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे रक्त पित्त शांत

होता है। यदि रक्तपित्त रोगमें रक्तकी गांठेंसी निकलें तो जांगलदेशके मृग पक्षियोंका रक्त अथवा कबूतरकी बीट शहदमें मिलाकर चाटे ॥ ६८-७० ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकप्रियङ्गुकाकट्फलशंखगैरिकाः।
पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिकाः सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः ॥ ७१ ॥
रक्तं सपित्तं तमकं पिपासां दाहञ्च पीताः शमयन्ति सद्यः ॥ ७२ ॥

खस, दारुहलदी, लोध, पद्माक, फूलप्रियंगु, कायफल, शंखका चूर्ण, गेरू और लालचंदनमेंसे किसी एकके बारीक चूर्णको बराबरकी मिसरी मिलाकर फांकी लेवे ऊपरसे चावलोंका धोवन पीवे अथवा चावलोंके धोवनमें घोटकर पीवे या लालचंदन, मिसरी युक्त करके चावलोंके धोवनसे पीवे तो यह रोग रक्तपित्त, तमकश्वास, प्यास और दाहको शीघ्र शांत करते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

किराततिक्तं क्रमुकं समुस्तं प्रपुण्डरीकं कमलोत्पले च।
ह्रीबेरमूलानि पटोलपत्रं दुरालभा पर्पटका मृणालम्।
धनञ्जयोदुम्बरवेतसत्वङ्न्यग्रोधशालेययवासकत्वक् ॥ ७३ ॥
तुगालतावेतसतण्डुलीयं सशारिवं मोचरसः समङ्गा।
पृथक् पृथक् चन्दनयोजितानि तेनैव कल्पेन हितानि तत्र ॥ ७४ ॥
निशि स्थिता वा सरसीकृता वा कल्कीकृता वा मृदिता शृता वा।
एते समस्ता गणशः पृथग्वा रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः ॥ ७५ ॥

चिरायता, क्रमुक (सुपारी या पठानी लोध), नागरमोथा, प्रपौण्डरीक, कमल, नीलकमल, नेत्रवाला, तृणपंचमूल, पटोलपत्र, जवासा, पित्तपापडा, बिस (कमलकी डंडी), अर्जुनवृक्ष, गूलर, न्यूंसकी छाल, बडकी छाल, शालवृक्षकी छाल, जवासेकी छाल, वंशलोचन, दूब, वेतस, चौलाई, शारिवा, मोचरस, समंगा इनमेंसे किसी एकके चूर्णमें बराबरका लालचंदन मिलाकर उसमें समभाग मिसरी मिला चावलोंके धोवनके साथ पीवे तो रक्तपित्तको शांत करते हैं। यही द्रव्य रातको भिगोकर प्रातःकाल मल छानकर पीनेसे अथवा इनका स्वरस, या कल्क, अथवा ठंढाईके समान घोटकर पीनेसे या क्वाथ करके पीनेसे रक्तपित्त शांत होता है ॥७३-७५ ॥

मुद्गाः सलाजाः सयवाः सकृष्णाः सोशीरमुस्ताः सह चन्दनेन।
बलाजले पर्य्युषितः कषायो रक्तं सपित्तं शमयत्युदीर्णम् ॥ ७६ ॥

मूंग, धानोंकी खीलें, जौ, पीपल, खस, नागरमोथा, लालचंदन इनको खरैटीके

क्वाथमें रातको भिगोदेवे प्रातःकाल मल छानकर पीवे तो यह शीत कषाय वेगयुक्त रक्तपित्तको शांत करता है ॥ ७६ ॥

वैदूर्य्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंखहेमामलकोदकानाम् ।
मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम् ॥ ७७ ॥

वैडूर्य, मोती, मणी और गेरू अथवा पीलीमिट्टी, शंख और सुवर्णको आँवलोंके जलमें धोकर उस जल अथवा शहदका जल या ईखका रस पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होती है ॥ ७७ ॥

उशीरपद्मोत्पलचन्दनानां पङ्कस्य लोध्रस्य च यः प्रसादः ।
सशर्करः क्षौद्रयुतः सुशीतो रक्तातियोगप्रशमाय देयः ॥ ७८ ॥

खस, कमल, नीलोफर, लालचंदन इनका कल्क और पठानीलोध मिलाकर क्वाथ करे उस क्वाथको ठंढा करके अथवा इनका हिम बनाकर उसमें खांड और शहद मिलाकर रक्तापित्तके अतियोगकी शांतिके लिये पिलावे ॥ ७८ ॥

प्रियङ्गुका चन्दनलोध्रशारिवामधूकमुस्ताभयधातकीजलम् ।
समृत्प्रसादं सह षष्टिकाम्बुना सशर्करं रक्तनिबर्हणं परम् ॥ ७९ ॥

फूलप्रियंगु, लालचंदन, पठानी लोध, शारिवा, महुवेके फूल. नागरमोथे, आँवले और धावेके फूलोंका जल और चिकनीमिट्टीकी पापडी, तथा साठीके चावलोंका धोवन इन सबको मिलाकर खाँडयुक्त करके पीवे तो रक्तपित्तकी शांति होती है। यह उत्तम योग है ॥ ७९ ॥

वातानुयायीरक्तपित्त।

कषाययोगैर्विविधैर्यथाक्के दीप्तेऽनले श्लेष्मणि निर्जिते च ।
यद्रक्तपित्तं प्रशमं न याति तत्रानिलः स्यादनु तत्र कार्य्यम् ॥ ८० ॥

उपरोक्त कषायोंके विधिवत् प्रयोग किये जानेपर, जठराग्निके बलवान् होनेपर और कफके क्षीण होजानेपर भी रक्तपित्त शांत न होय तो उसमें वायुका अनुबंध जानना चाहिये ॥ ८० ॥

अधोगामी रक्तपित्तनाशक दूध।

छागं पयः स्यात्प्रथमं प्रयोगे गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले वा ।
सशर्करं माक्षिकसंप्रयुक्तं विदारिगन्धादिगणैः शृतं वा ॥ ८१ ॥

---

१ कोई पंकका अर्थ वर्षाती तालाबमें सूखनेसे कीचकी पापडी कहते हैं।

द्राक्षाशृतं नागरकैः शृतं वा बलाशृतं गोक्षुरकैः शृतं वा ।
सजीरकं सर्षभकंससर्पिः पयः प्रयोज्यं सितया शृतं वा ॥ ८२ ॥
शतावरीगोक्षुरकैः शृतं वा शृतं पयो वाप्यथ पर्णिनीभिः ॥
रक्तं हिनस्त्याशु विशेषतस्तु यन्मूत्रमार्गात् सरुजं प्रयाति ॥ ८३ ॥

उसमें प्रथम बकरी अथवा गौका दूध पांचगुने जलमें सिद्ध करके खांड और शहद मिलाकर पिलावे। अथवा विदारिगंधा (शालपर्णी)आदि गणसे सिद्ध किया-हुआ दूध, अथवा मुनक्का और नागरमोथेसे सिद्ध किया दूध, अथवा खरैटीसे सिद्ध किया दूध, या गोखरुओंसे सिद्ध किया दूध, अथवा जीरा, ऋषभक और घृतसे सिद्ध किया दूध, अथवा मिसरीसे सिद्ध किया दूध पिलावे। एवं शतावर और गोखु-रूसे सिद्ध किया दूध, या चारों पर्णियोंसे सिद्ध किया दूध रक्तपित्तको शांत करता है और मूत्रमार्गसे जानेवाले पीडायुक्त रक्तको विशेषकरके नष्ट करता है ॥ ८१-८३॥

विशेषतो विड् प्रथमं प्रवृत्ते पयो मतं मोचरसेन सिद्धम् ।
वटावरोहैर्वटशुङ्गकैर्वा ह्रीबेरनीलोत्पलनागरैर्वा ॥ ८४ ॥

यदि विशेषरूपसे रक्त गुदाद्वारा निकलता हो मोचरससे सिद्ध किया हुआ दूध अथवा बड (बरौटे) की डाढी और कलियोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध, अथवा नेत्र-वाला, नीलोफर और नागरमोथा (या सोंठ) से सिद्ध किया हुआ दूध पिलावे॥८४

कषाययोगान् पयसा पुरा वा पीत्वानु दद्यात् पयसा नु शालीन् ।
कषाययोगैरथवा विपक्कमेतैः पिबेत्सर्पिरपि स्रवेच्च ॥ ८५ ॥

इन औषधियोंका क्वाथ, अथवा क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीकर, अथवा इनको फँकी लेकर ऊपरसे दूध पीवे और दूध चावल भोजन करे। अथवा इन औषधियोंके क्वाथ या कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे तो रक्तकी अधिक प्रवृत्ति दूर होय ॥ ८५ ॥

वासाघृत।

वासां सशाखां सपलाशमूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्य ।
प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतं तत् सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम्॥८६॥

वांसे (वसूटे) की शाखा, पत्र, छिलके और टहनियोंका क्वाथ करके तथा इसके फलोंका कल्क करके उस क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत विषमभाग शहद मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८६ ॥

रक्तपित्तनाशक घृत।

पलाशवृन्तस्य रसेन सिद्धं तस्यैव कल्केन मधुद्रवेण।
लिह्याद् घृतं वत्सककल्कसिद्धं तद्वत्समङ्गोत्पललोध्रसिद्धम् ॥ ८७ ॥
स्यात् त्रायमाणा विधिरेष एव सोदुम्बरे चैव पटोलपत्रे।
सर्पींषि पित्तज्वरनाशनानि सर्वाणि शस्तानि च रक्तपित्ते ॥ ८८ ॥

ढाकके वृन्तों (डंडियों) का क्वाथ और कल्क करके उनसे घृतको सिद्ध कर उस घृतको शहद मिलाकर चाटे। अथवा इसी प्रकार कुडाके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत, अथवा समंगा (लाजवंती) नीलकमल और पठानी लोधके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया घृत, एवं त्रायमाणासे सिद्ध किया घृत, अथवा गूलर और पटोलपत्रके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया घृत शहद मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। यह उपरोक्त सब घृत रक्तपित्तको नाश करनेमें परम उत्तम हैं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अन्ययोग।

अभ्यङ्गयोगाः परिषेचनानि सेकावगाहाः शयनानि वेश्म।
शीतोविधिर्बस्तिविधानमग्र्यं पित्तज्वरे यत् प्रशमाय दृष्टम् ॥ ८९ ॥
तद्रक्तपित्ते निखिलेन कार्य्यं कालञ्च मात्राञ्च पुरा समीक्ष्य।
सर्पिर्गुडा ये च हिताः क्षतेभ्यस्ते रक्तपित्तं शमयन्ति सद्यः ॥ ९० ॥

रक्तपित्त रोगमें पित्तज्वर (दाहज्वर) में कहे हुए अभ्यंग, परिषेचन, अवगाहन, शयन, शीतलघर, शीतल क्रिया और पित्तको शांत करनेवाला बस्तिकर्म तथा अन्य उपाय भी समय और मात्राको विचार कर करना हितकारक होते हैं। एवं क्षतरोगमें कहेहुए घृत और गुड भी रक्तपित्तको नष्ट करते हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

कफानुबन्धीरक्तपित्तका यत्न।

कफानुबन्धे रुधिरे सपित्ते कण्ठागमे स्याद् ग्रथिते प्रयोगः।
युक्तस्य युक्त्या मधुसर्पिषोश्च क्षारस्य चैवोत्पलनालजस्य ॥ ९१ ॥
मृणालपद्मोत्पलकेशराणां तथा पलाशस्य तथा प्रियङ्गोः।
तथा मधूकस्य तथासनस्य क्षाराः प्रयोज्या विधिनैव तेन ॥ ९२ ॥

रक्त पित्तकफके संबन्धसे कंठमें आकर गांठदार होजाता है, उसमें रक्तपित्तनाशक घृत और शहद मिलाकर चाटना, अथवा नीलोफरका खार घृत और शहद मिलाकर चाटना या मृणाल (बिस) तथा लाल कमल और नीलोफरकी केशरकी भस्म

बनाकर घृत और शहदके साथ चाटना, अथवा ढाकका खार, फूलप्रियंगुकी भस्म, महुवेकी भस्म, बिजेसारकी भस्म इनमेंसे किसी एकको शहद और घृत मिलाकर चाटना (मुखसे अनेवाले) गांठदार रक्तको शान्त करता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

शतावरीआदिघृत।

शतावरीदाडिमतिन्तिडीकं काकोलिमेदोमधुकं विदारीम् ।
पिष्ट्वा च मूलं फलपूरकस्य घृतं पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन।
कासज्वरानाहविबन्धशूलं तद्रक्तपित्तञ्च घृतं निहन्यात् ॥ ९३ ॥

शतावरी, अनार, तिंतडीक, काकोली, मेदा, मुलैठी, विदारीकंद और बिजौरेकी जडका कल्क आधसेर इन्हीं औषधियोंका क्काथ ४ सेर, घृत २ सेर, दूध८ सेर इन सबको विधिवत् मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे। इस घृतके सेवनसे खांसी, ज्वर, अफारा, विबंध और शूलयुक्त रक्तपित्त शांत होता है ॥ ९३ ॥

पञ्चपञ्चमूल घृत।

यत्पञ्चमूलैरथ पञ्चभिर्वा सिद्धं घृतं तच्च तदर्थकारि ॥ ९४ ॥

इसी प्रकार पांचों पंचमूल [लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल, तृणपंचमूल, बलादिपंचमूल (मध्यम पंचमूल) और जीवनीय पंचमूल] से सिद्धकिया घृतभी उपरोक्त गुणोंको करता है ॥ ९४ ॥

नासिकाद्वारारक्तगिरनेकी चिकित्सा।

कषाययोगा य इहोपदिष्टास्ते चावपीडे भिषजा प्रयोज्याः ।
घ्राणात्प्रवृत्तं रुधिरं सपित्तं यदा भवेन्निःस्रुतदुष्टदोषम् ॥ ९५॥

रक्तपित्तको नष्ट करनेवाले जो इस अध्यायमें कषाय योग कहे हैं उनका कल्क कर उसके रसकी नस्य लेनेसे नासिकाद्वारा बहनेवाला रक्त (नकसीर) दूर हो जाता है ॥ ९५ ॥

दूषितरक्तको रोकदेनेके दोष।

रक्ते प्रदुष्टे ह्यवपीडबन्धे दुष्टप्रतिश्यायशिरोविकाराः ।
रक्तं सपूयं कुणपश्च गन्धः स्याद्‌ घ्राणनाशः क्रिमयश्च दुष्टाः ॥ ९६

यदि नासिकाद्वारा गिरता हुआ दूषितरक्त प्रथम ही रोक दियाजाय तो उससे दुष्ट प्रतिश्याय, शिरके विकार, पीव (राध) युक्त दुर्गन्धित रक्त नाकद्वारा गिरना, घ्राणनाश होना और मस्तकमें कृमि पडजाना यह उपद्रव होते हैं ॥ ९६ ॥

नकसीरबन्दकरनेकी नस्य।

नीलोत्पलं गैरिकशंखयुक्तं सचन्दनं स्यात्तु सिताजलेन ।

नस्यं तथाम्रास्थिरसः समंगा सधातकी मोचरसः सलोध्रः॥९७॥
द्राक्षारसस्येक्षुरसस्य नस्यं क्षीरस्य दूर्वास्वरसस्य चैव।
यवासमूलानि पलाण्डुमूलं नस्यं तथा दाडिमपुष्पतोयम्॥ ९८ ॥

नीलोफर, गेरू, शंख[1], लालचंदन इन सबको मिसरीयुक्त जलमें घोटकर नस्य लेने (सूंघने) से नासिकाद्वारा रक्त बहना बंद होजाता है। एवं आमकी गुठलीका रस, लाजवंती, धावेके फूल, मोचरस, पठानीलोध इनके कल्क[2]का रस सूंघनेसे रक्तका गिरना (नकसीर) बंद होजाती है। अथवा मुनक्काका रस या ईखका रस सूंघनेसेभी नकसीर बंद होजाती है। इसी प्रकार गौ या बकरीका दूध या दूर्वाका रस, अथवा जवासेकी जडका रस या प्याजका रस या अनारके फूलोंका रस सूंघनेसे नासिकाद्वारा रक्त गिरना बंद होजाता है॥ ९७ ॥ ९८ ॥

अन्यप्रयोग।

प्रियालतैलं मधुकं पयश्च सिद्धं घृतं माहिषमाजकं वा।
आम्रास्थिपूर्वैः पयसा च नस्यं सशारिवैः स्यात्कमलोत्पलैश्च ॥९९॥

चिरौंजीका तेल, मुलैठी और दूध इनको मिलाकर पकावे फिर उसकी नस्य लेवे। अथवा आमकी गुठली, लाजवन्ती, धावेके फूल, मोचरस, पठानीलोध, शारिवा, कमल, नीलकमल और दूध इनसे सिद्ध कियाहुआ भैंसका घृत अथवा बकरीका घृत सूंघनेसे नासिकाद्वारा रक्तगिरना बन्द होजाता है॥ ९९ ॥

रक्तपित्तपर लेप और सेचनप्रयोग।

भद्रश्रियं लोहितचन्दनञ्च प्रपौण्डरीकं कमलोत्पलञ्च।
उशीरवानीरजलं मृणालं सहस्रवीर्य्यं मधुकं पयस्या॥ १०० ॥
शालीक्षुमूलानि यवासगुन्द्रामूलं नलानां कुशकाशयोश्च।
कुचन्दनं शैवलमप्यनन्ता कालानुसार्य्या तृणमूलमृद्धिः॥ १०१॥
मूलानि पुष्पाणि च वारिजानां प्रलेपनं पुष्करिणीमृदश्च।
उदुम्बराश्वत्थमधूकलोध्राः कषायवृक्षाः शिशिराश्च सर्वे॥ १०२॥
प्रदेहकल्पे परिषेचने च तथावगाहे घृततैलसिद्धौ।
रक्तस्य पित्तस्य च शान्तिमिच्छन् भद्रश्रियादीनि भिषक् प्रयुंज्यात्॥ ३॥

---

१ शंख अथवा नख नामक सुगंधद्रव्य। २ औषधीको गीलीही पीसकर अथवा पानी डालकर पीसनेसे जो गीली होजाती है उसको कल्क कहते हैं।

सफेद और लालचन्दन, प्रपौण्डरीक, लालकमल, नीलकमल, खस, वानीर (व्यूंस वृक्ष), नेत्रवाला, मृणाल (बिस), दूर्वा, मुलैठी, क्षीरकाकोली, शालीधानकी जड, ईखकी जड, जवासेकी जड, गुन्द्रपटेरकी जड, नरसलकी जड, कुशा और काशकी जड, पतंग (चन्दनका भेद), शिवाल (काई) शारिवा, अगर, पंचतृण-मूल, ऋद्धी, कमलोंके कन्द (जड) और फूलपुष्करिणी (कमलोंवाले जलाशय) की मट्टी इन सबको शीतल जलके संयोगसे घोटकर लेप करनेसे रक्तका स्राव बन्द होजाता है। तथा गूलर, अश्वत्थ (पीपल), महुआ, लोध एवं अन्यभी जो कपैले और शीतवीर्य वृक्ष हैं उन सबके कल्कका लेप, परिसेचन (तरडा देना), अवगाहन (न्हाना छपके देना आदि) करनेसे रक्तपित्त शान्त होता है। तथा इन्ही उपरोक्त चन्दनादि द्रव्योंके कल्कोंसे सिद्ध किये घृत और तैलका प्रयोग करना भी रक्तपित्तको शांत करता है॥ १००-१०३॥

रक्तपित्तनाशक सेवनीय आचार तथा द्रव्य।

धारागृहं भूमिगृहञ्च शीतं वनञ्च रम्यं जलवातशीतम्।
वैदूर्य्यमुक्तामणिभाजनानां स्पर्शाश्च दाहे शिशिराम्बुशीताः॥ १०४॥
पत्राणि पुष्पाणि च वारिजानां क्षौमञ्च शीतं कदलीदलाश्च।
प्रच्छादनार्थं शयनासनानां पद्मोत्पलानाञ्च दलाः प्रशस्ताः॥ १०५॥
प्रियङ्गुकाचन्दनरूषितानां स्पर्शाः प्रियाणाञ्च वराङ्गनानाम्।
दाहे प्रशस्ताः सजलाः सुशीताः पद्मोत्पलानाञ्च कलापवाताः॥ १०६॥
सरिन्ह्रदानां हिमवद्दरीणां चन्द्रोदयानां कमलाकराणाम्।
मनोऽनुकूलाः शिशिराश्च सर्वाः कथाः सरक्तं शमयन्ति पित्तम्॥ १०७॥

जहां जलकी धारा बहती हो फुवारे चलते हों ऐसे नीचेकी मंजलके शीतलघर, जलयुक्त सरसब्ज बागबगीचे वन, जलयुक्त शीतल पवन, शीतलजल, वैडूर्य, मोती-मणी युक्त पात्रोंका स्पर्श, शीतल जलसे भीगे हुए शीतलकमलोंके पत्रोंको शरीरपर लगाना रेशमके वस्त्र और केलेके पत्र बिछी शय्या आसन आदिपर लेटना, बैठना, कमल और नीलकमलोंको शीतल जलमें भिगोकर उनका स्पर्श, चन्दन, प्रियंगु आदि शीतल पदार्थोंसे सुशोभित अंगोंवाली प्यारी स्त्रियोंका स्पर्श, कमल, नील-कमल तथा शीतल पंखोंको शीतल जलमें भिगोकर पवन करना यह सब रक्तपित्तकी दाहको शांत करनेवाले हैं। एवं नदी, तालाव, हिमालयकी गुफा, चन्द्रमाकी चांदनी, कमलोंसे शोभायमान जलाशय, तथा मनके अनुकूल शीतलद्रव्य और मनके हरनेवाली कहानियां यह सब रक्तपित्तकी दाहको शान्त करते हैं॥ १०४-१०७॥

अध्यायका उपसंहार।

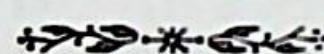
भवति चात्र-हेतुं वृद्धिं संज्ञां स्थानं पृथक् प्रदुष्टस्य।
मार्गौ साध्यमसाध्यं याप्यं कार्य्यक्रमञ्चैव ॥ १०८ ॥
पानान्नमिष्टमेव च वर्ज्यं संशोधनञ्च शमनञ्च।
गुरुरुक्तवान् यथावच्चिकित्सिते रक्तपित्तस्य ॥ १०९ ॥

इति च०सं०चिकित्सास्थाने रक्तपित्तचिकित्सितं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

यहां अध्यायपूर्तिमें दो श्लोक हैं कि, इस रक्तपित्त चिकित्सिताध्यायमें रक्तपित्तके हेतु, वृद्धि, संज्ञा, स्थान और दोषभेदसे अलग २ लक्षण, प्रदुष्ट रक्तपित्तके मार्ग तथा साध्य, असाध्य, याप्यसाध्य इसकी चिकित्सा, सेवन करने और त्यागने योग्य द्रव्य, संशोधन और संशमन औषधियां इन सबको भगवान् आत्रेयजीने वर्णन किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सास्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां रक्तपित्तचिकित्सितं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः।



अथातो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम गुल्मचिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या कहते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

सर्वप्रजानां पितृवच्छरण्यः पुनर्वसुर्भूतभविष्यदीशः।
चिकित्सितं गुल्मनिबर्हणार्थं प्रोवाच सिद्धं वदतां वरिष्ठः ॥ १ ॥

पिताकी समान प्रजामात्रको शरण देनेवाले, भूत, भविष्यत् वर्तमानके जाननेवालोंमे श्रेष्ठ, पुनर्वसुजी गुल्मरोगकी निवृत्तिके लिये सिद्ध चिकित्साका कथन करने लगे ॥ १ ॥

गुल्मोत्पत्तिके कारण।

विट्श्लेष्मपित्तादिपरिक्षयाद्वा तैरेव वृद्धैः परिपीडितो वा।
वेगैरुदीर्णैर्विहितैरधो वा बाह्याभिघातैरतिपूरणैर्वा॥ २॥
रूक्षान्नपानैरतिसेवनैर्वा शोकेन मिथ्याप्रतिकर्मणा वा।
विचेष्टितैर्वा विषमातिमात्रैः कोष्ठे प्रकोपं समुपैति वायुः॥ ३॥
कफञ्च पित्तञ्च स दूषयित्वा प्रोद्धूय मार्गान् विनिबद्ध्य ताभ्याम्।
हृत्प्लीहपार्श्वोदरवस्तिशूलं करोत्यधो याति न बद्धमार्गः॥ ४॥
पक्वाशये पित्तकफाशये वा स्थितः स्वतन्त्रः परसंश्रयो वा।
स्पर्शोपलभ्यः परिपिण्डितत्वाद् गुल्मो यथादोषमुपैति नाम॥ ५॥

मल (विष्ठा) कफ और पित्तकी अत्यंत क्षीणता अथवा वृद्धिसे वायुके अत्यंत पीडित होनेसे, आयेहुए वेगोंको रोकनेसे, बाहरी चोट आदि लगनेसे, अत्यंत संतर्पणसे, रूखे अन्नपानोंके अधिक सेवनसे, शोकसे एवं चिकित्साके मिथ्यायोग, अयोग वा अतियोगसे, शरीरकी विषम तथा अतिमात्र चेष्टाओंसे वायु कोष्ठमें अत्यंत कुपित होजाती है। फिर वह कफ और पित्तको दूषित करके उनसे मार्गोंको रोकदेती है। फिर उत्तेजित होकर हृदय, प्लीहा, पार्श्व, उदर और बस्तिमें शूल प्रगट करती है और मार्गोंके बन्द होजानेके कारण नीचेको गमन नहीं करसकती है। फिर वह पक्वाशय अथवा पित्त कफाशयमें अकेली अथवा कफपित्तके साथ मिलकर स्थित होजाती है। वह हाथ लगानेसे गोलासा दिखाई देने लगता है वहीं दोषानुसार नाम गुल्मक होजाता है। जैसे—वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक। सब प्रकारके गुल्मोंमें वायु ही प्रधान होती है और यही गुल्मका कारण होती है। इसलिये इसको वायगोला कहते हैं॥ २–५॥

गुल्मके स्थानभेद।

वस्तौ हि नाभ्यां हृदि पार्श्वयोर्वा स्थानानि गुल्मस्य भवन्ति पञ्च।
पञ्चात्मकस्य प्रभवन्तु तस्य वक्ष्यामि लिङ्गानि चिकित्सितञ्च॥ ६॥

बस्ति, नाभि, हृदय और दोनों पार्श्व यह पांच स्थान गुल्मके हैं इसकी पांच ही प्रकारसे उत्पत्ति है। अब हम इसके लक्षणों और चिकित्साका वर्णन करते हैं॥६॥

वायुके गुल्मका हेतु।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टितं वेगविनिग्रहश्च।
शोकोऽभिघातोऽतिबलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः॥ ७॥

रूक्ष अन्न पानका सेवन, शरीरकी विषम और अधिक चेष्टा, मलमूत्रादिवेगोंका रोकना, शोक, अभिघात, बलकी अत्यंत क्षीणता, भोजन न करना यह सब वायुके गुल्मकी उत्पत्तिके हेतु हैं ॥ ७ ॥

वातज गुल्मके लक्षण।

यः स्थानसंस्थानरुजां विकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरञ्च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजञ्च ॥ ८ ॥
करोति जीर्णेऽभ्यधिकं प्रकोपं भुंक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ।
वातात् स गुल्मो न च तत्र रूक्षकषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ९ ॥

थोडी २ देरमें जिस गुल्मके स्थान, स्वरूप और वेदनामें अन्तर (फरक) पड-जाय, जिसमें मल और अधोवायुका अवरोध हो तथा जिसके होनेसे गले और मुखमें शेप हो, जिसका वर्ण कुछ काला कुछ लाल हो, जिसमें शीतयुक्त ज्वरका वेग हो, जिसके होनेसे हृदय, कुक्षि तथा पार्श्व और शिरमें पीडा हो, जिसका अन्नके परिपाक होनेपर अत्यन्त कोप हो, जो भोजन करनेसे नरमसा पडजाय उसको वातज गुल्म जानना। इसमें रूक्ष, कटु, तिक्त और कषाय द्रव्योंका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

पित्तज गुल्मका हेतु।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविरोधिरूक्षक्रोधार्तिमद्यार्कहुताशसेवा ।
आमाभिघातो रुधिरञ्च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ १० ॥

कडवे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विरोधी और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे, क्रोध पीडा, मद्य, धूप और अग्निके तापसे अविदग्ध अन्नके सेवनसे और रुधिरके दूषित होनेसे पित्तका गुल्म उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

पित्तगुल्मके लक्षण।

ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्य्यति भोजने च ।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ ११ ॥

ज्वर, प्यास, मुख और देहमें अरुणता, अन्नके पचनेपर अत्यंत शूलका होना, पसीना, विदाह तथा गुल्ममें हाथका लगाना, जखमके समान बुरा मालूम होना यह सब पित्तज गुल्मके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

कफगुल्मके हेतु।

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनञ्च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।
गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सवस्तुदृष्टो निचयात्मकस्य ॥ १२ ॥

शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंके सेवनसे, आलस्यसे, संतर्पणसे, दिनमें सोनेसे कफका गुल्म उत्पन्न होता है और सान्निपातिक गुल्ममें तीनों दोषोंके मिले-हुए कारण होते हैं ॥ १२ ॥

कफगुल्मके लक्षण।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य॥ १३॥

शरीरका गीले वस्त्रसे वेष्टितसा होना, शीतज्वर, अंगग्लानि, हृल्लास, खांसी, अरुचि, भारीपन, शैत्य, थोडी २ पीडा, कठिनता, ऊंचापन यह सब कफजनित गुल्मके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

द्वन्द्वज गुल्मके लक्षण।

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे द्विदोषजे दोषबलाबलञ्च।
व्यामिश्रदोषानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १४ ॥

हेतु, लक्षण और दोषोंका बलाबल दो दो दोषोंके लक्षणोंयुक्त होनेसे द्विदोषज गुल्म तीन प्रकारके होते हैं। औषधोंके प्रयोगकी कलपनाके लिये इनके तीन भेद दिखाये हैं ॥ १४ ॥

सन्निपातज गुल्मके लक्षण।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्।
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १५॥

सन्निपातसे प्रकटहुए गुल्ममें अत्यंत घोर पीडा, दाह, पत्थरके समान कठोरपन और ऊंचापन होता है। यह शीघ्र घोर दाह उत्पन्न करता है तथा मन, शरीर और अग्निके बलको हरलेता है। यह गुल्म असाध्य है ॥ १५ ॥

रक्तज गुल्मके हेतु।

ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च।
संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियं रक्तभवोऽभ्युपैति ॥ १६ ॥
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात् सशूलः समगर्भलिङ्गः।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ १७॥

मासिक ऋतु होनेके समय भोजन न करना, भय, रूक्ष पदार्थोंका सेवन, अपान-वायु आदि वेगोंका रोकना, स्तम्भनक्रिया, वमन और योनिदोषसे स्त्रियोंको रक्तगुल्म होता है। जब यह रक्तगुल्म पेटमें फडकने लगता है तब इसमें अत्यन्त पीडा होने

लगती है और इसमें लक्षण गर्भकेसे होते हैं क्योकि यह गुल्म मासिकऋतुके रक्तमें ही उत्पन्न होता है, इसलिये केवल स्त्रियोंको ही होता है। इस रक्तगुल्मकी दश महीने व्यतीत होनेपर चिकित्सा करनी उचित है ॥ १६ ॥ १७ ॥

चिकित्साका निर्देश।

क्रियाक्रममतः सिद्धं गुल्मिनां गुल्मनाशनम्।
प्रवक्ष्याम्यत ऊर्ध्वञ्च योगान् गुल्मनिर्बहणान् ॥ १८ ॥

अब हम गुल्मरोगियोंके गुल्मको दूर करनेके लिये गुल्मनाशक सिद्धप्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥ १८ ॥

वायुके गुल्ममें चिकित्साक्रम।

रूक्षव्यायामजं गुल्मं वातिकं तीव्रवेदनम्।
बद्धविण्मारुतं स्नेहैरादितः समुपाचरेत् ॥ १९ ॥
भोजनाभ्यञ्जनैः पानैर्निरूहैः सानुवासनैः।
स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये ॥ २० ॥
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम्।
भित्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ २१ ॥
स्नेहपानं मतं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे।
पक्वाशयगते वस्तिरुभयं जठराश्रये ॥ २२ ॥

रूक्ष भोजन तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुए वातिकगुल्ममें तीव्र वेदनायुक्त जिसमें अधोवायु और विष्ठाका विबन्ध हो उसमें प्रथम स्नेहनक्रिया करे। रोगीको भोजन, अभ्यञ्जन, पान, निरूहण और अनुवासनवस्तिद्वारा स्निग्ध करके गुल्मरोगकी शान्तिके लिये स्वेदनकर्म करे। इस प्रकार स्निग्ध करके स्वेदन करनेसे शरीरके स्रोत नरम होजाते हैं, वायुकी प्रबलता क्षीण होजाती है, विबन्ध खुलजाता फिर वह गुल्म भी शान्त होजाता है। नाभिसे ऊपर होनेवाले गुल्ममें विशेषकर स्नेहपान कराना श्रेष्ठ है। पक्वाशयगत गुल्ममें बस्तिकर्म करना चाहिये। एवं उदरस्थ गुल्ममें स्नेहपान और बस्तिकर्म दोनोंका करना हितकारक है ॥ १९-२२ ॥

दोषानुबन्ध चिकित्साक्रमसे।

दीप्ताग्नौ वातिके गुल्मे विबन्धेऽनिलवर्चसोः।
बृंहणान्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

पुनः पुनः स्नेहपानं निरूहाः सानुवासनाः ।
प्रयोज्या वातगुल्मेषु कफपित्तानुरक्षिणा ॥ २४ ॥
कफे वाते जितप्राये पित्तं शोणितमेव वा ।
यदि कुप्यति वातस्य क्रियमाणैश्चिकित्सितैः ॥ २५ ॥
यथोल्बणस्य दोषस्य तत्र कार्यं भिषग्जितम् ।
आदावन्ते च मध्ये च मारुतं परिरक्षता ॥ २६ ॥
वातगुल्मे कफो वृद्धो हत्वाग्निमरुचिं यदि ।
हृल्लासगौरवं तन्द्रां जनयेदुल्लिखेत्तु तम् ॥ २७ ॥

वातिकगुल्ममें यदि अग्नि दीप्त (बलवान्) हो तथा अधोवायु और विष्ठाका विबंध हो तो बृंहणकरनेवाला स्निग्ध और उष्ण अन्न पानका प्रयोग करना चाहिये और बारबार स्नेहपान करावे । तथा कफपित्तानुबंधी वायुके गुल्ममें निरूहण और अनुवासन बस्ति करे । प्रायः कफ और वातके दूर होनेपर अथवा वातगुल्मकी चिकित्सा करनेके समय यदि पित्त और रक्त कुपित होजाय तो उस समय जिस दोषकी अधिकता हो उसीकी शान्तिका उपाय करना चाहिये । चिकित्साके आदि, मध्य और अन्तमें वायुकी सब प्रकार रक्षा करते रहना चाहिये । वातगुल्ममें यदि कफकी वृद्धि होकर जठराग्निको मन्द करके अरुचि, हृल्लास, भारीपन और तन्द्रा उत्पन्न करे तो उस रोगीको वमन कराना हित है ॥ २३-२७ ॥

शूलानाहविबन्धेषु गुल्मे वातकफोल्बणे ।
वर्त्तयो गुटिकाश्चूर्णं कफवातहरं मतम् ॥ २८ ॥
पित्तं वा यदि संवृद्धं सन्तापं वातगुल्मिनः ।
कुर्य्याद्विरेच्यः स भवेत् स्नेहनैरानुलोमकैः ॥ २९ ॥
गुल्मं यद्यनिलादीनां कृते सम्यग् भिषग्जिते ।
न प्रशाम्यति रक्तेन स स्रुतेनोपशाम्यति ॥ ३० ॥

वातकफाधिक गुल्मरोगमें यदि शूल, अफरा और विबन्ध हो तो कफवातनाशक बत्ती, गुटिका और चूर्णका प्रयोग करना चाहिये । वातगुल्मरोगीकी यदि पित्त बढकर संताप उत्पन्न होजाय तो वायुके अनुलोमन करनेवाले स्नेहनद्रव्योंसे विरेचन करावे । यदि वातादिकोंको शमन करनेवाले औषधोंका प्रयोग कियाजानेपर भी गुल्म

शान्त न हो तो " रक्तमोक्षण " (गुल्मसंबन्धी नससे रक्त निकालना) द्वारा " गुल्म " शान्त करना चाहिये ॥ २८-३० ॥

पित्तके गुल्ममें चिकित्साक्रम।

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं मतम्।
रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ॥ ३१ ॥
पित्तं वा पित्तगुल्मं वा ज्ञात्वा पक्वाशयस्थितम्।
कालविन्निर्हरेत् सद्यः सतिक्तैः क्षीरवस्तिभिः ॥ ३२ ॥
पयसा वा सुखोष्णेन सतिक्तेन विरेचयेत्।
भिषगग्निबलापेक्षी सर्पिषा तैलकेन वा ॥ ३३ ॥

स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे जो पैत्तिक गुल्म उत्पन्न हुआ हो उसमें स्रंसन (दस्तावर) औषध हित है। यदि रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे हुआ हो तो उसमें घृतपान कराना परम उत्तम है। समयको जाननेवाला वैद्य पित्त अथवा पित्तज गुल्म जो पक्वाशयमें स्थित हो उसको उचित समयमें तिक्त औषधियोंसे संस्कार कीहुई क्षीरबस्तिद्वारा शीघ्र हरण करे। अथवा तिक्त औषधियोंसे पकायेहुए सुखोष्ण दुग्धको मिलाकर विरेचन करादेवे अथवा रोगीके अग्निबलको विचारकर औषधोंसे सिद्ध तेल अथवा घृत पिला विरेचन देवे ॥ ३१-३३ ॥

गुल्ममें रक्तमोक्षणविधि।

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे।
गुल्मिनामरुचौ चापि रक्तमेवावसेचयेत् ॥ ३४ ॥
छिन्नमूला विदह्यन्ते न गुल्मा यान्ति च क्षयम्।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रुक् ॥ ३५ ॥
हृतदोषं परिम्लानं जाङ्गलैस्तर्पितं रसैः।
समाश्वस्तं च शेषार्तिं सर्पिषा पुनराचरेत् ॥ ३६ ॥
रक्तपित्तातिवृद्धत्वात् क्रियामनुपलभ्य वा।
यदि गुल्मो विदह्येत शस्त्रं तत्र भिषग्जितम् ॥ ३७ ॥

यदि तृष्णा, ज्वर, दाह, शूल, पसीना, मन्दाग्नि और अरुचियुक्त पित्तगुल्म हो तो रक्तमोक्षण कराना चाहिये। रक्तमोक्षणद्वारा गुल्म जडसे ही नष्ट होजाता है। इस प्रकार गुल्मकी जड कटजानेसे वह पुष्ट नहीं होसकता। और रक्तकी अम्लता जाती

रहती है और रक्तके न रहनेसे पीडा भी नहीं रहती । रुधिर निकलनेसे दोषोंके दूर होजानेपर रोगी अत्यन्त कमजोर होजाता है । उस समय उसको जांगलीजीवोंके मांसरससे तर्पित करना चाहिये । जब वह बलसम्पन्न होजाय तब बाकी रही पीडाको घृतपान कराके दूर करे । रक्तपित्तके अत्यन्त बढजानेसे वा चिकित्साके ठीक न होसकनेसे जो गुल्म पकजाय उसमें शस्त्रक्रिया ही उत्तम चिकित्सा है ॥३४-३७॥

अपक्क गुल्मके लक्षण।

गुरुः कठिनसंस्थानो गूढमांसोत्तराशयः।
अविवर्णः स्थिरश्चैव ह्यपक्वो गुल्म उच्यते ॥ ३८ ॥

भारी, कठोराकृति, गूढमांसमें स्थित, जिसका वर्ण न विगडा हो और अचल हो वह अपक्क गुल्म होता है ॥ ३८ ॥

विदह्यमान गुल्मके लक्षण।

दाहशूलाग्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः।
विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तमुपनाहयेत् ॥ ३९ ॥

जो गुल्म (गोला) पकनेवाला हो उसमें दाह, शूल, अग्निसंक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर यह लक्षण होते हैं। इसपर गुल्मनाशक लेप आदि करना चाहिये ३९

सपक्व गुल्मके लक्षण।

विदाहलक्षणे गुल्मे बहिस्तुङ्गे समुन्नते।
श्यावे सरक्तपर्यन्ते संस्पर्शे वस्तिसन्निभे।
निपीडितोन्नते स्तब्धे सुप्ते तत् पार्श्वपीडनात् ॥ ४० ॥
तत्रैव पिण्डिते शूले संपक्वं गुल्ममादिशेत्।
तत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ ॥ ४१ ॥
वैद्यानां कृतयोग्यानां व्यधशोधनरोपणैः।
अन्तर्भागस्य चाप्येतत् पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार पाकलक्षणोंके होनेपर गुल्म बाहरको और ऊंचा होकर उठता है, कालावर्ण होजाता है, इसके किनारे लाल होजाते हैं, स्पर्श करनेसे वस्तिकेसे आकारका प्रतीत हो, हाथसे दबाकर छोडनेपर फिर ऊंचा होजाय, किनारेसे दबानेपर स्तब्ध और सुप्त प्रतीत हो, एकही स्थानमें गोलासा रहाकरे और पीडायुक्त हो तब इसे संपक्क (पकाहुआ) गुल्म समझना चाहिये । ऐसे गुल्मरोगमें सिद्धहस्त धन्वन्तरीजीके कहेहुए शल्यशलाक्यतन्त्रके जाननेवाले योग्य वैद्य (जर्राहों) को व्यधन,

शोधन और रोपणद्वारा चिकित्सा करनेका अधिकार है। भीतरकी ओरको पकनेवाले गुल्मके भी ऊपरोक्त ही लक्षण होते हैं ॥ ४०-४२ ॥

अन्तःस्थ गुल्मके लक्षण और चिकित्साक्रम ।

हृत्क्रोडशूनतान्तःस्थे बहिःस्थे पार्श्वनिर्गतिः ।
पक्वः स्रोतांसि संक्लिद्य व्रजत्यूर्ध्वमधोऽपि वा ॥ ४३ ॥
स्वयं प्रवृत्तं तं दोषमुपेक्षेत हिताशनैः ।
दशाहं द्वादशाहं वा रक्षन् भिषगुपद्रवान् ॥ ४४ ॥
अत ऊर्ध्वं मतं पानं सर्पिषः सविशोधनम् ।
शुद्धं सतिक्तं सक्षौद्रं प्रयोगे सर्पिरिष्यते ॥ ४५ ॥

अन्तःस्थ[2]गुल्ममें हृदय और क्रोड (उस गुल्मके शीर्षभाग) में सूजन होती है और बहिस्थगुल्म पसवाडोंसे प्रकट होता है। गुल्म पककर स्रोतोंको क्लेदित(गीला) कर ऊपरकी ओर वा नीचेकी ओर गमन करता है। यदि दोष अपने आप निकलने लगे तो हितकारी पथ्य सेवन करावे फिर वैद्य उपद्रवोंकी रक्षा करताहुआ इसकी दश बारह दिवसतक उपेक्षा करे। इसके अनन्तर संशोधन घृतका सेवन करावे। इस प्रकार जब रोगी शुद्ध होजाय तो तिक्त औषधियोंके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत शहत मिलाकर पिलावे ॥ ४३-४५ ॥

कफगुल्मकी चिकित्सा ।

शीतलैर्गुरुभिः स्निग्धैर्गुल्मे जाते कफात्मके ।
अवम्यस्याल्पकायाग्नेः कुर्याल्लङ्घनमादितः ॥ ४६ ॥

शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनसे जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होता है उसमें वमनके अयोग्य और मन्दाग्नियुक्त रोगीको प्रथम लंघन कराना चाहिये ॥ ४६ ॥

वमनके योग्य रोगी ।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दो गुरुस्तिमितकोष्ठता ।
सोत्क्लेशा चारुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः ॥ ४७ ॥

जिस गुल्मरोगीकी जठराग्नि मन्द होगई हो पीडा मन्द होती हो तथा कोष्ठमें भारीपन और गीलापनसा प्रतीत हो एवं जिसको उत्क्लेश (जी मचलाना) और अरुचि हो वह रोगी वमन करानेके योग्य होता है ॥ ४७ ॥

---

१ कोई यहां गुल्मशब्दसे अन्तरविद्रधि मानते हैं। इससे पाहिले आमाशयस्थ गुल्म (वायगोला) का वर्णन है। २ अन्तर्विद्रधिका निर्देश है।

उष्णैरेवोपचार्यस्य कृते वमनलङ्घने ।
योज्या चाहारसंसर्गी भेषजैः कटुतिक्तकैः ॥ ४८ ॥
सानाहं सविबन्धं च गुल्मं कठिनमुन्नतम् ।
दृष्ट्वादौ स्वेदयेद्युक्त्या स्विन्नञ्च विनमेद्भिषक् ।
लङ्घनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ संप्रधुक्षिते ॥ ४९ ॥
कफगुल्मे पिबेत्काले सक्षारकटुकं घृतम् ।
स्थानादपसृतं ज्ञात्वा कफगुल्मं विरेचनैः ।
सस्नेहैर्वस्तिभिर्वाथ शोधयेद्दशमूलकैः ॥ ५० ॥

फिर वमन और लंघन करानेके अनन्तर उष्ण कटु और तिक्त औषधियोंको आहारमें मिलाकर देना चाहिये । अफारा और विबंधयुक्त गुल्म यदि कठोर और उन्नत हो तो उसमें युक्तिपूर्वक स्वेदन करना चाहिये । क्योंकि. स्वेदनकर्मद्वारा यह नीचा होजाता है । इस प्रकार लंघन वमन और स्वेदनके करनेके अनन्तर जब अग्नि प्रदीप्त होजाय तब कफजनित गुल्ममें क्षार और कटु द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाना चाहिये । उपरोक्त लंघनादि उपचारोंद्वारा जो कफगुल्म अपने स्थानसे चलायमान होजाय तो दशमूलके औषधियोंसे सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन अथवा स्नेहनवस्तिद्वारा उसका संशोधन करना चाहिये ॥ ४८–५० ॥

कफके गुल्ममें अन्य उपदेश ।

मन्दाग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् ।
गुलिकाश्चूर्णनिर्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम् ॥ ५१ ॥
कृतमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गुरुम् ।
जयेत् कफकृतं गुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभिः ॥ ५२ ॥

कफगुल्मवाले मनुष्यकी यदि अग्नि मन्द पडगई हो और अधोवायु रुकगई हो तथा आमाशय स्निग्ध हो तो उसको अग्निवर्द्धक, गुल्मनाशक और वायुके निकालनेवाली गुटिका, चूर्ण और क्वाथादिक सेवन करावे । जो कफगुल्म जड पकड गया हो और बहुत फैलगया हो, कडा, गीला और फेनयुक्त भारी हो उसको क्षार, अरिष्ट और अग्निकर्मद्वारा शान्त करना चाहिये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

गुल्ममें क्षारविधि ।

दोषप्रकृतिगुल्मं तु योगं बुद्ध्वा कफोल्बणे ।
बलदोषप्रमाणज्ञः क्षारं गुल्मे प्रयोजयेत् ॥ ५३ ॥

एकान्तरं द्व्यन्तरं वा त्र्यहं विश्रम्य वा पुनः ।
शरीरबलदोषाणां वृद्धिक्षपणकोविदः ॥ ५४ ॥
श्लेष्माणं मधुरं स्निग्धं मांसक्षीरघृताशिनः ।
भित्त्वा भित्त्वाशयान् क्षारः क्षरत्वात् क्षारयत्यधः ॥ ५५ ॥

कफप्रधान गुल्मरोगमें दोष, प्रकृति, गुल्म और योगको विचारकर क्षारका प्रयोग करे । फिर एक दिन, दो दिन अथवा तीन दिन ठहरकर शरीर, बल और दोषोंमें न्यूनाधिकता विचारकर उसीके अनुसार फिर क्षारका प्रयोग करे । क्षार–अपनी क्षरणशक्तिके बलसे मांस दूध और घी खानेवाले मनुष्यके आशयको भेदन करके मधुर स्निग्ध कफको अधोमार्गद्वारा निकाल देता है ॥ ५३–५५ ॥

गुल्ममें अरिष्ट ।

मन्देऽग्नावरुचौ सात्म्ये मद्ये सस्नेहमश्नताम् ।
प्रयोज्या मार्गशुद्ध्यर्थमरिष्टाः कफगुल्मिनाम् ॥ ५६ ॥

चिकना भोजन करनेवाले कफ गुल्म रोगीकी यदि जठराग्नि मन्द पडगई हो और अरुचि हो एवं मद्यसात्म्य हो तो मार्गकी शुद्धिके लिये उनको अरिष्ट पिलाना हितकारी है ॥ ५६ ॥

गुल्ममें दागदेना ।

लङ्घनोल्लेखनैः स्वेदैः सर्पिष्पानैर्विरेचनैः ।
वस्तिभिर्गुलिकाचूर्णक्षारारिष्टगणैरपि ॥ ५७ ॥
श्लैष्मिकः कृतमूलत्वाद्यस्य गुल्मो न शाम्यति ।
तस्य दाहोद्धृते रक्ते शरलोहादिभिर्मतः ॥ ५८ ॥
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याच्च शमयेदग्निर्गुल्मे कफानिलौ ।
तयोः शमाच्च संघातो गुल्मस्य विनिवर्तते ॥ ५९ ॥

लंघन, वमन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, वस्तिकर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और अरिष्ट इन सबका प्रयोग करनेसे भी जो कफजनितगुल्म शान्त न हो और बद्धमूल (जड पकड) होगया हो तो पहिले रक्तमोक्षण कराके फिर शर (बाण) अथवा लोहसे दग्धकरना (दागदेना) उचित है । अग्नि अपनी उष्णता और तीक्ष्णतासे गुल्मरोगमें कफ और वायुको शान्त कर देती है । इन दोनोंके शान्त होनेसे गुल्म (गोला) भी नष्ट होजाता है ॥ ५७–५९ ॥

दागदेनेयोग्य वैद्य।

दाहे धान्वन्तरीयाणामत्रापि भिषजां बलम्।
क्षारप्रयोगे भिषजां क्षारतन्त्रविदां बलम् ॥ ६० ॥
व्यामिश्रदोषैर्व्यामिश्र एष एव क्रियाक्रमः।
सिद्धानतः प्रवक्ष्यामि योगान् गुल्मनिबर्हणान् ॥ ६१ ॥

जो वैद्य धन्वन्तरीके मतानुसार क्षार और अग्निकर्मादि कर्म जानते हैं वे ही दाह कर्म (दागदेना) कर सकते हैं। और क्षारकर्मको जाननेवाले क्षारका प्रयोग (तेजाबसे दग्धकरना) कर सकते हैं। जो दो दो दोषोंसे उत्पन्नहुए गुल्म हैं उनमें मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये। अब हम गुल्मनाशक सिद्ध प्रयोगोंको कहते हैं ॥६०॥६१॥

त्र्यूषणादिघृत।

त्र्यूषणं त्रिफला धान्यं विडंगाचव्यचित्रकैः।
कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥ ६२ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां, वायविडंग, चव्य और चित्रकका कल्क बनाकर वह कल्क और चार गुना दूध मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत वातगुल्मको दूर करता है ॥ ६२ ॥

अन्य त्र्यूषणादिघृत।

एत एव च कल्काः स्युः कषायः पञ्चमूलिकः।
द्विपञ्चमूलिको वाथ तद्घृतं गुल्मनुत् परम् ॥ ६३ ॥

इन्हीं ऊपर कहीहुई त्रिकुटा आदि औषधियोंका कल्क और पंचमूल अथवा दशमूलके क्वाथमें घृतको सिद्ध करे यह घृत भी गुल्मरोगको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

अन्ययोग।

षट्पलं वा पिबेत् सर्पिर्यदुक्तं राजयक्ष्मणि।
प्रसन्नया वा क्षीरार्थः सुरया दाडिमेन वा।
दध्नः शरेण वा कार्यं घृतं मारुतगुल्मिनाम् ॥ ६४ ॥

जो षट्पल घृत राजयक्ष्मारोगमें कहा है उसे दूधके बदलेमें प्रसन्ना, सुरा दाडिमका रस अथवा दहीके पानीके साथ पकाकर देवे तो वातगुल्म शान्त होता है ॥ ६४॥

हिंग्वादि घृत।

हिङ्गुसौवर्चलाजाजीविडदाडिमदीप्यकौ।
पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षाराचित्रकैः ॥ ६५ ॥

शठीवचाजगन्धैलासुरसैश्च विपाचितम् ।
शूलानाहहरं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम् ॥ ६६ ॥

हींग, संचरनमक, जीरा, विडलवण, अनारदाना, अजवायन, कूट, त्रिकुटा, धनियां, अमलवेत, जवाखार, चीता, कचूर, वच, अजमोद, इलायची, सुरसा, तुलसी इनके कल्क और दहीसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत वातरोगियोंके शूल और आनाहको दूर करता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

हवुषादिघृत ।

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद् घृतम् ॥ ६७ ॥
मातुलुङ्गदधिक्षीरकोलमूलकदाडिमैः ।
रसैस्तद्वातगुल्मघ्नं शूलानाहविमोक्षणम् ॥ ६८ ॥
योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् ।
वातहृत्पार्श्वशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ६९ ॥

हाऊबेर, त्रिकुटा, कलौंजी, चव्य, चीता, सेंधानमक, कालाजीरा, पीपलामूल, अजवायन, इन सबका कल्क, और बिजौरेका रस, दही, दूध, बेरका रस, मूलीका रस, अनारका रस इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत वातगुल्म, शूल, आनाह, योन्यर्श, ग्रहणीदोष, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, वातरोग और पार्श्वशूलको नष्ट करदेता है ॥ ६७-६९ ॥

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पल्याः पिचुरध्यर्धो दाडिमाद्द्विपलं पलम् ।
धान्यात्पञ्चघृताच्छुण्ठ्या कर्षक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ७० ॥
सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति ।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरम् ॥ ७१ ॥

पीपल तीन तोला, अनारदाना आठ तोला, धनियां चार तोला, घृत बीस तोला, सोंठ दो तोला और दूध अस्सी तोला इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत वातगुल्मको तत्काल नष्ट कर देता है। इस घृतके सेवन करनेसे योनिशूल, शिरका शूल, बवासीर और विषमज्वर यह सब दूर होजाते हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

घृतानामौषधगुणा य एते परिकीर्तिताः ।
ते चूर्णयोगा वर्त्यस्ताः कषायास्ते च गुल्मिनाम् ॥ ७२ ॥

जो द्रव्य उपरोक्त घृतोंके सिद्ध करनेके लिये कहे हैं, उन्हीं औषधियोंके चूर्ण, वर्त्ती और क्वाथोंका प्रयोग करनेसे गुल्मरोग शान्त होता है ॥ ७२ ॥

पेया।

कोलदाडिमघर्माम्बुसुरामण्डाम्लकाञ्जिकैः।
शूलानाहनुदः पेया बीजपूररसेन वा ॥ ७३ ॥
चूर्णानि मातुलुङ्गस्य भावितस्य रसेन वा।
कुर्याद्वर्तीः सगुडिका गुल्मानाहार्तिशान्तये ॥ ७४ ॥

बेरका रस, अनारका रस, इनको गरमजल, सुरामण्ड, खट्टी कांजी, अथवा बिजौरेके रसमें बनाई पेया पान करनेसे शूल और आनाह दूर होता है अथवा बिजौरेके चूर्णमें बिजौरेके रसकी भावना देकर, वर्त्ती वा गोली बनाकर सेवन करे तो गुल्म, अफारा, पीडा ये सब शान्त होजाते हैं ॥ ७३॥७४ ॥

हिङ्ग्वादिचूर्ण।

हिङ्गुत्रिकुटकां पाठां हवुषामभयां शठीम्।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ७५ ॥
दाडिमं पुष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम्।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र योजयेत् ॥ ७६ ॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम्।
प्राग्भक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ७७ ॥
पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रे वा शूले च गुदयोनिजे ॥ ७८ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीह्नि पाण्ड्वामयेऽरुचौ।
उरोविबन्धे कासे च हिक्काश्वासगलग्रहे ॥ ७९ ॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा।
बहुशो गुलिकाः कार्याः कार्मुकाः स्युस्ततोऽधिकम् ॥ ८० ॥

हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाऊबेर, हरडे, अजमोद, कचूर, अजगंध[1], इमली, अमलबेत, अनारदाना, कूठ, धनियां, कालाजीरा, चीता, वच, सज्जीखार, जवाखार,

---

१ पहाडी अजवायन या वनतुलसी।

सेंधानमक, संचरनमक और चव्य इन सबका बारीक चूर्ण करलेव । इस चूर्णको अनुपानके साथ सेवन करे अथवा भोजन करनेसे पहिले मद्यके साथ या उष्ण जलके साथ लेवे । इस चूर्णके सेवन करनेसे पार्श्वशूल, हृच्छूल, वस्तिशूल, वातकफका गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, योनिशूल, ग्रहणीविकार, अर्शविकार, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, छातीकी रुकावट, खांसी, हिचकी, श्वास और गलग्रह दूर होते हैं । इसी चूर्णको बिजौरेके रसमें खरलकर गोलियां बनावे । ये गोलियां चूर्णसे भी अधिक गुणकारी हैं ॥ ७९-८० ॥

गुल्ममें अन्ययोग ।

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवे ।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ ८१ ॥

बिजौरेका रस, हींग, अनारदाना, विडनमक, सेंधानमक इनको सुरामण्डके साथ पीनेसे वायुका गुल्म नष्ट होता है ॥ ८१ ॥

शट्यादिचूर्ण ।

शटीपुष्करहिंग्वम्लवेतसक्षारचित्रकान् ।
धान्यकञ्च यमानीञ्च विडङ्गं सैन्धवं वचाम् ॥ ८२ ॥
सचव्यपिप्पलीमूलमजगन्धं सदाडिमम् ।
अजाजीञ्चाजमोदाञ्च चूर्णं कृत्वा प्रयोजयेत् ॥ ८३ ॥
रसेन मातुलुङ्गस्य मधुयुक्तेन वा पुनः ।
भावितं गुडिकां कृत्वा सुपिष्टां कोलसम्मिताम् ॥ ८४ ॥
गुल्मं प्लीहानमानाहं श्वासं कासमरोचकम् ।
हिक्कां हृद्रोगमर्शांसि विविधाञ्छिरसो रुजान् ॥ ८५॥
पाण्ड्वामयं कफोत्क्लेशं सर्वजाञ्च प्रवाहिकाम् ।
पार्श्वहृद्वस्तिशूलञ्च गुटिकैषा व्यपोहति ॥ ८६ ॥

कचूर, पोहकरमूल, हींग, अमलवेत, जवाखार, चीता, धनियां, अजवायन, विडंग, सेंधानमक, वच, चव्य, पीपलामूल, अजगन्ध, अनार, कालाजीरा और अजमोदका चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे अथवा बिजौरेके रसकी भावना देकर शहत मिलाके जंगली बेरके बराबर गोलियां बनाकर सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास, खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग, अर्शरोग, शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफका उत्क्लेश सब प्रकारकी प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृच्छूल और वस्तिशूल यह सब रोग दूर होते हैं ॥ ८२-८६ ॥

अन्ययोग ।

नागरार्द्धपलं पिष्ट्वा द्वे पले लुञ्चितस्य च ।
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन वा पिबेत् ॥
वातगुल्ममुदावर्तं योनिशूलञ्च नाशयेत् ॥ ८७ ॥

दो तोले सोंठ छिलके रहित, तिल आठ तोले, गुड चार तोले इन सबको गर्म दूधके साथ पीवे तो वातगुल्म, उदावर्त और योनिशूल नष्ट होजाते हैं ॥ ८७ ॥

कफ तथा पित्तानुबन्धी गुल्मपर योग ।

पिबेदैरण्डकं तैलं वारुणीमण्डमिश्रितम् ।
तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः ।
श्लेष्मण्यनुबले पूर्वं मतं पित्तानुगे परम् ॥ ८८ ॥

कफके अनुबन्धवाले वातगुल्ममें वारुणीमण्ड मिलाकर एरंडतैल पीवे । और पित्तके अनुबन्धवाले वातगुल्ममें दूधमें मिलाकर एरंडतैल पीना हितकरता है ॥८८॥

लहसनका दूध ।

साधयेत् सिद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुष्पलम् ।
क्षीरे जलाष्टगुणिते क्षीरशेषञ्च ना पिबेत् ॥ ८९ ॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसीविषमज्वरम् ।
हृद्रोगं विद्रधीं शोषं साधयत्याशु तत्पयः ॥ ९० ॥

साफ करके सुखायेहुए लहसुनको चार पल लेकर वह लहसुन दूध और अठगुना जल मिलाकर पकावे । जब पानी जलकर दूध शेष रहजाय तब उस दूधको छानकर पीवे तो वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधी, शोष यह सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अन्ययोग ।

तैलं प्रसन्ना गोमूत्रमारनालं यवाग्रजः ।
गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत् ॥ ९१ ॥

तिलोंका तैल, वारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी और जवाखारको एकत्र पकाकर पीवे तो गुल्मरोग, जठररोग और अफारा दूर होजाते हैं ॥ ९१ ॥

शिलाजीतका प्रयोग ।

पञ्चमूलकषायेण सक्षीरेण शिलाजतु ।
पिबेत्तस्य प्रयोगेण वातगुल्मात् प्रमुच्यते ॥ ९२ ॥

पञ्चमूलके क्वाथ और दूधके साथ शिलाजीतका सेवन करनेसे वातगुल्मसे छूट जाता है ॥ ९२ ॥

अन्यप्रयोग ।

वाट्यं यूषेण पिप्पल्या मूलकानां रसेन वा ।
भुक्त्वा स्निग्धमुदावर्ताद्वातगुल्माद्विमुच्यते ॥ ९३ ॥

पीपलके क्वाथ अथवा मूलीके रसके साथ भुने जवोंका मण्ड सेवन करे तो उदावर्त और वातगुल्म दूर होता है ॥ ९३ ॥

गुल्ममें स्वेदन और वस्तिकर्मका निर्देश ।

शूलानाहविबन्धार्तं स्वेदयेद्वातगुल्मिनम् ।
स्वेदैः स्वेदविधावुक्तैर्नाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥ ९४ ॥
बस्तिकर्मपरं विद्यात् गुल्मघ्नं तद्धि मारुतम् ।
स्वे स्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति ॥ ९५ ॥
तस्मादभीक्ष्णशो गुल्मा निरूहैः सानुवासनैः ।
प्रयुज्यमानैः शाम्यन्ति वातपित्तकफात्मकाः ॥ ९६ ॥
गुल्मघ्ना विविधा दृष्टाः सिद्धाः सिद्धिषु बस्तयः ॥ ९७ ॥

यदि वातगुल्मवाला रोगी शूल, आनाह और विबन्धसे पीडित हो तो उसको स्वेदाध्यायमें कहेहुए नाडीस्वेद, प्रस्तरस्वेद और शंकरस्वेदद्वारा स्वेदन करना चाहिये । वातजगुल्ममें वस्तिकर्म बहुत श्रेष्ठ है । क्योंकि यह वायुको उसके स्थानमें ही जीतकर गुल्मको दूर करदेता है । इसलिये निरूहण और अनुवासन वस्तियोंका बारंबार क्रमपूर्वक प्रयोग करनेसे वातके पित्तके और कफके गुल्म शान्त होजाते हैं। सिद्धिस्थानमें गुल्मनाशक अनेक प्रकारके सिद्ध बस्तिप्रयोग वर्णन किये गये हैं॥९७॥

गुल्मपर तैलोंका निर्देश ।

गुल्मघ्नानि च तैलानि वक्ष्यन्ते वातरोगिके ।
तानि मारुतगुल्मेषु पानाभ्यङ्गानुवासनैः ।
प्रयुक्तान्याशु सिद्ध्यन्ति तैलं ह्यनिलजित्परम् ॥ ९८ ॥

सब प्रकारके गुल्मनाशक तैल वातरोगाध्यायमें वर्णन किये हैं इन तैलोंको वातगुल्ममें पान, अभ्यंग और अनुवासनद्वारा प्रयुक्त करनेसे वातगुल्म बहुत शीघ्र नष्ट होजाता है । वह तेल विशेषकर वायुको नष्ट करते हैं ॥ ९८ ॥

गुल्मपर घृतपान।

नीलिनींचूर्णसंयुक्तं पूर्वोक्तं घृतमेव वा।
समलाय प्रदेयं स्याच्छोधिनं वातगुल्मिके ॥ ९९ ॥
नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकाम्पिल्यकैः सह।
शोधनार्थं घृतं देयं सविडक्षारनागरम् ॥ १०० ॥

मलयुक्त वातगुल्मरोगीको नीलिनीका चूर्ण मिलाहुआ घृत अथवा पूर्वोक्त रेचक घृत शोधनके लिये देना चाहिये। अथवा नीलिनी, निसोथ, दन्ती, हरड, कवीला, विडनमक, जवाखार और सोंठ इनके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत संशोधनके लिये पिलावे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

नीलिन्यादिघृत।

नीलिनीं त्रिवृतां रास्नां बलां कटुकरोहिणीम्।
पचेद्विडङ्गं व्याधीञ्च पालिकानि जलाढके ॥ १०१ ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दध्नः प्रस्थेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च ॥ १०२ ॥
ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम्।
जीर्णे सम्यग्विरिक्तञ्च भोजयेद्रसभोजनम् ॥ १०३ ॥
गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान्।
श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ १०४ ॥

नीलिनी, निशोथ, रास्ना, खरेटी, कुटकी, वायविडंग, कटेरी इन सबको एक एक पल लेकर एक आढक जलमें पकावे जब चौथाई जल रहजाय तब इसमें एक प्रस्थ दही और एक पल थोहरका दूध मिलाकर एक प्रस्थ घी पकावे। इसमेंसे एक पल घृत यवागूमण्डमें मिलाकर रोगीको पिलावे। जब औषध जीर्ण होकर रोगीको अच्छी तरह विरेचन होलेवे तब मांसरसके साथ साठीका भात भोजन करावे। यह घृत गुल्म, कोढ, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा और उन्माद रोगको शान्त करता है ॥ १०१-१०४ ॥

वातगुल्ममें पथ्यादि।

कुक्कुटाश्च मयूराश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्तकाः।
शालयो मदिरासर्पिर्वातगुल्मभिषग्जितम् ॥ १०५ ॥

हितमुष्णं द्रवं स्निग्धं भोजनं वातगुल्मिनाम् ।
समण्डवारुणीपानं पक्कं वा धान्यकैर्जलम् ॥ १०६ ॥
मन्देऽग्नौ वर्द्धते गुल्मे दीप्ते चाग्नौ प्रशाम्यति ।
तस्माद्नातिसौहित्यं कुर्यान्नातिविलङ्घितम् ॥ १०७ ॥
सर्वत्र गुल्मे प्रथमे स्नेहस्वेदोपपादिते ।
या क्रिया क्रियते सिद्धिं सा याति निर्विरूक्षिते ॥ १०८ ॥

मुर्गा, मोर, तीतर, क्रौंच, बटेर, शालीचावल, मद्य और घृत यह सब वातगुल्ममें हितकारक हैं। तथा उष्ण, पतला और स्निग्ध भोजन हित है। मण्डयुक्त वारुणी मद्य वा धनियां डालकर औटायाहुआ जल भी हितकारी है अग्निके मन्द होजानेसे गुल्म बढता है और प्रदीप्त होनेसे शान्त होजाता है। इसलिये न तो अधिक पेटभर खाना चाहिये और न लंघन ही करना चाहिये। गुल्मरोगमें प्रथम स्नेहन, स्वेदन कर्म करके जो क्रिया कीजाती है उससे रोग शांत होजाता है और रूक्षशरीर मनुष्यकी चिकित्सा कीजाती है वह निष्फल होती है ॥ १०५-१०८ ॥

पित्तगुल्मकी चिकित्सा।

भिषगात्यायिकम्बुद्ध्वा पित्तगुल्ममुपाचरेत् ।
वैरेचनिकसिद्धेन पयसा सर्पिषापि वा ॥ १०९ ॥

पित्तगुल्मको सांघातिक जानकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसमें विरेचन-कारक द्रव्योंके साथ सिद्ध कियेहुए घृत अथवा दूधोंद्वारा चिकित्सा करे ॥१०९ ॥

रोहिण्यादिघृत।

रोहिणी कटुका निम्बं मधुकं त्रिफलात्वचः ।
कार्षिका त्रायमाणा च पटोला त्रिवृता पले ॥ ११० ॥
द्विपलश्च मसूराणां साध्यमष्टगुणेऽम्भसि ।
घृताच्छेषं घृतसमं सर्पिषश्च चतुष्पलम् ॥ १११ ॥
पिबेत् संमूर्च्छितं तेन गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ।
ज्वरस्तृष्णा च शूलश्च भ्रमो मूर्च्छारुचिस्तथा ॥ ११२ ॥

कुटकी, नीमकी छाल, महुआ, त्रिफलेकी छाल और त्रायमाणा यह सब एक एक तोला लेवे। और पटोलकी जड और निशोथ चार चार तोले, दो पल मसूर लेवे इन सबको आठगुने जलमें औटावे,जब घृतके समान शेष रहजाय तब छानकर इसमें

चार पल घृतको पकावे अथवा उन्हीं औषधोंसे सिद्ध किये घृतको रस १६ तोले क्वाथमें ४ तोला मिलाकर सेवन करनेसे पैत्तिक गुल्म, ज्वर, तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्च्छा और अरुचि ये सब शान्त होजाते हैं ॥ ११०-११२ ॥

त्रायमाणाद्यघृत।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुष्पलम्।
पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः॥ ११३ ॥
रोहिणीकटुकामुस्ते त्रायमाणा दुरालभा।
कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः॥ ११४ ॥
रसस्यामलकानाञ्च क्षीरस्य च घृतस्य च।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत्॥ ११५ ॥
पित्तरक्तभवं गुल्मं वीसर्पं पैत्तिकं ज्वरम्।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम्॥ ११६ ॥

चार पल त्रायमाणको दशगुने जलमें पकावे जब पांचवां भाग रहजाय तब उसको उतारकर छानले फिर इसमें कुटकी, नागरमोथा, त्रायमाणा, जवासा, भूमिआंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन, उत्पल इनको एक एक तोला ले पीस कूटकर उसमें डालदे और आँवलेका रस आठ पल, दूध आठ पल, घृत आठ पल यह सब मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे। सिद्ध होजानेपर इस घृतके सेवन करनसे पैत्तिकगुल्म, रक्तजगुल्म, वीसर्प, पित्तका ज्वर, हृद्रोग, कामला, कोढ यह सब रोग दूर होजाते हैं ॥ ११३-११६ ॥

आमलकादिघृत।

रसेनामलकेक्षूणां घृतपादं विपाचयेत्।
पथ्यापादं पिबेत् सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत्॥ ११७ ॥

आँवले और ईखके रससे चौथाई घी और घीसे चौथाई हरडका चूर्ण मिलाकर पकावे। सिद्ध होजानेपर इस घृतके सेवन करनेसे पैत्तिकगुल्म नष्ट होजाता है॥११७॥

द्राक्षादिघृत।

द्राक्षां मधूकं खर्जूरं विदारीं सशतावरीम्।
परूषकाणि त्रिफलां साधयेत् पलसंमिताम्॥ ११८ ॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च।
घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादितम्॥ ११९ ॥

साधयेत्तं घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम्।
प्रयोगात् पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ १२० ॥

मुनक्का, महुआ, खजूर, विदारीकंद, शतावर, फालसे और त्रिफला यह सब एक एक पल लेवे और एक आढक जलमें डालकर, अग्निपर पकावे जब चौथाई शेष रहजाय, तब उतारकर छानलेवे फिर इसमें आँवलेका रस, घी, ईखका रस, दूध और घृत तथा घृतसे चौथाई हरडेका कल्क डालकर सबका पाक करले। जब घृत सिद्ध होजाय तब उसमें चौथाई मिसरी और शहत डालकर सेवन करे तो पित्तगुल्म तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाले संपूर्ण विकार नष्ट होजाते हैं ॥ ११८-१२० ॥

वासाघृत।

वृषं समूलमापोथ्य पचेदष्टगुणे जले।
शेषेऽष्टभागे तस्यैव पुष्पकल्कं प्रदापयेत् ॥ १२१ ॥
तेन सिद्धं घृतं शीतं सक्षौद्रं पित्तगुल्मनुत्।
रक्तपित्तज्वरश्वासकासहृद्रोगनाशनम् ॥ १२२ ॥

अडूसाको जड समेत कूटकर आठगुने जलमें पकावे जब आठवां भाग जल रहजाय तब उसमें उसीके फूलका कल्क और घी डालकर पकावे। घृतमात्र शेष रहे तो उतारले, तथा ठंढा होनेपर शहत मिलाकर उसका सेवन करे तो पित्तगुल्म, रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, खांसी और हृदयरोग नष्ट होजाते हैं ॥ १२१॥१२२ ॥

अन्य त्रायमाणघृत।

द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम्।
अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत् ॥ १२३ ॥
पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथाबलम्।
तेन निर्वृतदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ॥ १२४ ॥

दो पल त्रायमाणको दो प्रस्थ जलमें डालकर पकावे जब आठवां भाग शेष रहजाय तब छानकर बराबरका दूध मिलाकर मन्दोष्ण पीवे, ऊपरसे यथाशक्ति गरम दूध पीवे। इसका सेवन करनेसे दोष दूर होकर पित्तगुल्म शान्त होजाता है॥१२३॥२४॥

पित्तके गुल्ममें अनेक उपचार।

द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुड पिबेत्।
लिह्यात् कम्पिल्लकं वापि विरेकार्थं मधुद्रवम् ॥ १२५ ॥

शूलप्रशमनोऽभ्यङ्गः सर्पिषा पित्तगुल्मिनाम् ।
चन्दनाद्येन तैलेन तैलेन मधुकस्य वा ॥ १२६ ॥
ये च पित्तज्वरार्तानां सतिक्ताः क्षीरबस्तयः ।
हितास्ते पित्तगुल्मिभ्यो वक्ष्यन्ते ये च सिद्धिषु ॥ १२७ ॥
शालयो जाङ्गलं मांसं गव्याज्यपयसी घृतम् ।
खर्जूरामलकं द्राक्षा दाडिमं सपरूषकम् ॥ १२८ ॥
आहारार्थे प्रयोक्तव्यं पानार्थे सलिलं शृतम् ।
बलाविदारीगन्धाद्यैः पित्तगुल्मचिकित्सितम् ॥ १२९ ॥
आमान्वये पित्तगुल्मे सामे वा कफवातिके ।
यवागुभिः खडैर्यूषैः सन्धुक्ष्योऽग्निर्विलङ्घिते ॥ १३० ॥
शमप्रकोपौ दोषाणां सर्वेषामग्निसंश्रितौ ।
तस्मादग्निं सदा रक्षेन्निदानानि च वर्जयेत् ॥ १३१ ॥

पित्तके गुल्मरोगमें विरेचनके लिये मुनक्का, हरडे और गुडका क्वाथ पीवे। अथवा शहतमें कवीला मिलाकर चाटे। पित्तगुल्मवाले रोगियोंके शूलनाश करनेको घृतकी मालिश तथा चन्दनादितैल या मुलहठीके तैलकी मालिश करे। पित्तज्वरसे पीडित रोगियोंके लिये तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध क्षीरकी वस्ति करना तथा आगे सिद्धिस्थानमें वर्णन की हुई बस्तियें पित्तगुल्ममें हितकारी होती हैं। एवं शालीचावल, जांगल-पशुओंका मांस, गौ और बकरीका दूध, घी, खजूर, आँवला, मुनक्का, अनार और फालसा आहारके लिये हित हैं और पीनेके लिये औटायाहुआ जल देवे। खरैटी और शालिपर्णी आदि गणकी औषधियोंद्वारा पित्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये। आमयुक्त पित्तगुल्ममें लंघन कराके यवागू अथवा खड यूषका सेवन कराके अग्निको प्रदीप्त करै। सम्पूर्ण दोषोंकी शान्ति और प्रकोप जठराग्निके आश्रित हैं इसलिये अग्निकी साम्यावस्थाके लिये सदा प्रयत्नवान् रहना चाहिये तथा जिन कारणोंसे रोग उत्पन्न हुआ हो उनको त्याग देना चाहिये ॥१२५-१३१॥

कफगुल्मकी चिकित्सा।

वमनार्हाय वमनं प्रदद्यात्कफगुल्मिने ।
स्निग्धस्विन्नशरीराय गुल्मे शैथिल्यमागते ॥ १३२ ॥
परिवेष्ट्य प्रदीप्तांस्तु बल्वजानथवा कुशान् ।

भिषक्कुम्भे समावाप्य गुल्मे घटमुखं क्षिपेत् ॥ १३३ ॥
संगृहीतो यदा गुल्मस्तदा घटमथोद्धरेत् ।
वस्त्रान्तरं ततः कृत्वा भिन्द्याद् गुल्मप्रमाणवित् ॥ १३४ ॥
विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभं प्रपीडनैः ।
मृद्गीयाद् गुल्ममेवैकं न त्वन्त्रहृदयं स्पृशेत् ॥ १३५ ॥

कफके गुल्मवाला रोगी यदि वमनके योग्य हो तो उसको वमन कराना चाहिये। प्रथम स्नेहन और स्वेदन करनेसे जब गुल्म नम्र होकर शिथिल होजाय तब गुल्मस्थान-पर पतलासा वस्त्र बिछादेवे। फिर एक घडेमें बल्वतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्मस्थानमें उस घडेका मुख लगादेवे, घडेकी भाफ गुल्मको आकर्षण करलेती है। जब गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडेको उठाले और वस्त्रको हटाकर गुल्मका विस्तार देखलेवे और उसको विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमेंसे किसी एक शस्त्रद्वारा भेदन करे। परन्तु केवल गुल्महीको प्रपीडन करे और आंतों वा हृदयपर किसी प्रकारका आघात होनेका बचाव रक्खे ॥ १३२-१३५ ॥

कफगुल्ममें स्वेदनविधि।

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च ।
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ १३६ ॥

वैद्यको चाहिये कि कफगुल्मको तिल, एरण्ड, अलसी और सरसोंका लेप करक ऊपरसे सहतासहता गरम लोहेके पात्रसे स्वेदन करे ॥ १३६ ॥

दशमूलीघृत।

सव्योषक्षारलवणं दशमूलीशृतं घृतम् ।
कफगुल्मं जयत्याशु सहिंगु विडदाडिमम् ॥ १३७ ॥

त्रिकुटा, जवाखार, सेन्धानमक और दशमूलके क्काथ तथा कल्कमें घृतको पकावै फिर इस घृतको हींग विडनमक और अनारके रसके साथ मिलाकर सेवन करे तो कफगुल्म शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ १३७ ॥

भल्लातकादिघृत।

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलपलोन्मितम् ।
साध्यं विदारीगन्धाद्यमापोथ्य सलिलाढकैः ॥ १३८ ॥

---

१ घडे (कुज्जे) की भाफसे गुल्म बाहर आजाता है फिर उसको युक्तिपूर्वक जानकार ही चीर सकता है। उसमें प्राण जानेका भी भय है।

पादशेषे रसे तस्मिन् पिप्पलीं नागरं वचाम् ।
विडङ्गसैन्धवं हिङ्गु यावशूकं विडं शटीम् ॥ १३९ ॥
चित्रकं मधुकं रास्नां पिष्ट्वा कर्षसमं भिषक् ।
प्रस्थञ्च पयसः कृत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४० ॥
एतद्भल्लातकघृतं कफगुल्महरं परम् ।
प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत् ॥ १४१ ॥

शुद्ध भिलावे दो पल, पंचमूलकी प्रत्येक गणकी औषधियां एक एक पल और विदारीगन्ध आदि औषधोंको कूटकर एक आढक जलमें औटावे जब चौथाई भाग शेष रहे तब उसमें पीपल, सोंठ, वच, वायविडंग, सेन्धानामक, हींग, जवाखार, विडनमक, कचूर, चीता, मुलैठी, रास्ना, प्रत्येक एक एक कर्ष, दूध एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। सिद्ध होनेपर सेवन करनेसे यह भल्लातक घृत कफगुल्मको दूर करनेमें परम उत्तम है। तथा प्लीहा, पाण्डुरोग, श्वास और ग्रहणीको दूर करता है ॥ १३८–१४१ ॥

पञ्चकोल घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४२ ॥
क्षीरप्रस्थञ्च तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ १४३ ॥

पीपल, पिप्पलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार यह एक एक पल लेवे, इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घृत डालकर सिद्ध करे। इस घृतका सेवन करनेसे कफगुल्म, हणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वर दूर होते हैं १४२॥१४३॥

मिश्रकस्नेह।

त्रिवृतां त्रिफलां दन्तीं दशमूलं पलोन्मितम् ।
जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागस्थितं रसम् ॥ १४४ ॥
सर्पिरेरण्डजं तैलं क्षीरञ्चैकत्र साधयेत् ।
स सिद्धो मिश्रकस्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ १४५ ॥
कफवातविबन्धेषु कुष्ठप्लीहोदरेषु च ।
प्रयोज्यो मिश्रकः स्नेहो योनिशूलेषु चाधिकम् ॥ १४६ ॥

निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल यह सब एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग शेष रहे तब इसको छानकर इसमें घी, एरण्डतैल और दूध मिलाकर पकावे। इस प्रकार यह मिश्रकस्नेह तैयार होता है। इसको शहत मिलाकर सेवन करे तो कफगुल्म, कफ, वात, विबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग नष्ट होते हैं ॥ १४४-१४६ ॥

कफगुल्ममें विरेचन।

यदुक्तं वातगुल्मघ्नं स्रंसनं नीलिनीघृतम्।
द्विगुणं तद्विरेकार्थं प्रयोज्यं कफगुल्मिनाम् ॥ १४७ ॥
सुधाक्षीरद्रवे चूर्णं त्रिवृतायाः सुभावितम्।
कार्षिकं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते ॥ १४८ ॥

वातगुल्ममें जो रेचक नीलिनीघृत कहागया है उसकी दूनी मात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवे। अथवा त्रिवृताके चूर्णमें थोहरके दूधकी भावना देकर उसमें घी और शहत मिलाकर एक तोला चाटे तो उत्तम रीतिसे विरेचन होता है १४७॥१४८

हरीतक्यादि गुड।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ १४९ ॥
अष्टभागस्थितं तच्च रसं पूतमधिक्षिपेत्।
दन्तीसमं गुडं पूतं क्षिपेत्तत्राभयाश्च ताः ॥ १५० ॥
तैलार्धकुडवञ्चैव त्रिवृतायाश्चतुष्पलम्।
चूर्णितं पलमेकञ्च पिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ १५१ ॥
तत्साध्यं लेहवच्छीते तस्मिंस्तैलसमं मधु।
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकं त्वगेलापत्रकेशरान् ॥ १५२ ॥
ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम्।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ १५३ ॥
गुल्मं श्वयथुमर्शांसि पाण्डुरोगमरोचकम्।
हृद्रोगं ग्रहणीदोषं कमलां विषमज्वरम् ॥ १५४ ॥
कुष्ठं प्लीहानमानाहमेतान्घ्नन्त्युपसेविताः।
निरत्ययः क्रमश्चास्याद्द्रवो मांसरसौदनः ॥ १५५ ॥

बडी २ पच्चीस हरडें, दन्ती (पहाडी जमालगोटेकी जड) पच्चीस पल, चित्रक पच्चीस पल इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे, जब आठवां भाग शेष रहे तो उसको छानलेवे। फिर गुड पच्चीस पल और वह हरडे उसमें डालदे और आधा कुडव तेल (चाकूसे चीरकर) उसमें मिलादेवे तथा निशोथ चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल कूटकर धीरे २ पकावे। जब पककर गाढा होजाय तब उतारले ठंढा होनेपर आधा कुडव शहत, एक पल दालचीनी, एक पल इलायची, एक पल तेजपात और केशर एक पल उसीमें मिलादेवे। इसमेंसे फिर नित्य एक एक पल चाटकर ऊपरसे एक हरड खाले तो सुखपूर्वक एक प्रस्थ मल निकलता है। और इसके सेवनसे गुल्म, शोथ, अर्श, पाण्डु रोग, अरुचि, हृद्रोग, ग्रहणीदोष, कामला, विषमज्वर, कुष्ठ, प्लीहा, अफारा यह सब रोग दूर हो जाते हैं इसमें मांस रस और भातका भोजन करना चाहिये॥ १४९-१५५॥

कफगुल्ममें बस्ति।

सिद्धाः सिद्धिषु वक्ष्यन्ते निरूहाः कफगुल्मिनाम्॥ १५६॥

कफगुल्मवाले रोगियोंके लिये सिद्धिस्थानमें सिद्ध निरूहणबस्तियां लिखीगई हैं १५६

कफगुल्ममें चूर्णादिप्रयोग।

अरिष्टयोगाः सिद्धाश्च ग्रहण्यर्शश्चिकित्सिते।
यच्चूर्णगुटिकायाश्च विहिता वातगुल्मिनाम्।
द्विगुणक्षारहिंग्वम्लवेतसास्ताः कफे मताः॥ १५७॥
य एव ग्रहणदोषे क्षारास्ते कफगुल्मिनाम्।
सिद्धा निरत्ययाः शस्ता दाहस्त्वन्ते प्रशस्यते॥ १५८॥

ग्रहणी और अर्श चिकित्सित अध्यायमें जो सिद्ध अरिष्ट तथा वातगुल्मनाशक जो चूर्ण और गोलियां वर्णन की हैं वह सब कफगुल्ममें हितकारी हैं। परन्तु उन चूर्णादिमें जितना क्षार, हींग और अमलवेत डालाजाता है कफगुल्ममें उससे दूना डालना चाहिये जो क्षार ग्रहणीदोषमें वर्णन किये हैं वह भी कफगुल्ममें हित हैं। कफगुल्मको अन्तमें दग्ध करना भी हित है॥ १५७॥ १५८॥

गुल्ममें पथ्य।

प्रपुराणानि धान्यानि जाङ्गला मृगपक्षिणः।
कौलत्थो मुद्गयूषश्च पिप्पल्या नागरस्य च॥ १५९॥
शुष्कमूलकयूषश्च बिल्वस्य वरुणस्य च।
चिरिबिल्वाङ्कुराणाञ्च यवान्याश्चित्रकस्य च॥ १६०॥

बीजपूरकहिंग्वम्लवेतसक्षारदाडिमैः
तक्रेण तैलसर्पिर्भ्यां व्यञ्जनान्युपकल्पयेत् ॥ १६१ ॥

गुल्मरोगमें पुराने बहुत उत्तम धान्य, जांगलपशुपक्षियोंका मांस, कुल्थीका यूष, मूंगका यूष, पीपल, सोंठ और सूखी मूलीका यूष, बिल्व, वरना, कञ्जा, अजवायन, चीता इनको डालकर बनायाहुआ यूष, अथवा बिजौरा, हींग, अमलवेत, जवाखार, अनार, तक्र, तेल, घी इनके साथ अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर सेवन करना चाहिये ॥ १५९-१६१ ॥

कफगुल्मपर अन्य उपचार।

पञ्चमूलीश्रितं तोयं पुराणं वारुणीरसम्।
कफगुल्मी पिबेत्काले जीर्णं माध्वीकमेव वा ॥ १६२ ॥
यवानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम्।
पिबेत्सन्दीपनं वातकफमूत्रानुलोमनम् ॥ १६३ ॥

पंचमूलका काथ, पुरानी वारुणी अथवा माध्वीक मद्यका कफगुल्ममें पान करना चाहिये। अजवायन और नमकको पीसकर तक्र (मट्ठे) में मिलाकर पीनेसे अग्नि संदीपन होती है तथा वात, कफ और मूत्रका अनुलोमन होता है ॥१६२॥१६३ ॥

असाध्य गुल्मके लक्षण।

संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः।
कृतमूलः शिरोनद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ १६४ ॥
दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्वरैः।
तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिद्ध्यति ॥ १६५ ॥
गृहीत्वा सज्वरश्वासं वम्यतीसारपीडितम्।
हृन्नाभिहस्तपादेषु शोफः कर्षति गुल्मिनम् ॥ १६६ ॥

जो गुल्म क्रमपूर्वक धीरे धीरे बढकर बहुत बीचमें फैलजाय और जड पकडकर नसोंमें स्थित हो कछुएकी पीठकी समान ऊंचा होजाय तथा जिसमें दुर्बलता, अरुचि, हृल्लास, खांसी, छर्दि, अरति, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय यह उपद्रव होते हैं वह असाध्या होता है। जिस गुल्मरोगीके ज्वर, श्वास, वमन और अतिसारके होनेसे हृदय, नाभि, हाथ और पांवमें सूजन प्रगट होजाती है वह रोगी असाध्य जानना ॥

रक्तगुल्मकी चिकित्साका निर्देश।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे।

स्निग्धस्विन्नशरीराय दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ १६७ ॥
पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः ।
गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ १६८ ॥
प्रभिद्येत न यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम् ।
क्षारेण युक्तं पललं सुधा क्षीरेण वा पुनः ॥ १६९ ॥
ताभ्यां वा भावितान्दद्याद्योनौ कटुकमत्स्यकान् ।
वराहमत्स्यपित्ताभ्यां नक्रकान् वा सुभावितान् ॥ १७० ॥
अधोहरैश्चोर्ध्वहरैर्भावितान् वा समाक्षिकान् ।
किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनिविशोधनम् ॥ १७१ ॥

रक्तगुल्ममें जब गर्भका समय (दसवां महीना) व्यतीत होजाय तब स्नेहन, स्वेदनकर्म करनेके अनन्तर स्निग्ध विरेचन करावे। ढाकका खार दो आढक, घी और तेल एक एक आढक इन सबको मिलाकर पाक करे फिर गुल्मको शिथिल करनेके लिये योग्य मात्रासे रोगीको देवे। यदि इस प्रयोगसे भी गुल्म भेदन न हो तो योनि-विरेचनकर्त्ता द्रव्योंका प्रयोग योनिके मार्गसे करे। क्षार और तिलकल्क अथवा थोहरके दूधकी भावना दियाहुआ तिलकल्क योनिमार्गमें रक्खे। अथवा क्षार और थोहरके दूधकी भावना दियाहुआ कटुरसयुक्त मछलीका मांस योनिमें रक्खे। अथवा सूअरके और मछलीके पित्तेकी भावना मगरके मांसको देकर अथवा विरेचनकारक और वमनकारक द्रव्योंकी भावना दियाहुआ मगरका मांस शहत मिलाकर अथवा किण्व (सुराबीज) गुड और क्षार मिलाकर योनिमार्गमें रक्खे। इनसे स्राव होकर योनिद्वाराही गुल्म खरजाता है ॥ १६७-१७१ ॥

रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा ।
लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यै प्रदापयेत् ॥ १७२ ॥

अथवा शहत और घीके साथ रक्तपित्त नाश करनेवाले क्षारको चटावे। अथवा लहसन, तीक्ष्ण मद्य और मछली यह खानेको देवे। इससे भी योनिस्राव होकर रक्तगुल्म खरजाता है ॥ १७२ ॥

रक्तभेदनकर्त्ता बस्ति।

बस्तिं सक्षारगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम् ।
अदृश्यमाने रुधिरे दद्याद् गुल्मप्रभेदनम् ॥ १७३ ॥

यदि रक्त न निकलता हो तो उसके भेदन करनेके लिये क्षार और गोमूत्रकी अथवा क्षार और दशमूलके क्वाथकी बस्तिका प्रयोग करे ॥ १७३ ॥

प्रवर्त्तमान रुधिरमें उपचार।

प्रवर्त्तमाने रुधिरे दद्यान्मांसरसौदनम्।
घृततैलेन चाभ्यङ्गं पानार्थं तरुणीं सुराम् ॥ १७४ ॥
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहराः क्रियाः।
कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहराः पुनः ॥ १७५ ॥
घृततैलावसेकाश्च तित्तिरिश्चरणायुधः।
सुरा समण्डा पूर्वश्च पानमम्लस्य सर्पिषः।
प्रयोजयेदुत्तरं वा जीवनीयससर्पिषा ॥ १७६ ॥

यदि रक्तस्राव होता हो तो मांसरस और भात खानेको देवे, घी और तेलकी मालिश करावे तथा नवीन मद्य पीनेको देवे। यदि रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति हो तो रक्तपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। एवं वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वातनाशिनी क्रिया करे। इनमें घृत और तैलप्रयोग, रक्त निकालना, तीतर और मुर्गेका मांस, मण्डयुक्त सुरा, अम्लरसयुक्त घृतपान करना हितकारी है। तथा जीवनीयगणोक्त द्रव्योंके साथ सिद्ध कियेहुए घृतकी उत्तरबस्ति देना हितकारक है १७४-१७६॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र—सर्पिः सतिक्तसिद्धं क्षीरं प्रस्रंसनं निरूहांश्च।
रक्तस्य चावसेचनमाश्वासनसंशमनयोगाः।
उपनाहनं सशस्त्रं पक्वस्याभ्यन्तरप्रभिन्नस्य ॥ १७७ ॥
संशोधनसंशमने पित्तप्रभवस्य गुल्मस्य।
स्नेहः स्वेदो भेदो लंघनमुल्लेखनं विरेकाश्च ॥ १७८ ॥
सर्पिर्वस्तिर्गुडिकाश्चूर्णमरिष्टाश्च सक्षाराः।
गुल्मस्यान्ते दाहः कफजस्याग्रेऽपनीतरक्तस्य ॥ १७९ ॥
गुल्मस्य रौधिरस्य क्रियाक्रमः स्त्रीभवस्योक्तः।
पथ्यान्नपानसेवाहेतूनां वर्जनं यथास्वञ्च ॥ १८० ॥
नित्यञ्चाग्निसमाधिः स्निग्धस्य च सर्वकर्माणि।

हेतुर्लिङ्गं सिद्धिः क्रियाक्रमः साध्यतानुयोगश्च ॥
गुल्मचिकित्सितसंग्रह एतावानग्निवेशस्य ॥ १८१ ॥

इति चरक० चिकित्सि० गुल्मचिकित्सितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भगवान् आत्रेयजी अग्निवेशके संग्रहार्थ इस गुल्मचिकित्सिताध्यायमें गुल्मरोग-नाशक घृत और दूध, विरेचन, निरूहण, रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग तथा पित्तगुल्ममें उपनाहन, पक्वगुल्मका शस्त्रद्वारा भेदन, आभ्यंतर भिन्नकी चिकित्सा, संशोधन और संशमनप्रयोग, कफगुल्ममें स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृत, वस्ति, गुटिका, चूर्ण, अरिष्ट, क्षार तथा रक्त निकालकर फिर दाहकर्म हय वर्णन किये हैं। एवं स्त्रियोंको होनेवाले रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम, पथ्य, अन्न-पानविधि, गुल्मोत्पादक कारणोंका त्याग, रोगीको स्निग्ध करनेपर जठराग्निकी रक्षा, सब प्रकारकी चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्साक्रम, साध्यता और अनु-योग यह सब वर्णन कियागया है ॥ १७७-१८१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां गुल्मचिकित्सितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः।



अथातः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम प्रमेहरोगकी चिकित्साका वर्णन करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

निर्मोहमानानुशयो निराशः पुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः ।
कालेऽग्निवेशाय सहेतुलिङ्गानुवाच मेहाञ्छमनञ्च तेषाम् ॥ १ ॥

मोह, मान, राग, द्वेष और इच्छासे रहित, ज्ञान और महातपशाली भगवान् पुन-र्वसुजी प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्तिके उपाय यथासमय अग्निवेशसे कहने लगे ॥ १ ॥

प्रमेहका निदान।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि ।
नवान्नपानं गुडवैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ २ ॥

बहुत बैठे रहनेसे, बहुत सोनेसे, दही तथा ग्राम्य, आनूप तथा औदिक पशुपक्षियोंका मांस अधिक खानेसे और अधिक दूध व नये अन्न पानका सेवन करनेसे, मिठाई आदिके सेवनसे तथा और भी सब प्रकारके कफकारी पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे प्रमेहरोग उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

कफादिप्रमेहकी सम्प्राप्ति।

मेदश्च मांसञ्च शरीरजञ्च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदूष्य।
करोति मेहं समुदीर्णमुष्णैस्तान्येव पित्तं परिदूष्य भूयः॥ ३ ॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य वस्तौ धातून्प्रमेहाननिलः करोति।
दोषो हि वस्तौ समुपेत्य मूत्रं सन्दूष्य मेहाञ्जनयेद्यथास्वम् ॥४॥

मेद, मांस और शरीरके क्लेदको दूषित करके मूत्रस्थानमें प्राप्तकर कफ प्रमेहको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार उष्ण पदार्थोंके सेवनसे कुपितहुआ पित्त मेद मांसादि दूषित करके जब वस्तिस्थानमें प्राप्त होता है तब पित्तके प्रमेहोंको प्रगट करता है। एवं लंघनादिद्वारा कफ, पित्त और मलमूत्रादिके क्षीण होनेपर वायु कुपित होकर रस, मज्जा वसा और ओज धातुको वस्तिस्थानमें आकर्षण कर वातज प्रमेह उत्पन्न करता है दोषही बस्तिमें प्राप्त हो मूत्रको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है॥ ३ ॥ ४ ॥

प्रमेहकी संख्या।

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड्याप्या न साध्याः पवनाश्चतुष्काः।
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥ ५ ॥

चिकित्सामें समक्रियत्व होनेसे दश प्रकारके कफजनित प्रमेह साध्य होते हैं। चिकित्सामें विषमक्रियत्व होनेसे छः प्रकारके पित्तजनित प्रमेह याप्य होते हैं। इसी प्रकारसे क्रियामें विरोध पडनेसे चार प्रकारके वातजनित प्रमेह असाध्य होते हैं। समक्रियत्वका यह तात्पर्य है कि दोष और मेदा आदि दूष्य यह समानगुण हैं इससे कफनाशक क्रिया करनेसे ही प्रमेह शान्त होजाते हैं, इसलिये साध्य हैं। तथा पित्तनाशक मधुर शीतादि द्रव्य मेदको बढाते हैं और मेदाके नाश करनेवाले उष्ण, कटुकादि द्रव्य पित्तको बढाते हैं इसलिये यहां क्रियाकी विषमता होनेसे पित्तज प्रमेह याप्य हैं। जिन द्रव्यों और क्रिया द्वारा प्रमेहकी शांति होती है उन्हींसे वायुका कोप होता है और इसमें सब प्रकारकी क्रिया विरोधी पडती है इस लिये वायुके प्रमेह असाध्य होते हैं ॥ ५ ॥

प्रमेहमें दोषदूष्योंकी संख्या।

कफः सपित्तः पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः।

मज्जारसौजःपिशितञ्च दूष्यं प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ६ ॥

वात, कफ, पित्त यह तीन दोष हैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्वी, लसीका, मज्जा, रस, ओज और मांस यह सब दूष्य हैं, दोष दूष्योंके संयोगसे बीस प्रकारके प्रमेह उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥

जलोपमं वेक्षुरसोपमं वा घनं घनं चोपरि विप्रसन्नम् ।

शुक्लं सशुक्रं शिशिरं शनैर्वा लालेव वा वालुकया युतं वा ॥ ७ ॥

विद्यात् प्रमेहान् कफजान् दशैतान् क्षारोपमं कालमथापि नीलम् ।

हारिद्रमाञ्जिष्ठमथापि रक्तमेतान्प्रमेहान् षडुशन्ति पित्तात् ॥ ८ ॥

मज्जौजसा वा वसयान्वितं वा लसीकया वा सततं विबद्धम् ।

चतुर्विधं मूत्रमतीव वाताच्छेषेषु धातुष्वपकर्षितेषु ॥ ९ ॥

कफसे दशप्रकारके प्रमेह होते हैं। जैसे-१ जलके समान वर्णवाला "उदकमेह" होता है। २ ईखके रसके समान "इक्षुप्रमेह" होता है। ३ कुछ मिलाहुआसा गाढा मूत्र अथवा रात्रिको पात्रमें रखनेसे गाढा होजाय वह "सान्द्रमेह" होता है। ४ जो मूत्र पात्रमें रखनेसे नीचे गाढा और ऊपर मद्यके समान हो उसे "सुरामेह" कहते हैं। ५ जो वीर्यमिला मूत्र होता है उसे "शुक्रमेह" कहते हैं। ६ पिसेहुए चावलोंके समान सफेद मूत्र हो तो "पिष्टमेह" जानना। कोई इसीको शुक्रमेह भी कहते हैं। ७ जिसमें धीरे धीरे मूत्रके बिन्दू टपकते हैं उसको "शनैः मेह" कहते हैं। ८ जिसमें मुखकी लारके समान तारसा निकलता है उसको "लालामेह" कहते हैं। ९ जिसमें वालुके समान कणपदार्थ निकले वह "सिकतामेह" होता है। १० जिसमें शीतल और बहुत मूत्र उतरता है वह "शीतमेह" होता है। इस प्रकार कफसे होनेवाले दश प्रकारके प्रमेह होते हैं ॥ पित्तसे छःप्रकारके प्रमेह होते हैं। जैसे-१ क्षारके समान मूत्र "क्षारमेह" में। २ काले रंगका मूत्र "कालमेह" में। ३ नीले रंगका मूत्र "नील-मेह" में। ४ हल्दीके समान रंगवाला "हारिद्र मेह" में। ५ आमकीसी दुर्गंधयुक्त और मजीठके समान "मांजिष्ठमेह" में। ६ एवं रुधिरके समान लाल वर्णवाला मूत्र "रक्तमेह" में होता है। यह छः प्रकारके पित्तप्रमेह होते हैं ॥ चार प्रकारके वातजप्रमेह होते हैं। जैसे-१ मज्जाके समान वर्णवाला मूत्र "मज्जामेह" में। २ वसाके समान वर्णवाला मूत्र "वसामेह" में। ३ ओजमिश्रित मूत्र "ओजःप्रमेह" में। और ४ लसीकायुक्त मूत्र "लसीकामेह" में होता है। जब सब धातुएँ क्षीण होजाती हैं तब वातके कोपसे यह चार प्रकारकी धातुएँ ही मूत्रमें निकलने लगती हैं ॥ ७-९ ॥

दोषानुसार प्रमेहके वर्णादि ।

वर्णं रसं स्पर्शमथापि गन्धं यथास्वदोषं भजते प्रमेहः ॥ १० ॥

जिस दोषसे प्रमेह उत्पन्न होता है उसका वर्ण, रस, स्पर्श और गंध उसी दोषके अनुसार होजाता है ॥ १० ॥

वातज प्रमेहका असाध्यत्व ।

श्यावारुणो वातकृतः सशूलो मज्जादिषाड्गुण्यमुपैत्यसाध्यः ॥ ११ ॥

जो वायुका प्रमेह श्यामवर्ण और लालवर्ण तथा शूलयुक्त हो और उसमें मज्जा, वसा, ओज, लसीका, रस, शुक्र इन छः धातुओंके गुण हों तो उसे असाध्य जानना ॥ ११ ॥

प्रमेहके पूर्वरूप ।

स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलाङ्गता च शय्यासनस्वप्नसुखे रतिश्च ।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गता केशनखातिवृद्धिः ॥ १२ ॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो माधुर्यमास्ये करपाददाहः ।
भविष्यतो मेहगदस्य रूपं मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ १३ ॥

पसीनेका आना, अंगोंसे दुर्गंध आना, देहका शिथिलसा होजाना, शय्यापर पडे रहने, सुखपूर्वक आसनपर बैठे रहने और सोनेकी इच्छा बनी रहना, हृदय, नेत्र, जिह्वा और कानोंमें मैल लिपीसी रहना, देहका कठोर होना, केश और नखोंका अत्यंत बढना, ठण्डी वस्तुपर प्रेम होना, गल और तालुमें खुश्की होना, मुखमें मीठापन, हाथ और पांवोंमें दाह होना और मूत्रपर चीटियोंका लगना यह सब प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्थूल और कृश प्रमेहीकी चिकित्सा ।

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथैकः परिदुर्बलश्च ।
संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोषबलाधिकस्य ॥ १४ ॥

कोई प्रमेहरोगवाला मनुष्य स्थूलशरीर और बलवान् होता है तथा कोई कृश शरीर और दुर्बल होता है । इनमें कृशरोगीको बृंहण करना चाहिये और बलवान्को संशोधन देकर उसके दोषोंको निकाल देना चाहिये ॥ १४ ॥

प्रमेहीके अन्य उपचार ।

स्निग्धस्य योगा विविधाः प्रयोज्याः कल्पोपदिष्टा मलशोधनाय ।
ऊर्ध्वं तथाधश्च मलेऽपनीते मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्यम् ॥ १५ ॥

गुल्मः क्षयो मेहनवस्तिशूलं मूत्रग्रहश्चाप्यपतर्पणेन ।
प्रमेहिणः स्युः परितर्पणानि कार्याणि तस्मात्प्रसमीक्ष्य वह्निम् ॥ १६ ॥
संशोधनं नार्हति यः प्रमेही तस्य क्रिया संशमनी प्रयोज्या ॥ १७ ॥

प्रथम रोगीको स्निग्ध करके कल्पस्थानमें कहे हुए प्रयोगोंसे दोषोंका शोधन करे जब वमन विरेचन द्वारा दोष निकलजांय फिर उसको सन्तर्पण करना चाहिये। क्योंकि अपतर्पण करनेसे प्रमेहरोगीके गुल्म, क्षय और लिंग तथा वस्तिस्थानमें पीडा और मूत्रकी रुकावट ये उत्पन्न होते हैं इसलिये संतर्पण क्रिया करे। जो प्रमेहरोगी संशोधनके योग्य न हो उसकी संशमन चिकित्सा करने योग्य है ॥ १६-१७ ॥

प्रमेह रोगमें पथ्य।

मन्थाः कषाया यवचूर्णलेहाः प्रमेहशान्त्यै लघवश्च भक्ष्याः ।
ये विष्किरा ये प्रतुदा विहंगास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः ॥ १८ ॥
यवौदनं रूक्षमथापि वाद्यान्मद्यान् ससक्तूनपि चाप्यपूपान् ।
मुद्गादियूषैरथ तिक्तशाकैः पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ १९ ॥
दन्तीङ्गुदीतैलयुतं प्रमेही तथातसीसर्षपतैलयुक्तम् ।
सषष्टिकं स्यात्तृणधान्यमन्नं यवप्रधानस्तु भवेत्प्रमेही ॥ २० ॥

प्रमेहरोगकी शान्तिके लिये मन्थ,कषाय,जौओंके आटेका लेह तथा हलका भोजन खानेको देवै। एवं विष्किर और प्रतुदसंज्ञक जंगली पक्षियोंके मांसके रसके साथ रूखा यवान्न अथवा यवोंके सत्तुओंके साथ मद्य वा अपूप भक्षण करै। मूंग आदिके यूषके साथ अथवा तिक्त शाकोंके साथ पुराने शालीचावलोंका भात खावे। दन्ती और गोंदनीका तेल मिलाकर अथवा अलसी और सरसोंका तेल मिलाकर साठी चावल तृणधान्यके अन्नका सेवन करै। प्रमेहरोगीको विशेषतासे जौके पदार्थका सेवन करना हित है ॥ १८-२० ॥

कफप्रमेहमें अन्य उपचार।

यवस्य भक्ष्यान्विविधांस्तथाद्यात्कफप्रमेही मधुसम्प्रयुक्तान् ।
निशि स्थितानां त्रिफलाकषायैः स्युस्तर्पणा क्षौद्रयुता यवानाम् ॥ २१ ॥
ताञ्शीधुयुक्तान्प्रपिबेत्प्रमेही प्रायोगिकान्मेहवधार्थमेव ॥ २२ ॥

कफप्रमेहवाला मनुष्य जौओंके सत्तू आदि और अनेक भोजनके पदार्थ बना शहदके साथ सेवन करतारहे। रात्रिकालमें जौओंको त्रिफलेके क्वाथमें भिगोदेवे दूसरे दिन इनका भात बनाकर शहदके साथ अथवा इनका यूष बनाकर ठंडा होनेपर

शहद मिलाकर पीवे तो तर्पण होवे । इन्हीं जौओंको शीधुके साथ पान करै तो प्रमेह नष्ट होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

ये श्लेष्ममेहे विहिताः कषायास्तैर्भावितानाञ्च पृथग्यवानाम् ।
सक्तूनपूपान् सगुडान् सधानान्भक्ष्यांस्तथान्यान्विविधांश्च खादेत् ॥ २३ ॥
खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां तथा यवानां विविधाश्च भक्ष्याः ।
देयास्तथा वेणुयवा यवानां कल्पेन गोधूममयाश्च भक्ष्याः ॥ २४ ॥
संशोधनोल्लेखनलंघनानि काले प्रयुक्तानि कफप्रमेहान् ।
जयन्ति पित्तप्रभवान्विरेकाः सन्तर्पणः संशमनो विधिश्च ॥ २५ ॥

जो कफप्रमेहनाशक कषाय हैं उनकी जौओंको अलग २ भावना देकर उनके सत्तू, अपूप, गुडमिश्रित धनियां तथा और अनेक प्रकारके पदार्थ बनवाकर सेवन करना हित है ॥ गधा, घोडा, बैल वा गौकी गुदामें होकर जो विना टूटे जौ निकल आते हैं या इनके लीद गोबरके रसकी अनेक भावना देकर उनके एवं वेणुयव (बांसके यव) और गेहूंके अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर सेवन करे ॥ ठीक समयपर कराये हुए संशोधन, वमन, लंघन करानेसे भी कफप्रमेह दूर होता है । एवं ठीक समयपर वमन, विरेचन, लंघन, सन्तर्पण और संशमन द्वारा पित्तज प्रमेह भी शान्त होजाता है ॥ २३–२५ ॥

प्रमेहोंपर सामान्य प्रयोग ।

दार्वीं सुराह्वां त्रिफलां समुस्तां कषायमुत्क्वाथ्य पिबेत् प्रमेही ।
क्षौद्रेण युक्तामथ वा हरिद्रां पिबेद्रसेनामलकीफलानाम् ॥ २६ ॥

दारुहल्दी, देवदारू, त्रिफला और मोथाके क्वाथको शहत मिलाकर पीनेसे अथवा आंवलेके रसके साथ कच्ची हल्दीका पान करनेसे प्रमेह नष्ट होजाते हैं ॥ २६ ॥

कफप्रमेहका दश कषाय ।

हरीतकी कट्फलमुस्तलोध्रं पाठा विडङ्गार्जुनधन्वनश्च ।
उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ २७ ॥
दार्वी विडङ्गं खदिरो धवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि ।
चव्याग्निमन्था त्रिफला सपाठा पाठाश्वदंष्ट्रे सह मूर्वया च ॥ २८ ॥
यवान्युशीराण्यभया गुडूची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः ।
पादैः कषायाः कफमेहिनां ते दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ २९ ॥

१. हरड, कायफल, मोथा, लोध। २. पाढ, बायबिडंग, अर्जुन और ढामण (धन्वन)। ३. दोनों हल्दी, तगर और बायबिडंग। ४. कदम्ब, शाल, अर्जुन आर अजवायन। ५. दारुहल्दी, बायबिडंग, खैर और धव। ६. देवदारु, कूठ, अगर और चंदन। ७. चव्य, अरनी, त्रिफला और पाढ। ८. पाढ, गोखरू और मूर्वा। ९. अजवायन, खस, हरड और गिलोय। १०. काकजंघा, हरड, चित्रक और सप्तपर्ण। यह प्रत्येक श्लोकके एक एक पादमें कहेहुए दशप्रकारके क्वाथ शहत मिलाकर पीनेसे कफप्रमेह दूर होते हैं ॥ २७-२९ ॥

पित्तप्रमेहपर दश कषाय।

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम्।
पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयापद्मकवृक्षकाणाम् ॥ ३० ॥
रोध्राम्बुकालीयकधातकीनां निम्बार्जुनानान्तिनिशोत्पलानाम्।
शिरीषसर्जार्जुनकेसराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम् ॥ ३१ ॥
अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटङ्कटेर्युत्पलमुस्तकानाम्।
पैत्तेषु मेहेषु दशैव दृष्टाः पादैः कषाया मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ३२ ॥

१. खस, लोध, रसौंत और चंदन। २. खस, आमला, मोथा और हरड। ३. पटोलपत्र, नीम, आमला और गिलोय। ४. नागरमोथा, हरड, पद्माख और इन्द्रजौ। ५. लोध, नेत्रवाला, दारुहल्दी और धावेका फूल। ६. नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और नीलकमल। ७. सिरसकी छाल, शल, अर्जुन और नागकेशर। ८. प्रियंगु, लालकमल, नीलकमल और ढाकके फूल (केसू)। ९. पीपल, पाढ, असन (बिजेसार) और वेतस। १० दारुहलदी, उत्पल (नीलकमल) और नागरमोथा। यह एक एक पादमें प्रत्येक श्लोकके कहेहुए दश क्वाथ शहत मिलाकर पित्तप्रमेहोंकी शान्तिके लिये देना चाहिये ॥ ३०-३२ ॥

सर्वेषु मेहेषु मतौ तु पूर्वौ कषाययोगौ विहितास्तु सर्वे।
मन्थस्य पाने यवभावनायां स्युर्भोजने पानविधौ पृथक् च ॥ ३३ ॥
सिद्धानि तैलानि घृतानि चैव देयानि मेहेष्वनिलात्मकेषु।
मेदः कफश्चैव कषाययोगैः स्नेहैश्च वायुः शममेति तेषाम् ॥ ३४ ॥

दारुहल्दी और आँवलेके रसवाले सबसे प्रथम जो दो कषायके प्रयोग वर्णन किये गये हैं वह सब प्रकारके प्रमेहोंमें उपयोगी हैं। इन सब कषायोंका मन्थपान,

जौओंकी भावना देना अथवा सब प्रकारके भोजन पानमें पृथक् २ प्रयोग करना चाहिये । वायुके प्रमेहोंमें औषधोंसे सिद्ध कियाहुआ तैल घृतका प्रयोग करना चाहिये । कषायोंके प्रयोगसे मेद और कफ तथा स्नेहन योगोंसे वायु शान्त होती है॥

कफपित्तप्रमेहपर प्रयोग ।

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौहीतककोटिजानि ।
कपित्थपुष्पाणि च चूर्णितानि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ३५ ॥
पिबेद्रसेनामलकस्य वापि कल्कीकृतान्यक्षसमानि काले ।
जीर्णे च भुञ्जीत पुराणमन्नं मेही रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः ॥ ३६ ॥
दृष्टानुबन्धं पवनं कफस्य पित्तस्य वा स्नेहविधिर्विकल्पः ।
तैलं कफे स्यात्सकषायासिद्धं पित्ते घृतं पित्तहरैः कषायैः ॥ ३७ ॥

कमीला, सप्तपर्ण, राल, बहेडा, रोहीतक, इन्द्रजौ और कैथके फूलोंका बारीक चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त प्रमेह शान्त होजाता है । अथवा इसी कमीला आदि चूर्णका एक तोला कल्क आँवलेके रसके साथ पीना चाहिये । और औषध पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ पुराने शालीचावलोंका भात सेवन करै । प्रमेह रोगमें वायुका अनुबन्ध होनेपर स्नेहविधिकी कल्पना करनी चाहिये । यदि कफका अनुबन्ध हो तो कफनाशक द्रव्योंके क्वाथमें सिद्ध कियेहुए तेलका प्रयोग करना चाहिये । यदि पित्तका अनुबंध हो तो पित्तनाशक द्रव्योंके क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करै ॥ ३५—३७ ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवल्कैर्भल्लातकैः सातिविषैः सरोध्रैः ।
वचापटोलार्जुननिम्बमुस्तैर्हरिद्रया पद्मकदीप्यकैश्च ॥ ३८ ॥
माञ्जिष्ठया वागुरुचन्दनैश्च सर्वैः समस्तैः कफवातजेषु ।
मेहेषु तैलं विपचेद् घृतं तु पैत्तेषु मिश्रं त्रिषु लक्षणेषु ॥ ३९ ॥

गोखरू, कचनार, खैर, भिलावा, अतीस, पठानीलोध, वच, पटोलपत्र, कोहवृक्षकी छाल, नीमकी छाल, नागरमोथा, हल्दी, पद्माख, अजवायन, मजीठ, अगर और चन्दनके क्वाथद्वारा सिद्ध किया हुआ तैल सेवन करनेसे कफवातसे हुए प्रमेह दूर होते हैं । तथा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत, वातपित्तसे हुए प्रमेहको एवं तीनों दोष नाश करनेवाले द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत और तेल दोनों त्रिदोषजन्य प्रमेहोंको दूर करते है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

सब प्रकारके प्रमेहोंपर काथ।

फलत्रिकं दारुनिशा विशाला मुस्ता च निःक्वाथ्य निशा सकल्का।
पिबेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुद्धृतेषु ॥ ४० ॥

त्रिफला, देवदारू, हल्दी, इन्द्रायणकी जड और नागरमोथेका क्वाथ करके उसमें हलदीका कल्क और शहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकारके बढेहुए प्रमेह दूर होते हैं ४०

मध्वासव।

लोध्रं शठीं पुष्करमूलमेलां मूर्वाविडंगत्रिफलां यवानीम्।
चव्यं प्रियंगु क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणीञ्च ॥ ४१ ॥
भार्ङ्गींनतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविषं सपाठम्।
कलिंगकान्केशरमिन्द्रसाह्वां नखं सपत्रं मरिचं प्लवञ्च ॥ ४२ ॥
द्रोणेऽम्भसः कर्षसमानि पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे।
रसेऽर्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षान्निधेयो घृतभाजनस्थः ॥ ४३ ॥
मध्वासवोऽयं कफपित्तमेहान् क्षिप्रं विहन्याद्द्विपलप्रयोगात्।
पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं किलासं विविधञ्च कुष्ठम् ॥ ४४ ॥

पठानी लोध, कचूर, पोहकरमूल, इलायची, मूर्वा, प्रियंगु, बायविडंग, त्रिफला, अजवायन, चव्य, सुपारी, इन्द्रायणकी जड, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रक, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, नखीद्रव्य, तेजपात, कालीमिर्च, केवटीमोथा इन सबको एक एक तोला लेकर सोलह सेर जलमें पकावे। जब चौथाई शेष रहे तो छानले, फिर इस रससे आधा शहत मिलाकर घीके चिकने पात्रमें भरकर पंद्रह दिन तक रक्खा रहनेदे। यह मध्वासव हुआ। इसमेंसे नित्य-प्रति दो पलका सेवन करनेसे कफपित्तसे हुए प्रमेह, पाण्डुरोग, अर्शरोग, अरुचि, ग्रहणीदोष, किलास और सब प्रकारके कुष्ठ दूर होते हैं ॥ ४१-४४ ॥

अन्य आसव।

क्वाथः स एवाष्टपले च दन्त्या भल्लातकानाञ्च चतुष्पले स्यात्।
सितोपला त्वष्टपला विशेषः क्षौद्रञ्च तावत्पृथगासवौ तौ ॥ ४५ ॥

पूर्वोक्त लोध्रादि क्वाथसे दो आसव और बनते हैं। जैसे इसी लोध्रादि क्वाथमें दंती आठ पल, शहत और मिश्री आठ आठ पल मिलावे। अथवा उसी पूर्वोक्त क्वाथमें भिलावे चार पल, मिश्री आठ पल और शहत आठ पल मिलावे। यह दोनों आसव गुणमें मध्वासवके समान हैं ॥ ४५ ॥

प्रमेहपर अन्य चिकित्सा ।

सारोदकक्वाथ कुशोदकं वा मधूदकं वा त्रिफलारसं वा ।
शीधुं पिबेद्वा निगदं प्रमेही माध्वीकमग्र्यं चिरसंस्थितं वा ॥ ४६ ॥
मांसानि शूल्यानि मृगद्विजानां खादेद्यवानां विविधांश्च भक्ष्यान् ।
संशोधनारिष्टकषायलेहैः संतर्पणघ्नैः शमयेत्प्रमेहान् ॥ ४७ ॥
भृष्टान्यवान्भक्षयतः प्रयोगाच्छुष्कांश्च सक्तून्न भवन्ति मेहाः ।
श्वित्रञ्च कुष्ठञ्च कफञ्च कृच्छ्रं तथैव मुद्गामलकप्रयोगात् ॥ ४८ ॥

सारोदक अथवा कुशोदक या मधूदक, मृग और पक्षियोंका अथवा त्रिफलेका क्काथ एवं शीधु या पुराना माध्वीक सेवन करनेसे प्रमेह दूर होता है । एवं पशुपक्षियोंका शूलप्रोत भुना हुआ मांस तथा जौओंके बनेहुए नाना पदार्थोंका सेवन करे । प्रमेहको संशोधन, अरिष्ट, कषाय, लेह और संतर्पण द्वारा शमन करे । भुनेहुए जौ और उनके सत्तू तथा मूंग और आँवला इनके प्रयोगसे श्वित्रकुष्ठ, कुष्ठ, कफ और मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं ॥ ४६-४८ ॥

सन्तर्पणोत्थेषु गदेषु योगा मेदस्विनां ये च मयोपदिष्टाः ।
विरूक्षणार्थं कफपित्तजेषु सिद्धाः प्रमेहेष्वपि ते प्रयोज्याः ॥ ४९ ॥
व्यायामयोगैर्विविधैः प्रगाढैरुद्वर्त्तनैः स्नानजलावसेकैः ।
सेव्यत्वगेलागुरुचन्दनाद्यैर्विलेपनैश्चाशु न सन्ति मेहाः ॥ ५० ॥
क्लेदश्च मेदश्च कफश्च वृद्धो नाशं प्रयाति प्रसमीक्ष्य तस्मात् ।
वैद्येन पूर्वं कफपित्तजेषु मेहेषु कार्याण्यपतर्पणानि॥ ५१ ॥

सन्तर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंमें तथा जिनका मेदधातु बढगया है उनके लिये जो रूक्षण करनेवाले प्रयोग कहे हैं उनका कफपित्तसे उत्पन्न हुए प्रमेहमें प्रयोग करना चाहिये । दण्ड, कसरत, अनेक प्रकारके उबटने, स्नान, जलावसेक, तथा खस, दालचीनी, अगर और चन्दनका लेप करनेसे प्रमेहरोग शीघ्र नष्ट होता है । अपतर्पण करनेसे क्लेद, मेद और कफ यह नष्ट होते हैं । इसलिये वैद्यको कफपित्तके प्रमेहोंमें प्रथम अपतर्पण करना चाहिये ॥ ४९-५१ ॥

या वातमेहान् प्रति पूर्वमुक्ता वातोल्वणानां विहिता क्रिया सा ।
वा यर्हि मेहेष्वतिकर्षितानां कुप्यत्यसाध्यान् प्रति नास्ति चिन्ता ५२॥

यदि तीनों दोषोंके प्रमेहोंमें वातकी अधिकता हो तो प्रथम वातजप्रमेहके अनुसार उपाय करै, क्योंकि वातप्रमेह मनुष्यको बहुत जल्दी कृश करके रोगको असाध्य बनादेता है। फिर सब चिकित्सा निष्फल होती है॥ ५२॥

प्रमेहमें निदान परिवर्जन।

यैर्हेतुभिर्ये प्रभवन्ति मेहास्तेषु प्रमेहेषु न ते निषेव्याः।
हेतोरसेवा विहिता यथैव जातस्य रोगस्य भवेच्चिकित्सा॥ ५३॥

जिन कारणोंसे जो २ प्रमेह उत्पन्न हुए हों उनमें उन्हीं २ कारणोंका त्याग करदेना चाहिये। क्योंकि हेतुका परित्याग करना ही एक प्रकारकी रोगकी चिकित्साहै॥

रक्तपित्तका कोप।

हारिद्रवर्णं रुधिरं सफेनं विना प्रमेहस्य हि पूर्वरूपैः।
यन्मूत्रयेत्तन्न वदेत् प्रमेहं रक्तस्य पित्तस्य हि स प्रकोपः॥५४॥

यदि मूत्रका वर्ण हल्दीके समान वर्णवाला और रुधिरके समान वर्णवाला हो तथा झागदार हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो तो उस रोगीको प्रमेह नहीं होती है उसको रक्तपित्तका कोप जानना चाहिये॥ ५४॥

मधुप्रमेह।

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं मधूपमं स्याद्द्विविधोपचारः॥ ५५॥

यदि प्रमेहमें मीठापन हो और शहतके समान पिच्छिल हो तो उसको "मधुमेह" कहते हैं। उसमें अनेक प्रकारकी चिकित्सा करनी चाहिये॥ ५५॥

प्रमेहका साध्यासाध्यत्व।

क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मकः स्यात्संतर्पणाद्वा कफसम्भवः स्यात्।
सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेण ते वातकृताश्च मेहाः॥ ५६॥
साध्या न ते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्यास्तु मेदो यदि न प्रदुष्टम्।
जातप्रमेहो मधुमेहिना वा न साध्यरोगः स हि बीजदोषात्॥ ५७॥
ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान्॥५८॥

मल और कफपित्तके क्षीण होनेसे वातात्मक प्रमेह होता है। और संतर्पणसे कफका प्रमेह उत्पन्न होता है। कफज तथा पित्तज प्रमेह जो उपद्रवयुक्त पूर्वरूपसे उत्पन्न हुए हों अथवा जो वातजनित प्रमेह हों वह सब असाध्य होते हैं। पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजनित प्रमेह जिनमें मेद दूषित नहीं होता वह साध्य होते हैं। मधुमेहीकी सन्तानके जो बीजदोषके कारण प्रमेह हो वह असाध्य होता है। एवं जो रोग कुलपरम्परासे चले आते हैं वह भी असाध्य होते हैं॥ ५६-५८॥

प्रमेहपिडकाओंकी चिकित्सा।

प्रमेहिणां याः पिडका मयोक्ता रोगाधिकारे पृथगेव सप्त।
ताः शल्यहृद्भिः कुशलैश्चिकित्स्याः शस्त्रेण संशोधनरोपणैश्च। इति॥५९

रोगाधिकारमें जो प्रमेहरोगकी सात पिडका पृथक् वर्णन कीगई है उनकी चिकित्सा धन्वन्तरिजीके कहेहुए शल्यतन्त्रको जाननेवाला कुशल वैद्य शस्त्रद्वारा तथा क्रियाद्वारा करे॥ ५९॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र—हेतुर्दोषा दूष्यं मेहानां साध्यतानुरूपञ्च।
मेही त्रिविधस्त्रिविधं भिषग्जितं लक्षणं तस्य।
आद्या यवान्नविकृतिर्मन्था मेहापहाः कषायाश्च॥ ६०॥
तैलघृतलेहयोगा भक्ष्याः प्रवरासवाः सिद्धाः।
व्यायामविधिर्विविधः स्नानान्युद्वर्तनानि गन्धाश्च।
मेहानां प्रशमार्थं चिकित्सिते दृष्टमेतावत्॥ इति॥ ६१॥

इति श्रीचरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितं
नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

प्रमेहोंके हेतु, दोष, दूष्य, साध्यता, अनुरूप, तीन प्रकारके रोग, उनकी तीन प्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षण करनेके लिये जौके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कषाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभव कियेहुए आसव, व्यायामविधि, अनेक प्रकारके स्नान, उद्वर्तन, गंधद्रव्यादि, प्रमेहनाशक विधि इस प्रमेहचिकित्सित नामके अध्यायमें कही गई हैं॥ ६०॥६१॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-
निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-
भाषाटीकायां प्रमेहचिकित्सितं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

सप्तमोऽध्यायः।



अथातः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम कुष्ठचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

कुष्ठोत्पत्तिका हेतु।

हेतुं लिङ्गं विविधं कुष्ठानामाश्रयं प्रशमनञ्च।
शृण्वाग्निवेश ! सम्यग्विशेषतः स्पर्शनघ्नानाम्॥ १॥
विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च।
भजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान् प्रतिघ्नताम्॥ २॥
व्यायाममतिसंतापमतिभुक्त्वा निषेविणाम्।
शीतोष्णलंघनाहारान् क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम्॥ ३॥
घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम्।
अजीर्णाध्याशिनाञ्चैव पञ्चकर्मापचारिणाम्॥ ४॥
नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम्।
माषमूलकपिष्टान्नगुडक्षीरतिलाशिनाम्॥ ५॥
व्यवायं वा विर्जीर्णेऽन्ने निद्रां वा भजतां दिवा।
विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं वा कर्म कुर्वताम्॥ ६॥
वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च।
दूषयन्ति सकुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः॥ ७॥
अतः कुष्ठा विजायन्ते सप्त चैकादशैव च।
न चैकदोषजं किञ्चित्कुष्ठं समुपलभ्यते॥ ८॥

अब हम स्पर्शशक्ति और त्वचाके नष्ट करनेवाले कुष्ठ (कोढ) के अनेक हेतु लक्षण और उनके शान्तिके उपायोंका वर्णन करते हैं। हे अग्निवेश ! तुम सावधान होकर सुनो। विरुद्ध अन्नपान और चिकने भारी पदार्थोंका अत्यंत सेवन, उपस्थित

वमनके वेगको रोकना तथा मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, अधिक भोजन करके अधिक परिश्रम और अत्यंत संतापका सेवन, क्रमको छोडकर शीत, उष्ण, लंघन और आहारका सेवन, धूप, परिश्रम आदिसे अथवा भयसे घबराये हुए व्यथित समय शीघ्र-शीतल जलका सेवन करना, अजीर्णमें भोजन करना, वमन, विरेचनादि पांच कर्मोंमें अपचारका होना, नया अन्न. दही, मछली, नमक और खटाईका अधिक सेवन, उडद, मूली, पिष्टान्न, गुड, दूध और तिलोंका अधिक सेवन, अन्नके पचे बिना मैथुन करना, दिनमें सोना, पापकर्मका करना, ब्राह्मण और गुरुजनादिकोंका तिरस्कार करना इन सब कारणोंसे कुपितहुए वातादिक तीनों दोष तथा इनसे दूषित हुए त्वचा, रक्त, मांस और लसीका यह सातों सब प्रकारके कुष्ठोंके कारण हैं। इनके ७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ सब मिलाकर १८ प्रकारके कुष्ठ उत्पन्न होते हैं। एक दोषसे कोई कुष्ठ नहीं होता किंतु इनमें सब दोषोंका संबंध होता है॥१-८॥

कुष्ठके पूर्वरूप।

स्पर्शान्यथात्वं स्वेदोऽति न वा वैवर्ण्यमुन्नतिः।
कोष्ठानां लोमहर्षश्च कण्डूस्तोदः श्रमः क्लमः॥ ९ ॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः।
दाहः सुप्ताङ्गता चेति कुष्ठलक्षणमग्रजम्॥ १० ॥

त्वचाका बिगडजाना, पसीनोंका अधिक आना, अथवा बिल्कुल न आना, शरीरकी विवर्णता, त्वचामें चकत्तेसे प्रगट होना, रोमांच होना तथा खाज, तोद, श्रम, क्लान्ति होना, शरीरमें घाव (जखम) होनेपर उनमें अधिक पीडा होना, घावोंका शीघ्र प्रगट होजाना और बहुत दिनोंतक बनेरहना एवं अंगोंका सोजाना यह सब कुष्ठके पूर्वरूपमें होते हैं॥ ९ ॥ १० ॥

कुष्ठोंके नाम।

अत ऊर्ध्वमष्टादशानां कुष्ठानां कपालोदुम्बरमण्डलर्ष्यजिह्वपुण्डरीकसिध्मकाकणकैककुष्ठचर्मकिटिभविपादिकालसकदद्रुचर्मदलपामाविस्फोटकशतारुर्विचर्चिकानां लक्षणान्युपदेक्ष्यामः॥ ११ ॥

इसके उपरांत कपाल, औदुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म, काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिभ, विपादिका, अलसक, दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक, शतारू और विचर्चिका इन १८ प्रकारके कुष्ठोंके लक्षणोंका वर्णन करते हैं॥ ११ ॥

१-कपाल कुष्ठके लक्षण।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु।

कपालं तोदबहुलं तत् कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

जो कुष्ठ काला लालवर्णयुक्त, कपालके समान रूक्ष, खुर्दरा, पतली त्वचावाला और जिसमें सूई चुभानेकीसी अत्यंत पीडा होतीहो उसको कपालकुष्ठ कहतेहैं। यह कुष्ठ विषम अर्थात् कष्टसाध्य होताहै ॥ १२ ॥

२-औदुम्बर कुष्ठके लक्षण।

कण्डूविदाहरुग्रागपरीतं लोमपिञ्जरम्।

उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं विदुः ॥ १३ ॥

जिस कुष्ठमें खुजली, दाह, पीडा और लाल वर्ण हो तथा रोमोंमें पीलापन हो और जिसका आकार गूलरके फलके समान हो उसको औदुम्बर कुष्ठ कहतेहैं॥१३॥

३-मंडल कुष्ठके लक्षण।

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम्।

कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ १४ ॥

जो कुष्ठ श्वेत तथा लालवर्णयुक्त हो और कठोर, गिलगिला, चिकना, ऊपरको ऊंचा उठाहुआ और मण्डलाकार हो, जिसक चकत्ते आपसमें मिलेहुए हों उसको मण्डलकुष्ठ कहतेहैं। यह कुष्ठ कष्टसाध्य है ॥ १४ ॥

४-ऋष्यजिह्व कुष्ठके लक्षण।

कर्कशं रक्तपर्य्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम्।

यदृष्यजिह्वासंस्थाने ऋष्यजिह्वं तदुच्यते ॥ १५ ॥

जो कुष्ठ स्पर्शमें खर हो और जिसके किनारे लालवर्णके हों, बीचमें काला और पीडायुक्त हो, आकारमें रीछकी जिह्वाके समान हो उसको ऋष्यजिह्व कहतेहैं ॥१५॥

५-पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण।

सश्वेतं रक्तपर्य्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम्।

सोत्सेधञ्च सदाहञ्च पुण्डरीकं तदुच्यते ॥ १६ ॥

जिस कुष्ठका वर्ण श्वेत हो और किनारे लाल हों, जो कमलके फूलकी पंखडीके (पत्रके) समान हो तथा उंचाईयुक्त और दाहवाला हो उसको पुण्डरीक कुष्ठ कहतेहैं ॥ १६ ॥

६-सिध्मकुष्ठके लक्षण।

श्वेतं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति।

अलाबुपुष्पवर्णं तत्सिध्मं प्रायेण चोरसि ॥ १७ ॥

जो कुष्ठ श्वेत तथा ताम्रवर्णवाला हो और त्वचा पतली हो, जिसके खुजलानेसे भूसीसी उडती हो, जिसका आकार घीयाके फूलके समान हो उसको सिध्मकुष्ठ कहते हैं। यह प्रायः छातीपर अधिक होता है ॥ १७॥

७-काकणक कुष्ठके लक्षण।

यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम्।
त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिद्ध्यति ॥ १८ ॥

जिस कुष्ठका आकार रक्तक (घुंघुची) के समान बीचमें काला और किनारोंपर लाल अथवा बीचमें लाल और किनारोंपर कालेवर्णका हो तथा किञ्चित् पाकयुक्त और तीव्रपीडायुक्त हो उसको काकणककुष्ठ कहते हैं, यह तीनों दोषोंकी प्रधानता युक्त होनेसे असाध्य होताहै। यह सात महाकुष्ठ कहाते हैं ॥ १८ ॥

८-९-१-एककुष्ठ और २-चर्मकुष्ठके लक्षण।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम्।
तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ १९ ॥

जिसमें पसीने न आते हों, जो बहुत जगहमें व्याप्त हो, जो मछलीके कल्कके समान चमकयुक्त हो उसको एककुष्ठ कहते हैं (जिसमें शरीर काला अथवा लाल पडजाता है उसको एककुष्ठ कहते हैं और यह असाध्य होता है)। जिसमें त्वचा हाथीके चमडेके समान मोटी होजाय उसको चर्मकुष्ठ (गजचर्म) कहते हैं ॥ १९ ॥

१०- किटिभ कुष्ठके लक्षण।

श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥ २० ॥

जो श्यामवर्ण कणके समान खरस्पर्श (खरदरा) और रूखासा होता है उसको किटिभकुष्ठ कहते हैं ॥ २० ॥

११-वैपादिकके लक्षण।

वैपादिकं करे पादे स्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥ २१ ॥

हाथ पांवोंके फटजानेपर जो तीव्र वेदनायुक्त बिवाई होजाती है उसको विपादिका (बिवाई) कहते हैं ॥ २१ ॥

१२-अलसकके लक्षण।

सकण्डूकैः सरागैश्च गण्डैरलसकं स्मृतम् ॥ २२ ॥

जिसमें खुजलीयुक्त लालरंगकी गांठेंसी हों उसको अलसककुष्ठ कहते हैं ॥२२॥

---

१ कोई श्वेतकुष्ठ (फूलवहरी) को ही सिध्मकुष्ठ कहतेहैं। परन्तु श्वेतकुष्ठ और है तथा सिध्म (छिम्म) में बडा भारी अंतर है।

१३-दद्रुमण्डलके लक्षण ।

सकण्डूरागपिडकं दद्रुमण्डलमुद्गतम् ॥ २३ ॥

जो अत्यंत खाजयुक्त लाल २ छोटी २ फुन्सियों सहित चकत्तेसे हों उसको दद्रु-मण्डल कहते हैं ॥ २३ ॥

१४-चर्मदलके लक्षण ।

रक्तं सकण्डु सस्फोटं सरुग्दलति चापि यत् ।
तच्चर्मदलमाख्यातं संस्पर्शासहमुच्यते ॥ २४ ॥

जिसका लाल वर्ण हो और खुजली होती हो जो फोडे और पीडासे युक्त हो तथा फटाहुआ सा हो, जिसमें हाथका स्पर्श न सहाजाय उसको चर्मदल कुष्ठ कहते हैं २४

१५-पामाके लक्षण ।

पामाः श्वेतारुणाः श्यावाः पिडकाः कण्डुला भृशम् ॥ २५ ॥

हाथों आदि सब शरीरमें सफेद, लाल, काली बहुतसी खुजलीयुक्त फुन्सियोंको पामा (खुजली) खाजी कहते हैं ॥ २५ ॥

१६-विस्फोटकके लक्षण ।

श्वेताः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥ २६ ॥

जिन फोडोंमें सफेद, काले और लालवर्णकी झलक मारती हो और त्वचा पतली हो उन फोडोंको विस्फोटक कहते हैं ॥ २६ ॥

१७-शतारुके लक्षण ।

रक्तं श्यावं सदाहार्त्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ २७ ॥

जिसमें लाल तथा श्यामवर्ण और दाहयुक्त बहुतसे व्रण (घाव) हों उसको शतारु कहते हैं ॥ २७ ॥

१८-विचर्चिकाके लक्षण ।

सकण्डूः पिडकाः श्यावा बहुस्रावा विचर्चिकाः ॥ २८ ॥

बहुत स्राव और खुजलीयुक्त श्यामवर्णकी फुन्सियोंको विचर्चिका कहते हैं। यह ११ क्षुद्र कुष्ठ होते हैं ॥ २८ ॥

कुष्ठोंको दोषपरत्व ।

वातेऽधिकतरे कुष्ठं कापालं मण्डलं कफे ।
पित्ते त्वौदुम्बरं विद्यात्काकणन्तु त्रिदोषजम् ॥ २९ ॥
वातपित्ते श्लेष्मपित्ते वातश्लेष्मणि चाधिके ।
ऋष्यजिह्वं पुण्डरीकं सिध्मकुष्ठं च जायते ॥ ३० ॥

चर्माख्यमेकं कुष्ठञ्च किटिभं सविपादिकम्।
कुष्ठञ्चालसकं ज्ञेयं प्रायो वातकफादिकम्॥ ३१॥
दद्रूश्चर्मदलं पामा विस्फोटाश्च शतारुषः।
पित्तश्लेष्माधिकाः प्रायः कफप्राया विचर्चिका॥ ३२॥

कपालकुष्ठमें वायु प्रधान होती है। मण्डलकुष्ठमें कफकी प्रधानता होती है। उदुम्बरकुष्ठमें पित्तकी प्रधानता होती है। और काकणक कुष्ठमें तीनों दोषोंकी प्रधानता होती है। ऋष्यजिह्वमें वात पित्तकी प्रधानता है। पुण्डरीककुष्ठमें कफपित्तकी प्रधानता होती है। और सिध्मकुष्ठमें वातकफकी प्रधानता होती है। गजचर्म, एककुष्ठ, किटिभ, विपादिका और अलसकमें प्रायः वातकफकी प्रधानता होती है। दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक और शतारुकुष्ठमें प्रायः कफपित्तकी प्रधानता होती है। एवं विचर्चिकामें कफकी प्रधानता होती है। संपूर्ण कुष्ठ तीनों दोषोंसे युक्त होतेहुए भी उनमें इस प्रकार एक एक अथवा दो दो दोषोंकी अधिकता होती है॥ २९-३२॥

कुष्ठोंमें चिकित्साक्रम।

सर्वं त्रिदोषजं कुष्ठं दोषाणाञ्च बलाबलम्।
यथास्वैर्लक्षणैर्बुद्ध्वा कुष्ठानां क्रियते क्रिया॥ ३३॥
दोषस्य यस्य पश्येत् कुष्ठेषु विशेषलिङ्गमुद्रिक्तम्।
तस्यैव शमं कुर्य्यात्ततः परञ्चानुबन्धस्य॥ ३४॥

संपूर्ण कुष्ठही त्रिदोषाश्रित होते हैं। इनमें उनके अपने २ लक्षणोंद्वारा दोषोंका बलाबल विचारकर चिकित्सा करना चाहिये। जिस कुष्ठमें जिस दोषके अधिक चिह्न दिखाई पडें पहिले उसीकी चिकित्सा करना चाहिये। उसके करनेपर अनुबन्धी दोषोंकी चिकित्सा करना उचित है॥ ३३॥ ३४॥

कुष्ठोंमें ज्ञातव्य।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैः पुनस्तु कुष्ठानि।
ज्ञायन्ते तैर्हेतुर्हेतुस्तांश्च प्रकाशयति॥ ३५॥

कुष्ठोंके भेदोंसे दोष और दोषोंके लक्षणोंसे कुष्ठ पहिचाने जाते हैं। एवं कुष्ठविशेषसे हेतु और हेतुओंसे कुष्ठ जाने जाते हैं। जैसे उदुम्बरकुष्ठसे पित्तकी अधिकता और पित्तके लक्षणोंसे उदुम्बरकुष्ठ जाना जाता है। सो आगे दिखाते हैं॥ ३५॥

वातजादि कुष्ठोंके लक्षण।

रौक्ष्यं शोषस्तोदः शूलं संकोचनं तथायासः।
पारुष्यं खरभावो हर्षः श्यावारुणत्वं च॥ ३६॥

कुष्ठेषु वातलिङ्गं दाहो रागः परिस्रवः पाकः।
विस्रो गन्धः क्लेदः तथाङ्गपतनं च पित्तकृतम् ॥ ३७ ॥
श्वैत्यं शैत्यं कण्डूः स्थैर्यं सोत्सेधगौरवं स्नेहाः।
कुष्ठेषु तु कफलिङ्गजन्तुभिरभिभक्षणं क्लेदः।
सर्वैरेतैर्लिङ्गैर्युक्तं मतिमान् विवर्जयेदबलम् ॥ ३८ ॥

जिस कुष्ठमें रूखापन, शोष, तोद, शूल, संकोच, आयास, कठोरता, खरदरापन, रोमोंका खडाहोना और श्याम तथा लालवर्ण यह वायुके लक्षण हों उसको वातप्रधान जानना। जिसमें दाद लालवर्ण, स्राव, पाक, विस्रगंध, क्लेद और किसी अवयवका गिरजाना यह पित्तकृत लक्षण हों उसको पित्तप्रधान जानना। जिस कुष्ठमें शीतलता, खुजली, स्थिरता, ऊंचापन, गुरुता, चिकनापन एवं श्वेतवर्ण हो तो यह कफप्रधान कुष्ठके लक्षण समझना। जिस कुष्ठमें कीडे पडगये हों क्लेद हो तथा वातादि तीनों दोषोंके लक्षण हों और रोगी दुर्बल हो तो बुद्धिमान् वैद्य ऐसे रोगीको असाध्य जानकर त्याग देवे ॥ ३६--३८ ॥

कुष्ठका असाध्यत्व।

तृष्णादाहपरीतं शान्ताग्निं जन्तुभिर्जग्धम्।
वातकफप्रबलं यद्यदेकदोषोल्वणं न तत्कृच्छ्रम्।
कफपित्तवातपित्तप्रबलानि तु कृच्छ्रकुष्ठानि ॥ ३९ ॥

जिस कुष्ठरोगीको प्यास, दाह और मंदाग्नि हो तथा कीडे पडगयेहों वह असाध्य १ जानना। वातकफाधिक अथवा एकदोषाधिक हो वह सुखसाध्य होता है। और जिन कुष्ठोंमें कफपित्त अथवा वातपित्त प्रबल होते हैं वह कष्टसाध्य होते हैं ॥ ३९ ॥

कुष्ठोंकी दोषानुसार चिकित्सा।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्रे ॥ ४० ॥

वातप्रधान कुष्ठमें प्रथम ही घृतपान कराना चाहिये। कफप्रधानमें वमन करावे और पित्तप्रधानमें रक्तमोक्षण तथा विरेचन कराना चाहिये ॥ ४० ॥

वमनविरेचनयोगाः कल्पोक्ताः कुष्ठिनां प्रयोक्तव्याः।
प्रच्छनमल्पे कुष्ठे मतं शिरावेधनं महति शस्तम् ॥ ४१ ॥

कल्पस्थानमें कहेहुए वमन विरेचन कुष्ठरोगियोंके लिये प्रयुक्तकरे। अल्पकुष्ठमें

पछने लगा उनमेंसे किंचित् रक्त निकालकर औषध लगाना और महाकुष्ठमें शिरा-वेधन (फस्तखोलना) हित है ॥ ४१ ॥

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ।
दोषे ह्यतिमात्रहृते वायुर्हन्यादबलमाशु ॥ ४२ ॥

बहुत दोषोंसे युक्त कोढमें संशोधन करे परन्तु इस प्रकार प्राणोंकी रक्षा करता-रहे कि जिस संशोधन करते रोगीकी मृत्यु न होजाय। क्योंकि दोषोंके अत्यंत हरण कियेजानेसे निर्बल रोगीको वायु शीघ्र मारडालती है ॥ ४२ ॥

स्नेहस्य पानमिष्टं शुद्धे कोष्ठे प्रवाहिते रुधिरे ।
वायुर्हि शुद्धकोष्ठं कुष्ठिनमबलं विशति शीघ्रम् ॥ ४३ ॥

संशोधनद्वारा अनेकवार शुद्ध कोष्ठ होनेके अनन्तर और रक्तमोक्षण (फस्तखो-लने) के अनन्तर रोगीको स्नेहपान कराना चाहिये क्योंकि स्नेहपान न करनेसे शुद्ध कुष्ठरोगीके कोष्ठमें अति शीघ्र वायु प्रवेश करलेती है ॥ ४३ ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग।

दोषोत्क्लिष्टे हृदये वम्यः कुष्ठेषु चोर्द्धभागेषु ।
कुटजफलमदनमधुकैः सपटोलैर्निम्बरसयुक्तः ॥ ४४ ॥
शीतरसः पक्वरसो मधूनि मधुकं च वमनानि ।
कुष्ठेषु त्रिवृता दन्ती त्रिफला च विरेचने शस्ताः ॥ ४५ ॥

हृदयके दोषोंसे उत्क्लेशित होने और शरीरके ऊपर भागमें कुष्ठरोगके होनेपर इन्द्रजौ, मैनफल, मुलैठी, पटोलपत्र और नीमके रसके क्वाथको पिलावे कुष्ठरोगमें वमन करानेके लिये मैनफल आदिका शीतकषाय अथवा क्वाथमें शहत और मुलैठीका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिंये। एवं कुष्ठमें विरेचन करानेके लिये निशोथ, दन्ती और त्रिफला यह द्रव्य उत्तम हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

सौवीरकं तुषोदकमालोडनमासवांस्तु शीध्वादीन् ।
शंसन्त्यधोहराणां यथा विरेकः क्रमश्चेष्टः ॥ ४६ ॥

विरेचनकर्त्ता द्रव्य घोलनेके लिये या अनुपानके लिये सौवीरक, तुषोदक, आसव अथवा शीधु लेना चाहिये। तदनन्तर विरेचनविधिमें जो पेयादिक्रम वर्णन किया है उसका सेवन करना चाहिये ॥ ४६ ॥

कुष्ठमें स्थापनयोग।

दार्वीबृहतीसेव्यैः पटोलपिचुमर्दमदनकृतमालैः ।
सस्नेहैरास्थाप्यः कुष्ठी सकलिङ्गयवमुस्तैः॥ ४७ ॥

कुष्ठ रोगीको दारुहल्दी, बडी कटेरी, खस, पटोलपत्र, नीमकी छाल, मैनफल, करंजुआ, इन्द्रजौ और मोथा इनके काथमें सिद्ध कियेहुए स्नेहसे आस्थापनवस्ति करावे ॥ ४७ ॥

कुष्ठमें अनुवासन योग।

वातोल्बणं विरिक्तं निरूढमनुवासनार्हमालक्ष्य।
फलमधूकनिम्बकुटजैः सपटोलैः साधयेत्स्नेहम् ॥ ४८ ॥

विरेचन और निरूहण करनेके अनन्तर वायुकी अधिकता होनेपर यदि अनुवासन करना उचित समझे तो मैनफल, मुलैठी, नीमकी छाल, कुडाकी छाल और पटोलपत्रोंसे सिद्ध कियेहुए स्नेहकी अनुवासनवस्ति देवे ॥ ४८ ॥

कुष्ठमें नस्यप्रयोग।

दन्तीमधूकसैन्धवफणिज्झकाः पिप्पलीकरञ्जफलम्।
नस्यं स्यात्सविडङ्गं क्रिमिकुष्ठकफप्रदोषघ्नम् ॥ ४९ ॥

दन्ती, मुलैठी, सेंधानमक, फणिज्झक, तुलसी, पीपल, करंजुआ और वायविडंगकी नस्य (नसवार) ले तो क्रिमिकुष्ठ (मस्तकके कृमि) और कफविकार नष्ट होते हैं ॥ ४९ ॥

अन्य क्रम।

वैरेचनिकैर्धूमैः श्लोकस्थानेरितैश्च शाम्यन्ति।
क्रिमयः कुष्ठकिलासप्रयोजितैरुत्तमाङ्गस्थाः ॥ ५० ॥
स्थिरकठिनमण्डलानां खिन्नानां प्रस्तरप्रणालीभिः।
कूर्चैर्विघट्टितानां रक्तोत्क्लेशोपनेतव्यः ॥ ५१ ॥

सूत्रस्थानमें विरेचनकरनेवाले धूमप्रयोग कहे हैं उनके प्रयोगसे शिरके कृमि कुष्ठ और किलास शीघ्र नष्ट होजाते हैं। स्थिर और कठोर चकत्तोंको प्रस्तरस्वेदसे स्वेदित करके इन चकत्तोंको कूर्च (कूची) से साफ करके उनके उत्क्लेशित रक्तको निकाल देना चाहिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥

रक्तमोक्षणविधि।

आनूपवारिजानां मांसानां पटोलैः सुखोष्णैश्च।
खिन्नोत्खिन्नं विलिखेत्कुष्ठं तीक्ष्णेन शस्त्रेण ॥ ५२ ॥
रुधिरागमार्थमथवा शृङ्गालाबूभिराहरेद्रक्तम्।
प्रच्छितमल्पं कुष्ठं विरेचयेद्वा जलौकाभिः ॥ ५३ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्हृतास्रदोषाणाम् ।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥ ५४ ॥

आनूप और औदक पशुपक्षियोंका सुखोष्ण मांस और पंडोलको उबालकर उनसे कुष्ठको स्वेदन करे फिर साफ करके पोछलेवे पीछे तीक्ष्ण शस्त्रसे रुधिर निकालनेके लिये लेखन करे अथवा सींगी या तुम्बीद्वारा रक्तको निकाले और क्षुद्रकुष्ठमें पछने लगाकर जोकोंसे रुधिरको निकालना चाहिये । कोष्ठके शुद्ध होनेपर और रुधिर तथा दोषोंके निकालनेसे घाव शुद्ध होनेपर जो लेप किये जाते हैं वह शीघ्र लाभदायक होते हैं ॥ ५२–५४ ॥

येषु न शस्त्रं क्रमते स्पर्शेन्द्रियनाशनानि यानि स्युः ।
तेषु निपात्य क्षारं रक्तं दोषं च निःस्राव्य ॥ ५५ ॥
पाषाणकठिनपरुषे सुप्ते कुष्ठे स्थिरे पुराणे च ।
पीतागदस्य कार्यो विषैः प्रदेहोऽगदैश्चानु ॥ ५६ ॥

जिन कुष्ठोंमे शस्त्रका प्रयोग कार्य नहीं कर सकता और जिनमें स्पर्शशक्तिका नाश होजाता है उनमें क्षारके प्रयोगसे रक्त और दोषोंको निकाल देना चाहिये । पत्थरके समान कठोर, परुष, सुप्त स्थिर और पुराने कुष्ठमें रोगीको विषनाशक औषध पिलाकर कुष्ठपर विषैली औषधियोंका लेप करना चाहिये। फिर थोडी देर पीछे उस विषैली औषधको उतारकर विषनाशक लेप करे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

स्तब्धानि सुप्तसुप्तान्यस्वेदनकण्डूलानि कुष्ठानि ।
कूर्चैर्दन्तीत्रिफलाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥ ५७ ॥
जात्यर्कनिम्बकुटजैः पत्रैः शस्त्रैः समुद्रफेनैर्वा ।
घृष्टानि गोमयैर्वा ततः प्रलेपैः प्रदेह्यानि ॥ ५८ ॥

स्तब्ध, अत्यन्तशून्यतायुक्त फैलेहुए स्वेदरहित और खुजलीयुक्त कुष्ठको प्रथम दन्ती, त्रिफला, कनेर, करंजुआ नीमकी छाल, कुडाकी छाल इनकी कूर्चीसे अथवा चमेली, आक, नीम और कुडाके पत्तोंसे अथवा शस्त्रोंसे अथवा समुद्रफेनसे अथवा सूखे गोहेसे घिसकर खुजलावे फिर रोगनाशक लेप करना चाहिये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा।

मारुतकफकुष्ठघ्नं कर्मोक्तं पित्तकुष्ठानाम् ।
कफपित्तरक्तहरणं तिक्तकषायैः प्रशमनञ्च सर्पींषि ॥ ५९ ॥

तिक्तकानि च यच्चान्यद्यद्रक्तपित्तनुत्कर्म ।
बाह्याभ्यन्तरमथ्यं तत्कार्यं पित्तकुष्ठघ्नम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार वातप्रधान कुष्ठ और कफप्रधान कुष्ठकी चिकित्साका क्रम कहागया है। पित्तप्रधान कुष्ठमें कफ पित्त रुधिरको हरनेवाला कर्म करना चाहिये । तिक्तकषाय, तिक्तघृत तथा अन्य रक्तपित्तनाशक कर्म एवं पित्तकुष्ठके नाश करनेवाली उत्तम २ बाह्य और आभ्यंतर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

दोषाधिक्यविभागादित्येतत् कर्म कुष्ठनुत् प्रोक्तम् ।
वक्ष्यामि कुष्ठशमनं प्रायस्त्वग्दोषसामान्यात् ॥ ६१ ॥

वातादि दोषोंकी प्रधानताके अनुसार कुष्ठनाशक क्रिया कही गयी है । सब कुष्ठ त्वचाको ही दूषित करते हैं इसलिये प्रायः त्वचाके दोषकी सब कुष्ठोंमें समानता है । सो अब त्वग्दोषकी समानतासे कुष्ठनाशक प्रयोग वर्णन करते हैं ॥ ६१ ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दार्वीं रसाञ्जनं वा गोमूत्रेण प्रबाधते कुष्ठम् ।
अभया प्रयोजिता वामांसव्योषगुडतैलाः ॥ ६२ ॥

दारूहल्दी अथवा रसौत या हरडोंको गोमूत्रके साथ पीने और लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाता है । इसमें मांस, सोंठ, मिर्च, पीपल गुड और तेलको त्यागदेना चाहिये ॥ ६२ ॥

कुष्ठनाशक अन्य प्रयोग ।

मूलं पटोलस्य तथा गवाक्ष्याः पृथक् पलांशं त्रिफलात्वचश्च ।
स्यात् त्रायमाणा कटुरोहिणी च भागार्द्धिका नागरपादयुक्ता ॥ ६३ ॥
पलं त्वथैकं सह चूर्णितानां जले शृतं दोषहरं पिबेन्ना ।
जीर्णे रसे धन्वमृगव्रजानां पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ ६४ ॥
कुष्ठानि शोफं ग्रहणीप्रदोषमर्शांसि कृच्छ्राणि हलीमकञ्च ।
षड्रात्रयोगेन निहन्ति चैव हृद्बस्तिशूलं विषमज्वरञ्च ॥ ६५ ॥

पटोलकी जड ४ तोला, इन्द्रायणकी जड ४ तोला, हरड २ तोला, बहेडा दो-तोला, आँवले २ तोला, त्रायमाण २ तोला, कुटकी २ तोला, सोंठ एक तोला, इन सबका बारीक चूर्णकर उसमेंसे प्रतिदिन एक एक पल लेकर जलमें औटाकर पीवे । औषधके पचनेपर धन्वदेशज मृगोंके मांसरसके साथ पुराने शालीचावलोंका भात जवोंके सत्तु खावे । इस प्रयोगको छः दिन पर्यंत सेवन करनेसे शोफ, कोढ, ग्रहणी-

दोष, कृच्छ्रसाध्य अर्श, हलीमक, हृदयशूल, वस्तिशूल, और विषमज्वर यह सब नष्ट होते हैं ॥ ६३–६५ ॥

कुष्ठनाशक अन्ययोग।

मुस्तं व्योषं त्रिफला मञ्जिष्ठा दारु पञ्चमूले द्वे।
सप्तच्छदनिम्बत्वक्सविशालश्चित्रको मूर्वा ॥ ६६ ॥
चूर्णं तर्पणभागैर्नवभिः संयोजितं समध्वाज्यम्।
श्रेष्ठं कुष्ठनिबर्हणमेतत् प्रायोगिकं भक्ष्यम् ॥ ६७ ॥
श्वयथुं सपाण्डुरोगं श्वित्रं ग्रहणीप्रदोषमर्शांसि।
ब्रध्नभगन्दरपिडकाः सकण्डुकोठांश्च विनिहन्ति ॥ ६८ ॥

मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, मजीठ, दारुहल्दी, लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, सप्तपर्ण, नीमकी छाल, इन्द्रायणकी जड, चीता और मूर्वा इन सबका चूर्ण समान भाग लेकर नौ भाग शहत और घृत मिलाकर सेवन करे इसके प्रयोगसे कुष्ठ नष्ट होजाता है तथा शोथ, पाण्डुरोग, श्वित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्श, ब्रध्न, भगन्दर, पिडका, खुजली और कोढरोग यह सब नष्ट होते हैं ॥ ६६–६८ ॥

सुप्तकुष्ठनाशक प्रयोग

त्रिफलातिविषाकटुकानिम्बकलिङ्गकावचापटोलानाम्।
मागधिकारजनीद्वयपद्मकमूर्वाविशालानाम् ॥ ६९ ॥
भूनिम्बपलाशानां दद्याद् द्विपलं ततस्त्रिवृद् द्विस्त्रिगुणा।
तस्याश्च पुनर्ब्राह्मी तच्चूर्णं सुप्तिनुत्परमम् ॥ ७० ॥

त्रिफला, अतीस, कुटकी, नीमकी छाल, इन्द्रजौ, वच, पटोलपत्र, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, पद्माक, मूर्वा, इन्द्रायणकी जड, चिरायता और ढाककी छाल यह दो दो पल लेवे, निशोथ चारपल और ब्राह्मी बारह पल लेवे इन सबका चूर्ण करके सेवन करनेसे सुप्तकुष्ठ (त्वचाकी शून्यता) नष्ट होता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मध्वासव।

खदिरसुरदारुसारं श्रपयित्वा तद्रसेन तोयार्थः।
क्षौद्रप्रस्थे कार्यः कार्ये ते चाष्टपलिके च ॥ ७१ ॥
ततश्चायश्चूर्णानामष्टपलं प्रक्षिपेत्तथामूनि।
त्रिफलात्वङ् मरिचं च पत्रं कनकञ्च कर्षांशम् ॥ ७२ ॥

मत्स्यण्डिका मधुसमा तन्मांसमायसे भाण्डे ।
मध्वासवमाचरतः कुष्ठकिलासे शमं याताः ॥ ७३ ॥

खैर और देवदारुका सार लेकर इन्हींके रस या क्वाथमें पकाकर उसमें दो प्रस्थ शहत तथा कत्था आठ पल, देवदारु आठ पल, लोहचूर्ण आठ पल, त्रिफलाकी त्वचा, काली मिर्च, तेजपात और धतूरा एक २ कर्ष और मिसरी शहतके बराबर लेवे । इन सबको मिलाकर एक महीना लोहेके पात्रमें भरकर रखदे इस प्रकार मध्वासव तैयार होता है । इसके सेवनसे कुष्ठ और किलास रोग नष्ट होते हैं ॥ ७१-७३ ॥

कनकबिन्दुअरिष्ट ।

खदिरकषायद्रोणं कुम्भे घृतभाविते समारोप्य ।
द्रव्याणि चूर्णितानि त्वष्टपलिकान्यत्र देयानि ॥ ७४ ॥
त्रिफला व्योषविडङ्गं रजनी मुस्ताटरूषकेन्द्रयवाः ।
सौवर्णत्वक् छिन्ना मासं निदधीत धान्यमध्ये च ॥ ७५ ॥
प्रातः प्रातः पिबतो युक्त्या मासेन कुष्ठहृद्भवति ।
पक्षेणार्शःश्वासभगन्दरं कासकिलदुष्टम् ।
पाण्डुं सवातरक्तं हन्यात्सुप्रमेहशोषांश्च ।
ना भवति कनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनकबिन्दुम् ॥ ७६ ॥

एक द्रोण खैरका क्वाथ लेकर घृतके चिकने घडेमें भरदे फिर उसमें नीचे लिखी औषधियोंका आठ २ पल चूर्ण मिलावे । यथा—हरडे, बहेडे, आँमले, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, हल्दी, नागरमोथा, अडूसा, इन्द्रजौ, चोख, गिलोय और धतूरेकी जडका छिलका मिलाकर उस घडेका मुख बन्द करके घडेको धान्यकी राशीमें गाडदेवे । फिर एक महीनेके अनंतर निकालकर छानलेवे उसमेंसे मात्रानुसार नित्य प्रातःकाल एक महीनापर्यंत पीवे तो महाकुष्ठ दूर हो । एक पक्ष पीनेसे क्षुद्र कुष्ठ दूरहो । और इसके सेवनसे बवासीर, श्वास, भगंदर, खांसी, किलासकुष्ठ, प्रमेह, और शोषरोग दूर होते हैं । तथा इस कनकबिन्दु अरिष्टके पीनेसे मनुष्यका वर्ण सुवर्णके समान होजाता है ॥ ७४-७६ ॥

कुष्ठेष्वनिलकफकृतेष्वेवं पेयास्तथैव पित्तेषु ।
कृतमूत्रक्वाथश्चाप्येष विशेषात्कफकृतेषु ॥ ७७ ॥

वातप्रधानकुष्ठमें कफप्रधानकुष्ठमें और पित्तप्रधानकुष्ठमें इस प्रकारके आसव और अरिष्टोंका प्रयोग करना चाहिये । और कफप्रधान कुष्ठमें तो विशेषकर औषधियोंके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिये ॥ ७७ ॥

श्वित्रकुष्ठनाशक प्रयोग।

त्रिफलासवश्च गौडः सचित्रकः श्वित्ररोगकुष्ठघ्नः ।
क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधुयोगसंयुक्तः ॥ ७८ ॥

त्रिफलेका आसव और गौडी मद्यको चीतेके साथ पीनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है। अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दालचीनी इनके क्वाथमें शहत मिलाकर गौडी मद्यके पीनेसे श्वित्रकुष्ठ दूर होता है ॥ ७८ ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्य।

लघूनि चान्नानि हितानि विद्यात् कुष्ठेषु शाकानि च तिक्तकानि।
भल्लातकैश्च त्रिफलैः सनिम्बैर्युक्तानि चान्नानि घृतानि चव ॥ ७९ ॥
पुराणधान्यान्यथ जाङ्गलानि मांसानि मुद्गाश्च पटोलयुक्ताः ।
शस्ता न गुर्वम्लपयोदधीनि नानूपमत्स्या न गुडास्तिलाश्च ॥ ८० ॥

हलका अन्न, तिक्तशाक, भिलावे, त्रिफला और नीमके साथ सिद्ध कियेहुए अन्न और घृत, पुराने चावल यह सब कुष्ठरोगोंमें हितकारी हैं। भारी, खट्टा अन्न, दूध, दही, आनूपजीवोंका मांस, मछली, गुड और तिल यह सब अहित हैं अर्थात् हानिकारक होते हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

कुष्ठपर लेप।

एला कुष्ठं दार्वी शतपुष्पा चित्रकं विडङ्गञ्च ।
कुष्ठे लेपनमिष्टं रसाञ्जनञ्चाभया चैव ॥ ८१ ॥

इलायची, कूठ, दारुहलदी, सौंफ, चीता, वायविडंग, रसौत और हरड इन सबको गोमूत्रमें रगडकर लेप करनेसे कुष्ठ दूर होता है ॥ ८१ ॥

दूसरा लेप।

चित्रकमेलाबिम्बीं वृषकत्रिवृदर्कनागरकम् ।
चूर्णीकृतमष्टाहं भावयितव्यं पलाशस्य ॥ ८२ ॥
क्षारेण गवां मूत्रस्रुतेन तेनास्य मण्डलान्याशु ।
भिद्यन्ते स विशन्ति च लिप्तान्यर्काभितप्तानि ॥ ८३ ॥

चित्रक, इलायची, कंदूरी, अडूसा, निशोथ, आक और सोंठ इनके चूर्णको आठ दिनतक भावना देकर लेपके योग्य बनालेवे इस लेपको लगाकर सूर्यकी धूपमें बैठ जावे। इस लेपसे मण्डलकुष्ठ शीघ्र विलीन होकर नष्ट होजाता है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

कुष्ठपर अन्य लेप ।

मांसी मरिचं लवणं रजनी तगरं सुधा गृहोद्धूमः ।
मूत्रं पित्तं क्षारः पालाशः कुष्ठनाशनः ॥ ८४ ॥
त्रपुसीसमयश्चूर्ण मण्डलनुच्चित्रकं बृहती ।
गोधारसः सलवणं दारु च मूत्रञ्च मण्डलनुत् ॥ ८५ ॥
कदलीपलाशपाटलिनिचुलक्षाराम्भसा प्रसन्नेन ।
मांसेषु तोयकार्यं कार्यं पिष्टे च किण्वे च ॥ ८६ ॥
तैर्मोदकः सुजातः किण्वैर्जनितप्रलेपनं शस्तम् ।
मण्डलकुष्ठविनाशनमातपसंस्थे क्रिमिघ्नञ्च ॥ ८७ ॥

जटामांसी, मिरच, सेंधानमक, हलदी, तगर, थोहर, गृहधूम, गोमूत्र, पित्त आर ढाकका खार इनका लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाता है । अथवा रांग, सीसा,लोहचूर्ण, चीता और बडी कटेरी इनका लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ रोग दूर होता है । अथवा गोधारस[1], सेंधानमक, दारुहल्दी और गोमूत्र इनका लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ नष्ट होजाताहै । अथवा केला, ढाक, पाढ और निचुल (हिंजल) इनके क्षारके शुद्ध जलमें मांसको पकावे ।फिर उसी जलमें चावलोंको पीसकर उसमें सुराकिण्वको घोलले । यह सब मिलकर मोदकके समान गोलासा बनजायगा । और इसमेंसे जो वह सुराका घोलसा नीचे हो उसको निकालकर लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ दूर होजाता है और लेपकरके धूपमें तपानेसे क्रिमिरोग नष्ट होजाता है ॥ ८४–८७ ॥

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

मुस्तं मदनं त्रिफलाः करञ्ज आरग्वधः कलिङ्गयवाः ।
दार्वी ससप्तपर्णा स्नानं सिद्धार्थकं नाम ॥ ८८ ॥
एष कषायो वमनं विरेचनं वर्णकस्तथोद्धर्षः ।
त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रवाहनः पाण्डुरोगघ्नः ॥ ८९ ॥

नागरमोथा, मैनफल, त्रिफला, लताकरंजका फल, अमलतास, इन्द्रजौ,दारुहलदी, सप्तवर्ण और सफेदसरसों यह कूटकर जलमें उबाले फिर उस जलसे स्नान करनेसे तथा इसी कषायके पीनेसे वमन और विरेचन होकर कुष्ठ नष्ट होजाता है । एवं इन्हीं

---

१ काष्ठगोधा (गोहके आकारकी बूटी) अथवा " ईसपदी " बूटी । २ शराबके "घोल" (खमीर) को सुराकिण्व कहते हैं ।

औषधियोंके कल्कसे उबटन करनेसे त्वचाके दोष, कुष्ठ, सूजन, जखमोंका बहना और पाण्डुरोग दूर होजाते हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

कुष्ठं करञ्जबीजान्येडगजः कुष्ठसूदनो लेपः ।
प्रपुन्नाडबीजसैन्धवरसाञ्जनकपित्थरोध्राश्च ॥ ९० ॥
करवीरमूलकल्कः कुटजकरञ्जयोः फलं त्वचं दार्व्याः ।
सुमनः प्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ।
रोगस्य धातकीनां वत्सकबीजस्य नक्तमालस्य ॥ ९१ ॥
कल्कश्च मालतीनां कुष्ठे सूद्वर्त्तनालेपौ ।
शैरीषीत्वक् पुष्पं कार्पास्या राजवृक्षपत्राणि ।
पिष्टा च काचमाची चतुर्विधः कुष्ठनुल्लेपः ॥ ९२ ॥

अथवा कूठ लताकरंजके बीज पनवाड (चक्रमर्द) के बीज इन सबका लेप करनेसे कुष्ठ रोग दूर होता है। अथवा पनवाडके बीज, सेंधानमक, और रसौत, कैथका छिलका, लोध, कनेरकी जड, कुडाकी छाल, लताकरंजके बीज, दारुहल्दीकी छाल और फल, चमेलीकी कोंपल इनका लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है। लोध, धायके फूल, इन्द्रजौ, करंजुआ और मालतीकी कोंपल इनको पीसकर देहपर मर्दन और लेप करे तो कुष्ठ दूर होता है। एवं सिरसकी छाल, कपासके फूल, अमलतासके पत्ते और मकोह इनका लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर होजाता है। यह चार प्रकारके लेप कुष्ठको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ९०-९२ ॥

कषायादि ८ योग।

दार्व्या रसाञ्जनस्य च निम्बपटोलस्य खदिरसारस्य ।
आरग्वधवृक्षकयोस्त्रिफलायाः सप्तपर्णस्य ॥ ९३ ॥
इति षट् कषाययोगा निर्दिष्टाः सप्तमश्च तिनिशस्य ।
स्नाने पाने च मतास्तथाष्टमश्चास्य सारस्य ॥ ९४ ॥
आलेपनं प्रघर्षणमवचूर्णनमेत एव च कषायाः ।
तैलघृतपाकयोगे चेष्यन्ते कुष्ठशान्त्यर्थम् ॥ ९५ ॥

दारुहलदी और रसौंतका क्काथ, नीमकी छाल, और पटोलकी जडका क्काथ, खैरसारका क्काथ, अमलतास और इंद्रजौका क्काथ, सप्तपर्णका क्काथ इन क्काथोंसे स्नान करनेसे और इन्हीं सबको पीनेसे कुष्ठ दूर होजाता है। तथा आठवां तिनिशका सार

भी उपरोक्त गुण करता है। इन आठों योगोंका क्वाथ, लेप, उबटन और इनके चूर्णका घावोंपर बुरकाना, (छिडकना) कुष्ठोंको नाश करता है। इन्हीं कषायोंमें सिद्ध तेल और घृत भी कुष्ठको दूर करता है ॥ ९३-९५ ॥

कुष्ठपर अन्यप्रयोग।

त्रिफला निम्बपटोलमञ्जिष्ठा रोहिणी वचा रजनी।
एष कषायोऽभ्यस्तो हिनस्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ ९६ ॥
एतैरेव च सर्पिः सिद्धं वातोल्बणं जयति कुष्ठम्।
एष च कल्पो दृष्टः खदिरासनदारुनिम्बानाम् ॥ ९७ ॥

त्रिफला, नीम, पटोलकी जड, मजीठ, कुटकी, वच और हल्दीका क्वाथ पीनेका अभ्यास करनेसे कफपित्तसे उत्पन्न हुआ कुष्ठ दूर होजाता है। इसी क्वाथमें सिद्ध किया घृत वातप्रधान कुष्ठको जीतता है। और इसी प्रकार खैर, विजैसार, दारुहलदी और नीमका क्वाथ भी उपरोक्त प्रकारके गुण करताहै ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अन्यप्रयोग।

कुष्ठार्कतुत्थकट्फलमूलकबीजानि रोहिणी कटुका।
कटुजफलोत्पलमुस्तं बृहतीकरवीरकाशीशम् ॥ ९८ ॥
एडगजनिम्बपाठा दुरालभा चित्रको विडङ्गश्च।
तिक्तेक्ष्वाकुबीजं कम्पिल्यकसर्षपवचा दार्वी ॥ ९९ ॥
एतैस्तैलं सिद्धं कुष्ठघ्नं योग एष वा लेपः।
तन्मर्दनं प्रघर्षणमवचूर्णनमेष एवेष्टः ॥ १०० ॥

कूठ, आककी जड, नीलाथोथा, कायफल, मूलीके बीज, कुटकी, इन्द्रजौ, नीलकमल, नागरमोथा, बडीकटेरी, कनेर, कसीस, पनवाड, नीमकी छाल, पाठा, जवासा, चित्रक, वायविडंग, कडवी तुंबीके बीज, कबीला, सरसों, वच इनके क्वाथमें सिद्ध कियाहुआ तेल कुष्ठको दूर करता है। तथा इन्हीं औषधियोंके कल्कका लेप, मालिश, उबटन और इन्हींके चूर्णोंको घावपर छिडकना भी कुष्ठको नाश करताहै ॥ ९८-१०० ॥

कनेरका तैल।

श्वेतकरवीररसो गोमूत्रं चित्रको विडङ्गश्च।
कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं सम्मतो भिषजाम् ॥ १०१ ॥

सफेद कनेरका रस, गोमूत्र, चीता और वायविडंगमें सिद्ध किया तेल कुष्ठको दूर करताहै। यह सब वैद्योंका सम्मत योग है ॥ १०१ ॥

अन्यप्रयोग।

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वग्वत्सकविडङ्गश्च।
कुष्ठार्कमलसर्षपशिग्रुत्वग्रोहिणी कटुका।
एतैस्तैलं साध्यं कल्कैः पादांशिकैर्गवां मूत्रम्।
दत्त्वा तैलचतुर्गुणमभ्यङ्गः कुष्ठकण्डूघ्नः॥ १०२॥

सफेद कनेरके पत्ते और जडकी छाल, इन्द्रजौ, वायविडंग, कूठ, आककी जड, सरसों, सुहांजनेकी छाल और कुटकी इनके कल्कमें चौगुना तेल और तेलसे चौगुना गोमूत्र मिलाकर तेल सिद्ध करे। फिर इस तैलकी मालिश करनेसे कोढ और खुजली दूर होजाती है॥ १०२॥

अन्यतैल।

तिक्तेक्ष्वाकुबीजं द्वे तुत्थे रोचना हरिद्रे द्वे।
बृहतीफलमेरण्डः सविशालश्चित्रको मूर्वा॥ १०३॥
काशीशहिंगुशिग्रुत्र्यूषणसुरदारुतुम्बरुविडङ्गम्।
लाङ्गलकी कुटजत्वक्कटुकाख्या रोहिणी चैव॥ १०४॥
सर्षपकल्कैरेतैर्मूत्रे चतुर्गुणं साध्यम्।
कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुतकफघ्नं तैलम्॥ १०५॥

कडवी तुंबीके बीज, दोनों प्रकारका तुत्थ (तूतिया) गोरोचन, दोनों हलदी, कटेरीके फल, एरंडकी जड, चीता, मरोडफली, कसीस, इन्द्रायणकी जड, हींग, सुहांजना, त्रिकुटा, देवदारु, धनियां, वायविडंग, लांगलीकंद, कुडाकी छाल, कुटकी और सरसोंके कल्कसे ४ गुना कडुवा तेल और तेलसे ४ गुना गोमूत्र डालकर तेलको सिद्ध करले। इस तेलकी मालिश करनेसे खुजली, कोढ, वात और कफ नष्ट होते हैं॥ १०३-१०५॥

कनकक्षीर तैल।

कनकक्षीरी शैला भार्ङ्गी दन्तीफलानि मूलञ्च।
जातीफलानि प्रवालसर्षपलशुनविडङ्गं करञ्जत्वक्॥ १०६॥
सप्तच्छदार्कपल्लवमूलत्वङ्निम्बाचित्रकास्फोताः।
गुञ्जैरण्डबृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि॥ १०७॥
कुष्ठं पाठा मुस्तं तुम्बुरु मूर्वा वचा सषड्ग्रन्था।
एडगजकुटजशिग्रुत्र्यूषणभल्लातकक्षवकाः॥ १०८॥

हरितालमवाक्पुष्पी तुत्थं कम्पिल्लको मृतासङ्गः।
सौराष्ट्री कासीसं दार्वी त्वक्सर्जिका लवणम् ॥ १०९ ॥
कल्कैरेतैस्तैलं करवीरकमूलकपल्लवकषाये।
सार्षपमथवा तैलं गोमूत्रचतुर्गुणं साध्यम् ॥ ११० ॥
स्थाप्यं कटुकालाबुनि तत्सिद्धं तेनास्य मण्डलान्याशु।
भिन्द्याद्भिषगभ्यङ्गात् क्रिमींश्च कण्डूं विनिहन्यात् ॥ १११ ॥

सत्यानाशी, मनसिल, भारंगी, बुलबुले (पहाडी जमालगोटे), दन्तीकी जड, जायफल, चमेलीके पत्ते, सफेद सरसों, लहसुन, वायविडंग, करंजकी छाल, सतवन, आकके पत्ते, जड और छाल, नीमकी छाल, चीता, कोयल, रत्तक, एरंडकी जड, बडी कटेरी, मूली, सुरसातुलसी, अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ, पाठ, नागरमोथा, तुंबुरू, मूर्वा, कचूर, वच, पनवाड, कुडा, सुहांजना, त्रिकुटा, भिलावा, क्षवक तुलसी, हरताल, सौंफ, नीलामोथा, कमीला, मुर्दासिंग, सोरठमिट्टी, सीसा, दारुहलदीकी छाल, सज्जीखार, सेंधानमक, इनके कल्क और कनेरकी जड तथा पत्तोंके क्काथमें सरसोंका तैल और उससे चौगुना गोमूत्र मिलाकर तैल सिद्धकरे। इस तैलको कौडे तुंबेमें भरकर रखदेवे। इस तैलके लगानेसे मण्डलकुष्ठ, क्रिमिरोग, खुजली, तथा सब प्रकारके कुष्ठ शान्त होजाते हैं ॥ १०६-१११ ॥

सिध्मपर लेप।

कुष्ठं तमालपत्रं मरिचं समनःशिलं सकाशीशम्।
तैलेन युक्तमुचितं सप्ताहं भाजने ताम्रे।
तेनालिप्तं सिध्मं सप्ताहाद्व्येति तिष्ठतो घर्मे।
मासान्तरं किलासं स्नानं मुक्त्वा विशुद्धतनोः ॥ ११२ ॥

कूठ, तमालपत्र, कालीमिर्च, मनसिल, कसीस इन सबका चूर्ण बनाकर कडुवे तेलमें मिलाकर सात दिनतक तांबेके पात्रमें रखदेवे, फिर इसको लगाकर धूपमें बैठे इस प्रकार ७ दिन करनेसे सिध्मकुष्ठ दूर होजाता है। तथा शुद्ध देहवाला मनुष्य इसको एक महीने तक लगावे तो किलासकुष्ठ नष्ट होजाता है। परन्तु इसके सेवनमें स्नान नहीं करना चाहिये ॥ ११२ ॥

अन्य तैल।

सर्षपकरञ्जकोशातकानि तैलान्यथेङ्गुदीनाञ्च।
कुष्ठेषु हितान्याहुस्तैलं यच्चापि खदिरस्य तैलानि ॥ ११३ ॥

सरसों, करंजुआ, कडवी तोरी, गोंदनी और खैर इन सबके अलग २ सिद्धकिये तैल कुष्ठको दूर करते हैं ॥ ११३ ॥

विपादिकाका यत्न ।

जीवन्ती मञ्जिष्ठा दार्वी काम्पिल्लकस्तथा तुत्थम् ।
एष घृततैलपाकः सिद्धः सिद्धे च सर्जरसः क्षेप्यः ॥ ११४ ॥
समधूच्छिष्टो विपादिका नश्यति व्याप्ता चर्मैककुष्ठम् ।
किटिभं कुष्ठं शाम्यत्यलसकञ्च विपादिकायाम् ॥ ११५ ॥

जीवन्ती, मंजीठ, दारुहल्दी, कमीला, नीला मोथा, इनमें घृत और तेलको एक-साथ पाक करे पकते समय इसमें राल और मोम मिलादे इसको विपादिका (बिवाई) में भरदेनेसे बिवाई नष्ट होजाती हैं एवं एककुष्ठ, किटिभकुष्ठ और अलसक सब दूर होजाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

मण्डलकुष्ठपर लेप ।

किण्वं वराहरुधिरं पृथ्वीका सैन्धवञ्च लेपः स्यात् ।
लेपो योज्यः कुस्तुम्बुरूणि कुष्ठञ्च मण्डलनुत् ॥ ११६ ॥
पूतीका दारु जटिला पक्वसुरा क्षौद्रमुद्गपर्ण्यौ च ।
लेपः सकाकनासो मण्डलकुष्ठापहः सिद्धः ॥ ११७ ॥

किण्व (सुराका खमीर), सूकरका रक्त, काला जीरा, सेंधानमक, इनका लेप करनेसे तथा इसीमें धनियां और कूठ मिलाकर लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ नष्ट होजाता है । अथवा करंजुआ, देवदारु, जटामांसी, सुरा, शहत, मुद्गपर्णी और काकनासा इनका लेप भी मण्डलकुष्ठको नष्ट करता है । यह सिद्धयोग है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

छः लेप ।

चित्रकशोभाञ्जनकौ गुडूच्यपामार्गदेवदारूणि ।
खदिरो धवश्च लेपः श्यामा दन्ती द्रवन्ती च ॥ ११८ ॥
लाक्षा रसाञ्जनैला पुनर्नवा चेति कुष्ठिनो लेपाः ।
दधिमण्डयुताः सर्वे देयाः षण्मारुतकफघ्नाः ॥ ११९ ॥

चित्रक और सुहांजना, गिलोय, अपामार्ग, देवदारु, खैर, धव, बावची, दन्ती और द्रवन्ती, लाख, रसौत और इलायची तथा पुनर्नवा; इन छः योगोंमेंसे किसी एकको दधिमण्डमें रगडकर लेप करनेसे कुष्ठ तथा वातकफ नष्ट होते हैं ११८॥११९॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्षपैः क्रिमिघ्नैश्च ।
क्रिमिकुष्ठमण्डलाख्यं दद्रूकुष्ठञ्च शममुपैति ॥ १२० ॥
एडगजः सर्जरसो मूलकबीजञ्च सिध्मकुष्ठानाम् ।
काञ्जिकयुक्तं तु पृथङ्मतमिदमुद्वर्त्तनं क्रमशो लेपः ॥ १२१ ॥

पनवाडके बीज, कूठ, सेंधानमक, सौवीरक (कांजी), सरसों और बायबिडंग इनका लेप करनेसे क्रिमिकुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दद्रुकुष्ठ नष्ट होते हैं। अथवा पनवाडके बीज, राल, मूलीके बीज इनको कांजीमें घोटकर किसीके मतमें उबटना तथा किसीके मतमें क्रमपूर्वक लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ दूर होजाता है ॥ १२० ॥ १२१ ॥

अन्य प्रयोग।

वासा त्रिफला पाने स्नाने चोद्वर्तने प्रलेपे च ।
बृहती सेव्यपटोलाः सशारिवा रोहिणी चैव ॥ १२२ ॥
खदिरावघातककुभा रोहीतककुटजधवनिम्बाः ।
सप्तच्छदकरवीराः शस्यन्ते स्नानपानेषु ॥ १२३ ॥

बांसा (अडूसा) और त्रिफलाको पीने, स्नान करने, उबटने और लेपमें प्रयोग करनेसे कुष्ठ दूर त है। अथवा बडी कटेरी, खस, पटोलपत्र, सारिवा, कुटकी, खैरसार, अर्जुन, रोहिततृण, कुडा, धव, नीम, सप्तपर्ण, कनेर इनका स्नान तथा पीनेमें प्रयोग करनेसे कुष्ठ शान्त होते हैं ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अभ्यंग प्रयोग।

जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचन्दनं मृणालानि ।
भागोत्तराणि सिद्धं प्रलेपनं पित्तकफकुष्ठे ॥ १२४ ॥
यष्ट्याह्वरोध्रपद्मकपटोलपिचुमर्दचन्दनरसाश्च ।
स्नाने पाने च हिताः सुशीतलाः पित्तकुष्ठेभ्यः ॥ १२५ ॥
आलेपनं प्रियङ्गुर्हरेणुका वत्सकस्य च फलानि ।
सातिविषा च सेव्या सचन्दना रोहिणी कटुका ॥ १२६ ॥
तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यङ्गो दह्यमानकुष्ठेषु ।
तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्पलयुतैश्चाभ्यङ्गः ॥ १२७ ॥

नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, नागकेशर, तेजपत्र, केवटीमोथा, लालचंदन, भिस इनको क्रमसे उत्तरोत्तर एक २ भाग अधिक लेवे फिर लेप करे तो पित्तकफ कुष्ठ

दूर होता है। अथवा मुलैठी, लोध, पद्माख, पटोलपत्र, नीमकी छाल और रक्तचन्दन इनका क्वाथ शीतल करके स्नान और पीनेमें देनेसे पित्तप्रधान कुष्ठ दूर होता है। अथवा प्रियंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतीस, खस, लालचन्दन और कुटकी इनका लेप। अथवा तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किया अथवा सौबार वा सहस्रबार धोया घृतका लेप-करनेसे दाहयुक्त पित्तप्रधान कुष्ठ दूर होता है। इसी प्रकार रक्तचन्दन, मुलहठी, प्रपौण्डरीक और नील कमल इनसे सिद्ध कियेहुए तैलके लगानेसे भी दाहयुक्त कुष्ठ शान्त होता है॥ १२४-१२७ ॥

घृतप्रयोग।

क्लेदे प्रपतति चाङ्गे दाहे विस्फोटके सचर्मदले।
शीताः प्रदेहसेका व्यधनविरेचकौ घृतं तिक्तम् ॥ १२८ ॥
खदिरघृतं निम्बघृतं दार्वीघृतमुत्तमं पटोलघृतम् ।
कुष्ठेषु रक्तपित्तप्रबलेषु भिषग्जितं सिद्धम् ॥ १२९ ॥

कुष्ठमें स्राव अथवा किसी अंगके गिरनेसे, विस्फोटक वा चर्मदलमें शीतल लेप, सेक, रक्त निकालना, विरेचन और तिक्तघृत, खादिरघृत, निम्बघृत, दार्वीघृत और पटोलघृतका प्रयोग यह सब हितकारी होते हैं। जिनमें रक्तपित्त प्रबल हैं ये ही प्रयोग उन कुष्ठोंमें भी हितकारक हैं॥ १२८॥ १२९ ॥

अन्यप्रयोग।

त्रिफलात्वचोऽर्द्धपलिकाः पटोलपत्रञ्च कार्षिकाः शेषाः।
कटुरोहिणी सनिम्बा यष्ट्याह्वा त्रायमाणा च ॥ १३० ॥
एष कषायः साध्यो दत्त्वा द्विपलं मसूराणाम् ।
सलिलाढकेऽष्टभागे शेषे पूतो रसो ग्राह्यः।
ते च कषायाष्टपले चतुष्पलं सर्पिषश्च पक्तव्यम् ॥ १३१ ॥
यावत् स्यादष्टपलं शेषे पेयं ततः कोष्णम् ।
तद्वातपित्तकुष्ठवीसर्पवातशोणितं प्रबलम् ॥ १३२ ॥
ज्वरदाहगुल्मविद्रधिविभ्रमविस्फोटकान् हन्ति ॥ १३३ ॥

त्रिफलेका छिलका दो तोला, पटोलपत्र दो तोला, कुटकी, नीमकी छाल, मुलहठी, त्रायमाण यह प्रत्येक एक २ तोला, तुषरहित मसूर आठ तोला इन सबको चार सेर पक्के पानीमें पकावे। जब आधसेर बाकी रहे तो छान ले। इस क्वाथमें

चार पल घृत मिलाकर पकावे जब आठ पल शेष रहे तब शीत गरम पीवे। इसके पीनेसे वातपित्तप्रधान कुष्ठ, विसर्प, प्रबल वातरक्त, ज्वर, दाह, गुल्म, विद्रधि, विभ्रम, विस्फोटक यह सब दूर होते हैं ॥ १३०-१३३ ॥

षट्पलघृत।

निम्बपटोले दार्वीं दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम्।
कुर्यादर्द्धपलांशं पर्पटकं त्रायमाणाञ्च ॥ १३४ ॥
सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत् पूते।
चन्दनकिराततिक्तकमागधिकां त्रायमाणाञ्च ॥ १३५ ॥
मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्वार्द्धकार्षिकान् भागान्।
नवसर्पिषश्च षट्पलमेतत् सिद्धं घृतं पेयम् ॥ १३६ ॥
कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपाण्ड्वामयश्वयथुहारि।
वीसर्पपिडकपामाकण्डूमदगण्डनुत्तिक्तम् ॥ १३७ ॥

नीम, पटोलपत्र, दारुहलदी, जवासा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापडा और त्रायमाण यह दो दो तोला लेकर एक आढक पानीमें पकावे। जब आठवां भाग शेष रहे तब उतारकर छान ले। इसमे लालचन्दन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा, मोथा इनको छः छः मासा लेकर कूट छानकर मिलावे और इसमें चौबीस तोला घृत मिलाकर सिद्ध करके इस घृतको योग्यमात्रासे पीवे तो कुष्ठज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पांडुरोग, सूजन, विसर्प, पिडिका, पामा, कण्डू, मद तथा गलगण्ड यह सब नष्ट होजाते हैं ॥ १३४-१३७ ॥

महातिक्तघृत।

सप्तच्छदं प्रतिविषं शम्पाकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्।
मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥ १३८ ॥
धन्वयवासं चन्दनमुपकुल्यां पद्मकं रजन्यौ च।
षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं शारिवे चोभे ॥ १३९ ॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतं किराततिक्तञ्च।
कल्कान् कुर्य्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वां त्रायमाणाञ्च ॥ १४० ॥
कल्कस्य चतुर्भागे जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम्।
द्विगुणो घृतात् प्रदेयस्तत् सर्पिः पाययेत् सिद्धम् ॥ १४१ ॥

कुष्ठानि रक्तपित्तप्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि।
वीसर्परक्तपित्तवातासृक्पाण्डुरोगञ्च ॥ १४२ ॥
विस्फोटकान् सपामासुन्मादं कामलां ज ं कण्डूम्।
हृद्रोगं गुल्मपिडका असृग्दरगण्डमालाञ्च ॥ १४३ ॥
हन्यादेतत् सर्पिः पीतं काले यथाबलं सद्यः।
योगशतैरप्यजितान् महाविकारान् महातिक्तम् ॥ १४४ ॥

सप्तपर्ण (सतोना), अतीस, अमलतास, कुटकी, पाढ, मोथा, त्रिफला, पटोलपत्र, नीम, पित्तपापडा, जवासा, लाल चंदन, पीपल, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, वच, इन्द्रायणकी जड, शतावर, दोनों शारिवा, इन्द्रजौ, अडूसा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलैठी और त्रायमाण इनका कल्क करे और कल्कसे चौगुना घृत, घृतसे अठगुना जल, घृतसे दूना आंवलेका रस इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस घृतके पान करनेसे प्रबल कुष्ठ, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, खाज, हृद्रोग, गुल्म, पिडका, रक्तप्रदर और गण्डमाला यह सब रोग शीघ्र दूर होजाते हैं। यह घृत बल और कालके अनुसार पान कियाजाय तो जो रोग अनेक प्रयोगोंसे भी शांत नहीं हुएहों वे इस महातिक्त घृतसे शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ १३८–१४४ ॥

दोषे हृतेऽपनीते रक्ते बाह्यान्तरे कृते शमने।
स्नेहे च कालयुक्ते न कुष्ठमनुवर्तते साध्यम् ॥ १४५ ॥

दोषोंके दूर होनेसे, बिगडेहुए रक्तके शिरावेधन (फस्त) द्वारा निकाल देनेसे बाह्य और आभ्यंतर दोष शमन होनेसे तथा उचितकालमें स्नेह प्रयोगसे जो साध्य कुष्ठ शान्त होजाता है वह फिर प्रगट नहीं होता है ॥ १४५ ॥

महाखदिरघृत।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपाशणयोस्तुले।
तुलार्द्धाः सर्व एवै ते करञ्जारिष्टवेतसाः।
पर्पटः कुटजश्चैव वृषः कृमिहरस्तथा ॥ १४६ ॥
हारिद्रौ कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत्।
सप्तपर्णश्च सक्षुण्णा दशद्रोणेषु वारिणः ॥ १४७ ॥
धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत्।

अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ १४८ ॥
महातिक्तककल्कैस्तु यथोक्तैः पलसम्मितैः ।
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गानि सेवनात् ।
महाखदिरमित्येतत् परं कुष्ठविकारनुत् ॥ १४९ ॥

खैरकी लकडी ५०० पल, शीशम और बिजैसार एक एक सौ पल, करंजुआ, नीमकी छाल, वेतस, पित्तपापडा, कुड़ा, अडूसा, बायविडंग, दोनों हलदी, अमलतास, गिलोय, त्रिफला, निशोथ, सप्तपर्ण यह सब ५० पल इन सबको दश द्रोण जलमें पकावे जब अष्टमांश शेष रहे उतारकर छानले । फिर इसमें इसके बराबर आंवलेका रस और एक आढक घृत तथा महातिक्त घृतमें कहेहुए सब द्रव्य एकएक पल लेकर उसमें मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतको पीने और अभ्यंगमें सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ दूर होते हैं । यह महाखदिर घृत कुष्ठनाशक परम उत्तम योग है ॥ १४६–१४९ ॥

क्रिमिनाशक प्रयोग ।

प्रपतत्सु लसीकाप्रस्रुतेषु गात्रेषु जन्तुजग्धेषु ।
मूत्रं निम्बविडङ्गे स्नानं पानं प्रदेहश्च ॥ १५० ॥
वृषकुटजसप्तपर्णाः करवीरकरञ्जनिंबाश्च ।
स्नाने पाने लेपे क्रिमिकुष्ठनुदः सगोमूत्राः ॥ १५१ ॥
पानाहारविधाने प्रसेचने धूपने प्रदेहे च ।
क्रिमिनाशनं विडङ्गं विशिष्यते कुष्ठहृत् खदिरः ॥ १५२ ॥

यदि कोई अंगावयव गलकर गिरजाय या शरीरमेंसे लसीका निकलतीहो अथवा कीडे पडगये हों तो गोमूत्र, बायविडंग और नीम इनमेंसे किसी एकको या सबको मिलाकर क्वाथ करके पीने और स्नान करनेमें प्रयोग अथवा लेप करे । या अडूसा, कुडा, सप्तपर्ण, कनेर, कंजा, नीम इनको गोमूत्रमें पकाकर स्नान, पान और लेप करनेसे क्रिमिकुष्ठ नष्ट होजाता है । बायविडंग और खैरको खाने, पीने, प्रसेक, धूपन और प्रदेहमें प्रयोग करना विशेषतासे कुष्ठ नाश करता है ॥ १५०–१५२ ॥

अन्य प्रयोग ।

एडगजः सविडंगो मूलान्यारग्वधस्य कुष्ठानाम् ।
उद्धूलनं श्वदन्ता गोश्ववराहोष्ट्रदन्ताश्च ॥ १५३ ॥

एडगजः सविडंगो रजनीद्वयराजवृक्षमूलञ्च ।
कुष्ठोद्दालनमग्र्यं सपिप्पलीपाकलं योज्यम् ॥ १५४ ॥

पनवाडके बीज, बायविडंग, अमलतासकी जड तथा कुत्ता, गौ, घोडा, सूअर और ऊंट इनके दांतोंका चूर्ण कर कुष्ठपर बुरकाना अथवा पनवाडके बीज, बायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अमलतासकी जड, पीपल और पाटला इनको पीसकर कुष्ठोंपर बुरकाना या लेप अथवा उबटन करना कुष्ठोंको दूर करता है १५३॥१५४॥

श्वित्रकुष्ठपर योग।

श्वित्राणां सविशेषं प्रयोक्तव्यं सर्वतो विशुद्धानाम् ।
श्वित्रे स्रंसनमग्र्यं मलपूरस इष्यते सगुडः ॥ १५५ ॥
तं पीत्वा सुस्निग्धो यथाबलं सूर्य्यपादसन्तापम् ।
सेवेत विरिक्तश्च त्र्यहं पिपासुः पिबेत् पेयाम् ॥ १५६ ॥
श्वित्रेऽङ्गे ये स्फोटा जायन्ते कण्टकेन तान् भिन्द्यात् ।
स्फोटेषु विस्रुतेषु प्रातः प्रातः पिबेत् पक्वम् ॥ १५७ ॥
मलपुमशनं प्रियंगुं शतपुष्पां चाम्भसा समुत्क्वाथ्य ।
पालाशं वा क्षारं यथाबलं फाणितोपेतम् ॥ १५८ ॥
यच्चान्यत् कुष्ठघ्नं श्वित्राणां सर्वमेव तच्छस्तम् ।
खदिरोदकसंयुक्तं खदिरोदकपानमग्र्यं हि ॥ १५९ ॥
समनःशिलं विडंगं कासीसं रोचनां कनकपुष्पीम् ।
श्वित्राणां प्रशमार्थं ससैन्धवं लेपनं दद्यात् ॥ १६० ॥

श्वित्रकुष्ठियोंको सब प्रकार संशोधनादिसे शुद्ध करके फिर औषध प्रयोग करे । श्वित्रकुष्ठमें कटूमरका रस और गुड मिलाकर विरेचन कराना विशेष हितकारी होताहै । इस रसको पीकर देहपर कुष्ठनाशक तैलको मलकर फिर जितनी देर सहसके उतनी देर धूपमें बैठना चाहिये । विरेचनके अनन्तर तीन दिनतक पेयाका पान करना चाहिये । श्वित्रकुष्ठमें जो फुन्सियां होजायँ उनको कांटोंसे वेधन करके और उनमेंसे पीव निकाल डाले और प्रतिदिन प्रातःकाल कटूमर, विजैसार, प्रियंगु और सौंफका क्वाथ करके पीवे अथवा ढाकके क्षारको बलके अनुसार गुडकी राबमें मिलाकर पीवे। अथवा जो और भी कुष्ठनाशक प्रयोग कथन किये हैं वह सब श्वित्रकुष्ठमें उपयोगी हैं। विशेष करके खैरके क्वाथके साथ लेप वा खैरके क्वाथादि पीना श्वित्र-

कुष्ठमें विशेष हितकारी होता है। और मनसिल,बायविडंग, कसीस, गोरोचन, अमलतास और सेंधानमक इनका लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होजाता है ॥१५९-१६०

कुष्ठपर अन्य लेप।

कदलीक्षारयुतं वा खदिरास्थिदग्धं गवां मूत्रेण युक्तम्।
हस्तिमदाध्युषितं वा मालत्याक्षारकक्षारम् ॥ १६१ ॥
नीलोत्पलं सकुष्ठं ससैन्धवं हस्तिमूत्रपिष्टं वा।
मूलकबीजोऽवल्गुजलेपः पिष्टो गवां मूत्रे ॥ १६२ ॥
काकोदुम्बरिकावासावल्गुजचित्रकौ गवां मूत्रे।
पिष्टा मनःशिला वा संयुक्ता बर्हिपित्तेन ॥ १६३ ॥
लेपः किलासहन्ता मूलान्यावल्गुजानि लाक्षा च।
गोमूत्रमञ्जने द्वे पिप्पल्यः काललोहरजः ॥ १६४ ॥

केलेका खार वा खैरकी लकडीका खार, गौके मूत्र (मक्खन) में मिलाकर कुष्ठपर लेप लगावे अथवा मालतीके खारको हाथीके मदके जलमें मिलाकर लेप करे अथवा नील कमल, कूठ, सेंधानमक इनको हाथीके मूत्रमें पीसकर लेप करे अथवा मूलीके बीज और बावचीबीजका गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है। अथवा कठूमर, अडूसा, बावची, चीता इनको गौके मूत्रमें रगडकर लेप करे। अथवा मनसिलको मोरके पित्तमें रगड लेप करे तो कुष्ठ दूर होता है। बावचीकी जड,लाख, गोमूत्र, मूर्वा, रसौत, पीपल और कान्तिसार लोहका चूर्ण इनका लेप करे तो किलासकुष्ठ नष्ट होता है ॥ १६१–१६४ ॥

शुद्ध्या शोणितमोक्षैर्विरूक्षणैर्भक्षणैश्च सक्तूनाम्।
श्वित्रं कस्यचिदेव प्रशाम्यति क्षीणपापस्य ॥ १६५ ॥

जिस मनुष्यके पाप क्षीण होजाते हैं उसका श्वित्रकुष्ठ संशोधन, रक्तमोक्षण, विरूक्षण तथा सत्तुओंके सेवन करनेसे ही दूर होजाता है ॥ १६५ ॥

श्वित्रकुष्ठके भेद।

दारुणं वाऽरुणं श्वित्रं किलासं नामभिस्त्रिभिः।
विज्ञेयं त्रिविधं तच्च त्रिदोषे प्रायशश्च तत् ॥ १६६ ॥
दोषे रक्ताश्रिते रक्तं ताम्रं मांससमाश्रिते।
श्वैत्यं मेदःश्रितं श्वित्रं गुरुतश्चोत्तरोत्तरम् ॥ १६७ ॥

श्वित्रकुष्ठ दारुण अरुण और किलास इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। और यह कुष्ठ त्रिदोषाश्रित है। दोष रक्ताश्रित होनेपर श्वित्रका वर्ण लाल होता है,मांसाश्रित होनेपर ताम्रवर्ण और मेदाश्रित होनेपर श्वेतवर्ण होजाता है। इन तीनोंमें लालसे ताम्रवर्ण और ताम्रवर्णसे श्वेतवर्ण गुरु होता है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

श्वित्रका असाध्यत्व।

यत् परस्परतो भिन्नं बहु यद्रक्तलोमवत्।
यच्च वर्षगणोत्पन्नं तत् श्वित्रं नैव सिद्ध्यति ॥ १६८ ॥

जो श्वित्र परस्पर भिन्न २ हों और जिसका वर्ण अधिक लाल हो, जिसमें बहुत रोम हों और जो बहुत दिनोंका पुराना हो वह श्वेतकुष्ठ असाध्य होता है ॥१६८॥

किलासकी उत्पत्तिके कारण।

वचांस्यतथ्यानि कृतघ्नभावो निन्दा सुराणां गुरुधर्षणञ्च।
पापक्रिया पूर्वकृतञ्च कर्म हेतुः किलासस्य विरोधि चान्नम्॥ १६९॥

झूठ बोलनेसे, कृतघ्नतासे, देवताओंकी निन्दा करनेसे, गुरुजनोंका अपमान करनेसे, इस जन्मके अथवा पूर्वजन्मके पापकर्मसे और विरुद्ध भोजन करनेसे किलास कुष्ठ उत्पन्न होता है ॥ १६९ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र—हेतुर्द्रव्यो लिङ्गं समासतो दोषनिर्देशात्।
साध्यासाध्यं कृच्छ्रं कुष्ठापहाश्च ये योगाः ॥ १७० ॥
सिद्धाः किलासहेतुर्लिंगं गुरुलाघवं शान्तिः।
इति संग्रहः प्रणीतो महर्षिणा कुष्ठनाशनेऽध्याये।
स्मृतिबुद्धिवर्द्धनार्थं शिष्याय हुताशवेशाय ॥ १७१ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सि० कुष्ठचिकित्सितं नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भगवान् पुनर्वसुजीने इस कुष्ठचिकित्सित अध्यायमें कुष्ठोंके हेतु, द्रव्य, लक्षण, दोषनिर्देशका संक्षेपसे वर्णन, साध्य, असाध्य और कष्टसाध्यके लक्षण, कुष्ठनाशक सिद्ध प्रयोग, किलासके हेतु, लक्षण, गुरुता, लाघवता, चिकित्सा अपने शिष्य अग्निवेशकी स्मृति और बुद्धि बढानेके लिये कहे हैं ॥ १७० ॥ १७१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याल्यभाषाटीकायां कुष्ठचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः।



अथातो राजयक्ष्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम राजयक्ष्मचिकित्सितनामक अध्यायका वर्णन करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे॥

राजयक्ष्माके विषयमें प्राचीन इतिहास।

दिवौकसां कथयतामृषिभिर्वै श्रुता कथा।
कामव्यसनसंयुक्ता पौराणी शशिनं प्रति॥ १॥
रोहिण्यामतिसक्तस्य शरीरं नानुरक्षतः।
आजगामाल्पतामिन्दोर्देहः स्नेहपरिक्षयात्॥ २॥
दुहितॄणामसम्भोगाच्छेषाणाञ्च प्रजापतेः।
क्रोधो निःश्वासरूपेण मूर्तिमान्निःसृतो मुखात्॥ ३॥
प्रजापतेर्हि दुहितॄरष्टाविंशतिरंशुमान्।
भार्यार्थं प्रतिजग्राह न च सर्वास्ववर्तत॥ ४॥
गुरुणा तमवध्यातं भार्यास्वसमवर्तिनम्।
रजोऽन्धमबलं दीनं यक्ष्मा शशिनमाविशत्॥ ५॥

ऋषियोंने देवताओंको इस प्रकार चन्द्रमाके विषयमें पौराणिक कामकथा कहते हुए सुना कि एक समय चन्द्रमा रोहिणीपर अत्यन्त आसक्त होगये थे और अपने शरीर तथा आरोग्यतापर कोई ध्यान न देकर उसीमें रत रहते थे इसलिये शरीरका स्नेह क्षीण होनेसे चन्द्रमाका शरीर बहुत कृश होगया। केवल रोहिणीमें ही चन्द्रमा आसक्त था इसलिये दक्षप्रजापतिकी शेषकन्याओंको संभोगसे वंचित रहना पडता था यह वृत्तान्त सुनकर दक्षके मुखसे निश्वासरूपसे मूर्तिमान् क्रोध प्रगट हुआ, क्योंकि, दक्षकी २८ कन्या चन्द्रमाने स्त्रीभावके लिये ग्रहण की थीं परन्तु सिवाय रोहिणीसे वह और किसीसे स्त्रीभाव नहीं रखता था। इसलिये रजोगुणसे अन्धहुए सब भार्याओंसे समव्यवहार न करनेवाले निर्बल कृश शरीर चन्द्रमाके शरीरमें दक्षके यक्ष्मारोगका प्रवेश हुआ॥ १-५॥

सोऽभिभूतोऽतिगुरुणा गुरुक्रोधेन निष्प्रभः।
देवदेवर्षिसहितो जगाम शरणं गुरुम् ॥ ६ ॥
अथ चन्द्रमसः शुद्धां मतिं बुद्ध्वा प्रजापतिः।
प्रसादं कृतवान् सोमस्ततोऽश्विभ्यां चिकित्सितः ॥ ७ ॥
स विमुक्तग्रहश्चन्द्रो विरराज विशेषतः।
तेजसा वर्द्धितोऽश्विभ्यां शुद्धं सत्त्वमवाप च ॥ ८ ॥

फिर इस प्रकार दक्ष (अपने श्वशुर) के क्रोधसे कांतिहीन हुआ चन्द्रमा देव और देवर्षियोंको साथ लेकर दक्षप्रजापतिकी शरण गया। दक्षप्रजापतिने शरण आएहुए चन्द्रमाको शुद्धचित्त देखकर प्रसन्नतासे कृपा की फिर दक्षके शिष्य अश्विनीकुमारोंने चन्द्रमाकी चिकित्सा की, उनकी चिकित्सासे चन्द्रमा यक्ष्मारूप ग्रहसे छूटकर विशेष प्रकाशयुक्त होगया और अश्विनीकुमारोंकी चिकित्साद्वारा अत्यन्त तेजयुक्त होनेसे शुद्ध सत्त्वको प्राप्त हुआ ॥ ६-८ ॥

यक्ष्माके पर्य्यायवाचक शब्द।

क्रोधो यक्ष्मा ज्वरो रोग एकोऽर्थो दुःखसंज्ञितः।
यस्मात् स राज्ञः प्रागासीद्राजयक्ष्मा ततो मतः ॥ ९ ॥

क्रोध, यक्ष्मा, ज्वर, रोग और दुःख यह सब एकार्थवाची शब्द हैं। यह रोग प्रथम ही राजा (चन्द्रमा) को हुआ था इसलिये इसको राजक्ष्मा कहते हैं ॥ ९ ॥

यक्ष्माका मनुष्यलोकमें आगमन।

स यक्ष्मा हुंकृतोऽश्विभ्यां मानुषं लोकमागतः।
लब्ध्वा चतुर्विधं हेतुं समाविशति मानवान् ॥ १० ॥

वही यक्ष्मारोग, अश्विनीकुमारोंकी हुंकारसे स्वर्गको छोडकर मनुष्यलोकमें आगया। और चार प्रकारके कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें प्रविष्ट होनेलगा ॥ १० ॥

यक्ष्माके ४ कारण।

अयथाबलमारम्भं वेगसन्धारणं क्षयम्।
यक्ष्मणः कारणं विद्याच्चतुर्थं विषमाशनम् ॥ ११ ॥

१ अयथाबल आरंभ (अपनी शक्तिसे बढकर कार्यमें प्रवृत्त होना) २ मलमूत्रादिवेगोंका रोकना। ३ क्षय और ४ विषमाशन। यह यक्ष्माके चार हेतु हैं ॥ ११ ॥

१ अयथाबलपराक्रमजन्ययक्ष्माका निदान।

युद्धाध्ययनभाराध्वलङ्घनप्लवनादिभिः।

पतनैरभिघातैर्वा साहसैर्वा तथापरैः ॥ १२ ॥
अयथाबलमारब्धैर्जन्तोरुरसि विक्षते ।
वायुः प्रकुपितो दोषावुदीर्य्योभौ विधावति ॥ १३ ॥
स शिरःस्थः शिरःशूलं करोति गलमाश्रितः ।
कण्ठोद्ध्वंसञ्च कासञ्च स्वरभेदमरोचकम् ॥ १४ ॥
पार्श्वशूलञ्च पार्श्वस्थो वर्चोभेदं गुदे स्थितः ।
जृम्भां ज्वरं च सन्धिस्थ उरःस्थश्चोरसो रुजम् ।
क्षणनाच्चोरसो रक्तं कासमानः कथानुगम् ॥ १५ ॥
जर्जरेणोरसा क्षिप्रमुरःशूली निरस्यति ।
इति साहसिकं यक्ष्मा रूपैरेतैः प्रपद्यते ।
एकादशभिरात्मज्ञो भजेत्तस्मान्न साहसम् ॥ १६ ॥

अयथाबल पराक्रमजन्य यक्ष्माका निदान–अपनी शक्तिसे बढकर युद्ध करना, पढना, भार उठाना, मार्ग चलना, लंघन करना, अथवा नदी आदिके वेगको बलपूर्वक लंघन छलांगमारना, गिरना, चोटलगना अथवा अन्य साहस करना। इस प्रकार अयथाशक्ति काम करनेसे वक्षःस्थल (छाती) में क्षत (घाव) होजाता है। और वायु कुपित होकर कफ और पित्तको उदीर्ण कर प्रबल वेग धारण करता है। यदि वह वायु शिरमें प्रवेश करे तो शिरमें शूल उत्पन्न करता है। जब गलेमें प्रवेश करता है तो कण्ठका उध्वंस, खांसी, स्वरभंग और अरुचि प्रगट करता है। पार्श्वमें प्रवेश करे तो पार्श्वशूल, गुदामें प्रवेश करे तो मलभेद, सन्धियोंमें प्रवेश करे तो जम्भाई और ज्वर, वक्षःस्थलमें प्रवेश करे तो छातीमें पीडा प्रगट करता है। छातीमें क्षत (घाव) होनेसे खांसीमें कफके साथ रुधिर आता है। छातीमें घांव होनेसे खांसीके साथ छातीमें पीडा होती है इस प्रकार अधिक साहससे यक्ष्मा इन ग्यारह लक्षणोंसे प्रगट होता है। इसलिये बुद्धिमान्को उचित है कि इन साहसिक कर्मोंको न करे॥ १२–१६॥

२ वेगसंधारणजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण।

ह्रीमत्त्वाद्वा घृणित्वाद्वा भयाद्वा वेगमागतम् ।
वातमूत्रपुरीषाणां निगृह्णाति यदा नरः ॥ १७ ॥
तदा वेगप्रतीघातात् कफपित्ते समीरयन् ।

ऊर्ध्वं तिर्यगधः कुर्याद्विकारान् कुपितोऽनिलः ॥ १८ ॥
प्रतिश्यायश्च कासश्च स्वरभेदमरोचकम् ।
पार्श्वशूलं शिरःशूलं ज्वरमंसावमर्दनम् ॥ १९ ॥
अङ्गमर्दं मुहुश्छर्दिर्वर्चोभेदं त्रिलक्षणम् ।
रूपाण्येकादशैतानि यक्ष्मा यैरुच्यते महान् ॥ २० ॥

जब मनुष्य लज्जा, घृणा अथवा भयसे वात मूत्र और पुरीषके वेगको रोकलेता है तब वेगोंके प्रतिघातसे कुपित हुआ वायु कफ और पित्तको उत्तेजित कर ऊपर, नीचे या तिरछे स्थानोंमें गमनकर रोगको उत्पन्न करता है। जैसे प्रतिशाय, खांसी, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, शिरःशूल, ज्वर, अंसोंमें पीडा, अंगमर्द, बारबार वमन और मलभेद यह वेगसन्धारणजन्य यक्ष्मा इन ग्यारह लक्षणोंवाला होता है। इस त्रिदोषयुक्त उपद्रवोंवाले यक्ष्माको महाक्ष्यमा कहते हैं ॥ १७–२० ॥

३ क्षयजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण।

ईर्ष्योत्कण्ठाभयत्रासक्रोधशोकातिकर्षणात् ।
व्यवायानशनाभ्याञ्च शुक्रमोजश्च हीयते ॥ २१ ॥
ततः स्नेहक्षयाद्वायुर्वृद्धो दोषानुदीरयन् ।
प्रतिश्यायं ज्वरं कासमङ्गमर्दं शिरोरुजम् ॥ २२ ॥
श्वासं विड्भेदमरुचिं पार्श्वशूलं स्वरक्षयम् ।
करोति चांससन्तापमेकादशमिहाङ्गहृत् ॥ २३ ॥
लिंगान्यावेदयन्त्येतानेकादश महागदम् ।
संप्राप्तराजयक्ष्माणं क्षयात् प्राणक्षयप्रदम् ॥ २४ ॥

ईर्षा, उत्कण्ठा, भय, त्रास, क्रोध, शोक, अतिकर्षण और मैथुनसे अथवा आहार न करनेसे, शुक्र और ओज क्षीण होजाते हैं। शुक्र और ओजका क्षय होनेसे शरीरका स्नेह भी नष्ट होजाता है। फिर वायु कुपित होकर दोषोंको उत्तेजित करके प्रतिश्याय, ज्वर, खांसी, अंगमर्द, शिरका शूल, श्वास, मलभेद, अरुचि, पार्श्व-शूल, स्वरभंग और दोनों अंसोंमें सन्ताप, शरीरके क्षीण करनेवाले इन ग्यारह लक्षणोंसे युक्त यह क्षयजन्य राजयक्ष्मा नामका महारोग शीघ्र ही प्राणोंका नाश करनेवाला होता है ॥ २१–२४ ॥

४ विषमाशनसे उत्पन्न यक्ष्माके निदान, लक्षण।

विविधान्यन्नपानानि वैषम्येण समश्नतः ।

जनयन्त्यामयान् घोरान् विषमा मारुतादयः ॥ २५ ॥
स्रोतांसि रुधिरादीनां वैषम्याद्विषमं गताः।
रुद्ध्वा रोगाय कल्पन्ते पुष्यन्ति च न धातवः ॥ २६ ॥
प्रतिश्यायं प्रसेकञ्च कासं छर्दिमरोचकम् ।
ज्वरमंसाभितापञ्च च्छर्दनं रुधिरस्य च ॥ २७ ॥
पार्श्वशूलं शिरःशूलं स्वरभेदमथापि वा ।
कफपित्तानिलकृतं लिङ्गं विद्याद्यथाक्रमम् ॥ २८ ॥
इति व्याधिसमूहस्य रोगराजस्य हेतुजम् ।
रूपमेकादशविधं हेतुश्चोक्तश्चतुर्विधः ॥ २९ ॥

नाना प्रकारके अन्नपानोंको विषमरीतिसे सेवन करनेसे विषमभावको प्राप्त हुए वातादिक दोष घोर रोगोंको उत्पन्न करते हैं तथा विषमभावको प्राप्तहुए तीनों दोष रक्तादिकोंके सोतोंको रोककर धातुओंको पुष्ट नहीं होने देते और इन रोगोंको उत्पन्न करते हैं। जैसे प्रतिश्याय प्रसेक (कफपडना) खांसी, छर्दी, अरुचि, ज्वर, स्कंधका परिताप, रुधिरका वमन, पार्श्वशूल, शिरःशूल, स्वरभेद इस प्रकार विषमाशनसे उत्पन्न हुए यक्ष्मामें क्रमसे कफ, पित्त वायु इन तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। व्याधियोंके समूहरूप रोगोंके राजा राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेके इस प्रकार चार हेतु कहेगये हैं और प्रत्येक हेतुके ग्यारह ग्यारह उपद्रव कहे गये हैं ॥ २५-२९ ॥

राजयक्ष्माके पूर्वरूप।

पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोषदर्शनम् ।
अदोषेष्वपि भावेषु काये बीभत्सदर्शनम् ॥ ३० ॥
घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगुण्ठने ॥ ३१ ॥
मक्षिकाघुणकेशानां तृणानां पतनानि च ।
प्रायोऽन्नपाने केशानां नखानाञ्चाभिवर्द्धनम् ॥ ३२ ॥
पतत्रिभिः पतङ्गैश्च श्वापदैश्चाभिधर्षणम् ।
स्वप्ने केशास्थिराशीनां भस्मनश्चाधिरोहणम् ॥ ३३ ॥
जलाशयानां शैलानां वनानां ज्योतिषामपि ।

शुष्यतां क्षीयमाणानां पततां यच्च दर्शनम् ॥ ३४ ॥
प्राग्रूपं बहुरूपस्य तज्ज्ञेयं राजयक्ष्मणः ।
रूपं त्वस्य यथोद्देशं परं शृणु सभेषजम् ॥ ३५ ॥

राजयक्ष्मा रोगके प्रकट होजानेसे प्रथम तो प्रतिश्याय (जुकाम) उत्पन्न होता है, फिर क्रमसे दुर्बलता, अदोषभावोंमें दोषदर्शन, शरीरमें भयानकपन, सब वस्तुओंमें घृणा होना, भोजन करते २ भी बल और मांसका क्षय होना, स्त्रियोंका प्रिय लगाना, मद्यमांसकी इच्छा, एकान्तवासकी इच्छा, प्रायः अन्नपानमें मक्खी, धुन, बाल और तृण आदि गिरना, केश और नखोंका अधिक बढना, स्वप्नमें पक्षी, पतंग, कुत्ते, व्याघ्र आदिका डराना, तथा स्वप्नमें केश, हड्डी और भस्मके ढेरपर चढना, सूखे जलाशयोंको और क्षय होतेहुए पर्वतोंको और वनोंको एवं गिरतेहुए तारागणोंको देखना यह सब इस अनेक रूपवाले राजयक्ष्माके पूर्वरूप होते हैं अब यथाक्रम राजयक्ष्माके लक्षण और औषधियोंका श्रवण करो ॥ ३०–३५ ॥

राजयक्ष्मामें पुरीषरक्षा।

यथास्वेनोष्मणा पाकं शरीरा यान्ति धातवः ।
स्रोतसा च यथास्वेन धातुः पुष्यति धातुना ॥ ३६ ॥
स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तादीनाञ्च संक्षयात् ।
धातूष्मणां चापचयाद्राजयक्ष्मा प्रवर्तते ॥ ३७ ॥
तस्मिन् काले पचत्यग्निर्यदन्नं कोष्ठमाश्रितम् ।
मलीभवति तत् प्रायः कल्पते किञ्चिदोजसे ॥ ३८ ॥
तस्मात् पुरीषं संरक्ष्यं विशेषाद्राजयक्ष्मिणः ।
सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम् ॥ ३९ ॥

शरीरकी संपूर्ण धातुयें अपनी २ गर्मीसे पाकको प्राप्त होती हैं और अपने २ स्रोतोंके योगसे धातुओंद्वारा सब धातु पुष्ट होते हैं। जब दोषोंद्वारा स्रोत रुकजाते हैं तो स्रोतोंके बन्द होनेसे और रक्तादि धातुओंके क्षीण होनेसे एवं धातुओंकी गर्मी नष्ट होजानेसे राजयक्ष्माकी प्रवृत्ति होती है। तब कोष्ठाश्रित अग्नि जिस अन्नको परिपाक करती है उसका रस रक्तादि न बनकर प्रायः मलही बनजाता है और उसमेंसे बहुत थोडा अंश ओजमें परिणत होता है। इसलिये राजयक्ष्मावाले रोगीके मलकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये क्योंकि संपूर्ण धातुओंके क्षीण होनेसे रोगी अत्यंत दुर्बल होजाता है। इस अवस्थामें केवल मलके बलसेही उसमें

बल रहता है। इसलिये जहां तक होसके ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे मलकी रक्षा रहे॥ ३६-३९॥

राजयक्ष्माकी संप्राप्ति।

रसः स्रोतःसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थो विदह्यते।
स ऊर्द्ध्वं कासवेगेन बहुरूपः प्रवर्तते।
जायन्ते व्याधयश्चातः षडेकादशधा पुनः।
येषां संघातयोगेन राजयक्ष्मेति कल्प्यते॥ ४०॥
कासोंऽसतापो वैस्वर्यं ज्वरः पार्श्वशिरोरुजौ।
शोणितश्लेष्मणोश्छर्दिः श्वासः कोष्ठामयोऽरुचिः॥ ४१॥
रूपाण्येकादशैतानि यक्ष्मिणः षडिमानि वा।
कासो ज्वरः पार्श्वशूलं स्वरवर्चोगदोऽरुचिः॥ ४२॥

स्रोतोंके रुकजानेसे आहारका रस संपूर्ण शरीरमें परिवर्त्तित न होकर केवल आमाशयमेंही स्थित रहकर विदग्ध होजाता है। तब वह रस खांसीके साथ ऊपरको गमनकर अनेक रूपसे निकलता है। उससे छः अथवा ग्यारह प्रकारकी व्याधियें उत्पन्न होती हैं। इन संपूर्ण व्याधियोंके समुदायको ही राजयक्ष्मा कहते हैं। वह व्याधियें यह हैं जैसे-खांसी, स्कंधोंका तपना, स्वरभंग, ज्वर, पार्श्वपीडा, शिरमें पीडा, वमनमें रक्तका आना, कफकी छर्द, श्वास, कोष्ठरोग (मलभेद या कोष्ठपीडा), अरुचि यह यक्ष्मारोगके एकादश उपद्रव (रूप) हैं। और खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभंग, मलभेद, अरुचि यह छः उपद्रव (रूप) हैं॥ ४०-४२॥

यक्ष्माका साध्यासाध्यविचार।

सर्वैरर्ङ्गैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्मांसबलक्षये।
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा॥ ४३॥

जो रोगी उपरोक्त सब लक्षणोंसे युक्त हो अथवा आगे कहेहुए तीन लक्षणोंवाला हो और उसका मांस तथा बल क्षीण होगया हो उसको असाध्य जानना। यदि उपरोक्त सब लक्षणोंसे युक्त भी हो परन्तु बल और मांस क्षीण न हुए हों तो वह यक्ष्मारोगी साध्य होता है॥ ४३॥

प्रतिश्यायके लक्षण।

घ्राणमूले स्थितः श्लेष्मा रुधिरं पित्तमेव वा।
मारुताध्माताशिरसो मारुतं श्यायते प्रति॥ ४४॥

प्रतिश्यायस्ततो घोरो जायते देहकर्शनः ।
तस्य रूपं शिरःशूलं गौरवं घ्राणविप्लवः ॥ ४५ ॥
ज्वरः कासः कफोत्क्लेशः स्वरभेदोऽरुचिः क्लमः ।
इन्द्रियाणामसामर्थ्यं यक्ष्मा चातः प्रवर्तते ॥ ४६ ॥
पिच्छिलं बहलं विस्रं हरितं श्वेतपीतकम् ।
कासमानो रसं यक्ष्मी निष्ठीवति कफानुगम् ॥ ४७ ॥

जब मनुष्यकी नासिकाके मूलमें स्थित कफ अथवा रुधिर या पित्त मस्तकगत वायुद्वारा टक्कर खाकर उत्क्षेपितहुए वायुसे मिलकर मस्तककी ओर जाते हैं तब वह प्रतिमार्गी वायु देहको कर्षण करनेवाला, घोर प्रतिश्याय (जुकाम) को प्रकट करता है। इसके होनेसे शिरमें पीडा, भारीपन, नासिकास्राव, ज्वर, खांसी, कफका प्रसेक, स्वरभंग, अरुचि, क्लांति, इन्द्रियोंमें दुर्बलता यह उपद्रव होते हैं। इस प्रतिश्यायसे ही राजयक्ष्मा रोगकी उत्पत्ति होती है। राजयक्ष्मावाले रोगीकी खांसीमें पिच्छिल, गाढा, दुर्गंधयुक्त, हरा, सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ निकलने लगता है ॥ ४४-४७ ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण।

अंसपार्श्वाभितापश्च तापः पादकरस्य च ।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ४८ ॥

अंस (कंधे) और पसलियोंमें संताप (या पीडा) हाथ और पांवोंका तपना सर्वांगमें निरन्तर ज्वर रहना, यह राजयक्ष्माके तीन मुख्य लक्षण हैं ॥ ४८ ॥

राजयक्ष्मामें स्वरभंग।

वातात् पित्तात् कफात् रक्तात् कासवेगात् सपीनसात् ।
स्वरभेदो भवेद्वाताद् रूक्षः क्षामश्चलः स्वरः ॥ ४९ ॥
तालुकण्ठपरिप्लोषः पित्ताद्वक्तुमसूयते ।
कफान्मन्दो विबद्धश्च स्वरः खुरखुरायते ॥ ५० ॥
सन्नो रक्तविबन्धत्वात् स्वरः कृच्छ्रात् प्रवर्तते ।
कासातिवेगात् कषणः पीनसात् कफवातिकः ॥ ५१ ॥

यक्ष्मारोगमें वातसे, पित्तसे, कफसे, खांसीके वेगसे और प्रतिश्यायसे स्वरका भंग होता है। वायुके कोपसे जो स्वरभंगहोता है उसमें स्वर रूखा, क्षीण और चल होता है।

पित्तसे कण्ठ और तालुमें दाह तथा रुधिरकी प्रवृत्ति होती है। कफके स्वरभंगमें स्वर मंद और बद्ध तथा खौंखौं शब्द होता है। रक्तके विबंधसे स्वर सन्न सन्न होता है, तथा कष्टसे शब्द निकलता है। खांसीके वेगसे रोगी कर्षण होता है। और प्रतिश्यायसे कफ तथा वातके लक्षण होते हैं। (जैसे-रूक्ष, क्षीण, मंद, खरखराहट और बद्ध स्वर होता है)॥ ४९-५१॥

यक्ष्मामें अन्य उपद्रव।

पार्श्वशूलं त्वनियतं संकोचायामलक्षणम्।
शिरःशूलं ससन्तापं यक्ष्मिणः स्यात् सगौरवम्॥ ५२॥
अतिस्विन्ने शरीरे तु यक्ष्मणा विषमाशनात्।
कण्ठात् प्रवर्तते रक्तं श्लेष्माचोत्क्लिष्टसञ्चितः॥ ५३॥

रायजक्ष्यामें पार्श्वशूल अनियत तथा संकोच और आयामके लक्षणोंवाला होता है। एवं मस्तकपीडा, संताप और भारीपनयुक्त होती है। विषमाशनसे प्रकट हुए यक्ष्मामें रोगीका शरीर अत्यन्त खिन्न होता है। इसलिये संचितहुई कफके साथ रक्त भी उत्क्लेशित होकर निकलने लगता है॥ ५२॥ ५३॥

रक्तं विबद्धमार्गत्वान्मांसादीन्नानुपद्यते।
आमाशयस्थमुत्क्लिष्टबहुत्वात्कण्ठमेति वा॥ ५४॥

क्योंकि रक्तवाही स्रोतोंके बन्द होजानेसे रक्त मांसादिधातुओंको पुष्ट नहीं कर-सकता, मार्ग रुकजानेसे आमाशयमें आकर स्थित होजाता है और बहुत इकट्ठा होनेसे उत्क्लेशित होकर कण्ठमें आजाता है। अधिक और उत्क्लेशित न होनेसे नहीं भी आता॥ ५४॥

वातश्लेष्मविबन्धत्वादुरसः श्वासमृच्छति।
दोषैरुपहते चाग्नौ सपिच्छमभिसार्यते॥ ५५॥

वातकफद्वारा श्वासके आने जानेवाली नलीके रुकनेसे श्वास छातीमें रुककर बडी कठिनतासे आने लगता है और दोषोंद्वारा जठराग्निके उपहत होजानेसे मल पिच्छल (ल्हेसदार गाढा) उतरने लगता है क्योंकि अग्नि यथोचित रीतिसे अन्नका सार नहीं निकाल सकती॥ ५५॥

पृथग्दोषैः समस्तैर्वा जिह्वाहृदयसंश्रिते।
जायतेऽरुचिराहारैर्दुष्टैरर्थैश्च मानसैः॥ ५६॥

जब वातादि दोष सब मिलकर अथवा अलग २ जीभ और हृदयके आश्रित होते

हैं तो अरुचिको प्रगट करते हैं। एवं दूषित आहार (जो देखने और खानेमें बुरा हो) से तथा मानसिक कारणोंसे भी अरुचि उत्पन्न होजाती है ॥ ५६ ॥

कषायतिक्तमधुरैर्विद्यान्मुखरसैः क्रमात्।
वाताद्यैररुचिं जातां मानसीं दोषदर्शनात् ॥ ५७ ॥
आरोचकात् सामवेगाद्दोषोत्क्लेशाद्भयादपि।
छर्दिर्या सा विकाराणामन्येषामप्युपद्रवः ॥ ५८ ॥

मुखका रस कसैला हो तो वातजनित अरुचि जानना। तिक्त हो तो पित्तजनित और मीठा हो तो कफजनित अरुचि होती है। इसी प्रकार मानसिक अरुचि दोषोंके देखनेसे जानी जाती है। अरुचि, आमवेग, दोषोंका उत्क्लेश और भय इनसे राजयक्ष्मा तथा अन्य विकारोंमें भी वमन उत्पन्न होती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

सर्वस्त्रिदोषजो यक्ष्मा दोषाणां तु बलाबलम्।
परीक्ष्यावस्थितं वैद्यः शोषिणं समुपाचरेत् ॥ ५९ ॥

सब प्रकारके यक्ष्मा त्रिदोषसे ही होते हैं इसलिये यक्ष्मामें दोषोंका बलाबल विचारकर वैद्यको शोषरोग (यक्ष्मा) वालेकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

प्रतिश्याये शिरःशूले कासे श्वासे स्वरक्षये।
पार्श्वशूले च विविधाः क्रियाः साधारणीः शृणु ॥ ६० ॥

अब प्रतिश्याय, मस्तकपीडा, खांसी, श्वास, स्वरभंग और पार्श्वशूलकी अनेक प्रकार साधारण चिकित्साका श्रवण करो ॥ ६० ॥

प्रतिश्यायादि छः रोगोंकी चिकित्सा।

पीनसे स्वेदमभ्यङ्गं धूममालेपनानि च।
परिषेकावगाहांश्च यावकं वाट्यमेव च ॥ ६१ ॥
लवणाम्लकटूष्णांश्च रसान् स्नेहोपसंहितान्।
लावतित्तिरिदक्षाणां वर्तकानाञ्च कल्पयेत् ॥ ६२ ॥
सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम्।
दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत् ॥ ६३ ॥
तेन षड् विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः।
मूलकानां कुलत्थानां यूषैर्वा सूपकल्पितैः ॥ ६४ ॥
यवगोधूमशाल्यन्नैर्यथासात्म्यमुपाचरेत् ॥ ६५ ॥

प्रतिश्याय (जुकाम) में अभ्यंग, धूम्रपान, आलेपन, परिषेक और अवगाहन कराना हित है तथा भुने जवोंका मण्ड, नमक, अम्ल, कटु और उष्ण रसोंका पान कराना एवं घृतमें संस्कार किये हुए लवा, तीतर, मुर्गा और बत्तकके मांसरसका प्रयोग करना हित है। तथा पीपल, यव, कुल्थी, सोंठ, अनार और आमलोंसे युक्त-कर घीमें संस्कार कियाहुआ बकरेका मांसरस प्रयोग करावे। इससे प्रतिश्याय आदि छः उपद्रव दूर होते हैं, अथवा सलजम और कुल्थीके यूषमें सिद्ध करके यव, गेहूं या शालीचावलोंका भात यथासात्म्य सेवन करावे ॥ ६१-६५ ॥

पिबेत् प्रसादं वारुण्या जलं वा पाञ्चमूलिकम् ।
धान्यनागरसिद्धं वा तामलक्याथवा शृतम् ॥ ६६ ॥
पर्णिनीभिश्चतसृभिस्तेन चान्नानि कल्पयेत् ।
कृसरोत्कारिकामाषकुलत्थयवपायसैः ॥ ६७ ॥
सङ्करस्वेदविधिना कण्ठं पार्श्वमुरः शिरः ।
स्वेदयेत्पत्रभङ्गेन शिरश्च परिषेचयेत् ॥ ६८ ॥
बलागुडूचीमधुकशृतैर्वा वारिभिः सुखैः ।
बस्तमत्स्यशिरोभिर्वा नाडीस्वेदैः प्रयोजयेत् ।
कण्ठे शिरसि पार्श्वे च पयोभिर्वा सवातिकैः ॥ ६९ ॥
औदकानूपमांसानि सलिलं पाञ्चमूलिकम् ।
सस्नेहं सारनालं वा नाडीस्वेदं प्रयोजयेत् ॥ ७० ॥

वारुणीमण्ड अथवा पंचमूलसे सिद्ध किया जल या धनियां और सोंठ मिला-कर पकाया जल अथवा भूमिआंवलासे सिद्ध किया जल या शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुग्धपर्णी इनसे सिद्धकिया जल पीनेको देना चाहिये। अथवा इन्हीं जलोंमें सिद्ध किये हुए अन्नका भोजन करावे। कृशरा (खिचडी), उत्कारिका (रोटी आदि), उडद, कुल्थी, यव, खीर इनसे संकरस्वेदविधिद्वारा कण्ठ, पसली, हृदय और शिरको स्वेदन करना चाहिये। या वातनाशक पत्रों (असगन्ध एरण्ड) द्वारा स्वेदन करै। अथवा बला, गिलोय और मुलहठीसे सिद्ध किये हुए सुखोष्ण जलसे परिषेचन करे। अथवा बकरे मछलीका मस्तक डालकर पकायेहुए जलसे या वातनाशक द्रव्योंके क्वाथसे नाडीस्वेदविधिद्वारा कण्ठ, शिर और पसलियोंको स्वेदन करे। अथवा जलसंचारी या अनूपसंचारी जीवोंके मांससे सिद्धकिये जल-

द्वारा या पंचमूलसे सिद्धकिये जलद्वारा अथवा स्नेहयुक्त कांजीद्वारा नाडीस्वेदविधिसे स्वेदन करे ॥ ६६-७० ॥

जीवन्त्याः शतपुष्पाया बलाया मधुकस्य च ।
वचाया वेशवारस्य विदार्यामलकस्य च ॥ ७१ ॥
औदकानूपमांसानामुपनाहाश्च संस्कृताः ।
शस्यन्ते च चतुःस्नेहाः शिरःपार्श्वांसशूलिनाम् ॥ ७२ ॥

जीवन्ती, सौंफ, खरैटी, मुलैठी, वच, वेशवार, विदारीकन्द, आँवला, जलजीवों और अनूपसंचारी जीवोंका मांस चतुःस्नेह मिलाकर सिद्ध कियाहुआ लेप शिर, पसली और कन्धोंकी पीडाको दूर करता है अथवा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए चतुःस्नेह (घृत, तैल, वसा, मज्जा) का मर्दन करना भी उपरोक्त गुण करता है७२

शतपुष्पा समधुकं कुष्ठं तगरचन्दनम् ।
आलेपनं स्यात् सघृतं शिरःपार्श्वांसशूलनुत् ॥ ७३ ॥

सौंफ, मुलैठी, कूठ, तगर और चन्दनको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे शिर, पसली और कंधोंकी पीडा दूर होती है ॥ ७३ ॥

अन्यप्रयोग।

बलारास्नतिलाः सर्पिर्मधुकं नीलमुत्पलम् ।
पलंकषा देवदारु चन्दनं केशरं घृतम् ॥ ७४ ॥
वीरा बला विदारी च कृष्णगन्धा पुनर्नवा ।
शतावरी पयस्या च कत्तृणं मधुकं घृतम् ॥ ७५ ॥
चत्वार एते श्लोकार्धैः प्रदेहाः परिकीर्तिताः ।
शस्ताः संसृष्टदोषाणां शिरःपार्श्वांसशूलिनाम्॥ ७६ ॥

१-बला,रासना, तिल, घी, मुलैठी और नीलकमल; २-गुग्गुल, देवदारु, चंदन, केशर और घी; ३-क्षीरकाकोली, बला, विदारीकंद, सुहांजना और पुनर्नवा; ४-शतावर, क्षीरकाकोली, शालपर्णी, मुलैठी और घी यह आधेश्लोकमें कहेहुए चार प्रकारके लेप शिर, पसली और कंधोंकी पीडाको दूर करनेमें उत्तम कहे हैं७४-७६

संशमनक्रिया।

नावनं धूमपानानि स्नेहाश्चोत्तरभक्तिकाः ।
तैलान्यभ्यङ्गयोगानि बस्तिकर्म तथा परम् ॥ ७७ ॥

जलौकालाबुशृङ्गैर्वा प्रदुष्टं व्यधनेन वा ।
शिरःपार्श्वांसशूलेषु रुधिरं तस्य निर्हरेत् ॥ ७८ ॥

शिरशूल, अंस (कंधे) शूल और पार्श्व (पसली) शूलमें नस्य, धूमपान, भोजनोत्तर घृतपान, नारायणतैल आदि योग्य तैलोंकी मालिश और बस्तिकर्म यह परम हितकारक हैं और जोंक, तुंबी, सिंगी और शिरावेधनद्वारा रक्त निकालनेसे भी शिर, पसली और कंधोंकी पीडा दूर होजाती है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

प्रदेहः सघृतश्चेष्टः पद्मकोशीरचन्दनैः ।
दूर्वामधूकमञ्जिष्ठाकेशरैर्वा घृताप्लुतैः ॥ ७९ ॥
प्रपुण्डरीकनिर्गुण्डी पद्मकेशरमुत्पलम् ।
कशेरुका पयस्या च ससर्पिष्कं प्रलेपनम् ॥ ८० ॥
चन्दनाद्येन तैलेन शतधौतेन सर्पिषा ।
अभ्यङ्गः सर्पिषा सेकः शस्तश्च मधुकाम्बुना ॥ ८१ ॥
माहेन्द्रेण सुशीतेन चन्दनादिशृतेन वा ।
परिषेकः प्रयोक्तव्य इति संशमनी क्रिया ॥ ८२ ॥

पद्माख, चंदन और खस घृतमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दूब, मुलैठी, मजीठ और केसरको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे या पंडचारेका छिलका, संभालूका छिलका, कमलकी केशर, नील कमल, कसेरू और क्षीरकाकोलीको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे मस्तक, पार्श्व और अंसोंकी पीडा दूर होती है, एवं चंदनादि तैल अथवा सौबार धोयेहुए घृतका अभ्यंग अथवा घृत या मुलैठीके जलका परिषेक या माहेन्द्र शीतल जल अथवा चंदनादिक्काथका परिषेक करनेसे दाहयुक्त मस्तकपीडा शान्त होती है। इस प्रकार संशमनी क्रिया कही गई ॥ ७९–८२ ॥

दोषाधिक्यमें संशोधनविधि।

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यत्नकर्षणम् ॥ ८३ ॥

जिस यक्ष्मारोगीका मांस और बल क्षीण न हुआ हो उसको दोषोंकी प्रबलतामें स्नेह और स्वेदन कराके स्निग्ध वमन विरेचन कराना चाहिये । परन्तु वह कृश न होने पावे ॥ ८३ ॥

शोषी मुञ्चति गात्राणि पुरीषस्रंसनादपि ।
अबलापेक्षिणीं मात्रां किंपुनर्यो विरिच्यते ॥

योगान् संशुद्धकोष्ठानां कासे श्वासे स्वरक्षये ।
शिरःपार्श्वांसशूलेषु सिद्धानेतान् प्रयोजयेत् ॥ ८४ ॥
बलाविदारिगन्धाद्यैर्विदार्या मधुकेन वा ।
सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्यात्स्वर्यमुत्तमम् ॥ ८५ ॥
प्रपुण्डरीकं मधुकं पिप्पल्यो बृहती बला ।
क्षीरं सर्पिश्च तत्सिद्धं स्वर्यं स्यान्नावनं परम् ॥ ८६ ॥
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासनिबर्हणम् ।
प्रयुज्यमानं बहुशो घृतं चोत्तरभक्तिकम् ॥ ८७ ॥
दशमूलेन पयसा सिद्धं मांसरसेन च ।
बलागर्भं घृतं सद्यो रोगानेतान् प्रबाधते ॥ ८८ ॥
भक्तस्योपरि मध्ये वा यथाग्नि प्रविचारितम् ।
रास्नाघृतं वा सक्षीरं सक्षीरं वा बलाघृतम् ॥ ८९ ॥

शोषरोगीका मल निकलजानेसे उसका शरीर ही नष्ट होजाता है इसलिये उसके बलके अनुसार ही विचारपूर्वक मृदु शोधन कराना चाहिये। कोष्ठ शुद्ध होजानेपर रोगीको यदि खांसी, श्वास, स्वरभेद, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल और अंसशूल बाकी रहजाय तो नीचे लिखीं औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। जैसे—बला, शालपर्ण्यादिगण, विदारीकंद, मुलैठी इनके सिद्ध कियेहुए सैंधानमकयुक्त घृतकी नस्य देना स्वरभंगको दूर करनेमें उत्तम है । पुण्डचारा, मुलैठी, पीपल, बडी कटेरी, बला और दूध इनके साथ सिद्ध कियेहुए घृतकी नस्य देना स्वरको उत्तम करता है। अनेक योग्य द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत भोजनके अनन्तर विधिवत् पानकरनेसे मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, अंसशूल, खांसी और श्वास सब दूर होते हैं । एवं दशमूल, दूध, मांसरस और बलाके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत उपरोक्त रोगोंको शीघ्र दूर करता है । तथा भोजन करनेके अनन्तर अथवा भोजनके मध्यमें जठराग्निके बलानुसार दूध और रासनाघृत अथवा दूध और बलाघृत पान करनेसे उपरोक्त सब उपद्रव दूर होजाते हैं ॥ ८४-८९ ॥

स्नेहवर्णन ।

लेहान् कासापहान् स्वर्याञ्श्वासहिक्कानिबर्हणान् ।
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नान् स्नेहांश्चातः परं शृणु ॥ ९० ॥

अब हम खांसीको दूर करनेवाले, स्वरको बढानेवाले तथा श्वास, हिचकी, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल और अंसशूलको दूर करनेवाले स्नेहोंका वर्णन करते हैं सो सुनो९०

घृतं खर्जूरमृद्वीकाशर्कराक्षौद्रसंयुतम् ।
सपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वासनिबर्हणम् ॥ ९१ ॥

घी, खजूर, मुनक्का मिसरी, शहद और पीपल इन सबको मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभंग, खांसी और श्वासरोग नष्ट होता है ॥ ९१ ॥

दशमूलशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यदुदियान्नवम् ।
सपिप्पलीकं सक्षौद्रं तत्परं स्वरबोधनम् ॥ ९२ ॥
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासज्वरापहम् ।
पञ्चभिः पञ्चमूलैर्वा शृताद्यदुदियाद् घृतम् ॥ ९३ ॥
पञ्चानां पञ्चमूलानां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
सिद्धं सर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मणः सप्तकं बलम् ॥ ९४ ॥

पांचों पंचमूल मिलाकर पकायेहुए दूधके मक्खनमें पीपल और शहत मिलाकर चाटनेसे स्वरभंग, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, अंसशूल, खांसी श्वास और ज्वर यह सब दूर होते हैं। एवं पांचों पंचमूलोंके क्काथ और कल्क तथा चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत राजयक्ष्माके उपरोक्त सात उपद्रवोंको जीतलेताहै ॥ ९२-९४ ॥

खर्जूरं पिप्पली द्राक्षा पथ्यां शृङ्गी दुरालभा ।
त्रिफला पिप्पली मुस्तं शृंगाटी गुडशर्करा ॥ ९५ ॥
वीरा शठी पुष्कराख्यं सुरसः शर्करागुडः ।
नागरं चित्रको लाजाः पिप्पल्यामलकं गुडः ॥ ९६ ॥
श्लोकार्द्धविहितानेताँल्लिह्यान्ना मधुसर्पिषा ।
कासश्वासापहान् स्वर्यान् पार्श्वशूलापहांस्तथा ॥ ९७ ॥

१ खजूर (छुहारा), पीपल, मुनक्का, हरड, काकडासिंगी और जवासा। २ त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, सिंघाडा, और गुडशर्करा। ३ क्षीरकाकोली, कचूर, पोहकरमूल, तुलसी और गुडशर्करा। ४ सोंठ, चित्रक, धानकी खील, पीपल, आँवला और गुड। इन आधे आधे श्लोकमें कहेहुए चार योगोंको घृत और शहद मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, स्वरभंग, पार्श्वशूल यह सब दूर होते हैं॥ ९५-९७॥

सितोपलादि अवलेह।

सितोपलां तुगाक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचम्।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ ९८ ॥
चूर्णितं प्राशयेद्वा तत् श्वासकासकफातुरम्।
सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥ ९९ ॥

मिसरी आठ भाग, वंशलोचन चार भाग, पीपल दो भाग, इलायचीके बीज एक भाग, दालचीनी आधा भाग इन सबका चूर्ण करके शहत और घृतमें मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, कफ, जीभकी जडता, अरुचि, मंदाग्नि और पार्श्वशूल, यह सब दूर होते हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

हस्तपादाङ्गदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्द्ध्वगे।
वासासर्पिः शतावर्याः सिद्धं वा परमं हितम् ॥ १०० ॥

हाथ, पांव और शरीरकी दाह निवृत्तिके लिये तथा ज्वरमें और ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें वासाघृत अथवा शतावरीघृतका सेवन करना परम हितकारी है ॥ १०० ॥

दुरालभाद्यघृत।

दुरालभां श्वदंष्ट्रां च चतस्रः पर्णिनीर्बलाम्।
भागान्पलोन्मितान् कृत्वा पलं पर्पटकस्य च ॥ १०१ ॥
पचेद्दशगुणे तोये दशभागावशेषिते।
रसे सुपूते द्रव्याणामेषां कल्कान् समावपेत् ॥ १०२ ॥
शठ्याः पुष्करमूलस्य पिप्पलीत्रायमाणयोः।
तामलक्याः किराताना तिक्तस्य कुटजस्य च ॥ १०३ ॥
फलानां शारिवायाश्च सुपिष्टान् कर्षसम्मितान्।
ततस्तेन घृतप्रस्थं क्षीरद्विगुणितं पचेत् ॥ १०४ ॥
ज्वरं दाहं भ्रमं कासमंसपार्श्वशिरोरुजम्।
तृष्णाञ्छर्दिमतीसारमेतान् सर्पिरपोहति ॥ १०५ ॥

जवासा, गोखरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, बला और पापडा यह एक एक पल लेकर दशगुने जलमें औटावे। दशवां भाग शेष रहनेपर नीचे उतारकर छान ले फिर इसमें पोहकरमूल, पीपल, त्रायमाणा, भूमिआँवला, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ और सारिवा इनको एक एक कर्ष लेकर कूट छानकर मिलावे

फिर इसमें एक प्रस्थ घी दो प्रस्थ दूध मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे। इस घृतके सेवनसे ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, अंसशूल, पार्श्वशूल, मस्तकपीडा, प्यास, वमन और अतिसार यह सब दूर होते हैं ॥ १०१-१०५ ॥

जीवन्त्यादिघृत।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च।
शठीं पुष्करमूलञ्च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ १०६ ॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम्।
पिप्पलीञ्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ १०७ ॥
एतद्व्याधिसमूहस्य समुत्थं राजयक्ष्मणः।
रूपमेकादशविधं सर्पिरेकं व्यपोहति ॥ १०८ ॥

जीवन्ती, मुलैठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, गोखरू, बला, भूमिआँवला, नीलोफर, त्रायमाण, जवासा और पीपल, इन सबको समान भाग ले कल्क बनावे। इस कल्क और चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत सेवन करनेसे व्याधिसमूहरूप राजयक्ष्माके ग्यारह उपद्रव नष्ट होजाते हैं ॥ १०६-१०८ ॥

बलाद्यघृत।

बलां स्थिरां पृश्निपर्णीं बृहतीं सनिदिग्धिकाम्।
साधयित्वा रसे तस्मिन् पयो गव्यं सनागरम् ॥ १०९ ॥
द्राक्षाखर्जूरसर्पिर्भिः पिप्पल्या च शृतं सह।
सक्षौद्रं ज्वरकासघ्नं स्वर्यञ्चैतत्प्रयोजयेत् ॥ ११० ॥

बला, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और दोनों कटेली इनका क्वाथ, घृतसे चौगुना दूध, मुनक्का, खजूर, सोंठ, पीपल इनका कल्क बनाकर घृतपाकविधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको शहत मिलाकर सेवन करनेसे ज्वर, खांसी और स्वरभंग यह सब दूर होजाते हैं ॥ १०९ ॥ ११० ॥

यक्ष्मामें अन्य उपचार।

आजस्य पयसश्चैव प्रयोगो जाङ्गला रसाः।
यूषार्थे चणका मुद्गा मकुष्ठाश्चोपकल्पिताः ॥ १११ ॥
ज्वराणां शमने योगः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः।
यक्ष्मिणां ज्वरदाहेषु ससर्पिष्कः प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

यक्ष्मारोगमें बकरीका दूध और जंगली जीवोंका मांसरस हितकारी होता है। तथा चना मूंग और मोठ यह यूषके लिये हित हैं। एवं जो ज्वरनाशक प्रयोग चिकित्सा तथा घृत आदि पहले कहचुके हैं वह सब भी यक्ष्मारोगियोंके ज्वर और दाहकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करने चाहिये ॥ १११ ॥ ११२ ॥

कफप्रसेके बलवान् श्लैष्मिकश्छर्दयेन्नरः।
पयसा फलयुक्तेन मधुरेण रसेन वा ॥ ११३ ॥
सर्पिष्मत्या यवाग्वा वा वमनीयोपसिद्धया।
वमितोऽद्याच्च लघ्वन्नमन्नकाले सदीपनम् ॥ ११४ ॥
यवगोधूममाध्वीकशीधुवरिष्टसुरासवान्।
जाङ्गलानि च शूल्यानि सेवमानः कफञ्जयेत् ॥ ११५ ॥

कफयुक्त बलवान् रोगीको कफके प्रसेकमें मैनफलका चूर्ण मिलाकर दूध अथवा मैनफलयुक्त मधुररस या वमनकारक द्रव्योंसे सिद्ध की हुई घृतयुक्त यवागू पिलाकर वमन कराना चाहिये। फिर वमनके अनंतर क्षुधा लगनेपर हलके अन्नका भोजन करावे। तथा जव, गेहूं, माध्वी, सीधु, अरिष्ट, सुरा, आसव, शूलपर भुनाहुआ जंगली जीवोंका मांस सेवन करावे तो कफ शान्त होता है ॥ ११३-११५ ॥

श्लेष्मणोऽतिप्रसेके तु वायुः श्लेष्माणमस्यति।
कफप्रसेकं तं विद्वान् स्निग्धोष्णेनैव निर्जयेत् ॥ ११६ ॥
क्रिया कफप्रसेके या वम्यां सैव प्रशस्यते।
हृद्यानि चान्नपानानि वातघ्नानि लघूनि च ॥ ११७ ॥

राजयक्ष्मा रोगीको जब कफ अधिक निकलने लगाता है तब वायु ही उस कफको उदीर्णकर निकालताहै इसलिये उस समय स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफको जीतना चाहिये। जो चिकित्सा कफके प्रसेक (गिरने) की कीजाती है वही चिकित्सा वमनकी शान्तिके लिये भी हितकारी है। तथा वमनकी निवृत्तिके लिये हृद्य, वातनाशक और हलके अन्नपानका प्रयोग करना हित होता है ॥ ११६॥११७ ॥

मन्दाग्निमें कर्तव्य।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते।
प्राप्नोत्यास्यस्य वैरस्यं न चान्नमभिनन्दति ॥ ११८ ॥
तस्याग्निदीपनाद्योगानतीसारनिबर्हणान्।
वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्यादरुचिप्रतिबाधकान् ॥ ११९ ॥

जठराग्निके उपहत होनेसेही प्रायः पिच्छिल (ल्हेसदार, गाढा, गिलगिला) दस्त आता है तथा मुखका स्वाद बिगडजाता है और अन्नमें अरुचि होती है इसलिये उसको अग्निदीपनकर्त्ता, अतिसारनाशक, मुखशोधक और रुचिकारक योगोंका सेवन कराना चाहिये ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

अतिसारनाशक योग।

सनागरानिन्द्रयवान्पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना।
सिद्धां यवागूं जीर्णे च चाङ्गेरीतक्रदाडिमैः ॥ १२० ॥
पाठां बिल्वं यवानीं च पातव्यं तक्रसंयुतम्।
दुरालभां शृंगवेरं पाठाञ्च सुरया सह ॥ १२१ ॥
जम्ब्वाम्रबिल्वमध्यञ्च सकपित्थं सनागरम्।
पेयामण्डेन पातव्यमतीसारनिवृत्तये ॥ १२२ ॥
एतानेव च योगांस्त्रीन्पाठादीन्कारयेत्खडान्।
ससूप[1]धान्यान्सस्नेहान्साम्लान्संग्रहणान्परान् ॥ १२३ ॥

राजयक्ष्मामें अतिसार हो तो सोंठ और इन्द्रजवोंके चूर्णको चावलोंके धोवनके साथ पान करावै। औषध पचनेपर चांगेरी (आम्ललोनिया) तक्र और अनारके रसके साथ सिद्ध कीहुई यवागू पिलाना चाहिये। अथवा पाठा, बेलगिरि, अजवायन इनके क्वाथको तक्रमें मिलाकर पिलावे। या जवासा, सोंठ, पाठा इनके क्वाथको मद्यके साथ पिलावे। अथवा जामुन और आमकी गुठली, बेलगिरि, कैथ, सोंठ इनके क्वाथको पेयाके साथ अथवा मण्डके साथ पिलावे। अथवा इन तीनों अतिसारनाशक योगोंका सूपधान्यके साथ षड्यूष बनाकर घी और अनारकी खटाई मिला सेवन करावे तो यह अत्यंत संग्राही है ॥ १२०--१२३ ॥

अन्य प्रयोग।

वेतसार्जुनजम्बूनां मृणालीकृष्णगन्धयोः।
श्रीपर्ण्या मदयन्त्याश्च यूथिकायाश्च पल्लवान् ॥ १२४ ॥
चांगेर्याश्चुक्रिकायाश्च दुग्धिकायाश्च कारयेत्।
खडान् दधिसरोपेतान् ससर्पिष्कान् सदाडिमान् ॥ १२५ ॥

१--'ससूपधान्यं' का अर्थ सूपधान्य ''मूंग, मोठ, मसूर'' आदि जानना, गंगाधरके चरकको संस्कृतटीकामें 'चुक्रधान्य' ऐसा पाठ लिखकर खट्टा चूक, और धनिया, यह अर्थ किया है यह भी ठीक है।

वेतस, अर्जुन, जामुनकी गुठली, कमल, सुहांजना, कुम्भेर, मल्लिका (मालती) और जूहीके पत्र, अम्ललोनिया, चूका, अनारका रस, दूधी, दही और घृत डालकर यूष बना सेवन करे ॥१२४॥ १२५॥

मांसानां लघुपाकानां रसाः सांग्राहिकैर्युताः।
व्यंजनार्थे प्रशस्यन्ते भोज्यार्थे रक्तशालयः॥ १२६॥
स्थिरादिपंचमूलेन पाने शस्तं शृतं जलम्॥ १२७॥
तक्रं सुरां सचुक्रीकादाडिमस्याथवा रसः।
दीपनं ग्राहि निर्दिष्टं भेषजं भिन्नवर्चसे॥ १२८॥

यक्ष्मारोगियोंके अतिसारमें व्यंजनके लिये संग्राहक द्रव्योंके साथ सिद्ध किया-हुआ लघुपाकी मांसरस और लाल शालीचावलोंका भोजन प्रयुक्त करे। तथा शाल-पर्णी आदि पंचमूलसे सिद्ध किया जल पीनेके लिये देवे। अतिसारमें तक्र, मद्य, चूका और अनारका रस संदीपनकर्त्ता तथा संग्राही होता है॥ १२६--१२८॥

वैरस्यनाशक प्रयोग।

परं मुखस्य वैरस्यनाशनं रोचनं शृणु।
द्वौ कालौ दन्तपवनं भक्षयेन्मुखधावनैः॥ १२९॥
तद्वत्प्रक्षालयेदास्यं धारयेत्कवलग्रहान्।
पिबेद्धूमं ततो मृष्टमद्याद्दीपनरोचनम्।
भेषजं पानमन्नञ्च हितमिष्टोपकल्पितम्॥ १३०॥

अब मुखकी विरसताको दूर करनेवाले प्रयोगोंको सुनो। प्रातःकाल और सायं-काल दोनों समय मुखशोधक दाँतन करना, मुखमें जल भर कुल्ले करना और मुख-शोधक द्रव्योंको पानीमें घोलकर मुखमें रखना चाहिये। फिर धूम्रपान, दीपन और रुचिकारक द्रव्योंका सेवन करना हित है। एवं जिसको चित्त चाहता हो वह अन्नपान भी मुखकी विरसताको दूर करता है॥ १२९॥ १३०॥

मुखधावनपांचप्रयोग।

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानि मुस्ते सामलकं त्वचम्।
त्वचो दार्व्यां यवानी च पिप्पल्यस्तेजवत्यपि॥ १३१॥
यवानी तिन्तिडीकञ्च पञ्चैते मुखधावनाः।
श्लोकपादेषु विदिताः शोधना मुखरोचनाः॥ १३२॥

गुलिकां धारयेदास्ये चूर्णैर्वा शोधयेन्मुखम्।
एषामालोडितानां वा धारयेत्कवलग्रहान्॥ १३३॥

१ दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां; २ अथवा नागरमोथा, केवटी, माथा, आँवला, दालचीनी; ३ अथवा दालचीनी, दारुहलदी और अजवायन; ४ या पीपल और तेजवती; ५ अथवा अजवायन और तिंतिडीकका चूर्ण यह चौथाई २ श्लोकमें कहे हुए चूर्णको दांत और मुखमें मलना मुखको शुद्ध करता है और रुचिवर्द्धक है। अथवा इनकी गोली बना मुखमें रखनी चाहिये। अथवा इनका चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करे। अथवा जलमें मिला थोडी २ देर मुखमें रख कुल्ले करे॥ १३१-१३३॥

सुरामाध्वीकशीधूनां तैलस्य मधुसर्पिषोः।
कवलान् धारयेदिष्टान् क्षीरस्येक्षुरसस्य च॥ १३४॥

सुरा, माध्वीक, शीधु, तैल, मधु, घृत, दूध और ईखके रसको मुखमें धारण करनेसे मुखकी विरसता दूर होती है॥ १३४॥

यवानीषांडव।

यवानी तिन्तिडीकञ्च नागरं साम्लवेतसम्।
दाडिमं बदरं चाम्लं कार्षिकानुपकल्पयेत्॥ १३५॥
धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम्।
पिप्पलीनां शतञ्चैकं द्वे शते मरिचस्य च॥ १३६॥
शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत्।
जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम्॥ १३७॥
हृत्प्लीहपार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम्।
कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत्॥ १३८॥

अजवायन, तिंतिडीक, सोंठ, अम्लवेत, अनार, बेर, यह प्रत्येक एक एक कर्ष, धनियां, संचरनमक, जीरा, दालचीनी यह आधा २ कर्ष, पीपल १०० काली मिरच २०० और शर्करा चार पल इन सबका चूर्ण बनालेवे। यह चूर्ण जिह्वाका शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजनमें रुचिकारक, हृद्रोग, प्लीहा और पार्श्वशूलको दूर करनेवाला तथा विबन्ध और अफारेको दूर करनेवाला है। तथा खांसी, श्वास, ग्रहणी और बवासीरके विकारोंको दूर करनेवाला है तथा संग्राही है॥१३५-१३८॥

तालीशपत्रादि।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा।
यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके ॥ १३९ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा।
कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ १४० ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषशोषप्लीहज्वरापहम्।
वम्यतीसारशूलघ्नमूर्ध्ववातानुलोमनम् ॥ १४१ ॥
कल्पयेद्गुटिकाश्चैव चूर्णं पक्त्वा सितोपलैः।
गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराः स्मृताः ॥ १४२ ॥

एक भाग तालीशपत्र, दो भाग काली मिरच, तीन भाग सोंठ, चार भाग पीपल और पांच भाग वंशलोचन, दालचीनी और इलायची आधा २ भाग लेवे और पीपलसे अठगुनी मिसरी डालकर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण खांसी, श्वास और अरुचिको हरता है। अत्यंत अग्निसंदीपन है। हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, शोष, प्लीहा और ज्वरको दूर करता है। वमन, अतिसार और शूलको नष्ट करता है। तथा ऊर्ध्ववातको अनुलोमन करता है। अग्निके संस्कारसे मिश्रीकी चासनीमें पूर्वोक्त चूर्णकी बनाई हुई गोलियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होती हैं ॥ १३९-१४२ ॥

यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था।

शुष्यते क्षीणमांसाय कल्पितानि विधानवत्।
दद्यान्मांसादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ १४३ ॥
शोषिणे बार्हिणं दद्याद्बर्हिशब्देन चापरान्।
गृध्रानुलूकान् चाषांश्च विधिवत् सूपकल्पितान् ॥ १४४ ॥
काकांस्तित्तिरिशब्देन मत्स्यशब्देन चोरगान्।
भृष्टान् मत्स्यान्त्रशब्देन दद्याद् गण्डूपदानपि ॥ १४५ ॥
लोमशान् स्थूलनकुलान् बिडालांश्चोपकल्पितान्
शृगालशावांश्च भिषक् शशशब्देन दापयेत् ॥ १४६ ॥
सिंहानृक्षांस्तरक्षूंश्च व्याघ्रानेवंविधांस्तथा।
मांसादान् मृगशब्देन दद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥ १४७ ॥

गजखड्गितुरङ्गाणां वेशवारकृतान् भिषक्
दद्यान्महिषशब्देन मांसं मांसाभिवृद्धये ॥ १४८ ॥

जिस यक्ष्मारोगीका मांस क्षीण होगया हो उसको मांसाहारी जीवोंका मांस अनेक प्रकार कल्पना कर देना चाहिये। क्योंकि यह अत्यंत बृंहण होता है। इस रोगीको मोरका मांस अथवा मोरसे अन्य गिद्ध, घुग्घू और चाषपक्षीका मांस अनेक तरहसे बनाकर सेवन करावे। तीतरके नामसे कौएका मांस, बर्मीके नामसे सिर और पूंछके विना सर्पका मांस, मछलीके अंत्रके नामसे गिडोये, खर्गोशके मांसके नामसे रोमयुक्त मोटे नकुलका मांस, बिल्ली वा शृगालके बच्चेका मांस अनेक रीतिसे कल्पनाकरके देवे। हिरनमांसके नामसे सिंह, रीछ, रोझ, बघेरे तथा ऐसे ही अन्य मांसाहारी पशुओंका मांस, मांसकी वृद्धिके लिये देवे। भैंसाके मांसके नामसे हाथी, घोडे वा गेंडके मांसका शोरुआ बनाकर देवे। यह सब मांस मांसके बढानेवाले हैं ॥१४३–१४८॥

द्विजानामोषधीसिद्धं घृतं मांसविवृद्धये।
सितायुक्तं प्रदातव्यं गव्येन पयसा भृशम् ॥ १४९ ॥

द्विजातियोंको मांसके बदले बृंहण औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत मिसरी मिलाकर गोदुग्धके साथ पिलावे ॥ १४९ ॥

मांसेनोपचिताङ्गानां मांसं मांसकरं परम्।
तीक्ष्णोष्णलघुत्वाच्छस्तं विशेषान्मृगपक्षिणाम् ॥ १५० ॥
मांसानि यान्यनभ्यासादनिष्टानि प्रयोजयेत्।
तेषूपधासुखं भोक्तुं तथा शक्यानि तानि हि ॥ १५१ ॥
जानन् जुगुप्सन्नैवाद्याज्जग्धं वा पुनरुल्लिखेत्।
तस्माच्छद्मोपसिद्धानि मांसान्येतानि दापयेत् ॥ १५२ ॥

मांससे पुष्टहुए मांसाहारी जीवोंका मांस मांसको अत्यंत बढाता है। यक्ष्मारोगमें मृग और पक्षियोंका मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होनेसे अत्यंत हितकारी होता है। अनभ्यासके कारण जो सर्प आदि अनिष्ट मांसोंका प्रयोग कियाजाता है उनमें युक्तिपूर्वक प्रशंसा आदिकर रुचिको उत्पन्न करके प्रयोग करे। रोगी जानकर घृणा प्रगट करताहुआ यदि खाँसी लेता है तो वमन कर देता है। इसलिये इन मांसोंको छलसें सिद्धकर मांस सात्म्य मनुष्यको शोषके निवृत्तिके लिये देवे ॥ १५०–१५२ ॥

दोषपरत्वसे यक्ष्मामें मांसविधान।

बर्हितित्तिरिदक्षाणां हंसानां शूकरोष्ट्रयोः।

खरगोमहिषाणाञ्च मांसं मांसकरं परम् ॥ १५३ ॥
योनिरष्टविधा चोक्ता मांसानामान्नपानिके ।
तान् परीक्ष्य भिषग्विद्वान् दद्यात् मांसानि शोषिणे॥ १५४॥
प्रसहा भूशयानूपवारिजा वारिचारिणः ।
आहारार्थे प्रदातव्या मात्रया वातशोषिणे ॥ १५५ ॥
प्रतुदा विष्किराश्चैव धन्विजाश्च मृगद्विजाः ॥
कफपित्तपरीतानां प्रयोज्याः शोषरोगिणाम् ॥ १५६ ॥
विधिवत्सूपसिद्धानि मनोज्ञानि मृदूनि च ।
रसवन्ति सुगन्धीनि मांसान्येतानि भक्षयेत् ॥ १५७ ॥

मोर, तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊंट, गधा, खगोंश और भैंसा इनका मांस अत्यंत मांसवर्द्धक है। जो अन्नपानाध्यायमें आठ प्रकारके मांस कथन किये हैं, उन मांसोंको भी यक्ष्मारोगीको दोषबलानुसार सेवन करना चाहिये । यथा वातशोषी रोगीको प्रसह, भूशय, आनूप, देशज, जलज और जलचर पशुपक्षियोंका मांस आहारार्थ देना चाहिये। कफपित्त शोषरोगियोंको प्रतुद, विष्किर और धन्वज पशुपक्षियोंका मांस देना हित है। इन संपूर्ण मांसोंको विधिवत् सूप (शोरुआ) सिद्ध कराके मनोज्ञ, मृदु, रसीले और सुगंधित द्रव्य डालकर देवे ॥१५३–१५७॥

मांसमेवाश्नतः शोषे माध्वीकं पिबतोऽपि च ।
नियतस्याल्पचित्तस्य चिरं काये न तिष्ठति ॥ १५८ ॥
वारुणीमण्डभक्तस्य बहिर्मार्जनसेविनः ।
अविधारितवेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽन्तरम् ॥ १५९ ॥
प्रसन्नां वारुणीं शीधुमरिष्टानासवान् मधु ।
यथेष्टमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयेत् ॥ १६० ॥

विधिवत् मांस मद्यके सेवन करनेवाले जितात्मा मनुष्यके शरीरमें यह रोग बहुत दिन नहीं रहसकता है। जो वारुणीमण्डको पीता है और सूत्रस्थानोक्त स्नानादि बहिर्मार्जन करता है तथा मलमूत्रादिके उपस्थित वेगोंको नहीं रोकता उस मनुष्यके शरीरमें यक्ष्मा प्रवेश नहीं कर सकता। यक्ष्मारोगमें प्रसन्न, वारुणी, शीधु, अरिष्ट, आसव और मधु इनका यथेष्ट पान करना और यथेष्ट मांसभक्षण करना हितकारक

है। (जो मांस नहीं खाते उनको मक्खन, घृत, आसव, दूध आदि पदार्थ सेवन करना चाहिये)॥ १५८-१६०॥

यक्ष्मामें मद्यके गुण।

मद्यं तीक्ष्णोष्णवैशद्यसूक्ष्मत्वात्स्रोतसां मुखम्।
प्रमथ्य विवृणोत्याशु तन्मोक्षात् सप्तधातवः।
पुष्यन्ति धातुयोगाच्च शीघ्रं शोषः प्रशाम्यति॥ १६१॥

मद्य-तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्म होनेसे स्रोतोंके मुखको बलसे मथनकर खोलदेती है। और उनके खुलनेसे सातों धातुएं पुष्ट होने लगती हैं और धातुओंके पुष्ट होनेसे शोषरोग शीघ्र शान्त होजाता है॥ १६१॥

अन्य प्रयोग।

मांसादमांसस्वरसे सिद्धं सर्पिः प्रयोजयेत्।
सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दशगुणेन वा॥ १६२॥
सिद्धं मधुकरैर्द्रव्यैर्दशमूलकषायिकैः।
क्षीरमांसरसोपेतं घृतं शोषहरं परम्॥ १६३॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।
सयावशूकैः सक्षीरैः स्रोतसां शोधनं घृतम्॥ १६४॥
रास्ना बला गोक्षुरकं स्थिरा वर्षान्तसाधितम्।
जीवन्ती पिप्पली भार्ङ्गी सक्षीरं शोषनुद् घृतम्॥ १६५॥
यवाग्वा वा पिबेन्मात्रां लिह्याद्वा मधुना सह।
सिद्धानां सर्पिषामेषामद्यादन्नेन वा सह॥ १६६॥
शुष्यतामेव निर्दिष्टो विधिराभ्यवहारिकः।
बहिःस्पर्शनमाश्रित्य वक्ष्यतेऽतःपरं विधिः॥ १६७॥

शोषरोगीको मांस खानेवाले जीवोंके मांसरसमें सिद्ध कियाहुआ घृत पिलावे। अथवा दशगुने दूधमें घृत सिद्ध करके शहतके साथ सेवन करावे। अथवा मधुरगणोंकी औषधियां और दशमूलके क्वाथमें दूध और मांसरस मिलाकर उससे घृतको सिद्ध करे। यह घृत शोषनामक परम उत्तम प्रयोग है। अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, जवाखार और दूध इनसे सिद्ध किये हुए घृतका सेवन करानेसे स्रोतोंका मुख शुद्ध होजाता है। अथवा रास्ना, खरैंटी, गोखरू, शालिपर्णी और पुन-

नेवाके क्राथमें जीवन्ती, पीपल, भारंगी, और दूध मिला घृतको सिद्धकरे। यह घृत शोषरोगको नष्ट करनेवाला है। ऊपर कहेहुए घृतोंको यवागूमें मिलाकर पीना अथवा शहतमें मिलाकर चाटना अथवा भोजनमें सेवन करना शोषरोगको दूर करता है। शोषरोगीके लिये यह आहारविधि कही है। अब बहिःस्पर्शन संबंधी विधिका कथन करते हैं ॥ १६२--१६७ ॥

अवगाहनविधि।

स्नेहक्षीरोऽम्बुकोष्ठे तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत्।
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलपुष्ट्यर्थमेव वा ॥ १६८ ॥
उत्तीर्णमिश्रकैः स्नेहैः पुनरुक्तैः सुखाकरैः।
मृद्नीयात् सुखमासीनं सुखं चाच्छादयेन्नरम्॥ १६९ ॥

रोगीके शरीरपर तैलमर्दन करके स्नेहकोठी अथवा दूध या जलकी कोठीमें बिठावे ऐसा करनेसे स्रोतोंके मुख खुलजाते हैं तथा बल पुष्टि होती है। कोठीमें अवगाहनके अनन्तर रोगीको आरामसे बिठाकर पूर्वोक्त मिश्रस्नेहका रोगीकी देहपर धीरे २ मर्दनकर मनुष्यको उत्तम वस्त्रसे ढक देवे ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

उद्वर्त्तनविधि।

जीवन्तीं शतवीर्य्यां च विकसां सपुनर्नवाम्।
अश्वगन्धामपामार्गं तर्कारीं मधुकं बलाम्॥ १७० ॥
विदारीं सर्षपं कुष्ठं तण्डुलानतसीफलम्।
माषांस्तिलांश्च किण्वञ्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १७१ ॥
त्रिगुणं यवचूर्णेन दध्ना युक्तं समाक्षिकम्।
एतदुत्सादनं कार्य्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम् ॥ १७२ ॥

जीवन्ती, शतवीर्य्या, शतावर या सफेद दूर्वा, मजीठ, सोंठ, असगंध, अपामार्ग, जैतवृक्षकी छाल, मुलैठी, खरैटी, विदारीकंद, सरसों, कूठ, चावल, अलसी, उडद, तिल और सुराबीज इन सबको पीसकर इसमें तीनगुना जौका चूर्ण तथा दही और शहत मिलाकर उबटन करे। इस उद्वर्त्तनसे बल, वर्ण और पुष्टि बढती है१७०–१७२

गौरसर्षपकल्केन गन्धैश्चापि सुगन्धिभिः।
स्नायादृतुसुखैस्तोयैर्जीवनीयौषधैः शृतैः ॥ १७३ ॥
गन्धैः समाल्यैर्वासोभिर्भूषणैश्च विभूषितः।
स्पृश्यान् संस्पृश्य संपूज्य देवताः सभिषग्द्विजान् ॥ १७४ ॥

इष्टवर्णरसस्पर्शं गन्धवत् पानभोजनम्।
इष्टमिष्टैरुपहितं सुखमद्यात्सुखप्रदम् ॥ १७५ ॥

सफेद सरसोंके कल्क और सुगंधित द्रव्योंको मलकर जीवनीय गणोक्त औषधियोंके क्वाथसे ऋतुके अनुसार सुखदायक स्नान करना चाहिये। फिर सुगंध लगाकर फूलमाला, और स्वच्छ वस्त्र और आभूषण धारण करे तथा मंगलद्रव्योंका स्पर्श कर देवता, वैद्य और ब्राह्मणोंका पूजन करे फिर अपने इष्टमित्रोंके साथ प्रिय, रस वर्ण और स्पर्श और गंधसे युक्त सुखपूर्वक अन्नपानका सेवन करना चाहिये॥

पथ्यतम भोजन।

समातीतानि धान्यानि कल्पनीयानि शुष्यताम्।
लघूनि हीनवीर्य्याणि तानि पथ्यतमानि हि ॥ १७६ ॥

शोषरोगियोंके लिये एक वरसके पुराने चावलोंका सेवन कराना हलका और हीन वीर्य होनेके कारण परम पथ्य होता है ॥ १७६ ॥

यक्ष्मामें अन्य पथ्य।

यच्चोपदेक्ष्यते पथ्यं क्षतक्षीणचिकित्सिते।
यक्ष्मिणस्तत्प्रयोक्तव्यं बलमांसाभिवृद्धये ॥ १७७ ॥

तथा क्षतक्षीण चिकित्सामें जो पथ्य कहेंगे वह सब बल और मांस बढानेके लिये यक्ष्मा रोगीको देने चाहिये ॥ १७७ ॥

यक्ष्मामें अन्य उपचार।

अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैरवगाहैर्विमार्जनैः।
बस्तिभिः क्षीरसर्पिर्भिर्मांसैर्मांसरसौदनैः ॥ १७८ ॥
इष्टैर्मद्यैर्मनोज्ञानां गन्धानामुपसेवनैः।
यथर्तुविहितैः स्नानैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ॥ १७९ ॥
सुहृदां रमणीयानां प्रमदानां च दर्शनैः।
गीतवादित्रशब्दैश्च प्रियश्रुतिभिरेव च ॥ १८० ॥
हर्षणाश्वासनैर्नित्यं गुरूणां समुपासनैः।
ब्रह्मचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः ॥ १८१ ॥
सत्येनाचारयोगेन मङ्गलैरविहिंसया।
वैद्यविप्रार्चनाच्चैव रोगराजो निवर्त्तते ॥ १८२ ॥

योग्य तैलकी मालिश करना, उबटन मलना, स्नान, अवगाहन, मार्जन, वस्तिकर्म, घृत, दुग्ध और मांससेवन, मांसके अन्न खाना, इष्ट मद्य पीना, मनोहर गंधोंको सूंघना, ऋतु ऋतुके अनुसार जलोंसे स्नान करना, नवीन और प्यारे वस्त्रोंको धारण करना, इष्टमित्रोंसे मिलना और सुंदर स्त्रियोंका देखना, गीत बाजोंके शब्दों तथा प्यारी बातोंका सुनना, हर्ष और आश्वासनदायक बातोंका सुनना, गुरुजनोंकी नित्यसेवा करना, ब्रह्मचर्य, दान, तप और देवतार्चन नियमोंका पालन करना, सत्यव्रत पालन, मंगलाचार और अहिंसा, वैद्य और विप्रोंका पूजन इनके सेवनसे रोगराज यक्ष्मा दूर होजाता है ॥ १७८–१८२ ॥

प्रयुक्तया यया चेष्टया राजयक्ष्मा पुरा जितः ।
तां वेद विहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ॥ १८३ ॥

प्राचीन कालमें जिस यज्ञके करनेसे यह रोग दूर कियागया था उस वेदोक्त यज्ञको आरोग्य प्राप्तिके लिये करना चाहिये ॥ १८३ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानि प्राग्रूपं रूपसंग्रहः ।
समासव्यासतश्चोक्तं भेषजं राजयक्ष्मणः ॥ १८४ ॥
नामहेतुरसाध्यं च साध्यत्वं कृच्छ्रसाध्यता ।
इत्यर्थसंग्रहः प्रोक्तो राजयक्ष्मचिकित्सिते ॥ १८५ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने राजयक्ष्मचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस राजयक्ष्म चिकित्सित अध्यायमें राजयक्ष्माका प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप और औषधियां संक्षेप तथा विस्तारसे वर्णन कीगई हैं । तथा यक्ष्माके पर्यायवाचक शब्द, हेतु, असाध्यता, साध्यता और कृच्छ्रसाध्यताका कथन किया गया है ॥१८४॥१८५॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां राजयक्ष्मचिकित्सितं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः।

अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम अर्श चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं, इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे॥

आसीनं मुनिमव्यग्रं कृतजप्यं कृतक्षणम्।
पृष्टवानर्शसां युक्तिमग्निवेशः पुनर्वसुम्॥ १॥
प्रकोपहेतुः संस्थानं स्थानं लिंगचिकित्सितम्।
साध्यासाध्यविभागश्च तस्मै तन्मुनिरब्रवीत्॥ इति॥ २॥

एक समय आत्रेय भगवान् जपादिनित्यक्रियासे निवृत्त हो प्रसन्नचित्त निश्चित बैठेहुए थे। उस समय अग्निवेशने अर्श (बवासीर) रोगकी युक्ति, प्रकोपका कारण, आकृति, अधिष्ठान, रूप, चिकित्सा और साध्यता तथा असाध्यताके विषयमें जाननेकी इच्छा प्रगट की। भगवान् पुनर्वसुजीने अग्निवेशके प्रति अर्शरोगके विषयमें इस प्रकार वर्णन करना आरंभ किया॥ १॥ २॥

अर्शके भेद।

इह खल्वग्निवेश! द्विविधान्यर्शांसि। सहजानि कानिचित्कानिचिज्जातस्योत्तरकालजानि। तत्र बीजं गुदबलिबीजोपतप्तमायतनमर्शसां सहजानाम्। तत्र द्विविधौ बीजौ उपतप्तौ, हेतुः मातापित्रोरपचारः पूर्वकृतश्च कर्म। तथा अन्येषामपि सहजानां विकाराणाम्। तत्र सहजानि सहजातानि शरीरेण अर्शांसीत्यधिमांसविकाराः॥ ३॥

हे अग्निवेश! अर्श (बवासीर) रोग दो प्रकारका होता है। एक सहज (जो जन्मसे ही होता है) दूसरा जन्मके अनन्तर अपने कारणोंसे प्रगट होनेवाला। इनमें सहज अर्शके कारण एक तो माता पिताके रज वीर्यका विकार होता है, दूसरा इसके पूर्वजन्मका किया कर्म है। सो सम्पूर्ण सहज रोगोंके यह दो ही कारण होते हैं। सहज अर्श एकप्रकारका अधिमांस रोगही जानना चाहिये॥ ३॥

अर्शका अधिष्ठान।

सर्वेषाञ्चार्शसां क्षेत्रं गुदस्यार्द्धपञ्चमाङ्गुलेऽवकाशे त्रिभागान्तरास्तिस्रो गुदवलयः क्षेत्रमिति देशः॥ ४॥

सम्पूर्ण अर्शोंके प्रकट होनेका स्थान गुदद्वारसे अन्दर साढे पांच अंगुलके बीचमें जो प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी नामकी तीन वलियें हैं यही अर्शरोगके उत्पन्न होनेका क्षेत्र है ॥ ४ ॥

केचित्तु भूयांसमेव देशमुपदिशन्ति अर्शसां शिश्नमपत्यपथं गलमुखनासिकाकर्णाक्षिवर्त्मानि त्वक् च । तदस्त्यधिकमांसदेश एष गुदवलिजानान्त्वर्शांसीति संज्ञा । तत्र अस्मिन्सर्वेषाञ्च अर्शसामधिष्ठानं मेदो मांसं त्वक् च ॥ ५ ॥

कोई ऐसा मानते हैं कि अर्शरोगके प्रगट होनेका स्थान केवल गुदा ही नहीं किंतु और भी बहुतसे स्थान हैं जैसे लिंगेन्द्रिय, योनिद्वार, गला, मुख, नासिका, कान, नेत्रोंकी पलकें और त्वचा । परन्तु इन स्थानोंमें होनेवाले अर्शाकार रोगको अर्श नहीं कहते वह अधिमांस कहाजाता है । और गुदाकी तीन वलियोंमें होनेवाले मस्सोंको ही अर्श (बवासीर) कहते हैं । सब प्रकारके अर्शोंका अधिष्ठान मेद, मांस और त्वचा ही होते हैं ॥ ५ ॥

सहजार्शका वर्णन ।

तत्र सहजानि अर्शांसि कानिचिदणूनि कानिचिन्महान्ति कानिचिद्दीर्घाणि कानिचिद्ध्रस्वानि कानिचिद्वृत्तानि कानिचिद्विषमविसृतानि कानिचिदन्तः कुटिलानि कानिचिद्बहिः कुटिलानि कानिचिज्जटिलानि कानिचिदन्तर्मुखानि यथास्वं दोषानुबन्धवर्णानि ॥ ६ ॥

सहज अर्शमें जो मस्से होते हैं वह कोई बहुत छोटे, कोई बडे, कोई लंबे, कोई गोल, कोई टेढेसे फैले हुए, कोई भीतरको मुडेहुएसे, कोई बाहरको निकलेहुए, कोई जटिल (खिंडेहुएसे) कोई पतले मुखवाले होते हैं । इनमें जिस दोषका अनुबन्ध हो उनके उसी दोषके अनुरूप वर्ण लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

तैरुपहतो जन्मप्रभृति भवति अतिकृशो विवर्णः क्षामो दीनः प्रचुरविबद्धवातमूत्रपुरीषः शार्करी चाश्मरी वा तथा नियतविबद्धमुक्तपक्वामशुष्कभिन्नवर्चा अन्तरान्तरा श्वेतपाण्डुहरितपीतरक्तारुणतनुसान्द्रपिच्छिलकुणपगन्धामपुरीषोपवेशी नाभिवस्तिवंक्षणोद्देशे प्रचुरपरिकर्त्तिकान्वितः सशूलगुदप्रवाहिकः परिहर्षप्रमेहप्रसक्तविष्टम्भान्त्रकूजोदावर्त्तहृदयेन्द्रियोपलेपः प्रचुरविबद्धतिक्ताम्लोद्गारः सुदुर्बलो

दुर्बलाग्निरल्पशुक्रः क्रोधनो दुःखोपचारशीलः कासश्वासतमकतृष्णा-हृल्लासच्छर्दिररोचकाविपाकपीनसक्षवथुपरीतस्तैमिरिकः शिरःशूली क्षामभिन्नसन्नसक्तजर्जरस्वरः कर्णरोगी सशूनपाणिपादवदनाक्षि-कूटः सज्वरः साङ्गमर्दः सर्वपर्वास्थिशूली च। अन्तरान्तरा पार्श्व-कुक्षिबस्तिहृदयपृष्ठत्रिकग्रहोपतप्तः प्रध्यानपरः परमालसश्चेति जन्म-प्रभृति। अस्य गुदजैरावृतो मार्गोपरोधाद्वायुरपानः प्रत्यारोहन्समा-नव्यानप्राणोदानान्पित्तश्लेष्माणौ च प्रकोपयाति। ते प्रकुपिताः पञ्च वाताः पित्तश्लेष्माणौ चार्शसामभिद्रवन्ते। एतान्विकारानुपजनयन्ती-त्युक्तानि सहजान्यर्शांसि ॥ ७ ॥

सहज अर्शवाला मनुष्य जन्मकालसे ही कृश, हीनवर्ण, क्षीण और दीन तथा नित्य ही अधोवात, मल और मूत्रके विबंध युक्त रहता है तथा शर्करा और पथरीका रोग बना रहताहै, उनको सदैव विबंध (कब्ज) से रुक २ कर पक्व मल, विनपचा मल, आम, फटाहुआ मल, सूखाहुआ और फटाहुआसा मल उतरता है। और बीच २ में कभी सफेद, पांडुरवर्ण.हरा, पीला, लाल, ताम्रवर्ण, पतला,गाढा, पिच्छिल और मुरदेकीसी दुर्गन्धयुक्त मल निकलता है। जब. वह मनुष्य बैठता है तो इसकी नाभी, वस्ती और वंक्षण (बखिया) में कतरनीकीसी पीडा होने लगती एवं इस मनुष्यके शूल, प्रवाहिका (पेचिस), रोमांच, प्रमेह, अत्यंत विष्टंभ,(काब्जि-यत) अंत्रकूजन, उदावर्त, हृदय और इंद्रियोंका लिपासा रहना, विबंधसे अफारासा होकर खट्टी और कडवी डकार आना, दुर्बलता, अन्नका न पचना, मंदाग्नि, वीर्यकी हीनता, क्रोध और दुःखयुक्त चित्त बना रहना, भोगकी इच्छा रखना, खांसी, श्वास, तमकश्वास, हृल्लास, वमन, अरुचि, अविपाक, प्रतिश्याय (जुकाम), छींक, तिमि-ररोग, मस्तकपीडा, स्वरभंग, स्वरकी क्षीणता, स्वरकी जडता, स्वरकी जर्जरता, कर्ण-रोग, हाथ, पांव, मुख और नेत्रोंका पलकोंमें सूजन, ज्वर, अंगमर्द (अँगडाई), संपूर्ण संधियोंमें पीडा, कभी २ पसली कूख हृदय वस्ती पीठ त्रिक स्थानमें पीडा सदैवचिंता बनारहना, अत्यंत आलस्य होना, जन्मकालसे ही गुदामें प्रगटहुई ववासीरके मस्सोंसे अपानवायु रुक कर ऊपरको गमन करताहुआ समान, व्यान, प्राण और उदान वायुको दूषित करता हुआ पित्त और कफको भी कुपित करदेता है। यह पांच प्रकारके वायु ही पित्त और कफको अर्शरोगमें प्रेरित करतेहुए इन उपरोक्त विकारोंको प्रगट करते हैं ॥ ७ ॥

अत ऊर्ध्वं जातस्योत्तरकालजानि व्याख्यास्यामः ॥ ८ ॥

अब हम जन्म लेनेके अनंतर होनेवाले अर्शरोगका वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

जन्मके अनंतर अर्शके प्रगट होनेका कारण।

गुरुमधुरशीताभिष्यन्दिविदाहिविरुद्धाजीर्णप्रमिताशनासात्म्यभोजनाद्गव्यमात्स्यवाराहमाहिषाजाविकपिशितभक्षणात्कृशशुष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमान्नक्षीरमोदकदधितिलगुडविकृतिसेवनाच्च माषयूषेक्षुरसपिण्याकपिण्डालुकशुष्कशाकशुक्तलशुनकिलाटपिण्डकबिसमृणालशालूकक्रौञ्चादनकशेरुकशृङ्गाटकतरुणविरूढनवधान्यामसूलकोपयोगाद्गुरुफलशाकरागहरितवसाशिरस्पदपर्य्युषितपूतिशीतसङ्कीर्णान्नाभ्यवहरणान्मन्दकातिक्रान्तमद्यपानात् व्यापन्नगुरुसलिलपानादतिस्नेहपानादसंशोधनाद्बस्तिकर्मविभ्रमादव्यवायाद्दिवास्वप्नात्सुखशयनासनोपसेवनाच्चोपहताग्नेर्मलोपचयो भवति अतिमात्रम्।अथोत्कटुकविषमकठिनासनसेवनादुद्भ्रान्तयानोष्ट्रप्रयाणादतिव्यवायाद्बस्तिनेत्रासम्यक्प्रणिधानाद्गुदक्षणनादभीक्ष्णं शीताम्बुसंस्पर्शाच्चेललोष्टतृणादिघर्षणात्प्रततातिनिर्वहणाद्वातमूत्रपुरीषवेगोदीरणात्समुदीर्णवेगविनिग्रहात् स्त्रीणाञ्चामगर्भभ्रंशात् गर्भोत्पीडनाद्बहुविषमप्रसूतिभिश्च प्रकुपितो वायुरपानस्तं मलमुपचितमधोगममासाद्य गुदवलिष्वाधत्ते। ततस्तासु अर्शांसि प्रादुर्भवन्ति ॥ ९ ॥

भारी, मीठे, शीतल, अभिष्यंदी, विरुद्ध, अजीर्णकर्ता, बहुत थोडा और असात्म्य भोजन करनेसे तथा गौ, मछली, वराह, भैंसा, बकरी और मैंढा आदिके मांस खानेसे कृश, सूखाहुआ और सडाबुसा मांस खानेसे, पिष्ट पदार्थ, परमान्न (खीर खोआ आदि), दूध, लड्डू, दही, तिल, गुड इनसे बने हुए पदार्थोंका निरंतर सेवन करनेसे, उडदोंका यूष, ईखका रस, पिण्याक (तिलोंकी पीठी आदि), पिण्डालु, सूखे शाक, सिरका, लहसुन, किलाट, पिंडक, बिस, मृणाल, शालूक, क्रौंचकन्द, कसेरू, सिंघाडे, एवं कच्चे और उगे हुए तथा नवीन धान्योंके सेवनसे, कच्ची मूलीको अत्यंत और निरंतर खानेसे, भारी फल, शाक, राग खांडव, हरित (सब्जी) पशुपक्षियोंके मस्तक चर्बी और पैरोंको खानेसे बासी दुर्गंधित, ठंढा और संकीर्ण भोजन करनेसे मंदक, दही और मद्य इनके अधिक पीनेसे, दूषित और गुरुपाकी

जलके सेवनसे, अधिक स्नेहपान करनेसे, संशोधन न करानेसे बस्तिकर्मके मिथ्यायोग होनेसे, अव्यवायसे, दिनमें सोनेसे, सुखपूर्वक सुंदर आसन, शय्या आदिपर अधिक बैठेरहनेसे, अग्नि मंद होजाती है उससे मलकी वृद्धि होती है । एवं पावोंके भारसे बैठने तथा विषम और कठोर आसनपर बैठे रहनेसे, बहुत हिलने झुलनेवाली उद्भ्रान्त सवारीमें बैठनेसे, ऊँट पर चढनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, बस्तिकर्मके समय बस्तिकी नलीका मिथ्यायोग होनेसे, गुदाको यथोचित शुद्ध न रखनेसे, मलद्वारमें अत्यंत शीतल जलके स्पर्शसे, (उष्णजलके साथ धोनेसे) कपडा, मट्टीका ढेला, या घास आदि लेकर गुदाको घिसनेसे, निरंतर किनछने (गुदाको बाहरकी ओर ढकेलनेका यत्न करने) से मल मूत्र वातको विना वेग त्यागनेसे, इनके उपस्थित वेगोंको रोकनेसे एवं स्त्रियोंके गर्भपात, गर्भका उत्पीडन होनेसे अथवा अधिक प्रसव या प्रसवकी विषमता होनेसे अपानवायु कुपित होकर उस उपचित मलसे अधोगमनके समय मिलकर गुदाकी तीन वलियोंको बाधनकर उनमें अर्श (बवासीर) रोगको प्रकट करता है ॥ ९ ॥

दोषभेदसे आकृति ।

सर्षपमसूरमाषमुद्गमकुष्ठकयवकलायपिण्डिटिण्टिकेरखर्जूरकर्कन्धुकाकणन्तिकाबिम्बीबदरकरीरोदुम्बरजाम्बवगोस्तनाङ्गुष्ठकशेरुकश्रृङ्गाटकश्रृङ्गीदक्षशिखिशुकतुण्डजिह्वामुकुलकर्णिकासंस्थानानि सामान्याद्वातपित्तकफप्रबलानि ॥ १० ॥

वात पित्त तथा कफकी प्रबलतावाले अर्शों (बवासीरके मस्सों) की आकृति सामान्यतासे सरसों, मसूर, माष, मूंग, मोठ, जव, कलाय, करीरके फल, खजूर, छोटा बेर, चिर्भटी, कंदूरी, बेर, बांसके बीज, गूलर, जामन, दाख, अंगूठा, कसेरु, सिंघाडा, काकडासिंगीसमान आकारवाले तथा मुर्गा, मोर तोता इनकी चोंच या जीभके समान अथवा फूलकी कलीके समान आकृति होती है ॥ १० ॥

वातार्शके लक्षण ।

तेषामयं विशेषः । शुष्कम्लानकठिनपरुषरूक्षश्यावातितीक्ष्णाग्राणि वक्राणि स्फुटितमुखानि विषमविस्तृतानि शूलाक्षेपतोदस्फुरणचिमिचिमासंहर्षणपरीतानि स्निग्धोष्णोपशयानि प्रवाहिकाध्मानशिश्नवृषणबस्तिवंक्षणहृद्ग्रहाङ्गमर्दहृदयप्रबलानि प्रततविबद्धवातमूत्रवर्चांसि कठिनवर्चांस्यूरुकटीपृष्ठत्रिकपार्श्वकुक्षिबस्तिशूलशिरोऽभितापक्षवथूद्गारप्रतिश्यायकासोदावर्तायासशोषशोथमूर्च्छारोचकमुखवैरस्यतैमि-

र्यकण्डूनासाकर्णशंखशूलस्वरोपघातकराणि श्यावारुणपरुषनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्य वातोल्वणानि अर्शांसीति विद्यात् ॥ ११॥

उनमें वातादिभेदसे यह विशेषता (फर्क) होती है । वातोल्वणअर्शके मस्से सूखे, कुम्हलाये हुए, कठिन, खरदरे, रूखे, श्यामवर्ण, आगेसे नोकीले, टेढे, फटेहुए मुखवाले, विषमतासे फैलेहुए, शूलयुक्त, तथा आक्षेप, तोद, स्फुरण (फडकना) और चिमचिमाहट्युक्त हों इनमें रोमांच होता है यह स्निग्ध और उष्ण क्रियाद्वारा शांत होते हैं, यह वातार्शके मस्सोंके लक्षण हैं । वातार्शमें–प्रवाहिका, अफारा तथा शिश्नेन्द्रिय, फोते और वंक्षणमें पीडा, हृदयमें शूल, अंगडाई, हृदयद्रव (हौल) की प्रबलता, निरंतर वात मूत्र और मलका विबंध, मल कठिनतासे उतरे तथा ऊरु कमर पीठ त्रिकस्थान पार्श्व कुक्षि और वस्तिमें पीडा होय । शिरोवेदना, छींक, डकार, प्रतिश्याय, खांसी, उदावर्त, श्रम, शोष, सूजन, मूर्छा, अरोचक, विरसता, अंधकार, खुजली, नाक, कान और कनपटियोंमें पीडा, स्वरभंग तथा नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मल काले और लाल वर्णके होना तथा कठोर होना यह वायुकी अर्श (बवासीर) के लक्षण जानना ॥ ११ ॥

वातार्शके कारण ।

भवतश्चात्र–कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च ।
प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यमैथुनसेवनम् ॥ १२ ॥
लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च ।
तीक्ष्णो वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसामिति ॥ १३ ॥

यहां कहते हैं कि कषैले, कडुवे, चरपरे, रूखे, शीतल और लघु पदार्थोंका अधिक सेवन करना, अल्पभोजन तीक्ष्ण मद्य तथा मैथुनका अधिक सेवन, शीत काल, शीत देश, अधिक व्यायाम, तीक्ष्णवायुका स्पर्श यह सब वातार्श होनेके हेतु हैं १२-१३

पित्तार्शका स्वरूप ।

तत्र यानि मृदुशिथिलसुकुमाराणि अस्पर्शासहानि रक्तपीतनीलकृष्णानि स्वेदोपक्लेदबहुलानि विस्रगन्धीनि तनुपीतरक्तस्राविणि दाहकण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्ति शिशिरोपशयानि संभिन्नपीतहरितवर्चांसि पीतविस्रगन्धप्रचुरविण्मूत्राणि पिपासाज्वरतमकसंमोहभोजनद्वेषकराणि पीतनखनयनत्वङ्मूत्रपुरीषस्य पित्तोल्वणानि अर्शांसीति विद्यात् ॥ १४ ॥

जिस बवासीरके मस्से नम्र, शिथिल, सुकुमार, स्पर्श न सहनेवाले, पीले, नीले,

लाल, और काले वर्णके हों, जिनमें स्वेद और क्लेदकी अधिकता हो, दुर्गंधयुक्त पतला पीलेरंगका रुधिर स्रवताहो, सब मस्सोंमेंसे रुधिरका स्राव हो, उनमें दाह, खाज, शूल, तोद और पाक हो और जिनमें शीतल द्रव्योंके सेवनसे शान्ति प्रतीत हो एवं पीले और हरे वर्णका मल उतरता हो तथा दुर्गंधयुक्त हलदीके समान मल मूत्र पीले वर्णके हों और प्यास, ज्वर, तमकश्वास, मोह और अन्नसे द्वेष हो, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मल, मूत्र यह सब पीतवर्णके हों ये लक्षण पित्तोल्बण अर्शके जानने ॥ १४ ॥

पित्तार्शके हेतु।

भवतश्चात्र—कट्वम्ललवणक्षारव्यायामाग्न्यातपप्रभाः।
देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ १५ ॥
विदाहि तीक्ष्णमुष्णञ्च सर्वं पानान्नभेषजम्।
पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ १६ ॥

यहां कहा है कि चरपरे, खट्टे, नमकीन और खारे पदार्थोंके सेवनसे, अधिक कसरत करना, अधिक धूपका सहना, गर्मदेश, उष्ण काल, क्रोध, मद्यपान, ईर्षा और सब प्रकारके दाहकर्त्ता, तीक्ष्ण, उष्ण अन्नपान और औषधका सेवन यह सब पित्तोल्बण अर्शके प्रकोप होनेके हेतु कहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

कफोल्बण अर्शका स्वरूप।

तत्र यानि प्रमाणवन्ति उपचितानि श्लक्ष्णानि स्पर्शसहानि श्वेतपाण्डुपिच्छिलानि स्तब्धानि गुरूणि स्तिमितानि सुप्तसुप्तानि स्थिरश्वयथूनि कण्डूबहुलानि प्रततपिञ्जरश्वेतरक्तपिच्छास्रावीणि गुरुपिच्छिलश्वेतमूत्रपुरीषाणि रूक्षोष्णोपशयानि प्रवाहिकातिमात्रोत्थानवंक्षणआनाहवन्ति परिकर्त्तिकाहृल्लासनिष्ठीविकाकासारोचकप्रतिश्यायगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रशोषशोथपाण्डुरोगशीतज्वराश्मरीशर्कराहृदयेन्द्रियास्योपलेपास्यमाधुर्य्यप्रमेहकराणि दीर्घकालानुपशयानि अतिमात्रमग्निमार्दवक्लैब्यकराणि आमविकारप्रबलानि गुरूणि च शुक्लनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्य श्लेष्मोल्वणानि अर्शांसीति विद्यात् ॥ १७ ॥

जिस अर्शके मस्से प्रमाणशाली, पुष्ट, चिकने, सुडौल, स्पर्शके सहनेवाले, सफेद, पीले, पिच्छिल, स्तब्ध, भारी, गीले, अत्यन्त सुन्न, स्थिर, सूजन और खाजयुक्त

हों, जिनमें निरन्तर पीला, सफेद, लाल, गाढा और पिच्छिल स्राव होता हो और मूत्र, मल, गाढे और सफेद हों, तथा उष्णद्रव्योंके सेवनसे शान्ति प्रतीत होतीहो एवं प्रवाहिका, वंक्षणोंमें अफारा, कतरनेकीसी पीडा, हृल्लास, वारंवार थूकना, खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, गौरवता, मूत्रकृच्छ्र, छर्दी, शोष, सूजन, पाण्डुरोग, शीतज्वर, अश्मरी, शर्करा, हृदय, इन्द्रिय और मुखका कफसे लिपासा होना, मुखमें मीठापन, प्रमेहरोग होना, अर्शका बहुत समय तक बने रहना, अत्यंत मंदाग्नि, क्लीबता, आमविकार, इन प्रबल उपद्रवोंका होना एवं नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका श्वेतवर्ण होना यह सब कफकी बवासीरके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

कफार्शके हेतु ।

भवन्ति चात्र–मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ।
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः ॥ १८ ॥
प्राग्वातसेवा शीतौ च देशकालावचिन्तनम् ।
श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ १९ ॥

मीठे, चिकने, शीतल, नमकीन, खट्टे और भारी द्रव्योंका अधिक सेवन, व्यायाम न करना, दिनमें सोना, अधिक सोना, आरामसे बैठे रहना, पूर्वकी पवनका सेवन करना, शीतल देश, शीतकाल, किसी प्रकारकी भी चिन्ता न होना यह कफकी बवासीरके कारण हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्बणानि च ।
सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणैः समम् ॥ २० ॥

दो दोषोंके हेतु और लक्षणोंके मिलनेसे द्विदोषज अर्श जानना । सन्निपातके अर्शमें तीनों दोषोंके हेतु और लक्षण होते हैं यह अर्श सहज अर्शके समान होतीहै २०

अर्शके पूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च ।
कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ २१ ॥
ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्त्तिराशङ्का चोदरस्य च ।
पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ २२ ॥

अन्नका विष्टम्भके साथ परिपाक होना, दुर्बलता, कूखमें अफारासा होना, कृशता, अधिक डकार आना, दोनों जांघोंका रहसा जाना, मलका थोडा २ उतरना, ग्रहणी-दोष, पाण्डुरोग, उदरपीडा, बारबार मलत्यागकी शंका होना, यह सब अर्श (बवा-सीर) के पूर्वरूप कहे हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

सब अर्शोंको त्रिदोषत्व।

अर्शांसि खलु जायन्ते नासन्निपतितैस्त्रिभिः।
दोषैर्दोषविशेषात्तु विशेषः कल्प्यतेऽर्शसाम् ॥ २३ ॥

सब प्रकारके अर्शरोगोंमें तीनों दोषोंका सम्बन्ध होताहै। विना तीनों दोषोंके कोपके अर्शरोग होता ही नहीं, परन्तु इनमें जो दोष प्रबल होताहै उसीके नामसे अर्शकी कल्पना की जातीहै ॥ २३ ॥

अर्शकी कृच्छ्रता।

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रयम्।
सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ २४ ॥
तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च।
सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ २५ ॥

अर्शरोगके प्रकट होनेसे प्राणवायु आदिक पांचों वायु पित्त और कफ तथा गुदाकी तीनों वलियें एकसाथ दूषित होजाती हैं। इसीलिये बहुतसी व्याधियोंको करनेवाला और संपूर्ण देहको उपतापित (कष्ट) करनेवाला यह अर्शरोग कष्टसाध्य होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

असाध्य अर्शके लक्षण।

हस्ते पादे गुदे नाभ्यां मुखे वृषणयोस्तथा।
शोथो हृत्पार्श्वशूलश्च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः ॥ २६ ॥
हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग् ज्वरः।
तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ २७ ॥

जिस अर्शरोगमें हाथ, पांव, गुदा, नाभि, मुख और अण्डकोशोंमें सूजन प्रकट होजाय, हृदय और पसलीमें शूल हो, वमन, संमोह, अंगोंमें पीडा, ज्वर, तृषा, गुदाके अग्रभागका पकना यह लक्षण हों वह अर्श रोगीको मारडालताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम्।
जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ २८ ॥
शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते।
याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा ॥ २९ ॥
द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ३० ॥

एवं जो सहज अर्श त्रिदोषसे कुपित होकर गुदाकी भीतरकी वलीमें आश्रित होजाती है, वह भी असाध्य है। यदि मनुष्यकी आयु शेष हों और चिकित्साके चारों पाद सर्वगुण सम्पन्न हों तथा जठराग्नि बलवान् हो तो उपरोक्त रोगी याप्यसाध्य होता है, नहीं तो असाध्य जानना.यदि द्वन्द्वज अर्श गुदाकी दूसरी वलीके आश्रित हो अथवा एक बरससे अधिकका हो वह सब अर्श कष्टसाध्य जानना ॥ २८-३० ॥

साध्यार्श।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ३१ ॥
तेषां प्रशमने यत्नमाशु कुर्य्याद्विचक्षणः।
तान्याशु हि गुदं बद्धा कुर्युर्बद्धगुदोदरम् ॥ ३२ ॥

जिस अर्शके मस्से गुदाकी बाहरवाली वलीमें हों तथा एकदोषकी प्रबलतासे उत्पन्न हुए हों और एक वर्षसे भीतरके हों वह सुखसाध्य जानने उनके शान्त करनेके लिये चतुर वैद्य शीघ्र ही यत्न करे। अर्शरोगकी चिकित्सामें विलंब करनेसे अर्श गुदाके मार्गको रोककर बद्धगुदोदर रोगको प्रगट कर देते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शस्त्रादि कर्म।

तत्राहुरेके शस्त्रेण कर्त्तनं हितमर्शसाम्।
दाहं क्षारेण चाप्येके दाहमेके तथाग्निना ॥ ३३ ॥
अस्त्येतद्भूरितन्त्रेण धीमता दृष्टकर्मणा।
क्रियते त्रिविधं कर्म भ्रंशस्तस्य सुदारुणः ॥ ३४ ॥
पुंस्त्वोपघातः श्वयथुर्गुदे वेगविनिग्रहः।
आध्मानं दारुणं शूलं व्यथा रक्तातिवर्त्तनम् ॥ ३५ ॥
पुनर्विरोहो रूढानां क्लेदो भ्रंशो गुदस्य च।
मरणं वा भवेच्छीघ्रं शस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ॥ ३६ ॥

कोई कहते हैं कि अर्शरोगके मस्सोंको शस्त्रसे काटकर निकाल देना हित है। किसीके मतमें क्षारकर्म अथवा अग्निकर्मसे दग्ध करदेना ही श्रेष्ठ माना है। सो शास्त्रके जाननेवाले दृष्टकर्मा (क्रियाकुशल) बुद्धिमान् वैद्यको ही समयानुसार इन तीनों उपायोंमेंसे जिस समय जो उचित हो सो करना चाहिये। इनमें किसी प्रकारका क्रम भ्रंश होनेसे भयंकर उपद्रव होजाते हैं। इसलिये यह कर्म सिद्धहस्त वैद्यके ही करनेके हैं। शस्त्र,क्षार और अग्निकर्म इनमें किसी प्रकारका विभ्रम होनेसे नपुंसकता,

गुदामें सूजन, मलमूत्रादिवेगोंका विघात, अफारा, दारुण शूल, पीडा, रुधिरकी प्रवृत्ति, मस्सोंका फिर प्रकट होजाना, क्लेद, गुदाका निकलना, अथवा बिगडजाना तथा मृत्यु यह घोर उपद्रव शीघ्र होजाते हैं ॥ ३३–३६ ॥

यत्तु कर्म सुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ।
तदर्शसां प्रवक्ष्यामि समूलानां निवृत्तये ॥ ३७ ॥

अब हम अर्शरोगकी समूल निवृत्तिके लिये उन सुखसाध्य उपायोंका कथन करते हैं जिनमें किसी प्रकारकी कठिनता और कर्मभ्रंश होनेके दारुण उपद्रवोंका भय नहीं है ॥ ३७ ॥

वातश्लेष्मोल्बणान्याहुः शुष्काण्यर्शांसि तद्विदः ।
प्रस्राविणि तथार्द्राणि रक्तपित्तोल्बणानि च ॥ ३८ ॥

अर्शके ज्ञाता वैद्यजन वात और कफप्रधान अर्शको सूखी अर्श कहते हैं । और रक्तपित्त प्रधान अर्शको स्राव तथा गीली अर्श कहते हैं ॥ ३८ ॥

तत्र शुष्कार्शसां पूर्वं प्रवक्ष्यामि चिकित्सितम् ।
स्तब्धानि स्वेदयेत्पूर्वं शोफशूलान्वितानि च ॥ ३९ ॥
चित्रकक्षारबिल्वानां तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ।
यवमाषपुलाकानां कुलत्थानाञ्च पोट्टलैः ॥ ४० ॥
गोखराश्वशकृत्पिण्डैस्तिलकल्कैस्तुषैरपि ।
वचाशताह्वापिण्डैर्वा सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः ॥ ४१ ॥
सक्तूनां पिण्डिकाभिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा ।
शुष्कमूलकपिण्डैर्वा पिण्डैर्वा कार्ष्णगन्धिकैः ॥ ४२ ॥
रास्नापिण्डैः सुखोष्णैर्वा सस्नेहैर्हपुषैरपि ।
इष्टकस्य खराह्वायाः शाकैर्गृञ्जनकस्य च ।
अभ्यज्य कुष्ठतैलेन स्वेदयेत्पोट्टलीकृतैः ॥ ४३ ॥

अब हम प्रथम सूखी अर्शकी चिकित्साका कथन करते हैं। जो अर्श (ववासीर) स्तब्ध, सूजन और पीडायुक्त हो उसमें चित्रक, जवाखार और बेलके फलोंका तैल लगाकर फिर नीचे लिखे द्रव्योंके प्रयोगसे स्वेदन करे । जैसे–जौ, उडद, पुलाकधान्य और कुल्थी इनको पकाकर पोटलीमें बांध इस पोटलीसे उन मस्सोंको धीरे २ स्वेदन करे । अथवा गौका गोबर, गधे और घोडेकी लीदका गीलागीला गोला बना-

कर उस गोलेको कपडेमें लपेट गर्म कर उससे मस्सोंको स्वेदन करे। अथवा तिलोंका कल्क और तुषोंसे अथवा वच और सौंफको पीसकर स्नेहयुक्त कर सुखोष्ण स्वेदन करे। या घृत और तैलके योगसे चिकने किये सत्तुओंकी पिंडीसे स्वेदन करे। अथवा सूखी मूलीके पिंडसे या सुहांजनेके कल्कसे वा सुखोष्ण रासनाके पिंडसे अथवा स्नेहयुक्त हाउबेरके पिंडसे स्वेदन करे। अथवा कूठका तेल चोपटकर ईंट, खुरासानी अजवायन अथवा अजमोद और सलजमके सागकी पोटली बनाकर स्वेदन करे ॥ ३९–४३ ॥

वृषार्कैरण्डबिल्वानां पत्रोत्क्वाथैश्च सेचयेत् ॥ ४४ ॥
मूलकत्रिफलार्काणां वेणूनां वरुणस्य च।
अग्निमन्थस्य शिग्रोश्च पत्राण्यश्मन्तकस्य च ॥ ४५ ॥
जलेनोत्क्वाथ्य शूलार्त्तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत्।
कौलोत्क्वाथेऽथ वा कोष्णे सौवीरकतुषोदके ॥ ४६ ॥
बिल्वोत्क्वाथेऽथवा तक्रे दधिमण्डाम्लकाञ्जिके।
गोमूत्रे वा सुखोष्णे तं शूलार्त्तमुपवेशयेत् ॥ ४७ ॥
कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतुकावृषदंशजाम्।
वसामभ्यञ्जनं कुर्य्याद्धूपनञ्चार्शसां हितम् ॥ ४८ ॥

यदि अर्शके मस्सोंमें अधिक शूल होता हो तो अडूसा, आक, एरंड और बेलके पत्तोंके क्वाथसे मस्सोंको सेचन करे। अथवा शूलसे पीडित अर्शवालेके मस्सोंपर तैल लगाकर मूली, त्रिफला, आक, बांस, बर्ना, अरणी, सुहांजना और अश्मंतकका क्वाथ बनाकर उस क्वाथमें रोगीको बिठावे अथवा बेरके क्वाथमें या सौवीरक अथवा तुषोदक या बेलका क्वाथ अथवा छाल या खट्टी कांजी अथवा किंचित् गर्म गोमूत्रमें बिठावे, या इन क्वाथोंका अर्शपर तरडा देवे। काला सांप, वराह, ऊंट, चमगीदड अथवा बिल्लीकी चरबीको लेकर बवासीरके मस्सोंपर मालिश करे॥४८॥

अर्शपर धूनी।

नृकेशाः सर्पनिर्मोको वृषदंशस्य चर्म च।
अर्कमूलं शमीपत्रमर्शोभ्यो धूपनं हितम् ॥ ४९ ॥

मनुष्यके केश, सर्पकी कांचुली, बिल्लीका चमडा, आककी जड और शमीवृक्षके पत्रोंको कूटकर आगपर डाल बवासीरके मस्सोंको धूनी देना हितकारक है ४९

तुम्बुरूणि विडङ्गानि देवदार्वक्षता घृतम् ।
बृहती चाश्वगन्धा च पिप्पल्यः सुरसा घृतम् ।
वराहवृषविट् चैव धूपनं सक्तवो घृतम् ॥ ५० ॥

धनियां, बायविडंग, देवदारु, सफेद सरसों, घी अथवा बडी कटेरी असगंध पीपल, सुरसा, तुलसी और घृतकी धूनी या वराहकी विष्ठा, बैलके गोवर, सत्तू और घीकी धूनी देना अर्शरोगमें हितकारी है ॥ ५० ॥

अर्शपर लेप ।

कुञ्जरस्य पुरीषं तु घृतं सर्जरसो रसः ॥ ५१ ॥
हरिद्राचूर्णसंयुक्तं सुधाक्षीरं प्रलेपनम् ।
गोपित्तपिष्टाः पिप्पल्यः सहरिद्राः प्रलेपनम् ॥ ५२ ॥
शिरीषबीजं कुष्ठञ्च पिप्पल्यः सैन्धवं गुडः ।
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ ५३ ॥
पिप्पल्यश्चित्रकाः श्यामाः किण्वं मदनतण्डुलाः ।
प्रलेपः कुक्कुटशकृद्धरिद्रागुडसंयुतः ॥ ५४ ॥
निकुम्भः साम्रृतासङ्गः पारावतशकृद् गुडः ।
प्रलेपः स्याद्गजास्थीनि निम्बो भल्लातकानि च ॥ ५५ ॥

हाथीकी लीद, घी, राल, शिलारस, हल्दीका चूर्ण और थोहरके दूधको रगडकर बवासीरके मस्सोंपर लेप करनेसे मस्से दूर होते हैं । अथवा पीपल और हलदीको गोपित्तमें मिलाकर लेप करे । अथवा सिरसके बीज, कूठ, पीपल, सेंधानमक, गुड, आकका दूध, थोहरका दूध और त्रिफला इन सबको मिलाकर लेप करे या पीपल, चित्रक, सारिवाकी जड, सुराबीज, मैनफल, विडंग, चावल, मुर्गेकी बीट, हलदी और गुड इन सबको मिलाकर लेपकरे । अथवा जमालगोटेकी जड, मुर्दाशंख (या नीला थोथा), कबूतरकी बीट, गुड, हाथीदांतका चूर्ण, नीमके बीज और भेलावे इन सबको पीसकर अर्शके मस्सोंपर लेप करे ॥ ५१-५५ ॥

प्रलेपः स्यादलर्केण वासन्तकवसायुतः ।
शूलश्वयथुहृद्रोगेषूलूकीवसयाऽथवा ॥ ५६ ॥
आर्कं पयः सुधाकाण्डं कटुकालाबुपल्लवाः ।
करञ्जो वस्तमूत्रञ्च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ५७ ॥

यदि अर्शरोगमें शूल, सूजन और हृदयरोग हो तो ऊंटकी चर्बी, सफेद आकका दूध और उल्लूकी चर्बी मिलाकर लेप करे। अथवा आकका दूध, थोहरका टुकडा, कडुवे तुंबेके पत्ते, करंजुएके बीज इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर लेप करना अर्शरोगमें हित है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अभ्यङ्गाद्याः प्रदेहान्ता य एते परिकीर्त्तिताः ।
स्तम्भश्वयथुकण्डूर्तिशमनास्तेऽर्शसां मताः ॥ ५८ ॥
प्रदेहान्तैरुपक्रान्तान्यर्शांसि प्रस्रवन्ति हि ।
सञ्चितं दुष्टरुधिरं ततः सम्पद्यते सुखम् ॥ ५९ ॥
शीतोष्णस्निग्धरूक्षैर्हि न व्याधिरुपशाम्यति ।
रक्ते दुष्टे भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ॥ ६० ॥
जलौकोभिस्तथा शस्त्रैः सूचीभिर्वा पुनः पुनः ।
अवर्त्तमानं रुधिरं रक्तार्शोभ्यः प्रवाहयेत् ॥ ६१ ॥

अभ्यंगसे लेकर प्रदेहपर्यन्त जो प्रयोग कहेगये हैं वह अर्शरोगकी स्तम्भका सूजन, खुजली और पीडाको शान्त करते हैं। इन उपायोंके करनेसे अर्शका संचित हुआ दुष्ट रुधिर निकलकर मस्से बैठजाते हैं उससे शरीरको सुख प्राप्त होताहै। यदि दुष्ट रुधिर न निकले तो शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष उपचारोंके करनेसे अर्शरोग शान्त नहीं होता इसलिये दुष्ट रुधिरको निकालदेना ही चाहिये। यदि दुष्ट रुधिरका स्राव न हो और वह रुधिर विद्यमान रहकर खुजली आदि उपद्रव करता हो तो जोंक अथवा शस्त्र या सुई आदिसे उस रुधिरको बार बार निकालता रहे ॥ ५८-६१ ॥

गुदश्वयथुशूलार्त्तं मन्दाग्निं पाययेत्तु तम् ।
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं पाठां हिंगु सचित्रकम् ॥ ६२ ॥
सौवर्चलं पुष्कराख्यमजाजीं बिल्वपेषिकाम् ।
विडं यमानीं हपुषां विडङ्गं सैन्धवं वचाम् ॥ ६३ ॥
तिन्तिडीकञ्च मण्डेन मद्येनोष्णोदकेन च ।
तथार्शोग्रहणीदोषशूलानाहाद्विमुच्यते ॥ ६४ ॥

यदि गुदामें सूजन और शूल तथा मंदाग्नि यह उपद्रव हों तो उस अर्शरोगीको नीचे लिखे द्रव्योंका पान करावे। सोंठ, मिरच, पीपल, पिप्पलामूल, पाढ, हींग, चीता, संचरनमक, कूठ, काला जीरा, बेलगिरि, विडलवण, अजवायन, हाउबेर, बायविडंग,

सेंधानमक, वच, इमली इन सबको सुरामण्ड तथा गर्मजलके साथ पिलावे तो अर्श-रोग, ग्रहणीविकार, शूल और अफारा यह सब दूर होते हैं ॥ ६२–६४ ॥

कुर्य्याद्वा पाचनं तस्य यदुक्तं ह्यातिसारिके ।
सगुडामभयां वाथ प्राशयेत्पौर्वभक्तिकीम् ॥ ६५ ॥
पाययेत त्रिवृच्चूर्णं त्रिफलाया रसेन वा ।
हृते गुदाश्रये दोषे गच्छन्त्यर्शांसि संक्षयम् ॥ ६६ ॥

अतिसाररोगमें जिन पाचनयोगोंका वर्णन किया है उनका सेवन करना अथवा हरडे और गुड मिलाकर भोजनसे पहिले सेवन करना या त्रिफलाके रसमें निशोथके चूर्णको मिलाकर पीनेसे गुदाश्रित दोष दूर होकर अर्शरोग भी नष्ट होजाताहै ६५॥६६

गोमूत्राध्युषितां दद्यात्सगुडां वा हरीतकीम् ।
हरीतकीं तक्रयुतां त्रिफलां वा प्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥
सनागरं चित्रकं वा शीधुयुक्तं प्रयोजयेत् ।
चव्यं वा सीधुसंयुक्तमजाजीदीप्यकं पिबेत् ॥ ६८ ॥
सुरां वा हपुषां पाठां युक्तः सौवर्चलायुताम् ।
दधित्थबिल्वसंयुक्तं तथा वा चव्यचित्रकौ ॥ ६९ ॥
भल्लातकयुतं वाथ प्रदद्यात्तत्र तर्पणम् ।
बिल्वनागरयुक्तं वा यमान्या चित्रकेण वा ॥ ७० ॥
चित्रकं हपुषां हिङ्गुं दद्याद्वा तक्रसंयुतम् ।
पञ्चकोलयुतं वापि तक्रमस्मै प्रदापयेत् ॥ ७१ ॥

अथवा हरडेको गोमूत्रमें रात्रिके समय भिगोयदे दूसरे दिन गुडके साथ मिला-कर सेवन करे। अथवा छाँछके साथ हरडे, या छाँछयुक्त त्रिफलेका सेवन करावे। अथवा सोंठ और चित्रकके चूर्णको शीधुमद्यके साथ सेवन करे। अथवा शीधुके साथ चव्यका चूर्ण वा सीधुके साथ काला जीरा और अजवायनका चूर्ण पीवे। अथवा सुराके साथ हपुषाचूर्ण या संचरनिमक मिलाकर पाढेका चूर्ण पीवे। अथवा कैथ और बेलगिरिका क्वाथ वा चव्य और चित्रकका क्वाथ पीवे। अथवा सुधे भिलावोंको तर्पणके साथ पीवे। अथवा बेलगिरि और सोंठ वा अजवायन और चित्रक, वा चित्रक, हबुषा और हींगको छाँछमें मिलाकर देवे। अथवा छाँछके साथ पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ देवे ॥ ६७–७१ ॥

तक्रारिष्ट।

हपुषां कुञ्चिकां धान्यमजाजीं कारवीं शटीम्।
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ॥ ७२ ॥
यमानश्चाजमोदाश्च चूर्णितं तक्रसंयुतम्।
मन्दाम्लकटुकं विद्वान्स्थापयेद्घृतभाजने ॥ ७३ ॥
व्यक्ताम्लकटुकं जातं तक्रारिष्टं मुखप्रियम्।
प्रपिबेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य तृषितस्त्रिषु ॥ ७४ ॥
दीपनं रोचनं वर्ण्यं कफवातानुलोमनम्।
गुदश्वयथुकण्डूवार्त्तिनाशनं बलवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥

हाउबेर सूक्ष्म जीरा (कलौंजी), धनियां, काला जीरा, सौंफ, कचूर, पीपल, पिपलामूल, चीता, गजपीपल, अजवायन और अजमोद इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर तक्रमें मिलादेवे। यह सब मिलाकर स्वादमें किंचित् खट्टा और चरपरा होजायगा। फिर इसको घीके चिकनेपात्रमें भरकर रख देवे। जब देखे कि यह बहुत खट्टा और चरपरे स्वादका बनगया और खानेमें मुखको प्यारा लगनेलगा तो इस तक्रारिष्टको भोजनके समय जब जब प्यास लगे इसको मात्राके अनुसार पीया करे। क्रमसे भोजनके आदि मध्य तथा अन्तमें पीवे। यह दीपन, पाचन, रुचिकारक, वर्णकर्ता, कफ और वायुको अनुलोमन करनेवाला, गुदाकी सूजन, खुजली और पीडाको दूर करनेवाला तथा बलको बढानेवाला है ॥ ७२-७५ ॥

तक्रप्रयोग।

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत्।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ॥ ७६ ॥
वातश्लेष्मार्शसां तक्रात्परं नास्तीह भेषजम्।
तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा ॥ ७७ ॥
सप्ताहं वा दशाहं वा पक्षं मासमथापि वा।
बलकालविशेषज्ञो भिषक्तक्रं प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥
अत्यर्थमृदुकायाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत्।
सायं वा लाजसक्तूनां दद्यात्तक्रावलेहिकाम् ॥ ७९ ॥
जीर्णे तक्रे प्रदद्याद्वा तक्रं पेयां ससैन्धवाम् ॥ ८० ॥

तक्रानुपानं सस्नेहं तक्रौदनमतः परम् ।
यूषैर्मांसरसैर्वापि भोजयेत्तक्रसंयुतैः ॥ ८१ ॥

चित्रककी जडकी छालको पीसकर घडेके भीतर लेप कर देवे । उस घडेमें बनाया हुआ दही अथवा तक्र पीनेसे अर्शरोग दूर होता है, वायु और कफसे उत्पन्न हुए अर्शरोगमें तक्रसे बढकर और कोई औषध नहीं है । इसलिये तक्र (छलबलाया-हुआ दही) दोषानुसार स्निग्ध अथवा रूक्ष भोजनके साथ सेवन करावे । दोषोंका बल और कालको विचारकर वैद्य तक्रको सात दिन अथवा दश दिन या पन्द्रह दिन वा एक महीने तक सेवन करावे । जिस अर्शरोगीकी जठराग्नि मन्द होगई उसकी तक्रद्वारा ही चिकित्सा करनी चाहिये । अथवा सायंकाल खीलोंके सत्तू, तक्रमें मिला-कर चटावे । तक्रके जीर्ण होनेपर तक्र (विना मक्खन निकाली छाछ) में सेंधानमक मिला पिलावे । पानीकी जगह भी तक्रका ही अनुपान करावे । और घृतयुक्त चांव-लोंको भी तक्रके ही साथ खिलावे अथवा तक्रमें ही सिद्ध किया यूष अथवा मांसरसके साथ तक्रमें बनाया अन्न प्रयुक्त करे ॥ ७६–८१ ॥

कालक्रमज्ञः सहसा न च तक्रं निवारयेत् ।
तक्रप्रयोगान्मासान्ते क्रमेणोपशमो मतः ॥ ८२ ॥
अपकर्षो यथोत्कर्षो न त्वन्नादपकृष्यते ।
शक्त्यागमनरक्षार्थं दार्ढ्यार्थमनलस्य च ।
बलोपचयवर्णार्थमेष निर्दिश्यते क्रमः ॥ ८३ ॥

कालक्रमको जाननेवाला वैद्य तक्रके प्रयोगको एकदम ही न छोडादेवे । किंतु जो तक्र एक महीना सेवन कियागया हो उसका क्रमपूर्वक एक महीनेमें ही त्याग करावै जिस प्रकार एक महीनेमें क्रमक्रमसे तक्रका प्रयोग बढायागया हो उसी क्रमसे दूसरे महीनेमें घटाना चाहिये । उसका यह क्रम है कि, प्रथम महीनेमें अन्नका परिमाण क्रमसे घटाताजाय और तक्रका बढाता जाय । और दूसरे महीनेमें तक्रका परिमाण घटाताजाय और अन्नका बढाताजाय । इस प्रकार शरीरकी रक्षाके लिये और अग्निकी दृढताके लिये तथा बल पुष्टि और वर्णकी वृद्धिके लिये यह क्रम कहागया है । इस प्रकार तक्रके सेवन करनेसे अर्शरोग निवृत्त होकर फिर कभी नहीं होता ॥८२॥८३॥

रूक्षमर्द्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम् ॥ ८४ ॥
तक्रं दोषाग्निबलवित्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत् ।
हतानि न विरोहन्ति तक्रेण गुदजानि तु ॥ ८५ ॥

भूमावपि निषिक्तं तद्दहेत्तक्रं तृणोलुपम् ।
किं पुनर्दीप्तकायाग्नेः शुष्काण्यर्शांसि देहिनः ॥ ८६ ॥
स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैति यः ।
तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते ॥ ८७ ॥
वातश्लेष्मविकाराणां शतञ्चापि निवर्त्तते ।
नास्ति तक्रात्परं किञ्चिदौषधं कफवातजे ॥ ८८ ॥

दोष, अग्नि और बलको जाननेवाला वैद्य तीन प्रकारसे तक्रका प्रयोग करे। जैसे-१ रूक्षतक्र (घृतरहित छाछ) यह कफप्रधान अर्शमें प्रयुक्त किया जाताहै । २-अर्धोद्धृतस्नेहतक्र (जिसमेंसे आधा मक्खन निकाला गया हो) यह समवातकफके अर्शमें प्रयुक्त कियाजाता है । ३-अनुद्धृतस्नेहतक्र (जिसमेंसे मक्खन बिल्कुल न निकाला हो) यह वातप्रधान अर्शमें प्रयुक्त करना चाहिये । तक्रसेवनसे नष्ट हुआ अर्शरोग फिर कभी प्रकट नहीं होता । तक्रको पृथ्वीमें कांटा, कुशा आदिकी जडोंमें डालनेसे वह जडें भी नष्ट होजाती हैं । फिर यदि दीप्ताग्नि मनुष्यका शुष्क अर्शरोग जातारहे तो क्या आश्चर्य है । तक्रके सेवनसे शरीरके छिद्र शुद्ध होकर संपूर्ण शरीरमें रस उत्तम रीतिसे प्रवाहित होता है । उससे पुष्टि, बल, वर्ण और हर्ष उत्पन्न होता है । और उससे वातकफके सैकडों रोग नष्ट होते हैं। कफवातप्रधान रोगोंमें तक्रसे बढकर कोई औषधि नहीं है ॥ ८४-८८ ॥

अर्शहर पेया।

पिप्पलीं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ।
शृङ्गवेरमजाजीञ्च कारवीं धान्यतुम्बुरुम् ॥ ८९ ॥
बिल्वं कर्कटकं पाठां पिष्ट्वा पेयां विपाचयेत् ।
फलाम्लां यमकस्नेहां तां दद्याद् गुदजापहाम् ॥ ९० ॥
एतैश्चैव खडं कुर्य्यादेतैश्चैव पचेज्जलम् ।
एतैश्चैव घृतं साध्यमर्शसां विनिवृत्तये ॥ ९१ ॥

पीपल, पिपलामूल, चित्रक, गजपीपल, अदरख, कालाजीरा, कलौंजी, धनियां, बेलगिरि, नैपाली धनियां, काकडासिंगी, पाटला, इनको पीसकर इनके साथ पेया बनावे। उस पेयामें अनारका रस, घृत और तेल मिलाकर सेवन करे (पीवे) तो अर्शरोग नष्ट हो । तथा इन्हीं सब द्रव्योंसे खण्डयूष क्काथ और घृत सिद्ध कर पान करे तो अर्शरोग शान्त हो ॥ ८९-९१ ॥

अर्शहर यवागू।

शटीपलाशसिद्धां वा पिप्पल्या नागरेण वा।
दद्याद्यवागूं तक्राम्लां मरिचैरवचूर्णिताम् ॥ ९२ ॥
शुष्कमूलकयूषं वा यूषं कौलत्थमेव वा।
दधित्थबिल्वयूषं वा सकुलत्थमकुष्ठकम् ॥ ९३ ॥
छागलं वा रसं दद्याद्यूषैरेतैर्विमिश्रितम्।
लावादीनां फलाम्लं वा सतक्रं ग्राहिभिर्युतम् ॥ ९४ ॥

कचूर और पलाश (ढाक) के साथ या पीपल और सोंठके साथ यवागू सिद्ध करके उसमें तक्रकी खटाई, काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर अर्शरोगवाले मनुष्यको देवे सूखी मूलीका यूष अथवा कुल्थीका यूष वा कैथ और बेलगिरिका यूष अथवा कुल्थी और मोठका यूष या इन्हीं उपरोक्त यूषोंमें मिलायाहुआ बकरेका मांसरस अथवा अनारका रस और तक्रकी खटाईसे संयुक्त संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ लवा आदिकोंका मांसरस भोजनमें प्रयुक्त करे ॥ ९२–९४ ॥

अर्शमें पथ्य।

रक्तशालिर्महाशालिः कलमो जाङ्गलः सितः।
शारदः षष्टिकश्चैव स्यादन्नविधिरर्शसाम् ॥ ९५ ॥
इत्युक्तो भिन्नशकृतामर्शसाञ्च विधिक्रमः।
येऽत्यर्थं गाढशकृतस्तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ ९६ ॥

लाल शालीचावल, महाशालीचावल, चोहोडा और वासंतीके चावल, जांगल, सित, शारद और साठीचावल इन सबका भात अर्शरोगमें हितकारी है। जिस अर्श रोगवालेका मल फटाहुआ और पतला हो यह चिकित्साविधि उसके लिये वर्णन की गई है। अब कठोर और गाढे मलवाले अर्शरोगीकी चिकित्साका वर्णन करते हैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

सस्नेहैः सक्तुभिर्युक्तां प्रसन्नां लवणीकृताम्।
दद्यान्मत्स्यण्डिकां पूर्वं भक्षयित्वा सनागराम् ॥ ९७ ॥
गुडं सनागरं पाठां फलाम्लं पाययेच्च तम्।
गुडं घृतं यवक्षारं युक्तं वापि प्रयोजयेत् ॥ ९८ ॥

यमानीं नागरं पाठां दाडिमस्य रसं गुडम्।
सतक्रं लवणं दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम्॥ ९९॥

पहिले सोंठका चूर्ण और मिसरी मिलाकर भक्षण करै फिर स्नेहयुक्त सत्तू और सेंधेनमकयुक्त सुरामण्ड पीवे तो अर्शरोगीके मलकी कठोरता दूर हो। अथवा गुड, सोंठ, पाठा, अनारका रस यह सब मिलाकर पीवे या गुड, घृत, जवाखार इनको मिलाकर भक्षण करै अथवा अजवायन, सोंठ, पाटला, अनारका रस, गुड, तक्र, सेंधानमक यह सब मिलाकर पीवे। इन सब योगोंके सेवनसे अधोवायु और मलका अनुलोमन होता है॥ ९७-९९॥

दुःस्पर्शकेन बिल्वेन यमान्या नागरेण वा।
एकैकेनापि संयुक्ता पाठा हन्त्यर्शसां रुजम्॥ १००॥
प्रागुक्तान्यमके भृष्टान्सक्तुभिश्चावचूर्णितान्।
करञ्जपल्लवान्दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनान्॥ १०१॥
मदिरां वा सलवणां सीधुसौवीरकं तथा।
गुडनागरसंयुक्तं पिबेद्वा पौर्वभक्तिकम्॥ १०२॥

जवासा, बेलगिरि, अजवायन और सोंठ इनमेंसे किसी एकके साथ पाटला (पाढ) का क्वाथ पनिसे अर्शरोग दूर होता है। पूर्वोक्त यमक (घृत, तैल) में करंजुयेके पत्रोंको भूनकर सत्तुओंके साथ सेवन करे तो मल और अधोवायुका अनुलोमन होता है। अथवा भोजनसे प्रथम सेंधानमक मिलाकर मद्य पीनेसे या गुड और सोंठ मिलाकर सीधु और सौवीरक पीनेसे अधोवायु और विष्ठाका अनुलोमन होता है॥

अर्शनाशकघृत।

पिप्पलीनागरक्षारकारवीधान्यजीरकैः।
फाणितेन च संयोज्य फलाम्लं दापयेद् घृतम्॥ १०३॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली।
शृङ्गवेरं यवक्षारं तैः सिद्धं वा पिबेद् घृतम्॥ १०४॥
चव्यचित्रकसिद्धं वा गुडक्षारसमन्वितम्।
पिप्पलीमूलसिद्धं वा सगुडक्षारनागरम्॥ १०५॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः।
सिद्धं सर्पिर्विधातव्यं वातवर्चोविबन्धनुत्॥ १०६॥

पीपल, सोंठ, जवाखार, कलौंजी, धनियां, जीरा और फाणित इनमें अनारके रसकी खटाई और घृत मिलाकर सेवन करे अथवा पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, जवाखार, अदरक इनसे सिद्ध किया घृत सेवन करै। अथवा चव्य और चित्रक, अथवा गुड और जवाखारमें मिलाया घृत अथवा पीपलामूलसे सिद्ध किया घृत या गुड जवाखार और सोंठके चूर्णयुक्त घृतको सेवन करै। अथवा पीपल, पीपलामूल, दही, अनारका रस और धनियां इनसे सिद्ध किया घृत सेवन करै तो अधोवायु और मलकी रुकावट दूर होती है ॥ १०३–१०६ ॥

चव्यादि घृत।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारकुस्तुम्बुरूणि च।
यमानीं पिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ १०७ ॥
चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्।
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जाते दध्नि चतुर्गुणे ॥ १०८ ॥
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम्।
गुदवंक्षणशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ १०९ ॥

चव्य, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाढ, जवाखार, धनियां, अजवायन, पीपलामूल, विडलवण, सैंधानमक, चित्रक, बेलगिरि और हरड इन सबका कल्क कर चारगुने दहीके साथ घृतको सिद्धकरे। इस घृतके सेवनसे अधोवात और मलका अनुलोमन होता है तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, परिस्राव, गुदाकी पीडा, वंक्षणोंकी पीडा यह सब नष्ट होजाते हैं ॥ १०७–१०९ ॥

नागरादिघृत।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली।
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वपाठायमानिकाः ॥ ११० ॥
चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचयेत्।
चतुर्गुणेन दध्ना च तद् घृतं कफवातनुत् ॥ १११ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्।
गुदभ्रंशार्त्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ११२ ॥

सोंठ, पिपलामूल, चित्रक, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, बेलगिरी, पाढ और अजवायन इन सबके कल्क और चांगेरीके रस तथा ४ गुने दहीके साथ सिद्ध किया घृत सेवन करनेसे कफवात, अर्शरोग, ग्रहणी विकार, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गदभ्रंश, गुदाकी पीडा और अफारा यह सब दूर होते हैं ॥ ११०–११२ ॥

पिप्पल्यादि घृत।

पिप्पलीं नागरं पाठां श्वदंष्ट्राञ्च पृथक् पृथक् ।
भागांस्त्रिपलिकान् कृत्वा कषायमुपकल्पयेत् ॥ ११३ ॥
कण्डीरं पिप्पलीमूलं व्योषचव्यञ्च चित्रकम् ।
पिष्ट्वा कषाये विनयेत्पूते द्विपलिकं भिषक् ॥ ११४ ॥
पलानि सर्पिषस्तस्मिंश्चत्वारिंशत्प्रदापयेत् ।
चाङ्गेरीस्वरसं तुल्यं सर्पिषा दधि षड्गुणम् ॥ ११५ ॥
मृद्वग्निना ततः साध्यं सिद्धं सर्पिर्निधापयेत् ।
तदाहारे विधातव्यं पाने प्रायोगिके विधौ ॥ ११६ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं गुल्महृद्रोगनाशनम् ।
शोथप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ ११७ ॥
कासहिक्कारुचिश्वाससूदनं पार्श्वशूलनुत् ।
बलपुष्टिकरं वर्ण्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ११८ ॥

पीपल, सोंठ, पाढ और गोखरू यह प्रत्येक तीन तीन पल लेकर क्राथ करे। इस क्राथको छानकर कण्डीरतुलसी, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, चित्रक यह सब दो दो पल लेकर इनका कल्क बनावे। तथा चालीस पल घृत और चालीस पल चांगेरीका रस, घीसे छः गुना, दही इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे घृत सिद्ध करे। इस घृतको विधिपूर्वक सेवन करनेसे ग्रहणीदोष, बवासीर, गुल्म, हृद्रोग सूजन, प्लीहा, उदररोग, अफारा, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खांसी, हिचकी, श्वास, अरुचि और पार्श्वशूल यह सब दूर होते हैं। तथा बल, पुष्टि, वर्ण और जठराग्निको वृद्धि होती है ॥११३–११८॥

हरीतकीप्रयोग।

सगुडां पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां हरीतकीम् ।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥ ११९ ॥
विड्वातकफपित्तानामानुलोम्येन निर्मले ।
गुदेऽर्शांसि प्रशाम्यन्ति पावकश्चाभिवर्द्धते ॥ १२० ॥

घीमें भुनीहुई हरडोंको गुड और पीपलके साथ या निशोथ और दंतीके साथ सेवन करनेसे विष्ठाका अनुलोमन होता है तथा अधोवायु मल, कफ और पित्तका

अनुलोमन होकर गुदा शुद्ध होजाती है और बवासीर नष्ट होती है तथा जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ ११९ ॥ १२०

अन्यशाकादियोग।

बर्हितित्तिरिलावानां रसानम्लान् सुसंस्कृतान्।
दक्षाणां वर्त्तकानाञ्च दद्याद्विड्वातसंग्रहे ॥ १२१ ॥
त्रिवृद्दन्तीपलाशानां चाङ्गेर्य्याश्चित्रकस्य च।
सुभृष्टं यमके दद्याच्छाकं दधिसमन्वितम् ॥ १२२ ॥
उपोदिकां तण्डुलीयं वीरां वास्तुकपल्लवान्।
सुवर्चलां सलोणिकां यवशाकमवल्गुजम् ॥ १२३ ॥
काकमाचीं रुहापत्रं महापत्रं तथाम्लिकाम्।
जीवन्तीशटिशाकञ्च शाकं गृञ्जनकस्य च ॥ १२४ ॥
दधिदाडिमसिद्धानि भृष्टानि यमकेऽपि च।
धान्यनागरयुक्तानि शाकान्येतानि दापयेत् ॥ १२५ ॥

मल और अधोवायुका अवरोध होवे तो मोर, तीतर और लवाके मांसरसको खटाई डालकर सेवन करावे। अथवा निशोथ, दन्ती, पलाश, चांगेरी और चीता इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दहीकी मलाई मिला सेवन करावे। अथवा पोई, चौलाई, काकोली, वथुआ, सोंचली, नौनिया, यवशाक, बावची, मकोय और गिलोयके पत्र, मानशाक, अम्लिका, जीवन्ती, कचूर और गाजर इनके शाकको घी और तेलमें भूनकर दही तथा अनारकी खटाई मिला और धनियां तथा सोंठसे संयुक्त कर सेवन करावै ॥ १२१-१२५ ॥

गोधाश्वावित्सलोपाकमार्जारोष्ट्रगवामपि।
कूर्मशल्लकयोश्चैव साधयेच्छाकवद्रसान् ॥ १२६ ॥
रक्तशाल्योदनं दद्याद्रसैस्तैर्वातशान्तये।
ज्ञात्वा वातोल्बणं रूक्षं दीप्ताग्निं गुदजातुरम् ॥ १२७ ॥
मदिरां शार्करं जातं शीधुं तक्रं तुषोदकम्।
अरिष्टं दधिमण्डं वा शृतं वा शिशिरं जलम् ॥ १२८ ॥
कण्टकार्य्या शृतं वापि शृतं नागरधान्यकैः।
अनुपानं भिषग्दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ १२९ ॥

गोह, सेह, लोपाक, ऊंट, बिलाव, कछुआ, शल्लकी इनके मांसरसको ऊपर कहेहुए शाकोंके समान सिद्ध कर लाल चावलोंके भातके साथ सेवन करनेसे वायुका अर्शरोग शान्त होता है, वातप्रधान अर्शरोगमें रूक्षता और दीप्ताग्नि होनेसे मद्य, शर्कराकी मद्य, सीधु, तक्र, तुषोदक, अरिष्ट, दधिमण्ड, गर्मकर ठण्ढा किया जल अथवा कटेलीसे सिद्धकिया जल या सोंठ और धनियेसे सिद्ध किया जल पीनेके लिये देवे तो अधोवायु और मलका अनुलोमन होता है ॥ १२६–१२९ ॥

अनुवासनयोग्य रोगी।

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरूक्षिताः ।
विलोमवाताः शूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ॥ १३० ॥

जिस अर्शवालेको उदावर्त्त और अत्यंत रूक्षता हो जिसकी वायु विलोमगति होगई हो तथा जो शूलसे पीडित हो उसको अनुवासन कर्म करना हित है ॥ १३० ॥

अनुवासन तैल।

पिप्पलीं मदनं बिल्वं शताह्वां मधुकं वचाम् ।
कुष्ठं शटीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ॥ १३१ ॥
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं पयसा द्विगुणेन च ।
अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ १३२ ॥
गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।
कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वंक्षणाश्रयम् ॥ १३३ ॥
पिच्छास्रावं गुदे शोफवातवर्चोविनिग्रहम् ।
उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात् ॥ १३४ ॥

पीपल, मैनफल, बेलगिरि, सोंफ, मुलैठी, वच, कूठ, कचूर, पोहकरमूल, चित्रक, देवदारु इन सबका कल्क बनाकर दोगुना दूध मिला तैलको सिद्ध करे। यह तैल अनुवासनकर्म, अर्शरोग और मूढवातमें परम उत्तम है। इसके द्वारा अनुवासन करनेसे गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कमर, जांघ और पीठकी दुर्बलता, वंक्षणका अफारा, परिस्राव, गुदाकी सूजन, अधोवायु और विष्ठाका विबंध बारबार दस्तकी शंका होना यह सब दूर होते हैं ॥ १३१–१३४ ॥

आनुवासनिकैः पिष्टैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः ।
दार्वन्तैः स्तब्धशूलानि गुदजानि प्रलेपयेत् ॥ १३५ ॥

दिग्धा तैः प्रस्रवन्त्याशु श्लेष्मपिच्छांसशोणिताः ।
कण्डूः स्तम्भसरुक्शोफः स्रुतानां विनिवर्तते ॥ १३६ ॥

ऊपर कहेहुए अनुवासन तैलके पीपलसे लेकर देवदारुपर्यन्त संपूर्ण द्रव्योंको बारीक पीसकर घृत तैल मिला किंचित् गरम करे फिर इसका लेप करनेसे बवासीरकी कठोरता और शूल नष्ट होजाताहै। और इस लेपसे रक्तसहित चिपटाहुआ गाढा कफ शीघ्र निकलजाता है। उसके निकलनेसे अर्शकी खुजली, कठोरता, पीडा, सूजन यह सब दूर होजाते हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

निरूहण कर्म।

निरूहं वा प्रयुञ्जीत सक्षीरं दशमूलिकम् ।
समूत्रस्नेहलवणं कल्कैर्युक्तं फलादिभिः ॥ १३७ ॥

अथवा दूध, दशमूल, गोमूत्र, चतुःस्नेह, सेंधानमक और मैनफलका क्वाथ करके निरूहणबस्तिकर्म करना चाहिये ॥ १३७ ॥

हरीतकी अरिष्ट।

हरीतकीनां प्रस्थार्द्धं प्रस्थमामलकस्य च ।
स्यात्कपित्थाद्दशपलं ततोऽर्द्धा चेन्द्रवारुणी ॥ १३८ ॥
विडङ्गं पिप्पली लोध्रं मरिचं सैलवालुकम् ।
द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥ १३९ ॥
द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते समावपेत् ।
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत् पक्षं घृतभाजने ॥ १४० ॥
पक्षादूर्द्ध्वं भवेत्पेया ततो मात्रां यथाबलम् ।
अस्याभ्यासादरिष्टस्य नश्यन्ति गुदजानपि ॥ १४१ ॥
ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदरापहः ।
कुष्ठशोफारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ १४२ ॥
सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ।
क्रिमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ १४३ ॥

हरडे आधा प्रस्थ, आँवले एक प्रस्थ, कैथ १० पल, इन्द्रायण ५ पल बायबिडंग, पठानी लोध, काली मिर्च और एलवा प्रत्येक दो पल इन सबको चार द्रोण जलमें डालकर क्वाथ करे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। जब शीतल होजाय

तो इसमें २०० पल गुड मिलाकर घीके चिकने पात्रमें ढककर रखदेवे। पन्द्रह दिनके बाद अग्निके बलके अनुसार उचित मात्रासे सेवन करे। इस अरिष्टके निरन्तर सेवनसे बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, सूजन, अरुचि यह सब नष्ट होते हैं तथा बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है। यह सिद्ध (अनुभव किया हुआ) अभयारिष्ट कामला और श्वित्रकुष्ठको दूर करता है। तथा कृमिरोग, ग्रंथी, अर्बुद, व्यंग, राजयक्ष्मा और ज्वर इन सबको नष्ट करता है ॥ १३८-१४३ ॥

दंत्यरिष्ट।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।
भागान्पलांशानापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १४४ ॥
त्रिफलाया दलानाञ्च प्रक्षिप्य त्रिपलं ततः ।
रसे चतुर्थे शेषे तु पूते शीते समावपेत् ॥ १४५ ॥
तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्द्धं घृतभाजने ।
तन्मात्रया पिबेन्नित्यमर्शोभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ १४६ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनुलोमनम् ।
दीपनञ्चारुचिघ्नञ्च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः ॥ १४७ ॥

दंती, चितेकी जड, दोनों पंचमूल इन बारह औषधियोंको एक एक पल लेवे। त्रिफला तीन पल इन सबको कूटकर एक द्रोण जलमें क्वाथ पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर छानकर ठण्ढा करे फिर इसमें एक तुला गुड मिला घीके चिकने पात्रमें भर १५ दिन पर्यन्त रक्खा रहनेदे। फिर इसमेंसे बलके अनुसार उचित मात्रासे नित्य सेवन करे तो बवासीर, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होते हैं। तथा अधोवायु और मलका अनुलोम होता है यह दंतीअरिष्ट अग्निको संदीपन करनेवाला और अरुचिनाशक है ॥ १४४-१४७ ॥

फलारिष्ट।

हरीतकीफलप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
विशालाया दधित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः ॥ १४८ ॥
द्वे द्वे पले समापोथ्य द्विद्रोणे साधयेदपाम् ।
पादावशेषे पूते च रसे तस्मिन् प्रदापयेत् ॥ १४९ ॥
गुडस्यैकां तुलां वैद्यः संस्थाप्य घृतभाजने ।

पक्षस्थितं पिबेदेनं ग्रहण्यर्शोविकारवान् ॥ १५० ॥
हृत्पाण्डुरोगं प्लीहानं कामलां विषमज्वरम् ।
वर्चोमूत्रानिलकृतान्विबन्धानग्निमार्दवम् ॥ १५१ ॥
कासं गुल्ममुदावर्त्तं फलारिष्टो व्यपोहति ।
अग्निसन्दीपनो ह्येष कृष्णात्रेयेण भाषितः ॥ १५२ ॥

उत्तम हरडे एक प्रस्थ, आँवले एक प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड, कैथके फल, पाढ और चीतेकी जडका छिलका यह प्रत्येक दो दो पल इन सबको कूटकर दो द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश रहनेपर छानकर ठंढा करदेवे। फिर इसमें एक तुला गुड मिला घृतके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। १५ दिनके अनन्तर बलानुसार उचित मात्रासे सेवन करे तो इस फलारिष्टके सेवनसे संग्रहणी, बवासीर, हृद्रोग, पाण्डु, प्लीहा, कामला, विषमज्वर, मलकी रुकावट, मूत्रकी रुकावट, अधोवायुकी रुकावट, मंदाग्नि, खांसी, गुल्म और उदावर्त्त यह सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १४८-१५२ ॥

दुरालभायाः प्रस्थः स्याच्चित्रकस्य वृषस्य च ।
पथ्यामलकयोश्चैव पाठाया नागरस्य च ॥ १५३ ॥
दन्त्याश्च द्विपलान् भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादावशेषे पूते च सुशीते शर्कराशतम् ॥ १५४ ॥
प्रक्षिप्य स्थापयेत्कुम्भे मासार्द्धं घृतभाजने ।
प्रलिप्ते पिप्पलीचव्यप्रियंगुक्षौद्रसर्पिषा ॥ १५५ ॥
तस्य मात्रां पिबेत्काले शार्करस्य यथाबलम् ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषमुदावर्त्तमरोचकम् ॥ १५६ ॥
शकृन्मूत्रानिलोद्गारविबन्धानग्निमार्दवम् ।
हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च सर्वमेतेन साधयेत् ॥ १५७ ॥

जवासा एक प्रस्थ, चित्रक, अडूसा, हरड, आँवला, पाढ, सोंठ, दंती यह प्रत्येक दो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर छानकर ठण्ढा करे फिर इसमें १०० पल खांड मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। परन्तु इसको पात्रमें डालनेसे पहिले पात्रके अन्दर पीपल, चव्य, प्रियंगु, शहद और घी इनका लेप करलेवे। फिर पन्द्रह दिनके अनन्तर बलानुसार उचित मात्रासे सेवन करे तो

बवासीर, संग्रहणी, उदावर्त्त, अरुचि, मलमूत्र और अधोवायुका अवरोध, उद्गार विबंध, मंदाग्नि, हृद्रोग और पाण्डुरोग यह सब दूर होते हैं ॥ १५३-१५७ ॥

नवस्यामलकस्यैकां कुर्य्याज्जर्जरितां तुलाम् ।
कुडवांशं विडङ्गानि पिप्पलीमरिचानि च ॥ १५८ ॥
पाठां मूलञ्च पिप्पल्याः क्रमुकं चव्यचित्रकौ ।
मञ्जिष्ठा नालुकं लोध्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥ १५९ ॥
कुष्ठं दारुहरिद्राञ्च सुराह्वं सारिवाद्वयम् ।
इन्द्राह्वं भद्रमुस्तञ्च कुर्य्यादर्द्धपलोन्मितम् ॥ १६० ॥
चत्वारि नागपुष्पस्य पलान्यभिनवस्य च ।
द्रोणाभ्यामम्भसो द्वाभ्यां साधयित्वावतारयेत् ॥ १६१ ॥
पादावशेषे पूते च शीते तस्मिन्समावपेत् ।
मृद्वीकाद्व्याढकरसं शीतं निर्य्यूहसंमितम् ॥ १६२ ॥
शर्करायाश्च भिन्नाया दद्याद् द्विगुणितां तुलाम् ।
कुसुमस्य रसस्यैकमर्द्धप्रस्थं नवस्य च ॥ १६३ ॥
त्वगेलाप्लवपत्राम्बुसेव्यक्रमुककेशरान् ।
चूर्णयित्वा तु मतिमान् कार्षिकानत्र दापयेत् ॥ १६४ ॥
तत्सर्वं स्थापयेत्पक्षं शुचौ च घृतभाजने ।
प्रलिप्ते सर्पिषा किञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते ॥ १६५ ॥
पक्षादूर्ध्वमरिष्टोऽयं कनको नामविश्रुतः ।
पेयः स्वादुरसो हृद्यः प्रयोगाद्भक्तरोचनः ॥ १६६ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहमुदरं ज्वरम् ।
हृद्रोगं पाण्डुतां शोषं गुल्मवर्चोविनिग्रहम् ॥ १६७ ॥
कासं श्लेष्मामयांश्चोग्रान् सर्वानेवापकर्षति ।
वलीपलितखालित्यं दोषजं च व्यपोहति ॥ १६८ ॥
पत्रभंगोदकैः शौचं कुर्य्यादुष्णेन चाम्भसा ।
इति शुष्कार्शसां सिद्धमुक्तमेतच्चिकित्सितम् ॥ १६९ ॥

नवीन पकेहुए आँवले एक तुला (५सेर) वायविडंग एक कुडव, पीपल एक कुडव, कालीमिर्च एक कुडव और पाढ, पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चित्रक, मंजीठ, एलवा और लोध यह प्रत्येक एक एक पल लेवे। कूठ, दारुहल्दी, देवदारु, दोनों सारिवा, कुडा, भद्रमोथा यह प्रत्येक आधा आधा पल लेवे। नवीन नागकेशर ४ पल लेवे। इन सबको कूटकर दो द्रोण पानीमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। फिर ठंढा होनेपर इसमें दो आढक मुनक्काका रस, दो तुला उत्तम देशी खांड, आधा प्रस्थ उत्तम शहद और एक एक कर्ष दालचीनी, इलायचीके बीज, तेजपात, मोथा, सुगंधवाला, सुपारी, खस और नागकेशर इन सबका पृथक् पृथक् चूर्ण मिलावे। इन सबको मिलाकर पात्रका मुख बन्द कर १५ दिन रक्खा रहने देवे। इस पात्रके भीतर प्रथम ही घृत, अगर और खांडका लेप कर देना चाहिये। इसको कनकारिष्ट कहते हैं: यह मधुर, हृदयको प्रिय, अन्नमें रुचि बढानेवाला परमोत्तम अरिष्ट है। इसके सेवनसे बवासीर, संग्रहणी, अफारा, उदररोग, ज्वर, हृद्रोग, पाण्डुरोग, शोष-रोग, गुल्म, मलकी रुकावट, खांसी और सब प्रकारके प्रबल कफरोग तथा सल-वट पडना, सफेद बाल होना और बालोंका गिरना यह सब रोग नष्ट होते हैं, वात-नाशक पत्रोंके गरम गरम क्वाथसे बवासीरके मस्सोंको धोना सूखी बवासीरको नष्ट करता है। इस प्रकार सूखी अर्शकी अनुभूत चिकित्साका वर्णन कियागया१८-६९

रक्तार्शकी चिकित्सा।

चिकित्सितमिदं सिद्धं स्राविणां शृण्वतःपरम्।
तत्रानुबन्धो द्विविधः श्लेष्मणो मारुतस्य च॥ १७०॥

अब रक्तस्राववाली अर्श (खूनी बवासीर) की सिद्ध चिकित्साका वर्णन करतेहै। उस रक्तस्रावी बवासीरमें दो प्रकारके अनुबंध होते हैं। एकमें कफका अनुबंध और दूसरीमें वायुका अनुबंध होता है॥ १७०॥

वातानुबन्धी रक्तार्श।

विट् श्यावं कठिनं रूक्षञ्चाधोवायुर्न वर्त्तते।
तनु चारुणवर्णञ्च फेनिलञ्चासृगर्शसाम्॥ १७१॥
कट्यूरुगुदशूलञ्च दौर्बल्यं यदि वाऽधिकम्।
तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि विरूक्षणम्॥ १७२॥

जिस रक्तार्शमें मल काला और कठिन तथा रूक्ष हो और अधोवायु न निकल सकता हो तथा रुधिर पतला, लालवर्ण और झागदार आता हो एवं कमर, जांघों और पीठमें पीडा तथा दुर्बलता हो, और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे इसकी उत्पत्ति हुई हो तो इस खूनी बवासीरमें वायुका अनुबंध जानना॥ १७१॥ १७२॥

कफानुबन्धी रक्तार्श।

शिथिलं श्वेतपीतञ्च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम्।
यद्यर्शसां घनञ्चासृक् तन्तुमत् पाण्डु पिच्छिलम् ॥ १७३ ॥
गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धञ्च कारणम्।
श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ १७४ ॥

जिस रक्तार्शमें शिथिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल मल उतरता हो तथा रुधिर गाढा और तारदार कुछ पीतवर्ण, पिच्छिल हो, जिसमें गुदा कफसे लिपीसी रहे तथा गीली रहे और यह अर्श स्निग्ध और भारी पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न हुई हो तो इस खूनी बवासीरमें कफका अनुबंध जानना ॥ १७३ ॥१७४॥

स्निग्धशीतं हितं वाते रूक्षशीतं कफानुगे।
चिकित्सितमिदं तस्मात्सम्प्रधार्य्य प्रयोजयेत् ॥ १७५ ॥

वातानुबंधी रक्तार्शमें स्निग्ध, शीतल और कफानुबंधीमें रूक्ष, शीतल चिकित्साका प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार विचारपूर्वक रक्तार्शमें चिकित्सा करे ॥ १७५ ॥

पित्तश्लेष्माधिकं मत्वा शोधनेनोपपादयेत्।
स्रवणञ्चाप्युपेक्षेत लंघनैर्वा समाचरेत् ॥ १७६ ॥
प्रवृत्तमादावर्शोभ्यो यो निगृह्णात्यबुद्धिमान्।
शोणितं दोषमनिलं तद्रोगाञ्जनयेद्बहून् ॥ १७७ ॥
रक्तपित्तं ज्वरं तृष्णामग्निनाशमरोचकम्।
कामलां श्वयथुं शूलं गुदवङ्क्षणसंश्रयम् ॥ १७८ ॥
कण्ड्वरुः कोठपिडका कुष्ठं पाण्ड्वामयं गदम्।
वातमूत्रपुरीषाणां विबन्धं शिरसो रुजम् ॥ १७९ ॥
स्तैमित्यं गुरुगात्रत्वं तथान्यान् रक्तजान् गदान्।
तस्मात्स्रुते दुष्टरक्ते रक्तसंग्रहणं मतम् ॥ १८० ॥
हेतुलक्षणकालज्ञो बलशोणितवर्णवित्।
कालं तावदुपेक्षेत यावन्नात्ययमाप्नुयात् ॥ १८१ ॥

यदि रक्तार्शमें वायुकी अधिकता न हो और पित्त, कफ प्रबल हों तो पहिले वमन विरेचन आदिसे संशोधन कर फिर चिकित्सा करनी चाहिये। अथवा रक्त-

स्रावको न रोककर लंघनपूर्वक चिकित्सा करे। जो मूर्ख चिकित्सक अर्शके रक्त-स्रावको प्रथम ही रोकदेते है उससे वायु कुपित होकर वातजनित रोग प्रगट होजाते हैं। तथा रक्तपित्तज्वर, तृषा, मंदाग्नि, अरुचि, कामला, सूजन, गुदा और वंक्षणमें पीडा, खुजली, व्रण, चकत्ते, पिडिका, कुष्ठ, पाण्डु, अधोवात, मूत्र और मलका विबंध, मस्तकपीडा, स्तैमित्य, देहमें भारीपन तथा अन्य रुधिरके विकार उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये दूषित रक्तके कारण, लक्षण, समय, बल और वर्ण विचारकर ही रुधिरके स्रावको रोकना चाहिये। जबतक किसी प्रकारके अनिष्ट होनेकी संभावना न हो तबतक बुद्धिमान् वैद्यको बवासीरके रक्तका स्राव न रोकना चाहिये ॥ १७६–१८१ ॥

अग्निसन्दीपनार्थञ्च रक्तसंग्रहणाय च।
दोषाणां पाचनार्थञ्च परं तिक्तैरुपाचरेत् ॥ १८२ ॥
यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोल्बणस्य च।
वर्त्तते स्नेहसाध्यं तत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ १८३ ॥
यत्तु पित्तोल्बणं रक्तं घर्मकाले प्रवर्त्तते।
स्तम्भनीयं तदेकान्तान्न चेद्वातकफानुगम् ॥ १८४ ॥

पीछे अग्निसंदीपनके लिये स्वच्छ रक्तको रोकनेवाली और दोषोंको पचानेवाली तिक्त औषधोंद्वारा चिकित्सा करे। क्षीणदोषवाले वातप्रधान अर्शरोगीका रक्त स्नेहसाध्य होताहै। उस रोगीको स्नेहपान, अभ्यंग और अनुवासन प्रयोगसे शान्त करना चाहिये। पित्तप्रधान रक्तार्शका रुधिर ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त होता है। यदि उसमें वात और कफका अनुबंध न हो तो उसको सर्वथा रोकदेना ही उचित है१८२–१८४॥

संग्राही योग।

कुटजत्वङ्निर्य्यूहः सनागरः स्निग्धरक्तसंग्रहणः।
त्वग्दाडिमस्य तद्वत् सनागरश्चन्दनरसश्च ॥ १८५ ॥
चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क्वथिताः।
रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥ १८६ ॥
सातिविषा कुटजत्वक् फलञ्च रसाञ्जनम्।
मधुयुक्तं रक्तापहं दद्यात्पिपासवे तण्डुलजलेन ॥ १८७ ॥

कुडाकी छालके क्वाथमें सोंठ मिलाकर पीनेसे स्निग्धरक्त बन्द होता है एवं अनारके छिलकेके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे अथवा चंदनके क्वाथमें

सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे रक्तकी प्रवृत्ति बन्द होजाती है । अथवा चंदन, चिरायता, जवासा और सोंठका क्वाथ पीनेसे रक्तार्श दूर होता है । एवं दारुहल्दी, दालचीनी, खस और नीमका क्वाथ सेवन करनेसे अथवा अतीस, कुडाकी छाल, इन्द्रजौ और रसौंत इन सबके चूर्णको शहद और तंडुलजलके साथ जब जब प्यास लगे तब तब पिलाया करे तो रक्तार्श दूर हो ॥ १८५-१८७ ॥

कुटजादि रसायन ।

कुटजत्वचो विपाच्यं पलशतमार्द्रस्य मेघसलिलेन ।
यावद्गतरसद्रव्यं पूतो रसस्ततो ग्राह्यः ॥ १८८ ॥
मोचरसः ससमङ्गः फलिनी च समांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च ।
वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णितमत्र प्रदातव्यम् ॥ १८९ ॥
पूतः क्वथितः सरसो दार्वीलेपस्ततः समवतार्य्यः ।
मात्राकालोपहिता रसक्रियैषा जयति रक्तम् ॥ १९० ॥
छागलिपयसा पीता पेया मण्डेन वा यथाग्निबलम् ।
जीर्णौषधश्च शालीन् पयसा छागेन भुञ्जीत ॥ १९१ ॥
रक्तार्शास्यतिसारं रक्तं सासृक्रुजो निहन्याच्च ।
बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा जयत्युभयभागम् ॥ १९२ ॥

कुडाकी छाल सौ पल लेकर उसको कूटकर आकाशके जलमें पकावे । जब पकते २ छालका रस निकलआवे उसको उतारकर छानलेवे । फिर उसमें मोचरस, वाराहीकंद और प्रियंगुके फूलोंका चूर्ण समभाग लेकर डाले । फिर इन तीनोंके चूर्णके बराबर इन्द्रजवोंका चूर्ण मिलावे । इन सबको फिर आगपर चढाकर पकावे और धीरे धीरे चलाताजावे । जब गाढा होजाय और कडछीसे लगनेलगे तो उतारकर उत्तम चिकने पात्रमें रखदेवे । इसकी मात्रा बल, काल विचारकर सेवन करनेसे खूनी बवासीर नष्ट होती है । इस औषधीको बकरीके दूध या पेया अथवा मण्डके साथ सेवन करना चाहिये । औषध पचजानेपर शालिचावलोंका भात बकरीके दूधके साथ भोजन करावे । इस कुटजरसायनके सेवन करनेसे खूनी बवासीर, रक्तातिसार, रक्तकी पीडा, रक्तजनित विकार और प्रबल रक्तपित्त, ऊर्ध्वगामी और अधोगामी रक्तविकार यह सब दूर होते हैं ॥१८८-१९२ ॥

रक्तार्शपर अन्ययोग ।

नीलोत्पलं समङ्गा मोचरसश्चन्दनं तिला लोध्रम् ।
पीत्वा छागलिपयसा भोज्यं पयसैव शाल्यन्नम् ॥ १९३ ॥

छागलिपयः प्रयुक्तं निहन्ति रक्तं सवास्तुकरसश्च ।
धन्वविहङ्गमृगाणां रसो निरम्लः कदम्लो वा ॥ १९४ ॥

नीलकमल, वाराहीकंद, मोचरस, लाल चंदन, तिल और पठानीलोध इन सबके चूर्णको बकरीके दूधके साथ सेवन करे । औषध जीर्ण होनेपर बकरीका दूध भात भोजन करे । अथवा बथुआके पत्रोंके रसको बकरीके दूधमें मिलाकर पीनेसे खूनी बवासीर दूर होती है । अथवा जंगली जीवोंका मांसरस किंचित् अम्ल करके या विना ही खटाईसे सेवन करे तो रक्तार्श दूर होता है ॥ १९३ ॥ १९४॥

पाठा वत्सकबीजं रसाञ्जनं नागरं यमान्यश्च ।
बिल्वमिति चार्शसैश्चूर्णितानि पेयानि सशूलेषु ॥ १९५ ॥
दार्वी किराततिक्तं मुस्तं दुस्पर्शकश्च रुधिरघ्नम् ।
रक्तेऽतिवर्त्तमाने शूले च घृतं विधातव्यम् ॥ १९६ ॥

पाढ, इन्द्रजौ, रसौंत, सोंठ, अजवायन और बेलगिरिका चूर्ण बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे शूलयुक्त रक्तार्श दूर होता है। दारुहलदी, चिरायता, नागरमोथा, जवासा इन सबका चूर्ण बवासीरके खून रोकनेके लिये परमोत्तम है । यदि रुधिरकी अधिक प्रवृत्ति हो और अधिक पीडा होती हो तो इन्ही दारुहलदी आदि औषधियोंके क्काथ और कल्कसे सिद्ध किया घृत सेवन करना चाहिये ॥१९५॥१९६॥

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः ।
सिद्धं घृतं विधेयं शूले रक्तार्शसां भिषजा ॥ १९७ ॥
सर्पिः सदाडिमरसं सयावशूकं जयत्याशु ।
रक्तं सशूलमथवा निदिग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥ १९८ ॥

कुडाकी छाल, इन्द्रजौ, केशर, नीलकमल, पठानीलोध और धावेके फूल इन सबके कल्कसे सिद्धकिया घृत शूलयुक्त अर्शरोगको शान्त करता है । अथवा अनारके रस और जवाखारसे सिद्ध किया घृत या कटेली और दूधीबूटीके कल्कसे सिद्ध किया घृत शूलयुक्त रक्तार्शको दूर करता है ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

लाजापेया पीता चुक्रिकाकेशरोत्पलैः सिद्धा ।
हन्त्याशु रक्तरोगं तथा बलापृश्निपर्णीभ्याम् ॥ १९९ ॥
ह्रीबेरबिल्वनागरनिर्य्यूहे साधितां सनवनीताम् ।
वृक्षाम्लदाडिमाम्लामम्लीकाम्लां सकोलाम्लाम् ॥ २०० ॥

गृञ्जनकसुरासिद्धां गृष्टां यमकेन वा पिबेत्पेयाम् ।
रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोथनिग्रहणीम् ॥ २०१ ॥

चूका, नागकेशर, नीलोफरसे सिद्ध की हुई खीलोंकी पेया अथवा खरैटी और पृष्ठपर्णीसे सिद्ध की हुई खीलोंकी पेया रक्तार्शको शीघ्र नष्टकरती है। एवं नेत्रवाला, बेलगिरि और सोंठके क्वाथसे सिद्ध कीहुई पेया मक्खनके साथ सेवन करनेसे अथवा तिंतिडीक और अनारदानेके रसके साथ खट्टी करके या इमली और बेरके गुद्देके साथ खट्टी करके सेवन करनेसे अथवा लहसुन और मद्यके साथ सिद्ध की हुई पेया घृत और तेलमें छमककर पान करनेसे रक्तातिसार, शूल, प्रवाहिका और सूजन यह सब नष्ट होते हैं ॥ १९९–२०१ ॥

काश्मर्य्यामलकानां सकर्बुदारफलाम्लानाम् ।
गृञ्जनकशाल्मलीनां क्षीरिण्याश्चुक्रिकायाश्च ॥ २०२ ॥
न्यग्रोधशुङ्गकानां खडांस्तथा कोविदारपुष्पाणाम् ।
दध्नः सरेण सिद्धान् दद्याद्रक्ते प्रवृत्तेऽति ॥ २०३ ॥

यदि रक्तार्शमें रुधिर अधिक निकलता हो तो कुम्भेर, आमले, गुल्लड, अनार, लहसुन, सींवल, क्षीरकाकोली (या दूधी), चूका, बडके अंकुर और दहीकी मलाई इन सबका खडयूष बनाकर सेवन करे तो रुधिरस्राव बन्द होता है ॥२०२॥२०३॥

सिद्धं पलांडुशाकञ्च तक्रेणोपोदिकां सबदराम्लाञ्च ।
रुधिरस्रावे प्रदद्यान्मसूरसूपञ्च तक्राम्लम् ॥ २०४ ॥
पयसा शृतेन यूषैर्मसूरमुद्गाढकीमकुष्ठानाम् ।
भोजनमद्यादम्लैः शालिश्यामाककोद्रवजम् ॥ २०५ ॥

प्याजका शाक, अथवा पोईका साग और बेरकी खटाई छाछमें सिद्ध करके रुधिरस्रावमें देना चाहिये। अथवा मसूरका यूष तक्रसे खट्टाकर पीनेको देवे। रुधिरस्रावमें जलसे सिद्ध किया दूध अथवा रक्तनाशक द्रव्योंके क्वाथसे या पञ्चमूलादि क्वाथसे सिद्ध किया दूध अथवा मसूर, मूंग, अडहर और मोठका यूष रुधिरस्रावकी शान्तिके लिये देवे। और भोजनके लिये शालिचावल, श्यामाक चावल और कोद्रव अन्नकी सिद्ध कर मद्य और तक्रके साथ सेवन करावे ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

शशहरिणलावमांसैः कपिञ्जलैणेयैः सुसिद्धैश्च ।
भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीषत्समरिचैर्वा ॥ २०६ ॥

रक्तार्शमें खरगोश, हिरण, लवा, तीतर और एणका मांस खटाई अथवा मिठाई थोडी काली मिर्चके योगसे सिद्ध करके खानेको देवे ॥ २०६ ॥

दक्षशिखितित्तिरिरसैर्द्विककुल्लोपाकजैश्च मधुराम्लैः।
अद्यादृसैरतिवहेऽर्शःस्वनिलोल्बणशरीरः ॥ २०७ ॥

वातोल्वण रक्तार्शमें यदि अधिक रक्तकी प्रवृत्ति हो तो मुर्गा, मोर, तीतर, ऊंट अथवा लोपाकका मांसरस मधुर, अम्ल करके सेवन करावे ॥ २०७ ॥

रसखडयूषयवागूसंयुक्तः केवलोऽथवा जयति।
रक्तमतिवर्त्तमानं वातञ्च पलाण्डुरुपयुक्तः ॥ २०८ ॥

मांसरस अथवा खडयूष या यवागूके साथ प्याजका सेवन करना अथवा केवल प्याज ही सेवन करना वातानुबन्धी रक्तकी अधिक प्रवृत्तिको दूर करदेता है और वायुको शान्त करता है ॥ २०८ ॥

छागान्तराधितरुणं सरुधिरमुपसाधितं बहु पलाण्डु।
व्यत्यासान्मधुराम्लं विट्शोणितसंक्षये देयम् ॥ २०९ ॥

जिस रक्तार्शवाले रोगीका मल और रक्त अत्यन्त क्षीण होगया हो उसको तरुण बकरेके मध्य देहका मांस तत्काल निकालेहुए रुधिरके साथ प्याजके योगसे सिद्ध कर विपरीत क्रमसे खट्टा और मीठा बनाकर सेवन करावे ॥ २०९ ॥

नवनीततिलाभ्यासात् केशरनवनीतशर्कराभ्यासात्।
दधिसरमथिताभ्यासादर्शांस्यपयान्ति रक्तानि ॥ २१० ॥

मक्खन और काले तिलोंका सेवन करनेसे अथवा नागकेशर, मक्खन और मिसरी मिलाकर सेवन करनेसे या दहीकी मलाई और जलरहित घोलके सेवन करनेसे रक्तार्श (खूनी बवासीर) अवश्य दूर होती है ॥ २१० ॥

नवनीतं घृतं छागं मांसं सषाष्टिकः शालिः।
तरुणश्च सुरामण्डस्तरुणा च सुरा निहन्त्यजस्रम् ॥ २११ ॥

मक्खन, घृत, बकरेका मांस, साठी और शालिचावल, नवीन सुरामण्ड और नवीन मद्यके सेवन करनेसे रक्तार्श शान्त होती है ॥ २११ ॥

प्रायेण वातबहुलान्यर्शांसि भवन्त्यतिस्रुते रक्ते।
दुष्टेऽपि कफपित्ते तस्मादनिलोऽधिको ज्ञेयः ॥ २१२ ॥
दृष्ट्वा तु रक्तपित्तं प्रबलं कफवातलिंगमल्पञ्च।
शीताः क्रियाः प्रयोज्या यथेरिता वक्ष्यते चान्या ॥ २१३ ॥

बवासीरका रक्त अधिक निकलजानेसे अर्शमें प्रायः वायुका अधिक कोप होता है। इसलिये कफपित्त दूषित होनेपर भी वायु भी बलवान् होती है। अर्शमें रक्तपित्तकी

अधिकता और कफवातके लक्षणोंकी अल्पता दिखाई दे तो पूर्वोक्त और जो आगे कहेंगे वह शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

मधुकं सपञ्चवल्कं बदरीत्वगुदुम्बरं धवपटोलम् ।
परिषेचने विदध्याद् वृषककुभयवासनिम्बांश्च ॥ २१४ ॥
रक्तेऽतिवर्तमाने दाहे क्लेदे च गाहयेच्चापि ।
मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिःक्काथे ॥ २१५ ॥
इक्षुरसमधुकवेतसनिर्य्यूहे शीतले पयसि वा तम् ।
अवगाहयेत्प्रदिग्धं पूर्वं शिशिरेण तैलेन ॥ २१६ ॥

मुलैठी, पंचवल्कल, (गूलर, पीपल, वड, पिलखन और वेतस मजनूकी छाल) बेरकी छाल, उदुम्बर और धवकी छाल, पटोल, अडूसा, अर्जुन, जवासा और नीमकी छाल इन सबका क्वाथ करके रक्तार्शका परिसेचन करे । अर्शका रुधिर अत्यंत स्राव होनेपर तथा दाह और क्लेद होय तो पहले रोगीके शरीरमें शीतल तैलका अभ्यंग करके फिर उसको मुलैठी, कमलकी डंडी, पद्माख, लालचंदन, कुशा और कांसकी जडें इन सबका क्वाथ कर शीतल होनेपर इस क्वाथमें बिठावे अथवा ईखके रसमें या मुलैठी और वेतसके क्वाथमें अथवा शीतल दूधमें अवगाहन करावे ॥ २१४–२१६ ॥

दत्त्वा घृतं सशर्करमुपस्थदेशे गुदे त्रिकदेशे ।
शिशिरजलस्पर्शसुखा धारा प्रस्तम्भनी योज्या ॥ २१७ ॥
कदलीदलैरभिनवैः पुष्करपत्रैश्च शीतजलसिक्तैः ।
प्रच्छादनं मुहुर्मुहुरिष्टं पद्मोत्पलदलैश्च ॥ २१८ ॥

शिश्नेन्द्रिय, गुदा त्रिकस्थानमें घृत और मिसरीका लेप करके ऊपरसे सुहाती २ शीतल जलकी धारा देवे तो अर्शके रक्तका प्रवाह बंद होजाता है एवं कोमल ताजे केलेके पत्रोंसे अथवा शीतल जलमें भिगोकर कमल या नीलकमलके पत्रोंसे बार २ गुदाको ढकना भी रक्तार्शमें हितकारी है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

दूर्वाघृतप्रदेहः शतधौतसहस्रधौतमपि सर्पिः ।
व्यजनपवनश्च शीतो रक्तस्रावं जयत्याशु ॥ २१९ ॥

दूब और घृतका लेप करना अथवा सौवार धोएहुए या सहस्रवार धोएहुए मक्खनका लेप करना और पंखेकी पवन करना भी खूनी बवासीरके रक्तस्रावको बंद करता है ॥ २१९ ॥

समङ्गामधुकाभ्यां तिलमधुकाभ्यां रसाञ्जनघृताभ्याम्।
सर्जरसघृताभ्यां वा निम्बघृताभ्यां मधुघृताभ्याम्॥ २२०॥
दार्वीत्वक्सर्पिर्भ्यां सचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम्।
दाहे क्लेदे गुदभ्रंशे गुदजाः प्रतिसारिणीयाः स्युः॥ २२१॥

वाराहीकंद और मुलैठी, अथवा तिल और मुलैठी या रसौंत और घृत, एवं राल और घृत, नीम और घृत, शहद और घृत, दारुहलदीकी छाल और घृत, नीलकमल लालचंदन और घृत, इनमेंसे किसी एक योगका लेप करनेसे बवासीरकी दाह, क्लेद और गुदाका निकलना यह सब दूर होते हैं॥ २२०॥ २२१॥

आभिः क्रियाभिरथवा शीताभिर्यस्य तिष्ठति न रक्तम्।
तं काले स्निग्धोष्णैर्मांसैस्तर्पयेन्मतिमान्॥ २२२॥
अवपीडकसर्पिर्भिः कोष्णैर्घृततैलिकैस्तथाभ्यङ्गैः।
क्षीरघृततैलसेकैः कोष्णैः समुपाचरेदाशु॥ २२३॥
कोष्णेन वातप्रबले घृतमण्डेनानुवासयेच्छीघ्रम्।
पिच्छाबस्तिं दद्याद्वस्तिं काले तस्याथवा सिद्धम्॥ २२४॥

इन उपरोक्त शीतल क्रियाओंके करनेसे यदि अर्शका रुधिर बन्द न हो तो रोगीको स्निग्धोष्ण मांसरसका तर्पण देवे। और ऐसे रोगीको शिरोविरेचन करनेवाले घृतका प्रयोग अथवा किंचित् उष्ण घृततैलकी मालिश करावै। और सुखोष्ण दूध घृत और तैलसे सेचन करे। तथा ऐसे रोगीको वात प्रबल होवे तो किंचित् उष्ण घृत और मस्तुसे शीघ्र अनुवासन करे। और यथासमय आगे कही पिच्छाबस्ति या सिद्धबस्तिका प्रयोग करे॥ २२२-२२४॥

पिच्छावस्ति और सिद्धवस्ति।

यवासकुशकाशानां मूलं पुष्पञ्च शाल्मलम्।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः॥ २२५॥
त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थं च साधयेत्।
क्षीरशेषं कषायञ्च पूतं कल्कैर्विमिश्रयेत्॥ २२६॥
कल्काः शाल्मलिनिर्यासससमङ्गाचन्दनोत्पलम्।
वत्सकस्य च बीजानि प्रियङ्गुः पद्मकेशरम्॥ २२७॥

पिच्छाबस्तिरयं सिद्धः सघृतक्षौद्रशर्करः ।
प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ॥ २२८ ॥

जवासा, कुशा, कासकी जड, सेमलके फूल और बड, गूलर तथा पीपलके अंकुर (कलियें)प्रत्येक दो दो पल लेवे। पानी तीन प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। जब दूधमात्र शेष रहे तो उतारकर छानलेवे । फिर मोचरस, वाराही-कंद, लाल चंदन, नीम, कमल, इंद्रजौ, फलप्रियंगु और कमलके केशर इन सबको बारीक पीसकर कल्क बना उपरोक्त दूधमें मिलादेवे। इस कल्क मिले औषधसिद्ध दूधसे जो बस्तिकर्म कियाजाता है उसको पिच्छावस्ति कहते हैं । और इसी पिच्छा-वस्तिमें घृत, शहत और खांड मिलादेवें तो इसको सिद्धवस्ति कहते हैं। यह दोनों प्रकारकी वस्तियें प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तस्राव और ज्वरको नष्ट करती हैं२२५-२२८॥

अनुवासनवस्ति ।

प्रपौण्डरीकं मधुकं पिच्छाबस्तौ यथेरितम् ।
पिष्ट्वानुवासनं स्नेहं क्षीरद्विगुणितं पचेत् ॥ २२९ ॥

प्रपौण्डरीक (पंडचारा), मुलैठी, तथा पिच्छाबस्तिमें कहेहुए संपूर्ण द्रव्य इन सबका कल्क बना दुगुना दूध डाल तैल सिद्ध करे। इस तैलसे अनुवासन वस्ति करना अर्शरोगमें हितकारी है ॥ २२९ ॥

ह्रीबेरादि घृत ।

ह्रीबेरमुत्पलं लोध्रं समङ्गा चव्यचन्दनम् ।
पाठा सातिविषा बिल्वं धातकी देवदारु च ॥ २३० ॥
दार्वी त्वङ्नागरं मांसी मुस्तं क्षारो यवाग्रजः ।
चित्रकश्चेति पेष्याणि चाङ्गेरीस्वरसे घृतम् ॥ २३१ ॥
ऐकध्यं साधयेत्सर्वं तत्सर्पिः परमौषधम् ।
अर्शोऽतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारुचौ ॥ २३२ ॥
मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे बस्त्यानाहप्रवाहणे ।
पिच्छास्रावेऽर्शसां शूले योज्यमेतत्त्रिदोषनुत् ॥ २३३ ॥

सुगंधवाला, नीलकमल, पठानीलोध, वाराहीकंद, चव्य, लालचंदन, पाठा, अतीश, बेलगिरि, धावेके फूल, देवदारु, दारुहलदी, सोंठ, जटामांसी, नागरमोथा, जवाखार और चित्रक इन सबका कल्क और आँवलेका स्वरस, मिलाकर सिद्ध किया घृत सेवन करनेसे, बवासीर, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डुज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र,

गुदाका निकलना, वस्तिका अफारा, प्रवाहिका, पिच्छास्राव और शूलयुक्त अर्शरोग यह सब दूर होते हैं। ह्रीबेरादिघृत त्रिदोषको भी नष्ट करता है ॥ २३०-२३३ ॥

सुनिषण्णकचांगेरी घृत।

अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृश्निपर्णी त्रिकण्टकः।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ २३४ ॥
कषाय एषां पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी।
पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं सुरदारु च ॥ २३५ ॥
कलिङ्गाः शाल्मलं पुष्पं वीरा चन्दनमुत्पलम्।
कट्फलं चित्रकं मुस्तं प्रियंग्वातिविषास्थिराः ॥ २३६ ॥
पद्मोत्पलानां किञ्जल्कं समङ्गा सनिदिग्धिका।
बिल्वं मोचरसः पाठा भागाः कर्षसमन्विताः ॥२३७॥
चतुष्प्रस्थे शृतं प्रस्थं कषायमवतारयेत्।
त्रिंशत्पलानि प्रस्थोऽत्र विज्ञेयो द्विपलाधिकः ॥ २३८ ॥
सुनिषण्णकचाङ्गेर्याः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च।
सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २३९ ॥
एतदर्शःस्वतीसारे रक्तस्रावे त्रिदोषजे।
प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ २४० ॥
उत्थाने चातिबहुशः शोथशूले गुदाश्रये।
मूत्रग्रहे मूढवाते मन्देऽग्नावरुचावपि ॥ २४१ ॥
प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम्।
विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ इति ॥ २४२ ॥

अवाक्पुष्पी (सौंफ), बला, दारुहलदी, पृष्ठपर्णी, गोखरू, बडके अंकुर, गूलरके अंकुर, पीपलके अंकुर यह प्रत्येक दो पल लेकर चार प्रस्थ जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर जीवन्ती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, सोंठ देवदारु, इन्द्रजौ, सेंमलके फल, काकोली, लालचंदन, नील कमल, कायफल, चित्रक, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, अतीश, शालपर्णी, लाल और नीलकमलकी केशर, समंगा (वाराहकान्ता), कटेरी, बेलगिरि, मोचरस और पाढ यह प्रत्येक दो दो तोले लेकर कल्क बनावे। चौपतियाका रस एक प्रस्थ, चांगेरीका रस एक प्रस्थ, इन सबको एकत्र

कर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे । इस घृतके सेवनसे बवासीर, अतिसार, त्रिदोषज रुधिरस्राव, प्रवाहिका, गुदाका निकलना, अनेक प्रकारका पिच्छास्राव, बारंबार मलत्यागकी शंका होना, गुदाका शोथ, पीडा, मूत्रावरोध, मूढवात, मंदाग्नि और अरुचि यह सब नष्ट होते हैं । इसके विधिवत् प्रयोगसे बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है । इस घृतको अकेला ही अथवा अनेक प्रकारके भोजनादिकोंमें सेवन करना चाहिये ॥ २३४–२४२ ॥

भवन्ति चात्र–व्यत्यासान्मधुराम्लानि शीतोष्णानि च योजयेत् ।
नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शःकृतान् गदान् ॥ २४३ ॥
त्रयो विकाराः प्रायेण ये परस्परहेतवः ।
अर्शांसि चातिसारश्च ग्रहणीदोष एव च ॥ २४४ ॥
एषामग्निबले हीने वृद्धिर्वृद्धे परिक्षयः ।
तस्मादग्निबलं रक्ष्यमेषु त्रिषु विशेषतः ॥ २४५ ॥

यहां कहते हैं कि, अर्शरोगमें विपरीतक्रमसे मीठे, खट्टे, शीतल और उष्ण पदार्थोंका प्रयोग करे । और सदा जठराग्निके बलकी ओर ध्यान रखताहुआ अर्शके विकारोंको जीते । अर्शरोग, अतिसार और ग्रहणी यह प्रायः तीनों ही परस्पर एक दूसरेके कारण होते हैं । इन तीनोंमें ही जठराग्निका बल क्षीण होनेसे रोगकी वृद्धि होती है । और अग्निके बलवान् होनेसे रोगका ह्रास होता है । इसलिये इन तीनोंमें अग्निबलकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ २४३–२४५ ॥

भृष्टैः शाकैर्यवागूभिर्यूषैर्मांसरसैः खडैः ।
क्षीरतक्रप्रयोगैश्च विचित्रैर्गुदजाञ्जयेत् ॥ २४६ ॥
यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ।
अन्नपानौषधं द्रव्यं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ २४७ ॥
यदतो विपरीतं स्यान्निदाने यत्प्रदर्शितम् ।
गुदजाभिपरीतेन तत्सेव्यं न कथञ्चन ॥ २४८ ॥

अर्शरोगकी शान्तिके लिये अनेक प्रकारके भुनेहुए साग, यूष, यवागू, मांसरस, दूध और तक्रका प्रयोग करना चाहिये । जो द्रव्य वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं जो अग्निबलको बढाते हैं उन अन्नपान और औषधोंका अर्शरोगीको बराबर सेवन करना चाहिये । तथा जो इनसे विपरीत अर्थात् अर्शरोगको उत्पन्न करनेवाले द्रव्योंमें कहे गये हैं उनको कभी भी सेवन न करे ॥ २४६–२४८ ॥

तत्र श्लोकाः—अर्शसां द्विविधं जन्म पृथगायतनानि च।
स्थानसंस्थानलिङ्गानि साध्यासाध्यविनिश्चयः ॥ २४९ ॥
अभ्यङ्गाः स्वेदनं धूमाः सावगाहाः प्रलेपनाः।
शोणितस्यावसेकश्च योगा दीपनपाचनाः ॥ २५० ॥
पानान्नविधिरग्र्यश्च वातवर्चोऽनुलोमनः।
योगाः संशमनीयाश्च सर्पींषि विविधानि च ॥ २५१ ॥
वस्तयस्तक्रयोगाश्च वरारिष्टाः सशर्कराः।
शुष्काणामर्शसां शस्ताः स्राविणां लक्षणानि च ॥ २५२ ॥
द्विविधं सानुबन्धानां तेषाञ्चेष्टं यदौषधम्।
रक्तसंग्रहणा योगाः पेयाश्च विविधात्मकाः ॥ २५३ ॥
स्नेहपानविधिश्चाग्र्यो विधिः पानान्नयोश्च यः।
परिषेकावगाहाश्च प्रदेहाः प्रतिसारणम् ॥ २५४ ॥
अतिवृत्तस्य रक्तस्य विधातव्यं यदुत्तरम्।
तत्सर्वमिह निर्दिष्टं गुदजानां चिकित्सितम् ॥ २५५ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने अर्शश्चिकित्सितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं कि, इस अर्श चिकित्सितनामक अध्यायमें सहजार्श और जन्मसे उपरांत होनेवाली अर्शोंकी अलग २ कारण, स्थान, आकृति, लक्षण, साध्यता और असाध्यताका निर्णय, अभ्यंग, स्वेदन, धूनी देना, अवगाहन, प्रलेपन, रक्तमोक्षण, दीपन और पाचनप्रयोग, वात और मलके अनुलोमन करनेवाले योग, अन्नपानविधि, संशमनीय द्रव्य, अनेक प्रकारके घृत, वस्तियें, तक्रप्रयोग, शर्करायुक्त परमोत्तम अरिष्ट, सूखी बवासीरमें उपयोगी औषध प्रयोग, रक्तार्शके लक्षण और दो प्रकारके अनुबन्ध, औषध, रक्त रोकनेवाले अनेक औषध प्रयोग, अनेक प्रकारके घृत, स्नेहपानविधि, अन्नपानविधि, रक्तके अधिक स्रावमें परिषेक और अवगाहन तथा प्रदेह और रक्तार्शनाशक योग, रक्तकी अतिप्रवृत्तिमें कर्तव्य यह सब वर्णन किया है ॥ २४९-२५५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां अर्शश्चिकित्सितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः।



अतिसारचिकित्सितम्।

अथातोऽतिसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम अतीसारचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे॥

भगवन्तं खलु आत्रेयं कृताह्निकं कृताग्निहोत्रमासीनमृषिगणपरिवृतमुत्तरे हिमवतः पार्श्वे विनयादुपेत्य अभिवाद्य अग्निवेश उवाच। भगवन्! अतिसारस्य प्रागुत्पत्तिनिमित्तलक्षणोपशमनानि प्रजानुग्रहार्थमाख्यातुमर्हसीति॥ १॥

एक समय भगवान् आत्रेयजी अग्निहोत्रादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर हिमालयके उत्तर निकुञ्जमें ऋषिगणोंसे घिरेहुए बैठे थे। उस समय अति नम्रतापूर्वक वन्दना कर अग्निवेश पूछनेलगे कि, हे भगवन्! अतिसाररोगकी प्रथम उत्पत्ति, कारण लक्षण और उसके शान्त करनेका उपाय प्रजाजनोंके कल्याणके लिये कहिये॥ १॥

अथ भगवानात्रेयस्तदग्निवेशवचनमनुनिशम्योवाच। श्रूयताम् अग्निवेश! सर्वमेतदाखिलेन व्याख्यायमानम्॥ २॥

अग्निवेशके इस कथनको सुनकर भगवान् आत्रेय कहनेलगे कि हे आग्निवेश! इस विषयमें हमारे संपूर्ण कथनको सुनो॥ २॥

अतिसारकी उत्पत्ति।

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीया बभूवुर्नारम्भाय प्रक्रियन्ते स्म। ततो दक्षयज्ञप्रत्यवरकालं मनोः पुत्राणां नरिष्यन्नाभागेक्ष्वाकुकुविडचर्य्येत्यादीनाञ्च क्रतुषु पशूनामेव अभ्यनुज्ञानात्पशवः प्रोक्षणमवापुः। अतश्च प्रत्यवरकालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन पशूनामलाभाद्गवामालम्भः प्रावर्त्तितः। तं दृष्ट्वा प्रव्यथिता भूतगणास्तेषाञ्चोपयोगादुपकृतानां गवां गौरवादौष्ण्यादसात्म्यत्वादशस्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसामतीसारः पूर्वमुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे॥ ३॥

पहिले समयमें यज्ञमें पशुओंका वध नहीं किया जाता था किन्तु वह यज्ञभूमिमें वैसे ही लाये जाते थे। फिर दक्षके यज्ञके अनन्तर मरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, कुविंडचर्या आदि मनुपुत्रोंने यज्ञमें पशुओंको छोडदेनेकी प्रथा चलाई। फिर इसके अनन्तर राजा पृषध्रने पशुओंके न मिलनेसे यज्ञमें गोवध किया इसको देखकर गौओंकी अत्यन्त उपयोगिता स्मरण करतेहुए संपूर्ण प्राणी अत्यन्त दुःखित हुए। और उस यज्ञमें गोमांसके गुरु और असात्म्य तथा दुष्ट भोजनके कारण भोजन करनेवालोंकी जठराग्नि नष्ट होगई और मन भी भ्रष्ट होगये। तब उस यज्ञमें उन मनुष्योंको अतिसार रोग प्रगट हुआ ॥ ३ ॥

वातातिसारके हेतु।

अथापरं कालं वातस्य वातातपव्यायामातिमात्रानिषेविणो रूक्षाल्पप्रमिताशिनः तीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्योदावर्त्तयतश्च वेगाद्वायुः प्रकोपमापद्यते। पक्ता चोपहन्यते। स वायुः कुपितोऽग्नौ उपहते मूत्रस्वेदौ पुरीषाशयमुपहृत्य ताभ्यां पुरीषं द्रवीकृत्य आतिसाराय प्रकल्पते ॥ ४ ॥

अब वातादिभेदसे अतिसार रोगका वर्णन करते हैं। वातलस्वभाववाले मनुष्यके वायु, धूप और शारीरक परिश्रमके अधिक सेवनसे अथवा अत्यन्त रूक्ष अल्प और एकरस भोजनके निरन्तर सेवनसे एवं मलमूत्रादिवेगोंको रोकनेसे वायु कुपित होकर पाचकाग्निको बिगाड देता है। उस अग्निके उपहत होनेसे कुपित हुआ वायु मूत्र और स्वेदको मलाशयमें प्राप्त कर मलको पतला बना अतिसार रोगको उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

वातिक आमातिसारके लक्षण।

तस्य रूपाणि। विड्जलमामविप्लुतमवसादितं रूक्षं द्रवं सशब्दमशब्दं वा विबद्धमूत्रवातमतिसार्य्यते पुरीषं वायुश्चान्तः कोष्ठस्य सशब्दशूलस्तिर्य्यक् चरति विबद्ध इति आमातिसारः ॥ ५ ॥

उस वातिक अतिसारके यह लक्षण होतेहैं। जैसे—मलका जलके समान होना, अपक्व मलका गिरना, अवसादित तथा रूक्ष, द्रव और शब्दके साथ अथवा एक साथ शब्दरहित मलका आना, मूत्र और अधोवायुके विबंध सहित दस्त होना और कोठेमें वायु विबंध होकर गुड गुड शब्दयुक्त शूलके साथ तिरछा गमन करे यह वायुके आमातिसारके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

वातिक पक्वातिसारके लक्षण।

वातात्पक्वं विबद्धमल्पाल्पं सशब्दं सशूलपिच्छापरिकर्तिकं हृष्टरोमा

विनिश्वसञ्शुष्कमुखः कट्यूरुत्रिकजानुपृष्ठपार्श्वशूली भ्रष्टगुदो मुहु-र्मुहुर्विग्रथितमुपवेश्यते पुरीषं वातात्तमाहुः अनुग्रन्थम् इत्येके वातानुग्रन्थितवर्चस्त्वात् ॥ ६ ॥

वायुसे पक्क होकर मल बद्ध होकर अथवा विबंधयुक्त थोडा २ शब्द और शूलसहित झागदार और कतरनेकीसी पीडायुक्त दस्त आवे उस समय रोमोंका खडा होना, मुख सूखना, कमर, ऊरू, त्रिकस्थान, जानु और दोनों पार्श्वोंमें पीडा होना, गुदाका बाहर निकलना, बारम्बार गांठदार मल आना, यह पक्क वातातिसारके लक्षण हैं। वातातिसारमें इस प्रकार गांठदार मल होनेसे कोई उसको अनुग्रंथित अतिसार भी कहते हैं ॥ ६ ॥

पित्तातिसारके हेतु और संप्राप्ति।

पित्तलस्य पुनरम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णातिमात्रनिषेविणः प्रततान्निसूर्य्यसन्तापोष्णमारुतोपहतगात्रस्य क्रोधेर्ष्याबहुलस्य पित्तं प्रकोपमापद्यते। तत्प्रकुपितं द्रवत्वादुष्माणमुपहत्य पुरीषाशयमाश्रितमौष्ण्याद्द्रवत्वात्सरत्वाच्च भित्त्वा पुरीषमतिसाराय प्रकल्पते ॥ ७ ॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यके खट्टे, नमकीन, चरपरे, खारे, गरम और तीक्ष्ण द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे और निरन्तर अग्नि, सूर्यकी धूप और गरम वायुसे शरीरके तपायमान होनेसे तथा क्रोध और ईर्ष्यावाला स्वभाव होनेसे पित्त कुपित होजाता है। वह कुपित हुआ पित्त पतला होनेसे पाचकाग्निको उपहत करके मलाशयमें आश्रित हो उष्णत्व, द्रवत्व और सरत्व होनेसे मलको भेदन करदेता है। तब अतिसार रोगको उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥

पित्तातिसारके लक्षण।

तस्य रूपाणि। हारिद्रहरितनीलकृष्णपित्तोपहितमतिदुर्गंधमतिसार्य्यते पुरीषं तृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्नसन्तापपाकपरीतः ॥ ८ ॥

पित्तातिसारमें दस्तका रंग हलदीके वर्णका, हरा, नीला, काला, पित्तयुक्त और दुर्गंधित होता है। तथा रोगीको पसीना, दाह, मूर्च्छा, शूल, बद निकलना, या बदकासा सन्ताप और गुदा आदिका पकना यह पित्तातिसारके लक्षण होवे हैं ॥ ८ ॥

कफातिसारके हेतु।

श्लेष्मलस्य तु गुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेविनः सम्पूरकस्याचिन्तयतो दिवास्वप्नपरस्यालसस्य श्लेष्मा कोपमापद्यते। स स्वभावादुरुमधुर-

शीतस्निग्धः स्रस्तोऽग्निमुपहत्य सौम्यस्वभावात्पुरीषाशयमुपहत्योप-
क्लेद्य पुरीषमतिसाराय कल्पते ॥ ९ ॥

भारी, मीठे, शीतल और चिकने द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे एवं अतिभोजन, बेफिकरी, दिनमें सोना, आलसी बने रहना, इन कारणोंसे कफप्रधान मनुष्योंके शरीरमें कफ कुपित होताहै। कफ स्वभावसे ही मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीत और शिथिल होनेसे जठराग्निको उपहत करके सौम्यभावसे मलाशयमें प्राप्त हो मलाशयके बलको क्षीण और क्लेदित कर कफातिसारको प्रगट करता है ॥ ९ ॥

कफातिसारके लक्षण।

तस्य रूपाणि। स्निग्धं श्वेतं पिच्छिलं तन्तुमदामं गुरु दुर्गन्धश्लेष्मोप-
हितमनुबन्धशूलमल्पाल्पमभीक्ष्णमतिसार्य्यते सप्रवाहिकं गुरूदरगुद-
बस्तिवंक्षणोद्देशः कृतापकृतसङ्गो भवति सलोमहर्षः सोत्क्लेशो निद्रा-
लस्यपरीतः सादनोऽन्नद्वेषी चेति श्लेष्मातिसारः ॥ १० ॥

उस कफातिसारके यह लक्षण होते हैं। जैसे-स्निग्ध, सफेद, पिच्छिल, तन्तुयुक्त, आँववाला, भारी, दुर्गंधित, कफयुक्त, पीडाके साथ थोडा २ दस्त आना। और प्रवाहिका, तथा पेट, गुदा, बस्ति और वंक्षण (वांखियों) में भारीपन, कभी बँधा-हुआ कभी पतला मल उतरना, रोमांच, कफका उत्क्लेश, निद्रा, आलस्य, अंगोंका सो जाना और अरुचि यह कफातिसारके रूप (लक्षण) जानना ॥ १० ॥

सन्निपातातिसारके हेतु और संप्राप्ति।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभो-
जनात्कालातीतभोजनाद्यत्किञ्चिदभ्यवहरणाद्दुष्टमद्यपानीयपानादति-
मद्यपानादसंशोधनात् प्रतिकर्म्मणां विषमगमनादनुपचाराज्ज्वलना-
दित्यपवनसलिलातिसेवनात् अस्वप्नादतिस्वप्नाद्वेगविधारणादृतुविपर्य्य-
यादयथाबलमारम्भाद्भयशोकाचित्तोद्वेगातियोगात् क्रिमिशोषज्वरा-
र्शोविकारातिकर्शनाद्वा विपन्नाग्नेस्त्रयो दोषाः प्रकुपिता भूय एवाग्नि-
मुपहत्य पक्वाशयमनुप्रविश्य अतीसारं सर्वदोषलिङ्गं जनयन्ति॥ ११॥

अत्यन्त शीतल, चिकने, रूखे, गरम, भारी, खर, कठिन, पदार्थोंके सेवनसे, विषम विरुद्ध और सात्म्य भोजनके सेवनसे, समयातीत भोजन और अल्पभोजन करनेसे, दूषित मद्य और दूषित जल पीनेसे, अतिमद्यपान, संचितमलका शोधन न करना, बार २ विरेचन कराना, अग्नि, सूर्यका ताप, अधिक वायु, अधिक जल

इनके अधिक सेवनसे, न सोने अथवा अधिक सोनेसे, मलमूत्रादिवेगोंको रोकनेसे ऋतुओंके विपर्ययसे सामर्थ्यसे अधिक बल करनेसे, एवं भय, शोक और चित्तोद्वेगके अतियोगसे, या कृमि, शोष, ज्वर और अर्शरोगसे, एवं अतिकर्षणसे मंदाग्निवाले मनुष्योंके शरीरमें वातादि तीनों दोष कुपित होकर जठराग्निको फिर उपहत करके मलाशयमें प्रविष्ट हो सर्व दोषोंके लिंगोंवाले अतिसार रोगको प्रगट करते हैं ११

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण।

अपिच। शोणितादीन् धातूनतिप्रदुष्टान्दूषयन्तो धातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति। तत्र शोणितादिषु धातुषु अतिप्रदुष्टेषु हारिद्रहरितनीलमाञ्जिष्ठमांसधावनसन्निकाशं रक्तं कृष्णं श्वेतं वराहमेदःसदृशमनुबद्धवेदनमवेदनं वा समासव्यत्यासादुपवेश्यते शकृद्ग्रथितमामं सकृत्सकृदपि पक्वमनतिक्षीणमांसशोणितबलो मन्दाग्निर्विहतमुखरसस्तादृशमातुरं कृच्छ्रसाध्यं विद्यात्। एभिर्वर्णैरतिसार्यमाणं सोपद्रवमातुरमसाध्योऽयमिति प्रत्याचक्षीत। तद्यथा-क्वाथशोणिताभं यकृत्पिण्डोपमं मांसोदकसन्निकाशं दधिघृतमज्जातैलवसाक्षीरवेशवाराभमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवाच्छं पुनर्मेचकाभमतिस्निग्धं हरितनीलकषायवर्णं कर्बुरमाविलं तन्तुमदामं चन्द्रकोपगतमतिकुणपपूतिपूयगन्धमाममत्स्यगन्धि मक्षिकाक्रान्तं क्वथितबहुधातुद्रवमल्पपुरीषमपुरीषं वातिसार्यमाणं तृष्णादाहज्वरभ्रमतमकहिक्काश्वासानुबन्धमतिवेदनमवेदनं वा स्रस्तपक्वगुदं पतितगुदवलिं मुक्तनासमतिक्षीणबलमांसशोणितं सर्वपार्श्वास्थिशूलिनमरोचकातिप्रलापसंमोहपरीतं सहसोपरतविकारमतिसारिणमचिकित्स्यं विद्यादिति सन्निपातातिसारः॥ १२॥

तथा त्रिदोषज अतिसारमें रक्तादि संपूर्ण धातुयें दूषित होजाती हैं। उन दूषित धातुओंके स्वभावानुसार अतिसारका वर्ण विशेष होता है। रक्तादिधातु अत्यंत दुष्ट हों तो हलदीके समान पीला, हरा, नीला, मंजीठके समान वर्णवाला, मांसके धोवनके समान लाल, काला, सफेद, वाराहकी चर्बीके समान शूलयुक्त अथवा शूलके विना थोडा २ या अनेक प्रकार विपरीतभावसे कभी गांठदार, कभी कच्चा, कभी पककर मल आने लगता है। इस त्रिदोषातिसारमें रोगीका मांस, रक्त और बल

किंचित् क्षीण होजाते हैं, अग्नि मंद पडजाती है और मुखका स्वाद नीरस होजाता है। इन लक्षणोंवाले त्रिदोषज अतिसारको कष्टसाध्य जानना। जिस अतिसारमें नीचे लिखे हुए वर्णोंवाला मल आता हो और रोगी इन उपद्रवोंसे युक्त हो तो उसको यह असाध्य है ऐसा कहकर त्यागदेना चाहिये। वे लक्षण यह हैं। जैसे—मलका वर्ण क्वाथ, रुधिर, यकृत्पिण्ड, मांसका धोवन, दही, घी, मज्जा, तेल, बसा, दूध, वेसवारके समान हो अथवा अधिक नीला या अत्यंत लाल, अत्यंत काला अथवा जलके समान स्वच्छ, मोरके पंखके समान चित्रविचित्र, अत्यंत चिकना, हरा, नीला, कसैले वर्णका, अनेक वर्णवाला, गन्दला, तारदार, आमयुक्त, चकमकाहटयुक्त, मुर्देकीसी गंधवाला, अत्यंत दुर्गंधवाला, कच्ची मछलीकी गंधवाला, जिसपर मक्खियें बहुतसी आकर चिपटती हों, पतली कीहुई धातुके समान अल्प मल और अधिक धातुवाला अथवा मलरहित दस्त आते हों और रोगीको प्यास, दाह, ज्वर, भ्रम, तमकश्वास, हिचकी और श्वास हों तथा दस्त अत्यंत पीडा या पीडारहित आतेहों, गुदा शिथिल और पाकयुक्त हो, गुदाकी त्रिवली विप्लुत होजाय, गुदाकी नाल बाहरको निकल आवे। बल, मांस और रुधिर अत्यंत क्षीण होजाय या संपूर्ण देह, पार्श्वभाग और हड्डियोंमें पीडा प्रगट होजाय, एवं रोगी अरुचि, प्रलाप और बेहोशीसे व्याकुल हो अथवा यह उपरोक्त संपूर्ण उपद्रव एकाएकी शान्त होजायँ तो ऐसे रोगीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। यह असाध्य होता है ॥ १२ ॥

तमसाध्यतामसंप्राप्तं चिकित्सेद्यथा प्रधानोपक्रमेण हेतूपशयदोषविशेषपरीक्षया चेति ॥ १३ ॥

जो अतिसार असाध्य न हुआ हो उसकी प्रधान दोषके अनुसार हेतु, उपशय और दोष विशेषकी परीक्षा करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

आगन्तू द्वावतीसारौ मानसौ भयशोकजौ।
तत्तयोर्लक्षणं वायोर्यदतीसारलक्षणम् ॥ १४ ॥
मारुतो भयशोकाभ्यां शीघ्रं हि परिकुप्यति।
तयोः क्रिया वातहरा हर्षणाश्वासनानि च ॥ १५ ॥

दो प्रकारके आगन्तुक अतिसार होते हैं, यह दोनों मनसे होते हैं। जैसे—एक भयातिसार दो शोकातिसार। इन दोनोंके लक्षण वातातिसारके समान होते हैं। भय और शोकसे वायुका शीघ्र कोप होजाता है इसलिये इसमें वातनाशक क्रिया करनी चाहिये। तथा आनन्दको उत्पन्न करनेवाली और धीरज देनेवाली वार्ता आदिकोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

इत्युक्ताः षडतीसाराः साध्यानां साधनं त्वतः ।
प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यथावत्तन्निबोधत ॥ १६ ॥

इस प्रकार छः प्रकारके अतिसारोंका वर्णन कियागया है । अब इससे आगे क्रमपूर्वक साध्य अतिसारोंकी चिकित्साका श्रवण करो ॥ १६ ॥

दोषाः सन्निचिता यस्य विदग्धाहारमूर्च्छिताः ।
अतीसाराय कल्पन्ते भूयस्तान् संप्रवर्त्तयेत् ॥ १७ ॥

जिसके दोष आहारके विदग्ध होनेसे कुपित और संचित होकर अतिसारको उत्पन्न करें उस अतिसारवालेको विरेचन देकर दोषोंको निकालदेना चाहिये ॥ १७ ॥

न तु संग्रहणं देयं पूर्वमामातिसारिणे ।
विबध्यमानाः प्राग्दोषा जनयन्त्यामयान् बहून् ॥ १८ ॥
दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा ।
शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ॥ १९ ॥
तस्मादुपेक्षेतोत्क्लिष्टान् वर्तमानान् स्वयं मलान् ।
कृच्छ्रं वा वहतान् दद्यादभयां संप्रवर्तिनीम् ॥ २० ॥
तया प्रवाहिते दोषे प्रशाम्यत्युदरामयः ।
जायते देहलघुता जठराग्निश्च वर्द्धते ॥ २१ ॥

आमातिसारमें कभी भी दस्तोंको रोकनेवाली औषध नहीं देना चाहिये, क्योंकि कच्चे दस्तोंको रोकदेनेसे दोष विबद्ध होकर बहुतसे रोगोंको उत्पन्न करते हैं । जैसे—दण्डकवायु, अलसक, अफारा, संग्रहणी, अर्शरोग, सूजन, पाण्डु, प्लीहरोग, कुष्ठ, गुल्म, उदररोग और ज्वर इन रोगोंको उत्पन्न करता है । इसलिये उठेहुए प्रचलित दोष और मलोंको प्रथमही रोकना नहीं चाहिये । यदि मल कठिनतासे उतरता हो तो मलके निकालनेके लिये हरडे खिलाकर विरेचन करादेना चाहिये हरडद्वारा दोष निकलजानेसे पेटके विकार शान्त होजाते हैं और शरीर हलका हो जाता है तथा जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ १८-२१ ॥

प्रमथ्यां मध्यदोषाणां दद्याद्दीपनपाचनीम् ।
लङ्घनश्चाल्पदोषाणां प्रशस्तमतिसारिणाम् ॥ २२ ॥

अतिसारमें दोषोंका बल मध्यम होवे तो दीपन, पाचन औषधका प्रयोग करना चाहिये । और अल्प दोष बलवाले अतिसारमें लंघन कराना ही हित है ॥ २२ ॥

अतिसारकी चिकित्सा।

पिप्पली नागरं धान्यं भूतीकमभया वचा ।
ह्रीबेरं भद्रमुस्तानि बिल्वं नागरधान्यकम् ॥ २३ ॥
पृश्निपर्णी श्वदंष्ट्रा च समांशा कण्टकारिका ।
तिस्रः प्रमथ्या विहिताः श्लोकार्द्धेष्वतिसारिणाम् ॥ २४ ॥

१-पीपल, सोंठ, धनियां अजवायन, हरडे और वच । २-नेत्रवाला, भद्रमोथा, बेलगिरी, सोंठ और धनियां । ३-पृष्ठपर्णी, गोखरू और इन दोनोंके बराबर कटेली यह आधे आधे श्लोकमें कहेहुए तीन योग अतिसारमें हितकारी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

वचाप्रतिविषाभ्यां वा मुस्तपर्पटकेन वा ।
ह्रीबेरशृङ्गवेराभ्यां पक्वं वा पाययेज्जलम् ॥ २५ ॥

बच और अतीश, नागरमोथा और पापडा, अथवा नेत्रवाला और सोंठ डालकर पकायाहुआ जल पीनेको देना अतिसारमें हितकारी है ॥ २५ ॥

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ।
तथा स शीघ्रमाप्नोति रुचिमग्निबलं बलम् ॥ २६ ॥
तक्रेणावन्तिसोमेन यवाग्वा तर्पणेन वा ।
सुरया मधुना चादौ यथासात्म्यमुपाचरेत् ॥ २७ ॥
यवागूभिर्विलेपीभिः खडैर्यूषै रसोदनैः ।
दीपनग्राहिसंयुक्तैः क्रमश्च स्यादतः परम् ॥ २८ ॥

अतिसारमें क्षुधा लगनेपर हलके अन्नका भोजन देवे । ऐसा करनेसे रुचि जठराग्नि और बलकी वृद्धि होती है । प्रथम भोजनके लिये प्रकृतिके अनुसार जैसे सात्म्य हो तक्र, कांजी, यवागू तर्पण या सुरा अथवा शहदका प्रयोग करना चाहिये फिर क्रमपूर्वक दीपन और संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई यवागू विलेपी, खडयूष मांसरस और भात आदि भोजनके लिये प्रयुक्त करे ॥ २६-२८ ॥

शालपर्णीं पृश्निपर्णीं बृहतीं कण्टकारिकाम् ।
बलां श्वदंष्ट्रां बिल्वानि पाठां नागरधान्यकम् ॥ २९ ॥
शटीं पलाशं हपुषां वचां जीरकपिप्पलीम् ।
यमानीं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ॥ ३० ॥

वृक्षाम्लं दाडिमाम्लञ्च सहिंगु विडसैन्धवम् ।
प्रयोजयेदन्नपाने विधिना सूपकल्पितम् ॥ ३१ ॥
वातश्लेष्महरो ह्येष गणो दीपनपाचनः ।
ग्राही बल्यो रोचनश्च तस्माच्छस्तोऽतिसारिणाम् ॥ ३२ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली, बला, गोखरू, बेलगिरि, पाढ, सोंठ, धनियां, कचूर, ढाक, हाउबेर, वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, अमलवेत, अनारदाना, हींग, बिडनमक, सेंधानमक इन सबका विधिपूर्वक जलमें व्यंजनकी भांति रस बना अतिसारके रोगीको अन्नपानमें दियाकरे। यह शालपर्ण्यादि औषधियोंका गण वात और कफको हरनेवाला, दीपन, पाचन, संग्राही, बलकारक, रुचिको प्रगट करनेवाला है। इसीलिये इसका प्रयोग अतिसाररोगवालोंके लिये परमोत्तम है ॥ २९-३२ ॥

आमे परिणते यस्तु विबन्धमतिसार्य्यते ।
सशूलपिच्छमल्पाल्पं बहुशः सप्रवाहिकम् ॥ ३३ ॥
तं मूलकानां यूषेण बदराणामथापि वा ।
उपोदिकायाः क्षीरिण्या यमान्या वास्तुकस्य वा॥ ३४ ॥
सुवर्चलायाश्चञ्चोर्वा शाकेनावल्गुजस्य वा ।
शठ्याः कर्कारुकाणां वा जीवन्त्याश्चिर्भटस्य वा ॥ ३५॥
लोणिकायाः सपाठायाः शुष्कशाकेन वा पुनः ।
दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत् ॥ ३६ ॥

आमके पकजानेसे जिसका दस्त बद्ध होगयाहो, शूलयुक्त पिच्छिल और थोडा थोडा बार बार आताहो, प्रवाहिकासे युक्त हो तो उस रोगीको मूली अथवा बेर या पोईका यूष अथवा खिरनी या अजवायन या बथुआ अथवा ब्राह्मी या हुलहुलका यूष एवं चंचु नाडीका साग, सोमराजी, कचूर, ककीरू (कद्दू), जीवन्ती, चिरभट, लोनियां और पाठा इनमेंसे किसी एकका सूखा साग लेकर उसको विधिवत् सिद्ध कर दही और अनारकी खटाई तथा बहुतसा घृत मिला भोजन करावे ॥३३-३६॥

प्रवाहिकाका यत्न।

कल्कः स्याद्बालबिल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः ।
दध्नः सरोऽम्लस्नेहाढ्यः खडो हन्यात्प्रवाहिकाम् ॥ ३७ ॥

कच्चे विल्वका कल्क और उसके समान तिलोंका कल्क और दहीकी मलाई अनारका रस और घृत इनसे खडयूष बनाकर सेवन करे तो प्रवाहिका (पेचिस) दूर होती है ॥ ३७ ॥

यवानां मुद्गमाषाणां शालीनाञ्च तिलस्य च ।
कोलानां बालबिल्वानां धान्ययूषं प्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥
ऐकध्यं यमके भृष्टं दधिदाडिमसाधितम् ।
वर्चःक्षये शुष्कमुखं शाल्यन्नं तेन भोजयेत् ॥ ३९ ॥

यदि मलके क्षय होजानेसे रोगीका मुख सूखजाय तो उसको जव, मूंग, उडद, चावल, तिल, बेर, कच्चे विल्वकी गिर और दही, अनारदानेका रस इनका धान्ययूष बनाकर तेल और घृतसे भर्जितकर पुराने चावलोंके भातके साथ खानेको देवे ३८॥३९॥

दध्नः सरं वा यमके भृष्टं सगुडनागरम् ।
सुरां वा यमके भृष्टां व्यञ्जनार्थे प्रदापयेत् ॥ ४० ॥
फलाम्लं यमके भृष्टं यूषं गृञ्जनकस्य वा ।
लोपाकरसमम्लं वा स्निग्धाम्लं कच्छपस्य वा ॥४१ ॥
बर्हितित्तिरिदक्षाणां वर्तकानां तथा रसः ।
स्निग्धाम्लाः शालयश्चाग्र्या वर्चःक्षयरुजापहाः ॥ ४२ ॥

अथवा दहीकी मलाइ, गुड और सोंठ इनको यमक[1]स्नेहमें भूनकर अथवा सुराको घृत तैलमें छौंककर भोजनके साथमें देवे । अथवा लहसुनका रस और अनारदानेका रस घृत तैलमें छौंककर अथवा लोपाकका मांसरस अनारके रससे युक्तकर या कछुएका मांस स्निग्ध और खट्टा करके भातके साथ देवे । अथवा मोर, तीतर, मुर्गा या बटेरका मांसरस स्निग्ध और अम्ल करके उत्तम पुराने चावलोंके भातके साथ खानेको देवे तो मलके क्षय होनेसे उत्पन्न हुए विकार शान्त होतेहैं ॥४०-४२

अन्तराविरसं पूत्वा रक्तं मेषस्य चोभयम् ।
पचेद्दाडिमसाराम्लं सधान्यस्नेहनागरम् ॥ ४३ ॥
भोजनं रक्तशालीनां तेनाद्यात्सपिवेच्च तत् ।
तथा वर्चःक्षयकृतैर्व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

---

१ घृत तैल ।

मेढेके मध्यभागके मांसरसमें मेढेका रुधिर मिलाकर छानलेवे । फिर इसमें अनारका रस, धनियां, घृत, सोंठ मिलाकर फिर व्यंजनपाकविधिसे सिद्ध करले । इस रसके साथ उत्तम पुराने चावलोंका भात भोजन करावे तो मलके क्षय होनेसे उत्पन्न हुए विकार दूर होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गुदभ्रंशकी चिकित्सा ।

गुदानिःसरणे शूले पानमम्लस्य सर्पिषः ।
प्रशस्यते निरामाणामथवाप्यनुवासनम् ॥ ४५ ॥

यदि अतिसारवाले रोगीकी गुदा बाहर निकल आवे और शूल होता हो तो चूकाकी खटाई और घृत मिला पीना चाहिये । यदि रोगीका उदर आमरहित हो तो अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे ॥ ४५ ॥

चांगेरीघृत ।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ४६ ॥

चांगेरी (चूका), बेर, दही, अनारका रस, सोंठ और जवाखार इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत गुदभ्रंश और शूलको दूर करता है ॥ ४६ ॥

चव्यादिघृत ।

सचव्यपिप्पलीमूलं सव्योषविडदाडिमम् ।
पेयमम्लं घृतं युक्त्या सधान्याजाजिचित्रकम् ॥ ४७ ॥

चव्य, पीपलामूल, मिर्च, पीपल, सोंठ, विडनमक, अनारदाना, धनियां, जीरा और चित्रक इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे गुदभ्रंश (कांच निकलना) दूर होता है ॥ ४७ ॥

अनुवासनप्रयोग ।

दशमूलोपसिद्धं वा सबिल्वमनुवासनम् ।
शताह्वाशटिबिल्वैर्वा वचया चित्रकेण वा ॥ ४८ ॥
स्तब्धभ्रष्टगुदे पूर्वं स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।
सुस्विन्नञ्च मृदूभूतं पिचुना संप्रवेशयेत् ॥ ४९ ॥

दशमूल और कच्चे बेलगिरिसे सिद्ध कियेहुए तैलकी अनुवासन वस्ति करना अथवा सौंफ, कचूर और बेलगिरिसे सिद्ध किये तैल वा वच और चित्रकसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करना गुदस्तम्भ और गुदभ्रंशको दूर करता है । किन्तु पहिले स्नेहन और स्वेदन करनेपर जब गुदा नरम होजाय तो इस तैलमें उत्तम रूईका फोहा भिगोकर अनुवासन (गुदामें प्रवेश) करे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

विबन्धवातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः।
सरक्तपिच्छतृष्णार्त्तः क्षीरसौहित्यमर्हति ॥ ५० ॥
यमकस्योपरि क्षीरं धारोष्णं वा पिबेन्नरः ॥
शृतमैरण्डमूलेन बालबिल्वेन वा पयः ॥ ५१ ॥
एवं क्षीरप्रयोगेण रक्तं पिच्छावशाम्यति।
शूलं प्रवाहिका चैव विबन्धश्चोपशाम्यति ॥ ५२ ॥

जिस रोगीका अधोवायु और मल बद्ध होगया हो तथा प्रवाहिका (पेचिश) और शूल अत्यन्त बढगया हो तथा रक्त और पिच्छिल मल निकलता हो और प्याससे व्याकुल हो तो उसको पेटभरकर दूध पिलावे। अथवा घी और तैल पिलाकर ऊपरसे धारोष्ण दूध पिलावे। या एरंडकी जड अथवा कच्ची बेलगिरिसे सिद्ध किया दूध पिलावे। इस प्रकार दूधके पीनेसे रक्तस्राव, पिच्छाशूल, प्रवाहिका और विबन्ध यह सब शान्त होते हैं ॥ ५०-५२ ॥

पित्तातिसारकी चिकित्सा।

पित्तातिसारं पुनर्निदानोपशयाकृतिभिरामान्वयमुपलभ्य यथाबलं लङ्घनपाचनाभ्यामुपाचरेत् ॥ तृष्यतस्तु मुस्तपर्पटकोशीरशारिबाचन्दनकिराततिक्तकोदीच्यवारिभिरुपचारः ॥ ५३ ॥

पित्तके अतिसारमें निदान, उपशय और लक्षणोंसे आमका अनुबन्ध प्रतीत हो तो यथाबल लंघन और पाचन देवे। यदि रोगी तृषासे व्याकुल हो तो मोथा, पापडा, खस, सारिवा, लाल चन्दन, चिरायता और नेत्रवाला इनसे पकाया जल शीतल कर देवे ॥ ५३ ॥

लङ्घितस्य चाहारकाले बलातिबलासूर्य्यशालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकाशतावरीश्वदंष्ट्रानिर्यूहसंयुक्तेन यथासात्म्यं यवागूमण्डादिना तर्पणादिना वा क्रमेणोपचारः ॥ ५४ ॥

लंघन करानेके अनन्तर भोजनके समय बला, अतिबला, मुग्धपर्णी, शालपर्णी पृष्ठपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, शतावर, गोखरू इनके क्वाथके साथ यवागूमण्ड अथवा तर्पणादि सात्म्यके अनुसार क्रमपूर्वक भोजनके लिये देवे ॥ ५४ ॥

मुद्गमसूरहरेणुमकुष्ठकयूषैर्वा लावकपिञ्जलशशहरिणैणेयकालपुच्छकरसैरीषदम्लैरनम्लैर्वा क्रमशोऽग्निं सन्धुक्षयेत् ॥ ५५ ॥

मूंग, मसूर, हरेणु और मोठ इनका यूष अथवा लवा, तीतर, शशा, हिरण, काला-हिरण, कालपुच्छक हिरण इनके मांसरसको अनारकी खटाईसे अम्लकर अथवा विना अम्ल किये क्रमपूर्वक पीनेको देवे तो अग्नि चैतन्य हो ॥ ५५ ॥

अनुबन्धत्वे तु अस्य दीपनीयपाचनीयोपशमनीयसंग्रहणीयान् योगान् प्रयोजयेदिति ॥ ५६ ॥

यदि इन क्रियाओंसे अतिसार रोग शान्त होकर उसका अंश शेष रहजाय तो दीपन, पाचन, उपशमन और संग्राही योगोंका प्रयोग करे ॥ ५६ ॥

पित्तातिसारपर योग।

भवन्ति चात्र—सक्षौद्रातिविषं पिष्ट्वा वत्सकस्य फलत्वचम्।
पिबेत्पित्तातिसारघ्नं तण्डुलोदकसंयुतम् ॥ ५७ ॥

पीसे अतीस, इन्द्रजौ और कुडाकी छालको शहद और तण्डुलजलके साथ सेवन करे तो पित्तातिसार दूर हो ॥ ५७ ॥

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकः सरसाञ्जनः।
बिल्वं दारु हरिद्राञ्च त्वग्घ्रीबेरं दुरालभाम् ॥ ५८ ॥
चन्दनञ्च मृणालञ्च नागरं लोध्रमुत्पलम्।
तिला मोचरसो लोध्रं समङ्गा कमलोत्पलम् ॥ ५९ ॥
उत्पलं धातकीपुष्पं दाडिमत्वङ्महौषधम्।
कट्फलं नागरं पाठा जम्ब्वाम्रास्थिदुरालभाः ॥ ६० ॥
योगाः षडेते सक्षौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः।
पेयाः पित्तातिसारघ्नाः श्लोकार्द्धेन निदर्शिताः ॥ ६१ ॥

१–चिरायता, नागरमोथा, कुडाकी छाल और रसौंत। २–बेलगिरि, दारुहलदी, दालचिनी, नेत्रवाला और जवासा। ३–लाल चंदन, कमलकी डण्डी, सोंठ, लोध, और नीलकमल। ४–तिल, मोचरस, पठानीलोध, लाजवंती, नील कमल और लाल कमल। ५–नीलकमल, धावेके फूल, अनारका छिलका और सोंठ। ६–कायफल, सोंठ, पाढ, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली और जवासा इन आधे आधे श्लोकोंमें कहेहुए छः प्रयोगोंमेंसे किसी एकका बारीक चूर्ण शहद और तण्डुलजलके साथ सेवन करनेसे पित्तातिसार दूर होजाता है ॥ ५८–६१ ॥

जीर्णौषधानां शस्यन्ते यथायोगं प्रकल्पितैः।
रसैः सांग्राहिकैर्युक्ताः पुराणा रक्तशालयः ॥ ६२ ॥

औषध जीर्ण होनेपर उसी प्रयोगकी औषधोंसे सिद्ध किया संग्राही मांसरस पुराने लाल शालीचावलोंके भातके साथ भोजन करावे ॥ ६२ ॥

पित्तातिसारो दीप्ताग्नेः क्षिप्रं समुपशाम्यति ।
अजाक्षीरप्रयोगेण बलं वर्णश्च वर्द्धते ॥ ६३ ॥
बहुदोषस्य दीप्ताग्नेः सप्राणस्य न तिष्ठति ।
पैत्तिको यद्यतीसारः पयसा तं विरेचयेत् ॥ ६४ ॥

दीप्ताग्निवाले मनुष्यका पित्तातिसार शीघ्र शान्त होजाता है। उसको बकरीका दूध पिलानेसे बल और वर्णकी वृद्धि होती है। बहुत दोषवाले दीप्ताग्नियुक्त बलवान् पित्तातिसारवालेको दूधके साथ विरेचन करानेसे अतिसार दूर होता है ॥६३॥६४॥

पलाशफलनिर्यूहं पयसा पाययेत्तु तम् ।
ततोऽनुपाययेत्कोष्णं क्षीरमेव यथाबलम् ॥ ६५ ॥
प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः ।
पलाशवत्प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधिनी ॥ ६६ ॥

दूधके साथ विरेचन देनेमें ढाककी फलियोंका क्वाथ दूधमें मिलाकर पिलावे। फिर यथाशक्ति किंचित् उष्ण दूधका अनुपान करावे। इस प्रकार मल निकल-जानेपर पेटका विकार शान्त होजाता है। अथवा ढाककी फलियोंकी जगह त्रायमा-णका क्वाथ दूधमें मिलाकर मलके शोधनके लिये प्रयुक्त करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

पित्तातिसारमें अनुवासन।

संसर्ग्यां क्रियमाणायां शूलं यद्यनुवर्त्तते ।
स्रुतदोषस्य तं शीघ्रं यथावदनुवासयेत् ॥ ६७ ॥
शतपुष्पावरीभ्याञ्च पयसा मधुकेन च ।
तैलपादं घृतं सिद्धं सबिल्वमनुवासनम् ॥ ६८ ॥
कृतानुवासनस्यापि कृतसंसर्जनस्य च ।
वर्त्तते यद्यतीसारः पिच्छाबस्तिरतः परम् ॥६९॥

मल शोधन करनेके अनन्तर पेयादिके क्रमका पालन करनेपर भी यदि शूल आदि रहजाय तो दोष निकालनेके अनन्तर विधिपूर्वक अनुवासन कर्म करे। सौंफ, शतावर, दूध, मुलैठी, घी और घीसे चौथा भाग तेल, बेलगिरि इन सबको तैलपाकविधिसे सिद्ध करके अनुवासनमें प्रयुक्त करे। अनुवासन कर्म करनेपर भी पेयादि-

क्रमका पालन करतेहुए अतिसार संपूर्णरूपसे निःशेष शान्त न हो तो पिच्छावस्तिका प्रयोग करे ॥ ६७–६९ ॥

पिच्छा वस्ति ।

परिवेष्ट्य कुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानि शाल्मलेः ।
कृष्णमृत्तिकयालिप्य स्वेदयेद्गोमयाग्निना ॥ ७० ॥
सुशुष्कां मृत्तिकां ज्ञात्वा तानि वृन्तानि शाल्मलेः ।
शृते पयसि मृद्नीयादापोथ्योलूखले ततः ॥ ७१ ॥
पिष्टं मुष्टिसमं प्रस्थे तत्पूतं तैलसर्पिषा ।
योजितं मात्रया युक्तं कल्केन मधुकस्य च ॥ ७२ ॥
वस्तिमभ्यक्तगात्राय दद्यात्प्रत्यागते ततः ।
स्नात्वा भुञ्जीत पयसा जाङ्गलानां रसेन वा ॥ ७३ ॥
पित्तातिसारज्वरशोथगुल्माजीर्णातिसारग्रहणीप्रदोषान् ।
जयत्ययं शीघ्रमतिप्रवृद्धान्विरेचनास्थापनयोश्च वस्तिः॥ ७४॥

सेमलके फूलोंकी जडकी ओरकी गीली कच्ची टोपियें लेकर उनको हरी कुशाओंसे लपेटकर ऊपरसे काली मट्टीका लेप करे । फिर इस गोलेको मृदु आगमें पकावे जब ऊपरकी मट्टी सूखजाय तो बीचमेंसे सेमलकी फूलोंकी टोपियें निकालकर ऊखलमें भली प्रकार कूटलेवे । वह कूटीहुई सींवलकी कलियें ५ तोले लेकर एक सेर दूधमें पकावे । इस दूधमें तैल घृत और मुलैठीका कल्क मिलाकर इससे वस्तिकर्म करे । किन्तु वस्ति देनेसे प्रथम रोगीके शरीरपर तैलकी मालिश कर लेना चाहिये । जब वस्तिद्वारा भीतर गया द्रव्य बाहर निकलचुके फिर रोगीको स्नान कराके दूध अथवा जांगलजीवोंका मांसरस पिलावे । इस वस्तिके प्रयोगसे पित्तातिसार, ज्वर, सूजन, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, विरेचन और आस्थापनके मिथ्यायोगसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके रोग दूर होजाते हैं ॥ ७०–७४ ॥

रक्तातिसारकी संप्राप्ति ।

पित्तातिसारी यस्त्वेतां क्रियां मुक्त्वा निषेवते ।
पित्तलान्यन्नपानानि तस्य पित्तं महाबलम् ॥ ७५ ॥
कुर्याद्रक्तातिसारं तु रक्तमाशु प्रदूषयेत् ।
तृष्णां शूलं विदाहञ्च गुदपाकञ्च दारुणम् ॥ ७६ ॥

जो पित्तातिसारवाला रोगी उपरोक्त क्रियाको छोडकर पित्तके बढानेवाले अन्न-पानोंका सेवन करता है उसका पित्त अत्यंत प्रकोपको प्राप्त होकर रक्तको अत्यंत दूषित करके रक्तातिसारको उत्पन्न करदेता है। उसमें प्यास, शूल, विदाह और गुदाका दारुण पाक यह उपद्रव होते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

रक्तातिसारकी चिकित्सा।

छागं तत्र पयः शस्तं शीतं समधुशर्करम्।
पानार्थे व्यञ्जनार्थे च गुदप्रक्षालनं तथा ॥ ७७ ॥
भोजनं रक्तशालीनां पयसा तेन भोजयेत्।
रसैः पारावतादीनां घृतभृष्टैः सशर्करैः ॥ ७८ ॥
शशपक्षिमृगाणाञ्च शीतानां वनचारिणाम्।
रसैरनम्लैः सघृतैर्भोजयेत्तं सशर्करैः ॥ ७९ ॥
रुधिरं मार्गमाजं वा घृतभृष्टं प्रशस्यते।
काश्मर्य्याः फलयूषो वा किञ्चिदम्लः सशर्करः ॥ ८० ॥

रक्तातिसारमें शहद और मिसरी मिलाहुआ बकरीका शीतल दूध पीना परम हित-कारी है। यह दूध पीनेमें तथा व्यंजनमें और गुदाको धोनेमें प्रयुक्त करना चाहिये। इसी दूधको लाल शालीचावलोंके भातके साथ भोजनमें प्रयुक्त करे। अथवा कबू-तर आदि पक्षियोंके मांसरसको घीमें भूनकर मिसरी मिला पिलावे। या खरगोश, पक्षी, मृग आदि शीतवीर्य मांसका रस खटाईके विना घी और मिसरी मिला पिलावे। अथवा मृगका रक्त या बकरीका रक्त घृतमें भूनकर पिलावे। अथवा कुंभेरके फलोंका यूप, किंचित् खटाई और मिसरी मिला पिलावे ॥ ७७-८० ॥

नीलोत्पलं मोचरसं समङ्गा पद्मकेशरम्।
अजाक्षीरयुतं दद्याज्जीर्णे च पयसौदनम् ॥ ८१ ॥
दुर्बलं पाययित्वा वा तस्यैवोपरि भोजयेत्।
प्रागुक्तं नवनीतं वा दद्यात्समधुशर्करम् ॥ ८२ ॥

नीलकमल, मोचरस, वाराहक्रांता और कमलकी केशर इन सबका चूर्ण बनाकर बकरीके दूधके साथ देवे। क्षुधा लगनेपर बकरीका दूध और पुराने शालीचावलोंका भात खिलावे। यदि रोगी दुर्बल हो तो औषधपान करनेके अनन्तर ही भोजन करावै अथवा बकरीके दूधका मक्खन शहत और मिसरी मिलाकर चटावे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

प्राश्य क्षीरोत्थितं सर्पिः कपिञ्जलरसाशनः ।
त्र्यहादारोग्यमाप्नोति पयसा क्षीरभुक् तथा ॥ ८३ ॥
पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग् जयेत् ॥
रक्तातिसारं पीत्वा वा तथा सिद्धं घृतं नरः ॥ ८४ ॥

दूधसे निकाला मक्खनको खाकर ऊपरसे कपिंजल (सफेद तीतर) का मांसरस पीवे । अथवा जल मिलाहुआ बकरीका दूध तीन दिन तक पीवे तो रक्तातिसार दूर होता है । शतावरके कल्कको जलयुक्त दूधमें मिलाकर पीवे और दूधका ही भोजन करे । अथवा शतावरके कल्कसे सिद्ध किया घृत पीवे तो रक्तातिसार दूर हो ८३-८४

घृतं यवागूमण्डेन कुटजस्य फलैः शृतम् ।
पेयं तस्यानुपातव्या पेया रक्तोपशान्तये ॥ ८५ ॥

इन्द्रजौ और यवागुमण्डसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेयाका पान करे तो रक्तातिसार शान्त होता है ॥ ८५ ॥

अतिसारनाशकयोग ।

त्वक् च दारुहरिद्रायाः कुटजस्य फलानि च
पिप्पली शृङ्गवेरञ्च लाक्षा कटुकरोहिणी ॥ ८६ ॥
षड्भिरेतैर्घृतं सिद्धं पेयामण्डावचारितम् ।
अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ ८७ ॥

दारुहलदीकी छाल, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ, लाख, कुटकी इन छः औषधियोंसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेयामण्डका अनुपान करे तो त्रिदोषजानित दारुण अतिसार दूर होताहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

कृष्णमृन्मधुकं शंखं रुधिरं तण्डुलोदकम् ।
पीतमेकत्र सक्षौद्रं रक्तसंग्रहणं परम् ॥ ८८ ॥
पीतः प्रियङ्गुकाकल्कः सक्षौद्रस्तण्डुलाम्भसा ।
रक्तस्रावं जयेच्छीघ्रं धन्वमांसरसाशिनः ॥ ८९ ॥

काली मट्टी, मुलैठी, शंखभस्म, केशर और चावलोंका धोअन इन सबको एकत्र कर शहद मिलाकर पीवे तो रक्तातिसार दूर होता है। अथवा फूलप्रियंगुका कल्क शहत और तण्डुलजलसे पीवे तो रक्तका स्राव शीघ्र बन्द होता है । इसके ऊपर जंगली जीवोंके मांसरसके संग चावलोंका भात भोजन करना चाहिये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करा पञ्चभागिकः।
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ९० ॥

काले तिलोंका कल्क पांच भाग, खांड एक भागको बकरीके दूधके साथ पीनेसे रक्तातिसार शीघ्र दूर होता है ॥ ९० ॥

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत्।
यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं जठरामयम् ॥ ९१ ॥

एक पल इन्द्रजौके क्वाथको जो मनुष्य पीता है और ऊपरसे मांसरसका सेवन करता है उसके पित्तातिसार और रक्तातिसार तत्काल नष्ट होजाते हैं ॥ ९१ ॥

पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्भसा।
दाहतृष्णाप्रमेहेभ्यो रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥ ९२ ॥

चावलोंके धोवनमें शहत मिसरी और लालचंदन मिलाकर पीवे तो दाह, प्यास, प्रमेह और रक्तका स्राव यह सब दूर होते हैं ॥ ९२ ॥

गुदो बहुभिरुत्थानैर्यस्य पित्तेन पच्यते।
सेचयेत्तं सुशीतेन पटोलमधुकाम्बुना ॥ ९३ ॥

यदि बहुत दस्तोंके लगनेसे गुदा पकगई हो तो गुदाको पटोलपत्र और मुलैठीके क्वाथको शीतलकर उससे धोवे ॥ ९३ ॥

पञ्चवल्कमधूकानां रसैरिक्षुरसैर्घृतैः।
छागैर्गव्यैः पयोभिर्वा शर्कराक्षौद्रसंयुतैः ॥ ९४ ॥
प्रक्षालनानां कल्कैर्वा ससर्पिष्कैः प्रलेपयेत्।
एषां वा सुकृतैश्चूर्णैस्तं गुदं प्रतिसारयेत् ॥ ९५ ॥
धातकीलोध्रचूर्णैर्वा समांशैः प्रतिसारयेत्।
तथा तत्र स्रवत्यस्रं गुदं तैः प्रतिसारितम् ॥ ९६ ॥
पक्वता प्रशमं याति वेदना चोपशाम्यति।
यथोक्तैः सेचनैः शीतैः शोणिते निःस्रवत्यपि।
गुदवंक्षणकट्यूरु सेचयेद्घृतभावितम् ॥ ९७ ॥
चन्दनाद्येन तैलेन शतधौतेन सर्पिषा।
कार्पाससहयोगेन सेचयेद्गुदवंक्षणौ ॥ ९८ ॥

अथवा पंचवल्कल और महुएका क्वाथ, या ईखका रस अथवा घृत या शहद और मिसरीयुक्त बकरीका दूध, या गौका दूध लेकर उससे गुदा प्रक्षालन करे या इन सब द्रव्योंके बारीक चूर्णको घीमें मिलाकर गुदापर लेपकरे अथवा इन सबके बारीक चूर्णको गुदापर बुरकावे । अथवा धावेके फूल और पठानीलोधको बारीक करके गुदापर प्रतिसारण करे । इस प्रकार प्रतिसारण करनेसे मलद्वारसे रुधिरका स्राव होता है । उससे गुदाका पकना और गुदाकी पीडा यह सब दूर होजाती है । रक्तका स्राव होनेपर गुदा, वंक्षण, कमर और ऊरुस्थलमें घृत चुपडकर पूर्वोक्त शीतल क्वाथोंका तरडा देवे । अथवा चंदनादि तैल या सौ बार धुलेहुए घृतको गुदा और वंक्षणोंपर लेप करके रूईके फोहेको उपरोक्त शीतल क्वाथोंमें भिगो उससे गुदाको सेचन करे ॥ ९४--९८ ॥

अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपवेश्यते ।
यदा वायुर्विबद्धश्च कृच्छ्रं चरति वा न वा ॥ ९९ ॥
पिच्छावस्तिं तदा तस्य यथोक्तमुपकल्पयेत् ।
प्रपौण्डरीकसिद्धेन सर्पिषा चानुवासयेत् ॥ १०० ॥

यदि थोडा थोडा रक्त बारंबार पीडाके साथ निकले और अपानवायु विरुद्ध होकर कोष्ठमें विचरण करे अथवा एकस्थानमें ही बद्ध रहे तो ऐसे समय पूर्वोक्त पिच्छावस्ति विधिवत् प्रयोग करना चाहिये । अथवा प्रपौण्डरीकके साथ सिद्धकियेहुए घृतसे अनुवासन करे ॥ ९९ ॥ १००॥

प्रायशो दुर्बलगुदाश्चिरकालातिसारिणः ।
तस्मादभीक्ष्णशस्तेषां गुदस्नेहं प्रयोजयेत् ॥ १०१ ॥

अतिसार रोग बहुत दिनतक बना रहनेसे गुदा अत्यन्त दुर्बल होजाती है । इसलिये ऐसे मनुष्योंकी गुदामें नित्य चिकनाई लगाना चाहिये ॥ १०१ ॥

पवनोऽतिप्रवृत्तो हि स्वे स्थाने लभतेऽधिकम् ।
बलं तस्य सपित्तस्य जयार्थे वस्तिरुत्तमः ॥ १०२ ॥

अतिसारकी अत्यन्त प्रवृत्ति होनेसे वायु अपने स्थान (मलाशय) में अत्यन्त कुपित होकर पित्तसे मिलजाती है । उस प्रबल वात पित्तके जीतनेके लिये बस्तिक्रिया करना ही श्रेष्ठ है ॥ १०२ ॥

रक्तं विट्सहितं पूर्वं पश्चाद्वा योऽतिसार्य्यते ।
शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ १०३ ॥

शर्कराद्धांशिकं लीढं नवनीतं नवोद्धृतम् ।
क्षौद्रपादं जयेच्छीघ्रं तं विकारं हिताशिनः ॥ १०४ ॥

जिस रोगीके मलके साथ प्रथम रुधिर निकले और पीछे अधोवायु निकले उसको शतावरीका घृत चटाना चाहिये । अथवा ताजा मक्खन लेकर उसमेंसे आधेको मिसरीमें और आधा शहतमें मिलाकर चाटे और पथ्य भोजन करे तो यह विकार शान्त होता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्य वासयेत् ।
अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसा पचेत् ॥ १०५ ॥
तदर्द्धं शर्करायुक्तं लिह्यात्सक्षौद्रपादिकम् ।
अधो वा यदि वाप्यूर्द्ध्वं यस्य रक्तं प्रवर्त्तते ॥ १०६ ॥

वड, गूलर और पीपलके अंकुरोंको कूटकर एक दिनरात गर्म जलमें भिगोरक्खे। फिर उस जलसे सिद्ध कियाहुआ घृत आधी मिसरी और चौथा भाग शहत मिलाकर चाटनेसे अधोवायुके साथ या दस्तके साथ अथवा वमनके साथ रक्तका निकलना बन्द होजाता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

यस्त्वेवं दुर्बलो मोहात्पित्तलान्येव सेवते ।
शीघ्रं विपद्यते प्राप्य वलीपाकं सुदारुणम् ॥ १०७ ॥

जो दुर्बल रक्तातिसाररोगी मोहसे पित्तकर्त्ता पदार्थोंका सेवन करता है वह दारुण गुदवलीके पाकसे व्याकुल हो मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १०७ ॥

कफातिसारकी चिकित्सा।

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लङ्घनपाचनम् ।
योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः ॥ १०८ ॥
लङ्घितस्यानुपूर्व्याश्च कृतायां न निवर्त्तते ।
कफजो यद्यतीसारः कफघ्नैस्तमुपाचरेत् ॥ १०९ ॥

कफके अतिसारमें पहिले लंघन कराना और पाचन देना हितकारी है तथा पहिले कहाहुआ आमातिसारनाशक दीपनीयगणका प्रयोग करना उचित है । भल प्रकार लंघन और पेयादिक्रमके पालन करनेपर भी यदि कफातिसार शान्त न हो तो कफनाशक योगोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

बिल्वकर्कटिकामुस्तमभयाविश्वभेषजम् ।
वचाविडङ्गं भूतीकं धान्यकं देवदारु च ॥ ११० ॥

कुष्ठं सातिविषा पाठा चव्यं कटुकरोहिणी।
पिप्पली पिप्पलीमूलं चैत्रकं हस्तिपिप्पली ॥ १११ ॥
योगान् श्लोकार्द्धविहितांश्चतुरस्तान्प्रयोजयेत्।
शृतान् श्लेष्मातिसारेषु कायाग्निबलवर्द्धनान् ॥ ११२ ॥

१-बेलगिर, काकडासिंगी, नागरमोथा, हरडे और सोंठ; २-बच वायविडंग, अजवायन, धनियां और देवदारु; ३-कूठ, अतीश, पाढ, चव्य और कुटकी; ४-पीपल, पीपलामूल, चित्रक और गजपीपल इन आधे आधे श्लोकोंमें कहे हुए चार योगोंमें किसी एक योगका क्वाथ शहत मिलाकर पीनेसे कफातिसार दूर होकर जठराग्निका बल बढता है ॥ ११०-११२ ॥

अजाजीं ससितां पाठां नागरं मरिचानि च।
धातकीद्विगुणं दद्यान्मातुलुङ्गरसाप्लुतम् ॥ ११३ ॥
रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलानि च।
धातकीद्विगुणं दद्यात्शातुं सक्षौद्रनागरम् ॥ ११४ ॥

जीरा, मिसरी, पाढ, सोंठ, कालीमिर्च इन सबसे दूने धावेके फूल लेकर बारीक चूर्ण बना बिजौरेके रसमें घोटकर सेवन करे। अथवा रसौंत, अतीश, इन्द्रजौ इन सबसे दूने धावेके फूल इनका चूर्ण बना शहत और सोंठ मिला सेवन करे तो कफातिसार दूर हो ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

धातकी नागरं बिल्वं लोध्रं पद्मस्य केशरम्।
जम्बुत्वङ्नागरं धान्यं पाठा मोचरसं बला ॥ ११५ ॥
समङ्गा धातकी बिल्वमध्यं जम्ब्वाम्रयोस्त्वचा।
कपित्थानि विडङ्गानि नागरं मरिचानि च ॥ ११६ ॥
चाङ्गेरीकोलतक्राम्लांश्चतुरस्तान् कफातुरे।
श्लोकार्द्धविहितान् दद्यात्सस्नेहलवणान् खडान् ॥ ११७ ॥

१- धावेके फूल, सोंठ, बेलगिरि, पठानीलोध और पद्मकेशर; २-जामुनकी छाल, सोंठ, धनियाँ, पाठा, मोचरस और बला; ३-वाराहक्रान्ता, धावेके फूल, बेलगिरि, जामुनकी छाल और आमकी छाल; ४-कैथ, वायविडंग, सोंठ और मिर्च इन आधे आधे श्लोकोंमें कहे चार योगोंमेंसे किसी एकको चांगेरी, बेर और तक्रकी खटाई तथा स्नेह और लवणयुक्त कर खडयूष बना कफातिसारमें प्रयुक्त करे ११५-११७

कपित्थमध्यं लीढ्वा तु सव्योषक्षौद्रशर्करम्।
कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात्॥ ११८॥

कैथका गूदा, त्रिकुटा, शहद और शर्करा इन सबको मिलाकर चाटे अथवा कायफल, शहद मिलाकर चाटे तो कफजनित पेटके विकार शान्त होते हैं॥११८॥

कणां मधुयुतां पीत्वा तक्रं पीत्वा सचित्रकम्।
जग्ध्वा वा बालबिल्वानि मुच्यते जठरामयात्॥ ११९॥

शहदमें पीपल मिलाकर चाटनेसे अथवा तक्रमें चित्रकका चूर्ण मिलाकर पीनेसे अथवा कच्चे बिल्वकी गिरि खानेसे कफजनित उदररोग दूर होता है॥ ११९॥

बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीं विश्वभेषजम्।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकः॥ १२०॥

कच्चे बिल्वकी गिरि, गुड, तेल, पीपल और सोंठ इन सबको मिलाकर सेवन करनेसे अधोवायुकी रुकावट शूल और प्रवाहिका यह सब दूर होते हैं॥ १२०॥

भोज्यं मूलकषायेण वातघ्नैश्चोपसेवनैः।
वातातिसारविहितैर्यूषैर्मांसरसैः खडैः॥ १२१॥
पूर्वोक्तमम्लं सर्पिर्वा षट्पलं वा यथाबलम्।
पुराणं वा घृतं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम्॥ १२२॥
वातश्लेष्मविबन्धे वा कफे वाऽतिस्रवत्यपि।
शूले प्रवाहिकायां वा पिच्छाबस्तिं प्रयोजयेत्॥ १२३॥

मूलीका क्वाथ अथवा वातनाशक द्रव्य या वातातिसारमें कहेहुए यूष, मांसरस, खडयूष इनका सेवन करना अथवा पूर्वोक्त अम्लघृत वा षट्पलघृत अथवा पुराना घृत यवागूमण्डमें मिलाकर सेवन करावै। वात और कफके विबंध अथवा कफवातके स्रावमें शूल और प्रवाहिका हो तो पिच्छावस्तिका प्रयोग करावे॥ १२१-१२३॥

पिप्पलीबिल्वकुष्ठानां शताह्वावचयोरपि।
कल्कैः सलवणैर्युक्तं पूर्वोक्तं सन्निधापयेत्॥ १२४॥
प्रत्यागते सुखे स्नातं कृताहारं दिनात्यये।
बिल्वतैलेन मतिमान् सुखोष्णेनानुवासयेत्॥ १२५॥

पीपल, बेलगिरि, कूठ, सौंफ और वच इनके कल्कमें नमक मिलाकर पिच्छावस्तिका प्रयोग करे। जब वस्तिद्वारा गयाहुआ द्रव्य सब बाहर निकलजाय तो

रोगीको स्नान कराकर पथ्य भोजन करावे। फिर सायंकाल बिल्वतैलसे अनुवासन करावे ॥ १२४ । १२५ ॥

वचान्तैरथवा कल्कैस्तैलं पक्त्वानुवासयेत्।
बहुशः कफवातार्त्तस्तथा स लभते सुखम् ॥ १२६ ॥

अथवा पीपल, बेलगिरि, कूठ, सौंफ और वच इनसे सिद्धकिये तैलसे कफ और वायुसे पीडित रोगीको बार बार अनुवासनकर्म करावे। ऐसा करनेसे रोग शान्त होकर मनुष्यको सुख प्राप्त होता है ॥ १२६ ॥

स्वे स्थाने मारुतोऽवश्यं वर्द्धते कफसंक्षये।
स वृद्धः सहसा हन्यात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ १२७ ॥

कफके क्षय होनेपर पक्वाशयमें स्थित वायु अत्यन्त प्रबल होजाती है फिर वह बढीहुई वायु शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट कर देती है। इसलिये उसको अत्यन्त शीघ्र जीतना चाहिये ॥ १२७ ॥

वातस्यानु जयेत्पित्तं पित्तस्यानु जयेत्कफम्।
त्रयाणां वा जयेत्पूर्वं यो भवेद्बलवत्तमः ॥ १२८ ॥

पहिले वातको जीते, फिर पित्तको जीते तदनन्तर कफको जीतना चाहिये। अथवा इन तीनोंमें जो बढा हुआ हो पहिले उसको जीतना उचित है ॥ १२८ ॥

तत्र श्लोकः–प्रागुत्पत्तिनिमित्तानि लक्षणं साध्यता तथा।
क्रिया चावस्थिकी सिद्धा निर्दिष्टा ह्यतिसारिणाम् ॥ १२९ ॥

इति चरक० चि० अतिसारचिकित्सितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि, इस अतिसारचिकित्सित अध्यायमें अतिसाररोगकी प्रथम उत्पत्ति, हेतु, लक्षण, साध्यता और अवस्थानुसार अतिसार रोगियोंकी सिद्ध चिकित्सा यह सब वर्णन कियागया है ॥ १२९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां अतिसारचिकित्सितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः।

अथातो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम विसर्पचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान आत्रेयजी कहनेलगे॥

कैलासे किन्नराकीर्णे बहुप्रस्रवणौषधे।
पादपैर्विविधैः स्निग्धैर्नित्यं कुसुमसम्पदैः॥ १॥
वहद्भिर्मधुरान् गन्धान् सर्वतः स्वभ्यलंकृते।
विहरन्तं जितात्मानमात्रेयमृषिवन्दितम्॥ २॥
महर्षिभिः परिवृतं विभुं भूतहिते रतम्।
अग्निवेशो गुरुं काले विनयादिदमुक्तवान्॥ ३॥
भगवन् दारुणं रोगमाशीविषविषोपमम्।
विसर्पन्तं शरीरेषु देहिनामुपलक्षये॥ ४॥
सहसैव नरास्तेन परीताः शीघ्रकारिणा।
विनश्यन्त्यनुपक्रान्तास्तत्र नः संशयो महान्॥ ५॥
स नाम्ना केन विज्ञेयः संज्ञितः केन हेतुना।
कति भेदः कियद्धातुः किंनिदानः किमाश्रयः॥ ६॥
सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो ज्ञेयो यश्चानुपक्रमः।
कथं कैर्लक्षणैः किञ्च भगवँस्तस्य भेषजम्॥ ७॥

किन्नरोंसे सुशोभित अनेक झरने और बहुतसी औषधियोंसे युक्त, जिसमें अनेक प्रकारके स्निग्ध वृक्ष सुगन्धि फूलोंकी सुन्दर गन्धोंको बरसारहे हैं और सब ओरसे शोभाको बढारहे हैं उस कैलास पर्वतपर एक समय जितेन्द्रिय ऋषिगणोंसे पूजित प्रभावशाली परम करुणामय महर्षि आत्रेयजी भ्रमण कररहे थे। उन महर्षिगणोंसे घिरे हुए अपने गुरु भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश अवकाश पाकर पूछने लगे कि, हे गुरो! एक प्रकारका दारुणरोग सांपके विषके समान मनुष्योंके शरीरमें शीघ्र फैलनेवाला देखनेमें आता है इससे ग्रसित हुए मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं।

इसमें मुझे बडा भारी संशय है कि, इस रोगका नाम क्या है और वह नाम किस कारणसे हुआ, इसके कितने भेद हैं और कौनसी धातुयें हैं तथा निदान क्या है और अधिष्ठान क्या है ? इसकी साध्यता, कष्टसाध्यता और असाध्यता लक्षण तथा चिकित्सा किस प्रकार है सो कृपा करके यथाक्रम इसका वर्णन कीजिये ॥ १–७ ॥

विसर्पकी निरुक्ति।

तदग्निवेशस्य वचः श्रुत्वाऽऽत्रेयः पुनर्वसुः।
यथावदखिलं सर्वं प्रोवाच मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥
विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।
परिसर्पोऽथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥ ९ ॥

अग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर मुनियोंमें श्रेष्ठ पुनर्वसु आत्रेयजी इसके विषयमें संपूर्णरूपसे कथन करने लगे कि, यह रोग अनेक प्रकारसे देहमें सर्पण (विचरण) करता है इसलिये इसका नाम विसर्प है । और शरीरमें सर्वतः परिसर्पित होनेसे इसको परिसर्प भी कहते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

विसर्पके भेद।

स च सप्तविधो दोषैर्विज्ञेयः सप्तधातुकः।
पृथक्त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पो द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ १० ॥
वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः।
चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ ११ ॥

यह वातादिभेदसे सात प्रकारका होता है। जैसे एक वातका, एक पित्तका, एक कफका और तीन दो दो दोषोंसे एक सन्निपातसे ॥ १० ॥ ११ ॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः।
यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥ १२ ॥

वातपित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पको आग्नेय कहते हैं। कफ और वातसे उत्पन्न हुए विसर्पको ग्रंथिविसर्प कहते हैं और पित्तकफके विसर्पको कर्दमक ॥ १२ ॥

विसर्पके धातु।

रक्तं लसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः।
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥ १३ ॥

रक्त, लसीका, त्वचा, मांस यह चारों दूष्य और तीनों दोष यह सात धातु विसर्पकी उत्पत्तिमें दूषित होते हैं ॥ १३ ॥

विसर्पका निदान।

लवणाम्लकटूष्णानां रसानामतिसेवनात्।
दध्यम्लमस्तुशुक्तानां सुरासौवीरकस्य च ॥ १४ ॥
व्यापन्नबहुमद्योष्णरागषाडवसेवनात्।
शाकानां हरितानाञ्च सेवनाच्च विदाहिनाम् ॥ १५ ॥
कूर्चिकानां किलाटानां सेवनान्मन्दकस्य च।
दध्नः शाण्डाकिपूर्वाणामास्नुतानाञ्च सेवनात् ॥ १६ ॥
तिलमाषकुलत्थानां तैलानां पैष्टिकस्य च।
ग्राम्यानूपौदकानाञ्च मांसानां लशुनस्य च ॥ १७ ॥
प्रक्लिन्नानामसात्म्यानां विरुद्धानाञ्च सेवनात्।
अत्यादानाद्दिवास्वप्नादजीर्णाध्यशनात्क्षतात् ॥ १८ ॥
वधबन्धप्रपतनाद्धर्मकर्मातिसेवनात्।
विषवाताग्निदोषाच्च विसर्पाणां समुद्भवः ॥ १९ ॥

लवण, अम्ल, कटु और उष्ण रसोंके अत्यंत सेवनसे; दही, खटाई मस्तु (दहीके तोड) शुक्त, सुरा, सौवीरक, दूषितमद्य, तीक्ष्णमद्य, दूषित राग, खाण्डव, शाक, सब्जी, विदाहकारक द्रव्य, कूर्चिका, किलाट, मंदकदही तथा दही और शाण्डाकी आदि आसवका अधिक सेवन करनेसे तथा तिल, उडद, कुल्थी, तेल और पिष्टान्नके सेवनसे ग्राम्य अनूपसंचारी और जलज जीवोंके मांस अधिक सेवन करनेसे, लहसुन तथा क्लेदित विरुद्ध और असात्म्य अन्नके सेवनसे अत्यन्त आदान, दिनमें सोना, अजीर्ण और अधिक भोजन करनेसे क्षत, वेधन, बन्धन और पतन होनेसे धूप और परिश्रमके अधिक सेवनसे, विष, दूषितपवन और अग्निके दोषसे विसर्परोगकी उत्पत्ति होती है ॥ १४–१९ ॥

एतैर्निदानैर्व्यामिश्रैः कुपिता मारुतादयः।
दूष्यं संदूष्य रक्तादि विसर्पन्त्यहिताशिनाम् ॥ २० ॥

इन मिलेहुए कारणोंसे अहित भोजन करनेवाले मनुष्योंके वातादि दोष कुपित होकर रक्त, लसीका, त्वचा और मांसको दूषित करके विसर्परोगको शरीरमें फैलाते हैं ॥ २० ॥

विसर्पकी साध्यासाध्यता।

बहिः श्रितः श्रितश्चान्तस्तथा चोभयसंश्रितः।
विसर्पो बलमेतेषां ज्ञेयं गुरु यथोत्तरम् ॥ २१ ॥

वह विसर्परोग शरीरके बाहर अथवा भीतर या बाहर और भीतर दोनों स्थानोंमें आश्रित होता है। इनमें बाहर होनेवाले विसर्पसे भीतरवाला विसर्प बलवान् होता है और भीतरवालेसे दोनों स्थानोंमें आश्रित विसर्प प्रबल होता है ॥ २१ ॥

बहिर्मार्गाश्रितं साध्यमसाध्यमुभयाश्रितम्।
विसर्पं दारुणं विद्यात्सुकृच्छ्रं त्वन्तराश्रयम् ॥ २२ ॥

बाहर होनेवाला विसर्प साध्य होता है। बाहर और भीतर दोनों स्थानोंमें आश्रित विसर्प असाध्य तथा केवल भीतर ही होनेवाला विसर्प कष्टसाध्य होता है ॥ २२ ॥

अन्तः प्रकुपिता दोषा विसर्पन्त्यन्तराश्रये।
बहिर्बहिः प्रकुपिताः सर्वत्रोभयसंश्रिताः ॥ २३ ॥

अंतराश्रित विसर्पमें सब दोष भीतरकी ओर कुपित होकर भीतर विसर्पको करतेहैं बहिराश्रित विसर्पमें बाहर और उभयाश्रित विसर्पमें सर्वत्र विसर्पण करते हैं ॥ २३ ॥

विसर्पके लक्षण।

मर्मोपघातात्संमोहादयनानां विघट्टनात्।
तृष्णातियोगाद्वेगानां विषमाणां प्रवर्त्तनात् ॥ २४ ॥
विद्याद्विसर्पमन्तर्यदाशु चाग्निबलक्षयात्।
अतो विपर्य्ययाद्बाह्यमन्यैर्विद्यात्स्वलक्षणैः ॥ २५ ॥

मर्मोका अभिघात, बेहोशी, मल मूत्रादि वेगोंकी विषमभावसे प्रवृत्ति और शीघ्र अग्निके बलकी हानि इन कारणोंसे यह अंतर्विसर्पके लक्षण हैं। इससे विपरीत लक्षणोंसे बाहर होनेवाले विसर्पको जाने ॥२४॥२५॥

यस्य लिङ्गानि सर्वाणि बलवद्यस्य कारणम्।
यस्य चोपद्रवाः कष्टा मर्मगो यश्च हन्ति सः ॥ २६ ॥

जिस विसर्पके कारण बलवान् हों और बाहर और भीतरके सब लक्षणयुक्त हों तथा उपद्रव सहित हों और मर्मगामी हों वह विसर्प प्राणोंको नाश करनेवाला होता है ॥ २६ ॥

वातजविसर्पका निदान लक्षण।

रूक्षोष्णैः केवलो वायुः पूरणैर्वा समाचितः।
प्रदुष्टो दूषयन् दूष्यं विसर्पति यथाबलम् ॥ २७ ॥

तस्य स्वरूपाणि—भ्रमदवथुपिपासानिस्तोदशूलाङ्गमर्दोद्वेष्टनकम्पज्वर-तमककासास्थिसन्धिभेदविश्लेषणवेपनारोचकाविपाकाश्चक्षुषोराकुल-त्वमस्रागमनं पिपीलिकासञ्चार इव चाङ्गेषु यस्मिंश्चावकाशे विसर्पो विसर्पति सोऽवकाशः श्यावारुणावभासः श्वयथुमान्निस्तोदभेदशूला-यासंसंकोचहर्षस्फुरणैरतिमात्रं प्रपीड्यते। अनुपक्रान्तश्चोपचीयते शीघ्रं भेदैः स्फोटकैस्तनुभिररुणाभैः श्यावैर्वा तनुविषमदारुणाल्पा-स्रावैर्विबद्धवातमूत्रवर्चस्तानि निदानोक्तानि चास्य नोपशेरते विपरी-तानि चोपशेरत इति वातविसर्पः॥ २८॥

रूक्ष अथवा उष्ण अथवा बहुत भोजन करनेसे संचित हुई वायु अथवा अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु प्रदुष्ट होकर रक्तादि दूष्योंको दूषित कर यथाबल शरीरमें विचरण करती है। तब उसके यह लक्षण होते हैं। जैसे—भ्रम, धुकधुकी, प्यास, तोद, शूल, अंगमर्द, उद्वेष्टन, कम्प, ज्वर, तमकश्वास, खांसी, हडफूटन, सन्धियोंमें पीडा, हड्डियोंका ढीला पडजाना और कांपना, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, नेत्रोंमें व्याकुलता, रुधिरका निकलना, शरीरमें चींटियोंका चलनासा प्रतीत होना, जिस स्थानमें विसर्प फैलता हो उस स्थानका वर्ण लाल और सूजनयुक्त होजाना, उसमें सुई चुभनेसी पीडा होनी तथा भेद शूल, आयाम, संकोच, हर्ष, स्फुरण इनका अधिक होना, इसकी चिकित्सा शीघ्र न की जानेसे विसर्पके स्थानमें भेद होना तथा पतले, लाल या काले बहुतसी फुन्सियां होना, उनमेंसे पतला, स्वच्छ और लाल थोडा २ स्राव होना, अधोवायु, मूत्र और मलकी रुकावट होना और वातकारक निदानमें कहेहुए द्रव्योंसे रोगका बढना, उससे विपरीत द्रव्योंसे शान्त होना यह वातजविसर्पके लक्षण हैं॥ २७॥ २८॥

पित्तविसर्पके निदान लक्षण।

पित्तमुष्णोपचारादिविदाह्यम्लाशनैश्चितम्।
दूष्यं संदूष्य मार्गांश्च पूरयन्वै विसर्पति॥ २९॥

तस्य रूपाणि—ज्वरस्तृष्णा मूर्च्छा मोहश्छर्दिररोचकोऽङ्गभेदः स्वेदोऽतिमात्रमन्तर्दाहः प्रलापः शिरोरुक् चक्षुषोराकुलत्वमस्वप्नमरतिर्भ्रमः शीतवातवारितर्षोऽतिमात्रं हरितनेत्रमूत्रवर्चस्त्वक् तेषां हरितहारित-हारिद्ररूपदर्शनं यस्मिंश्चावकाशे विसर्पोऽनुसर्पति सोऽवकाशस्ताम्र-

हरितहरिद्रनीलकृष्णरक्तानां वर्णानामन्यतमं पश्यति । सोत्सेधैश्चाति-मात्रं दाहसम्भेदनपरीतैः स्फोटकैरुपचीयते तुल्यवर्णास्त्रावैरचिरपाकै-र्निदानोक्तानि नोपशेरते विपरीतानि चोपशेरत इति पित्तविसर्पः॥ ३०॥

पित्तकारक, गरम उपचारके करनेसे विदाही, खट्टे द्रव्योंके सेवनसे संचित हुआ पित्त रक्तादि दूष्योंको दूषित करके छिद्रोंको पूरणकर विसर्परोगको प्रगट करता है । उस पित्तविसर्पके ये लक्षण हैं । जैसे–ज्वर, प्यास, मूर्च्छा, मोह, वमन, अरुचि, अंगभेद, स्वेद, अधिक अन्तर्दाह, बकवाद, मस्तकपीडा, नेत्रोंमें व्याकुलता, नीन्दका न आना, अस्थिरता, भ्रम, शीतल पवन और शीतल जलकी इच्छा, नेत्र, मूत्र, मल और त्वचाका हरा और हलदीके समान होना, सब वस्तुयें हलदीके समान दिखाई देना, विसर्प होनेके स्थानमें ताम्रवर्ण, हरा, हल्दीके समान, नीला, काला अथवा लालवर्ण होना विसर्पका अत्यन्त उठाहुआ होना, जलन और स्वेदसे युक्त फोडोंसे व्याप्त होना, इनमेंसे उपरोक्त वर्णका स्राव होना, इस विसर्पका अतिशीघ्र पकजाना निदानमें कहेहुए द्रव्योंसे वृद्धिको प्राप्त होना और उससे विपरीत द्रव्योंसे शान्त होना यह पित्तविसर्पके लक्षण हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

कफविसर्पके निदान लक्षण ।

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः ।
कफः संदूषयन् दूष्यं कृच्छ्रमङ्गे विसर्पति ॥ ३१ ॥

तस्य रूपाणि–शीतकः शीतकज्वरो गौरवं निद्रा तन्द्रारोचको मधु-रास्यत्वमास्योपलेपो निष्ठीविका च्छर्दिरालस्यं स्तैमित्यमग्निनाशो दौर्बल्यं यस्मिंश्चावकाशे विसर्पति सोऽवकाशः श्वयथुमान् पाण्डु-मान्नातिरक्तस्नेहः सुप्तिस्तम्भगौरवैरन्वितोऽल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैश्चिर-कारिभिः बहुलत्वगुपलेपैः स्फोटैः श्वेतपाण्डुभिरनुबध्यते । प्रभिन्नस्तु श्वेतं पिच्छिलं तन्तुमद्धनमनुबद्धं स्निग्धमास्रावं स्रवत्यूर्द्धञ्च गुरुभिः स्निग्धैर्जलावततैः स्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्व्रणैरनुबध्यतेऽनुषङ्गी श्वेतन-खनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्तानि निदानोक्तानि नोपशेरते विपरीतानि चोपशेरत इति श्लेष्मविसर्पः ॥ ३२ ॥

मीठे, खट्टे, नमकीन, चिकने और भारी पदार्थोंके सेवनसे और दिनमें सोनेसे संचितहुआ कफ रक्तादि दूष्योंको दूषित करके कष्टकारक हुआ शरीरमें परिसर्पण

(विसर्परोग) करता है। उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे—विसर्पका शीतल होना, शीत ज्वर, गुरुता, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि, मुखमें मीठापन और लिपाहट, बारबार कफका प्रसेक, वमन, आलस्य, स्तैमित्य, जठराग्निका नाश और दुर्बलता तथा विसर्पके स्थानमें सूजन हो पीला और अत्यंत लाल, अधिक चिकना, सुन्न, स्तब्धता, अंगोंकी भारी और अल्प पीडायुक्त विसर्प हो, वह कठिनतासे परिपाकको प्राप्त हो, देरतक बनारहे, त्वचामें अत्यंत उपलेपसा हो, सफेद तथा पाण्डुवर्णके फोडोंसे व्याप्त हो विसर्पके फूटनेसे स्वेद, पिच्छिल, तारयुक्त, गाढा और हरवक्त रहनेवाला तथा चिकना स्राव हो, विसर्पके ऊपरके भागमें भारी, चिकने, गीले त्वचामें लिपेहुएसे व्रणोंका अनुबंध होना, आनुषंगिक, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका सफेद होना, कफकारक द्रव्योंसे रोगका बढना और विपरीत द्रव्योंसे शान्त होना यह कफ-विसर्पके लक्षण हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वातपित्तज अग्निविसर्पके लक्षण।

वातपित्तं प्रकुपितमतिमात्रं स्वहेतुभिः।
परस्परं लब्धबलं दहद्गात्रं विसर्पति ॥ ३३ ॥

तदुपतापादातुरः सर्वशरीरमङ्गारैरिवाकीर्य्यमाणं मन्यते। छर्द्यती-सारमूर्च्छादाहमोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभेदतृष्णाविपाकाङ्ग-भेदादिभिश्चाभिभूयते। यं यं चावकाशं विसर्पोऽनुसर्पति सोऽवकाशः शान्ताङ्गारप्रकाशोऽतिरिक्तो वा भवत्यग्निदग्धप्रकारैश्च स्फोटैरुपची-यते स शीघ्रगत्वादाशु एव मर्मानुसारी भवति। मर्मणि चोपतप्तपवनोऽ-तिबलो भिनत्ति अङ्गानि अतिमात्रं प्रमोहयति संज्ञां हिक्काश्वासौ जनयति नाशयति निद्राम्। स नष्टनिद्रः प्रमूढसंज्ञो व्यथितचेता न क्वचन सुखमुपलभते अरतिपरीतः स्थानादासनाच्छय्यां क्रान्तुमिच्छति क्लिष्टभूयिष्ठश्चाशु निद्रां भजति। अबलो दुःखप्रबोधश्च तमेवंविधमग्नि-विसर्पपरीतमचिकित्स्यं विद्यात् ॥ ३४ ॥

अपने कारणोंसे प्रकोपको प्राप्त हुए वात, पित्त परस्पर बलको प्राप्त हो देहमें दाहको प्रगट करते हुए विसर्पको करते हैं, तब यह होते हैं। वातपित्तके विसर्पमें संपूर्ण शरीरमें जलते हुए अंगार बिखरेहुए हैं ऐसा प्रतीत हो, तथा वमन, अतिसार,

---

१ गीले कपडेसे लिपटाहुवा जैसा मालूम होना।

मूर्च्छा, दाह, मोह, ज्वर, तमकश्वास, अरुचि, हड्डियोंका टूटना, संधियोंमें पीडा, प्यास, अन्नका न पकना और अंगभेद आदि उपद्रवोंका होना, विसर्प होनेका स्थान बुझेहुए अंगारोंके समान अथवा अत्यंत काले वर्णका हो। आगसे जले हुएके समान दाहयुक्त फोडोंसे व्यापक होना। यह विसर्प शीघ्रगति होनेसे सद्यः मर्म स्थानमें पहुंचजाय। मर्मस्थानमें वायुका सन्ताप होनेसे सब अंगोंमें अत्यंत भेदनकीसी पीडा, संज्ञानाश, हिचकी, श्वास यह उत्पन्न होते हैं और निद्रानाश होता है। रोगी निद्रारहित, चैतन्यतारहित और व्यथायुक्त चित्तवाला होनेसे किसी प्रकार भी सुखको प्राप्त नहीं होसकता और अस्थिर होकर स्थान, आसन, शय्यापर इधर उधर पलटनेकी इच्छा करता है। फिर अत्यंत व्याकुल और दुर्बल होकर गिरजाता है। और तत्काल वैकारिक निद्राको प्राप्त होता है तथा जगानेसे भी मुश्किलसे जागता है। इस प्रकार यह अग्निविसर्पवाला रोगी अचिकित्स्य जानना ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कफपित्तजकर्दमविसर्पके लक्षण।

कफपित्तं प्रकुपितं बलवत्स्वेन हेतुना।
विसर्पत्येकदेशन्तु प्रक्लेदयति देहिनः ॥ ३५ ॥

तद्विकाराः—शीतज्वरः शिरोगुरुत्वं दाहः स्तैमित्यमङ्गावसादनं निद्रा तन्द्रा मोहोऽन्नद्वेषः प्रलापोऽग्निनाशो दौर्बल्यमस्थिभेदो मूर्च्छा पिपासा स्रोतसां प्रलेपो जाड्यमिन्द्रियाणां प्रायोपवेशनमङ्गविक्षेपोऽङ्गमर्दोऽरतिरौत्सुक्यश्च उपजायते। प्रायश्चामाशये विसर्पत्येकदेशग्राही यस्मिंश्चावकाशे विसर्पति सोऽवकाशो रक्तपीतपाण्डुपीडकावकीर्ण इव मेचकाभः कालो मलिनः स्निग्धो बहूष्मा गुरुः स्तिमितवेदनः श्वयथुमान् गम्भीरपाकः निरास्रवः शीघ्रक्लेदः स्विन्नक्लिन्नपूतिमांसत्वक्क्रमेणाल्परुक्परामृष्टोऽवदीर्य्यते कर्दम इवावपीडितोऽनन्तरं प्रयच्छत्युपक्लिन्नपूतिमांसत्यागी शिरास्नायुसंदर्शी कुणपगन्धी च भवति संज्ञास्मृतिहर्त्ता तं कर्दमविसर्पपरीतमचिकित्स्यं विद्यात् ॥ ३६ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुए कफ और पित्त परस्पर बलको प्राप्त हो मनुष्यके शरीरको क्लेदित कर देहके एकदेशमें विसर्पको करते हैं। इस कफ पित्तजनित विसर्पके यह लक्षण होते हैं। जैसे—शीतज्वर, शिरका भारी होना, दाह, स्तैमित्य, अंगोंका टूटना, निद्रा, तन्द्रा, मोह, अन्नसे द्वेष, प्रलाप, अग्निनाश, दुर्बलता, हडफूटन, मूर्च्छा, प्यास, छिद्रोंका उपलेप, इन्द्रियोंमें जडता, आम निकलना, अंगविक्षेप, अंगमर्द,

अरति और उत्सुकता यह उपद्रव होते हैं। प्रायः यह विसर्प आमाशयके एकदेशमें प्रगट होकर धीरे २ फैलने लगता है। जिस स्थानमें यह विसर्प होता है वह लाल, पीला, पाण्डुवर्ण, पिडकाओंसे व्याप्त होता है। तथा मेचकके रंगका काला, मलिनवर्ण, चिकना, भारी, स्तिमित, स्थिर, पीडायुक्त सूजनवाला, गंभीरपाकी, स्रावरहित और शीघ्र क्लेदयुक्त होजाता है। इस विसर्पके स्थानका मांस स्विन्न क्लेदयुक्त, दुर्गन्धित होता है। इसमें थोडी २ पीडा होती है और उस स्थानको दबानेसे विसर्प फूटजाता हैं।आधिक दबानेसे कीचके समान उसमें अंगुली गडजाती अथवा वह कीचके समान अंगुलीसे लिपटजाता है। और इसमेंसे सडाहुआ, दुर्गंधित, क्लेदयुक्त मांस निकलता है तथा शिरा, स्नायु बाहर निकलआती हैं। मुर्देकीसी दुर्गंध आती है। रोगीका ज्ञान और स्मृति नष्ट होजाती है। इस कफपित्तज विसर्पको कर्दम विसर्प भी कहते हैं॥ ३५ ॥ ३६ ॥

कफवातजग्रन्थिविसर्पके लक्षण।

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतास्निग्धान्नपानाभिष्यन्दिसेविनामव्यायामसेविनामप्रतिकर्मशालिनां श्लेष्मा वायुश्च प्रकोपमापद्यते।तावुभौ दुष्टप्रवृद्धौ अतिबलौ प्रदूष्य दूष्यं विसर्पाय कल्पेते। तत्र वायुः श्लेष्मणा विबद्धमार्गस्तमेव श्लेष्माणमनेकधा भिन्दन् क्रमेण ग्रन्थिमालां कृच्छ्रपाकसाध्यां कफाशये संजनयति। उत्सन्नरक्तस्य वा प्रदूष्य रक्तं शिरास्नायुमांसत्वगाश्रितं ग्रन्थिविसर्पं कुरुते।तीव्ररुजा ग्रन्थीनां स्थूलानामणूनां दीर्घवृत्तरक्तानां तदुपतापाज्ज्वरातिसारकासहिक्काश्वासशोषप्रमेहवैवर्ण्यारोचकाविपाकच्छर्दिमूर्च्छाङ्गभङ्गनिद्रारतिसंसदनाद्याः प्रादुर्भवन्ति उपद्रवाः। तैरुपद्रुतः सर्वकर्मणां विषयमतिपतितो विवर्जनीयो भवति इति ग्रन्थिविसर्पः॥ ३७ ॥

स्थिर, भारी, कठिन, मधुर शीतल और स्निग्ध अन्नपान तथा अभिष्यंदी द्रव्योंके सेवनसे, व्यायाम न करनेसे, संचित दोषोंका शोधन न करनेसे कफ और वायु कोपको प्राप्त होकर दोनों प्रदुष्ट और प्रबल होकर रक्तादि दूष्योंको दूषित कर विसर्पको प्रगट करते हैं। तब वायुका मार्ग कफसे रुकजाता है फिर वह वायु कफके अनेक विभागकर कफाशयमें प्राप्त हो कृच्छ्रपाकी और कृच्छ्रसाध्य ग्रंथिमालाको प्रगट करता है। अथवा वात और कफ कुपित रक्तवाले मनुष्यके रक्तको दूषितकर शिरा, स्नायु, मांस और त्वचामें ग्रंथिविसर्प उत्पन्न करते हैं। उन ग्रंथियों (गाठों) में अत्यंत पीडा

होती है। वह ग्रंथियें स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ, गोल और लालवर्णकी होती हैं। इनके उपतापसे ज्वर, अतिसार, खांसी, हिचकी, श्वास, शोष, प्रमेह, विवर्णता, अरुचि, अविपाक, छर्दि, मूर्च्छा, अंगभेद, निद्रा, अराति, अंगावसाद आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इन संपूर्ण उपद्रवोंसे व्याकुल हुआ मनुष्य संपूर्ण कर्मोंके करनेमें अयोग्य होजाता है। यह वातकफजनित ग्रंथिविसर्प त्याग देने योग्य है॥ ३७ ॥

रोग और उपद्रवोंके भेद ।

उपद्रवस्तु खलु रोगोत्तरकालजो रोगाश्रयो रोग एव स्थूलोऽणुर्वा रोगात्पश्चाज्जायत इति उपद्रवसंज्ञकः । तत्र प्रधानो व्याधिः व्याधेर्गुणीभूत उपद्रवः।तस्य प्रायः प्रधानप्रशमे प्रशमो भवति। स तु पीडाकरतरो भवति इति पश्चादुत्पद्यमानो व्याधिः परिक्लिष्टशरीरत्वात्तस्माद्रुपद्रवं त्वरमाणोऽभिबाधेत ॥ ३८ ॥

रोगके होनेके उपरांत रोगके आश्रयसे उपद्रव उत्पन्न होतेहैं। इसलिये इनको भी रोग ही मानना चाहिये। क्योंकि यह रोग स्थूल अथवा सूक्ष्मरूपसे रोगके अनन्तर प्रगट होते हैं। इसलिये यह उपद्रव कहेजाते हैं। इनमें रोगको प्रधान तथा उपद्रवोंको रोगका गुणीभूत मानना चाहिये। प्रायः रोगके शान्त होनेपर उपद्रव भी शान्त होजाते हैं। उपद्रव शरीरके व्याधिद्वारा अत्यंत क्लेशित होनेसे व्याधिके पीछे प्रकट होजाते हैं परन्तु कष्ट देनेमें प्रधान व्याधिसे भी अधिकतर होते हैं इसलिये उपद्रवोंकी शान्तिके लिये शीघ्र यत्न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

सन्निपातका विसर्प ।

सर्वायतनसमुत्थं सर्वलिङ्गव्यापिनं सर्वधात्वनुसारिणमाशुकारिणं महात्ययिकमिति सन्निपातविसर्पमचिकित्स्यं विद्यात् ॥ ३९ ॥

सब हेतुओंसे प्रकट हुआ संपूर्ण लक्षणोंवाला सब धातुओंको दूषितकर व्यापक हुआ शीघ्रकारी आत्ययिक दारुण सान्निपातिक विसर्प अचिकित्स्य (असाध्य) जानना ॥ ३९ ॥

इनकी साध्यासाध्यता ।

तत्र वातपित्तश्लेष्मनिमित्ता विसर्पास्त्रयः साध्या भवन्ति । अग्निकर्दमाख्यौ पुनरनुपसृष्टे मर्मणि अनुपहते वा शिरास्नायुमांसक्लेदे साधारणक्रियाभिरुपायैस्तावेवाभ्यस्यमानौ प्रशान्तिमापद्येयाताम् । अनादरोपक्रान्तं पुनस्तयोरन्यतरौ हन्यात् देहमाश्वेवाखुविषवत् ॥ ४० ॥

इनमें वातका, पित्तका और कफका यह तीन विसर्प साध्य हैं। और आग्नेय, कर्दमक यह दो द्वन्द्वज विसर्प यदि मर्मस्थानमें व्यापक न हों तथा शिरा, स्नायु और क्लेदको बिगाडकर फैले हुए न हों तो उनमें उन उन दोषोंकी साधारण चिकित्सा करनेसे शान्त होजाते हैं। परन्तु विधिवत् यत्नपूर्वक चिकित्सा न करनेसे उनमें भी कोई विसर्प (आखु)मूसेके विष समान शीघ्र प्राणोंको नष्ट कर देता है ॥ ४० ॥

तथा ग्रन्थिविसर्पमजातोपद्रवमारभेत चिकित्सितुम् । उपद्रवोपद्रुतन्त्वेनं परिहरेत् । सन्निपातजं सर्वधात्वनुसारित्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्च असाध्यं विद्यात् ॥ ४१ ॥

और ग्रंथिविसर्प यदि उपद्रवयुक्त न हो तो उसकी चिकित्सा करे। यदि वह उपद्रवयुक्त हो तो उसको असाध्य समझकर त्यागदेवे। और सन्निपातसे उत्पन्न हुआ विसर्प सर्व धातु अनुसारी आशुकारी और चिकित्सामें विरुद्ध पडनेसे सर्वथा असाध्य जानना ॥ ४१ ॥

विसर्पकी चिकित्सा।

तत्र साध्यानां साधनमनुव्याख्यास्यामः ॥ ४२ ॥

लङ्घनोल्लेखने शस्ते तिक्तकानाञ्च सेवनम् ।
कफस्थानगते सामे रूक्षशीतैः प्रलेपयेत् ॥ ४३ ॥

अब साध्य विसर्पोंके साधन (चिकित्सा) का वर्णन करते हैं। आमदोषयुक्त कफस्थानगत विसर्प हो तो लंघन वमन और तिक्तरसका सेवन कराना हितहै। तथा विसर्पके ऊपर रूक्ष, शीतल द्रव्योंका लेप करना चाहियें ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामे कुर्य्याच्चिकित्सितम् ।
शोणितस्यावसेकश्च विरेकश्च विशेषतः ॥ ४४ ॥

आमदोषयुक्त दोष यदि पित्तस्थानगत हो तब भी इसीप्रकार चिकित्सा करे। और रक्तमोक्षण (फस्त) तथा विरेचन यह दो कर्म इसमें विशेष करे ॥ ४४ ॥

मारुताशयसम्भूतेऽप्यादितः स्याद्विरूक्षणम् ।
रक्तपित्तान्वयेऽप्यादौ स्नेहनं न हितं मतम् ॥ ४५ ॥

रक्तपित्तके संसर्गयुक्त रोग यदि वातस्थानगत भी हों तो भी प्रथम रूक्षक्रिया ही करना चाहिये। क्योंकि, रक्तपित्तके संबंधवाले रोगोंमें भी प्रथम ही स्नेहन कराना हित नहीं माना है ॥ ४५ ॥

वातोल्बणे तिक्तघृतं पैत्तिके च प्रशस्यते ।
लघुदोषे महादोषे पैत्तिके स्याद्विरेचनम् ॥ ४६ ॥

जिस विसर्पमें वायु प्रबल हो और जिसमें अल्पपित्त हो उसमें तिक्तघृतका प्रयोग करना चाहिये । जिस विसर्पमें पित्त अत्यंत बढी हुई हो उसमें विरेचन कराना हित है ॥ ४६ ॥

न घृतं बहुदोषाय देयं यन्न विरेचयेत् ।
तेन दोषो ह्युपस्तब्धस्त्वङ्मांसरुधिरं पचेत् ॥ ४७ ॥
तस्माद्विरेकमेवादौ शस्तं विद्याद्विसर्पिणः ।
रुधिरस्यावसेकश्च तद्ध्यस्याश्रयसंज्ञितम् ॥ ४८ ॥

जो घृत विरेचन करनेवाला न हो उसको बहुत दोषयुक्त विसर्पमें नहीं देना चाहिये । क्योंकि यदि घृत विरेचनकर्त्ता न होगा तो उससे दोषोंका उपस्तंभ होकर त्वचा,मांस और रुधिर पाकको प्राप्त होते हैं । इसलिये विसर्परोगीको प्रथम विरेचन कराना ही हित है । तथा रक्तमोक्षण (फस्त) करना श्रेष्ठ है । क्योंकि विसर्परोगका आश्रय रक्त कहाजाता है उसके निकलनेसे विसर्प भी शान्त होता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति विसर्पनुत्प्रोक्तं समासेन चिकित्सितम् ।
एतदेव पुनः सर्वं व्यासतः संप्रवक्ष्यते ॥ ४९ ॥

इस प्रकार विसर्पनाशक चिकित्साका संक्षेपसे वर्णन किया है । उसीको अब फिर विशेषतासे वर्णन करते हैं ॥ ४९ ॥

विसर्पकी विशेषचिकित्सा ।

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च ।
वमनं संप्रदातव्यं विसर्पे कफपित्तजे ॥ ५० ॥
पटोलपिचुमर्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन च ।
विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रयवैः सह ॥ ५१ ॥
यांश्च योगान् प्रवक्ष्यामि कल्पेषु कफपित्तिनाम् ।
विसर्पिणां प्रयोज्यास्ते दोषनिर्हरणाः परम् ॥ ५२ ॥

मैनफल, मुलैठी, नीमकी छाल और इन्द्रयव इनका क्वाथ पिलाकर कफपित्त-जनित विसर्पमें वमन करावे अथवा पटोलपत्र, नीमका छिलका, पीपल और इन्द्रयव इनके क्वाथसे वमन कराना श्रेष्ठ है । या कल्पस्थानमें कफपित्तव्याधिवालोंके लिये

जो वमनकारक प्रयोग कहे जायंगे उनके प्रयोगों द्वारा कफपित्तके विसर्पमें भी दोषको निकालना परम श्रेष्ठ है ॥ ५०-५२ ॥

मुस्तनिम्बपटोलानां चन्दनोत्पलयोरपि ।
शारिवामलकोशीरमुस्तानां वा विचक्षणः ॥ ५३ ॥
पाययेत कषायान् हि सिद्धान् वीसर्पनाशनान् ।
किराततिक्तकं लोध्रं दुरालभां सचन्दनाम् ॥ ५४ ॥
नागरं पद्मकिञ्जल्कमुत्पलं सविभीतकम् ।
मधुकं नागपुष्पञ्च दद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ ५५ ॥

१-अथवा नागरमोथा, नीमका छिलका और पटोलपत्र; २-लालचन्दन और नीलकमल; ३-सारिवा, आँवले, खस और नागरमोथा इन तीनोंमेंसे किसी एकका क्वाथ बनाकर पिलानेसे विसर्परोग शान्त होता है । अथवा चिरायता, पठानीलोध, जवासा, लालचन्दन, सोंठ, कमलकी केशर, नीलकमल, बहेडा, मुलैठी और नागकेशर इनका क्वाथ विसर्परोगकी शान्तिके लिये देवे ॥ ५३-५५ ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं पद्मकिञ्जल्कमुत्पलम् ।
नागपुष्पञ्च लोध्रञ्च तेनैव विधिना पिबेत् ॥ ५६ ॥

अथवा उसी प्रकार प्रपौण्डरीक (पण्डचारा), मुलैठी, कमलकी केशर, नीलकमल, नागकेशर, पठानीलोध इनका क्वाथ बनाकर पीवे ॥ ५६ ॥

द्राक्षां पर्पटकं शुण्ठीं गुडूचीं धन्वयासकम् ।
निशापर्युषितं दद्यात्तृष्णावीसर्पशान्तये ॥ ५७ ॥

मुनक्का, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, जवासा इनको कूटकर रात्रिको जलमें भिगो देवे । फिर प्रातःकाल इसका पानी उतारकर विसर्प और प्यासकी शान्तिके लिये देवे ॥ ५७ ॥

पटोलं पिचुमर्दञ्च दार्वीं कटुकरोहिणीम् ।
यष्ट्याह्वां त्रायमाणाञ्च दद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ ५८ ॥

पटोलपत्र, नीमका छिलका, दारुहलदी, कुटकी, मुलैठी और त्रायमाणका क्वाथ विसर्पकी शान्तिके लिये पिलावे ॥ ५८ ॥

पटोलादिकषायं वा पिबेत्त्रिफलया सह ।
मसूरद्विदलैर्युक्तं घृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥

पटोलपत्रमुद्गानां रसमामलकस्य च ।
पाययेत घृतोन्मिश्रं नरं वीसर्पपीडितम् ॥ ६० ॥
यच्च सर्पिर्महातिक्तं पित्तकुष्ठनिबर्हणम् ।
निर्दिष्टं तदपि प्राज्ञो दद्याद्विसर्पशान्तये ॥ ६१ ॥
त्रायमाणाघृतं सिद्धं गौल्मिके यदुदाहृतम् ।
विसर्पाणां प्रशान्त्यर्थं दद्यात्तदपि बुद्धिमान् ॥ ६२ ॥

अथवा पटोलपत्रादि क्वाथको त्रिफलाके साथ पिलावे । अथवा मसूरकी दालका पानी घृतयुक्त कर पिलावे । या पटोलपत्र, मूंग और आँवलोंका रस विसर्पसे पीडित रोगीको पिलाना हित है । अथवा महातिक्तकघृत जो कुष्ठाधिकारमें पित्तकुष्ठशान्तिके लिये कहा है उसको विसर्परोगकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करे एवं गुल्मचिकित्सामें जो त्रायमाणघृत कह आये हैं उसको भी बुद्धिमान् वैद्य विसर्पोंकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करे ॥ ५९–६२ ॥

त्रिवृच्चूर्णं समालोड्य सर्पिषा पयसापि वा ।
घर्माम्बुना वा संयोज्य मृद्वीकानां रसेन वा ॥ ६३ ॥
विरेकार्थं प्रयोक्तव्यं सिद्धं विसर्पनाशनम् ।
त्रायमाणाशृतं वापि पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ ६४ ॥

निशोथके चूर्णको घृतमें घोलकर अथवा दूधमें घोलकर अथवा गरम जलके साथ वा मुनक्काके रस (क्वाथ) के साथ विसर्परोगमें विरेचन करानेके लिये पिलावे। अथवा त्रायमाणके साथ सिद्धकिया दूध विरेचनार्थ पिलावे यह भी विसर्पको शान्त करता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरनाशनम् ॥ ६५ ॥

त्रिफलाके रस (क्वाथ) के साथ निशोथका चूर्ण पिलावे इससे विरेचन होकर विसर्पका ज्वर (दुःख) नष्ट होजाता है ॥ ६५ ॥

रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ।
स एव गुरुकोष्ठाय त्रिवृच्चूर्णयुतो हितः ॥ ६६ ॥

अथवा आँवलेके रसयुक्त घृतको पिलावे । यदि रोगी भारी कोठेवाला हो तो इसीमें निशोथका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ६६ ॥

दोषे कोष्ठगते भूय एतत्कुर्य्याच्चिकित्सितम्।
शाखादुष्टे तु रुधिरे रक्तमेवादितो हरेत्॥ ६७॥
भिषग्वातान्वितं रक्तं विषाणेनाभिनिर्हरेत्।
पित्तान्वितं जलौकोभिः कफान्वितमलाबुभिः॥ ६८॥
यथासन्नं विकारस्य व्यधयेदाशु वासिनाम्।
त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदो रक्तक्लेदाद्धि जायते॥ ६९॥

यदि कोष्ठमें दोषकी अधिकता हो तो यह उपरोक्त रेचनकारक द्रव्योंद्वारा चिकित्सा करे। और जो रुधिर अपने स्थानमें प्रदुष्ट हो तो पहले रुधिरको ही निकालना चाहिये। यदि रक्त वाताश्रित हो उसको सिंगी लगाकर निकाले। और पित्ताश्रित हो तो जोंक लगाकर निकाले। एवं कफसंयुक्त रुधिरको तूम्बी लगाकर निकालना चाहिये। बिगडे हुए रक्तको विसर्पके समीपकी नसमें नस्तर लगाकर शीघ्र निकाल देवे जिससे रक्तमें क्लेदता उत्पन्न न होनेपावे। क्योंकि रक्तमें क्लेदता आनेसे त्वचा, मांस और स्नायुओंमें भी क्लेदता आकर सडन उत्पन्न होजाती है॥

वातपित्तोल्वण विसर्पोंपर लेप।

अन्तःशरीरे संशुद्धे दोषे त्वङ्मांससंश्रिते।
आदितः स्वल्पदोषाणां क्रिया बाह्या प्रवक्ष्यते॥ ७०॥

जब उपरोक्त विरेचनीक्रियासे अथवा रक्तमोक्षणसे भीतरी दोष शुद्ध होजाय और त्वचा मांसमें रहजाय अथवा पहलेसे ही बहुत अल्प दोष हो तो बाह्य क्रियाका प्रयोग करना चाहिये। अब उस बाह्यक्रियाको कहते हैं॥ ७०॥

उदुम्बरत्वङ्मधुकं पद्मकिञ्जल्कमुत्पलम्।
नागपुष्पं प्रियङ्गुश्च प्रदेहः सघृतो हितः॥ ७१॥

गूलरकी छाल, मुलैठी, कमलकेशर, नीलकमल, नागकेशर, प्रियंगु इन सबको बारीक पीसके घृत (मक्खन) में मिलाकर लेप करनेसे विसर्परोग शांत होताहै ७१

न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः।
बिसग्रन्थिश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः॥ ७२॥

बडकी नवीन कोमल जटा, केलेकी गोभ, कमलकी जड और सौबार धुलाहुआ मक्खन इन सबको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे विसर्प रोग शान्त होता है॥ ७२॥

कालीयं मधुकं हेम बल्यं चन्दनपद्मकम्।
एला मृणालं फलिनी प्रलेपः स्याद्घृताप्लुतः॥ ७३॥

अगर, मुलैठी, नागकेशर, लालचंदन, पद्माक, छोटी इलायची, कमलकी डंडी और प्रियंगु इन सबको बारीक पीस १०० बार धोयेहुए घृतमें मिलाकर लेप करनेसे विसर्प शान्त होता है ॥ ७३ ॥

शाद्वलञ्च मृणालञ्च शंखं चन्दनमुत्पलम् ।
वेतसस्य च मूलानि प्रदेहः स्यात्सतण्डुलः ॥ ७४ ॥

कमलकी डण्डी अथवा दूब, शंखका चूर्ण, लाल चंदन, नीलकमल, वेतसकी जड और वायविडंग इन सबको बारीक पीसकर लेपकरे ॥ ७४ ॥

शारिवा पद्मकिञ्जल्कमुशीरं नीलमुत्पलम् ।
माञ्जिष्ठा चन्दनं लोध्रमभया च प्रलेपनम् ॥ ७५ ॥
नलदञ्च हरेणुश्च लोध्रं मधुकपद्मकौ ।
दूर्वा सर्जरसश्चैव सघृतं स्यात्प्रलेपनम् ॥ ७६ ॥

या शारिवा, कमलकेशर, खस, नीलकमल, मँजीठ, लालचन्दन, पठानीलोध और हरडे इन सबका लेप करे । अथवा खस, रेणुका, पठानीलोध, मुलैठी, पद्माक, दूब और राल इनको बारीक पीस धुलेहुए घृतमें मिला लेप करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

यावकाः सक्तवश्चैव सर्पिषा सह योजिताः ।
प्रदेहो मधुकं वीरा सघृता यवसक्तवः ॥ ७७ ॥
बलामुत्पलशालूकं वीरामगुरुचन्दनम् ।
कुर्य्यादालेपनं वैद्यो मृणालञ्च बिसान्वितम् ॥ ७८ ॥
यवचूर्णं समधुकं सघृतञ्च प्रलेपनम् ।
हरेणवो मसूराश्च समुद्गाः श्वेतशालयः ।
पृथक्पृथक्प्रदेहाः स्युः सर्वे वा सर्पिषा सह ॥ ७९ ॥

यवोंके सत्तुओंको घृतमें मिला लेपकरे अथवा यवके सत्तू घृत, क्षीरकाकोली और मुलैठी इनको मिला लेपकरे । या बला, नीलकमल, शालूक,क्षीरकाकोली, अगर और लाल चंदन बिस और खस इन सबको बारीक पीसकर लेपकरे । या यवका चूर्ण और मुलैठीका मैदा इनको घृतमें मिला लेपकरे । अथवा रेणुका, मसूर, मूंग, सफेद शालीचावल इन सबको एकत्र घृतमें मिलाकर लेपकरे ॥ ७७-७९ ॥

पद्मिनीकर्दमः शीतो मौक्तिकं पिष्टमेव वा ।
शंखः प्रवालः शुक्तिर्वा गैरिको वा घृताप्लुतः ॥ ८० ॥

पद्मिनी और कीच अथवा कमलिनीकी जडमें लगा शीतल कीचका लेप या शीतल जलमें पीसेहुए मोती; अथवा शंख, मूंगा, सीपी, गेरू इनमेंसे किसी एकका बहुत बारीक चूर्ण घीमें मिला लेप करे ॥ ८० ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं बला शालूकमुत्पलम् ।
न्यग्रोधपत्रं दुग्धीका सघृतं स्यात्प्रलेपनम् ॥ ८१ ॥
बिसानि च मृणालञ्च सघृता च कशेरुका।
शतावर्य्या विदार्य्याश्च कन्दौ धौतघृताप्लुतौ ॥ ८२ ॥

पंडचारेकी छाल, मुलैठी, बला, कमलकंद, नीलकमल, बडके पत्ते और मुनक्का इनको पीसकर घृतमें मिला लेपकरे। कमलकी जड, कमलकी डण्डी और कसेरू इनको बारीक पीसकर घृतमें मिला लेपकरे । अथवा शतावर और विदारीकन्दको बारीक पीसकर धुलेहुए घृतके साथ लेपकरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

शैवालं नलमूलानि गोजिह्वा वृषकर्णिका ।
इन्द्राणीशाकं सघृतं शिरीषत्वग्बलाघृतम् ॥ ८३ ॥

शैवाल (पानीकी काई), नरसलकी जड, जंगली गोभी, वृषकर्णी (सुखदर्शन), सम्भालूके पत्ते इन सबको बारीक पीसकर घृतमें मिला लेप करे । अथवा सिरसकी छाल और बलाको घृतमें मिला लेप करे ॥ ८३ ॥

न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षवेतसाश्वत्थपल्लवैः ।
त्वक्कल्कैर्बहुसर्पिष्कैस्तैरेवालेपनं हितम् ॥ ८४ ॥

बड, गूलर, पिलखन, बेतस और पीपलके पत्ते और छालको बारीक पीसकर बहुतसे घृतमें मिला लेपकरे तो विसर्परोग शान्त हो ॥ ८४ ॥

प्रदेहाः सर्व एवैते वातपित्तोल्बणे शुभाः ।
सकफे तु प्रवक्ष्यामि प्रलेपानपराञ्छुभान् ॥ ८५ ॥

यह सब लेप वातपित्तोल्बण विसर्पमें हितकारी हैं। अब कफोल्बण विसर्पको शान्त करनेवाले लेपोंका वर्णन करते हैं ॥ ८५ ॥

कफोल्बण विसर्पोंपर लेप ।

त्रिफलां पद्मकोशीरं समङ्गां करवीरकम् ।
नलमूलान्यनन्तञ्च प्रदेहमुपकल्पयेत् ॥ ८६ ॥

---

१ इन सब लेपोंमें सौ बारका धुलाहुआ मक्खन या पुराना घी लेना चाहिये।

खदिरं सप्तपर्णं च मुस्तमारग्वधं धनम् ।
कुरण्टकं देवदारु दद्यादालेपनं भिषक् ॥ ८७ ॥

त्रिफला, पद्मकाष्ठ, खस, समंगा (मजीठ), कनेरकी छाल, नरसलकी जड, अनन्तमूल इन सबको बारीक पीसकर लेप करे। अथवा कत्था, सप्तपर्णकी छाल, नागरमोथा, अमलतास, धवकी छाल, कठसरईया और देवदारु इनको बारीक पीस-कर लेपकरे ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि त्वचं श्लेष्मातकस्य च ।
इन्द्राणीशाकं काकाह्वां शिरीषकुसुमानि च ॥ ८८ ॥
शैवालं नलमूलानि वीरागन्धप्रियङ्गुकौ ।
त्रिफलां मधुकं वीरां शिरीषकुसुमानि च ॥ ८९ ॥
प्रपौण्डरीकं ह्रीबेरं दार्वीत्वङ्मधुकं बलाम् ।
पृथगालेपनं कुर्य्याद् द्वन्द्वशः सर्वशोऽपि वा ॥ ९० ॥
प्रदेहाः सर्व एवैते देयाः स्वल्पघृतायुताः ।
वातपित्तोल्वणे ये तु प्रदेहास्ते घृताधिकाः ॥ ९१ ॥

अमलतासके पते, लसोढेकी छाल, सम्भालूके पत्ते, मकोहके पत्ते और सिरसके फूल, शैवाल (पानीकी काई), नरसलकी जड, वीरा (विदारीकन्द) और गन्ध-प्रियंगु, त्रिफला, मुलैठी, बीरा और सिरसके फूल यह तीनप्रकारके लेप विसर्पको शान्त करते हैं। एवं पंड्यारा, नेत्रवाला, दारुहल्दीकी छाल, मुलैठी इन द्रव्योंमेंसे एक एक द्रव्यको अथवा दोदोको मिलाकर या संपूर्ण मिलाकर बारीक पीसकर लेप करे यह सब लेप थोडा घृत मिलाकर करना चाहिये और पीछे जो वातपित्तोल्वण विसर्पपर लेप कहआये हैं उनमें अधिक घृतमिला करना चाहिये ॥ ८८-९१ ॥

प्रदेहाः सर्व एवैत्ते कर्तव्याः संप्रसादनाः ।
क्षणेक्षणे युज्यमाना पूर्वमुद्धृत्य लेपनम् ॥ ९२ ॥

यह संपूर्ण लेप रक्तको स्वच्छ करानेवाले हैं इन लेपोंको क्षणक्षणके बाद उतारकर दूसरा नवीन लेप करते रहना चाहिये ॥ ९२ ॥

विसर्पपर अन्य उपचार।

घृतेन शतधौतेन प्रदिह्यात्केवलेन च ।
घृतमण्डेन शीतेन पयसा मधुकाम्बुना ॥ ९३ ॥

पञ्चवल्ककषायेण सेचयेच्छीतलेन वा।
वातासृक्पित्तबहुलं विसर्पं बहुशो भिषक् ॥ ९४ ॥
सेचनास्ते प्रदेहा ये त एव घृतसाधनाः।
ते चूर्णयोगा वीसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ॥ ९५ ॥

वातसंयुक्त रक्तपित्त विषयमें केवल सौ बार धुलेहुए घृतका लेप करना चाहिये। अथवा घृतमण्डसे या शीतल दूधसे अथवा मुलैठीसे या पंचवल्कल (वड, पीपल, गूलर, पिलखन और वेतसकी छाल) के शीतल काथसे वैद्य विसर्पको सेचन करे। तथा विसर्पमें जिन द्रव्योंका घृतके साथ मिलाकर लेप करना कहा है उस द्रव्योंके काथसे विसर्पको सेचन भी करना चाहिये। अथवा उन्हीं द्रव्योंका वारीक चूर्ण विसर्पके जखमोंपर बुरकावे (उन्हीं द्रव्योंके काथका पिलानेमें प्रयोग करे और उन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत भी प्रयोग किया जा सकता है) ॥ ९३-९५ ॥

दूर्वास्वरससिद्धञ्च घृतं स्याद् व्रणरोपणम्।
दार्वीत्वङ्मधुकं लोध्रं केशरञ्चावचूर्णनम् ॥ ९६ ॥

दूबके स्वरससे सिद्ध किया घृत विसर्पके व्रणोंपर लेप करनेसे घावोंको भरता है और दारुहल्दीकी छाल, मुलैठी, लोध और नागकेशरका वारीक चूर्ण घावोंपर बुरकावे तो विसर्पके घाव दूरहों (पहिले उपरोक्त घृतको घावोंपर चुपडकर ऊपरसे वह चूर्ण बुरकाना परम हितकारक है) ॥ ९६ ॥

पटोलः पिचुमर्दस्तु त्रिफला मधुकोत्पले।
एतत्प्रक्षालनं सर्पिर्व्रणचूर्णं प्रलेपनम् ॥ ९७ ॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलैठी और नीलकमल इनका काथ बनाकर विसर्पके जखमोंको धोना चाहिये। और उन्हीं द्रव्योंके कल्क, काथसे सिद्ध किया घृत खाने और लेपनमें हित है तथा इनहीं द्रव्योंका वारीक चूर्ण जखमोंपर बुरकाना हितकारक है। एवं इन्हींका लेप करना भी परम हितकर है ॥९७ ॥

प्रदेहाः सर्व एवैते कर्त्तव्याः संप्रसादनाः।
क्षणेक्षणे प्रयोक्तव्याः पूर्वमुद्धृत्य लेपनम् ॥ ९८ ॥

पूर्वोक्त संपूर्ण लेप रक्तको प्रसादन करनेवाले हैं, इनको क्षणक्षणमें पहिलेको उतार फिर नया नया करते रहना चाहिये। (यह श्लोक दोबारा कहा गया.)॥९८॥

अनवीने घृते पूर्वे प्रदेहा बहुशोधनाः।
देयाः प्रदेहाः कफजे पर्य्याधानोद्धृते घनाः ॥ ९९ ॥

संपूर्ण लेप पुराने घृतके संयोगसे करने चाहिये । और भली प्रकार बारीक शुद्धतापूर्वक कंकड आदि रहित होने चाहिये । अथवा यों कहिये कि पुराने घृतमें मिलाकर किये लेप जखमोंको शीघ्र शुद्ध कर भरदेनेवाले होते हैं । कफजविसर्पमें जो कफनाशक लेप हैं उनको लगाकर पहिलेको उतार दूसरा गाढा २ लेप करता रहे९९

लेपका विधान ।

त्रिभागाङ्गुष्ठमात्रः स्यात्प्रलेपः कल्कपेषितः ।
नातिस्निग्धो न रूक्षश्च न पिण्डो न द्रवः समः ॥ १०० ॥
न च पर्य्युषितं लेपं कदाचिदवचारयेत् ।
न च तेनैव लेपेन पुनर्जातु प्रलेपयेत् ॥ १०१ ॥
क्लेदवीसर्पशूलानि सोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् ।
लेपो ह्युपरि पट्टस्य कृतः स्वेदयति व्रणम् ॥ १०२ ॥
स्वेदजाः पीडकास्तस्य कण्डूश्चैवोपजायते ।
उपर्य्युपरि लेपस्य लेपो यद्यवचार्य्यते ॥ १०३ ॥
तानेव दोषाञ्जनयेत्पट्टस्योपरि यान् कृतः ।
अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्च लेपो यद्यवचार्य्यते ॥ १०४ ॥
त्वचि न श्लिष्यते सम्यङ् न दोषं शमयत्यपि ।
तन्वालिप्तं न कुर्वीत संशुष्को ह्यापुटायते ॥ १०५ ॥
न चौषधिरसो व्याधिं प्राप्नोत्यपि च शुष्यति ।
तन्वालिप्तेन ये दोषास्तानेव जनयेद्भृशम् ॥ १०६ ॥
संशुष्कः पीडयेद्व्याधिं निस्नेहो ह्यवचारितः ।
अन्नपानानि वक्ष्यामि विसर्पाणां निवृत्तये ॥ १०७ ॥

लेपका यह क्रम है कि, अंगूठेके तीसरे भाग बराबर मोटा लेप करना चाहिये । और लेपका कल्क न बहुत चिकना, न बहुत रूक्ष, न पिण्डकी समान बंधनेवाला और न अत्यंत पतला होना चाहिये लेप सम और उत्तम रीतिसे करना चाहिये । जिस स्थानपर पहिले लेप किया हो उसीपर फिर लेप करना उचित नहीं और जो लेप उतारा गया हो उसीको भी फिर लेपन नहीं करना चाहिये । क्योंकि लेपके ऊपर लेप करनेसे जखमोंके अन्दर क्लेद बन्द होकर विसर्प, शूल और जखमोंमें उष्णता प्रगट होजाती है और पूर्वोद्धृत लेपकी औषधिको फिर लेपकरना भी जख-

मोंमें क्लेदता आदि उत्पन्न करता है। एवं घावपर वस्त्र बिछाकर लेप करना भी उचित नहीं ऐसा करनेसे घावोंका स्वेदन होता है और पसीना आनेसे घावके इधर उधर और फुन्सियें प्रगट होजाती हैं तथा खाज होने लगती है। लेपके ऊपर लेप करनेसे जो जो उपद्रव होते हैं कपडेपर लेपकर जखमोंपर लगानेसे भी वही उपद्रव होजाते हैं। एवं अतिस्निग्ध और अत्यंत पतला लेप त्वचापर ठहरता नहीं इसलिये रोगको भी शान्त नहीं कर सकता। तथा बारीक बारीक लेप करनेसे वह लेप जल्दी सूखकर फटजाता है और संपुटके समान ऊंचा खिंच जाता है। और पिण्डके समान बहुत गाढा लेप कियाजाय तो उस औषधीका रस रोगतक नहीं पहुंच सकता और वह लेप भी जल्दी सूखजाता है। बारीक लेप करनेसे जो दोष होते हैं वही बहुत कठोर लेपसे भी होते हैं। यदि विना चिकनाईसे रूक्ष लेप किया जाय तो वह जखमोंकी पीडन करता है उससे जखम फट जाता है। इसलिये इन दोषोंसे रहित विधिवत् लेप करना चाहिये। अब विसर्पोंकी निवृत्तिके लिये अन्नपान विधिका कथन करते हैं॥ १००–१०७॥

विसर्पमें अन्नपानविधि।

लङ्घितेभ्यो हितो मन्थो रूक्षः सक्षौद्रशर्करः।
मधुरः किञ्चिदम्लो वा दाडिमामलकान्वितः॥ १०८॥

विसर्परोगवाला मनुष्य लंघन[1] आदि कर चुकनेपर स्निग्धतारहित शहद और शर्कराके योगसे मन्थका पान करे। उन्हीं मन्थोंको दाडिम और आँवलोंसे खट्टा कर अथवा शहतसे मधुर कर पान करे॥ १८८॥

सपरूषकमृद्वीकः सखर्जूरः शृताम्बुना।
तर्पणैर्यवशालीनां सस्नेहा वाऽवलेहिका॥ १०९॥
जीर्णे पुराणशालीनां यूषैर्भुञ्जीत भोजनम्।
मुद्गान्मसूरांश्चणकान् यूषार्थमुपकल्पयेत्॥ ११०॥
अनम्लान् दाडिमाम्लान् वा पटोलामलकैः सह।
जाङ्गलानाञ्च मांसानां रसांस्तस्योपकल्पयेत्॥ १११॥
रूक्षान् परूषकद्राक्षादाडिमामलकान्वितान्।
रक्ताः श्वेता महाह्वाश्च शालयः षष्टिकैः सह॥ ११२॥

---

१ यहां लंघनशब्दसे उपवास, वमन, विरेचन और रक्तमोक्षण यह सब जानना।

भोजनार्थे प्रशस्यन्ते पुराणाः सुपरिस्रुताः।
यवगोधूमशालीनां सात्म्यान्येव प्रदापयेत् ॥ ११३ ॥
येषां नात्युचितः शालिर्नरा ये च कफाधिकाः ॥ ११४ ॥

फालसा, मुनक्का और खजूरके साथ सिद्ध किये जलमें तर्पण बना पीवे। अथवा यव और शालीचावलोंकी पतलीसी अवलेहिका रस बनाकर घृत (औषध सिद्ध) मिला सेवन करे। इसके पचजानेपर पुराने शालीचावलोंका भात यूषके साथ देवे। यूषके लिये मूंग अथवा मसूर या चने लेने चाहिये। वह यूष विना खटाई अथवा अनारकी खटाईयुक्त देवे। या पटोल और आँवलोंका यूष बना देवे। अथवा जंगली जीवोंका मांसरस विना चिकनाईसे फालसा, दाख, अनार और आँवले डालकर सेवन करावे। भोजनके लिये लाल चावल, सफेद चावल, वासमती चावल, शाठीचावल भली प्रकार पकाकर उनकी पीछ (मांड) आदि दूरकर उत्तम भात बनाकर खानेको दे। अथवा यव, गेहूं, चावल इनमेंसे जो सात्म्य हों उसका भोजनमें प्रयोग करे। किसी पुस्तकमें—" पयोगोधूमसात्म्यानाम् " ऐसा पाठ लिखा है कि जिन मनुष्योंको दूध और गेहूं (गेहूंका दलिया), सात्म्य, (माफिक अनुकूल) हो वह उनका सेवन करे। जिनको चावल खानेका अभ्यास नहीं अर्थात् चावल सात्म्य न हों और जिनकी कफप्रकृति हैं उनको दूध और गेहूंका प्रयोग करे ॥१०९-११४॥

विसर्पमें कुपथ्य।

विदाहीन्यन्नपानानि विरुद्धं स्वपनं दिवा।
क्रोधव्यायामसूर्य्याग्निप्रवातांश्च विवर्जयेत् ॥ ११५ ॥

विसर्परोगीको विदाही अन्नपान, विरुद्ध भोजन, दिनमें सोना, क्रोध, व्यायाम, धूपमें फिरना, अग्निका ताप, प्रबल वायु इन सबका त्याग कर देना चाहिये॥११५॥

द्वंद्वजविसर्पोंकी चिकित्सा।

कुर्य्याच्चिकित्सितान्यस्माच्छीतप्रायाणि पैत्तिके।
रूक्षप्रायाणि कफजे स्नैहिकान्यनिलात्मके।
वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणे हितम् ॥ ११६ ॥
कफपित्तप्रशमनं प्रायः कर्दमसंज्ञिते ॥ ११७ ॥

पित्तप्रधान विसर्पमें शीतलप्रायः चिकित्सा करनी चाहिये और कफप्रधानमें

१ कफप्रधान विसर्पमें स्नेहरहित शहतयुक्त तर्पण और वातप्रधान विसर्पमें अवलेहिका, पित्तप्रधानमें समयानुसार दोनोंमेंसे कोई एक या शर्करायुक्त फालसे आदि द्रव्योंका खीलसहित सिद्ध किया तर्पण देवे।

रूक्ष चिकित्सा एवं वातप्रधानमें स्निग्धप्रायः चिकित्सा करनी चाहिये। अग्निविसर्पमें वातपित्तको शान्त करनेवाली चिकित्सा करनी हित है। कर्दम विसर्पमें कफपित्त-नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

रक्तपित्तोत्तरं दृष्ट्वा ग्रन्थिवीसर्पमादितः।
रूक्षणैर्लङ्घनैः सेकैः प्रदेहैः पाञ्चवल्किकैः।
शिरामोक्षैर्जलौकाभिर्वमनैः सविरेचनैः ॥ ११८ ॥
घृतैः कषायतिक्तैश्च कालज्ञैः समुपाचरेत्।
ऊर्ध्वश्चाधश्च शुद्धाय रक्तं चाप्यवसेचिते ॥ ११९ ॥
वातश्लेष्महरं कर्म ग्रन्थिवीसर्पिणे हितम् ॥
उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहः प्रशस्यते ॥ १२० ॥

ग्रन्थिविसर्पमें रक्तपित्तकी अधिकता प्रतीत हो तो पहिलेसेही रूक्षण, लंघन, पंचवल्कलसे सेक और प्रलेप तथा शिरामोक्षण (फस्त) जोंक लगाना, तथा वमन विरेचनद्वारा दोष निकालना या तिक्तक घृतका प्रयोग करना बुद्धिमान् वैद्य दोष काल आदि विचारकर जिस प्रकार उचित समझे उस प्रकारकी चिकित्सा करे। पहिले वमन विरेचनद्वारा उभयतः शुद्धकर और रक्तनिकालनेके अनन्तर ग्रन्थिविसर्पमें वातकफनाशक कर्म करे ॥ ११८-१२० ॥

स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वा ग्रन्थिवीसर्पशूलिनः।
दशमूलोपसिद्धेन तैलेनोष्णेन सेचयेत् ॥ १२१ ॥
कुष्ठतैलेन चोष्णेन यवक्षारयुतेन च।
गोमूत्रैः पत्रनिर्य्यूहैरुष्णैर्वा परिषेचयेत् ॥ १२२ ॥

ग्रन्थिविसर्पमें पीडा दूर करनेके लिये गर्म २ उत्कारिका (रोटी आदि) से उपनाह (सेक) करना अथवा स्निग्ध वेशवारसे या दशमूलसे सिद्ध कियेहुए तैलसे ग्रन्थिविसर्पकी ग्रन्थियोंको सेचन (टकोर) करना चाहिये। अथवा कूठसे सिद्ध किये हुए जवाखारयुक्त गर्म २ तैलसे अथवा गर्म गोमूत्रसे या गर्म द्रव्योंके पत्तोंके क्वाथसे सेचन करे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

सुखोष्णया प्रदिह्याद्वा पिष्टया चाश्वगन्धया।
शुष्कमूलककल्केन नक्तमालत्वचापि वा ॥ १२३ ॥
विभीतकस्य वा ग्रन्थिं कल्केनोष्णेन सेचयेत्।

बलां नागबलां पथ्यां भूर्जग्रन्थि विभीतकम् ॥ १२४ ॥
वंशपत्राण्यग्निमन्थं कुर्य्याद्ग्रन्थिप्रलेपनम् ।
दन्ती चित्रकमूलत्वक् सुधार्के पयसी गुडः ॥१२५॥
भल्लातकास्थि कासीसं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि ।
बहिर्मार्गस्थितं ग्रन्थि किंपुनः कफसम्भवम् ॥ १२६ ॥

अथवा किंचित् उष्ण असगंधके कल्कका या सूखी मूलीके कल्कका अथवा करंजुएकी छालके कल्कका ग्रंथिविसर्पपर लेप करना चाहिये। अथवा बहेडेके गर्म-गर्म कल्कको ग्रंथिविसर्पपर लेप करे। या बला, नागबला, हरड, भोजपत्रकी गांठ, बहेडे, बांसके पत्ते, अग्निमंथ इनको बारीक पीसकर गर्मकर ग्रंथिविसर्पपर लेप करे। अथवा दंती, चित्तेकी जडकी छाल, थोहरका दूध, आकका दूध, गुड, भिलावेकी गुठली, हीराकसीस इन सबको लेप करनेसे पत्थरकी शिला भी फूटजावे फिर कफ-जनित बहिर्मार्गगामी विसर्पकी ग्रंथिका तो कहना ही क्या है ॥ १२३--१२६ ॥

बहुतदिनकी ग्रंथिकी चिकित्सा।

दीर्घकालस्थितां ग्रन्थि भिन्द्याद्वा भेषजैरिमैः ।
मूलकानां कुलत्थानां यूषैः सक्षारदाडिमैः ॥ १२७ ॥
गोधूमान्नैर्यवान्नैर्वा सशीधुमधुशर्करैः ।
सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुलुङ्गरसान्वितैः ॥ १२८॥
त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः ।
मुस्तभल्लातसक्तूनां प्रयोगैर्माक्षिकस्य च ॥ १२९ ॥
देवदारुगुडूच्योश्च प्रयोगैर्गिरिजस्य च ।
धूमैर्विरेकैः शिरसः पूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ॥ १३० ॥
अयोलवणपाषाणहेमताम्रप्रपीडनैः ।
आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्विविधाभिर्बली स्थिरः ॥ १३१ ॥

यदि ग्रंथि बहुत दिनकी उत्पन्न हुई हो और फटनेमें न आवे तो उसका इन औषधियोंसे भेदन करावै। जैसे जवाखार और दाडिमका रस मिला हुआ कुलथीका यूष। अथवा मूलीका यूष या शीधु, शहत और खांडके साथ गेंहूका दलिया या यवका दलिया। अथवा शहत, वारुणीमण्ड, और बिजौरेका रस मिलाकर या पीपल

और शहतके साथ त्रिफलाका प्रयोग करे। अथवा शहत, नागरमोथा और भिलावेके साथ अनेक प्रकारकी सत्तुओंका प्रयोग करे। या देवदारुके साथ गिलोय तथा गेरूका प्रयोग करे ॥ १२७-१३१ ॥

ग्रन्थिः पाषाणकठिनो यदा नैवोपशाम्यति।
अथास्य दाहः क्षारेण शरैर्लोहेन वा हितः ॥ १३२ ॥

अथवा गुल्मरोगके भेदन करनेवाले जो धूम्रप्रयोग शिरोविरेचन कहे हैं उनका प्रयोग करे। और लोह, लवण, पाषाण, सुवर्ण और ताम्रआदि गरम कर उससे ग्रंथिको पीडनकरे। अथवा उष्ण द्रव्योंके लेपनद्वारा प्रपीडन करे। इन सिद्ध अनेक प्रकारकी क्रियाओंद्वारा बलवान् स्थिर और पत्थरके समान काठिन यदि शान्त न हो तो उसको क्षारकर्म, दाहकर्म अथवा शर (बाण) वा लोहसे दागना आदि कर्म करना हित है ॥ १३२ ॥

पाकिभिः पाचयित्वा वा पाटयित्वा समुद्धरेत्।
मोक्षयेद्बहुशश्चास्य रक्तमुत्क्लेशमागतम् ॥ १३३ ॥
पुनश्चापहृते रक्ते वातश्लेष्मजिदौषधम्।
धूमो विरेकः शिरसः स्वेदनं परिमर्दनम् ॥ १३४ ॥

अथवा पकानेवाली औषधोंसे पकाकर तीक्ष्ण शस्त्रद्वारा सिद्धहस्त वैद्य ग्रंथिको चीरकर उसका सब मवाद निकालडाले और जो उसमें उत्क्लेशित रक्त हो उसको भी निकालता रहे जब रक्त निकलचुके फिर वातकफनाशक औषध, धूम्र, शिरोविरेचन, स्वेदन और प्रपीडन मर्क करे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अपशाम्यति दोषे च पाचनं वा प्रशस्यते।
प्रक्लिन्ने दाहपाकाभ्यां भिषक्शोधनरोपणैः।
बाह्यैश्चाभ्यन्तरैश्चैव व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ १३५ ॥

जो ग्रंथि दग्ध आदि करनेसे शांत न होतीहो उसको पकाना ही उत्तम होता है। और जो ग्रंथि दाह तथा पाकसे क्लेदित होगई हो उसकी वैद्य शोधनीय और रोपणीय क्रिया करे। तथा बाहर और भीतरसे उस ग्रंथिकी व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ १३५ ॥

कम्पिल्यकं विडङ्गानि दार्वी कारञ्जकं फलम्।
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं ग्रन्थिव्रणचिकित्सितम् ॥ १३६ ॥

कमीला, वायविडंग, दारुहल्दी और करंजुएके फलोंके कल्कसे सिद्ध किये तैलका ग्रंथिविसर्पके जखमोंको रोपण करनेके लिये प्रयोग करे ॥ १३६ ॥

द्विव्रणीयोपदिष्टेन कर्मणा चाप्युपाचरेत् ।
देशकालविभागज्ञो व्रणग्रन्थिविसर्पवित् ॥ १३७ ॥

देश कालके विभागको जाननेवाला और व्रण तथा ग्रंथिविसर्पको जाननेवाला वैद्य द्विव्रणीय चिकित्सामें कहीहुई क्रियाद्वारा ग्रंथिविसर्पकी चिकित्सा करे ॥ १३७ ॥

गंडमालाकी चिकित्सा ।

य एव विधिरुद्दिष्टो ग्रन्थीनां विनिवृत्तये ।
स एव गलगण्डानां कफजानां निवृत्तये ॥ १३८ ॥
गलगण्डास्तु वातोत्था ये कफानुगता नृणाम् ।
घृतक्षीरकषायाणामभ्यासान्न भवन्ति ते ॥ १३९ ॥

ग्रंथियोंको निवृत्त करनेकी जो चिकित्सा वर्णन की है कफसे उत्पन्न हुई गलगण्ड (अंजीरों) की निवृत्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये । सब प्रकारकी गलग्रंथियें जो कफके संबंधसे उत्पन्न होती हैं वह घृत, क्षीर और कषायोंके अभ्यास करनेसे मनुष्योंके शरीरमें होही नहीं सकती ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

यानीहोक्तानि कर्माणि विसर्पाणां निवृत्तये ।
एकतस्तानि सर्वाणि रक्तमोक्षणमेकतः ॥ १४० ॥
विसर्पो न ह्यसंसृष्टो रक्तपित्तेन जायते ।
तस्मात्साधारणं सर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम् ॥ १४१ ॥

विसर्परोगकी शान्तिके लिये जितने कर्म कहे हैं वह सब एक ओर और केवल रक्तका निकाल देना एक ओर है । क्योंकि रक्तपित्तके संसर्गके विना विसर्परोग होही नहीं सकता इसलिये रक्तका निकाल देना ही साधारण रूपसे उत्तम चिकित्सा है । इस प्रकार विसर्परोगकी साधारण चिकित्साका कथन किया है ॥ १४० ॥ १४१ ॥

विशेषो दोषवैषम्यान्न च नोक्तः समासतः ।
समासव्यासनिर्दिष्टां क्रियां विद्वानुपाचरेत् ॥ १४२ ॥

इसमें दोषोंकी विषमता हेतु भद आदि जो हैं वह बहुत विशेषतासेही नहीं कहेगये और न बहुत संक्षेपसे ही कहेगये हैं इस संक्षेप और विस्तारसे निर्देश कीहुई क्रियाको बुद्धिमान् वैद्य विचारकर चिकित्सा करे ॥ १४२ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र-निरुक्तनामभेदाश्च दोषा दूष्याणि हेतवः।
आश्रयो मार्गतश्चैव विसर्पगुरुलाघवम् ॥ १४३ ॥
लिङ्गान्युपद्रवा ये च यल्लक्षण उपद्रवाः।
साध्यत्वं न च साध्यानां साधनञ्च यथाक्रमम् ॥ १४४ ॥
इति पिप्रच्छवे सिद्धिमग्निवेशाय धीमते।
उक्तं भगवता ह्येतद्विसर्पाणां चिकित्सिते ॥ १४५ ॥

इति चरक० विसर्पचिकित्सितं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करते हैं कि, इस विसर्पचिकित्सित नामके अध्यायमें विसर्पकी निरुक्ति, नाम, भेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, मार्ग, गुरुता, लाघव, लक्षण, उपद्रव, उपद्रवोंके लक्षण, साध्यता, असाध्यता और चिकित्सा यह सब भगवान् आत्रेयजीने बुद्धिमान् तत्त्वके जाननेकी इच्छावाले अग्निवेशके प्रति यथाक्रम वर्णन किया है ॥ १४३-१४५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां विसर्पचिकित्सितं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः।



अथातो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम मदात्यय चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

सुरैः सुरेशसहितैर्या सुरा परिपूजिता।
सौत्रामण्यां हूयते या कर्मभिर्या प्रतिष्ठिता ॥ १ ॥
यज्ञे हि या च शक्रस्य सोमोऽतिपातितो यया।
नीरजस्तमसाविष्टस्तस्माद्दुर्गात्समुद्धृतः ॥ २ ॥

विधिभिर्वेदविहितैर्या यजद्भिर्महात्मभिः ।
दृश्या स्पृश्या प्रकल्प्या च यज्ञिया यज्ञसिद्धये ॥ ३ ॥
योनिसंस्कारनामाद्यैर्विशेषैर्बहुधा च या ।
भूत्वा भवत्येकविधा सामान्यान्मदलक्षणात् ॥ ४ ॥
या देवानमृतं भूत्वा स्वधा भूत्वा पितृंश्च या ।
सोमो भूत्वा द्विजातीन्या युङ्क्ते श्रेयोभिरुत्तमैः ॥ ५ ॥
आश्विनं या महत्तेजो वीर्य्यं सारस्वतञ्च या ।
बलमैन्द्रं च या सोमे सौत्रामण्याञ्च या मता ॥ ६ ॥
शोकारतिभयोद्वेगनाशिनी या महाबला ।
या प्रीतिर्या रतिर्या वाग् या पुष्टिर्या च निर्वृतिः ॥ ७ ॥
या सुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः ।
रतिः सुरेत्यभिहिता तां सुरां विधिना पिबेत् ॥ ८ ॥

इन्द्र सहित देवताओंने जिस मद्यका पूर्व समयमें पूजन किया है जिसकी सौत्रामणी यज्ञके बीचमें आहुती दीगई। जो कर्मद्वारा प्रतिष्ठित हुई है। जो यज्ञमें प्रतिष्ठा पाचुकी है। जिसके पीनेसे सोमपान करनेवाले इन्द्र तमसे आविष्ट हुए संकटसे विमुक्त हुए, जिस मद्यको यज्ञकी हितकारिणी होनेसे महात्माओंने वेदविहित्त विधिसे यजन करतेहुए देखनेयोग्य स्पृश्य कल्पना करने योग्य यज्ञकी सिद्धिके लिये माना है जो मद्य द्रव्य, संस्कार और नाम विशेषसे अनेक प्रकारकी होतेहुए भी मदकारक सामान्य लक्षणोंसे एक ही प्रकारकी मानी जाती है। जो मद्य अमृतरूपसे देवताओंको, स्वधा होकर पितृगणोंको, सोम होकर द्विजोंको उत्तम कल्याणकी देनेवाली है जो सुरा अश्विनीकुमारोंको महातेजको देनेवाली है, जो सरस्वतीका वीर्य है, इन्द्रका बल है, सौत्रामणी यज्ञमें सोमरूप है जो सुरा शोक, अरति, भय और उद्वेगको नाश करनेवाली है, जो सुरा प्रीति, रति, वाणी, पुष्टि और सुखको देनेवाली है जो सुरा देवता, दैत्य, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और मनुष्योंमें रतिको उत्पादन करनेवाली है। उस सुराको सुरापी पुरुष (वाममार्गी) इस विधिसे पीवे ॥ १–८ ॥

---

१. स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ।
ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमांश्चर१९स्तैः ॥ १ ॥
" छान्दोगोपनिषदि "

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्याहुस्संसर्गश्चापि तैः सह ॥ १ मनुः ।

शरीरकृतसंस्कारः शुचिरुत्तमगन्धवान्।
प्रावृतो निर्मलैर्वस्त्रैर्यथर्त्तूद्दामगन्धिभिः ॥ ९ ॥
विचित्रविविधस्रग्वी रत्नाभरणभूषितः।
देवद्विजातीन्संपूज्य स्पृष्ट्वा मङ्गलमुत्तमम् ॥ १० ॥
देशे यथर्तुके शस्ते कुसुमप्रकरीकृते।
संवाससंमते मुख्ये धूपसंमोदबोधिते ॥ ११ ॥
सोपधाने सुसंस्तीर्णे विहिते शयनासने।
उपविष्टोऽथवा तिर्य्यक् स्वशरीरसुखे स्थितः ॥ १२ ॥
सौवर्णै राजतैश्चापि तथा मणिमयैरपि।
भाजनैर्विमलैश्चान्यैः सुकृतैश्च पिबेत्सदा ॥ १३ ॥
स्त्रीभिर्यौवनमत्ताभिः शिक्षिताभिर्यथर्तुकैः।
वस्त्राभरणमाल्यैश्च भूषिताभिर्विभूषितः ॥ १४ ॥
शौचानुरागयुक्ताभिः प्रमदाभिरितस्ततः।
संवाह्यमान इष्टाभिः पिबेन्मद्यमनुत्तमम् ॥ १५ ॥
पिबेन्मद्यानुकूलैर्वा फलैर्हरितकैः शुभैः।
लवणैर्गन्धपिशुनैरवदंशैर्यथर्त्तुकैः ॥ १६ ॥
भृष्टैर्मांसैर्बहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम्।
पौरोगवर्गविहितैर्भक्ष्यैश्च विविधात्मकैः ॥ १७ ॥

वमन, विरेचनादिसे शुद्धदेह होनेपर उत्तम पवित्र, सुगंधित द्रव्योंसे सुगंधित हो निर्मलवस्त्रोंको धारण कर ऋतुके अनुसार सुगंधित फूलमाला आदि धारणकर अनेक प्रकारके रत्न आभूषणोंसे सुशोभित हो, देवता, ब्राह्मण आदिका पूजन कर, मंगल वस्तुओंका स्पर्श करे फिर ऋतुके अनुसार पुष्पादिकोंसे सुशोभित, सुगंधित द्रव्योंसे धूपन कियेहुए सुन्दर स्थानमें एक शय्या बिछावे, जिस शय्या, आसन आदिपर मनोनुकूल तकिया, तोशक आदि बिछे हुए हों ऐसी शय्या आसन आदि पर बैठकर, अथवा तकियेके सहारेसे टेढा होकर स्थित हुआ सुवर्ण, चांदी अथवा अन्य मणिमय निर्मल सुन्दर बनेहुए सुचित्रित पात्रमें डालकर यौवनके मदसे मत्तहुई सब कलाओंको जाननेवाली ऋतुके अनुसार वस्त्र, भूषण, माला आदिकोंसे सुशोभित

हुई पवित्रता और अनुरागयुक्त मनोनुकूल स्त्रियोंसे सेवित किया हुआ पुरुष मद्यका पान करे। और उसके अनन्तर अनुकूल उत्तम फल नमकीन सुगंधित ऋतुके अनुसार चटनी आदि सेवन करे। अनेक प्रकारके जीवोंके मांसको नमकीन सुगंधित बनाकर अथवा और अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ सेवन करे॥ ९-१७॥

प्रकृतिभेदसे मद्यसेवन।

पूजयित्वा सुरान् पूर्वमाशिषः प्राक् प्रयुज्य च।
प्रदाय सजलं मद्यमादितो वसुधातले॥ १८॥
अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः।
स्निग्धोष्णैर्भावितैश्चान्नैर्वातिको मद्यमाचरेत्॥ १९॥
शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः।
पैत्तिको भावितश्चान्नैः पिबेन्मद्यं न सीदति॥ २०॥
उपचारैरशिशिरैर्यवगोधूमभुक्पिबेत्।
श्लैष्मिकैर्धन्वजैर्मांसैर्मद्यं मरिचकैः सह॥ २१॥
विधिर्वसुमतामेष भविष्यद्विभवाश्च ये।
यथोपपत्तिकैर्मद्यं पातव्यं मात्रया हितम्॥ २२॥

देवताओंका पूजन कर आशीर्वाद ले मद्यमें थोडासा जल मिलाकर पृथ्वीपर डाले फिर वातप्रकृति मनुष्य शरीरमें तैलकी मालिश कर, उबटन लगा, स्नान कर उत्तम वस्त्र पहिने, फिर धूम्रपान कर चंदन लगा घृतयुक्त गर्म अन्नके साथ मद्यका सेवन करे। पित्तप्रधान मनुष्य अनेक प्रकारके शीतल उपचार कर मधुर, स्निग्ध और शीतल अन्नोंके साथमें जलमिले मद्यका सेवन करे। एवं कफप्रधान मनुष्य उष्ण उपचार करनेके उपरांत यव और गेहूंसे बनेहुए भोजन और कालीमिर्चे डालकर सिद्धकिये हुए जंगली जीवोंके मांसरसके साथ मद्यका सेवन करे। जो मनुष्य धनसम्पन्न हैं अथवा आगेको धन सम्पन्न होनेवाले हों वह मात्रानुसार इसी विधिसे ही मद्यका सेवन करें। (इस विधिको छोडकर पूर्वोक्त विधिसे मद्यके सेवन करनेवाले मनुष्योंका धनादि भी मद्यके साथ ही स्वाहा हो जाता है)॥ १८--२२॥

---

१ मद्यपानं द्विजातीनां गर्हितं पातकं महत्। प्रायश्चित्ती भवेत्स्पृष्ट्वा पीत्वा च नरकं व्रजेत्॥
सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते। तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥
एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यं तथैकतः। एकतः सर्वपापानि मद्यपानं तथैकतः॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च। पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

वातिकेभ्यो हितं मद्यं प्रायो गौडिकपैष्टिकम् ।
कफपित्ताधिकेभ्यस्तु फालमाध्वशार्करम् ॥ २३ ॥

वातप्रधान मनुष्यको गुडसे बना अथवा पैष्टिकमद्य पीना चाहिये । तथा कफ-पित्तप्रकृतिवालोंको फलोंसे बना मद्य और शहदसे बना खांडसे बना मद्य हित-कारी होती है ॥ २३ ॥

मद्यके गुणदोष ।

बहुद्रवं बहुगुणं बहुकर्मप्रदात्मकम् ।
गुणैर्दोषैश्च तन्मद्यमुभयं चोपलक्ष्यते ॥ २४ ॥
विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ २५ ॥
यथोपेतं पुनर्मद्यं प्रसंगाद्येन पीयते ।
रूक्षव्यायामनित्येन विषवद्याति तस्य तत् ॥ २६ ॥
मद्य हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान् ।
दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥ २७ ॥

मद्य बहुत पतला और अनेक गुण कर्मोंवाला होता है । अब उस मद्यके गुण और दोष दोनोंको दिखाते हैं । उचित समयमें ठीक मात्रासे विधिपूर्वक बल और कालके अनुसार प्रसन्न चित्त हो मद्यका सेवन करे तो अमृतके समान गुणोंको कर-नवाला होता है । तथा जो मनुष्य रूक्ष और परिश्रम नित्य करनेवाला होते हुए अकस्मात् अथवा अधिक मात्रासे उसे पीलेता है अथवा जैसी कैसी प्रसंगवश मिले विना मात्रा काल सात्म्यादिका विचार किये मद्य पीता है उसको वह विषके समान हानिकारक होती है । तथा वह हृदयमें प्रवेश कर अपने दशगुणोंसे ओजधातुके दश गुणोंको संक्षोभितकर चित्तमें विकारको उत्पन्न करती है ॥ २४--२७ ॥

मद्यके १० गुण ।

लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवायाशुगमेव च ।
रूक्षं विकाशि विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ २८ ॥

लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, शीघ्रगामी, रूक्ष, विकाशी और विशद यह मद्यके दश गुण हैं ॥ २८ ॥

ओजके १० गुण ।

गुरु शीतं मृदु श्लक्ष्णं बहलं मधुरं स्थिरम् ।

प्रसन्नं पिच्छिलं स्निग्धमोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ २९ ॥

भारी, शीतल, मृदु, श्लक्ष्ण, बहुल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और स्निग्ध यह दश गुण ओज धातुके हैं ॥ २९ ॥

मद्यसे ओजके गुण नष्ट होकर मदकी उत्पत्ति ।

गुरुत्वं लाघवाच्छैत्यं चौष्ण्यादम्लस्वभावतः ।
माधुर्य्यं मार्दवं तैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चाशु भावनात् ॥ ३० ॥
रौक्ष्यात्स्नेहं व्यवायित्वात्स्थिरत्वं श्लक्ष्णतामपि ।
विकासिभावात्पैच्छिल्यं वैशद्यात्सान्द्रतां तथा ॥ ३१ ॥
सौक्ष्म्यान्मद्यं निहन्त्येवमोजसः स्वगुणैर्गुणान् ।
सत्त्वं तदाश्रयश्चाशु संक्षोभ्य जनयेन्मदम् ॥ ३२ ॥

मद्यकी लघुतासे ओजकी गुरुता, उष्णतासे शीतलता, अम्लतासे मधुरता, तीक्ष्णतासे मृदुता, शीघ्रगामितासे प्रसन्नता, रूक्षतासे स्निग्धता, व्यवायी होनेसे स्थिरता, विकाशी होनेसे श्लक्ष्णता, विशदतासे पिच्छिलता और सूक्ष्मतासे बहुलता(सान्द्रता) इस प्रकार मद्य अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको नष्ट करती है। मद्य सूक्ष्म होनेसे अपने गुणों द्वारा ओजके गुणोंको नष्ट कर मन और तदाश्रय ओजको संक्षोभित कर मद (नशा) को उत्पन्न करती है ॥ ३०--३२ ॥

रसधात्वादिमार्गाणां सत्त्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम् ।
प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयं स्थानमुच्यते ॥ ३३ ॥
अतिपीतेन मद्येन विहतेनौजसा च तत् ।
हृदयं याति वैकृत्यं तत्रस्था ये च धातवः ॥ ३४ ॥

रस और धातु आदिकोंके मार्गोंका तथा सत्त्वसंज्ञक मन, बुद्धि, इन्द्रियज्ञान आत्मा और ओजधातुका प्रधान स्थान हृदय ही है। अतिमद्यके पीनेसे ओजधातु नष्ट होकर हृदय और हृदयस्थ संपूर्ण धातु विकृत होजाते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मदके भेद ।

ओजस्यविहते पूर्वो हृदि च प्रतिबोधिते ।
मध्यमो विहतेऽल्पे च विहते तूत्तमो मदः ॥ ३५ ॥

मद्यके पीनेसे ओजधातु नष्ट न होकर हृदयमें चैतन्यता रहते हुए जो मद होता है उसको पूर्वमद कहते हैं और जिस मद्यके पीनेसे ओजधातु किंचित विहत होकर

चंचलता (शरारत) उत्पन्न हो उसको मध्यमद्य कहते हैं। ओजधातुके अत्यंत विहत होजानेसे जब मनुष्य उन्मत्त होजाता है तब उसको उत्तम मद्य कहते हैं३५॥

नैवं विघातं जनयेन्मद्यं पैष्टिकमोजसः।
विकाशरूक्षविशदा गुणास्तत्र हि नोल्बणाः॥ ३६॥

पैष्टिकमद्य ओजधातुमें अधिक विकार उत्पन्न नहीं करता. क्योंकि इसमें विकाशी, रूक्ष और विशदता यह गुण प्रबल नहीं हैं॥ ३६॥

हृदि मद्यगुणाविष्टे हर्षस्तर्षो रतिः सुखम्॥ ३७॥

जब मद्यके गुण हृदयमें प्रवेश करते हैं तब हर्ष, इच्छा, रति और सुख यह भाव प्रगट होजाते हैं॥ ३७॥

विकाराश्च यथासत्त्वं चित्रा राजसतामसाः।
जायन्ते मोहनिद्रार्त्ता मद्यस्यातिनिषेवणात्।
स मद्यविभ्रमो नाम्ना मद इत्यभिधीयते॥ ३८॥

मद्यके अधिक सेवनसे जैसा मनुष्यका स्वभाव होता है उसके अनुसार राजस अथवा तामस अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होते हैं तथा मोह निद्रासे व्याकुलता आदि दोष प्रगट होते हैं। इस मदको मद्यविभ्रम कहते हैं॥ ३८॥

मदके ३ भेद।

पीयमानस्य मद्यस्य विज्ञातव्यास्त्रयो मदाः।
प्रथमो मध्यमोऽन्त्यश्च लक्षणैस्तान् प्रचक्षते॥ ३९॥

मद्यके पीनेसे तीन प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं। जैसे–प्रथम मद, मध्यम मद और अन्त्य मद। अब इन तीनोंके लक्षणोंको कहते हैं॥ ३९॥

प्रथममदके लक्षण।

प्रहर्षणः प्रीतिकरः पानान्नगुणदर्शकः।
वाद्यगीतप्रहासानां कथानां च प्रवर्त्तकः॥ ४०॥
न च बुद्धिस्मृतिहरो विषयेषु न चाक्षमः।
सुखनिद्राप्रबोधश्च प्रथमः सुखदो मदः॥ ४१॥

---

१ मना हिनस्ति सर्वं मिथ्या प्रलपति हि विकलया बुद्ध्या।
मातरमपि कामयते साऽवज्ञं मद्यपानमत्तः सन्॥
वैकल्यं धरणीपातमयथोचितजल्पनम्।
सन्निपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत्॥

प्रथम मद हर्षकारक, प्रीतिवर्द्धक, अन्नपानके गुणोंको दिखानेवाला (रुचिकारक) बाजा, गीत, परिहास और अनेक प्रकारकी वार्त्ताओंका प्रवर्त्तक होता है। इससे बुद्धि और स्मृति नष्ट नहीं होती और न विषयमें शिथिलता होती है। तथा सुखसे निद्रा और सुखपूर्वक प्रबोध (जागरण) यह लक्षण होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

मध्यममदके लक्षण।

मुहुः स्मृतिर्मुहुर्मोहो व्यक्ता सज्जाति वाङ् मुहुः।
युक्तायुक्तप्रलापश्च प्रपलायनमेव च ॥ ४२ ॥
स्थानपानान्नसांकथ्ये योजना सविपर्य्यया।
लिङ्गान्येतानि जानीयादाविष्टे मध्यमे मदे ॥ ४३ ॥

बारंबार स्मरण और मोहका होना, मुखसे अस्पष्ट अक्षरोंका निकलना, कभी स्पष्ट शब्दोंका बोलना, कभी कण्ठका रुकजाना, कभी युक्त कभी अयुक्त, अण्टसण्ट बकना, चलायमान होना, कभी स्थिर होजाना, खानेपीनेकी चेष्टाकरना, कहनेमें विपरीतता होना, यह मध्यमदविशिष्ट पुरुषके लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मध्यमं मदमुत्क्राम्य मदमप्राप्य चोत्तमम्।
न किञ्चिन्नाशुभं कुर्य्युर्नरा राजसतामसाः ॥ ४४ ॥

राजस, तामस प्रकृतिवाले मनुष्योंको यदि उत्तम मद (बेहोशी निद्रा) न हो तो वह मध्यम मदको प्राप्त होकर अनुचित कर्मोंको करने लगते हैं ऐसा कोई अशुभ (खोटा) कर्म नहीं जिसको यह मदातुर मनुष्य न करडाले ॥ ४४ ॥

को मदं तादृशं विद्वानुन्मादमिव दारुणम्।
गच्छेदध्वानमस्वन्तं बहुदोषमिवाध्वगः ॥ ४५ ॥

इस प्रकारके दारुण उन्मादके समान मदकारक मद्यको बुद्धिमान् मनुष्य त्याग देवे। जैसे—बहु दोषयुक्त जिसमें अनेक उपद्रवोंका भय हो ऐसे प्राणनाशक मार्गको बुद्धिमान् पथिक त्याग देता है उसी प्रकार इस उन्मादकेसे लक्षणोंवाले मध्यमदको याग देना चाहिये ॥ ४५ ॥

अन्त्य मद।

तृतीयन्तु मदं प्राप्य भग्नदार्विव निष्क्रियः।
मदमोहावृतमना जीवन्नपि मृतैः समः ॥ ४६ ॥
रमणीयान् स विषयान्न वेत्ति न सुहृज्जनम्।
यदर्थं पीयते मद्यं रतिं तां च न विन्दति ॥ ४७ ॥

कार्य्याकार्यं सुखं दुःखं लोके यच्च हिताहितम्।
यदवस्थो न जानाति कोऽवस्थां तां व्रजेद् बुधः ॥ ४८ ॥
स दूष्यः सर्व्वभूतानां निन्द्यश्चाग्राह्य एव च।
व्यसनित्वादुदर्के च स दुःखं व्याधिमश्नुते ॥ ४९ ॥

अन्त्यमदके होनेसे मनुष्य कटीहुई लकडीके समान निष्क्रिय होकर गिरजाता है वह मद और मोहसे आवृतहुआ जीताहुआ भी मरेके समान पडारहता है। उससमय उसको किसी प्रकारके रमणीय विषय अथवा सुहृद्जन कुछ भी नहीं जान पडते और न किसीको किसी प्रकार जानने पहिचाननेका ज्ञान रहता है। जिस मतलबके लिये वह मद्य पीता है उसका भी उसको कुछ ज्ञान नहीं रहता है। कार्य, अकार्य, सुख, दुःख और हित और अहित आदि जो कुछ भी जगत्में है उन किसीको भी उस अवस्थामें वह नहीं जानसकता। इस अवस्थाका नाम अन्त्य मद है। ऐसी अवस्थाको कौन मनुष्य है जो प्राप्त होना चाहता हो। इस प्रकार मद्य पीनेवाला मनुष्य प्राणिमात्रकी दृष्टिमें दूषित निन्दाके योग्य और किसी प्रकार भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता है। और अन्तमें इस व्यसनसे दुःख तथा रोगोंसे पीडित होता है ॥ ४६–४९ ॥

मद्यकी निंदा।

प्रेत्य चेह च यच्छ्रेयः श्रेयो मोक्षश्च यत्परम्।
मनःसमाधौ तत्सर्वमायत्तं सर्वदेहिनाम् ॥ ५० ॥
मद्येन मनसश्चास्य संक्षोभः क्रियते महान्।
महामारुतवेगेन तटस्थस्यैव शाखिनः ॥ ५१ ॥
मद्यप्रसङ्गमज्ञात्वा महादोषं महागदम्।
सुखमित्यधिगच्छन्ति रजोमोहपराजिताः ॥ ५२ ॥
मद्योपहतविज्ञाना वियुक्ताः सात्त्विकैर्गुणैः।
श्रेयो निर्विप्रयुज्यन्ते मदान्धा मदलालसाः ॥ ५३ ॥

इस लोकका सुख और पारलौकिक स्वर्गादि सुख तथा मोक्ष यह सब मनुष्योंके मनकी समाधिके आधीन हैं। और जिस प्रकार आंधी, तूफान आदिसे नदीके किनारेके वृक्ष संक्षोभित होते हैं उसी प्रकार मद्यके पीनेसे मनुष्योंका मन संक्षोभित होजाता है। मद्यके पीनेसे ज्ञान नष्ट होकर अनेक दोष और रोग उत्पन्न होते हैं

१ पेयं मद्यं पलं खाद्यं समालोक्याः परस्त्रियः। इत्येव श्रेष्ठमाचारं पामराः प्रवदन्ति हि।

परन्तु रजोगुण और तमोगुणके योगसे पराजित हुए मूर्ख फिर भी मद्यके पीनेमें सुख मानते हैं। मद्यके पीनेसे मदान्ध और मदकी लालसावाला मनुष्य हतज्ञान होकर संपूर्ण सात्विक गुणोंसे हीन और कल्याणसे भ्रष्ट होजाता है ॥ ५०–५३ ॥

मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रितः।
सोन्मादमदमूर्च्छाद्याः सापस्मारापतानकाः ॥ ५४ ॥

मद्यके पीनेसे बेहोशी, भय, शोक, क्रोध, उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक आदि महाव्याधियें अथवा मृत्यु भी होजाती हैं ॥ ५४ ॥

यत्रैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधुवत्।
इत्येव मद्यदोषज्ञा मद्यं गर्हन्ति यत्नतः ॥ ५५ ॥
सत्यमेते महादोषा मद्यस्योक्ता न संशयः।
अहितस्यातिमात्रस्य पीतस्य विधिवर्जनम् ॥ ५६ ॥

जिस मद्यके पीनेसे मनुष्यकी स्मृति ही नष्ट होजाय उसमें और बाकी दुर्गुण क्या रहे अर्थात् संपूर्ण निन्दनीय दोष मद्यसे प्राप्त होते हैं। इसलिये दोषके जाननेवाले बुद्धिमान् (द्विजाती) मद्यकी यत्नपूर्वक निन्दा करते हैं। अर्थात् मद्यका स्पर्श करना भी पाप मानते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम्।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथामृतम् ॥ ५७ ॥
प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून्।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ ५८ ॥

मद्यके पीनेवाले मनुष्य भी यदि युक्तिके विना अहित और अधिक मात्रासे मद्यको पीते हैं तो निश्चय ही उनको भी यह महाव्याधियें और दोष अवश्य प्राप्त होते हैं। जैसे अन्न स्वभावसे ही हितकारक होतेहुए भी विधिको त्यागकर अधिक मात्रासे अथवा अयुक्तिसे सेवन किया जाय तो रोगोंको उत्पन्न करनेवाला होता है और युक्तियुक्त होनेसे अमृतके समान होता है, उसी प्रकार मद्यसात्म्य मनुष्य भी यदि अहित मात्रासे मद्यपान करे तो उसके प्राणोंको विषके समान नष्ट करदेता है। और

---

१ वेदत्यागान्मद्यपानाच्छूद्रदारनिषेवणात्। तत्क्षणाज्जायते विप्रश्चाण्डालादपि गर्हितः ॥ वेदमार्गपरित्यागी कैवल्येच्छाविवर्जितः। सिद्धिकामी वाममार्गी ब्राह्मणो नारकी भवेत्। अज्ञानाद् वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्धयति। मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः॥

युक्तिपूर्वक पीनेसे अमृतके समान होता है। देखिये मनुष्योंके प्राणोंका आधार अन्न ही है, वह ही अहित रीतिसे सेवन किया प्राणोंको नष्ट कर देता है। और विष प्राणोंको नष्ट करनेवाला है परन्तु वही विधिवत् सेवन किये जानेसे अमृतके समान रसायन होकर प्राणोंको चिरकालस्थायी बनानेवाला होजाता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

युक्तियुक्त मद्यके गुण।

हर्षमूर्जो मदं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं परम् ।
युक्त्या पीतं करोत्याशु मद्यं मदसुखावहम् ॥ ५९ ॥
रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णप्रसादनम् ।
प्रीणनं बृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ ६० ॥
स्वापनं नष्टनिद्राणां मूकानां वाग्विबोधनम् ।
बोधनं चातिनिद्राणां विबद्धानां विबन्धनुत् ॥ ६१ ॥
वधबन्धपरिक्लेशदुःखानाञ्चावमोहनम् ।
मद्योत्थानाञ्च रोगाणां मद्यमेव प्रबाधकम् ॥ ६२ ॥
रतिर्विषयसंयोगे प्रीतिसंयोगवर्द्धनम् ।
अतिप्रवयसां मद्यमुत्सवामोदकारकम् ॥ ६३ ॥

मद्यसात्म्य मनुष्य यदि युक्तिपूर्वक उचित मात्रासे मद्यका सेवन करे तो उस पुरुषको हर्ष, बल, मद, पुष्टि, आरोग्यता और पुरुषार्थको उत्पन्न करता है। इस प्रकारके मद्यके मदसे शीघ्र सुख प्रतीत होने लगता है। तथा युक्तियुक्त सेवन किया मद्य रुचिकारक, अग्निवर्द्धक, हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको प्रसन्न करनेवाला, शरीरको पुष्ट करनेवाला, बृंहण, बलकारक, भय और शोकको दूर करनेवाला, थकावटको हरनेवाला, नीन्द न आनेवालोंको सुन्दर नींद लानेवाला, मूकोंको (गूंगोंको) वाणीका देनेवाला, अतिनिद्रावालोंको प्रबोधन करनेवाला, मलमूत्रादिकोंके विबन्धको खोलनेवाला, आघात, बन्धन, क्लेशन और दुःखोंको भुलानेवाला होता है। मद्यके उत्पन्न हुए रोगोंको मद्य ही दूर करता है तथा युक्तियुक्त मद्य रतिविषयमें प्रवृत्त करनेवाला, प्रीतिजनक, वृद्धमनुष्योंको भी रतिउत्सवका आनंद देनेवाला होता है ॥ ५९–६३ ॥

पञ्चस्वर्थेषु कान्तेषु या रतिः प्रथमं मदे ।
यूनां या स्थविराणां वा तस्य नास्त्युपमा भुवि ॥ ६४ ॥

बहुदुःखकृतस्यास्य शोकेनोपहतस्य च।
विश्रामो जीवलोकस्य मद्यं युक्त्या निषेवितम् ॥ ६५ ॥

प्रथम मदसे (युक्तियुक्त) युवा पुरुष तथा वृद्ध अवस्थावालोंको भी पांचों विषयोंमें जो आनन्द प्राप्त होता है उसकी पृथ्वीपर कोई भी उपमा नहीं। बहुतसे दुःखों और शोकसे उपहत हुए मनुष्योंको युक्तियुक्त मद्य पीना ही जीवलोकका विश्राम है अर्थात् दुःख और शोकको भुलाकर शान्तिदायक होता है ॥ ६४॥६५ ॥

अन्नपानवयोव्याधिबलकालत्रिकाणि षट्।
त्रीन्दोषांस्त्रिविधं सत्त्वं ज्ञात्वा मद्यं पिबेत्सदा ॥ ६६ ॥
तेषां त्रिकाणामष्टानां योजना युक्तिरुच्यते।
यथा युक्त्या पिबेन्मद्यं मद्यदोषैर्न युज्यते ॥ ६७ ॥
मद्यस्य च गुणान् सर्वान्यथोक्तान्स समश्नुते।
धर्मार्थयोरपीडार्थैर्नरः सत्त्वगुणोच्छ्रितः ॥ ६८ ॥

अन्न, पान, वय, व्याधि, बल और काल इन छहोंकी त्रिविध अवस्था, त्रिविध दोष और त्रिविध सत्त्व इन आठ त्रिकोंका विचार कर मद्यका सेवन करना चाहिये। इन आठ त्रिकोंका विचार करके मद्यके प्रयोगको करना ही युक्ति कही जाती है। सो जिस प्रकार दोषोंका संयोग न होनेपावे उस युक्तिसे मद्यका सेवन करना चाहिये। जो सात्म्य मनुष्य मद्यको युक्तिपूर्वक पीता है वह मद्यके सम्पूर्ण गुणोंको प्राप्त होता है। इस प्रकारके मद्यसे सुरापी पुरुषोंका धर्म, अर्थ नष्ट नहीं होता और मनके गुणोंकी वृद्धि होती है ॥ ६६-६८ ॥

सत्त्वानि तु प्रबुध्यन्ते प्रायशः प्रथमे मदे।
द्वितीये व्यक्ततां यान्ति मदे चोत्तममध्ययोः ॥ ६९ ॥
सत्त्वसंबोधकं हर्षं मोहप्रकृतिदर्शकम्।
हुताशः सर्वसत्त्वानां मद्यं तूभयकारकम् ॥ ७० ॥
प्रधानावरमध्यानां रुक्माणां व्यक्तिसाधकः।
यथाग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥ ७१ ॥

उत्तम और मध्यम मनुष्यके प्रथम मदमें मनके सब भाव प्रगट होने लगते हैं और मध्यम मदमें वह सब स्पष्ट अर्थात् जो मनुष्य जिस प्रकृतिका हो मद्यके पीनेसे उसके स्वभावके सब गुण प्रथम मदमें जागृत होने लगते हैं और मध्यम मदमें

वह अपने सब भावोंको प्रगटरूपसे बकने और दिखाने लगता है। जैसे अग्नि सुवर्णका प्रकृतिज्ञान (भलाबुरापन) दिखाने लगती है ऐसे मद्य भी पुरुषोंके मनको प्रबोधन करनेवाला, हर्षको बढानेवाला और उसके स्वभावोंको स्पष्टरूपसे दिखानेवाला होता है, जैसे–अग्नि सुवर्णकी उत्तमता, मध्यमता और अधमता इन तीनों ही प्रकारके गुणोंको प्रकाश करदेती है मद्य भी उसी प्रकार मनुष्यके भले और बुरे स्वभावको प्रकाशकर दिखादेती है ॥ ६९–७१ ॥

सात्त्विकमद्यपान।

सुगन्धिमाल्यगन्धैर्वा सुप्रणीतमनाकुलम्।
मिष्टान्नपानविशदं सदा मधुरसंकथम् ॥ ७२ ॥
सुखप्रपानं सुमदं हर्षप्रीतिविवर्द्धनम्।
स्वन्तं सात्त्विकमापानं न चोत्तममदप्रदम् ॥ ७३ ॥

सुगंधित फूलमाला और गंधके साथ उचित मात्रासे उत्तम बनेहुए मद्यको मधुर अन्नपानके साथ मृदुभाषण करता हुआ और सुखप्रमाण सेवन करे तो सुखकारक मद हर्ष और प्रीति बढाताहै। जिस मद्यके पीनेसे मनमें विकार पैदा न होकर सुख, हर्ष, प्रीति आदि शुभ भाव बनेरहें उसको सात्त्विक मद्यपान कहते हैं ॥७२-७३॥

वैगुण्यं सहसा यान्ति मद्यदोषैर्न सात्त्विकाः।
मद्यं हि बलवत्सत्त्वं गृह्णाति सहसा न तु ॥ ७४ ॥

इस प्रकार सात्त्विक मद्यपानसे विगुणता उत्पन्न न होकर सात्त्विकता प्रगट होती है। बलवान् सत्त्ववाले मनुष्यको मद्य शीघ्र ही पराजित नहीं कर सकता ॥ ७४ ॥

राजसी मद्यपान।

सौम्यासौम्यकथाप्रायं विशदाविशदं क्षणात्।
चित्रं राजसमापन्नं प्रायेणास्वन्तकाकुलम् ॥ ७५ ॥
हर्षप्रीतिकथोपेतमदुष्टं पानभोजने ॥ ७६ ॥

राजस मद्यके पीनेसे कभी सौम्य, कभी असौम्य भाषण करनेलगे, कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट भाषण करे। स्वभावमें अनेक प्रकारकी विचित्रता उत्पन्न हो। इस मद्यके पीनेसे अन्तमें प्रायः अशुभ परिणाम होता है। इस राजसमद्य (मध्य) पान करनेसे बहुतसी स्मरणशक्तिका होना, अण्ट सण्ट बकना, चित्तमें अत्यंत हर्ष होना, खाने पीनेमें रुचि होना, यह लक्षण (मध्यम मात्रा मद्य पीनेसे)होतेहैं७५॥७६

तामस मद्यपान।

सम्मोहक्रोधनिद्रान्तमापानं तामसं स्मृतम्।

आपाने सात्त्विकान् बुद्ध्वा तथा राजसतामसान्।
जह्यात्सहायान्यैः पीत्वा सहदोषानुपाश्नुते ॥ ७७ ॥

अति मद्य पीनेसे संमोह, क्रोध और अत्यंत निद्रा होती है। इस प्रकारके मद्य पीनेको तामसमद्य कहते हैं। अथवा सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारकी प्रकृतिवाले मनुष्योंके मद्य पीनेसे यह उपरोक्त तीन प्रकारके गुण होते हैं। सो इन सात्विक, राजस और तामस मद्य पीनेवालोंका विचारकरके मद्यपान करनेके स्थानमें जिनके साथ मद्य पीनेसे दुर्गुण प्रगट हों उनको त्याग देना चाहिये ॥ ७७ ॥

सुखशीलाः सुसम्भाषाः सुमुखाः सम्मताः सताम्।
कलासु वाक्यविशदा विषयप्रवणाश्च ये ॥ ७८ ॥
परस्परविधेया ये येषामैक्यं सुहृत्तया।
प्रहर्षप्रीतिमाधुर्य्यैरापानं वर्द्धयन्ति ये ॥ ७९ ॥
उत्सवादुत्सवतरं येषामन्योन्यदर्शनम्।
ते सहायाः सुखाः पाने तैः पिबन् सह मोदते ॥ ८० ॥
रूपगन्धरसस्पर्शैः शब्दैश्चापि मनोरमैः।
पिबन्ति सुसहाया ये ते वै सुकृतिभिः समाः ॥ ८१ ॥
पञ्चभिर्विषयैरिष्टैरुपेतैर्मनसः प्रियैः।
देशे काले पिबेन्मद्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ८२ ॥

जो सुन्दर स्वभाववाले, शुभ भाषण करनेवाले, सुमुख, श्रेष्ठसंमत, सब कलाओंमें चतुर, बोलनेमें चतुर, विषयप्रवीण, परस्पर एक दूसरेसे स्नेह रखनेवाले, ऐक्यता गुणयुक्त, सौहृद्य संपन्न, हर्ष, प्रीति और मधुरतासे पीनेके स्थानको उत्सवसे भी अधिक मानें, एक सरेको देखकर परम प्रसन्नताको प्राप्त हों ऐसे सहधर्मियोंके साथ मिलकर मद्य पीना चाहिये। ऐसे समान गुणवालों, मद्य सात्म्य मित्रों संयुक्त रूप रस गंध शब्द और स्पर्श इन पांचों इन्द्रियोंके पांच विषयोंका आनन्द लेतेहुए मद्य-पायी मनुष्य पुण्यात्माओंके समान सुखी होतेहैं। मनके प्यारे इच्छित पंच विषयों संयुक्त प्रसन्नमन हुआ देश, काल विचारकर मद्यका पान करे ॥ ७८-८२ ॥

मद्य पीनेके योग्य मनुष्य।

स्थिरसत्त्वशरीरा ये पुराणा मद्यपान्वयाः।
बहुमद्योचिता ये च माद्यन्ति सहसा न ते ॥ ८३ ॥

जिन मनुष्योंका मन और शरीर बलवान् हो, जिनके वंशमें सदासे मद्य पान करनेकी प्रथा हो, जिनको सदासे मद्यपान करनेका अभ्यास हो, जो मद्यके मदका सहन कर सकते हों जिनको शीघ्र मद न होसकता हो उनको ही मद्यपान करना चाहिये ८३

मद्यके अयोग्य मनुष्य ।

प्राङ्मद्यात्क्षुत्पिपासार्त्ता दुर्बला वातपैत्तिकाः ।
रूक्षाल्पप्रमिताहारा विस्तब्धाः सत्त्वदुर्बलाः ॥ ८४ ॥
क्रोधिनोऽनुचिताः क्षीणाः परिश्रान्ता मदक्षताः ।
स्वल्पेनापि मदं शीघ्रं यान्ति मद्येन मानवाः ॥ ८५ ॥

जिनको मद्य पीनेसे पहिले भूख और प्यास लगरहीहो तथा जो अत्यंत दुर्बल हों जो वात पित्तके स्वभाववाले हों, जो रूक्ष, अल्प और प्रमित भोजन करनेवाले हों,जो विस्तब्ध हों, जिनका मन दुर्बल हो, जिनका क्रोधी स्वभाव हो जिनकी जातिमें मद्य पीना निषिद्ध हो अथवा जिन्होंने कभी मद्य पीया न हो, जो क्षीण हों, जो परिश्रम कर थके हों और जिनको क्षतरोग हो ऐसे मनुष्य थोडासा मद्य पीनेसे भी शीघ्र मदातुर होजाते हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

ऊर्द्ध्वं मदात्ययस्यातः सम्भवं स्वस्वलक्षणम् ।
अग्निवेश चिकित्साञ्च प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥ ८६ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम यथाक्रम मदात्ययरोगकी उत्पत्ति और लक्षण तथा चिकित्साको कहते हैं ॥ ८६ ॥

वातप्रधान मदात्यय ।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्षितः ।
रूक्षाल्पप्रमिताशी वा यः पिबत्यतिमात्रया ॥ ८७ ॥
रूक्षं परिणतं मद्यं निशि निद्रां विहत्य च ।
करोति तस्य तच्छीघ्रं वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य स्त्रीसंग, शोक, भय, भार उठाना, मार्ग चलने तथा इसी प्रकार अन्य कर्मोंके करनेसे अत्यन्त कर्षित होगयाहो तथा सदा ही रूक्ष, अल्प और एक रसका भोजन करनेवाला हो यदि ऐसा मनुष्य अत्यन्त मद्य पीवे तो वह मद्य परिपाकके समय अत्यन्त रूक्षताको प्रगटकर रात्रिमें निद्राको नष्ट कर देता है। फिर शीघ्र ही वातप्रधान मदात्यय रोगको करता है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ८९ ॥

हिचकी, श्वास, सिरका कांपना, पार्श्वशूल, निद्रानाश और बहुत बकवाद करना यह वातज मदात्ययके लक्षण हैं ॥ ८९ ॥

पित्तप्रधान मदात्यय।

तीक्ष्णोष्णं मद्यमम्लं वा योऽतिमात्रं निषेवते।
अम्लोष्णतीक्ष्णभोजी च क्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः ॥ ९० ॥
तस्योपजायते पित्ताद्विशेषेण मदात्ययः।
स तु वातोल्बणस्याशु प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ९१ ॥
तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारविभ्रमैः।
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ ९२ ॥

अथवा जो मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल मद्यको अत्यंत सेवन करता है तथा सदाही खटाई उष्ण और तीक्ष्ण भोजन करे तथा स्वभावका क्रोधी हो, अग्नि और धूपका अत्यन्त सेवन करनेवाला हो उसके पित्तकी विशेषतासे मदात्ययरोग उत्पन्न होता है। यदि वह वातप्रधान मनुष्यको होजाय तो शीघ्र शान्त होजाता है अथवा उस मनुष्यको मार डालता है। पित्तप्रधान मदात्ययके यह लक्षण होते हैं। जैसे- प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मूर्च्छा, अतिसार, अत्यन्त भ्रम और हरावर्ण होना यह पित्तप्रधान मदात्ययके लक्षण होते हैं ॥ ९०-९२ ॥

कफप्रधान मदात्यय।

तरुणं मधुरप्रायं गौडं पैष्टिकमेव वा।
मधुरस्निग्धगुर्वाशी यः पिबत्यतिमात्रया ॥ ९३ ॥
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतः।
मदात्ययं कफप्रायं स शीघ्रमधिगच्छति ॥ ९४ ॥
छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ ९५ ॥

जो मनुष्य नवीन और मधुरप्राय गौडी मद्य तथा पैष्टिक मद्यको अधिक पीता है और मधुर, स्निग्ध तथा भारी पदार्थोंका सेवन करता है और व्यायाम नहीं करता, दिनमें अधिक सोता है, शय्या, आसन आदिके सुखमें मस्त रहता है उस मनुष्यको कफप्रधान मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे- छर्दि, अरुचि, हृल्लास, तन्द्रा, स्तैमित्य, भारीपन और शीतलता यह कफप्रधान मदात्ययके लक्षण हैं ॥ ९३-९५ ॥

विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः ।
त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः ॥ ९६ ॥
हन्त्याशु हि विषं किञ्चित्किञ्चिद्रोगाय कल्पते ।
यथा विषं तथैवान्त्यो ज्ञेयो मद्यकृतो गदः ॥ ९७ ॥
तस्मात्त्रिदोषजं लिङ्गं सर्वत्रापि मदात्यये ।
दृश्यते रूपवैशेष्यात्पृथक्त्वञ्चास्य लक्ष्यते ॥ ९८ ॥

तीनों दोषोंके कुपित करनेवाले जितने दोष विषके हैं मद्यमें भी वह सब दिखाई देते हैं । जैसे—विषके बलवान् दोष शीघ्र मनुष्यको मारडालते हैं और थोडे विषके दोष रोगोंको उत्पन्न करनेवाले होते हैं वैसे ही विषके समान अत्यन्त मद्यके पीनेसे अन्त्यमद जानना । इसलिये मदात्ययरोगमें सर्वत्र ही त्रिदोषके चिह्न दिखाई देते हैं । केवल दोषोंके लक्षणोंकी विशेषताके भेदसे वातादिभेद दिखाई पडते हैं ॥९६–९८॥

मदात्ययके लक्षण ।

शरीरदुःखबलवत्सम्मोहो हृदयव्यथा ।
अरुचिः प्रतता तृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः ॥ ९९ ॥
शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनां विद्युत्तुल्या च वेदना ।
जायतेऽतिबला जृम्भा स्फुरणं वेपनं श्रमः ॥ १०० ॥
उरोविबन्धः कासश्च हिक्का श्वासः प्रजागरः ।
शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुखरोगस्त्रिकग्रहः ॥ १०१ ॥
छर्द्यतीसारमुत्क्लेशो वातपित्तकफात्मकः ।
भ्रमः प्रलापो रूपाणामसताञ्चैव दर्शनम् ॥ १०२ ॥
तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरणम् ।
प्रधर्षणं विहङ्गैश्च भ्रान्तचेताः स मन्यते ॥ १०३ ॥
व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानां दर्शनानि च ।
मदात्ययस्वरूपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत् ॥ १०४ ॥

अत्यंत शारीरिक कष्ट, बेहोशी, हृदयमें व्यथा, अरुचि, प्यासकी अधिकता, शीत अथवा उष्ण लक्षणोंवाला ज्वर, शिरमें पीडा, पार्श्वशूल, हड्डी और जोडोंमें बिजली चमकनेकीसी पीडा, वेगपूर्वक जंभाई, अंगोंका फडकना, शरीरका कांपना, थकावट,

छातीका रुकाहुआसा होना, खांसी, हिचकी, श्वास, निद्रानाश, शरीरका कांपना, कान नेत्र और मुखके रोग, त्रिकस्थानमें पीडा, छर्दि, अतिसार, वात, पित्त और कफका उत्क्लेश, भ्रम, प्रलाप, अविद्यमान भयंकर रूपोंका दिखाई देना, सब आकाश तृण, भस्म, लता, पत्र, धूल आदिसे भरा दिखाई देना। अपने आपको विहंगमों (पक्षियों) से पीडित होते हुए प्रतीत होना, चित्तमें भ्रम होकर ऐसे २ असत्य लक्षणोंका दिखाई देना, भयकारक दुःस्वप्नोंका देखना। यह सब (त्रिदोषोल्वण) मदात्यय रोगके रूप जानने ॥ ९९-१०४ ॥

मदात्ययकी चिकित्साक्रम।

सर्वं मदात्ययं विद्यात्त्रिदोषमधिकन्तु यत् ।
दोषं मदात्यये पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत् ॥ १०५ ॥
कफस्थानानुपूर्व्या च क्रिया कार्य्या मदात्यये ।
पित्तमारुतपर्य्यन्तः प्रायेण हि मदात्ययः ॥ १०६ ॥

संपूर्ण मदात्यय त्रिदोपज ही होते हैं परन्तु उनमें जिस दोषकी अधिकता देखे पहिले उसके शान्त करनेका उपाय करना चाहिये। मदात्यय रोगमें कफस्थान (आमाशय) पित्तस्थान (ग्रहणी) वातस्थान (मलाशय) यह आनुपूर्विक क्रमसे एकके अनन्तर दूसरा दूसरेके अनन्तर तीसरा मदात्ययरोगसे आक्रमित होता है। इसलिये यदि किसी दोषकी विशेषरूपसे प्रधानता न हो त्रिदोषज मदात्ययमें पहिले कफ, फिर पित्त, फिर वायुकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मिथ्यातिहीनपीतेन यो व्याधिरुपजायते ।
समपीतेन तेनैव स मद्येनोपशाम्यति ॥ १०७ ॥
जीर्णाममद्यदोषाय मद्यमेव प्रदापयेत् ।
प्रकांक्षालाघवे जाते यद्यदस्मै हितं भवेत् ॥ १०८ ॥
सौवर्चलानुसंविद्धं शीतं सविडसैन्धवम् ।
मातुलुङ्गार्द्रकोपेतं जलयुक्तं प्रमाणवित् ॥ १०९ ॥

मद्य मिथ्यायोगसे अथवा अधिक या हीन मात्रासे पीयेजानेपर जो विकार पैदा होते हैं उन रोगोंकी शान्ति मद्यकी सममात्रा पीनेसे होसकती है मदात्यय रोगमें मद्यजनित आमदोष जीर्ण होनेपर जब हलकापन प्रतीत होने लगे तो उसको हितमात्रासे हितकारी मद्य, काला निमक, विडलवण, सेंधानमक, बिजौरेका रस, अदरखका रस, जल तथा शीतवीर्य द्रव्य मिलाकर हितकारी मात्रासे प्रमाणको जाननेवाला वैद्य मद्यपान करावे तदनन्तर अन्य उचित चिकित्सा भी करे ॥१०७-१०९॥

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेण पीतेनाम्लविदाहिना।
मद्येनान्नरसक्लेदो विदग्धः क्षारतां गतः ॥ ११० ॥
अन्तर्दाहं ज्वरं तृष्णां प्रमोहं विभ्रमं मदम्।
जनयत्याशु तच्छान्त्यै मद्यमेव प्रदापयेत् ॥ १११ ॥
क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसंस्कृतः।
श्रेष्ठमम्लेषु मद्यञ्च यैर्गुणैस्तान् परं शृणु ॥ ११२ ॥

तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और विदाही मद्योंकी अधिक मात्रा पीनेसे अन्नका खट्टा रस बनाकर उसका उत्क्लेद हो विदग्ध होजाता है। उसमें क्षारता प्राप्त होजाती है। उससे अन्तर्दाह, ज्वर, प्यास, मोह (बेहोशी), विभ्रम, मद यह लक्षण शीघ्र प्रगट होजाते हैं। इसलिये इनके शान्त करनेको उचित रीतिसे मद्यका पान करना ही श्रेष्ठ है। क्योंकि अम्लरस (खटाई) के मिलनेसे क्षार रस फिर मधुरताको प्राप्त होजाता है। जिन गुणोंसे सब अम्लरसोंमें मद्यको श्रेष्ठता है उन गुणोंको श्रवण करो ॥ ११०–११२ ॥

मद्यके अनुरस और मद्यको अम्लरसोंमें श्रेष्ठत्व।

मद्यस्याम्लस्वभावस्य चत्वारोऽनुरसाः स्मृताः।
मधुरश्च कषायश्च तिक्तः कटुक एव च ॥ ११३ ॥
गुणाश्च दश पूर्वोक्तास्तैश्चतुर्दशभिर्गुणैः।
सर्वेषां मद्यमम्लानामुपर्य्युपरि तिष्ठति ॥ ११४ ॥

अम्लस्वभाव मद्यके अनुयायी मधुर, कषाय, तिक्त और कटु यह चार अनुरस होते हैं। और दश गुण मद्यके पहिले कह आये हैं। उनमें यह चार मिलानेसे गुणयुक्त मद्य होता है। इसलिये सब अम्लरसोंमें यह परमोत्तम माना है११३॥११४

मद्योत्क्लिष्टेन दोषेण रुद्धः स्रोतःसु मारुतः।
करोति वेदनां तीव्रां शिरस्यस्थिषु सन्धिषु ॥ ११५ ॥
दोषविष्यंदनार्थं हि तस्मै मद्यं विशेषतः।
व्यवायितीक्ष्णोष्णतया देयमम्लेषु सत्स्वपि ॥ ११६ ॥
स्रोतोविबन्धमुन्मथ्य मारुतस्यानुलोमनम्।
रोचनं दीपनञ्चाग्नेरभ्यासात्सात्म्यमेव च ॥ ११७ ॥

रसस्रोतःस्वरुद्धेषु मारुते चानुलोमिते ।
निवर्त्तन्ते विकाराश्च शाम्यन्त्यस्य मदोदयाः ॥ ११८ ॥

मद्यसे उत्क्लेशित हुए दोषों द्वारा स्रोतसमूहोंके रुकजानेपर वायु रुकाहुआ शिर, हड्डियों और संधियोंमें तीव्र पीडाको उत्पन्न करदेता है । दोषोंको अभिष्यंदन करनेके लिये विशेषकर मद्य पिलाना ही हितकारक होता है । क्योंकि मद्य व्यवायी तीक्ष्ण और उष्ण होनेसे अम्ल होते हुए भी स्रोतोंके विबन्ध (रुकावट) उन्मथितकर वायुको अनुलोमन करदेता है तथा रोचन और अग्निको दीपन करनेवाला एवं मद्यपान करनेवालोंको सात्म्य होता है । जब रसवाही स्रोतोंके मार्ग खुलजाते हैं और वायु अनुलोमन हो जाता है तब सब विकार निवृत्त होजाते हैं और मदात्यय (उन्मत्तता) रोग भी शान्त होजाता है । (इसलिये मद्यविकारकी शान्तिके लिये प्रथम मद्यद्वारा ही शान्तिका उपाय करना श्रेष्ठ है) ॥ ११९-११८ ॥

वातमदात्यय नाशक यत्न ।

बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् ।
यमानी हपुषाजाजी शृंगवेरावचूर्णितम् ॥ ११९ ॥
सस्नेहैः सक्तुभिर्युक्तमर्द्धदंशैश्चिरोत्थितम् ।
दद्यात्क्षलवणं मद्यं पैष्टिकं वातशान्तये ॥ १२० ॥

बिजौरेका रस, इमली, वेत, अनारका रस, अजवायन, हाउबेर, काला जीरा और अदरख इन सबका रस और चूर्ण मिलाकर प्रयोग करे । अथवा स्नेहयुक्त सत्तुओंमें मिलाकर खिलावे और नमकयुक्त पुराना पैष्टिक मद्य पिलावे तो मदात्ययमें वात शान्त होता है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

दृष्ट्वा वातोल्बणं लिङ्गं रसैश्चैनमुपाचरेत् ।
लावतित्तिरदक्षाणां स्निग्धाम्लैः शिखिनामपि ॥ १२१ ॥
पक्षिणां मृगमत्स्यानामानूपानाञ्च संस्कृतैः ।
भूशयप्रसहानाञ्च रसैः शाल्योदनेन च ॥ १२२ ॥
स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्च वेशवारैर्मुखप्रियैः ।
चित्रैर्गोधूमिकैश्चान्नैर्वारुणीमण्डसंयुतैः ॥ १२३ ॥
पिशिताद्रर्कगर्भाभिः स्निग्धाभिर्धूपवर्त्तिभिः ।
माषपूपलिकाभिश्च वातिकं समुपाचरेत् ॥ १२४ ॥

नातिस्निग्धं न चाम्लेन युक्तं समरिचार्द्रकम् ।
मध्ये प्रागुदितं मांसं दाडिमस्वरसेन वा ॥ १२५ ॥
पृथक् त्रिजातकोपेतसधान्यमरिचार्द्रकम् ।
रसप्रलेपिसंपूपैः सुखोष्णैः सम्प्रदापयेत् ॥ १२६ ॥

जिस मदात्ययमें वायुके बढेहुए लक्षण प्रतीत होतेहों उस रोगीकी मांसरसके प्रयोग द्वारा चिकित्सा करे और लवा, तीतर, मुर्गा, मोर इनका मांसरस स्निग्ध करके अथवा अन्य पक्षी वा अनूपसंचारी, अथवा भूशय, प्रसह मृगादिक जीवोंका मांस-रस वा मछलियोंका मांसरस शालीचावलोंके भातके साथ देवे तथा-स्निग्ध, उष्ण, लवण, अम्ल, और अनेक सुस्वाद्ु मसालेयुक्त भोजन, वारुणीमण्ड, अनेक विधिसे बनेहुए गेहूंके भोजन, मांस और अदरखकी पिट्ठी भरी हुई स्निग्ध धूमवर्ती उडदोंकी पूडियें यह सब वातप्रधान मदात्ययमें हितकारक हैं। पूर्वोक्त सब द्रव्योंको किंचित स्निग्ध और किंचित् अम्लरसयुक्त करके कालीमिर्च और अदरख मिलाकर अथवा अनार (दाडिम) मिलाकर सेवन करावे अथवा तेजपत्र, इलायची, दालचीनी, धनियां, मिर्च और अदरख यह अलग मिलाकर प्रलेपी, पूडी आदिबनाकर सुखोष्ण मांसर-सके साथ देवे ॥ १२१-१२६ ॥

भक्तेन वारुणीमण्डं दद्यात्पातुं पिपासवे ।
दाडिमस्य रसं वाथ जलं वा पाञ्चमूलिकम् ॥ १२७ ॥
धान्यनागरतोयञ्च दधिमण्डमथापि वा ।
अम्लकाञ्जिकमण्डं वा शुक्तोदकमथापि वा ॥ १२८ ॥
कर्मणानेन सिद्धेन विकार उपशाम्यति ।
मात्राकालप्रयुक्तेन बलं वर्णश्च वर्धते ॥ १२९ ॥

मदात्ययमें प्यासकी अधिकताहो तो शालिचावलोंके भातके साथ वारुणी मण्ड पिलावे अथवा अनारका रस या पंचमूलसे सिद्ध किया हुआ जल पिलावे । अथवा धनियां और सोंठसे सिद्ध किया जल या दधिमंड अथवा खट्टी कांजीका पानी, या शुक्तोदक (सिरका मिला जल) पिलावे। इस विधिसे मात्रा काल विचार कर उप-रोक्त कर्म (औषधादि) के प्रयोग करनेसे मद्यके विकार शांत होकर बल वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १२७-१२९ ॥

रागषाडवसंयोगैर्विविधैर्भक्तरोचनैः ।
पिशितैर्बहुपिष्टान्नैर्यवगोधूमशालिभिः ॥ १३० ॥

अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैरुष्णैः प्रावरणैर्घनैः ।
घनैरगुरुपङ्कैश्च धूपैश्चागरुजैर्घनैः ॥ १३१ ॥
नारीणां यौवनोष्णानां निर्दयैरवगूहनैः ।
श्रोण्यूरुकुचभारैश्च संरोधोष्णसुखावहैः ॥ १३२ ॥
शयनाच्छादनैरुष्णै रूक्षैश्चान्तर्गृहैः सुखैः ।
मारुतप्रबलः शीघ्रं प्रशाम्यति मदात्ययः ॥ १३३ ॥

वातप्रधान मदात्ययमें विविध प्रकारके रुचिकारक भोजन रागखाण्डवके योगसे अथवा मांस, अनेक प्रकारके पिष्टान्न, यव, गेंहू, शाली आदिसे बने विविध भोजन तथा अभ्यंग, उत्सादन, स्नान, ओढनेके लिये गर्म और भारी वस्त्र, अगरका गाढा लेप, अगरका घनीभूत धूपन, जवानीकी गर्मीसे युक्त युवतीस्त्रियों द्वारा गाढ आलिंगन तथा उन युवती स्त्रियोंके नितम्ब, ऊरुस्थल (जांघों) और कुचोंके भारसे रुकीहुई गर्मी, सुखदायक गरम शय्या और गरम वस्त्र, सुखदाई क्लेद आदि रहित पवित्र सूखा अन्तर्गृह इनका सेवन वातप्रबल मदात्ययको शान्त करताहै॥१३०—३३

पित्तप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा।

भव्यं खर्जूरमृद्वीकापरूषकरसैर्युतम्।
सदाडिमरसं शीतं सक्तुभिः स्ववचूर्णितम् ॥ १३४ ॥
सशर्करं शार्करं वा माध्वीकमथवा परम् ।
दद्याद्बहूदकं काले पातुं पित्तमदात्यये ॥ १३५ ॥

भव्यफल, खजूर, द्राक्षा, फालसेका रस, और अनारका रस मिलाकर सत्तू खाना अथवा मिसरीयुक्त मद्य वा शर्करामद्य अथवा बहुतसा जल मिला अन्य किसी प्रकारके मद्यमें बहुतसा जल मिला पीना पित्तप्रधान मदात्ययको शान्त करता है३४॥३५

शशान् कपिञ्जलानेणाँल्लावानसितपुच्छकान् ।
मधुराम्लान् प्रयुञ्जीत भोजने शालिषष्टिकान् ॥ १३६ ॥
पटोलयूषमिश्रं वा च्छागलं कल्पयेद्रसम् ।
सतीनमुद्गमिश्रं वा दाडिमामलकान्वितम् ॥ १३७ ॥

खरगोश, कपिंजल, एण, लवा, कालपुच्छ हारिण, इनका मांसरस मधुराम्ल करके उसके साथ शालिचावलोंका भात भोजनके लिये देवे अथवा पटोलका यूष वा बकरेका मांसरस अथवा मटर या मूंगका यूष अनारका रस और आँवलोंकी खटाईसे अम्लकर उसके साथ शालिचावलोंका भात भोजन करावे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन वा ।
कल्पयेत्तर्पणान् यूषात् रसांश्च विविधात्मकान् ॥ १३८ ॥

द्राक्षा (अंगूर), आँवले, खजूर और फालसेके रससे अनेक प्रकारके तर्पण (शरबत आदि) यूष अथवा मांसरस सेवन करावे। यह पित्तप्रधान मदात्ययमें हितकारी होते हैं ॥ १३८ ॥

कफपित्तप्रबलमदात्ययचिकित्सा।

आमाशयस्थमुत्क्लिष्टकफपित्तमदात्यये ।
विज्ञाय बहुदोषस्य दह्यमानस्य तुष्यते ॥ १३९ ॥
मद्यं द्राक्षारसं तोयं दत्त्वा तर्पणमेव वा ।
निःशेषं वामयेच्छीघ्रमेवं रोगाद्विमुच्यते ॥ १४० ॥

यदि बहुदोषयुक्त कफपित्त मदात्ययवाले रोगीके आमाशयमें स्थित आमदोष उत्क्लेशित होकर वमन होनेके लिये प्रतीत होनेलगे और रोगीको उस आमाशयस्थ दोषजनित दाह और प्यासकी अधिकता हो तो उस रोगीको दाखका रस और जल मिलाकर मद्य अथवा अन्य तर्पण आदि मिलाकर शीघ्र वमनद्वारा संपूर्ण दोष निकाल-डाले। ऐसा करनेसे मनुष्य शीघ्र रोगसे छूट जाता है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

काले पुनस्तर्पणाढ्यं क्रमं कुर्यात्प्रकांक्षिते ।
तेनाग्निर्दीप्यते तस्य दोषशेषान्नपाचनः ॥ १४१ ॥

इसके अनन्तर रोगीको क्षुधाकी इच्छा होनेपर समयानुसार तर्पण आदि पिला अनारके रसयुक्त उचित पेयाका पान करावे जिससे उसकी अग्नि चैतन्य हो दोषकी शान्ति होवे और अन्नका यथोचित परिपाक होनेलगे ॥ १४१ ॥

मदात्ययोंकी विशेष चिकित्सा।

कासे सरक्तनिष्ठीवे पार्श्वस्तनरुजोस्तथा ।
तृष्यते सविदाहे च सोत्क्लेशे हृदयोरसि ॥ १४२ ॥
गुडूचीभद्रमुस्तानां पटोलस्याथवा भिषक् ।
रसं सनागरं दद्यात्तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४३ ॥

यदि खांसीके साथ रुधिर निकलताहो और पार्श्वभाग तथा स्तनस्थानमें पीडा होतीहो और प्यास, विदाह, हृदय तथा छातीमें उत्क्लेश होताहो तो गिलोय और भद्रमोथेका क्वाथ अथवा पटोलका क्वाथ ठंढा करके सोंठका चूर्ण मिलाकर देवे। और क्षुधा लगनेपर तीतरका मांसरस अथवा इस मांसरसके साथ भोजन करावे १४२॥ १४३

तृष्यते चातिबलवद्वातपित्तसमुद्भूते ।
दद्याद्द्राक्षारसं पातुं शीतं दोषानुलोमनम् ॥ १४४ ॥

मदात्ययमें वातपित्तजनित अत्यंत प्यास हो तो द्राक्षारस (दाखका क्वाथ) ठंढा कर पिलावे तो दोषोंका अनुलोमन होता है ॥ १४४ ॥

जीर्णे समधुराम्लेन च्छागमांसरसेन तम् ।
भोजनं भोजयेन्मद्यस्यानुतर्षञ्च पाययेत् ॥ १४५ ॥
अनुतर्षस्य मात्रा सा यया नो हन्यते मनः ।
तृष्यते मद्यमल्पाल्पं प्रदेयं स्याद्बहूदकम् ॥ १४६ ॥
तृष्णा येन च संशाम्येन्मदं येन च नाप्नुयात् ।
परूषकाणां पीलूनां रसं शीतमथापि वा ॥ १४७ ॥

भूख लगनेपर मधुराम्ल मांसरसके साथ भोजन और अनारका रस तथा जल मिला मद्य पिलावे । और वह मद्य (जो भोजनके अनन्तर अनुपान कियाजाय) ऐसा मात्रासे देना चाहिये जिससे वह मनमें किसी प्रकार मद्यका विकार उत्पन्न न करे । और प्यासके समय भी थोड़ा २ मद्य बहुतसा जल मिलाकर पीनेको देवे । जिससे प्यासकी शान्ति हो और मदको प्राप्त न हो । अथवा फालसेका शरबत अथवा पीलु फलोंके रसका बना शर्बत पिलावे ॥ १४५–१४७ ॥

पर्णिनीनां चतसृणां पिबेद्वा शिशिरं जलम् ।
मुस्तदाडिमलाजानां तृष्णाघ्नं वा पिबेद्रसम् ॥ १४८ ॥
कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः ।
पञ्चाम्लको मुखालेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ॥ १४९ ॥

अथवा चारों पर्णियोंसे सिद्ध किया शीतल जल अथवा मोथा, दाडिम और धानकी खीलोंसे सिद्ध किया शीतल जल प्यासकी शान्तिके लिये देवे । अथवा बेर, अनार, इमली और चूकेका रस इस पंचाम्लको मुखमें लेप करना (या मुखमें भर-कर कुल्ले करना) शीघ्र प्यासको शान्त करता है ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

पित्तमदात्ययमें सेवनीय वस्तु ।

शीतलान्यन्नपानानि शीतशय्यासनानि च ।
शीतवातजलस्पर्शः शीतान्युपवनानि च ॥ १५० ॥

क्षौमपद्मोत्पलानाञ्च मणीनां मौक्तिकस्य च।
चन्दनोदकशीतानां स्पर्शाश्चन्द्रांशुशीतलाः॥ १५१॥
हेमराजतकांस्यानां पात्राणां शीतवारिभिः।
पूर्णानां हिमपूर्णानां दृतीनां पवनाहताः॥ १५२॥
संस्पर्शाश्चन्दनार्द्राणां नारीणाञ्च समारुताः।
चन्दनानाञ्च मुख्यानां शस्ताः पित्तमदात्यये॥ १५३॥

शीतल अन्नपान, शीतल शय्या, आसन, शीतल पवन, शीतल जलका स्पर्श, शीतल बगीचे, शीतल रेशमी वस्त्र, शीतल जलमें भिगोयेहुए कमलोंके फूल, मणि, मुक्ता, चन्दनका जल, चन्द्रमाकी किरणोंका शीतल स्पर्श, शीतल जल भरेहुए सुवर्ण चांदी अथवा कांसेके पात्रोंका स्पर्श, बर्फसे भरी थैलीका शीतल स्पर्श, शीतल पवनसे ताडित शीतल जलयुक्त वायुकी फुंआरेका स्पर्श, पवित्र वायुयुक्त स्थानमें चंदनसे चर्चित अंगोंवाली स्त्रियोंका स्पर्श और चन्दनका लेपन यह सब पित्त मदात्ययमें हितकारक होते हैं॥ १५०-१५३॥

मदात्ययका दाहनाशकयत्न।

कुमुदोत्पलपत्राणां सिक्तानां चन्दनाम्बुना।
हिताः स्पर्शा मनोज्ञानां दाहे मद्यसमुत्थिते॥ १५४॥

कुमुद और कमलोंके फूलोंको चंदन और शीतल जलमें भिगो स्पर्श करना अथवा इनके मनोहर पत्रोंको चंदन और शीतल जलमें भिगो स्पर्श करना मदात्ययकी दाहको शान्त करता है॥ १५४॥

कथाश्च विविधाः शस्ताः शब्दाश्च शिखिनां शिवाः।
तोयदानाञ्च शब्दा हि शमयन्ति मदात्ययम्॥ १५५॥
जलयन्त्राभिवर्षीणि वातयन्त्रवहानि च।
कल्पनीयानि भिषजा दाहे धारागृहाणि च॥ १५६॥

अनेक प्रकारकी मनको हरण करनेवाली कथायें, मयूरोंके श्रेष्ठ शब्द, बादलोंका गरजना फव्वारोंके जलकी फुंवार तथा पवनकारक यंत्रों युक्त धारागृहमें निवास यह सब मदात्ययरोगकें दाहको शान्त करनेवाले हैं॥ १५५॥ १५६॥

फलिनी सेव्यलोध्राम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम्।
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम्॥ १५७॥

प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रवाला, हेमपत्र, केवटीमोथा, अगर इन सबको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे मदात्ययका दाह शान्त होता है ॥ १५७ ॥

बदरीपल्लवोत्थाश्च तथैवारिष्टकोद्भवाः ।
फेनिलायाश्च यः फेनस्तैर्दाहे लेपनं शुभम् ॥ १५८ ॥

बेरीके पत्रोंकी झाग अथवा नीमके पत्तोंकी झाग अथवा रीठोंकी झाग (फेन)का देहपर लेप करना भी दाहको शान्त करता है ॥ १५८ ॥

सुरा समण्डा दध्यम्लं मातुलुङ्गरसो मधु ।
सेकप्रदेहे शस्यन्ते दाहघ्नाः साम्लकाञ्जिकाः ॥ १५९ ॥

सुरामण्ड, दहीका खट्टा पानी, बिजौरेका रस, शहद और खट्टी कांजी इनका देहपर सेचन करना अथवा लेपन करना दाहको शान्त करता है ॥ १५९ ॥

परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने ।
शस्यते शिशिरं तोयं दाहतृष्णाप्रशान्तये ॥ १६० ॥

शीतल जलके तरडे देना, शीतल जलमें प्रवेश कर स्नान करना, शीतल जलसे भिगेहुए पंखेकी पवन और शीतल जलका पीना यह सब मदात्ययके दाह और तृषाको शान्त करते हैं ॥ १६० ॥

मात्रा कालप्रयुक्तेन कर्मणाऽनेन शाम्यते।
धीमतो वैद्यवश्यस्य शीघ्रं पित्तमदात्ययम् ॥ १६१ ॥

मात्रा और कालके अनुसार इन उपरोक्त सब कर्मोंके करनेसे वैद्यके वशमें रहनेवाले रोगीका पित्तमदात्यय शान्त होता है ॥ १६१ ॥

कफप्रधानमदात्ययकी चिकित्सा।

उल्लेखनोपवासाभ्यां जयेत्कफमदात्ययम् ।
तृष्यते सलिलश्चास्मै दद्याद्ध्रीबेरसाधितम् ॥ १६२ ॥
बलायाः पृश्निपर्ण्या वा कण्टकार्य्याथवा शृतम् ।
सनागराभिः सर्वाभिर्जलं वा शृतशीतलम् ॥ १६३ ॥
दुःस्पर्शितेन मुस्तेन मुस्तपर्पटकेन वा ।
जलं मुस्तैः शृतं वापि दद्याद्दोषविपाचनम् ॥ १६४ ॥

कफप्रधान मदात्ययको उल्लेखन (वमन) और उपवास (लंघन) द्वारा जीतना चाहिये । कफप्रधान मदात्ययमें प्यासकी शान्तिके लिये नेत्रवालासे सिद्ध किया जल

पिलावे अथवा बला, पृश्निपर्णी और कटेलीसे सिद्धकिया हुआ जल या इन्हींमें सोंठ मिला इन औषधियोंसे सिद्ध किया जल शीतलकर पिलावे । अथवा जवासा और नागरमोथा या नागरमोथा और पित्तपापडासे सिद्ध किया जल अथवा केवल मोथा डालकर सिद्ध किया जल प्यासकी शान्तिके लिये और दोष पाचन करनेके लिये देना चाहिये ॥ १६२–१६४ ॥

एतदेव च पानीयं सर्वत्रापि मदात्यये ।
निरत्ययं पीयमानं पिपासाज्वरनाशनम् ॥ १६५ ॥

यह उपरोक्त जल सब प्रकारके मदात्ययोंमें ही हितकारक होते हैं। इस पानीके पीनेसे किसी प्रकारका विकार न होकर प्यास और ज्वरकी शांति होती है ॥१६५॥

निरामं कांक्षितं काले सक्षौद्रं पाययेत्तु तम् ।
शार्करं मधु वा जीर्णमरिष्टं शीधुमेव वा ॥ १६६ ॥
रूक्षतर्पणसंयुक्तं यमानीनागरान्वितम् ।
यवगोधूमिकं चान्नं रूक्षयूषेण भोजयेत् ॥ १६७ ॥
कुलत्थानां सुशुष्काणां मूलकानां रसेन वा ।
तनुनाल्पेन लघुना कट्वम्लेनाल्पसर्पिषा ॥ १६८ ॥

कफके मदात्ययमें आमदोष शान्त होनेपर जब भूखकी इच्छा हो उस समय रोगीको शहत मिलाकर शर्करामद्य अथवा पुराना शहद वा अरिष्ट अथवा शीधु पान करावे । कफमदात्ययमें अजमायन और सोंठ डालकर रूक्ष तर्पण करना चाहिये । तथा घृतरहित यूषके साथ यव और गेहूँका अन्न भोजन करावे । अथवा कुल्थीका यूष वा अत्यन्त सूखी मूलियोंका यूष, पतला और थोडा हलका कटु अम्ल औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए अल्प घृतको मिलाकर देवे ॥ १६६–१६८ ॥

व्योषयूषमथाम्लं वा यूषं वा साम्लवेतसम् ।
छागमांसरसं रूक्षमम्लं वा जाङ्गलं रसम् ॥ १६९ ॥
स्थाल्यां वाथ कपाले वा भृष्टं निर्द्रववार्त्तितम् ।
कट्वम्ललवणं मांसं भक्षयन् वृणुयान्मधु ॥ १७० ॥
व्यक्तमारीचकं मांसं मातुलुङ्गरसान्वितम् ।
भृष्टं दाडिमसाराम्लमुष्णयूषोपवेष्टितम् ॥ १७१ ॥

यथाग्नि भक्षयेत्काले प्रभूतार्द्रकपेशितम् ।
पिबेच्च निगदं मद्यं कफप्राये मदात्यये ॥ १७२ ॥

अथवा पीपल, मिर्च, सोंठ मिलाकर अम्लयूष वा अम्लवेतयुक्त यूष अथवा छागका रूक्ष मांसरस या जांगलजीवोंका रूक्ष मांसरस देवे। अथवा थालीमें या मिट्टीके पात्रमें त्रिकुट, छाछ और नमक डालकर धीरे २ भुनाहुआ रसरहित मांसका प्रयोग करे । इसके अनन्तर माध्वीक (शहतसे बना मद्य) पान करे । अथवा भूख लगनेपर मिर्चके चरचराहटयुक्त बिजौरेके रससे खट्टा किया हुआ अनारदाना मिला भूनकर उष्ण अम्लयूषके साथ अग्निबल विचारकर समयानुसार भक्षण करे । और इसमें बहुतसा अदरख मिलाकर सिद्ध करना चाहिये ।इसके ऊपर शहतसे बना मद्यका पान करे तो कफप्रधान मदात्यय शांत होता है ॥ १६९–१७२ ॥

अष्टांगलवण ।

सौवर्चलमजाजी च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम् ।
त्वगेलामरिचार्द्धांशं शर्कराभागयोजितम् ॥ १७३ ॥
एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनं परम् ।
मदात्यये कफप्राये दद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥ १७४ ॥
एतदेव पुनर्युक्त्या मधुराम्लैर्द्रवीकृतम् ।
गोधूमान्नयवान्नानां मांसानाञ्चातिरोचनम् ॥ १७५ ॥

संचरनमक, कालाजीरा, इमली, अम्लवेत यह सब सम भाग लेवे । दालचीनी, इलायची और मिर्च यह आधा भाग लेवे । खांड एक भाग लेवे इन सबका चूर्ण बना लेवे । यह अष्टांग लवणनामक चूर्ण अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला, स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला, कफप्रधानमदात्ययमें प्रयोग करना चाहिये । और यही अष्टांगलवण मधुर और अम्ल द्रव्योंके योगसे पतलाकर गेहूं और यवोंसे बनेहुए अनेक प्रकारके भोजनोंके साथ तथा मांसके साथ भोजनमें देनेसे अत्यन्त रुचिको देनेवाला है ॥ १७३–१७५ ॥

पेषयेत्कटुकैर्युक्तां श्वेतां बीजविवर्जिताम् ।
मृद्वीकां मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा ॥ १७६ ॥

अथवा मिर्च आदि चरपरे द्रव्योंको मिलाकर सफेद दूब, बीजरहित दाख अथवा बिजौरा वा अनारके रसके साथ पीसकर पीनेसे कफप्रधानमदात्यय नष्ट होता है ॥ १७६ ॥

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीभृङ्गदीप्यकैः ।
सरागः क्षौद्रसंयुक्तः श्रेष्ठो रोचनदीपनः ॥ १७७॥

संचरनमक, इलायची, मिर्च, जीरा, दालचीनी, अजवायन इनका चूर्ण रागखाण्डव और शहतमें मिला सेवन करे तो यह अत्यंत रुचिको करनेवाला तथा अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ १७७ ॥

मृद्वीकानां विधानेन कारयेत्कारवीमपि ।
युक्तमत्स्यण्डिकोपेतं रागं दीपनपाचनम् ॥ १७८ ॥

विधिपूर्वक द्राक्षा और सौंफके साथ मिसरी मिलाकर राग (राबके समान चटनी) बनाकर सेवन करे तो अग्निदीपन और पाचन होता है ॥ १७८ ॥

आम्रामलकपेशीनां रागान्कुर्य्यात्पृथक् पृथक् ।
धान्यसौवर्चलाजाजीकारवीमरिचान्वितान् ॥ १७९ ॥
गुडेन मधुयुक्तेन व्यक्ताम्ललवणीकृतान्
तैरन्नं रोचते दिग्धं सम्यग्भुक्तं विजीर्य्यति ॥ १८० ॥

आम और आँवलोंका गूदा अलग २ लेकर धनियां, संचरनमक, काला जीरा, सौंफ और मिर्च मिलाकर गुड और शहतके योगसे रागखाण्डव बनावे। इन व्यक्त (चरपरी) खटाई नमक सुक्त रागोंसे भोजन करे तो यह रुचिको उत्पन्न करते हैं तथा भलीप्रकार भोजनको पचा देते हैं ॥ १७९ ॥ १८० ॥

रूक्षोष्णेनान्नपानेन स्नानेनाशिशिरेण च ।
व्यायामलङ्घनाभ्याञ्च युक्ताभ्यां जागरेण तु ॥ १८१ ॥
कालयुक्तेन रूक्षेण स्नानेनोद्वर्त्तनेन च ।
स्नानवर्णकवासानां प्रहर्षाणाञ्च सेवया ॥ १८२ ॥
सेवनं वमनानाञ्च गुरूणामगुरोरपि ।
सकामोष्णसुखाङ्गीनामङ्गनानाञ्च सेवया ॥ १८३ ॥
सुखशिक्षितहस्तानां स्त्रीणां संवाहनेन च ।
मदात्ययः कफप्रायः शीघ्रमेवोपशाम्यति ॥ १८४ ॥

रूक्ष और उष्ण अन्नपान, गरम जलमें स्नान, व्यायाम, लंघन, निद्रा न लेना, स्नानके समय कालानुसार रूक्ष औषधियोंके क्राथसे स्नान, रूक्ष उबटना, रूक्ष औषधियोंका लेपन, रूक्ष वस्त्रोंका धारण करना, हर्षोत्पादक कर्म, वमन कराना, गाढे

अगरके लेपनसे चर्चित अंगोंवाली पुष्ट अंगोंयुक्त, सकामा युवावस्थाकी गर्मीयुक्त सुखस्पर्श अंगोंवाली स्त्रियोंका सेवन, सुशिक्षित हाथोंवाली स्त्रियोंके हाथोंसे संवाहन (शरीर दबवाना) इन कर्मोंके करनेसे कफप्रधानमदात्यय शीघ्र शान्त होजाता है ॥ १८१–१८४॥

सन्निपातज मदात्ययमें चिकित्सानिर्देश।

यदिदं कर्म निर्दिष्टं पृथग्दोषबलं प्रति।
सन्निपाते दशविधे तद्विकल्पं भिषग्विदा ॥ १८५ ॥
यस्तु दोषविकल्पज्ञो यश्चौषधिविकल्पवित्।
स साध्यान् साधयेद्व्याधीन् साध्यासाध्यविभागवित् ॥ १८६॥

यह जो वातादि दोषोंकी प्रधानतासे मदात्यय रोगमें अलग २ चिकित्साका निर्देश किया है दोषोंके पृथक् पृथक् विकल्पको जाननेवाला वैद्य दशविध कल्पनासे सन्निपात मदात्ययमें चिकित्सा प्रयोग करे। जो वैद्य दोष और विकल्पका जाननेवाला है तथा औषधीकी विधि कल्पना और व्याधिके विकल्प तथा उसकी साध्य असाध्यके विभागको जाननेवाला है वह ही साध्य मदात्ययोंको साधन (अच्छा) कर सकता है ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

मदात्ययनाशक योग।

वनानि रमणीयानि सपद्माः सलिलाशयाः।
विशदान्यन्नपानानि सहायाश्च प्रहर्षणाः ॥ १८७ ॥
माल्यानि गन्धयोगाश्च वासांसि विमलानि च।
गान्धर्वशब्दाः कान्ताश्च गोष्ठयश्च हृदयप्रियाः ॥ १८८ ॥
सङ्कथाहास्यगीतानां विशदाश्चैव योजनाः।
प्रियाश्चानुगता नार्यो नाशयन्ति मदात्ययम् ॥ १८९ ॥

रमणीय वन, कमलोंसे शोभायमान सरोवर, स्वच्छ अन्नपान, हर्षके उत्पन्न करनेवाले सहचारी, सुगंधित पुष्पमाला, निर्मल वस्त्र, उत्तम गानेवालोंका गाना, सुशीला स्त्री, हृदयको प्यारी लगनेवाली गोष्ठी, हास्य, कथा और गीतोंका श्रवण, स्पष्टवार्ताओंका कथन, प्यारी और अपने अनुकूल स्त्रियें यह सब मदात्ययरोगको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १८७–१८९ ॥

नाक्षोभ्यं हि मनो मद्यं शरीरमवहत्य च।
कुर्य्यान्मदात्ययं तस्मादेष्टव्या हर्षणी क्रिया ॥ १९० ॥

क्योंकि मनमें क्षोभको उत्पन्न किये विना और शरीरमें व्याप्तहुए विना मद्य मदात्यय रोगको नहीं करता अर्थात् मनको क्षुभित कर और शरीरमें व्याप्त होकर ही मदात्ययको उत्पन्न करता है इसलिये इस रोगमें चित्तको हर्षित करनेवाली क्रियाका प्रयोग करना चाहिये ॥ १९० ॥

क्षीरप्रयोग।

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शमं याति मदात्ययः।
न चेन्मद्यविधिं हित्वा क्षीरमस्य प्रयोजयेत् ॥ १९१ ॥

इन संपूर्ण सिद्ध क्रियाओंके करनेसे यदि मदात्यय रोगकी शान्ति न हो तो मद्यविधिको छोडकर दूधका प्रयोग करे अर्थात् इस रोगकी नीचे लिखे दूधों द्वारा चिकित्सा करे ॥ १९१ ॥

लंघनैः पाचनैश्चैव दोषसंशोधनैरपि।
विमद्यस्य कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे ॥ १९२ ॥
तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य वा।
ग्रीष्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ॥ १९३ ॥
पयसाभिहते रोगे बले जाते निवर्त्तयेत्।
क्षीरप्रयोगं मद्यञ्च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥ १९४ ॥
विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते।
ध्वंसको विक्षयश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥ १९५ ॥

पहिले लंघन, पाचन और संशोधन क्रियाओं द्वारा शरीरको शोधन कर तथा जब शरीरसे मद्यका अपगम होकर कफ क्षीण होजानेपर शरीरमें हलकापन और दुर्बलता उत्पन्न होजाय उस समय उस मद्यविदग्ध अथवा वातपित्तप्रबल मनुष्यको दूधका प्रयोग इस प्रकार गुणकारक होता है जैसे गर्मीसे मुर्झाये हुए वृक्षको वर्षाका जल हरा करदेता है। दूधद्वारा रोगकी निवृत्ति होकर जब रोगीके शरीरमें चैतन्यता प्राप्त हो बल आजाय तो क्रमपूर्वक दूधके प्रयोगको बन्दकर मद्यसात्म्य मनुष्योंको किंचित् २ मद्यका सेवन करावे। क्योंकि जिस मनुष्यका एक बार मद्य छूट चुका है यदि वह एकाएकी अधिक मद्यका पान करलेवे तो उसको ध्वंसक और विक्षय रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १९२-१९५ ॥

व्याध्युपक्षीणदेहस्य दुश्चिकित्स्यतमौ मतौ।
तयोर्लिङ्गं चिकित्साञ्च यथावदुपदेक्ष्यते ॥ १९६ ॥

जिस मनुष्यका व्याधिसे देह क्षीण हो उसके यह दोनों रोग दुश्चिकित्स्य होते हैं अब इन दोनों (ध्वंसक, विद्क्षय) के लक्षण और चिकित्साको कहते हैं ॥ १९६॥

ध्वंसकके लक्षण।

श्लेष्मप्रकोपः कण्ठस्य शोषः शब्दासहिष्णुता।
तन्द्रानिद्राभियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ १९७ ॥

कफका प्रयोग, कण्ठशोष, किसी भी शब्दका अच्छा न लगना, तंद्रा और निद्राकी अधिकता यह ध्वंसकरोगके लक्षण हैं ॥ १९७ ॥

विद्क्षयके लक्षण।

हृत्कण्ठरोगः सम्मोहश्छर्दिरङ्गरुजा ज्वरः।
तृष्णा कासः शिरःशूलमेतद्विद्क्षयलक्षणम् ॥ १९८ ॥

हृद्रोग, कण्ठरोग, बेहोशी, वमन, अंगोंमें पीडा, ज्वर, प्यास, खांसी, मस्तक-पीडा यह विद्क्षयके लक्षण हैं ॥ १९८ ॥

इन दोनोंकी चिकित्सा।

तयोः कर्म्म तदेवेष्टं वातिके यन्मदात्यये।
तौ हि प्रक्षीणदेहस्य जायेते दुर्बलस्य वा ॥ १९९ ॥
वस्तयः सर्पिषः पानं प्रयोगः क्षीरसर्पिषोः।
अभ्यङ्गोद्वर्त्तनस्नानान्यन्नपानञ्च वातनुत् ॥ २०० ॥
ध्वंसको विद्क्षयश्चैव कर्मणानेन शाम्यति।
युक्तमद्यस्य मद्योत्थो न व्याधिरुपजायते ॥ २०१ ॥

जो वातप्रधान मदात्ययमें चिकित्सा कह आये हैं वही चिकित्सा इन दोनों रोगोंमें भी हितकारी होती है क्योंकि यह दोनों दुर्बल और क्षीणदेह मनुष्यको होते हैं। इन ध्वंसक और विद्क्षय दोनों रोगोंमें वस्तिकर्म, घीका पीना, दूध और घृतमिला पीना, स्नेहाभ्यंग, उद्वर्त्तन, स्नान तथा अन्य वातनाशक अन्नपानोंका सेवन करना इन क्रियाओंसे ध्वंसक और विद्क्षय यह दोनों शांत होते हैं। जो मनुष्य युक्तिपूर्वक मद्यपान करता है उसको मद्यसे उत्पन्न होनेवाले रोग नहीं होसकते ॥ १९९-२०१ ॥

मद्य न पीनेके गुण।

निवृत्तः सर्वमद्येभ्यो नरो यः स्याज्जितेन्द्रियः।
शारीरमानसैर्धीमान् विकारैर्न स युज्यते ॥ २०२ ॥

जो मनुष्य सब प्रकार मद्योंसे निवृत्त है अर्थात् मद्यको ग्रहण नहीं करता वह बुद्धिमान् जितेन्द्रिय मनुष्य शारीरिक और मानसिक विकारोंसे ग्रस्त नहीं होता ॥ २०२ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र—यत्प्रभावा भगवती सुरा पेया यथा च सा।
यद्द्रव्या यस्य या चेष्टा योगश्चापेक्षते यथा ॥ २०३ ॥
यथायथा मदयते यैश्च युक्ता महागुणैः।
यो मदो मदभेदाश्च ये त्रयः स्वस्वलक्षणाः ॥ २०४ ॥
ये च मद्यकृता दोषा गुणा ये च मदात्मकाः।
यच्च त्रिविधमापानं यथा सत्त्वञ्च लक्षणम् ॥ २०५ ॥
ये सहायाः सुखा ये च चिरक्षिप्रमदा नराः।
मदात्ययस्य यो हेतुर्लक्षणं यद्यथा च यत् ॥ २०६ ॥
मद्यं मद्योत्थितान् रोगान् हन्ति यश्च क्रियाक्रमः।
सर्वं तदुक्तमखिलं मदात्ययचिकित्सिते ॥ २०७ ॥

इति चरक० चि० मदात्ययचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें महाभाग मद्यका प्रभाव और पीनेके प्रकार, मद्यके द्रव्य, जिनको मद्य पीना चाहिये मद्योंके भिन्न २ भेद युक्त गुण, मदके तीन भेद और लक्षण, मद्यके पीयेहुए दोष, मद्यकृत गुण, तीन प्रकारके मद्यालय, तीन प्रकारके सत्त्वोंका लक्षण, मद्यपानयोग्य सहचारी, मद्यपान करनेपर विलंबसे मद होना, शीघ्र उन्मत्त होजाना, मदात्ययके कारण और लक्षण, मदात्यय रोगकी निवृत्तिके लिये मद्यका प्रयोग, मदात्ययकी चिकित्साक्रम यह सब विधिवत् वर्णन किया है ॥ २०३–२०७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां मदात्ययचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम द्विव्रणीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे॥

परावरज्ञमात्रेयं गतमानमदव्यथम्।
अग्निवेशो गुरुं काले विनयादिदमुक्तवान्॥ १॥
भगवन्! पूर्वमुद्दिष्टौ द्वौ व्रणौ रोगसंग्रहे।
तयोर्लिङ्गं चिकित्साञ्च वक्तुमर्हसि शर्म्मद॥ २॥

भविष्यत्के जाननेवाले अभिमानरहित तथा विगत मद और संतापसे बैठेहुए गुरुके समीप यथासमय विनयपूर्वक अग्निवेश इस प्रकार पूछने लगे कि हे भगवन्! रोग-संग्रह (सूत्रस्थान) में निज और आगन्तुक इन दो व्रणोंको पहिले कहचुके हैं। हे कल्याणप्रद! उनके लक्षण और चिकित्साका यथावत् वर्णन कीजिये॥ १॥२॥

इत्यग्निवेशस्य वचो निशम्य गुरुरब्रवीत्।
यौ व्रणौ पूर्वमुद्दिष्टौ निजश्चागन्तुरेव च।
श्रूयतां विधिवत्सौम्य तयोर्लिङ्गञ्च भेषजम्॥ ३॥

इस प्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहने लगे कि, हे सौम्य! पहिले जो निज और आगन्तुक भेदसे दो प्रकारके व्रणोंको कह आये हैं उनके लक्षण और औषधियों विधिवत सुनो॥ ३॥

द्विविध व्रण।

निजः शरीरदोषोत्थ आगन्तुर्बाह्यहेतुजः॥ ४॥

शारीरिक दोषसे हुए व्रण (घाव) को निजव्रण कहते हैं। और बाहरी हेतुओंसे उत्पन्न हुए व्रणको आगन्तु व्रण कहते हैं॥ ४॥

आगंतु व्रणोंके हेतु।

वधबन्धप्रपतनाद्दंष्ट्रादन्तनखक्षतात्।
आगन्तवो व्रणास्तद्वद्विषस्पर्शाग्निशस्त्रजाः॥ ५॥

मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्च ते।

लिङ्गैकदेशैर्निर्दिष्टा विपरीता निजैर्व्रणाः ॥ ६ ॥

उनमें चोट आदि आघात, बंधन, पतन, दंत (दाढ) का लगना, नखका लगना अथवा अन्य किसी प्रकार कटजाना, विषका स्पर्श होना, अग्निका स्पर्श होना वा किसी प्रकारके शस्त्रका लगना इनसे जो घाव होता है अथवा मंत्र वा औषधियोंके योगसे वा किसी अगदके लेप आदिसे जो व्रण उत्पन्न होते हैं उन सबको आगन्तु-व्रण कहते हैं यह आगन्तु व्रण हेतुविशेषसे और लक्षणभेदसे अनेक प्रकारके होते हैं। उनके लक्षणोंके एकदेशसे यहांपर दिखाया गया है। इससे विपरीत वातादिदोषोंके द्वारा प्रकट होनेवाले निजव्रण होते हैं। निजव्रणोंमें प्रथम वातादि दोषोंका कोप होकर पीछे व्रणोंकी उत्पत्ति होती है और आगन्तु व्रण पहिले व्रण होकर पीछे वातादि दोष कुपित होते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

व्रणानां निजहेतूनामागन्तूनामसाध्यताम्।

कुर्य्याद्दोषबलापेक्षी निजानामौषधं यथा ॥ ७ ॥

निज हेतुओंसे उत्पन्न हुए व्रण और आगन्तु व्रणकी यदि स्वयं शान्ति होते प्रतीत न हो तो दोष और बलको जाननेवाला वैद्य विचारपूर्वक आगे कहीहुई निज व्रणोंमें औषधियोंका प्रयोग करे ॥ ७ ॥

निजव्रणोंकी संप्राप्ति।

यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टा वातपित्तकफा नृणाम्।

बहिर्मार्गं समाश्रित्य जनयन्ति निजान् व्रणान् ॥ ८ ॥

अपने २ कारणोंसे कुपितहुए वात, पित्त, कफ मनुष्योंके शरीरमें त्वचाका आश्रय ले निजव्रणों (जखमों) को उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

वातव्रणके लक्षण।

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावोऽतितीव्ररुक्।

तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसम्भवः ॥ ९ ॥

जो व्रण स्तब्ध, स्पर्शमें कठोर, मन्द २ स्रावयुक्त, अत्यंत पीडावाला, सूईके चुभानेकीसी पीडायुक्त फडकनेवाला और श्यामवर्ण हो वह वायुसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ ९ ॥

वातव्रणमें चिकित्सानिर्देश।

संपूरणैः स्नेहपानैः स्निग्धैः स्वेदोपनाहनैः।

प्रदेहैः परिषेकैश्च वातव्रणमुपाचरेत् ॥ १० ॥

वायुसे उत्पन्न हुए व्रणमें संपूरण, (वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग अथवा व्रणपूरक) स्नेहपान, स्निग्ध स्वेद, स्निग्ध उपनाह, स्निग्ध प्रलेप और स्निग्ध परिषेकों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १० ॥

पित्तव्रणके लक्षण।

तृष्णामोहज्वरस्वेददाहदुष्टावदारणैः।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धस्रावैः सपूतिकैः ॥ ११ ॥

प्यास, मोह, ज्वर, पसीने, दाह, दुष्ट, अवदारण (घावका बुरीतरहसे फटना), दुर्गंधयुक्त स्राव होना और राधका निकलना यह पित्तव्रणके लक्षण जानना॥ ११ ॥

पित्तव्रणमें चिकित्सानिर्देश।

शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैः प्रदेहपरिषेचनैः।
सर्पिष्पानैर्विरेकैश्च पैत्तिकं शमयेद् व्रणम् ॥ १२ ॥

शीतल, मधुर और तिक्तद्रव्योंसे लेपन, सेचन, घृतपान और विरेचन आदिसे पित्तव्रणको शान्त करना चाहिये ॥ १२ ॥

कफव्रणके लक्षण।

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरकारी कफव्रणः ॥ १३ ॥

अत्यन्त पिच्छिलता, भारीपन, स्निग्धता, स्तैमित्य, मन्द मन्द पीडा, पाण्डु वर्ण, थोडा २ क्लेद निकलना, व्रणका बहुत देरमें पकना यह कफव्रणके लक्षण होते हैं १३

कफव्रणमें चिकित्सा।

कषायकटुरूक्षोष्णैः प्रदेहपरिषेचनैः।
कफव्रणं प्रशमयेत्तथा लङ्घनपाचनैः ॥ १४ ॥

कफव्रणको कषाय, कटु, रूक्ष और उष्ण द्रव्यों द्वारा लेपन और परिषेचन करे। तथा लंघन और पाचनों द्वारा शान्त करे ॥ १४ ॥

व्रणोंके भेदादि।

तौ द्वौ नानात्वभेदेन निरुक्ता विंशतिर्व्रणाः।
तेषां परीक्षा त्रिविधा प्रदुष्टा द्वादश स्मृताः ॥ १५ ॥
स्थानान्यष्टौ तथा गन्धाः परिस्रावाश्चतुर्दश।
षोडशोपद्रवा दोषाश्चत्वारो विंशतिस्तथा ॥ १६ ॥
तथा चोपक्रमाः सिद्धाः षट्त्रिंशत्समुदाहृताः।
विभाव्यमानाः शृणु तान् सर्वानेव यथेरितान् ॥ १७ ॥

निज और आगन्तु भेदसे यह दोनों व्रण बीस प्रकारके होते हैं। उनकी तीन प्रकारकी परीक्षा होती है। दूषित होनेसे प्रत्येकव्रणके बारह भेद होजाते हैं। व्रणोंके आठ स्थान है और आठ ही प्रकारके गन्ध हैं। चौदह प्रकारके स्राव हैं। सोलह प्रकारके उपद्रव हैं। चौबीस प्रकारके दोष हैं और छत्तीस प्रकारकी सिद्धचिकित्सा है। अब इनका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो ॥ १५-१७ ॥

व्रणके २० प्रकार।

कृत्योत्कृत्यस्तथा दुष्टस्तथा मर्मस्थितो नवः।
संवृतो दारुणः स्रावी सविषो विषमस्थितः ॥ १८ ॥
त्वक्सङ्ग्युत्सन्न एषाञ्च व्रणान्विद्याद्विपर्य्ययात्।
इति नानात्वभेदेन निरुक्ता विंशतिर्व्रणाः ॥ १९ ॥

कृत्योत्कृत्य, दुष्ट, मर्मस्थित, नवीन, संवृत, दारुणस्रावी, सविष, विषमास्थित, उत्संगी, उत्सन्न, अकृत्योत्कृत्य (जो चिरता फटता न हो) अदुष्ट, अमर्मस्थित, पुराचीन, असंवृत, अल्पस्रावी, निर्विष, अविषमस्थित, अनुत्संगी और अनुत्सन्न यह व्रणोंके बीस भेद कहे हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

विविध परीक्षा।

दर्शनप्रश्नसंस्पर्शैः परीक्षा त्रिविधा स्मृता।
वयोवर्णशरीराणामिन्द्रियाणाञ्च दर्शनात् ॥ २० ॥
हेत्वर्त्तिसात्म्याग्निबलं परीक्ष्यं वचनाद् बुधैः।
स्पर्शान्मार्दवशैत्ये च परीक्ष्ये सविपर्य्यये ॥ २१ ॥

व्रणोंको देखना, रोगीसे पूछना और हाथसे स्पर्श करना यह तीन प्रकारकी परीक्षा है। इनमें रोगीकी अवस्था, वर्ण, शरीर और इन्द्रियोंको देखकर परीक्षा करना, रोगके कारण, पीडा, सात्म्य, अग्नि बल इनकी पूछकर परीक्षा करना, मृदुता, शीतलता, कठोरता और उष्णता आदि स्पर्शद्वारा परीक्षा करना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

दुष्ट व्रणोंके भेद।

श्वेतोपसन्नवर्त्माऽतिस्थूलवर्त्माऽतिपिञ्जरः।
नीलः श्यावोऽतिपिडको रक्तकृष्णोऽतिपूतिकः ॥ २२ ॥
रौप्यः कुम्भीमुखश्चेति प्रदुष्टा द्वादश व्रणाः।
कल्पेनानेन दोषाणां चतुर्विंशतिरुच्यते ॥ २३ ॥

श्वेतवर्त्मा, उपसन्नवर्त्मा, स्थूलवर्त्मा, अत्यंत पिंजर, अतिनील, अतिश्याम, अत्यंत पिडिकायुक्त, अतिरक्तवर्ण, अत्यन्त कृष्णवर्ण, अत्यन्त दुर्गंधयुक्त, रौप्य और कुंभीमुख यह व्रणोंके दुष्ट होनेसे बारह प्रकारके भेद होते हैं । इन बारहोंकी उपरोक्त प्रकारसे कल्पना कीजाय तो इनके चौबीस भेद होजाते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

व्रणके आठ स्थान ।

त्वक्शिरामांसमेदोऽस्थिस्नायुमर्मान्तराश्रयाः ।

व्रणस्थानानि निर्दिष्टान्यष्टावेतानि संग्रहे ॥ २४ ॥

त्वचा, शिरा, मांस, मेद, अस्थि, स्नायु, मर्म और अन्तर (अंतडी) यह संग्रहमें आठ व्रणोंके स्थान कहे हैं ॥ २४ ॥

व्रणोंकी ८ प्रकारकी गन्ध ।

सर्पिस्तैलवसापूयरक्तश्यावाम्लपूतिकाः ।

व्रणानां व्रणगन्धज्ञैरष्टौ गन्धाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २५ ॥

घृतसमान, तैलके समान, चर्बीके समान, पूय (राध) के समान, रुधिरके समान, मुर्देके समान, खटाईके समान, सडीहुई दुर्गंध यह आठ प्रकारकी व्रणकी गन्ध होती है ॥ २५ ॥

१४ प्रकारकी स्राव ।

लसीकाजलपूयासृगृहरितारुणपिञ्जराः ।

कषायनीलहरितस्निग्धरूक्षसितासिताः ।

इति रूपैः समुद्दिष्टैर्व्रणस्रावाश्चतुर्दश ॥ २६ ॥

लसीका, जल, पूय, रुधिर, हरितवर्ण, अरुण, पीतवर्ण, कषायवर्ण, नीलवर्ण, हारिद्रवर्ण, स्निग्ध, रूक्ष, श्वेत और कृष्ण यह १४ प्रकारके व्रणोंमेंसे स्राव होते हैं ॥ २६ ॥

व्रणके १६ उपद्रव ।

विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोपतानकाः ॥ २७ ॥

मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः ।

कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः ।

षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः ॥ २८ ॥

विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तंभ, अपतानक, मोह, उन्माद, व्रणपीडा, ज्वर, प्यास, हनुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप यह व्रणके १६ उपद्रव व्रणोंके ज्ञाताओंने कहे हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

व्रण शांत न होनेके कारण।

स्नायुक्लेदाच्छिराक्लेदाद्गाम्भीर्य्यात्क्रिमिदर्शनात् ॥ २९ ॥
अस्थिभेदात्सशल्यत्वात् सविषत्वाच्च सर्पणात् ।
नखकाष्ठप्रभेदाच्च चर्मलोमातिघट्टनात् ॥ ३० ॥
मिथ्याबन्धादतिस्नेहादतिभैषज्यकर्षणात् ।
अजीर्णादतिभुक्ताच्च विरुद्धासात्म्यभोजनात् ॥ ३१ ॥
शोकात्क्रोधाद्दिवास्वप्नाद्व्यायामान्मैथुनात्तथा ।
व्रणा न प्रशमं यान्ति निष्क्रयत्वाच्च देहिनाम् ॥ ३२ ॥

स्नायुओंमें क्लेदता आजानेसे, शिराओंमें क्लेदता होनेसे, व्रणके गंभीर होनेसे, व्रणमें क्रिमिपडजानेसे, व्रणमें हड्डीनिकलकर घावमें लगतेरहनेसे, व्रणके अंदर शल्य रहनेसे, विषयुक्त व्रण होनेसे, व्रणमें घसीट लगजानेसे,व्रणमें नख काष्ठआदि लगजानेसे, चर्म और केशादिसे व्रणको रगडनेसे, व्रणपर अनुचित बन्ध लगानेसे, अतिस्नेहके प्रयोगसे, औषधीयोगद्वारा अत्यंत कर्षण कियेजानेसे, व्रणवाले रोगीको अजीर्णहोनेसे, अथवा अत्यंत भोजन करनेसे या विरुद्ध वा असात्म्य भोजन करनेसे, अत्यंत शोकसे, क्रोध करनेसे, दिनमें सोनेसे, व्यायाम करनेसे तथा मैथुन करनेसे एवं व्रणकी चिकित्सा न करनेसे, मनुष्योंके व्रण (घाव, जख्म,) शांत-(आरोग्य) नहीं होते ॥ २९-३२ ॥

व्रणोंमें साध्यासाध्यता।

परिस्रावाच्च गन्धाच्च दोषैश्चोपद्रवैः सह ।
व्रणानां बहुदोषाणां कृच्छ्रत्वं चोपजायते ॥ ३३ ॥

बहुदोषयुक्त व्रणोंमे सर्वतः स्राव और दुर्गंध होनेसे तथा दोषोंके उपद्रवोंसे युक्त होनेसे कृच्छ्रता (कष्ट साध्यता) होजाती है अर्थात् वह कृच्छ्रतासे शांत होते हैं॥३३॥

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ।
धीमतोऽभिनवः काले सुखसाध्यः स्मृतो व्रणः ॥ ३४ ॥
गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रतमः स्मृतः ।
सर्वैर्विहीनो विज्ञेयस्त्वसाध्यो निरुपक्रमः ॥ ३५ ॥

जो व्रण त्वचा और मांसमें ही आश्रित हों तथा मर्मादिस्थानोंमें उत्पन्न न होकर आरोग्य होने योग्य स्थानमें पैदाहुए हों बहुत दिनके पुराने न हों, (नये हों,) एवं उपद्रवरहित हों बुद्धिमानूके शरीरमें हों तो यथाकाल शीघ्र चिकित्सा कियेजानेपर

वह व्रण सुखसाध्य जानने; इन उपरोक्त लक्षणोंमें किसी गुणके न होनेस वह व्रण कृच्छ्रसाध्य होते हैं। उपरोक्त सुखसाध्यवाले संपूर्ण गुण न होनेसे व्रणोंको असाध्य और अचिकित्स्य जानना ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

चिकित्सानिर्देश।

व्रणानामादितः कार्य्यं यथासन्नं विशोधनम् ।
ऊर्द्ध्वभागैरधोभागैः शस्त्रैर्बस्तिभिरेव च ॥ ३६ ॥
सद्यः शुद्धशरीराणां प्रशमं यान्ति हि व्रणाः ।
यथाक्रममतश्चोर्द्ध्वं श‍ृणु सर्वानुपक्रमान् ॥ ३७ ॥

व्रणोंकी चिकित्सा करनेमें प्रथमही व्रणको शोधन करना चाहिये और वह शोधन यथासन्न समीपवर्ती होना चाहिये। जैसे—कफजनित व्रणमें वमन, पित्तमें विरेचन, वातव्रणमें वस्तिकर्म कराना तथा बाहरी त्वचामें होनेवाले दुष्टव्रणोंका दूषित रुधिर आदि निकालकर स्वच्छ करना चाहिये; इस प्रकार शुद्ध शरीर होनेसे व्रण बहुत शीघ्र शान्त होजाते हैं। अब यथाक्रम उन व्रणोंको चिकित्सा श्रवण करो ॥ ३६॥३७ ॥

व्रणोंकी ३६ प्रकारकी चिकित्सा।

शोफघ्नं षड्विधश्चैव शस्त्रकर्मावपीडनम् ।
निर्वापणं ससन्धानं स्वेदः शमनमेषणा ॥ ३८ ॥
शोधनौ रोपणीयौ च कषायौ सप्रलेपनौ ।
द्वौ स्नेहौ तद्गुणौ पत्रच्छेदने द्वे च बन्धने ॥ ३९ ॥
भोज्यमुत्सादनं दाहो द्विविधः सावसादनः ।
काठिन्यमार्दवकरे धूपने लेपने शुभे ॥ ४० ॥
व्रणावचूर्णनं व्रण्यं लेपनं लोमरोपणम् ।
इति षट्त्रिंशदुद्दिष्टा व्रणानां समुपक्रमाः ॥ ४१ ॥

शोथ (सूजन) नाशक चिकित्सा, छः प्रकारका शस्त्रकर्म, अवपीडन, निर्वापण, संधान, स्वेदन शमन, एषण (एषणीयंत्रद्वारा घावकी गहराई देखना), शोधन कषाय, रोपणकषाय, शोधनप्रलेपन, रोपणप्रलेपन, शोधनस्नेह, रोपणस्नेह दो प्रकारके उपरोक्त गुणोंवाले पत्रप्रच्छादन, दो प्रकारके बंधन, भोज्यविधि, उत्सादन, दो प्रकारके दाह, अवसादन काठिन्यकारक और मृदुताकारक, धूपन तथा लेपन, व्रणावचूर्णन व्रणोपयोगी लेपन और लोमरोपण यह व्रणोंके छत्तीस प्रकारके उपक्रम (उपाय) कथन किये हैं ॥ ३८–४१ ॥

पूर्वरूपं भिषग् बुद्ध्वा व्रणानां शोफमादितः ।
रक्तावसेचनं कुर्य्यादजातव्रणशान्तये ॥ ४२ ॥
शोधयेद्वहुदोषांस्तु स्वल्पदोषान्विलङ्घयेत् ।
पूर्वं कषायैः सर्पिर्भिर्जयेद्वा मारुतोत्तरम् ॥ ४३ ॥

वैद्यको उचित है कि, जब व्रणके उत्पन्न होनेसे पहिले सूजन प्रतीत होनेलगे तब ही व्रणशोथकी जगहका रक्तस्राव करा देवे, जिससे अजातव्रण उत्पन्न न होने पावे । यदि रोगी बहुदोषयुक्त हो तो उसको वमन, विरेचनद्वारा शोधन करे । अल्पदोषवाले रोगीके दोषोंको लंघनद्वारा शान्त करे । वातप्रधान व्रणको कषाय और घृत पिलाकर शान्त करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

शोथनाशक लेप।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलाः ।
ससर्पिष्कः प्रलेपः स्याच्छोफनिर्वापणं परम् ॥ ४४ ॥

बड, गुल्लड, पीपल, पिलखन और वेतसके वल्कलोंको पीसकर घृतयुक्त कर किंचित् गरम २ लेपन करनेसे सूजन दूर होती है ॥ ४४ ॥

विजया मधुकं वीरा बिसग्रन्थिः शतावरी ।
नीलोत्पलं नागपुष्पं प्रदेहः स्यात्सचन्दनः ॥ ४५ ॥

हरड, मुलैठी, काकोली, कमलकी जड, शतावर, नीलकमल, नागकेशर और लाल चन्दन इनको पीसकर लेप करनेसे सूजन दूर होती है ॥ ४५ ॥

सक्तवो मधुकं सर्पिः प्रदेहः स्यात्सशर्करः ।
अविदाहीनि चान्नानि शोफे भेषजमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

अथवा यवके सत्त, मुलैठी, घी और खाण्डका लेप करनेसे सूजन दूर होती है एवं अविदाही अन्नपानका सेवन करना भी शोथरोगको शान्त करनेवाली उत्तम औषधी है ॥ ४६ ॥

स चेदेवमुपक्रान्तः शोथो न प्रशमं व्रजेत् ।
तस्योपनाहैः पक्कस्य पाटनं हितमुच्यते ॥ ४७ ॥

जो इन उपरोक्त लेपोंसे शोथ (सूजन) शान्त न हो तो उसको पुलटिस बान्धकर पकावे । पकजानेपर शस्त्रद्वारा चीर डालना हितकारक कहा है ॥ ४७ ॥

तैलेन वा सर्पिषा वा ताभ्यां वा सक्तुपिण्डिका ।
सुखोष्णा शोफपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ ४८ ॥

वायुके व्रणमें तेलके साथ, पित्तके व्रणमें घृतके साथ, रक्तापित्तव्रणमें दोनोंके साथ यवके सत्तुओंकी पिण्डीसे बनाकर गरम करके व्रणशोथपर लगावे तो यह पकानेके लिये उत्तम उपनाह (पुलटिस) है ॥ ४८ ॥

सतिला सातसीबीजदध्यम्ला सक्तुपिण्डिका ।
सकिण्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ ४९ ॥

तिल, अलसी, दही, कांजी, यवके सत्तू, सुराबीज, कूठ और नमक इन सबका कल्क बना गर्मकर लेप करनेसे शोथ पककर फूटजाता है ॥ ४९ ॥

दग्ध और पक्व शोथके लक्षण।

रुग्दाहरागतोदैश्च विदग्धं शोफमादिशेत् ।
जलबस्तसमस्पर्शं संपक्कं पिण्डितोन्नतम् ॥ ५० ॥
उन्माथो गुग्गुलुः सौधं पयो दक्षकपोतयोः ।
विट् पलाशभवः क्षारो हेमक्षीरी मकूलकः ॥ ५१ ॥
इत्युक्तो भेषजगणः पक्कशोथप्रभेदनः ।
सुकुमारस्य कृच्छ्रस्य शस्त्रन्तु परमुच्यते ॥ ५२ ॥

जिस सूजनमें पीडा, दाह, ललाई और तोद हो उसको विदग्ध सूजन कहते हैं, जिस सूजनमें छूनेसे पानीसे भरी मसकके समान प्रतीत हो और गोल तथा उन्नत हो उसको पक्व सूजन कहते हैं। पकीहुई सूजनको फोडनेके लिये गूगुल, थोहरका दूध अथवा चूना, मुर्गा और कबूतरकी बीट, विडनमक, ढाकका क्षार, सत्यानासीकी जड और दन्ती इन सबको रगडकर लेप करे तो यह गण सब प्रकारकी पकीहुई सूजनोंको भेदन कर देता है यदि सूजन कोमल और कष्टसाध्य प्रतीत होती हो अर्थात् लेपोंद्वारा न फूटसकती हो तो शस्त्र कर्मका प्रयोग करे ॥ ५०-५२ ॥

६ प्रकारके शस्त्रकर्म।

पाटनं व्यधनञ्चैव छेदनं लेखनं तथा ।
प्रोच्छनं सीवनञ्चैव षड्विधं शस्त्रकर्म तत् ॥ ५३ ॥

वह शस्त्रकर्म पाटन, व्यधन, छेदन, लेपन, पछन और सीवन यह छः प्रकारके होते हैं ॥ ५३ ॥

पाटनयोग्य सूजन।

नाडीव्रणाः पक्कशोथास्तथा क्षतगुदोदरम् ।
अन्तःशल्याश्च ये शोफाः पाट्यास्ते तद्विधाश्च ये ॥ ५४ ॥

नाडीव्रण, पक्कशोथ, क्षतज, गुदोदर, अन्तःशल्य (जिसके भीतर किसीप्रकारका कांटा आदि रहगयाहो) इतने प्रकारके शोथ शस्त्रद्वारा काटने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

वेधनयोग्य रोग।

दकोदराणि संपक्त्वा गुल्मा ये ये च रक्तजाः।

व्यध्याः शोणितरोगाश्च विसर्पपिडकादयः ॥ ५५ ॥

जलोदर, पकाहुआ गुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प और पिडिका आदिक व्यधन (भीतरसे छिद्रयुक्त सूचीद्वारा वेधनकर सूचीके भीतरके छिद्रद्वारा मवाद निकालदेना) करनेयोग्य हैं ॥ ५५ ॥

छेदनीय रोग।

उद्वृत्तान्स्थूलपर्य्यन्तानुत्सन्नान् कठिनान् व्रणान्।

अर्शःप्रभृत्यधीमांसं छेदनेनोपपादयेत् ॥ ५६ ॥

उद्धृत, स्थूलपर्यंत, उठाहुआ, कठोर व्रण तथा सब प्रकारके अर्श (मस्से)तथा अधिमांस यह छेदन करने (काटने) के योग्य हैं ॥ ५६ ॥

लेखनीय रोग।

किलासानि सकुष्ठानि लिखेल्लेख्यानि बुद्धिमान् ॥ ५७ ॥

किलास और कुष्ठको बुद्धिमान् वैद्य संपूर्ण रूपसे लेखन करे ॥ ५७ ॥

वातासृग्ग्रन्थिपिडकाः सकोठा रक्तमण्डलाः।

कुष्ठान्यभिहतश्चाङ्गं शोथांश्च प्रच्छयेद्भिषक् ॥ ५८ ॥

वातरक्त, ग्रंथी, पिडिका, कोठरोग, रक्तमण्डल, कुष्ठ, चोट लगकर हुई सूजन तथा अन्य सूजन इनको वैद्य पाछ (पछने) लगावे ॥ ५८ ॥

सीव्यं कुक्ष्युदराद्यन्तु गम्भीरं यद्विपाटितम्।

इति षड्विधमुद्दिष्टं शस्त्रकर्म मनीषिभिः ॥ ५९ ॥

कुक्षि और उदरमें जो गहरा उत्पाटन (फटना) होगया हो तो उसको सीना चाहिये। इन छः प्रकारका शस्त्रकर्मोंको मुनियोंने कथन किया है ॥ ५९ ॥

सूक्ष्माननाः कोषवन्तो ये व्रणास्तान्प्रपीडयेत्।

जिस व्रणका मुख छोटासा हो और भीतरसे पककर भराहुआ हो उसको पीडनकरे।

पीडनद्रव्य।

कलायाश्च मसूराश्च गोधूमाः सहरेणवः।

कल्कीकृताः प्रशस्यन्ते निःस्नेहा व्रणपीडने ॥ ६० ॥

मटर, मसूर, गेहूं और हरेणुके कल्कको विना चिकनाईके व्रणके ऊपर लेपकरे तो वह सूखकर व्रणको पीडनकर मवाद बाहर निकाल देता है ॥ ६० ॥

शाल्मलीत्वग्बलामूलं तथा न्यग्रोधपल्लवाः ।
न्यग्रोधादिकमुद्दिष्टं बलादिकमथापि वा ॥ ६१ ॥
आलेपनं निर्वपणं तद्विधान्यैश्च सेचनम् ।
सर्पिषा शतधौतेन पयसा मधुकाम्बुना ॥ ६२ ॥
निर्वापयेत्सुशीतेन रक्तपित्तोत्तरान् व्रणान् ॥ ६३ ॥

सीमलकी छाल, बलाकी जड, बडके पत्ते, न्यग्रोधादिगण अथवा बलादिगण वा इसी प्रकारके अन्य गणोंका लेपन अथवा सेचन करनेसे व्रणोंका मवाद बाहर निकल जाता है और व्रण शुद्ध होजाते हैं । तथा सौबारके धोये हुए घृतको अथवा दूध या मुलैठीके क्वाथको रक्तपित्तोल्वण व्रणोंमें उपयोग करे तो व्रणोंकी शान्ति होती है।

लम्बानि व्रणमांसानि प्रलिप्य मधुसर्पिषा ।
संदधीत समं वैद्यो बन्धनैश्चोपपादयेत् ।
तान् समान् सुस्थिताञ्ज्ञात्वा फलिनीलोध्रकट्फलैः ॥ ६४ ॥
समङ्गाधातकीयुक्तैश्चूर्णितैरवचूर्णयेत् ।
पञ्चवल्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः ॥ ६५ ॥
धातकीलोध्रचूर्णैर्वा तथा रोहन्ति ते व्रणाः ॥ ६६ ॥

व्रणोंसे यदि मांस लटकपडे तो शहद और घृतका लेपकर उनको बराबर करके बांधदेवे । व्रण समान एकता और सुस्थिर हो तो प्रियंगु, लोध, कायफल, समंगा, धावेके फूल इनका बारीक चूर्णकर व्रणको घृतसे चुपडकर ऊपरसे यह चूर्ण बुरका देवे अथवा पंचवल्कल और सीपीका समान भाग सूक्ष्म चूर्ण बुरकावे या धावेके फूल और पठानीलोधका चूर्ण कर व्रणोंपर बुरकावे तो व्रण शीघ्र भरकर अच्छे होजाते हैं ॥ ६४-६६ ॥

अस्थिभग्नं च्युतं सन्धिं संदधीत समं पुनः ।
समेन सममङ्गेन कृत्वान्येन विचक्षणः ॥
स्थिरैः कवलिकाबन्धैः कुशिकाभिश्च संस्थितम् ॥ ६७ ॥
पट्टैः प्रभूतसर्पिष्कैर्बध्नीयादचलं सुखम् ।

अविदाहिभिरन्नैश्च पैष्टिकैस्तमुपाचरेत्।
ग्लानिर्हि न हिता तस्य सन्धिविश्लेषकारिका ॥ ६८ ॥

यदि हड्डी टूटगई हो अथवा जोड खुलगया हो तो उसको विधिपूर्वक जोडकर कवलिकानामक बंधनसे बांध देवे अथवा कुशाके पत्रोंको घृत लगा विना जोरसे धीरे २ लपेटकर ऊपरसे घीमें भिगोई कपडेकी पट्टी विधिपूर्वक बांधदेवे और इसको अविदाही अन्न और पिष्टक अन्न विधिपूर्वक सेवन करावे। यदि रोगीको विदाही अन्न दिया जायगा तो उससे विदाह होकर अथवा किसी प्रकार ग्लानि उत्पन्न होनेसे उसकी संधिमें ढीलापन आजाता है इसलिये उसको विदाही और हानिकारक पदार्थ नहीं देना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

विच्युताभिहताङ्गानां विसर्पादीनुपद्रवान्।
उपाचरेद्यथाकालं कालज्ञः स्वचिकित्सितात् ॥ ६९ ॥

अंग विच्युत होनेसे रोगीको विसर्प आदि होजाय तो कालको जाननेवाला वैद्य समयानुसार उन उपद्रवोंकी चिकित्सा करे ॥ ६९ ॥

शुष्का महारुजः स्तब्धा ये व्रणा मारुतोत्तरा
स्वेद्याः सङ्करकल्पेन ते स्युः कृसरपायसैः ॥ ७० ॥
ग्राम्यबैलाम्बुजानूपैर्वेशवारैश्च संस्कृतैः।
उत्कारिकाभिरुष्णाभिः सुखी स्याद् व्रणितस्तदा ॥ ७१ ॥

जो व्रण सूखेहुए अत्यन्त पीडायुक्त स्तब्ध और वातप्रधान हों उनको संकरस्वेद-विधिसे खिचडी, खीर तथा औषधियोंसे संस्कार कियेहुए ग्राम्य, बिलेशय, जलचर और अनूपचारी जीवोंके मांसकी टिकिया बना स्वेदन करे तो व्रणवाले रोगीको सुख प्राप्त हो ॥ ७० ॥ ७१ ॥

सदाहवेदनावन्तो ये व्रणा मारुतोत्तराः।
येषां तिलानुमांश्चैव भृष्टान् पयसि निर्वृतान् ॥ ७२ ॥
तेनैव पयसा पिष्ट्वा कुर्य्यादालेपनं भिषक्।
बला गुडूची मधुकं पृश्निपर्णी शतावरी ॥ ७३ ॥
जीवन्ती शर्करा क्षीरं तैलं मत्स्यवसा घृतम्।
संसिद्धा समधूच्छिष्टा शूलघ्नी स्नेहशर्करा ॥ ७४ ॥

वातप्रधान दाहयुक्त और पीडायुक्त व्रणोंमें तिल, अलसी इनको घीमें भून और दूधमें पकालेवे फिर उसी दूधमें पीसकर लेपन करे। अथवा खरेटी, गिलोय, मुलैठी, पृष्ठपर्णी, शतावर, जीवन्ती, खांड, दूध, तेल, मछलीकी चर्बी, घी और मोम इन सबको पकाकर व्रणपर लेप करनेसे व्रणकी पीडा दूर होती है ॥ ७२-७४ ॥

द्विपञ्चमूलक्कथितेनाम्भसा पयसाऽथवा।
सर्पिषा वा सतैलेन कोष्णेन परिषेचयेत् ॥ ७५ ॥

किंचित् गर्म दशमूलका क्वाथ अथवा दशमूलसे सिद्ध किया दूध अथवा इनमें तेल या घृत मिलाकर व्रणोंका परिषेचन करे तो पीडा शान्त हो ॥ ७५ ॥

यवचूर्णं समधुकं सतैलं सह सर्पिषा।
दद्यादालेपनं कोष्णं दाहशूलोपशान्तये ॥ ७६ ॥

यवोंका चूर्ण, मुलैठी और घृत इनका सुखोष्ण लेप करनेसे व्रणकी पीडा और दाह शान्त होता है ॥ ७६ ॥

उपनाहश्च कर्त्तव्यः सतिलो मुद्गपायसः।
रुग्दाहयोः प्रशमनो व्रणेष्वेषु विधिर्हितः ॥ ७७ ॥

दूधके साथ तिल और मूंगका कल्क करके उसका सुखोष्ण लेप करनेसे दाह और पीडा शान्त होती है ॥ ७७ ॥

एषणीय व्रण।

सूक्ष्मानना बहुस्रावाः कोषवन्तश्च ये व्रणाः।
न च मर्माश्रितास्तेषामेषणं हितमुच्यते ॥ ७८ ॥
द्विविधामेषणां विद्यान्मृद्वीश्च कठिनामपि।
उद्भिदैर्मृदुभिर्नालैर्लौहानां वा शलाकया ॥ ७९ ॥
गम्भीरमांसगे देशे पार्श्वे लौहशलाकया।
एष्यं विद्याद् व्रणं नालैर्विपरीतमतो भिषक् ॥ ८० ॥

जो व्रण, सूक्ष्म मुखवाला, अनेक प्रकारके स्रावयुक्त और कोषयुक्त हो किन्तु वह मर्मस्थानमें न हो तो उसको एषणीयन्त्र (सलाई)द्वारा देखे कि वह कहांतक है अथवा उसमें सलाई डालनाही हित होता है एषणीयन्त्र दो प्रकारका होता है। १-मृदु और २-कठिन; इनमें उद्भिद नर्मनाल (दूबका डका) आदि मृदु और लोहेका कठिन एषणा शलाका यन्त्र होता है। जिस स्थानमें व्रण गहरा हो और मांस बहुत हो वहांपर लोहेकी सलाईका प्रवेश करना चाहिये। जिस स्थानमें मांस गहरा न हो उसमें मृदु सलाईका प्रवेश करे ॥ ७८-८० ॥

शोधनयोग्य व्रण।

पूतिगन्धान्विवर्णांश्च बहुस्रावान् महारुजः।
व्रणानशुद्धान्विज्ञाय शोधनैः समुपाचरेत् ॥ ८१ ॥

जिन व्रणोंमें दुर्गंध, विवर्णता, अधिक स्राव और अत्यन्त पीडा हो तथा वह अशुद्ध हो तो उनको प्रथम शोधन करना चाहिये ॥ ८१ ॥

शोधनयोग।

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादिर्बला कुशः।
निम्बकोलकपत्राणि कषायाः शोधना मताः ॥ ८२ ॥

त्रिफला, खैरसार, दारुहलदी, वडका छिलका, अतिबला, कुशाकी जड, नीमके पत्ते, बेरीके पत्ते इन सबका काथ कर उस काथसे व्रणको शुद्ध करदेवे ॥ ८२ ॥

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद् घृतम्।
मधुकं निम्बपत्राणि प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ ८३ ॥

तिलोंका कल्क, सेंधानमक, हलदी, दारुहलदी, निसोथ, घृत, मुलैठी और नीमके पत्तोंका कल्क कर लेपन करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥ ८३ ॥

रोपणीय व्रण।

नातिरक्तो नातिपाण्डुर्नातिश्यावो न चातिरुक्।
न चोत्सन्नो न चोत्सङ्गी शुद्धो रोप्यः परं व्रणः ॥ ८४ ॥

जो व्रण अधिक लाल न हो और अधिक पीला न हो तथा अधिक कालाभी न हो उसमें अत्यंत पीडा न होती हो जो बहुत ऊंचा न हो, जिसमें क्लेदादि दोष न हों ऐसा शुद्ध व्रण रोपण करनेयोग्य है ॥ ८४ ॥

रोपणकर्त्ता द्रव्य।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकदम्बप्लक्षवेतसाः।
करवीरार्ककुटजाः कषाया रोपणाः स्मृताः ॥ ८५ ॥
चन्दनं पद्मकिञ्जल्कं दार्वीत्वङ् नीलमुत्पलम्।
मेदां मूर्वां समङ्गाञ्च यष्ट्याह्वां व्रणरोपणम् ॥ ८६ ॥

वड, गूलर, पीपल, कदम्ब, पिलखन, वेतस (ब्यूंष), कनेरकी छाल, आककी छाल, कुडाकी छाल इनका काथ रोपणकारक होता है। अथवा लालचंदन, कमलकी केशर, दारुहलदी, नीलकमल, मेदा, मूर्वा, समंगा और मुलैठी यह सब व्रणके रोपण करनेवाले हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

प्रपौण्डरीकं जीवन्तीं गोजिह्वां धातकीं बलाम् ।
रोपणं सतिलं दद्यात्प्रलेपं सघृतं व्रणे ॥ ८७ ॥

प्रपौण्डरीक (पंव्यारा), जीवंती, जंगली गोभी (गोजिह्वा बूटी), धावेके फूल, बला और तिल इन सबका कल्क कर घृतयुक्त कर लेप करे तो व्रणोंको रोपण होय ॥ ८७ ॥

कम्पिल्लकं विडङ्गानि वत्सकं त्रिफलां बलाम् ।
पटोलं पिचुमर्दञ्च लोध्रं मुस्तं प्रियंगुकम् ॥ ८८ ॥
खदिरं धातकी सर्जमेलामगुरुचन्दने ।
पिष्ट्वा साध्यं भवेत्तैलं तत्परं व्रणशोधनम् ॥ ८९ ॥

कमीला, बायबिडंग, इंद्रजव, त्रिफला, बला, पटोलकी जड, नीमके पत्ते, पठानी-लोध, मोथे, फूलप्रियंगु, खैरसार, धावेके फूल, राल, इलायची, अगर, लालचंदन इन सबका कल्क और क्वाथ मिलाकर तेल सिद्ध करले यह तेल व्रणोंका अत्यंत रोपण और शोधन करनेवाला है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं काकोल्यौ द्वे च चन्दने ।
सिद्धमेतैः समैस्तैलं तर्पणं व्रणरोपणम् ॥ ९० ॥

प्रपौण्डरीक, मुलैठी, दोनों काकोली, लालचंदन इनके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया तैल तर्पण और व्रणोंको रोपण करनेवाला है ॥ ९० ॥

दूर्वास्वरससिद्धं वा तैलं कम्पिल्लकेन वा ।
दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥ ९१ ॥

दूबके स्वरसमें अथवा कमीलेमें या दारुहल्दीकी छालके कल्कमें सिद्ध किया तैल व्रणोंको रोपण करनेमें प्रधान है ॥ ९१ ॥

येनैव विधिना तैलं घृतं तेनैव साधयेत् ।
रक्तपित्तोत्तरं दृष्ट्वा रोपणीयं घृतं तथा ॥ ९२ ॥

जिन २ द्रव्योंसे जिस प्रकार तैल सिद्ध किये जाते हैं उन्हीं द्रव्योंसे उसी प्रकार घृतोंको साधन करना चाहिये । रक्तपित्तप्रधान व्रणोंमें रोपणीय औषधोंसे सिद्ध किये घृतद्वारा ही रोपणी क्रिया करनी चाहिये ॥ ९२ ॥

कदम्बार्जुननिम्बानां पाटल्याः पिप्पलस्य च ।
व्रणप्रच्छादने विद्वान् पत्राण्यर्कस्य चादिशेत् ॥ ९३ ॥

कदम्ब, अर्जुन, नीम, पाटला, पीपल और आकके पत्ते व्रणोंपर बांधनेके लिये हितकारी हैं ॥ ९३ ॥

राङ्कोऽथ बादरश्चैव पट्टो व्रणहितः स्मृतः।
बन्धश्च द्विविधः शस्तो व्रणानां सव्यदक्षिणः ॥ ९४ ॥

सावर आदि नरम मृगोंके चर्म, रुईसे बना वस्त्र वा ऊनसे बना वस्त्र अथवा वृक्षकी छालसे बना वस्त्र लेकर उसकी पट्टी बांधना चाहिये। वह पट्टी व्रणके बाएं और दहिने दोनों ओर लपेटकर बांधना चाहिये ॥ ९४ ॥

व्रणमें पथ्यापथ्य।

लवणाम्लकटूष्णानि विदाहीनि गुरूणि च।
वर्जयेदन्नपानानि व्रणी मैथुनमेव च ॥ ९५ ॥

लवण, अम्ल, कटु और विदाहीपदार्थ तथा भारी अन्नपान और मैथुन इन सब कर्मोंको व्रणरोगवाला मनुष्य त्याग देवे ॥ ९५ ॥

नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहि यथाक्रमम्।
अन्नपानं व्रणहितं हितश्चास्वपनं दिवा ॥ ९६ ॥

जो अत्यंत शीतल न हो, अत्यंत भारी न हो, अत्यंत स्निग्ध तथा विदाही न हो ऐसा अन्नपानका सेवन करना हित है। एवं दिनमें सोना भी व्रणरोगियोंके लिये अत्यंत अहित करता है ॥ ९६ ॥

स्तन्यानि जीवनीयानि बृंहणीयानि यानि च।
उत्सादनार्थं निम्नानां व्रणानां तानि कल्पयेत् ॥ ९७ ॥

जो व्रण निम्न (नीचेको गढेके समान) हों उनको उन्नत (भरकर बराबर) करनेके लिये स्तन्यवर्धकगणकी औषधियों, जीवनीय औषधियों और बृंहणीय द्रव्योंके प्रयोग (घृतादिके संयोगसे लेपन, क्वाथसे प्रक्षालन और इन्हीसे सिद्ध घृतका पान) करै९७

भूर्जग्रन्थ्यश्मकासीसमधोभागानि गुग्गुलुः।
व्रणावसादनं तद्वत्कलविङ्ककपोतविट् ॥ ९८ ॥

भोजपत्रकी गांठ, पाषाणभेद, हीराकसीस यह क्रमसे एक दूसरेसे आधा लेवे। एक भाग गूगुल लेवे इन सबको मिलाकर लेप करनेसे व्रण भर आता है इसी प्रकार कलविंक (मुर्गा या चिडा) की और कबूतरकी वीटका लेप करनेसे भी यही गुण होता है ॥ ९८ ॥

अग्निकर्मका निर्देश।

रुधिरेऽतिप्रवृद्धे तु च्छिन्ने च्छेद्येऽधिमांसके।
कफग्रन्थिषु गण्डेषु वातस्तम्भानिलार्त्तिषु ॥ ९९ ॥
गूढपूयलसीकेषु गम्भीरेषु स्थिरेषु च।
क्लिन्नेषु चाङ्गदेशेषु कर्माग्नेः संप्रशस्यते ॥ १०० ॥

छेदन योग्य अधिमांस (मस्से) आदिके काटनेपर यदि रुधिरकी अतिप्रवृत्ति होय तब उस स्थानको तथा कफग्रंथि, गलगंड, वातस्तंभ, वातपीडा, गूढपूय, (जिसमें पीव छिपी हुई हो) और गूढलसीकायुक्त व्रण, गंभीर, स्थिर और क्लेदित अंगदेशोंमें अग्निकर्म (दागना) श्रेष्ठ होता है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

मधूच्छिष्टेन तैलेन मज्जाक्षौद्रवसाघृतैः।
तप्तैर्वा विविधैर्लोहैर्दहेद्दाहविशेषवित् ॥ १०१ ॥
रूक्षाणां सुकुमाराणां गम्भीरान्मारुतोत्तरान्।
दहेत्स्नेहैर्मधूच्छिष्टैर्लोहैः क्षौद्रैस्ततोऽन्यथा ॥ १०२ ॥

मोम, तेल, मज्जा, शहद, चर्बी, घृत अथवा लोहा आदि धातुओंको तपा २ कर व्रणको दग्ध करना चाहिये। विशेषरूपसे सब क्रियाको जाननेवाला वैद्य रूक्ष, नम्र और गंभीर तथा वातप्रधान व्रणोंको स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करे। पित्तप्रधान व्रणको लोहद्वारा दग्ध करे। और कफप्रधानको शहदसे दग्ध करना चाहिये १०१-१०२

अग्निकर्मके अयोग्यमनुष्य।

बालदुर्बलवृद्धानां गर्भिण्या रक्तपित्तिनाम्।
तृष्णाज्वरपरीतानामबलानां विषादिनाम् ॥ १०३ ॥
नाग्निकर्मोपदेष्टव्यं स्नायुमर्मव्रणेषु च।
सविषेषु च शल्येषु नेत्रकुष्ठव्रणेषु च ॥ १०४ ॥

बालक, दुर्बल, वृद्ध, गर्भवती स्त्री, रक्तपित्तरोगी, तृषातुर, ज्वरवाला, क्षीण और विषादयुक्त मनुष्योंके व्रणोंमें अग्निकर्म नहीं करना चाहिये। तथा स्नायुगतव्रण, मर्मगत व्रण, सविष व्रण, शल्ययुक्त व्रण और नेत्रव्रणमें तथा कोष्ठव्रणमें अग्निकर्म नहीं करना चाहिये ॥ १०३ ॥ १०४

रोगदोषबलापेक्षी मात्राकालाग्निकोविदः।
शस्त्रकर्माग्निकृत्येषु क्षारमप्यवचारयेत् ॥ १०५ ॥

रोग, दोष, बल, मात्रा, काल और अग्निकर्मको जाननेवाला वैद्य शस्त्रकर्म और अग्निकर्म साध्य व्रणोंमें क्षार(तेजाब आदि) के प्रयोग द्वारा भी दग्ध कर सकता है॥

कठिनत्वं व्रणा यान्ति गन्धैः सारैश्च धूपिताः ।
सर्पिर्मज्जावसाधूपैः शैथिल्यं यान्ति हि व्रणाः ॥ १०६ ॥

गंधद्रव्य और राल आदि वृक्षोंके सारोंकी धूनी देनेसे व्रण कठोर (सख्त) होजाता है एवं घृत, मज्जा और वसा (चर्बी) की धूनी देनेसे व्रण शिथिल(नरम) पडजाता है ॥ १०६ ॥

रुजः स्रावाश्च गन्धाश्च क्रिमयश्च व्रणाश्रिताः ।
शैथिल्यं मार्दवं वापि धूपनेनोपशाम्यति ॥ १०७ ॥

धूनी देनेसे व्रणकी पीडा, स्राव, दुर्गंध, कृमि, शिथिलता और मृदुता यह सब दूर होजाते हैं ॥ १०७ ॥

लोध्रन्यग्रोधशुङ्गानि खदिरं त्रिफला घृतम् ।
प्रलेपो व्रणशैथिल्यं सौकुमार्य्यप्रबोधनः ॥ १०८ ॥

पठानीलोध, बडके अंकुर, कत्था, त्रिफला और घृत इनको मिला मिलाकर लेप करनेसे व्रणमें शिथिलता और नम्रता प्रकट होती है ॥ १०८ ॥

सरुजः कठिनाः स्तब्धा निरास्रावाश्च ये व्रणाः ।
यवचूर्णैः ससर्पिष्कैर्बहुशस्तान् प्रलेपयेत् ॥ १०९ ॥

जो व्रण कठोर, स्तब्ध, पीडायुक्त और स्रावयुक्त हों उनपर बहुतसा घृत मिला कर जवोंके उत्तम चूर्णका लेप करे ॥ १०९ ॥

मुद्गषष्टिकशालीनां पायसैर्वा यथाक्रमम् ।
सघृतैर्जीवनीयैर्वा तर्पयेत्तानभीक्ष्णशः ॥ ११० ॥

मूंग, साठी चावल, शालि चावल इनमेंसे किसी एकको या सबको दूधमें पकाकर लेप करनेसे अथवा जीवनीयगणकी औषधीयोंको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणोंका तर्पण होता है ॥ ११० ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थलोध्रजाम्बवकट्फलैः ।
त्वचमाश्वेव गृह्णन्ति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणाः ॥ १११ ॥

अर्जुन वृक्षकी छाल, गूलरकी छाल तथा पीपल, लोध, जामन, कायफल इन सबकी छालका बारीक चूर्ण व्रणोंपर बुरकानेसे व्रण शीघ्र त्वचायुक्त होजाते हैं १११

मनःशिलैला मञ्जिष्ठा लाक्षा च रजनीद्वयम्।
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः॥ ११२ ॥

मनशिल, इलायची, मंजीठ, लाख, हलदी, दारुहलदी, घृत और शहद इनको मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाते हैं ॥ ११२ ॥

सफेद त्वचाको सवदेहसमकारक लेप।

अयोरजः सकासीसं त्रिफलाकुसुमानि च।
करोति लेपः कृष्णत्वं सद्य एव नवत्वचि ॥ ११३ ॥

लोहचूर्ण, हीराकसीस, त्रिफलाका फूल (या फल) इनका लेप करनेसे व्रण दूर होनेपर रहीहुई त्वचाकी सफेदी दूर होजाती है ॥ ११३ ॥

कालीयकनताम्रास्थिहेमकाला रसोत्तमाः।
लेपः सगोमयरसः सवर्णीकरणः परः॥ ११४ ॥

कालीयक (काली अगर), नत (तगर), आमकी गुठली, नागकेशर, कांतिसार, लोहका चूर्ण इनको गोबरके रसमें घोटकर लेप करनेसे नई त्वचाकी सफेदी दूर होकर सब त्वचाके समान वर्ण होजाता है ॥ ११४ ॥

ध्यामकाश्वत्थनिचुलमूलं लाक्षा सगैरिका।
सहेमश्वामृतासंगा कासीसश्चेति वर्णकृत् ॥ ११५ ॥

रोहिषतृण, पीपलवृक्षकी त्वचा, निचुल (हिंजल) की जड, लाख, गेरु, नागकेशर, हरड, मुरदासंग, हीराकशीश इन सबको मिलाकर लेपन करनेसे नई त्वचा सब शरीरके वर्णकीसी होजाती है ॥ ११५ ॥

व्रणोंकी त्वचापर बाल जमानेकी क्रिया।

चतुष्पदानां त्वग्लोमखुरशृंगास्थिभस्मना।
तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेल्लोमवती पुनः॥ ११६ ॥

चतुष्पद जानवरोंकी त्वचा, लोम, खुर, सींग और हड्डीकी भस्म कर तेलमें मिला व्रणकी त्वचापर लेप करनेसे बाल उत्पन्न होजाते हैं ॥ ११६ ॥

षोडशोपद्रवा ये च व्रणानां परिकीर्त्तिताः।
तेषां चिकित्सा निर्दिष्टा यथा स्वे स्वे चिकित्सिते ॥ ११७॥

इस प्रकार व्रणोंके जो सोलह उपद्रव कहेगयेथे उनकी यथाक्रम अलग २ चिकित्सा की गई ॥ ११७ ॥

तत्र श्लोकौ—द्वौ व्रणौ व्रणभेदाश्च परीक्षा दुष्टिरेव च।
स्थानानि गन्धाः स्रावश्च सोपसर्गाः क्रियाश्च याः॥ ११८॥
व्रणाधिकारे संप्रश्नमेतन्नवकमुक्तवान्।
मुनिर्व्याससमासाभ्यामग्निवेशाय धीमते ॥ ११९ ॥
इति चरक० द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अध्यायके उपसंहारमें यह दो श्लोक हैं कि, इस द्विव्रणीय चिकित्सिताध्यायमें दो प्रकारके व्रण, घणोंके भेद, परीक्षा, दुष्टता, स्थान, गंध, स्राव, उपसर्ग और चिकित्सा यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने बुद्धिमान् अग्निवेशके प्रति संक्षेप और विस्तारसे विधिवत् वर्णन किये हैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः।

अथात उन्मादचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम उन्मादचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

बुद्धिस्मृतिज्ञानतपोनिवासः पुनर्वसुः प्राणभृतां शरण्यः।
उन्मादहेत्वाकृतिभेषजानि कालेऽग्निवेशाय प्रशंस पृष्टः॥ १ ॥

बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और तपके निवासभूमि प्राणधारियोंको शरण्य भगवान् पुनर्वसुजी अग्निवेशके पूछनेपर उन्माद रोगके हेतु, लक्षण और चिकित्साका यथासमय वर्णन करनेलगे ॥ १ ॥

उन्मादके हेतु।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघाते विषमाश्च चेष्टाः॥ २ ॥

विरुद्ध, दूषित और अपवित्र भोजनका सेवन, देव गुरु और ब्राह्मणोंका धर्षण (ताडन), अधिक भय या हर्षसे मनमें विकार होना और विषम चेष्टा यह सब उन्माद रोगके कारण होते हैं ॥ २ ॥

उन्मादकी संप्राप्ति।

तरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टाः बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्तीह नरस्य चेतः॥ ३॥

इन कारणोंसे अलपसत्त्व (कमजोरदिलवाले) मनुष्योंके वातादि दोष दुष्ट होकर बुद्धिके निवासस्थान दिमाग (मस्तिष्क) और हृदयको प्रदूषित कर मनोवाहक स्रोतोंमें स्थित हो मनुष्यके चित्तको प्रमोहित करदेते हैं ॥ ३ ॥

उन्मादके सामान्य लक्षण।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्य्याकुला दृष्टिरधीरता च।
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम्॥ ४॥

बुद्धिका विभ्रम, चित्तमें चंचलता, अकुलाई हुई दृष्टि, अधीरता, अंटसंट असंबद्ध भाषण, हृदयमें शून्यता यह सब उन्मादरोगके सामान्य लक्षण हैं ॥ ४ ॥

संमूढचेता न सुखं न दुःखं नाचारधर्मौ कुत एव शान्तिम्।
विन्दत्यपास्तस्मृतिबुद्धिसंज्ञो भ्रमत्ययं चेत इतस्ततश्च॥ ५॥

इस प्रकार उन्माद रोगसे मूढचित्त हुआ वह मनुष्य किसी प्रकारका सुख, दुःख, आचार, धर्मको नहीं जानता और न शांतिको प्राप्त होसकता है वह बुद्धि, स्मृति और संज्ञारहित हुआ इधर उधर घूमता फिरता है ॥ ५ ॥

उन्मादकी निरुक्ति व भेद।

समुद्भ्रमं बुद्धिमनःस्मृतीनामुन्मादमागन्तु निजोत्थमाहुः।
तस्योद्भवं पञ्चविधस्य भूयो वक्ष्यामि लिङ्गानि चिकित्सितञ्च॥ ६॥

बुद्धि मन और स्मृतिके समुद्भ्रम (बिगडकर उद्भ्रान्त) होनेको उन्माद कहते हैं। वह उन्माद निज और आगंतु भेदोंसे दो प्रकारका है । इनकी पांच प्रकारसे उत्पत्ति है। अब उन पांच प्रकारके उन्मादरोगोंके लक्षण और चिकित्सा कहते हैं॥

वातज उन्मादके हेतु।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः।
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम्॥ ७॥

रूक्ष, अल्प और शीतल अन्नके सेवनसे, अधिक विरेचनसे, धातुओंके क्षयसे तथा उपवास करनेसे वायु अत्यंत बढकर चिंतासे दुःखित हुए हृदयको और भी दूषित करके मनुष्यकी बुद्धि और स्मृतिको शीघ्र नष्ट करदेता है ॥ ७ ॥

वातज उन्मादके लक्षण।

अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णता च जीर्णे बलञ्चानिलजस्य रूपम्॥ ८॥

तब विना कारण हँसना, मुसकुराना, नाँचना, गानेलगजाना, बकना, हाथ पावोंको इधर उधर चलाना, रोना, देहमें कठोरता, कृशता, लाल वर्ण होना और अन्नके परिपाक होजानेपर रोगकी अधिक वृद्धि होना यह सब लक्षण वातजनित उन्मादमें होते हैं ॥ ८ ॥

पित्तोन्मादके हेतु।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ।
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि श्रितं पूर्ववदेव कुर्य्यात् ॥ ९ ॥

अजीर्णकारक भोजन करनेसे कटु, अम्ल, विदाही और उष्ण अन्नपानके सेवनसे संचितहुआ पित्त उदीर्ण हो वेगको धारण करता है तब अजितात्मा मनुष्यके हृदयमें आश्रित हो चित्तको बिगाड देता है, फिर बुद्धि और स्मृतिको नष्टकर उन्माद रोगको उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥

पित्तोन्मादके लक्षण।

अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः ।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषः पीता च भाः पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ १० ॥

क्रोध, घबडाहट, नंगा होजाना, संतर्जन (झिडकना) भागना, शरीरमें गरमी होना, रोष, छायाकी इच्छा और शीतल अन्नजलकी अभिलाषा करना, नेत्रोंका और शरीरका वर्ण पीला होना यह पित्त उन्मादके लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफोन्मादके हेतु।

संपूरणैर्मन्दविचेष्टनैश्च सोष्मा कफो मर्मणि सम्प्रवृद्धः ।
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहत्य चित्तं प्रमोहयन् सञ्जनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

अधिक भोजन करनेसे, शारीरिक चेष्टा न करने (आलसी बना रहने) से, ऊष्माके साथ मिला कफ हृदयमें प्रविष्ट होकर वृद्धिको प्राप्त होता है फिर बुद्धि और स्मृतिको नष्टकर चित्तको बिगाडताहुआ उन्मादरोगको उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

कफोन्मादके लक्षण।

वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा ।
छर्दिश्च लाला च बलञ्च भुङ्क्ते नखादिशौक्ल्यञ्च कफात्मके स्यात् ॥ १२

वाणी और चेष्टाका मंद होना, अरुचि, स्त्रियोंमें प्रेम, एकांतवासकी इच्छा, अतिनिद्रा, वमन और लारका गिरना, भोजन करते ही रोग पहिलेसे अधिक बढजाना नख नेत्र और मूत्र पुरीषादिकोंका श्वेत होना यह कफजनित उन्मादके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

प्रसुप्तोन्माद लक्षण।

हेतुभिः कुपिता दोषाः प्रसुप्तस्य मनोगताः।
बुद्धीन्द्रियं समाच्छाद्य प्रसुप्तोन्मादकारकाः ॥ १३ ॥
तेन सुप्तः समुत्थाय क्वचित् पतति गच्छति।
नाज्ञः किंचिद्विजानाति प्रसुप्तो गच्छति क्वचित् ॥ १४ ॥
श्रमाच्छ्लेष्मविलीनाच्च प्रबुद्धः स्वस्थतां लभेत्।
वचायाः सुप्रयोगेण ह्यारोग्यं लभते नरः ॥ १५ ॥

वातकफप्रधानकारणोंसे कुपित हुए वात कफ मनके वहन करनेवाले स्रोतोंमें प्रवेश कर बुद्धीन्द्रियके आच्छादन करके प्रसुप्तोन्मादरोगको उत्पन्न करदेते हैं। उस प्रसुप्तोन्मादसे मनुष्य सोता हुआही उठ कर कुछ न समझकर मार्ग चलने लगता है या छत आदिसे गिर पडता है। यह कुछ न जानता हुआ सोताही सोता चलता है। जब श्रमसे कफ लीन होजाता है, तब स्रोत शुद्ध होजानेसे वह यथार्थ जागकर अपने सामान्य ज्ञानको प्राप्त होता है और अपनी अवस्थाको समझता है इस रोगको प्रसुप्तोन्माद कहते हैं। इसमें विधिपूर्वक वचको बहुत दिन प्रयोग करनेसे यह रोग नष्ट होजाता है ॥ १३–१५ ॥

सन्निपातज उन्माद।

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात्।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्त्ति तादृग्विरुद्धभेषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १६ ॥

जो उन्माद सन्निपातसे उत्पन्न होता है वह अतिघोर उन्माद तीनों दोषोंके कारणोंसे उत्पन्न होता है, इसमें तीनों दोषोंके समान संपूर्ण लक्षण होते हैं यह चिकित्सामें विरोधी होनेसे अचिकित्स्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥

आगंतुजोन्माद।

देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षःपितॄणामभिधर्षणानि।
आगन्तुहेतुर्नियमव्रतादि मिथ्याकृतं कर्म च पूर्वदेहे ॥ १७ ॥

देवता, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणोंके शापसे व्रतादिकोंमें विधिभंग होनेसे, अथवा व्रतादिकोंमें अनुचित व्यवहार करनेसे वा पूर्वजन्मके पापोंके फलसे आगंतु उन्माद होता है ॥ १७ ॥

भूतोन्मादके लक्षण।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्य्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्य्यैः।
उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १८ ॥

जिस उन्मादमें वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा, ज्ञान, विज्ञान और बल यह सब अमानुषीय हों अर्थात् मनुष्यके समान न हों और इस उन्मादके वेग होनेका कोई नियत समय नहीं हो उसको भूतोन्माद (भूतावेशसे उत्पन्न हुआ) जानना ॥ १८ ॥

शरीरमें देवादिकोंका आवेश।

अदूषयन्तः पुरुषस्य देहं देवादयः स्वैश्च गुणप्रभावैः ।
विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव च्छायातपौ दर्पणसूर्य्यकान्तौ ॥ १९ ॥

देवता आदि मनुष्योंके शरीरको वातादिदोषोंसे दूषित न करतेहुए अपने गुणोंके प्रभावसे अलक्षितरूप हो मनुष्योंके देहमें प्रवेश करते हैं जैसे सूर्यकान्त मणि और दर्पणमें सूर्यकी किरणें अपने गुणप्रभावसे शीघ्र प्रवेश करलेती हैं उसी प्रकार देवता आदि भी अलक्षित हो शरीरमें प्रवेश करलेते हैं ॥ १९ ॥

आयातकालो हि सपूर्वरूपः प्रोक्तो निदानेऽस्य परं सुराद्यैः ।
उन्मादरूपाणि पृथङ्निबोध कालञ्च गम्यान्पुरुषांश्च तेषाम् ॥ २० ॥

निदानस्थानमें देवताआदिकोंके प्रवेश होनेका काल और उन्मादरोगके पूर्वरूप कह आये हैं अब सब प्रकारके उन्मादोंके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवणकरो तथा उन्मादोंका काल और देवता आदिकोंसे आविष्टहुए मनुष्योंके लक्षण श्रवण करो ॥ २० ॥

देवोन्मादके लक्षण।

तद्यथा—सौम्यदृष्टिं गम्भीरमप्रधृष्यमकोपनमस्वप्नमभोजनाभिलाषिण-मल्पस्वेदमूत्रपुरीषवाचं शुभगन्धं फुल्लपद्मवदनमिति देवोन्मत्तं विद्यात् २१

वह इस प्रकार हैं—देवताकृत उन्मादमें मनुष्यकी सौम्य दृष्टि, गंभीरता, अनिन्दनीय क्रोधरहित, निद्राहीन, भोजनकी इच्छा न होना, स्वेद, मूत्र और पुरीष इनका अल्प होना बहुत थोडा बोलना, देहसे सुगंध आना, मुखका प्रफुल्लित कमलके समान होना यह लक्षण देवोन्माद युक्त मनुष्योंके होते हैं ॥ २१ ॥

शापोन्मादके लक्षण।

गुरुवृद्धसिद्धर्षीणामभिशापाभिचाराभिध्यानानुरूपाहारचेष्टाव्यवहारं तैरुन्मत्तं विद्यात् ॥ २२ ॥

गुरु, वृद्ध, सिद्ध और ऋषियोंके अभिचार अथवा शाप या अभिध्यानसे जो उन्माद उत्पन्न होता है वह उन्हीं (अभिचार, शाप, आदि) के अनुरूप आहार चेष्टा और व्यवहारद्वारा जानना चाहिये ॥ २२ ॥

---

१ शास्त्र ज्ञान।

पितृकृतोन्मादके लक्षण।

अप्रसन्नदृष्टिमपश्यन्तं निद्रालुं प्रतिहतवाचमनन्नाभिलाषारोचकाविपाकपरीतं पितृभिरुन्मत्तं विद्यात् ॥ २३ ॥

कलुषित दृष्टि होना, देखनेमें असमर्थता, अधिक निद्रा, वाणीका प्रतिहत होना, अन्नकी अभिलाषा न होना, अरोचक और अविपाक (अन्नका पाक न होना) यह सब लक्षण पितृगणके कोपसे उत्पन्नहुए उन्मादके होते हैं ॥ २३ ॥

गंधर्वाविष्टोन्मादके लक्षण।

चण्डं साहसिकं तीक्ष्णं गम्भीरमप्रधृष्यं मुखवाद्यनृत्यगीतान्नपानस्नानपानमाल्यधूपगन्धरक्तवस्त्रबलिकर्महास्यकथायोगप्रियं शुभगन्धमिति गन्धर्वोन्मत्तं विद्यात् ॥ २४ ॥

स्वभावका प्रचण्ड होना, साहस, स्वभावमें तीक्ष्णता, गंभीरता, अप्रधृष्य, मुखसे बाजे बजाना, नृत्यगीतादि प्रिय होना, अन्न पान और स्नानमें प्रेम होना, माला, धूप और गन्धादिकोंमें स्नेह होना, लाल वस्त्र, बलिकर्म और हास्य कथा आदिक प्रिय लगना, शरीरसे अति उत्तम गन्धका आना यह गन्धर्वाविष्ट उन्मादके लक्षण जानना ॥ २४ ॥

यक्षोन्मादके लक्षण।

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यं नृत्यगीतवाद्यकथान्नपानस्नानमाल्यधूपगन्धरतिं रक्तविप्लुताक्षं द्विजातिवैद्यपरिवादिनं रहस्यभाषिणमिति यक्षोन्मत्तं विद्यात् ॥ २५ ॥

बारंबार सोना, रोदन करना और हँसना तथा नाचना, गाना, मुखसे बाजें बजाना, बकना और अन्नपान, स्नान, फूलमाला, धूप और गंधधारणमें इच्छा होना, नेत्रोंका अत्यंत लाल होना, ब्राह्मण और वैद्योंकी निन्दा करना, अपनी तथा अन्य पुरुषोंकी गुह्य बातोंका प्रकाश करना यह यक्षोन्मादयुक्तके लक्षण जानने ॥ २५ ॥

राक्षसोन्मादके लक्षण।

नष्टनिद्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारमप्रतिबलिनं शस्त्रशोणितमांसरक्तमाल्याभिलाषिणं सन्तर्जकमिति राक्षसोन्मत्तं विद्यात् ॥ २६ ॥

निद्रानाश, अन्नपानमें द्वेष, भोजन न करना, अत्यन्त बल होना तथा शस्त्र, रुधिर मांस और लाल फूलोंकी मालाकी अभिलाषावाला होना, ताडन करनेवाला होना यह सब लक्षण राक्षसोन्मादसे उन्मत्त पुरुषके होते हैं ॥ २६ ॥

ब्रह्मराक्षसजनितोन्मादके लक्षण ।

प्रहासनृत्यप्रधानं देवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभिष्टुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैः काष्ठादिभिरात्मपीडनेन च ब्रह्मराक्षसोन्मत्तं विद्यात् ॥ २७ ॥

अत्यन्त हँसना, नाँचना, तथा देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष रखना, अवज्ञापूर्वक स्तुति, वेदमंत्र और शास्त्रोंके उदाहरण देना, अपनी देहको लकडी आदिसे पीडन करना यह सब ब्रह्मरासक्षजनित उन्मादरोगीके लक्षण हैं ॥ २७ ॥

पैशाचिक उन्मादके लक्षण ।

अस्वस्थचित्तं स्थानमलभमानं नृत्यगीतहासिनं बद्धावद्धप्रभाषिणं संकटकूटमलिनरथ्याचेलतृणेष्वारोहणरतिं संभिन्नवर्णरूक्षस्वरं नग्नं विधावन्तं नैकत्र तिष्ठन्तं दुःखान्यावेदयन्तं नष्टस्मृतिं पिशाचोन्मत्तं विद्यात् ॥ २८ ॥

चित्तका स्वास्थ्य न होना, किसी स्थानमें स्थिर होकर न बैठना, नाचना, गाना, हँसना, उचित और अनुचित अथवा संगत और असंगत बातोंको बकना, कष्टदायक स्थानोंमें, अथवा पर्वतादिकोंके शिखरपर वा मलिन मार्गमें, अथवा कुचैले वस्त्रोंके ढेरपर चलना, घासके ढेरपर चढना और उन विकट स्थानोंमें बैठकर सुख मानना, वर्णका बिगडजाना, स्वरका रूक्ष होना, नंगा होजाना, इधर उधर भागते फिरना, एक स्थान पर नहीं ठहरना, दुःखोंको कहना, स्मरणशक्तिका नष्ट होना यह पिशाचावेशजनित उन्मादके लक्षण हैं ॥ २८ ॥

देवादि आवेशके समय ।

तत्र शौचाचारं तपःस्वाध्यायकोविदं नरं प्रायः शुक्लप्रतिपदि त्रयोदश्यावश्च देवा धर्षयन्ति ॥

शौच, आचार, तप और स्वाध्याययुक्त मनुष्यको प्रायः शुक्लपक्षकी प्रतिपदा अथवा त्रयोदशीको छिद्र पाकर देवता अपना आवेश करते हैं ॥

स्नानशुचिविविक्तसेविनं धर्मशास्त्रश्रुतिकाव्यकुशलं प्रायः षष्ठीनवम्योर्ऋषयो धर्षयन्ति ॥ २९ ॥

जो मनुष्य नित्य स्नान, पवित्रता, एकांतवास करता है और धर्मशास्त्र, श्रुति, काव्यके जाननेमें कुशल है, उस मनुष्यमें षष्ठी और नवमीके दिन छिद्र पाकर ऋषियोंका आवेश होता है ॥ २९ ॥

मातृपितृगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्योपसेविनं प्रायो दशम्याममावस्यायाश्च पितरो धर्षयन्ति ॥ ३० ॥

जो मनुष्य माता, पिता, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्योंका सेवक होता है उसके शरीरमें प्रायः दशमी १० और आमावस्या ३० को समय पाकर पितृगण अपना असर (आवेश) करते हैं ॥ ३० ॥

गन्धर्वास्तु स्तुतिगीतवादित्ररतिं परदारगन्धमाल्यप्रियं शौचाचारं द्वादश्यां चतुर्दश्याञ्च धर्षयन्ति ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाना, बजाना आदिमें तत्पर हो अथवा परस्त्रीगमन करता हो या गन्ध, सुगन्धितमाला धारण कियेहुए हो, शौचाचारसे स्नेह रखताहो, उसके शरीरमें द्वादशी १२ अथवा चतुर्दशी १४ को गन्धर्व समय पाकर आवेश करते हैं ॥ ३१ ॥

सत्त्वबलरूपगर्वशौर्य्ययुक्तं माल्यानुलेपनं हास्यप्रियमतिवाक्करणं प्रायः शुक्लैकादश्यां सप्तम्याञ्च यक्षा धर्षयन्ति ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य सत्त्व, बल, रूप, गर्व और शौर्य युक्त हो, माला और चन्दनादि-लेपन धारण कियेहुए हो, हास्यप्रिय और अत्यन्त बोलनेवाला और सर्वेन्द्रिय संपन्न हो उसके शरीरमें शुक्लपक्षकी एकादशी ११ अथवा सप्तमी ७ को छिद्र पाकर यक्ष प्रवेश करते हैं ॥ ३२ ॥

स्वाध्यायतपोनियमोपवासव्रतचर्य्यादेवयतिगुरुपूजारतिं भ्रष्टशौचं ब्राह्मणमब्राह्मणं वा ब्रह्मवादिनं शूरमानिनं देवतागारसलिलक्रीडनरतिं प्रायः शुक्लपञ्चम्यां पूर्णचन्द्रदर्शने च ब्रह्मराक्षसा धर्षयन्ति ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रतचर्या और देव, यति तथा गुरुकी पूजामें रत हो वह भ्रष्टशौच (अशुद्ध), ब्राह्मणनिन्दक, शूरवीरताका अभिमानी, देवस्थानमें जलक्रीडा करता हो तो उस मनुष्यके शरीरमें पंचमी ५ अथवा पूर्णिमा १५ तिथिको छिद्र पाकर ब्रह्मराक्षस प्रवेश करते हैं ॥ ३३ ॥

रक्षःपिशाचास्तु हीनसत्त्वपिशुनस्त्रैणलुब्धं प्रायो द्वितीयातृतीयाष्ट-मीषु पुरुषं छिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्ति। इत्यपरिसंख्येयानां ग्रहाणामा-विष्कृततया ह्यष्टावेते व्याख्याताः ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य हीनसत्व, पिशुन और स्त्रीलंपट तथा लोभी हो, उस मनुष्यके शरीरमें द्वितीया, तृतीया अथवा अष्टमीके दिन छिद्र पाकर राक्षस और पिशाच अपना आवेश करते हैं। सब प्रकारके ग्रहोंमें यह आठ अत्यन्त बलवान् होनेसे इनका वर्णन इस स्थानमें कियागया है ॥ ३४ ॥

सर्वेष्वपि तु खल्वेषु यो हस्तावुद्यम्य रोषसंरम्भान्निःसंज्ञमन्येष्वात्मनि वा पातयेत्स ह्यसाध्यो ज्ञेयस्तथा यः साश्रुनेत्रो मेढ्रप्रवृत्तरक्तः क्षतजिह्वः प्रस्रुतनासिकश्छिद्यमानमर्मा प्रतिहन्यमानपाणिः सततं विकूजन्दुर्वर्णस्तृषार्त्तः पूतिगन्धिश्च हिंसार्थ्युन्मत्तो ज्ञेयस्तं परिवर्जयेत् ॥ ३५ ॥

इन सब प्रकारके उन्मादग्रस्त रोगियोंमें जो उन्मादरोगी दोनों हाथोंको उठाकर क्रोधसे भ्रुकुटियोंको चढाताहुआ, एकाएकी अचेत होकर स्वयं अपने अथवा अन्यके शरीरपर दोनों हाथोंको पटक देवे और संज्ञारहित होजावे वह रोगी असाध्य जानना जिस उन्मादरोगीके नेत्रोंसे आंसुओंका स्राव, शिश्नेन्द्रियसे रुधिरस्राव होताहो और जिह्वा फटकर घावयुक्त होगई हो, नासिकासे स्राव होता हो, हृदयमें छेदनकीसी पीडा होती हो, बारंवार हाथोंको पटकता हो, निरंतर कण्ठकूजन हो, शरीरका वर्ण बिगड जावे, प्याससे व्याकुल हो और शरीरसे दुर्गंध आती हो, जो हिंसा करनेके लिये उद्यत हो ऐसा उन्मादरोगी असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ ३५ ॥

रत्यर्चनकामोन्मादिनौ तु भिषगभिचाराभिशापाभ्यां बुद्धा तदङ्गोपहारबलिश्रमेण मन्त्रभैषज्याविधिना उपक्रमेत ॥ ३६ ॥

जो उन्माद किसी स्त्रीके किये हुए अभिचार (जादूटोना) से उत्पन्न हुआ हों वह उन्मादवाला रोगी रतिप्रिय होता है और किसी इष्ट देवताके पूजनमें व्यतिक्रम होनेसे जो उन्माद होता है उसमें पूजन प्रियके लक्षण होते हैं । इसलिये वैद्य अभिशाप और अभिचरसे उत्पन्न हुए इन दोनों प्रकारके उन्मादोंमें बलिदान, उपहार, पूजन आदि तथा अभिमंत्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ ३६ ॥

तत्र द्वयोरपि निजागन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोः समासविस्ताराभ्यां भेषजविधिं व्याख्यास्यामः ॥ ३७ ॥

अब हम उन निज और आगंतु निमित्तक उन्मादोंकी संक्षेप और विस्तारसे चिकित्साका वर्णन करते हैं ॥ ३७ ॥

उन्मादोंमें शोधनका निर्देश ।

उन्मादे वातजे पूर्वं स्नेहपानं विशेषवित् ।
कुर्य्यादावृतमार्गे तु सस्नेहं मृदु शोधनम् ॥ ३८ ॥
कफपित्तभवेप्यादौ वमनं सविरेचनम् ।
स्निग्धस्विन्नस्य कर्त्तव्यं शुद्धे संसर्जनक्रमः ॥ ३९ ॥

निरूहणस्नेहबस्ती शिरसश्च विरेचनम्।
ततः कुर्य्याद्यथादोषं तेषां भूयस्त्वमाचरेत् ॥ ४० ॥

वातजनित उन्मादमें प्रथम स्नेहपान कराना चाहिये यदि उसमें छिद्र रुकेरहैंतो मृदु शोधन करना हितकारी होता है, कफसे उत्पन्न हुए उन्मादमें स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर वमन कराना चाहिये, पित्तसे उत्पन्न हुए उन्मादमें स्नेहन स्वेदन कराके विरेचन कराना चाहिये फिर विधिवत् पेयादि क्रमका प्रयोग करै उसके अनन्तर निरूहण वस्ति और शिरोविरेचन कराना हित है; इसके अनन्तर यदि दोष शेष हो और शोधनकर्म योग्य हो तो फिर भी यथाक्रम उन वमनादिकोंका प्रयोग करता रहै ॥ ३८-४० ॥

शोधनके गुण।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठे संशुद्धे वमनादिभिः।
मनःप्रसादमाप्नोति स्मृतिं संज्ञाञ्च विन्दति ॥ ४१ ॥

वमन विरेचनादि द्वारा हृदय, इन्द्रिय, मस्तक और कोष्ठ शुद्ध होनेपर मन प्रसन्न होता है और प्रसन्नता होनेसे स्मरण और संज्ञाज्ञानका संचार होने लगता है ॥४१॥

स्मृतिकारक यत्न।

शुद्धस्याचारविभ्रंशे तीक्ष्णं नावनमञ्जनम्।
ताडनञ्च मनोबुद्धिदेहसंतर्जनं हितम् ॥ ४२ ॥

वमनादिद्वारा शुद्ध काय होनेपर भी यदि रोगी आचारविभ्रंश (बेहोशी, भ्रष्टता आदि) के लक्षण दिखावे तो उसको तीक्ष्णनस्य अंजन और ताडन आदिका प्रयोग करे। ऐसे समय मन, बुद्धि और देहको तर्जन (ताडन) करनेवाले उपाय हितकारी होते हैं ॥ ४२ ॥

यः शक्तो विनयेत्पट्टैः संयम्य सुदृढैः सुखैः।
अपेतलोष्टकाष्ठाद्यैः संरोध्यश्च तमोगृहे ॥ ४३ ॥
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम्।
विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ ४४ ॥

यदि रोगी बलवान् हो उसको दृढ नरम रेशमी रस्सोंसे अथवा कपडेसे दृढ बांधकर जिस प्रकार उसके शरीरमें चोट आदि न लगे ऐसी रीतिसे बांधे और कंकड, लकडी आदिसे रहित अंधेरे घरमें बन्द करदेवे, ऐसे रोगीको ताडना, त्रास देना, उसके इच्छित पदार्थ देना, शान्तिदायक वाक्योंसे समझाना, प्रसन्न करना, भय दिखाना और अनेक बातोंमें भुलाये रखना इन सब कर्मोंसे उस स्मृतिरहित

मनुष्यमें फिर स्मरणशक्तिका प्रबोध होजाता है और मन पहिलेके समान स्वस्थ होजाता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमपानश्च सर्पिषः ।
प्रयोक्तव्यं मनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रबोधनम् ॥ ४५ ॥
सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः ।
अतः सिद्धतमान् योगाञ्छृणून्मादविनाशनान् ॥ ४६ ॥

औषधियोंका प्रलेप, उत्सादन, अभ्यंग, धूम्रपान और घृतपान इन सबके करनेसे मन, बुद्धि स्मृति और संज्ञा इनका प्रबोध होता है। आगंतुज उन्मादमें मंत्रादिकोंसे अभिमंत्रित किये हुए और भूतनाशक औषधियोंसे सिद्ध किये हुए घृतोंका पान कराना तथा मन्त्रप्रयोग करना हितकारक होता है। अब उन्मादनाशक सिद्ध (अनुभव किये हुए) योगोंको श्रवण करो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

उन्मादनाशक घृत ।

हिङ्गुसौवर्चलाव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ४७ ॥

हींग, संचरनमक, पीपल, मिरच, सोंठ यह प्रत्येक दो दो पल लेकर कल्क बनावे इनका कल्क और चारगुना जल मिलाकर एक आढक घृतको शुद्ध करे यह घृत उन्मादरोगको दूर करता है ॥ ४७ ॥

कल्याण घृत ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
स्थिरानन्ता रजन्यौ द्वे शारिवे द्वे प्रियङ्गुकम् ॥ ४८ ॥
नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेशरम् ।
तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ ४९ ॥
विडङ्गं पृश्निपर्णीञ्च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ।
कल्कैः कर्षसमैरेतैर्विंशत्यष्टाभिरेव च ॥ ५० ॥
चतुर्गुणे जले पक्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे श्वासे मन्देऽनलक्षये ॥ ५१
वातरोगे प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
छर्द्यर्शोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ ५२ ॥

कण्डुपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगदेषु च।
भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ ५३ ॥
शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम्।
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहविनाशनम्।
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ ५४ ॥

इन्द्रायण, हरड, बहेडा, आँवला, रेणुका देवदारु, एलवालुक, शालपर्णी, हलदी, दारुहलदी, दोनों शारिवा, फूलप्रियंगु, नील कमल, इलायची, मजीठ, दन्ती, दाडिम, नागकेशर, तालीशपत्र, बडी कटेली, मालतीके नवीन फूल, बायबिडंग, पृष्ठपर्णी, कूठ, चन्दन और पद्माक इन २८ औषधियोंको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे चार गुणजलमें क्काथकर चतुर्थांश शेष रहनेपर एक प्रस्थ घृत लेवे इन सबको मिलाकर अग्निपर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर छानकर पात्रमें भरलेवे। इस घृतके सेवनसे अपस्मार, ज्वर, खांसी, श्वास, मन्दाग्नि, वातरोग प्रतिश्याय, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विष-विकार, प्रमेह, दूषीविष, भूतावेशसे उपहतचित्त, गद्गदभाषणरोग, शुक्रनाश और स्त्रियोंका वांझपन यह सब दूर होते हैं। यह घृत आयु और बलको बढाता है तथा अलक्ष्मी, पाप, राक्षस और सब प्रकारके ग्रहोंको दूर करता है यह कल्याण नामक घृत पुंसवन कर्ममें भी परम श्रेष्ठ है ॥ ४८-५४ ॥

एभ्य एव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम्।
रसे तस्मिन् पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरचतुर्गुणे ॥ ५५ ॥
वीरा द्विमाषकाकोली स्व (यं) गुप्तर्षभकर्द्धिभिः।
मेदया च समैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं महत्।
बृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम् ॥ ५६ ॥

शालपर्णीसे लेकर उपरोक्त (कल्याणघृत) की २१ इकीस औषधियें एक एक कर्ष लेकर दशगुने जलमें पकावे चतुर्थांश शेष रहनेपर छानलेवे इस क्काथमें पहिलोत ब्याईहुई गौका दूध चार प्रस्थ, पुराना घृत एक प्रस्थ मिलावे और क्षीरकाकोली, उडद, राजमाष, काकोली, कौंचके बीजोंकी गिरि, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इन सब औषधियोंका कल्क मिलावे सबको विधिपूर्वक पकाकर घृत सिद्ध होनेपर छानलेवे इस घृतको महाकल्याणघृत कहते हैं। यह घृत शरीरको बृंहण करनेवाला और विशेषकर सन्निपातके उन्मादको नष्ट करनेवाला है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

महापैशाचिकघृत।

जटिलां पूतनां केशीं चारटीं मर्कटीं वचाम्।
त्रायमाणां जयां वीरां चोरकं कटुरोहिणीम्॥ ५७॥
कायस्थां शूकरीं छत्रामतिच्छत्रां पलंकषाम्।
महापुरुषदन्ताञ्च वयःस्थां नाकुलीद्वयम्॥ ५८॥
कटम्भरां वृश्चिकालीं स्थिराञ्चाहृत्य तैर्घृतम्।
सिद्धं चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्॥ ५९॥
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथामृतम्।
बुद्धिस्मृतिकरञ्चैव बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनम्॥ ६०॥

जटामांसी, हरड, भूतकेशी, भूमिआमलकी, कौंचके बीज, बच, त्रायमाण, हरी दूर्वा, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कुटकी, गिलोय, वाराहीकंद, छत्रा (धनिया), सौंफ, गूगल, शतावरी, बहेडा, गन्धनाकुली, सफेद कटेरी, कटंभरा, वृश्चिक पत्री, शालपर्णी इन सबका कल्क बनाकर चारगुना दूध मिला पुराने घृतको सिद्ध करे। यह घृत तत्काल फल दिखानेवाला है इससे चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह और अपस्मार यह सब नष्ट होते हैं यह महापैशाचिक घृत अमृतके समान गुणकारी है बुद्धि और स्मृतिको बढानेवाला है तथा बालकोंके अंगोंको बढाता है॥ ५७-६०॥

लशुनादिघृत।

लशुनानां शतं त्रिंशदभया त्र्यूषणात्पलम्।
गवां चर्म मसीप्रस्थो द्व्याढकं क्षीरमूत्रयोः॥ ६१॥
पुराणसर्पिषः प्रस्थमेभिः सिद्धं प्रयोजयेत्।
हिंगुचूर्णपलं शीते दत्त्वा च मधुमाणिकाम्॥ ६२॥
तद्दोषागन्तुसम्भूतानुन्मादान्विषमज्वरान्।
अपस्मारांश्च हन्त्याशु पानाभ्यञ्जननावनैः॥ ६३॥

लहसुन नग १००, हरड ३०, मिर्च पीपल सोंठ यह सब मिलाकर एक पल, गोदुग्ध एक आढक, गोमूत्र एक आढक, पुराना घृत एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर सिद्ध करे फिर इस घृतको ठंढा करके इसमें भुनी और पिसीहुई हींग एक पल और शहद आठ पल मिलावे इस घृतको पीने, मालिश करने और नस्यकर्ममें प्रयोग करनेसे आगन्तु उन्माद, विषमज्वर और अपस्मार यह सब दूर होते हैं॥

द्वितीयलशुनादि घृत।

लशुनस्याविनष्टस्य तुलार्द्धं निस्तुषीकृतम्।
तदर्द्धं दशमूलस्य द्व्याढकेऽपां विपाचयेत् ॥ ६४ ॥
पादशेषे घृतप्रस्थं लशुनस्य रसं तथा।
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकै रसैः ॥ ६५ ॥
दाडिमाम्लसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्द्धिकैः।
साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ॥ ६६ ॥
यमानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्च पलार्द्धिकैः।
सिद्धमेतत्पिबेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम् ॥ ६७ ॥
ब्रध्नपाण्डवामयप्लीहयोनिदोषज्वरक्रिमीन्।
वातश्लेष्मामयान्सर्वानुन्मादञ्चापकर्षति ॥ ६८ ॥

छिलकारहित उत्तम लहसुनके कन्द ५० पचास पल, दशमूल २५ पल इन सबको दो आढक जलमें पकावे चतुर्थांश शेष रहनेपर छान लेवे फिर इसमें घृत एक प्रस्थ, लहसुनका रस एक प्रस्थ, बेर, मूली, तिंतिडीक, बिजौरा, अदरक और अनारदानेका रस, सुरा, मस्तु, काँजी यह सब आधा २ प्रस्थ लेवे। हरडे, आँवले, बहेडे, दारुहलदी, सेंधालवण, मिरच, पीपल, सोंठ, अजवायन, अजमोद, चव्य, हींग, अम्लवेत इन प्रत्येकको आधा २ पल लेवे इन सबको विधिवत् मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतके सेवनसे शूल, गुल्म, बवासीर, उदररोग, ब्रध्नरोग, पाण्डुरोग, प्लीहारोग, योनिदोष, ज्वर, क्रिमिरोग, वात, कफरोग तथा अन्य उन्माद आदिरोग सब दूर होते हैं ॥ ६४–६८ ॥

अन्यादि घृत।

हिङ्गुना हिङ्गुपर्ण्या च सकायस्थावयःस्थया।
सिद्धं सर्पिर्हितं तद्वद्वयःस्थाहिंगुरोचकैः ॥ ६९ ॥
केवलं सिद्धमेभिर्वा पुराणं पाययेद्घृतम्।
पाययित्वोत्तमां मात्रां श्वभ्रे रुन्ध्याद् गृहेऽपि वा ॥ ७० ॥

हींग, वेणुपत्री, आमला, हरडे इनके कल्कोंके साथ सिद्ध कियाहुआ पुराना घृत अथवा वयस्था, हींग और राजपलांडुसे सिद्ध कियाहुआ घृत उत्तममात्रा पिलाकर निर्वातक स्थानमें रक्खे यह दोनों घृत उन्माद रोगको दूर करनेवाले हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

पुराने घृतके गुण।

विशेषतः पुराणञ्च घृतं तं पाययेद्भिषक्।
त्रिदोषघ्नं पवित्रत्वाद्विशेषाद्ग्रहमोक्षणम् ॥ ७१ ॥
गुणकर्माधिकं स्थानादास्वादात्कटुतिक्तकम्।
उग्रगन्धं पुराणं स्याद्दशवर्षस्थितं घृतम् ॥ ७२ ॥
लाक्षारसनिभं शीतं तद्धि सर्वग्रहापहम्।
मेध्यं विरेचनेष्वग्र्यं प्रपुराणमतः परम् ॥ ७३ ॥
नासाध्यं नाम तस्यास्ति यत्स्याद्वर्षशतस्थितम्।
दृष्टं स्पृष्टमथाघ्रातं तद्धि सर्वग्रहापहम्।
अपस्मारग्रहोन्मादवतां शस्तं विशेषतः ॥ ७४ ॥

उन्माद रोगमें विशेषकर वैद्य पुराना घृत पिलावे। पुराना घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होनेसे विशेषकर ग्रहनाशक होता है। जो घृत बहुत दिनका पुराना होनेसे चर्परा, कडवा, उग्रगन्धयुक्त और दश वर्षका पुराना हो तथा लाखके समान लालवर्णका और शीतल होता है वह सब प्रकारके ग्रहोंको दूर करनेवाला होता है। दशवर्षसे भी अधिक पुराना घी मेधावर्द्धक, उत्तम विरेचनकारक होता है। दश वर्षसे अधिक घृत ही पुराना घृत कहागया है। एक सौ वर्षके पुराने घृतसे जो नष्ट न हो ऐसा कोई भी रोग नहीं विशेषकर अपस्मार और भूतोन्मादवाले रोगीको परम हितकारक है। यह घृत देखनेसे स्पर्श करनेसे और सूंघनेमात्रसे ही सब ग्रहोंको दूर कर देता है। अथवा ऐसे समझिये कि,आँखोंमें अंजन शरीरपर मालिश और नस्यकर्ममें प्रयोग करनेसे यह घृत सब ग्रहोंको दूर करता है ॥ ७१-७४ ॥

उन्मादनाशक नस्य और अञ्जन।

एतैरौषधवर्गैर्वा विधेयत्वं स गच्छति।
अञ्जनोन्मादनालेपान्नावनादींश्च योजयेत् ॥ ७५ ॥
शिरीषो मधुकं हिङ्गु लशुनं तगरं वचाम्।
कुष्ठञ्च बस्तमूत्रेण पिष्टं स्यान्नावनाञ्जनम् ॥ ७६ ॥

इन नीचे लिखीहुई औषधियोंसे अंजन, उत्सादन, आलेपन और नस्यकर्म करनेसे उन्मादरोग शांत होजाता है। वे यह हैं जैसे शिरसके बीज, मुलैठी, हींग, लहसुनका रस, तगर, वच और कडुआ कूट इन औषधियोंमेंसे किसी एक अथवा सबको बकरीके मूत्रमें घोटकर नस्य और अंजन करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

तद्वद्व्योषं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठाहिङ्गुसर्षपाः ।
शिरीषबीजं चोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ७७ ॥

इसीविधिसे सोंठ, मिर्च, पीपल,दारुहलदी, आंबा हलदी,मँजीठ, हींग,सफेद सरसों और सिरसके बीज इन सबके चूर्णको बकरीके मूत्रमें घोटकर अंजन और नस्य कर्ममें प्रयुक्त करनेसे उन्माद, ग्रह और अपस्मार रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ७७ ॥

पिष्ट्वा तुल्यमपामार्गं हिङ्गुलं हिङ्गुपत्रिकाम् ।
वर्त्तिः स्यान्मरिचार्द्धांशा पित्ताभ्यां गोशृगालयोः ॥ ७८॥
तथाञ्जयेदपस्मारभूतोन्मादज्वरार्दितान् ।
भूतार्त्तानमरार्त्तांश्च नरार्त्तांश्चैव गोमये ॥ ७९ ॥
मरिचञ्चातपे मासं सपित्तं स्थितमञ्जनम् ।
वैकृतं पश्यतः कार्य्यं दोषभूतहतस्मृतेः ॥ ८० ॥

अपामार्गके बीज हिंगुल (सिंगरफ) हिंगपत्री इन सबको समानभाग लेकर इन सबसे आधी काली मिर्च मिला गोघृत और शृगालके पित्तमें मिलाकर बत्ती बनावे इस बत्तीको आग लगाकर इसके नीचे कांसीके पात्र रख देवे। इस बत्तीके जलते समय इसमेंसे जो स्नेह उस पात्रमें टपके उस स्नेहका अंजन करनेसे अपस्मार, भूतोन्माद, विषमज्वर, भूतावेश, देवताओंका आवेश यह सब दूर होते हैं अथवा कालीमिर्चको गोबरके रस और गीदडके पित्तमें मिलाकर एक महीना धूपमें रक्खे। फिर इसका अंजन करे तो भूतोन्मादसे हुई विकृत दृष्टि और उन्मादका स्मृतिभ्रंश यह दूर होते हैं ॥ ७८-८० ॥

सिद्धार्थकादि अगद।

सिद्धार्थको वचा हिङ्गु करञ्जे देवदारु च ।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक्कटुत्रिकम् ॥ ८१ ॥
समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ।
वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ ८२ ॥
नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्वर्त्तनं तथा ।
अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहः ॥ ८३ ॥
भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते ।
सर्पिरेतेन सिद्धं वा सगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ ८४ ॥

सफेद सरसों, हींग, करंजुएके फल, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, श्वेता, कटभीकी छाल, त्रिकुटा, फूलप्रियंगु, शिरसकी छाल, हलदी और दारुहलदी इन सबको बकरीके मूत्रमें, पीसलेवे तो इसको अगद कहते हैं इस अगदको पीनेमें, अंजनमें, लेपनमें, नस्यमें, स्नानमें तथा उद्वर्त्तनमें प्रयोग करनेसे अपस्मार, विषदोष, उन्माद, अलक्ष्मी और ज्वर यह सब नष्ट होते हैं। इसके प्रभावसे भूतादिकोंसे भय नहीं रहता। इसका अंजन कर राजद्वारमें जानेसे सिद्धि होती है, इन्हीं औषधियोंमें गोमूत्र डालकर सिद्ध कियाहुआ घृत भी उपरोक्त संपूर्ण गुणोंको करता है ॥ ८१-८४ ॥

धूमवर्ती।

प्रसेके पीनसे गन्धैर्धूमवर्तिं कृतां पिबेत्।
वैरेचनिकधूमोक्तैः श्वेताद्यैर्वा सहिंगुभिः ॥ ८५ ॥
शल्लकोलूकमार्जारजम्बूकवृकवस्तजैः।
मूत्रपित्तशकृल्लोमनखैश्चर्मभिरेव च ॥ ८६ ॥
सेकाञ्जनं प्रधमनं नस्यं धूमञ्च कारयेत् ॥ ८७ ॥

यदि उन्मादरोगमें मुखसे लार बहे और प्रतिश्याय हो तो वैरेचनिक धूमोंमें कहेहुए सुगन्धि द्रव्योंसे अथवा श्वेत अपराजिता आदि द्रव्योंसे हींग मिलाकर बनाई हुई धूमवर्तीका प्रयोग करै अथवा सेह, उल्लू, बिल्ली, गीदड, भेडिया और बकरी इनके मूत्र, पित्त, विष्ठा, केश, नख, और त्वचा इन सबको सेक, अंजन, प्रधमन, नस्य और धूमकर्ममें प्रयुक्त करे ॥ ८५-८७ ॥

वातश्लेष्मात्मके प्रायः पैत्तिके च प्रशस्यते।
तिक्तकं जीवनीयञ्च सर्पिः स्नेहश्च मिश्रकः।
शीतानि चान्नपानानि मधुराणि मृदूनि च ॥ ८८ ॥

वात, कफ और पित्तसे उत्पन्नहुए उन्मादरोगमें तिक्तक घृत, जीवनीय घृत और मिश्रक स्नेह, शीतल मधुर और कोमल अन्नपानका प्रयोग करना चाहिये, किन्तु वात और कफके उन्मादमें उपरोक्त धूम और अंजन भी हितकारी होते हैं ॥ ८८ ॥

फस्त उन्मादनाशक अन्य प्रयोग।

शंखकेशान्तसन्धौ वा मोक्षयेज्ज्ञो भिषक् शिराम्।
उन्मादे विषमे चैव ज्वरेऽपस्मार एव च ॥ ८९ ॥
घृतमांसवितृप्तं वा निवाते स्थापयेत् सुखम्।
त्यक्त्वा मतिस्मृतिभ्रंशं संज्ञां लब्ध्वा प्रबुध्यते ॥ ९० ॥

आश्वासयेत्सुहृद्वा तं वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः।
ब्रूयादिष्टविनाशं वा दर्शयेदद्भुतानि वा ॥ ९१ ॥
बद्ध्वा सर्षपतैलाक्तं न्यसेद्वोत्तानमातपे।
कपिकच्छ्वाथवा तप्तलौहतैलजलैः स्पृशेत् ॥ ९२ ॥
कशाभिस्ताडयित्वा वा सुबद्धं विजने गृहे।
रुन्ध्याच्चेतो हि विभ्रान्तं भजत्यस्य यथा शमम् ॥ ९३ ॥

उन्माद और विषमज्वरमें तथा अपस्मार रोगमें शस्त्रप्रयोगविधि जाननेवाला वैद्य शंखस्थान अथवा गर्दनको पीछेकी शिरा वेधनकर रक्त निकाले। उन्मादरोगीको घृत अथवा मांस तृप्तिपूर्वक भक्षण करा निर्वातस्थानमें सुखपूर्वक बिठावे ऐसा करनेसे भी उसकी बुद्धि और स्मृति ठीक होकर संज्ञालाभ होता है। अथवा उन्माद रोगीको उसके इष्ट मित्र धर्म और अर्थयुक्त वाक्योंसे आश्वासन करे फिर उस रोगीकी प्यारी वस्तुका नाश होना सुनावे अथवा कोई अन्य आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली वस्तुको दिखावे। तथा सरसोंका तेल संपूर्ण शरीरमें मलकर रस्सीसे बांध धूपमें सीधा (उत्तान) लेटावे। अथवा कौंचकी फली या गर्म लोहा अथवा गरम तैल या गरम जल रोगीके शरीरको छुवावे। या निर्जन स्थानमें लेजाकर रस्सियोंसे दृढ बांधकर कोडे मारे। अथवा किसी अन्यप्रकार इसके विभ्रान्त चित्तको ऐसा शान्त करे कि, जिससे वह शान्तिको प्राप्त हो ॥ ८९-९३ ॥

सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तम्।
त्रासयेच्छस्त्रहस्तैर्वा तस्करैः शत्रुभिस्तथा ॥ ९४ ॥
अथवा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयुतम्।
त्रासयेयुर्वधेनैनं तर्जयन्तो नृपाज्ञया ॥ ९५ ॥
देहदुःखभयेभ्यो हि परं प्राणभयं महत्।
तेन याति शमं तस्य सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ ९६ ॥
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते।
तस्य तत्सदृशप्राप्तिशान्त्याश्वासैः शमं नयेत् ॥ ९७ ॥

अथवा जिस सांपके दांत उखाडे हुए हों ऐसे निर्विष सांपसे कटवादे, अथवा सिंह या हाथीसे डरावे, या हाथमें नंगे शस्त्रयुक्त चारों ओर शत्रुओंसे डरवावे। अथवा राजाके कर्मचारी (सिपाही) बांधकर बाहर लेजावे और बाहर लेजाकर इसको

राजाकी आज्ञासें अनेक प्रकारके त्रास और ताडन आदिसे क्षुभित करैं तथा शारीरक दुःखोंका भय अथवा प्राण नाश करनेका भय दिखावें उससे सब प्रकार विप्लुत हुआ मन शान्तिको प्राप्त होता है किसी प्यारी वस्तुके नष्ट होनेसे उन्माद हुआ हो तो उसको उसी प्यारी वस्तुके समान अन्य वस्तु देवे अथवा समझा बुझाकर शान्ति देवे ॥ ९४-९७ ॥

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ ९८ ॥

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभसे जो उन्माद उत्पन्न होते हैं उनमें जो जिस कारणसे उत्पन्न हुआहो उससे प्रतिद्वंद्वी (विरोधी) कर्मद्वारा शांत करे जैसे शोकोद्भव उन्मादको हर्षद्वारा शान्त करना ॥ ९८ ॥

चिकित्सा क्रम।

बुद्ध्वा देशं वयः सात्म्यं दोषं कालं बलाबलम् ।
चिकित्सितमिदं कुर्य्यादुन्मादे भूतदोषजे ॥ ९९ ॥

भूतादियोंके आवेशसे उत्पन्न हुए उन्मादमें और वातादिजनित निज उन्मादमें देश, अवस्था, सात्म्य, दोष, काल और बलाबल इन सबको जानकर चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९९ ॥

उन्मादमें दैवीयत्न।

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य तु बुद्धिमान् ।
वजयदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म च ॥ १०० ॥
सर्पिष्पानादि तस्येह मृदुभैषज्यमाचरेत् ।
पूजां बल्युपहारांश्च मन्त्राञ्जनविधींस्तथा ॥ १०१ ॥
शान्तिकर्मेष्टिहोमांश्च जप्यस्वस्त्ययनानि च ।
वेदोक्तान्नियमांश्चापि प्रायश्चित्तानि चाचरेत् ॥ १०२ ॥

देवता, ऋषि, पितृगण और गन्धर्वोंसे उत्पन्न हुए उन्मादमें बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण अंजन और ताडनादि क्रूर कर्म न करे। किन्तु घृतपानादि मृदु औषधप्रयोग और पूजा, बलिदान, उपहार, मन्त्र, पवित्र अंजन, शांतिकर्म, वेदविधिसे यज्ञ, होम, जप, स्वस्तिकर्म करे तथा वेदोक्त नियमोंका पालन करे और प्रायश्चित्तादि शुभ आचरण करे ॥ १००-१०२ ॥

भूतानामधिपं देवमीश्वरं जगतः प्रभुम् ।
पूजयन् प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादजं भयम् ॥ १०३ ॥

जो मनुष्य गण गणेशादि सहित भूतोंके पति, महेश, जगत्के स्वामी महादेवको नित्य यताचित्त हो पूजन करता है वह उन्मादसे होनेवाले भयसे छूट जाता है १०३॥

रुद्रस्य प्रमथा नाम गणा लोके चरन्ति ये ।
तेषां पूजां च कुर्वाण उन्मादेभ्यो विमुच्यते ॥ १०४ ॥

महादेवजीके प्रमथ नाम गण जो संसारमें विचरते हैं उनका पूजन करनेवाले मनुष्य भूतोन्माद रोगसे छूट जाता है ॥ १०४ ॥

बलिभिर्मङ्गलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः ।
सत्याचारतपोज्ञानप्रदाननियमव्रतैः ॥ १०५ ॥
देवगुह्यकविप्राणां गुरूणां पूजनेन च ।
आगन्तुः प्रशमं याति सिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ॥ १०६ ॥

बलिदान, मंगलकर्म और होम करनेसे, पवित्र औषध और अगदके धारणसे, सत्य आचार, तप, ज्ञान, दान, नियम और व्रत करनेसे, देवता, गुह्यक, ब्राह्मण और गुरुजनोंके पूजनसे आगंतु उन्माद शांत होजाते हैं । तथा सिद्धमंत्रों और औषधियोंसे भी शांत होजाते हैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारे चिकित्सिते ।
उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद्धेतुदूष्ययोः ॥ १०७ ॥

अपस्माररोग चिकित्सामें जो विधि वर्णन करेंगे हेतु, दूष्योंमें समानता होनेसे उन्मादरोगमें भी उस विधिका आचरण करना चाहिये ॥ १०७ ॥

पवित्रजनोंको उन्माद न होना ।

निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः ।
निजागन्तुभिरुन्मादैः सत्त्ववान्न स युज्यते ॥ १०८॥

जो मनुष्य मांस मद्यका स्पर्श भी नहीं करते और पवित्र हित भोजन करते हैं तथा जितेन्द्रिय और पवित्र रहते हैं उनको निज या आगंतु उन्माद होता नहीं१०८

उन्मादमुक्तके लक्षण ।

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ १०९ ॥

इन्द्रिय, बुद्धि, आत्मा और मन इनकी प्रसन्नता होना और सब धातुओंका प्रकृतिस्थ होना यह उन्मादमुक्त होनेके लक्षण हैं ॥ १०९ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकः-उन्मादानां समुत्थानं लक्षणं सचिकित्सितम्।

निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान्भिषगुत्तमः ॥ ११० ॥

इति चरक० चि० उन्मादचिकित्सितं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस उन्मादचिकित्सित, अध्यायमें निज और आगंतु उन्मादका कारण लक्षण और चिकित्साको वैद्यशिरोमणि आत्रेयजीने वर्णन किया ॥ ११० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-
निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-
भाषाटीकायां उन्मादचिकित्सितं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः।

अथातोऽपस्मारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम अपस्मार (मृगी) चिकित्सानामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

स्मृतेरपगमं प्राहुरपस्मारं भिषग्विदः।

तमःप्रवेशबीभत्सचेष्टं धीसत्त्वसंप्लवात् ॥ १ ॥

स्मरणशक्तिके नष्ट होनेको वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले अपस्मार कहते हैं। इसमें स्मृतिके नष्ट होनेसे बुद्धि और मन उपहत होकर मनुष्य अंधकारमें प्रवेश करता है तब इसकी भयानक चेष्टा होजाती है ॥ १ ॥

अपस्मारके कारण।

विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजिनाम्।

रजस्तमोभ्यां विहते सत्त्वे दोषावृते हृदि ॥ २ ॥

चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा।

मनस्यभ्याहते नृणामपस्मारः प्रवर्तते ॥ ३ ॥

जिनका चित्त विभ्रांत हो, जिनके शरीरमें दोषोंकी अधिकता हो, जो अहित और अपवित्र भोजन करते हों, जिनका सत्त्वगुण रज और तमसे नष्ट हो गयाहो, जिनका

हृदय दोषोंसे ढका जाय उन मनुष्योंको तथा चिन्ता, काम, भय, क्रोध, शोक और उद्वेग आदिकोंसे मनुष्योंका मन अविहत होकर अपस्मार (मृगी) रोगकी प्रवृत्ति होती है ॥ २ ॥ ३ ॥

अपस्मारके लक्षण।

धमनीभिः श्रिता दोषा हृदयं पीडयन्ति हि।
सम्पीड्यमानो व्यथते मूढो भ्रान्तेन चेतसा ॥ ४ ॥
पश्यत्यसन्ति रूपाणि पतति प्रस्फुरत्यपि।
जिह्वाक्षिभ्रूस्रवल्लालो हस्तौ पादौ च विक्षिपन्।
दोषवेगे च विगते सुप्तवत्प्रतिबुद्ध्यते ॥ ५ ॥

वातादिदोष हृदयमूला धमनियोंमें प्रवेश कर हृदयको पीडन करते हैं तब यह पीडित हृदयवाला मनुष्य व्यथित होता है और चित्तके विभ्रांत होनेसे मूढ (बेहोश) होजाता है। उस समय इनको असत् रूप दिखाई देवें तथा बेहोश होकर पृथ्वीपर गिरपडे फडकने लगे इसके नेत्र और भृकुटियें टेढीसी होजांय, मुखसे लार गिरे, हाथपांवोंको इधर उधर पटके, दोषोंका वेग शान्त होनेपर आरोग्य मनुष्यके समान उठकर स्वस्थ अवस्थामें होजाय। यह अपस्माररोगके रूप हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अपस्मारके ४ भेद।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च वक्ष्यते स चतुर्विधः ॥ ६ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे अपस्मार रोग चार प्रकारका कहा है। अब उनके लक्षणोंको कहते हैं ॥ ६ ॥

वातापस्मारके लक्षण।

कम्पते दशते दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि।
परुषाणि च कृष्णानि पश्येद् रूपाणि चानिलात् ॥ ७ ॥

शरीरका काँपना, दाँतोंका विसना वा कटकटाना, मुखसे झाग गिरना, श्वास होना तथा रोगीको कठोर और काले वर्णके रूप दिखाई देना। यह वातजनित अपस्मारके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

पित्तापस्मारके लक्षण।

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः।
सतृष्णश्चानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ८ ॥

पित्तके अपस्मारमें मुखसे पीले रंगकी झाग गिरना, अंग. मुख और नेत्रोंका पीला होना, रोगीको पीले और लाल रूपोंका दिखाई पडना, प्याससे व्याकुल होना और संपूर्ण जगत्में अग्नि प्रज्वलित हुईसी दिखाई पडना यह लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

कफके अपस्मारके लक्षण।

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः।
पश्यञ्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात्॥ ९॥

मुखसे सफेद झाग गिरना, अंग, मुख, नेत्र यह सफेद होना, सब अंगोंका शीतल रोमांचयुक्त और भारी होना, सफेद रूपोंका दिखाई देना तथा अपस्मारका वेग बहुत देरमें दूर होना यह कफजनित अपस्मारके लक्षण हैं॥ ९॥

सन्निपातके अपस्मारके लक्षण।

सर्वैरेतैः समस्तैस्तु लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः।
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः॥ १०॥

जिस अपस्मारमें तीनों दोषोंके लक्षण हों उसको सन्निपातजनित अपस्मार जानना। सन्निपातके सब लक्षणोंवाला अपस्मार तथा क्षीण मनुष्योंका एकदोषज अपस्मार भी असाध्य होता है और बहुत दिनोंका पुराना अपस्मार भी असाध्य होजाता है॥ १०॥

अपस्मारके वेगका समय।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः।
अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथान्तरम्॥ ११॥

कुपितहुए वातादि दोष बारहवें दिन अथवा पंद्रहवें दिन या एक महीनेमें अपस्मार रोगके वेग (दौरा) को करते हैं अथवा कभी इस नियममें अन्तर भी होजाता है अर्थात् पुराना होनेपर या किसी अन्य कारणसे नित्य या आगे पीछे भी होने लगता है॥ ११॥

चिकित्साक्रम।

तैरावृतानां हृत्स्रोतोमनसां संप्रबोधनम्।
तीक्ष्णैरादौ भिषक् कुर्य्यात् कर्मभिर्वमनादिभिः॥ १२॥
वातिकं बस्तिभूयिष्ठैः पैत्तं प्रायो विरेचनैः।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारं समाचरेत्॥ १३॥
सर्वतः सुविशुद्धस्य सम्यगाश्वासितस्य च।
अपस्मारविमोक्षार्थं योगान् संशमनाञ्छृणु॥ १४॥

अपस्मार रोगमें दोषोंसे आवृत हुए हृदय और मनको वहन करनेवाले स्रोतोंको स्वच्छ तथा मनको चैतन्य करनेके लिये वैद्य प्रथम तीक्ष्ण वमनादिद्वारा शोधन

करावे। वातसे उत्पन्नहुए अपस्मारमें वास्तिकर्मद्वारा, पित्तसे उत्पन्न हुएमें विरेचनद्वारा, कफजानितमें वमनद्वारा प्रायः शरीर शुद्ध करना चाहिये। इस प्रकार सर्वतः शुद्ध काय होनेपर रोगीको उत्तम दृढ बातोंद्वारा आश्वासन (दिलासा) देवे। फिर नीचे लिखी औषधियोंका प्रयोग करे उन अपस्मार नाशक संशमनयोगोंको श्रवण करो ॥ १२–१४ ॥

पञ्चगव्य घृत।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम्।
सिद्धं पिबेदपस्मारकामलाज्वरनाशनम् ॥ १५ ॥

गोबरका रस, दही, दूध, गोमूत्र और गोघृत इन पांचोंको समभाग लेकर पकावें घृतमात्र शेष रहनेपर छानकर रखलेवे। इस घृतके पीनेसे अपस्मार (मृगी) रोग, कामला और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

महापञ्चगव्य घृत।

द्वे पञ्चमूले त्रिफला रजन्यौ कुटजत्वचम्।
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ १६ ॥
सम्पाकं फल्गुमूलञ्च पौष्करं सदुरालभम्।
द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ॥ १७ ॥
भार्ङ्गीं पाठां त्रिकटुकां त्रिवृतां निचुलानि च।
श्रेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ॥ १८ ॥
द्वे शारिवे रोहिषञ्च भूतीकं मदयन्तिकाम्।
क्षिपेत्पिष्ट्वाक्षमात्राणि तेन प्रस्थं घृतात्पचेत् ॥ १९ ॥
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः।
पञ्चगव्यमिति ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ॥ २० ॥
अपस्मारे तथोन्मादे श्वयथावुदरेषु च।
गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषु कामलासु भगन्दरे।
अलक्ष्मीग्रहरोगघ्नं चातुर्थिकाविनाशनम् ॥ २१ ॥

लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल, त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, कुडाकी छाल, सप्तपर्ण (सतौना) की छाल, अपामार्ग, नीलिनी, कुटकी, अमलतासका गूदा, कठूमर पोहकरमूल और जवासा इन सबको दो दो पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर इसमें भारंगी, पाढ, त्रिकुटा, निशोथ,

निचुल (वेतस), गजपीपल, आढकी (अरहर), मूर्वा, दन्ती, चिरायता, चित्रक, दोनों शारिवा, रोहिषतृण, अजवायन और मालिका इन सबका एक एक अक्ष (२ तोले) लेकर बारीक पीसकर मिलावे। घृत एक प्रस्थ, गोबरका रस एक प्रस्थ, गोमूत्र एक प्रस्थ, दही एक प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। जब सब पानी आदि जलकर घृतमात्र शेष रहे तो इसको छानकर पात्रमें भरलेवे। यह महापञ्चगव्य नामक घृत अमृतके समान गुणकारी है। इसके सेवनसे अपस्मार (मृगी), उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्मरोग, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगन्दर, अलक्ष्मी, ग्रहदोष और चौथैया ज्वर यह सब नष्ट होते हैं॥ १६-२१॥

अन्य घृत।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेव च।
पुराणं घृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित्॥ २२॥

ब्राह्मीका स्वरस, वच, कूठ और शंखपुष्पीसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करनेसे उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप दूर होते हैं॥ २२॥

घृतं सैन्धवहिङ्गुभ्यां वार्षे बास्ते चतुर्गुणे।
मूत्रे सिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशनम्॥ २३॥

सेंधानमक और हींगका कल्क एक पाव, घृत एक सेर, बैल और बकरेका मूत्र चार सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत अपस्मार, हृदयविकार और ग्रहदोषको दूर करता है॥ २३॥

वचासम्पाककैटर्य्यवयःस्थाहिङ्गुरोचकैः।
सिद्धं पलङ्कषायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मके घृतम्॥ २४॥

वच, अमलतास, कायफल, बहेडा, हींग, राजपलाण्डु और गूगल इनके कल्कसे सिद्ध कियेहुए घृतको सेवन करनेसे वातापस्मार और कफापस्मार दूर होते हैं॥२४॥

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः।
क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम्॥ २५॥

पुराना घृत एक प्रस्थ, जीवनीयगणकी सब औषधियें एक एक पल, दूध एकद्रोण इन सबको मिलाकर पकावे। स्नेह (घृत तेल) मात्र शेष रहनेपर छानकर पात्रम भरलेवे इस यमकस्नेहको पीने और मालिश करनेसे अपस्माररोग दूर होता है॥२५॥

कंसे क्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्य्येऽष्टगुणे रसे।
कार्षिकैर्जीवनीयैश्च घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ २६॥

वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारं नियच्छति ।
तद्वत्काशविदारीक्षुकुशक्काथशृतं घृतम् ॥ २७ ॥

दूध एक आढक, ईखका रस एक आढक, काश्मरी (कंभारी) का क्वाथ ८ प्रस्थ, जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधी एक एक कर्ष इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस घृतके सेवनसे वातज अपस्मार और पित्तज अपस्मार शान्त होते हैं । अथवा किसी प्रकार कांसकी जड, विदारीकन्द, ईखकी जड, कुशाकी जड इन सबको जवकूट कर क्वाथ बनावे । उस क्वाथसे और जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कसे सिद्ध किया घृत भी पूर्वोक्त गुणको करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

मधुकद्विपले कल्के द्रोणे चामलकीरसात् ।
तद्वत्सिद्धो घृतप्रस्थः पित्तापस्मारभेषजम् ॥ २८ ॥

मुलैठी दो पल लेकर उसको बारीक पीसकर कल्क बनावे । आंवलेका रस एक द्रोण, पुराना घी एक प्रस्थ इन सबको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर सेवन कियाजाय तो पित्तज अपस्मारको दूर करता है ॥ २८ ॥

अभ्यङ्गः सार्षपं तैलं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रे स्नानोत्सादनमेव च ॥ २९ ॥

सरसोंका तेल एक भाग, बकरेका मूत्र चार भाग इन दोनोंको मिलाकर पकावे । जब मूत्र जलकर तेलमात्र शेष रहे तो उसको छानकर ठण्डा करलेवे । इस तैलकी मालिश कर गौके गोबरको उबटनेके समान मल गोमूत्रसे स्नान करडाले तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ २९ ॥

कटभीनिम्बकट्वङ्गमधुशिग्रुत्वचां रसे ।
सिद्धं मूत्रसमं तैलमभ्यङ्गार्थं प्रशस्यते ॥ ३० ॥

कटभी, नीमकी छाल, सोनापाठेकी छाल, मुलैठी और सहजनेकी छाल इन सबका क्वाथ करके वह क्वाथ और गोमूत्र तथा समान भाग तेल इन सबको मिलाकर सिद्ध करे सिद्ध होनेपर इस तैलकी मालिश करे तो अपस्माररोग दूर हो ॥ ३० ॥

पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः ।
जटिलापूतनाकेशीनाकुलीहिङ्गुचोरकैः ॥ ३१ ॥
लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम् ।
मांसाशिनां यथालाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥ ३२ ॥

सिद्धमभ्यञ्जनं तैलमपस्मारविनाशनम् ।
एतैश्चैवौषधैः कार्य्यं धूपनं सम्प्रलेपनम् ॥ ३३ ॥

पलंकषा (गूगुल या लाव), वच, हरड, वृश्चिकपत्री, आक, सफेद सरसों, पूतना, हरड, जटामांसी, रास्ना, हींग, राजपलाण्डु, लहसन, अतिरसा, चित्रक, कूठ और मांसाहारी पक्षियोंकी विष्ठा और मूत्र जितना मिलसके, इन सबको लेकर तेल और तेलसे चारगुना बकरेका मूत्र मिला तेल सिद्धकरे इस तेलकी मालिश कर-नेसे अपस्माररोग दूर होता है । इन्हीं औषधियोंकी धूप देनेसे अथवा लेप करनेसे भी अपस्मार दूर होता है ॥ ३१–३३ ॥

पिप्पलीं लवणं शिग्रु हिङ्गु हिङ्गुशिवाटिकाम् ।
काकोलीं सर्षपान् काकनासां कैटर्य्यचन्दने ॥ ३४ ॥
शुनः स्कन्धास्थिनखरान् पर्शुकांश्चेति पेषयेत् ।
बस्तमूत्रेण पुष्यर्क्षे प्रदेहः स्यात्सधूपनः ॥ ३५ ॥

पीपल, सेंधानमक, हींग, सहजना, वंशपत्री, काकोली, पीली सरसों, काकनासा, कायफल, लालचंदन, कुत्तेके कंधेकी हड्डी और नख तथा पसवाडेकी अस्थिको पुष्यनक्षत्रमें लाकर इन सबको बकरीके मूत्रमें पीस लेपकरने और धूनी देनेसे अप-स्मार रोग दूर होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः ।
उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ ३६ ॥

काली तुलसी, हरड, कूठ, बालछड और चोरक इनको गोमूत्रमें रगडकर शरी-रपर मले और गोमूत्रमें घोलकर सेचनकरे तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ ३६ ॥

जलौकाशकृता तद्वद्दग्धैर्वा बस्तलोमभिः ।
खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथा गोपुच्छलोमभिः ॥ ३७ ॥

जलौकाकी विष्ठाका लेप अथवा बकरेके बालोंकी भस्म, गधेकी हड्डी, हाथीके नख तथा गोपुच्छके बाल इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अपस्मार दूर होता है ॥ ३७ ॥

कपिलानां गवां मूत्रं नावनं परमं हितम् ।
श्वशृगालबिडालानां सिंहादीनाञ्च शस्यते ॥ ३८ ॥

कपिला गौके मूत्रकी नस्य लेना अपस्मार रोगमें परम हितकारी है । तथा कुत्ते, गीदड, बिल्ली और सिंह आदिके मूत्रोंकी नस्य लेना भी गुणकारी है ॥ ३८ ॥

भार्ङ्गी वचा नागदन्ती श्वेता श्वेताविषाणिका ।
ज्योतिष्मती नागदन्ती पादोक्ता मूत्रपेषिताः ॥ ३९ ॥
योगास्त्रयोऽतः षड्बिन्दून्पञ्च वा नावयेद्भिषक् ॥ ४० ॥

१–भारंगी,वच और नागदन्ती। २–श्वेत अपराजिता, सफेद दूब और मेढासिंगी। ३–मालकांगुनी और नागदंती; इन तीनों योगोंमेंसे किसी एकको गोमूत्रमें पीसकर अपस्माररोगीके नाकमें पांच या छः बूंद टपकावे तो अपस्मारका वेग दूर होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

त्रिफलाव्योषपीतद्रुयवक्षारफणिज्झकैः ।
श्यामापामार्गकारञ्जफलैर्मूत्रेऽथ बास्तजे ।
साधितं नावनं तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४१ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, दारुहलदी, जवाखार, फणिज्झक, तुलसी, फूलप्रियंगु, पुठकण्डेके बीज, करंजुएके फल इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर सिद्ध किये तैलकी नस्य देनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ ४१ ॥

पिप्पली वृश्चिकाली च कुष्ठञ्च लवणानि च ।
भार्ङ्गी च चूर्णितं नस्तः कार्य्यं प्रधमनं परम् ॥ ४२ ॥

पीपल, वृश्चिकपत्री, कूठ, सेंधानमक, भारंगी इन सबका बारीक चूर्णकर नस्य सूंघनी लेवे तो अपस्मारका वेग (मूर्च्छा) दूर हो ॥ ४२ ॥

कायस्थाञ्छारदान्मुद्गान् मुस्तोशीरयवांस्तथा ।
सव्योषान्बस्तमूत्रेण पिष्ट्वा वर्त्तीः प्रकल्पयेत् ॥ ४३ ॥
अपस्मारे तथोन्मादे सर्पदष्टे तथार्दिते ।
विषपीते जलमृते चैताः स्युरमृतोपमाः ॥ ४४ ॥

काली तुलसी, मुद्गपर्णी (वा शरद ऋतुके मूंग) नागरमोथा, खश, यव और त्रिकुटा इन सबको बकरीके मूत्रमें रगडकर छोटी २ बत्तियें बनालेवे । इस बत्तीको नेत्रोंमें अंजन करनेसे अपस्मार, उन्माद, सांपका विष, अर्दित रोग, विषविकार और जलमें डूबनेसे उत्पन्नहुई बेहोशी यह सब दूर होते हैं । यह बत्ती अमृतके समान गुणकारी है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

मुस्तं वयःस्थां त्रिफलां कायस्थां हिंगु शाद्वलम् ।
योषं माषान् यवान् मूत्रैर्बस्तमेषर्षभैस्त्रिभिः ॥ ४५ ॥

पिष्ट्वा कृत्वा च तां वर्त्तिमपस्मारे प्रयोजयेत्।
किलासेषु तथोन्मादे ज्वरेषु विषमेषु च ॥ ४६ ॥

नागरमोथा, गिलोय, त्रिफला, काली तुलसी, हींग, दूब, त्रिकुटा, उडद और यव इनको बकरे, मेंढे तथा बैलके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनावे। इस बत्तीका अंजन करनेसे अपस्मार, किलास, उन्माद और विषमज्वर यह दूर होते हैं॥ ४५ ॥ ४६ ॥

पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम्।
तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं मतम् ॥ ४७ ॥

पुष्य नक्षत्रमें निकालाहुआ कुत्तेका पित्ता नेत्रोंमें आंजनेसे अपस्मार दूर होता है। अथवा इस पित्तेको घृतमें मिलाकर धूप देनेसे अपस्मार अवश्य दूर होता है॥४७॥

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः।
तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ ४८ ॥

नेवला, उल्लू, बिल्ली, गीध, कीटाहि तथा कौवेकी चोंच, पंख और बीटकी धूनी देनेसे अपस्मारकी मूर्च्छा दूर होती है॥ ४८ ॥

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्हृदयं संप्रबुध्यते।
स्रोतांसि चापि शुध्यन्ति ततः संज्ञां स विन्दति ॥ ४९ ॥

इन उपरोक्त सिद्ध क्रियाओंके करनेस हृदयमें चैतन्यता और स्रोतोंकी शुद्धि होकर बेहोशी दूर होती है॥ ४९ ॥

यस्यानुबन्धं त्वागन्तुदोषलिङ्गाधिकाकृतिम्।
पश्येत्तस्य भिषक् कुर्यादागन्तून्मादभेषजम् ॥ ५० ॥

जिस अपस्मारवाले रोगीमें आगन्तु अनुबंधके लक्षण (आकार) दिखाई देवें उसकी आगन्तु उन्मादके समान चिकित्सा करनी चाहिये॥ ५० ॥

महागदका वर्णन।

अनन्तरमुवाचेदमग्निवेशः कृताञ्जलिः।
भगवन्! प्राक्समुद्दिष्टः श्लोकस्थाने महागदः ॥ ५१॥
अतत्त्वाभिनिवेशश्च तस्य व्यक्तिरिहोच्यताम्।
शुश्रूषवे वचः श्रुत्वा शिष्यायाह पुनर्वसुः।
महागदं सौम्य! शृणु सहेत्वाकृतिभेषजम् ॥ ५२ ॥

इसके अनन्तर अग्निवेश हाथ जोडकर पूछनेलगे कि, हे भगवन्! पहिले आपने सूत्रस्थानमें महागदका कथन किया है। वह महागद मनसे संबंध रखनेवाला अर्थात्

ज्ञानके नष्ट होनेसे मनोमय विकारको महागद कहा है सो उसके विषयमें कृपाकर स्पष्टरूपसे वर्णन कीजिये। यह सुनकर भगवान् पुनर्वसुजी सुननेकी इच्छावाले अपने शिष्य अग्निवेशसे कहनेलगे कि, हे सौम्य! महागदके हेतु, लक्षण और चिकित्साको श्रवण करो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मलिनाहारशीलस्य वेगान् प्राप्तान्निगृह्णतः।
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्हेतुभिश्चातिसेवितैः ॥ ५३ ॥
हृदयं समुपाश्रित्य मनोबुद्धिवहाः शिराः।
दोषाः संदूष्य तिष्ठन्ति रजोमोहावृतात्मनः ॥ ५४ ॥
रजस्तमोभ्यां वृद्धाभ्यां बुद्धौ मनसि चावृते।
हृदये व्याकुले दोषैरथ मूढोऽल्पचेतनः ॥ ५५ ॥
करोति विषमां बुद्धिं नित्यानित्ये हिताहिते।
अतत्त्वाभिनिवेशं तमाहुराप्ता महागदम् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य नित्य मलिन अथवा मलकारक अन्नका सेवन करता है और मलमूत्रादि आये हुए वेगोंको रोकता है तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि हेतुओंका अत्यंत सेवन करता है उस मनुष्यके कुपितहुए दोष हृदयका आश्रय ले मन और बुद्धिकी वहन करनेवाली शिराओंको दूषितकर स्थित होजाते हैं तब रजोगुण और तमोगुण बढकर बुद्धि और मनको ढक लेते हैं उस समय इसके हृदयमें व्याकुलता होती है तब यह मनुष्य अल्प चेतना युक्त और जड होजाता है। हित और अहितमें इसको विषम बुद्धि होजाती है। इसको आप्तपुरुष "अतत्त्वाभिनिवेश" नामक महागद कहते हैं ॥ ५३-५६ ॥

महागदकी चिकित्सा।

स्नेहस्वेदोपपन्नं तं संशोध्य वमनादिभिः।
कृतसंसर्जनं मेध्यैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ ५७ ॥

इस महागदरोगमें स्नेहन और स्वेदन करके वमनादि संशोधन द्वारा शुद्ध शरीर कर पेयादि विधिका सेवन करावे और मेधाजनक अन्नपानोंका सेवन करावे ॥ ५७ ॥

ब्राह्मीस्वरससंयुक्तं पञ्चगव्यमुदाहृतम्।
तत्सेव्यं शंखपुष्पी च यच्च सेव्यं रसायनम् ॥ ५८ ॥

तथा पूर्वोक्त ब्राह्मीरससंयुक्त घृत, पंचगव्य घृत, महापंचगव्य घृत, शंखपुष्पीका रस और रसायन प्रयोगोंका सेवन कराना चाहिये ॥ ५८ ॥

अपस्मार रोगीकी रक्षा।

सुहृदश्चानुकूलास्तं स्वाप्तधर्मार्थवादिनः।
संयोजयेयुर्विज्ञानधैर्य्यस्मृतिसमाधिभिः ॥ ५९ ॥

उसके हितकारी सुहृद् तथा धर्म अर्थके जाननेवाले प्रामाणिक योग्य पुरुष ज्ञान, धैर्य और स्मरण शक्तिको स्थापन करनेवाले वाक्योंसे उसको बुद्धिसम्पन्न करें ५९॥

प्रयुञ्ज्यात्तैललशुनं पयसा वा शतावरीम्।
ब्राह्मीरसं कुष्ठरसं वचां वा मधुसंयुताम् ॥ ६० ॥

तथा तैलके साथ लहसुन अथवा दूधके साथ शतावरका रस एवं शहतके साथ ब्राह्मीका रस अथवा कूठका रस सेवन करावे तो अतत्त्वाभिनिवेश (विपरीत-बुद्धि) नामक महागद दूर होता है ॥ ६० ॥

दुश्चिकित्स्यो ह्यपस्मारश्चिरकारी कृतास्पदः।
तस्माद्रसायनैरेनं प्रायशः समुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

अपस्मार रोग दुश्चिकित्स्य होता है यह रोग बहुत कालतक रहनेवाला और बद्ध-मूल होता है। इसलिये इसमें प्रायः सदाही रसायन प्रयोगोंका सेवन कराना चाहिये॥

जलाग्निद्रुमशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा।
रक्षेदुन्मादिनश्चैव सद्यः प्राणहरा हि ते ॥ ६२ ॥

अपस्मार रोगीको और उन्माद रोगीको जल, अग्नि, वृक्ष और विषमस्थानोंसे सदा ही बचाकर रखना चाहिये। क्योंकि यह सब अपस्मार रोगवाले मनुष्यके शीघ्र प्राणोंको हरनेवाले होते हैं ॥ ६२ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ—हेतुं कुर्वन्त्यपस्मारं दोषाः प्रकुपिता यथा।
सामान्यतः पृथक्त्वाच्च लिङ्गं तेषाञ्च भेषजम् ॥ ६३ ॥
महागदसमुत्थानं लिङ्गञ्चोवाच चौषधम्।
मुनिर्व्यासससमासाभ्यामपस्माराचिकित्सिते ॥ ६४ ॥

इति चरक० चि० अपस्मारचिकित्सितं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि, इस अपस्मार चिकित्सितनामक अध्यायमें भगवान् आत्रेयजीने अपस्मारके हेतु तथा जिस प्रकार दोष कुपित होकर

अपस्मारको करते हैं, अपस्मारके सामान्य और पृथक् २ लक्षण, उनकी औषधी, महागदके कारण, लक्षण और उपाय यह सब संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किये हैं ६४

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायामपस्मारचिकित्सितं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः।



अथातः क्षतक्षीणचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम क्षतक्षीणचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

उदारकीर्त्तिर्ब्रह्मर्षिरात्रेयः परमार्थवित् ।
क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाह चिकित्सितम् ॥ १ ॥

उदारकीर्ति परमार्थके जाननेवाले ब्रह्मर्षि आत्रेयजीने क्षतक्षीणकी चिकित्साके लिये इस प्रकार चिकित्सा वर्णन की ॥ १ ॥

क्षतरोगके कारण ।

धनुषायस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् ।
पततो विषमोच्चेभ्यो युध्यमानस्य चाधिकैः ॥ २ ॥
वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं वाऽन्यं निगृह्णतः ।
शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ ३ ॥
अधीयमानस्यात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् ।
महानदीं वा तरतो गजैर्वा सह धावतः ॥ ४ ॥
सहसोत्पततो दूरं तूर्णञ्चातिप्रनृत्यतः ॥
तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ।
विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्य्यते ॥ ५ ॥

धनुष्यको अत्यन्त जोरसे खेंचना, अधिक भारी बोझको उठाना, विषमस्थानसे गिरपडना, अपनेसे अधिक बलवालेसे कुश्ती करना, दौडतेहुए बैल, घोडे आदिको

बलपूर्वक पकडना, शिला, लकडी, पत्थर, गदा आदिको अत्यन्त जोरसे वेगपूर्वक फेंकना, या शिला, मुद्गर आदिकोंसे बलपूर्वक शत्रुओंपर प्रहार करना, बहुत जोरसे ऊंचे २ स्वरसे पढते रहना, अत्यन्त वेगसे दौडना, बडी भारी नदीको बलपूर्वक तैरजाना, हाथी, घोडे आदिके साथ भागना, वेगपूर्वक उछलकर कलांच मारना, बहुत देरतक वेगपूर्वक नाँचना तथा ऐसे ही अन्यान्य क्रूरकर्म करना । इन सब कारणोंसे अथवा अन्य किसी प्रकार छातीमें चोट पहुँचनेसे मनुष्योंकी छातीमें क्षत (घाव) होजाता है । उससे बलवान् रोग उत्पन्न होजाता है ॥ २–५ ॥

क्षीणके हेतु ।

स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ ६ ॥

अत्यन्त स्त्रीसंग करनेसे तथा रूक्ष, अल्प और मित भोजन करनेसे मनुष्य क्षीण रोगको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

क्षतक्षीणके लक्षण ।

उरो निरुज्यते तस्य भिद्यतेऽथ विदह्यते ।
प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते ।
क्रमाद्वीर्य्यबलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते ॥ ७ ॥
ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधस्तथा ।
दुष्टः श्यावः सदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहुः ॥ ८ ॥
कासमानस्य च श्लेष्मा सरक्तः संप्रवर्त्तते ।
सक्षतः क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात् ॥ ९ ॥

क्षत और क्षीण दोनों रोगोंमें छातीमें भेदनेकी सी पीडा होना और विदाह (छातीमें जलन) होना, पार्श्वमें पीडा होना, अंगोंका सूखने लगना, शरीरका कांपना यह सब लक्षण होते हैं । फिर बल, वर्ण, रुचि और जाठराग्नि यह क्रमसे धीरे २ क्षीण होने लगते हैं, फिर ज्वर, व्यथा, मनमें दीनता, मलका फटकर आना, अग्निका मन्द होना, खाँसी और खाँसीके साथ २ दूषित हुआ काला, पीला, दुर्गंधयुक्त और गांठदार रुधिर मिला बलगम आना यह लक्षण होते हैं ॥ इस प्रकार क्षतवाला रोगी अत्यंत क्षीण होजाता है एवं स्त्रीप्रसंगादिके कारण वीर्य और ओजके क्षय होनेसे क्षीणरोगी अत्यंत क्षीण होजाता है ॥ ७–९ ॥

क्षतक्षीणका पूर्वरूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ १० ॥

क्षत और क्षीणके सब लक्षण स्पष्टरूपसे प्रकट न होनेपर अव्यक्त लक्षण होना क्षतक्षीणका पूर्वरूप कहा जाता है ॥ १० ॥

क्षतक्षीणमें विशेषता।

उरोरुक् शोणितछर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते।
क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ११ ॥

क्षत और क्षीण रोगमें विशेषता (फरक) केवल इतनाही है कि क्षतरोगके प्रगट होनेके समय छातीमें पीडा, रुधिरका वमन और खाँसी यह विशेष लक्षण होते हैं। और क्षीणरोगमें मूत्रका वर्ण लाल होना, अथवा रक्तयुक्त होना, पार्श्वभागमें और पीठमें तथा कमरमें अत्यंत पीडा होना अथवा जकडेसे रहना यह लक्षण होते हैं ११

साध्यासाध्य।

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नरः।
गते संवत्सरे याप्यः सर्वलिंगन्तु वर्जयेत् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यकी अग्नि चैतन्य हो और शरीरमें बल हो तथा रोगके लक्षण अल्प हों उसका क्षतक्षीण रोग साध्य होता है। एक वर्ष व्यतीत होनेपर याप्यसाध्य होजाता है। और संपूर्ण लक्षणोंवाला क्षतक्षीण असाध्य समझ त्याग देना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षतकी चिकित्सा।

उरो मत्वा क्षतं लाक्षां पयसा मधुसंयुताम्।
सद्य एव पिबेज्जीर्णे पयसाद्यात्सशर्करम्।
पार्श्वबस्तिरुजश्चाल्पपित्ताग्निस्तां सुरायुताम् ॥ १३ ॥
भिन्नविट्कः समुस्तातिविषां पाठां सवत्सकाम् ॥ १४ ॥

यदि छातीमें क्षत (घाव) प्रतीत हो तो लाखको बारीक पीसकर दूध और शहतमें मिलाकर पिलावे इसके पचजानेपर जब भूख लगे तो दूध और शुद्ध चीनीके साथ भातका भोजन करे यदि पार्श्वभागमें पीडा हो और जठराग्नि मन्द हो तो धुली हुई लाखके चूर्णको सुरामें मिलाकर पिलावे परन्तु इस रोगमें रक्तपित्त होनेसे सुरा देना उचित नहीं यदि रोगीको दस्त आते हों तो नागरमोथा, अतीश, पाठा और इन्द्रयवका क्काथ पिलावे ॥ १३ ॥ १४ ॥

लाक्षां सर्पिर्मधूच्छिष्टं जीवनीयगणं सिताम्।
त्वक्क्षीरीसम्मितं क्षीरे पक्त्वा दीप्तानलः पिबेत्।
इक्ष्वालिकबिसग्रन्थिपद्मकेशरचन्दनैः ॥ १५ ॥
शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिबेत्क्षती ॥ १६ ॥

जिस क्षत रोगीकी जठराग्नि बलवान् हो वह क्षतरोग निवृत्तिके लिये धूलि, लाखका चूर्ण, घृत, मोम, जीवनीयगणकी सब औषधियें मिसरी और वंशलोचन इन सबको समान भाग ले दूधमें पकाकर पानकरे। अथवा तालमखाने, मृणाल (भिस) पीपलामूल, कमलकी केशर और चंदन इन सबसे सिद्ध किया दूध सहद मिलाकर पीवे तो छातीका घाव संधान होजाता है। इसका यह क्रम है कि कुटीहुई सब औषधियें दो तोला लेवे दूध १६ तोले, पानी ६४ तोले ले सबको मिलाकर पकावै दूधमात्र शेष रहनेपर छानकर ठंढा कर फिर इसमें शहद मिलाकर पीवे ॥ १५ ॥ १६ ॥

यवानां चूर्णमादाय क्षीरसिद्धं घृतप्लुतम् ।
ज्वरदाहे सिताक्षौद्रसक्तून् वा पयसा पिबेत् ।
कासी पर्वास्थिशूली च लिह्यात्सघृतमाक्षिकाः ।
मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीबलाः ॥ १७ ॥

यदि क्षतरोगमें ज्वर और दाह हों तो जवोंके चूर्णको दूधमें सिद्धकर घृत मिलाकर पीवे। अथवा जवोंके सत्तुओंको शहद मिसरी और दूध मिलाकर पीवे। जिस रोगीके खाँसी तथा पर्व और अस्थियोंमें पीडा हो उसको महुएके फल, मुलैठी, पिंडखजूर, मुनक्का इनको बारीक पीसकर शहद और घृतमें मिला नित्य प्रातःकाल चार तोला चटाना चाहिये ॥ १७ ॥

एलापत्रत्वचोऽर्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं तथा ।
सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ १८ ॥
संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुलिकाः संप्रकल्पयेत् ।
अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेन्ना दिनेदिने ॥ १९ ॥
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम् ।
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ २० ॥
शोषप्लीहाढ्यवातांश्च स्वरभेदं क्षतं क्षयम् ।
गुलिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तञ्च नाशयेत् ॥ २१ ॥

छोटी इलायची, तेजपत्र, दालचीनी यह प्रत्येक छः माशे, पीपल दो तोले, मिसरी, मुलैठी, छुहारे और बीजरहित मुनक्का यह सब चार चार तोले लेवे। इन सबको बारीक पीसकर शहदमें मिला एक एक तोलेकी गोली बनावे। अथवा चटनीसी बनाले इसमेंसे एक तोला नित्य दूधके साथ अथवा जीवनीय औषधियोंके अर्कके साथ या अन्य योग्य अनुपानसे खावे अथवा बिना किसी अनुपानकेही खावे

तो खाँसी, श्वास, हिचकी, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, प्यास, पार्श्वशूल, अरोचक, शोष, प्लीहा,अफारा, स्वरभेद, क्षत और क्षय यह सब रोग नष्ट होते हैं। यह गोली तर्पणीय और शरीरको पुष्ट करती हैं तथा रक्तपित्तको दूर करनेवाली हैं ॥ १८–२१ ॥

रक्तेऽतिवृत्ते दक्षाण्डं यूषैस्तोयेन वा पिबेत् ।
चटकाण्डरसं वापि रक्तं वा छागजाङ्गलम् ॥ २२ ॥

रक्तके अत्यन्त निकलजानेपर मुर्गेके अण्डोंसे बनायाहुआ यूष अथवा चिडियोंके अण्डोंसे बनायाहुआ यूष, या बकरेका रक्त अथवा जंगली जीवोंका जलयुक्त मांस यूष पीनेको देवे ॥ २२ ॥

चूर्णं पौनर्नवं रक्तशालितण्डुलशर्करम् ।
रक्तष्ठीवी पिबेत्सिद्धं द्राक्षारसपयोघृतैः ॥ २३ ॥

पुनर्नवाका चूर्ण, लाल शाली चावल, शर्करा और द्राक्षाका रस दूध और घीमें मिलाकर पीनेसे मुखद्वारा रक्तकी प्रवृत्तिहोना बंद होजाता है ॥ २३ ॥

मधूकमधुकक्षीरसिद्धं वा तण्डुलीयकम् ।
मूढवातस्त्वजामेदः सुराभृष्टं ससैन्धवम् ॥ २४ ॥

महुएके फल और मुलहठीको दूधमें पकाकर अथवा चौलाईकी जड दूधमें पका पीवे तो रक्तकी प्रवृत्ति बन्द हो और मूढवातवाला मनुष्य बकरेकी मेदको सुरामें मिला उसको सेंधेनमकयुक्त कर गर्म करके पीवे ॥ २४ ॥

क्षामः क्षीणः क्षतोरस्कस्त्वनिद्रः सबलेऽनिले।
शृतक्षीररसेनाद्यात्सक्षौद्रघृतशर्करम् ॥ २५ ॥

जिस क्षतरोगीको वायुकी अधिकतासे कृशता और क्षीणता होजाय तथा निद्रा जाती रहे उसको दूधमें मांसरस मिला पकाकर उसमें शहद, घृत और मिसरी मिलाकर पिलावे ॥ २५ ॥

शर्कराञ्च यवक्षौद्रं जीवकर्षभकौ मधु ।
शृतक्षीरानुपानं वा लिह्यात्क्षीणः क्षतः कृशः ॥ २६ ॥
क्रव्यादमांसनिर्य्यूहं घृतभृष्टं पिबेच्च सः ।
पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तं मांसशोणितवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

और उस क्षतक्षीणसे कृशहुए मनुष्यको मिसरी, यवके सत्तु, जीवक, ऋषभकका चूर्ण और शहत यह सब मिलाकर चटावे और ऊपरसे गर्म दूध पिलावे अथवा

मांस खानेवाले जीवोंके मांसरसको घीमें भूनकर पीपलका चूर्ण शहद मिलाकर सेवन करनेसे मांस और रक्तकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षशालप्रियंगुभिः ।
तालमस्तकजम्बूत्वक्प्रियालैश्च सपद्मकैः ॥ २८ ॥
साश्वकर्णैः शृतात्क्षीराद्दध्नाज्जातेन सर्पिषा ।
शाल्योदनं क्षतोरस्कः क्षीणशुक्रश्च मानवः ॥ २९ ॥

बड, गूलर, पीपल, पिलखन, शाल, प्रियंगु, ताडकी कोंपल, जामुनकी छाल, चिरौंजी, पद्माख और अश्वकर्ण इन सबसे सिद्ध किये हुए दूधसे निकालाहुआ घृत शालीचावलोंके साथ भोजन करनेके लिये देवे तो उरःक्षत और क्षीणशुक्रवाला मनुष्य शीघ्र आरोग्य हो ॥ २८ ॥ २९ ॥

यष्ट्याह्वानागबलयोः क्वाथे क्षीरसमं घृतम् ।
पयस्यापिप्पलीवांशीकल्कसिद्धं क्षते शुभम् ॥ ३० ॥

मुलैठी और नागबलाका क्वाथ ४ भाग, घी और दूध दोनों एक एक भाग इन सबको मिलाकर क्षीरकाकोली, पीपल और वंशलोचनका कल्क डालकर घृत सिद्ध करे । इस घृतके पीनेसे क्षतरोग दूर होता है ॥ ३० ॥

कोललाक्षारसे तद्वत्क्षीराष्टगुणसाधितम् ।
कल्कैः कट्वङ्गदार्वीत्वग्वत्सकत्वक्फलैर्घृतम् ॥ ३१ ॥

बेर (बेरकी गुठलीकी गिरी), लाखका रस इन दोनोंको समान भाग ले, आठ गुणा दूध मिला पूर्ववत् घृत सिद्ध करके सेवन करे अथवा सोनापाठा, दारुहलदीकी छाल, कुडाकी छाल और इन्द्रयव इन सबके कल्क और आठगुने दूधसे सिद्ध किया घृत क्षतरोगको दूर करता है ॥ ३१ ॥

अमृतप्राश घृत ।

जीवकर्षभकौ वीरां जीवन्तीं नागरं शटीम् ।
चतस्रः पर्णिनीर्मेदे काकोल्यौ द्वे निदिग्धिके ॥ ३२ ॥
पुनर्नवे द्वे मधुकसात्मगुप्तां शतावरीम् ।
ऋद्धिं परूषकं भार्ङ्गीं मृद्वीकां बृहतीं तथा ॥ ३३ ॥
शृङ्गाटकीं तामलकीं पयस्यां पिप्पलीं बलाम् ।
बदराक्षोटखर्जूरवातामाभिषुकाण्यपि ॥ ३४ ॥
फलानि चैवमादीनि कल्कान् कुर्वीत कार्षिकान् ।

धात्रीरसविदारीक्षुच्छागमांसरसं पयः ॥ ३५ ॥
कुर्य्यात्प्रस्थोन्मितं तेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्कराद्धतुलां तथा ॥ ३६ ॥
द्विकार्षिकाणि पत्रैलाहेमत्वङ्मरिचानि च ।
चूर्णितानि विनीयास्माल्लिह्यान्मात्रां सदा नरः ॥ ३७ ॥
अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम् ।
सुधामृतरसं प्राश्य क्षीरमांसरसाशिना ॥ ३८ ॥
नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्षितान् ।
स्त्रीप्रसक्तान् कृशान् वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत् ॥ ३९ ॥
कासहिक्काज्वरश्वासदाहतृष्णाम्लपित्तनुत् ।
पुत्रदं वमिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम् ॥ ४० ॥

जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, जीवंती, सोंठ, कचूर, शालपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पृष्ठपर्णी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छोटी और बडी कटेरी, रक्तपुनर्नवा, मुलैठी, कौंचके बीज, शतावर, ऋद्धि, फालसा, भारंगी, मुनक्का, बडी कटेली, सिंवाडा, भूमिआँवला, क्षीरविदारी, पीपल, बला, बेर, अखरोट, खजूर, बादाम, पिस्ता तथा अन्य ऐसे ही फल इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। आँवलेका रस, विदारीकंदका रस, ईखका रस, बकरेके मांसका रस और दूध यह एक एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। घृत सिद्ध होनेपर इसको छानलेवे। फिर इस घृतमें ठण्ढा होनेपर शहद आधा प्रस्थ, मिसरी आधी तुला (२॥ सेर) और तेजपत्र, इलायची, दालचीनी और कालीमिर्च यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर चूर्णकर मिला देवे। यह अमृतप्राशघृत मात्रानुसार सेवन करनेवाले मनुष्यको अमृतके समान गुण करता है। इस घृतको पानकर दूध या मांसरसका अनुपान करना चाहिये। जिस मनुष्यका वीर्य क्षय हुआहो अथवा क्षतक्षीणसे पीडित हो अथवा दुर्बल या व्याधिसे कृश हो उसको अमृतके समान गुण करता है। यह घृत स्त्रीप्रसंगसे कृश हुए मनुष्यको बलदायक, वर्णकारक, स्वरभंगनाशक तथा खांसी, हिचकी, ज्वर, दाह, प्यास, रक्तपित्त, छर्दि, मूर्च्छा, योनिरोग और मूत्ररोग इन सबको दूर करता है और संतानको देनेवाला है ॥ ३२-४० ॥

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठा बला काश्मर्य्यकत्तृणम् ।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिराम् ॥ ४१ ॥

पालिकं साधयेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे।

कल्कैः स्वगुप्ताजीवन्तीमेदकर्षभजीवकैः॥ ४२॥

शतावर्य्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः।

प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रूद्रवशूलनुत्॥ ४३॥

मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः।

धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः॥ ४४॥

गोखरू, खस, मजीठ, बला, कुम्भेर, कत्तृण, कुशाकी जड, पृष्ठपर्णी, ढाक, ऋषभक, शालपर्णी यह प्रत्येक एक एक पल लेकर इनका क्वाथ करे। घृत एक प्रस्थ, दूध चार प्रस्थ, कौंचके बीच, जीवन्ती, मेदा, ऋषभक, जीवक, शतावर, ऋद्धि, मुनका, खांड, ब्राह्मी, कमलकंद इन सबको मिलाकर एक कुडव लेवे। फिर इनका कल्क कर क्वाथ और घृतमें मिला पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर छान लेवे। इस घृतके सेवनसे वात, पित्त, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, खांसी, शोष और क्षय यह सब नष्ट होते हैं। तथा धनुषके खींचनेमे अथवा स्त्रीसंग, मद्यपान, भार और मार्गके श्रमसे जो क्षीण होगये हों उनके बल और मांसकी वृद्धि होती है॥ ४१-४४॥

सक्तुप्रयोग।

मधुकाष्टपलं द्राक्षाप्रस्थक्वाथे घृतं पचेत्।

पिप्पल्यष्टपले कल्के प्रस्थं सिद्धे च शीतले॥ ४५॥

पृथगष्टपलं क्षौद्रं शर्कराभ्यां विमिश्रयेत्।

समं सक्तु क्षतक्षीणे रक्तगुल्मेषु तद्धितम्॥ ४६॥

मुलैठी आठ पल, मुनक्का एक प्रस्थ इनको १६ सेर जलमें पकावे। चार सेर बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें एक प्रस्थ घृत, आठ पल पीपलका कल्क मिलाकर सिद्धकरे। सिद्ध होनेपर छानकर ठण्डा करलेवे। इसमें आठ पल शहद और आठ पल मिसरी मिलावे तथा एक प्रस्थ यवोंके सत्तू मिलावे। इन सत्तुओंको क्षतक्षीणरोगी तथा रक्तगुल्मवालेको सेवन कराना परम हितकारी है॥ ४६

धात्री आदि घृत।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात्।

छागगोपयसोश्चैव सप्त प्रस्थान् पचेद्भिषक्॥ ४७॥

सिद्धशीते सिताक्षौद्रद्विप्रस्थं विनयेत्ततः।

यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमेहक्षयापहम्॥ ४८॥

वयःस्थापनमायुष्यं मांसशुक्रबलप्रदम् ॥ ४९ ॥

आँवलेका रस एक प्रस्थ, विदारीकंदका रस एक प्रस्थ, ईखका रस एक प्रस्थ, जीवनीय गणकी दश औषधियोंका क्वाथ एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ, बकरीका दूध एक प्रस्थ गौका दूध एक प्रस्थ इन सातोंको लेकर वैद्य घृतपाकविधिसे पकावे जब सब जलकर घृतमात्र शेष रहजाय तो उतारकर छान लेवे। इस घृतमें ठण्ढा होनेपर एक प्रस्थ मिसरी और एक प्रस्थ (एक सेर) शहत मिलावे। इसके सेवनसे राजयक्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी, प्रमेह और क्षय यह सब नष्ट होते हैं। तथा यह घृत अवस्थास्थापन करनेवाला, आयुवर्द्धक, मांस, वीर्य और बलको पैदा करनेवाला है ॥ ४७-४९ ॥

घृतन्तु पित्तेऽभ्यधिके लिह्याद्वातेऽधिके पिबेत् ।
लीढं निर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धन्ति नानिलम् ।
आक्रामत्यनिलं पीतमूष्माणं निरुणद्धि च ॥ ५० ॥

क्षतक्षीणरोगमें पित्त अधिक हो तो घृत चटाना चाहिये। और वायुकी अधिकतामें घृत पिलाना चाहिये। क्योंकि चाटाहुआ घृत पित्तको शान्त करता है और अल्प होनेके कारण वायुको हनन नहीं करता इसी प्रकार पीयाहुआ घृत वायुको शान्त करता है और शरीरकी ऊष्माको नहीं रोकता ॥ ५० ॥

क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्येव घृतानि च ।
त्वक्क्षीरीशर्करालाजचूर्णैः पानानि योजयेत् ॥ ५१ ॥

दुर्बल, क्षीण और कृशशरीरवाले मनुष्योंको यह संपूर्ण घृत वंशलोचन, मिसरी और लाजा (खील) का चूर्ण मिला चाटना चाहिये ॥ ५१ ॥

सर्पिर्गुडान्समध्वंशाञ्जग्ध्वा दद्यात्पयोनु च ।
रेतो वीर्य्यं बलं पुष्टिं तैराशुतरमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

आगे जो सर्पिर्गुड कथन किये हैं उनमें जहां शहदका प्रक्षेप नहीं किया तो चौथा भाग शहत मिलाकर चटावे और ऊपरसे दूध पिलावे तो क्षतक्षीण रोगी शीघ्र ही बल, वीर्य और पुष्टीको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

सर्पिर्गुड।

बलां विदारीं ह्रस्वाञ्च पञ्चमूलीं पुनर्नवाम् ।
पञ्चानां क्षीरिवृक्षाणां शुङ्गां मुष्टचंशकामपि ॥ ५३ ॥
एषां कषाये द्विक्षीरे विदार्य्याजरसांशिके ।
जीवनीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥ ५४ ॥

सितापलानि पूतेऽस्मिञ्छीते द्वात्रिंशतं क्षिपेत् ।
गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णं शृङ्गाटकस्य च ॥ ५५ ॥
सक्षौद्रं कुडवांशेन तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ।
स्त्यानं सर्पिर्गुडान् कृत्वा भूर्जपत्रेण वेष्टयेत् ॥ ५६ ॥
ताञ्जग्ध्वा पलिकान् क्षीरं मद्यं वाऽनु पिबेत्कफे ।
शोषे कासे क्षते क्षीणे श्रमस्त्रीभारकर्षिते ॥ ५७ ॥
रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि स्थिते ।
शस्ताः पार्श्वशिरःशूले विभेदे स्वरवर्णयोः ॥ ५८ ॥

बला, विदारीकन्द, लघु पंचमूलकी पांचों औषधियें, पुनर्नवा, बड, गूलर, पीपल, पिलखन और वेतस इन पांचों वृक्षोंके अंकुर, कोंपलें यह प्रत्येक एक एक पल लेकर क्वाथ करे। फिर इस क्वाथमें बकरीका दूध, गायका दूध और घृत तथा विदारीकन्दका रस और बकरीका मांसरस यह सब एक एक आढक मिलावे। जीवनीयगणकी दश औषधियोंको एक एक तोला लेकर कल्क बना इसीमें मिलादेवे। इस घृतको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। फिर इसमें ठण्ढा होनेपर मिसरी बत्तीस पल, गेहूंके सत्तू, पीपल, वंशलोचन, सिंघाडेका चूर्ण और शहत एक एक कुडव मिलाकर आगपर चढा कडछीसे हिलाताजावे और गुडपाकविधिसे पकावे। जब सब एकजीव होजाय तो उतारकर गोलेसे बना भोजपत्रमें लपेट लपेट कर रखताजावे। यह सर्पिर्गुड उचित मात्रासे सेवनकर ऊपरसे दूध पीवे और कफकी अधिकतामें मद्यका अनुपान करे। इसके सेवनसे क्षतक्षीण, स्त्रीसेवन और भार उठानेसे उत्पन्न हुई कृशता और रुधिरका थूकना, ताप, पीनस, वक्षस्थलकी पीडा, पार्श्वशूल, मस्तकपीडा, स्वरभेद और विवर्णता यह सब दूर होती हैं॥५३-५८॥

द्वितीय सर्पिर्गुड।

त्वक्क्षीरीश्रावणीद्राक्षामूर्वकर्षभजीवकैः ।
वीरर्द्धिक्षीरकाकोलीबृहतीकपिकच्छुभिः ॥ ५९ ॥
खर्जूरफलमेदाभिः क्षीरपिष्टैः पलोन्मितैः ।
धात्रीविदारीक्षुरसप्रस्थैः प्रस्थं घृतात्पचेत् ॥ ६० ॥
शर्करार्द्धतुलां शीते क्षौद्रार्द्धप्रस्थमेव च ।
क्षिप्त्वा सर्पिर्गुडान् कुर्य्यात्कासहिक्काज्वरापहान् ॥ ६१ ॥

यक्ष्माणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम्।
शुक्रनिद्राक्षयं तृष्णां हन्युः कार्श्यं सकामलम् ॥ ६२ ॥

वंशलोचन, गोरखमुण्डी, मुनक्का, मूर्वा, ऋषभक, जीवक, पृष्ठपर्णी, ऋद्धि, क्षीरकाकोली, बडी कटेली, कौंचके बीज, खजूर, मेदा यह सब एक एक पल लेकर दूधमें घोटकर अलग २ कल्क करे। आँवलेका रस एक प्रस्थ, विदारीकन्दका रस एक प्रस्थ, ईखका रस एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ सबको घृतपाकविधिसे पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर छानलेवे इसमें मिसरी आधा तुला, शहत आधा प्रस्थ मिलाकर गोलेसे बना भोजपत्रमें लपेटकर रखदेवे। इनको सेवन करनेसे खांसी, हिचकी, ज्वर, यक्ष्मा, तमकश्वास, श्वास, रक्तपित्त, हलीमक, वीर्यक्षय, निद्रानाश, कृशता, प्यास और कामला यह सब दूर होते हैं ॥ ५९–६२ ॥

तृतीय सर्पिर्गुड।

द्राक्षां नवामामलकीमात्मगुप्तां पुनर्नवाम्।
शतावरीं विदारीञ्च समांशां पिप्पलीं तथा ॥ ६३ ॥
पृथग्दशपलान् भागान् पलान्यष्टौ च नागरात्।
यष्ट्याह्वसौवर्चलयोर्द्विपलं मरिचस्य च ॥ ६४ ॥
क्षीरतैलघृतानाञ्च त्र्याढके शर्कराशते।
क्वथिते तानि चूर्णानि दत्त्वा बिल्वसमान् गुडान् ॥ ६५ ॥
कुर्य्यात्तान् भक्षयेत्क्षीणः क्षतशुष्कश्च मानवः।
तेन सद्यो रसादीनां वृद्ध्या पुष्टिं स विन्दति ॥ ६६ ॥

मुनक्का, नवीन आँवले, कौंचके बीजोंकी गिरी, पुनर्नवा; शतावर, विदारीकन्द और पीपल इन प्रत्येकका चूर्ण, दस दस पल लेवे। सोंठका चूर्ण आठ पल, मुलैठी, कालानमक और मिर्च इनका चूर्ण दो दो पल, गौका दूध एक आढक, तेल एक आढक, घृत एक आढक, मिसरी १०० पल लेवे। प्रथम घृत, तेल दूध और मिसरी मिलाकर पकावे, जब दूध जलजाय तब उतारकर इसमें उपरोक्त द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर एकजीव करदेवे इसके चार चार तोलेके लड्डू बनावे, एक गुडक (लड्डुवा) में एक तोला शहद मिलाकर खावे। इनके सेवनसे मनुष्य क्षतक्षीण और कृशता से रहित होजाता है। तथा रसादिक धातुकी वृद्धि होकर पुष्टताको प्राप्त होजाता है ॥ ६३–६६ ॥

चौथा सर्पिगुड।

गोक्षीरादाढकं सर्पिः प्रस्थमिक्षुरसाढकम्।

विदार्य्याः स्वरसात्प्रस्थं रसात्प्रस्थञ्च तैत्तिरात् ॥ ६७ ॥
दद्यात्सिध्यति तस्मिंस्तु पिष्टानिक्षुरसैरिमान् ।
मधूकपुष्पं कुडवं पियालकुडवं तथा ॥ ६८ ॥
तुगाक्षीर्य्यर्द्धकुडवां खर्जूराणि च विंशतिम् ।
पृथग्विभीतकानक्षः पिप्पल्याश्च चतुर्थिकाम् ॥ ६९ ॥
त्रिंशत्पलानि खण्डाच्च मधुकात्कर्षमेव च ।
तथार्द्धपलिकान्यत्र जीवनीयानि चावपेत् ॥ ७० ॥
सिद्धेऽस्मिन्कुडवं क्षौद्रं शीते क्षिप्त्वाथ मोदकान् ।
कारयेन्मरिचाजाजीपलचूर्णावचूर्णितान् ॥ ७१ ॥
वातासृक्पित्तरोगेषु क्षतकासक्षयेषु च ।
शुष्यतां क्षीणशुक्राणां रक्ते चोरसि संस्थिते ॥ ७२ ॥
कृशदुर्बलवृद्धानां पुष्टिवर्णबलार्थिनाम् ।
योनिदोषक्षतस्रावहतानाञ्चापि योषिताम् ॥ ७३ ॥
गर्भार्थिनीनां गर्भश्च स्रवेद्यासां म्रियेत वा ।
धन्या बल्या हितास्ताभ्यः शुक्रशोणितवर्धनाः ॥ ७४ ॥

गौका दूध एक आढक (चार सेर), घृत एक प्रस्थ (एक सेर), ईखका रस एक आढक, विदारीकन्दका रस एक प्रस्थ, तीतरका मांसरस एक प्रस्थ, गोघृत एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे, फिर इसमें जब पकते २ सब रस जलनेपर आवें तो इसमें महुएके फूल एक कुडव चिरौंजी एक कुडव (एक पाव), वंशलोचन आधा कुडव, छुहारे बीस, बहेडेका छिलका और पीपलका चूर्ण एक एक पल, मिसरी तीस पल, मुलैठी एक कर्ष तथा जीवनीयगणकी औषधियें आधा आधा पल इन सबको ईखके रसमें पीसकर कल्क बना उपरोक्त पकतेहुए घृतमें मिलादेवे। सिद्ध होनेपर उतारकर रखदे जब शीतल होजाय तो इसमें एक कुडव शहद मिलाकर कालीमिर्च और जीरेका एक पल चूर्ण मिलाकर चार चार तोलेके गुडक (गोला) बनावे। खानेसे वातरक्त, पित्तके विकार, क्षत, खांसी, क्षय, शोष, क्षीणता, वीर्यक्षय, छातीसे रक्तका आना अथवा छातीमें दूषित रक्तका स्थित होना यह सब दूर होते हैं। यह कृश, दुर्बल और वृद्ध मनुष्योंको पुष्टि वर्ण और बलकी वृद्धिके लिये सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे स्त्रियोंके योनिदोष, वन्ध्यापन, गर्भस्राव और मृतवत्सादोष दूर होते हैं। तथा रजवीर्यकी शुद्धि होती है॥ ६७-७४ ॥

स्त्रीसंगसे कृशहुएके यत्न।

बस्तिदेशे विकुर्वाणे स्त्रीप्रसक्तस्य मारुते।
वातघ्नान्बृंहणान्वृष्यान् योगांस्तस्य प्रयोजयेत् ॥ ७५ ॥

अधिक स्त्रीसंगके करनेसे मनुष्यके वीर्य क्षय होनेसे वायु वस्तिस्थानमें प्राप्त होकर विकृत हो जाती है इसलिये उस मनुष्यकी चिकित्सा वातनाशक, बृंहण और वृष्य प्रयोगोंसे करना चाहिये ॥ ७५ ॥

शर्करापिप्पलीचूर्णैः सर्पिषा माक्षिकेण वा।
संयुक्तं वा शृतं क्षीरं पिबेत्कासज्वरापहम् ॥ ७६ ॥

जिस क्षीण मनुष्यको खांसी और ज्वर हो उसको पीपल डालकर औटायाहुआ दूध मिसरी मिला अथवा घी, शहद मिला पिलाना चाहिये ॥ ७६ ॥

फलाम्लं सर्पिषा भृष्टं विदारीक्षुरसे शृतम्।
स्त्रीषु क्षीणः पिबेद्यूषं जीवनं बृंहणं परम् ॥ ७७ ॥

मांसयूष अथवा उडदोंका यूष वा मूंगआदिका यूष ले उसमें समान भाग विदारीकन्दका रस और ईखका रस मिलाकर पकावे। फिर उसको अनारका रस मिला घृतमें भूनकर पिलावे तो यह जीवनदायक और बृंहणकर्त्ता योग है ॥ ७७ ॥

सक्तूनां वस्त्रपूतानां मन्थं क्षौद्रघृतान्वितम्।
यावन्न सात्म्यो दीप्ताग्निः क्षतक्षीणः पिबेन्नरः ॥ ७८ ॥

कपडेमें छानेहुए यवके सत्तुओंको घृत, शहत और जल मिलाकर जिसको यवसात्म्य हो और अग्नि चैतन्य हो ऐसा क्षतक्षीणवाला रोगी पीवे ॥ ७८ ॥

जीवनीयोपसिद्धं वा घृतभृष्टन्तु जाङ्गलम्।
रसं प्रयोजयेत्क्षीणो व्यञ्जनार्थे सशर्करम् ॥ ७९ ॥

जीवनीयगणके क्राथमें जंगली जीवोंके मांसको पकाकर घीमें भूनकर शर्करायुक्त कर क्षीणरोगीको भातके साथ व्यंजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥

गोमहिष्याश्वनागाजैः क्षीरैर्मांसरसैस्तथा।
यथाग्नि भोजयेद्यूषैः फलाम्लैर्घृतसंस्कृतैः ॥ ८० ॥

गौ, भैंस, घोडी, हाथिनी, बकरी इनके दूधके साथ क्षीण रोगीको भोजन करावे, अथवा जंगली जीवोंके मांसोंके रसके साथ अथवा अनारके रससे अम्लकिये मूंग आदिके यूष घृत मिलाकर क्षुधानुसार अग्निबल विचारकर सेवन करे ॥ ८० ॥

विशेष ज्ञातव्य।

दीप्तेऽग्नौ विधिरेष स्यान्मन्दे दीपनपाचनः।
यक्ष्मिणां विहितो ग्राही भिन्ने शकृति चेष्यते ॥ ८१ ॥

यह उपरोक्त बृंहण और वृष्य योग दीप्ताग्निवाले मनुष्योंके ही देना चाहिये। और मन्दाग्निवाले मनुष्योंको दीपन और पाचन द्रव्य ही देना चाहिये। क्षतक्षीण-वाले रोगियोंको यदि दस्त लगने लगें तो राजयक्ष्मामें दस्त जो रोकनेको संग्राहि-द्रव्य कहे हैं उनका प्रयोग करे॥ ८१ ॥

सैंधवादि चूर्ण।

पलिकं सैन्धवं शुण्ठी द्वे च सौवर्चलात्पले।
कुडवांशानि वृक्षाम्लं दाडिमं पत्रसर्जकात् ॥ ८२ ॥
एकैकं मरिचाजाज्यो धान्यकाद्वे चतुर्थिके।
शर्करायाः पलान्यत्र दश द्वे च प्रदापयेत् ॥ ८३ ॥
कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपाने प्रयोजयेत्।
रोचनं दीपनं बल्यं पार्श्वार्त्तिश्वासकासनुत् ॥ ८४ ॥

सेंधानमक एक पल, सोंठ एक पल, संचरनमक दो पल और अमलबेत, अना-रदाना, वनतुलसी, पत्रज यह प्रत्येक एक एक पल, मिर्च और जीरा एक पल, धनियां दो चौथाई (२ पल), शर्करा बारह पल, इन सबका बारीक चूर्ण कर इस चूर्णको अन्नपानादिमें प्रयुक्त करे यह सैंधवादिचूर्ण रुचिकारक, दीपन, बलवर्द्धक तथा पार्श्व-पीडा, श्वास और खांसीको दूर करता है ॥ ८२-८४ ॥

खांडव चूर्ण।

एका षोडशिका धान्याद्द्वि द्वेऽजाज्यजमोदयोः।
ताभ्यां दाडिमवृक्षाम्लद्विर्द्विः सौवर्चलात्पलम् ॥ ८५ ॥
शुण्ठ्याः कर्ष दधित्थस्य मध्यात्पञ्चपलानि च।
तच्चूर्णं षोडशपले शर्करायां विमिश्रयेत्।
षाडवोऽयं प्रदेयः स्यादन्नपानेषु पूर्ववत् ॥ ८६ ॥

धनियां एक पल, जीरा दो पल, अजमोद दो पल, अनारदाना चार पल, अम्ल-वेत चार पल, संचरनमक एक पल, सोंठ एक कर्ष, कैथका गूदा पांच पल, शर्करा सोलह पल, इन सबका चूर्ण कर अन्नपानादिमें सेवन करे तो यह खांडवचूर्ण पूर्व (सैंधवादिचूर्ण) के समान गुण करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

नागबला प्रयोग ।

पिबेन्नागबलामूलस्यार्द्धकर्षविवर्द्धनम् ।
पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक् ॥ ८७ ॥
एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलारोग्यकरः परः ।
मण्डूकपर्ण्याः कल्पोऽथ शुण्ठीमधुकयोस्तथा ॥ ८८ ॥

नागबलाकी जडकी छाल प्रथमदिन आधा कर्ष लेकर दूधमें घोलकर पीवे, दूसरे दिन एक कर्ष, तीसरे दिन १॥ (डेढ) कर्ष पीवे, इस प्रकार नित्य आधाकर्ष बढाता बढाता एक पल तक बढावे, फिर बराबर एक महीने तक पीताजाय। इसके सेवन करतेहुए एक महीनातक दूध ही पीवे और अन्न न खावे। यह योग पुष्टि आयु, बल और आरोग्यताको बढानेमें परमोत्तम है। इसी प्रकार ब्राह्मीका एक माह सेवन कियाजाता है तथा मुलैठी या सोंठ भी इसी प्रकार सेवनसे यही गुण करती है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

क्षतक्षीणमें पथ्य ।

यद्यत्सन्तर्पणं शीतमविदाहि हितं लघु ।
अन्नपानं निषेव्यं तत्क्षतक्षीणैः सुखार्थिभिः ॥ ८९ ॥
यच्चोक्तं यक्ष्मिणां पथ्यं कासिनां रक्तपित्तिनाम् ।
तच्च कुर्य्यादपेक्ष्याग्निं व्याधिं सात्म्यबलांस्तथा ॥ ९० ॥

जो जो अन्नपान, संतर्पण, अविदाहि हित और हलके हैं क्षतक्षीण रोगीको आरोग्यताकी इच्छाके लिये उन उनका ही सेवन करना चाहिये। राजयक्ष्मावाले रोगियोंके लिये और खांसी तथा रक्तपित्तवाले रोगियोंके लिये जो पथ्य कहे हैं क्षतक्षीणवालोंको भी जठराग्नि, व्याधि और सात्म्य तथा बल विचार कर उनहीका सेवन करावे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

उपेक्षितो भवेत्तस्मिन्ननुबन्धो हि यक्ष्मणः ।
प्रागेवागमनात्तस्य तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ ९१ ॥

क्षतक्षीणरोगकी शीघ्र चिकित्सा न करनेसे राजयक्ष्मा रोग होजाता है, इस लिये राजयक्ष्मा होनेसे प्रथम ही क्षतक्षीणकी चिकित्सा कर रोग दूर करदेने चाहिये ॥ ९१ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ—क्षतक्षयसमुत्थानं सामान्यपृथगाकृतिम् ।
असाध्ययाप्यसाध्यत्वं साध्यानां सिद्धिमेव च ॥ ९२ ॥

उक्तवाङ्ज्येष्ठशिष्याय क्षतक्षीणचिकित्सिते ।
तत्त्वार्थविद्वीतरजस्तमोदोषः पुनर्वसुः ॥ ९३ ॥

इति चरक० चि०क्षतक्षीणचिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस क्षतक्षीणचिकित्सिताध्यायमें रज तमसे रहित तत्त्वार्थवेत्ता पुनर्वसुजीने क्षतक्षीणके हेतु, सामान्य लक्षण, पृथक् २ भेद, असाध्य, याप्यसाध्य और साध्यता तथा साध्योंकी चिकित्सा यह सब शिष्यशिरोमणि अग्निवेशसे कथन किया है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां क्षतक्षीणचिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।



अथातः श्वयथुचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम श्वयथुचिकित्सितकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

भिषग्वरिष्ठं सुरसिद्धजुष्टं मुनीन्द्रमत्र्यात्मजमग्निवेशः ।
महागदस्य श्वयथोर्यथावत् प्रकोपरूपप्रशमानपृच्छत् ॥ १ ॥

वैद्योंमें श्रेष्ठ, देवता और सिद्धोंसे सेवित, मुनीश्वर अत्रिनंदन पुनर्वसुजीसे अग्निवेश पूछने लगे कि हे भगवन् ! श्वयथु (सूजन) महारोगके कारण, लक्षण और प्रशमनोपाय कृपया यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

तस्मै जगादागदवेदसिन्धुप्रवर्त्तनाद्रिप्रवरोऽत्रिजस्तान् ।
वातादिभेदांस्त्रिविधस्य सम्यङ्निजानिजैकाङ्गजसर्वजस्य ॥ २ ॥

यह सुनकर आयुर्वेदके समुद्र, ऋषिप्रवर, आत्रेयजी अग्निवेशसे निज, आगंतु, एकांगज और सर्वांगज तथा वातादिभेदसे त्रिविध शोथका वर्णन करनेलगे ॥ २ ॥

निजशोथके कारण ।

शुद्ध्यामयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ।
दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणञ्च ॥ ३ ॥

अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्मोपघातो विषमा प्रसूतिः।
मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणाञ्च निजस्य हेतुः श्वयथौ प्रदिष्टः॥ ४ ॥

जो मनुष्य संशोधनसे अथवा रोगसे या उपवाससे कृश और दुर्बल होगये हैं उनको क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और भारी पदार्थोंके सेवनसे तथा दही, कच्चे पदार्थ, शाक, विरुद्ध भोजन तथा दूषित भोजनके अधिक सेवनसे, गर (विष) युक्त भोजन करनेसे, अर्शरोगसे, व्यायाम न करनेसे, देहकी अशुद्धिसे, मर्मस्थानमें चोट लगनेसे, स्त्रियोंके प्रसूतमें विषमता होनेसे, शोधन क्रियाका मिथ्या उपचार होनेसे मनुष्योंको शोथ (सूजन) रोग उत्पन्न होता है॥ ३ ॥ ४ ॥

आगन्तुक शोथ।

बाह्यास्त्वचो दूषयिताऽभिघातः काष्ठाश्मशस्त्राग्न्यशनीविषाद्यैः।
आगन्तुहेतुस्त्रिविधो निजश्च सर्वार्द्धगात्रावयवाश्रितत्वात्॥ ५ ॥

लकडी, पत्थर, शस्त्र, अग्नि, अशनीके लगनेसे और विषैले जानवरके काटनेसे अथवा भिलावाआदि विष त्वचापर लगने आदिसे अथवा अन्य किसी प्रकारकी चोट लगनेसे जो सूजन बाह्यत्वचामें उत्पन्न होती है उसको आगन्तु शोथ कहते हैं। आगन्तु शोथ और वात, पित्त, कफ इन तीनोंके हेतुओंसे कोपसे उत्पन्न हुआ तीन प्रकारका निजशोथ यह सबही सर्वांगमें अथवा अर्धांग वा किसी अंगावयवमें आश्रित हो प्रकट होते हैं॥ ५ ॥

शोथकी संप्राप्ति।

बाह्याः शिराः प्राप्य यदा कफासृक्पित्तानि संदूषयतीह वायुः।
तैर्बद्धमार्गः स तदापि सर्पन्नुत्सेधलिङ्गं श्वयथुं करोति॥ ६ ॥

वायु बाहरकी शिराओंमें प्राप्त होकर जब कफ, रक्त और पित्तको दूषित करता है तो उनसे शरीरके मार्ग बन्द होजाते हैं। फिर वह वायु शरीरमें सर्पण करताहुआ शोथको उत्पन्न करता है।शरीरकी त्वचाका ऊपरको फूलजाना ही शोथका लक्षण है६

उरःस्थितैरूर्द्ध्वमधस्तु वायोः स्थानस्थितैर्मध्यगतैस्तु मध्ये।
सर्वाङ्गगैः सर्वगतैः क्वचित्स्थैर्दोषैः क्वचित्स्याच्छ्वयथुस्तदाख्यः॥ ७ ॥

यदि शोथकारक दोष शरीरके ऊपरी भागमें स्थित हों तो ऊपरके अंगोंमें सूजन उत्पन्न करते हैं। और मलाशय आदि वायुके स्थानोंमें अर्थात् शरीरके अधोभागमें स्थित होनेसे नीचेके अंगोंमें सूजन उत्पन्न करते हैं। तथा शरीरके मध्यभागमें स्थित होनेसे शरीरके मध्यभागमें सूजनको प्रगट करते हैं। और संपूर्ण शरीरमें प्राप्त होनेसे सर्वांगगत शोथको करते हैं। यदि शरीरके किसी एक अंगमें व्यापक हों तो उसी अंगविशेषमें उसी नामवाली सूजनको प्रगट करते हैं॥ ७ ॥

ऊष्मा तथा स्याद्दवथुः शिराणामायास इत्येव च पूर्वरूपम्।
सर्वस्त्रिदोषोऽधिकदोषलिङ्गैस्तत्संज्ञमभ्येति भिषग्जितं च ॥ ८ ॥

शोथके प्रगट होनेसे प्रथम शोथ होनेवाले स्थानमें गरमी, दाह और शिराओंका फूलना यह लक्षण होते हैं। सब प्रकारकी सूजनोंमें जिस दोषकी अधिकता प्रतीत हो वैद्य उस सूजनको उसीके नामकी कहे और उसी दोषका लक्ष्य रखकर चिकित्सा करे ॥ ८ ॥

शोथके सामान्य लक्षण।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमुष्णोऽथ शिरातनुत्वम्।
सलोमहर्षाङ्गविवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ९ ॥

सूजन होनेवाले स्थानका भारी होना, चंचल होना और उस स्थानका ऊंचा होना, उस स्थानमें गरमी प्रतीत होना, शिराओंका पतला प्रतीत होना, रोमांच और शोथ होनेवाले स्थानकी विवर्णता यह शोथरोगके सामान्य लक्षण कहे हैं ॥ ९ ॥

वातजशोथ।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः सुषुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः।
प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली च श्वयथुः समीरणात् १०

वातसे उत्पन्न हुई शोथ एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चलनेवाली, पतली, रूक्ष, लाल, काली होती है। शोथस्थान सोयाहुआसा और हर्षयुक्त और पीडासहित होता है। इस शोथके हेतुओंके न मिलनेसे यह शान्त होजाती हैं। शोथस्थानको दबाकर छोड देनेसे फिर उन्नत होजाती है। यह सूजन दिनमें बलवान् होती है १०

पित्तज शोथ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः।
य उष्यते स्पर्शसहोऽक्षिरागकृत्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ११ ॥

जो सूजन मृदुस्पर्शवाली, गंधयुक्त, काली, पीली अथवा लालवर्णकी हो, सूजनका स्थान उष्ण हो, स्पर्श करनेसे पीडा प्रतीत होती हो, रोगीके नेत्र लालवर्णके हों, शोथमें अत्यंत दाह और पाक हो वह पित्तसे उत्पन्न हुई सूजन जानना ॥ ११ ॥

कफज शोथ।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत्।
सुकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफान्वितः १२॥

जो सूजन भारी, स्थिर, पाण्डुवर्णकी हो तथा जो देरमें उत्पन्न और देरमें ही शान्तहोनेवाली हो, सूजनमें अंगुली दबानेसे गढासा पडजाय रात्रिके समय सूजनका अधिक बल हो उसको कफकी सूजन जानना ॥ १२ ॥

असाध्य शोथके लक्षण।

कृशस्य रोगैरबलस्य यो भवेदुपद्रवैर्वा वमिपूर्वकैर्युतः।
महार्त्तिमर्म्मानुगतोऽथ राजिमान् परिस्रवन् भीमबलश्च सर्वशः॥ १३॥

कृश और रोगसे दुर्बल हुए मनुष्यकी सूजनमें यदि वमनादि उपद्रव हों अथवा हृदयादि मर्म स्थानकी सूजन अत्यंत पीडायुक्त हो तथा कृश और दुर्बल रोगीकी रेखा और परिस्रावयुक्त सूजन असाध्य होती है॥ १३॥

साध्यसूजन।

अहीनमांसस्य य एकदोषजो नवो बलस्तस्य सुखः स साधने।
निदानदोषर्त्तुविपर्य्ययक्रमैरुपाचरेत्तं बलदोषकालवित्॥ १४॥

जिस रोगीका मांसक्षीण न हुआ हो, सूजन केवल एक ही दोषजनित हो पुरानी न हो और बलवान् रोगीके शरीरमें हो तो वह सूजन साध्य होती है उसको निदान, दोष, ऋतु विचारकर बल, काल और दोषको जाननेवाला वैद्य कारणादि विपरीत चिकित्सा द्वारा शान्त करे॥ १४॥

शोथकी चिकित्सा।

अथामजं लङ्घनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्बणदोषमादितः।
शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधोविरेचनैरूर्ध्वहरैस्तथोर्ध्वजम्॥ १५॥

जो सूजन आमदोषसे हुई हो उसको लंघन और पाचनद्वारा शान्त करना चाहिये। जिसमें दोष अधिक बढेहुए हों उसमें संशोधन कराना चाहिये। शिरोगत शोथमें विरेचनीय नस्यद्वारा दोषको शान्त करे। अधोगत शोथमें विरेचन करावे। ऊर्ध्वगत शोथमें वमन करावे॥ १५॥

उपाचरेत्स्नेहगतं विरूक्षणैः प्रकल्पयेत्स्नेहविधिश्च रूक्षजे।
विबद्धविट्केऽनिलजे निरूहणं घृतन्तु पित्तानिलजे सतिक्तकम्॥ १६॥

अधिक स्नेहसे उत्पन्न हुई शोथमें रूक्षणक्रिया करे। रूक्षणकारणोंसे उत्पन्न हुई सूजनको स्नेहक्रिया द्वारा जीते। वात और पित्तसे उत्पन्न हुई शोथमें तिक्तकघृतों-द्वारा चिकित्सा करे॥ १६॥

पयश्च मूर्च्छारतिदाहतर्षिते विशोधनीये तु समूत्रमिष्यते।
कफोत्थितं क्षारकटूष्णसंयुतैः समूत्रतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत्॥ १७॥

मूर्च्छा, अरति, दाह और तृषायुक्त सूजनमें औषध सिद्ध दूध पिलावे। यदि ऐसे रोगीको शोधन करना उचित समझे तो दूध और गोमूत्र मिलाकर पिलावे। कफसे उत्पन्न हुई सूजनमें क्षार, कटु और उष्ण द्रव्योंसे युक्तकर गोमूत्र और तक्र

मिलाकर अथवा गोमूत्र और आसव मिलाकर विधिवत् पिलावे तो कफकी सूजन शान्त होती है ॥ १७ ॥

शोथरोगमें त्याज्यवस्तु ।

ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं
गौडं पिष्टं दधितिलकृतं विज्जलं मद्यमम्लम् ।
धानावल्लूरमशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि
स्वप्नं रात्रौ श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनञ्च ॥ १८ ॥

शोथरोगवाले मनुष्यको जलसंचारी जीवोंका मांस और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, लवण, नवीन अन्न, सूखे साग, गुडके पदार्थ, पिष्टपदार्थ, दही, तिलकल्कादि, खिचडी, गाढे द्रवयुक्त द्रव्य, मद्य, खटाई भुने गेहूं आदि धान्य, सूखा मांस, समशन (अधिक भोजन), भारी पदार्थ, असात्म्य भोजन, विदाही अन्न, दिनमें सोना और स्त्रीसंग इन सबको त्यागदेना चाहिये ॥ १८ ॥

कफज शोथकी चिकित्सा ।

व्योषं त्रिवृत्तिक्तकरोहिणी च सायोरजस्का त्रिफलारसेन ।
पीतं कफोत्थं शमयेत्तु शोफं मूत्रेण गव्येन हरीतकीं वा ॥ १९ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, निशोथ, कुटकी, लोहभस्म इनको त्रिफलोंके क्राथके साथ पीवे तो कफजनित शोथ दूर हो अथवा हरडोंके चूर्णको गोमूत्रके साथ पीवे तो कफजनित सूजन दूर हो ॥ १९ ॥

हरीतकी नागरदेवदारु सुखाम्बुयुक्तं सपुनर्नवं वा ।
सर्वं पिबेत्रिष्वपि मूत्रयुक्तं स्नातश्च जीर्णे पयसान्नमद्यात् ॥ २० ॥

या हरड, सोंठ, देवदारु और पुनर्नवा इनके चूर्णको सुखोष्ण गरमजलके साथ पीवे । अथवा इन सबको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीवे तो तीनों प्रकारकी सूजन दूर होती है । औषध जीर्ण होनेपर स्नानकर दूधके साथ भोजन करे ॥ २० ॥

वातजशोथके यत्न ।

पुनर्नवानागरमुस्तकल्कान् प्रस्थेन धीरः पयसोऽक्षमात्रन् ।
मयूरकं मागधिकां समूलां सनागरां वा प्रपिबेत्सवाते ॥ २१ ॥

पुनर्नवा, सोंठ, नागरमोथा इनके एक एक तोला कल्कको लेकर एक सेर दूधमें पकावे । आधा दूध शेष रहनेपर रोगीको पिलावे । अथवा अपामार्गकी जड, पीपल पीपलामूल और सोंठके कल्कको इसी प्रकार दूधमें पकाकर पीवे तो वातकी सूजन दूर होती है ॥ २१ ॥

दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकैर्वा पयः शृतं दोषहरं पिबेन्ना ।
द्विप्रस्थमात्रञ्च पलार्द्धिकैस्तैरर्द्धावशिष्टं पवने सपित्ते ॥ २२ ॥

दन्ती, निशोथ, सोंठ, पीपल, मिर्च और चित्रक, यह प्रत्येक दो तोला, दूध दो सेर मिलाकर पकावे। जब एक सेर दूध बाकी रहे तो इसको पीनेसे विरेचन होकर दोष दूर हों और उस मनुष्यके वात तथा पित्तजनित सूजन दूर हो ॥ २२ ॥

सशुण्ठिपीतद्रुरसं प्रयोज्यं श्यामोरुबूकोषणसाधितं वा ।
त्वग्दारुवर्षाभुमहौषधैर्वा गुडूचिकानागरदन्तिभिर्वा ॥ २३ ॥

सोंठ और दारुहलदीके क्वाथको दूध मिलाकर पीवे अथवा निशोथ, एरंडकी जड और काली मिर्चसे सिद्ध किया दूध पीवे अथवा दालचीनी, दारुहलदी, पुनर्नवा और सोंठसे सिद्ध कियाहुआ दूध अथवा गिलोय, सोंठ और दन्तीसे सिद्ध किया हुआ दूध वात तथा पित्तकी सूजनको दूर करता है ॥ २३ ॥

सप्ताहमौष्ट्रं यदि वापि मासं पयः पिबेद्भोजनवारिवजा ।
गव्यं समूत्रं महिषीपयो वा क्षीराशनं मूत्रमथो गवां वा ॥ २४ ॥

सात दिनपर्यंत अथवा एक महीनेतक केवल ऊंटनीका दूध पीने सिवाय इस दूधके और अन्न जल किसी प्रकारका कुछ न खाय तो वात और पित्तकी सूजन दूर होती है। अथवा भैंसका दूध और गोमूत्र मिला सेवन करे। अथवा एक महीने पर्यंत गोमूत्रका सेवन करे और गौके दूधका ही पथ्य करे तो वात और पित्तकी सूजन दूर होती है ॥ २४ ॥

तक्रं पिबेद्वा गुरुभिन्नवर्चाः सव्योषसौवर्चलमाक्षिकं वा ।
गुडाभयां वा गुडनागरां वा सदोषभिन्नामविबद्धवर्चाः ॥ २५ ॥

जिस मनुष्यको शोथरोगमें दस्त आनेलगें या भारी और अधिक मल आवे तो उसको त्रिकुटा, काला नमक और शहद मिलाकर तक्र पिलावे। यदि मल आमदोषयुक्त तथा बद्ध (कबजयुक्त) हो तो उसको गुडके साथ हरड या सोंठ और गुड मिलाकर देवे ॥ २५ ॥

विड्वातसङ्गे पयसा रसैर्वा प्राग्भुक्तमद्यादुरुबूकतैलम् ।
स्रोतोविबन्धेऽग्निरुचिप्रणाशे मद्यान्यरिष्टांश्च पिबेत्सुजातान् ॥ २६ ॥

यदि शोथरोगीका मल और अधोवायु बद्ध होजाय तो उसको भोजनसे प्रथम उचित द्रव्योंके क्वाथमें या मांसरसमें अथवा दूधमें मिलाकर एरंडतैल पिलावे। यदि स्रोतोंका विबंध हो, मंदाग्नि और अरुचि हो तो उचित मद्य अथवा उत्तम अरिष्टोंका पान करावे ॥ २६ ॥

कण्डीरादि अरिष्ट।

कण्डीरभल्लातकचित्रकांश्च व्योषं विडङ्गं बृहतीद्वयञ्च।
द्विप्रस्थिकं गोमयपावकेन द्रोणे पचेत्कूर्चिकमस्तुनस्तु ॥ २७ ॥
त्रिभागशेषञ्च सुपूतशीतं द्रोणेन तत्प्राकृतमस्तुना च।
सितोपलायाश्च शतेन युक्तं लिप्ते घटे चित्रकपिप्पलीनाम् ॥२८॥
वैहायसे स्थापितमादशाहात् प्रयोजयंस्तद्विनिहन्ति शोफान्।
भगन्दरार्शःक्रिमिकुष्ठमेहान् वैवर्ण्यकार्श्यानिलहिक्कनञ्च ॥ २९ ॥

कण्डीर (अपामार्ग या काण्डवेल), भेलावे, चित्रक, त्रिकुटा, बायविडंग, कटेली, बडी कटेली इन सबको मिलाकर दो प्रस्थ लेवे। तथा कूर्चिक मस्तु (दूधमें आधा पानी मिला गरमकर उसमें खट्टी दही डालदेनेसे दूध फटकर जो पानी निकले) एक द्रोण लेवे। इन सबको मिलाकर गौके जंगली उपलोंकी अग्निसे पकावे। जब एक भाग जलकर तीन भाग शेष रहे तब उसको अच्छी तरहसे छानकर फिर इसमें एक द्रोण दहीका पानी मिलावे। १०० पल मिसरी मिलावे और चित्रक तथा पीपलके कल्कसे लिपेहुए घडेमें रखकर बन्द करदे। इस घडेको रस्सीके छीकेमें बांधकर जिस स्थानमें धूप लगती हो किसी वृक्षसे अथवा अन्य किसी वस्तुसे बांधकर आकाशमें लटकावे। फिर १० दिनके पीछे उतारकर रोगीको उचित मात्रासे पिलावे। इसके सेवनसे सूजन, भगन्दर, अर्शरोग, कृमिरोग, कुष्ठ, प्रमेह, विवर्णता, कृशता, वातरोग और हिचकी यह सब दूर होते हैं ॥ २७–२९ ॥

काश्मर्यादि अरिष्ट।

काश्मर्य्यधात्रीमरिचाभयानां द्राक्षाफलानाञ्च सपिप्पलीनाम्।
शतं शतं जीर्णगुडात्तुलाञ्च संक्षुद्य कुम्भे मधुना प्रलिप्ते ॥ ३० ॥
सप्ताहमुष्णे द्विगुणन्तु शीते स्थितं जलद्रोणयुतं पिबेन्ना।
शोफान्विबन्धान् कफवातजांश्च स हन्त्यरिष्टोऽष्टशतोऽग्निरुच ॥ ३१ ॥

कुंभेरके फल, आँवले, मिर्च, हरड, बहेडे, द्राक्षा पीपल यह प्रत्येक सौ सौ पल लेवे, पानी एक द्रोण इन सबको मिलाकर आग पर गरम करे। जब जल एक भाग जलकर तीन भाग शेष रहे तो उसको उतारकर एक तुला (५ सेर) पुराना गुड मिलावे। इन सबको घोलकर शहत लिपे हुए घडेमें भरकर बन्द कर देवे। यदि गर्मीकी ऋतु हो तो इसको सात दिन धरा रहनेदे और शीतकालमें १४ दिन तक रक्खे फिर इनको छानकर सेवन करनेसे सूजन, कफ और वायुको विबंध तथा मन्दाग्नि यह सब नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट।

पुनर्नवे द्वे च बले सपाठे दन्ती गुडूचीमथ चित्रकञ्च ।
निदिग्धिकाञ्च त्रिपलानि पक्त्वा द्रोणार्द्धशेषे सलिले ततस्तम् ॥ ३२॥
पूत्वा रसं द्वे च गुडात्पुराणात्तुले मधुप्रस्थयुतं सुशीतम् ।
मासं निदध्याद्घृतभाजनस्थं पले यवानां परितस्तु माषान् ॥ ३३ ॥
चूर्णीकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तं पत्रत्वगेलामरिचाम्बुलोहैः ।
गन्धान्वितं क्षौद्रघृतप्रदिग्धेर्जीर्णे पिबेद्व्याधिबलं समीक्ष्य ॥ ३४ ॥
हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान् ।
भगन्दरं षड्जठराणि कासं श्वासं ग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ ३५ ॥
शाखानिलं बद्धपुरीषताञ्च हिक्कां किलासञ्च हलीमकञ्च ।
क्षिप्रं जयेद्वर्णबलायुरोजस्तेजोऽन्वितो मांसरसान्नभोक्ता ॥ ३६ ॥

लाल पुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, बला, अतिबला, पाठा, सोनापाठा, दंती, गिलोय, चित्रक और कटेरी इन प्रत्येकको तीन तीन पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे आधा जल बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे । शीत होनेपर इसमें दो तुला पुराना गुड मिलादेवे और एक प्रस्थ शहत मिलावे । फिर घृतसे चिकने पात्रमें भरकर बन्द करदेवे । फिर इसको यवोंके आटेसे संपुटकर उडदोंके ढेरमें दबाकर एक महीना रखदेवे एक महीने बाद इसको निकालकर इसमें तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, कालीमिर्च और नेत्रवाला इनका दो दो तोले बारीक चूर्ण मिलाकर सुगंधित करे (इसमें दो तोला लोहभस्म मिलावे) सबको हिलाकर किसी पात्रमें भरलेवे । (फिर नित्य शहद और घृतयुक्त भोजन करे । तथा भोजनके जीर्ण होनेपर इस अरिष्टको अग्निबल और व्याधि विचारकर मात्रानुसार पीवे ।) अथवा इस अरिष्टको पहिले दिनका किया भोजन जीर्ण होनेपर नित्य प्रातःकाल शहद और घृत मिला व्याधि, बल विचारकर पीवे तो हृद्रोग, पाण्डुरोग, बढीहुई सूजन, प्लीहरोग (तिल्लीका बढना), भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, छः प्रकारका उदररोग, खांसी, श्वास, ग्रहणी विकार, कोढ, खुजली, शाखागत वात, मलका विबंध, हिचकी, किलास और हलीमक यह सब रोग नष्ट होते हैं । इसके सेवनसे वर्ण, बल, आयु, ओज और तेजकी वृद्धि होती है । इसके सेवनमें मांसरस और भातका भोजन करना चाहिये ॥ ३२–३६ ॥

त्रिफला अरिष्ट।

फलत्रिकं दीप्यकचित्रकौ च सपिप्पलीलोहरजोविडङ्गम् ।

चूर्णीकृतं कौडविकं द्विरंशं क्षौद्रं पुराणस्य तुलां गुडस्य ।
मासं निदध्याद्घृतभाजनस्थं यवेषु तानेव निहन्ति रोगान् ॥ ३७ ॥

त्रिफला, अजवायन, चीता, पीपल, लोहचूर्ण और बायबिडंग यह प्रत्येक एक एक कुडव लेकर बारीक चूर्णकर लेवे । शहद दो कुडव, पुराना गुड एक तुला, पहिले शहत और गुडके सिवाय सब औषधियोंको एक द्रोण जलमें पकावे आधा भाग शेष रहनेपर नीचे उतारकर ठण्ढा करलेवे फिर इसमें शहत और गुड मिलाकर घीके चिकने पात्रमें डाल यवोंके ढेरमें गाडकर एक महीना रक्खे । फिर छानकर किसी शुद्ध पात्रमें भरे । इसके सेवनसे उपरोक्त पुनर्नवारिष्टके समान गुण होते हैं ॥ ३७ ॥

ये चार्शसां पाण्डुविकारिणाञ्च प्रोक्ताः शुभाः शोफिषु तेऽप्यरिष्टाः ॥ ३८ ॥

इसके सिवाय और भी जो अरिष्ट अर्शरोग और पाण्डुरोगमें कथन किये हैं वह सब शोथरोगमें हितकारक होते हैं ॥ ३८ ॥

पिप्पली आदि चूर्ण ।

कृष्णा सपाठा गजपिप्पली च निदिग्धिका चित्रकनागरे च ।
सपिप्पली मूलरजन्यजाजी मुस्तञ्च चूर्णं सुखतोयपीतम् ।
हन्यात् त्रिदोषं चिरजञ्च शोफं कल्कश्च भूनिम्बमहौषधस्य ॥ ३९ ॥

पीपल, पाढ, गजपीपल, कटेली, चित्रक, सोंठ, पीपलामूल, हल्दी, जीरा, नागरमोथा इन सबका चूर्णकर सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे तीनों दोषोंके शोथ, बहुत दिनके पुराने शोथ दूर होते हैं । इसी प्रकार चिरायता और सोंठके कल्कको गरम जलके साथ पीनेसे भी तीनों दोषोंका शोथ दूर होता है ॥ ३९ ॥

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकं चूर्णञ्च पीतं त्रिफलारसेन ॥ ४० ॥

लोहकी रज (लोहभस्म अथवा मंडूरभस्म) सोंठ, मिर्च, पीपल और जवाखार इनको त्रिफलाके क्वाथके साथ पीवे तो तीनों दोषोंकी पुरानी सूजन भी दूर होती है ॥ ४० ॥

क्षारादि गुटिका ।

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वार्य्ययोरजोव्योषफलत्रिकञ्च ।
सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम् ।
कलिङ्गकाश्चित्रकमूलपाठं सयष्टिकं चातिविषं पलांशम् ॥ ४१ ॥
सहिंगुकर्षं त्वनुसूक्ष्मचूर्णं द्रोणं यथा मूलकशुण्ठिकानाम् ।
स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेन साध्यमालोड्य यावद्घनमप्रदग्धम् ॥ ४२ ॥

स्त्यानं ततः कोलसमान्तु मात्रां कृत्वा सुशुष्कां विधिना भजेत।
प्लीहोदरश्वित्रहलीमकांस्तु पाण्ड्वामयारोचकशोषशोकान्।
विषूचिकागुल्मगराश्मरीश्च सश्वासकासाः प्रणुदेत्सकुष्ठाः॥ ४३ ॥

जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, संचरनमक, सांभरनमक, विडनमक, लोहभस्म पीपल, मिर्च, सोंठ, हरड, बहेडे, आँवले, पीपलामूल, वायविडंगके चावल, नागरमोथा, अजमोद, देवदारु, बेलगिरि, इन्द्रयव, चित्रककी छाल, पाठा, मुलैठी और अतीस इन सबको एक एक पल लेवे। भुनीहुई हींग एक कर्ष लेवे। इन सबको कूटकर बारीक चूर्ण करे। फिर मूली और सोंठकी भस्म जल मिलाकर एक द्रोण लेकर पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस छनेहुए जलमें ऊपरकी सब औषधियोंका चूर्ण मिलाकर पकावे और हिलाताजावे। जब गाढा होजाय तब नीचे उतारकर जंगली बेरके समान गोलियाँ बनावे। जब यह सूख जांय तो इनका सेवन करनेसे प्लीहा, उदररोग, श्वेतकुष्ठ, हलीमक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोषरोग, शोथरोग, विषूचिका, गुल्म, अश्मरी, श्वास, खांसी और कुष्ठ यह सब रोग नष्ट होते हैं॥ ४१-४३ ॥

गुडार्द्रक योग।

प्रयोजयेदार्द्रकनागरं वा तुल्यं गुडेनार्द्धपलाभिवृद्ध्या।
मात्रा पलं पञ्चपलानि मासं जीर्णे पयो यूषरसान्नभोक्ता॥४४॥
गुल्मोदरार्शःश्वयथुप्रमेहाञ्श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान्।
सकामलाशोषमनोविकारान् कासं कफञ्चैव जयेत्प्रयोगः॥
रसस्तथैवार्द्रकनागरस्य पेयोऽथ जीर्णे पयसान्नमद्यात्॥ ४५ ॥

अदरख अथवा सोंठको बराबरके गुडमें मिलाकर सेवनकरे। इसका यह क्रम है कि पहिले दिन आधा पल, दूसरे दिन एक पल, तीसरे दिन डेढ पल इसी प्रकार आधा आधा पल बढाते हुए पांच पल पर्यन्त पहुंचावे फिर एक महीनेतक पांच पल बराबर खाताजाय मात्रा जीर्ण होनेपर दूध, मूंगका यूष, अथवा मांसरसके साथ चावलोंका भोजनकरे तो गुल्म, उदररोग, बवासीर, शोथ, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अन्नका न पचना, कामला, शोष, मनके विकार, खांसी और कफ यह सब दूर होते हैं। इसी प्रकार अदरखका रस वा सोंठका रस आधे पलसे आरम्भकर पांच पलपर्यन्त क्रमशः बढा एक महीनेपर्यन्त सेवन करे और दूध चावलका पथ्य करे तो भी उपरोक्त गुण होता है॥ ४४॥४५ ॥

शिलाजतु प्रयोग।

जत्वश्मजञ्च त्रिफलारसेन हन्यात्रिदोषं श्वयथुं प्रसह्य ॥ ४६ ॥

शिलाजीतको त्रिफलाके क्वाथके साथ सेवन किया जाय तो तीनों दोषोंके शोथको दूर करता है ॥ ४६ ॥

कंसहरीतकी।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसोऽभयानाञ्च शतं गुडस्य।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुषां स्थिते च ॥ ४७ ॥
प्रस्थार्द्धमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चिच चूर्णादपि यावशूकात्।
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ ४८ ॥
श्वासज्वरारोचकमेहहिक्काप्लीहात्रिदोषोदरपाण्डुरोगान्।
कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ४९ ॥

दशमूलकी औषधियें एक कंस (आढक, चार सेर), बडी २ उत्तम हरड १००, हरडोंको एक कपडेमें ढीलीसी बान्धकर सोलह सेर जलमें डालकर उसी जलमें दश-मूलकी औषधियें मिला क्वाथ बनावे। जब चार शेर पानी बाकी रहे तो उतारकर छानलेवे और हरडोंको क्वाथमें मिलावे और उसी क्वाथमें गुड (चार शेर) मिलाकर पकावे। जब वह पककर गाढा होजाय तो इसको नीचे उतार शीतलकर आधा सेर शहद मिलावे और मिर्च, पीपल, सोंठ, इलायची, दालचीनी और तेजपत्र यह एक एक पल बारीक चूर्ण कर मिलावे। इसमेंसे एक हरड खाकर ऊपरसे यह अवलेह एक तोला चाटलेवे। इस प्रकार १०० दिनमें इन १०० हरडोंको खावे। इस प्रयो-गसे अत्यन्त बढीहुई सूजन, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोष, उदररोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष और वीर्यदोष यह सब दूर होते हैं ॥ ४७–४९ ॥

पटोलमूलादि घृत।

पटोलमूला सुरदारु दन्ती त्रायन्तिपिप्पल्यभयाविशालाः।
यष्ट्याह्विका तिक्तकरोहिणी च सचन्दना स्यान्निचुलानि दार्वी॥ ५० ॥
कर्षोत्थितैस्तैः क्वथितः कषायो घृतस्य पेयः कुडवेन युक्तः।
विसर्पदाहज्वरसन्निपातांस्तृष्णां विषाणि श्वयथुं निहन्ति ॥ ५१ ॥

पटोलकी जड, देवदारु, दन्ती, त्रायमाण, पीपल, हरड, इन्द्रायणकी जड, मुलैठी, कुटकी, लालचन्दन, निचुल (समुद्रफल) और दारुहलदी यह सब एक एक कर्ष

लेवे । इनको सोलह गुने जलमें पकाकर चौथा भाग रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस क्वाथसे एक कुडव घृत सिद्धकरे इस घृतके पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, सन्निपात, प्यास, विषदोष और सूजन यह सब नष्ट होते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

चित्रकादि घृत ।

सचित्रकं धान्ययवान्यजाजी सौवर्चलं त्र्यूषणवेतसाम्लम् ।
बिल्वात्फलं दाडिमयावशूकौ सपिप्पलीमूलमथोऽपि चव्यम् ॥ ५२ ॥
पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि जलाढकेन पक्त्वा घृतप्रस्थमथो प्रयुंज्यात् ।
अर्शांसि गुल्मं श्वयथुञ्च दुःखं तद्धन्ति वह्निञ्च करोति दीप्तम् ॥ ५३ ॥

चित्रक, धनियां, अजवायन, जीरा, संचरनमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, अमलवेत, बेलगिरी, अनारका छिलका, जवाखार, पीपलामूल और चव्यको एक एक कर्ष लेकर एक आढक जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस क्वाथमें एक प्रस्थ घी डालकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारलेवे । इस घृतके सेवनसे ववासीर, गुल्म, सूजन और मूत्रकृच्छ्र यह सब विकार दूर होते हैं । यह घृत अग्निको भी चैतन्य करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

पिबेद्घृतं वाष्टगुणाम्बुसिद्धं सचित्रकक्षारमुदारवीर्य्यम् ।
कल्याणकं वापि सपञ्चगव्यं तिक्तं महद्वाप्यथ तिक्तकं वा ॥ ५४ ॥

अथवा चित्रक और जवाखारके कल्कको मिलाकर आठगुना जल डाल घृतको सिद्ध करे । इस घृतके सेवनसे बढी हुई शोथ भी दूर होती है । एवं कल्याणकघृत अथवा पंचगव्यघृत या महातिक्तक घृत अथवा तिक्तघृतके सेवनसे भी शोथरोग दूर होता है ॥ ५४ ॥

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते दध्यागतं साधु विमथ्यते च ।
तज्जं घृतं चित्रकमूलगर्भं तक्रेण सिद्धं श्वयथुघ्नमग्र्यम् ॥ ५५ ॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहांश्चैतन्निहन्त्यग्निबलप्रदञ्च ।
तक्रेण वाद्यात्सघृतेन तेन भोज्यानि सिद्धामथवा यवागूम् ॥ ५६ ॥

चित्रककी जडकी छालको जलके संयोगसे वारीक पीस, घडेमें लेपकरे । जब वह लेप सूखजाय उसमें दूधको गर्मकर दही जमा देवे । फिर इसमें बिलोकर घी निकाल लेवे । उस घृतमें आठवाँ भाग चित्रकका कल्क मिलाकर और चारगुना तक्र मिला पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस घृतके सेवनसे बढी हुई सूजन, अर्श, अतिसार, वातगुल्म, प्रमेह यह सब दूर होते हैं और जठराग्निका बल

बढता है। मात्रा पचनेपर घृत और तक्रके साथ भोजन करावे । अथवा घृत और तक्र मिलाकर सिद्ध कीहुई यवागू पान करावे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शोथहरयवागू।

जीवन्त्यजाजीशटिपुष्कराह्वैः सकारवीचित्रकबिल्वमध्यैः ।
सयावशूकैर्बदरप्रमाणैर्वृक्षाम्लयुक्ता घृततैलभृष्टाः ॥ ५७ ॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्मशोफहृद्रोगमन्दाग्निहिता यवागूः ।
या पञ्चकोलैर्विधिनैव तेन सिद्धा भवेत्सा च समा तयैव ॥ ५८ ॥

जीवंती, जीरा, कचूर पोहकरमूल, कलौंजी, चित्रक, बेलकी गिरि और जवाखार यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर क्वाथ बनावे उस क्वाथको छानकर उसमें यवागू सिद्धकरे। इस यवागूको इमलीकी खटाईसे खट्टा बना घृतमें भूनकर सेवनकरे तो अर्शरोग, अतिसार, वातगुल्म, सूजन, हृद्रोग और मंदाग्नि इन सबमें हित होता है। अथवा इसी प्रकार पंचकोलसे सिद्ध कीहुई यवागू भी इसीके समान गुणवाली है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

कुलत्थयूषश्च सपिप्पलीको मौद्गश्च सत्र्यूषणयावशूकः ।
रसस्तथा विष्किरजाङ्गलानां सकूर्मगोधाशिखिशल्लकानाम् ॥ ५९ ॥
सुवर्चिका गृञ्जनकं पटोलं सवायसीमूलकवेत्रनिम्बम् ।
शाकार्थिनां शाकमतिप्रशस्तं भोज्यं पुराणश्च यवः सशालिः ॥ ६० ॥

पीपलके क्वाथसे सिद्ध किया कुल्थीका यूष अथवा पीपल, मिर्च, सोंठ और जवाखार इनसे सिद्ध किया मूंगका यूष सूजनको शान्तकारक है। और विष्किर पक्षियोंका मांसरस अथवा जांगलजीवोंका मांसरस या कूर्म, गोह, मोर और सेहका मांसरस शोथरोगीके लिये हितकारी है। तथा हुलहुलका साग, सलजम, पटोल, मकोह, कच्ची मूली, बेतकी कोंपल नीम इनके शाक पुराने शालीचावलोंका भात यह सब शोथरोगमें पथ्य हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥

आभ्यन्तरं भेषजमुक्तमेतद्बाहिर्हितं यच्छृणु तद्यथावत् ।
स्नेहान् प्रदेहान् परिषेचनानि स्वेदांश्च वातप्रबलांश्च कुर्य्यात् ॥ ६१ ॥

शोथरोगकी शान्तिके लिये आभ्यंतर (भीतरी) चिकित्साका वर्णन कियागया है। अब बाहर लेपनादिमें जो हितकारक औषधियें हैं उनको सुनो। वायुके शोथमें स्नेहन, प्रलेपन, परिषेचन और स्वेदन कर्म करना हितकारक है ॥ ६१ ॥

वातशोथनाशक शैलेयादि तैल।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः ।

प्रियङ्गुस्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥ ६२ ॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः स्पृक्का नखैश्चैव यथोपलाभम् ।
वातान्वितेऽभ्यङ्गमुषन्ति तैलं सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम् ॥ ६३ ॥

शैलेय, कूठ, (भूरीं छरीला अथवा सेंधानमक) अगर, देवदारु, रेणुका, दालचीनी, पद्मकाष्ठ, इलायची, नेत्रवाला, पलाश, नागरमोथा, प्रियंगु, गठिवन, नागकेशर, जटामांसी, तालीश पत्र, केवटीमोथा, तेजपत्र, धनियां, श्रीवेष्टक, वीरणतृण, पिप्पली, स्पृक्का (असवर्ग) और नख इनमेंसे जो प्राप्त होसकें उनके कल्क और क्वाथद्वारा सिद्ध किया तेल मालिश करनेसे और इन्हीं उपरोक्त औषधियोंको लेप करनेसे वातकी सूजन दूर होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

जलैश्च वासार्ककरञ्जशिग्रुकाश्मर्य्यपत्रार्जकजैश्च सिद्धैः ।
स्विन्नो मृदूष्णो रवितप्ततोयस्नातश्च गन्धैरनुलेपनीयः ॥ ६४ ॥

वांसा, आककी जडका छिलका, करंजुआ, सोहांजना, कुंभेर, और तुलसीके पत्र इन सबको जलमें पकाकर उस जलकी भाफ सूजनपर देना जब अच्छी तरह पसीना आलेवे फिर पसीना शान्त होनेपर धूपसे गर्म हुए जलमें स्नानकर गंधद्रव्योंका लेपन करे ॥ ६४ ॥

पित्तजशोथमें यत्न ।

सवेतसाः क्षीरवतां द्रुमाणां त्वचः समञ्जिष्ठलतामृणालाः ।
सचन्दनाः पद्मकवालकौ च पैत्ते प्रदेहस्तु सतैलपाकः ॥ ६५ ॥
आक्तस्य तेनाम्बुरविप्रतप्तं सचन्दनं साभयपद्मकञ्च ।
स्नाने मतं क्षीरवतां कषायः क्षीरोदकं चन्दनलेपनञ्च ॥ ६६ ॥

वेतसकी छाल और बड आदि वृक्षोंकी छाल, मजीठ, कमलकी डण्डी, चंदन, पद्माक, सुगंधवाला इन सबको रगडकर लेप करना और इन्हींसे सिद्ध किये तेलकी मालिश पित्तकी सूजनको दूर करता है। पित्त शोथवाला रोगी इस तैलकी मालिश-कर फिर चंदन, हरड और पद्माकको पीसकर जलमें मिलाकर कल्क करे। इसको धूपमें तपाकर शरीरपर लगावे और बड आदि क्षीरीवृक्षोंके क्वाथसे अथवा दूध मिले जलसे स्नानकर चंदनका लेपन करे यह कर्म पित्तकी सूजनको शान्त करता है ॥६५॥६६॥

कफशोथनाशक यत्न ।

कफे तु कृष्णा सिकता पुराणपिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः ।
कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेकश्चण्डागुरुभ्यामनुलेपनञ्च ॥ ६७ ॥

पीपलका चूर्ण, पुरानी खल, साहजनेकी छाल और राई इनको पीसकर लेप करना कफकी सूजनको दूर करता है। तथा कुल्थी और सोंठके काथसे गोमूत्र मिलाकर परिषेचन करना फिर चोर नामक गन्धद्रव्य और अगरका लेप करना कफकी सूजनको शान्त करता है ॥ ६७ ॥

विभीतकानां फलमध्यलेपः सर्वेषु दाहार्त्तिहरः प्रलेपः ।
यष्ट्याह्वमुस्तैः सकपित्थपत्रैः सचन्दनैस्तात्पिडकासु लेपः ॥ ६८ ॥

बहेडेकी गुठलीको पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारकी सूजनोंकी दाह दूर होती है। मुलैठी, नागरमोथा और कैथके पत्ते और लालचन्दन इनको रगडकर लेप करनेसें शोथकी पिडका शान्त होती हैं ॥ ६८ ॥

रास्ना वृषार्कत्रिफला विडङ्गाशिग्रुत्वचो मूषिककर्णिका च ।
निम्बार्जकौ व्याघ्रनखः सदूर्वा सुवर्चला तिक्तकरोहिणी च ॥ ६९ ॥
सकाकमाची बृहती सकुष्ठा पुनर्नवा चित्रकनागरे च ।
उन्मर्दनं शोफिषु मूत्रपिष्टं शस्तस्तथा मूलकतोयसेकः ॥ ७० ॥

रासना, अडूसा, आककी जडका छिलका, त्रिफला, वायविडंग, साहजनेकी छाल, मूषकपर्णी, नीमके पत्ते, तुलसीके पत्ते, व्याघ्रनखी, दूर्वा, हुलहुल, कुटकी, मकोय, बडी कटेरी, कूठ, पुनर्नवा, चित्रक, सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर सूजनपर मर्दन करना और सूखी मूलीको जलमें पकाकर उस जलका तरडा देना सब प्रकारकी सूजनोंको दूर करता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अंगावयवभेदसे शोफोंका वर्णन ।

शोफास्तु गात्रावयवाश्रिता ये ते स्थानदूष्याकृतिनामभेदात् ।
अनेकसंख्याः कतिचिच्च तेषां निदर्शनार्थं शृणु चोच्यमानान् ॥ ७१ ॥

जो सूजनें शरीरके अवयवोंमें होती हैं वह स्थान, दूष्य, आकृति और नामभेदसे अनेक प्रकारकी होती हैं उनमेंसे उदाहरण मात्रके लिये कुछ सूजनोंको कहते हैं सो तुम श्रवण करो ॥ ७१ ॥

गल और शिरकी सूजन ।

दोषास्त्रयः स्वैः कुपिता निदानैः कुर्वन्ति शोफाञ्छिरसः सुघोरान् ।
अन्तर्गले घुर्घुरिकान्वितञ्च शालूकमुच्छ्वासनिरोधनानि ॥ ७२ ॥

तीनों दोष अपने २ हेतुओंसे कुपित होकर सिरमें घोर सूजनको उत्पन्न करते हैं। तथा कुपितहुए दोष गलेमें श्वासको रोकनेवाली और घुरघुर शब्द करनेवाली शालूक नामक सूजनको उत्पन्न करते हैं ॥ ७२ ॥

सुचोग्र और बिडालिका।

गलस्य सन्धौ चिबुके गले च सदाहरागश्वसनः सुचोग्रः।
शोफो भृशार्त्तिस्तु बिडालिका स्याद्धन्याद्गले चेद्वलयीकृता स्यात्॥ ७३

गलेकी सन्धि, ठोडी, गला इनमें दाहयुक्त, लालवर्ण और श्वाससहित जो सूजन उत्पन्न होती है उसको सुचोग्र कहते हैं। जो शोथ गलेमें गोलाकार उत्पन्न हो और उसमें अत्यन्त पीडा होती हो वह बिडालिका नामक सूजन मनुष्योंको मार-डालती है॥ ७३॥

तालुविद्रधि उपजिह्व, अधिजिह्व।

स्यात्तालुविद्रध्यपि दाहरोगैर्युता भवेत्तालुनि सा त्रिदोषात्।
जिह्वोपरिष्टादुपजिह्विका स्यात् कफादधस्तादधिजिह्विका च॥ ७४॥

दाह और लालवर्णयुक्त तालुवोंमें होनेवाली विद्रधि त्रिदोपसे होती है। जीभके ऊपर उपजिह्वा नामक सूजन उत्पन्न होती है। जीभके नीचे कफजनित सूजन अधि-जिह्विका नामकी होती है॥ ७४॥

उपकुश और दन्तविद्रधि।

यो दन्तमांसेषु तु रक्तपित्तात् पाको भवेत्सोपकुशः प्रदिष्टः।
स्याद्दन्तविद्रध्यपि दन्तमांसे शोफः कफाच्छोणितसञ्चयोत्थः॥ ७५॥

जो दांतोंके मांसमें रक्तपित्तसे पाक होता है उसको उपकुश कहते हैं। कफ और रक्तसे उत्पन्न हुई दांतोंकी जडोंकी सूजन दन्तविद्राधि (मसूडा) कही जाती है॥७५॥

गलगण्ड और गण्डमाला।

गलस्य पार्श्वे गलगण्ड एकः स्याद्गण्डमाला बहुभिस्तु गण्डैः।
साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः॥ ७६॥

गलेके पार्श्वमें, जो गांठकासा एक आकार प्रकट हो उसको गलगण्ड कहते हैं। और बहुतसी ग्रन्थियें हों तो उनको गण्डमाला कहते हैं। यह दोनों साध्य होते हैं। परन्तु इनमें प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और वमन यह सब उपद्रव होनेसे असाध्य मानेजाते हैं॥ ७६॥

उपरोक्त सूजनोंकी चिकित्साक्रम।

तेषां शिराकायशिरोविरेको धूमः पुराणस्य घृतस्य पानम्।
सलङ्घनं वक्त्रभवेषु चापि प्रहर्षणं स्यात्कवलग्रहश्च॥ ७७॥

इन सम्पूर्ण सूजनोंको शान्त करनेके लिये शिरावेधन, विरेचन, शिरोविरेचन, धूम्रपान और पुराने घृतका पान करना तथा लंघन यह सब हितकारक हैं। मुखमें

होनेवाली सूजनोंमें शोथनाशक चूर्णोंको मुखकी शोथपर मलना, शोथनाशक द्रव्योंके काथको मुखमें धारणकर कुल्ले करना तथा लंघन करना हितकारक होता है ॥ ७७ ॥

ग्रन्थियोंका वर्णन।

अङ्गैकदेशेष्वनिलादिभिः स्यात्स्वरूपधारी स्फुरणः शिराभिः।
ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वनर्त्तिर्मेदोभवः स्निग्धतमश्चलश्च ॥ ७८ ॥

वातादि दोषोंसे शरीरके किसी देशमें जो सूजन होती है वह वातादिदोषोंके प्रत्यक्ष लक्षणोंयुक्त होती है। वह सूजन यदि शिराके बीचमें हो तो वह फडकती है इसको शिराग्रंथि कहते हैं। यदि सूजन मांसगत हो तो वह बडी गांठसी होती है उसमे पीडा नहीं होती। और मेदगत ग्रंथि अथवा मेदमें होनेवाली ग्रंथि अत्यंत चिकनी और चलायमान होनेवाली होती है ॥ ७८ ॥

ग्रंथियोंकी चिकित्सा।

तं शोधितं स्वेदितमश्मकाष्ठैः साङ्गुष्ठदण्डैर्विनयेदपक्वम्।
विपाट्य चोद्धृत्य भिषक्सकोषं शस्त्रेण दग्ध्वा व्रणवच्चिकित्सेत् ॥ ७९ ॥
अदग्ध ईषत्परिशोषितश्च प्रयाति भूयोऽपि शनैर्विवृद्धिम्।
तस्मादशेषः कुशलैः समन्ताच्छेद्यो भवेद्वीक्ष्य शरीरदेशान् ॥ ८० ॥
शेषे कृते पाकवशेन शीर्य्येत्ततः क्षतोत्थः प्रसरेद्विसर्पः।
उपद्रवं तं प्रतिवार्य्य तज्ज्ञः स्वैर्भेषजैः पूर्वतरैर्यथोक्तैः।
ततः क्रमेणास्य यथाविधानं व्रणं व्रणज्ञस्त्वरया चिकित्सेत् ॥ ८१ ॥

संपूर्ण ग्रंथियोंके पकनेसे पहिले ही शोधन तथा स्वेदन करना और पत्थर, काष्ठ, अंगूठा और दण्ड आदिसे सेककर नरम करना चाहिये। और शस्त्रद्वारा चीरकर कोषसमेत निकाल देना चाहिये। तथा ग्रंथिके स्थानको शस्त्रसे दागदेवे और व्रणके अनुसार चिकित्सा करे। यदि उसको शुद्ध करके दग्ध न करदियाजाय तो वह थोडासा दोष भी बाकी रहजानेसे ग्रंथि फिर होजाती है। इसलिये यदि रक्तवाहिनी नाडीमें या मर्मस्थानमें न हो तो शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य उसको कोषसमेत निकाल डाले। क्योंकि शस्त्रद्वारा निकाल देनेके बाद भी यदि ग्रंथिका कुछ भाग शेष रहजाय तो वह फिर पककर फूटता है। और बिगडकर क्षतजनित विसर्प उत्पन्न करता है। ऐसा होनेपर बुद्धिमान् वैद्य उसके संपूर्ण उपद्रवोंको विसर्पमें कहे क्रमोंसे शान्त करे। उसके अनन्तर व्रणचिकित्साकी विधिसे क्रमको जाननेवाला वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे ॥ ७९-८१ ॥

त्याज्यग्रंथियें।

विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितञ्च तथा गले मर्मणि संश्रितञ्च।
स्थूलः खरश्चापि भवेद्विवर्ज्यो यश्चापि बालस्थविराबलानाम् ॥ ८२ ॥

कुक्षि, उदर, गला और मर्मस्थानमें उत्पन्न हुई ग्रंथियोंको त्याग देना चाहिये। और जो ग्रंथि स्थूल, दृढ और रूक्ष हो उसमें भी शस्त्रक्रिया करना उचित नहीं, एवं बालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्योंकी ग्रंथियें भी शस्त्रक्रियाके योग्य नहीं होतीं॥८२॥

अर्बुदकी चिकित्सा।

ग्रन्थ्यर्बुदानाञ्च यतोऽविशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ८३ ॥

स्थान, हेतु, लक्षण, दोष और दूष्योंसे ग्रंथिरोगमें और अर्बुदमें कोई विशेषता नहीं है। इसलिये चिकित्साको जाननेवाला वैद्य अर्बुद (रसौली) रोगकी चिकित्सा ग्रंथिरोगके समान ही करे ॥ ८३ ॥

आलजीके लक्षण।

ताम्रा सशूला पिडका भवेद्या सा त्वालजी नाम परिस्रुताग्रा ॥ ८४ ॥

ताम्रवर्णवाली, शूलयुक्त और जिसके अग्रभागमें बहुत थोडा स्राव होता है उस पिडिकाको आलजी कहते हैं ॥ ८४ ॥

चिप्यक और बिदारिका।

शोफः कृतश्चर्मनखान्तरे स्यान्मांसास्रदूषी भृशशीघ्रपाकः।
ज्वरान्विता वंक्षणकक्षजा या वर्तिर्निरर्तिः कठिनायता च ॥ ८५ ॥
विदारिका सा कफमारुताभ्यां तेषां यथादोषमुपक्रमः स्यात्।
विस्रावणं पिण्डिकयोपनाहः पक्वेषु चैव व्रणवच्चिकित्सा ॥ ८६ ॥

चर्म और नखोंके भीतर जो मांस और रक्तको दूषित करनेवाला अत्यंत शीघ्रपाकी शोथ उत्पन्न होता है (इसको चिप्य कहते हैं)। वंक्षण और कक्षामें जो वर्तीके समान पीडारहित, कठोर, फैलीहुई ज्वरयुक्त सूजन होती है उसको विदारिका कहते हैं यह कफ और वायुसे उत्पन्न होती है। इन सब पिडिकाओंकी दोषानुसार चिकित्सा करना चाहिये। कच्ची अवस्थामें रक्तस्रावण और पिण्डिकाद्वारा उपनाह स्वेद, तथा पकनेपर व्रणरोगके समान क्रिया करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

विस्फोटक और कक्षा।

विस्फोटकाः सर्वशरीरजाः स्युः स्फोटास्तु रागज्वरतर्षयुक्ताः।
यज्ञोपवीतप्रतिमाः प्रभूताः पित्तानिलाल्लाजनिभास्तु कक्षाः ॥ ८७ ॥

जो संपूर्ण शरीरमें लालवर्णके ज्वर और तृषायुक्त फोडे हों उनको विस्फोटक कहते हैं। यज्ञोपवीतके समान वातपित्तसे जो शरीरमें सूजन होती हैं उसको कक्ष (ब्रह्मसोंचली) कहते हैं ॥ ८७ ॥

मसूरिका।

याश्चापराः स्युः पिडकाः प्रकीर्णाः स्थूलाणुमध्या अपि पित्तजास्ताः।
सर्वत्र गात्रेषु मसूरमात्र्यो मसूरिकाः पित्तकफात्प्रदिष्टाः ॥ ८८ ॥

इनके सिवाय शरीरमें होनेवाली और जो पिडिकायें हैं उनमें कोई स्थूल, कोई प्रकीर्ण, कोई छोटी, कोई मध्यम होती हैं यह सब पित्तसे उत्पन्न होती हैं। कफ और पित्तसे संपूर्ण शरीरमें मसूरके समान फुन्सियें होती हैं उनको मसूरिका कहतेहैं॥८८॥

विसर्पशान्त्यै विहिता क्रिया या तां तासु कुष्ठेषु हितां विदध्यात्॥८९॥

इन सबकी शान्तिके लिये विसर्प और कुष्ठरोगमें जो चिकित्सा कही है वह चिकित्सा करे ॥ ८९ ॥

अण्डवृद्धि।

अधानिलाद्यैर्वृषणे स्वलिङ्गैरन्त्रान्निरेति प्रविशेन्मुहुश्च ।
मूत्रेण पूर्णं मृदु मेदसा तु स्निग्धश्च विद्यात्कठिनश्च शोथम् ।
विरेचनाभ्यङ्गनिरूहलेपाः पक्वेषु चैव व्रणवच्चिकित्सा ॥ ९० ॥
स्यान्मूत्रसेकः कफजं विपाट्य विशोध्य सीव्यं व्रणवच्च पक्वम् ॥९१॥

वातादि दोष कुपित होकर अपने अपने लक्षणोंसे युक्त हो उदर स्थानोंकी नसोंमें पहुंचकर वारंवार वृषणोंमें प्रवेश करते हैं उस समय फोतोंकी नसोंको बढादेते हैं इसको अंत्रवृद्धि कहते हैं। दोषोंद्वारा वृषणों (फोते) में मूत्रके परिपूर्ण होनेसे जो मृदु शोथ उत्पन्न होती है उसको मूत्रशोथ कहते हैं। यदि दोष वृषणोंमें मेद पहुंचायें तो वह शोथ चिकनी और कठिन होती है। इससे अण्डकोश बढ जाते हैं इसी रोगको अण्डवृद्धि कहते हैं। इस रोगमें अपक्व अवस्थामें विरेचन, अभ्यंग, निरूहण और लेपन क्रिया करे। इसके पकजानेपर व्रणके समान चिकित्सा करे। मूत्रवृद्धिमें शस्त्रद्वारा वेधनकर मूत्रको निकालदेवे। कफजनित मेदज वृद्धिमें शस्त्रसे चीरकर मेद निकालकर शुद्ध करके सीदेना चाहिये। और पकजानेपर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ ९० ॥ ९१ ॥

भगंदरका वर्णन।

कृम्यस्थिसूक्ष्मक्षणनव्यवायप्रवाहनान्युत्कटुकाश्वपृष्ठैः।
गुदस्य पार्श्वे पिडका भृशार्तिः पक्वप्रभिन्ना तु भगन्दरः स्यात् ॥९२॥

विरेचनं चैषणपाटनञ्च विशुद्धमार्गस्य च तैलदाहः ।
स्यात् क्षारमूत्रेण सुपाचितेन च्छिन्नस्य चास्य व्रणवच्चिकित्सा ॥ ९३ ॥

गुदामें कृमियोंके होनेसे अस्थि, पैंडका आदि गुदाके किनारे चुभजानेसे, मैथुनसे, विना वेगके जोर लगाकर मलत्याग करनेसे घोडेकी नंगी पीठपर चढनेसे अथवा अन्य उत्कट सवारीपर बैठनेसे गुदाके किनारेपर पीडायुक्त पिडिका होजाती हैं। वह पककर फूटती हैं उनको भगन्दर कहते हैं।भगन्दररोगमें विरेचन एषणीयन्त्र (सलाई) द्वारा भगन्दरको देखकर उसमें रोपण औषधी पहुँचाना और चीरकर स्वच्छ कर देना चाहिये । फिर शुद्ध मार्ग होनेपर तैल आदि औषधीके साथ दाह करना अथवा क्षार और मूत्रद्वारा सिद्ध किये तैलसे दग्ध करना तथा स्वच्छ होनेपर व्रणके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

श्लीपदकी निदान चिकित्सा।

जङ्घासु पिण्डी प्रपदोपरिष्टात् स्याच्छ्लीपदं मांसकफास्रदोषात् ।
शिराकफघ्नश्च विधिः समग्रस्तत्रेष्यते सर्षपलेपनञ्च ॥ ९४ ॥

जंघाकी पिण्डलियोंमें पीछेकी तरफ मांस कफ और रक्तके दोषसे नसें फूलकर जो मोटापन होजाता है उसको श्लीपद कहते हैं । इस श्लीपदरोगमें शिरावेधन, कफनाशक चिकित्सा और कफनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलोंका लेपन हित होताहै९४॥

जालगर्दभकी निदान चि० ।

मन्दास्तु पित्तप्रबलाः प्रदिष्टा दोषाः सुतीव्रं तनु रक्तपाकम् ।
कुर्वन्ति शोथं ज्वरतर्षयुक्तं विसर्पणं जालकगर्दभाख्यम् ।
विलङ्घनं रक्तविमोक्षणञ्च विरूक्षणं कायविरेचनञ्च ॥ ९५ ॥
धात्रीप्रयोगाञ्छिशिरान् प्रदेहान् कुर्य्यात्सदा जालकगर्दभस्य ।
एवंविधांश्चाप्यपरान्निशम्य शोथप्रकाराननिलादिलिङ्गैः ।
शान्तिं नयेद्दोषहरैर्यथास्वमालेपनच्छेदनभेददाहैः ॥ ९६ ॥

मन्द वात, कफ और पित्तकी प्रबलतासे तीव्र दाह और पाकयुक्त पतली लालवर्णकी ज्वर और तृषासहित फैलनेवाली जालगर्दभ नामक सूजन होती है । इसमें लंघन, शिरामोक्षण, विरूक्षण, कायविरेचन करना चाहिये । इसमें आमलोंका प्रयोग और शीतल लेपोंका करना हितकारी होता है । और इसी प्रकारके पित्तप्रधान अन्य पिडिका तथा सूजनोंपर भी दोषोंके लक्षणोंको विचारकर उन्हीं उन्हीं दोषोंके हरनेवाले लेप, छेदन, भेदन, दाह आदि क्रिया करना चाहिये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

आगन्तु शोथ।

प्रायोऽभिघातादनिलः सरक्तः शोथं सरागं प्रकरोति तत्र।
वीसर्पनुन्मारुतरक्तनुच्च कार्य्यं विषघ्नं विषजे च कर्म ॥ ९७ ॥

चोट आदि लगनेसे जो शोथ उत्पन्न होता है उसमें प्रायः वायु और रक्त दूषित होकर लालवर्णकी सूजन उत्पन्न होती है, उसमें विसर्पनाशक तथा वायु और रक्तको शान्त करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये, विषसे उत्पन्न हुई सूजनमें विषनाशक क्रिया करना हित है ॥ ९७ ॥

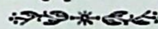
अध्यायका उपसंहार।

भवति चात्र—त्रिविधस्य दोषभेदात् सर्वार्द्धावयवगात्रभेदाच्च।
श्वयथोर्द्विविधस्य तथा लिङ्गानि चिकित्सितञ्चोक्तम् ॥ ९८ ॥
इति चरक० चि० श्वयथुचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

यहाँ अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस अध्यायमें तीन प्रकारके दोषोंके भेदसे शोथ, सर्वांगगत शोथ, अर्धांगशोथ और अवयव तथा स्थानभेदसे शोथ उनके निज और आगन्तु दो भेद, लक्षण और चिकित्सा यह सब वर्णन कियागया है॥९८॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां श्वयथुचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः।



अथात उदरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम उदरचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

सिद्धविद्याधराकीर्णे कैलासे नन्दनोपमे।
तप्यमानं तपस्तीव्रं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् ॥ १ ॥
आयुर्वेदविदां श्रेष्ठं भिषग्विद्याप्रवर्त्तकम्।
पुनर्वसुं जितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

भगवन्नुदरैर्दुःखैर्दृश्यन्ते ह्यर्दिता नराः ।
शुष्कवक्त्राः कृशैर्गात्रैराध्मातोदरकुक्षयः ॥ ३ ॥
प्रनष्टाग्निबलाहाराः सर्वचेष्टास्वनीश्वराः ।
दीनाः प्रतिक्रियाभावाज्जहतोऽसूननाथवत् ॥ ४ ॥
तेषामायतनं संख्यां प्राग्रूपाकृतिभेषजान् ।
यथावज्ज्ञातुमिच्छामि गुरुणा सम्यगीरितम् ॥ ५ ॥

सिद्ध और विद्याधरोंसे पर्याप्त हुए नन्दनवनके समान कैलासपर्वतमें तीव्र तपको तपतेहुए साक्षात् धर्मके समान स्थितहुए आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ वैद्यविद्याके प्रवर्तक जितात्मा पुनर्वसुजीके प्रति अग्निवेश कहनेलगे कि, हे भगवन् ! मनुष्य उदर-रोगसे दुःखित हुए दिखाई देते हैं और उदररोग होनेसे उनके मुख सूखेहुए, कृश शरीर, उदर और कुक्षियोंमें अफारेयुक्त, मन्दाग्नि, बलरहित, सब चेष्टाओंमें असमर्थ हुए, दीन अनाथोंके समान प्रतिक्रियारहित हुए प्राणोंका त्याग करते हैं। इसलिये उदररोगके कारण, संख्या, पूर्वरूप, रूप और चिकित्साको कृपाकर कहिये मैं इस विषयमें यथार्थ जाननेकी इच्छा करताहूं ॥ १-५ ॥

सर्वभूतहितायर्षिः शिष्येणैवं प्रचोदितः ।
सर्वभूतहितं वाक्यं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

इस प्रकार शिष्यके पूछनेपर संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये सबके हितकारक वाक्यको महर्षि आत्रेयजी इस प्रकार कहनेलगे ॥ ६ ॥

उदररोगकी संप्राप्ति।

अग्निदोषान्मनुष्याणां रोगसङ्घाः पृथग्विधाः ।
मलवृद्ध्या प्रवर्त्तन्ते विशेषेणोदराणि तु ॥ ७ ॥
मन्देऽग्नौ मलिनैर्भुक्तैरपाकाद्दोषसञ्चयः ।
प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य मार्गान्बद्ध्वोत्तरोत्तरान् ॥ ८ ॥
त्वङ्मांसान्तरमागम्य कुक्षिमाध्मापयन् भृशम् ।
जनयत्युदरं तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥ ९ ॥

जठराग्निके दोषसे मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारके रोगसमूह उत्पन्न होते हैं और विशेषकर अग्निके विकारसे मलकी वृद्धि होकर उदररोग उत्पन्न होते हैं, मंदाग्निमें मलकारक भोजन करनेसे उस भोजनका परिपाक नहीं होता, उससे दोषोंका संचय

होता है। संचित हुए दोष प्राणवायु, जठराग्नि और अपानवायुको दूषित कर ऊपर नीचेके मार्गोंको बद्ध कर देते हैं और त्वचा और मांसके मध्यमें प्राप्त होकर दोनों कुक्षियोंमें अफारा करतेहुए उदररोगको उत्पन्न करदेते हैं उस उदररोगके कारण और लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ७-९ ॥

उदररोगके कारण।

अत्युष्णलवणक्षारविदाह्यम्लरसाशनात्।
मिथ्यासंसर्जनाद्रूक्षविरुद्धाशुचिभोजनात् ॥ १० ॥
प्लीहार्शोग्रहणीदोषकर्षणात् कर्मविभ्रमात्।
क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात् ॥ ११ ॥
स्रोतसां दूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात्।
अर्शोवालिशकृद्रोधादन्त्रस्फुटनभेदनात् ॥ १२ ॥
अतिसञ्चितदोषाणां पापं कर्म च कुर्वताम्।
उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ १३ ॥

अत्यन्त उष्ण, नमकीन, क्षार, विदाही और अम्लरसोंके अत्यंत सेवनसे विरेचनके अनन्तर पेयादि क्रमके बिगडजानेसे रूक्ष विरुद्ध और अपवित्र भोजनोंके करनेसे प्लीहा, अर्श और संग्रहणीके विकारसे शरीरके अत्यन्त कर्षण होनेसे वमन, विरेचनादि कर्मोंमें विभ्रम होनेसे, कुष्ठरोगोंमें चिकित्सा न करनेसे, रूक्षता होनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको धारण करनेसे, स्रोतोंके दूषित होनेसे आमदोषसे मन और शरीरमें संक्षोभ होनेसे अत्यंत भोजन करनेसे, अर्शरोगके मस्सों द्वारा मलद्वार रुककर अपानवायु और मलके रुकजानेसे किसी दुष्ट पदार्थके सेवनद्वारा आंतोंके (फटजानेसे अथवा आंतोंमें) फटनेकीसी पीडा होनेसे जिन मनुष्योंके दोष अति संचित हुए हों और पापाचारी मनुष्योंके तथा विशेषकर मंदाग्निवालोंको उदररोग उत्पन्न होते हैं ॥ १०-१३ ॥

उदररोगके पूर्वरूप।

क्षुन्नाशः स्यादतिस्निग्धगुर्वन्नं पच्यते चिरात्।
भुक्तं विदाह्यते सर्वं जीर्णाजीर्णं न वेत्ति च ॥ १४ ॥
सहते नातिसौहित्यमीषच्छोफश्च पादयोः।
शश्वद्बलक्षयोऽल्पेऽपि व्यायामे श्वासमृच्छति ॥ १५ ॥
पुरीषनिचयो वृद्धिरुदावर्त्तकृता च रुक्।

बस्तिसन्धौ रुगाध्मानं वर्द्धते पाट्यतेऽपि च ॥ १६ ॥

आतन्यते च जठरमपि लघ्वल्पभोजनात् ।

राजीजन्म वलीनाश इति लिङ्गं भविष्यताम् ॥ १७ ॥

भूख न लगना, मीठे, चिकने और भारी पदार्थोंका बहुत विलंबसे परिपाक होना, भोजन किये अन्नका बिदाही (छातीमें दाह उत्पन्न करनेवाला) परिपाक होना और भोजनका यथोचित परिपाक होगया या नहीं हुआ यह प्रतीत न होना, पेट भरकर भोजन करनेमें असमर्थ होना, दोनों पांवोंपर किंचित् सूजनसी प्रतीत होना, बलका शीघ्र क्षय होना, किंचित् परिश्रम करनेपर भी उदरमें मलका संचय होना, उदावर्त-जनित पीडा होना, वस्तिकी संधियोंमें पीडा होना, अफारेकी वृद्धि होतीजाना, हल्का और थोडासा भोजन करनेपर भी पेटका फटासा जाना और तनजाना, पेटमें रेखासी उत्पन्न होजाना और उदरके सलवट दूर होकर कपालके समान तन-जाना यह उदररोगके पूर्वरूप हैं ॥ १४–१७ ॥

उदररोगकी संप्राप्ति।

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहानि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः ।

प्राणापानान् हि संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ १८ ॥

संचित हुए वातादि दोष स्वेदवाही और जलवाही स्रोतोंको रोककर प्राण और अपान वायुको दूषित करदेते हैं फिर मनुष्यको उदररोगको उत्पन्न करते हैं ॥१८॥

उदररोगके सामान्यलक्षण ।

कुक्षेराध्मानमाटोपः शोफः पादकरस्य च ।

मन्दोऽग्निः श्लक्ष्णगण्डत्वं कार्श्यञ्चोदरलक्षणम्॥ १९ ॥

कुक्षीमें अफारेका होना, पेटका फूलजाना, हाथ पैरोंमें सूजन, मंदाग्नि, कपोलोंमें चिकनाहट और कृशता यह उदरोगके साधारण लक्षण हैं ॥ १९ ॥

उदररोगके ८ भेद।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबन्धक्षतोदकैः ।

सम्भवन्त्युदराण्यष्ट तेषां लिङ्गं पृथक्छृणु॥ २० ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे, त्रिदोषसे, प्लीहरोगसे, बद्ध, क्षत और जलके विकारसे उदररोग आठ प्रकारका होता है । अब उनके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवण करो २०॥

वातोदरका निदान।

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्शनैः ।

वायुः प्रकुपितः कुक्षिहृद्वस्तिगुदमार्गगः ॥ २१ ॥

हत्वाग्निं कफमुद्धूय तेन रुद्धगतिस्तथा ।
आचिनोत्युदरं जन्तोस्त्वङ्मांसान्तरमाश्रितः ॥ २२ ॥

रूक्ष और अल्प भोजनके करनेसे, अधिक परिश्रमसे, मलमूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे, उत्पन्न हुए उदावर्त्तसे और शरीरके कृश होजानेसे कुक्षी, हृदय, वस्ति, गुदा और स्रोतगत वायु कोपको प्राप्त होकर जठराग्निको नष्ट कर देती है। फिर कफको बढाकर ऊपर और नीचेके मार्गोंको रोककर त्वचा और मांसके मध्यमें स्थित होकर वायु उदररोगको करती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

वातोदरके लक्षण।

तस्य रूपाणि—कुक्षिपाणिपादवृषणश्वयथूदरविपाटनमानियतौ च वृद्धिह्रासौ कुक्षिपार्श्वशूलोदावर्त्ताङ्गमर्दपर्वभेदशुष्ककासकार्श्यदौर्बल्यारोचकाविपाका अधोगुरुत्वं वातवर्चोमूत्रसङ्गः श्यावारुणत्वं नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपि चोदरं तनु असितराजीशिरासन्ततमाहतमाध्मातदृतिशब्दवद्भवति । वायुश्चोर्द्ध्वमधस्तिर्य्यक् च सशूलशब्दश्चरति एतद्वातोदरं विद्यात् ॥ २३ ॥

उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे—कुक्षि, हाथ, पांव और फोतोंमें सूजन, पेटका फटनासा प्रतीत होना, कभी पेट फटना, कभी कम होना, कुक्षिशूल, पार्श्वपीडा, उदावर्त, अंगडाई, पर्वभेद, सूखी खांसी, शरीरका कृश होना, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, देहका अधोभाग भारी होना, अधोवायु, मल और मूत्रका बद्ध होना, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका श्याम और लालवर्ण होना, पतली और काले रंगकी रेखा तथा नसोंका जालसा उदरपर दिखाई देना, उदरको बजानेसे फूली हुई मसकके समान शब्द होना तथा वायु ऊपर, नीचे और तिरछी तथा सब ओर शूल और शब्दके साथ विचरना। यह वातजनित उदररोगके लक्षण हैं ॥२३॥

पित्तज उदररोगके निदान।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसेवनैः ।
विदाह्यध्यशनाजीर्णैश्चाशु पित्तं समाचितम् ॥ २४ ॥
प्राप्यानिलकफौ रुद्ध्वा मार्गमुन्मार्गमास्थितम् ।
निहत्यामाशये वह्निं जनयत्युदरं ततः ॥ २५ ॥

कटु, अम्ल, लवण, अत्यंत उष्ण और तीक्ष्ण द्रव्योंके सेवनसे, अधिक कालतक धूपमें रहनेसे, विदाही भोजन करनेसे, अधिक भोजन तथा अजीर्णकारी भोजनके करनेसे पित्त संचित होकर कफ और वायुके साथ मिलजाता है उससे पित्तका

मार्ग रुककर उन्मार्गगामी होजाता है तब आमाशयकी अग्नि नष्ट होनेसे वह पित्त उदररोगको उत्पन्न करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

पित्तज उदररोगका लक्षण।

तस्य रूपाणि—दाहज्वरतृष्णामूर्च्छातीसारभ्रमाः कटुकास्यत्वं हरिद्र-हरिद्रत्वं नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपि चोदरं नीलपीतहारिद्र-हारितताम्रराजीशिरावनद्धं दह्यादूदूषयते धूप्यते ऊष्मायते स्विद्यते क्लिद्यते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकञ्च भवति एतत्पित्तोदरं विद्यात् ॥ २६ ॥

उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे—दाह, ज्वर, प्यास, मूर्च्छा, अतिसार, भ्रम, मुखमें कडुआपन और मुख, नेत्र, नख, त्वचा, मूत्र यह सब हरे तथा हल्दीके समान पीले वर्णके हों और पेटके ऊपर नीली, पीली, हल्दीके वर्णकी, हरी और ताम्रवर्णकी रेखा तथा नसोंका जाल दिखाई देना और दाह, क्लेश, धूंआसा निकलना, संताप, उष्णता, स्वेद, क्लेद, नर्म स्पर्श और शीघ्रपाक यह पित्तके उदररोगके लक्षण जानने ॥ २६ ॥

कफज उदररोगका निदान।

अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्वतिस्निग्धपिच्छिलैः।
दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चात्युपसेवितैः ॥ २७ ॥
क्रुद्धेन श्लेष्मणा स्रोतःस्वाहतेष्वावृतोऽनिलः।
तमेव पीडयन् कुर्य्यादुदरं बहिरन्त्रगः ॥ २८ ॥

कसरत न करनेसे, दिनमें सोनेसे, मधुर और अत्यंत चिकने तथा पिच्छिल द्रव्योंके अधिक सेवनसे, दही दूध और अनूपसंचारी जीवोंका मांस अधिक सेवन करनेसे, कफ कुपित होकर वायुसे मिले स्रोतोंको रोकदेता है तब उस कफसे मिलाहुआ वायु कफको ही पीडित करताहुआ पेटकी नाडियोंमें पहुंचकर कफके उदररोगको उत्पन्न करता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफके उदररोगके लक्षण।

तस्य रूपाणि—गौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्दसुप्तिपाणिपादमुष्कोरुशो-फोत्क्लेशनिद्राकासश्वासाः शुक्लत्वञ्च नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवसावर्चसा-मपि चोदरं शुक्लराजीशिरासन्ततं गुरुस्तिमितस्थिरं कठिनञ्च भवति एतच्छ्लेष्मोदरं विद्यात् ॥ २९ ॥

उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे-शरीरमें भारीपन, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, अंगमर्द, शरीरका सोयाहुआसा होना, हाथ, पांव अण्डकोश और छातीमें सूजन होना, कफका उत्क्लेश होना, निद्रा, खांसी और श्वासका होना तथा नख, नेत्र, मूत्र और मलका श्वेत होना और सफेद रंगकी रेखा तथा नसोंके जालसे पेटका व्याप्त होना, पेटका भारी, आर्द्र, स्थिर और कठिन होना यह सब कफजनित उदर-रोगके लक्षण हैं ॥ २९ ॥

सन्निपातज उदररोगके लक्षण।

दुर्बलाग्नेरपथ्यामविरोधिगुरुभोजनात्।
स्त्रीदत्तैश्च रजोरोमविण्मूत्रास्थिनखादिभिः ॥ ३० ॥
विषैश्च मन्दैर्वाताद्याः कुपिताः सञ्चितास्त्रयः।
शनैः कोष्ठे प्रकुर्वन्तो जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ ३१ ॥

दुर्बल अग्निवाले मनुष्यके कुपथ्य, आमजनक विरुद्ध और भारी भोजन करनेसे अथवा स्त्रीका दियाहुआ मासिकरज, रोम, विष्ठा, मूत्र, अस्थि और नख आदिके खानेसे आथवा बहुत देरमें असरकरनेवाले (कानके मैल आदि) विषके खानेसे वातादि तीनों दोष संचित होकर धीरे धीरे कोष्ठमें कुपित हों सन्निपातके उदररोगको उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

सन्निपातज उदररोगके लक्षण।

तस्य रूपाणि-सर्वेषामेव दोषाणां समस्तानि लिङ्गान्युपलभ्यन्ते वर्णाश्च नखादिषु उदरमपि नानावर्णराजीशिरासन्ततं भवति एतत्सन्निपातोदरं विद्यात् ॥ ३२ ॥

उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे-वातादि तीनों दोषोंके संपूर्ण लक्षण दिखाई देना, नख नेत्रादिकोंके वर्ण अनेक प्रकारके होना, उदरमें अनेक वर्णकी रेखा और शिराओंका जाल दिखाई देना यह सन्निपातज उदररोगके लक्षण जानना ॥ ३२ ॥

प्लीहोदरका निदान।

अशितस्यातिसंक्षोभाद्यानयानाभिचेष्टितैः।
अतिव्यवायभाराध्ववमनव्याधिकर्शनैः ॥ ३३ ॥
वामपार्श्वाश्रितः प्लीहा च्युतः स्थानात्प्रवर्द्धते।
शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्द्धयेत् ॥ ३४ ॥

---

१ कोई दुष्ट स्त्रियें पुरुषोंको वशमें करनेके लिये अज्ञानसे कानकी मैल और रज आदि खिला देती हैं यह विषके समान मनुष्योंके शरीरमें अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है।

भोजन करके अत्यन्त क्षोभकारक ऊंट आदिकी सवारीपर चढना अथवा भोजन करते ही तुरंत बहुत हिलने जुलनेवाली चेष्टा करना, अत्यन्त मैथुन करना, भार उठाना और मार्ग चलना तथा व्याधिसे शरीरका कृश होजाना इन कारणोंसे बाईं बगलमें रहनेवाली तिल्ली (प्लीहा) अपने स्थानसे अधिक बढजाती है। अथवा रसादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ रुधिर तिल्लीको बढा देता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इति तस्य प्लीहा कठिनोऽष्ठीलेवादौ वर्द्धमानः कच्छपसंस्थान उपलभ्यते स चोपेक्षितः क्रमेण कुक्षिं जठरमग्न्यधिष्ठानञ्च परिक्षिपन्नुदरमभिनिर्वर्त्तयति ॥ ३५ ॥

फिर वह तिल्ली पहिले अष्ठीलाके समान कठोर होकर क्रमसे बढते २ कछुएकी पीठके समान प्रतीत होने लगती है फिर यह शीघ्र यत्न न किये जानेसे क्रमपूर्वक बढते २ कुक्षी, पेट और अग्निके अधिष्ठानको धक्का पहुंचाती हुई सम्पूर्ण उदरको बढा देती है ॥ ३५ ॥

प्लीहोदरके लक्षण।

तस्य रूपाणि—दौर्बल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रग्रहतमःपिपासाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छाङ्गसादकासश्वासमृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्यवैरस्यपर्वभेदकोष्ठवातशूलान्यपि चोदरमरुणवर्णं विवर्णं वा नीलहरितहारिद्रराजिमद्भवति एवमेव यकृदपि दक्षिणपार्श्वस्थं कुर्य्यात्तुल्यहेतुलिङ्गौषधत्वात्तस्य प्लीहजठर एवावरोध इत्येतद्यकृत्प्लीहोदरं विद्यात्॥ ३६॥

उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे—दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना मल मूत्रका रुकना, नेत्रोंके आगे अन्धकार प्रतीत होना, तृषा, अंगडोई, वमन, मूर्च्छा, अंगोंका सोना, खांसी, श्वास, मंदज्वर, अफारा, अग्निका नाश, कृशता, मुखका विरस होना, पर्वभेद, कोठमें वायुकी पीडा और पेटका लाल अथवा देहके समान वर्णन होना और नीले, हरे वा हल्दीके रंगकी रेखा और नसोंके जालसे पेटका घिरना यह प्लीहोदरके लक्षण होते हैं। इसी प्रकार दाहिने बगलमें यकृत् भी प्लीहाके समान बढकर उदररोगको प्रगट करता है। परन्तु प्लीहा और यकृत्के हेतु, लक्षण और औषधसे तुल्यता होनेसे यकृत्जनित उदररोगको अलग वर्णन नहीं कियाहै ॥ ३६ ॥

बद्धोदरके निदान।

पक्ष्मवालैः सहान्नेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे।
उदावर्त्तैस्त्वथार्शोभिरन्त्रसंमूर्च्छनेन वा ॥ ३७ ॥

अपानो मार्गसंरोधाद्धत्वाग्निं कुपितोऽनिलः ।
वर्चःपित्तकफान् रुद्ध्वा जनयत्युदरं ततः ॥ ३८ ॥

भोजनके साथ पलकोंके बाल खाये जानेसे अथवा केशमिले भोजनके किये जानेसे अथवा उदावर्तके होनेसे या अर्शके मस्सों द्वारा गुदाके रुकजानेसे और अंतड़ियोंके संमूर्च्छन होनेसे मलद्वार रुककर अपानवायुका मार्ग बन्द होनेसे वह वायु कुपित हो जठराग्निको हननकर मल, पित्त और कफको रोकदेती है। तब बद्धगुदोदर नामके उदररोगको उत्पन्न करता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

बद्धगुदोदरके लक्षण।

तस्य रूपाणि-तृष्णादाहज्वरमुखतालुशोषोरुसादकासश्वासदौर्बल्या-रोचकाविपाकवर्चोमूत्रसङ्गाध्मानच्छर्दिक्षवथुशिरोहृन्नाभिगुदशूला-न्यपि चोदरं मूढवातं स्थिरमरुणं नीलराजिशिरावनद्धमराजिकं वा प्रायो नाभ्युपरि गोपुच्छवदभिनिवर्त्तत इत्येतद्बद्धगुदोदरं विद्यात् ॥ ३९॥

उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे—प्यास, दाह, ज्वर, मुख और तालुका शोष होना, दोनों जांघोंका रहसा जाना, खांसी, श्वास, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, मलमूत्रका रुकना, अफारा, वमन, हिचकी, मस्तकपीडा, हृदय, नाभि और गुदामें शूल होना, अधोवायुका न निकलना, उदरका स्थिर होना तथा लाल और नीली रेखाओं तथा नसोंके जालसे व्याप्त होना अथवा रेखाओंसे विना ही लाल और नीली नसोंसे व्याप्त होना, प्रायः नाभिका ऊर्ध्वभाग गोपुच्छके समान होना यह बद्धगुदोदरके लक्षण जानना ॥ ३९ ॥

छिद्रोदर (क्षतोदर) का निदान।

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः ।
भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृम्भयात्यशनेन वा ॥ ४० ॥
इयात्पाकरसस्तेभ्यश्छिद्रेभ्यः प्रस्रवद्बहिः ।
पूरयन् गुदमन्त्रञ्च जनयत्युदरं ततः ॥ ४१ ॥

बालू, तृण, काष्ठ, हड्डी और कांटा आदि अन्नमें मिलकर खायेजानेसे यदि आंत छिलजाय अथवा जंभाई आदि वायुके वेगसे या अत्यंत भोजन करनेसे आंत फटजाय तो उस छिद्रद्वारा पाकरस बाहर निकलने लगजाता है। इससे आंते और गुदा परिपूर्ण होकर छिद्रोदर नामक उदररोग उत्पन्न होता है। इसको क्षतोदर भी कहते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

छिद्रोदरके लक्षण।

इति तदधो नाभ्याः प्रायोऽभिनिवर्त्तमानमुदकोदरस्य च यथाबलञ्च दोषाणां रूपाणि दर्शयत्यपि चातुरः सलोहितनीलपीतपिच्छिलकुणपगन्धामवर्च उपवेशते हिक्काश्वासकासतृष्णाप्रमेहारोचकाविपाकदौर्बल्यपरीतश्च भवति एतच्छिद्रोदरं विद्यात् ॥ ४२ ॥

छिद्रोदर प्रायः नाभीके अधोभागमें होता है। इसमें बहुतसे लक्षण जलोदरके समान और बहुतसे बढेहुए दोषानुरूप होते हैं। छिद्रोदरमें लाल, नीला, पीला, पिच्छिल, मुर्देकीसी गंधवाला और अपक्व मल निकलता है। इस रोगीको हिचकी, श्वास, खांसी, प्यास, प्रमेह, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना और दुर्बलतासे व्याकुल होना यह लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥

जलोदरका निदान।

स्नेहपीतस्य मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा।
अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौ मारुतः क्लोम्नि संस्थितः ॥ ४३ ॥
स्रोतःसु रुद्धमार्गेषु कफश्चोदकमूर्च्छितः।
वर्द्धयेतां तदेवाम्बु स्वस्थानादुदराय तौ ॥ ४४ ॥

स्नेहपान कियाहुआ मनुष्य मंदाग्नियुक्त, क्षीण, अतिकृश अवस्थामें अत्यंत जल पीवे तो उसकी जठराग्नि नष्ट होकर वायु क्लोममें स्थित होजाती है, जलसे मूर्च्छित कफ सब स्रोतोंको रोकदेती है, तब क्लोमस्थान (पिपासास्थान) के संरुद्ध होनेसे बढेहुए कफ और वायु पीयेहुए जलको अपने स्थानसे संचालित कर त्वचा और मांसके मध्यमें संचित कर जलोदरको उत्पन्न करते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

जलोदरके लक्षण।

तस्य रूपाणि—अनन्नकांक्षापिपासागुदस्रावशूलश्वासकासदौर्बल्यान्यपि चोदरं नानावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णदृतिक्षोभसंस्पर्शं भवति एतदुदकोदरं विद्यात् ॥ ४५ ॥

उसके ये लक्षण होते हैं—अन्नकी इच्छा न होना, तृषा, गुदाद्वारा जलका निकलना, शूल, श्वास, खांसी, दुर्बलता, पेटपर अनेक वर्णकी रेखा तथा नसोंका जाल दिखाई देना। जलसे भरीहुई मशकके समान हिलानेसे पेटका बोलना अथवा हाथ लगानेसे जलकी भरीहुई मशकके समान प्रतीत होना। यह जलोदरके लक्षण जानना ॥ ४५ ॥

उदररोगमें शीघ्रचिकित्सा न करनेसे हानि।

तत्र अचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकमप्राप्तमुदरं त्वरमाणश्चिकित्सेत्। उपेक्षितानां ह्येषां दोषाः स्वस्थानादपावृत्ता अपरिपाकाद् द्रवीभूताः सन्धीन् स्रोतांसि चोपक्लेदयन्ति स्वेदश्च बाह्येषु स्रोतःसु प्रतिहतगतिस्तिर्य्यगवतिष्ठमानस्तदेवोदकमाप्यायति ॥ ४६ ॥

जो उदररोग नवीन, अर्थात् बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ न हो, उपद्रव रहित हो, जिसमें पानी न उतरा हो उसकी अतिशीघ्र चिकित्सा करना चाहिये। उदररोगकी शीघ्र चिकित्सा न करनेसे दोष अपने २ स्थानोंसे चलायमान हो अन्नका परिपाक न होनेसे पतले होकर सन्धियोंको और संपूर्ण स्रोतोंको क्लेदित (गीला) करदेते हैं। फिर बाह्यस्रोतोंके छिद्र रुकजानेसे स्वेद बाहर न निकलकर तिरछी गतिसे रहकर जलकी ही वृद्धि करता है ॥ ४६ ॥

जलोदरकी संप्राप्ति।

तत्र पिच्छोत्पत्तौ मण्डलमुदरं गुरुस्तिमितमाकोठितमशब्दं मृदुस्पर्शमपगतराजीकमाक्रान्तं नाभ्यां सर्पतीति। ततोऽनन्तरमुदकप्रादुर्भावः। तस्य रूपाणि—कुक्षेरतिमात्रवृद्धिः शिरान्तर्द्धानगमनमुदकपूर्णदृतिसंक्षोभस्पर्शत्वञ्च ॥ ४७ ॥

फिर पेटमें जलकी उत्पत्ति होनेके पहिलेही पिच्छा (क्लेद) उत्पन्न होती है। उस पिच्छासे उदर गोल आकारवाला होजाता है उस समय पेट भारी, स्तिमित, कोठ्युक्त, शब्दरहित, मृदुस्पर्श और रेखा आदिसे रहित होकर, नाभीके चारों और दबानेसे इधर उधरको फिरता है। अर्थात् एक ओर दबानेसे दूसरी ओर ऊंचापन प्रतीत होता है। इसके अनन्तर उदरमें जल बढने लगता है तब यह लक्षण होते हैं। जैसे कुक्षीका अत्यन्त फूलजाना, नसोंका छिपजाना, जलसे भरीहुई मशकके समान हिलना और स्पर्श करनेसे प्रतीत होना यह लक्षण होते हैं ॥ ४७ ॥

जलोदरके उपद्रव।

तदातुरमुपद्रवाः स्पृशन्ति छर्द्यतीसारतमकतृष्णाश्वासकासाहिक्कादौर्बल्यपार्श्वशूलारुचिस्वरभेदमूत्रसङ्गादयः। तथाविधमचिकित्स्यं विद्यादिति ॥ ४८ ॥

जब पेटमें जल बढता है तो वमन, अतिसार, तमकश्वास, प्यास, खांसी, श्वास, हिचकी, दुर्बलता, पार्श्वपीडा, अरुचि, स्वरभंग, मूत्रका रुकना आदिक उपद्रव होजाते हैं। इन उपद्रवोंवाला होनेसे इस रोगको असाध्य जानना ॥ ४८ ॥

उदररोगकी कृच्छ्रता ।

भवति चात्र—वातात्पित्तात्कफात्प्लीह्नः सन्निपातात्तथोदकात् ।
परस्परं कृच्छ्रतरमुदरं भिषगादिशेत् ॥ ४९ ॥

वातोदर, पित्तोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर और जलोदर इन सब उदररोगोंमें पहिलेकी अपेक्षा दूसरा, दूसरेकी अपेक्षा तीसरा इसी क्रमसे उत्तरोत्तर कष्टसाध्य जानने ॥ ४९ ॥

मृत्युकारक उदररोगकी अवधि ।

पक्षाद्बद्धगुदं तूर्द्ध्वं सर्वं जातोदकं यथा ।
प्रायो भवत्यभावाय च्छिद्रान्त्रञ्चोदरं नृणाम् ॥ ५० ॥

बद्धगुदोदर; जलोदर और छिद्रोदर यह तीन एक पक्षके उपरांत होनेसे मनुष्योंका नष्ट करनेवाले अर्थात् असाध्य होते हैं ॥ ५० ॥

साध्यासाध्यता ।

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् ।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणञ्च संत्यजेत् ॥ ५१ ॥

जिस उदररोगीके दोनों नेत्रोंपर सूजन आजाय और शिश्नेन्द्रिय टेढी होजाय त्वचा क्लेदयुक्त और पतली पडजाय, बल, रक्त मांस और जठराग्नि क्षीण होजाय ऐसे रोगीको असाध्य समझ त्यागदेना चाहिये ॥ ५१ ॥

श्वयथुः सर्वमर्मोत्थः श्वासो हिक्कारुचिः सतृट् ।
मूर्च्छा छर्द्यतिसारश्च निहन्त्युदरिणं नरम् ॥ ५२ ॥

जिस उदररोगीके मर्मस्थानोंमें सूजन, श्वास, हिचकी, अरुचि, प्यास, मूर्च्छा, छर्दी और अतीसार यह उपद्रव हों उसको उदररोग शीघ्र मारडालताहै ॥ ५२ ॥

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् ।
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ ५३ ॥

प्रायः सब प्रकारके उदररोग उत्पन्न होते ही अत्यंत कष्टसाध्य होते हैं, परन्तु बलवान् रोगीको नवीन ही उत्पन्न हुआ उदररोग जिसमें जल प्रगट न हुआ हो वह विधिवत् यत्न करनेसे साध्य होसकता है ॥ ५३ ॥

अजातजल उदररोगके लक्षण ।

अशोथमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम् ।
सदा गुडगुडायन्तं शिराजालगवाक्षितम् ॥ ५४ ॥

नाभिं विष्टभ्य पायौ तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति ।
हृन्नाभिवंक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ॥ ५५ ॥
कर्कशं सृजतो वातं नातिमन्दे च पावके ।
मूत्रेऽल्पे संहतविषि लालया विरसे मुखे ॥ ५६ ॥
अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञाय तत्त्वतः ॥ ५७ ॥

जिस रोगीका उदर सूजनरहित हो और लाल वर्णका हो तथा शब्दसहित, कुछ भारी, गुडगुडशब्दयुक्त हो और झरोखेके समान नसोंके जालसे व्याप्त हो और नाभीको फुलाकर वेग धारण करे तो वायु गुदा पर्यन्त जाकर नष्ट होजाय, रोगीके हृदय, वंक्षण, कमर और गुदामें पीडा हो, कर्कश शब्द करतीहुई वायु निकले, सर्वथा अग्नि मन्द न हुई हो, मूत्र थोडा और मल अधिक निकले, मुखसे लार बहे और मुख विरस हो तो यह विना जल प्रगटहुए उदररोगके लक्षण जानना॥५४-५७॥

वातोदरकी चिकित्सा।

उपक्रामेद्भिषग्दोषबलकालविशेषवित् ।
वातोदरे बलवतः पूर्वं स्नेहैरुपाचरेत् ।
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ ५८ ॥
हृते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः ॥ ५९ ॥

दोष, बल, काल आदिका जाननेवाला चतुर वैद्य उदररोगकी शीघ्र चिकित्सा करे। वातज उदररोगमें बलवान् मनुष्यको पहिले स्नेहपान करावे फिर स्निग्धको स्वेदितकर स्नेह विरेचन कराके दोषोंको निकाल डाले। जब उदरके दोष निकलजानेसे पेट मुर्झाजाय तो पेटको कपडेसे लपेटकर बांधदेना चाहिये। ऐसा करनेसे पेटमें फिर वायु प्राप्त नहीं होसकेगी। और वायुके प्राप्त न होनेसे पेट भी नहीं फूलेगा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतसां सन्निरोधनात् ।
सम्भवन्त्युदराण्येवमतो नित्यं विशोधयेत् ॥ ६० ॥
शुद्धं संसृज्य च क्षीरं बलार्थं पाययेत्तु तम् ।
प्रागुत्क्लेशान्निवर्त्यञ्च बले लब्धे क्रमात् पयः ॥ ६१ ॥
यूषै रसैर्वा मन्दाम्ललवणै रोधितानलम् ।
सोदावर्त्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेन्नरम् ॥ ६२ ॥

दोषोंका अत्यंत उपचय होनेसे और स्रोतोंके रुकजानेसे ही उदररोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये उदररोगमें स्नेहन, स्वेदन कराकर शोधन करना हित होताहै। उदररोगीको शोधन करानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे बलवृद्धिके लिये दूध पिलावे। जिस प्रकार दोषोंका उत्क्लेश न होनेपावे अर्थात् वमन न होजाय उतनाही दूध पिलावे। मनुष्यके शरीरमें बल प्राप्त होनेपर दूध बंद कराना चाहिये। यदि रोगीकी अग्नि मंद होजाय या उदावर्त हो तो फिर स्नेहन और स्वेदन कर थोडा नमकयुक्त यूष अथवा मांसरससे आस्थापनवस्ति करे ॥ ६०-६२ ॥

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु।
दीप्ताग्निं बद्धविड्वातं रूक्षमप्यनुवासयेत् ॥ ६३ ॥

यदि वातोदर रोगीके शरीरमें फडकना और आक्षेप हो तथा संधि, अस्थि, पार्श्व, पीठ और त्रिकस्थानमें पीडा हो, अग्नि चैतन्य हो, मल मूत्र बद्ध हों और रूक्षता हो तो उसको अनुवासन करना चाहिये ॥ ६३ ॥

तीक्ष्णाधोभागयुक्तः स्यान्निरूहो दाशमूलिकः।
वातघ्नाम्लशृतैरण्डतिलतैलानुवासनः ॥ ६४ ॥

अथवा तीक्ष्ण औषधियों और दशमूलके क्काथसे निरूहणवस्ति करे। अथवा वातनाशक अम्ल द्रव्योंसे एरंड तैलको सिद्धकर इस तैलसे अनुवासन कर्म करे ॥ ६४ ॥

अविरेच्य रोगी।

अविरेच्यं तु यं विद्याद् दुर्बलं स्थविरं शिशुम्।
सुकुमारं प्रकृत्याल्पदोषं वातोल्बणानिलम् ॥ ६५ ॥
तं भिषक् शमनैः सर्पिर्यूषमांसरसौदनैः।
बस्त्यभ्यङ्गानुवासैश्च क्षीरैश्चोपाचरेद् बुधः ॥ ६६ ॥

जो रोगी विरेचनके योग्य न हो तथा दुर्बल, वृद्ध, बालक, सुकुमार प्रकृतिका हो, और अल्पदोषवाला हो तथा जिसके शरीरमें वायुकी प्रबलता हो उसको विरेचन न कराकर औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए घृत, यूष और मांसरस आदिसे तथा संशमन द्रव्योंसे चिकित्सा करे। और वस्ति अभ्यंग, अनुवासन तथा औषधसिद्ध दूधका प्रयोग करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

पित्तज उदररोगकी चिकित्सा।

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्।
दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत् क्षीरबस्तिना ॥ ६७ ॥

संजातबलकायाग्निं पुनः स्निग्धं विरेचयेत् ॥ ६८ ॥

बलवान् मनुष्यको पित्तजनित उदररोग हो तो पहिले विरेचन करावे। यदि रोगी दुर्बल हो तो पहिले अनुवासन कर क्षीरवस्तिद्वारा शोधन करे। फिर बल और जठराग्निके बढनेपर स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पित्तोदरमें विरेचन योग।

पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकश्रृतेन वा।
सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनारग्वधेन वा।
सकफे वा समूत्रेण सवाते तिक्तसर्पिषा ॥ ६९ ॥

पित्तजनित उदररोगमें बल और अग्नि संपन्न होनेपर विरेचनके लिये निशोथका कल्क मिलाकर दूध पिलावे। अथवा एरंडके बीजोंको दूधमें पकाकर पिलावे। या सातला (थोहरकी जाति) और त्रायमाणसे सिद्ध किया दूध पिलावे। यदि पित्तज उदररोगमें कफका संसर्ग हो तो गोमूत्र मिलाकर पिलावे। यदि वायुका अनुबन्ध हो तो तिक्तकघृत पिलावे ॥ ६९ ॥

पुनः क्षीरप्रयोगश्च बस्तिकर्म विरेचनम्।
क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन्युक्तः पित्तोदरं जयेत् ॥ ७० ॥

पित्तके उदररोगमें बारबार क्षीरप्रयोग और वस्तिकर्म करता रहे फिर अग्निबल सम्पन्न होनेपर विरेचन करावे। इस प्रकार समयोचितचिकित्साद्वारा चतुर वैद्य पित्तके उदररोगके जीते ॥ ७० ॥

कफजनित उदररोगकी चिकित्सा।

स्निग्धं स्विन्नं विशुद्धन्तु कफोदरिणमातुरम्।
संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तैरन्नैः कफापहैः ॥ ७१ ॥
गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्कृतिभिस्तथा।
सक्षारैस्तैलपानैश्च शमयत्तु कफोदरम् ॥ ७२॥

कफके उदररोगमें स्नेहन और स्वेदन कर शोधन करावे। फिर वह कफनाशक चरपरे और क्षार द्रव्योंसे युक्तकर पेयादि क्रम सेवन करावे। कफके उदररोगीको गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार और चरपरे द्रव्योंसे सिद्ध किये तैल आदिकोंका प्रयोग करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सन्निपातके उदररोगकी चिकित्सा।

सन्निपातोदरे सर्वा यथोक्ताः कारयेत्क्रियाः।

सोपद्रवन्तु निर्वृत्तं प्रत्याख्येयं विजानता ॥ ७३ ॥

सन्निपातके उदररोगमें सब प्रकारसे यथोचित चिकित्सा करना चाहिये । यदि सन्निपातके उदररोगमें उपद्रव भी प्रगट होगये हों तो उसको त्याग देना चाहिये ७३

प्लीहोदरकी चिकित्सा ।

उदावर्त्तरुगानाहैर्दाहमोहतृषाज्वरैः ।

गौरवारुचिकाठिन्यैश्चानिलादीन् यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥

लिङ्गैः प्लीहोदरान् दृष्ट्वा रक्तं वापि स्वलक्षणैः ।

चिकित्सां संप्रकुर्वीत यथादोषं यथाबलम् ॥ ७५ ॥

प्लीहजनित उदररोगमें उदावर्त्त, शूल और अफारा हो तो दोष, बल विचारकर वातनाशक चिकित्सा करे । दाह, मोह, तृषा और ज्वर हो तो पित्तके उदररोगके समान चिकित्सा करे । गुरुता, अरुचि और कठिनता हो तो कफकी चिकित्सा करे । रुधिरके लक्षण प्रतीत हों तो रुधिरकी चिकित्सा करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

उदररोगमें चिकित्साक्रम ।

स्नेहं स्वेदं विरेकञ्च निरूहमनुवासनम् ।

समीक्ष्य कारयेद्बाहौ वामे वा व्यधयेच्छिराम् ॥

सम्पूर्ण उदररोगोंमें दोषबलानुसार स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण और अनुवासन कर्म करे । रक्तजनित प्लीहोदरमें स्नेहन, स्वेदनादि करा बाईं भुजाकी शिरा भेदन करावे । अर्थात् बाईं भुजामेंसे फस्त लगाकर रक्त निकलवाडाले ॥ ७६ ॥

षट्पलं वा पिबेत्सर्पिः पिप्पलीर्वा प्रयोजयेत् ।

सगुडामभयां वापि क्षारारिष्टगणांस्तथा ॥ ७७ ॥

उदररोगमें षट्पलघृत, पिप्पलादि रसायन और गुडके साथ हरड या क्षार और अरिष्टोंके गणोंका सेवन करावे ॥ ७७ ॥

प्लीहरोगनाशक चूर्ण ।

पिप्पली नागरं दन्ती चित्रकं द्विगुणाभया ।

विडङ्गांशयुतं चूर्णमेतदुष्णाम्बुना पिबेत् ॥ ७८ ॥

विडङ्गं चित्रकं शुण्ठीं सघृतां सैन्धवं वचाम् ।

दग्ध्वा कपाले पयसा गुल्मप्लीहापहं भवेत् ॥ ७९ ॥

पीपल, सोंठ, दंती और चित्रक यह चारों एक एक भाग, हरड दो भाग, वायविडंग एक भाग इन सबका चूर्ण कर गरम जलके साथ पीवे तो गुल्मरोग और

प्लीहरोग दूर हो। अथवा बायबिडंग, चित्रक, सोंठ, घृत, सेंधानमक, वच इनको कूटकर शरावसम्पुटमें फूँकलेवे। फिर इसको चूर्ण बना दूधके साथ सेवन करे तो गोला और तिल्ली दूर हों॥ ७८॥ ७९॥

रोहीतकलतानां तु काण्डकाः साभयाजले।
मूत्रे वा शृतमेतच्च सप्तरात्रस्थितं पिबेत्॥ ८०॥
कामलागुल्ममेहार्शःप्लीहसर्वोदरक्रिमीन्।
तद्धन्याज्जाङ्गलरसैर्जीर्णे स्याच्चात्र भोजनम्॥ ८१॥

रोहितक घासकी लगरें कूटकर हरडोंके क्वाथमें अथवा गोमूत्रमें पकाकर सात दिन तक उत्तम पात्रमें बंदकर धरा रहनेदे फिर छानकर पीनेसे कामला, गुल्म, प्रमेह, बवासीर, प्लीहा, सब प्रकारके उदररोग और कृमिरोग यह सब नष्ट होते हैं। इस औषधके पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करना चाहिये॥८०॥८१॥

रोहितक घृत।

रोहीतकत्वचः कृत्वा पलानां पञ्चविंशतिम्।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत्॥ ८२॥
पालिकैः पञ्चकोलैस्तु तैः सर्वैश्चापि तुल्यया।
रोहीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ ८३॥
प्लीहातिवृद्धिं शमयत्येतदाशु प्रयोजितम्।
तथा गुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः॥ ८४॥

रोहिततृण २५ पल और बेर (उन्नाव) दो प्रस्थ, लेकर क्वाथ करे। इस क्वाथमें पंचकोल, (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) का कल्क ५ पल, रोहिततृणका कल्क १० पल, घृत एक प्रस्थ सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे। इस घृतके सेवनसे अत्यंत बढीहुई प्लीहा शीघ्र शान्त होती है तथा गुल्मरोग, उदररोग, श्वास, कृमि, पाण्डु और कामला यह सब नष्ट होते हैं॥ ८२-८४॥

उदररोगोंमें विशेष कर्तव्य।

अग्निकर्म च कुर्वीत भिषग्वातकफोल्बणे।
पैत्तिके जीवनीयानि सर्पींषि क्षीरबस्तयः॥ ८५॥
रक्तावसेकः संशुद्धिः क्षीरपानञ्च शस्यते।
यूषैर्मांसरसैश्चापि दीपनीयसमायुतैः॥ ८६॥

लघून्यन्नानि संसृज्य भजेत्प्लीहोदरी नरः ।
स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम् ॥ ८७ ॥
सतैललवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ।
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णञ्चैव विरेचनम् ॥ ८८ ॥
उदावर्त्तहरं कर्म कार्य्यं वातघ्नमेव च ॥ ८९ ॥

उदररोगमें वात, कफकी विशेषता हो तो अग्निकर्म (दागदेना) करना चाहिये। पित्तकी अधिकता हो तो जीवनीयगणकी औषधियें तिक्तक घृत, क्षीरबस्ति, रक्तमोक्षण, संशोधन और दुग्धपान कराना हित है। प्लीहोदरमें रक्तमोक्षण कराना, दीपनीयद्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए यूप और मांस रसोंके साथ हलका भोजन कराना चाहिये। बद्धोदरमें स्वेदितकर गोमूत्रके साथ और तीक्ष्ण औषधियोंसे युक्तकर सिद्ध किया तैल सेंधानमक मिला निरूहण और अनुवासन कर्ममें प्रयोग करना चाहिये। तथा विरेचनकर्त्ता अन्न, तीक्ष्ण विरेचन, उदावर्त्त और वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८९-८९ ॥

छिद्रोदरकी असाध्यता ।

छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् ।
जातं जातं जलं स्राव्यमेवं तत्पातयेद्भिषक् ।
तृष्णाकासस्वरार्त्तन्तु क्षीणमांसाग्निभोजनम् ॥ ९० ॥
वर्जयेच्छ्वासिनं तद्वच्छूलिनं दुर्बलेन्द्रियम् ॥ ९१ ॥

छिद्रोदरमें प्यास, खांसी, ज्वर तथा मांस अग्नि और भोजनकी क्षीणता एवं श्वास, शूल और इन्द्रियोंकी दुर्बलता होनेपर रोगीको असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

जलोदरकी चिकित्सा ।

अपां दोषे ग्रहण्यादौ विदध्यादुदकोदरे ।
मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधक्षारवन्ति च ।
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ॥ ९२ ॥
द्रवेभ्यश्चोदकादिभ्यो नियच्छेदनुपूर्वशः ॥ ९३ ॥

जलोदरमें और ग्रहणी आदिमें जलका दोष होनेपर गोमूत्र और तीक्ष्ण विरेचक औषधियें तथा अनेक प्रकारके क्षार गोमूत्रमें मिलाकर पिलावे तथा दीपनकर्ता और

कफनाशक आहारोंका सेवन करावे। तथा जल आदिक पतले पदार्थोंका सेवन बिल्कुल बन्द करा देवे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

सर्वउदररोगोंमें कर्तव्य और पथ्य।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं मतम्।
तस्मात् त्रिदोषशमनीं क्रियां सर्वेषु कारयेत्।
दोषैः कुक्षौ हि संपूर्णे वह्निर्मन्दत्वमृच्छति ॥ ९४ ॥
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च।
रक्तशालीन् यवान् मुद्गाञ्जाङ्गलांश्च मृगद्विजान् ॥ ९५ ॥
पयोमूत्रासवारिष्टान् मधुशीधूंस्तथा सुराम्।
यवागूमोदनं वापि यूषैरद्याद्रसैरपि ॥ ९६ ॥
मन्दाम्लस्नेहकटुभिर्यच्च मूलोपसाधितैः ॥ ९७ ॥

प्रायः संपूर्ण उदररोग तीनों दोषोंके संघातसे ही उत्पन्न होते हैं। इसलिये इनमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करना चाहिये। दोषोंके कोपसे कुक्षि परिपूर्ण होकर अग्नि मंद होजाती है। इसलिये सब उदररोगोंमें हलका और दीपन भोजन कराना चाहिये तथा लाल शालीचावल, यव, मूंग, जांगल जीवोंका मांसरस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु और सुराका सेवन करावे और कटु द्रव्योंसे तथा पंचकोलसे सिद्ध कियेहुए यवागू, भात अथवा यूष वा मांसरस किंचित् अम्ल और स्नेहयुक्त कर अग्निबल विचारकर सेवन करावे ॥ ९४–९७ ॥

उदररोगमें कुपथ्य।

औदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलान्।
व्यायामाध्वदिवास्वप्नं यानयानञ्च वर्जयेत्।
तथोष्णलवणाम्लानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ ९८ ॥
माद्यादन्नानि जठरी तोयपानञ्च वर्जयेत् ॥ ९९ ॥

जल संचारी और अनूप संचारी जीवोंका मांस, शाक, पिष्टान्न, तिल, व्यायाम, भ्रमण, दिनमें सोना, सवारीपर चढना इन सबको त्याग देना चाहिये। तथा उष्ण, लवण, अम्ल, विदाही और भारी पदार्थ, पानीका पीना इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

उदररोगोंमें तक्र प्रयोग।

नातिसान्द्रं मतं पाने स्वादु तक्रमपेलवम्।
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं तु निचयोदरी।

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ॥ १०० ॥
शर्करामधुकोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ।
यमानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ १०१ ॥
पिबेन्मधुयुतं तक्रं व्यक्ताम्लं नातिपेलवम् ।
मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥ १०२ ॥
युक्तं प्लीहोदरी जातं सव्योषं तूदकोदरी ।
बद्धोदरी तु हवुषायमान्यजाजीसैन्धवैः ।
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥ १०३ ॥

सब प्रकारके उदररोगोंमें सोंठ, मिर्च, पीपल और नमक मिलाकर जो बहुत गाढा न हो और बहुत पतला भी न हो ऐसा तक्र पीना चाहिये । वातके उदररोगमें पीपल और सेंधानमक मिला तक्र पीना चाहिये । पित्तके उदररोगमें खांड और मुलैठीका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये । कफके उदररोगमें सेंधानमक, अजवायन, जीरा और त्रिकुटा मिलाकर तथा शहतयुक्तकर खट्टा और गाढा तक्र पीना चाहिये, प्लीहोदरमें शहद, तेल, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सेंधानमक मिलाकर तक्र पिलावे । जलोदरमें त्रिकुटेका चूर्ण मिला तक्र पिलावे । बद्धोदरमें हाउबेर, अजवायन, कालाजीरा और सेंधानमक मिला तक्र पिलाना चाहिये । छिद्रोदरमें पीपल और शहद मिला तक्र पिलाना चाहिये ॥ १००–१०३ ॥

गौरवारोचकार्त्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् ।
तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ १०४ ॥

जो रोगी गुरुता, अरुचि, मंदाग्नि, अतिसार और वातकफके रोगोंसे पीडित हों उनको तक्र अमृतके समान गुण करता है ॥ १०४ ॥

दूध प्रयोग ।

शोफानाहार्तितृण्मूर्च्छापीडिते कारभं पयः ।
शुद्धानां क्षामदेहानां गव्यं छागं समाहिषम् ॥ १०५ ॥

सूजन, अफारा, शूल, तृषा, मूर्च्छा और अतिक्षीणतामें हथिनीका दूध, शोधन करनेके अनन्तर गौ, बकरी अथवा भैंसका दूध पिलाना चाहिये ॥ १०५ ॥

उदरपर लेपनादि योग ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ।
साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं समैः ॥ १०६ ॥

देवदारु, ढाककी छाल, आककी जडकी छाल, गजपीपल, सोहांजना और असगंध इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करे॥ १०६॥

वृश्चिकालीं वचां कुष्ठं पञ्चमूलं पुनर्नवाम्॥ १०७॥
भूतीकां नागरं धान्यं जले पक्त्वाऽवसेचयेत्।
पलाशं कत्तृणं रास्नां तद्वत्पक्त्वावसेचयेत्॥ १०८॥

वृश्चिकपत्रिका, वच, कूठ, पंचमूल, पुनर्नवा, अजवायन, सोंठ और धनियां इनको जलमें पकाकर सुहाता २ तरडा देवे। अथवा पलाश, रोहिषतृण और रासनाके काथका तरडा देवे॥ १०७॥ १०८॥

मूत्राष्टक प्रयोग।

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत्॥ १०९॥

सब प्रकारके उदररोगियोंके लिये आठ प्रकारके मूत्र सेचन करनेमें और पिलानेमें प्रयुक्त करना चाहिये॥ १०९॥

रूक्षाणां बहुवातानां तथा संशोधनार्थिनाम्।
दीपनीयानि सर्पींषि जठरघ्नानि वक्ष्यते॥ ११०॥

जो उदररोगी रूक्ष और वायुसे पीडित तथा संशोधनके योग्य हों उनके लिये उदररोगनाशक स्नेहन घृतोंका कथन करते हैं॥ ११०॥

पंचकोल घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।
सक्षारैरर्द्धपलिकैर्द्विप्रस्थं सर्पिषः पचेत्।
कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्य तुलार्द्धस्य रसेन च॥ १११॥
दधिमण्डाढकोपेतं तत्सर्पिर्जठरापहम्।
श्वयथुं वातविष्टम्भं गुल्मार्शांसि च नाशयेत्॥ ११२॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और जवाखार यह प्रत्येक दो दो तोला लेकर कल्क करे। घी एक सेर, दशमूलका क्वाथ २॥ सेर, दहीका पानी पांच सेर इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इसके सेवन करनेसे उदररोग, सूजन, वायुका विष्टंभ, गुल्म और अर्शरोग दूर होते हैं॥ १११॥ ११२॥

नागरादि घृत।

नागरत्रिफलाप्रस्थं घृततैलात्तथाढकम्।

मस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम् ।
कफमारुतसम्भूते गुल्मे चैतत्प्रशस्यते ॥ ११३ ॥

सोंठ, त्रिफला यह दोनों मिलाकर एक सेर ले। घी और तेल चार सेर ले। दहीका तोड आठ सेर सबको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो सब प्रकारके उदररोग और वातकफसे उत्पन्न हुए गुल्म शान्त होते हैं ॥ ११३ ॥

चित्रक घृत।

चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात्पले ।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत् ॥ ११४ ॥

चित्रककी जडकी छाल चार तोले, जवाखार चार तोले इनका कल्क कर घी एक सेर, जल चार सेर, गोमूत्र दो सेर इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उदररोगवाला रोगी पीवे ॥ ११४ ॥

यवादि घृत।

यवकोलकुलत्थानां पञ्चमूलरसेन च ।
सुरासौवीरकाभ्याञ्च सिद्धं वापि पिबेद् घृतम् ॥ ११५ ॥

जौ, बेर (उन्नाभ) कुलथी, यह प्रत्येक चार तोले, बृहत्पंचमूलका क्वाथ, सुरा और सौवीरक यह सब मिलाकर चार सेर, घृत एक सेर सबको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो उदररोग शान्त हो ॥ ११५ ॥

विरेचनका निर्देश।

एभिः स्निग्धाय संजाते बले शान्ते च मारुते ।
स्रस्ते दोषाशये दद्यात्कल्पदृष्टं विरेचनम् ॥ ११६ ॥

इन उपरोक्त घृतोंसे जब उदररोगी स्निग्ध होजाय और बल प्राप्त होजाय तथा वायु शमन होजाय तब दोषोंको शुद्ध करनेके लिये कल्पस्थानमें कहीहुई विधिसे विरेचन प्रयोग करे ॥ ११६ ॥

पटोलादि चूर्ण।

पटोलमूलरजनीविडङ्गत्रिफलात्वचम् ।
काम्पिल्यको नीलिनी च त्रिवृता चेति चूर्णयेत् ॥ ११७ ॥
षडाद्यान् कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् ।
कृत्वा चूर्णमतो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ११८ ॥
विरिक्तो मृदु भुञ्जीत भोजनं जाङ्गलै रसैः ।

मण्डपेयाश्च पीत्वा वा सव्योषं षडहं पयः ॥ ११९ ॥
शृतं पिबेत्ततश्चूर्णं पिबेदेवं पुनः पुनः
हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्चापकर्षति ॥ १२० ॥

पटोलकी जड, हलदी, वायविडंग, हरडकी छाल, बहेडेकी छाल और आँवले यह छः द्रव्य एक एक कर्ष लेवे। कमीला दो कर्ष, नीलनी तीन कर्ष और निशोथ चार कर्ष इन सबको बारीक कूटकर चूर्ण बनावे। इस चूर्णमेंसे एक पल चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करे तो इससे खूब विरेचन होता है। विरेचन होनेके अनन्तर जांगल जीवोंके मांसरसके साथ बहुत नरम बनाया चावलोंका भात खावे। अथवा मण्ड और पेया क्रमपूर्वक सेवन करे। या त्रिकुटेका चूर्ण मिला पकायाहुआ दूध छः दिनतक सेवन करे। इसके उपरांत बल प्राप्त होनेपर छः छः दिनके अनन्तर इस चूर्णका सेवन करे। और विरेचन होनेके अनन्तर पेयादि विधि सेवन करता रहे तो सब प्रकारके उदररोग, जलोदर, कामला, पाण्डु और सूजन आदि नष्ट होते हैं ॥१७-१२०॥

गवाक्षादि चूर्ण।

गवाक्षीं शंखिनीं दन्तीं तिल्वकस्य त्वचं वचाम् ।
पिबेद् द्राक्षाम्बुगोमूत्रकोलकर्कन्धुशीधुभिः ॥ १२१ ॥

इन्द्रायणकी जड, शंखपुष्पी, दन्ती, लोध और वच इन सबका चूर्ण कर मुनक्कोंके क्काथ या गोमूत्र अथवा बेरके क्काथ या छोटे बेरके क्काथ अथवा शीधुके साथ उपरोक्त विधिसे सेवन करे तो उदररोग शान्त होता है ॥ १२१ ॥

नारायण चूर्ण।

यमानी हवुषा धान्यं त्रिफला चोपकुञ्चिका ।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥ १२२ ॥
शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रका ।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ १२३ ॥
विडङ्गस्य समांशानि दन्त्या भागास्त्रयस्तथा ।
त्रिवृद्विशालयोर्द्वौ द्वौ शातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ १२४ ॥
एतन्नारायणं नाम चूर्णं रोगगणापहम् ।

---

१ एक पलकी मात्रा अत्यन्त बलवान और हृष्टांग मनुष्यके लिये कही है। सामान्य मनुष्योंको दो तोला लेना चाहिये।

नैतत्प्राप्यातिवर्त्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ १२५ ॥
तक्रेणोदरिभिः पेयं गुल्मिभिर्बदराम्बुना ।
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ १२६ ॥
दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसैः ।
परिकर्त्ते सवृक्षाम्लमुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ १२७ ॥
भगन्दरे पाण्डुरोगे श्वासे कासे गलग्रहे ।
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्देऽनले ज्वरे ॥ १२८ ॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ १२९ ॥

अजवायन, हाउबेर, धानियां, त्रिफला, काला जीरा, कलौंजी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, वच, सौंफ, सुफेद जीरा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख), चीता, जवाखार, सज्जीखार, पोहकरमूल, कूठ, पांचों नमक, बायबिडंग यह प्रत्येक एक एक भाग, दंती तीन भाग, निशोथ और इन्द्रायणकी जड दो दो भाग, सातला चार भाग इन सबको बारीक कर चूर्ण बनावे । यह नारायण चूर्ण सब रोगोंके मूलको नष्ट करता है । इस चूर्णके सेवनसे इस प्रकार रोग नष्ट होजाते हैं जैसे विष्णुके तेजसे राक्षस नष्ट होजाते हैं । यह चूर्णको उदररोगीको तक्रके साथ, गुल्मरोगीको बेरके क्वाथके साथ, अफारेवालेको मद्यके साथ, वातरोगीको प्रसन्नाके साथ, मलके विबन्धमें दधिमण्डके साथ, अर्शरोगमें दाडिमकेसाथ, परिकर्तिका (पेचिश) में इमलीके जलके साथ, अजीर्णमें गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये । यह चूर्ण विरेचन होनेसे भगन्दर, पाण्डु, खांसी, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणीविकार, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष (जो किसी जानवरके काटनेसे हो), मूलविष और कृत्रिम विष इन सबको नष्ट करता है । रोगीको यथायोग्य स्निग्धकोष्ठ करके इस चूर्णको सेवन कराना चाहिये ॥ १२२–१२९ ॥

हवुषादि चूर्ण ।

हवुषा काञ्चनाक्षीरी त्रिफला कटुरोहिणी ।
नीलिनी त्रायमाणा च शातला त्रिवृता वचा ॥ १३० ॥
सैन्धवं काललवणं पिप्पली चेति चूर्णयेत् ।
दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥ १३१ ॥

पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीह्नि सर्वोदरेषु च।
कुष्ठे श्वित्रे सरुजके सवाते विषमाग्निषु ॥ १३२ ॥
शोथार्शःपाण्डुरोगेषु कामलासु हलीमके।
वातं पित्तं कफञ्चाशु विरेकात्संप्रसाधयेत् ॥ १३३ ॥

हाउबेर स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख), हरड, बहेडे, आँवले, कुटकी, नीलनी, त्रायमाण, सातला, निशोथ, वच, सेंधानमक, संचरनमक और पीपल इन सबका बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको दाडिमके रस अथवा त्रिफलाके क्काथ या मांसरस अथवा गरम जल या गोमूत्रके साथ पीवे तो सब प्रकारके गुल्म, प्लीहा, उदररोग, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, वातव्याधि, विषमाग्नि, सूजन, अर्श, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक और वात, पित्त, कफको विरेचनद्वारा शीघ्र शान्त करता है ॥ १३०-१३३ ॥

नीलिन्यादि चूर्ण।

नीलिनी निचुलं व्योषं द्वौ क्षारौ लवणानि च।
चित्रकञ्च पिबेच्चूर्णं सर्पिषोदरगुल्मनुत् ॥ १३४ ॥

नीलिनीकी जड, निचुल (वेतस), त्रिकुटा, जवाखार, सज्जीखार, पांचों नमक, चित्रककी छाल इन सबका चूर्णकर घी मिला पीवे तो सब प्रकारके उदररोग और गुल्म नष्ट होते हैं ॥ १३४ ॥

सुधाक्षीर घृत।

क्षीरद्रोणं सुधाक्षीरप्रस्थार्द्धसहितं दधि।
जातं विमथ्य तद्युक्त्या त्रिवृत्सिद्धं पिबेद् घृतम् ॥ १३५ ॥
तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पिबेत्।
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च।
गुल्मानां गरदोषाणामुदराणाञ्च शान्तये ॥ १३६ ॥

दूध एक द्रोण,थोहरका दूध आधा प्रस्थ इन दोनोंको मिला गरमकर दही जमावे। इस दहीमेंसे मथकर घी निकाले। इस घृतको निशोथका चूर्ण मिलाकर पान करे अथवा घी एक प्रस्थ, निशोथका कल्क छः पल, थोहरका दूध एक पल, गौका दूध आठ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। इन दोनों घृतोंमेंसे किसी एक घृतको सेवन करनेसे उदररोग, गुल्मरोग और गरदोष नष्ट होते हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

दधिमण्डाढके सिद्धात्स्नुक्क्षीरपलकल्कितात्।
घृतप्रस्थात्पिबेन्मात्रां तद्वज्जठरशान्तये ॥ १३७ ॥

अथवा दधिमण्ड एक आढक, थोहरका दूध एक पल, निशोथका कल्क एक पल इन सबको मिला घृत सिद्ध करे। इस घृतको मात्रानुसार खानेसे उदररोग शान्त होता है ॥ १३७ ॥

एषाञ्चानुपिबेत्पेयां पयो वा स्वादु वा रसम् ।
घृते जीर्णे विरिक्तं तु कोष्णनागरकैः शृतम् ॥ १३८ ॥
शुण्ठ्या पिबेत्ततः पेयां यूषं कौलत्थकं ततः ।
पिबेद्रूक्षस्त्र्यहं त्वेवं पयो वा प्रतिभोजितः ॥ १३९ ॥
पुनःपुनः पिबेत्सर्पिरानुपूर्व्यात्तथैव च ।
घृतान्येतानि सिद्धानि विदध्यात्कुशलो भिषक् ॥ १४० ॥
गुल्मानां गरदोषाणामुदराणाञ्च शान्तये ॥ १४१ ॥

इन घृतोंका पीकर पेया, दूध अथवा मधुर मांसरसका अनुपान करै घृतकी मात्रा जीर्ण होनेपर जब दस्त होचुकें तो सोंठसे सिद्ध कियाहुआ दूध अथवा सोंठसे सिद्ध की हुई पेया वा सोंठसे सिद्ध किया कुल्थीका यूप पान करे और घृतका सेवन तीन दिनतक न करे । या तीन दिनतक केवल दूध ही पीया करे । तीन दिनके अनन्तर बुद्धिमान् वैद्य बारबार इसी क्रमसे सिद्ध किये घृतोंको क्रमपूर्वक पिलावे। इन घृतोंके सेवनसे गुल्मरोग, उदररोग और गरदोष (दूषीविष) यह सब शान्त होते हैं ॥ १३८–१४१ ॥

पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम् ।
गुल्मघ्ननीलिनीसर्पिः स्नेहं वा मिश्रकं पिबेत् ।
क्रमान्निर्हृतदोषाणां जाङ्गलप्रतिभोजिनाम् ॥ १४२ ॥

पीलूके कल्कके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत उदररोगीके अफारेको दूर करता है। गुल्मरोगमें कहाहुआ नीलनीघृत और मिश्रकस्नेह भी उदररोगमें हितकारक है। जब विरेचनादि द्वारा उदररोगीके दोष शान्त होजांय तो क्रमपूर्वक जांगलजीवोंके मांसरस आदिका भोजन करता रहे ॥ १४२ ॥

संशमन योग ।

दोषशेषनिवृत्त्यर्थं योगान्वक्ष्याम्यतः परम् ।
चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण ना पिबेत् ॥ १४३ ॥
मांसयुक्तं तथा हस्तिपिप्पली विश्वभेषजम् ।
विडङ्गं चित्रकं दन्ती चव्यं व्योपञ्च तैः समैः । १४४ ।

कल्कैः कोलसमैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत्।
पिबेत्कषायं त्रिफलादन्तीरोहीतकैः शृतम्॥ १४५॥
व्योषक्षारयुतं जीर्णे रसैरद्यात्सजाङ्गलैः।
मांसं वा भोजनं भोज्यं सुधाक्षीरघृतान्वितम्॥ १४६॥

यदि उदररोगीके कुछ दोष बाकी रहगये हों तो उन दोषोंकी निवृत्तिके लिये संशमन योगोंको कथन करते हैं। चित्रक और देवदारुका कल्क कर दूधके साथ पीवे अथवा गजपीपल, सोंठ, वायविडंग, चीता, दंती, चव्य, मिर्च, पीपल और सोंठ यह सब समभाग लेकर बारीक कल्क करे। इसको एक कर्षभर लेकर दूधके साथ खाय तो अत्यन्त बढाहुआ उदररोग भी दूर होता है। अथवा त्रिफला, दंती, रोहिततृणका क्वाथ त्रिकुटेका चूर्ण और जवाखार मिलाकर पीवे। मात्रा जीर्ण होनेपर जांगलजीवोंके मांसरसके साथ भोजन करे। अथवा थोहरके दूधसे पूर्वोक्त रीतिपर बनाया घृत मांसरसके साथ सेवन करे॥ १४३-१४६॥

क्षीरानुपानं गोमूत्रेणाभयां वा प्रयोजयेत्।
सप्ताहं माहिषं मूत्रं क्षीरं चानन्नभुक् पिबेत्॥ १४७॥

अथवा गोमूत्रके साथ हरडका सेवन करे और केवल दूधका ही सेवन करे। अथवा सर्वथा अन्नका परित्याग कर भैंसका मूत्र पीवे और अन्नकी जगह भैंसका दूध पीवे। इस प्रकार सात दिन करनेसे उदररोगका शेष विकार शान्त होता है१४७

मासमौष्ट्रं पयश्छागं त्रीन् मासान् व्योषसंयुतम्।
हरीतकीसहस्रं वा क्षीराशी वा शिलाजतु॥ १४८॥
शिलाजतुविधानेन गुग्गुलुं वा प्रयोजयेत्।
शृङ्गवेरार्द्रकरसः पाने क्षीरसमो मतः॥ १४९॥
तैलं रसेन तेनैव सिद्धं दशगुणेन वा।
दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरे हितम्॥ १५०॥
शूलानाहविबन्धेषु सक्तुयूषरसादिभिः॥ १५१॥

अथवा त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर ऊंटनीका दूध एक महीने तक पीवे या बकरीका दूध त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर तीन महीनेतक पीवे अथवा १००० हरडोंको क्रमपूर्वक

१ एक एक हरडेसे लेकर दश दिन पर्यन्त बढाताहुआ दशवें दिन दश हरडे सेवन करे फिर दश दिनमें एक एक घटाता हुआ एक तक आजाय फिर इसी प्रकार बढाता दश तक सेवन करे फिर उसी प्रकार घटावे। इसी रीतिसे सहस्र हरडें खानी चाहिये।

सेवन करे । अथवा एक महीने तक केवल दूध पीताहुआ शिलाजीतका सेवन करे । या शिलाजीतकी विधिसे ही शुद्ध गूगुलको सेवन करे अथवा समान भाग दूध और अदरखका रस मिलाकर पीवे । अथवा दशभाग अदरखके रससे एक भाग तैलको सिद्धकर पीवे अथवा मालिश करे । दन्ती और द्रवंतीके फलोंका तेल (पहाडी और दक्षिणी जमालगोटेका तेल) युक्तिपूर्व आधी रत्ती आधासेर दूधमें मिलाकर पिलावे तो दूषीविषसे उत्पन्न हुआ उदररोग विरेचन होकर शान्त होजायगा । शूल, अफारा, विबंधमें अदरखके रससे सिद्ध किया तैल सत्तू और यवागूमें मिलाकर सेवन करे ॥ १४८–१५१ ॥

सरलामरशिग्रूणां बीजेभ्यो मूलकस्य च ।
तैलान्यभ्यङ्गपानार्थे शूलघ्नान्यनिलोदरे ॥ १५२ ॥

वायुके उदररोगमें पीडा शान्तिके लिये सरलके बीजोंका तेल और लाल सोहांजनेके बीजोंका तेल, तथा मूलीके बीजोंका तेल मालिशके लिये और पीनेमें प्रयोग करे ॥ १५२ ॥

स्तैमित्यारुचिहृल्लासेष्वल्पाग्निर्मद्यपस्तथा ।
अरिष्टान् वा पिबेत् क्षारान् कफस्त्यानस्थिरोदरः ॥ १५३ ॥

यदि कफके उदररोगमें पेटका तनना, कठोरता, स्तैमित्य, अरुचि, हल्लास और मंदाग्नि हो तो कफनाशक अरिष्ट अथवा क्षार मिलाकर मद्य पिलावे ॥ १५३ ॥

पिप्पल्यादिक्षार ।

पिप्पलीं तिल्वकं हिङ्गु नागरं हस्तिपिप्पलीम् ।
भल्लातकं शिग्रुफलं त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।
देवदारु हरिद्रे द्वे सरलातिविषे वचाम् ॥ १५४ ॥
कुष्ठं मुस्तं तथा पञ्चलवणानि प्रकल्प्य च ।
दधिसर्पिर्वसातैलमज्जयुक्तानि दाहयेत् ॥ १५५ ॥
अन्नादूर्द्धमतः क्षारान्बिडालकपदं पिबेत् ।
मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः ॥ १५६ ॥
हृद्रोगं श्वयथुं गुल्मं प्लीहार्शोजठराणि च ।
विषूचिकामुदावर्त्तं वाताष्ठीलाञ्च नाशयेत् ॥ १५७ ॥

पीपल, लोध, हींग, सोंठ, गजपीपल, भिलावे, सोहांजनाके बीज, त्रिफला, कुटकी, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, सरल, अतीस, वच, कूठ, नागरमोथा, पांचों नमक इन

सबको समभाग लेकर कूटलेवे फिर इनमें दही, घृत, वसा, तेल और मज्जा मिला-एक हांडीमें संपुट करे और गजपुटमें फूँकदेवे । अथवा जिस प्रकार इस संपुटमेंसे धूंआ बाहर निकले उस रीतिसे हांडीको बन्दकर चूल्हेपर चढा नीचेसे आँच देकर सब द्रव्योंकी भस्म कर डाले । इस क्षारमेंसे एक कर्ष लेकर मद्य, दधिमण्ड, उष्ण-जल, अरिष्ट, सुरा और आसव इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करे तो हृद्रोग, गुल्म, सूजन, प्लीहा. अर्श, उदररोग, विसूचिका, उदावर्त और वाताष्ठीला यह सब नष्ट होते हैं ॥ १५४–१५७ ॥

क्षारश्चाजकरीषाणां स्नुतं मूत्रैर्विपाचयेत् ।
कार्षिकं पिप्पलीमूलं पञ्चैव लवणानि च ॥ १५८ ॥
पिप्पलीं चित्रकं शुण्ठीं त्रिफलां त्रिवृतां वचाम् ।
द्वौ क्षारौ शातलां दन्तीं स्वर्णक्षीरीं विषाणिकाम् ॥ १५९ ॥
कोलप्रमाणां वटिकां पिबेत्सौवीरसंयुताम् ।
श्वयथावविपाके च प्रवृद्धे चोदकोदरे ॥ १६० ॥

बकरीकी मेंगनोंकी राखको आठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तो उतारकर छान लेवे फिर इसको दूसरे पात्रमें पकावे । जब गाढा होजाय तो फिर इसमें पीपलामूल, पांचों नमक, चित्रक, सोंठ, त्रिफला, निशोथ, वच, जवाखार, सज्जीक्षार, सातला, दन्ती, स्वर्णक्षीरीकी जड और मेंढासिंगी इन सबका बारीक चूर्ण मिलाकर कोल (एक कर्ष या बेरके समान) प्रमाण गोलियें बनालेवे । एक गोलीको नित्य खाकर सौवीरके साथ अनुपान करे । इसके सेवनसे सूजन, अवि-पाक, बढाहुआ उदररोग और जलोदर यह शान्त होते हैं ॥ १५८–१६० ॥

भावितानां गवां मूत्रे षष्टिकानां तु तण्डुलैः ।
यवागूं पयसा सिद्धां प्रकामं भोजयेन्नरम् ॥ १६१ ॥
पिबेदिक्षुरसश्चानु जठराणां निवृत्तये ।
स्वं स्वं स्थानं व्रजन्त्येषां तथा पित्तकफानिलाः ॥ १६२॥

इसमें गोमूत्रमें भावना दियेहुए साँठीके चावल दूधमें पकाकर यवागूके समान बना इच्छापूर्वक भोजन करावे। और उसके ऊपर ईखका रस पिलावे तो वात, पित्त, कफ अपने २ स्थानोंमें पहुंच जांय और जठररोग शान्त हो ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शंखिनीस्नुक्त्रिवृद्दन्तीचिरबिल्वादिपल्लवैः ।
शाकं गाढपुरीषाय प्राग्भक्तं दापयेद्भिषक् ॥ १६३ ॥

ततोऽस्मै शिथिलीभूतवर्चोदोषाय शास्त्रवित् ।
दद्यान्मूत्रयुतं क्षीरं दोषशेषहरं शिवम् ॥ १६४ ॥

शंखिनी (यवातिक्ता), थोहर, निशोथ, दन्ती और कंजाके पत्रोंका शाक जिस उदररोगीको सूखीहुई विष्ठा आती हो उसको भोजनके समय उपरोक्त शाक भातके साथ खिलावे जब देखे कि रोगीका मल शिथिल होगया है तो शास्त्रको जाननेवाला वैद्य दूध और गोमूत्र मिला पिलावे तो बाकी रहे दोष आसानीसे निकल जाते हैं ६४

पार्श्वशूलमुपस्तम्भं हृद्ग्रहश्चापि मारुतम् ।
जनयेद्यस्य तैलं स बिल्वक्षारेण ना पिबेत् ॥ १६५ ॥

जिस उदररोगीके वायुकी उग्रतासे पार्श्वशूल, उप (ऊरु) स्तम्भ और हृदयका जकडजाना होय उसको सरल, सुहांजने और मूलीके बीजोंका तेल अथवा अदरखसे सिद्ध किया तैल बिल्वक्षार मिलाकर पिलावे ॥ १६५ ॥

तथाग्निमन्थश्योनाकपलाशतिलनालजैः ।
बलाकदल्यपामार्गक्षारैः प्रत्येकशः स्रुतैः ॥ १६६ ॥
तैलं पक्त्वा भिषग्दद्यादुदराणां प्रशान्तये ।
निवर्त्तते चोदरिणां हृद्ग्रहश्चानिलोद्भवः ॥ १६७ ॥

अथवा अग्निमंथ, सोनापाठा, ढाक, तिलोंकी नाल, बला, केलाका कंद, अपामार्ग इन सबका क्षार अलग अलग लेकर टपकावे । उन सबसे सिद्ध किया तैल उदर रोगियोंके वातज हृद्रोगको दूर करता है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

कफे वातेन पित्तेन ताभ्यां वाप्यावृतेऽनि
बलिनः स्वौषधयुतं तैलमैरण्डजं हितम् ॥ १६८ ॥

कफ और वायुसे अथवा कफ पित्तसे यदि वायु रुकजाय तो बलवान् उदररोगीको उदररोगनाशक द्रव्योंके साथ एरण्डतैल पिलाना चाहिये ॥ १६८ ॥

सुविरिक्तो नरो यस्तु पुनराध्मतीह तम् ।
सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १६९ ॥
सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम् ।
तीक्ष्णैः सक्षारगोमूत्रैर्बस्तिभिस्तमुपाचरेत् ॥ १७० ॥

यदि विरेचनद्वारा शुद्धकाय होजानेपर फिर हटकर उदररोग होजाय तो अम्ल और लवण मिलाकर स्निग्ध निरूहण वस्ति करे। और जिस रोगीको वायु उपस्तम्भ

होकर अफारा प्रगट कर देवे, उसकी तीक्ष्ण क्षार और गोमूत्र मिलाकर वस्तिक्रिया द्वारा चिकित्सा करे ॥ १६९ ॥ १७० ॥

विशेष निर्देश।

क्रियातीते त्रिदोषे च जठरे चाप्रशाम्यति।
ज्ञातीन् ससुहृदो दारान् ब्राह्मणान्नृपतीन् गुरून् ॥ १७१ ॥
अनुज्ञाप्य भिषक्कर्म विदध्यात् संशयं ब्रुवन्।
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत्।
एवमाख्याय तस्येदमनुज्ञातः प्रयोजयेत् ॥ १७२ ॥

यदि त्रिदोषजन्य उदररोग इन सब क्रियाओंके करनेसे भी शान्त न हो तो रोगीके जातीय, बान्धव, स्त्री, ब्राह्मण, राजा और गुरु आदिको बुलाकर कहे कि, मैंने यथोचित चिकित्सा की है परन्तु तब भी रोग शान्त नहीं हुआ। अब यह (आगे कहीहुई) क्रिया बाकी है। इसके विना किये रोगीकी अवश्य मृत्यु होजायगी और इस क्रियाके करनेपर भी रोगी अच्छा होजायगा अथवा नहीं बचेगा इस विषयमें पूर्ण निश्चय नहीं है। यदि इस प्रकार वैद्यके कहनेपर सब लोक अनुमति दे तो वैद्य आगे कहीहुई किया करे ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

सार्पविषप्रयोग।

पानभोजनसंयुक्तं विषमस्मै प्रदापयेत् ॥ १७३ ॥
यस्मिन् वा कुपितः सर्पो विसृजेद्धि फले विषम्।
तेनास्य दोषसंघातः स्थिरो लीनो विमार्गगः ॥ १७४ ॥
विषेणाशु प्रमाथित्वादाशु भिन्नः प्रवर्त्तते।
विषेण हृतदोषं तं शीताम्बुपरिषेचितम् ॥ १७५ ॥
पाययेत भिषग्दुग्धं यवागूं वा यथाबलम्।
त्रिवृन्मण्डूकपर्ण्योश्च शाकं सयववास्तुकम् ॥ १७६ ॥
भक्षयेत्कालशाकं वा स्वरसोदकसाधितम्।
निरम्ललवणस्नेहं स्विन्नास्विन्नमनन्नभुक् ॥ १७७ ॥
मासमेकं ततश्चैव तृषितः स्वरसं पिबेत्।
एवं विनिर्हृते दोषे शाकैर्मासात्परं ततः ॥ १७८ ॥
दुर्बलाय प्रयुञ्जीत प्राणभृत् कारभं पयः ॥ १७९ ॥

जो रोगी किसी प्रकार चिकित्सा करनेपर भी अच्छा न होसकता हो और उसको उदररोगसे अवश्य मृत्यु होना प्रतीत होता हो तो उसको पान और भोजनमें सर्पका विष खिलावे। सर्प क्रुद्ध होकर जिस फलमें अपने विषको छोडे वह उस रोगीको खिलावे। इस विषके खानेसे रोगीके स्थिर, लीन और विमार्गगामी दोष विषके बलसे प्रमाथित होकर शीघ्र फटकर निकलने लगते हैं। जब वैद्य देखे कि विषसे सब दोष निकलचुके हैं तो रोगीको शीतल जलसे परिसेचन करे फिर यथाबल दूध अथवा यवागू पिलावे। दूसरे दिन निशोथके पत्र अथवा ब्राह्मी या यवतिक्ता, बथुआ, अथवा कालशाकको जलमें पकाकर नमक, खटाई और चिकनाईके ही विना भली प्रकार सिद्धकर अथवा थोडा सिद्धकर खिलावे और अन्न न देवे। रोगीको प्यास लगे तो इन्ही शाकोंका जल पिलावे। इस प्रकार इन शाकोंके सेवनसे दोष निकल-कर रोगी अत्यंत दुर्बल होजाता है उस समय उसको हथनीका दूध पिलावे जिससे रोगीके प्राणोंमें बल आवे॥ १७३-१७९॥

उदररोगमें शस्त्रकर्म।

इदन्तु शल्यहर्तॄणां कर्म स्याद्दृष्टकर्मणाम्।
वामं कुक्षिं मापयित्वा नाभ्यधश्चतुरङ्गुलम्।
मात्रायुक्तेन शस्त्रेण पाटयेन्मतिमान् भिषक्॥ १८०॥
विपाट्यान्त्रं ततः पश्चाद्वीक्ष्य बद्धक्षतान्त्रयोः।
सर्पिषाभ्यज्य केशादीनवमृज्य विमोक्षयेत्॥ १८१॥
मूर्च्छनाद्यच्च संमूढमन्त्रं तच्च विमोक्षयेत्।
छिद्राण्यन्त्रस्य तु स्थूलैर्दंशयित्वा पिपीलिकैः॥ १८२॥
बहुशः संगृहीतानि ज्ञात्वा छित्त्वा पिपीलिकान्।
प्रतियोगैः प्रवेश्यान्त्रं प्रैयैः सीव्येद्व्रणं ततः॥ १८३॥

दृष्टकर्मा, सिद्धहस्त, शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य नाभिसे चार अंगुल नीचे बाईं कुक्षीकी ओर शस्त्रद्वारा चीरा लगावे और उदरकी बद्ध और क्षत अंतडियोंकी परीक्षा करे और अंतडियोंमें मधुयष्टि घृत चुपडकर उन अंतडियोंके अन्दरका बाल आदि शल्य निकालडाले। अंत्र संबद्ध या मूर्छित होनेपर भी शस्त्रद्वारा सब दोष निकल-कर बद्ध खुल जायगा। आंतोंके समस्त छिद्र यदि मोटे हों तो बहुतसी बडी २ चींटियोंसे कटवावे। ऐसा करनेसे अंतडियोंके छिद्र इकट्ठे होकर आपसमें मिलजा-वेंगे फिर उन चीटियोंका छोडा आंतोंको उनके स्थानमें पहुंचाकर जखमको बाहरसे सींदेना चाहिये॥ १८०-१८३॥

जलोदरमें नलिकायन्त्रद्वारा जल निकालना।

तथा जातोदकं सर्वमुदरं व्यधयेद्भिषक्।
वामपार्श्वे त्वधो नाभेर्नाडीं दत्त्वा च गालयेत् ॥ १८४ ॥
निःस्राव्य च विमृज्यैतद्वेष्टयेद्वाससोदरम्।
तथा बस्तिविरेकाद्यैर्म्लानं सर्वञ्च वेष्टयेत् ॥ १८५ ॥

शस्त्रकर्मको जाननेवाला वैद्य जिस रोगीके पेटमें जल भरा हो उसके नाभिसे नीचे बाईं ओर नलिकाशस्त्र लगाकर पेटका जल निकालदेवे जल निकलजानेके अनन्तर पेट हलका होजानेपर नलिका शस्त्र निकालकर त्वचाको ठीक मिला कपडेसे संपूर्ण पेटको लपेट देवे। इसी प्रकार वस्ति और विरेचन आदिकोंसे शुद्ध होकर मुर्झाये हुए उदररोगीके पेटको वस्त्रसे लपेट देना चाहिये ताकि उदरमें फिर दोषका प्रवेश न होसके ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

निःसृते लङ्घितः पेयामस्नेहलवणां पिबेत्।
अतः परञ्च षण्मासान् क्षीरवृत्तिर्भवेन्नरः ॥ १८६ ॥
त्रीन्मासान् पयसा पेयां पिबेत्त्रींश्चापि भोजयेत्।
श्यामाकं कोरदूष्यं वा क्षीरेण लघुभोजनः।
नरः संवत्सरेणैवं जयेत्प्राप्तं जलोदरम् ॥ १८७ ॥

इस प्रकार उदररोगीके दोष निकलजानेपर लंघन करा लवण और चिकनाई रहित पेया पिलावे। फिर छः महीने पर्यंत रोगीको दूध ही पिलाना चाहिये। (पानी कभी न पिलावे) फिर तीन महीनेतक दूधके साथ पेया पिलावे। तदनंतर श्यामाक चावल अथवा कोद्रव चावलका भात बहुत नरम बनाकर दूधके साथ सेवन करावे। इस प्रकार एक वर्ष तक जलोदर रोगीकी रक्षा करता रहे तो वैद्य जलोदर रोगको जीत सकता है ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

दूधकी प्रशंसा।

प्रयोगाणाञ्च सर्वेषामनु क्षीरं प्रयोजयेत् ॥ १८८ ॥
दोषानुबन्धरक्षार्थं बलस्थैर्य्यार्थमेव च।
प्रयोगापचिताङ्गानां हितं ह्युदरिणां पयः।
सर्वधातुक्षयार्त्तानां देवानाममृतं यथा ॥ १८९ ॥

इन सब प्रयोगोंके अनन्तर दूधका पिलाना ही श्रेष्ठ है। दूधके पिलानेसे दोषोंका अनुबन्ध नहीं होता बल और स्थिरताकी रक्षा होती है। औषधि प्रयोगसे कृश हुए

उदररोगियोंके लिये दूध इस प्रकार हितकारी है जैसे सर्वधातु क्षय होनेसे दुःखित हुए देवताओंको अमृतका पीना हितकारी होता है ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अध्यायका उपसंहार।

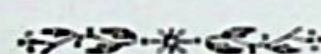
तत्र श्लोकौ–हेतुं प्राग्रूपमष्टानां लिङ्गं व्याससमासतः।
उपद्रवान् गरीयस्त्वं साध्यासाध्यत्वमेव च ॥ १९० ॥
जाताजाताम्बुलिङ्गानि चिकित्सां चोक्तवानृषिः।
समासव्यासनिर्देशैरुदराणां चिकित्सितम् ॥ १९१ ॥

इति चरक० चि० उदरचिकित्सितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस उदरचिकित्सित नामक अध्यायमें उदररोगके हेतु, पूर्वरूप, आठ प्रकारके उदररोगोंके लक्षण, उपद्रव, गुरुता, साध्यासाध्य, जात और अजात जलके लक्षण, चिकित्सा यह सब संक्षेप और विस्तारसे महर्षि आत्रेयजीने कहा है ॥ १९० ॥ १९१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां उदरचिकित्सितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः।



अथातो ग्रहणीचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम ग्रहणीचिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

आयुआदिमें अग्निको कारणता।

आयुर्वर्णो बलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयौ प्रभा।
ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाश्चोक्ता देहाग्निहेतुकाः ॥ १ ॥

आयु, वर्ण, बल, स्वास्थ्य, उत्साह, पुष्टि, कांति, ओज, तेज, क्षुधा और प्राण यह सब अग्निके ही अधीन हैं ॥ १ ॥

शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरं जीवत्यनामयः।
रोगी स्याद्विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥ २ ॥

यदन्नं देहधात्वोजोबलवर्णादिपोषकम् ।
तत्राग्निर्हेतुराहारान्न ह्यपक्काद्रसादयः ॥ ३ ॥

क्योंकि जठराग्निके शान्त होनेसे ही मनुष्य दीन होकर मरजाता है। यदि जठराग्नि उत्तम हो तो मनुष्य दीर्घायु और नीरोगी होता है । अग्निके विकृत होनेसे ही मनुष्य रोगी होता है। इसलिये मनुष्योंके जीवन और आरोग्यताका मूल कारण जठराग्निकी यथार्थता ही है । अन्नका अग्निद्वारा यथोचित परिपाक होकर देह, धातु, ओज और बल वर्णादिका पोषण करनेवाला होता है, उस अन्नके रसको यथोचित धातु, ओज आदिमें परिवर्त्तन करनेका कारण जठराग्नि ही है । क्योंकि जठराग्निके ठीक न होनेसे अन्नका यथोचित परिपाक होकर रस आदिके बन ही नहीं सकते ॥

अन्नमादानकर्मा तु प्राणः कोष्ठं प्रकर्षति ।
तद्द्रवैर्भिन्नसंघातं स्नेहेन मृदुतां गतम् ॥ ४ ॥
समानेनावधूतोऽग्निरुदर्य्यः पवनेन तु ।
काले भुक्तं समं सम्यक्पचत्यायुर्विवृद्धये ॥ ५ ॥
एवं रसमलायान्नमाशयस्थमधःस्थितः ।
पचत्यग्निर्यथास्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डुलम् ॥ ६ ॥

प्राणवायु अन्नको ग्रहणकर कोष्ठमें लेजाती है । क्योंकि अन्नको ग्रहण करके कोष्ठमें पहुंचा देना ही प्राणवायुका कर्म है । फिर वह अन्न आमाशयमें पहुंचकर कफकी द्रवतासे द्रवीभूत होकर स्नेहसे नर्म होजाता है। फिर समानवायुसे जठराग्नि उत्तेजित होकर उस अन्नको पाचन कर देती है। उसीसे मनुष्यकी आयु आदि बढती है । जैसे किसी पात्रमें चावल और जल मिलाकर आगपर चढादेनेसे नीचेकी अग्नि उसको भातके रूपमें परिणत कर देती है उसी प्रकार आमाशयमें स्थितहुए अन्नको पाचकाग्नि रस और मलके रूपमें परिणत कर देती है ॥ ४–६ ॥

भुक्तान्नसे तीनों दोषोंकी उत्पत्ति।

अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः ।
मधुरात्प्राक्कफोद्भावात् फेनभूत उदीर्य्यते ॥ ७ ॥
परन्तु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्लभावतः ।
आशयाच्च्यावमानस्य पित्तमच्छमुदीर्य्यते ॥ ८ ॥
पक्काशयन्तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना ।
परिपिण्डितपक्कस्य वायुः स्यात्कटुभावतः ॥ ९ ॥

छः रस युक्त भोजन किये अन्नका प्रथम परिपाक होकर मधुरतासे फेनभूत कफकी उत्पत्ति होती है। फिर पकेहुए अन्नके अम्लभावसे विदग्ध होकर आमाशयसे झरकर स्वच्छ पित्त प्रकट होता है। फिर वह अन्न अग्निसे सूखकर पक्वाशयमें प्राप्त हो कटुभावसे वायुको उत्पन्न करता है तथा पिण्डाकार बनकर विष्ठारूपमें परिणत होजाता है ॥ ७-९ ॥

आहारसे इंद्रियोंकी पुष्टि।

अन्नमिष्टं ह्युपहृतमिष्टैर्गन्धादिभिः पृथक्।
देहे प्रीणाति गन्धादीन् घ्राणादीनीन्द्रियाणि च ॥ १० ॥

जो अन्न उत्तम, प्रिय, गंधादियुक्त, आहार किया जाता है वह शरीरमें स्थित घ्राणादि इंद्रियोंमें गंधादि ग्रहणशक्तियोंको परिपुष्ट करता है ॥ १० ॥

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः।
पञ्चाहारगुणान् स्वान्स्वान् पार्थिवादीन् पचन्ति हि ॥ ११ ॥
यथास्वं स्वञ्च पुष्यन्ति देहद्रव्यगुणाः पृथक्।
पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च कृत्स्नशः ॥ १२ ॥
सप्तभिर्देहधातारो द्विविधाश्च पुनः पुनः।
यथास्वमग्निभिः पाकं यान्ति किट्टप्रसादवत् ॥ १३ ॥

पृथिव्यादि पांचभौतिक अन्यके परिपाककरनेवाली पांच प्रकारकी ही पांचभौतिक शक्तियोंवाली पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायवीय और आकाशीय गुणोंवाली ऊष्मा (अग्नि) होती है। वह पांच प्रकारकी ऊष्मा पार्थिव आदि पांच प्रकारके गुणों-वाले आहारके अंशोंको परिपाक करती हैं। और अपने अपने महाभूतात्मक द्रव्यके अंशको लेकर शरीरमें अपने अपने भागको पोषण करती हैं। जैसे पार्थिव ऊष्मा आहारके पार्थिव भागको लेकर शरीरके पार्थिव भागको पोषण करती है। इसी प्रकार अन्य जलीय आदिक भी जानना। इस प्रकार पांचभौतिक आहारके परिपाक होनेसे यह पंचभूतात्मक शरीर संपूर्ण शारीरिक गुणोंसे संपन्न होताजाता है। रसादिक सात धातुयें भी अपनी अपनी अग्निसे परिपाक होतेहुए मल और प्रसादरूपसे दो प्रकारके रूपमें परिणत होजाती हैं ॥ ११-१३ ॥

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च।
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्गर्भः प्रजायते ॥ १४ ॥
रसात्स्तन्यं ततो रक्तमसृजः कण्डराः शिराः।
मांसाद्वसा त्वचः षट् च मेदसः स्नायुसम्भवः ॥ १५ ॥

इस प्रकार उस पांचभौतिक आहारका जठराग्निद्वारा परिपाक हो पहिले रस धातु बनता है और किट्ट अलग होजाता है फिर रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थियोंसे मज्जा, मज्जासे शुक्र (वीर्य) और इस शुक्रसे ही गर्भ उत्पन्न होता है। एवं रससे स्तन्य (दूध) दूधसे रक्त, रक्तसे कंडरा और शिरा उत्पन्न होती हैं। मांससे वसा और सातप्रकारकी त्वचा होती हैं। तथा मेदसे संपूर्ण स्नायु और संधियें पोषण होती हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

अग्निवेशका प्रश्न।

इत्युक्तवन्तमाचार्य्यं शिष्यस्त्विदमचोदयत् ।
रसाद्रक्तं विसदृशात् कथं देहेऽभिजायते ॥ १६ ॥
रसस्य च न रङ्गोऽस्ति स कथं याति रक्तताम् ।
रसाद्रक्तात्स्थिरं मांसं कथं तज्जायते नृणाम् ॥ १७ ॥
रसाद्रक्तात्तथा मांसान्मेदसः श्वेतता कथम् ।
श्लक्ष्णाभ्यां मांसमेदोभ्यां खरत्वं कथमस्थिषु ॥ १८ ॥
खरेष्वस्थिषु मज्जा च केन स्निग्धो मृदुस्तथा ।
मज्ज्ञश्च परिणामेन यदि शुक्रं प्रवर्त्तते ॥ १९ ॥
सर्वदेहगतं शुक्रं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
अथापि मध्ये मज्ज्ञश्च शुक्रं भवति देहिनाम् ॥ २० ॥
छिद्रं न दृश्यतेऽस्थ्नाश्च तन्निःसरति वा कथम् ।
एवमुक्तस्तु शिष्येण गुरुः प्राहेदमुत्तरम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार अपने गुरु भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछनेलगे कि, हे भगवन् ! विपरीत वर्णवाले रससे शरीरमें रक्त कैसे होजाता है क्योंकि रसमें तो लालवर्णका रंग नहीं होता वह कैसे लालवर्णका रक्त बनजाता है। उस पतले रस और रक्तसे स्थिर मांस कैसे प्रकट होता है और उस मांससे उत्पन्न होनेवाली मेद श्वेतवर्णकी किस प्रकार होजाती है। नरम और चिकने मांस मेदसे खर और कठोर अस्थियें कैसे उत्पन्न होती हैं। उन खरगुणवाली अस्थियोंसे चिकनी और नर्म मज्जा कैसे उत्पन्न होती है। यदि मज्जाके परिणामसे ही शुक्रकी उत्पत्ति है तो शुक्रको बुद्धिमान् संपूर्ण शरीरमें व्यापक मानते हैं फिर उस मज्जाके मध्यमें उत्पन्न होनेवाले शुक्रको अस्थियोंसे बाहर निकलनेके लिये अस्थियोंमें कोई छिद्र तो प्रतीत होता ही नहीं फिर वह शुक्र अस्थियोंमेंसे किस प्रकार निकलता है। इस प्रकार शिष्यके प्रश्नोंको सुनकर गुरु उत्तर देनेलगे ॥ १६-२१ ॥

आत्रेयजीका उत्तर (सातधातुओंके बननेका क्रम)।

तेजो रसानां सर्वेषां मनुजानां यदुच्यते।
पित्तोष्मणः सरागेण रसो रक्तत्वमृच्छति ॥ २२ ॥
वाय्वग्नितेजसा रक्तमुष्मणा चाभिसंयुतम्।
स्थिरतां प्राप्य शौक्ल्यञ्च मेदो देहेऽभिजायते ॥ २३ ॥
पृथिव्यग्न्यनिलादीनां संघातः श्लेष्मणावृतः।
खरत्वं प्रकरोत्यस्य जायतेऽस्थि ततो नृणाम् ॥ २४ ॥
करोति तत्र सौषिर्य्यमस्थ्नां मध्ये समीरणः।
मेदसस्तानि पूर्य्यन्ते स्नेहो मज्जा ततः स्मृतः ॥ २५ ॥
तस्मान्मज्ज्ञस्तु यः स्नेहः शुक्रं संजायते ततः ॥ २६ ॥

सब मनुष्योंके आहारसे जो रस उत्पन्न होता है उस रसमें जो तेज पदार्थ है वही रसको रक्त बनानेमें कारण है। उस रसमें होनेवाले रोगयुक्त तेज और पित्तकी गर्मीसे रस लालरूपमें परिणत हो रक्तताको प्राप्त होजाता है। वही रक्त वायु और अग्निके तेजसे स्थिरताको प्राप्त होकर मांसरूपमें परिणत होजाता है। इसी प्रकार मांस वायु, कफ और अग्निके तेजसे परिणत होकर श्वेत मेदके रूपमें प्राप्त होजाता है। वह मेद कफसे आवृत हो पृथ्वी, अग्नि और वायुके संघातसे खरत्वको प्राप्त हो मनुष्योंकी अस्थियोंके रूपमें परिणत होजाता है। उन अस्थियोंमें वायु छिद्रोंको प्रकट करदेता है। जिससे वह हड्डियें मेदसे परिपूर्ण होकर मज्जाको उत्पन्न करती हैं। उस मज्जाके स्नेहसे वीर्यकी उत्पत्ति होती है ॥ २२-२६ ॥

शुक्रनिकलनेका क्रम।

वाय्वाकाशादिभिर्भावैः सौषिर्य्यं जायतेऽस्थिषु।
तेन स्रवति तच्छुक्रं नवात्कुम्भादिवोदकम्।
स्रोतोऽभिष्यन्दते देहात्समन्ताच्छुक्रवाहिभिः ॥ २७ ॥
हर्षेणोदीरितं रागात्सङ्कल्पाच्च मनोभवात्।
विलीनं घृतवद्व्यायामोष्मणा स्थानविच्युतम् ॥ २८ ॥
वस्तौ संभृत्य निर्य्याति स्थलान्निम्नादिवोदकम् ॥ २९ ॥

वायु और आकाशके गुणसे हड्डियोंके सब भागोंमें सूक्ष्म छिद्र होते हैं। उन छिद्रोंद्वारा वीर्य बाहर निकलता है। जैसे नवीन मट्टीके घडमें जल भरनेसे वह झरने लगता है उसी प्रकार अस्थियोंके सूक्ष्म छिद्रोंसे शुक्र झरकर शुक्रवाही स्रोतोंद्वारा

कामचेष्टासे उत्पन्न हुए राग और संकल्पसे मैथुनादि व्यायामजनित गर्मीसे घृतके समान पिघल जाता है और अपनेस्थानसे चल वस्तिमें संचित होकर जैसे ऊंचे स्थानसे नीचे स्थानको जल निकलजाता है उसी प्रकार यह भी निकल जाता है॥२९॥

धातुओंके मल।

किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य च कफोऽसृजः।
पित्तं मांसस्य च मलो मलः स्वेदस्तु मेदसः।
स्यात्किट्टं केशजा लोमास्थ्नो मज्ज्ञः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचाम् ३०
प्रसादकिट्टे धातूनां पाकादेवंविधः स्मृतः॥ ३१॥

आहारका किट्ट विष्ठा और मूत्र होता है। रसका किट्ट (मल) कफ (बलगम, थूक) होता है। रक्तका किट्ट पित्त होता है। मेदका मल पसीना। हड्डियोंका मल लोम। मज्जका मल शरीरगत स्नेह, त्वचाका मल नेत्रोंका कीच होता है। इस प्रकार रससे रक्तादिकोंका बनना धातुओंका प्रसाद कहजाता है। और मलादिक किट्ट मल कहेजाते हैं॥ ३०॥ ३१॥

परस्परोपसंस्तम्भा धातुस्नेहपरम्परा।
वृष्यादीनां प्रभावस्तु पुष्णाति बलमाशु हि॥ ३२॥
षड्भिः केचिदहोरात्रैरिच्छन्ति परिवर्त्तनम्।
सन्तत्या भोज्यधातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत्॥ ३३॥

सब धातुयें आपसमें एक दूसरेको पुष्ट करती हैं और रसादि क्रमसे ही धातुओंका पोषण होकर वीर्यबलादि उत्पन्न होते हैं। परन्तु वृष्य, वाजीकरणादि पदार्थ विना ही रसादिक्रमसे परिणत हुए शीघ्र बलको उत्पन्न करते हैं यह इनका स्वाभाविक गुण है। कोई कहते हैं कि एक धातु छः दिन रात्रिमें दूसरी धातुके रूपमें परिणत होती है। परन्तु इस प्रकार धातुओंके परिवर्त्तनका चक्रके समान सदैव रूपान्तर होता जाता है॥ ३२॥ ३३॥

व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा।
युगपत्सर्वतोऽजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा।
क्षिप्यमाणस्तु वैगुण्याद्रसः सज्जति यत्र सः॥ ३४॥
करोति विकृतिश्चात्र खे वर्षमिव तोयदः।
दोषाणामपि चैवं स्यादेकदेशप्रकोपणम्॥ ३५॥

संपूर्ण शरीरमें संचार करनेवाली व्यान वायुका विक्षेप करना ही कर्म है, उसीसे रस एक साथ संपूर्ण शरीरमें विक्षिप्त (फेंका हुआ) होता है। वह रस इस प्रकार व्यानवायुद्धारा फेंकाहुआ जिस स्थानमें इकठ्ठा होजाता है उसी स्थानमें विकारभावको प्राप्त होजाता है। जैसे आकाशमें मेघ इकठे होकर वृष्टि करनेलगते हैं उसी प्रकार दोष भी इकठे होनेसे उसी स्थानमें कुपित होजाते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

जठराग्निकी प्रधानता।

इति भौतिकधात्वन्नपक्तॄणां कर्म भाषितम्।
अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तॄणामधिको मतः ॥ ३६ ॥
तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः।
तस्मात्तं विधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः ॥ ३७ ॥
पालयेत्प्रयतस्तस्य स्थितौ ह्यायुर्बलस्थितिः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार संपूर्ण भौतिक धातु और अन्नके परिपाक करनेवाली अग्नियोंके कर्म वर्णन किये गये हैं। उन सब प्रकारकी पाचकाग्नियोंमें अन्नका परिपाक करनेवाली अग्नि प्रधान मानी जाती है। क्योंकि पाचकाग्नि ही और संपूर्ण अग्नियोंका मूल है। पाचकाग्निकी वृद्धि और क्षयसे अन्य रंजकादि अग्नियोंका भी वृद्धि और क्षय होता है। इसलिये जठराग्नियोंको ही अनेक प्रकारके हित अन्न पानरूपी इंधनोंसे निरन्तर पालन करना चाहिये। पाचकाग्निके ठीक रहनेपर ही वायु और बल रह सकते हैं ॥ ३६-३८ ॥

यो हि भुङ्क्ते विधिं मुक्त्वा ग्रहणीदोषजान् गदान्।
स लौल्याल्लभते शीघ्रं वक्ष्यन्तेऽतःपरं तु ये ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य विधिको छोडकर चपलता अथवा लोभके वश भोजन करते हैं उन्हीं मनुष्योंकी ग्रहणी दोषसे उत्पन्न हुए रोग शीघ्र प्राप्त होते हैं। अब उन रोगोंका वर्णन करते हैं ॥ ३९ ॥

जठराग्नि दूषित होनेका हेतु।

अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात्।
असात्म्यगुरुशीतातिरूक्षसन्दुष्टभोजनात्।
विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद्व्याधिकर्षणात् ॥ ४० ॥
देशकालर्तुवैषम्याद्वेगानाञ्च विधारणात्।
दुष्यत्यग्निः स दुष्टोऽन्नं न तत्पचति लघ्वपि ॥ ४१ ॥

आहार न करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, अत्यंत भोजन अथवा विषम भोजनके सेवनसे, असात्म्य, भारी, शीतल, अतिरूक्ष और विष आदिकोंसे दूषित भोजन करनेसे, स्नेहन, वमन, विरेचन आदिकोंका अतियोग अथवा मिथ्यायोग होनेसे, रोगादिकोंसे, शरीरके कृश होनेसे, देश काल और ऋतुके विपरीत भावसे और मलमूत्रादि वेगोंके धारणसे जठराग्नि दूषित होजाती है। वह दूषित हुई अग्नि हल्के अन्नका भी परिपाक नहीं कर सकती॥ ४०॥ ४१॥

अजीर्णके लक्षण।

अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विषताञ्च तत्।
तस्य लिङ्गमजीर्णस्य विष्टम्भोऽङ्गञ्च सीदति॥ ४२॥
शिरसो रुक् च मूर्च्छा च भ्रमः पृष्ठकटिग्रहः।
जृम्भाङ्गमर्दस्तृष्णा च ज्वरश्छर्दिः प्रवाहणम्॥ ४३॥
अरोचकोऽविपाकश्च घोरमन्नविषञ्च तत्॥ ४४॥

अन्नका परिपाक न होनेसे वह अन्न अम्लताको प्राप्त होकर विषके समान हानिकारक होजाता है। तब उस अजीर्णके यह लक्षण होते हैं। जैसे-विष्टम्भ, अंगोंमें शिथिलता, मस्तकपीडा, मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमरमें पीडा, जँभाई, अंगडाई, प्यास, ज्वर, वमन, प्रवाह, अरुचि और अन्नका आविपाक यह अजीर्ण अन्न विषके समान घोर उपद्रवोंको करता है॥ ४२-४४॥

दोषसंसृष्ट अजीर्णसे रोग।

संसृज्यमानं पित्तेन दाहं तृष्णां मुखामयान्।
जनयत्यम्लपित्तं च पित्तजांश्चापरान् गदान्।
यक्ष्मपीनसमेहादीन् कफजान् कफसङ्गतः॥ ४५॥
करोति वातसंसृष्टं वातजांश्च गदान् बहून्।
मूत्ररोगांश्च मूत्रस्थं कुक्षिरोगाञ्छकृद्गतम्॥ ४६॥
रसादिभिश्च संसृष्टं कुर्य्याद्रोगान् रसादिजान्॥ ४७॥

वह अजीर्ण अन्न पित्तसे मिलकर दाह, प्यास, मुखरोग अम्लपित्त तथा अन्न पित्तजनित विकारोंको उत्पन्न करता है। वही विषरूप अजीर्ण अन्न कफके साथ मिलनेसे कफ जनित राजयक्ष्मा, प्रतिश्याय और प्रमेह आदिकोंको उत्पन्न करता है। यदि वह वातके साथ मिलजाय तो वातजनित अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है। तथा वह अजीर्ण अन्नरूपी विष मूत्रस्थ होनेसे मूत्ररोग होता है और मलगत होनेसे कुक्षिरोगोंको उत्पन्न करता है एवं रसादिके साथ मिलनेसे रसादिके रोगोंको उत्पन्न करता है॥ ४५-४७॥

अग्निभेदसे परिपाक।

विषमो धातुवैषम्यं करोति विषमं पचन् ।
तीक्ष्णो मन्देन्धनो धातून् विशोधयति पावकः ।
युक्तं भुक्तवतो युक्तो धातुसाम्यं समं पचन् ॥ ४८ ॥
दुर्बलो विदहत्यन्नं तद्यात्यूर्द्ध्वमधोऽपि वा ॥ ४९ ॥

जठराग्नि विषम होनेसे अन्नका भी विषम परिपाक करके धातुओंमें विषमताको प्रकट करती है । और अग्नि अधिक चैतन्य होनेसे अल्प अहाररूपी इन्धन मिलनेपर उसको दग्धकर धातुओंका शोधन करती है। यदि ठीक चैतन्य अग्निमें उचित आहार मिले तो वह ठीक पाककर धातुओंमें साम्यताको पैदा करती है। यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो वह आहारको विदग्ध पाक करती है और वह विदग्ध (अधपका) अन्न वमनद्वारा ऊपरके मार्गसे अथवा विरेचनद्वारा नीचेके मार्गसे निकलने लगता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

ग्रहणी संप्राप्ति।

अधश्च पक्वमामं वा प्रवृत्तं ग्रहणीगदः ।
उच्यते सर्वमेवान्नं प्रायो ह्यस्य विदह्यते ।
अतिसृष्टं विबद्धं वा द्रवं तदुपवेश्यते ॥ ५० ॥

उनमें जो अपक्व अथवा पक्व अन्न अधोमार्गसे होकर निकले उसको ग्रहणीरोग कहते हैं। ग्रहणी रोगमें प्रायः सब प्रकारके अन्न विदाही होजाते हैं। वही विबद्ध अन्न विबद्ध अथवा पतला होकर अत्यंत निकलने लगता है ॥ ५० ॥

ग्रहणीके उपद्रव।

तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः ।
शूनपादकरः सास्थिपर्वरुक्छर्दनं ज्वरः ॥
लोहामगन्धिस्तिक्ताम्ल उद्गारश्चास्य जायते ॥ ५१ ॥

प्यास, अरुचि, मुखकी विरसता, लारका बहना, तमकश्वास, हाथ पांवमें सूजन, अस्थिभेद, पर्वभेद, वमन, ज्वर, लोहगंध, आमगंध, खट्टी और कडवी डकार यह ग्रहणीरोगके उपद्रव होते हैं ॥ ५१ ॥

ग्रहणीके पूर्वरूप।

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः ।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात् कायस्य गौरवम् ॥ ५२ ॥

प्यास, आलस्य, बलक्षय, अन्नका विदाही परिपाक तथा अन्नका देरमें पाक होना और शरीरका भारी होना यह ग्रहणी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ ५२ ॥

ग्रहणीकी निरुक्ति ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता ॥ ५३ ॥
नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता ।
अपक्कं धारयत्यन्नं पक्कं सृजति पार्श्वतः ।
दुर्बलाग्न्यबलादुष्टाऽऽममेव विमुञ्चति ॥ ५४ ॥

जठराग्निका अधिष्ठान ग्रहणी है अन्नको ग्रहण करनेसे उसको ग्रहणी कहते हैं। नाभिके ऊपर इसका स्थान है। अग्निबल ही इसका उपस्तम्भ और पोषण करता है। यह कच्चे अन्नको धारण करती है और पके हुए अन्नको पार्श्वकी ओर त्याग करती है। यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो ग्रहणी भी दुर्बल होती है। जठराग्निके दुर्बल अथवा दूषित होनेसे ही ग्रहणी विना पके अन्नको त्याग करने लगती है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ग्रहणीके भेद ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वाद् ग्रहणीदोष उच्यते ।
हेतुं लिङ्गं चिकित्साञ्च शृणु तस्य पृथक् पृथक् ॥ ५५ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे ग्रहणीरोग चार प्रकारका होता है। अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको अलग अलग श्रवण करो ॥ ५५ ॥

वातज ग्रहणीके हेतु ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः ॥ ५६ ॥
प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ।
करोति कुपितो मन्दमग्निं संछाद्य मारुतः ॥ ५७ ॥

चरपरे, कडुवे, कसैले, अत्यंत रूक्ष और अत्यंत शीतल पदार्थोंके निरन्तर खानेसे, अल्प भोजन करनेसे अथवा भोजन न करनेसे, अधिक मार्ग चलनेसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, अधिक मैथुन करनेसे वायु कुपित होकर जठराग्निको आच्छादन कर मन्द करदेता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

वातज ग्रहणीके लक्षण ।

तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता ।
कण्ठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥ ५८ ॥
पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुजोऽभीक्ष्णं विषूचिका ।
हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्त्तिका ॥ ५९ ॥

गृद्धिः सर्वरसानाञ्च मनसः सदनं तथा।
जीर्णे जीर्य्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च ॥ ६० ॥
स वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्की च मानवः।
चिराद् दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥ ६१ ॥
पुनःपुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासान्वितोऽनिलात् ॥ ६२ ॥

फिर उस मनुष्यका भोजन किया अन्न बडी कठिनतासे परिपाक हो तथा अम्ल परिपाक हो और अंगोंमें कठोरता, कण्ठ और मुखका शोष, वायुकी तृषा, वायुकी क्षुधा, नेत्रोंके आगे अंधकार, कानोंमें शब्द होना, पार्श्वपीडा, ऊरू, वंक्षण और ग्रीवामें निरन्तर पीडा, विषूचिका, हृच्छूल, कृशता, दुर्बलता, मुखकी विरसता, परिकर्तिका, संपूर्ण रसोंको ग्रहण करनेकी अभिलाषा, मनमें उदासी, अन्नके जीर्ण होनेपर अफारा, भोजन करतेही स्वस्थता प्रतीत होना, रोगीको वातगुल्मता प्रतीत होना, हृद्रोग और प्लीहाके समान लक्षण प्रतीत होना तथा विलंब और कष्टके साथ आम तथा शब्दके साथ झागदार मल बारबार आना, खांसी और श्वास होना यह वायुकी ग्रहणीके लक्षण हैं ॥ ५८-६२ ॥

पित्तज ग्रहणीरोगके हेतु और लक्षण।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम्।
अग्निमाप्लावयद्धन्ति जलं तप्तमिवानलम्।
सोऽजीर्णनीलपीताभं पीताभः सार्य्यते द्रवम् ॥ ६३ ॥
पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृषार्दितः ॥ ६४ ॥

चरपरे, अजीर्णकारी, विदाही, अम्ल और क्षार पदार्थोंके सेवनसे पित्त वृद्धिको प्राप्त होकर जठराग्निको इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे-गरम जल अग्निको बुझा देता है। तब अग्निके नष्ट होनेपर रोगीको कच्चा, नीला, पीला और पीले जलके समान पतला दस्त आनेलगता है। उससे दुर्गन्ध आती है और रोगी खट्टी डकार, हृदय और कंठमें दाह, अरुचि तथा प्यास इनसे व्याकुल होता है यह पित्तकी ग्रहणीके लक्षण हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

कफज ग्रहणीके हेतु और लक्षण।

गुर्वतिस्निग्धशीतान्नभोजनादतिभोजनात्।
भुक्तमात्रस्य च स्वपाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः।
तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः ॥ ६५ ॥

आस्योपदेहमाधुर्य्यकासष्ठीवनपीनसाः ।
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु ॥ ६६ ॥
दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ।
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् ॥ ६७ ॥
अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यञ्च कफात्मके ॥ ६८ ॥

अति स्निग्ध और शीतल अन्नका सेवन करनेसे, अत्यंत भोजन करनेसे, भोजन करते ही तत्काल सोजानेसे कफ कुपित होकर जठराग्निको नष्ट करदेता है । तब उसके अन्नका कठिनतासे परिपाक होना, हृल्लास, वमन, अरुचि, मुखका लिपासा रहना, मुखका स्वाद मीठा होना, खांसी, कफका थूंकना, पीनस, हृदयका जकडासा होना, उदरका स्तिमित और भारी होना, मधुरतायुक्त दुष्ट उद्गार आना, अंगोंका सोना, स्त्रीसंगमें अनिच्छा होना और फटाहुआ आम और कफसे युक्त भारी मल उतरना, रोगीका शरीर कृश न होना, परन्तु दुर्बलता और आलस्य अधिक होना यह कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं ॥ ६५–६८ ॥

यश्चाग्निः पूर्वमुद्दिष्टो रोगानीके चतुर्विधः ।
तस्यापि ग्रहणीदोषं समवर्जं प्रचक्ष्महे ॥ ६९ ॥

विमानस्थानके रोगानीक अध्यायमें जो चार प्रकारकी अग्नि कही हैं उनमें समानाग्निको छोडकर बाकी तीन प्रकारकी अग्नि ग्रहणी दोषमें ही सम्मिलित जाननी॥६९॥

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे ।
त्रिदोषं निर्दिशेत्तेषां भेषजं शृण्वतः परम् ॥ ७० ॥

वातादि तीनों दोषोंके हेतु और लक्षण जिसमें सब हों उसको त्रिदोषज ग्रहणीरोग जानना । अब ग्रहणीरोगकी चिकित्साको श्रवण करो ॥ ७० ॥

ग्रहणीकी चिकित्सा।

ग्रहणीमाश्रितं दोषं विदग्धाहारमूर्च्छितम् ।
सविष्टम्भप्रसेकार्त्ति विदाहारुचिगौरवम् ।
आमलिङ्गान्वितं दृष्ट्वा सुखोष्णेनाम्बुनोद्धरेत् ॥ ७१ ॥
फलानां वा कषायेण पिप्पलीसर्षपैस्तथा ।
लीनं पक्वाशयस्थं वाप्यामं स्राव्यं सदीपनैः ॥ ७२ ॥

आहार विदग्ध होनेसे दोष मूर्च्छित होकर ग्रहणीके आश्रित होजाते हैं । तब विष्टम्भ मुखसे लार बहना, उदरपीडा, विदाह, अरुचि, भारीपन और अन्य भी आमके लक्षण

प्रतीत होने लगतें हैं; उस समय रोगीको सुखोष्ण जल पिलाकर अथवा मैनफल आदिका क्वाथ पिलाकर या पीपल और सरसोंका कल्क पिलाकर उत्क्लेशित हुए अजीर्ण अन्नको वमनद्वारा निकालदेना चाहिये। यदि दोष द्रवीभूत होकर पक्वाशयमें पहुंच उद्वेग करे तो दीपन विरेचन द्रव्योंसे निकाल देना चाहिये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

शरीरानुगते सामे रसे लङ्घनपाचनम् ।
विशुद्धामाशयायास्मै पञ्चकोलादिभिर्युतम् ॥ ७३ ॥
दद्यात् पेयादि लघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपनान् ॥ ७४ ॥

यदि ग्रहणीरोगमें आमरस शरीरमें फैलगया हो तो लंघन करावे और पाचन द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । जब आमाशय शुद्ध होजाय तो पंचकोलादि दीपन पाचन द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेयादि हलका अन्न भोजन करावे और उसके अनन्तर भी दीपन औषधियोंका प्रयोग करे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

वातजग्रहणीकी चिकित्सा ।

ज्ञात्वा तु परिपक्वामं मारुतग्रहणीगदम् ।
दीपनीययुतं सर्पिः पाययेताल्पशो भिषक् ।
किञ्चित्सन्धुक्षिते त्वग्नौ सक्तविण्मूत्रमारुतम् ॥ ७५ ॥
द्वित्रीण्यहानि सस्नेहं स्नेहाभ्यक्तं निरूहयेत् ।
तत ऐरण्डतैलेन सर्पिषा तैलकेन वा ।
सक्षारेणानिले शान्ते स्रस्तदोषं विरेचयेत् ॥ ७६ ॥

वातज ग्रहणीमें आमदोषका परिपाक होजानेपर दीपन औषधियोंयुक्त घृतको वैद्य थोडा २ कई वार पिलावे जब देखे कि अग्नि कुछ चैतन्य होगई और मल, मूत्र तथा अधोवातकी रुकावट है तो रोगीको तीन दिन स्नेहाभ्यक्त (शरीरपर तेल-युक्त) कर अथवा स्वेदित करके अथवा स्नेहन और स्वेदन दोनों करके तीन दिनके अनन्तर निरूहण करे । जब निरूहणसे दोष अपने स्थानसे छूटजाय तब क्षार मिलाकर एरंडतैल पिलावे । अथवा रेचक घृत पिलावे या रेचक द्रव्योंसे सिद्धकिया तैल पिलाकर विरेचन करावे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

शुद्धं रूक्षाशयं बद्धवर्चसं चानुवासयेत् ।
दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेन मात्रया ॥ ७७ ॥
निरूढश्च विरिक्तश्च सम्यक् चैवानुवासितः ।
लघ्वन्नप्रतिसंभुक्तः सर्पिरभ्यासयेत् पुनः ॥ ७८ ॥

यदि इस प्रकार संशोधन करनेसे पक्वाशयमें रूक्षता होकर मल बद्ध होजाय तो दीपनीय अम्ल और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तेलद्वारा अनुवासनवस्ति करे इस प्रकार अच्छीरीतिसे निरूहण, विरेचन और अनुवासन होनेके अनन्तर हलका भोजन और नीचे लिखे घृतोंका अभ्यास करावे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

दशमूलादिघृत।

द्वे पञ्चमूले सरलं देवदारु सनागरम्।
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ॥ ७९ ॥
शणबीजं यवान्कोलान् कुलत्थान् सुरभींस्तथा।
पाचयेदारनालेन दध्ना सौवीरकेण वा ॥ ८० ॥
चतुर्भागावशेषेण पचेत्तेन घृताढकम्।
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ क्षारौ दत्त्वा च युक्तितः ॥ ८१ ॥
सैन्धवौद्भिदसामुद्रविडानां रोमकस्य च।
ससौवर्चलपाक्यानां भागान्द्विपलिकान् पृथक् ॥ ८२ ॥
विनीय चूर्णितान्सिद्धात्ततो द्वे द्वे पले पिबेत्।
करोत्यग्निं बलं वर्णं वातघ्नं भुक्तपाचनम् ॥ ८३ ॥

लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, सरल, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, राजपीपल, सणके बीज, जव, बेर, कुलथी और रास्ना, इन बाईस (२२) औषधियोंको मिलाकर आठ सेर लेवे फिर कूटकर चारगुणी कांजी, दही और सौवीर मिलाकर पकावे, पकते २ चौथा भाग बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे फिर इस क्वाथमें चार सेर घृत और जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, उद्भिदलवण, सामुद्रलवण, विडलवण, रोमकलवण, संचरलवण और पाक्यलवण यह प्रत्येक आठ २ तोले मिलावे सबको मिलाकर एकत्रकर पकावे जब पकते २ घृतमात्र शेष रहे तो उतार कर छान लेवे इस घृतको जठराग्निका बल विचारकर दो पल अथवा शरीरानुकूल सेवनकरै तो अग्निबलकी वृद्धि, वर्णकी वृद्धि और वायुका नाश तथा आहारका उत्तम परिपाक होता है ॥ ७९–८३ ॥

त्र्यूषणादिघृत।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्के बिल्वमात्रे गुडात्पले।
सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिबेत् ॥ ८४ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडे, आँवले, प्रत्येक डेढ (१॥) तोला लेकर कल्क करे। गुड पांच तोला, घृत ४० तोला, पानी आठ सेर सबको विधिवत् मिलाकर

पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस घृतके सेवनसे मंदाग्नि दूर होकर पाचन शक्ति बलवती होती है ॥ ८४ ॥

पञ्चमूलादि घृत ।

पञ्चमूलाभया व्योषविडङ्गशटिभिर्घृतम् ।
शुक्तेन मातुलुङ्गस्य स्वरसेनार्द्रकस्य च ॥ ८५ ॥
शुष्कमूलककोलाम्बुचुक्रिकादाडिमस्य च ।
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः ॥ ८६ ॥
काञ्जिकेन च तत्पक्वमग्निदीप्तिकरं परम् ।
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ॥ ८७ ॥
सबीजपूरकरसं सिद्धं वा पाययेद्घृतम् ।
सिद्धमभ्यञ्जनार्थञ्च तैलमेतैः प्रयोजयेत् ॥ ८८ ॥

बेलगिरि, अरणी, सोनापाठा, कुंभेर, पाटला, हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग और कचूर, इन सबका कल्क एक सेर घी, चार सेर बिजौरेका रस चार सेर अदरखका रस, चार सेर सूखीमूली, बेर, नेत्रवाला, चूका और अनार इन सबका क्काथ चार सेर, तक्र चार सेर तथा दहीका जल, सुरामण्ड, सौवीरक और तुषोदक यह प्रत्येक एक एक सेर लेवे इन सबको मिलाकर विधिवत् पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे यह घृत अत्यंत अग्निवर्द्धक है तथा शूल, गुल्म, उदररोग, खांसी, श्वास और वात कफको नष्ट करनेवाला है। अथवा उपरोक्त संपूर्ण द्रव्योंके कल्क और केवल बिजौरेके रससे सिद्ध किया घृत भी इन्हीं गुणोंको करता है। और इन्ही पंचमूलादि द्रव्योंसे सिद्ध किया तैल मालिशके लिये परम हितकारी है८५-८८

एतेषामौषधानां वा पिबेच्चूर्णं सुखाम्बुना ।
वाते श्लेष्मावृते सामे कफे वा वायुनोद्धते ।
दद्याच्चूर्णं पाचनार्थमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ८९ ॥

अथवा उपरोक्त पंचमूलादिघृतकी औषधियोंका चूर्ण कर सुहाते गरम जलसे सेवन करे तो कफावृत वात, आमयुक्त कफ और वायुसे उद्धत हुआ कफ दूर होते हैं और इस चूर्णको अग्निसंदीपन और पाचनके लिये भी देना चाहिये ॥ ८९ ॥

साम और निराम मलकी परीक्षा ।

मज्जत्यामाद्गुरुत्वाद्विट् पक्वा तूत्प्लवते जले ।
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ ९० ॥

परीक्ष्यैवं पुरा सामं निरामं वा सदोषिणाम् ।
विधिनोपाचरेत्सम्यक् पाचनेनेतरेण वा ॥ ९१ ॥

आमयुक्त (कच्चा) मल होय तो भारी होनेसे जलमें डूब जाता है और पक्क मल जलमें डालनेसे ऊपर तिर आता है । पक्क मल भी अत्यन्त पतला, अतिगाढा, शीतल और कफदूषित होनेसे जलमें डूब जाता है इस प्रकार साम और निराम तथा दूषित मलकी परीक्षा करके विधिपूर्वक पाचन द्रव्योंसे अथवा अन्य प्रकार चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

चित्रकादि गुडिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
व्योषं हिंग्वजमोदाञ्च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ९२ ॥
गुडिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा ।
कृता विपाचयन्त्यामं दीपयन्त्याशु चानलम् ॥ ९३ ॥

चित्रक, पीपलामूल, जवाखार, सज्जीखार, पांचों लवण, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और चव्य इन सबको एकत्र कर चूर्ण करे । इस चूर्णको बिजौरेके रसमें अथवा खट्टे अनारके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे इन गोलियोंको सेवन करनेसे आमका पाचन होकर अग्नि चैतन्य होती है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

नागरातिविषामुस्तक्काथः स्यादामपाचनः ।
मुस्तान्तकल्कः पथ्या वा नागरञ्चोष्णवारिणा ॥ ९४ ॥

सोंठ, अतीस और नागरमोथेका क्काथ बनाकर पीनेसे आमका पाचन होता है । अथवा इन तीनों द्रव्योंका कल्क गरम जलके साथ पीनेसे आम पचजाती है एवं हरडका चूर्ण अथवा सोंठका चूर्ण गरम जलके साथ लेनेसे भी आम पचजातीहै ९४

अन्य पाचन योग ।

देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः ।
वारुण्यामासुतास्तोये कोष्णे वा लवणं पिबेत् ॥ ९५ ॥
पिबेत्सपरिकर्त्तीने मले वा दाडिमाम्बुना ॥ ९६ ॥

देवदारु, बच, नागरमोथे, सोंठ, अतीस और हरड इनको वारुणीमद्यमें भिगो देवे। जब इनका सार मद्य ग्रहण कर ले तो इसको छानकर पीवे इससे आम पचकर निकल जाती है । अथवा इन्हीं देवदारु आदि औषधोंके चूर्णको थोडा सेंधानमक डाल गरम जलके साथ सेवन करनेसे भी आम पचकर नष्ट होजाती है और अग्नि चैतन्य होती

है । यदि आमके साथ परिकर्तिका अर्थात् कतरनेकीसी पीडा (पेचिश होती) हो तो देवदार्वादि चूर्णको अनारके रसके साथ पीवे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

विडेन लवणं पिष्टं बिल्वं चित्रकनागरम् ।
वर्चस्यामे सशूले च पिबेद्वा दाडिमाम्बुना ॥ ९७ ॥

बेलगिरि, चित्रक, सोंठ और विडनमक मिलाकर अनारके रस अथवा अनारके छिलकेके क्वाथके साथ पीवे तो शूलके साथ और आमयुक्त मल आना, आम पचकर शान्त होजाता है ॥ ९७ ॥

सामे वा सकफे वाते कोष्ठशूलकरे पिबेत् ।
कलिङ्गहिङ्ग्वतिविषावचासौवर्चलाभयाः ॥ ९८ ॥

यदि आम, कफ और वायुसे पेटमें पीडा होती हो तो इन्द्रयव, हींग, अतीश, वच, संचरनमक और हरडेका चूर्ण गरम जलके साथ पिलावे ॥ ९८ ॥

छर्द्यर्शोग्रन्थिशूलेषु पिबेदुष्णेन वारिणा ।
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णं मरिचसंयुतम् ॥ ९९ ॥

यदि छर्दी, बवासीर और गांठोंमें पीडा हो तो हरड, संचरनमक, जीरा और काली मिर्च चूर्णकर गरम जलके साथ पिलावे ॥ ९९ ॥

अभयादि चूर्ण ।

अभयां पिप्पलीमूलं वचां कटुकरोहिणीम् ।
पाठां वत्सकबीजानि चित्रकं विश्वभेषजम् ॥ १०० ॥
पिबेन्निष्क्वाथ्य चूर्णानि कृत्वा कोष्णेन वारिणा ।
पित्तश्लेष्माभिभूतायां ग्रहण्यां शूलनुद्धितम् ॥ १०१ ॥

हरड, पीपलामूल, वच, कुटकी, पाटला, इन्द्रयव, चित्रक, सोंठ इनका क्वाथ अथवा इनका चूर्णकर गरम जलके साथ पीवे तो पित्त और कफसे अभिभूत ग्रहणी रोगका शूल दूर होता है ॥ १०० ॥ १०१ ॥

सामे सातिविषाव्योषलवणक्षारहिङ्गुवत् ।
निःक्वाथ्य पाययेच्चूर्णं कृत्वा वा कोष्णवारिणा ॥ १०२ ॥

आमयुक्त पित्त और कफसे व्याप्त हुए ग्रहणीरोगमें त्रिकुटा, अतीस, सेंधानमक, जवाखार और हींग इन सबका चूर्ण क्वाथ करके पीवे अथवा चूर्णको फांककर ऊपरसे गरम जल पीवे तो आम पचकर अग्नि चैतन्य हो ॥ १०२ ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण।

पिप्पलीं नागरं पाठां शारिवां बृहतीद्वयम्।
चित्रकं कौटजं बीजं लवणान्यथ पञ्च च ॥ १०३ ॥
तच्चूर्णं सयवक्षारं दध्युष्णाम्बुसुरादिभिः।
पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थं कोष्ठवातहरं नरः ॥ १०४ ॥

पीपल, सोंठ, पाटला, शारिवा, बडी कटेली, छोटी कटेली, चित्रक, इन्द्रयव, पांचों लवण और जवाखार इनके चूर्णको दही अथवा गरम जल या सुरा आदिके साथ पीवे तो जठराग्निकी वृद्धि हो और कोष्ठकी वायु शान्त हो ॥ १०३ ॥ १०४॥

मरिचादि चूर्ण।

मरिचः कुञ्चिकाम्बष्ठा वृक्षाम्लाः कुडवाः पृथक्।
पलानि दश चाम्लस्य वेतसस्य पलार्द्धिकम् ॥ १०५ ॥
सौवर्चलं विडं पाक्यं यवक्षारः ससैन्धवः।
शटीपुष्करमूलानि हिङ्गु हिङ्गुशिराटिका ॥ १०६ ॥
तत्सर्वमेकतः सूक्ष्मं चूर्णं कृत्वा प्रयोजयेत्।
हितं वाताभिभूतायां ग्रहण्यामरुचौ तथा ॥ १०७ ॥

मिर्च, काला जीरा, पाटला और इमली यह प्रत्येक एक एक पाव, अम्लवेत ४० तोले, संचरनमक, विडनमक, पांसुनमक,जवाखार, सेंधानमक, कचूर, पोहकर-मूल, हींग, हिंगुपत्रिका यह सब दो दो तोला लेवे। इन सबको बारीक चूर्णकर लेवे। यह चूर्ण वातजग्रहणी और अरुचिको नष्ट करता है ॥ १०५–१०७ ॥

भोजनमें डालनेका चूर्ण।

चतुर्णां प्रस्थमम्लानां त्र्यूषणाच्च पलत्रयम्।
लवणानाञ्च चत्वारि शर्करायाः पलाष्टकम् ॥ १०८ ॥
संचूर्ण्य शाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत्।
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्ड्वामयगुल्मनुत् ॥ १०९ ॥

चार प्रकार[1]की खटाई एक प्रस्थ, पीपल, मिर्च, सोंठ तीन पल, विडनमक, संचर-नमक, सेंधानमक और उद्भिद नमक यह चारों नमक चार पल। मिसरी आठ पल इन सब चीजोंको एकत्र मिलाकर चूर्णकर किसी पात्रमें रक्खे। इसमेंसे थोडासा

---

१ इमली, अनार, अमलवेत्त और बिजौरा।

चूर्ण ले शाक, दाल, अन्न, राग आदिमें मिलाकर सेवन करनेसे खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयरोग, पाण्डुरोग और गुल्मरोग दूर होता है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

चव्यादि चूर्णयुक्त पंचविध यवागू।

चव्यत्वक्पिप्पलीमूलधातकीव्योषचित्रकम्।
कपित्थं बिल्वमम्बष्ठां शाल्मलं हस्तिपिप्पलीम् ॥ ११० ॥
शिलोद्भेदं तथाजाजीं पिष्ट्वा बदरभागिकम्।
परिभर्ज्य घृते दध्ना यवागूं साधयेद्भिषक् ॥ १११ ॥
रसैः कपित्थचुक्रीकावृक्षाम्लैर्दाडिमस्य च।
सर्वातिसारमन्दाग्निगुल्मार्शःप्लीहनाशिनी ॥ ११२ ॥

चव्य, दालचीनी, पीपलामूल, धावेके फूल, त्रिकुटा, चित्रक, कैथका गूदा, बेलगिरि, पाटला, गजपीपल, मोचरस, शिलापुष्प और जीरा इन सबको पीसकर चूर्ण करे। पहिले चूकेके रससे अथवा (दहीसे), या इमलीके रससे अथवा अनारके रसकी खटाईसे अम्ल कीहुई यवागूको घीमें छोंककर उसमें एक तोला उपरोक्त चव्यादिचूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारके अतिसार, ग्रहणीरोग, अर्शरोग और प्लीहा यह सब नष्ट होते हैं ॥ ११०–११२ ॥

भोजनार्थ यूषादि।

पञ्चकोलकयूषश्च मूलकानाञ्च सोषणः।
स्निग्धो दाडिमतक्राम्लो जाङ्गलः संस्कृतो रसः ॥ ११३ ॥
क्रव्यादस्वरसः शस्तो भोजनार्थे सदीपनः।
तक्रारनालमद्यानि पानार्थेऽरिष्ट एव च ॥ ११४ ॥

पंचकोलका चूर्ण डालकर सिद्ध किया मूंगका यूष, काली मिर्चयुक्त सूखी मूलीका यूष, तक्रकी खटाई या अनारकी खटाईसे अम्ल कियाहुआ जंगली जीवोंका मांसरस अथवा मांसाहारी जीवोंका मांसरस भातके साथ खिलावे और पीनेके लिये तक्र, कांजी, मद्य तथा आसवका प्रयोग करना हितकारी है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

तक्रके गुण।

तक्रं तु ग्रहणीदोषे दीपनग्राहिलाघवात्।
श्रेष्ठं मधुरपाकित्वान्न च पित्तं प्रकोपयेत् ॥ ११५ ॥
कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे मतम्।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत् ॥ ११६ ॥

तस्मात्तक्रप्रयोगा ये जठराणां तथार्शसाम् ।
विहिता ग्रहणीदोषे सर्वशस्तान् प्रयोजयेत् ॥ ११७ ॥

तक्र दीपन, ग्राही और हलका होनेसे ग्रहणी रोगमें हितकारक है । यह मधुर-पाकी होनेसे पित्तको कुपित नहीं होने देता । स्वादु, अम्ल और सान्द्र होनेसे वायुको शान्त करता है । एवं कषाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होनेसे कफमें भी हितकारक है । वह तक्र ताजा बनाहुआ होनेसे अविदाही होता है । इसीलिये तक्रको उदररोगोंमें अर्शरोगमें और ग्रहणीविकारमें सब प्रकार प्रयुक्त करना हितकारक है ११९-११७

तक्रारिष्ट ।

यमान्यामलके पथ्या मरिचं त्रिपलांशिकम् ।
लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ११८ ॥
तक्रकं सास्रुतं जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नरः ।
दीपनं शोथगुल्मार्शःक्रिमिमेहोदरापहम् ॥ ११९ ॥

अजवायन, आँवले, हरड और काली मिर्च यह प्रत्येक तीन तीन पल लेवे । पांचों लवण एक एक पल लेवे । इन सबको चूर्णकर आठसेर तक्रमें डाल और बन्दकर रखदेवे । छः दिनके बाद निकालकर सेवनकरनेसे सूजन, गुल्म, बवासीर, कृमिरोग, मेदरोग और उदररोग यह सब दूर होते हैं । यह तक्रारिष्ट अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

पित्तज ग्रहणीकी चिकित्सा ।

स्वस्थानगतमुत्क्लिष्टमग्निनिर्वापकं भिषक् ।
पित्तं ज्ञात्वा विरेकेण निर्हरेद्वमनेन वा ॥ १२० ॥
अविदाहिभिरन्नैश्च लघुभिस्तिक्तसंयुतैः ।
जाङ्गलानां रसैर्यूषैर्मुद्गादीनां खडैरपि ॥ १२१ ॥
दाडिमाम्लैः ससर्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः ।
तस्याग्निं दीपयेच्चूर्णैः सर्पिर्भिर्वा सतिक्तकैः ॥ १२२ ॥

जठराग्निको बुझानेवाला पित्त अपने स्थान (ग्रहणी) में उत्क्लेशित हुआ प्रतीत हो तो विरेचनद्वारा निकाल देना चाहिये । अथवा वमनद्वारा निकाल देवे । फिर अविदाही और हलके अन्न तथा तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए जांगलजीवोंके मांस-रस वा मूंग आदिका यूष दाडिमकी खटाईसे अम्ल करके घृतयुक्तकर सेवन करावे

तथा दीपन और संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और अग्निसंदीपक चूर्ण और तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत सेवन कराता हुआ अग्निको चैतन्य करे ॥ १२०-१२२ ॥

चन्दनादिघृत ।

चन्दनं पद्मकोशीरं पाठां मूर्वां कुटन्नटम् ।
षड्ग्रन्थाशारिवास्फोतासप्तपर्णाटरूषकान् ॥ १२३ ॥
पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षकपीतनान् ।
कटुकं रोहिणीं मुस्तं निम्बञ्च द्विपलांशिकम् ॥ १२४ ॥
द्रोणेऽपां साधयेत्पादशेषे प्रस्थं घृतात्पचेत् ।
किराततिक्तेन्द्रयववीरामागधिकोत्पलैः ॥ १२५ ॥
कल्कैरक्षसमैः पेयं तत्पित्तग्रहणीगदे ।
तिक्तकं यद्घृतञ्चोक्तं कौष्ठिके तच्च दापयेत् ॥ १२६ ॥

रक्तचन्दन, पद्माक, खस, पाठा, मूर्वा, केवटीमोथा, वच, सारिवा, अपराजिता, सप्तपर्ण, अडूसा, पटोल, गुल्लड, पीपल, बड, पिलखन, अंबाडा, आमला, नागरमोथा और नीमकी छाल ये प्रत्येक दो दो पल लेवे। इनको कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे, घृत एक प्रस्थ लेवें; चिरायता, इन्द्रयव, शालपर्णी, पीपल और नीलोफर यह प्रत्येक दो दो पल लेकर कल्क करे । यह कल्क, क्वाथ, घृत सब मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे । घृतमात्र शेषरहनेपर उतारकर छानले । यह घृत पित्तजग्रहणीरोगकी शान्तिके लिये पान करना चाहिये। तथा कुष्ठाधिकारमें कहाहुआ तिक्तक घृत भी पित्तकी ग्रहणीमें हितकारक हैं॥ १२३-१२६ ॥

नागरादि चूर्ण।

नागरातिविषे मुस्तं धातकीं सरसाञ्जनम् ।
वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥ १२७ ॥
पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ १२८ ॥
अर्शांसि च गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ।
नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ १२९ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धावेके फूल, रसौत, कुडाकी छाल, बेलगिरि, पाटल, और कुटकी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे इस चूर्णको शहत और तण्डुल

जलके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीमें रक्तका आना, खूनीबवासीर, गुदाकी पीडा, प्रवाहिका यह सब दूर होते हैं। इस नागरादि चूर्णको कृष्णात्रेयजीने श्रेष्ठ माना है ॥ १२७-१२९ ॥

भूनिम्बादि चूर्ण।

भूनिम्बं कटुकं व्योषं मुस्तमिन्द्रयवान् समान् ।
द्वौ चित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत् ॥ १३० ॥
गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् ।
कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥ १३१ ॥

चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, नागरमोथा और इन्द्रयव इन सबको एक एक भाग लेवे । चित्रककी छाल दो भाग लेवे । कुडाकी छाल १६ भाग लेवे। इन सबको मिला बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पीवे तो पित्तकी ग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार यह सब नष्ट होते हैं ॥ १३० ॥ १३१ ॥

वचादि चूर्ण।

वचामतिविषां पाठां सप्तपर्णं रसाञ्जनम् ।
शोणाकोदीच्यकट्वङ्गवत्सकत्वग्दुरालभा ॥ १३२ ॥
दार्वीं पर्पटकं मूर्वां यमानीं मधुशिग्रुकम् ।
पटोलपत्रं सिद्धार्थान् यूथिकं जातिपल्लवान् ॥ १३३ ॥
जम्ब्वाम्रबिल्वमध्यानि निम्बशाकफलानि च।
तद्रोगशममन्विच्छन् भूनिम्बाद्येन योजयेत् ॥ १३४ ॥

वच, अतीस, पाटला, सप्तपर्ण, रसौत, श्योनाक, नेत्रवाला, कट्वंग (श्योनाक) कुडाकी छाल, जवासा, दारुहलदी, पित्तपापडा, मूर्वा, अजवायन, मीठा सोहांजना, पटोलपत्र, सफेद सरसों, जूहीके पत्र, चमेलीके पत्र, जामनकी गुठली, आमकी गुठली, बेलकी गिरी, नीमके पत्ते और निबोलियां इन सबका बारीक चूर्णकर सेवन करनेसे भूनिम्बादि चूर्णके समान गुण होता है अथवा इस चूर्णको भूनिम्बादि चूर्णमें मिलाकर सेवन कियाजाय तो अधिक गुण होता है ॥ १३२-१३४ ॥

किरातादि चूर्ण।

किराततिक्तं षड्ग्रन्था त्रायमाणा कटुत्रिकम् ।
चन्दनं पद्मकोशीरं दार्वीत्वक् कटुरोहिणी ॥ १३५ ॥

कुटजत्वक्फलं मुस्तं यमानी देवदारु च ।
पटोलनिम्बपत्रैलासौराष्ट्रातिविषात्वचः ॥ १३६ ॥
मधुशिग्रोश्च बीजानि मूर्वापर्पटकांस्तथा ।
तच्चूर्णं मधुना लेह्यं पेयं मद्यैर्जलेन वा ॥ १३७ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगगुल्मशूलारुचिज्वरान् ।
कामलां सन्निपातञ्च मुखरोगांश्च नाशयेत् ॥ १३८ ॥

चिरायता, वच, त्रायमाण, त्रिकुटा, चन्दन, पद्माक, खस, दारुहलदीकी छाल, कुटकी, कुडाकी छाल, इन्द्रयव, नागरमोथा, अजवायन, देवदारु, पटोल, नीमके पत्र, इलायची, सौराष्ट्रदेशकी मिट्टी, अतीश, दालचीनी, मीठे सुहांजनेके बीज, मूर्वा और पित्तपापडाके चूर्णको शहत मिलाकर चाटे या मद्य अथवा जलके साथ पीनेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, गुल्मरोग, शूल, अरुचि, ज्वर, कामला, सन्निपात और मुखरोग दूर होते हैं ॥ १३५–१३८ ॥

कफजनित ग्रहणीकी चिकित्सा।

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां वमितस्य यथाविधि ।
कट्वम्ललवणक्षारैस्तिक्तैश्चाग्निं विवर्द्धयेत् ॥ १३९ ॥

कफसे दूषित ग्रहणीमें रोगीको विधिपूर्वक वमन कराना चाहिये। उसके अनन्तर कटु, अम्ल, लवण, क्षार और तिक्त द्रव्योंके प्रयोगसे अग्निको चैतन्य करे ॥ १३९ ॥

पलाशं चित्रकं चव्यं मातुलुङ्गं हरीतकीम् ।
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं पाठां नागरधान्यकम् ॥ १४० ॥
कार्षिकाण्युदकप्रस्थे पक्त्वा पादावशेषितम् ।
पानीयार्थं प्रयुञ्जीत यवागूं तैश्च साधिताम् ॥ १४१ ॥

पलाश, चित्रक, चव्य, बिजौरा, हरड, पीपल, पीपलामूल, पाटला, सोंठ, धनियां यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानले। यह क्वाथ कफकी संग्रहणीमें पीनेके लिये देना चाहिये। अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध की हुई यवागू कफकी संग्रहणीमें देना हितकारक है ॥१४०॥१४१

शुष्कमूलकयूषेण कौलत्थेनाथवा पुनः ।
कट्वम्लक्षारपटुना लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥ १४२ ॥
अम्लं चानुपिबेत्तक्रं तक्रारिष्टमथापि वा ।
मदिरां मध्वरिष्टान् वा निगदं शीधुमेव वा ॥ १४३ ॥

गोलमिर्च आदि तीक्ष्ण द्रव्योंसे, बिजौरा आदि अम्ल द्रव्योंसे, जवाखार आदि क्षार द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ सूखी मूलीका यूष अथवा कुल्थीके यूषके साथ हलके अन्नका भोजन करावे। और पीनेके लिये खट्टी छाछ, तक्रारिष्ट, मद्य अथवा मध्वारिष्ट, या निगद अथवा शीधुका प्रयोग करे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

मध्वासव।

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडङ्गानां ततोऽर्द्धतः।
चित्रकस्य ततोऽर्द्धं स्यात् तथा भल्लातकाढकम् ॥ १४४ ॥
मञ्जिष्ठा त्रिपलञ्चैव त्रिद्रोणेऽपां विपाचयेत्।
द्रोणशेषे तु तच्छीतं मध्वर्द्धाढकसंयुतम् ॥ १४५ ॥
एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेन च रूषिते।
कुम्भे मासस्थितं जातमासवं तं प्रयोजयेत् ॥ १४६ ॥
ग्रहणीं दीपयत्येष बृंहणः कफपित्तजित्।
शोथं कुष्ठं किलासञ्च प्रमेहांश्च प्रणाशयेत् ॥ १४७ ॥

महुएके फूल (पकेहुए महुए) एक द्रोण, वायविडंग आधा द्रोण (दो आढक), चित्रक एक आढक, भिलावे एक आढक, मजीठ तीन पल इन सबको तीन द्रोण पानीमें पकावे। जब एक द्रोण शेष रहे तो उसको उतारकर ठण्डा करे। फिर इसमें आधा आढक शहद मिलावे। फिर अगर, छोटी इलायची, खस और लालचंदनके कल्कसे लेप किये हुए घृतके घडेमें भरकर विधिवत् बन्दकर एक महीनेतक रक्खा रहने देवे। महीनेके बाद छानकर किसी उत्तम पात्रमें भरे इसमेंसे मात्रानुसार पीवे तो ग्रहणीरोग दूर हो, शरीर पुष्ट हो, कफ और पित्त नष्ट हो और अग्नि चैतन्य हो। इस मध्वासवके सेवनसे शोथ, कुष्ठ, किलास और प्रमेह यह सब नष्ट होतेहैं १४४-१४७

द्वितीय मध्वासव।

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमर्द्धक्षयीकृतम्।
क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्सन्निधापयेत्।
तं पिबन् ग्रहणीदोषाञ्जयेत्सर्वान् हिताशनः ॥ १४८ ॥

महुएके फूलोंका स्वरस लेकर पकावे जब आधा बाकी रहे तो उतारकर शीतल करे। इसमें चौथा भाग शहत मिलाकर पहिलेके समान इलायची, खस, अगर आदिसे लिपे हुए चिकने घडेमें भरकर, बन्दकर एक महीना रक्खे। फिर उचित मात्रासे इस मध्वासवको पीकर हित आहारका भोजन करता रहे तो सब प्रकारके ग्रहणीविकार दूर होकर अग्नि और बलकी वृद्धि होती है ॥ १४८ ॥

तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानाशुतान्पिबेत् ॥ १४९ ॥

इसी प्रकार द्राक्षा, ईख और खजूरके स्वरसोंका आसव बनाकर पीवे तो वह भी उपरोक्त गुणोंको करते हैं ॥ १४९ ॥

दुरालभाद्यासव।

प्रस्थौ दुरालभाया द्वौ प्रस्थमामलकस्य च।
मुष्टी चित्रकदन्त्योर्द्वे प्रत्यग्रं चाभयाशतम् ॥ १५० ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा शीतं द्रोणावशेषितम्।
सगुडद्विशतं पूतं मधुनः कुडवायुतम् ॥ १५१ ॥
तद्वत्प्रियङ्गोः पिप्पल्या विडङ्गानाञ्च चूर्णितैः।
कुडवैर्घृतकुम्भस्थं पक्षाज्जातं ततः पिबेत् ॥ १५२ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठवीसर्पमेहनुत्।
स्वरवर्णकरश्चैष रक्तपित्तकफापहः ॥ १५३ ॥

जवासा दो प्रस्थ, आँवले दो प्रस्थ, चित्तेकी जडकी छाल और दन्ती यह दोनों दो दो पल, उत्तम पकीहुई चोंचदार मोटी हरडें १०० लेवे। इन सबको चार द्रोण पानीमें पकावे। एक द्रोण बाकी रहनेपर उतारकर ठण्ढा करे। फिर इसमें गुड २०० पल शहद एक कुडव मिलावे। तथा फूलप्रियंगु, पीपल, वायविडंग एक एक कुडव लेकर इनका चूर्ण बना उसीमें मिलावे। फिर इसको किसी घीके चिकने घडेमें भरकर बन्दकर १५ दिन तक रक्खे फिर छानकर किसी उत्तम घडेमें भरलेवे। इसके सेवनसे ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, बवासीर, कुष्ठरोग, विसर्प, प्रमेह, रक्तपित्त और कफ यह सब दूर होते हैं तथा स्वर और वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १५०-१५३ ॥

मूलासव।

हरिद्रा पञ्चमूले द्वे वीरकर्षभजीवकम्।
एषां पञ्चपलान् भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १५४ ॥
द्रोणशेषे रसे पूते गुडस्य द्विशतं भिषक्।
चूर्णितान् कुडवार्द्धांशान् प्रक्षिपेच्च समाक्षिकान् ॥ १५५ ॥
प्रियङ्गुमुस्तमञ्जिष्ठाविडङ्गमधुकप्लवान्।
लोध्रं शावरकञ्चैव मासार्द्धं स्थापयेत्ततः ॥ १५६ ॥
एष मूलासवः सिद्धो दीपनो रक्तपित्तजित्।

आनाहकफहृद्रोगपाण्डुरोगाङ्गसादनुत् ॥ १५७ ॥

हलदी, दशमूलकी दश औषधियें, क्षीरकाकोली, ऋषभक और जीवक इन १४ औषधियोंको पांच पांच पल लेवे। सबको कूटकर चार द्रोण पानीमें पकावे। जब एक द्रोण शेष रहे तो उतारकर छान ले। ठण्ढा होनेपर २०० पल गुड मिलावे। और शहत एक कुडव मिलावे। फिर प्रियंगु, नागरमोथा, मजीठ, बायबिडंग, मुलैठी, केवटीमोथा, पठानीलोध यह सब आधा आधा कुडव लेकर बारीक चूर्ण करे। यह चूर्ण उपरोक्त द्रव्योंमें ही मिलादेवे। फिर इसको किसी घृतके चिकने घडेमें भरकर १९ दिन पर्यंत बन्दकर रख देवे। फिर इसको छानकर उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे। यह मूलासव परम सिद्धयोग है। यह दीपन है। तथा रक्तपित्त,अफारा, कफ, हृद्रोग, पाण्डुरोग और अंगसाद इन सब रोगोंको दूर करता है॥ १५४-१५७ ॥

पिंडासव।

प्रास्थिकं पिप्पलीं पिष्ट्वा गुडं मध्यं विभीतकात्।
उदकप्रस्थसंयुक्तं यवपल्ले निधापयेत् ॥ १५८ ॥
तस्मात्पलं सुजातात्तु सलिलाञ्जलिसंयुतम्।
पिबेत्पिण्डासवो ह्येष रोगानीकविनाशनः ॥ १५९ ॥
स्वस्थोऽप्येनं पिबेन्मासं नरः सिद्धं रसायनम्।
इच्छंस्तेषामनुत्पत्तिं रोगाणां ये प्रकीर्त्तिताः ॥ १६० ॥

पीपल एक प्रस्थ लेकर बारीक पीस लेवे। गुड एक प्रस्थ और बहेडे एक प्रस्थ इन सबको मिला एकजीव करे। इसमें एक प्रस्थ पानी मिलावे फिर इसको किसी चिकने पात्रमें भरकर किसी यवके ढेर या भूसेमें गाडकर एक महीने रक्खा रहने दे फिर इसको निकालकर छानलेवे। इसमेंसे एक पल आसव लेकर एक पाव जलमें मिलाकर पीवे तो यह पिण्डासव संपूर्ण रोगोंको नष्ट करता है। इस रसायन अरिष्टको आरोग्ययुक्त मनुष्य भी पीवे तो उसके शरीरमें किसी प्रकारके रोग उत्पन्न नहीं होते ॥ १५८-१६० ॥

मध्वरिष्ट।

नवे पिप्पलिमध्वाक्ते कलशेऽगुरुधूपिते।
मध्वाढकं जलसमं चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १६१ ॥
कुडवार्द्धं विडङ्गानां पिप्पल्याः कुडवं तथा।
चतुर्थकांशान् त्वक्क्षीर्य्याः केशरं मरिचानि च ॥ १६२ ॥

त्वगेला पत्रकशटी क्रमुकातिविषा घनम्।
हरेण्वेलुकतेजोह्वापिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ १६३ ॥
कार्षिकांस्तान्स्थितं मासमत ऊर्द्ध्वं प्रयोजयेत्।
मन्दं सन्दीपयत्यग्निं करोति विषमं समम् ॥ १६४ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगकुष्ठार्शःश्वयथुज्वरान्।
वातश्लेष्मामयांश्चान्यान् मध्वरिष्टो व्यपोहति ॥ १६५ ॥

एक नया मट्टीका घडा लेकर उसके भीतर पीपल और शहदका लेप करके अगरकी धूनी देवे। फिर इस घडेमें शहद एक आढक, पानी एक आढक, बायबिडंगका चूर्ण आधा कुडव, पीपल एक कुडव, वंशलोचन एक पल और नागकेशर, मिर्च, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, कचूर, सुपारी, अतीस, रेणुका, एलवालुक, चव्य, पीपलामूल, चित्रक इन सबको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करे। यह चूर्ण भी उपरोक्त शहदवाले घडेमें मिलादेवे। इस घडेको विधिवत् बन्दकर एक महीना पर्यन्त रक्खा रहने दे। फिर छानकर किसी उत्तम पात्रमें भरे। यह मध्वरिष्ट विधिवत् सेवन कियाजाय तो मन्दाग्निको चैतन्य करता है और विषमाग्निको समाग्नि बनाता है। तथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीविकार, कुष्ठ, अर्श, सूजन, ज्वर, वात और कफके रोग और इसी प्रकारके अन्य भी सब रोगोंको दूर करता है ॥ १६१-१६५ ॥

पिप्पलीमूलादि चूर्ण।

समूलां पिप्पलीं क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च।
मातुलुङ्गाभयारास्नाशटीमरिचनागरम् ॥ १६६ ॥
कृत्वा समांशं तच्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना।
श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १६७ ॥

पीपलामूल, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, पांचों लवण, बिजौरा, हरड, रासना, कचूर, मिर्च और सोंठ इन सबको बराबर लेकर चूर्णकर नित्य प्रातःकाल गर्मजलके साथ सेवन करनेसे कफजनित ग्रहणीविकार दूर होकर बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

घृत।

एतैरेवौषधैः सिद्धं सर्पिः पेयं समारुते।
गौल्मिके षट्पलं प्रोक्तं भल्लातकघृतञ्च यत् ॥ १६८ ॥

इस उपरोक्त पिप्पली मूलादि चूर्णकी संपूर्ण औषधियोंके कल्कसे सिद्ध किया-

हुआ घृत वातयुक्त कफजनित संग्रहणीमें पिलाना चाहिये। तथा गुल्मरोगमें कहा-हुआ षट्पलघृत और भल्लातक घृत भी वातयुक्त कफकी संग्रहणीमें हितकारक है १६८

क्षारघृत।

विडं कालोत्थलवणं सर्जिका यवशूकजम्।
सप्तला कण्टकारी च चित्रकश्चेति दाहयेत्॥ १६९॥
सप्तकृत्वः स्रुतस्यास्य क्षारस्य द्व्याढकेन तु।
आढकं सर्पिषः पक्त्वा पिबेदग्निविवर्द्धनम्॥ १७०॥

विडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, सातलाकी भस्म और कटेलीकी भस्म और चित्रककी भस्म मिलाकर इन तीनों भस्मोंको दो आढक पानीमें घोलकर उस पानीको कपडेमें डालकर टपकावे। इस प्रकार उस पानीको सात बार कपडेसे छानले। फिर उपरोक्त लवण और खार तथा यह जल मिलाकर एक आढक घृत सिद्ध करे। इस घृतको सेवन करनेसे अग्नि चैतन्य होकर कफजनित ग्रहणीविकार दूर होता है॥ १६९॥ १७०॥

पिप्पलीमूलादि क्षार।

समूलां पिप्पलीं पाठां चव्येन्द्रयवनागरम्।
चित्रकातिविषे हिङ्गुश्वदंष्ट्रां कटुरोहिणीम्॥ १७१॥
वचाञ्च कार्षिकं पञ्चलवणानां पलानि च।
दध्नः प्रस्थद्वये तैलसर्पिषोः कुडवद्वये॥ १७२॥
चूर्णीकृतानि निष्क्वाथ्य शनैरन्तर्गते रसे।
अन्तर्धूमं ततो दग्ध्वा चूर्णं कृत्वा घृताप्लुतम्॥ १७३॥
पिबेत्पाणितलं तस्मिञ्जीर्णे स्यान्मधुराशनः।
वातश्लेष्मामयान् सर्वान् हन्याद्विषगरांश्च सः॥ १७४॥

पीपलामूल, पीपल, पाटला, चव्य, इन्द्रयव, सोंठ, चित्रक, अतीस, हींग, गोखरू, कुटकी, वच इन सबको एक एक कर्ष लेवे। पांचों लवण पांच पल लेवै। दही एक प्रस्थ, तेल एक कुडव, घृत एक कुडव, पहिले उपरोक्त औषधियोंके बारीक चूर्णको दही, घृत और तेलमें मिलाकर आगपर पकावे। जब देखे कि दहीका पानी जल-चुका है, तब इसको इस प्रकार बन्द करदेवे जिससे बाहर धूआं न निकलने पावे। और भीतर ही भीतर सब द्रव्योंकी जलकर भस्म होजावे। इस भस्मको बारीक पीसकर एक कर्ष प्रमाण नित्य लेकर घृतमें मिला पीवे और भूख लगनेपर मधुर

भोजनका सेवन करे तो वात और कफसे उत्पन्न हुए संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं और विष तथा गरविकार शान्त होते हैं ॥ १७१-१७४ ॥

भल्लातकादिक्षार ।

भल्लातकं त्रिकटुकं त्रिफलां लवणत्रिकम् ।
अन्तर्धूमं द्विपलिकं गोपुरीषाग्निना दहेत् ॥ १७५ ॥
सक्षारः सर्पिषा पीतो भोज्यो वाप्यवचूर्णितः ।
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त्तशूलंनुत् ॥ १७६ ॥

भिलावे, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडे, आमले, सेंधानमक, संचरनमक और विडनमक इनको दो दो पल लेकर चूर्ण करे इस चूर्णको संपुटमें बन्दकर जंगली उपलोंकी अग्निमें फूंक देवे । स्वांग शीतल होनेपर इस भस्मको उचितमात्रासे घृतमें मिला पीवे अथवा भोजनके पदार्थोंमें मिला सेवन करे तो हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी-विकार, गुल्म, उदावर्त और शूलको नष्ट करता है ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

दुरालभादि क्षार ।

दुरालभां करञ्जौ द्वौ सप्तपर्णं सवत्सकम् ।
षड्ग्रन्थां मदनं मूर्वां पाठामारग्वधं तथा ॥ १७७ ॥
गोमूत्रेण समांशानि कृत्वा चूर्णानि दाहयेत् ।
दग्ध्वा च तं पिबेत्क्षारं ग्रहणीबलवर्द्धनम् ॥ १७८ ॥

जवासा, लताकरंज, करंजवृक्ष, सप्तपर्ण, कुडाकी छाल, वच, मैनफल, मूर्वा, पाटला और अमलतास इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको गोमूत्रमें घोटकर अन्तर्धूम्र (विधिसे संपुटकर) भस्म करे इस भस्मको विधिवत् सेवन करे तो ग्रहणीविकार दूर हो, बलकी वृद्धि होती है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

भूनिम्बादि क्षार ।

भूनिम्बं रोहिणीं तिक्तां पटोलं निम्बपर्पटम् ।
दहेन्माहिषमूत्रेण सार एषोऽग्निवर्द्धनः ॥ १७९ ॥

चिरायता, कुटकी, पटोल, निम्ब और पित्तपापडा इनके चूर्णको भैंसके मूत्रमें खरलकर संपुटमें फूक देवे । यह भस्म उचित मात्रासे सेवन कीजाय तो जठराग्निको बढाती है ॥ १७९ ॥

---

१ शोपनुत् इति पाठान्तरम् ।

हरिद्रादि क्षार।

द्वे हरिद्रे वचा कुष्ठं चित्रकः कटुरोहिणी।

मुस्तञ्च बस्तमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्द्धनः॥ १८०॥

हल्दी, दारुहल्दी, वच, कूट, चित्रक कुटकी और नागरमोथा इन सबके चूर्णको बराबर ले बकरीके मूत्रमें घोटकर संपुटमें फूक देवे। स्वांग शीतल होनेपर निकालले यह क्षार अत्यंत अग्निको चैतन्य करनेवाला है॥ १८०॥

क्षारगुटिका।

चतुष्पलं सुधाकाण्डात् त्रिपलं लवणत्रयात्।

वार्त्ताकीकुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले॥ १८१॥

दग्धानि वार्ताकुरसे गुलिका भोजनोत्तराः।

भुक्तं भुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिताः।

विषूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः॥ १८२॥

वज्री थोहरके ऊपरऊपरके टुकडे चार पल, सेंधानमक एक पल, संचरनमक एक पल, सांभरनमक एक पल, बडी कटेलाके फल एक कुडव, आककी जड आठ पल, चित्रक दो पल इन सबका बारीक चूर्ण कर अन्तर्धूम रीतिसे भस्म करे। फिर इसको बडी कटेलीके फलोंके रसकी भावना देकर गोली चार चार रत्तीकी[1] बनालेवे। इसमेंसे एक गोली भोजन करनेके अनन्तर नित्य खायाकरे तो यह भोजनको शीघ्र पचा देती है। तथा खांसी, श्वास, अर्श, विषूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोगको शमन करनेवाली है॥ १८१॥ १८२॥

वत्सकादि क्षार।

वत्सकातिविषे पाठां दुःस्पर्शं हिङ्गु चित्रकम्।

चूर्णीकृत्य पलाशानां क्षारे मूत्रस्रुते पचेत्॥ १८३॥

आयसे भाजने सान्द्रात्तस्मात्कोलं सुखाम्बुना।

मद्यैर्वा ग्रहणीदोषे शोथार्शःपाण्डुमान्पिबेत्॥ १८४॥

कुडेकी छाल, अतीश, पाटला, जवासा, हींग और चित्रक इनके चूर्णको गोमूत्रसे सिद्धकिये पलाशके क्षारमें डालकर लोहेकी कडाहीमें पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय तो उतारकर बेरके समान गोलियें बनालेवे। एक गोली नित्य गरम जलके साथ अथवा मद्यके साथ सेवन करे तो ग्रहणी विकार, सूजन, अर्श और पाण्डुरोग यह सब शान्त होते हैं॥ १८३॥ १८४॥

---

१ कोई एक तोलाकी गोली मानते हैं।

त्रिफलादि क्षार।

त्रिफलां कटभीं चव्यं बिल्वमध्यमयोरजः ।
रोहिणीं कटुकां मुस्तं कुष्ठं पाठाञ्च हिङ्गु च ॥ १८५ ॥
मधुकं मुष्ककयवक्षारौ त्रिकटुकं वचाम्।
विडङ्गं पिप्पलीमूलं स्वर्जिकां निम्बचित्रकौ ॥ १८६ ॥
मूर्वाजमोदेन्द्रयवान् गुडूचीं देवदारु च ।
कार्षिकं लवणानाञ्च पञ्चानां पलिकान्पृथक् ॥ १८७ ॥
भागान्दध्नि त्रिकुडवे घृततैलेन मूर्च्छितान् ।
अन्तर्धूमं शनैर्दग्ध्वा तस्मात्पाणितलं पिबेत् ।
सर्पिषा कफवातार्शोग्रहणीपाण्डुरोगवान् ॥ १८८ ॥
प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिक्काकासक्रिमिज्वरान् ।
शोषातिसारौ श्वयथुं प्रमेहानाहहृद्ग्रहान् ॥ १८९ ॥
हन्यात्सर्वविषञ्चैव क्षारोऽग्निजननो वरः ।
जीर्णे रसैर्वा मधुरैरन्नं स्यात्पयसापि वा ॥१९० ॥

त्रिफला, कटभी, चव्य, लोहचूर्ण (लोहभस्म) कुटकी, नागरमोथा, कूठ, पाटला, हींग, मुलैठी, मुष्कक (मोखावृक्ष), जवाखार, त्रिकुटा, वच, बायविडंग, पीपलामूल, सज्जीखार, नीमका छिलका, चित्रक, मूर्वा, अजमोद, इन्द्रयव, गिलोय और देवदारु यह सब एकएक कर्ष लेवे । पांचों लवण,एकएक पल लेवे। दही तीन कुडव, घृत और तेल एकएक कुडव, उपरोक्त औषधियोंके चूर्णको दही, घृत और तेलमें मिलाकर कडाहीमें रख आगपर चढा देवे । जब दहीका पानी जलकर धूम निकलने लगे तो ऊपरसे किसी पात्र द्वारा ढक देवे । जिससे धूम बाहर न निकलने पावे और नीचेसे तीक्ष्ण आंच देवे जिससे वह सब द्रव्य जलकर भस्म होजावे। सर्वांग शीतल होनेपर निकाल कर इस क्षारमेंसे एक कर्ष लेकर घृतमें मिला पीवे तो कफ, वायु, अर्शरोग, ग्रहणी, पाण्डु, प्लीहा, मूत्रकृच्छ्र, श्वास, हिचकी, कृमि, ज्वर, शोष, अतिसार, सूजन, प्रमेह, अफारा, हृद्रोग और सब प्रकारके विषदोष नष्ट होते हैं। तथा जठराग्निकी वृद्धि होती है। औषध जीर्ण होनेपर क्षुधा लगे तब मधुर रसोंसे अथवा दूधके साथ अन्न (भात) का सेवन करे ॥ १८५-१९० ॥

त्रिदोषज ग्रहणीकी चिकित्सा।

त्रिदोषे विधिवैद्यः पञ्चकर्माणि कारयेत् ।
घृतक्षारासवारिष्टान् दद्याच्चाग्निविवर्द्धनान् ॥ १९१ ॥

सन्निपातकी संग्रहणीमें चतुर वैद्य पंचकर्मद्वारा दोषोंका शोधन करे तथा अग्निको चैतन्य करनेवाले घृत, क्षार, आसव और अरिष्टोंका सेवन करावे ॥ १९१ ॥

क्रिया या चानिलादीनां निर्दिष्टा ग्रहणीं प्रति।
व्यत्यासात्तां समस्तांश्च कुर्य्याद्दोषविशेषवित् ॥ १९२ ॥

वातादिजनित ग्रहणियोंमें जो अलग अलग चिकित्सा कथन की हैं,मिलेहुए दोषोंमें दोषकी विशेषता देखकर उसी दोषकी प्रबलताको शान्त करनेके लिये उन्हीं औषधियोंको कम ज्यादे कर दोषोंकी विशेषताको जाननेवाला वैद्य प्रयोग करे ॥ १९२ ॥

स्नेहनं स्वेदनं शुद्धिर्लङ्घनं दीपनञ्च यत् ।
चूर्णानि लवणक्षारमध्वरिष्टसुरासवाः ॥ १९३ ॥
विविधास्तक्रयोगाश्च दीपनानाञ्च सर्पिषाम् ।
ग्रहणीरोगिभिः सेव्याः क्रियाश्चावस्थिकीं शृणु ॥ १९४ ॥

त्रिदोषज ग्रहणीविकारमें स्नेहन, स्वेदन, शोधन, लंघन, दीपन, चूर्ण, लवण, क्षार, मध्वरिष्ट, सुरा, आसव और अनेक प्रकारके तक्र तथा दीपन घृतोंकी दोषोंकी न्यूनाधिकता, अवस्थाविशेष विचारकर क्रिया विशेष करनी चाहिये सो अब उस अवस्थानुरूप क्रियाका ही वर्णन करते हैं सो श्रवण करो ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

ष्ठीवनं श्लैष्मिके रूक्षं दीपनं तिक्तसंयुतम् ।
सकृद्रूक्षं सकृत्स्निग्धं कृशे बहुकफे हितम् ।
परीक्ष्यामं शरीरस्य दीपनं स्नेहसंयुतम् ॥ १९५ ॥
दीपनं बहु पित्तस्य तिक्तं मधुरसंयुतम् ॥ १९६ ॥

कफप्रबल त्रिदोषज ग्रहणीमें रूक्ष, दीपन और तिक्त द्रव्योंके क्राथको पीकर अथवा मुखमें धारण कर कफको थूक देवे । और कफकी अधिकता होनेपर भी यदि रोगी अधिक कृश हो तो एक बार रूक्ष और एक बार स्निग्ध इस प्रकार वारबार क्रिया करनी चाहिये । जब देखे कि कफ क्षीण होगया तो स्नेहयुक्त दीपन औषधियोंका प्रयोग करे । पित्तप्रधान त्रिदोषज ग्रहणीमें तिक्त और मधुर द्रव्योंसे संयुक्त दीपन औषधियोंद्वारा चिकित्सा करे ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

बहुवातस्य तु स्नेहलवणाम्लयुतं हितम् ।
सन्धुक्षति यदा वह्निः परेषां विधिनेन्धनैः ॥ १९७ ॥

वातप्रधान त्रिदोषज ग्रहणीमें स्नेह, लवण और अम्ल द्रव्योंसे युक्त दीपनीय चिकित्सा करना हितकारी है । जैसे–विधिवत् ईंधनके लगानेसे अग्नि प्रज्वलित होती

है उसी प्रकार ग्रहणीविकारमें विधिपूर्वक दीपनीय औषधियोंका प्रयोग करनेसे जठराग्नि संदीपन होती है ॥ १९७ ॥

स्नेहमेव परं विद्याद् दुर्बलानलदीपनम् ।
नालं स्नेहसमिद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि ॥ १९८ ॥

त्रिदोषज ग्रहणीवाला रोगी यदि दुर्बल हो तो उसके लिये दीपन औषधियोंसे सिद्ध किये स्नेह ही परम उपकारी है। स्नेहके सेवनसे चैतन्य हुई जठराग्निको भारी भोजन कियाहुआ भी शमन नहीं कर सकता ॥ १९८ ॥

मन्दाग्निरपि पक्वन्तु पुरीषं योऽतिसार्य्यते ।
दीपनीयौषधैर्युक्तां घृतमात्रां पिबेत्तु सः ॥ १९९ ॥
तया समानः पवनः प्रसन्नो मार्गमाश्रितः ।
अग्नेः समीपचारित्वादाशु प्रकुरुते बलम् ॥ २०० ॥

जिस रोगीकी अग्नि मन्द हो और पक्व मल अधिक निकालताहो तो उसको दीपन द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृतका उचित मात्रासे सेवन कराना चाहिये। इस प्रकार दीपन घृतद्वारा अग्नि चैतन्य करनेसे समानवायु स्वच्छ होकर अपने मार्गमें यथोचित कार्य करने लगती है और जठराग्निके बलको बढाती है ॥ १९९॥२००॥

अग्निसंदीपनविधि ।

काठिन्याद्यः पुरीषन्तु कृच्छ्रान्मुञ्चति मानवः ।
सघृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्नावग्रहं पिबेत् ॥ २०१ ॥
रौक्ष्यान्मन्दे पिबेत्सर्पिस्तैलं वा दीपनैर्युतम् ।
अतिस्नेहात्तु मन्देऽग्नौ चूर्णारिष्टासवा हिताः ॥ २०२ ॥

ग्रहणीरोगमें मल कठोर होजाय तो रोगी बडे कष्टसे मलका त्याग करता है। उस रोगीको सेंधानमकयुक्त अन्नके साथ पाचनघृत देना चाहिये, यदि ग्रहणी रोगमें रूक्षताके कारण अग्नि मन्द पडजाय तो दीपन औषधियोंसे सिद्ध किया घृत या तैल पिलाना चाहिये और अतिस्निग्धतासे अग्नि मन्द होजाय तो दीपन चूर्ण, अरिष्ट और आसवोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

भिन्ने गुदेऽवलेहास्तु विडतैलसुरासवाः ।
उदावर्त्तात्तु मन्देऽग्नौ निरूहाः स्नेहबस्तयः ॥ २०३ ॥

---

१ "अविपक्वं" ऐसा मूल होनेसे विना पका मल निकलना ऐसा अर्थ हो सकता है परन्तु अधिक पुस्तकोंमें "अपि पक्वं" ही पाठ है ।

यदि मलभेदके कारण गुदा फटजाय अथवा बाहरको निकलने लगे तो अवलेह विडलवणादिसे सिद्धकिया तैल, सुरा और आसवोंका प्रयोग करना चाहिये। यदि उदावर्त होनेसे अग्नि मन्द होजाय तो निरूहण और स्नेहवस्ति करना चाहिये२०३॥

दोषवृद्ध्या तु मन्देऽग्नौ शुद्धो दोषविधिं चरेत्।
व्याधियुक्तस्य मन्दे तु सर्पिरेवाग्निदीपनम्॥ २०४॥

दोषोंकी वृद्धिके कारण यदि मन्द अग्नि होजाय तो वमन और विरेचनद्वारा दोषोंको निकाल देना चाहिये। यदि किसी रोगके कारण अग्नि मन्द होगई हो तो सन्दीपन औषधियोंसे सिद्ध किये घृतोंका सेवन करना चाहिये॥ २०४॥

उपवासाच्च मन्देऽग्नौ यवागूभिः पिबेद् घृतम्।
अन्नावपीडिते चाल्रं दीपनं बृंहणञ्च तत्॥ २०५॥

उपवासके करनेसे यदि अग्नि मन्द होजाय तो संदीपन घृत मिलाकर यवागू पिलावे। अन्नके पीडनसे उत्पन्न हुई मन्दाग्निमें भी संदीपन घृतयुक्त यवागू ही दीपन और बृंहण होती है॥ २०५॥

दीर्घकालप्रसङ्गात्तु कामक्षीणकृशान्नरान्।
प्रसहानां रसैः साम्लैर्भोजयेत्पिशिताशिनाम्॥ २०६॥
लघुतीक्ष्णोष्णशोधित्वाद्दीपयन्त्याशु तेऽनलम्।
मांसोपचितमांसत्वात्तथाशुतरबृंहणाः॥ २०७॥

यदि बहुत कालसे रोग रहनेके कारण शरीर कृश होगयाहो और वह रोगी मांसका आहार करनेवाला हो तो उसको प्रसहजीवोंका मांसरस अनारकी खटाईसे अम्ल-कर देना हितकारी है। क्योंकि वह मांसरस हलके, तीक्ष्ण, गरम और दोषोंके शोधन करनेवाले होनेसे जठराग्निको शीघ्र संदीपन कर देते हैं और प्रसह (मांसाहारी) जीवोंका मांस, मांसद्वारा उपचित होनेके कारण शीघ्र शरीरको पुष्ट करनेवाला होता है॥ २०६॥ २०७॥

नाभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नातिभोजनात्।
यथा निरिन्धनो वह्निरल्पो वातीन्धनावृतः॥२०८॥

जैसे—ईंधनके विना अथवा अत्यंत ईंधन डालदेनेसे अल्प अग्नि प्रज्वलित नहीं होती उसी प्रकार बिलकुल भोजन न करनेसे अथवा अधिक भोजनका भार पडजानेसे जठराग्नि भी प्रदीप्त नहीं रहसकती॥ २०८॥

स्नेहान्नविधिभिश्चित्रैश्चूर्णारिष्टसुरासवैः।
प्रयुक्तैर्भिषजा सम्यग्बलमग्नेः प्रवर्द्धते॥ २०९॥

नाना प्रकारके स्नेह, अन्न, चूर्ण, अरिष्ट, सुरा और आसवोंका विधिपूर्वक प्रयोग करनेसे जठराग्निका बल बढता है ॥ २०९ ॥

जठराग्निकी समता और विषमताके गुण दोष।

यथा हि सारदार्वग्निः स्थिरः सन्तिष्ठते चिरम्।
स्नेहान्नविधिभिस्तद्वदन्तरग्निर्भवेत्स्थिरः ॥ २१० ॥
हितं जीर्णे मितञ्चाश्नंश्चिरमारोग्यमश्नुते।
अवैषम्येन धातूनामग्निवृद्धौ यतेत वा ॥ २११ ॥

जैसे—पक्की बलवान् काष्ठकी अग्नि बहुत देरतक स्थिर भावसे रहसकती है उसी प्रकार स्नेह अन्नको विधिवत् भोजन करनेसे जठराग्नि स्थिर और बलवान् रहसकती है। क्योंकि पहिला किया भोजन जीर्ण होजानेके उपरांत हित और प्रमाणका भोजन करनेसे मनुष्य आरोग्यताका लाभ उठा सकता है। इसलिये जिस प्रकार धातुओंमें विषमता न हो उस प्रकार अग्निवृद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ २१०॥ २११॥

समैर्दोषैः समो मध्ये देहस्योष्माऽग्निसंस्थितः।
पचत्यन्नं तदारोग्यपुष्ट्यायुर्बलवृद्धये ॥ २१२ ॥
दोषैर्मन्दोऽतिवृद्धो वा विषमैर्जनयेद्गदान्।
पाच्यं मन्दस्य तत्रोक्तमतिवृद्धस्य वक्ष्यते ॥ २१३ ॥

मनुष्योंके शरीरमें वातादि दोषोंकी साम्यावस्था रहनेसे ही पाचकाग्नि भी साम्यावस्थामें रहती है। जठराग्निकी साम्यावस्था रहनेसे ही अन्नका यथोचित परिपाक होकर ही मनुष्योंकी आयु, आरोग्यता, पुष्टि और बलकी वृद्धि होती है। इसी प्रकार दोषोंकी विषमता होनेसे अग्नि मन्द या अति तीक्ष्ण होकर अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करती है। मन्दाग्निकी चिकित्सा, औषध आदि कहचुके हैं। अब अति बढीहुई अग्निकी चिकित्सा वर्णन करते हैं॥ २१२ ॥ २१३ ॥

भस्मकाग्निनिदान।

नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम्।
स्वोष्मणा पावकस्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति ॥ २१४ ॥
तथा लब्धबलो देहे विरूक्षे सानिलोऽनलः।
परिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः ॥ २१५॥
पक्त्वान्नं सततं धातूञ्छोणितादीन् पचत्यपि।
ततो दौर्बल्यमातङ्कान्मृत्युञ्चोपनयेन्नरम् ॥ २१६ ॥

भुक्तेऽन्ने लभते शान्तिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति ।
तृड्श्वासदाहमूर्च्छाद्या व्याधयोऽत्यग्निसम्भवाः ॥ २१७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें कफके क्षीण होनेसे पित्त वायुके साथ मिलकर अत्यंत कुपित होजाता है । तब अपनी गर्मीसे अग्निके स्थानमें प्राप्त होकर अग्निको अत्यंत बलवान् करता है । इस प्रकार कफरहित रूक्ष शरीरमें वायु सहित अग्नि बलवान् होकर अन्नको पराभव करती हुई अपनी तीक्ष्णतासे वारंवार जो भोजन किया जावे उसीको शीघ्र शीघ्र पाचन करती जाती है । पहिले जब अन्नका परिपाक होलेता है फिर वह अग्नि रक्तादिक धातुओंका परिपाक करने (जलाने) लगती है । इससे रोगीके शरीरमें दुर्बलता, अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करती है तथा मृत्युको प्राप्त कर देती है । इस भस्मक अग्निवाले रोगीको भोजन करते २ थोडी देर शान्ति प्रतीत होती है फिर अन्नके जीर्ण होनेपर कष्ट होने लगता है । इस अत्यन्त बढीहुई अग्निके कारण प्यास, श्वास, दाह और मूर्च्छादि अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ २१४-२१७ ॥

भस्मक अग्निकी चिकित्सा ।

तमत्यग्निं गुरुस्निग्धशीतैर्मधुरविज्जलैः ।
अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवाम्बुभिः ॥ २१८ ॥
मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत् ।
निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न विपादयेत् ॥ २१९ ॥

जिस प्रकार अत्यन्त जलती हुई अग्निमें जल डालकर उस अग्निको शान्त करते हैं उसी प्रकार इस भस्मक अग्निमें भी भारी, चिकने, मधुर, गाढे, शीतल और स्थिर पदार्थोंके भोजन द्वारा बढीहुई जठराग्निको शान्त करना चाहिये । इस रोगीको बारबार अजीर्ण अवस्थामें भी भारी पदार्थोंका भोजन देते रहना चाहिये । जिससे वह अग्नि अपने आहारको पचाकर अवकाश प्राप्त कर इस मनुष्यके शरीरको नष्ट करने न पावे ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

पायसं कृसरां स्निग्धं पैष्टिकं गुडवैकृतम् ।
अद्यात्तथौदकानूपपिशितानि घृतानि च ॥ २२० ॥
मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान्स्थिरतोयचरांस्तथा ।
आविकं सघृतं मांसमद्यादत्यग्निनाशनम् ॥ २२१ ॥

जबतक इस रोगीके शरीरमें यथोचित बल न आवे तबतक इसको घृतयुक्त खिचडी, खीर और हलुआ पूडी आदि मैदेके बने पदार्थ तथा मिठाई, पकान्न, जल-

संचारी और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, भारी द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत, मछलियें विशेषकर तलाव, पुष्करणी, स्थिर जलोंमें रहनेवाली मछलियें, भेडका घृत, मांस, मद्य आदि पदार्थ बढीहुई अग्निको शान्त करनेके लिये देता रहे ॥ २२० ॥ २२१ ॥

यवागूं समधूच्छिष्टां घृतं वा क्षुधितः पिबेत् ।
गोधूमचूर्णमन्थं वा व्यधयित्वा शिरां पिबेत् ॥ २२२ ॥

अथवा अत्यन्त क्षुधामें मधूच्छिष्ट (मोम या तण्डुलभेद) मिलाकर यवागू पीवे अथवा स्वच्छ घृतको पीवे अथवा ग्रहणीकी शिराको दहनी बाँहमेंसे वेधन कर रक्त निकाले फिर गेहूंका चूर्ण मिला मीठा मन्थ बना पीवे ॥ २२२ ॥

पयो वा शर्करां सर्पिर्जीवनीयौषधैः शृतम् ।
फलानां तैलयोनीनामुत्कुञ्चाश्च सशर्कराः ॥ २२३ ॥

अथवा घृत और मिसरी मिला दूध पीवे अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंसे मिला घृत पीवे । या जिन फलोंमेंसे तेल निकलता है (बादाम आदि) उनको कूटकर दूधमें मिला अथवा सर्वतके समान मिसरी और जलमें घोलकर पीवे ॥ २२३ ॥

मार्दवं जनयन्त्यग्नेः स्निग्धान् मांसरसांस्तथा ।
पिबेच्छीताम्बुना सर्पिर्मधूच्छिष्टेन वा युतम् ॥ २२४ ॥
गोधूमचूर्णं पयसा ससर्पिष्कं पिबेन्नरः ।
आनूपरससिद्धान्वा त्रीन्स्नेहांस्तैलवर्जितान् ॥ २२५ ॥
गोधूमचूर्णमन्थं वा व्यधयित्वा शिरां पिबेत् ।
पयसा संमिताञ्चापि घनां त्रिस्नेहसंयुताम् ॥ २२६ ॥
नारीस्तन्येन संयुक्तां पिबेदौदुम्बरीं त्वचम् ।
आभ्यां वा पायसं सिद्धमद्यादत्यग्निशान्तये ॥ २२७ ॥

स्निग्ध मांसरसोंका पीना भी जठराग्निको नर्म बनाता है अथवा शीतल जलमें सत्तु आदि घोलकर उसमें घी और मोम मिला पीवे या गेहूंका चूर्ण घृत मिला दूधमें घोलकर पीवे । अथवा अनूपसंचारी जीवोंका मांसरस, घृत, चर्बी और मज्जा मिलाकर पीवे अथवा पहले शिरावेधन कर फिर गेहूंके चूर्णका मंथ या गेहूंके चूर्णको दूधमें मिलाकर उसमें घृत और चर्बी (मज्जा) मिलाकर गाढा २ पीवे तो पित्त शान्त होकर अग्निभी शान्त होगी । या गूलरकी छाल स्त्रीके दूधमें घोलकर पीवे । अथवा स्त्रीके दूध और गूलरकी छालसे बनाई हुई खीर बढीहुई अग्निकी शान्तिके लिये सेवन करे ॥ २२४-२२७ ॥

भस्मकाग्निनाशक विरेचन।

श्यामात्रिवृद्विपक्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम्।
असकृत्पित्तशान्त्यर्थं पायसप्रतिभोजनम्।
प्रसमीक्ष्य भिषक्प्राज्ञस्तस्मै दद्याद्विधानवित् ॥ २२८ ॥

काली निशोथके चूर्णके साथ सिद्ध किया दूध पिलाकर विरेचन करावे और वह विरेचन कराकर पित्तकी शान्तिके लिये बारबार दूध और खीरका भोजन कराता रहै। सब विधिके जाननेवाला वैद्य यथोचित विचारकर ही विरेचनके अनन्तर पायसोंका सेवन करावे ॥ २२८ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरं मेध्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम्।
तदत्यग्निहितं सर्वं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ २२९ ॥

जितने प्रकारके भोजन मधुर, मेधाजनक, कफकारक और भारी हैं बढीहुई अग्निकी शान्तिके लिये उन भोजनोंका सेवन कर दिनमें सोजाना चाहिये ॥ २२९ ॥

मेध्यान्यन्नानि योऽत्यग्नावप्रशान्तः समश्नुते।
न तन्निमित्तं व्यसनं लभते पुष्टिमेव च ॥ २३० ॥
कफे वृद्धे जिते पित्ते मारुते चानलः समः।
समधातोः पचत्यन्नं पुष्ट्यायुर्बलवृद्धये। इति ॥ २३१ ॥

जो मनुष्य बढी हुई अग्निकी शान्तिके लिये मेधाजनक (घृत, मैदा आदि) अन्नोंको बारबार खाताजाता है वह भस्मकाग्निजन्य विकारोंको प्राप्त न होकर पुष्टिको प्राप्त होता है। जब इस प्रकार क्रिया करनेसे कफ बढजाय और वात, पित्त शान्त होकर जठराग्नि साम्यावस्थामें प्राप्त होजाती है तब दोषोंकी साम्यावस्था होनेसे अन्नका उत्तम परिपाक होकर पुष्टि, आयु और बलकी वृद्धि होती है ॥ २३० ॥ २३१ ॥

तीन प्रकारके भोजनोंको व्याधियोंकी कारणता।

भवन्ति चात्र—पथ्यापथ्यमिहैकत्र भुक्तं समशनं मतम्।
विषमं बहु वाऽल्पं वाप्यप्राप्तातीतकालयोः ॥ २३२ ॥
भुक्तं पूर्वान्नशेषे तु पुनरध्यशनं मतम्।
त्रीण्यप्येतानि मृत्युं वा घोरान् व्याधीन् सृजन्ति वा ॥ २३३ ॥

अब यहां कहते हैं कि पथ्य और अपथ्य दोनोंको एकत्र मिलाकर समशन कहते हैं। बहुत भोजन करना अथवा थोडा भोजन करना वा भोजनके समयसे प्रथम भोजन करना अथवा भोजनका समय व्यतीत होकर बहुतदेर होनेपर जो भोजन

किया जाय उसको विषमाशन कहते हैं। पहिला किया भोजन पचा न हो उसके ऊपर दुबारा भोजन करलेनेको अध्यशन कहते हैं। यह तीन प्रकारके भोजनही मनुष्योंकी मृत्युके कारण हैं। यदि मृत्यु न हो तो घोर व्याधियोंको तो अवश्य ही उत्पन्न करते हैं॥ २३२ ॥ २३३ ॥

प्रातः और सायंकालके भोजनमें विशेषता।

प्रातराशे त्वजीर्णेऽपि सायमाशो न दुष्यति।
दिवा प्रबुध्यतेऽर्केण हृदयं पुण्डरीकवत् ॥ २३४ ॥
तस्मिन्विबुद्धे स्रोतांसि स्फुटत्वं यान्ति सर्वशः।
व्यायामाच्च विचाराच्च विक्षिप्तत्वाच्च चेतसः ॥ २३५ ॥
उत्क्लेदमपगच्छन्ति दिवा तेनास्य धातवः।
अक्लिन्नेष्वन्नमासिक्तमन्यत्तेषु न दुष्यति।
अविदग्ध इव क्षीरे क्षीरमन्यद्विमिश्रितम् ॥ २३६ ॥

प्रातःकालके किये हुये भोजनके यथोचित परिपाक हुए विनाभी सायंकाल भोजन करनेमें विशेष हानि नहीं, क्योंकि, दिनमें सूर्यके तेजसे मनुष्यका हृदय कमलके समान खिलाहुआ रहता है, हृदयके विकसित रहनेसे शरीरके सब स्रोत खुले रहते हैं और दिनभर काम काज परिश्रमादि करते रहनेसे तथा घूमने फिरने और चित्तके इधर उधर चलायमान रहनेसे शरीरके सब धातु क्लेदको त्याग करते रहते हैं। इस लिये आहारसे उत्पन्न हुआ रस भी जैसे विना फटे सुंदर दूधमें और दूध मिलकर बिगडता नहीं है उसी प्रकार सायंकालके भोजनसे विकृत नहीं होता ॥ २३४-२३६ ॥

रात्रौ तु हृदये म्लाने संवृतेष्वयनेषु च।
यान्ति कोष्ठे च विक्लेदं संवृते देहधातवः ॥ २३७ ॥
क्लिन्नेष्वन्यदपक्वेषु तेष्वासिक्तं प्रदुष्यति।
विदग्धेषु पयःस्वन्यत्पयस्तप्तेष्विवार्पितम् ॥ २३८ ॥
नैशेष्वाहारजातेषु नाविपक्वेषु बुद्धिमान्।
तस्मादन्यत्समश्नीयात्पालयिष्यन् बलायुषी ॥ २३९ ॥

रातके समय हृदय मुचे हुये कमलके समान बन्द रहता है इसीलिये संपूर्ण देहके छिद्र भी बन्द रहते हैं और कोष्ठमें भी क्लेद जमा होजाता है तथा देहकी धातुएँ भी क्लेदसे भीगी रहती हैं इस प्रकार सबके क्लेदित होनेसे अजीर्ण आहार और मल दूषित होजाता है इसके ऊपर आहार करनेसे वह आहार भी इस प्रकार दूषित हो

जाता है जैसे फटेहुए दूधमें मिला हुआ अच्छा दूध भी विकृत होजाता है इस लिये रातके अजीर्णमें प्रातः काल भोजन नहीं करना चाहिये । बुद्धिमान् मनुष्य बल और आयुकी पालना करता हुआ इस विधिको विचारकर ही भोजनका सेवन करे२३७-२३९

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकाः—अन्तराग्निगुणो देहं यथा धारयते च सः ।
यथान्नं पच्यते यांश्च यथाहारः करोत्यपि ॥ २४० ॥
येऽग्नयो यांश्च पुष्यान्ति यावन्तो ये पचन्ति यान् ।
रसादीनां क्रमोत्पत्तिर्मलानां तेभ्य एव च ॥ २४१ ॥
तृष्णानामाशुकृद्धेतुर्धातुकालोद्भवक्रमः ।
रोगैकदेशकृद्धेतुरन्तराग्निर्यथाधिकः ॥ २४२ ॥
सन्दुष्यति यथा दुष्टो यान् रोगाञ्जनयत्यपि ।
ग्रहणी या यथावच्च ग्रहणीदोषलक्षणम् ॥ २४३ ॥
पूर्वरूपं पृथक्चैव व्यञ्जनं सचिकित्सितम् ।
चतुर्विधस्य निर्दिष्टं तथा चावस्थिकी क्रिया ॥ २४४॥
जायते च यथात्यग्निर्यच्च तस्य चिकित्सितम् ।
उक्तवानिह तत्सर्वं ग्रहणीदोषके मुनिः ॥ २४५ ॥

इति चरक० चिकि०ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं कि, इस ग्रहणीचिकित्सिताध्यायमें—जठराग्निके गुण, जठराग्निद्वारा देहके धारणका क्रम, अन्नपरिपाकाविधि, आहारकी क्रिया, अग्निके भेद,जिनको अग्नि पोषण करती है,जिनको जिस प्रकार पाचन करती है,रसादिक धातुओंकी क्रमसे उत्पत्ति, उन धातुओंसे मलोत्पत्ति, तृष्णाको आशुकारी, हेतुत्व, धातुओंकी उत्पत्ति, कालक्रम, जठराग्नि जिस प्रकार दुष्ट होनेसे रोगोंको करनेवाली होती है । जो ग्रहणी है, ग्रहणीका शब्दार्थ, दोषभेदसे ग्रहणीके लक्षण, पूर्वरूप, वातादिभेदसे पृच्छकता, ग्रहणीके लक्षण, चिकित्सा, चार प्रकारकी ग्रहणीकी अवस्थानुरूप क्रिया तथा जिस प्रकार अत्याग्नि (भस्मकाग्नि) होती है और उसकी चिकित्सा यह सब मुनि आत्रेयजीने कथन किया है ॥ २४०-२४५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः।



अथातः पाण्डुचिकित्सितं व्याख्यास्यामः। इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम पाण्डुचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

पाण्डुरोगके भेद।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः।
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

पाण्डुरोग पांच प्रकारका होता है जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे, तीन तो यह हुए। चौथा सन्निपातसे और पांचवां मट्टीके खानेसे ॥ १ ॥

पाण्डुरोगकी संप्राप्ति।

दोषाः पित्तप्रधानास्तु यस्य कुप्यन्ति धातुषु।
शैथिल्यं तस्य धातूनां गौरवञ्चोपजायते ॥ २ ॥
ततो वर्णबलस्नेहा ये चान्येऽप्योजसो गुणाः।
व्रजन्ति क्षयमत्यर्थं दोषदूष्यप्रदूषणात् ॥ ३ ॥
सोल्परक्तोऽल्पमेदस्को निःसारः शिथिलेन्द्रियः।
वैवर्ण्यं भजते तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥ ४ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें पित्त प्रधान दोष कुपित होकर धातुओंका आश्रय लेते हैं उसकी धातुओंमे शिथिलता और भारीपन होजाता है तब दोषोंद्वारा दूषित हुए रुधिर, मांस, त्वचा आदि दूष्योंके दूषणसे शरीरका वर्ण, बल, स्नेह तथा अन्य जो ओजके गुण हैं यह सब अत्यन्त क्षीण होजाते हैं तब उस रोगीका शरीर अल्परक्त और अल्पमेद होनेसे निस्सार होजाता है। सब इन्द्रियें शिथिल पडजाती हैं। उसके देहका वर्ण भी विकृत होजाता है। अब उसके हेतु और लक्षणोंको श्रवण करो २-४

पाण्डुरोगका निदान।

क्षाराम्ललवणात्युष्णविरुद्धासात्म्यभोजनात्।
निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ ५ ॥

---

१ यद्यपि मट्टीके खानेसे भी विना दोष कुपित हुए पाण्डु नहीं होता परन्तु मट्टीके खानेसे केवल पांडु ही विशेषरूपसे होता है इसलिये इसको पांचवां माना है।

विदग्धेऽन्ने दिवास्वप्नाद्व्यायामान्मैथुनात्तथा ।
प्रतिकर्मर्त्तुवैषम्याद्वेगानाञ्च विधारणात् ॥ ६ ॥
कामचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः ।
समुदीर्णं यथा पित्तं हृदयं समवस्थितम् ॥ ७ ॥
वायुना बलिनाक्षिप्तं स्रोतोभिर्दशभिः सृतम् ।
प्रपन्नं केवलं देहं त्वङ्मांसान्तरसाश्रितम् ॥ ८ ॥
प्रदूष्य कफवातासृक्त्वङ्मांसानि करोति तत् ।
वर्णान् हरितहारिद्रान् पाण्डून् बहुविधांस्त्वचि ॥ ९ ॥

क्षार, अम्ल, लवण, अति उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन करनेसे, निष्पाव, उडद, पिण्याक, तिलतैल आदिके अधिक खानेसे, भोजन किये आहारका विदग्ध, पाक होनेसे, दिनमें सोनेसे, अधिक व्यायाम करनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, वमन, विरेचनादि कर्मोंमें विषमता होजानेसे, मलमूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे तथा काम, चिन्ता, भय, क्रोध और शोकसे, अति व्याकुलचित्त होनेसे उदीर्ण हो हृदयमें स्थित हुआ पित्त बलवान् वायुके वेगसे फेंकाहुआ हृदयाश्रित दश धमनियोंमें प्राप्त हो संपूर्ण शरीरमें व्यापक होजाता है फिर त्वचा और मांसके मध्यमें प्राप्त हो कफ, वात, रक्त, त्वचा और मांसको दूषित करदेता है । तब त्वचाके वर्णको हरित और हल्दीके समान बनाकर अनेक प्रकारके पाण्डुरोगोंको प्रगट करता है ॥५-९॥

पाण्डुके पूर्वरूप ।

स पाण्डुरोग इत्युक्तस्तस्य लिङ्गं भविष्यतः ।
हृदयस्पन्दनं रौक्ष्यं स्वेदाभावः श्रमस्तथा ॥ १० ॥

इस प्रकार उत्पन्न होकर वह पाण्डुरोग कहाजाता है । उस पाण्डुरोगके उत्पन्न होनेसे पहिले यह लक्षण होते हैं । जैसे—हृदयका फडकना, शरीरमें रूक्षता, पसीनेका न आना और विना किसी परिश्रम किये भी शरीरमें अत्यन्त थकावटसी प्रतीत होना (मिट्टीखानेकी इच्छा होना) यह पाण्डुरोगके पूर्वरूप हैं ॥ १० ॥

पाण्डुरोगके सामान्य लक्षण ।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वः कर्णक्ष्वेडो हतानलः ।
दुर्बलः सदनोन्निद्रश्रमभ्रमनिपीडितः ॥ ११ ॥
गात्रशूलज्वरश्वासगौरवारुचिमान्नरः ।
मृदितैरिव गात्रैश्च पीडितोन्मथितैरिव ॥ १२ ॥

शूनाक्षिकूटो हरितः शीर्णलोमा हतप्रभः ।
कोपनः शिशिरद्वेषी निद्रालुः ष्ठीवनोऽल्पवाक् ॥ १३ ॥
पिण्डिकोद्वेष्टकट्यूरुपादरुक्सदनानि च ।
भवन्त्यारोहणायासैर्विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ १४ ॥

अब पाण्डुरोगके प्रगट होजानेपर जो सामान्य लक्षण होते हैं उनको कहते हैं। जैसे कर्णनाद (कानोंमें स्वयं शब्द होते रहना), मन्दाग्नि, दुर्बलता, अंगोंका सुन्नसा होना, निद्रानाश, भ्रम, श्रम, शरीरमें पीडन, ज्वर, श्वास, शरीरका भारी होना, अरुचि यह तथा जैसे किसीने शरीरको मृदित (मीडन) किया हो ऐसा प्रतीत होना अथवा जैसे शरीरको कोई मथित करता हो ऐसा प्रतीत होना, नेत्रगोलकोंपर सूजन होना, शरीरका वर्ण हल्दीके समान होजाना, रोमांच होना अथवा रोमोंका गिरजाना, शरीरकी कान्ति नष्ट होजाना और स्वभावका अत्यन्त क्रोधी होना, शीतल पदार्थोंसे द्वेष होना अथवा सर्दीसे द्वेष होना, सदैव निद्राकी इच्छा बनी रहना, मुखसे बारबार थूकते रहना, बहुत थोडा बोलना, दोनों पिण्डलियोंमें उद्वेष्टनसा होना, थोडा परिश्रम करनेपर अथवा चलने फिरने आदिसे विशेषकर कमर, ऊरुस्थल (जांघ) और पैरोंमें पीडा प्रतीत होना या उनका रहसा जाना यह लक्षण होते हैं। अब वातादिभेदसे लक्षणविशेषोंका कथन करते हैं ॥ ११-१४ ॥

वातज पाण्डुके हेतु लक्षण।

आहारैरुपचारैश्च वातलैः कुपितोऽनिलः ।
जनयेत्कृच्छ्रपाण्डुत्वं तथा रूक्षारुणाङ्गताम् ॥ १५ ॥
अङ्गमर्दं रुजं तोदं कम्पं पार्श्वशिरोरुजम् ।
शकृच्छोषास्यवैरस्यशोफानाहबलक्षयान् ॥ १६ ॥

वायुकारक आहार और उपचारोंके करनेसे वायु कुपित होकर त्वचाको काली, पीली, रूक्ष और लाल वर्णयुक्त बनाकर कष्टसाध्य पाण्डुरोगको उत्पन्न करती है। तब अंगमर्द, ज्वर, तोद, कम्प, पार्श्वपीडा, मस्तकपीडा, मलकी शुष्कता, मुखका विरस होना, सूजन, अफारा और बलक्षय यह लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

पित्तजपाण्डुके हेतु लक्षण।

पित्तलस्याचितं पित्तं यथोक्तैः स्वैः प्रकोपनैः ।
दूषयित्वा तु रक्तादीन् पाण्डुरोगाय कल्पते ॥ १७ ॥
स पीतो हरिताभो वा ज्वरदाहसमन्वितः ।
तृष्णामूर्च्छापरीतस्तु पीतमूत्रशकृन्नरः ॥ १८ ॥

स्वेदनः शीतकामश्च न चान्नमभिनन्दति।
कटुकास्यो न चास्योष्णमुपशेतेऽम्लमेव वा ॥ १९ ॥
उद्गारोऽम्लो विदाहश्च विदग्धेऽन्नेऽस्य जायते।
दौर्गन्ध्यं भिन्नवर्चस्त्वं दौर्बल्यं तम एव च ॥ २० ॥

पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें पित्तवर्द्धक आहारविहारके सेवनसे पित्त कुपित होकर रक्तादिकोंको दूषितकर पाण्डुरोगको उत्पन्न करता है। पित्तजनित पाण्डुरोग-वालेके शरीरका वर्ण पीला और हरित होजाता है। तथा ज्वर, दाह, प्यास और मूर्च्छासे रोगी व्याप्त होता है। मूत्र, मल, पीलेवर्णके होना, गर्मी प्रतीत होना, शीतल वस्तुओंपर इच्छा होना, अन्नपर अरुचि, मुखमें कडुआपन इसको खट्टी और गरम वस्तु अत्यंत हानिकारक होय, खट्टी डकार आना, अन्नका परिपाक होनेपर विदाह होना और अन्नका परिपाक भी खट्टा होना तथा शरीरमें दाहका होना, शरी-रसे दुर्गंध आना, मल पतला होना, शरीरमें दुर्बलता होना और अंधकारका प्रतीत होना ॥ १७-२० ॥

कफजपाण्डुके हेतु लक्षण।

विवृद्धैः श्लेष्मलैः श्लेष्मा पाण्डुरोगं स पूर्ववत्।
करोति गौरवं तन्द्रां छर्दिं श्वेतावभासताम् ॥ २१ ॥
प्रसेकं लोमहर्षञ्च सादं मूर्च्छां भ्रमं क्लमम्।
श्वासकासौ तथालस्यमरुचिं वाक्स्वरग्रहम् ॥ २२ ॥
शुक्लमूत्राक्षिवर्चस्त्वं कटुरूक्षोष्णकामता।
श्वयथुर्मधुरास्यत्वमिति पाण्ड्वामयः कफात् ॥ २३ ॥

कफवर्द्धक पदार्थोंके सेवनसे वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ पूर्ववत् रक्त आदिकोंको दूषितकर पाण्डुरोगको उत्पन्न करता है, तब उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे-शरीरमें भारीपन, तन्द्रा, वमन होना, शरीरका वर्ण सफेदसा प्रतीत होना, वारवार कफका थूकना, रोमाञ्च, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, श्वास, खांसी, आलस्य, अरुचि, वाणी और स्वरका रुकता जाना, मूत्र, नेत्र और मलका सफेद वर्ण होना, कडवे, रूक्ष और उष्ण पदार्थोंकी इच्छा होना शरीरपर अथवा मुखपर सूजन होना, मुखका मीठा स्वाद होना यह कफजनित पाण्डुरोगके लक्षण हैं ॥ २१-२३ ॥

सन्निपातज पांडुके लक्षण।

सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम्।
त्रिदोषलिङ्गं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम् ॥ २४ ॥

वातादि संपूर्ण दोषोंको कुपित करनेवाले आहार विहारके सेवन करनेसे कुपित हुए तीनों दोष संपूर्ण लक्षणोंवाले दुःसह पाण्डुरोगको उत्पन्न करते हैं। उसके तीनों दोषोंवाले लक्षण होते हैं ॥ २४ ॥

मृत्तिकाभक्षणजनित पाण्डु।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः।
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ २५ ॥
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं विरूक्षयेत्।
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्धि च ॥ २६ ॥
इन्द्रियाणां बलं तेज ओजो वीर्य्यं निहत्य च।
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ २७ ॥
शूनगण्डाक्षिकूटभ्रूनाभिपादाग्रमेहनः।
क्रिमिकोष्ठेऽतिसार्य्येत मलं सासृक् कफान्वितम् ॥ २८ ॥

मट्टी खानेवाले मनुष्यके शरीरमें तीनों दोषोंमेंसे कोई एक दोष कुपित होजाता है। जैसे–कसैली मट्टीके खानेसे वायु कुपित होता है। ऊपर मट्टीके खानेसे पित्त और मीठी मट्टीके खानेसे कफका कोप होता है। मट्टी रूक्ष होनेसे रसादि धातुओंको और भोजन किये हुए अन्नको रूक्ष करदेती हैं तथा विपाकको प्राप्त न होनेपर भी स्रोतोंको रोक देती है इसी कारण इन्द्रियोंका बल, तेज, वीर्य और ओज धातुको नष्ट करदेती है। तथा बल, वर्ण और अग्निको नष्ट कर पाण्डुरोगको उत्पन्न करती है। अथवा यों कहिये कि बल, वर्ण और अग्निको नष्ट करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न कर देती है। तब इस मनुष्यके यह लक्षण होते हैं जैसे–नेत्रगोलकोंपर सूजन, गण्डस्थल, भौंव, नाभि, पांवके आगे और शिश्नेन्द्रियपर सूजन होना, कोष्ठमें क्रिमियोंका होना अतिसार तथा अतिसारमें रक्त और कफका आना यह मृद्भक्षणजन्य पाण्डुके लक्षण होते हैं ॥ २५–२८ ॥

असाध्यपांडु।

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति।
कालप्रकर्षाच्छूनो ना यश्च पीतानि पश्यति ॥ २९ ॥
बद्धाल्पविट्कं सकफं हरितं योऽतिसार्य्यते।
दीनः श्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृषार्दितः ॥ ३० ॥

स नास्त्यसृक्क्षयाद्यश्च पाण्डुः श्वेतत्वमाप्नुयात्।
इति पञ्चविधस्योक्तं पाण्डुरोगस्य लक्षणम्॥ ३१॥

जो पांडुरोग बहुत दिनका पुराना होनेसे रोगीके शरीरमें कठोरता आजाय वह पांडुरोग असाध्य होता है। जो पांडुरोग पुराना हो और उसके कारण शरीरमें सूजन होगई हो, रोगीको समस्त पदार्थ पीले वर्णके दिखाई देतेहों वह भी असाध्य जानना। जिस पांडुरोगमें मल बंधाहुआ थोडा २ हरे वर्णका और कफयुक्त आताहो, रोगी दीन होगयाहो, शरीरका वर्ण सफेद होजाय, वमन, मूर्च्छा और तृषासे व्याकुल हो उस रोगीको मृत्युवश जानना। जिस पांडुरोगीका रक्तक्षय होकर शरीरका वर्ण श्वेत होजाय वह पुराना पांडुरोगी भी असाध्य जानना। इस प्रकार पांच प्रकारके पांडुरोगके लक्षणोंका कथन किया गया है॥ २९-३१॥

कामलाके लक्षण।

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते॥ ३२॥
हारिद्रनेत्रः सुभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः॥ ३३॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः।
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता॥ ३४॥

पांडुरोगी मनुष्यके अत्यंत पित्तकारक पदार्थोंके सेवनसे उस मनुष्यका पित्त बढकर रक्त और मांसको दग्ध करके कामलारोगको उत्पन्न करता है। तब उस मनुष्यके नेत्र हल्दीके समान पीले होजाते हैं और त्वचा, नख, मुख यह सब हल्दीके समान पीले होजाते हैं। और रक्त, मूत्र, मल यह सब पीले वर्णके होजाते हैं। तथा सम्पूर्ण इन्द्रियोंका शक्तिहीन होजाना, शरीरमें दाह, अन्नका परिपाक न होना, दुर्बलता, अंगोंका रहसाजाना, अरुचि, शरीरका कृश होना यह लक्षण होते हैं। यह कामलारोग अत्यन्त पित्तके बढनेसे होता है और कोष्ठ तथा शाखा (रक्तादि) में इसका आश्रयस्थान होता है॥ ३२-३४॥

कुम्भकामला और उसकी असाध्यता।

कालान्तरात्खरीभूतात्कृच्छ्रा स्यात् कुम्भकामला।
कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः॥ ३५॥
संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रो यश्च ताम्यति।

दाहारुचितृषानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ॥ ३६ ॥
प्रनष्टाग्निर्विसंज्ञश्च निर्यात्याशु स कामली ।
साध्यानामितरेषान्तु भेषजं सम्प्रवक्ष्यते ॥ ३७ ॥

यह कामला ही कालान्तरमें (बहुत दिनका पुराना) खरीभूत होकर कुम्भकामला नामसे उच्चारण किया जाता है। यह कष्टसाध्य होता है। जिस रोगीका मूत्र, मल और नेत्र काले और पीले हों सब अंगोंमें प्रगटरूपसे सूजन अथवा बहुत सूजन उत्पन्न होजाय या रोगीके नेत्र, मुख, छर्द, मल, मूत्र यह सब लालवर्णके होजांय और पीडायुक्त हों तथा दाह, अरुचि, प्यास, अफारा, तन्द्रा और मोह हों, अग्नि और संज्ञा नष्ट होजाय तो उस कामलारोगीको असाध्य जानना चाहिये। वह रोगी शीघ्र मृत्युवश होजाता है। अब साध्य पाण्डुरोगोंकी और कामलाकी औषधियोंका कथन करते हैं ॥ ३५-३७ ॥

पांडुरोगकी चिकित्सा।

तत्र पाण्ड्वामयी स्निग्धस्तीक्ष्णैरूर्द्ध्वानुलोमिकैः ।
संशोध्यो मृदुभिस्तिक्तैः कामली तु विरेचनैः ॥ ३८ ॥
ताभ्यां संशुद्धकोष्ठाभ्यां पथ्यान्यन्नानि दापयेत् ।
शालयो यवगोधूमपुराणा यूषसंस्कृताः ॥ ३९ ॥
मुद्गाढकमसूरैश्च जांगलैश्च रसैर्हिताः ।
यथादोषं विशिष्टञ्च तयोर्भैषज्यमाचरेत् ॥ ४० ॥

प्रथम पाण्डुरोगीको स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण वमन और विरेचन द्वारा शोधन करदेना चाहिये और कामला रोगीको स्निग्ध कर मृदु और तिक्त द्रव्योंसे विरेचन करावे। उन पांडु और कामला रोगियोंको शुद्धकोष्ठ होनेपर हलका और पथ्य अन्न भोजन करावे। जैसे-पुराने शालिचावल, पुराने यव, पुराने गेहूं और पुराने मूंग, अरहर तथा मसूर आदिका यूष, जंगली जीवोंके हितकारक मांसरस यह सब दोष विशेष विचारकर भोजनके लिये देवे तथा दोपानुसार विधिवत् औषधियोंका प्रयोग करे ॥ ३८-४० ॥

स्नेहनार्थ घृत।

पञ्चगव्यं महातिक्तं कल्याणकमथापि वा ।
स्नेहनार्थं घृतं दद्यात्कामलापाण्डुरोगिणे ॥ ४१ ॥

पाण्डुरोगी और कामलारोगीको स्नेहन करनेके लिये पंचगव्यघृत, महातिक्तके घृत और कल्याणघृत पिलाना चाहिये ॥ ४१ ॥

दाडिमादि घृत।

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्द्धपलं पलम्।
चित्रकाच्छृङ्गवेराच्च पिप्पल्यष्टमिका तथा ॥ ४२ ॥
तैः कल्कैर्विंशतिपलं घृतस्य सलिलाढके।
सिद्धं हृत्पाण्डुरोगार्शःप्लीहवातकफार्तिनुत् ॥ ४३ ॥
दीपनं श्वासकासघ्नं मूढवाते च शस्यते।
दुःखप्रसविनीनाञ्च वन्ध्यानाञ्चैव गर्भदम् ॥ ४४ ॥

दाडिमका छिलका एक कुडव, धनियां दो पल, चित्रक एक पल, अदरख एक पल, पीपल आधा पल इन सबको बारीक पीसकर कल्क बनावे। फिर यह कल्क बीस पल घृत और एक आढक जलमें मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस घृतके सेवन करनेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, अर्शरोग, प्लीहा और वातकफके रोग यह सब दूर होते हैं। यह घृत दीपन है और श्वास, कासको दूर करता है तथा मूढवातमें भी इसका प्रयोग करना हितकारी है। जिन स्त्रियोंको प्रसव अति कष्टसे होता हो उनको सुखपूर्वक प्रसव होने लगता है और यह घृत वन्ध्या स्त्रियोंके गर्भको करनेवाला है ॥ ४२–४४ ॥

कटुरोहिण्यादि घृत।

कटुका रोहिणी मुस्तं हरिद्रे वत्सकात्पलम्।
पटोलं चन्दनं मूर्वा त्रायमाणा दुरालभा ॥ ४५ ॥
कृष्णापर्पटको निम्बो भूनिंबो देवदारु च।
तैः कार्षिकैर्घृतप्रस्थः सिद्धः क्षीरचतुर्गुणः ॥ ४६ ॥
रक्तपित्तं ज्वरं दाहं श्वयथुं सभगन्दरम्।
अर्शांस्यसृग्दरञ्चैव हन्ति विस्फोटकांस्तथा ॥ ४७ ॥

कुटकी, नागरमोथा, हल्दी, दारुहलदी, इन्द्रयव, पटोलपत्र, लालचन्दन, मूर्वा, त्रायमाण, जवासा, पीपल, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता और देवदारु यह सब एक एक कर्ष लेवे। घी एक प्रस्थ, दूध चार प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस घृतके सेवनसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, सूजन, भगन्दर, बवासीर, रक्तप्रदर विस्फोटक और पाण्डु यह सब दूर होते हैं ४५–४७

पथ्यादि घृत।

पथ्याशतरसे पथ्यावृन्तार्द्धशतकल्कवान्।

प्रस्थः सिद्धो घृतात्पेयः सपाण्ड्वामयगुल्मनुत् ॥ ४८ ॥

उत्तम पकी हुई १०० पल हरडोंके क्वाथमें ५० पल हरडोंकी डण्डियोंका कल्क मिलाकर एक प्रस्थ घीको सिद्ध करे । यह घृत पाण्डुरोगको और गुल्मको दूर करता है ॥ ४८ ॥

दन्ती घृत ।

दन्त्याश्चतुष्पलरसे पिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः ।

तद्वत्प्रस्थो घृतात्सिद्धः प्लीहपाण्ड्वर्त्तिशोफजित् ॥ ४९ ॥

चार पल दन्तीके क्वाथमें एक पल कच्चे जमालगोटोंका कल्क बनाकर एक प्रस्थ घृतको सिद्ध करे । इस घृतको विधिवत् सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, शोथ और पाण्डुरोग दूर होता है ॥ ४९ ॥

द्राक्षाघृत ।

पुराणसर्पिषः प्रस्थो द्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ।

कामलागुल्मपाण्ड्वर्त्तिज्वरमेहोदरापहः ॥ ५० ॥

पुराना घी एक प्रस्थ, मुनक्काका कल्क आधा प्रस्थ, जल चार प्रस्थ इन सबको एकत्रकर सिद्ध किया घृत पीनेसे कामला, गुल्म, पाण्डुरोग, ज्वर, प्रमेह और उदर-रोग दूर होता है ॥ ५० ॥

हरिद्रादि घृत ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम् ।

सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

हल्दी, त्रिफला, नीमका छिलका, बला, मुलैठी इन सबका कल्क एक एक पल, भैंसका घृत एक सेर, भैंसका दूध चार सेर । सबको मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करे । यह घृत कामला रोगको हरनेमें परम उत्तम है ॥ ५१ ॥

स्नेहन घृत ।

गोमूत्रे द्विगुणे दार्व्याः कल्काक्षद्वयसाधितम् ।

दार्व्याः पञ्चपलक्वाथे कल्के कालीयके परः ॥ ५२ ॥

माहिषात्सर्पिषः प्रस्थः पूर्वः पूर्वे परे परः ।

स्नेहैरेभिरुपक्रम्य स्निग्धं मत्वा विरेचयेत् ॥ ५३ ॥

पयसा मूत्रयुक्तेन बहुशः केवलेन वा ॥ ५४ ॥

दारुहल्दीका कल्क दो तोला, भैंसका घृत४० तोला, गोमूत्र एक सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा दारुहल्दीका पांच पल क्काथ उसमें एक पल

अगरका कल्क मिलाकर भैंसका घृत एक प्रस्थ सिद्ध करे। इन दोनों प्रकारके घृतोंसे कामलारोगी अथवा पांडुरोगीको स्निग्ध करे। जब देखे कि भली प्रकार स्निग्ध होगया है तो दूधमें बहुतसा गोमूत्र मिलाकर अथवा केवल गोमूत्रही पिलाकर विरेचन करावे ॥ ५२–५४ ॥

अन्य योग।

दन्तीफलरसे कोष्णे काश्मर्य्याञ्जलिना शृतम्।
द्राक्षाञ्जलिं मृदित्वा वा दद्यात्पाण्ड्वामयापहम्।
द्विशर्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्द्धं पैत्तिकः पिबेत् ॥ ५५ ॥

पहाडी जमालगोटेके दो सेर गरम क्वाथमें २० तोला कुम्भेरके फलोंका कल्क मिलावे। अथवा २० तोला दाखका रस मिलावे। इसमेंसे मात्रानुसार क्वाथ पीनेसे दस्त होकर पांडुरोग नष्ट होजाता है। अथवा दुगुनी मिसरी मिला हुआ निशोथका चूर्ण दो तोला खाकर ऊपरसे जल पीवे तो विरेचन होकर पित्तका पांडुरोग दूर होता है ॥ ५५ ॥

कफपाण्डुस्तु गोमूत्रक्लिन्नयुक्तां हरीतकीम्।
आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्य्यामलकस्य च ॥ ५६ ॥

हरडको गोमूत्रमें भिगोकर गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफका पाण्डुरोग दूर होताहै। अथवा अम्लतासका गुदा, ईखके रसके साथ अथवा विदारीकंदके रसके साथ या आँवलेके रसमें घोलकर पीनेसे कफका पांडुरोग दूर होता है ॥ ५६ ॥

सत्र्यूषणं बिल्वपत्रं पिबेद्वा कामलापहम्।
दन्त्यर्द्धपलकल्कं वा द्विगुडं शीतवारिणा ॥ ५७ ॥
कामली त्रिवृतां वापि त्रिफलाया रसैः पिबेत्।
त्रिशालात्रिफलामुस्तकुष्ठदारुकलिङ्गकान् ॥ ५८ ॥
कार्षिकानर्द्धकर्षांशान् कुर्य्यादतिविषां तथा।
कर्षौ मधुरसाया द्वौ सर्वमेतत्सुखाम्बुना ॥ ५९ ॥
मृदितं तं रसं पूतं पीत्वा लिह्याच्च मध्वनु।
कासं श्वासं ज्वरं दाहं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ६० ॥
गुल्मानाहामवातांश्च रक्तपित्तञ्च नाशयेत् ॥ ६१ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ और बेलके पत्तोंका कल्क बनाकर शीतल जलके साथ पीनेसे अथवा आँवलेके रसके साथ पीनेसे कामलारोग दूर होता है। या दन्तीकी

जडका कल्क आधा पल लेकर एक पल गुडमें मिला शीतल जलके साथ सेवन करे तो विरेचन होकर कामलारोग दूर होजाता है। अथवा निशोथके कल्कको त्रिफलाके शीत कषायके साथ कामलारोगी पीवे तो विरेचन होकर कामला दूर हो। अथवा इन्द्रायणकी जड, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ, देवदारु, इन्द्रयव यह सब एक एक कर्ष लेवे और अतीस आधा कर्ष लेवे, मूर्वा दो कर्ष लेवे। सबका बारीक चूर्ण कर सुखोष्ण जलमें डालकर सायंकाल रखदेवे। प्रातःकाल मल छानकर पीवे। ऊपरसे थोडा शहद चाटे तो खांसी, श्वास, ज्वर, दाह, पांडुरोग, अरोचक, गुल्म, अफारा, आमवात और रक्तपित्त यह सब नष्ट होते हैं ॥ ५७–६१ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसम्।
शीतं मधुयुतं प्रातः कामलार्त्तः पिबेन्नरः ॥ ६२ ॥

त्रिफला अथवा गिलोय या दारुहल्दी अथवा नीमका छिलका इनमेंसे किसी एकको कूटकर शामको भिगोदेवे प्रातःकाल छानकर उसमें शहद मिला पीलेवे तो कामलारोग दूर होता है ॥ ६२ ॥

क्षीरमूत्रं पिबेत्पक्षं गव्यं माहिषमेव वा।
पाण्डुर्गोमूत्रसिद्धं वा सप्ताहं त्रिफलारसम्।
तरुजाञ्ज्वलितान् मूत्रे निर्वाप्यामृद्य चाङ्कुरान् ॥ ६३ ॥
मातुलुङ्गस्य तत्पूतं पाण्डुशोथहरं पिबेत्।
स्वर्णक्षीरीं त्रिवृच्छ्यामे भद्रदारु सनागरम् ॥ ६४ ॥
गोमूत्राञ्जलिना पिष्टं मूत्रे वा क्वथितं पिबेत्।
क्षीरमेभिः शृतं वापि पिबेद्दोषानुलोमनम् ॥ ६५ ॥

पांडुरोगी मनुष्य १५ दिनतक गोमूत्र अथवा भैंसका मूत्र दूधमें मिलाकर पीया करे। अथवा गोमूत्रमें सिद्ध किये त्रिफलाके रसको सात दिनपर्यन्त पीवे तो पांडुरोग दूर हो। अथवा बिजौरे वृक्षके अंकुरोंको आगमें जलाकर गोमूत्रमें बुझावे फिर उनको गोमूत्रमें ही घोटकर वस्त्रमें छानलेवे। उसके पीनेसे पांडुरोगकी सूजन दूर होती है। अथवा सत्यानाशीकी जड, कालीनिशोथ, देवदारु और सोंठ इनको पीस कर २० तोला गोमूत्रके साथ पीवे। अथवा इनको गोमूत्रमें क्वाथकर पीवे या इन्हीं द्रव्योंसे सिद्धकिये दूधोंको पीवे तो दोषोंका अनुलोमन होता है ॥ ६३–६५ ॥

हरीतकी प्रयोग।

हरीतकीं प्रयोगेण गोमूत्रेणाथवा पिबेत्।
जीर्णे क्षीरेण भुञ्जीत रसेन मधुरेण वा ॥ ६६ ॥

हरडको गोमूत्रमें भिगोकर अथवा गोमूत्रके साथ सेवन करे । जब मात्रा पचजाय तो भोजनके समय दूध अथवा मधुर रसके साथ शालिचावलोंका भोजन करे तो पाण्डुरोग शान्त होता है ॥ ६६ ॥

सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं वाप्ययोरजः ।
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा पाययेद्भिषक् ॥ ६७ ॥

अथवा लोहभस्मको सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देकर फिर उस भस्मको दो रत्ती प्रमाण नित्य दूधके साथ सेवन करावे तो पाण्डुरोग शान्त होता है ॥ ६७ ॥

नवायसचूर्ण ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकाः समाः ।
नवाऽयोरजसो भागास्तच्चूर्णं क्षौद्रसर्पिषा ॥ ६८ ॥
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् ।
नवायसमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ६९ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग और चित्रक इन सबको समभाग लेकर इन सबके बराबर लोहचूर्ण (लोहभस्म) मिलावे । इस चूर्णमेंसे एक माशा चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करे तो पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, बवासीर और कामला यह सब नष्ट होते हैं । इस नवायसचूर्णको कृष्णा-त्रेयजीने कथन किया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

गुडादिवटिका ।

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतः समान् ।
पिप्पलीद्विगुणां कुर्याद् गुटिकां पाण्डुरोगिणे ॥ ७० ॥

गुड, सोंठ, मण्डूरभस्म और तिल इन सबको एक एक भाग लेवे । पीपल दुगुनी लेवे । सबको मिलाकर गोलियें बनावें । इन गोलियोंके सेवनसे पाण्डुरोग दूर होता है ॥ ७० ॥

मंडूरवटक ।

त्रिफला त्र्यूषणं मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ।
दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिको देवदारु च ॥ ७१ ॥
एतान्द्विपलिकान् भागांश्चूर्णान् कुर्य्यात् पृथक्पृथक् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ७२ ॥
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्ततः ।

उदुम्बरसमान् कृत्वा वटकांस्तान् यथाग्निना ॥ ७३ ॥
उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ।
मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ७४ ॥
कुष्ठान्यजीर्णकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् ।
अर्शांसि कामलां मेहं प्लीहानं शमयन्ति च ॥ ७५ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, बायबिडंग, नागरमोथा, चव्य, चित्रक, दारुहल्दीकी छाल, सोनामक्खी, पिपलामूल और देवदारु इन सबको अलग दो दो पल लेकर चूर्ण करे। इन सबके चूर्णसे दोगुना शुद्ध अंजनके समान मण्डूरभस्म लेवे मण्डूरको ८ गुने गोमूत्रमें पकावे। जब पकते २ गाढा होजाय तो उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण भी इसीमें मिलाकर गूलर फलके समान गोलियें बनालेवे। इनमेंसे अग्निबल विचार-कर उचित मात्राके साथ नित्य छाछमें घोलकर पीवे। जब औषध जीर्ण होकर क्षुधा लगे तो तक्रके साथ हितकारी भोजन करे। यह मण्डूरवटक पाण्डुरोगियोंको प्राण-दायक है तथा कुष्ठ, अजीर्ण, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कफके विकार, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहरोग इन सबको शमन करता है ॥ ७१-७५ ॥

ताप्यादि चूर्ण।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाः पञ्चपलाः पृथक् ।
चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैः पालिकैः सह ॥ ७६ ॥
शर्कराष्टपलोन्मिश्राश्चूर्णिता मधुना प्लुताः ।
अभ्यस्यास्त्वक्षमात्रा हि जीर्णे नियमिताशिना ॥ ७७ ॥
कुलत्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा ॥ ७८ ॥

सोनामक्खी, शिलाजीत, रूपामक्खी और मण्डूर यह प्रत्येक पांच पांच पल लेवे। चित्रक, हरड, बहेडे, आँवले, सोंठ, मिर्च, पीपल और बायबिडंग यह सब एक एक पल लेवे और मिसरी ८ पल लेवे। इन सबको मिलाकर बारीक चूर्ण बनावे। इस चूर्णको शहदमें मिलाकर एक तोला नित्य सेवन कियाकरे। जब औषध जीर्ण होकर भूख लगे तो हल्का और पथ्य आहार मात्रानुसार सेवन करे तथा कुलथी, मकोय और कबूतरआदि गरम पदार्थोंको त्याग देवे ॥ ७६-७८ ॥

योगराज वटक।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च ।
भागाश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ।
पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च ॥ ७९ ॥

माक्षिकस्य च शुद्धस्य लोहस्य रजसस्तथा ।
अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ८० ॥
माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ।
उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्निना ॥ ८१ ॥
दिनेदिने प्रयुञ्जीत जीर्णे भोज्यं यदीप्सितम् ।
वर्जयित्वा कुलत्थानि काकमाचीकपोतकम् ॥ ८२ ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ॥ ८३ ॥
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ।
कुष्ठान्यजीर्णकं मेहं शोषं श्वासमरोचकम् ।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥ ८४ ॥

त्रिफला तीन भाग, त्रिकुटा तीन भाग, चित्रककी जड और बायबिडंग यह दोनों एक एक भाग, शिलाजीत पांच भाग तथा रूप्यमल (रूपामक्खी या चांदीवाले पहाडकी शिलाजीत) पांच भाग, शुद्ध सोनामक्खी पांच भाग, लोहरज (लोहभस्म) पांच भाग, मिसरी आठ भाग इन सबका बारीक चूर्ण कर शहदमें मिला स्वच्छ लोहके पात्रमें डालकर रखदेवे । इसमेंसे गूलरफलके समान अथवा अग्निबलानुसार नित्य प्रातःकाल सेवन करे । औषध जीर्ण हो क्षुधा लगनेपर इच्छानुसार पथ्य भोजन करे । परन्तु कुलथी, मकोय और कपोत आदि उष्ण द्रव्योंको त्यागदे । यह योगराज नामक योग अमृतके समान गुण करनेवाला है । यह श्रेष्ठ रसायन कल्याण-दायक और संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला है । तथा पाण्डुरोग, विषविकार, खांसी, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास, अरुचि इन सबको दूर करता है । विशेषकर अपस्मार, कामला और बवासीर आदि गुदाके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ७९-८४ ॥

शिलाजतु गुटिका ।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः ।
भावितानि दशाहानि रसैर्द्वित्रिगुणानि वा ॥ ८५ ॥
शिलाजतुपलान्यष्टौ तावतीं सितशर्कराम् ।
त्वक्क्षीरी पिप्पली धात्री कर्कटाख्या पलोन्मिता ॥ ८६ ॥

निदिग्धाः फलमूलाभ्यां पलं युक्त्या त्रिगन्धिकम् ।
चूर्णितं मधुरं कुर्य्यात् त्रिपलेनाक्षिकान् गुडान् ॥ ८७ ॥
दाडिमाम्बुपयःपाक्षिरसतोयसुरासवान् ।
पिबेत्तु भक्षयित्वा तान्निरन्नो भुक्त एव वा ॥ ८८ ॥
पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगन्दरान् ।
पूतिहृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरोदरान् ॥ ८९ ॥
कासासृग्दरपित्तासृक्शोथगुल्मगरामयान् ।
ते च सर्वव्रणान् हन्युः सर्वरोगहराः शिवाः ॥ ९० ॥

इन्द्रयव, त्रिफला, नीम, पटोलपत्र, नागरमोथा और सोंठ इन सबके क्काथमें दश दिन अथवा बीस दिन या तीस दिन तक शिलाजीतकी भावना देवे । फिर यह भावना शिलाजीत आठ पल, मिसरी आठ पल, वंशलोचन एक पल, पीपल एक पल, और काकडासिंगी एक पल,कटेलीके फल और जड दोनों मिलाकर एक पल, दालचीनी, इलायची और तेजपत्र यह तीनों मिलाकर एक पल, शहत, तीन पल इन सबको विधिवत् मिला एक एक तोलेकी गोली बना लेवे । इनमेंसे एक गोली अथवा अग्निबलानुसार भोजन करनेसे प्रथम अथवा भोजन करनेके अनन्तर सेवन करे। ऊपरसे अनारका रस अथवा दूध या पक्षियोंका मांसरस या केवल जल अथवा आसव पीवे । इसके सेवनसे पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहरोग, तमकश्वास, अर्शरोग, भगन्दर, पूतीदोष, हृद्रोग, वीर्यके दोष, मूत्ररोग,जठराग्निदोष, शोषरोग, विषविकार, उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, सूजन, गुल्म, गरविकार, (दूषीविष) यह सब रोग नष्ट होते हैं । तथा सब प्रकारके व्रण दूर होते हैं । यह सब रोगोंको हरनेवाला कल्याणदायक शिलाजतुगुटिका है ॥ ८९–९० ॥

पुनर्नवामण्डूर गुटिका ।

पुनर्नवा त्रिवृद्व्योषविडङ्गं दारु चित्रकम् ।
कुष्ठं हरिद्रे त्रिफला दन्ती चव्यं कलिङ्गकाः ॥ ९१ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं मुस्तञ्चेति पलोन्मितम् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाद्गोमूत्रे द्व्याढके पचेत् ॥ ९२ ॥
कोलवद्गुटिकाः कृत्वा तक्रेणालोड्य ना पिबेत् ।
ताः पाण्डुरोगान् प्लीहानमर्शांसि विषमज्वरम् ।
श्वयथुं ग्रहणीदोषं हन्युः कुष्ठं क्रिमींस्तथा ॥ ९३ ॥

पुनर्नवा, निशोथ, त्रिकुटा, विडंग, देवदारु, चित्रक, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, हरड, बहेडा, आँवला, दंती, चव्य, इन्द्रयव, पीपल, पीपलामूल और नागरमोथा इन सबको एक एक पल लेवे । मण्डूर सबसे दोगुना लेवे । पहिले मण्डूरभस्मको एक आढक गोमूत्रमें पकावे । जब पकते १ गाढा होजाय तो उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण मिलाकर बेरके समान गोलियां बनालेवे । इन गोलियोंमेंसे बलानुसार एक गोली अथवा जितनी मात्रा उचित हो उतनी तक्रमें घोलकर पीजावे । क्षुधा लगने-पर पथ्य भोजन करे । यह पुनर्नवादिमंडूरगुटिका पांडुरोग, प्लीहारोग, अर्शरोग, विषमज्वर, सूजन, ग्रहणीदोष, कुष्ठरोग और कृमिरोगको दूर करती है ॥९१-९३॥

अन्य योग ।

दार्वीत्वक्त्रिफला व्योषं विडङ्गमयसो रजः ।
मधुसर्पिर्युतं लिह्यात् कामलापाण्डुरोगवान् ॥ ९४ ॥

दारुहल्दीकी छाल, हरड, बहेडे, आँवले, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडंग इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे। सबके समान लोहभस्म मिलावे । इसमेंसे मात्रा-नुसार लेकर शहद और घृत मिलाकर चाटे तो कामला और पांडुरोग दूर होतेहैं९४

तुल्या अयोरजःपथ्याहरिद्राः क्षौद्रसर्पिषा ।
चूर्णिताः कामले लिह्याद्गुडक्षौद्रेण वाभयाः ॥ ९५ ॥

हरड, हल्दी और इन दोनोंके समान लोहभस्म शहद और घृतमें मिलाकर चाटे अथवा हरड और गुडको शहदमें मिलाकर चाटे तो कामलारोग दूर हो ॥ ९५ ॥

त्रिफला द्वे हरिद्रे च कटुरोहिण्ययोरजः ।
चूर्णितं क्षौद्रसर्पिर्भ्यां स लेहः कामलापहः ॥ ९६ ॥

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, लोहभस्म इन सबके बारीक चूर्णको शहद और घृत मिलाकर चाटे तो कामलारोग दूर होता है ॥ ९६ ॥

धात्री अवलेह ।

द्विपलांशां तुगाक्षीरीं नागरं मधुयष्टिकाम् ।
प्रास्थिकीं पिप्पलीं द्राक्षां शर्करार्द्धतुलां शुभाम् ॥ ९७ ॥
धात्रीफलरसद्रोणे सुपिष्टं लेहवत्पचेत् ।
शीतां मधुप्रस्थयुतां लिह्यात्पाणितलं ततः ।
हन्त्येष कामलां पित्तं पाण्डुं कासहलीमकम् ॥ ९८ ॥

वंशलोचन दो पल, सोंठ, मुलैठी, पीपल और द्राक्षा यह सब एक एक प्रस्थ (एक एक सेर) लेवे । मिसरी आधी तुला (२॥ सेर) ले, आँवलेका रस एक द्रोण लेकर सब वस्तुओंको बारीक पीसकर इस रसमें मिला अवलेहकी भांति पकावे सिद्ध होनेपर नीचे उतार शीतल करे । फिर इसमें एक पल शहद मिलावे । इसमेंसे नित्य एक तोला प्रमाण सेवन करे तो यह अवलेह कामला, पित्त, पाण्डुरोग, खांसी और हलीमकको दूर करता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

मण्डूरवटक ।

त्र्यूषणं त्रिफला चव्यं चित्रको देवदारु च ।
विडङ्गान्यथ मुस्तानि वत्सकश्चेति चूर्णयेत् ॥ ९९ ॥
मण्डूरतुल्यं तच्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
शनैः सिद्धास्तथा शीताः कार्य्याः कर्षसमा गुडाः ॥ १०० ॥
यथाग्नि भक्षणीयास्ते प्लीहपाण्ड्वामयापहाः ।
ग्रहण्यर्शोनुदश्चैव तक्रवाट्याशिनः स्मृताः ॥ १०१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडे, आमले, चित्रक, चव्य, देवदारु, बायविडंग, नागरमोथा और इन्द्रयव इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे । सबके बराबर उत्तम मण्डूरभस्म लेवे । प्रथम मण्डूरको गोमूत्रमें पकावे । जब गाढा होजाय तो उपरोक्त औषधियोंके चूर्ण मिलाकर एक एक तोलाकी गोलियें बनालेवे । इस मण्डूरवटकको अग्निबलानुसार सेवन करनेसे प्लीहरोग, पांडुरोग, ग्रहणीविकार, अर्शरोग यह सब दूर होते हैं । इसको सेवन करते हुए तक्र और भुनेहुए यवोंके मण्डका भोजन करना चाहिये ॥ ९९–१०१ ॥

गौडारिष्ट ।

मञ्जिष्ठा रजनी द्राक्षा बला मूलान्ययोरजः ।
लोध्रश्चैतेषु गौडः स्यादरिष्टः पाण्डुरोगिणाम् ॥ १०२ ॥

मजीठ, हल्दी, द्राक्षा, बलाकी जड, लोहचूर्ण, और पठानीलोध इन सबको समभाग लेवे । गुड सबसे चारगुना, और गुडसे चारगुना जल मिलावे । इनका विधिवत् अरिष्ट तैयार करे । यह गौडअरिष्ट मात्रानुसार सेवन करनेसे पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ १०२ ॥

बीजकारिष्ट ।

बीजकात्षोडशपलं त्रिफलायाश्च विंशतिः ।
द्राक्षायाः पञ्च लाक्षाया सप्तद्रोणे जलस्य तत् ॥ १०३ ॥

साध्यं पादावशेषे तु पूतशेषे समावपेत्।
शर्करायास्तुलां प्रस्थं माक्षिकस्य च कार्षिकम् ॥ १०४ ॥
व्योषं व्याघ्रनखोशीरं क्रमुकं सैलवालुकम्।
मधूकं कुष्ठमित्येतच्चूर्णितं घृतभाजने।
यवेषु दशरात्रं तद् ग्रीष्मे द्विः शिशिरे स्थितम् ॥ १०५ ॥
पिबेत्तद् ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःशोथगुल्मनुत्।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलासन्निपातनुत्।
बीजकारिष्ट एवैष आत्रेयेण प्रकीर्त्तितः ॥ १०६ ॥

बिजैसार सोलह पल, त्रिफला बीस पल, द्राक्षा पांच पल, लाख सात पल इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे फिर इसमें मिसरी एक तुला, शहद एक प्रस्थ और त्रिकुटा, व्याघ्रनखी, खस, सुपारी, एलवालुक, महुएके फूल यह सब एक एक कर्ष लेकर चूर्ण कर मिलावे। इन सबकों घृतके चिकने घडेमें बन्दकर यवोंके ढेरमें गर्मीकी ऋतुमें दस दिन और सर्दीमें बीस दिन बन्दकर रक्खे। फिर छानकर सेवन करनेसे ग्रहणी, पाण्डुरोग, बवासीर, सूजन, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, कामला और सन्निपात यह सब दूर होते हैं। यह बीजकारिष्ट भगवान् आत्रेयजीने कथन किया है ॥ १०३-१०६ ॥

धात्र्यरिष्ट।

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं तु तम्।
क्षौद्राष्टांशेन संयुक्तं कृष्णार्द्धं कुडवेन च ॥ १०७ ॥
शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रं पक्षं स्निग्धघटे स्थितम्।
प्रपिबेन्मात्रया प्रातर्जीर्णे मितहिताशनः ॥ १०८ ॥
कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासांश्चैषोऽरिष्टः प्रणाशयेत् ॥ १०९ ॥

अच्छे पकेहुए आँवलोंको फल २००० लेकर उनको कूटकर रस निचोड लेवे। इस रससे आठवां भाग शहद, दस तोला पीपल और २॥ सेर मिसरी मिलावे। इन सबको एकत्रकर अरिष्टकी विधिसे चिकने घडेमें भरकर पंद्रह दिन रक्खा रहनेदे फिर निकालकर मात्रानुसार पीवे क्षुधा लगनेपर पथ्य भोजन किया करे तो कामला, पाण्डु, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि और श्वास यह सब नष्ट होते हैं ॥ १०७-१०९ ॥

पांडुरोगमें जल।

स्थिरादिभिः शृतं तोयं पानाहारे प्रशस्यते।

पाण्डूनां कामलार्त्तानां मृद्वीकामलकीरसः ॥ ११० ॥

पाण्डुरोगीको शालपर्ण्यादिगणसे सिद्ध किया जल पीने और आहारमें प्रयोग करना हित है। और कामलारोगीके लिये दाखका और आँवलेका रस अथवा इनसे सिद्ध कियाहुआ जल हितकारी है ॥ ११० ॥

वैद्योंको उपदेश।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थमिति प्रोक्तं महर्षिणा।

विकल्पमेतद्भिषजा पृथग्दोषबलं प्रति ॥ १११ ॥

वातिके स्नेहभूयिष्ठं पैत्तिके तिक्तशीतलम्।

श्लैष्मिके कटुतिक्तोष्णं विमिश्रं सान्निपातिके ॥ ११२ ॥

इस प्रकार पाण्डुरोगकी शान्तिके लिये भगवान् आत्रेयजीने चिकित्साका कथन किया है। बुद्धिमान् वैद्यको पृथक् २ दोष, बल आदि विचारकर औषधकी मात्राकी कल्पना करना चाहिये। वातजनित पाण्डुमें स्नेहविशेषक्रिया करना चाहिये। पित्तके पाण्डुमें तिक्त और शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करना चाहिये। कफजनित पाण्डुमें तिक्त, कटु और उष्णद्रव्योंसे प्रायः चिकित्सा करना चाहिये और सन्निपातके पाण्डुमें सब प्रकार मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मृद्भक्षणजनित पाण्डुकी चिकित्सा।

निष्पातयेच्छरीरात्तु मृत्तिकां भक्षितां भिषक्।

युक्तिज्ञः शोधनैस्तीक्ष्णैः प्रसमीक्ष्य बलाबलम् ॥ ११३ ॥

शुद्धकायस्य सर्पींषि बलाधानानि योजयेत् ॥ ११४ ॥

मट्टी खानेसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगमें रोगीका बलाबल विचार युक्तिको जाननेवाला वैद्य तीक्ष्ण शोधनोंद्वारा उसके शरीरसे मट्टीका विकार निकालडाले। जब देखे कि रोगीका शरीर शुद्ध होगया तो उसके शरीरमें बल प्राप्त करनेके लिये घृतोंका सेवन करावे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

मृद्दोषनाशकघृत।

व्योषं बिल्वं हरिद्रे द्वे त्रिफला द्वे पुनर्नवे।

मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च।

वृश्चिकाली च भार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैः समैर्घृतम् ॥ ११५ ॥

साधयित्वा पिबेद्युक्त्या नरो मृद्दोषपीडितः ।
तद्वत्केशरयष्ट्याह्वपिप्पलीमूलशाद्वलैः ॥ ११६ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ, बेलगिरी, हल्दी, दारुहल्दी, हरड, बहेडे, आँवले, दोनों प्रकारकी पुनर्नवा, नागरमोथा, लोहभस्म, पाटला, बायविडंग, देवदारु, वृश्चिकपत्रिका और भार्ङ्गी इन सबका कल्क करके इस कल्कसे चारगुनी घृतसे चार गुना दूध मिलाकर घृत सिद्ध करे । मृत्तिकाके दोषसे पीडित हुआ मनुष्य इस घृतके पीनेसे आरोग्यताको प्राप्त होता है उसी प्रकार नागकेशर, मुलैठी, पीपल, पीपलामूल और शाद्वल इनके कल्कसे पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया घृत मट्टीखानेसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

पाण्डुमें देनेयोग्य मट्टी ।

मृद्भक्षणादातुरस्य लोभादविनिवर्त्तिनः ।
द्वेष्यार्थं भावितां कामं दद्यात्तद्दोषनाशनैः ॥ ११७ ॥
विडङ्गैलातिविषया निम्बपत्रेण पाठया ।
वार्त्ताकैः कटुरोहिण्या कौटजैर्मूर्वयापि वा ॥ ११८ ॥

जो रोगी मट्टीको अत्यन्त खाताहो और किसी प्रकार मट्टी खानेसे बन्द न हो तो उसको मृत्तिकादोष नाशक द्रव्योंकी भावना दीहुई मट्टी, मट्टीमें अनिच्छा उत्पन्न करनेके लिये उसको यथेच्छ खानेके लिये देवे । जिन द्रव्योंसे मट्टीको भावना देना चाहिये वह यह हैं—अतीस, नीम, बायविडंग, इन्द्रयव, बडी कटेली, कुटकी, पाटला और मूर्वा ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

यथादोषं प्रकुर्वीत भैषज्यं पाण्डुरोगिणाम् ।
क्रियाविशेष एषोऽस्य मतो हेतुविशेषतः ॥ ११९ ॥

पाण्डुरोगियोंकी दोष विचारकर दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । क्योंकि कारण विशेषसे ही क्रियामें भी अन्तर (विशेष) होता है ॥ ११९ ॥

तिलपिष्टनिभं यस्तु वर्चः सृजति कामली ।
श्लेष्मणा रुद्धमार्गं तत्पित्तं कफहरैर्जयेत् ॥ १२० ॥

जो कामलावाला रोगी तिलोंकी पिट्ठीके समान मलको त्यागता है उसके कफद्वारा शरीरके मार्ग बन्द होजाते हैं । इसीलिये उसके पित्तको कफनाशक द्रव्योंके संयोगसे जीतना चाहिये ॥ १२० ॥

शाखाश्रित पित्तके लक्षण।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामैर्वेगनिग्रहैः।
कफसंमूर्च्छितो वायुः स्थानात्पित्तं क्षिपेद्बली ॥ १२१ ॥
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदा नरः।
भवेत्साटोपविष्टम्भो गुरुणा हृदयेन च ॥ १२२ ॥
दौर्बल्याल्पाग्निपार्श्वार्त्तिहिक्काश्वासारुचिज्वरैः।
क्रमेणाल्पेन सज्येत पित्ते शाखासमाश्रिते ॥ १२३ ॥

रूक्ष, शीतल, भारी और मीठे पदार्थोंको सेवन करनेसे, व्यायाम न करनेसे, मलादि वेगोंको रोकलेनेसे वायु कफ संयुक्त होकर पित्तको पित्तके स्थानसे निकाल देती है। तब रोगीके नेत्र, मूत्र, त्वचा यह सब हल्दीके समान होजाते हैं और मल सफेद वर्णका आने लगता है। तथा अफारा, विष्टम्भ, हृदयमें भारीपन, दुर्बलता, पार्श्वपीडा, हिचकी, श्वास, अरुचि और ज्वर यह उपद्रव जब पित्त शाखाश्रित होता है तो शीघ्र उत्पन्न होजाते हैं ॥ १२१–१२३ ॥

शाखाश्रितमें क्रम।

बर्हितित्तिरिदक्षाणां रूक्षाम्लैः कटुकै रसैः।
शुष्कमूलककौलत्थैर्यूषैश्चान्नानि भोजयेत् ॥ १२४ ॥
मातुलुङ्गरसं क्षौद्रं पिप्पलीमरिचान्वितम्।
सनागरं पिबेत्पित्तं तथास्यैति स्वमाशयम् ॥ १२५ ॥
वृक्षाम्लैः कटुरूक्षोष्णैर्लवणैश्चाप्युपक्रमः।
आपित्तरोगाच्च कुतो वायोश्चाप्रशमाद्भवेत् ॥ १२६ ॥
स्वस्थानमागते पित्ते पुरीषे पित्तरञ्जिते।
निवृत्तोपद्रवस्यास्य पूर्वः कामलिको विधिः ॥ १२७ ॥

मोर, तीतर, मुर्गेके मांसरसको रूक्ष, अम्ल और कटु द्रव्योंसे सिद्धकर अथवा सूखी मूली और कुलथीके यूषके साथ भोजन करानेसे शाखाश्रित पित्त फिर अपने स्थानमें आजाता है। बिजौरेके रसमें शहत, पीपल, मिर्च और सोंठ मिलाकर पीनेसे शाखाश्रित पित्त अपने स्थानमें आजाता है। जब तक शाखाश्रित पित्तमें पित्तकी अरुणता न आवे और पित्तमिश्रित वायुकी शान्ति न हो तबतक इमली, कटु, रूक्ष, उष्ण और लवण द्रव्योंसे चिकित्सा करे। ऐसा करनेसे शाखागत पित्त कफ और वायुके शान्त होनेसे अपने स्थानमें आजाता है। पित्तके अपने स्थानमें आनेसे

जब मलमें पित्तकी लाली आजाती है तो संपूर्ण उपद्रव भी शान्त होजाते हैं। जब इस प्रकार शाखाश्रित दोष निवृत्त होजांय तब पहिले कही विधिसे कामलाकी चिकित्सा करे। यह संपूर्ण विधि कफ, वात दूषित पित्तके शाखाश्रित होनेपर पित्तको चिकित्सासाध्य करनेके लिये ही कीजाती है। अन्य स्थानमें यह उपक्रम हानिकारक होता है ॥ १२४-१२७ ॥

हलीमकके लक्षण।

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धारितश्यावपीतकः।
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रामन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ १२८ ॥
स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासस्तृष्णारुचिर्भ्रमः।
हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ १२९ ॥

जब पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला अथवा पीला होजाता है। बल और उत्साहका क्षय होजाय। तन्द्रा, मंदाग्नि, मन्दज्वर, स्त्रीसंगमें अनिच्छा, अंगडाई, श्वास, तृषा, अरुचि और भ्रम यह लक्षण होते हैं तब उस मनुष्यको वातापित्तके कोपसे हलीमक रोग उत्पन्न होगया ऐसा जानना चाहिये ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

हलीमककी चिकित्सा।

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितं माहिषं घृतम्।
स पिबेत्त्रिवृतां स्निग्धरसेनामलकस्य तु ॥ १३० ॥
विरिक्तो मधुरप्रायं भजेत्पित्तानिलापहम्।
द्राक्षा लेहं च पूर्वोक्तं सर्पींषि मधुराणि च ॥ १३१ ॥
यापनान्क्षीरबस्तींश्च शीलयेत्सानुवासनान्।
मार्द्वीकारिष्टयोगांश्च पिबेद्युक्त्याग्निवृद्धये ॥ १३२ ॥
कासिकञ्चाभयालेहं पिप्पलीं मधुकं बलाम्।
पयसा च प्रयुञ्जीत यथादोषं यथाबलम् ॥ १३३ ॥

गिलोयका स्वरस, दूध और भैंसका घृत इन सबको समभाग लेकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस घृतसे हलीमक रोगीको स्निग्धकर निशोथके चूर्णको आँवलेके रसके साथ पिलावे जब अच्छी तरह विरेचन होचुके तो मधुरप्राय आहार और औषधका सेवन करे। तथा पूर्वोक्त द्राक्षावलेह और मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और यापनवस्ति, क्षीरवस्ति, अनुवासनवस्ति इनका विधिवत्

प्रयोग करे। और द्राक्षारिष्ट आदि हितकारक अरिष्टोंका विधिवत् जठराग्निकी वृद्धिके लिये पान करे। अथवा कासाधिकारमें कहेहुए अभयावलेह अथवा पीपल, मुलैठी और बलाको दोषबल विचार दूधके साथ प्रयोग करे तो हलीमकरोग शान्त होता है ३०-३२

अध्यायका उपसंहार।

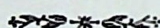
तत्र श्लोकौ—पाण्डोः पञ्चविधस्योक्तं हेतुलक्षणभेषजम्।
कामला द्विविधा चैव साध्यासाध्यत्वमेव च ॥ १३४ ॥
तेषां विकल्पो यश्चान्यो महाव्याधिर्हलीमकः।
तस्य चोक्तं समासेन व्यञ्जनं सचिकित्सितम् ॥ १३५ ॥

इति श्रीचरक० चिकि० पाण्डुचिकित्सितं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें यह दो श्लोक हैं कि—इस पांडुचिकित्सित अध्यायमें भगवान् आत्रेयजीने पांडुरोगके हेतु, लक्षण, औषधियें, दो प्रकारके कामला उनकी साध्य असाध्यता, वातादिभेदसे पांडुके विकल्प और औषधी कल्पना तथा अन्य हलीमकआदि महाव्याधिके संक्षेपसे लक्षण और चिकित्सा यह सब वर्णन किया है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां पाण्डुचिकित्सितं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः।



अथातो हिक्काचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम हिक्काकासचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

वेदलोकार्थतत्त्वज्ञमात्रेयमृषिसुत्तमम्।
अपृच्छत्संशयं धीमानग्निवेशः कृताञ्जलिः ॥ १ ॥
य इमे द्विविधाः प्रोक्तास्त्रिदोषास्त्रिप्रकोपणाः।
रोगा नानात्मकास्तेषां कस्को भवति दुर्जयः ॥ २ ॥

लौकिक और वैदिक विषयोंके तत्त्वको जाननेवाले महर्षि आत्रेयजीसे बुद्धिमान् अग्निवेशजी हाथ जोडकर इस संशयको पूछनेलगे कि हे भगवन्! निज और आगंतुज अथवा शारीरिक और मानसिक भेदसे संपूर्ण रोग दो प्रकारके कहेगये हैं तथा तीन दोष और तीनों दोषोंके प्रकोपके कारण यह सब श्रीमान्ने कथन कर दिया है। अब कृपया यह कहिये कि उन नानात्मक (अनेक) प्रकारके रोगोंमें जो जीतनेमें न आसकताहो ऐसा दुर्जय कौन २ सा रोग है ॥ १ ॥ २ ॥

अग्निवेशस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा मतिमतां वरः ।
उवाच परमप्रीतः परमार्थविनिश्चयम् ॥ ३ ॥
कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ।
यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्ततः ॥ ४ ॥
अन्यैरप्युपसृष्टस्य रोगैर्जन्तोः पृथग्विधैः ।
अन्ते सञ्जायते हिक्का श्वासो वा तीव्रवेदनः ॥ ५ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी प्रीतिपूर्वक इस प्रकार निश्चयात्मक वाक्य कहनेलगे कि हे सौम्य! यद्यपि प्राणोंको हरनेवाले अनेक प्रकारके दुर्जय रोग हैं परन्तु उनमें जैसे श्वास और हिचकी हठात् प्राणोंका नाश करती है इस प्रकार अन्य रोग नहीं करते। अन्य अनेक रोगोंसे पीडित मनुष्योंको भी अंत (मरणासन्न) समयमें हिचकी उत्पन्न होजाती है अथवा तीव्र कष्टदायक श्वास होजाता है ॥ ३-५ ॥

कफवातात्मकावेतौ पित्तस्थानसमुद्भवौ ।
हृदयस्य रसादीनां धातूनां चोपशोषणौ ॥ ६ ॥
तस्मात्साधारणावेतौ मतौ समसुदुर्जयौ ।
मिथ्योपचरितौ क्रुद्धौ हतावाशीविषाविव ॥ ७ ॥
पृथक् पञ्चविधावेतौ निर्दिष्टौ रोगसंग्रहे ।
तयोः शृणु समुत्थानं लिङ्गञ्च सभिषग्जितम् ॥ ८ ॥

यह दोनों रोग कफ और वातात्मक हैं और पित्तस्थानसे उत्पन्न होते हैं। यह दोनों हृदयस्थ रसादि धातुओंको सुखानेवाले हैं इसलिये साधारण रूपसेही दुर्जय हैं। हिचकी और श्वास मिथ्या उपचार होनेसे अर्थात् आहार विहारका अनुचित योग होनेसे कुपित होकर आशीविषके समान शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेते हैं। इन

दोनोंके पांच २ भेद सूत्रस्थानमें कहचुके हैं। अब इन दोनोंके कारण और लक्षणा और चिकित्साको श्रवण करो ॥ ६-८ ॥

हिक्का और श्वासके हेतु।

रजसा धूमवाताभ्यां शीतस्थानाम्बुसेवनात्।
व्यायामाद् ग्राम्यधर्माध्वरूक्षान्नविषमाशनात् ॥ ९ ॥
आमप्रदोषादानाहाद्रौक्ष्यादत्यपतर्पणात्।
दौर्बल्यान्मर्मणो घाताद् द्वन्द्वाच्छुद्ध्यति योगतः ॥ १० ॥
अतीसारज्वरच्छर्दिप्रतिश्यायक्षतक्षयात्।
रक्तपित्तादुदावर्त्ताद्विषूच्यलसकादपि ॥ ११ ॥
पाण्डुरोगाद्विषाच्चैव प्रवर्तेते गदाविमौ।
निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ १२ ॥
पिष्टशालूकविष्टम्भिविदाहिगुरुभोजनात्।
जलजानूपपिशितदध्यामक्षीरसेवनात् ॥ १३ ॥
अभिष्यन्द्युपचाराच्च श्लेष्मलानाञ्च सेवनात्।
कण्ठोरसोः प्रतीघाताद्विबन्धैश्च पृथग्विधैः ॥ १४ ॥
मारुतप्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्य कुप्यति।
उरःस्थः कफमुद्धूय हिक्काश्वासान् करोति सः ॥ १५ ॥
घोरान् प्राणोपरोधाय प्राणिनां पञ्च पञ्च च।
उभयोः पूर्वरूपाणि शृणु वक्ष्याम्यतः परम् ॥ १६ ॥

गर्दा, धूम्र और विकृत वायुके लगनेसे, शीतल स्थानमें रहनेसे, अत्यन्त शीतल जल पीनेसे, अति व्यायाम, मैथुन, मार्गश्रम, रूक्ष अन्नका सेवन, विषम भोजन करनेसे और आमदोषके बढनेसे, अफारा, रूक्षता, अनशन, दुर्बलता और मर्मस्थानमें किसी प्रकार उपघात पहुंचनेसे, वमन, विरेचनके अतियोगसे, अतीसार, ज्वर, वमन, प्रतिश्याय, क्षय, क्षत, रक्तपित्त, उदावर्त्त, विसूचिका, अलसक, पाण्डुरोग और विषविकार इनमेंसे किसी रोगके होनेसे हिचकी और श्वास यह दोनों रोग प्रवृत्त होते हैं। तथा निष्पाव (सेम आदि) उडद, पिण्याक तिल और तेलके अत्यन्त सेवनसे, पिष्ट अन्न, कमलकन्द, विष्टम्भी पदार्थ, विदाही और भारी पदार्थोंका अत्यंत सेवन करनेसे तथा जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, दही और कच्चे दूधके

अधिक सेवनसे, अभिष्यन्दी (क्लेदकारक) आहार विहारके करनेसे, कफकारी द्रव्योंके अधिक सेवनसे तथा कण्ठ और छातीमें किसी प्रकारका आघात पहुंचनेसे और किसी प्रकारके विबन्धके होनेसे वायु प्राणवाही स्रोतोंमें प्राप्त होकर कुपित होजाती है। तब वह वायु छातीमेंसे कफको उखाडकर मनुष्योंके प्राणोंको घोर कष्ट देनेके लिये अथवा रोक देनेके लिये पांच पांच प्रकारके घोर हिचकी और श्वासरोगको उत्पन्न करती है अब इन दोनोंके पूर्वरूपोंको कथन करते हैं सो श्रवण करो ॥ ९-१६ ॥

हिक्काके पूर्वरूप।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्च वदनस्य कषायता ।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ १७ ॥

कण्ठ और छातीमें भारीपन प्रतीत होना, मुखमें कसैलापन, दोनों कुक्षियोंका फूलना यह हिचकी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ १७ ॥

श्वासके पूर्वरूप।

आनाहः पार्श्वशूलञ्च पीडनं हृदयस्य च ।
प्राणस्य च विलोमत्वं श्वासानां पूर्वलक्षणम् ॥ १८ ॥

अफारा, पार्श्वशूल, हृदयका पीडन होना, प्राणवायुका नीचेसे ऊपरको उलट आना यह श्वासरोगके पूर्वरूप हैं ॥ १८ ॥

प्राणोदकान्नवाहीनि स्रोतांसि सकफोऽनिलः ।
हिक्काः करोति संरुध्य तासां लिङ्गं पृथक् शृणु ॥ १९ ॥

कफयुक्त वायु प्राणवाही और जलवाही तथा अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिक्का (हिचकी)को उत्पन्न करता है। उस हिक्कारोगके पृथक्२लक्षणोंको श्रवण करो॥१९॥

महाहिक्काके लक्षण।

क्षीणमांसबलप्राणतेजसः सकफोऽनिलः ।
गृहीत्वा सहसा कण्ठमुच्चैर्घोषवतीं भृशम् ।
करोति सततं हिक्कामेकद्वित्रिगुणां तथा ॥ २० ॥
प्राणः स्रोतांसि मर्माणि संरुध्योष्माणमेव च ।
संज्ञां मुष्णाति गात्रे च स्तम्भं सञ्जनयत्यपि ॥ २१ ॥
मार्गञ्चैवान्नपानानां रुणद्ध्यपहतस्मृतेः ।
साश्रुविप्लुतनेत्रस्य स्तब्धशंखच्युतभ्रुवः ॥ २२ ॥

सक्तजल्पप्रलापस्य निर्वृतिं नाधिगच्छतः।
महातेजा महावेगा महाशब्दा महाबला।
महाहिक्केति सा नृणां सद्यः प्राणहरा मता॥ २३ ॥

जिस मनुष्यका किसी व्याधि आदिसे मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगये हों उसके कण्ठको ग्रहण कर वायु और कफ सहसा ऊंचे शब्दवाली घोर हिचकीको उत्पन्न करता है। वह हिचकी एक दो तीन बार घोर शब्दके साथ एकदम आती है। उससे रोगीके प्राणको वहन करनेवाले संपूर्ण छिद्र, मर्म और ऊष्मा (जठराग्नि) तथा संज्ञाका अवरोध होता है। और सब अंग गरम तथा स्तब्ध होजाते हैं। एवं अन्नजलके मार्गका अवरोध, स्मृतिनाश, दोनों नेत्रोंका आँसुओंसे भरजाना, दोनों कनपटियोंका स्तब्ध होना, दोनों भौंहोंका गिरसाजाना, बोलनेकी शक्ति बन्द होजाना और किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न होना यह महावेगा, महातेजा, महाशब्दा और महाबला महाहिक्का मनुष्योंके प्राणोंको शीघ्र हरनेवाली है॥ २०-२३ ॥

गंभीराके लक्षण।

हिक्कते यः प्रवृद्धस्तु कृशो दीनमना नरः।
जर्जरेणोरसा कृच्छ्रं गम्भीरमनुनादयन्॥ २४ ॥
संजृम्भन् संक्षिपंश्चैव तथाङ्गानि प्रसारयन्।
पार्श्वे चोभे समायम्य कूजन् स्तम्भरुगर्दितः॥ २५ ॥
नाभेः पक्वाशयाद्वापि हिक्का चास्योपजायते।
क्षोभयन्ती भृशं देहं नामयन्तीव ताम्यतः॥ २६ ॥
रुणद्ध्युच्छ्वासमार्गन्तु प्रनष्टबलचेतसः।
गम्भीरनामा सा तस्य हिक्का प्राणान्तिकी मता॥ २७॥

जिस हिचकीके आनेसे मारे हिचकियोंके रोगी कृश और दीन होजाय, हृदयमें जर्जरता प्रतीत हो, हिचकीका गंभीर शब्द हो अथवा गंभीर स्थानसे आतीहो, अतिकष्टसे बाहर निकलती हो, रोगी जंभाईके साथ हिचकी आनेके कष्टसे हाथपावोंको फैलाफैलाकर पटकताहो एक बार एक पसुली, दूसरी बार दूसरी पसुली, फूलकर तनतीहो, रोगी कण्ठसे शब्द करताहुआ स्तम्भित और हिचकीकी पीडासे व्याकुल हो, हिचकी नाभि पक्वाशयसे आतीहो और रोगीके शरीरको अत्यन्त क्षोभित कर नवा देती है, रोगी उससे व्याकुल हो, श्वास लेनेके मार्गको हिचकी रोकदेवे, रोगीके बल और चैतन्यताको नष्ट करदेवे, उसको प्राणनाशक गंभीरानामक हिचकी कहते

हैं। यह गंभीरस्थानसे उत्पन्न होती है इसलिये इसको गंभीरा कहते हैं वैसे तो महाहिक्काके समान ही प्राणनाशक है ॥ २४-२७ ॥

व्यपेताके लक्षण।

व्यपेता जायते हिक्का यान्नपाने चतुर्विधे।
आहारपरिणामान्ते भूयश्च लभते बलम् ॥ २८ ॥
प्रलापवम्यतीसारतृष्णार्त्तस्य विचेतसः।
सजृम्भस्य प्लुताक्षस्य शुष्कास्यस्य विनामिनः ॥ २९ ॥
पर्य्याध्मातस्य हिक्काया जत्रुमूलादसन्तता।
सा व्यपेतेति विज्ञेया हिक्का प्राणोपरोधनी ॥ ३० ॥

जो हिचकी भक्ष्य भोज्यादि चार प्रकारके अन्नपान करनेके अनन्तर जब आहारके परिपाकका समय आवे उस समय अधिक बलको प्राप्त हो उसमें प्रलाप, वमन, अतिसार, प्यास इनसे पीडित हुआ रोगी संज्ञाहीन होजाय और जंभाई, अश्रुस्राव, मुखका सूखना, शरीरका नवजाना, पेटमें अत्यंत अफारा हो तथा हिचकी जत्रुस्थानके मूलसे उत्पन्न होती हो उस प्राणोंको उपरोध करनेवाली हिचकीको व्यपेता अथवा यमिका कहते हैं ॥ २८-३० ॥

क्षुद्रहिक्काके लक्षण।

क्षुद्रवातो यदा कोष्ठाद्व्यायामपरिघट्टितः।
कण्ठे प्रपद्यते हिक्कां तदा क्षुद्रां करोति सः ॥ ३१ ॥
अतिदुःखा न सा चोरःशिरोमर्मप्रबोधिनी।
न चोच्छ्वासान्नपानानां मार्गमावृत्य तिष्ठति ॥ ३२ ॥
वृद्धिमायस्यतो याति भक्तमात्रे च मार्दवम्।
यतः प्रवर्तते पूर्वं तत एव निवर्त्तते ॥ ३३ ॥
हृदयं क्लोम कण्ठञ्च तालुकञ्च समाश्रिता।
मृद्वी सा क्षुद्रहिक्केति नृणां साध्या प्रकीर्तिता ॥ ३४ ॥

जब क्षुद्रवायु अत्यंत परिश्रमके करनेसे परिघाट्टित होकर कण्ठमें प्राप्त होती है तब क्षुद्रानामक हिचकीको उत्पन्न करती है। यह हिचकी कष्टको देनेवाली नहीं होती। छाती, मस्तक और हृदयमें पीडाको करती है। श्वासके और अन्नपानके वहन कर-

---

१ अल्पवायु अथवा अल्पहेतुओंसे अल्प कुपित वायु।

नेवाले मार्गको नहीं रोकती परिश्रमके करनेसे वृद्धिको प्राप्त होती है और भोजन करनेपर नरम पडजाती है। जिस कारणसे पहिले उत्पन्न होती है उसीसे निवृत्त होती है। और यह हृदय, क्लोम, कण्ठ और तालुके आश्रित होती है। यह मृद्वी (हल्की) हिचकी क्षुद्रानामसे कहीजाती है ॥ ३१-३४ ॥

अन्नजाहिक्काके लक्षण।

सहसात्यभ्यवहृतैः पानान्नैः पीडितोऽनिलः ।
ऊर्ध्वं प्रपद्यते कोष्ठान्मद्यैर्वाति मदप्रदैः ॥ ३५ ॥
तथातिरोषभाष्याध्वभारातिपरिवर्त्तनैः ।
वायुः कोष्ठगतो धावन् पानभोज्यप्रपीडितः ॥ ३६ ॥
उरःस्रोतः समाविश्य कुर्य्याद्धिक्कां ततोऽन्नजाम् ।
तथाशनैरसम्बन्धं क्षुवंश्चापि स हिक्कते ॥ ३७ ॥
न मर्मबाधाजननी नेन्द्रियाणां प्रबाधिनी ।
हिक्का पीते तथा भुक्ते शमं याति च सान्नजा ॥ ३८ ॥

सहसा अन्नपानके करनेसे, झट २ भोजन करनेसे अथवा अत्यंत मदको करनेवाली मद्यके पीनेसे पीडित हुआ कोष्ठ वायु ऊपरको गमनकर अथवा क्रोधके समय वा बोलते हुए अथवा भार उठाकर या भागते हुए अन्नपानको भक्षण करनेसे पीडित हुआ कोष्ठवायु छातीके स्रोतोंमें प्राप्त होकर अन्नजा नामक हिचकीको उत्पन्न करता है। यह हिचकी कभी तो भोजन करते ही आने लगती है, कभी छींकके साथ आती है और भोजनके समय नहीं आती। इस हिचकीसे हृदय आदि मर्मस्थानमें किसी प्रकारकी पीडा नहीं होती न इन्द्रियोंमें किसी प्रकारकी बाधा होती है। यह अन्नजा हिचकी भोजन करने और पानी पीनेसे ही शान्त होजाती है॥ ३५-३८ ॥

हिक्काकी साध्यासाध्यता।

अतिसञ्चितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ ३९ ॥
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ।
यमिका च प्रलापार्त्तितृष्णामोहसमन्विता ॥ ४० ॥
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ।
तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ ४१ ॥

जिस रोगीके शरीरमें संपूर्ण दोष अत्यंत बढे हों और अन्नमें अरुचि हो भोजन न करनेसे कृश होगयाहो, अथवा रोगोंसे अत्यंत क्षीण होगयाहो और वृद्ध अथवा अत्यंत मैथुनमें आसक्त हो ऐसे मनुष्यको महाहिक्का आदि कोई एक प्रकारकी हिचकी उत्पन्न होजाय तो शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेती है। और यमिका (व्यपेता) हिचकीमें यदि प्रलाप, शूल, प्यास और मोह हो तो वह भी असाध्य जानना। परन्तु जो रोगी क्षीण न हो और कृश न हुआ हो तथा बलवान् हो, संपूर्ण इन्द्रियें और धातु स्थिर हों तो यमिका हिचकी साध्य होसकती है अन्यथा असाध्य है॥

श्वासरोगकी सम्प्राप्ति।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः॥ ४२॥

जब कफसे युक्त हुई वायु प्राणवाही स्रोतोंको रोकदेती है तो रुकजानेसे कोपको प्राप्त होकर श्वासरोगको उत्पन्न करती है॥ ४२॥

महाश्वासके लक्षण।

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम्॥ ४३॥
प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः।
विकृताक्षाननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक्॥ ४४॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्।
महाश्वासोपसृष्टः स क्षिप्रमेव प्रपद्यते॥ ४५॥

जो मनुष्य ऊर्ध्वगामी वायुके उद्धूयमान होनेसे कठिनतासे श्वास लेताहुआ मतवाले बैलके समान ऊंचे शब्दके साथ निरन्तर कष्टसे श्वास छोडता है और संज्ञाहीन, ज्ञानहीन, विभ्रांत और विकृत नेत्र और विकृत मुख हो तथा उसका मल और मूत्र रुकजाय, जबानसे कठिनतापूर्वक बिखरेहुए शब्द उच्चारण करे और अत्यंत दीन हो उसको वैद्य महाश्वासग्रस्त जानकर दूरसे ही त्याग देवे। यह महाश्वास रोगीको शीघ्र मारडालता है॥ ४३–४५॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण।

दीर्घं श्वसिति यस्तूर्द्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः।
श्लेष्मावृतमुखस्रोतःक्रुद्धगन्धवहार्दितः॥ ४६॥
ऊर्द्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः।

प्रमुह्यन्वेदनार्त्तश्च शुष्कास्योऽतिनिपीडितः ॥ ४७ ॥
ऊर्द्ध्वश्वासं प्रवृत्ते च यश्चाधः श्वासरोधभाक् ।
मुह्यतरताम्यतश्चोर्द्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥ ४८ ॥

जिस रोगीका श्वास ऊर्ध्वगति होजाय अर्थात् रोगी ऊपरको मुख करके बडे जोरसे लंबा श्वास निकाले और श्वासको भीतरकी ओर न खैंच सके, मुखस्रोत कफसे आवृत होजाय, मुखसे दुर्गंध युक्त कुपित पवन निकले, रोगीकी दृष्टि ऊपरको चढजाय या रोगी उपरको देखताहुवा विभ्रांतनेत्र हो व्याकुलतासे इधर उधर देखे, पीडासे व्याकुल होकर बेहोश होजाय, मुख सूखजाय, रोगी अत्यंत कष्टको प्राप्त हो, इस प्रकार ऊर्ध्वश्वास चलतेहुए अधःश्वास (श्वासका भीतरको ग्रहण करना) रुकजाय इससे रोगी मोहको प्राप्त हो अत्यंत कष्टसे व्याकुल हो उसको ऊर्ध्वश्वास कहते हैं । यह ऊर्ध्वश्वास रोगीके प्राणोंको शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ ४६-४८ ॥

छिन्नश्वासके लक्षण ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ।
न वा श्वसिति दुःखार्त्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ॥ ४९ ॥
आनाहस्वेदमूर्च्छार्त्तो दह्यमानेन बस्तिना ।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः ॥ ५० ॥
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ।
छिन्नश्वासेन संछिन्नः स शीघ्रं प्रजहात्यसून् ॥ ५१ ॥

जो रोगी विच्छिन्न (टूटाहुआ) श्वास लेवे, श्वास लेते समय संपूर्ण प्राण पीडित हों अथवा मर्म (हृदय) के शूलसे दुःखित हुआ श्वास न लेसके या मारे कष्टके श्वास रुक रुक कर आवे और हृदयमें पीडा होती हो, तथा अफारा, पासीना, मूर्च्छा, वस्तीमें अत्यंत दाह हो, नेत्र निकल आवें या पानीसे भरे रहें, श्वास क्षीण होजाय, एक नेत्र लाल होजाय, (अथवा दोनों नेत्र लाल हों) बेहोशी हो, मुख सूखजाय वर्ण बिगडजाय, रोगी प्रलाप करे इन लक्षणोंसे युक्तको छिन्नश्वास कहते हैं छिन्नश्वाससे संच्छिन्न हुआ रोगी शीघ्र प्राणोंको त्याग देता है ॥ ४९-५१ ॥

कफश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ ५२ ॥
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा ।

अतीव तीव्रवेगञ्च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ ५३ ॥
प्रताम्यत्यतिवेगाच कासते सन्निरुध्यते ।
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ ५४ ॥
श्लेष्मण्यमुच्यमाने च भृशं भवति दुःखितः ।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्त्तं लभते सुखम् ॥ ५५ ॥
अथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् ।
न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ ५६ ॥
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णञ्चैवाभिनन्दति ॥ ५७ ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमर्तिमान् ।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ ५८ ॥
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्चाभिवर्द्धते ।
स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ ५९ ॥

जब वायु प्रतिलोम होकर प्राणवाही स्रोतोंमें प्रवेश करलेता है तब ग्रीवा और शिरको ग्रहण (प्रपीडित) करके कफको उदीर्ण (उखाड) कर प्रतिश्याय (जुकाम) को उत्पन्न कर देता है और कफसे संरुद्ध होकर गलेमें घुर २ शब्दको करनेलगता है । तथा अत्यंत तीव्रवेगसे प्राणवायुको पीडन करता हुआ श्वास आता है । श्वासके वेगसे रोगी अत्यंत व्याकुल होजाय, खांसी वेगपूर्वक आवे और रुकजावे रोगी खांसते २ खांसीके रुक जानेसे बारबार मोहको प्राप्त हो, जबतक खांसीकी बलगम (कफ) न निकलजाय तब तक रोगीको अत्यंत दुःख हो, उस कफके निकलजानेसे थोडी देरके लिये शांति प्रतीत हो,जब यह कफ रोगीके कण्ठमें प्राप्त हो तो रोगी बडे कष्टसे बोलसके और श्वासकी पीडासे व्याकुल हुआ लेटनेपर भी निद्राको प्राप्त न हो, यह जिस करवट लेटे उसी ओरसे वायु उठकर श्वासको उत्पन्न करे इसलिये रोगी किसी प्रकार लेट या सो नहीं सकता, बैठनेसे इसको कुछ आराम प्रतीत हो, गरम पदार्थको खानेकी इच्छा करे, दोनों नेत्र बाहरको निकलेसे प्रतीत हों, मस्तकमें पसीना आवे, श्वासकी पीडासे निरंतर दुःखी रहे । मुख सूखजाय, बारबार श्वासक वेग उडे, किसी प्रकारकी शरीरमें हलचल होनेसे श्वासका वेग होजाय, बादल, शीतल जल, शरदी और पूर्वकी पवनसे कफकी होकर श्वासका वेग हो इन लक्षणोंसे

युक्त श्वासरोगको तमकश्वास (दमा) कहते हैं यह याप्य[1]साध्य होता है और नवीन उत्पन्न हुआ तो शीघ्र यत्न करनेसे साध्य होता है ॥ ५२-५९ ॥

प्रतमक और संतमकश्वास।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम्।
उदावर्त्तरजोऽजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ ६० ॥
तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति।
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्सन्तमकं तु तत् ॥ ६१ ॥

तमक श्वासयुक्त रोगीको ज्वर और मूर्च्छा होय तो उसको 'प्रतमक श्वास' कहते हैं उदावर्तसे मुखनासिकामें धूलके पडनेसे अजीर्णके क्लेदसे और जठराग्निके निरोधसे उत्पन्न हो और अंधकारमें श्वास बढे, शीतल क्रियासे शांत होजाय, रोगी श्वासके समय अपनेको अंधकारमें डूबाहुआ प्रतीत करे उनको संतमकश्वास कहते हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रवात उदीरयन्।
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः ॥ ६२ ॥
निहन्ति न स गात्राणि न च दुःखी यथेतरे।
न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ ६३ ॥
नेन्द्रियाणां व्यथां नापि काञ्चिदुत्पादयेद्रुजम् ॥ ६४ ॥

रूक्ष अन्नपानके सेवन करनेसे और परिश्रमके करनेसे, अल्प कारणोंसे क्षुद्र (अल्प) वायु उदीर्ण होकर क्षुद्रश्वासको उत्पन्न करती है। यह क्षुद्र श्वास न तो अत्यंत दुःख देता है और न अत्यन्त अंगोंमें पीडाको करता है। और श्वासोंके समान यह श्वास मनुष्योंके प्राणोंको हरनेवाला नहीं होता और न अन्य श्वासोंके समान शरीरको ही कष्ट देता है। तथा अन्नपानकी उचित गतिको नहीं रोकता। इन्द्रियोंमें भी किसी प्रकारकी व्यथा उत्पन्न नहीं करता और किसी प्रकारके अन्य उपद्रवोंको भी प्रगट नहीं करता ॥ ६२-६४ ॥

श्वासोंकी साध्यासाध्यता।

स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः।

---

१ जो रोग योग्य चिकित्सा करनेपर कुछ कालके लिये शांत होजाय परन्तु समूल नष्ट न हो हेतु पाकर फिर कोप करे उस रोगको याप्य कहते हैं।

इति श्वासाः समुद्दिष्टा हिक्काश्चैव स्वलक्षणैः ।
एषां प्राणहरा वर्ज्या घोरास्ते ह्याशुकारिणः ॥ ६५ ॥

इनमें क्षुद्रश्वास साध्य है और अन्य सब प्रकारके श्वास भी यदि बलवान् मनुष्यके शरीरमें प्रगट लक्षणवाले न हों तो साध्य होते हैं। इस प्रकार श्वासरोगोंका तथा हिक्कारोगका उनके लक्षणोंसहित वर्णन किया गया है। इनमें जो प्राणोंको हरनेवाले कहे हैं उनको त्याग देना चाहिये। क्योंकि वह आशुकारी अर्थात् शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट करनेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥

भेषजैः साध्ययाप्यांस्तु क्षिप्रं भिषगुपाचरेत् ।
उपेक्षिता दहेयुर्हि शुष्कं कक्षमिवानलाः ॥ ६६ ॥
कारणस्थानमूलैक्यादेकमेव चिकित्सितम् ।
द्वयोरपि यथा दृष्टमृषिभिस्तन्निबोधत ॥ ६७ ॥

इनमें जो साध्य अथवा याप्यसाध्य हों उनकी वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे। क्योंकि शीघ्र चिकित्सा न करनेसे जिस प्रकार सूखे घासमें पडी अग्नि घासको शीघ्र नष्ट कर देती है उसी प्रकार शीघ्र यत्न न करनेसे श्वासरोग भी मनुष्यकी देहको नष्ट कर देता है। हिचकी और श्वास इन दोनोंके कारण, स्थान और मूल एक ही हैं। इसलिये ऋषियोंने इन दोनोंकी चिकित्सा भी एक ही कथन की है। सो तुम श्रवण करो ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

हिक्का और श्वासकी चिकित्सा।

हिक्काश्वासार्दितं स्निग्धैरादौ स्वेदैरुपाचरेत् ।
आक्तं लवणतैलेन नाडीप्रस्तरसङ्करैः ॥ ६८ ॥
तैरस्य ग्रथितः श्लेष्मा स्रोतःस्वभिविलीयते ।
खानि मार्दवमायान्ति ततो वातानुलोमता ॥ ॥ ६९ ॥
यथाद्रिकुञ्जेष्वर्कांशुतप्तं विष्यन्दते हिमम् ।
स्थिरः श्लेष्मा शरीरस्थः स्वेदैर्विष्यन्दते तथा ॥ ७० ॥
स्विन्नं ज्ञात्वा ततस्तूर्णं भोजयेत्स्निग्धमोदनम् ।
मत्स्यानां सूकराणां वा रसैर्दध्युत्तरेण वा ॥ ७१ ॥
ततः श्लेष्मणि संरुद्धे वमनं पाययेत्तु तम् ।
पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रैर्युक्तं वाताविरोधि यत् ॥ ७२ ॥

निर्हृते सुखमाप्नोति सकफे दुष्टविग्रहे।
स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरत्यनिहतोऽनिलः ॥ ७३ ॥

हिचकी और श्वासरोगवाले मनुष्यको पहिले स्निग्ध कर नमकयुक्त तेलकी शरीर-पर मालिश करे फिर नाडीस्वेद, प्रस्तरस्वेद अथवा शंकरस्वेदसे स्वेदन करे। इस प्रकार करनेसे स्रोतोंमें जमाहुआ कफ पिघलकर विलीन होजाता है उससे छिद्र नरम होकर वायुका अनुलोमन (यथोचित गति) होता है। जैसे पर्वतकी खोहमें जमाहुआ बर्फ सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त होकर पिघल जाता है। उसी प्रकार रोगीके छिद्रोंमें जमाहुआ कफ भी स्वेदन करनेसे पिघलकर विलीन होजाता है। स्वेदन करनेके अनन्तर रोगीको स्निग्ध भोजन करावे तथा मछली, सूअरका मांस, अथवा दही इनके साथ स्निग्ध भात खिलावे ऐसा करनेसे उसकी कफ बढकर आमाशयमें आ इस आहारमें आनमिलेगी फिर उसको वमनकारक द्रव्य पिलावे। जो वमन करानेके लिये क्वाथ आदि पिलावे उसमें पीपल, सेंधानमक और शहद मिलालेना चाहिये और जो वमनकारक द्रव्य हो वह वातनाशक होना चाहिये। इस प्रकार औषध पिलाकर वमन करादेनेसे दुष्ट कफ निकलकर रोगीको आराम प्रतीत होता है और स्रोतोंके शुद्ध होनेसे वायु अप्रतिहत हुई स्वच्छ होकर संचार करती है ६८-७३

धूमप्रयोग।

लीनश्चेद्दोषशेषः स्याद्धूमैस्तं निर्हरेद् बुधः।
हरिद्रापत्रमैरण्डमूलं लाक्षां मनःशिलाम् ॥ ७४ ॥
मांसीं सदेवदार्वेलां पिष्ट्वा वर्त्तिं प्रकल्पयेत्।
तां घृताक्तां पिबेद्धूमं यवैर्वा घृतसंयुतैः ॥ ७५ ॥

यदि इस प्रकार वमन करानेपर भी कुछ दोष शेष रहजांय तो बुद्धिमान् वैद्य उनको नीचे लिखे धूम प्रयोगोंद्वारा शांत करे। जैसे-हलदी, तेजपात, एरंडकी जड, लाख, मनसिल, जटामांसी, देवदारु, इलायची इन सबको पीसकर धूमवर्तीकी विधिसे बत्ती बनावे। उसको घीमें भिगोकर धूम्रपान करे अथवा यवोंको पीसकर घीके साथ मिला बत्ती बनाकर विधिवत् धूमपान करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतं मल्लकसंपुटे।
कृत्वा धूमं पिबेच्छृङ्गं बालं वा स्नायु वा गवाम् ॥ ७६ ॥
श्योनाकवर्द्धमानानां नाडीशुष्कां कुशस्य वा।
पद्मकं गुग्गुलं लोध्रं शल्लकीं वा घृताप्लुताम् ॥ ७७॥

अथवा मोम, राल और घीको एकत्र पीसकर मल्लक संपुट (लम्बीचिलम) में रखकर नाल लगाकर पीदे अथवा गौका सींग पूछ और स्नायुके चूर्णका इसी विधिसे धूमपान करे । सोनापाठाके पत्रकी डण्डी अथवा एरंडका नल घीमें भिगो धूमपान करे । अथवा सूखी कुशाको घीमें भिगा धूमपान करे । या पद्मकाष्ठ, गूगुल, लोध अथवा शल्यवृक्षकी छालके चूर्णको घृतमें भिगो बत्ती बना धूमपान करे ७६॥७७॥

धूमपानके अयोग्य ।

स्वरक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्धजान् ।
मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिक्काश्वासानुपाचरेत् ॥ ७८ ॥

यदि हिक्का और श्वासरोगीका स्वर क्षीण होगयाहो तथा रक्तपित्त और दाहका संसर्ग हो तो उसको धूमपान न कराकर मधुर, स्निग्ध और शीतल आदि द्रव्योंसे चिकित्सा करे ॥ ७८ ॥

स्वेदनके अयोग्य रोगी ।

न स्वेद्याः पित्तदाहार्त्ता रक्तस्वेदातिवर्त्तिनः ।
क्षीणधातुबला रूक्षा गर्भिण्यश्चापि पित्तलाः ॥ ७९ ॥

जो रोगी पित्त, दाह, रक्त अथवा पसीनोंसे व्याप्त हो, जो क्षीणधातु अथवा क्षीण-बल या अत्यन्त रूक्ष मनुष्य, गर्भवती स्त्री और पित्तप्रधान धातुवाला रोगी हो उसको स्वेदन करना उचित नहीं ॥ ७९ ॥

कोष्णैः कामसुरःकण्ठं स्नेहसेकैः सशर्करैः ।
उत्कारिकोपनाहैश्च स्वेदयेन्मृदुभिः क्षणम् ॥ ८० ॥
तिलोमाभाषगोधूमचूर्णैर्वातहरैः सह ।
स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैः सक्षीरैर्वा कृता हिता ॥ ८१ ॥

यदि इन उपरोक्त रोगियोंको श्वास और हिचकी हो तथा उसमें स्वेदन कराना आवश्यक प्रतीत होताहो तो खांड मिलेहुए स्नेह द्रव्यों (हलवा आदि) से अथवा पूडियें या रोटियें बनाकर उनसे कण्ठ और छातीपर सुहाता सुहाता उपनाह स्वेदन करे । अथवा तिल, अलसी, उडद और गेहूँका चूर्ण वातनाशक द्रव्योंमें मिला स्नेह-युक्त उत्कारिका बनाकर उनको कांजी अथवा दूधमें डुबाकर सुहाता २ कण्ठ आदि-पर स्वेदन करे । अथवा उपरोक्त तिल आदि द्रव्योंको घृत वा कांजीमें पकाकर वात-नाशक स्नेह मिला गोलासा बनाकर उससे स्वेदन करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥

नवज्वरामदोषेषु रूक्षस्वेदं विलङ्घनम् ।
समीक्ष्योल्लेखनं वापि कारयेल्लवणाम्बुना ॥ ८२ ॥

नवीन ज्वर और आमदोषयुक्त रोगीको रूक्ष स्वेदन और लंघन कराना चाहिये यदि उस समय हानिकारक न हो तो विचार कर नमकका जल पिलाकर वमन करावे ॥ ८२ ॥

अतियोगोद्धतं वातं दृष्ट्वा वातहरैर्भिषक् ।
रसाद्यैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्च शमं नयेत् ॥ ८३ ॥

यदि वमनका अतियोग होकर वायु उद्धत होजाय तो जो अति शीतल और अति गरम न हों ऐसे वातनाशक रस आदिकोंसे अथवा अभ्यंगोंसे उस बढीहुई वायुकी शान्ति करे ॥ ८३ ॥

उदावर्ते तथाध्माने मातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।
हिङ्गुपीलुविडैश्चान्नं युक्तं स्यादनुलोमनम् ॥ ८४ ॥

उदावर्त्त, तथा अफारा युक्त श्वास, हिचकीरोगमें बिजौरेका रस, अम्लवेत, हींग, पीलूफल और विडलवणके साथ भोजन करावे तो वायुका अनुलोमन होकर उदावर्त और अफारा शान्त होता है ॥ ८४ ॥

हिक्काश्वासामयी ह्येको बलवान् दुर्बलोऽपरः ।
कफाधिकस्तथैवैको रूक्षबह्वनिलोऽपरः ॥ ८५ ॥
कफाधिके बलस्थे च वमनं सविरेचनम् ।
कुर्य्यात्पथ्याशिने धूमलेहादिशमनं ततः ॥ ८६ ॥

हिचकी और श्वासवाले रोगी कोई बलवान्, कोई दुर्बल, कोई कफकी अधिकतावाले, कोई रूक्ष और कोई वायुकी अधिकतावाले होते हैं उनमें कफकी अधिकतावाला मनुष्य यदि बलवान् हो तो उसकी वमन, विरेचन करानेके अनन्तर पथ्य भोजन और धूमपान तथा लेह (चटनी) आदि शमन द्रव्योंका सेवन करावे८५॥८६

वातिकान् दुर्बलान् बालान् वृद्धांश्चानिलसूदनैः ।
तर्पयेदेव शमनैः स्नेहयूषरसादिभिः ॥ ८७ ॥

जो रोगी वातप्रधान, दुर्बल, बालक और वृद्ध हो तो उसको वातनाशक संशमन स्नेह, यूष और रस आदिकोंसे तर्पित करे ॥ ८७ ॥

अनुत्क्लिष्टकफास्विन्नदुर्बलानां विशोधनात् ।
वायुर्लब्धास्पदो मर्म संशुष्याशु हरेदसून् ॥ ८८ ॥

जबतक कफका उत्क्लेश होकर कफ बाहर निकलनेको गमनोन्मुख न हुई हो तबतक वमन कराना उचित नहीं तथा दुर्बल रोगीको भी वमन नहीं कराना चाहिये।

ऐसे समय वमन करानेसे वायु छिद्र पाकर मर्मस्थानमें प्राप्त हो मर्मोंको सुखाकर शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेती हैं ॥ ८८ ॥

दृढान् बहुकफांस्तस्माद्रसैरानूपवारिजैः।
तृप्तान्विशोधयेत्स्विन्नान् बृंहयेदितरान्भिषक् ॥ ८९ ॥

जो रोगी बलवान् और बढी हुई कफसे युक्त हों उनको स्नेहन और स्वेदन करके अनूपसंचारी और जलसंचारी जीवोंके मांसरससे तृप्त कर वमन कराना चाहिये। और जो दुर्बल या वातप्रधान वृद्ध आदि रोगी हों उनकी बृंहण औषधियोंद्वारा ही चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८९ ॥

बर्हितित्तिरिदक्षाश्च जाङ्गलाश्च मृगद्विजाः।
दशमूलीरसे सिद्धाः कौलत्थे वा रसे हिताः ॥ ९० ॥

हिक्का और श्वास रोगियोंको कुलथीके क्वाथमें अथवा दशमूलके क्वाथमें सिद्ध किया हुआ मोर, तीतर, मुर्गा और अन्य जंगली जीवों अथवा पक्षियोंका मांसरस कृश रोगियोंको तर्पण करनेके लिये देवे ॥ ९० ॥

हिक्काश्वासमें यूष और अन्न।

निदिग्धिकां बिल्वमध्यं कर्कटाख्यां दुरालभाम्।
त्रिकण्टकं गुडूचीश्च कुलत्थांश्च सचित्रकान् ॥ ९१ ॥
जले पक्त्वा रसः पूतो पिप्पलीघृतभर्जितः।
सनागरः सलवणः स्याद्यूषो भोजने हितः ॥ ९२ ॥

कटेली, बेलगिरी, काकडासिंगी, जवासा, गोखरू, गिलोय, चित्रक इन द्रव्योंसे जलमें सिद्ध किया कुल्थीका यूष छानकर सेंधानिमक सोंठ और पीपलका चूर्ण बुरका घीमें छौंक लेवे। यह यूष कास और श्वासरोगियोंके लिये हितकारक है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

रास्नां बलां पञ्चमूलं ह्रस्वं मुद्गान् सचित्रकान्।
पक्त्वाम्भसि रसे तस्मिन् यूषः साध्यश्च पूर्ववत् ॥ ९३ ॥

रासना, बला, लघु पंचमूल और चित्रक इनका पूर्ववत् क्वाथ कर उसमें मूंगका यूष बना सोंठ, पीपल लवण मिला घृतमें छोडकर भोजनमें सेवन करना हितकारक है ॥ ९३ ॥

पल्लवान् मातुलुङ्गस्य निम्बस्य कुलकस्य च।
पक्त्वा मुद्गांश्च सव्योषान् क्षारयूषान्विपाचयेत् ॥ ९४ ॥

दत्त्वा सलवणं क्षारं शिग्रूणि मरिचानि च ।
युक्त्या संसाधितो यूषो हिक्काश्वासविकारनुत् ॥ ९५ ॥

बिजौरेके पत्र, नीमके पत्र और पटोलके पत्रोंको पानीमें पकाकर पानीको छान लेवे फिर उसमें त्रिकुटा, जवाखार, नमक, सोहांजनेकी फली और मूंग मिलाकर यूष बनावे । इस क्षारयूषके सेवन करनेसे हिचकी और श्वासरोग दूर होता है॥९४।९५॥

कासमर्दकपत्राणां यूषः शोभाञ्जनस्य च ।
शुष्कमूलकयूषश्च हिक्काश्वासनिवारणः ॥ ९६ ॥

कसौंदीके पत्तोंका यूष बना अथवा सोहांजनेके पत्रोंका यूष बना वा सूखी मूलीका क्वाथ बनाकर उसको छानलेवे फिर उसमें मूंगका यूष बनवाकर पीपल और सेंधानमक युक्त कर घृतमें छौंकके सेवन करे तो हिचकी और श्वास दूर होता है९६

सदधिव्योषसर्पिष्को यूषो वार्त्ताकजो हितः ।
शालिषष्टिकगोधूमयवान्नान्यनवानि च ॥ ९७ ॥

दही, त्रिकुटा और घृत मिलाकर बैंगनका यूष भी हिक्का और श्वासमें हितकारी है । हिक्का और श्वास रोगमें शालिचावल और सांठी चावल, गेहूं तथा यव यह अन्न हितकारी हैं ॥ ९७ ॥

हिक्काश्वासमें यवागू ।

हिङ्गुसौवर्चलाजाजीविडपौष्करचित्रकैः ।
सकर्कटाह्वयैः सिद्धा यवागूः श्वासहिक्किनाम् ॥ ९८ ॥

हींग, संचरनमक, कालाजीरा, विडनमक, पोहकरमूल, चित्रक, काकडासिंगी इनसे सिद्ध कीहुई यवागू हिक्का और श्वास रोगके लिये हितकारी है ॥ ९८ ॥

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीमूलपौष्करैः ।
शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीगुडूचीनागराम्बुभिः ॥ ९९ ॥
यवागूं विधिना सिद्धां कषायं वा पिबेन्नरः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ १०० ॥

दशमूल, कचूर, रासना, पीपलामूल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, भूमिआँवला, भारंगी, गिलोय और सोंठके जलसे सिद्ध की हुई यवागूके सेवनसे अथवा इन्हीं द्रव्योंका क्काथ बनाकर पीनेसे खांसी, हृद्रोग, पार्श्वशूल, हिचकी और श्वासरोग दूर होता है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

पुष्कराह्वशटीव्योषमातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।
योजयेदन्नपानानि ससर्पिर्विडहिङ्गुभिः ॥ १०१ ॥

पोहकरमूल, कचूर, त्रिकुटा, बिजौरा और अमलवेतके क्वाथमें सिद्ध किये हुए अन्नपान, घृत, विडनमक और भुनीहुई हींग मिलाकर सेवन करनेसे हिचकी और श्वास दूर होते हैं ॥ १०१ ॥

दशमूलस्य वा क्वाथमथवा देवदारुणः ।
तृषितो मदिरां वापि हिक्काश्वासी पिबेन्नरः ॥ १०२ ॥

हिक्का और श्वासरोगीको प्यास लगे तो दशमूलका क्वाथ अथवा देवदारुका क्वाथ पिलावे । अथवा इन्हीं क्वाथोंमें या अन्य जलमें पुरानी मद्य मिलाकर पीवे ॥१०२॥

पाठां मधुरसां रास्नां सरलं देवदारु च ।
प्रक्षाल्य जर्जरीकृत्य सुरामण्डे निधापयेत् ॥ १०३ ॥
तं मन्दलवणं कृत्वा भिषक्प्रसृतसम्मितम् ।
पाययेत्तु ततो हिक्काश्वासश्चैवोपशाम्यति ॥ १०४ ॥

पाटला, मूर्वा, रासना, सरलकाष्ठ और देवदारुको कूटकर कपडेमें छान सुरामण्डमें पिलावे । फिर उसमें थोडासा नमक मिलाकर वैद्य दो पलकी मात्रासे पिलावे तो हिचकी और श्वास शान्त होजाते हैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

हिङ्गुसौवर्चलं कोलं समङ्गां पिप्पलीं बलाम् ।
मातुलुङ्गरसे पिष्टमारनालेन वा पिबेत् ॥ १०५ ॥
सौवर्चलं नागरञ्च भार्ङ्गीं द्विशर्करायुतम् ।
उष्णाम्बुना पिबेदेतद्धिक्काश्वासविकारनुत् ॥ १०६ ॥

हींग, संचरनमक, बेर, समंगा, पीपल, बला इन सबको बिजौरेके रसमें पीसकर कांजीके साथ सेवन करे तो श्वास और हिक्काको शान्त करे । अथवा संचरनिमक, सोंठ और भारंगी इनके चूर्णको दुगुनी खांड मिला फँकी लेवे । ऊपरसे गरम जल पीवे तो हिचकी और श्वास दूर होते हैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

भार्ङ्गीनागरयोः कल्कं मरिचक्षारयोस्तथा ।
पीतद्रुचित्रकास्फोतामूर्वाणां चाम्बुना पिबेत् ॥ १०७ ॥

भारंगी और सोंठका कल्क अथवा गोलमिर्च और जवाखार कल्क अथवा सरलकाष्ठ, चित्रक, आसफोता और मूर्वा इनका कल्क करके गर्म जलके साथ पीवे तो हिक्का और श्वासरोग शान्त हो ॥ १०७ ॥

पित्तादिदोषानुबन्धीश्वासोंके यत्न।

मधूलिका तुगाक्षीरी नागरं पिप्पली तथा।
उत्कारिका घृते सिद्धा श्वासे पित्तानुबन्धजे॥ १०८॥

मधूलिका (मूर्वा या गेहूंका मैदा) वंशलोचन, सोंठ और पीपल इनके घृतमें उत्कारिका बनाकर पित्तानुबंधी श्वासरोगमें देना हित है॥ १०८॥

श्वाविधः शशमांसञ्च शल्लकस्य च शोणितम्।
पिप्पलीघृतसिद्धानि श्वासे वातानुबन्धजे॥ १०९॥

हिक्का और श्वासमें वातका अनुबंध हो तो सेहका मांस अथवा शशेका मांस और सेहका रुधिर पीपलका चूर्ण मिला घृतमें सिद्धकर सेवन करावे॥ १०९॥

सुवर्चलारसो दुग्धं घृतं त्रिकटुकायुतम्।
शाल्योदनस्यानुपानं वातपित्तानुगे हितम्॥ ११०॥

यदि श्वास हिक्कामें वात और पित्तका अनुबंध हो तो सूर्यमुखीका रस, दूध, घृत त्रिकुटाके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करावे। और शालिचावलोंके भातका पथ्य देवे॥ ११०॥

शिरीषपुष्पस्वरसः सप्तपर्णस्य वा पुनः।
पिप्पलीमधुसंयुक्तः कफपित्तानुगे मतः॥ १११॥

यदि हिक्का श्वासमें कफ और पित्तका अनुबंध हो तो सिरसके फूलोंका रस अथवा सप्तपर्णका रस पीपल और शहद मिला पिलावे॥ १११॥

मधुकं पिप्पलीमूलं गुडो गोऽश्वशकृद्रसः।
घृतं क्षौद्रं हिक्काकासश्वासाभिष्यन्दिनां शुभम्॥ ११२॥

मुलैठी, पीपलामूल और गोबर तथा घोडेकी लीदका रस घी और शहद मिला चाटे। इसीसे हिचकी,खांसी, श्वास और शरीरमें अभिष्यंद होना (क्लेदसे शरीरका लिप्त रहना) यह सब दूर होते हैं॥ ११२॥

खराश्वोष्ट्रवराहाणां मेषस्य च गजस्य च।
शकृद्रसं बहुकफे चैकैकं मधुना पिबेत्॥ ११३॥
क्षारञ्चाप्यश्वगन्धाया लेहयेत् क्षौद्रसर्पिषा।
मयूरपादं नालं वा शकलं शल्लकस्य वा॥ ११४॥

गधा, घोडा, ऊंट, सूअर, बकरी और हाथीकी लीदका रस शहदमें मिलाकर चाटनेसे कफानुबंधी श्वास और हिचकी शान्त होती है अथवा असगंधका क्षार

शहद और घृत मिलाकर चाटे या मोरके पैर और पंखोंकी डण्डियें, सेहके कांटे इन सबकी भस्म करके शहत घृत मिला चाटे तो कफानुबंधी श्वास और हिक्का दूर होती है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

श्वाविज्जाण्डकचाषाणां रोमाणि कुररस्य वा ।
शृङ्ग्येकद्विशफानां वा चर्मास्थीनि क्षुरांस्तथा ॥ ११५ ॥
सर्वाण्येकैकशो वापि दग्ध्वा क्षौद्रघृतान्वितम् ।
चूर्णं लीढ्वा जयेत्कासं हिक्कां श्वासञ्च दारुणम् ॥ ११६ ॥

सेह, जाण्डक, चाक और कुरर पक्षीके पंखोंकी भस्मकर अथवा सींगवाले, एक खुरवाले (गदहा आदि) दो खुरवाले (सूअर आदि) जानवरोंके चर्म, हड्डी और खुरोंकी भस्मको शहद और घृतमें मिलाकर अथवा सबकी भस्म मिलाकर या इनमेंसे किसी एककी भस्म मिला चाटनेसे खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूर होता है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

एते हि कफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः ।
तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थं सेकालेहाननिष्कफे ॥ ११७ ॥

यह सब चूर्ण सेक और अवलेह जब कफसे प्राणवायुकी गति संरुद्ध होगई हो तब प्राणवायुके मार्गकी शुद्धिके लिये सेवन कराने चाहिये। कफका संयोग न होनेपर इन सेक और अवलेहोंका प्रयोग नहीं कराना चाहिये ॥ ११७ ॥

कासिने च्छर्दनं दद्यात्स्वरभङ्गे च बुद्धिमान् ।
वातश्लेष्महरैर्युक्तं तमके तु विरेचनम् ॥ ११८ ॥
उदीर्य्यते भृशतरं मार्गरोधाद् वृहज्जलम् ।
यथा तथानिलस्तस्य मार्गं नित्यं विशोधयेत् ॥ ११९ ॥

हिचकी और श्वासमें खांसी और स्वरभेद हो तो वात और कफनाशक वमन द्रव्योंसे वमन करावे। यदि तमकश्वासमें खांसी और स्वरभंग हो तो वात और कफनाशक द्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये। जैसे वहतेहुए जलका मार्ग रोक देनेसे वह जल ऊपरको बढता चला आता है उसी प्रकार कफद्वारा वायुका मार्ग रुकजानेसे हिक्का और श्वास बढता जाता है इसलिये वायुके मार्गको शुद्ध कर देना चाहिये ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

शटयादिचूर्ण।

शटी चोरकजीवन्ती त्वङ्मुस्तं पुष्कराह्वयम् ।
सुरसं तामलक्येला पिप्पल्यगुरुनागरम् ॥ १२० ॥

बालकञ्च समं चूर्णं कृत्वाष्टगुणशर्करम्।
सर्वथा तमके श्वासे हिक्कायाञ्च प्रयोजयेत्॥ १२१॥

कचूर, चोरक, जीवन्ती, दालचीनी, नागरमोथे, पोहकरमूल, सुरसा, तुलसी भूमि आँवला, इलायची, पीपल, अगर, सोंठ और सुगंधवाला इन सबका बारीक चूर्णकर चूर्णसे आठगुनी खांड मिलावे। यह चूर्ण तमकश्वास और हिचकीको दूर करता है॥ १२०॥ १२१॥

मुक्तादिचूर्ण।

मुक्ताप्रवालवैडूर्य्यशंखस्फटिकमञ्जनम्।
संसारगन्धकौ चार्कसूक्ष्मैला लवणद्वयम्॥ १२२॥
ताम्रायोरजसी रूप्यं ससौगन्धिककशेरुकम्।
जातीफलं शणाद्बीजमपामार्गस्य तण्डुलाः॥ १२३॥
एषां पाणितलं चूर्णं तुल्यानां क्षौद्रसर्पिषा।
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च लीढमाशु नियच्छति॥ १२४॥

मोती, मूंगा, वैडूर्य, शंख, स्फटिक, अंजन, संसार, शुद्ध गंधक, आककी जड, छोटी इलायची, सेंधानमक, संचरनमक, ताम्रभस्म, लोहभस्म, रौप्यभस्म, सौगंधिक कमल, कसेरु, जायफल, सणके बीज और अपामार्गके बीज इन सबको समान भाग लेकर विधिवत् बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णमेंसे एक तोला अथवा उचित मात्रासे शहद और घृत मिला चाटे तो हिचकी,श्वास और खांसी शीघ्र दूर होती है२२-२४

अञ्जनात्तिमिरं काचं नीलिकं पुष्पकं तमः।
पैल्यं कण्डुमभिष्यन्दं मन्दञ्च तत्प्रणाशयेत्॥ १२५॥

यदि इसी मुक्तादि चूर्णका अंजन नेत्रोंमें लगायाजाय तो तिमिर, काच, नीलिका, फोला, पैल्ल, खाज, क्लेद, मंददृष्टि यह सब नेत्ररोग दूर होते हैं॥ १२५॥

अन्य योग।

शटीपुष्करमूलानां चूर्णमामलकस्य च।
मधुना संयुतं लेह्यं चूर्णं वा काललोहजम्॥ १२६॥

कचूर, पोहकरमूल और आँवलेका चूर्ण शहदमें मिलाकर अथवा कृष्ण लोहभस्मको शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास और हिचकी दूर होती है॥ १२६॥

सशर्करां तामलकीं द्राक्षां गोऽश्वशकृद्रसम्।
तुल्यं गुडं नागरञ्च प्राशयेन्नावयेत्तथा॥ १२७॥

खांड, भूमिआँवला, द्राक्षा, गोबरका रस और घोडेकी लीदका रस, गुड, सोंठ इन सबको मिलाकर चटानेसे अथवा सुंघानेसे हिचकी और श्वास दूर होती है॥१२७

हिचकीनाशक योग।

लशुनस्य पलाण्डोर्वा मूलं गृञ्जनकस्य वा ।
नावयेच्चन्दनं वापि नारीक्षीरेण संयुतम् ॥ १२८ ॥

लहसुन अथवा प्याज या सलजमका रस अथवा लालचन्दन स्त्रीके दूधमें मिलाकर नास लेनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १२८ ॥

सुखोष्णं घृतमण्डं वा सैन्धवेनावचूर्णितम् ।
नावयेन्मक्षिकाविष्ठामलक्तकरसेन वा ॥ १२९ ॥
स्त्रियाः स्तन्येन सिद्धं वा सर्पिर्मधुरकैरपि ।
पीतं नस्तो निषिक्तं वा सद्यो हिक्कां नियच्छति ॥ १३० ॥
सकृदुष्णं सकृच्छीतं व्यत्यासाद्धिक्किनां पयः ।
पाने नस्तः क्रियायां वा शर्करामधुसंयुतम् ॥ १३१ ॥

सेंधनमकको सुखोष्ण घृतमण्डमें मिला नस्य लेना अथवा मक्खीकी विष्ठाको लाखके रसमें मिलाकर नस्य लेवे अथवा स्त्रीकी दूधका नस्य लेवे अथवा मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये घृतको पीवे या नस्य लेवे तो हिचकी दूर होती है अथवा एक बार गर्म और एक वार शीतल दूध पीवे तो भी हिचकी शीघ्र नष्ट होजाती है, अथवा मिसरी और शहद दूधमें मिला नस्य लेवे तो हिचकी शान्त होजाती है ॥ १२९-१३१ ॥

अधोभागे घृतं सिद्धं सद्यो हिक्कां नियच्छति ।
पिप्पलीमधुयुक्तौ वा रसौ धात्रीकपित्थयोः ॥ १३२ ॥

अथवा विरेचनका द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीवे तो तत्काल हिचकी दूर होजाती है । अथवा पीपल और शहदके साथ आंवलेका रस या कैथका रस पीनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १३२ ॥

लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्वशकृद्रसान् ।
लिह्यात्कोलं मधुद्राक्षापिप्पलीनागराणि वा ॥ १३३ ॥

लाजा (खील), लाख, शहद, द्राक्षा, पीपल, घोडेके लीदका रस इनको मिलाकर चाटे अथवा उन्नावका छिलका, शहद, द्राक्षा, पीपल और सोंठको मिलाकर चाटे तो हिचकी दूर होती है ॥ १३३ ॥

हिचकीनाशक कर्म।

शीताम्बुसेकः सहसा त्रासो विस्मापनं भयम्।
क्रोधहर्षप्रियोद्वेगा हिक्काप्रच्यवना मताः ॥ १३४ ॥

अकस्मात् शीतल जल शरीरपर गेरदेना या सहसा त्रास देना, भुलादेना, भय, क्रोध, हर्ष, प्यारी वस्तुका उद्वेग यह सब हिचकीको दूर करनेवाले हैं ॥ १३४ ॥

निदानवर्जन।

हिक्काश्वासविकाराणां निदानं यत्प्रकीर्तितम्।
वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिक्काश्वासविकारिभिः ॥ १३५ ॥

हिक्का और श्वास रोगको उत्पन्न करनेवाले जो कारण कहे हैं उनको आरोग्यताकी इच्छावाला हिक्का और श्वास रोगी त्याग देवे ॥ १३५ ॥

हिक्काश्वासानुबन्धा ये शुष्कोरःकण्ठतालुकाः।
प्रकृत्या रूक्षदेहाश्च सर्पिर्भिस्तानुपाचरेत् ॥ १३६ ॥

हिचकी और श्वासके होनेसे छाती, कण्ठ और तालुका शोष हो तथा रोगी रूक्ष हो तो उसकी घृतोंद्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३६ ॥

दशमूलादि घृत।

दशमूलरसे सर्पिर्दधिमण्डे च साधयेत्।
कृष्णासौवर्चलक्षारवयस्थाहिङ्गुचोरकैः।
कायस्थया च संसिद्धं हिक्काश्वासौ प्रणाशयेत् ॥ १३७ ॥

दशमूलका क्काथ और दहीमण्ड यह दोनों घृतसे चौगुने ले, पीपल, संचरनमक, जवाखार, हरड, हींग, गठौना, आँवले इन सबका कल्क घृतसे चौथा भाग इनसें सिद्ध किया घृत हिचकी और श्वासको दूर करता है ॥ १३७ ॥

तेजोवत्यादि घृत।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी।
भूतीकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकः शटी ॥ १३८ ॥
सौवर्चलं तामलकी सैन्धवं बिल्वपेशिका।
तालीशपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मितैः ॥ १३९ ॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत्तोये चतुर्गुणे।
एतद्यथाबलं पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः।
शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव वा ॥ १४० ॥

तेजोवती, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पोहकरमूल, पलाश, चित्रक, संचरनमक, भूमि आँवला, सेंधानमक, विल्वके कोमल पत्र या कच्चे फल, तालीश-पत्र, जीवन्ती और वच यह सब एक एक कर्ष लेवे। हींग एक टंक लेवे, घृत एक प्रस्थ ले, पानी चार प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस घृतको यथाबल पीवे तो हिचकी, श्वास, सूजन, वायुकी बवासीर, ग्रहणी, हृद्रोग और पार्श्वपीडा यह सब दूर होते हैं॥ १३८–१४०॥

मनःशिलादि घृत।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजनिपद्मकैः।
मञ्जिष्ठैलैश्च कर्षांशैः प्रस्थः सिद्धो घृताद्धितः॥ १४१॥

मनसिल, राल, लाख, हल्दी, पद्मकाष्ठ, मजीठ और इलायची यह एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। इस कल्कसे सिद्ध किया घृत शीघ्र श्वास और हिचकीको दूर करता है॥ १४१॥

जीवनीयोपसिद्धं वा सक्षौद्रं लेहयेद् घृतम्।
त्र्यूषणं दार्विकं वापि पिबेद्वासाघृतं तथा॥ १४२॥

अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध किया घृत शहतमें मिला चाटे या वासाघृत अथवा दार्वीघृत या त्रिकुटादिघृत शहदमें मिलाकर चाटे तो हिचकी श्वास दूर होते हैं॥ १४२॥

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वासहिक्किने॥ १४३॥

वात और कफनाशक तथा उष्ण और वायुके अनुलोमन करनेवाले जितने द्रव्य औषध, अन्न पान आदि हैं वह सब हिचकी और श्वासमें हितकारक हैं॥ १४३॥

विशेष ज्ञातव्य।

वातकृद्वा कफहरं कफकृद्वाऽनिलापहम्।
कार्य्यं नैकान्तिकं ताभ्यां प्रायः श्रेयोऽनिलापहम्॥ १४४॥

जो द्रव्य वायुको करनेवाला और कफको हरनेवाला हो अथवा कफको करने-वाला और वायुको हरनेवाला हो इन दोनोंमेंसे किसी एकका भी श्वास और हिक्कामें अकेला प्रयोग करना उचित नहीं। परन्तु इनमें वातनाशक द्रव्य प्रायः अच्छा माना जाता है॥ १४४॥

सर्वेषां बृंहणैर्ह्यल्पः शक्यश्च प्रायशो भवेत्।
नात्यर्थं शमनोपायो भृशोऽशक्यश्च कर्शने॥ १४५॥

तस्माच्छुद्धानशुद्धांश्च शमनैर्बृंहणैरपि।

हिक्काश्वासार्दितान्जन्तून् प्रायशः समुपाचरेत् ॥ १४६ ॥

श्वास और हिचकीमें बृंहण द्रव्योंसे उपचार करते यदि कुछ अपचार होजाय तो अत्यल्प हानि होसकती है। और शमन द्रव्योंसे भी विशेष हानिकी संभावना नहीं, परंतु कर्षण द्रव्योंसे अत्यंत हानिकी संभावना है। इसलिये हिक्का और श्वासमें रोगीको शोधन करके अथवा विनाही शोधन किये बृंहण और शमन द्रव्योंसे ही चिकित्सा करना चाहिये ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकः–दुर्जयत्वे समुत्पत्तौ क्रियैकत्वे च कारणम्।

लिङ्गं पथ्यञ्च हिक्कानां श्वासानाञ्चेह दर्शितम् ॥ १४७ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने हिक्काश्वासचिकित्सितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि–हिक्का और श्वासकी दुर्जयता, समान उत्पत्ति, हेतुओंकी एकता और समान चिकित्सा तथा लक्षण और पथ्य यह सब इस हिक्काश्वास चिकित्सिताध्यायमें वर्णन किया है ॥ १४७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां हिक्काश्वासचिकित्सितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः।



अथातः कासचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम कासचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करते हैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

तपसा यशसा धृत्या धिया च परयान्वितः।

आत्रेयः कासशान्त्यर्थं सिद्धं प्राह चिकित्सितम् ॥ १ ॥

तपसे, यशसे, धारणासे और श्रीसे सर्वोत्कृष्टताको प्राप्त हुए आत्रेयजी कास (खांसी) की शांतिके लिये सिद्ध चिकित्साको कहनेलगे ॥ १ ॥

खांसीके भेद।

वातादिभ्यस्त्रयो ये च क्षतजः क्षयजस्तथा।

स्युः पञ्चैते नृणां कासा वर्द्धमानाः क्षयप्रदाः ॥ २ ॥

वह खांसी वात, पित्त, कफ इनसे तीन प्रकारकी और एक क्षतसे तथा एक क्षयसे इस प्रकार सब खांसिएं पांच प्रकारकी होती हैं। खांसी वृद्धिको प्राप्त होनेसे क्षय रोगको उत्पन्न कर देती है ॥ २ ॥

कासके पूर्वरूप।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता।

कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ३ ॥

गला और मुख शूकों (सूक्ष्मकांटों) से भराहुआसा प्रतीत हो, कण्ठमें खुजली हो, जो पदार्थ खाया पीया जाय वह कंठमें रुककर जाताहुआ प्रतीत हो यह खांसीके पूर्वरूप हैं ॥ ३ ॥

कासकी सम्प्राप्ति।

अधःप्रतिहतो वायुरूर्ध्वस्रोतःसमाश्रितः।

उदानभावमापन्नः कण्ठे सक्तस्तथोरसि ॥ ४ ॥

आविश्य शिरसः खानि सर्वाणि प्रतिपूरयन्।

आभञ्जन्नाक्षिपन् देहं हनुमन्ये तथाक्षिणी।

नेत्रे पृष्ठमुरःपार्श्वे निर्भुज्य स्तम्भयंस्ततः ॥ ५ ॥

जब समान वायु नीचेसे प्रतिहत होकर ऊपरके स्रोतोंमें आश्रित होजाती है तब उदानवायुसे मिलकर कंठ और छातीमें अटक जाती है फिर शिरके संपूर्ण छिद्रोंको पूर्ण करके शरीरमें तोडन और विक्षेपण करतीहुई हनु, मन्या और दोनों नेत्रोंको विकलसे कर देती है तथा नेत्र, पीठ, छाती और पार्श्वभागमें तोडनेकीसी व्यथा और स्तंभको करती हुई खांसीको करती है अर्थात् खांसीके रूपसे उठती है ॥४॥५॥

कासशब्दकी निरुक्ति।

शुष्को वा सकफो वापि कसनात्कास उच्यते ॥ ६ ॥

वह खांसी सूखी हो अथवा कफयुक्त हो यह कसन करनेसे कास कही जाती है अर्थात् खांसनेसे इसको खांसी कहते हैं ॥ ६ ॥

प्रतिघातविशेषेण तस्य वायोः सरंहसः।

वेदनाशब्दवैषम्यं कासानामुपजायते ॥ ७ ॥

खांसीमें वायुका वेग नीचेसे प्रतिहत होकर ऊर्ध्वको जाता है इसलिये खांसीमें पीडायुक्त विषम शब्द होता है ॥ ७ ॥

वातजकासके हेतु।

रूक्षशीतकषायाल्पप्रमितानशनं स्त्रियः।
वेगधारणमायासो वातकासप्रवर्त्तकाः ॥ ८ ॥

रूक्ष, शीतल, कषैले पदार्थोंके सेवनसे, अल्प भोजन और मितभोजनके करनेसे, उपवास करनेसे, मैथुन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और अतिपरिश्रम करनेसे वातज खांसी उत्पन्न होती है। अथवा यों कहिये यह सब वातज कासके प्रवृत्त करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

वातजकासके लक्षण।

हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरो भृशम्।
शुष्कोरःकण्ठवक्त्रास्यहृष्टलोम्नः प्रताम्यतः ॥ ९ ॥
निर्घोषदैन्यक्षामस्य दौर्बल्यक्षयमोहकृत्।
शुष्ककासः कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतां व्रजेत् ॥ १० ॥
स्निग्धाम्ललवणोष्णैश्च भुक्तमात्रे प्रशाम्यति।
ऊर्ध्ववातस्य जीर्णेऽन्ने वेगवान् मारुतो भवेत् ॥ ११ ॥

हृदय, पार्श्व, छाती और शिरमें पीडा, स्वरका फटाहुआसा होना, वक्षःस्थल (छाती), कंठ और मुखमें शोष होना, रोमांच होना, ग्लानि, खांसते खांसते अंधकारसा प्रतीत होने लगना, खांसीका प्रबल शब्द होना, रोगीका दीन होजाना तथा कृशता, दुर्बलता और मोह होना, खाँसी सूखी होना, सूखीहुईसी कफका कठिनतासे निकलना फिर कुछ कालके लिये हलकी होजाना, इस खांसीमें चिकने, नमकीन, खट्टे और गर्म पदार्थोंको खानेसे शांति होना तथा भोजन करनेपर शांतिका प्रतीत होना, अन्नके जीर्ण होनेपर फिर ऊर्ध्ववात (खांसी) वेग बलपूर्वक उठना यह वातज खांसीके लक्षण हैं ॥ ९-११ ॥

पित्तजकासके हेतु।

कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवनम्।
पित्तकासकरः क्रोधः सन्तापश्चाग्निसूर्य्यजः ॥ १२ ॥

कटु, उष्ण, विदाही, अम्ल और क्षार पदार्थोंका अधिक सेवन करनेसे तथा, क्रोध, अग्निका संताप और धूपके अधिक सेवनसे पित्तकी खांसी उत्पन्न होती है ॥ १२ ॥

पित्तजकासके लक्षण।

पीतनिष्ठीवनाक्षत्वं तिक्तास्यत्वं स्वरामयः।
उरो धूमायनं तृष्णा दाहो मोहोऽरुचिर्भ्रमः॥ १३॥
प्रततं कासमानश्च ज्योतींषीव च पश्यति।
श्लेष्माणं पित्तसंसृष्टं निष्ठीवति च पैत्तिके॥ १४॥

पीले वर्णका कफ थूकना, नेत्रोंका पीला होना, मुखमें कडुआहट, स्वरभंग, छातीमें धूआंसा उठना, प्यास, दाह, अरुचि, भ्रम, अत्यन्त खांसी होनेके समय नेत्रोंके आगे तारेसे चमकना, पित्त मिलेहुए कफका निकलना यह पित्तकी खांसीके लक्षण हैं॥ १३॥ १४॥

कफकासके हेतु।

गुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः।
वृद्धः श्लेष्माऽनिलं रुद्ध्वा कफकासं करोति हि॥ १५॥

भारी, अभिष्यन्दी, मीठे और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनसे, दिनमें सोनेसे परिश्रम न करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ वायुको रोककर कफकी खांसीको उत्पन्न करता है॥ १५॥

कफकासके लक्षण।

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसोत्क्लेशगौरवैः।
लोमहर्षास्यमाधुर्य्यक्लेदसंसदनैर्युतम्॥ १६॥
बहुलं मधुरं स्निग्धं निष्ठीवति घनं कफम्।
कासमानोऽतिरुग्वक्षः सम्पूर्णमिव मन्यते॥ १७॥

मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, प्रतिश्याय, कफका उत्क्लेश, शरीरका भारीपन, लोमहर्ष, मुखमें मधुरता, क्लेद, अंगोंका अवसाद, मीठा, चिकना, गाढा और बहुतसा कफ निकलना, खांसतेहुए छाती कफसे भरीहुई प्रतीत होना यह कफकी खांसीके लक्षण हैं॥ १६॥ १७॥

क्षतज कासके हेतु।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः।
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत्॥ १८॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, अधिक भार उठानेसे, अत्यन्त मार्गके चलनेसे, बलपूर्वक हाथी, घोडे आदिको रोकनेसे, युद्ध करनेसे, रूक्ष मनुष्योंके छातीमें क्षत (घाव) होता है। उससे वायुका पीडन होकर क्षतज खांसी उत्पन्न होती है॥ १८॥

क्षतकासके लक्षण।

स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम्।
रुजमानेन कण्ठेन विरुग्णेनैव चोरसा ॥ १९ ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना।
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ २० ॥
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यपीडितः।
पारावत इवाकूजन् कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ २१ ॥

इस क्षतज कासमें पहिले तो मनुष्यको सूखी खासी होती है फिर रुधिर मिली कफ आने लगती है और कण्ठमें अत्यन्त पीडा तथा हृदयमें पीडा होती है तथा छातीमें सूई चुभानेकीसी पीडा प्रतीत होती हैं। मारे शूलके और भेदनकीसी पीडाके छातीका स्पर्श करना सहन नहीं होसकता तथा पर्वभेद, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरका बिगडना इनसे पीडा होती है। खांसते हुए कबूतरके कूंजनेकासा शब्द होता है। यह क्षतज कासके लक्षण हैं ॥ १९–२१ ॥

क्षयजकासके हेतु।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात्।
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥ २२ ॥
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्य्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ २३ ॥

विषम और असात्म्य भोजनके अतिसेवनसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, मलमूत्रादि-वेगोंको रोकनेसे, किसी प्रकारके घृणा और शोकके अत्यन्त होजानेसे, मनुष्योंकी अग्नि व्यापन्न (खिन्न मन्द) होजानेसे तीनों दोष कुपित होकर धातुओंका क्षय करके क्षयज खांसीको उत्पन्न करते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

क्षयजकासके लक्षण।

दुर्गन्धं हरितं रक्तं ष्ठीवेत्पूयोपमं कफम्।
स्थानादुत्कासमानश्च हृदयं मन्यते च्युतम्।
अकस्मादुष्णशीतार्त्तो बह्वाशी दुर्बलः कृशः ॥ २४ ॥
स्निग्धाच्छमुखवर्णत्वक्श्रीमद्दर्शनलोचनैः।
पाणिपादतलौ श्लक्ष्णौ सततासूयको घृणी ॥ २५ ॥

---

१ 'श्रीमद्दशनलोचनैः' कहीं ऐसा पाठ है कि दांत और नेत्र चमकीले खूबसूरत हों।

ज्वरो मिश्राकृतिस्तस्य पार्श्वरुक्पीनसोऽरुचिः।
भिन्नसंघातवर्चस्त्वं स्वरभेदोऽनिमित्ततः॥ २६॥
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः॥ २७॥

तब दुर्गंधयुक्त हरित, लाल और राधके समान कफ खांसीमें आने लगता है। खांसते समय ऐसा प्रतीत हो कि हृदय अपने स्थानसे गिरासा जाता है। रोगीको अकस्मात् अत्यंत शीत या अत्यंत गर्मी प्रतीत हो, बहुतसा भोजन करनेपर भी शरीर दुर्बल और कृश होताजाय, मुख चिकना और स्वच्छ प्रतीत हो, त्वचा और नेत्र सुन्दर दिखाई पडें, हाथों और पांवोंके तलुवे नर्म चिकने होजांय, निरन्तर सबकी निन्दा करे और सबसे घृणा करने लगजाय, रोगीका स्वर तीनों दोषोंकी मिली आकृतिवाला हो तथा पार्श्वपीडा, प्रतिश्याय, अरुचि, मलका फटा हुआसा आना, अकस्मात् स्वरभंग होना यह क्षयज कासके लक्षण हैं। यह कास क्षीण पुरुषोंकी देहको नष्ट करनेवाला है॥ २४–२७॥

खांसीकी साध्यासाध्यता।

याप्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः।
कदाचिदपि सिध्येतामेतौ पादगुणान्वितौ।
स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्त्तितः॥ २८॥
त्रीन् साध्यान् साधयेत्पूर्वान् पथ्यैर्याप्यांश्च यापयेत्।
चिकित्सामत ऊर्द्धन्तु शृणु कासनिबर्हिणीम्॥ २९॥

बलवान् मनुष्योंकी क्षयज और क्षतज खांसी याप्यसाध्य होती हैं। चिकित्साके चारों पाद संपन्न होनेपर क्षयज और क्षतजकास साध्य भी होजाती है। वृद्ध मनुष्योंकी बुढापेकी खांसी सब प्रकारकी ही याप्य होती है। वातज, पित्तज और कफज खांसी साध्य होती है। इनमें वातादि तीन प्रकारकी खांसियोंको औषधद्वारा शान्त करे और याप्यसाध्य खांसियोंमें पथ्यद्वारा अथवा सर्वगुणसंपन्न होनेपर पथ्य और औषधद्वारा यापन करता रहे। अब इसके उपरांत खांसीके दूर करनेवाली चिकित्साका श्रवण करो॥ २८॥ २९॥

वात कास (खांसी) की चिकित्सा।

रूक्षस्यानिलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेत्।
सर्पिर्भिर्बस्तिभिः पेयायूषक्षीररसादिभिः॥ ३०॥
वातघ्नसिद्धैः स्नेहाद्यैर्धूमैर्लेहैश्च युक्तितः।

अभ्यङ्गैः परिषेकैश्च स्निग्धैः स्वेदैश्च बुद्धिमान् ॥ ३१ ॥

रूक्ष मनुष्योंकी वातजखांसीमें स्नेहोंद्वारा चिकित्सा करना चाहिये तथा घृत, स्निग्धवस्ति, पेया, क्षीर, यूष और रसादिकोंका प्रयोग करना चाहिये। और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत तैलादिकोंसे तथा धूम लेहादिकोंसे युक्ति पूर्वक चिकित्सा करे और बुद्धिमान् वैद्य अभ्यंग, परिषेक, स्निग्धस्वेदका प्रयोग करे॥३१

बस्तिभिर्बद्धविड्वातं शुष्कोर्द्ध्वञ्चोर्द्ध्वभक्तिकैः।

घृतैः सपित्तं सकफं जयेत्स्नेहविरेचनैः ॥ ३२ ॥

यदि मल और अधोवायु बद्ध होगई हो तो वस्तिकर्म करे। ऊर्ध्वभागमें वायुके शुष्क होजानेसे उत्तरभक्तिक (भोजनोत्तर) घृतपान करावे। यदि वातज खांसीमें पित्त और कफका भी अनुबंध हो तो स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ३२ ॥

कण्टकारिघृत।

कण्टकारीगुडूचीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे।

प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः ॥ ३३ ॥

कटेली तीस पल, गिलोय तीस पल इनका क्काथ कर उस क्काथसे १ प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह घृत वातज खांसीको नष्ट करनेवाला और अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ३३ ॥

पिप्पलीघृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।

धान्वपाठावचारास्नायष्टयाह्वक्षारहिङ्गुभिः ॥ ३४ ॥

कोलमात्रैर्घृतप्रस्थाद्दशमूलीरसाढके।

सिद्धां चतुर्थिकां पीत्वा पेयामण्डं पिबेदनु ॥ ३५ ॥

तच्छ्वासकासहृत्पार्श्वग्रहणीदोषगुल्मनुत्।

पिप्पल्याद्यं घृतञ्चैतदात्रेयेण प्रकीर्त्तितम् ॥ ३६ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, धनिया, पाठा, वच, रासना, मुलैठी, जवाखार और हींग यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे। घृत एक प्रस्थ, दशमूलका क्काथ एक आढक इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत नित्य ४ तोला प्रमाण पीयाकरे। ऊपरसे पेयामण्डका अनुपान करे तो श्वास, खांसी, हृत्शूल, पार्श्वपीडा और ग्रहणीदोष यह सब नष्ट होते हैं। यह पिप्पलादिघृत आत्रेयजीका कथन किया है ॥ ३४–३६ ॥

त्र्यूषणादि घृत।

त्र्यूषणं त्रिफलां द्राक्षां काश्मर्य्याणि परूषकम्।
द्वे पाठे देवदार्वृद्धिं स्वगुप्तां चित्रकं शटीम् ॥ ३७ ॥
ब्राह्मीं तामलकीं मेदां काकनासां शतावरीम्।
त्रिकण्टकां विदारीञ्च पिष्ट्वा कर्षसमं घृतात् ॥ ३८ ॥
प्रस्थं चतुर्गुणक्षीरं सिद्धं कासहरं पिबेत्।
ज्वरगुल्मारुचिप्लीहशिरोहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ३९ ॥
कामलार्शोऽनिलाष्ठीलाक्षतशोषक्षयापहम्।
त्र्यूषणं नाम विख्यातमेतद् घृतमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, द्राक्षा, कुम्भेर, फालसा, पाठा, सोनापाठा, देवदारु, ऋद्धि, कोंचके बीज, चित्रक, कचूर, ब्राह्मी, भूमिआँवला, मेदा, काकनासा, शतावर, गोखरू, विदारीकंद इन सबको एक एक कर्ष लेवे। इनमें त्रिफला और त्रिकुटा तीन तीन कर्ष लेना चाहिये। घी एक प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ, सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस घृतके पान करनेसे खांसी नष्ट होती है तथा ज्वर, गुल्म, अरुचि, प्लीह-रोग, शिर, हृदय और पार्श्वकी पीडा, कामला, अर्श, वाताष्ठीला, क्षत, शोष और क्षयरोग यह सब नष्ट होते हैं। यह परमोत्तम त्र्यूषण नामसे विख्यात घृत है॥४०॥

रास्नादि घृत।

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्नां दशमूलीं शतावरीम्।
पलिकान्माणिकांशांस्तु कुलत्थान्बदरान्यवान् ॥ ४१ ॥
तुलार्द्धञ्चाजमांसस्य पादशेषेण तेन च।
घृताढकं समक्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ४२ ॥
सिद्धं तद्दशभिः कल्कैर्नस्यपानानुवासनैः।
समीक्ष्य वातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥
पञ्चकासाञ्छिरःकम्पं शूलं वंक्षणयोनिजम्।
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च सप्लीहोर्द्ध्वानिलाञ्जयेत् ॥ ४४ ॥

रासना, दशमूलकी दश औषधियें और शतावर इन १२ द्रव्योंको एक एक पल लेवे। कुल्थी, बेर और यव इनको एक एक पल लेवे। बकरेका मांस आधा तुला लेवे। इन सबको मिलाकर आठगुने जलमें पकावे। जब चौथा भाग रहे उतारकर

छान लेवे । घी १ आढक, दूध १ आढक, जीवनीयगणकी दश औषधियें एक एक पल लेकर चूर्ण करे । फिर सबको एकत्र मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । यह घृत वातरोगोंमें बल अवस्था आदि विचारकर पीनेमें,नस्यादि कर्मोंमें प्रयुक्त करे । इसके सेवनसे पांच प्रकारकी खांसी, शिरका कांपना, वंक्षणोंकी पीडा, योनिशूल, सर्वांगरोग एकांगरोग और प्लीहरोग तथा ऊर्द्ध्वजत्रुगत वायुकी शान्ति होती है ॥ ४१-४४ ॥

विडंगादि चूर्ण ।

विडङ्गं नागरं रास्ना पिप्पलीहिङ्गुसैन्धवैः ।
भार्ङ्गीक्षारश्च तच्चूर्णं पिबेद्वा घृतमात्रया ॥ ४५ ॥
सकफेऽनिलजे कासे श्वासहिक्काहताग्निषु ॥ ४६ ॥

वायविडंग, सोंठ, रासना, पीपल, हींग, सेंधानमक, भारंगी और जवाखार इनका चूर्ण बनाकर ४ गुने घृतके साथ सेवन करे तो कफमिश्रित वातजनित खांसी तथा श्वास, हिचकी और मन्दाग्नि यह सब दूर होते हैं॥ ४५ ॥४६॥

द्विक्षारादि चूर्ण ।

द्वौ क्षारौ पञ्चकोलानि पञ्चैव लवणानि च ।
शटीनागरकोदीच्यकल्कं वा वस्त्रगालितम् ।
पाययेत घृतोन्मिश्रं वातकासनिबर्हणम् ॥ ४७ ॥

जवाखार, सज्जीखार, पंचकोल, पांचों नमक, कचूर, सोंठ और नेत्रवाला इन सबका बारीक कल्क कर वस्त्रमें छानलेवे। फिर घृतमें मिला पान करे तो वातकी खांसी दूर होती है ॥ ४७ ॥

अन्य प्रयोग ।

दुरालभां शटीं द्राक्षां शृङ्गवेरं सितोपलाम् ।
लिह्यात्कर्कटशृङ्गीञ्च कासे तैलेन वातजे ॥ ४८ ॥

जवासा, कचूर, द्राक्षा, अदरख और काकडासिंगी तथा मिसरी इन सबको बारीक पीसकर वातनाशक तेलमें मिला पानकरे तो वायुकी खांसी दूर होती है॥ ४८ ॥

दुःस्पर्शां पिप्पलीं मुस्तं भार्ङ्गीं कर्कटकीं शटीम् ।
पुराणगुडतैलाभ्यां चूर्णितं वापि लेहयेत् ॥ ४९ ॥
विडङ्गं सैन्धवं कुष्ठं व्योषं हिङ्गु मनःशिलाम् ।
मधुसर्पिर्युतं कासहिक्काश्वासं जयेल्लिहन् ॥ ५० ॥

जवासा, पीपल, नागरमोथा, भार्ङ्गी, काकडासिंगी, कचूर इन सबके चूर्णको पुराने गुड और तेलमें मिला चाटे। अथवा बायबिडंग, सेंधानमक, कूठ, त्रिकुटा, हींग, मनसिल इन सबका चूर्ण बनाकर घृत और शहदमें मिला चाटे तो खांसी, हिचकी और श्वासको दूर करता है॥ ४९॥ ५०॥

चित्रकादि अवलेह।

चित्रकं पिप्पलीमूलं व्योषं हिङ्गु दुरालभाम्।
शटीं पुष्करमूलञ्च श्रेयसीं सुरसां वचाम्॥ ५१॥
भार्ङ्गीं छिन्नरुहां रास्नां शृङ्गीं द्राक्षाञ्च कार्षिकान्।
कल्कानर्द्धतुलाक्वाथे निदिग्ध्याः पञ्चविंशतिम्॥ ५२॥
दत्त्वा मत्स्यण्डिकायाश्च घृताच्च कुडवं पचेत्।
सिद्धं शीतं प्रियक्षौद्रपिप्पलीकुडवान्वितम्॥ ५३॥
चतुष्पलं तुगाक्षीर्य्याश्चूर्णितं तत्र दापयेत्।
लेहयेत्कासहृद्रोगश्वासगुल्मनिवारणम्॥ ५४॥

चित्रक, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, जवासा, कचूर, पोहकरमूल, गजपीपल, तुलसी, वच, भारंगी, गिलोय, रासना, काकडासिंगी, मुनक्का इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे। कटेलीका क्वाथ आधा तुला, मिसरी २० पल, घी एक कुडव इन सबका पाक करे। जब पकते २ गाढा होजाय तो नीचे उतारकर ठण्ढा करे। फिर इसमें एक कुडव शहद, एक कुडव पीपलका चूर्ण और चार पल वंशलोचनका चूर्ण मिलावे। इसमेंसे एक एक तोला दोनों समय चाटनेसे खांसी, हृद्रोग, श्वास और गुल्म नष्ट होते हैं॥ ५१-५४॥

अगस्त्यहरीतकी।

दशमूलीं स्वयंगुप्तां शंखपुष्पीं शटीं बलाम्।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान्॥ ५५॥
भार्ङ्गीं पुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यवाढकम्।
हरीतकीशतञ्चैकं जलपञ्चाढके पचेत्॥ ५६॥
यवे स्विन्ने कषायं तं पतन्तञ्चाभयाशतम्।
पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवञ्च पृथग् घृतात्॥ ५७॥
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात्।

लिह्याद् द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ॥ ५८॥
तद्वलीपलितं हन्ति वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ।
पञ्चकासान् क्षयं श्वासं हिक्कां सविषमज्वराम् ॥ ५९ ॥
हन्यात्तथार्शोग्रहणीहृद्रोगारुचिपीनसान् ।
अगस्त्यविहितं श्रेष्ठं रसायनमिदं शुभम् ॥ ६० ॥

दशमूलकी दश औषधियें, कौंचके बीज, शंखपुष्पी, कचूर, बला, गजपीपल, अपामार्ग, पीपलामूल, चित्रक, भारंगी, पोहकरमूल यह सब दो दो पल लेवे। यव एक आढक, इन सबको ९ आढक जलमें पकावे। और इसमें उत्तम पकीहुई १०० हरडोंको पतलेसे वस्त्रमें ढीलासा बांधकर छोड देवे। जब पकते २ यव भली प्रकार गलजांय और पानी चौथा भाग रहजाय तो उतारकर छानलेवे और उन हरडोंको अलग निकाल लेवे। इस काथमें १ तुला गुड, १ कुडव घृत और १ कुडव तैल मिलाकर पकावे। उन १०० हरडोंको भी सूई आदिसे सर्वतः छेदकर उस गुडकी चासनीमें मिला देवे। और जब पकते २ गाढा होजाय तो इसको उतारकर शीतल करे। इसमें पीपलका चूर्ण १ कुडव और शहद १ कुडव मिलावे। फिर इसको उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे। इसमेंसे दो हरडे खाकर ऊपरसे अग्निबल विचारकर यह अवलेह चाटे। इस रसायनके नित्य सेवन करनेसे वलीपलित दूर हो वर्ण आयु और बलकी वृद्धि हो तथा पांच प्रकारकी खांसी, क्षय, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, बवासीर, ग्रहणीविकार, हृद्रोग, अरुचि और पीनस इन सबको नष्ट करती है। यह अगस्त्यऋषिकी कहीहुई अगस्त्यहरीतिकी नामक रसायन है॥ ५९-६० ॥

अन्य योग।

सैन्धवं पिप्पलीं भार्ङ्गीं शृङ्गवेरं दुरालभाम् ।
दाडिमाम्लेन कोष्णेन भार्ङ्गीं नागरमम्बुना ॥ ६१ ॥
पिबेत्खदिरसारं वा मदिराक्षधिमस्तुभिः ।
अथवा पिप्पलीकल्कं घृतभृष्टं ससैन्धवम् ॥ ६२ ॥

सेंधानमक, पीपल, भारंगी, सोंठ और जवासेका चूर्ण दाडिमके रसके साथ पीवे अथवा भारंगी और सोंठके चूर्णको गर्मजलके साथ पीवे या खैरसारको मद्य अथवा दहीके जलके साथ पीवे या पीपलके कल्कको सेंधानमक मिला घीमें भूनकर सेवन करे तो वातज खांसी दूर होवे॥ ६१ ॥ ६२ ॥

धूम्रप्रयोग।

शिरसः सदने स्रावे नासाया हृदि ताम्यति ।

कासप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥
दशाङ्गुलोन्मितां नाडीमथवाष्टांगुलोन्मिताम् ।
शरावसंपुटच्छिद्रे कृत्वा जिह्मां विचक्षणः ॥ ६४ ॥
वैरेचनं मुखेनैव कासवान् धूममापिबेत् ।
तमुरःकेवलं प्राप्तं मुखेनैवोद्धमेत्पुनः ॥ ६५ ॥
सह्यस्य तैक्ष्ण्याद्विक्षिण्यश्लेष्माणमुरसि स्थितम् ।
निष्कृष्य शमयेत्कासं वातश्लेष्मससुद्भवम् ॥ ६६ ॥

यदि खांसी और प्रतिश्यायमें मस्तकपीडा, नासास्राव और हृदयकी पीडासे रोगी व्याकुल हो तो वैद्य उसको धूमपान करावे। धूमपानका नल दश अंगुल लम्बा अथवा आठ अंगुल किंचित् टेढा होना चाहिये। दो शरावोंके अन्दर औषधियें रखकर उन दोनोंशरावोंका संपुटकर और शरावमें छिद्र कर उस छिद्रमें धूमपानकी नाल लगाना चाहिये । फिर उस नालद्वारा शरावके अन्दरसे वातनाशक विरेचक द्रव्योंका धूआं खांसीवाला रोगी नालको मुख लगाकर पीवे । फिर उस धूएंको मुखसे छाती तक पहुंचा मुखद्वारा ही निकालदे । इस प्रकार पीयाहुआ धूम छातीमें चिपटीहुई कफको निकालकर कफयुक्त वायुकी खांसीको दूर करदेता है॥६३-६६॥

मनःशिलासमधुकमांसीमुस्तेङ्गुदैः पिबेत् ।
धूमं तस्यानु च क्षीरं सुखोष्णं सगुडं पिबेत् ॥ ६७ ॥
एष कासान्पृथग्दोषसन्निपातोद्भवाञ्जयेत् ।
प्रसह्यापरिसंसिद्धानन्यैर्योगशतैरपि ॥ ६८ ॥

मनसिल, मुलैठी, जटामांसी, नागरमोथा और गोंदनीके फूलका धूआं उपरोक्त विधिसे पीवे । धूमपानके अनन्तर गुड मिला सुखोष्ण दूध पीवे । यह योग वातादि पृथक् २ दोषोंसे उत्पन्न हुई खांसीको तथा सन्निपातसे उत्पन्नहुई खांसीको बलात्कारसे दूर करदेता है । जो खांसी अन्य अनेक योगोंके सेवनसे भी शान्त न हुई हो उसको यह योग अपने बलसे दूर करदेता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं शार्ङ्गेष्टां समनःशिलाम् ।
मरिचं पिप्पलीं द्राक्षामेलां सुरसमञ्जरीम् ॥ ६९ ॥
कृत्वा वर्तिं पिबेद्धूमं क्षौमचेलानुवर्तिताम् ।
घृताक्तामनु च क्षीरं गुडोदकमथापि वा ॥ ७० ॥

पंज्यारेकी छाल, मुलैठी, महाकरंज, मनसिल, मिर्च, पीपल, मुनक्का, छोटी इलायची, तुलसीकी मंजरी इन सबको बारीक पीसकर कौशेय वस्त्रमें लपेटकर बत्ती बनावे। इस बत्तीको घृतमें भिगो धूमपान करे। ऊपरसे दूध अथवा गरम किया गुडोदक पीवे॥ ६९॥ ७०॥

मनःशिलैलामरिचक्षाराञ्जनकुटन्नटैः।
वंशलोचनशैवालक्षौमालक्तकरोहिषैः॥ ७१॥
पूर्वकल्पेन धूमोऽयं सानुपानो विधीयते।
तालं मनःशिला तद्वत् पिप्पलीनागरैः सह॥७२॥
त्वगेङ्गुदीबृहत्यौ द्वे तालमूलं मनःशिलाः।
कार्पासास्थ्यश्वगन्धा च धूमः कासविनाशनः॥ ७३॥

मनसिल, इलायची, मिर्च, जवाखार, अंजन, केवटीमोथा, वंशलोचन, पानीकी काई, अलसी, लाख, रोहिषतृण इन सबको बारीक पीसकर पूर्वोक्त विधिसे धूमपान करे। फिर गरम दूध और गुडका पान करे। अथवा मनसिल, हरताल, पीपल, सोंठ इन सबके चूर्णकी बत्ती बना धूमपान करे। अथवा गोंदनीकी छाल, कटेली, बडी कटेली, मुसली, मनसिल, कपासके बीज और असगंध इन सबको बारीक कूटकर उपरोक्त विधिसे धूमपान करे तो उपरोक्त गुण होते हैं तथा वात और कफकी खांसी दूर होती है॥ ७१–७३॥

वातज खांसीमें पथ्य।

ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान्।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा दापयेद्धितान्॥ ७४॥

बकरी आदि ग्राम्यजीव, अनूपसंचारी जीव और जलज जीवोंके मांसरसके साथ शालिचावल, यवान्न, गोधूम और शाठीके चावलोंका अन्न देवे। अथवा कौंचके बीजोंसे सिद्ध किये यूषके साथ देवे॥ ७४॥

कासनाशक पेया।

यमानीपिप्पलीबिल्वमध्यनागरचित्रकैः।
रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशटिपौष्करैः॥ ७५॥
स्निग्धाम्ललवणां सिद्धां पेयामनिलजे पिबेत्।
कटीहृत्पार्श्वकोष्ठार्त्तिश्वासहिक्काप्रणाशिनीम्॥ ७६॥

अजवायन, पीपल, बेलगिरी, सोंठ, चित्रक, जीरा, रासना, पृष्ठपर्णी, ढाकके खगे, कचूर और पोहकरमूल इन सबका काथकर उस काथमें अनारकी खटाई,

सेंधानमक और घृत मिला सिद्ध कीहुई पेया वातजनित खांसी, कमर, छाती और पार्श्वकी पीडा, कोष्ठशूल, श्वास और हिचकीको नष्ट करती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

दशमूलरसे तद्वत्पञ्चकोलगुडान्विताम् ।
सिद्धां समतिलां दद्यात्क्षीरे वापिससैन्धवाम् ॥ ७७ ॥

दशमूलके क्काथमें पंचकोल और गुड डालकर सिद्ध कीहुई पेया अथवा तिल और सेंधानमकके साथ दूधमें सिद्ध कीहुई पेया सेवन करनेसे वातज खांसी दूर होती है ॥ ७७ ॥

मत्स्यकुक्कुटवाराहैरामिषैर्वा घृतान्वितैः ।
सिद्धां ससैन्धवां पेयां वातकासी पिबेन्नरः ॥ ७८ ॥

मछली, मुर्गा और सूअरके मांसके साथ सिद्ध कीहुई पेया घृत और सेंधानमक युक्तकरके वातज खांसीवाला मनुष्य पीवे ॥ ७८ ॥

वातज खांसीमें शाकादि ।

वास्तुकं वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् ।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्या क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ ७९ ॥
दध्यारनालाम्लफलप्रसन्नापानमेव च ।
शस्यते वातकासे तु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ ८० ॥

बथुआका साग, मकोयका साग, मूली, चौपतिया साग, तैलादि स्नेह, दूध, ईखका रस और गुडके बने पदार्थ, दही, कांजी, बिजौरा, अनार, प्रसन्ना तथा मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ यह वातकी खांसीमें हितकारक द्रव्य हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

पित्तजकासकी चिकित्सा ।

पैत्तिके सकफे कासे वमनं सर्पिषा हितम् ।
तथा मदनकाश्मर्य्यमधूकक्काथितैर्जलैः ॥ ८१ ॥
यष्ट्याह्वफलकल्कैर्वा विदारीक्षुरसायुतैः ।
हृतदोषस्ततः शीतं मधुरञ्च क्रमं भजेत् ॥ ८२ ॥

पित्तजनित खांसीमें जो कफ प्रबल हो तो घृतके योगसे वमन कराना चाहिये तथा मैनफल, कुंभेरके फल और मुलैठीके क्काथसे वमन कराना हित है। या मुलैठीकी जडका कल्क विदारीकंदका रस और ईखका रस मिला पिलाकर वमन करावे। वमनद्वारा दोषोंके निकलजानेपर शीतल और मधुर द्रव्योंद्वारा चिकित्सा करे ८१॥८२

पैत्ते तनुकफे कासे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् ।
दद्याद्घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थे युतां भिषक् ॥ ८३ ॥
स्निग्धशीतस्तनुकफे रूक्षशीतः कफे घने ।
क्रमः कार्य्यः परं भोज्यैः स्नेहैर्लेहैश्च शस्यते ॥ ८४ ॥

जिस पित्तकी खांसीमें कफका पतलापन होय तो मधुर द्रव्यके साथ निशोथका चूर्ण मिला पिलावे उससे विरेचन करावे । यदि पित्तज खांसी कफ गाढी हो तो निशोथके चूर्णको तिक्त द्रव्योंके साथ सेवन करावे । यदि कफ पतली और थोडी हो तो स्निग्ध और शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करे । यदि पित्तज खांसी कफ गाढी और अधिक हो तो रूक्ष शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करे । इसी प्रकार अल्प कफ युक्त पित्तज खांसीमें स्निग्ध और शीतल लेहादिकोंका विरेचन करावे । यदि कफ अधिक और गाढा हो तो पित्तज खांसीमें रूक्ष और शीतल लेह आदि सेवन करावे॥

शृङ्गाटकं पद्मबीजं नीली साराणि पिप्पली ।
पिप्पली मुस्तयष्ट्याह्वद्राक्षा मूर्वा महौषधम् ॥ ८५ ॥
लाजामृतफला द्राक्षा त्वक्क्षीरी पिप्पली सिता ।
पिप्पली पद्मको द्राक्षाबृहत्याश्च फलाद्रसः ॥ ८६ ॥
खर्जूरं पिप्पली वांशी श्वदंष्ट्रा चेति पञ्च ते ।
घृतक्षौद्रयुता लेहाः श्लोकार्द्धैः पित्तकासिनाम् ॥ ८७ ॥

१-सिंघाडा, कमलगट्टा, नीलिनी, प्रसारिणी और पीपल । २-पीपल, नागरमोथा, मुलैठी, मुनक्का, मूर्वा और सोंठ । ३-लाजा, आमले, मुनक्का, वंशलोचन, पीपल और मिसरी । ४-पीपल, पद्माख, मुनक्का और बडी कटेलीके फलोंका रस।५-खजूर पीपल, वंशलोचन और गोखरू । यह पांच योग आधे आधे श्लोकोंमें कहे गये हैं । इनमेंसे किसी एकका चूर्ण शहत और घृत मिला चाटनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ ८५-८७ ॥

शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः ।
पैत्ते समुस्तमरिचः सकफे सघृतोऽनिले ॥ ८८ ॥

केवल पित्तकी खांसीमें लालचंदन, द्राक्षा, आँवले और नीलकमलका चूर्ण करके खांड और शहत मिला चाटे । यदि पित्तकी खांसीमें कफका संबंध हो तो नागरमोथा और मिरच इसी उपरोक्त चटनीमें मिला चाटे । यदि पित्तकी खांसीमें वातका अनुबंध हो तो इसी चटनीमें घी मिला चाटे ॥ ८८ ॥

मृद्वीकार्द्धशतं त्रिंशतिपिप्पलीशर्करापलम् ।
लेहयेन्मधुना गोर्वा क्षीरपस्य शकृद्रसम् ॥ ८९ ॥

उत्तम काबुली द्राक्षा ५०, पीपल ३०, खांड एक पल इन सबका चूर्ण कर शहतमें मिला चाटे अथवा गोबरके रसमें या दूध पीते बछडेके गोबरके रसमें उपरोक्त चूर्ण इसमें मिला पीवे ॥ ८९ ॥

त्वगेलाव्योषमृद्वीकापिप्पलीमूलपौष्करैः ।
लाजामुस्तशटीरास्नाधात्रीफलविभीतकैः ॥ ९० ॥
शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्लेहः कासविनाशनः ।
श्वासं हिक्कां क्षयञ्चैव हृद्रोगञ्च प्रणाशयेत् ॥ ९१ ॥

दालचीनी, इलायची, त्रिकुटा, द्राक्षा, पीपलामूल, पोहकरमूल, धानकी खील, नागरमोथा, कचूर, रासना, आँवले और बहेडे इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णमें मिसरी, शहद और घृत मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, हिचकी, क्षय और हृद्रोग दूर होते हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥

पिप्पल्यामलकं द्राक्षां लाक्षां लाजान् सितोपलाम् ।
पिबेद्वा मधुसंयुक्तं पित्तकासहरं परम् ॥ ९२ ॥

पीपल, आँवले, मुनक्का, धुला लाखदाना, धानोंकी खील और मिसरी इन सबके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटै ॥ ९२ ॥

विदारीक्षुमृणालानां रसान् क्षीरं सितोपलाम् ।
पिबेद्वा मधुसंयुक्तं पित्तकासहरं परम् ॥ ९३ ॥

विदारीकंदका रस, ईखका रस, कमलकी कंदका रस, दूध और मिसरी इनको शहद मिला पीनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ ९३ ॥

पित्तजखांसीमें पथ्य ।

मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः ।
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः ॥ ९४ ॥
घनश्लेष्मणि लेहास्तु तिक्तका मधुसंयुताः ।
शालयः स्युस्तनुकफे षष्टिकाश्च रसादिभिः ॥ ९५ ॥
शर्कराम्भोऽनुपानार्थे द्राक्षेक्षूणां रसाः पयः ।
सर्वञ्च मधुरं शीतमविदाहि प्रशस्यते ॥ ९६ ॥

जांगलजीवोंका मधुर मांसरस, श्यामाक (शौंकके चावल), यव, कोद्रव, मूंग आदिके यूष और तिक्त द्रव्योंके साथ मात्रानुसार सेवन करना पित्तकी खांसीमें हित है । पित्तकी खांसीमें यदि कफ अधिक और गाढी हो तो तिक्त और मधुर द्रव्योंसे युक्त रस, अवलेह अथवा तिक्त द्रव्योंके चूर्णको शहदमें मिला चाटे और मधुर रसोंके साथ शालिचावलके भातका पथ्य करे । यदि कफ अल्प होय अथवा पतली होय तो मधुर रसोंके साथ सांठीके चावलोंका पथ्य दे, पीनेके लिये खांडका शरबत, दाखका रस, ईखका रस, दूध और सब प्रकारके मधुर, शीतल, अविदाही अनुपान हितकारक हैं ॥ ९४-९६ ॥

काकोलीबृहतीमेदायुग्मैः सवृषनागरैः ।
पित्तकासे रसान् क्षीरं यूषांश्चाप्युपकल्पयेत् ॥ ९७ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, बडी कटेली, छोटी कटेली, मेदा, महामेदा, अडूसा और सोंठ डालकर सिद्ध किया यूष अथवा मांसरस पित्तकी खांसीमें हितकारी है ९७

शरादिपञ्चमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा ।
कषायेण शृतं क्षीरं पिबेत्समधुशर्करम् ॥ ९८ ॥

अथवा शरादिपंचमूल, पीपल और दाखके साथ सिद्ध किया दूध शीतल होनेपर शहद और खांड मिलाकर पीना हितकारी है ॥ ९८ ॥

स्थिरासितापृश्निपर्णीश्रावणीबृहतीयुगैः ।
जीवकर्षभकाकोलीतामलक्यृद्धिजीरकैः ॥ ९९ ॥
शृतं पयः पिबेत्कासी ज्वरी दाही क्षतक्षयी ।
तज्जं वा साधयेत्सर्पिः सक्षीरेक्षुरसं भिषक् ॥ १०० ॥

शालपर्णी, मिसरी, पृष्ठपर्णी, गोरखमुंडी, महामुण्डी, कटेली, बडी कटेली, जीवक, ऋषभक, काकोली, भूमिआँवला, ऋद्धि और जीरा इनसे सिद्ध किया दूध खांसी, ज्वर, दाह, क्षत और क्षय रोगमें हितकारी है । अथवा इन्हीं औषधियोंके कल्कसे दूध और ईखका रस मिला घृत या इन औषधियोंसे सिद्ध किये दूधका निकाला घृत ईखके रस और दूधसे सिद्धकर सेवन करनेसे भी यह खांसी आदि रोग दूर होते हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥

क्षौद्रगर्भा गुडिका ।

जीवकाद्यैर्मधुरकैः फलैश्चाभिषुकादिभिः ।
कल्कैस्त्रिकार्षिकैः सिद्धे पूतशीते प्रदापयेत् ॥ १०१ ॥

शर्करापिप्पलीचूर्णस्त्वक्क्षीर्य्या मरिचस्य च।
शृङ्गाटकस्य चावाप्य क्षौद्रगर्भान् पलोन्मितान् ॥ १०२॥
गुडान् गोधूमचूर्णेन कृत्वा खादेद्धिताशनः।
शुक्रासृग्दोषशोषेषु कासे क्षीणक्षतेषु च ॥ १०३ ॥

जीवक आदि मधुरगणकी दश औषधियें, खजूर, द्राक्षा आदि मधुर फल और अभिषुक आदि स्निग्ध फल तीन तीन कर्ष लेकर कल्क करे। उस कल्कसे सिद्ध किया घृत छानलेवे फिर उस घृतमें खांड, पीपल, वंशलोचन, मिर्च और सिंघाडा इनका एक एक पल बारीक चूर्ण मिलावे। परन्तु यह चूर्ण मिलानेसे प्रथम इस घृतमें गेहूंका आटा मिला भूनलेवे। फिर नीचे उतारकर यह चूर्ण मिलाकर लड्डू बनालेवे। इन लड्डुओंको शहदमें डुबाकर रक्खे अथवा वैसे ही शहद मिला रक्खे। इन लड्डुओंके सेवनसे पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्यके वीर्यदोष, रक्तदोष, शोषरोग, खांसी, क्षीणता और क्षतरोग दूर होते हैं ॥ १०१-१०३ ॥

शर्करानागरोदीच्यं कण्टकारीं शटीं समाम्।
पिष्ट्वा रसं पिबेत्पूतं वस्त्रेण घृतमूर्च्छितम् ॥ १०४ ॥

सोंठ, सुगन्धवाला, कटेली और कचूर तथा खांड इन सबको मिला जलके संयोगसे रस सिद्ध करे। उस रसको छानकर घीमें छौंककर पीवे तो पित्तकी खांसी दूर हो ॥ १०४ ॥

महिष्यजाविगोक्षीरधात्रीफलरसैः समैः।
सर्पिः सिद्धं पिबेद्युक्त्या पित्तकासनिबर्हणम् ॥ १०५ ॥

भैंस, बकरी, भेड और गौ इन सबके दूध आँवलेका रस इन सबको बराबर लेवे। इनसे सिद्ध किया घृत युक्तिपूर्वक पीनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है १०५ ॥

कफकासचिकित्सा।

बलिनं वमनैरादौ शोधयेत्कफकासिनम्।
यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ॥ १०६ ॥
पिप्पलीक्षारिकैर्यूषैः कौलत्थैर्मूलकस्य च।
लघून्यन्नानि भुञ्जीत रसैर्वा कटुकान्वितैः ॥ १०७ ॥
धान्वबैल्वरसैर्लेहैस्तिलसर्षपबिल्वजैः।
मध्वम्लोष्णाम्बु तक्रं वा मद्यं वा निगदं पिबेत् ॥ १०८ ॥

कफकी खांसीवाला रोगी यदि बलवान् हो तो पहिले वमनद्वारा कफका शोधन करे । फिर वमनद्वारा कफ निकलनेके अनन्तर भोजनके लिये कफनाशक कटु, रूक्ष और उष्ण द्रव्योंसे सिद्ध किया यवान्न देना चाहिये । अथवा पीपल और जवाखारके साथ सिद्ध किये कुलथीके यूष और सूखी मूलीके यूषके साथ हलका अन्न भोजनके लिये देना चाहिये । अथवा धन्वज और बिलेशय जीवोंके मांसरसको पीपल मिरच आदि कटु द्रव्योंसे सिद्धकर उस रसके साथ हलका अन्न भोजन करावे। या तिल, सरसों और बेलके बीजोंके तेलसे स्निग्ध किये रसोंके साथ भोजन करावे। पीनेके लिये शहत और बिजौरेकी खटाई मिला जल, गरमजल, तक्र अथवा मद्य या निगद देना चाहिये ॥ १०६–१०८ ॥

पौष्करारग्वधं मूलं पटोलान्तं निशास्थितम् ।
जलं मधुयुतं पेयं कालेष्वन्नस्य वा त्रिषु ॥ १०९ ॥

पाहकरमूल, अम्लतासकी जड, पटोलकी जड इन सबको पानीमें भिगोकर रात्रिभर धरा रहनेदे प्रातःकाल शहद मिला पीवे अथवा जब जब भोजन करे उस समय सेवन किया करे । (इसी जलको निगद कहते हैं) ॥ १०९ ॥

कफकासनाशक अनेक योग ।

कट्फलं कत्तृणं भार्ङ्गी मुस्तं धान्यं वचाभया ।
शुण्ठी पर्पटकः शृङ्गी सुराह्वश्च शृतं जले ॥ ११० ॥
मधु हिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके ।
कण्ठरोगे मुखे शूले श्वासहिक्काज्वरेषु च ॥ १११ ॥

कायफल, वीरणतृण (कांस), भारंगी, नागरमोथा, धनियां, वच, हरड, सोंठ, पित्तपापडा, काकडासिंगी, देवदारु इनसे पकाये जलको शीतलकर हींग और शहद मिला पीनेसे वातयुक्त कफकी खांसी, कण्ठरोग, मुखरोग, शूल, श्वास, हिचकी और ज्वर दूर होते हैं ॥ ११० ॥ १११ ॥

पाठां शुण्ठीं शटीं मूर्वां गवाक्षीं मुस्तपिप्पलीम् ।
पिष्ट्वा घर्माम्बुना हिङ्गुसैन्धवाभ्यां युतां पिबेत् ॥ ११२ ॥

पाठा, सोंठ, कचूर, मूर्वा, इन्द्रायणकी जड, नागरमोथा और पीपल इनको पीसकर हींग और सेंधानमक मिला गरम जलके साथ पीनेसे कफकी खांसी दूर होती है॥१२

नागरातिविषामुस्तशृङ्गीकर्कटकस्य च ।
हरीतकीं शटीञ्चैव तेनैव विधिना पिबेत् ॥ ११३ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, काकडासिंगी, हरड, कचूर इन सबके बारीक चूर्णको हींग और सेंधेनमकसे युक्त कर गरम जलके साथ पीनेसे कफकी खांसी दूर होती है ॥ ११३ ॥

तैलभृष्टञ्च पिप्पल्याः कल्काक्षं ससितोपलम् ।
पिबेद्वा श्लेष्मकासघ्नं कुलत्थरससंयुतम् ॥ ११४ ॥

पीपलके कल्कको तेलमें भूनकर मिसरी मिला एक तोला भर खाकर ऊपरसे कुल्थीका रस पीवे तो कफकी खांसी दूर होती है ॥ ११४ ॥

कासमर्दाश्वविट्भृङ्गराजवार्त्ताकजा रसाः ।
सक्षौद्राः कफकासघ्नाः सुरसस्यासितस्य च ॥ ११५ ॥

कसौदीका रस, घोडेकी लीदका रस, भृंगराजका रस और बडी कटेलीके फलोंका रस अथवा सुरसा तुलसी या काली तुलसीके पत्रोंका रस शहद मिला पीनेसे कफकी खांसी दूर होती है ॥ ११५ ॥

देवदारु शटी रास्ना कर्कटाख्या दुरालभा ।
पिप्पली नागरं मुस्तं पथ्या धात्री सितोपलाः ॥ ११६ ॥
मधुतैलयुतावेतौ लेहौ वातानुगे कफे ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ११७ ॥
पथ्या तामलकी धात्री भद्रमुस्तानि पिप्पली ।
देवदार्वभया मुस्तं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ ११८ ॥
विशाला पिप्पली मुस्तं त्रिवृता चेति लेहयेत् ।
चतुरो मधुना लेहान् कफकासहरान्भिषक् ॥ ११९ ॥

देवदारु, कचूर, रासना, काकडासिंगी और जवासेका चूर्ण शहद और तेलमें मिला चाटे अथवा पीपल, सोंठ, नागरमोथा, हरड, आँवला और मिसरी इनका चूर्ण शहद और तेलमें मिला चाटे तो वातानुबंधी कफकी खांसी दूर होती है। अथवा १–पीपल, पीपलामूल, चित्रक और गजपीपल । २–हरड, भूमिआँवला, भद्रमोथा और पीपल । ३–देवदारु, हरड, नागरमोथा, पीपल और सोंठ । ४–इन्द्रायणकी जड, पीपल, नागरमोथा और निशोथ । इन आधे आधे श्लोकोंमें कहे हुए चार योगोंमेंसे किसी एक योगका चूर्ण वैद्य रोगीको शहत मिला चटावे तो कफकी खांसी दूर होती है ॥ ११६–११९ ॥

सौवर्चलाभयाधात्रीपिप्पलीक्षारनागरम्।
चूर्णितं सर्पिषा वातकफकासहरं पिबेत् ॥ १२० ॥

संचरनमक, हरड, आँवले, पीपल, जवाखार, सोंठ इन सबके चूर्णको घीमें मिला पीवे तो वातयुक्त कफकी खांसी दूर होता है ॥ १२० ॥

दशमूलादिघृत।

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमे पचेत्।
पुष्कराह्वशटीबिल्वसुरसैर्व्योषहिङ्गुभिः ॥ १२१ ॥
पेयं पेयानुपानं तत्कासे वातकफात्मके।
श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ १२२ ॥

दशमूलका क्वाथ एक आढक, घृत एक प्रस्थ, पोहकरमूल, कचूर, बिल्व, सुरसा, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल और हींग यह सब एक एक कर्ष लेवे। इन सबसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेयाको पीवे तो वातयुक्त कफकी खांसी, श्वास तथा सब प्रकारके कफ और वातात्मक रोग दूर होते हैं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

कंटकारिघृत।

समूलफलपत्रायाः कण्टकार्य्या रसाढके।
घृतप्रस्थं बलाव्योषविडङ्गशटिचित्रकैः ॥ १२३ ॥
सौवर्चलयवक्षारपिप्पलीमूलपौष्करैः।
वृश्चीकबृहतीपथ्यायमानीदाडिमर्द्धिभिः ॥ १२४ ॥
द्राक्षापुनर्नवाचव्यदुरालभाम्लवेतसैः।
शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ १२५ ॥
कल्कैस्तत्सर्वकासेषु हिक्काश्वासेषु शस्यते।
कण्टकारिघृतं ह्येतत्कफव्याधिनिषूदनम् ॥ १२६ ॥

कटेलीके पंचाङ्गका क्वाथ एक आढक, घी एक प्रस्थ, बला, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, कचूर, चित्रक, संचरनमक, जवाखार, पीपल, पीपलामूल, पोहकरमूल, वृश्चिकपत्रिका, बडी कटेली, हरड, अजवायन, अनारका छिलका, ऋद्धि, मुनक्का, पुनर्नवा, चव्य, जवासा, अम्लवेतस, काकडासिंगी, भूमिआमला, भारंगी, रासना और गोखरू इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। इस कल्कको उपरोक्त क्वाथ और घी मिलाकर पकावे। घृत मात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो यह कण्टकारि घृत सब प्रकारकी खांसी, हिचकी, श्वास और कफके रोगोंको दूर करता है॥१२६॥

कुलत्थादिघृत।

कुलत्थरसयुक्तं वा पञ्चकोलशृतं घृतम्।
पाययेत्कफजे कासे हिक्काश्वासे च शस्यते ॥ १२७ ॥

कुल्थीके क्काथ और पंचकोलसे सिद्ध किया घृत कफकी खांसी और हिचकी दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १२७ ॥

कफनाशक धूम।

धूमांस्तानेव दद्याच्च ये प्रोक्ता वातकासिनाम्।
कोशातकीफलान्मध्यं पिबेद्वा समनःशिलाम् ॥ १२८ ॥

कफकी खांसीको दूर करनेके लिये जो धूम वातकी खांसीमें कहे हैं उनका प्रयोग करना चाहिये। अथवा कोशातकी (काली तोरी) के मध्यकें गुद्दामें मनसिल मिला धूमपानविधिसे धूमपान करे ॥ १२८ ॥

कफजकासमें अन्य अनुबन्धोंके यत्न।

तमकः कफकासे तु स्याच्चेत्पित्तानुबन्धजे।
पित्तकासक्रियां तत्र यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

पित्तानुबंधी कफकी खांसीमें यदि तमकश्वास होजाय तो पित्तकी खांसीमें कही-हुई क्रिया अवस्थानुसार करना चाहिये ॥ १२९ ॥

वाते कफानुबन्धे तु कुर्य्यात्कफहरीं क्रियाम्।
पित्तानुबन्धयोर्वातकफयोः पित्तनाशिनीम् ॥ १३० ॥

कफ प्रबल वातकी खांसीमें कफको नष्ट करनेवाली क्रिया करना चाहिये। तथा वात कास और कफकासमें यदि पित्त प्रबल हो तो पित्तको हरणकरनेवाली क्रिया करना चाहिये ॥ १३० ॥

आर्द्रे विरूक्षणं शुष्के स्निग्धं वातकफात्मके।
कासेऽन्नपानं कफजे सपित्ते तिक्तसंयुतम् ॥ १३१ ॥

कफ और वातकी खांसीमें यदि कफ सूखी हो तो स्निग्ध औषध, अन्नपानका प्रयोग करना चाहिये। यदि कफ गीली हो तो रूक्ष अन्नपानका प्रयोग करना हित है। एवं कफकी खांसीमें पित्तका अनुबंध होनेसे तिक्तरसयुक्त अन्नपानका सेवन कराना चाहिये ॥ १३१ ॥

क्षतजकासकी चिकित्सा।

कासमात्ययिकं मत्वा क्षतजं त्वरया जयेत्।
मधुरैर्जीवनीयैश्च बलमांसविवर्द्धनैः ॥ १३२ ॥

क्षतज खांसीको आत्ययिक समझकर मधुर जीवनीय और बल मांसविवर्द्धक द्रव्योंसे शीघ्र चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३२ ॥

पिप्पल्याद्यवलेह।

पिप्पलीमधुकं पिष्टं कार्षिकंससितोपलम्।
प्रास्थिकं गव्यमाजन्तु क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ १३३ ॥
यवगोधूममृद्वीकाचूर्णमामलकीरसः।
तैलञ्च प्रसृतांशानि तत्सर्वं मृदुनाग्निना ॥ १३४ ॥
पचेल्लेहं घृतक्षौद्रयुक्तः सक्षतकासनुत्।
श्वासहृद्रोगकासेषु हितो वृद्धाल्परेतसे ॥ १३५ ॥

पीपल, मुलैठी और मिसरी यह एक एक कर्ष, गौका दूध एक प्रस्थ, बकरीका दूध एक प्रस्थ और ईखका रस एक प्रस्थ, गेहूं और दाखका कल्क तथा आँवलेका रस और तेल यह सब एक एक प्रसृति (दो दो पल) इन सबको मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे अवलेह बनावे। इसको घृत और शहत मिला सेवन करनेसे क्षतज खांसी, श्वास, हृद्रोग, खांसी दूर होती है तथा वृद्ध मनुष्यों और अल्प वीर्यवालेके लिये परम हितकारी है ॥ १३३–१३५ ॥

क्षतकासाभिभूतानां वृत्तिः स्यात्पित्तकासिकी।
क्षीरसर्पिर्मधुप्राया संसर्गे तु विशेषणम् ॥ १३६ ॥

क्षतज कासवाले रोगीको पित्तकी खांसीमें कहेहुए पथ्योंका सेवन करना चाहिये। तथा दूध, घृत और शहतका अधिक सेवन करना हितकारी है ॥ १३६ ॥

वातपित्तार्दितेऽभ्यङ्गो गात्रभेदे घृतैर्हितः।
तैलैर्मारुतरोगघ्नैः पीड्यमाने च वायुना ॥ १३७ ॥

यदि क्षतज कासमें वातपित्तकी पीडा, अंगोंमें भेद होय तो वायुकी प्रधानता होनेसे वातनाशक तेलोंकी मालिश करनी चाहिये और पित्तकी प्रधानता होनेसे पित्तनाशक घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३७ ॥

हृत्पार्श्वार्त्तिषु पानं स्याज्जीवनीयस्य सर्पिषः।
सदाहं कासिनो रक्तं ष्ठीवतः सबलेऽनले ॥ १३८ ॥
मांसोचितेभ्यः कासिभ्यो लावादीनां रसा हिताः।
तृष्णार्त्तानां पयश्छागं शरमूलादिभिः शृतम् ॥ १३९ ॥

रक्ते स्रोतोभ्य आस्याद्वाप्यागते क्षीरजं घृतम्।
नस्यं पानं यवागूर्वा श्रान्ते क्षामे हतानले ॥ १४० ॥

यदि हृदय और पार्श्वमें पीडा होती हो तो जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध किया घृत पिलाना चाहिये। यदि खांसीमें दाह हो और कफके साथमें रक्त निकलता हो और रोगीकी जठराग्नि बलवान् हो तो मांस, सात्म्य और क्षीण खांसी रोगवालोंको लवा आदि पक्षियोंका मांसरस पिलाना हितकारी है। क्षतज खांसीमें प्यासकी अधिकता हो तो शरमूलादि पंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलाना चाहिये। यदि नासिका आदि द्वारोंसे अथवा मुखसे रुधिर आवे तो शरादि पंचमूलसे सिद्धकिये दूधका मक्खन पिलाने और नस्य देनेमें प्रयोग करना चाहिये। यदि रोगी कृश और श्रान्त (थकित) होगया हो और जठराग्नि मंद पडजाय तो उसको बृंहण और दीपनीय यवागू पिलाना चाहिये ॥ १३८–१४० ॥

स्तम्भायासेषु महतीं मात्रां वा सर्पिषः पिबेत्।
कुर्य्याद्वा वातरोगघ्नं पित्तरक्ताविरोधि यत् ॥ १४१ ॥

क्षतज खांसीमें देहका स्तम्भ होजाय और रोगी थकित होजाय तो उसको घृतकी उत्तम मात्रा पिलाना चाहिये। अथवा वातनाशक और रक्तपित्तसे अविरोधी क्रिया करना चाहिये ॥ १४१ ॥

धूमप्रयोग।

निवृत्ते क्षतदोषे तु कफे वृद्ध उरःक्षते।
दाल्यते कासिनो यस्य सधूमान्ना पिबेदिमान् ॥ १४२ ॥

उरःक्षतमें क्षतज दोषोंकी निवृत्ति होकर यदि कफ बहुत बढजाय और कफके वेगसे छाती फटीसी जातीहो तो उसको यह नीचे लिखे धूमपान कराने चाहिये १४२

द्वे मेदे मधुकं द्वे च बले तैः क्षौमलक्तकैः।
वर्त्तितैर्धूममापीय जीवनीयघृतं पिबेत् ॥ १४३ ॥

मेदा, महामेदा, मुलैठी, बला, नागबला, इन सबको चूर्ण कर अलसीके वस्त्रमें लाखके रसके योगसे लपेटकर बत्ती बनावे। इस बत्तीका धूमपान विधिसे धूमपान करे। ऊपरसे जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध घृत पान करे ॥ १४३ ॥

मनःशिलापलाशाजगन्धात्वक्क्षीरिनागरैः।
भावयित्वा पिबेत्क्षौमं शर्करेक्षुगुडोदकम् ॥ १४४ ॥

मनासिल, ढाकके बीज, अजवायन, वंशलोचन, सोंठ इन सबको लाखके रसकी

भावना देकर रेशमी या अलसीके कपडेमें लपेटकर धूम्रपान करे। धूम्रपानके पश्चात् खांडका शरबत वा ईखका रस अथवा गुडका शरबत पीवे ॥ १४४ ॥

पिष्ट्वा मनःशिलां तुल्यामार्द्रया वटशुङ्गया।
ससर्पिष्कं पिबेद्धूमं तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४५ ॥

मनासिल और गीले वडके अंकुर दोनोंको बराबर लेकर पीस लेवे। इनको घृतमें मिलाकर धूमवर्त्ती बना धूम्रपान करे। धूमपानके अनन्तर तीतरके मांसरसके साथ भोजन करे ॥ १४५ ॥

भावितं जीवनीयैर्वा कुलिङ्गाण्डरसायुतः।
क्षौमं धूमं पिबेत्क्षीरं शृतञ्चायोगुडैरनु ॥ १४६ ॥

अथवा जीवनीय औषधियोंके क्वाथसे या कुलिंगके अण्डोंके रससे रेशमके कपडेको अथवा अलसीके कपडेको भिगोकर धूमवर्ती बनावे। इस बत्तीका धूमपान करनेके पश्चात् गर्म किया दूध अथवा लोहेके गोलेको गर्म कर उससे बुझा दूध या मंडूरसे बुझा दूध पान करे। तो उरःक्षतरोगीकी बढीहुई कफ दूर होकर हृदयमें शान्ति आती है ॥ १४६ ॥

क्षयजचिकित्सा।

सम्पूर्णरूपं क्षयजं दुर्बलस्य विवर्जयेत्।
नवोत्थितं बलवतः प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ १४७ ॥
तस्य बृंहणमेवादौ कुर्य्यादग्नेश्च वर्द्धनम्।
बहुदोषाय सस्नेहं मृदु दद्याद्विरेचनम् ॥ १४८ ॥

जो क्षयज खांसीवाला रोगी क्षयके संपूर्ण लक्षणोंयुक्त हो और दुर्बल हो तो उसको वैद्य असाध्य जानकर त्यागदेवे। यदि रोगी बलवान् हो और रोग नवीन उत्पन्न हुआ हो तो उसको तुम्हारा रोग असाध्य है यह कहकर चिकित्सा करना चाहिये। उसको प्रथमही बल और मांसके बढानेवाले तथा अग्निको चैतन्य करनेवाले योगोंसे साधन करे। यदि वह बढेहुए दोषोंसे युक्त हो तो पहिले उसको स्नेहन करके मृदु विरेचन देवे ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

शम्पाकेन त्रिवृतया मृद्वीकारसयुक्तया।
तिल्वकस्य कषायेण विदारीस्वरसेन च ॥ १४९ ॥
सर्पिःसिद्धं पिबेद्युक्त्या क्षीणदेहो विशोधनम्।
हितं तद्देहबलयोरस्य संरक्षणं मतम् ॥ १५० ॥

अमलतास और निशोथका कल्क, द्राक्षाका रस, पठानीलोधका क्वाथ, विदारीकन्दका स्वरस इन सबसे सिद्ध किया घृत युक्तिपूर्वक क्षीणदेहवालोंको शोधन करनेके लिये पिलाना चाहिये। यह घृत रोगीके देह और बलकी रक्षा करताहुआ मृदु विरेचन करनेवाला है; इसलिये क्षयरोगियोंको हितकारक है ॥ १४९ ॥ १५० ॥

पित्ते कफे च संक्षीणे परिक्षीणेषु धातुषु।
घृतं कर्कटकीक्षीरद्विबलासाधितं पिबेत् ॥ १५१ ॥

पित्त और कफ क्षीण हो तथा अन्य सब धातुयें भी क्षीण हों तो काकडासिंगी, बला, नागबला इनका कल्क बनाकर इनसे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध मिलाकर घृत सिद्ध करके इस घृतका प्रयोग करे ॥ १५१ ॥

विदारीभिः कदम्बैर्वा तालशस्यैस्तथा शृतम्।
घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रनिर्गमे ॥ १५२ ॥

विदारीकन्दका कल्क अथवा कदम्बका कल्क या ताडवृक्षके अंकुरोंका कल्क करके सिद्ध किया घृत अथवा दूध पीनेसे क्षीणरोगीके मूत्रकी विवर्णता और मूत्रका कृच्छ्रतासे आना यह दूर होते हैं ॥ १५२ ॥

सूने सवेदने मेढ्रे पायौ सश्रोणिवंक्षणे।
घृतमण्डेन मधुनाऽनुवास्यो मिश्रकेण वा ॥ १५३ ॥

क्षयरोगीको यदि लिंगेन्द्रिय, गुदा, श्रोणी और वंक्षणमें सूजन हो अथवा पीडा हो तो उसको शहद मिला घृतमण्डके साथ अनुवासन बस्ति करे। अथवा घृत और तेल इन दोनोंमें शहद मिला अनुवासन बस्ति करे ॥ १५३ ॥

जाङ्गलैः प्रतिभुक्तस्य वर्त्तकाद्या बिलेशयाः।
क्रमशः प्रसहाश्चैव प्रयोज्याः पिशिताशिनः ॥ १५४ ॥
औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्च स्रोतोभ्यश्च्यावयन्ति ते।
कफैः शुद्धैश्च तैः पुष्टिं कुर्य्यात्सम्यग्वहन् रसः ॥ १५५ ॥

फिर क्रमपूर्वक जांगल जीवोंका मांसरस अथवा बटेर और बिलेशय आदिकोंका मांसरस भोजनके साथ सेवन करावे। अथवा मांससात्म्य मनुष्योंको क्रमपूर्वक प्रसहजीवोंका मांसरस सेवन करावे। क्योंकि यह रस उष्णतासे और प्रमाथीभावसे स्रोतोंके मार्गोंसे कफको च्यवन करदेते हैं। उससे कफके शुद्ध होनेपर शरीरमें उत्तम रीतिसे रसका संचार करतेहुए शरीरको पुष्ट करदेते हैं ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

चविकादिघृत।

चविकात्रिफलाभार्ङ्गीदशमूलैः सचित्रकैः।
कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले ॥ १५६ ॥
शृतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशटिपौष्करैः।
कल्कैः कर्कटशृङ्ग्या च समैः सर्पिर्विपाचयेत् ॥ १५७ ॥
सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णितौ क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च।
दत्त्वा युक्त्या पिबेन्मात्रां क्षयकासनिपीडितः ॥ १५८ ॥

चव्य, हरड, बहेडे, आंवले, भारंगी, दशमूलकी दश औषधियें, चित्रक, कुल्थी, पीपलामूल, पाटला, कोल (उन्नाव) और यव इनका क्वाथ आठ सेर, सोंठ, जवासा, पीपल, कचूर, पोहकरमूल और काकडासिंगी इन सबका कल्क आधा सेर, घृत दो सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। सिद्ध होनेपर इसमें सज्जीखार, जवाखार और पांचों लवण इन सबका चूर्ण आठ तोला मिलावे। इस घृतको युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे क्षयजनित खांसी दूर होती है ॥ १५६-१५८ ॥

गुडूच्यादिघृत।

गुडूचीं पिप्पलीं मूर्वां हरिद्रां श्रेयसीं वचाम्।
निदिग्धिकां कासमर्दं पाठां चित्रकनागरम् ॥ १५९ ॥
जले चतुर्गुणे पक्त्वा पादशेषेण तत्समम्।
सिद्धं सर्पिः पिबेद् गुल्मश्वासातिक्षयकासनुत् ॥ १६० ॥

गिलोय, त्रिफला, मूर्वा, हल्दी, गजपीपल, वच, कटेली, कसौंदी, पाटला, चित्रककी छाल और सोंठ इन सबको चौगुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस क्वाथसे सिद्ध किया घृत गुल्म, श्वास और अत्यन्त क्षयकी खांसीको दूर करता है ॥ १५९ ॥ १६० ॥

कासमर्दादिघृत।

कासमर्दाभयामुस्तपाठाकट्फलनागरैः।
पिप्पल्या कटुकाद्राक्षाकाश्मर्य्यैः सुरसेन च ॥ १६१ ॥
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं क्षीरद्राक्षारसाढके।
पचेच्छोषज्वरप्लीहसर्वकासहरं शिवम् ॥ १६२ ॥

कसौंदी, हरड, नागरमोथा, पाठा, कायफल, सोंठ, पीपल, कुटकी, मुनक्का, कुंभेर और तुलसी इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। घृत एक प्रस्थ, दूध

एक आढक, द्राक्षाका रस एक आढक इन सबको मिला घृत सिद्ध करे। इस पवित्र घृतका पान करनेसे शोष, ज्वर, प्लीहरोग और सब प्रकारकी खांसी दूर होती है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

अन्य योग।

धात्रीफलैः क्षीरसिद्धैः सर्पिर्वाप्यवचूर्णितम्।
द्विगुणे दाडिमरसे विपक्वं व्योषसंयुतम् ॥ १६३ ॥
पिबेदुपरि भक्तस्य यवक्षारघृतं नरः।
पिप्पलीगुडसिद्धं वा च्छागक्षीरयुतं घृतम् ॥ १६४ ॥
एतान्यग्निविवृद्धयर्थं सर्पींषि क्षयकासिनाम्।
स्युर्दोषबन्धकोष्ठोरःस्रोतसाञ्च विशुद्धये ॥ १६५ ॥

आँवलेके फलोंको घीमें सिद्धकर उन आँवलोंकी गुठलियें निकाल कल्क बनाकर घृतमें घोलकर पान करे। अथवा त्रिकुटेका चूर्ण घृतसे चौथा भाग, अनारका रस घृतसे दोगुना घृतमें मिला पान करे। अथवा भातका भोजन कर ऊपरसे जवाखार मिला घृत पीवे। या पीपल और गुड तथा बकरीका दूध मिलाकर सिद्ध किया घृत पान करे। यह सब घृत क्षयजानितखांसीवाले रोगियोंकी अग्निको बढाते हैं और दोषोंसे विबद्धकोष्ठ तथा छातीके स्रोतोंको शुद्ध करते हैं ॥ १६३–१६५ ॥

हरीतकी अवलेह।

हरीतकीर्यवक्वाथद्व्याढके विंशतिं पचेत्।
स्विन्ना मृदित्वा तास्तस्मिन् पुराणं गुडषट्पलम् ॥ १६६ ॥
दद्यान्मनःशिलाकर्षं कर्षार्द्धञ्च रसाञ्जनात्।
कुडवार्द्धञ्च पिप्पल्याः स लेहः श्वासकासनुत् ॥ १६७ ॥

यवोंका क्वाथ दो आढक लेकर उसमें उत्तम निर्दोष बडी बीस हरडोंको पकावे जब पकते पकते हरडें नरम पडजायँ तो हरडोंको निकालकर उनकी गुठलियोंको दूरकर हरडोंको पीसलेवे। उनमें पुराना गुड छः पल मिलाकर उसी यवोंके क्वाथसे अवलेह पकावे। जब गाढा होजाय तो एक तोला शुद्ध मनसिल एक तोला रसौत, पीपलका चूर्ण आठ तोला यह सब मिलाकर अवलेह (चटनी) बनावे। इसके सेवनसे श्वास और खांसी दूर होती है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

अन्य योग।

श्वाविधः सूचयो दग्धाः सघृतक्षौद्रशर्कराः।
श्वासकासहरा बर्हिपादौ वा क्षौद्रसर्पिषा ॥ १६८ ॥

सेहके कांटोंको जलाकर घी और शहद और खांड मिलाकर चाटे। अथवा मोरके पैर जलाकर उसकी भस्म शहद मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी दूर होती है ॥ १६८ ॥

एरण्डपत्रक्षारं वा व्योषतैलं गुडान्वितम्।
लिह्यादेतेन विधिना सुरसैरण्डपत्रजम् ॥ १६९ ॥
द्राक्षापद्मकवार्त्ताकपिप्पलीः क्षौद्रसर्पिषा।
लिह्यात् त्र्यूषणचूर्णं वा पुराणं गुडसर्पिषा ॥ १७० ॥
चित्रकं त्रिफलाजाजीकर्कटाख्यं कटुत्रिकम्।
द्राक्षाञ्च क्षौद्रसर्पिर्भ्यां लिह्याद्वद्याद्गुडेन वा ॥ १७१ ॥

एरण्डके पत्तोंका क्षार अथवा त्रिकुटा तेल और गुडमें मिला विधिवत् चाटे या तुलसी और एरण्डके पत्रोंकी भस्म तेल और गुड मिला चाटे अथवा मुनक्का, पद्मकाष्ठ, बडी कटेलीके फल और पीपलके चूर्णको शहद और घृत मिलाकर चाटे अथवा सोंठ, मिर्च पीपलके चूर्णको पुराने गुड और घृतमें मिला चाटे या चित्रक, त्रिफला, जीरा, काकडासिंगी, त्रिकुटा और द्राक्षा इन सबको बारीक पीस शहद और घृतके साथ सेवन करे अथवा गुडके साथ सेवन करे तो सब प्रकारकी खांसी दूर हो ॥ १६९-१७१ ॥

पद्मकाद्यवलेह।

पद्मकं त्रिफलां व्योषं विडङ्गं सुरदारु च।
बलां रास्नाञ्च तुल्यानि सूक्ष्मं चूर्णानि कारयेत् ॥ १७२ ॥
सर्वैरेभिः समं चूर्णं पृथक् क्षौद्रघृतं सिताम्।
विमथ्य लेहयेल्लेहं सर्वकासहरं शिवम् ॥ १७३ ॥

पद्माख, हरड, बहेडे, आमले, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, देवदारु, बला, रासना इन सबको बराबर लेकर बारीक चूर्ण बनावे। इस चूर्णको शहद, घृत और मिसरीमें मिला चाटे तो यह अवलेह सब प्रकारकी खांसियोंको दूर करनेवाला और कल्याणप्रद है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

जीवंत्याद्यवलेह।

जीवन्तीं मधुकं पाठां त्वक्क्षीरीं त्रिफलां शटीम्।
मुस्तैले पद्मकं द्राक्षां द्वे बृहत्यौ वितुन्नकम् ॥ १७४ ॥
शारिवां पौष्करं मूलं कर्कटाख्यं रसाञ्जनम्।

पुनर्नवां लोहरजस्त्रायमाणां यमानिकाम् ॥ १७५ ॥
भार्ङ्गीं तामलकीमृद्धिं विडङ्गं धन्वयासकम् ।
क्षारचित्रकचव्याम्लवेतसव्योषदारु च ॥ १७६ ॥
चूर्णीकृत्य समांसानि लेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ।
चूर्णात्पाणितलं पञ्च कासानेष व्यपोहति ॥ १७७ ॥

जीवन्ती, मुलैठी, पाटला, वंशलोचन, हरड, बहेडे, आँवले, कचूर, नागरमोथा, इलायची, पद्माख, द्राक्षा, कटेली, बडी कटेली, धनियां, सारिवा, पोहकरमूल, काकडासिंगी, रसौत, पुनर्नवा, लोहभस्म, त्रायमाण, अजवायन, भारंगी, भूमिआँवला, ऋद्धि, बायविडंग, धनियां, जवाखार, चित्रक, चव्य, अमलवेत, त्रिकुटा, देवदारु यह सब बराबर लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर एक तोला नित्य चाटनेसे पांच प्रकारकी खांसी दूर होती है ॥ १७४–१७७ ॥

लिह्यान्मरिचचूर्णं वा सघृतक्षौद्रशर्करम् ।
सर्वकासहरं श्रेष्ठं लेहं कासार्दितो नरः ॥ १७८ ॥
बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।
स्वरभेदे च कासे च लेहमेतत्प्रयोजयेत् ॥ १७९ ॥

मिर्चका चूर्ण घृत, शहद और मिसरी मिलाकर चाटे तो सब प्रकारकी खांसी दूर हो अथवा बेरीके पत्तोंका कल्क सेंधानमक युक्तकर घृतमें भूनलेवे। इसको चाटनेसे स्वरभेद और खांसी दूर होती है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

पत्रकल्कं घृतैर्भृष्टं तिल्वकस्य सशर्करम् ।
पेया चोत्कारिकाच्छर्दिस्तृट्कासामातिसारनुत् ॥ १८० ॥

पठानी लोधके पत्तोंका कल्क मिसरी मिला घृतमे भूनलेवे। इसको पीनेसे अथवा इसका हलुआसा बना सेवन करनेसे वमन, तृषा, खांसी और आमातिसार नष्ट होते हैं॥

यवागूसर्षपादि।

गौरसर्षपगण्डीरविडङ्गव्योषचित्रकान् ।
साभयान् साधयेत्तोये यवागूं तेन चाम्भसा ॥ १८१ ॥
ससर्पिर्लवणां कासे हिक्काश्वासे सपीनसे ।
पाण्ड्वामये क्षये शोथे कर्णशूले च शस्यते ॥ १८२ ॥

सफेद सरसों, गण्डीर, वायबिडंग, सोंठ, मिरच, पीपल, चित्रक और हरड इन

सबको समभाग लेकर जलमें पकावे। उस जलमें सिद्ध कीहुई यवागू सेंधानमक युक्त कर घृतमें छौंक पीनेसे खांसी, हिचकी, श्वास, प्रतिश्याय, पाण्डुरोग, क्षय, सुजन और कर्णशूल दूर होता है॥ १८१ ॥ १८२ ॥

कण्टकारीरसे सिद्धो मुद्गयूषः सुसंस्कृतः।
सगौरामलकः साम्लः सर्वकासभिषग्जितम् ॥ १८३ ॥

कटेलीके जलमें सिद्ध किया मूंगका यूष, घृत, मिरच, गौर (हलदी, राई या केशर) आँवलेका रस मिलाकर उत्तम रीतिसे संस्कार करे सेवन करे तो सब प्रकारकी खांसी दूर होती है ॥ १८३ ॥

वातघ्नौषधनिष्क्राथं क्षीरं यूषान् रसानपि।
वैष्किरप्रतुदादीनां दापयेत्क्षयकासिने ॥ १८४ ॥

वातनाशक औषधियोंके क्राथ, दूध, यूष, अन्न, रस तथा विष्किर और प्रतुद पक्षियोंके तथा बिलेशय जीवोंके मांसरसोंका सेवन करना क्षयकी खांसीमें हितकारी है ॥ १८४ ॥

क्षतकासे च ये धूमाः सानुपाना निदर्शिताः।
क्षयकासेऽपि तानेव यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ १८५ ॥
दीपनं बृंहणञ्चैव स्रोतसाञ्च विशोधनम्।
व्यत्यासात्क्षयकासिभ्यो बल्यं सर्वं मितं हितम् ॥ १८६ ॥

क्षतज खांसीमें कहेहुए सब प्रकारके धूम और अनुपान क्षयजनितखांसीमें अवस्था आदि विचारकर प्रयुक्त करने चाहियें तथा दीपन, बृंहण, छिद्रोंको शुद्ध करनेवाली और बलकारक क्षयज दोषोंको शान्त करनेवाली औषधियें क्षयकी खांसीमें हितकारी होती हैं ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

सन्निपातभवोऽप्येष क्षयकासः सुदारुणः।
सन्निपातहितं तस्मात्सदा कार्य्यं भिषग्जितम् ॥ १८७ ॥

यह दारुण क्षयज खांसी सन्निपातसे उत्पन्न होती है इसलिये वैद्यको सब प्रकार सन्निपातनाशक चिकित्सा करनी चाहियें ॥ १८७ ॥

दोषानुबलयोगाच्च हरेद्रोगबलाबलम्।
कासेष्वेषु गरीयांसं जानीयादुत्तरोत्तरम् ॥ १८८ ॥

दोष और दोषोंके अनुबलके योगसे ही रोगमें बलाबल होता है। खांसीमें

दोषोंका बलाबल उत्तरोत्तर बलवान् होता जाता है। ऐसा विचारकर वैद्य क्रमपूर्वक दोषोंका हरण करे ॥ १८८ ॥

अध्यायका उपसंहार।

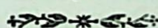
तत्र श्लोकौ-भोज्यं पानानि सर्पींषि लेहाः पाचनकानि च।
क्षीरं सर्पिर्गुडा धूमाः कासभैषज्यसंग्रहः ॥ १८९ ॥
संख्यानिमित्तं रूपाणि साध्यासाध्यत्वमेव च।
कासानां भेषजं प्रोक्तं गरीयस्त्वञ्च कासिनः ॥ १९० ॥

इति श्रीचरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने कासचिकित्सितं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस कासचिकित्साध्यायमें खांसीवाले रोगियोंके लिये भोज्य, पान, घृत, अवलेह, पाचन द्रव्य, दूध, सर्पि, गुड, धूम, खांसीकी औषधियें, खांसीकी संख्या, हेतु, लक्षण, साध्यासाध्यता और खांसियोंकी चिकित्सा तथा खांसियोंकी उत्तरोत्तर गुरुता यह सब वर्णन किया है॥१८९॥१९०॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां कासचिकित्सितं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः।



अथातश्छर्दिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम छर्दिचिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ॥

यशस्विनं ब्रह्मतपोद्युतिभ्यां ज्वलन्तमग्न्यर्कसमप्रभावम्।
पुनर्वसुं भूतहिते निविष्टं पप्रच्छ शिष्योऽत्रिजमग्निवेशः ॥ १ ॥
याश्छर्दयः पञ्च पुरा त्वयोक्ता रोगाधिकारे भिषजां वरिष्ठ।
तासां चिकित्सां सनिदानलिङ्गां यथावदाचक्ष्व नृणां हितार्थम् ॥ २ ॥

यशस्वी, ब्रह्मज्ञान और तपोबलकी कांतिसे अग्निके समान तेजस्वी तथा सूर्यके समान प्रकाशयुक्त संपूर्ण प्राणियोंके हित करनेवाले महर्षि आत्रेयजीसे उनके शिष्य

अग्निवेश पूछनेलगे कि, हे वैद्योंमें श्रेष्ठ ! जो आपने पहिले सूत्रस्थानमें रोगसंग्रहाध्याय (अष्टोदरीय) में छर्दियोंका कथन किया है अब कृपाकरके उनकी चिकित्सा, निदान और लक्षणोंको मनुष्योंके हितके लिये यथावत् कहिये ॥ १ ॥ २ ॥

तदग्निवेशस्य वचो निशम्य प्रीतो भिषक्श्रेष्ठ इदं जगाद ।

याश्छर्दयः पञ्च पुरा मयोक्तास्ता विस्तरेण ब्रुवतो निबोध ॥ ३ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके वचनको सुनकर प्रसन्न हुए वैद्यशिरोमणि आत्रेयजी कहने लगे कि, हमने पहिले जो पांच प्रकारकी छर्दियोंका कथन किया है अब उसको विस्तारपूर्वक श्रवण करो ॥ ३ ॥

वमनके भेद ।

दोषैः पृथक् त्रिप्रभवाश्चतस्रो द्विष्टार्थयोगादपि पञ्चमी स्यात् ।

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे छर्दि चार प्रकारकी होती है तथा पांचवीं द्विष्टार्थ अर्थात् मनको बिगाडनेवाले दुर्गंध आदिकोंके योगसे होती है ।

वमनके पूर्वरूप ।

तासां हृदुत्क्लेशकफप्रसेको द्वेषोऽशने चैव हि पूर्वरूपम् ॥ ४ ॥

हृदयका उत्क्लेश (जी मचलाकर छर्दी होनेके लिये ऊपरको आना), मुखसे कफका गिरना या पानी भरकर आना और अन्नसे द्वेष होना यह वमनके पूर्वरूप हैं ४

छर्दिके हेतु संप्राप्ति ।

व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोगभयोपवासाद्यतिकर्षितस्य ।

क्रुद्धो महास्रोतसि मातरिश्वा दोषान्समुत्क्लिश्य तदूर्ध्वमस्यन् ॥ ५ ॥

आमाशयोद्रेककृताञ्च मर्म प्रपीडयञ्छर्दिमुदीरयेच्च ॥ ६ ॥

व्यायाम, तीक्ष्ण औषध, शोक, रोग, भय और उपवास आदि हेतुओंसे अतिकृश हुए मनुष्योंके महास्रोत (मुखसे गुदा तक आहार आदि जानेवाली मोटी अंतडी) में वायु कुपित होकर दोषोंको उत्क्लेशित कर ऊपरको उठा मर्मस्थानको पीडन करताहुआ आमाशयसे उद्रेक करतीहुई वातजनित छर्दिको उत्पन्न करता है५-६

वातजछर्दिके लक्षण ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषमूर्ध्वनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः ।

उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ।

कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥ ७ ॥

हृदयमें पीडा, पार्श्वशूल, मुखका सूखना, नाभिके ऊपरकी ओर पीडा, खांसी, स्वरभेद, तोद, उबकायी आतेहुए प्रबल शब्दका होना अथवा प्रबल शब्दवाली

डकार आना और झागदार, फटीहुई, काले वर्णकी, थोडी कसैली छर्दि अत्यंत कष्टके साथ आवे तथा छर्दिके महावेगसे रोगी दुःखित हो यह वातजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

पित्तजवमनके हेतु और सम्प्राप्ति।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैरामाशये पित्तमुदीर्णवेगम्।
रसायनीभिर्विसृतं प्रपीड्य मर्मोर्ध्वमागम्य वमिं करोति ॥ ८ ॥

पित्तजनित अजीर्णसे तथा कटु, अम्ल, विदाही और उष्ण पदार्थोंके अतिसेवनसे आमाशयमें पित्त बढकर और उदीर्ण होकर अपने वेगसे रसवाही छिद्रोंमें विस्तारको प्राप्त होतीहुई हृदयको पीडनकर ऊपरको आकर वमनको उत्पन्न करतीहै ८

पित्तज छर्दिके लक्षण।

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्ध्वताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्त्तः।
पित्तं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रञ्च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥ ९ ॥

मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक और दोनों नेत्रोंका तपायमान होना, नेत्रोंके आगे अंधकार प्रतीत होना, वमनका वर्ण पीला, हरा होना तथा अत्यंत गरम, तिक्त, धूम्रवर्ण और दाहयुक्त वमन होना यह पित्तजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

कफजछर्दिके हेतु सम्प्राप्ति।

स्निग्धातिगुर्वामविदाहिभोज्यैः स्वापादिभिश्चैव कफोऽतिवृद्धः।
उरःशिरोमर्मरसायनीश्च सर्वाः समावृत्य वमिं करोति ॥ १० ॥

चिकने, भारी, अविदाही भोजनोंका अत्यंत सेवन करनेसे और दिनमें सोने आदि कारणोंसे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ छाती, शिर, हृदय और रसवाही छिद्रोंमें फैलकर वमनको उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

कफजछर्दिके लक्षण।

तन्द्रास्यमाधुर्य्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्त्तः।
स्निग्धं घनं स्वादु कफं विशुद्धं सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ११ ॥

तन्द्रा, मुखमें मधुरता, मुखसे कफका गिरना, विना भोजन किये भी तृप्ति प्रतीत होना, निद्रा, अरुचि और शरीरमें भारीपन होना तथा छर्दि चिकनी, गाढी, मीठी, कफयुक्त और सफेद वर्णकी होना तथा वमनके समय रोमहर्ष और अल्प पीडा होना यह कफजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

सान्निपातिक वमनके हेतु।

समश्नतः सर्वरसात्प्रसक्तमामप्रदोषर्त्तुविपर्य्ययैश्च।
सर्वे प्रकोपं युगपत्प्रपन्नाश्छर्दिं त्रिदोषां जनयन्ति दोषाः ॥ १२ ॥

सब प्रकारके रसोंका अत्यंत सेवन करनेसे, बढेहुए आमदोषके होनेसे, ऋतुओंकी विपरीततासे एकबार ही वातादि तीनों दोष कुपित होकर छर्दिको उत्पन्न करते हैं ॥ १२ ॥

सन्निपातकी छर्दिके लक्षण।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलप्रसक्तम् ।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ १३ ॥

शूल, अविपाक, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन सबकी प्रबलता होना तथा प्रबल वमनका होना और वह वमन तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त नमकीन, खट्टी, नीलवर्ण, सान्द्र, उष्ण, रक्तसहित अथवा रक्तवर्णकी हो यह सान्निपातिक छर्दिके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

प्राणनाशक छर्दिके लक्षण।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुध्य यदोर्द्ध्वमेति ।
उत्सन्नदोषस्य तदाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ॥ १४ ॥
विण्मूत्रयोस्तत्समवर्णगन्धं तृट्श्वासहिक्कार्त्तियुतं प्रसक्तम् ।
प्रच्छर्दयेद् दुष्टमिहातिवेगाद्भयार्दितश्चाशु विनाशमेति ॥ १५ ॥

त्रिदोषमिश्रित वायु-विष्ठा, स्वेद, मूत्र और जलवाही स्रोतोंको रोककर जब ऊपरको गमन करती है तथा उत्पन्न हुए कोष्ठाश्रित संचित दोषोंको कोष्ठसे उठाकर निकालती है तब वमनकी गन्ध और वर्ण विष्ठा और मूत्रके समान होती है। रोगी श्वास, प्यास, हिचकी, शूलसे व्याकुल होता है। रोगी इस दुष्ट वमनके वेगसे व्याकुल और भयार्त्त हो। इन लक्षणोंवाली छर्दि मनुष्योंके प्राणको शीघ्र नष्ट करदेती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

द्विष्टार्थसंयोगज छर्दि।

द्विष्टप्रतीपाशुचिपूत्यमेध्यबीभत्सगन्धाशनदर्शनैश्च ।
यच्छर्दयेत्तत्तमना मनोघ्नैर्द्विष्टार्थसंयोगभवा मता सा ॥ १६ ॥

जिन पदार्थोंसे द्वेष या ग्लानि हो तथा अपवित्र, दुर्गन्धित, अमेध्य और बीभत्सगंधवाले पदार्थ हों उनके भोजन करनेसे अथवा गंध लेनेसे या देखनेसे तथा अन्य जो मनके बिगाडनेवाले पदार्थ हैं उनके संयोगसे जो मनमें घबराहट होकर छर्दि होजाती है उसको द्विष्टार्थसंयोगजनित छर्दि कहते हैं ॥ १६ ॥

छर्दिकी साध्यासाध्यता।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रवृद्धा सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ।
सचन्द्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेदनुपद्रवाञ्च ॥ १७ ॥

जो छर्दि क्षीण मनुष्यको अत्यंत वेग और उपद्रवोंसे युक्त हो अथवा रक्त, राध और मोरके पंखोंकीसी चमकयुक्त हो वह असाध्य जानना। जो छर्दि उपद्रवोंसे रहित हो और साध्य हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

छर्दिकी चिकित्सा।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लङ्घनमेव तस्मात्।
प्राक्कारयेन्मारुतजां विमुच्य संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १८ ॥

सब प्रकारकी छर्दियें आमाशयमें उत्क्लेश होनेसे ही उत्पन्न होती हैं इसलिये छर्दि-रोगमें प्रथम लंघन करना चाहिये। लंघन करानेके अनन्तर कफ और पित्तनाशक वमन विरेचन करावे। परन्तु वातजनित छर्दिमें लंघन और शोधन कराना उचित नहीं है। किसीका मत है कि वातज छर्दिमें यदि वैद्य उचित समझे तो लंघन करावे पर वमन विरेचन न करावे ॥ १८ ॥

चूर्णानि लिह्यान्मधुनाभयानां हृद्यानि वा यानि विरेचनानि।
मद्यैः पयोभिश्च युतानि युक्त्या नयन्त्यधो दोषमुदीर्णमूर्द्ध्वम् ॥ १९ ॥

पित्त तथा कफकी छर्दिमें हरडोंका चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटे तथा अन्य हृद्य विरेचन आदि करावे। अथवा युक्तिपूर्वक मद्य या दूधके योगसे शोधन द्रव्योंका उपयोग कर ऊपरके उठेहुए दोषोंको वमनद्वारा निकाल देवे और नीचेके दोषोंका विरेचनद्वारा शोधन करे ॥ १९ ॥

वल्लीफलाद्यैर्वमनं पिबेद्वा यो दुर्बलस्तं शमनैश्चिकित्सेत्।
रसैर्मनोज्ञैर्लघुभिर्विशुष्कैर्भक्ष्यैः सभोज्यैर्विविधैश्च पानैः ॥ २० ॥

अथवा कडवी तोरई आदि फलोंको पीकर वमन करे। यदि रोगी दुर्बल हो तो हल्के प्रिय लगनेवाले सूखे अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पान और संशमन औष-धियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ २० ॥

वातजछर्दिकी चिकित्सा।

सुसंस्कृतास्तित्तिरिबार्हिलावरसा व्यपोहन्त्यनिलप्रवृत्ताम्।
छर्दिं तथा कोलकुलत्थधान्यबिल्वादिमूलाम्लयवैश्च यूषः ॥ २१ ॥

वातसे उत्पन्न हुई छर्दिमें उत्तम रीतिसे संस्कार कियेहुए, तीतर, मोर और लवाके मांसरसोंको पिलावे। तथा बेर, कुल्थी, धनियां और बिल्व आदि पंचमूल तथा यवोंसे सिद्ध कियाहुआ स्निग्ध और अम्ल यूष सेवन करावे ॥ २१ ॥

वातात्मके हृद्गदकासयुक्तो नरः पिबेत्सैन्धववद् घृतं तु।
सिद्धं तथा धान्यकनागराभ्यां दध्ना च तोयेन च दाडिमस्य ॥ २२ ॥

व्योषेण युक्तां लवणैस्त्रिभिश्च घृतस्य मात्रामथवा विदध्यात् ।
स्निग्धानि हृद्यानि च भोजनानि रसैः सयूषैर्दधिदाडिमाम्लैः ॥ २३ ॥

यदि वायुकी छर्दिमें हृदय फडकता हो और खांसी भी हो तो वह मनुष्य घृतमें सेंधानमक मिला सेवन करे । अथवा धनियां, सोंठ इन दोनोंका चूर्ण बनाकर दही और घृतके साथ अथवा दाडिमके रसके साथ पिलावे या त्रिकुटा, सेंधानमक, संचर-नमक, विडनमक इनसे सिद्ध किया घृत विधिवत् पानकरे । और चिकने तथा हृद्य भोजन मांसरसों और दही तथा दाडिमके रससे अम्ल किये यूषोंके साथ सेवन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा ।

पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थं द्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत् स्यात् ।
कफाशयस्थं त्वतिमात्रवृद्धं पित्तं हरेत्स्वादुभिरूर्ध्वमेव ॥ २४ ॥

पित्तकी छर्दिमें पित्तके वेगको अनुलोमन करनेके लिये द्राक्षाका रस, विदारीक-न्दका रस या ईखका रस निशोथके चूर्णके साथ पिलाकर विरेचन करावे । यदि पित्त कफाशयमें बढाहुआ हो तो मधुर द्रव्योंसे वमन करा निकाल देना चाहिये ॥ २४ ॥

शुद्धाय काले मधुशर्कराभ्यां लाजैश्च मन्थं यदि वापि पेयाम् ।
प्रदापयेन्मुद्गरसेन वापि शाल्योदनं जाङ्गलजै रसैर्वा ॥ २५ ॥

जब रोगी वमन, विरेचनद्वारा शुद्ध होलेवे तो उसको शहद, मिसरी मिलाकर लाजामंथ पिलावे । अथवा पेया पिलावे या मूंगके यूषके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ शालिचावलोंका भात खिलावे ॥ २५ ॥

सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिः कुल्माषलाजायवशक्तुगृञ्जान् ।
खर्जूरमांसान्यथ नारिकेलं द्राक्षामथो वा बदराणि लिह्यात् ॥ २६ ॥

अथवा कुल्माष, लाजा या यवोंके सत्तूमें गाजर और पीपलका चूर्ण मिलाकर मिसरी शहतके साथ सेवन करावे । अथवा खजूरका छिलका अथवा नारियल और द्राक्षा तथा बेरकी त्वचा इन सबको बारीक पीस मिसरी और शहद मिला चटावे २६

स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्जचूर्णानि लिह्यान्मधुनाभयाश्च ।
कोलास्थिमज्जाञ्जनमक्षिकाविट् लाजा सिता मागधिका कणा वा॥२७॥

स्रोतोज (रसौत या स्रोतोञ्जन), धानकी खील, नीलकमल, बेरकी मींगी इन सबके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे । अथवा बेरकी मींगी (गुठलीके भीतरकी गिरी), रसौत, खील, मिसरी, इलायची और पीपल शहद मिलाकर चाटे ॥ २७ ॥

द्राक्षारसं वापि पिबेत्सुशीतं मृद्भृष्टलोष्टप्रभवं जलं वा।
जम्ब्वाम्रयोः पल्लवजं कषायं पिबेत्सुशीतं मधुसंयुतं वा ॥ २८ ॥

पित्तज छर्दिमें दाखका रस पीवे। अथवा आगमें भुनाहुआ मट्टीका डला जलमें बुझा फिर उस जलको शीतल कर पीवे अथवा जामुन और आमके पत्तोंके क्राथको शीतलकर जल मिला पीवे॥ २८॥

निशि स्थितं वारि समुद्गकृष्णं सोशीरधान्यं चणकोदकं वा।
गवेधुकामूलजलं गुडूच्या जलं पिबेदिक्षुरसं पयो वा ॥ २९ ॥
सेव्यं पिबेत्काञ्चनगैरिकं वा सबालकं तण्डुलधावनेन।
धात्रीरसेनोत्तमचन्दनं वा तृष्णावमिघ्नानि समाक्षिकाणि ॥ ३० ॥
कल्कं तथा चन्दनचव्यमांसीद्राक्षोत्तमाबालकगैरिकाणाम्।
शीताम्बुना गैरिकशालिचूर्णं मूर्वां तथा तण्डुलधावनेन ॥ ३१ ॥

या रात्रिको जलमें मूंग, पीपल, भिंगोकर अथवा खस और धनियां भिंगोकर रख-देवे या चनोंके जलमें खस और धनियां भिंगोवे फिर प्रातःकाल उस शीतल जलको छानकर या इसी प्रकार गेहूं भिगोये जलको पीवे। अथवा गिलोयको सायंकाल भिंगोकर प्रातःकाल छानकर पीवे या ईखका रस पीवे। अथवा खसको भिंगोकर उस जलको पीवे। अथवा सोनागेरू या गेरू और कमलके केशरका चूर्ण कर तण्डु-लजलके साथ पीवे। अथवा आँवलेके रसके साथ सफेद चंदन घिसकर पीवे। इन उपरोक्त सब योगोंके जलोंमें शहद मिला पीना चाहिये। इनके पीनेसे पित्तकी प्यास और वमन दूर होती है। अथवा चंदन, चव्य, जटामांसी, द्राक्षा, दूधी, सुगन्धवाला और गेरूका चूर्ण शीतल जलके साथ सेवन करे। अथवा गेरू और शालिचावलोंका चूर्ण तथा मूर्वा चावलोंके धोवनके साथ पीवे॥ २९-३१॥

कफकी छर्दिका यत्न।

कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः।
पिण्डीतकैः सैन्धवसम्प्रयुक्तैर्वम्यां कफामाशयशोधनार्थम् ॥ ३२ ॥
गोधूमशालीन्सयवान्पुराणान् यूषैः पटोलामृतचित्रकाणाम्।
व्योषस्य निम्बस्य च तक्रसिद्धैर्यूषैः फलाम्लैः कटुभिस्तथाद्यात्॥ ३३॥

कफकी छर्दिमें आमाशय और कफाशयको शोधन करनेके लिये सरसों, पीपल और नीमके जलमें सेंधानमक तथा मैनफलका कल्क मिलाकर वमन करावे। फिर पुराने गेहूं शालिचावल और यवोंके अन्नको पटोल, गिलोय और चित्रकके यूषके

साथ सेवन करावे। अथवा त्रिकुटा, मीठी नीम और तक्रके साथ सिद्ध किया यूष अनारके रससे अम्लकर पीपल और मिर्चका चूर्ण बुरकाकर सेवन करे॥ ३२॥३३॥

रसांश्च शूल्यानि सजाङ्गलानां मांसानि जीर्णान् मधुशीध्वरिष्टान्।
रागांस्तथा षाडवपानकानि द्राक्षाकपित्थैः फलपूरकैश्च॥ ३४॥

जंगलीजीवोंके मांसरस, सींखचे, पुराना शहद, शीधु अरिष्ट, राग द्राक्षा, कपित्थ, और बिजौरेके रसके साथ बनायेहुए खाण्डव और पानकका सेवन करावे॥ ३४॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान् कलायान् भृष्टान्युतान्नागरमाक्षिकाभ्याम्।
लिह्यात्तथैव त्रिफलाविडङ्गचूर्णं विडङ्गप्लवयो रसं वा॥ ३५॥
सजाम्बवं वा बदरस्य चूर्णं मुस्तायुतां कर्कटकस्य शृङ्गीम्।
दुरालभां वा मधुसम्प्रयुक्तां लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम्॥ ३६॥
मनःशिलायाः फलपूरकस्य रसैः कपित्थस्य च पिप्पलीनाम्।
क्षौद्रेण चूर्णं मरिचैश्च युक्तं लिहञ्जयेच्छर्दिमुदीर्णवेगाम्॥ ३७॥

अथवा मूंग, मसूर और मटरके यूषोंको घृतमें भूनकर सोंठ और शहद मिला सेवन करे अथवा त्रिफला और विडंगके चूर्णको शहद मिला चाटे। या बिडंग और केवटीमोथेके चूर्णको शहद मिला चाटे। अथवा जामुन, आमकी गुठलीका चूर्ण या बेरकी गुठलीका चूर्ण या काकडासिंगी और नागरमोथेका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे। अथवा जवासेका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे तो कफकी छर्दि दूर होती है। अथवा शुद्ध मनसिलका चूर्ण आधी रत्ती प्रमाण लेकर बिजौरेके रसके साथ और कैथके रसके साथ सेवन करे। या पीपल और मिर्चके चूर्णको शहदके साथ चाटे तो कफजनित बलवान् छर्दि भी दूर होती है॥ ३५-३७॥

सन्निपातकी छर्दिकी चिकित्सा।

यैषा पृथक्त्वेन मया क्रियोक्ता तां सन्निपातेऽपि समीक्ष्य बुद्ध्या।
दोषर्तुरोगाग्निबलान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रविदप्रमत्तः॥ ३८॥

जो यह वातादि दोषोंकी छर्दियोंमें दोष भेदसे पृथक् २ चिकित्सा हमने कथन की है। दोष, ऋतु, देह, अग्निबल, विचारकर शास्त्रको जाननेवाला अप्रमत्त वैद्य सन्निपातमें भी अपनी बुद्धिसे दोषोंका बलाबल विचार उसी चिकित्साको मिला-जुला करे॥ ३८॥

द्विष्टार्थजछर्दिका यत्न।

मनोऽभिघाते तु मनोऽनुकूला वाचः समाश्वासनहर्षणानि।

लोकप्रसिद्धाः श्रुतयो वयस्याः शृङ्गारिकाश्चैव हिता विहाराः ॥ ३९ ॥

गन्धा विचित्रा मनसोऽनुकूला मृत्पुष्पशुक्ताम्लफलादिकानाम् ।

शाकानि भोज्यान्यथ पानकानि सुसंस्कृताः षाडवरागलेहाः ॥ ४० ॥

मनमें ग्लानि उत्पन्न होकर जो छर्दि होती है उसमें मनके अनुकूल वाक्य, आश्वासन और हर्षादि उत्पन्न करे तथा लोक प्रसिद्ध मनके लगानेवाली आख्यायिका सुनावे। और बराबरकी उमरवाले शृंगाररसमें चतुर मित्रोंकी मण्डलीमें विहार करे। तथा विचित्र गन्ध आदिके मनको हरण करनेवाले सुंघावे। एवं मनोनुकूल मृत्तिका, पुष्प, कागजी नींबू आदिके सुंघावे और खाने पीनेके लिये उत्तम संस्कार किये हुए शाक भोज्य पदार्थ और पानके, खाण्डव, राग तथा लेहादिकोंका सेवन करावे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

यूषा रसाः काम्बलिकाः खडाश्च मांसानि धाना विविधाश्च भक्ष्याः।

फलानि मूलानि च गन्धवर्णैं रसैरुपेतानि वमिं जयन्ति ॥ ४१ ॥

यूष, रस, काम्बलिक यूष, खडयूष, मांस, धाना, अनेक प्रकारके भक्ष्य, फल, मूल यह सब गन्ध वर्ण और रससे संपन्न होने चाहिये। इनके सेवन करानेसे भी वमन दूर होती है ॥ ४१ ॥

गन्धं रसं स्पर्शमथापि शब्दं रूपञ्च यद्यत्प्रियमप्यसात्म्यम् ।

तदेव कुर्य्यात्प्रशमाय तस्यास्तज्जो हि रोगः सुखमेव जेतुम् ॥ ४२ ॥

वमनके रोगीको जो गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द और रूप प्रिय मालूम होता हो और जिस पदार्थकी वह इच्छा करता हो वह उसको असात्म्य होनेपर भी सेवन करानेसे घृणा, ग्लानि आदिसे उत्पन्न हुई वमन दूर होती है ॥ ४२ ॥

वमनमें विशेषज्ञातव्य।

छर्द्युत्थितानाञ्च चिकित्सितात्स्वाच्चिकित्सितं कार्यमुपद्रवाणाम् ।

अतिप्रवृत्तासु विरेचनस्य कर्मातियोगैर्विहितं विधेयम् ॥ ४३ ॥

वमनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें जो चिकित्सा वमनको दूर करनेके लिये कही है वह चिकित्सा वमनके दूर करनेके लिये भी करना चाहिये । यदि वमनका अतियोग होजाय अर्थात् वमनके वेग बहुत बढनेसे रोगी व्याकुल होजाय तो जो चिकित्सा विरेचनके अतियोगमें कही है वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

वमिप्रसङ्गात्पवनोऽप्यवश्यं धातुक्षयाद् वृद्धिमुपैति तस्मात् ।

चिरप्रवृत्तास्वनिलापहानि कार्य्याण्युपस्तम्भनबृंहणानि ॥ ४४ ॥

वमनके अतिप्रसंगसे धातुओंका क्षय होता है इसलिये वायुकी अवश्य वृद्धि होती है सो बहुत दिनसे उत्पन्नहुई वमनमें वातनाशक स्तम्भन और बृंहणाक्रिया करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

सर्पिर्गुडाः क्षीरविधिर्घृतानि कल्याणकत्र्यूषणजीवनानि।
वृष्यास्तथा मांसरसाः सलेहाश्चिरप्रसक्तांश्च वमिं जयन्ति॥ इति ॥४५॥

घृत, गुड, खीरविधि, कल्याणघृत, त्र्यूषणघृत, जीवनीयघृत, वृष्ययोग, मांसरस और अवलेह बहुत दिनकी वमनको दूर करते हैं ॥ ४५ ॥

अध्यायका उपसंहार।

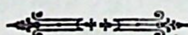
तत्र श्लोकः—संख्यां हेतुं लक्षणमुपद्रवान्साध्यतां च योगांश्च।
छर्दीनां प्रशमार्थं प्राह चिकित्सितं मुनिवर्य्यः ॥ ४६ ॥

इति चरक० चिकि० छर्दिचिकित्सितं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस छर्दिचिकित्सित अध्यायमें वमनरोगकी संख्या, हेतु, लक्षण, उपद्रव, साध्य, असाध्य और छर्दिनाशक योग इन सबको मुनियोंमें श्रेष्ठ पुनर्वसुजीने कथन किया है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां छर्दिचिकित्सितं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः।



अथातस्तृष्णाचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम तृष्णाचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

ज्ञानप्रशमतपोभिः ख्यातोऽत्रिसुतो जगद्धितेऽभिरतः।
तृष्णानां प्रशमार्थं चिकित्सितं प्राह पञ्चानाम् ॥ १ ॥

ज्ञान, तप और शांतिमें विख्यात अत्रिसुत पुनर्वसुजी जगत्के हितमें तत्पर हुए पांच प्रकारकी तृष्णा (प्यास) की शांतिके लिये चिकित्साका कथन करनेलगे॥१॥

प्यासके कारण और संप्राप्ति।

क्षोभाद्भयाच्छ्रमादपि शोकात्क्रोधाद्विलङ्घनान्मद्यात्।
क्षाराम्ललवणकटुकोष्णरूक्षशुष्कान्नसेवाभिः॥ २॥
धातुक्षयगदकर्षणवमनाद्यतियोगसूर्य्यसन्तापैः।
पित्तानिलौ प्रवृद्धौ सौम्यान् धातूंश्च शोषयतः॥ ३॥
रसवाहिनीश्च नाडीर्जिह्वामूलगलतालुक्लोम्नः।
संशोष्य नृणां देहे कुरुतस्तृष्णां महाबलावेतौ॥ ४॥
पीतंपीतं हि जलं शोषयतस्तमतो न याति शमम्।
घोरव्याधिकृशानां प्रभवत्युपसर्गभूता सा॥ ५॥

क्षोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध और लंघनसे, मद्य पीनेसे, खारे, खट्टे, नमकीन, चरपरे, गरम, रूखे और सूखे अन्नोंके सेवनसे तथा धातुक्षय होनेसे, रोगसे, कर्षणसे, वमनादिकोंके अतियोगसे और सूर्यकी धूपसे पित्त और वायु बढकर सौम्यधातुओंको शोषण करते हुए जीभके मूलमें तथा गल, तालु और क्लोमको शोषण करके बलवान् वात पित्त मनुष्योंको प्यासरोग करते हैं। तब मनुष्य बारंबार भी जलपीता रहे तब भी जिह्वा आदिको वात पित्त सुखाए ही जाते हैं इसी लिये प्यास शांत नहीं होती। जो प्यास किसी घोर व्याधिसे पीडित मनुष्यको होती है वह उस घोर रोगको उपद्रवभूत होती है॥ २-५॥

पूर्वरूप और रूप।

प्राग्रूपं मुखशोषं स्वलक्षणं सर्वदाम्बुकामित्वम्।
तृष्णानां सर्वासां लिङ्गानां लाघवमपायः॥ ६॥

मुखका सूखना, तृष्णा (प्यास) का पूर्वरूप है और सर्वदा जलकी इच्छा रहना तृष्णाका रूप है। सब प्रकारकी तृष्णाओंमें तृष्णाके लक्षणोंका लाघव होना अपाय कहा जाता है॥ ६॥

तृषाके सामान्य लक्षण।

मुखशोषस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्तम्भान्।
ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतां चित्तनाशञ्च॥ ७॥
जिह्वानिर्गममरुचिं बाधिर्य्यं मर्मदूयनं सादम्।
तृष्णोद्भूता कुरुते पञ्चविधा लिङ्गतः शृणु ताम्॥ ८॥

मुखका सूखना, स्वरभेद, भ्रम, संताप, बकवाद, संस्तम्भ, तालु, होठ, कण्ठ और जीभमें रूक्षता, चित्तकी व्याकुलता अथवा मोह, जीभका बाहर निकलना, अरुचि, बहरापन, मर्मोंका संताप वा हृदयका फडकना और सुन्नसा होजाना यह बलवान् तृषाके उपद्रव होते हैं। अब पांच प्रकारकी तृषाके अलग अलग लक्षण श्रवण करो ॥ ७ ॥ ८ ॥

वातजतृषाकी संप्राप्ति।

अब्धातुं देहस्थं कुपितः पवनो यदा विशोषयति।
तस्मिञ्छुष्के शुष्यत्यबलस्तृष्यत्यथ विशुष्यन् ॥ ९ ॥

जब वायु अपने कारणोंसे कुपित होकर शरीरस्थ जलधातुको शोषण कर देती है तो उसके शोषण होनेसे दुर्बल हुआ मनुष्य शुष्कताको प्राप्त होकर प्यासयुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥

वातजतृषाके लक्षण।

निद्रानाशः शिरसो भ्रमस्तथा शुष्कविरसमुखता च।
स्रोतोऽवरोध इति च स्याल्लिङ्गं वाततृष्णायाः ॥ १० ॥

निद्रानाश, मस्तकका इधर उधर पटकना, भ्रम होना, मुखका विरस और सूखा होना, स्रोतोंका अवरोध होना यह वातजनित तृषाके लक्षण हैं ॥ १० ॥

पित्तजतृषाकी संप्राप्ति।

पित्तं मतं कुपितमाग्नेयं कुपितं तापयत्यपां धातुम्।
सन्तप्तः स हि जनयेत्तृष्णां दाहोल्बणां नृणाम् ॥ ११ ॥

उत्तप्त आग्नेय पित्त कुपित होकर जलधातुको तप्त करता है फिर उससे उत्तप्त हुए मनुष्योंको दाहोल्बण तृषा उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥

पित्तजतृषाका लक्षण।

तिक्तास्यत्वं शिरसो दाहः शीताभिनन्दता मूर्च्छा।
पीताक्षिमूत्रवर्चस्त्वमाकृतिः पित्ततृष्णायाः ॥ १२ ॥

मुखका कडुआ होना, मस्तकमें दाह, शीतल वस्तुओंकी इच्छा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र और मलका पीले रंगका होना यह पित्तजनित तृषाके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

आमदोषज तृषाके लक्षण।

तृष्णा याऽऽमभवा साप्याग्नेय्यामपित्तजानितत्वात्।
लिङ्गं तस्याश्चारुचिराध्मानकफप्रसेकौ च ॥ १३ ॥

जो प्यास आमसे प्रगट होती है वह आग्नेयी तृषा है क्योंकि वह तृषा आम-

मिश्रित पित्तसे ही उत्पन्न होती है । अरुचि, अफारा, मुखसे कफका गिरना यह आमजनित तृषाके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

तृषाका कारण ।

देहो रसजोऽम्बुभवो रसश्च तस्य क्षयाच्च तृष्येत्तु ।
दीनस्वरः प्रताम्यन् संशुष्कहृदयगलतालुः ॥ १४ ॥

संपूर्ण मनुष्योंका शरीर रससे उत्पन्न होता है । अर्थात् गर्भवती स्त्री जो आहार करती है उसके रससे शरीरकी उत्पत्ति है और वह रस जलसेही बनता है । इसलिये रसधातुके क्षय होनेसे मनुष्यको तृषारोग होता है । उससे स्वरकी क्षीणता, दीनता, ग्लानि, हृदय कंठ और तालुका शोष होता है ॥ १४ ॥

कष्टसाध्य और असाध्य तृषा ।

भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ।
ज्वरमेहक्षयशोषश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥ १५ ॥
सर्वास्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ।
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः ॥ १६ ॥

इस शोषणकारी तृषामें ज्वर, प्रमेह, क्षय, शोष, श्वास, आदि उपद्रवोंके होनेसे मनुष्योंकी यह तृषा कष्टसाध्य होती है । अत्यंत प्रसक्त होनेसे सब प्रकारकी तृषा ही कष्टसाध्य होती है । तथा कृशरोगियोंकी और वमनयुक्त मनुष्योंकी तृषाभी कष्टसाध्य ही होती है । जिस तृषामें अत्यंत घोर उपद्रव हों वह तृषा मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करनेवाली होती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

नाग्निं विना हि तर्षः पवनाद्वा तौ हि शोषणे हेतू ।
अब्धातोरतिवृद्धावपां क्षये तृष्यते नरो हि ॥ १७ ॥

सब प्रकारकी तृषाएँ अग्नि अथवा वायुके विना उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि अग्नि और वायु ही जलधातुके शोषण करनेवाले हैं । सो यह अग्नि और वायु अत्यंत बढकर जलका क्षय करते हैं । जलके क्षय होनेसे ही मनुष्योंको तृषा लगती है १७॥

अन्नजतृषाके लक्षण ।

गुर्वन्नपयःस्नेहैः संमूर्च्छद्भिर्विदाहकाले च ।
यस्तृष्येद्धृतमार्गे तत्राप्यानिलानलौ हेतू ॥ १८ ॥

भारी अन्न, दूध और घृत आदिकोंके परिपाकके समय जा प्यास लगती है उसका भी अग्नि और वायु ही कारण है।क्योंकि, भारी अन्नादिकोंके संमूर्च्छन होकर परिपाकके समय वायु और अग्नि रुककर प्रबल होते हैं इसलिये तृषा लगतीहै॥ १८॥

मद्यजतृषा ।

तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मद्यं पित्तानिलौ प्रकोपयति ।
शोषयतोऽपां धातुं ताविव मद्यशीलानाम् ॥ १९ ॥
तप्तास्विव सिकतासु हि तोयमाशुष्यति क्षिप्तम् ।
तेषां संतप्तानां हिमजलपानाद्भवति शर्म ॥ २० ॥

मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष होनेसे पित्त और वायुका प्रकोप करती है फिर कुपित हुए पित्त और वायु मद्य पीनेवाले मनुष्योंके जलधातुको शोषणकर तृषाको उत्पन्न करते हैं । जैसे तपेहुए बालूमें जल छिडकनेसे वह जल शीघ्र सूखजाता है उसी प्रकार मद्यसे सन्तप्त मनुष्योंको शीतल जल पीना भी तत्काल सुख है ॥१९॥२०॥

अकालस्नानज तृषा ।

शिशिरस्नातस्योष्मा रुद्धः कोष्ठं प्रपद्य तर्षयति ।
तस्मान्नोष्णक्लान्तो भजेत सहसा जलं शीतम् ॥ २१ ॥

गर्मायाहुआ मनुष्य शीतल जलमें एकाएकी स्नान करे तो उसके शरीरकी गर्मी रुककर कोष्ठमें प्राप्त हो तृषाको उत्पन्न करती है । इसलिये गर्मीसे गर्मायाहुआ मनुष्य और मार्गचलने आदिसे क्लान्त हुआ मनुष्य शीतल जलमें सहसा स्नान न करे । अर्थात् जबतक शरीरकी गर्मी न सूखजाय और शरीर ठण्डा न होजाय तब तक स्नान नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

लिङ्गं सर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजं भवत्यथ तु ।
पृथगागमाच्चिकित्सितमतः प्रवक्ष्यामि तृष्णानाम् ॥ २२॥

भारी अन्न आदि तथा मद्यपान और गर्मायेहुए स्नान करनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है उसमें वायुके क्षयसे पित्तके ही अधिक लक्षण होते हैं । अब तृषारोगकी अलग अलग चिकित्साका वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥

तृषाकी चिकित्सा ।

अपां क्षयाद्धि तृष्णा संशोष्य नरं प्रणाशयेदाशु ।
तस्मादैन्द्रं तोयं समधु पिबेत्तद्गुणं वाऽन्यत् ॥ २३ ॥

जलधातुके क्षय होनेसे ही तृषा मनुष्यको सुखाकर प्राणोंको शीघ्र नष्टकर देती है । अतएव तृषाकी शान्तिके लिये आकाशका जल शहद मिला पिलाना चाहिये अथवा उसीके समान गुणवाला अन्य जल पिलाना हित है ॥ २३ ॥

वात और पित्तकी तृषानाशक अनेक योग ।

किञ्चित्तुवरानुरसं तत्र लघु शीतलं सुगन्धि सुरसम् ।
अनभिष्यन्दि च यत्तत्क्षितिगतमप्यैन्द्रवज्ज्ञेयम् ॥ २४ ॥

पृथ्वीके जलोंमें किंचित् कषायानुरस, हलका, शीतल, सुगन्धित, सुरस और अनभिष्यन्दी जल आकाशके जलके समान गुणवाला है ॥ २४ ॥

श्रृतं शीतं ससितोपलमथवा शरपूर्वपञ्चमूलेन ।
लाजासक्तून्सिताक्तान् मधुयुतमैन्द्रेण वा मन्थम् ॥ २५ ॥

जलको पकाकर ठण्डा करके अथवा शरादि पंचमूलसे सिद्ध किया जल मिसरी मिला पिलावे या खीलोंके सत्तू, मिसरी, शहद और आकाशका जल मिला मन्थ बनाकर पिलावे ॥ २५ ॥

वाट्यं वामयवानां शीतं मधुशर्करायुतं दद्यात् ।
पेयां वा शालीनां दद्याद्वा कोरदूषाणाम् ॥ २६ ॥
पयसा श्रृतेन भोजनमथवा मधुशर्करायुतं भोज्यम् ।
पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्यलवणाम्लैः ॥ २७ ॥

अथवा भुनेहुए जवोंके मण्डको शीतल कर छानलेवे । उसमें शहद और मिसरी मिलाकर पिलावे । या शालीचावलोंकी पेया वा कोद्रवकी पेयामें शहद मिसरी मिला पिलावे । अथवा औटाये हुए दूधमें शहद और मिसरी मिला उसके साथमें भोजन देवे अथवा कबूतर आदि पक्षियोंके मांसरसको खटाई और नमकके विना घृतमें छौंक करके पिलावे ॥ २६ ॥ २७ ॥

तृणपञ्चमूलमुञ्जातकैः पियालैश्च जाङ्गलाः सुकृताः ।
शस्ता रसाः पयो वा तैः सिद्धं शर्करामधुमत् ॥ २८ ॥

अथवा तृणपंचमूल, मुंजातक और चिरौंजीके जलके साथ सिद्ध किया जंगली जीवोंका मांसरस अथवा अन्य हितकारी रस या तृण पंचमूलादिसे सिद्ध किया दूध मिसरी और शहद मिलाकर पिलावे ॥ २८ ॥

शतधौतघृतेनाक्तः पयः पिबेच्छीततोयमवगाह्य ।
मुद्गमसूरचणकजा रसास्तु भृष्टा घृते देयाः ॥ २९ ॥

अथवा १०० वार धुलाहुआ घृत सम्पूर्ण शरीरपर लेप करके शीतल जलमें बैठे और शीतल दूधको पीवे । या मूंग,मसूर और चनोंके यूषको घृतमें छौंककर पीवे ॥

मधुरैः संजीवनीयैः शीतैश्च सतिक्तकैः श्रृतं क्षीरम् ।
पानाभ्यञ्जनसेकेष्विष्टं मधुशर्करायुक्तम् ॥ ३० ॥

तज्जं वा घृतमिष्टं पानाभ्यङ्गेषु नस्यमपि च स्यात्।
नारीपयः सशर्करमुष्ट्र्या अपि नस्यमिक्षुरसः ॥ ३१ ॥

अथवा मधुरगण और जीवनीयगण अथवा अन्य खस आदि शीतल द्रव्य या तिक्तकगणसे सिद्ध कियाहुआ दूध शहद और मिसरी मिला तृषारोगीको पिलाना और परिसेचन करना हितकारी है। अथवा इन्हीं गणोंसे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत पान, अभ्यंग और नस्यमें प्रयोग करनेसे तृषाकी शान्ति होती है। अथवा स्त्रीका दूध मिसरी मिला वा ऊंटनीका दूध ईखका रस मिलाकर नस्यकर्ममें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

क्षीरेक्षुरसगुडोदकसितोपलाद्यैः क्षौद्रशीधुमाध्वीकैः।
वृक्षाम्लमातुलुङ्गैर्गण्डूषास्तालुशोषघ्नाः ॥ ३२ ॥

दूध, ईखका रस, गुडका शरबत, मिसरीका शरबत, शहदका शरबत, शीधु, माध्वीक, इमली और बिजौरेका बनाया शरबत मुखमें धारण कर कुल्ले करनेसे तालुशोष दूर होता है ॥ ३२ ॥

जम्ब्वाम्रातकबदरीवेतसपञ्चपल्लवैश्चाम्लैः।
हृन्मुखशिरःप्रलेपाः सघृता मूर्च्छाभ्रमतृष्णाघ्नाः ॥ ३३ ॥

जामुन, अंबाडा, बेर, वेतस और पंचपल्लवोंको खटाई मिलाकर घृतके साथ हृदय, मुख और शिरपर लेपकरे तो मूर्च्छा, भ्रम और तृषा नष्ट होती है ॥ ३३ ॥

दाडिमदधित्थलोध्रैः सविदारीबीजपूरकैः शिरसः।
प्रलेपो गौरामलकैर्घृतारनालयुतैश्च हितः॥ ३४ ॥

अनार, कैथ, लोध, विदारीकंद और बिजौरेका मस्तकपर लेप करनेसे मूर्च्छा आदि तृषाके उपद्रव दूर होते हैं। तथा सफ़ेद सरसों, घृत, आँवले और कांजी मिलाकर मस्तकपर लेप करनेसे भी मूर्च्छा आदि दूर होते हैं ॥ ३४ ॥

शैवलपङ्कजलजैः साम्लैः सघृतैश्च सक्तुभिर्लेपाः।
मस्त्वारनालार्द्रवसनकमलमणिहारसंस्पर्शाः ॥ ३५ ॥
शिशिराम्बुचन्दनार्द्रस्तनतटपाणितलसंस्पर्शाः।
क्षौमार्द्रवसनानां वराङ्गनानां प्रियाणाञ्च ॥ ३६ ॥
हिमवद्दरीवनसरित्सरोऽम्बुजपवनेन्दुपादशिशिराणाम्।
रम्यशिशिरोदकानां स्मरणञ्च कथाश्च तृष्णाघ्नाः ॥ ३७ ॥

तृषारोगमें मूर्च्छा आदि उपद्रवोंकी शान्तिके लिये पानीकी काई, कीच, कमल, अनार आदि खट्टे द्रव्य, घृत और सत्तू इनमेंसे किसी एकका लेप कराना तथा मस्तू, शीतल कांजी, गीले वस्त्र, जलमें भिंगोयेहुए कमल तथा शीतल मणियों और हारोंका स्पर्श करना हितकारी है। और शीतल जलसे भींगेहुए चंदनसे आर्द्र स्तनोंको हाथसे स्पर्श कराना तृषाको शान्त करता है। तथा रेशमी अथवा गीले वस्त्रोंको पहिनेहुई खूबसूरत स्त्रियोंका हाथसे स्पर्श कराना अथवा अन्य मणि, कमल आदि प्यारी वस्तुओंका स्पर्श करना, हिमालयकी शीतल चोटियें या हिमसे शीतल हुए कंदरा, वन, नदिय, सरोवर, कमल, पवन, चंद्रमाकी किरणें शिशिर और मनोरम शीतल जलका स्मरण और शीतल जलकी बातें तृषाको शान्त करनेवाली हैं ३५-३७

वातघ्नमन्नपानं मृदु लघु शीतञ्च वाततृष्णायाः।
क्षतकासनुद्घृतक्षीरमूर्द्धं वाततृष्णाघ्नम् ॥ ३८ ॥

वातनाशक, मृदु, हलके और शीतल अन्नपानोंके सेवनसे भी तृषाकी शान्ति होती है। क्षतकी खाँसीको नष्ट करनेवाले जो घृत कह आये हैं वह घृत पीकर ऊपरसे दूध पीवे तो वायुकी तृषा शान्त होती है ॥ ३८ ॥

स्याज्जीवनीयसिद्धं क्षीरघृतं वातपित्तजे तर्षे।
पैत्ते द्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतं तोयम् ॥ ३९ ॥

जीवनीयगणोंसे सिद्ध किया दूध और घृत वात, पित्तकी तृषाको शान्त करता है और दाख, चंदन, खजूर और खसका शीत कषाय शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकी तृषा शान्त होती है ॥ ३९ ॥

लोहितकशालितण्डुलखर्जूरपरूषकोत्पलद्राक्षाः।
मधुपक्कलोष्टमेव च जले शृतं शीतलं पेयम् ॥ ४० ॥

लालचंदन, शालिचावल, खजूर, फालसा, नीलकमल, द्राक्षा इन सबको पकाकर अथवा इनके शीत कषायमें गरम किया मट्टीका ढेला बुझाकर उस जलको ठण्ढा कर स्वच्छ नितरेहुए जलमें शहद मिला पीवे तो पित्तकी तृषा शान्त हो ॥ ४० ॥

लोहितशालितण्डुलप्रस्थः सलोध्रमधुकाञ्जनोत्पलः।
पक्त्वा मलोष्टमधुजलसमायुतो मृण्मये पेयः ॥ ४१ ॥

अंजन, लाल शालिचावल एक प्रस्थ, लोध, मुलैठी, नीलकमल यह प्रत्येक एक एक पल इन सबको दो आढक जलमें औटावे। जब आधा जल रहे तो उतारकर छानले। अथवा इन उपरोक्त सब द्रव्योंको एक आढक जलमें भिगोंदेवे। फिर

प्रातःकाल उसमें गरम कियाहुआ लोहकिट्टका टुकडा बुझावे। शीतल होनेपर शहद मिलाकर मट्टीके बरतनमें डाल पीवे॥ ४१॥

वटमातुलुङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलयष्ट्याह्वैः।
सिद्धेऽम्भस्यग्निनिभाः कृष्णमृदः कृष्णसिकता वा॥ ४२॥
तप्तानि नरकपालान्यथवा निर्वाप्य पाययेताच्छम्।
अल्पपक्वशर्करामृतवल्ल्युदकं वा तृषं हन्ति॥ ४३॥

वट, बिजौरा और बेतकी कोंपल, कुशा और कांसकी जडें तथा मुलैठी इन सबसे सिद्ध किये जलमें काली मट्टीका ढेला या काले रेतको गरम करके बुझावे अथवा नवीन घडेके ठिकरेको गरमकर इस जलमें बुझावे। इस जलको शीतलकर नितार पीनेसे तृषा दूर होती है। अथवा गिलोयका जल थोडीसी खांड मिला पीनेसे पित्तकी तृषा शान्त होती है॥ ४२॥ ४३॥

क्षीरवतां मधुराणां शीतानां शर्करा मधुविमिश्राः।
शीतकषाया मृदुभृष्टसंयुताः पित्ततृष्णाघ्नाः॥ ४४॥

वटादि क्षीरी वृक्षोंका अथवा मधुरगणकी औषधियोंका शीत कषाय गरम मट्टीसे बुझाकर शीतल व शहदयुक्त कर पीवे तो पित्तकी तृषा शान्त होती है॥ ४४॥

आमजतृषाका यत्न।

व्योषवचाभल्लातकतिक्तकषायास्तथामतृष्णायाम्।
यच्चोक्तं कफजायां वम्यां तच्चैव कार्य्यं स्यात्॥ ४५॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, भिलावा और तिक्त द्रव्योंका क्काथ आमजन्य तृषामें हितकारी है। तथा कफजनित वमननाशक योग भी आमजनित तृषाको दूर करते हैं॥

कफानुगत तृषाकी चिकित्सा।

स्तम्भारुच्यविपाकालस्यच्छर्दिषु कफानुगां तृष्णाम्।
ज्ञात्वा दधिमधुतर्पणलवणोष्णजलैर्वमनमिष्टम्॥ ४६॥
दाडिममदनफलं वाप्यन्यतमकषायमथ लेहम्।
पेयमथवा हरिद्राम्बुशर्कराक्षौद्रसंयुक्तम्॥ ४७॥

यदि तृषामें स्तम्भ, अरुचि, आविपाक, आलस्य और वमन भी हो तो उस तृषाको कफानुगत समझ, दही, शहद, तर्पण, लवण और उष्ण जल मिलाकर वमन कराना हितकारक है। कफानुगत तृषामें अनार और मैनफलका क्काथ मिलाकर वमन कराना हितकारी है। अथवा अन्य वमनकारक क्काथ अवलेह हल्दीका क्काथ शहद और खांड मिलाकर पिलाना चाहिये॥ ४६॥ ४७॥

क्षयकासजतृषाकी चिकित्सा।

क्षयकासेन तु तुल्या क्षयतृष्णायाया गरीयसी नृणाम्।
क्षीणक्षतशोषहितैस्तस्मात्ता भेषजैः शमयेत्॥ ४८॥

क्षयकी खांसीमें जो तृषा होती है वह तृषा क्षयके समान ही उत्कट होती है। क्षयकी खांसी और तृषाकी चिकित्सा भी तुल्य ही है। इसलिये क्षीण और क्षतज रोगीकी तृषा तथा शोषरोगीकी तृषामें उन उन रोगोंके लिये जो उपयोगी द्रव्य हों उनसे चिकित्सा करनी चाहिये॥ ४८॥

मद्यपानजतृषाका यत्न।

पानतृषार्त्तः पानन्त्वर्द्धोदकमम्ललवणगन्धाढ्यम्।

मद्यपानसे उत्पन्न हुई तृषामें खटाई, लवण और सुगन्ध मिलाकर आधा जल मिली मद्यका ही पान कराना चाहिये।

सहसा शीतजल स्नानजतृषाका यत्न।

शिशिरस्नातः पानं मद्याम्बु गुडाम्बु वा तृषितः॥ ४९॥

गर्मायेहुए शीघ्र शीतल जलमें स्नान करलेनेसे जो तृषा उत्पन्न हो उसमें जल-मिश्रित मद्य अथवा गुडोदक पीना चाहिये॥ ४९॥

क्षुधाजनित और गुर्वन्नजतृषाका यत्न।

भक्तोपरोधतृषितः स्नेहतृषार्तोऽथवा तनुयवागूम्।
प्रपिबेद् गुरुणा तृषितो भुक्तेनोद्धरेद् भुक्तम्॥ ५०॥
मद्याम्बु वाम्बु चोष्णं बलवांस्तृषितः समुल्लिखेत्पीत्वा।
मागधिकाविशदमुखः सशर्करं वा पिबेन्मन्थम्॥ ५१॥

भोजनके समय भोजन न करनेसे जो प्यास उत्पन्न हो अथवा जो प्यास स्नेह-पान करनेसे उत्पन्न हो उसमें पतली यवागूका पीना तृषाको शान्त करता है। और भारी अन्नके भोजन करनेसे जो तृषा उत्पन्न हो तो भोजन किये अन्नको वमनद्वारा निकाल देना चाहिये। यदि रोगी बलवान् हो तो मद्य और जल पिलाकर अथवा गरम जल पिलाकर वमन करावे। वमनके अनन्तर पीपलको मुखमें चबावे। जिससे मुख स्वच्छ होजाय फिर शर्करायुक्त मन्थ पिलावे॥ ५०॥ ५१॥

तृषामें तालुशोषका यत्न।

बलवांस्तु तालुशोषे पिबेद् घृतं वृष्यमनु मद्यम्।
सर्पिर्भृष्टं क्षीरं मांसरसांश्चाबलः स्निग्धान्॥ ५२॥

यदि बलवान् रोगीका प्यासमें तालुशोष हो तो उसको वृष्यघत पिलाकर ऊपरसे

मद्य पिलावे। यदि दुर्बल मनुष्यका तालुशोष हो तो उसमें घृतयुक्त दूध पिलावे अथवा स्निग्ध मांसरसोंका पान करावे ॥ ५२ ॥

अतिरूक्षकी तृषाका यत्न।

आतिरूक्षदुर्बलानां तर्षं शमयेन्नृणामिहाशु पयः।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य अतिरूक्ष और दुर्बल हो तो उसको दूध पिलाकर तृषाको शीघ्र शांत करे अथवा बकरेके मांसका रस वा अन्य हृद्य मधुर मांसरसोंको घृतमें छौंककर पिलावे ॥ ५३ ॥

स्निग्धेऽन्ने भुक्ते या तृष्णा स्यात्तां गुडाम्बुना शमयेत्।
तर्षं मूर्च्छाभिहतस्य रक्तपित्तापहैर्हन्यात् ॥ ५४ ॥

स्निग्ध अन्नके भोजनसे जो तृषा उत्पन्न हो उसमें गुडका शरबत पीनेसे तृषा शांत होती है। मूर्च्छायुक्त रोगीकी तृषामें रक्तपित्तनाशक योगोंका प्रयोग करना चाहिये ५४

शीतमुष्णञ्च जलं कुत्र देयं वर्ज्यं वा कुत्रेत्याह।

तृषामें कहीं शीतल और कहीं गरम जल देना चाहिये। जिस स्थानमें जैसा जल देना चाहिये अथवा न देना चाहिये सो आगे कहते हैं।

छर्द्यम्लदाहमूर्च्छातमःक्लमभदात्ययास्रविषपित्ते।
शस्तं स्वभावशीतं शृतशीतं सन्निपातेऽम्भः ॥ ५५ ॥

छर्दि, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, मदात्यय, रक्तपित्त और विषविकारमें स्वाभाविक शीतल जल देना हितकारी है और सन्निपातमें जलको पकाकर शीतल कर देना चाहिये ॥ ५५ ॥

हिक्काश्वासनवज्वरपीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे।
कफवातकृते स्त्याने सद्यः शुद्धे हितमुष्णम् ॥ ५६ ॥

हिचकी, श्वास, नवीन ज्वर, प्रतिश्याय रोगमें और घृतपानके अनन्तर प्यास लगे तो तथा पार्श्वशूल, गलरोग, कफ, वातके रोग, कफजनित अंगोंकी जकडन और वमन विरेचनादिसे सद्यःशुद्ध हुए मनुष्यको गरम जल ही देना चाहिये ॥ ५६ ॥

जलका निषेध।

पाण्डूदरपीनसमेहगुल्ममन्दातिसारेषु।
प्लीह्नि च तोयं हितं काममशक्यं पिबेदल्पम् ॥ ५७ ॥

पाण्डुरोग, उदररोग, पीनस, प्रमेह, गुल्म, मंदाग्नि, अतिसार और प्लीहरोगमें जलका पीना अहित है अर्थात् जल नहीं पीना चाहिये । यदि न रह सके तो बहुत थोडा पीना चाहिये ॥ ५७ ॥

जलकी आज्ञा ।

पूर्वामयातुरः संदीनस्तृष्णार्दितो जलं काङ्क्षन् ।
न लभेत स चेन्मरणमाश्वेवाप्नुयाद्दीर्घरोगं वा ॥ ५८ ॥
तस्माद्धान्याम्बु पिबेत्तृष्यन् रोगी सशर्कराक्षौद्रम् ।
यद्वा तस्यान्यत्स्यात्सात्म्यं रोगस्य तच्चेष्टम् ॥ ५९ ॥

यदि रोगसे व्याकुल हुए दीन रोगीको तृषासे पीडितहोनेपर जलकी इच्छा करते हुए भी जल न दिया जायगा तो वह रोगी शीघ्र मृत्युको प्राप्त हो जायगा । अथवा किसी महारोगको प्राप्त होगा । इस लिये रोगीको तृषाके समय धनियेंका जल अथवा शहद और मिसरीका जल वा उसके रोगानुकूल जिस प्रकारके द्रव्योंसे सिद्ध किया जल हित हो सो जल देना चाहिये ॥ ५८॥५९ ॥

तस्यां विनिवृत्तायां तज्जन्योपद्रवः सुखं जेतुम् ।
तस्मात्तृष्णां पूर्वं जयेद्बहुभ्योऽपि रोगेभ्यः ॥ ६० ॥

तृषाकी निवृत्ति होनेपर तृषाजनित उपद्रव भी सुखपूर्वक शान्त हो सकते हैं । इस लिये बहुतसे उपद्रवोंमें पहिले तृषाको ही जीतना चाहिये ॥ ६० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकः—हेतुर्यथाग्निपवनौ कुरुतः सोपद्रवञ्च पञ्चानाम् ।
तृष्णानां पृथगाकृतिरसाध्यतासाध्यसाधनं चोक्तम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीचर० चिकि० तृष्णाचिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक है कि इस तृष्णाचिकित्सित अध्यायमें तृष्णाके हेतु, जिस प्रकार अग्नि और पवन तृषाको उत्पन्न करती है । पांचों प्रकारकी तृषाओंके उपद्रवों सहित लक्षण, साध्य असाध्यता और चिकित्सा यह सब वर्णन किया है ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां तृष्णाचिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः।



अथातो विषचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम विषचिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

प्रागुत्पत्तिं गुणान् योनिं वेगान् लिङ्गान्युपक्रमान्।
विषस्य ब्रुवतः सम्यगग्निवेश निबोध मे॥ १॥

हे अग्निवेश! विषकी प्राक् उत्पत्ति, विषोंके गुण, विषोंकी योनि, विषोंके वेग, तथा पृथक् पृथक् लक्षण और उपक्रम (चिकित्सा) को तुम मुझसे भली प्रकार श्रवण करो॥ १॥

विषोत्पत्ति।

अमृतार्थं समुद्रे तु मथ्यमाने सुरासुरैः।
जज्ञे प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः॥ २॥
दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरित्केशोऽनलेक्षणः।
जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनासौ विषसंज्ञितः॥ ३॥

जब देवता और राक्षसोंने अमृत निकालनेके लिये समुद्रका मथन कियाथा उस समय अमृत निकालनेके पहिले एक भयंकर रूपकी व्यक्ति निकली उसके चार दाढ, हरे बाल, आगके समान नेत्र थे और वह तेजसे दीप्तिमान् थी उस व्यक्तिको देखकर सब जगत् देव और राक्षस भी विषण्ण होगये इसलिये इसका विष नाम पडा॥२॥३॥

विषकी द्विविध योनि।

जङ्गमस्थावरायां तद्योनौ ब्रह्मा न्ययोजयत्।
तदम्बुसम्भवं तस्माद्द्विविधं पावकोपमम्॥ ४॥

इस विषको ब्रह्माने स्थावर और जंगम इन दो योनियोंमें स्थापन किये इसलिये समुद्रसे निकल अग्निके समान यह विष दो प्रकारका हुआ॥ ४॥

विषके वेगगुणादि।

अष्टवेगं दशगुणं चतुर्विंशत्युपक्रमम्।
तद्वर्षास्वम्बुयोनित्वात्सक्लेदगुडवद्गतम्॥ ५॥

सर्पत्यम्बुधरापाये तदगस्त्यो हिनस्ति च ।
प्रयाति मन्दवीर्य्यत्वं विषं तस्माद् घनात्यये ॥ ६ ॥

विषके आठ वेग होते हैं और दश गुण तथा चौवीस प्रकारका उपक्रम (चिकित्सा) है। वह विष अम्बुयोनि होनेसे वर्षा ऋतुमें उसका क्लेद गुडकी समान पतला होकर फैलता है। फिर अगस्त्यके उदय होनेपर वह क्लेद नष्ट होजाता है इसीलिये शरद ऋतु आनेपर विष मन्दवीर्य होजाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

जंगमविषकी योनि।

सर्पाः कीटोन्दुरा लूता वृश्चिका गृहगोधिकाः ।
जलौका मत्स्यमण्डूकाः शलभाः सकृकण्टकाः ॥ ७ ॥
श्वसिंहव्याघ्रगोमायुतरक्षुनकुलादयः ।
दंष्ट्रिणोऽमी विषं तेषां दंष्ट्रोत्थं जङ्गमं मतम् ॥ ८ ॥

सांप, कीट, मूषक, मकडी, विच्छू, छिपकली या कृकलास, जोंक, मछली, मेंडक, शलभ (भूंड), कृकंटक, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, गीदड, तरख और नकुल आदि दांतसे काटनेवाले जानवरोंकी डाढोंसे अर्थात् काटनेसे जो विष उत्पन्न होता है उसको जंगम विष कहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

मुस्तकं पौष्करं क्रौञ्चं वत्सनाभं बलाहकम् ।
कर्कटं कालकूटेन्द्रकरवीरकसंज्ञकम् ॥ ९ ॥
गालवेन्द्रायुधं तैलं मेघकं कुशपुष्पकम्।
रोहिषं पुण्डरीकाक्षं लाङ्गलक्यञ्जनाभकम् ॥ १० ॥
सङ्कोचं मर्कटं शृङ्गी विषं हालाहलं तथा ।
एवमादीनि चान्यानि मूलजानि स्थिराणि च ॥ ११ ॥

मुस्तक, पौष्कर, क्रौंच, वत्सनाभ, बलाहक, कर्कट, कालकूट, इन्द्रकरवीरक, गालव, इन्द्रायुध, तैलविष, मेघक, कुशपुष्पक, रोहिष, पुण्डरीकाक्ष, लांगली, अंजनाभ, संकोच, मर्कट, शृंगी (सिंगिया), हाल.हल तथा और भी इसी प्रकारके जो विष हैं उनको मूलज और स्थिर कहते हैं। संखिया, हरताल आदि धातुविष हैं। इसी प्रकार अन्य भी कोई पुष्पविष, कोई फलविष, कोई त्वचाविष, कोई क्षीरविष आदि विष हैं। इन सबको स्थावर विष कहते हैं ॥ ९–११ ॥

गरविष।

गरं संयोगजञ्चान्यद्गरसंज्ञं गदप्रदम् ।

कालान्तरविपाकित्वान्न तदाशु हरत्यसून् ॥ १२ ॥

इनसे अलावा संयोगसे उत्पन्न हुआ और रोगोंको करनेवाला गरनामक विष होता है। यह विष कालान्तरमें जाकर अपने विकारोंको करता है और विषोंके समान शीघ्र प्राणोंको नष्ट नहीं करता ॥ १२ ॥

जंगम विषके कार्य।

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहं सपाकं लोमहर्षणम्।
शोफं चैवातिसारञ्च जनयेज्जङ्गमं विषम् ॥ १३ ॥

निद्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, पाक, रोमहर्ष, सूजन और अतिसार यह जंगमविषके कार्य हैं ॥ १३ ॥

स्थावरविषके कार्य।

स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम्।
फेनवम्यरुचिश्वासमूर्च्छाश्च जनयेद्विषम् ॥ १४ ॥

ज्वर, हिचकी, दंतहर्ष, गलेका रुकजाना, मुखसे झाग गिरना, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा यह स्थावर विषके कार्य हैं अर्थात् इन उपद्रवोंको स्थावर विष करता है ॥ १४ ॥

विषकी गति।

जङ्गमं स्यादधोभागमूर्ध्वभागं तु मूलजम्।
तस्माद्दंष्ट्रिविषं मौलं हन्ति मौलं च दंष्ट्रिजम् ॥ १५ ॥

जंगमविषकी गति नीचेको होती है और मूलजविषकी गति ऊपरको गमन करती है दंष्ट्रिविष अर्थात् जंगमविष मूलविषको नष्ट करता है और मूलजविष दंष्ट्रिविषको नष्ट कर देता है ॥ १५ ॥

विषके आठ वेग।

तृण्मोहदन्तहर्षप्रसेकवमथूक्लमा भवन्त्यादौ।
वेगे रसप्रदोषादसृक्प्रदोषाद्द्वितीये च ॥ १६ ॥
वैवर्ण्यं भ्रमवेपथुमूर्च्छाजृम्भाङ्गचिमिचिमातमकाः।
दुष्टपिशितात्तृतीये मण्डलकण्डूश्वयथुकोठाः ॥ १७ ॥
वातादिजाश्चतुर्थे छर्दिर्दाहाङ्गशूलमूर्च्छाद्याः।
नीलादीनां तमसश्च दर्शनं पञ्चमे वेगे।
षष्ठे हिक्काभङ्गः स्कन्धे स्यात्तु सप्तमेऽष्टमे मरणम् ॥ १८ ॥
नृणाम्-

विषके प्रथम वेगमें मनुष्योंका रसधातु प्रदूषित होकर प्यास, मोह, दंतहर्ष, मुखसे लार गिरना, वमन और क्लम यह होते हैं । विषके द्वितीय वेगमें रुधिर दूषित होकर शरीरकी विवर्णता, भ्रम, कंप, मूर्च्छा, जंभाई, अंगोंमें चिमाचिमाहट और तमकश्वास होता है । विषके तृतीय वेगमें मांस दूषित होकर शरीरपर मण्डल, खुजली, सूजन और चकत्तेसे उत्पन्न होजाते हैं । विष चौथे वेगमें पक्वाशयमें पहुंच जाता है । उससे वातादि दूषित होकर छर्दि, दाह, अंगशूल और मूर्च्छा आदिक उपद्रव होते हैं । विषके पांचवें वेगमें सब जगत् नीलवर्णका दिखाई देना और नेत्रोंके आगे अंधकार छाजाना यह लक्षण होते हैं । छठे वेगमें हिचकी उत्पन्न होती है । सातवें वेगमें दोनों स्कंधोंका खुलकर ढीले पडजाना और आठवें वेगमें मनुष्यकी मृत्यु होजाती है । मनुष्यमें यह आठ वेग हैं ॥ १६–१८ ॥

जङ्गमविषके वेग ।

—चतुष्पदादेश्चतुर्थके पक्षिणां त्रितये ॥ १९ ॥
सीदत्याद्ये भ्रमति च चतुष्पदो वेपते ततः शून्यः ।
मन्दाहारश्च ततो म्रियते श्वासेन हि चतुर्थे ॥ २० ॥

चतुष्पद आदि जीवोंके विषसे चौथे वेगमें मृत्यु होजाती है । पक्षियोंके विषसे तीसरे वेगमें मृत्यु होती है । चतुष्पदोंके विषके प्रथम वेगमें अंग सुन्नसे होजाते हैं । द्वितीय वेगमें भ्रम और कंप उत्पन्न हो जाता है । तीसरे वेगमें सूजन और आहारमें रुकावट होती है चौथेमें श्वास उत्पन्न होकर मृत्यु हो जाती है ॥१९॥२०॥

ध्यायति विहगः प्रथमे वेगे प्रभ्राम्यति द्वितीये तु ।
स्रस्ताङ्गश्च तृतीये विषवेगे याति पञ्चत्वम् ॥ २१ ॥

पक्षियोंके प्रथम विषके वेगसे ध्यान बंध जाता है, दूसरे वेगमें भ्रम और अंगोंकी शिथिलता होजाती है तथा तीसरे वेगमें मनुष्यकी मृत्यु होजाती है ॥ २१ ॥

विषके दश गुण ।

लघु रूक्षमाशु विशदं व्यवायि तीक्ष्णं विकासि सूक्ष्मञ्च ।
उष्णमनिर्देश्यरसं दशगुणमुक्तं विषं तज्ज्ञैः ॥ २२ ॥

विषमें—लघु, रूक्ष, आशुकारी, विशद, व्यवायी, विकासी, सूक्ष्म, उष्ण तथा अनिर्देश्यरस यह दश गुण होते हैं ॥ २२ ॥

रौक्ष्याद्वातमशैत्यात्पित्तं सौक्ष्म्यादसृक् प्रकोपयति ।
कफमव्यक्तरसत्वादन्नरसांश्चानुवर्त्तते शीघ्रम् ॥ २३ ॥
शीघ्रं व्यवायिभावादाशु व्याप्नोति केवलं देहम् ।

तीक्ष्णत्वान्मर्मघ्नं प्राणघ्नं तद्विकासित्वात् ॥ २४ ॥
दुरुपक्रमं लघुत्वाद्वैशद्यात्स्यादसक्तगतिदोषम् ।
दोषस्थानप्रकृतीः प्राप्यान्यतमं ह्युदीरयति ॥ २५ ॥

विष–रूक्षतासे वायुको, उष्णतासे पित्तको और सूक्ष्मतासे रक्तको कुपित करता है। अव्यक्त रस होनेसे कफको कुपित करता है तथा अन्यरसका शीघ्र अनुगामी हो जाता है। व्यवायी होनेसे संपूर्ण शरीरमें शीघ्र व्यापक होजाता है। तीक्ष्ण होनेसे मर्मस्थानोंको हनन करता है। विकाशी होनेसे प्राणोंको नष्ट कर देताहै। इन सब कारणोंसे दुरुपक्रम अर्थात् दुश्चिकित्स्य होताहै। लघु और विशद होनेसे अनिवार्यगति होता है। वातादि दोषोंमें जिस दोषकी प्रकृतिवाला मनुष्य हो विष उसी दोषके स्थान और प्रकृतिको प्राप्त होकर उसी दोषको उदीर्ण कर देता-है ॥ २३–२५ ॥

वातादिस्थानमें विषके लक्षण।

स्याद्वातिकस्य वातस्थाने कफपित्तलिङ्गमीषत्तु ।
तृण्मूर्च्छारुचिमोहगलग्रहच्छर्दिफेनादि ॥ २६ ॥

जैसे–विष वातप्रकृतिवाले मनुष्यके शरीरमें पहुंचकर अथवा वातके स्थानमें पहुंचकर वातजनित तृषा मूर्च्छा, अरुचि, मोह, गलेका रुकजाना, वमन और फेन आदिक उपद्रवोंको उत्पन्न करता है तथा उस समय पित्त और कफके लक्षणोंको अल्प प्रकाशित करता है ॥ २६ ॥

पित्ताशयस्थितं पैत्तिकस्य कफवातयोर्विषं तद्वत् ।
तृट्कासज्वरवमथुक्लमदाहतमोऽतिसारादि ॥ २७ ॥

पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें विष पित्तस्थानमें पहुंचकर वात और कफके अन्य लक्षणोंको करता है तथा प्यास, खांसी, ज्वर, वमन, क्लम, दाह, अंधकार और अतिसार आदिक पित्तके उपद्रवोंको करता है ॥ २७ ॥

कफदेशगतञ्च कफस्य दर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् ।
लिङ्गं श्वासगलग्रहकण्डूलालावमथ्वादि ॥ २८ ॥

इसी प्रकार कफस्थानमें प्राप्तहुआ विष वात और पित्तके अल्प लक्षणोंको दिखाता है तथा श्वास, गलग्रह, खुजली, मुखसे लार गिरना और वमन आदि कफके लक्षणोंको उत्पन्न करता है ॥ २८ ॥

दूषीविषके कर्म।

दूषीविषं तु शोणितदुष्टकिटिभकोठादिरक्तलिङ्गं च ।
विषमेकैकं दोषं सन्दूष्य हरत्यसूनेवम् ॥ २९ ॥

दूषीविष–रुधिरको दुष्ट करके किटिभकोठ आदि रक्तविकारोंके लक्षणोंको करता है। विष इस प्रकार एक एक दोषको बिगाडकर प्राणोंको नष्ट कर देते हैं ॥ २९ ॥

क्षरति विषतेजसासृक् तत्खानि निरुध्य मारयति जन्तुम्।
पीतं मृतस्य हृदि तिष्ठति दष्टविद्धयोर्दंशदेशे स्यात् ॥ ३० ॥

विषके तेजसे रक्त क्षरण होने लगता है, विष छिद्रोंको रोककर जीवको मार-डालता है। पीयाहुआ विष मरेहुए मनुष्यके भी हृदयमें टिका रहता है। किसी जान-वरके काटनेसे अथवा विषैले तीर आदिसे वेधन होनेसे विष विशेषरूपसे दंशस्थानमें रहता है ॥ ३० ॥

विषसे मनुष्यकी मृत्युके लक्षण।

नीलौष्ठदन्तशैथिल्यकेशपतनाङ्गभङ्गविक्षेपाः।
शिशिरैर्न लोमहर्षो नाभिहते दण्डराजी च ॥ ३१ ॥
क्षतजं क्षताच्च नायात्युक्तान्येतानि मरणलिङ्गानि।
एभ्योऽन्यथा चिकित्सा तेषाञ्चोपक्रमाञ्छृणु मे ॥ ३२ ॥

होठोंका नीलवर्ण होना, दांतोंका शिथिल पडजाना, बालोंका गिरना, अंगोंकी सन्धियोंका ढीला पडजाना, अंगका जिधर तिधर अपने २ स्थानमें शिथिलरूपसे गिरजाना, बर्फ आदि शीतल पदार्थ डालनेपर भी रोमाञ्च न होना, तीक्ष्ण डण्डे आदिसे चोट मारनेसे भी चोटका दाग न पडना, शस्त्रद्वारा काट देनेपर भी क्षत-स्थानसे रुधिर न निकलना इन लक्षणोंके होनेसे विषग्रस्त मनुष्यके मृत्युके लक्षण जानना। जिस मनुष्यके यह लक्षण न हों उसकी जिस प्रकार चिकित्सा करना चाहिये सो श्रवण करो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

विषके २४ उपक्रम।

मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तननिष्पीडनचूषणाग्निपरिषेकाः।
अवगाहनरक्तमोक्षणवमनविरेकोपधानानि ॥ ३३ ॥
हृदयावरणाञ्जननस्यधूमलेहौषधप्रशमनानि।
प्रतिसारणं प्रतिविषं संज्ञासंस्थापनं लेपः ॥ ३४ ॥
मृतसञ्जीवनमेव च विंशतिरेते चतुर्भिरभ्यधिकाः।
स्युरुपक्रमा यथा यत्र योज्याः शृणु तथा तान् ॥ ३५ ॥

मन्त्रद्वारा विष उतारना, दंशस्थानको दोनों ओरसे कसकर बान्धदेना, जिस स्थानमें डसा हो उसको काटना, दबाकर रुधिर निकालदेना, मुखद्वारा या सिंगी

आदिसे विषको चूसलेना, अग्निसे दागदेना तथा परिसेचन, अवगाहन, रक्त-मोक्षण, वमन, विरेचन, उपधान, हृदयावरण, अंजन, नस्य, धूम, लेह, औषध, प्रशमन, प्रतिसारण, प्रतिविष, संज्ञास्थापन, लेप तथा मृतसंजीवन यह चौवीस प्रकार विषोंकी चिकित्साके हैं। इन चौबीसोंमेंसे जो चिकित्सा जिस जगह करनी चाहिये उसका श्रवण करो॥ ३३–३५॥

जंगमविषकी सामान्यचिकित्सा।

दंशात्तु विषं दष्टस्य विसृतं वैलिकां भिषग्बद्ध्वा।
निष्पीडयेद्भृशं दंशमुद्धरेन्मर्मवर्जं वा॥ ३६॥
तं दंशं वा चूषेन्मुखेन यवचूर्णपांशुपूर्णेन।
प्रच्छन्वेधजलौकःशृङ्गैः स्राव्यं ततो रक्तम्॥ ३७॥
रक्ते विषप्रदुष्टे दुष्येत्प्रकृतिं ततस्त्यजेत्प्राणान्।
तस्मात्प्रघर्षणैरसृग्वर्त्तमानं प्रवर्त्यं स्यात्॥ ३८॥

हाथ पांव आदि जिस स्थानमें किसी विषधर जंतुने काटा हो उस स्थानमें जहांतक विष फैला हो उसके ऊपर नीचेसे विषस्थान छोडकर इधर उधर कसकर बान्धदेवे। जिससे वह विष अधिक दूरतक न फैलसके फिर दंशस्थानको चारोंओरसे पीडन कर शस्त्रद्वारा काटकर दंशको निकालदेवे। और पीडन करके उस स्थानका रुधिर भी निकाले। यदि हाथ पांवके सिवाय किसी अन्य स्थानमें काटाहुआ हो तो उस स्थानको थोडा २ चारों ओरसे काटकर विष निकालदेना चाहिये। परन्तु मर्म-स्थानमें शस्त्रद्वारा काटकर दंश निकालना उचित नहीं क्योंकि मर्मस्थानमें शस्त्रद्वारा कर्त्तन करनेसे मनुष्यके शीघ्र प्राण नष्ट होजाते हैं। यदि दोनों ओरसे बन्धन करनेमें और दंडस्थानको काटनेमें दंशका निकालना असम्भव प्रतीत हो वा उस स्थानमें शस्त्रका लगाना उचित नहीं तो मुखमें यवोंका चूर्ण अथवा बालू भरकर काटेहुए स्थानको मुखद्वारा चूसकर थूक देना चाहिये। मुखसे काटेहुए स्थानके विषको चूस-नेसे पहिले चूसनेवाले मनुष्यके मुखमें घृत भरकर तमाम मुखमें फेर वह घृत पीलेना चाहिये। उसके अनन्तर काटेहुए स्थानको मुखद्वारा चूसे (यदि मुखमें कोई छाला व्रण आदि हो तो उस मनुष्यके विषस्थानको चूसना उचित नहीं) विष चूसनेके अनन्तर पछने लगाकर जोंक और सिंगी आदिसे रक्तको निकाल देना चाहिये। क्योंकि विषसे दूषित हुआ रक्त मनुष्यकी प्रकृतिको बिगाड प्राणोंको नष्ट कर देता है। इसलिये उस प्राणनाशक विषैले रक्तको निकालही देना चाहिये। यदि इस प्रकार रक्त यथोचित रीतिपर न निकले तो नीचे लिखे हुए द्रव्योंके प्रघर्षणद्वारा रक्तको निकाले॥ ३६--३८॥

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाः सवार्ताकाः।
घर्षणमतिप्रवृत्ते वटादिभिः शीतलैर्लेपः॥ ३९॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, गृहधूम, हल्दी, पांचों लवण, बैंगन इन सबका चूर्ण कर काटे हुए स्थानपर घर्षण करे तो रक्त निकलने लगता है। यदि रक्त अत्यंत निकलने लगे और वह बन्द न हो तो वटादि पंचवर्गका शीतल लेप करना चाहिये॥ ३९॥

रक्तं हि विषाधानं वायुरिवाग्नेः प्रदेहसेकैस्तत्।
शीतैः स्कन्दति तस्मिन् स्कन्ने व्ययं याति विषवेगः॥ ४०॥

जैसे-वायु अग्निको चैतन्य कर सब जगह फैला देताहै। उसी प्रकार रक्तमें जब विष मिल जाता है तो उस विषको रक्त भी संपूर्ण शरीरमें पहुंचा देता है। क्योंकि रक्त ही विपका आधान है विपके स्थानको शीतल लेप और अत्यंत शीतल द्रव्योंके परिसेचन करनेसे रक्त शीघ्र न फैलकर विष काटेहुए स्थानमें ही टिका रहताहै॥४०॥

विषवेगान्मदमूर्च्छाविषादहृदयद्रवाः प्रवर्त्तन्ते।
शीतैर्निवर्त्तयेत्तान्न वीजयेल्लोमहर्षः स्यात्॥ ४१॥

विषके वेगसे मद, मूर्च्छा, विषाद, हृदयका फडकना, अथवा गिरसा जाना यह लक्षण होतेहैं, इन सब उपद्रवोंको शीतल लेपकी क्रिया आदिकोंसे शान्ति होती है। काटेहुए स्थानमें शीतल लेप ही करने चाहिये। किन्तु पंखेकी पवन नहीं करनी चाहिये। अथवा पंखेकी पवन करनसे रोमाञ्च खडे होकर विष नहीं ठहर सकता। इसलिये शीतल लेपोंका करना ही हित है॥ ४१॥

तरुरिव मूलच्छेदाद्दंशच्छेदान्न वृद्धिमुपयाति।
आचूषणमानयनं जलस्य सेतुर्यथा तथारिष्टाः।
त्वङ्मांसगतो दाहो दहति विषं स्रावणं हरति रक्तात्॥४२॥

जैसे-जडके काटदेनेसे फिर वह वृक्ष वृद्धिको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार दष्ट-स्थानको काटकर दंश निकाल देनेसे विप वृद्धिको प्राप्त नहीं होसकता। दंशस्थानको चूसनेसे विष जडसे निकल जाता है। काटेहुए स्थानको दोनों ओरसे किसी डोरी-द्वारा कसकर बाँधदेनेसे वह विष इस प्रकार रुकजाता है जैसे बाँध लगादेनेसे जल रुकजाता है। जब विष त्वचा मांसमें पहुँचजाय तो उसमें दाह कर्म करना विषको फूंकदेता है। रक्त निकालदेनेसे रक्तगत विष निकल जाता है॥ ४२॥

पियेहुये विषकी चिकित्सा।

पीतं वमनैः सद्यो हरेद्विरेकैर्द्वितीये तु॥ ४३॥
आदौ हृदयं रक्ष्यं तस्यावरणं पिबेद्यथालाभम्।

मज्जानं मधुघृतगैरिकमथ गोमयरसं वा ॥ ४४ ॥

इक्षुं सुपक्वमथवा काकं निष्पीड्य तद्रसं बलदम् ।

छागादीनां वासृग्भस्म मृदं वा पिबेदाशु ॥ ४५ ॥

जो विष तत्काल पीया गया हो उसको शीघ्र वमन कराकर निकालदेवे । विषके द्वितीय वेगमें विरेचनद्वारा उसे निकाल देना चाहिये । जिस मनुष्यने विष खायाहो अर्थात् विषयुक्त मनुष्यके हृदयकी पहिले परीक्षा करना चाहिये । जिस प्रकार हृदयावरण हो अर्थात् विषसे हृदय छिपसके ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये । हृदयको विषसे बचानेके लिये यथालाभ मज्जा, मधु, घृत, गेरू, गोबर, ईखका रस, पकेहुए गन्ने या मकोयका रस अथवा अन्य बलदायक द्रव्य या बकरे आदिका रक्त, भस्म, मिट्टी जो कुछ मिलसके वह झटपट खालेना चाहिये । ताकि खाया पीया विष उस भुक्त पदार्थमें मिलजावे और शीघ्र असर न करनेपावे ॥ ४३–४५ ॥

क्षारोऽगदस्तृतीये शोफहरैर्लेखनं समध्वम्बु ।

गोमयरसश्चतुर्थे वेगे सकपित्थमधुसर्पिर्भिः ॥ ४६ ॥

विषका तीसरा वेग होनेसे क्षार अगद और शोफनाशक लेखनद्रव्य और शहद युक्त जल पिलाकर वमन कराना चाहिये । विषके चौथे वेगमें कैथ, शहद और घृत मिलाकर गोबरका रस पिलाना चाहिये ॥ ४६ ॥

काकाण्डशिरीषाभ्यां स्वरसेनाश्च्योतनमञ्जने नस्यम् ।

स्यात्पञ्चमेऽथ षष्ठे संज्ञायाः स्थापनं कार्य्यम् ।

गोपित्तयुतारजनीमञ्जिष्ठामरिचपिप्पलीपानम् ॥ ४७ ॥

विषके पांचवें वेगमें काकाण्ड (महानिम्ब, बकायन) और सिरसका स्वरस नेत्रोंमें टपकाना चाहिये । तथा इसी रसकी नस्य (सूंघनी) लेना चाहिये विषके छठे वेगमें संज्ञास्थापन (होश हवासमें रखने) का उपाय करना चाहिये । हल्दी, मजीठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण गोरोचनमें मिलाकर पीना, अंजन करना और नस्य लेना संज्ञाको स्थापन करता है ॥ ४७ ॥

विषपानं दष्टानां विषपीते दंशनञ्चान्ते ॥ ४८ ॥

यदि किसी प्रकार उपाय करनेसे भी विषग्रस्त रोगीको शान्ति न होसके वा यदि रोगीने स्थावर विष खाया हो और उसको किसी प्रकार होश न आवे तो उसको बिच्छू या सांप आदि विषैले जानवरसे कटावे । और यदि कोई किसी विषधर जानवरके काटनेसे मरणासन्न हो और उसको किसी प्रकार शान्ति होना असम्भव प्रतीत हो तो उसको स्थावर विष पिलाना चाहिये ॥ ४८ ॥

शिखिपित्तार्द्धयुतं स्यात्पलाशबीजमगदो मृतेषु मतः ।
वार्त्ताकुफाणितागारधूमगोपित्तनिम्बं वा ॥ ४९ ॥

जब रोगी विषके आठवें वेगमें बिल्कुल मृततुल्य होजाय तो उसको मोरका पित्त एक भाग और ढाकके बीज दो भाग मिलाकर पान, लेपन, अंजन आदिमें प्रयुक्त करे तो वह रोगी होशमें आसकता है । अथवा छोटा बैंगन, फाणित, गृहधूम, गोपित्त अथवा गौका पुराना घृत, निम्बके पत्र इन सबको मिलाकर धूनी देना, अंजन करना, नस्य देना, पिलाना और लेप करना हितकारी है ॥ ४९ ॥

गोपित्तयुतैर्गुलिकाः सुरसाग्रन्थिद्विरजनीमधुककुष्ठैः ।
शस्ता मृतेन तु शिरीषपुष्पकाकाण्डकरसैर्वा ॥ ५० ॥

तुलसी, वच, हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, कूठ इन सबको गौके पुराने घृतमें अथवा गोपित्तमें घोलकर प्रयोग करना भी हितकारी है । अथवा शिरसके फूल और बकायनके रसमें उपरोक्त तुलसी आदि छः औषधियोंको घोटकर पिलाना, अंजन करना नस्य देना और लेप करना विषके सातवें वेगको दूर करता है ॥ ५० ॥

काकाण्डसुरसगवाक्षीपुनर्नवावायसीशिरीषफलैः ।
उद्बद्धविषजलमृते लेपौषधनस्यपानानि ॥ ५१ ॥

जिस रोगीको विषके वेगमें जल छिडकनेसे और बंधन आदि करनेसे भी चैतन्य प्राप्त न हो ऐसे रोगीको बकायन, तुलसी, इन्द्रायणकी जड, पुनर्नवा, काकमाची (मकोय) और सिरसके फलोंको बारीक पीसकर लेपन, अंजन, नस्य और पिलानेमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ५१ ॥

मृतसंजीवन अगद ।

पृक्काप्लवरथौणेयकाकाक्षिशैलेयरोचनास्तगरम् ।
ध्यामककुंकुममांसीसुरसाग्रैलालकुष्ठघ्न्यः ॥ ५२ ॥
बृहती शिरीषपुष्पं श्रीवेष्टकपद्मचारटीविशालाः ।
सुरदारुपद्मकेशरसावरकमनःशिलाकौन्त्यः ॥ ५३ ॥
जात्यर्कपुष्परसरजनीद्वयहिङ्गुपिप्पलीलाक्षाः ।
जलमुद्गपर्णिचन्दनमधुकमदनसिन्धुवाराश्च ॥ ५४ ॥
शम्पाकलोध्रमयूरकगन्धफलीनाकुलीविडङ्गाश्च ।
पुष्ये संहृत्य समं पिष्ट्वा गुलिका विधेयाः स्युः ॥ ५५ ॥
सर्वविषघ्नो जयकृद्विषमृतसंजीवनो ज्वरनिहन्ता ।

ग्रंथविलेपनधारणधूमग्रहणैर्गृहस्थश्च ॥ ५६ ॥
भूतविषजन्त्वलक्ष्मीकार्मणमन्त्राग्न्यशन्यरीन् हन्यात् ।
दुःस्वप्नस्त्रीदोषानकालमरणाम्बुचौरभयम् ॥ ५७ ॥
धनधान्यकार्य्यसिद्धिः श्रीपुष्ट्यायुर्विवर्द्धनो धन्यः ।
मृतसञ्जीवन एष प्रागमृताद्ब्रह्मणा विहितः ॥ ५८ ॥

असवर्ग, केवटीमोथा, थूनेर, फिटकरी, छारछबीला, गोरोचन, तगर, रोहिषतृण, केसर, जटामांसी, तुलसीकी मंजरी, इलायची, कुष्ठघ्न (चोख, या पनवाडके बीज), बडी कटेली, सिरसके फूल, श्रीवास, पद्मचारटी, इन्द्रायणकी जड, देवदारु, पद्मकेसर, लोध, मनसिल, रेणुका, चमेली और आकके फूलोंका रस, हल्दी, दारु हल्दी, हींग, पीपल, लाख, नेत्रवाला, मुद्गपर्णी, चन्दन, मैनफल, मुलैठी सम्भालू, अमलतास, पठानीलोध, मयूरक (नीलाथोथा या अपामार्ग), गंधप्रियंगु, नाकुलीकंद और वायविडंग, इन सबको पुष्य नक्षत्रमें लाकर इकट्ठे करे। सबको समभाग लेकर जलमें पीस, गोलियें बनावे। इन गोलियोंको पास रखनेसे, लेप करनेसे, जलमें घिसकर पीनेसे, सूँघनेसे अथवा इनका धूम पीनेसे अथवा धूनीं देनेसे सब प्रकारके विष नष्ट होकर रोगीको चैतन्यता प्राप्त होजाती है। यह अगद विषसें मृतकप्राय मनुष्योंकोभी संजीवनस्वरूप है। इस अगदको घरमें रखनेसे भूत, विषधरजीव, अलक्ष्मी, अविचार, मन्त्र, अग्नि, वज्र, शत्रु, दुःस्वप्न, स्त्रीदोष, अकालमृत्यु, पानीका भय और चोरभय कोई भी असर नहीं करसकता। तथा धनधान्यकी वृद्धि, कार्यसिद्धि, लक्ष्मी, पुष्टि, वर्ण और आयुकी वृद्धि होती है। इस धन्य मृतसंजीवन अगदको ब्रह्माजीने अमृतकी उत्पत्तिसे पहिले निर्मित किया था॥५२-५८

विषके अन्य उपचार।

मन्त्रैर्धमनीवन्धोऽपामार्जनं कार्य्यमात्मरक्षा च।
दोषस्य विषं यस्य स्थाने स्यात्तं जयेत्पूर्वम् ॥ ५९ ॥

जिस स्थानमें विषधर जीवने काटा हो उस स्थानको छोडकर उसके इधर उधर दोनों ओर कसकर बंध लगादेना चाहिये। बांधदेनेसे वह विष धमनियोंद्वारा संपूर्ण शरीरमें नहीं फैल सकता बांधते समय विषनाशक मंत्रोंका उच्चारण करताहुआ बंध लगावे और मंत्रोंके साथ जलद्वारा रोगीकी आत्मरक्षाके लिये मार्जन करे। यह तो हुई जंगमविषकी क्रिया और स्थावर विष जिस स्थानमें पहुंचा हो पहिले उस स्थानको जीतलेना चाहिये अर्थात् वातादि दोषोंमेंसे जिस दोषके स्थानमें विष पहुंचे पहिले उस दोषके जीतनेका यत्न करना चाहिये ॥ ५९ ॥

वातस्थाने स्वेदो दध्ना नतकुष्ठकल्कपानश्च ।
घृतमधुपयोऽम्बुपानावगाहसेकाश्च पित्तस्थे ॥ ६० ॥
क्षारागदः कफस्थानगते स्वेदस्तथा शिराव्यधनम् ।
दूषीविषेऽथ रक्तस्थिते शिराकर्म पञ्चविधम् ॥ ६१ ॥
भेषजमेवं कल्प्यं भिषग्विदा सर्वदा लक्ष्यम् ।
स्थानं जयेच्च पूर्वं स्थानस्थस्याविरुद्धश्च ॥ ६२ ॥

यदि विष वातस्थान अर्थात् पक्वाशयगत हो तो पसीना देना तथा दहीके साथ कूठ और तगरका कल्क सेवन कराना चाहिये । यदि विष पित्तस्थानमें हो तो घृत, शहद, दूध और जलका पान तथा अवगाहन और सेचन करना चाहिये । यदि विष कफस्थानमें पहुंच गया हो तो क्षारागदका प्रयोग और स्वेदन तथा शिरावेधन करना उचित है । यदि दूषीविष रक्तगत हो तो शिरावेधन और पांच प्रकारके शोधनादि कर्म करना चाहिये । इस प्रकार वैद्यको संपूर्ण अवस्था विचारकर चिकित्साकी कल्पना करना चाहिये । पहिले तो विषके स्थानको जीतलेना चाहिये । फिर जिस स्थानमें विष पहुंचा हो अथवा जिस स्थानके जीतनेसे विष नष्ट होता हो उसकी चिकित्सा करे । परन्तु मर्मस्थानादिकोंपर विरुद्ध असर नहीं होना चाहिये । अथवा स्थानविरुद्ध चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ६०-६२ ॥

विषदूषितकफमार्गः स्रोतःसंरोधरुद्धवायुश्च ।
मृत इव श्वसेन्मर्त्यः स्यादसाध्यलिङ्गैर्विहीनश्च ॥ ६३ ॥
चर्मकषायाः कल्कं बिल्वसमं मूर्ध्नि काकपदमस्य ।
कृत्वा कुर्यात्कटभीं कटुकट्फलप्रधमनञ्च ॥ ६४ ॥

विषसे कफके मार्ग दूषित होजाय स्रोतोंके रुकजानेसे वायु रुद्ध होकर मनुष्य मरेहुएके समान श्वासोंको त्यागदेवे । परन्तु उसमें और असाध्य लक्षण न हो तो उसके मस्तकमें काकके पदके समान चिह्न बनाकर अर्थात् काकके पावोंके सदृश तीन रेखावाले शस्त्रद्वारा लेखनकर उसके ऊपर चर्मकषा (सातला) का कल्क बनाकर एक बिल्वके समान उस काकपदाकारके ऊपर लगावे । तथा कटभी, कट्ट और कायफलके चूर्णका नसवार देवे ॥ ६३ ॥ ६४॥

छागगव्यमाहिषाविककौक्कुटाजमांसम् ।
दद्यात्काकपदोपरि मत्ते विषेणैव सहसा ॥ ६५ ॥
घ्राणाक्षिकर्णजिह्वाकण्ठनिरोधेषु कर्म नस्तः स्यात् ।

वार्त्ताकुबीजपूरकज्योतिष्मत्यादिभिः पिष्टैः ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य विषसे सहसा बेहोश होजाय तो उसके मस्तकपर काकपदाकार शस्त्रद्वारा लेखन कर ऊपर बकरी, भैंस, मेढा, मुर्गा और जलसंचारी जीवोंका मांस पीसकर रखदेवे। अथवा गौके गोबरकी पिण्डी रखदे। यदि रोगीका कण्ठ रुकजाय तो नाक, कान, नेत्र और जिह्वामें बडी कटेलीके फलोंका रस और बिजौरा, मालकांगुनी आदिका रस निकालकर टपकावे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अञ्जनमक्ष्युपरोधे कर्त्तव्यं बस्तमूत्रपिष्टैस्तु।
दारुव्योषहरिद्राकरवीरकरञ्जसुरसैस्तु ॥ ६७ ॥

यदि विषग्रस्त रोगीके नेत्र बंद होजांय तो दारुहल्दी, त्रिकुटा, हल्दी, कनेर, करंज और तुलसी इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर अञ्जन करे ॥ ६७॥

गंधनामकअगदहस्ती।

श्वेता वचाश्वगन्धा हिंग्वामृता कुष्ठसैन्धवे लशुनम्।
सर्षपकपित्थमध्यं टुण्टुककरञ्जबीजानि ॥ ६८ ॥
व्योषं शिरीषपुष्पं द्वे रजनी वंशलोचनञ्च समम्।
पिष्ट्वा ह्यजस्य मूत्रेण गोऽश्वपित्तेन सप्तकृत्वः ॥ ६९ ॥
व्यत्यासभावितोऽयं निहन्ति शिरसि स्थितं विषं क्षिप्रम्।
सर्वज्वरभूतग्रहविषूचिकाजीर्णमूर्च्छार्तिम् ॥ ७० ॥
उन्मादापस्मारौ काचपटलनीलिकाशिरोदोषान्
शुष्काक्षिपाकपिल्लार्बुदार्मकण्डूतमोदोषान् ॥ ७१ ॥
क्षयदौर्बल्यमदात्ययपाण्डुगदांश्चाञ्जनात्तथा मोहान्।
लेपाद्दिग्धक्षतलीढदष्टविषपीतविषघाती ॥ ७२ ॥
अर्शःस्वारुद्धेषु च गुदलेपो योनिलेपनं स्त्रीणाम्।
मूढे गर्भे दुष्टे ललाटलेपः प्रतिश्याये ॥ ७३ ॥
दद्रूकण्डूकिटिभे कुष्ठे श्वित्रेषु च विचर्चिकादिषु लेपः।
गज इव तरून्निगदान्निहन्त्यगदगन्धहस्त्येषः ॥ ७४ ॥

श्वेत अपराजिता और वच असगन्ध, हींग, गिलोय, कूठ, सेंधानमक, लहसुन, सफेद सरसों, कैथका गूदा, सोनापाठा, करंजके बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल, सिरसके फूल, हल्दी, दारुहल्दी और वंशलोचन इन सबको समभाग लेकर गोमूत्र, बकरेके

मूत्र और घोडेके पित्तमें सात सात बार भावना देवे। फिर इस औषधिको शिरपर रखनेसे या मस्तकमें लेप करनेसे सब प्रकारके विष दूर होते हैं। तथा सब प्रकारके ज्वर, भूतबाधा, ग्रहदोष, विषूचिका, अजीर्ण, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार तथा नेत्रोंके काचरोग, पटलरोग और नीलिका, शिरके विकार, नेत्रोंका सूखना, नेत्रपाक, पिल्ल-रोग, अर्बुद, अर्म, खुजली, तमोदोष, क्षय, दुर्बलता, मदात्यय और पाण्डुरोग तथा इसके अंजन करनेसे मोह (बेहोशी), लेप करनेसे अग्निदग्धक्षत, लीढ और दंष्ट्र आदि विष दूर होते हैं। इसके प्रयोगसे पीयेहुए विष भी असर नहीं कर सकते। इसका गुदापर लेप करनेसे बवासीरके मस्से योनिपर लेप करनेसे स्त्रियोंके योनिरोग और मूढगर्भ दूर होते हैं। मस्तकपर लेप करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय दूर होता है तथा इसके लेप करनेसे दाद, खुजली, किटिभ, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ और विचर्चिका यह सब दूर होते हैं। जैसे उन्मत्त हस्ती वृक्षको जडसे उखाड देता है उसी प्रकार यह गंधनामक अगदहस्ती विषोंको जडसे उखाड देता है ॥ ६८–७४ ॥

पत्राग्गुरुमुस्तैलानिर्यासः पत्र्च चन्दनं तथा पृक्का ।
त्वङ्नलदोत्पलवालकहरेणुकोशीरव्याघ्रनखाः ॥ ७५ ॥
सुरदारुकनककुंकुमध्यामककुष्ठप्रियङ्गुवस्तगरम् ।
पञ्चाङ्गानि शिरीषाद्वचोषैलामनःशिलाजाज्यः ॥ ७६ ॥
श्वेतकटभी करञ्जौ रक्षोघ्नी सिन्धुवारिका रजनी ।
सुरसरसाञ्जनगैरिकमञ्जिष्ठानिम्बनिर्यासाः ॥ ७७ ॥
वंशत्वगश्वगन्धा हिङ्गु दधित्थाम्लवेतसं लाक्षा ।
मधुमधूकसोमराजीवचारुहारोचनातगरान् ॥ ७८ ॥
अगदोऽयं वैश्रवणाख्यातस्त्र्यम्बकेण षष्टचङ्गः ।
अप्रतिहतप्रभावः ख्यातो महागन्धहस्तीति ॥ ७९ ॥
पित्तेन गवां पेष्या गुलिकाः कार्य्यास्तु पुष्ययोगेन ।
पानाञ्जनप्रलेपैः प्रसाधयेत्सर्वकर्माणि ॥ ८० ॥
पैल्यं कण्डूं तिमिरं रात्र्यान्ध्यं काचमर्बुदं पटलम् ।
हन्ति सततं प्रयोगाद्धितमितपथ्याशिनां पुंसाम् ॥ ८१ ॥
विषमज्वरानजीर्णान् दद्रूं सविषूचिकाञ्च हन्ति नृणाम् ।
विषं मूषिकलूतानां सर्वेषां पन्नगानाञ्च ।

आशु विषं नाशयति समूलजमथ कन्दजं सर्वम् ॥ ८२ ॥
एतेन लिप्तगात्रः सर्पान् गृह्णाति भक्षयेच्च विषम् ।
कालपरीतोऽपि नरो जीवति नित्यं निरातङ्कः ॥ ८३ ॥
आनद्धे गुदलेपो योनिलेपश्च मूढगर्भाणाम् ।
मूर्च्छार्त्तिषु च ललाटे प्रलेपमाहुः प्रधानतमम् ॥ ८४ ॥
भेरीमृदङ्गपटहाश्छत्राण्यमुना तथा ध्वजपताकाः ।
लिप्ताहिविषनिरस्ते प्रध्वनयेद्दर्शयेन्मतिमान् ॥ ८५ ॥
यत्र च सन्निहितोऽयं न तत्र बालग्रहा न रक्षांसि ।
न च कार्मणवेताला वहन्ति नाथर्वणा मंत्राः ॥ ८६ ॥
सर्वग्रहा न तत्र प्रभवन्ति न चाग्निशस्त्रनृपचौराः ।
लक्ष्मीश्च तत्र भजते यत्र महागन्धहस्त्यस्ति ॥ ८७ ॥
पिष्यमाण इमञ्चात्र सिद्धं मंत्रमुदीरयेत् ।
"मम माता जया नाम विजयो नाम मे पिता ॥ ८८ ॥
सोऽहं जयो जयापुत्रो विजयोऽथ जयामि च ।
नमः पुरुषसिंहाय विष्णवे विश्वकर्मणे ॥ ८९ ॥
सनातनाय कृष्णाय भवाय विभवाय च ।
तेजो वृषाकपेः साक्षात्तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्यमे ॥ ९० ॥
यथाहं नाभिजानामि वासुदेव पराजयम् ।
मातुश्च पाणिग्रहणं समुद्रस्य च शोषणम् ॥ ९१ ॥
अनेन सत्यवाक्येन सिध्यतामगदो ह्ययम् ।
हिलिमिलिसंस्पृष्टे रक्ष सर्वभेषजे तु मे ॥ ९२ ॥"

तेजपत्र, अगर, नागरमोथा, इलायची, पंचनिर्यास[1], चन्दन, पृक्का (असवर्ग), दालचीनी, जटामांसी, नीलकमल, नेत्रवाला, रेणुका, खस, व्याघ्रनखी, देवदारु, धतूरा (अथवा नागकेशर) केशर, वीरणतृण, कूठ, फूलप्रियंगु, तगर, सिरसका पंचांग[2], सोंठ, मिर्च, पीपल, इलायची, मनसिल, जीरा, सफेद अपराजिता, कटभी,

---

१ राल, गूगुल, अफीम, शिलहक और लोहबान। २ सिरसकी छाल, फूल, पत्र बीज और जड।

करंज, लताकरंज, सफेद सरसों, संभालू, हल्दी, तुलसी, रसौत, गेरु, मंजीठ, नीमका गोंद, बांसके ऊपरके छिलके, असगन्ध, हींग, कपित्थ, अमलवेत, लाख, मुलैठी महुएके फूल, बावची, वच, रुहा (महासमंगा अथवा दूब), गोरोचन, तगर इन सबको समभाग लेवे। इन ६० औषधियोंके अगदको महादेवजीने कुबेरसे कथन किया था यह अगद अप्रतिहतप्रभाव और महागन्धहस्ती नामसे विख्यात है। इन साठ औषधियोंको पुष्यनक्षत्रमें संग्रहकर बारीक चूर्ण बना और पुष्यनक्षत्रमें गोपित्तमें[1] खरलकर गोलियें बनालेवे। इस महागन्धहस्ती नामके अगदको अंजन और लेपमें प्रयुक्त करनेसे कार्यकी सिद्धि होती है। अर्थात् सब प्रकारके विष आदि दूर होकर मनुष्य आरोग्य रहता है। जो मनुष्य हित मित और पथ्य भोजन करताहुआ इस अगदको नेत्रोंमें आंजे तो पैल्ल, खुजली, तिमिर, रतौंध, कांच, अर्बुद और पटलरोग दूर होते हैं तथा विषमज्वर, अजीर्ण, दाद, खुजली और विषूचिका यह सब दूर होते हैं। तथा मौषिक विष वा अन्य प्रकारके विष, लूताविष, सब प्रकारके सांपोंके विष, मूलजविष, कंदविष तथा अन्य विष इन सबको शीघ्र नष्ट करता है। इस औषधको शरीरमें लेपन कर मनुष्य सांपको पकडले अथवा विषको खालेवे तो उसको किसी प्रकारका भी विष व्यापक नहीं होता। जिसके शरीरमें असर करगया हो अथवा विषके कारण मृततुल्य होगया हो इसके लेपन और अंजनसे वह भी शीघ्र निरोग होजाता है। इस औषधका अफारेमें अथवा बवासीरमें गुदापर लेप करना चाहिये। मूढगर्भ हो तो स्त्रीके योनिमें लेप करना चाहिये। और मूर्च्छारोगमें मनुष्यके मस्तकपर लेप करना चाहिये। इन अगदको भेरी (नक्कारा), मृदंग, पटह (डफरा) आदिपर लेपकर बजानेसे उसका शब्द सुननेसे विष दूर होजाता है। इसको छत्र, ध्वजा और पताका आदिमें लेपकर उस ध्वजा पताका आदिकी वायुके स्पर्शसे और देखनेसे विष दूर होता है। इसलिये विषग्रस्तको लेपन, अंजन, शब्द, वायुदर्शन इन सब जगह अगदका प्रयोग करनेसे विष दूर होजाता है। जिस स्थानमें यह अगद रहे उस स्थानमें बालग्रह, राक्षसभय, जादू, टोना आदि किसी प्रकारका भय नहीं करसकते तथा उस स्थानमें किसी अथर्ववेदोक्त मंत्र वैरीके प्रयुक्त कियेहुए अपना बल नहीं करसकते तथा उस घरमें किसी प्रकारके ग्रह, अग्नि, शस्त्र, राजा और चोर आदि कष्ट नहीं देसकते। जिस स्थानमें यह महागंधनाशक अगदहस्ती हो उस स्थानमें लक्ष्मीकी वृद्धि होती है। जिस समय इस औषधिको बनावे उस समय 'मम माता जया नाम' आदिक साढे चार श्लोकका मंत्र जो ऊपर मूलमें लिखा है पढता जाय ॥ ७९-९२ ॥

---

१ गोपित्तकी जगह १० वर्षका गोघृत मिलावे तो अधिक गुणकारी है।

विषमें श्वासज्वरादिनाशक योग।

ऋषभकजीवकभार्ङ्गीमधुकोत्पलधान्यकेशराजाज्यः।
ससितागिरिकोलमध्याः पेयाः श्वासज्वरादिहराः॥ ९३॥

ऋषभक, जीवक, भारंगी, मुलैठी, नीलकमल, धनियां, नागकेशर, जीरा, मिसरी, गेरू बेरकी गुठलीकी मींगी इन सबको घोटकर पीवे तो विषग्रस्त रोगीका श्वास और ज्वर दूर होता है॥ ९३॥

हिङ्गु च कृष्णायुक्तं कपित्थरससमुद्रलवणञ्च।
समधुसितौ पातव्यौ ज्वरहिक्काश्वासकासघ्नौ॥ ९४॥

हींग और पीपलका चूर्ण कैथके रसमें घोटकर उसमें समुद्रलवण तथा शहद और मिसरी मिला पीवे तो विषजनित ज्वर, हिचकी और श्वास तथा खांसी दूर होते हैं॥ ९४॥

लेहः कोलास्थ्यञ्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्वम्याम्।
बृहतीद्वयाढकीपत्रधूमवर्त्तिस्तु हिक्काघ्नी॥ ९५॥

बेरकी गुठली, अंजन, (स्रोतोञ्जन या रसौत) खील और नीलकमल इनको घृतमें मिलाकर चाटनेसे विषजनित वमन दूर होता है और कटेली, बडी कटेली, अरहरके पत्र इनकी धूमबत्ती बनाकर धूमपान करनेसे विषजनित हिचकी दूर होती है ९५

शिखिबर्हिबलाकास्थीनि सर्षपाश्चन्दनं च घृतयुक्तम्।
धूमो गृहशयनासनवस्त्रादिषु शस्यते विषनुत्॥ ९६॥

मोरपंख, बगुलेकी हड्डी, पीली सरसों और लालचन्दन इनको बारीक पीस घीमें मिला धूनी देनेसे घर, शय्या, आसन, वस्त्र आदिकोंका विष दूर होता है॥ ९६॥

घृतयुक्ते नतकुष्ठे भुजगपतिशिरः शिरीषपुष्पञ्च।
धूमागदः स्मृतोऽयं सर्वविषघ्नः श्वयथुहृच्च॥ ९७॥

तगर, कूठ, नागका शिर, सिरसके फूल इन सबको बारीक पीस घीमें मिला धूनी देनेसे यह धूमागद सब प्रकारका विष और विषजनित सूजन दूर करता है॥९७॥

जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातककुकुभपुष्पसर्जरसाः।
श्वेता धूमा उरगाखुकीटवस्त्रकृमिहराः स्युः॥ ९८॥

लाख, खस, पत्रज, गूगल, भिलावे, अर्जुन वृक्षके फूल, सर्जरस (राल) और सफेद अपराजिता इन सबके चूर्णको पुराने घृतमें मिला धूनी देनेसे घरमेंसे सांप, बिच्छू, कीट, मूसा और वस्त्रोंके कृमि दूर होतेहैं॥ ९८॥

क्षारागद।

तरुणपलाशक्षारस्रुतं पचेच्चूर्णितैः सह समांशैः।
लोहितमृद्रजनीद्वयशुक्लसुरसमञ्जरीमधुकैः ॥ ९९ ॥
लाक्षासैन्धवमांसीहरेणुहिङ्गुद्विशारिवाकुष्ठैः।
सव्योषैर्बाह्लीकैर्दर्वीलेपेन घट्टयेद्यावत् ॥ १०० ॥
सर्वविषशोथगुल्मत्वग्दोषार्शोभगन्दरप्लीह्नः।
शोषापस्मारक्रिमिभूतस्वरभेदकण्डुपाण्डुगदान् ॥ १०१ ॥
मन्दाग्नित्वं कासं सोन्मादं नाशयेन्नृणामाशु।
गुलिकाश्छायाशुष्ककोलसमास्ताः समुपयुक्ताः ॥ १०२ ॥

नये ढाकके खारको विधिवत् चुआलेवे फिर इसमें गेरू, हलदी, दारुहलदी, सफेद तुलसीकी मञ्जरी, मुलैठी, लाख, सेंधानमक, जटामांसी, रेणुका, हींग, सारिवा, कृष्णसारिवा, कूठ, पीपल, मिर्च, सोंठ बाल्हीक (हींग) इन सबका चूर्णकर उपरोक्त क्षारसे चौथा भाग लेवे इस चूर्ण और क्षारको मिलाकर पकावे जब पकते २ करछीसे लिपटने लगे तो उतारकर बेरके समान (या एक एक तोलाकी) गोलिएँ बना, छायामें सुखाले। इन गोलियोंके प्रयोगसे सब प्रकारके विष, सूजन, गुल्म, त्वचाके दोष, अर्शरोग, भगंदर, प्लीहरोग, शोष, अपस्मार, कृमिरोग, भूतबाधा, स्वरभेद, खुजली, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, खाँसी, उन्माद यह सब नष्ट होते हैं ९९-१०२

विषपीतदष्टविद्धेष्वेतद्दिग्धे च वाच्यमुद्दिष्टम्।
सामान्यतः पृथक्त्वान्निर्देशमतः शृणु यथावत् ॥ १०३ ॥

इस प्रकार पीयेहुए विषकी और विद्धविष तथा दष्ट विषकी, एवं दूषीविष चिकित्साका सामान्यतासे कथन किया गया है। अब विषभेदसे अलग अलग चिकित्साका श्रवण करो ॥ १०३ ॥

रिपुयुक्तेभ्यो नृभ्यः स्वेभ्यः स्त्रीभ्योऽथवा भयं नृपतेः।
आहारविहारगतस्तस्मात्प्रेष्यान् परीक्षेत ॥ १०४ ॥

जो मनुष्य शत्रुओंसे मिले हुए हों अथवा शत्रु या स्त्री आदि, भोजनमें मिलाकर अथवा अन्य किसी प्रकार विष देसकते हैं। इसलिये राजाको अपने आहारविहारकी परीक्षा करते रहना चाहिये ॥ १०४ ॥

विषदेनेवाले पुरुषके लक्षण।

अत्यर्थशङ्कितः स्याद्बहुवागथवाल्पवाग्विगतलक्ष्मीः।

प्राप्तः प्रकृतिविकारं विषप्रदाता नरो ज्ञेयः ॥ १०५ ॥

जो मनुष्य अन्न पान देताहुआ अत्यंत शंकितसा हो, अपने स्वभावसे विपरीत बनावटीसी अधिक बातें करता हो वा बहुतबोलनेवाले स्वभावका होकर भी बहुत कम बोले, मुखकी कांति भयभीत और विकृतसी प्रतीत हो, हतश्री प्रतीत हो तथा अन्य तिनकेसे पृथ्वीको खोदना आदि प्रकृतिसे लक्षण प्रतीत हों ऐसे मनुष्यके दिये हुए अन्नपानमें विषकी सम्भावना होती है। अर्थात् ऐसे लक्षण होनेसे मनुष्यको विषको देनेवाला समझना चाहिये ॥ १०५ ॥

विषयुक्त भोजनकी परीक्षा ।

दृष्ट्वैवं न तु सहसा भोज्यं न्यस्येत्तदन्नमग्नौ तु ।

सविषं हि प्राप्यान्नं बहून्विकारान् भजत्यग्निः ॥ १०६ ॥

शिखिबर्हविचित्रार्चिस्तीक्ष्णाल्परूक्षकुणपधूमश्च ।

स्फुटति च सशब्दमशब्दमेकावर्त्तो विहितार्चिरपि स्यात्॥१०७

यदि भोजनमें विषकी शंका हो तो उस भोजनको विना अग्निमें हवनकिये सहसा खालेना उचित नहीं । यदि विषयुक्त अन्नको अग्निमें हवन कियाजाय तो अग्नि बहुतसे विकारयुक्त होजाती है । विषयुक्त अन्न अग्निमें डालनेसे अग्निके इस प्रकार वर्ण बदल जाते हैं। जैसे—अग्निकी लाट मोरके पंखके समान, हरी, नीली, चित्रितसी प्रतीत हो उसमें तीक्ष्णता, रूक्षता और मुर्देकीसी गंध आनेलगे, अथवा अन्य किसी विषकीसी गंध आवे, अनेक वर्णका धूम निकले, उस अग्निमेंसे फटफट फटनेकासा शब्द प्रतीत हो, धूंएका एक आवर्त गोलासा निकले और शिखादार धूम न हो । यह विषयुक्त अन्न होनेके लक्षण हैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

पात्रस्थ अन्नमें विषकी पहिचान ।

पात्रस्थञ्च विवर्णं भोज्यं स्यान्मक्षिकांश्च मारयति ।

क्षामस्वरांश्च काकान् कुर्य्याद्विरजेच्चकोराक्षि ॥ १०८ ॥

जो भोजन पात्रमें पडापडा ही विवर्ण होजाय और उसके ऊपर जो मक्खी बैठें सो मरजाय, जिस भोजनको देखकर काक अपने कांकां शब्दको त्याग देवे और जिस भोजनको देखकर चकोर अपने नत्रोंको फेरलेवे ऐसे भोजनको विषयुक्त जानना चाहिये ॥ १०८ ॥

जलादिपेय पदार्थमें विषकी परीक्षा ।

पाने नीला राजी वैवर्ण्यं स्वाञ्च नेक्षते च्छायाम् ।

विकृतामथवा पश्यति लवणाक्ते फेनमाला स्यात् ॥ १०९ ॥

यदि जल आदि पेय पदार्थोंमें विष मिलाहुआ हो तो उसमें रेखासी, नीले २ वर्णकी तारसी प्रतीत होने लगती हैं, उसका वर्ण बिगड जाता है, उसमें मुख आदि शरीरका प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता अथवा विकृत दिखाई देता है। यदि उसमें नमक डाल दियाजाय तो झागकी तरंगेंसी उठने लगती हैं ॥ १०९ ॥

विषयुक्त अन्नपान सेवनका विकार।

पानान्नयोः सविषयोः शिरसो गन्धेन रुग् हृदि च।
मूर्च्छाऽस्य पाणिशोथः सुप्त्यङ्गुलिदाहतोदनखभेदाः॥ ११० ॥
मुखताल्वोष्ठचिमिचिमा जिह्वा शूलवती जडा विवर्णा स्यात्।
द्विजहर्षहनुस्तम्भास्यदाहलालागलविकाराः ॥ १११ ॥
आमाशयं प्रविष्टे वैवर्ण्यस्वेदसदनमुत्क्लेदः।
दृष्टिर्हृदयोपरोधो बिन्दुशतैश्चीयते चाङ्गम् ॥ ११२ ॥
पक्वाशयन्तु याते मूर्च्छामदमोहदाहबलनाशाः।
तन्द्रा कार्श्यञ्च विषे पाण्डुत्वञ्चोदरस्थे स्यात् ॥ ११३ ॥

अन्नपानमें विष मिला होनेसे उसकी गंधसे मस्तकमें पीडा, हृदयमें शूल, मूर्च्छा और हाथ लगानेसे हाथोंमें सूजन वा हाथका सुन्नसा होजाना, अंगुलियोंमें दाह, तोद और नखोंका फटना सा प्रतीत होना यह लक्षण होतेहैं। विषयुक्त द्रव्यके खाये-जानेसे मुख, तालु और फोतोंमें चिमचिमाहट, जिह्वामें पीडा सूजन, जडता और विवर्णता हो, दाँत कुन्द होजायँ, ठोडी जडक जाय, मुखमें जलन हो और मुखसे लार वहनेलगे, गलेमें विकार पैदा हो। वह विषयुक्त अन्न पान आमाशयमें पहुच जानेसे शरीरकी विवर्णता, पसीने, अंगोंका अवसाद, जीमचलाना, दृष्टि और हृदय बंधेसे होजाना शरीरमें विन्दुके समान सैकडों फुन्सियें होजांय। यदि वह विष पक्वाशयमें पहुंचजाय तो मूर्च्छा, मद, मोह, दाह, बलका नाश यह लक्षण होते हैं। विषयुक्त अन्नपान यदि उदरमें स्थित हो तो तन्द्रा, कृशता और पाण्डु ये उपद्रव होते हैं ११३

दतौनमें और शिरोभ्यंगमें विषके लक्षण।

दन्तपवनस्य कूर्चो विशीर्य्यते दन्तोष्ठमांसशोफश्च।
केशच्युतिः शिरोग्रन्थयश्च सविषे शिरोऽभ्यङ्गे ॥ ११४ ॥

यदि विष दांतनकी कूचीमें हो तो दांतोंका मांस बिखरने लगे और सूजजाय, दांत उखडने लगें और दांतनकी कूची बिखरजाय ये लक्षण होते हैं। यदि तैल आदिकोंमें विष मिला हो तो उसको शिरमें लगानेसे केशोंका गिरना, शिरमें गांठेसी होजाना ये लक्षण होते हैं ॥ ११४ ॥

अंजनमें विषके लक्षण।

दुष्टेऽञ्जनेऽक्षिदाहः स्रावाद्युपदेहशोथरागाश्च।
आद्यैरादौ कोष्ठः स्पृश्यैस्त्वग्दूष्यते दुष्टैः॥ ११५॥

यदि अंजनमें विष मिला हो तो आंखोंमें दाह, जलका स्राव, अत्यंत क्लेदका होना, सूजन, लाली यह उपद्रव होते हैं। जो विष खाये जाते हैं उनमें पहिले कोष्ठ दूषित होता है। जो विष तैल आदिद्वारा या अन्य किसी प्रकार शरीरमें स्पर्श किये-जांय तो उनसे पहिले त्वचा दूषित होती है॥ ११५॥

स्नान अभ्यंगादिकोंमें विषके लक्षण।

स्नानाभ्यङ्गोत्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः।
कण्ड्वार्त्तिलोमहर्षाः कोठपिडकचिमिचिमाः शोथाः॥ ११६॥

यदि स्नान, मालिश, उबटन, वस्त्र, अलंकार आदि विषयुक्त हों तो उनसे खुजली, पीडा, रोमहर्ष, शरीरपर चकत्ते, पिडिका, चिमचिमाहट और सूजन ये लक्षण होते हैं॥ ११६॥

सवारी, शय्या, भूमि, पादुका आदिमें विषके लक्षण।

एते करचरणदाहतोदक्लमाङ्गविपाकाश्च।
भूपादुकाश्वगजचर्मकेतुशयनासनैर्दुष्टैः॥ ११७॥

यदि चलने फिरनेकी पृथ्वी, जूता, खडाऊं, घोडेकी जीन, हाथीके ऊपर मृग-छाला, शय्या, आसन आदिमें विषका सम्पर्क हो तो हाथ पांवोंमें दाह, सूई चुभने कीसी पीडा, क्लम, अंगोंका पकना ये लक्षण होते हैं॥ ११७॥

विषयुक्त माला और धूमके लक्षण।

माल्यमगन्धं म्लायति शिरसो रुजा लोमहर्षकरम्।
स्तम्भयति खानि दर्शनमुपहन्ति च नासिकां धूमः॥ ११८॥

यदि पुष्पमालामें विष लगाहुआ हो तो वह माला गंधरहित, कुम्हिलाई, मस्तक-पीडा और रोमहर्षको करनेवाली होती है, विषयुक्त धूमका स्पर्श हो तो वह धूम नाकमें जानेसे नाकके छिद्रोंको स्तब्ध करे नेत्रोंको और नाकको उपहनन करता है॥ ११८॥

कूप आदिमें विषके लक्षण।

कूपतडागादिजलं दुर्गन्धं सकलुषं विवर्णञ्च।
पीतं श्वयथुं कोठान्पिडकांश्च करोति मरणञ्च॥ ११९॥

कुएं, तालाव आदिमें विष मिला हो तो जलमें दुर्गंध, कलुषता और विवर्णता होती है। उस जलके पीनेसे सूजन, शरीपर चकत्ते, फुन्सियें अथवा मृत्यु होती है॥ ११९॥

इन विषोंमें सामान्यचिकित्साक्रम।

आदावामाशयगे वमनं त्वक्स्थे प्रदेहसेकादि।

कुर्य्याद्भिषक्चिकित्सां दोषबलञ्चैव हि समीक्ष्य ॥ १२० ॥

यदि विष खाये जानेसे आमाशयमें पहुंचा हो तो शीघ्र वमन कराकर निकाल-देना चाहिये। यदि त्वचा आदिमें विषका स्पर्श हुआ हो तो प्रदेह और प्रसेकादि द्वारा वैद्य दोष, बल आदि विचारकर चिकित्सा करे ॥ १२० ॥

इति मूलविषविशेषाः प्रोक्ताः शृणु जङ्गमस्यातः।

सविशेषचिकित्सितमेवादौ तत्रोच्यते तु सर्पाणाम् ॥ १२१॥

इस प्रकार मूलविष विशेषोंका (और स्थावर विषोंका) वर्णन करचुके हैं। अब जंगमविषोंकी चिकित्साविशेषका कथन करते हैं उनमें प्रथम सर्पोंकी चिकित्साको कहते हैं ॥ १२१ ॥

सर्पोंका और उनके विषोंका वर्णन।

इह दर्वीकरः सर्पो मण्डली राजिमानिति।

त्रयो यथाक्रमं वातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः ॥ १२२ ॥

दर्वीकर, मंडली और राजिमान् इन तीन प्रकारके सर्पोंके काटनेसे क्रमसे वात, पित्त, कफका प्रकोप होता है। अर्थात् दर्वीकर सांपका विष वातप्रधान है। मंडली सर्पका विष पित्तप्रधान है और राजिमान् सर्पका विष कफप्रधान होता है ॥१२२॥

दर्वीकरः फणी ज्ञेयो मण्डली मण्डलाः फणाः।

बिन्दुलेखो विचित्राङ्गः पन्नगः स्यात्तु राजिमान् ॥ १२३ ॥

कुडछीके समान फणवाले सांप दर्वीकर कहेजाते हैं। दर्वीकर सांपके शिरपर गौके खुरका आकारसा होता है और मुख किंचित् लम्बा होता है। मंडलीसर्पका फण मडलक समान गोल होता है। जिस सांपके शरीरपर चित्र विचित्र बूंदें रेखा और लकीरेंसी होती हैं उसको राजिमान् कहते हैं ॥ १२३ ॥

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णं स्वादु शीतलम्।

विषं यथाक्रमं तेषां तस्माद्वातादिकोपनम् ॥ १२४ ॥

दर्वीकर सांपका विष विशेषतासे रूक्ष और कटु होता है। मंडली सर्पोंका विष अम्ल और उष्ण होता है। राजिमान् सांपोंका विष मधुर और शीतल होता है। इसलिये यह यथाक्रम वातादि दोषोंको कुपित करनेवाले होते हैं ॥ १२४ ॥

दर्वीकरके कटेहुएके लक्षण।

दर्वीकरकृतो दंशः सूक्ष्मदंष्ट्रापदोऽसितः।

निरुद्धरक्तः कूर्माभो वातव्याधिकरो मतः ॥ १२५ ॥

दर्वीकर सांपके काटेहुए स्थानमें दंशस्थान बहुत सूक्ष्म और काले वर्णका होताहै तथा रक्त नहीं निकलता वह स्थान कछुएकी समान फूलाहुआसा प्रतीत होता है और संपूर्ण लक्षण तथा व्याधियें वातजनित होती हैं॥ १२५ ॥

मण्डली सांपोंके दंशके लक्षण।

पृथ्वर्पितः सशोथश्च दंशो मण्डलिभिः कृतः।
पीताभः पीतरक्तश्च सर्वपित्तविकारकृत् ॥ १२६ ॥

मंडली सांपका काटाहुआ स्थान-स्थूल, सूजनयुक्त और पीले वर्णका होता है। पीले वर्णका और लालवर्णका रक्त निकलने लगता है। संपूर्ण लक्षण और व्याधियें पित्तजनित होती हैं ॥ १२६ ॥

राजिमान् सांपके दंशके लक्षण।

कृतो राजिमता दंशः पिच्छिलः स्थिरशोफकृत् ।
स्निग्धः पाण्डुश्च सान्द्रासृक्श्लेष्मव्याधिसमीरणः ॥ १२७ ॥

राजिमान् सांपका काटाहुआ स्थान-पिच्छिल, स्थिर, सूजनयुक्त, चिकना और पाण्डुवर्णका होता है। तथा गाढा और सान्द्र रक्त निकलता है। लक्षण और व्याधि सब कफजनित होती हैं ॥ १२७ ॥

सर्पोंके स्त्रीपुरुष जातिके दंशभेद।

वृत्तभोगी महाकायः श्वसन्मूर्द्धेक्षणः पुमान् ।
स्थूलमूर्द्धा समाङ्गश्च स्त्री त्वतः स्याद्विपर्य्ययात् ॥ १२८॥
क्लीबः स्रस्तस्त्वधोदृष्टिः स्वरहीनः प्रकम्पते ।
स्त्रिया दष्टो विपर्य्यस्तैरेतैः पुंसो नरो मतः ॥ १२९ ॥
व्यामिश्रलिङ्गैरेतैस्तु क्लीबदष्टं नरं वदेत् ।
इत्येतदुक्तं सर्पाणां स्त्रीपुंक्लीबनिदर्शनम् ॥ १३० ॥

जिस सांपका फण गोल, सुंदर, बडा हो और शरीर भी बडा हो तथा जो ऊपरको नेत्रकर श्वास लेवे मस्तक बडा हो और सर्वांग सुडौल हो वह सांप पुरुषजातिका होता है। इससे विपरीत अर्थात् जिसका शिर बडा न हो फण चौडी न हो तथा शरीर भी बहुत बडा चमकीला और पुरुष जातिके सांपके समान न हो उसको जातिकी स्त्री (सांपनी) जानना चाहिये। इन दोनोंके मिलेजुले लक्षणोंवाला सांप जातिका नपुंसक होता है। जिस मनुष्यको स्त्रीजातिका सांप काटे उसके सब अंग

शिथिल होजांय दृष्टि नीची पडजाय, स्वर हीन होजाय और कांपने लगे। जिसको पुरुष जातिके सांपने काटा हो उसकी दृष्टि ऊपरको हो सब अंग कठोर हों तथा स्वर क्षीण और कम्प न हो उसको पुरुषजातिके सांपने डसा (काटा) है ऐसा जानना। दोनोंके मिलेजुले लक्षण हों तो नपुंसकका काटा हुआ जानना चाहिये। इस प्रकार सांपोंकी स्त्री, पुरुष और क्लीब जातिका वर्णन किया गया॥१२८--१३०॥

पाण्डुवक्त्रस्तु गर्भिण्या शूनोष्ठोऽप्यसितेक्षणः।
जृम्भाक्रोधोपजिह्वार्त्तः सूतया रक्तमूत्रवान्॥ १३१॥

गर्भवती सांपनके काटेहुए मनुष्यके होठों पर सूजन, मुखपर पाण्डुवर्णकी सूजन, नेत्र काले वर्णके होना तथा जंभाई, क्रोध और उपजिह्विकासे पीडित होना यह लक्षण होते हैं। सूईहुई सर्पिणीके काटे हुए मनुष्यके मुख तथा मूत्रद्वारा रक्तस्राव होता है॥ १३१॥

गोहके काटेहुएके लक्षण।

सर्पो गौधेरको नाम गोधाख्यः स्याच्चतुष्पदः।
कृष्णसर्पेण तुल्यः स्यान्नानाः स्युर्मिश्रजातयः॥ १३२॥

गोधेरक नामक सांप चार पावोंवाला होता है उसको गोंधा (गोध) कहते हैं। इसके काटेहुए पुरुषके कृष्ण सांप (दर्वीकर) के काटेहुएके समान लक्षण होते हैं। इनके सिवाय बहुतसे वर्णसंकर जातिके सर्प होते हैं॥ १३२॥

भयानक दंश।

गूढसम्पादितं वृत्तं पीडितं लम्बितार्पितम्।
सर्पितश्च भृशाबाधं दंशा येऽन्ये न ते भृशाः॥ १३३॥

जो दंश (सांपका काटाहुआ स्थान) ऊपरसे अधिक न होनेपर भी भीतरसे गहरा हो तथा गोल ऊपरको उठाहुआ हो, गिलटीके समान पिंडितसा हो, लंबायमान उठाहुआ हो और शीघ्र सब ओर फैलगया हो वह दंश अत्यन्त भयानक होता है ऐसे अन्य दंश भयानक नहीं होते॥ १३३॥

सर्पोमें अवस्थाभेदसे विषकी प्रधानता।

तरुणाः कृष्णसर्पास्तु गोनसाः स्थविरास्तथा।
राजिमन्तो वयोमध्ये भवन्त्याशीविषोपमाः॥ १३४॥

तरुण कालासांप, आशीविषसा (शीघ्रप्राणनाशक) होता है। तथा वृद्ध मण्डलीसांप और प्रौढ राजिमान् सांप आशीविषसा होता है॥ १३४॥

सांपके चार दांतोंके वर्ण।

सर्पदंष्ट्राश्चतस्रस्तु तासां वामाधराः सिताः।

पीता वामोत्तरा दंष्ट्रा रक्तश्यावाधरोत्तराः॥ १३५॥

सांपके मुखमें चार दंष्ट्रा (दाढ) प्रधान होती हैं। उनमें बाईं ओरकी नीचेकी दाढ सफेद और ऊपरकी पीली होती है तथा दहनी ओरकी नीचेकी दाढ लाल और ऊपरकी काली होती है॥ १३५॥

दांतोंमें विषकी प्रबलता।

यन्मात्रः पतते बिन्दुर्गोवालात्सलिलोद्धृतात्।

वामाधरायां दंष्ट्रायां तन्मात्रं स्यादहेर्विषम्॥ १३६॥

एकद्वित्रिचतुर्वृद्धिविषभागोत्तरोत्तराः।

सवर्णास्तत्कृता दंशा बहूत्तरविषा भृशाः॥ १३७॥

गोपुच्छके एक बालको पानीमें भिगोकर निकाले उस बालमेंसे जितनी पानीकी बून्द गिरती हैं सांपकी बाईं और नीचेकी दाढमें उतना विष होता है और बाईं ओरकी ऊपरकी दाढमें उससे दुगुना विष होता है। दहनी ओरकी नीचेकी दाढमें तिगुना और दहनी ऊपरकी दाढमें चौगुना विष होता है। सांपका जो दांत मनुष्यके शरीरमें लगे उसी दांतके वर्णका दंशका भी वर्ण होता है और बाईं ओरके नीचेके दांतसे आरंभकर क्रमसे चारों दंशोंमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर विष भयानक भारी जानना॥ १३६॥ १३७॥

सांपोंके मलजनित कीटोंके विषके लक्षण।

सर्पाणामेव विण्मूत्रात्कीटाः स्युः कीटसंमताः।

दूषीविषाः प्राणहरा इति संक्षेपतो मताः॥ १३८॥

सांपोंकी विष्ठा और मूत्रसे जो कीडे उत्पन्न होते हैं उनको किट्टज कहते हैं। उनके दूषीविष और प्राणहारी यह संक्षेपसे दो भेद हैं॥ १३८॥

गात्रं रक्तं सितं कृष्णं श्यावं वा पिडकान्वितम्।

सकण्डूदाहवीसर्पं पाकि स्यात्कुथितं तथा॥ १३९॥

कीटैर्दूषीविषैर्दष्टं लिङ्गं प्राणहरं शृणु।

सर्पदष्टे तथा शोथे वर्द्धते सोग्रगन्धयसृक्॥ १४०॥

दूषीविष कीटोंके दंशस्थान लाल, श्वेत, कृष्ण, श्याव अथवा पीतवर्ण होते हैं। तथा उनमें छोटी २ फुन्सियें, खुजली, दाह तथा विसर्पके समान पाक और सडन होती है। और प्राणहर कीटोंके काटनेसे सांपके काटेहुएके समान दंशस्थानमें

सूजन होती है और रक्तमें अत्यंत गंध आती है। तथा सांपके विषके समान ही सूजन आदिकी वृद्धि होती जाती है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

दूषीविषोंके काटनेके लक्षण।

दंशोऽक्षिगौरवं मूर्च्छा सरुगार्त्तः श्वसित्यपि।
तृष्णारुचिपरीतश्च भवेद्दूषीविषार्दितः ॥ १४१ ॥

दूषीविष कीटोंके काटनेसे नेत्रोंमें भारीपन, मूर्च्छा और अत्यंत पीडा, श्वास, तृषा, अरुचि हो यह दूषीविषयुक्त मनुष्यके लक्षण होते हैं ॥ १४१ ॥

दूषीविष लूता (मकडी) के दंशके लक्षण।

दंशस्य मध्ये यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम्।
दग्धाकृति भृशं पाकि क्लेदशोथज्वरान्वितम् ॥१४२॥
दूषीविषाभिर्लूताभिस्तं दष्टमिति निर्दिशेत्।
सर्वासामेव तासाञ्च दंशे लक्षणमुच्यते ॥ १४३ ॥

दूषीविष लूता (मकडी) के काटनेसे दंशस्थान बीचमेंसे काला, नीला और जालीसे युक्त दग्धहुएके समान आकारवाला, पाकयुक्त, क्लेद, सूजन हो और मनुष्य ज्वरयुक्त होता है। लूता अनेक प्रकारकी होती हैं। अब उनके दंशोंके लक्षण कहते हैं ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

लूतादष्ट मनुष्यके लक्षण।

शोफाः श्वेताः सिता रक्ताः पीता वा पिडका ज्वरः।
प्राणान्तिको भवेच्छ्वासो दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ १४४ ॥

जिस मनुष्यको लूता काटे उसके दंशस्थानमें सूजन काले, लाल, सफेद अथवा पीले वर्णकी छोटी २ फुन्सियें, ज्वर, प्राणनाशक श्वास, दाह, हिचकी, मस्तकमें अत्यंत पीडा यह लक्षण होते हैं ॥ १४४ ॥

मूषकके काटेहुएके लक्षण।

आदंशाच्छोणितं पाण्डुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः।
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ १४५ ॥

विषयुक्त चूहेके काटनेसे दंशमेंसे रक्तका निकलना, पीले वर्णके चकत्ते, ज्वर, अरुचि, रोमहर्ष और दाहसे व्याकुलता यह लक्षण होते हैं ॥ १४५ ॥

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः।
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषिकैः ॥ १४६ ॥

चूहेके काटेहुए मनुष्यको यदि मूर्च्छा, अंगोंमें सूजन, विवर्णता, क्लेद, कानोंसे न सुनना, ज्वर, शिरमें पीडा, मुखसे लार बहना और रुधिरकी छर्दी हो तो वह मूषकाविष असाध्य होता है ॥ १४६ ॥

कृकलासके विषके लक्षण।

श्यावत्वमथ कार्ष्ण्यं वा नानावर्णत्वमेव वा।
मोहः पुरीषभेदो वा दष्टे स्यात्कृकलासकैः ॥ १४७ ॥

गिरगट (किरला) के काटनेसे दंशस्थान काला, नीला वा अनेक वर्णका होता है। गिरगटके काटेहुए मनुष्यको बेहोशी और दस्त होने लगते हैं ॥ १४७ ॥

बिच्छूके काटनेके लक्षण।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च।
वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ १४८ ॥
दष्टोऽसाध्यस्तु दृग्घ्राणरसनोपहतो नरः।
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्त्तो जहात्यसून् ॥ १४९ ॥

बिच्छूके काटेहुए मनुष्यके दंशस्थानमें अग्निके समान काटतेही जलन होने लगती है फिर वह अग्निकी सी पीडा जल्दी २ ऊपरको चढती हुई प्रतीत होती है तथा अन्तमें दंशस्थानमें ही आकर स्थित होजाती है। जिस बिच्छूके काटेहुए मनुष्यकी दृष्टि, सूंघनेकी शक्ति और स्वादशक्ति नष्ट होजाय, जिस स्थानमें बिच्छूने काटा हो वह स्थान गल कर गिरने लगे अथवा दंशस्थान फटकर खिडजाय और अत्यन्त पीडाके मारे रोगी बेहोश हो जाय तो वह मनुष्य अपने प्राणोंको त्याग देता है१४९

कणभकदंशके लक्षण।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा।
लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्य्यते ॥ १५० ॥

कणभ(भूंडविशेष) के काटनेसे मनुष्यके शरीरमें विसर्प, शोथ, पीडा, ज्वर, वमन तथा दंशस्थानका फटते हुए प्रतीत होना अथवा दंशस्थानका गलकर गिरना यह लक्षण होते हैं ॥ १५० ॥

उच्चिटिंगके दंशके लक्षण।

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशार्तिमान्।
दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ १५१ ॥

उच्चिटिंगके काटे हुए मनुष्यके शरीरमें रोमांच, कटेहुए स्थानका टेढासा होकर अकड जाना, अत्यंत पीडा, संपूर्ण शरीर शीतल जलसे भिंगेहुएके समान प्रतीत होना यह लक्षण होते हैं ॥ १५१ ॥

विषैलेमेंडकका काटा।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुक्स्यात्पीतकः सतृट्।

छर्दिर्निद्रा च मण्डूकैः सविषैर्दष्टलक्षणम् ॥ १५२ ॥

विषयुक्त मेंडक एक दांतसे काटे और उस दंशस्थानमें अत्यंत पीडा, सूजन, पीलावर्ण होना, प्यास, वमन और निद्रा यह लक्षण होते हैं ॥ १५२ ॥

मछलीके दंशके लक्षण।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्य्युर्दाहं शोफरुजं तथा।

विषयुक्त मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और पीडा होती है।

जोंकके विषके लक्षण।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ १५३ ॥

विषयुक्त जोंकके काटनेसे खाज, सूजन, ज्वर और मूर्च्छा होती है ॥ १५३ ॥

छिपकलीके दंशके लक्षण।

दाहतोदस्वेदशोथकरी तु गलगोडिका।

छिपकलीके काटनेसे दाह, सूई चुभानेकीसी पीडा, पसीना और सूजन यह लक्षण होते हैं।

कनखजूरेके विषके लक्षण।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं करोति च शतापदी ॥ १५४ ॥

शतपदी (कनखजूराके) काटनेसे पसीना और अत्यंत दाह तथा शूल होता है ॥ १५४ ॥

मच्छरके काटनेके लक्षण।

कण्डूमान्मशकैरेतच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ १५५ ॥

विषयुक्त मच्छरके काटेहुए स्थानमें सूजन, खुजली और मन्दमन्द पीडा होती है। असाध्य विषयुक्त मच्छरके काटनेसे असाध्य कीटके समान लक्षण होते हैं १५५

मक्खियोंके दंशके लक्षण।

सद्यः प्रस्राविणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता।

पीडका मक्षिकादंशे तासां तु स्थगिकासुहृत् ॥ १५६ ॥

स्थगिका (विषैल अण्डगल) नामक मक्खीके सिवाय और मधुमाक्षिका आदि मक्खियोंके काटनेसे दंशस्थानमें सद्यः स्राव होना, दंशस्थानका श्यामवर्ण होना तथा दाह, मूर्च्छा और ज्वरका होजाना यह लक्षण होते हैं। परन्तु विषधर स्थगिकाके काटनेसे मनुष्यके प्राण नष्ट होते हैं ॥ १५६ ॥

सांपके काटनेसे असाध्यता।

श्मशानचैत्यवल्मीकयज्ञाश्रमसुरालये।
पक्षसन्धिषु मध्याह्ने सार्द्धरात्रेऽष्टमीषु च ॥ १५७ ॥
न सिद्धयन्ति नरा दष्टाः पाखण्डायतनेषु च ।
दृष्टिश्वासमलस्पर्शविषैराशीविषैस्तथा ॥ १५८ ॥
विनश्यन्त्याशु सम्प्राप्ता दष्टाः सर्वेषु मर्मसु ।
येन केनापि सर्पेण सम्भवः सर्व एव च ॥ १५९ ॥

श्मशान, चैत्य, वल्मीक, यज्ञस्थान, देवालय और दोनों पक्षोंकी संधियोंमें, मध्याह्नमें, अर्द्धरात्रिमें अष्टमीके दिन, पापस्थानमें यदि आकर सांप काटे तो वह काटाहुआ मनुष्य असाध्य होता है। तथा दृष्टिविष, श्वासविष, मलविष, स्पर्शविष और आशीविष सांपोंका काटाहुआ मनुष्य भी असाध्य होता है। तथा मर्मस्थानमें चाहे किसी प्रकारके सर्पका काटाहुआ हो वह मनुष्य शीघ्र प्राणोंको त्यागदेता है॥१५७–१५९

विषवृद्धिका समय।

भीतमत्ताबलोष्णक्षुत्तृषार्त्ते वर्द्धते विषम्
विषं प्रकृतिकालौ च तुल्यौ प्राप्याल्पमन्यथा ॥ १६० ॥

भयातुर, मत्त, दुर्बल, उष्णतासे पीडित, क्षुधासे व्याकुल और प्यासयुक्त मनुष्यके शरीरमें विष वृद्धिको प्राप्त होते हैं। तथा काल और प्रकृतिकी तुल्यता विषके साथ होनेसे विषका वेग बढता है अन्यथा अल्प होता है ॥ १६० ॥

मंदविष सांप।

वारिविप्रहताः क्षीणा भीता नकुलनिर्जिताः ।
वृद्धा बालास्त्वचो मुक्ताः सर्पा मन्दविषाः स्मृताः ॥१६१॥
सर्वदेहाश्रितं क्रोधाद्विषं सर्पो विमुञ्चति ।
तदेवाहारहेतोर्वा भयाद्वा न प्रमुञ्चति ॥ १६२ ॥

जलकी धारासे विशेषरूपसे हतहुआ, क्षीण, भयभीत, नेवलेसे हाराहुआ, वृद्ध बालक जिसके ऊपरसे उसी समय कांचुली उतरीहो ऐसे सांप मंदविष होते हैं। क्योंकि सांप अत्यन्त क्रोधातुर हो संपूर्ण देहके विषको छोडता है। और भयभीत होनेसे उस संपूर्ण विषको नहीं छोड सकता और आहारके लिये भी विषको नहीं त्यागता ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

विषोंकी वातादिप्रकृति।

वातोल्वणविषाः प्राय उच्चिटिङ्गाः सवृश्चिकाः।
वातपित्तोल्बणाः कीटाः श्लैष्मिकाः कणभादयः॥ १६३॥

उच्चिटिंग और विच्छुओंका विष प्रायः वातोल्बण होता है। और कीटोंका विष वातपित्तोल्बण होता है। तथा कणभादिकोंका विष कफोल्बण होता है॥ १६३॥

यस्य यस्य हि दोषस्य लिङ्गाधिक्यानि लक्षयेत्।
तस्य तस्यौषधैः कुर्य्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम्॥ १६४॥

विषोंमें जिस जिस दोषके अधिक लक्षण देखे उसी उसी दोषके विपरीत गुण-वाली क्रिया करनी चाहिये॥ १६४॥

वातप्रधान विषके लक्षण।

हृत्पीडोर्द्ध्वानिलस्तम्भः शिरायासोऽस्थिपर्वरुक्।
घूर्णनोद्वेष्टनं गात्रश्यावता वातिके विषे॥ १६५॥

हृदयमें पीडा, ऊर्ध्ववात, स्तम्भ, नसोंका खिंचना, अस्थियों और पर्वोंमें पीडा, नेत्रोंका घूमना, शरीरमें उद्वेष्टन, शरीरका काला होना यह वातोल्बण विषोंके लक्षण हैं॥

पित्तप्रधान विषके लक्षण।

संज्ञानाशोष्णनिश्वासौ हृद्दाहः कटुकास्यता।
दंशावदारणं शोथो रक्तपीतश्च पैत्तिके॥ १६६॥

संज्ञानाश, गरमश्वासका छोडना, हृदयमें दाह, मुखका कडुआ होना, दंशस्थानमें फटनेकीसी पीडा होना अथवा दंशस्थानका गलना, लाल और पीलेवर्णकी सूजन होना यह पित्तप्रधान विषके लक्षण हैं॥ १६६॥

कफप्रधान विषके लक्षण।

वम्यरोचकहृल्लासप्रसेकोत्क्लेशगौरवैः।
सशैत्यमुखमाधुर्य्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकं विषम्॥ १६७॥

वमन, अरुचि, हृल्लास, मुखसे लारका बहना, जी मचलाना, भारीपन, शरीरमें ठंढक, मुखमें मीठापन यह कफप्रधान विषके लक्षण हैं॥ १६७॥

वातादिभेदसे विषोंमें चिकित्सा क्रम।

खण्डेन च व्रणालेपस्तैलाभ्यङ्गश्च वातिके।
स्वेदो नाडीपुलाकाद्यैर्बृंहणश्च विधिर्हितः॥ १६८॥
सुशीतैः स्तम्भयेत्सेकैः प्रदेहैश्चापि पैत्तिकम्।
लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत्॥ १६९॥

वातप्रधान विषोंमें खांडके साथ दंशस्थानमें लेप करना तथा तेलकी मालिश, नाडीस्वेद और पुलाक आदिके साथ स्वेदन करना तथा बृंहण कर्म करना हितकारी है। पित्तप्रधान विषमें शीतल द्रव्योंका लेपन और सेचन, प्रदेह तथा स्तम्भनक्रिया करना चाहिये। और कफप्रधान विषोंमें लेखन, छेदन, स्वेदन और वमन कराना हितकारी है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

विषेष्वपि च सर्वेषु सर्वस्थानगतेषु च ।
अवृश्चिकोच्चिटिङ्गेषु प्रायः शीतो विधिर्हितः ॥ १७० ॥

संपूर्ण विषोंमें चाहे वह किसी स्थानमें गयेहुए हों प्रायः शीतल क्रिया हितकारी होती है। परन्तु उच्चिटिंग और बिच्छूके विषमें शीतल क्रिया करना हित नहीं है ॥

बिच्छूके विषमें क्रिया।

वृश्चिके स्वेदमभ्यङ्गं घृतेन लवणेन च ।
सेकांश्चोष्णान्प्रयुञ्जीत भोज्यं पानञ्च सर्पिषः ॥ १७१ ॥

बिच्छूके विषमें नमकयुक्त घृतमें स्वेदन और अभ्यंग करना हितकारक है तथा गरम सेक और घृतका पीना तथा भोजनके साथ सेवन करना हितकारी होता है ॥

उच्चिटिंगके विषमें चिकित्साक्रम।

एतदेवोच्चिटिङ्गेऽपि प्रतिलोमञ्च पांसुभिः ।
उद्वर्तनं सुखाम्बूष्णैस्तथावच्छादनं घनैः ॥ १७२ ॥
स्यात्त्रिदोषप्रकोपात्तु तथा धातुविपर्य्ययात् ।
शिरोऽभितापो लालास्राव्यधोवक्रस्तथा भवेत् ॥ १७३ ॥

उच्चिटिंगके विषमें भी बिच्छूके समान ही चिकित्सा करना चाहिये तथा बालू और मट्टी आदिसे ऊपरको उद्वर्त्तन करना अर्थात् चारों ओरसे दंशके स्थानकी ओरको मालिश करना, सुखोष्ण जलमें वस्त्रादि भिगोकर दंशस्थानको पूर्णरूपसे ढकदेना चाहिये। उच्चिटिंगके विषमें तीनों दोषोंका कोप होनेसे और सब धातुओंकी विपरीततासे शिरमें पीडा, लारका बहना और नीचेको मुख होजाता है ॥७३

अन्येप्येवंविधा व्यालाः कफवातप्रकोपणाः ।
हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्च्छाकरा मताः ॥ १७४ ॥

इसी प्रकारके अन्य भी जो सर्पादिक कफ, वातके कुपित करनेवाले हैं उनके काटनेसे हृदयमें शूल, ज्वर, स्तम्भ, तृषा और मूर्च्छा उत्पन्न होती है ॥ १७४ ॥

सविष और निर्विष शरीरके लक्षण।

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदोपशोषणम्।
विदाहरागरुक्पाकाः शोफाग्रन्थिनिकुञ्चनम् ॥ १७५ ॥
दंशावदारणं स्फोटाः कर्णिका मण्डलानि च।
ज्वरश्च सविषे लिङ्गं विपरीतन्तु निर्विषे ॥ १७६ ॥

खुजली, सूई चुभानेकीसी पीडा, विवर्णता, अंगोंका सुन्न होजाना, क्लेद, उपशोषण, अत्यन्त दाह, रक्तवर्ण, शूल, पाक, सूजन, गांठसी होना, संकोच, दंशस्थानमें फटनेकीसी पीडा होनी, फोडे, कर्णिका, मण्डल, ज्वर यह सब विष-युक्त शरीरके लक्षण हैं। इन सब लक्षणोंके न होनेसे मनुष्यका शरीर निर्विष जानना ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

विषोंमें चिकित्सा।

तत्र सर्वे यथावस्थं प्रयोज्याः स्युरुपक्रमाः।
पूर्वोक्तं विधिमन्यञ्च यथावद्ब्रुवतः शृणु ॥ १७७ ॥

विषयुक्त शरीरमें अवस्था आदि विचारकर विषनाशक क्रिया करनी चाहिये उनमें कुछ पहिले कहचुके हैं बाकी अब कथन करते हैं सो श्रवण करो ॥ १७७ ॥

हृद्विदाहे प्रसेके वा विरेकवमनं भृशम्।
यथावस्थं प्रयोक्तव्यं शुद्धे संसर्जनक्रमः ॥ १७८ ॥

यदि विषयुक्त मनुष्यके मुखसे लार बहै और हृदयमें दाह होता हो तो उसको अवस्थानुसार तीक्ष्ण वमन या विरेचन करावे। फिर शुद्ध शरीर होनेपर यथाक्रम पेयादिक प्रयोग करना चाहिये ॥ १७८ ॥

स्थानादि भेदसे विषनाशक योग।

शिरोगते विषे नस्तः कुर्य्यान्मूलानि बुद्धिमान्।
बन्धुजीवस्य भार्ङ्ग्याश्च सुरसस्यासितस्य च ॥ १७९ ॥

यदि विष शिरोगत हो तो बन्धुजीवक, भारंगी और काली तुलसीकी जडकी नसवार देवे ॥ १७९ ॥

दक्षकाकमयूराणां मांसासृङ्मस्तके क्षते।
मूर्ध्नि देयमधोदष्टस्योर्द्धदष्टस्य पादयोः ॥ १८० ॥

यदि मस्तकमें काटा हो तो दंशस्थानमें मुर्गा, कौआ और मोरका मांस तथा रक्त लगाना चाहिये। यदि पावोंके तलवेमें काटा हो तो भी उपरोक्त द्रव्योंका मस्तकपर ही लेप करना चाहिये ॥ १८० ॥

पिप्पलीमरिचक्षारवचासैन्धवशिग्रुकाः ।
पिष्ट्वा रोहितपित्तेन घ्नन्त्यक्षिगतमञ्जनात् ॥ १८१ ॥

पीपल, मिरच, जवाखार, बच, सेंधानमक और सोहँजनेके बीज इन सबको रोही मछलीके पित्तेमें पीस आंखोंमें अंजन करनेसे नेत्रगत विष नष्ट होता है ॥ १८१ ॥

कपित्थमामं ससितं क्षौद्रं कण्ठगते विषे ।
लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतात् ॥ १८२ ॥

कैथका गुदा, खांड और शहद मिलाकर चाटनेसे कण्ठगत विष दूर होता है। तगरका एक पल चूर्ण खांड और शहद मिला पीनेसे आमाशयगत विष दूर होता है॥

विषे पक्वाशयप्राप्ते पिप्पलीरजनीद्वयम् ।
मंजिष्ठा च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नरः पिबेत् ॥ १८३ ॥

पीपल, हल्दी, दारुहल्दी और मजीठ सबको समभाग लेकर गोपित्त अथवा गौके पुराने घीमें मिलाकर पीनेसे पक्वाशयमें प्राप्तहुआ विष शान्त होता है ॥ १८३ ॥

मांसं रक्तं च गोधायाः शुष्कं चूर्णीकृतं हितम् ।
विषे रसगते पानं कापित्थरससंयुतम् ॥ १८४ ॥

गोधा (गोह) का मांस और रक्त सुखाकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको कैथके रसमें मिलाकर पीनेसे रसगत विष दूर होता है ॥ १८४ ॥

शेलुमूलत्वगग्राणि बादरोदुम्बराणि च ।
कटभ्याश्च पिबेद्रक्तगते मांसगते पिबेत् ॥ १८५ ॥
सक्षौद्रं खदिरारिष्टं कौटजं मूलमम्भसा ।
सर्वेषु च बले द्वे तु मधूकं मधुकं नतम् ॥ १८६ ॥

लसोढेकी जडका छिलका, बेरकी कोंपल, गूलर और अपराजिताकी कोंपलें जलमें घोटकर पीनेसे रक्तगत विष शान्त होता है। शहद और खदिरारिष्ट मिलाकर पीनेसे अथवा कुडाकी जडकी छालको जलमें पीसकर पीनेसे मांसगत विष दूर होता है। बला, अतिबला और मुलैठी तथा तगरको जलमें मिलाकर पीनेसे सर्वधातुगत विष दूर होता है ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

पिप्पलीं नागरं क्षारं नवनीतेन मूर्च्छितम् ।
कफे भिषगुदीर्णे तु विदध्यात् प्रतिसारणम् ॥ १८७ ॥

पीपल, सोंठ और जवाखार मक्खनमें मिलाकर प्रतिसारण करनेसे विषमें कफका प्रकोप शान्त होता है ॥ १८७ ॥

विषोंके शोथनाशक योग।

मांसीकुंकुमपत्रत्वग्रजनीनतचन्दनैः ।
मनःशिलाव्याघ्रनखसुरसैरम्बुपेषितैः ॥ १८८ ॥
पाननस्याञ्जनालेपाः सर्वशोथविषापहाः ॥ १८९ ॥

जटामांसी, केशर, तेजपत्र, दालचीनी, हल्दी, तगर, चन्दन, मनसिल, व्याघ्रनखी और तुलसी इन सबको जलमें पीसकर पीना, नस्य लेना, अंजन करना और लेप करना सब प्रकारके विषोंकी सूजनको दूर करता है ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

सर्वविषनाशक योग।

चन्दनं तगरं कुष्ठं हरिद्रे द्वे त्वगेव च ।
मनःशिला तमालश्च रसः केशर एव च ।
शार्दूलस्य नखश्चैव सुपिष्टं तण्डुलाम्बुना ॥ १९० ॥
हन्ति सर्वविषाण्येव वज्रिवज्रमिवासुरान् ॥ १९१ ॥

लालचन्दन, तगर, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी और दालचीनी, मनसिल, तमालपत्र, बोल, नागकेशर और व्याघ्रनखी इन सबको तण्डुलजलमें पीसकर पीनेसे सब प्रकारके विष इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे इन्द्रके अमोघ वज्रसे दैत्य नष्ट होजाते हैं ॥ १९० ॥ १९१ ॥

सांपके विषनाशक योग।

रसे शिरीषपुष्पस्य सप्ताहं मरिचं सितम् ।
भावितं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने हितम् ॥
द्विपलं नतकुष्टाभ्यां घृतक्षौद्रचतुष्पलम् ।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत् सुखप्रदम् ॥ १९२ ॥

सिरसके फूलोंके रसमें सफेद मिर्चोंको घोटकर सात वार भावना देवे फिर इनका अंजन, नस्य और पानमें प्रयोग करनेसे सांपका विष दूर होता है। अथवा तगर एक पल, कूठ एक पल, घी और शहद चार पल इन सबको मिलाकर यदि तक्षकके काटे हुएको पिलादे तो उसका भी विष दूर होजाता है ॥ १९२ ॥

दर्वीकरसांपके काटेकी चिकित्सा यत्न।

सिन्धुवारस्य मूलञ्च श्वेता च गिरिकर्णिका ।
पानं दर्वीकरैर्दष्टे नस्यं मधु सपाकलम् ॥ १९३ ॥

संभालूकी जडका छिलका और सफेद अपराजिताकी जड इन दोनोंको जलके संयोगसे पीसकर पीवे तथा कूठ और शहद मिलाकर अंजन करे तो दर्वीकर सांपका विष दूर होता है ॥ १९३ ॥

मण्डलीसांपके काटेका यत्न।

मंजिष्ठा मधुयष्टयाह्वा जीवकर्षभकौ सिता।
काश्मर्य्यं वटशुङ्गानि पानं मण्डलिनां विषे ॥ १९४ ॥

मजीठ, मुलहठी, जीवक, ऋषभक, मिसरी, कुम्भेरका छिलका, बडका छिलका इन सबको पानीमें घोट शहद मिला पीनेसे मण्डली सांपका विष दूर होता है॥१९४

राजिमान्के काटेकी चिकित्सा।

व्योषं सातिविषं कुष्ठं गृहधूमो हरेणुका।
तगरं कटुका क्षौद्रं हन्ति राजीमतां विषम् ॥ १९५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, अतीस, कूठ, गृहधूम, रेणुका, कुटकी और तगरको पीस शहद मिला, पीनेसे राजिमान् सर्पोंका विष दूर होता है ॥ १९५ ॥

गृहधूमं हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम्।
अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधिघृताप्लुतम् ॥ १९६ ॥

गृहधूम, हलदी, दारुहलदी, चौलाईकी जड इन सबको दही और घृतमें मिलाकर पीनेसे वासुकी नागका काटाहुआ मनुष्य भी विषरहित होजाता है ॥ १९६ ॥

कीटकादि विषकी चिकित्सा।

क्षीरिवृक्षत्वगालेपः शुद्धे कीटविषापहः।
मुक्तालेपो वरः शोथदाहतोदज्वरापहः ॥ १९७ ॥

कीटादिकोंके काटेहुए मनुष्यको पहिले वमन विरेचन द्वारा शुद्ध करके दंशस्थानमें वड आदि क्षीरीवृक्षोंका लेप करनेसे कीटविष दूर होता है। तथा मोतियोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे कीटविषकी सूजन, दाह, तोद और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १९७ ॥

लूताविषनाशक योग।

चन्दनं पद्मकोशीरं पाटलिः सिन्धुवारिका।
क्षीरशुक्ला नतं कुष्ठं शिरीषोदीच्यशारिवाः ॥ १९८ ॥
शेलुस्वरसपिष्टोऽयं लूतानां सार्वकार्मिकः।
मधूकं मधुकं कुष्ठं शारिवोदीच्यपाटलैः।
सनिम्बशारिवाक्षौद्रं पानं लूताविषापहम् ॥ १९९ ॥

लालचंदन, पद्मकाष्ठ, खस, पाढ, सिरसका छिलका, संभालूकी जडका छिलका, क्षीरशुक्ला (विदारीकदं), तगर, कूठ, शारिवा, सुगंधवाला इन सबको लसोढेके रसमें पीस लेपन करनेसे तथा उद्वर्तन, सेचन आदिमें प्रयुक्त करनेसे लूता (मकडी) का विष दूर होता है। अथवा महुएके फूल, मुलैठी, कूठ, शारिवा, नेत्रवाला, पाढ, नीम और कृष्णशारिवा इन सबको शहद मिला पीनेसे लूताका विष दूर होता है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

कुसुम्भपुष्पगोदन्ती स्वर्णक्षीरी कपोतविट्।
दन्तीत्रिवृत्सैन्धवैलाकर्णिकापातनं तयोः ॥ २०० ॥

कुसुम्भेके फूल गोदन्ती हरताल (अथवा गोदंत), स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख), जंगली कबूतरकी बीट, दंती, निशोथ, सेंधानमक, इलायची, अपराजिता इन सबको बारीक पीसकर लेप करनेसे लूताविष और कीटविष दूर होता है ॥ २०० ॥

कटभ्यर्जुनशैरीषशैलुक्षीरिद्रुमत्वचम्।
कषायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥ २०१ ॥

कटभी, अर्जुन, सिरस, लसोढा और बड आदि क्षीरीवृक्षोंकी छालका क्वाथ, कल्क और चूर्ण कीट और लूताके विषजनित जखमोंको लेपन, सेचन, अवचूर्णन आदि करनेसे शीघ्र दूर करता है ॥ २०१ ॥

चूहेके विषका यत्न।

त्वचञ्च नागरञ्चैव समांशं श्लक्ष्णपेषितम्।
पेयमुष्णाम्बुना सर्वमूषिकाणां विषापहम् ॥ २०२ ॥

दालचीनी, सोंठ इन दोनोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको गरम जलके साथ पीनेसे सब प्रकारके मूषकोंके विष दूर होता है ॥ २०२ ॥

बिच्छू, कृकलास, मेंडक, मछली आदिकोंके विषनाशक योग।

कुटजस्य फलं पिष्टं तगरं जालमालिनी।
तिक्तेक्ष्वाकुकयोगोऽयं पानप्रधमनादिभिः ॥ २०३ ॥
वृश्चिकोन्दुरुलूतानां सर्पाणाञ्च विषापहम्।
समानममृतेनेदं गराजीर्णञ्च नाशयेत् ॥ २०४ ॥

इन्द्रयव, तगर, कडवी तोरी, वरुणवृक्षकी छाल, कडवी तुंबी इन सबको बारीक पीसकर पीने और नस्य लेनेसे तथा लेप करनेसे बिच्छू, लूता, मूषक और सर्पोंका

भी विष दूर होता है यह योग अमृतके समान गुणकारी है। इससे सर्पकी गरल और अजीर्णका भी विष दूर होता है ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

सर्वेऽगदा यथादोषं प्रयोज्याः स्युस्त्रिकण्टके ॥ २०५ ॥

सब प्रकार रोगीकी अवस्था आदि विचारकर ऊपर कही क्रियानुसार गिरगिटके विषकी भी चिकित्सा करना चाहिये ॥ २०५ ॥

कपोतविड् मातुलुङ्गं शिरीषकुसुमाद्रसः ।
शंखिन्यार्के पयः शुण्ठी करञ्जं मधु वार्श्चिके ।
शिरीषस्य फलं पिष्टं स्नुहीक्षीरेण दार्दुरे ॥ २०६ ॥

कबूतरकी बीट, बिजौरेका रस, सिरसके फूलोंका रस, शंखपुष्पी, आकका दूध, सोंठ और करंजुएके फल इन सबको समान भाग ले शहद मिलाकर लेप करे तो बिच्छूका विष दूर हो थोहरके दूधमें सिरसके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे मेंडकका विष दूर होता है ॥ २०६ ॥

मूलानि श्वेतभण्डीनां व्योषसर्पिश्च मत्स्यजे ।
कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम् ॥ २०७ ॥

श्वेत अपराजिताकी जड, सोंठ, मिर्च, पीपल इन सबको घृत मिलाकर लेप करनेसे और पीनेसे मछलीका विष दूर होता है। कीटोंके दंशमें जो क्रिया कह आये हैं वही जोंकके विष दूर करनेकेलिये करना चाहिये ॥ २०७ ॥

वातपित्तहरी प्रायः क्रिया प्रायः प्रशस्यते ।
वार्श्चिकस्योच्चिटिङ्गस्य कणभस्येन्दुरोऽगदः ॥ २०८ ॥

बिच्छू, उच्चिटिंग, कणभ, मूषकके विषपर प्रायः वातपित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ २०८ ॥

कीटादिविषनाशक अगद।

वचां वंशत्वचं पाठां नतं सुरसमञ्जरीम् ।
द्वे बले नाकुली कुष्टं शिरीषं रजनीद्वयम् ॥ २०९ ॥
गुहामतिगुहां श्वेतामजगन्धां शिलाजतु ।
कत्तृणं कटभीं क्षारं गृहधूमं मनःशिलाम् ॥ २१० ॥
रोहीतकस्य पित्तेन पिष्ट्वा तु परमोऽगदः ।
नस्याञ्जनाद्यलेपेषु हितो विश्वम्भरादिषु ॥ २११ ॥

वच, बांसका छिलका, पाटला, तगर, तुलसीकी मंजरी, बला, नागबला, नाकुली-कंद, कूठ, सिरसके बीज, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, श्वेतापराजिता, अजमोद, शिलाजीत, गन्धतृण, कटभी, जवाखार, गृहधूम और मनशिल इन सबको समभाग लेकर मछलीके पित्तेमें खरल करे। यह परमोत्तम अगद, नस्य, अंजन और लेपनमें प्रयुक्त करना चाहिये। इसके प्रयोगसे सब प्रकारके कीटादिकोंका विश्वम्भर आदि कीटोंका विष दूर होता है ॥ २०९-२११ ॥

कनखजूरेके विषका यत्न।

स्वर्जिकाजशकृत्क्षारः सुरसोऽथाक्षिपीडकः।

मदिरामण्डसंयुक्तो हितः शतपदीविषे ॥ २१२ ॥

सज्जीखार, बकरीकी मेंगनोंका खार, तुलसीके पत्र और शंखपुष्पी इनको सुरा-मण्डमें पीसकर दंशस्थानपर लेप करनेसे शतपदी (कनखजूरे) का विष नष्ट होजाता है ॥ २१२ ॥

छिपकलीविषनाशक योग।

कपित्थमक्षिपीडोऽर्कबीजं त्रिकटुकं तथा।

करञ्जो द्वे हरिद्रे च गलगोड्या विषं जयेत् ॥ २१३ ॥

कैथ, शंखिनी, आकके बीज, पीपल, मिरच, सोंठ, लताकरंजके फल, हल्दी, दारुहल्दी इन सबको पीसकर लेप करनेसे तथा अंजन करनेसे वा पीनेसे छिपकलीका विष दूर होता है ॥ २१३ ॥

काकाण्डरससंयुक्तो विषाणां तण्डुलीयकः।

सर्वेषां बर्हिपित्तेन तद्वद्वायसपीलुकः ॥ २१४ ॥

काली सेमका रस, कूठ और चौलाई इन सबको पीसकर पीना और लेपन करना परम विषनाशक योग तथा काकजंघा और पीलू मोरके पित्तमें मिला प्रयोग करना भी संपूर्ण विषोंको दूर करता है ॥ २१४ ॥

पञ्चशिरीषक अगद।

शिरीषफलमूलत्वक्पुष्पपत्रैः समैर्घृतैः।

श्रेष्ठः पञ्चशिरीषोऽयं विषाणां प्रवरो वधे ॥ २१५ ॥

सिरसकी छाल, मूल, पत्र, फूल और फल यह समान भाग लेकर घृतमें मिला लेपन और पान आदिमें प्रयोग करनेसे सब प्रकारके विष दूर होते हैं ॥ २१५ ॥

चतुष्पदोंके विषकी चिकित्सा।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदन्तक्षतं तु यत्।

शूयते पच्यते वापि स्रवते ज्वरयत्यापि ॥ २१६ ॥

चार पैरोंवाले और दो पैरोंवाले जीवोंके नख और दांतोंमें विष होता है। सो नख और दांतोंके विषसे काटेहुए स्थानमें सूजन, पाक, स्राव होता है तथा ज्वर भी होता है ॥ २१६ ॥

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपद्यपि।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥ २१७ ॥

सोमवल्कल (सफेद कत्था या करंजुआ), अश्वकर्ण (शालविशेष), गोभी, हंसपदी, हल्दी, दारुहल्दी और गेरू इन सबका लेप, नख और दांतके विषको दूर करता है ॥ २१७ ॥

शंकाजनित अज्ञातविषका यत्न।

दुरन्धकारे दष्टस्य केनचिद्विषशङ्कया।
विषोद्वेगाज्ज्वरच्छर्दिर्मूर्च्छा दाहोऽपि वा भवेत् ॥ २१८ ॥
ग्लानिर्मोहोऽतिसारो वाप्येतच्छङ्काविषं मतम्।
चिकित्सितमिदं तस्य कुर्य्यादाश्वासनं बुधः ॥ २१९ ॥
सितां विगन्धिकां द्राक्षां पयस्यां मधुकं मधु।
पानं समन्त्रपूताम्बु प्रोक्षणं सान्त्वहर्षणम् ॥ २२० ॥

कभी अन्धकारमें किसी चींटी आदिके काटनेसे अथवा कोई चीज चुभजानेसे मनुष्यके चित्तमें सांपके काटनेकी शंका उत्पन्न होजाती है। उस शंकासे ही ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह और अतीसारतक होजाते हैं। यह शंका ही एक प्रकारसे विषके रूपको धारण करलेती है; ऐसे समय वैद्यको उचित है कि, उस मनुष्यको धैर्य आदि देकर उसके चित्तके भयको दूर करदेवे। तथा खांड, हाउबेर, दाख, क्षीरकाकोली, मुलैठी और शहद मिलाकर पिलावे। मन्त्रोंयुक्त जलके छींटे देवे। तथा धीरज आदि देकर उसके चित्तको प्रसन्न करे ॥ २१८-२२० ॥

विषरोगमें पथ्य।

शालयः षष्टिकाश्चैव कोरदूषाः प्रियङ्गवः।
भोजनार्थे प्रशस्यन्ते लवणार्थे च सैन्धवम् ॥ २२१ ॥
तण्डुलीयकजीवन्तीवार्त्ताकुसुनिषण्णकाः।
चुञ्चुर्मण्डूकपर्णी च शाकश्च कुलकं हितम् ॥ २२२ ॥
धात्रीदाडिममम्लार्थे यूषा मुद्गहरेणुभिः।

रसाश्चैणशिखिश्वाविल्लावतैत्तिरिपार्षताः ॥ २२३ ॥

विषघ्नौषधसंयुक्ता रसा यूषाश्च संस्कृताः ।

अविदाहीनि चान्नानि विषार्त्तानां भिषग्जितम् ॥ २२४ ॥

सब प्रकारके विषविकारोंमें शालिचावल, शाठीचावल, कोद्रव, और कांगनी भोजनके लिये और नमकीन बनानेके लिये सेंधानमक तथा शाकके लिये चौलाई, जीवंती, बैंगन, चौपतियाशाक, अम्ललोनिया शाक, मण्डूकपर्णी, पटोल और नाडीशाक देने चाहिये । यूषके लिये मटर और मूंग हितकारी हैं, खटाईके लिये आँवले और अनार श्रेष्ठ हैं । तथा हिरन, लवा, तीतर तथा पार्वतहिरनका मांस विषनाशक औषधियोंसे सिद्ध कर मांसरस और यूषका प्रयोग करना चाहिये । और अविदाही अन्नपान देना विषरोगियोंके लिये हितकारक है ॥ २२१-२२४ ॥

विषरोगमें कुपथ्य ।

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुद्भयायासमैथुनम् ।

वर्जयेद्विषमुक्तोऽपि दिवास्वप्नं विशेषतः ॥ २२५ ॥

विरुद्ध भोजन, भोजन कियेपर फिर भोजन करना, क्रोध, भूखके वेगमें भोजन न करना, भय, परिश्रम, मैथुन और दिनमें सोना इन सबको विषरोगी विषसे मुक्त होनेपर भी त्यागदेवे ॥ २२५ ॥

चौपाये जीवोंके विषके लक्षण ।

मुहुर्मुहुः शिरोन्यासः शोथः स्रस्तौष्ठकर्णता ।

ज्वरस्तब्धाक्षिगात्रत्वं हनुकम्पोऽङ्गमर्दनम् ॥ २२६ ॥

रोमापगमनं ग्लानिररतिर्वेपथुर्ग्रहः ।

चतुष्पदां भवत्येतद्दष्टानामिह लक्षणम् ॥ २२७ ॥

चौपाये जीवोंके काटनेसे शिरका बार बार उठाना और फेंकना अथवा शिरका अवरोध होजाना, सूजन, होठोंका और कानोंका ढीलासा पडजाना या सूजनयुक्त होना, ज्वर, नेत्रोंका और अंगोंका टेढासा होजाना, अकडजाना, ठोडीका कांपना, अंगडाई, रोमोंका गिरना या रोमांच होना, ग्लानि, चित्तका स्थिर न होना, शरीरका काँपना और जकडसा जाना या कण्ठका रुकना यह लक्षण होते हैं ॥२२६॥२२७॥

उनकी चिकित्सा ।

देवदारु हरिद्रे द्वे सरलं चन्दनागुरु ।

रास्ना गोरोचना जाती गुग्गुल्विक्षुरसो नतम् ॥ २२८ ॥

चूर्णं ससैन्धववानन्तं गोपित्तमधुसंयुतम् ।
चतुष्पदानां दष्टानामगदः सार्वकार्मिकः ॥ २२९ ॥

देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, तुलसी, लालचंदन, अगर, रासना, गोरोचन, चमेलीके फूल, गूगुल, ईखका रस, तगर, सेंधानमक, शारिवा इनका चूर्ण गौके पुराने घृत (या गोपित्त) तथा शहदमें मिलाकर चाटनेसे तथा लेप आदि करनेसे चतुष्पद जानवरोंके काटेहुएका विष दूर होता है ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

गरविषके हेतु, लक्षण।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् ।
शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ २३० ॥
तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते ।
मर्मप्रधमनाध्मानहस्तपच्छोथलक्षणाः ॥ २३१ ॥
जठरं ग्रहणीदोषं यक्ष्माणं श्वयथुं क्षयम् ।
एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि दर्शयेत् ॥ २३२ ॥

अपने वशमें करनेके लिये स्त्री आदि अपने स्वामीको पसीना वा मासिक रज अथवा और अपने अंगोंसे उत्पन्नहुई मैलको खिलादेती है। अथवा किसी शत्रुआदिका भोजनमें मिलाकर दियाहुआ कालान्तरमें हानि करनेवाला विष गरविष कहाजाता है। इस गरविषसे ग्रसित मनुष्यके शरीरमें पाण्डु, कृशता, मंदाग्नि, ज्वर, हृदय आदि मर्मस्थानोंका फडकना, हाथपावोंमें सूजन, ग्रहणीरोग, उदररोग, यक्ष्मा और शोथरोग, क्षय तथा इसी प्रकारके अनेक लक्षणोंवाली व्याधियें उत्पन्न होती हैं ॥ २३०–२३२ ॥

स्वप्ने मार्जारगोमायुव्यालान् सनकुलान् कपीन् ।
प्रायः पश्यति नद्यादीञ्छुष्कांश्च सवनस्पतीन् ॥ २३३ ॥
कालश्च गौरमात्मानं स्वप्ने गौरश्च कालकम् ।
विकर्णनासिकं वापि पश्येत्तद्विहतेन्द्रियः ॥ २३४ ॥

गररोगीको स्वप्नमें बिलाव, गीदड, सांप, नकुल, बन्दर, सूखीहुई नदियें, सूखे वृक्ष, वनस्पति आदि दिखाई देते हैं तथा वह रोगी यदि गौरवर्णका हो तो अपनेको स्वप्नमें काला देखे और काला हो तो स्वप्नमें गौर देखे तथा कानोंसे हीन और नासिकारहित अपना शरीर उसको स्वप्नमें दिखाईदेवे तथा अन्य इन्द्रियें भी हत हुई दिखाई देवें अथवा इस गरविषके विकारसे ही उसकी इन्द्रियें हीन पडजांय २३३-२३४

गरविषकी चिकित्सा।

तमवेक्ष्य भिषक्प्राज्ञः पृच्छेत्किं कैः कदा सह।
जग्धमित्यवगम्याशु प्रदद्याद्वमनं भिषक् ॥ २३५ ॥
सूक्ष्मताम्ररजस्तस्मै सक्षौद्रं हृदि शोधनम्।
शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत् ॥ २३६ ॥
हेम सर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति।
हेमपस्य सजत्यङ्गे न हि पद्मेऽम्बुवद्विषम् ॥ २३७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य इस प्रकार गरदोषसे व्याकुल हुए मनुष्यको देखकर उस रोगीसे पूछे कि तुमने कब किसके साथ कैसे, क्या खाया है ? इत्यादि विषय भली भांति अनेक रीतिसे पूछकर रोगका यथोचित निश्चय करके जब जानलेवे कि इसने गरविष खाया है तो पहिले उसको तीक्ष्ण वमन करावे अथवा शहद और सूक्ष्म ताम्रचूर्ण (ताम्रभस्म) खिलाकर वमन करावे वमनद्वारा हृदय शुद्ध होजानेपर उसको तीन मासे सुवर्णका चूर्ण अथवा स्वर्णभस्म शहद और घृतमें मिलाकर चटावे सुवर्णके सेवन करनेसे मनुष्यके शरीरमें इस प्रकार विष नहीं ठहर सकता जिस प्रकार कमलके पत्तेपर जल नहीं ठहरसकता, सुवर्ण सब प्रकारके गरविषोंको शीघ्र नष्ट करदेता है ॥ २३५–२३७ ॥

नागदंती आदिघृत।

नागदन्तीत्रिवृद्दन्तीद्रवन्तीस्नुक्पयःफलैः।
साधितं माहिषं सर्पिः सगोमूत्राढकं हितम्।
सर्पकीटविषार्तानां गरार्त्तानाञ्च शान्तये ॥ २३८ ॥

नागदन्ती (हस्तिशुंडी), निशोथ, दंती, द्रवंती, थोहरका दूध और मैनफल इन सबको मिलाकर एक पाव लेवे भैंसका घृत एक सेर और गोमूत्र चार सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत सांप, कीडे आदिकोंके विषसे पीडित मनुष्योंको तथा गरविषवाले मनुष्योंको विषरहित कर देता है ॥ २३८ ॥

अमृत घृत।

शिरीषत्वक्त्रिकटुकत्रिफलाचन्दनोत्पले।
द्वे बले शारिवास्फोतासुरभीनिम्बपाटलाः ॥ २३९ ॥
बन्धुजीवाढकीमूर्वावासासुरसवत्सकान्।
पाठाङ्कोठाश्वगन्धार्कमूलषष्ट्याह्वपद्मकान् ॥ २४० ॥

विशालां बृहतीं लाक्षां कोविदारं शतावरीम् ।
कटभीदन्त्यपामार्गान् पृश्निपर्णीं रसाञ्जनम् ॥ २४१ ॥
श्वेतभण्डाश्वखुरकौ कुष्ठदारुप्रियंगुकान् ।
विदारी मधुकं सारं करञ्जस्य फलं वचाम् ॥ २४२ ॥
रजन्यौ लोध्रमक्षांशं पिष्ट्वा साध्यं घृताढकम् ।
तुल्याम्बु च्छागगोमूत्राढके तत्तु विषापहम् ॥ २४३ ॥
अपस्मारक्षयोन्मादभूतग्रहगरोदरम् ।
पाण्डुरोगान्क्रिमीन् गुल्मान् प्लीहोरुस्तम्भकामलाः ॥२४४॥
हनुस्कन्धग्रहादींश्च पानाभ्यञ्जननावनैः ।
हन्यात्सञ्जीवयेच्चापि विषोद्बन्धमृतान्नरान् ।
नाम्नेदममृतं सर्वविषाणां स्याद् घृतोत्तमम् ॥ २४५ ॥

सिरसकी छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, लालचंदन, नील-कमल, बला नागबला, शारिवा, श्वेतापराजिता, मुरा, नीम, पाटला, बन्धुजीव(दुपहरिया). अरहर, मूर्वा, वांसा, तुलसी, इन्द्रयव, पाढ, अंकोट, असगंध, आककी जड, मुलैठी, पद्मकाष्ठ, इन्द्रायणकी जड, बडी कटेली, लाख, कोविदार(लाल कचनार), शतावर, कटभी, दंती, अपामार्ग, पृष्ठपर्णी, रसौत, सफेद कोयल, नखनामक गंधद्रव्य, कूठ, देवदारु, प्रियंगु, विदारीकंद, महुआ, विजैसार, लताकरंजके फल, वच, हल्दी, दारुहल्दी, लोध इन सबको एक एक तोला लेवे इनका कल्क बनाकर घृत चार सेर, जल चार सेर, बकरीका मूत्र चार सेर, गोमूत्र चार सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। यह घृत पीने नस्यलेने अंजन और अभ्यंग आदिमें प्रयुक्त करना चाहिये । इसके सेवनसे सब प्रकारके विषविकार, क्षय, उन्माद, भूतबाधा, ग्रहदोष, उदररोग, पांडुरोग, कृमिरोग, गुल्म, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, कामला, हनुस्तम्भ और ग्रहादिविकार यह सब नष्ट होते हैं, विषके वेगसे मृतप्राय मनुष्यको भी यह आरोग्य करनेवाला है यह संपूर्ण विषोंको नष्ट करनेवाला अमृतनामक घृत है ॥ २३९-२४५ ॥

मनुष्यका रक्षार्थ आचार।

तत्र श्लोकाः—छत्री झर्झरपाणिश्च चरेद्रात्रौ तथा दिवा ।
तच्छायाशब्दवित्रस्ताः प्रणश्यन्त्याशु पन्नगाः ॥ २४६ ॥

यहां पर यह श्लोक हैं कि, मनुष्यको अपनी शारीरिक रक्षाके लिये रात्रि तथा दिन छत्री जूता आदि धारण किये रहना चाहिये। तथा झनझनाहट शब्दयुक्त छडी आदि हाथमें रखकर उससे खडका करतेहुए चलना चाहिये, उस छाया और शब्द आदिसे सांप आदि जानवर डरकर इधर उधर भागजाते हैं॥ २४६॥

दष्टमात्रं दशेदाशु तं सर्पं लोष्टमेव वा।
उपर्य्यरिष्टां बध्नीयाद्दंशं छिन्द्याद्दहेत्तथा॥ २४७॥

यदि मनुष्यको सांप काट लेवे तो उसी समय सांपको पकडकर अपने दांतोंसे काटलेना चाहिये। यदि सर्प काटकर चलागया हो तो वह डसाहुआ मनुष्य मट्टीके डले आदि किसी पदार्थको झटपट काट लेवे और कटेहुए स्थानके ऊपर और नीचे कसकर बंध लगाके दंशस्थानको चक्कू, छूरी आदिसे छेदन कर दंशको निकालदेवे तथा अग्नि आदिसे जलादेवे॥ २४७॥

वज्रं मरकतं सारं पिचुकी विषमूषिका।
कर्कोटकमणिः सर्पाद्वैदूर्य्यगजमौक्तिकम्॥ २४८॥
धार्य्यं गरमणिर्य्याश्च वरौषध्यो विषापहाः।
खगाश्च शारिकाक्रौञ्चशिखिहंसशुकादयः॥ २४९॥

हीरा, मरकत, सार, पिचुकी, विषमुष्टिका, कर्कोटक, सर्पमणि, वैडूर्य, गजमुक्ता आदि तथा इसी प्रकारके और भी उत्तम उत्तम विषनाशक द्रव्योंको तथा विषनाशक अगदोंको धारण किये रहना चाहिये। तथा मैना, क्रौंचपक्षी, मोर, हंस, तोता आदि पक्षी अपने घरमें रखने चाहिये॥ २४८॥२४९॥

अध्यायका उपसंहार।

इतीदमुक्तं द्विविधस्य विस्तरैर्बहुप्रकारं विषरोगभेषजम्।
अधीत्य विज्ञाय तथा प्रयोजयेद् व्रजेद्विषाणामविषह्यतां बुधः॥२५०॥

इति श्रीचर० चिकि० विषचिकित्सितं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार स्थावर और जंगम विषोंका विस्तारपूर्वक वर्णन, अनेक प्रकारकी विषरोगनाशक औषधियें वैद्यको पढकर भले प्रकार जानकर प्रयुक्त करनी चाहिये जो वैद्य इस प्रकार विधिवत् जानकर बुद्धिपूर्वक चिकित्सा करता है वह विषोंको जीतनेमें समर्थ होता है॥ २५०॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां विषचिकित्सितं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः।



अथातस्त्रिमर्मीयचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम त्रिमर्मीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

सप्तोत्तरं मर्मशतं यदुक्तं शरीरसंख्यामधिकृत्य तेभ्यः।
मर्माणि बस्तिं हृदयं शिरश्च प्रधानभूतानि वदन्ति तज्ज्ञाः॥ १॥
प्राणाशयान्तान् परिपीडयन्ति वातादयोऽसूनपि पीडयन्ति।
तत्संश्रितानामनुपालनार्थं महागदानां शृणु सौम्य रक्षाम्॥२॥

शारीरस्थानमें १०७ एकसौ सात मर्मोका कथन करआये हैं उन सब मर्मोंमें बस्ति, हृदय, शिर यह तीन मर्मस्थान आयुर्वेदके जाननेवालोंने प्रधान माने हैं। वातादि दोष इन तीन प्राणाशयोंको पीडितकर प्राणोंतकको नष्ट करदेते हैं। सो हे सौम्य ! उनकी रक्षाके लिये उन मर्मोंमें होनेवाले महारोगोंके निदान और चिकित्साको सुनो॥ १॥ २॥

उदावर्तकी संप्राप्ति, लक्षण और उपद्रव।

कषायतिक्तोषणरूक्षभोज्यैः सन्धारणाभोजनमैथुनैश्च।
पक्वाशये कुप्यति चेदपानः स्रोतांस्यधोगानि बली स रुद्ध्वा।
करोति विण्मारुतमूत्रसङ्गं क्रमादुदावर्त्तमतः सुघोरम्॥ ३॥

कषाय, तिक्त, चरपरे और रूक्ष पदार्थोंके अधिक सेवनसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, उपवास करनेसे, मैथुन करनेसे, जब अपानवायु पक्वाशयमें कुपित होती है तो वह बलवान् वायु अधोभागके स्रोतोंको रोकदेती है फिर क्रमसे मल, अधोवायु और मूत्रको रोककर घोर उदावर्तको उत्पन्न करदेती है॥ ३॥

रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्युदरेष्वभीक्ष्णं सपृष्ठपार्श्वेष्वतिदारुणा स्यात्॥ ४॥
आध्मानहृल्लासविकर्त्तिकाश्च तोदोऽविपाकश्च सबस्तिशोथः।

---

१ अधोगमनशील वायुकी गति चक्कर खाकर ऊपरकी ओरको गमन करे उसको उदावर्त कहते हैं मल मूत्रादिको लानेवाली वायुका ऊर्ध्वगमन होनेसे यह मलादिभी अपने मार्गसे नहीं निकल सकते।

वर्चोऽप्रवृत्तिर्जठरे च गण्डान्यूर्द्ध्वञ्च वायुर्विहतो गुदे स्यात् ॥ ५ ॥
कृच्छ्रेण शुक्रस्य चिरात्प्रवृत्तिः स्याद्वा तनुः स्यात्खररूक्षशीता ।
ततश्च रोगा ज्वरमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः ॥ ६ ॥
वम्यान्ध्यबाधिर्य्यशिरोऽभितापवातोदराष्ठीलमनोविकाराः ।
तृष्णास्रपित्तारुचिगुल्मकासश्वासप्रतिश्यायार्दितपार्श्वरोगाः ॥ ७ ॥
अन्ये च रोगा बहवोऽनिलोत्था भवन्त्युदावर्त्तकृताः सुघोराः ।
चिकित्सितञ्चास्य यथावदूर्द्ध्वं प्रवक्ष्यते तच्छृणु चाग्निवेश ॥ ८ ॥

उससे वस्ति, हृदय, कुक्षि और उदरमें तथा पीठ और दोनों पार्श्वोंमें निरन्तर दारुण पीडाका होना, अफारा, हृल्लास, कतरनेकीसी पीडा,तोद, अन्नका परिपाक न होना, वस्तिमें सूजन, विष्ठा न आना, पेटमें गाठेंसी चुभना, अधोवायुका बंद होकर ऊपरकी ओर चलना, यदि मलत्याग करनेके लिये बडी देरतक जोर लगायाजाय तो कष्टके साथ वीर्य निकलने लगे परन्तु विष्ठा न आवे, यदि विष्ठा उतरे भी तो बहुत थोडी कठोर रूखी और शीतल हो इस प्रकार उदावर्त्तके होनेसे ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, हृद्रोग, ग्रहणीविकार, वमन, आंखोंके आगे अन्धकार होना, बधिरता, शिरमें पीडा, वातोदर, वातष्ठीला, मनके विकार, प्यास, रक्तपित्त, अरुचि, गुल्म, खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, अर्दितरोग और पार्श्वरोग तथा इनके सिवाय अन्य बहुतसे वातजनित घोर रोग उदावर्त्तसे उत्पन्न होते हैं। (उदावर्त प्रायः वेगोंको रोकनेसे होनेवाले रोगका नाम है अर्थात् वेगोंको रोकनेसे वायुका प्रतिघात होकर वह अपने मार्गसे रुकजाय तथा उलटा होकर ऊपरको गमन करनेलगे उसको उदावर्त्त कहते हैं। वह उदावर्त्त मल, मूत्र, वीर्य, वायु, छींक आदि जितने वेग हैं उन सबके रोकनेसे उन्हीं २ प्रकारके होते हैं।) अब इसके उपरांत इस उदावर्त्त रोगकी चिकित्साका वर्णन करते हैं। हे अग्निवेश ! इसका यथावत श्रवण करो ॥ ४-८ ॥

उदावर्तकी चिकित्सा।

तं तैलशीतज्वरनाशनोक्तं स्वेदैर्यथोक्तैः प्रविलीनदोषम् ।
उपाचरेद्वर्त्तिनिरूहवस्तिस्नेहैर्विरेकैरनुलोमनान्नैः ॥ ९ ॥

उदावर्त्त रोगमें पहिले शीतज्वरनाशक तेलोंकी मालिश कर यथोचित रीतिसे स्वेदन करना चाहिये। जब देखे कि दोष लीन होनेलगे तो बत्ती, निरूहणवस्ति, स्नेह और अनुलोमन अन्नोंद्वारा मलका अनुलोमन कर विरेचन करावे ॥ ९ ॥

उदावर्तनाशक वर्त्तिप्रयोग।

श्यामात्रिवृन्मागधिकाग्निचूर्णं गोमूत्रपिष्टं दशभागमाषम् ।

सनीलिकां द्विर्लवणां गुडेन वर्त्तिं कराङ्गुष्ठनिभां विदध्यात् ॥ १० ॥

काली निशोथ, पीपल, चित्रक और नीलिका, प्रत्येक दश दश माशे लेवे। सेंधानमक २० माशे इन सबको गोमूत्रके संयोगसे पीसकर गुड मिला अंगूठेके बराबर और लम्बी बत्ती बनावे। इस बत्तीको विरेचन घृतमें भिगोकर अथवा अण्डीके तेलमें भिगोकर गुदामें प्रवेश करना चाहिये ॥ १० ॥

पिण्याकसौवर्च्चलहिंगुभिर्वा सस्तर्षपत्र्यूषणयावशूकैः।
क्रिमिघ्नकम्पिल्लकशंखिनीभिः सुधार्कजक्षीरगुडैर्युताभिः ॥ ११ ॥

तिलोंका कल्क, संचरनमक, हींग, सफेद सरसों, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार इनकी बत्ती उपरोक्त विधिसे बनाकर प्रयुक्त करे। अथवा वायविडंग, कमीला, शंखिनी, थोहरका दूध, आकका दूध और गुड मिलाकर बत्ती बनावे फिर उसे एरण्डके तेलमें भिगोकर गुदामें डाले फिर थोडी देरके बाद निकाललें ॥ ११ ॥

स्यात्पिप्पलीसर्षपराठवेश्मधूमैः सगोमूत्रगुडैश्च वर्त्तिः ॥ १२ ॥

पीपल, सफेद सरसों, गृहधूम, गोमूत्र और गुडसे उपरोक्त रीतिपर बत्ती बना प्रयोग करनेसे उदावर्त्त दूर होता है ॥ १२ ॥

उदावर्तनाशकचूर्णप्रधमनयोग।

श्यामाफलेक्ष्वाकुसपिप्पलीकं नाड्याथवा तत्प्रधमेत्तु चूर्णम्।
रक्षोघ्नतुम्बीकरहाटकृष्णाचूर्णं सजीमूतकसैन्धवं वा।
स्निग्धे गुदे तान्यनुलोमयन्ति नरस्य वर्चोऽनिलमूत्रसङ्गम् ॥ १३॥

अथवा काली निशोथ, मैनफल, कडुवे तुंबेका गुद्दा और पीपल इन सबका चूर्ण बना नलमें रखकर वह नल गुदामें डालकर बाहरसे धोंकनीद्वारा वा जोरसे फूंक मारकर नलके भीतरका चूर्ण गुदामें पहुंचाकर नलको निकाल लेवे। अथवा सरसों, कडवी तुंबी, मैनफल, पीपल, कडवी तोरी और सेंधानमक इन सबका बारीक चूर्ण कर इसी विधिसे गुदामें प्रधमन करे परन्तु जब बत्ती अथवा चूर्णका प्रवेश करना हो तो पहिले गुदाको घृत अथवा एरण्डके तैलसे चुपडलेना चाहिये। पीछे बत्ती अथवा चूर्णका प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करनेसे मल, वायु और मूत्रका बन्ध खुलजाता है ॥ १३ ॥

तेषां विघाते तु भिषग्विदध्यात् स्वभ्यक्तसुस्विन्नतनोर्निरूहम्।
ऊर्द्धानुलोमौषधमूत्रतैलक्षाराम्लवातघ्नयुतं सुतीक्ष्णम् ॥ १४ ॥

यदि बत्ती और चूर्णसे रोगीका बन्ध खुलकर मलादिकोंकी यथोचित प्रवृत्ति न हो तो वैद्य रोगीको अच्छी तरह स्निग्ध, अभ्यक्त और स्वेदन करके निरूहण बस्तिका

प्रयोग करे । यह निरूहण बस्ति तीक्ष्ण, उर्ध्वानुलोमनद्रव्य, गोमूत्र, तेल, जवाखार, खटाई और वातनाशक द्रव्योंसे प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १४ ॥

वातेऽधिकेऽम्लं लवणं सतैलं क्षीरेण पित्ते तु कफे समूत्रम् ।
समूत्रवर्चोऽनिलसंगमाशु गुदं शिराश्च प्रगुणीकरोति ॥ १५ ॥

यदि उदावर्त वायुकी अधिकता प्रतीत हो तो अम्ल,लवण और तेलकी अधिकतायुक्त निरूहणवास्ति करना चाहिये । यदि पित्तकी प्रधानता हो तो दूध पिलाकर निरूहण करना चाहिये । और कफकी अधिकतामें गोमूत्र मिलाकर निरूहणकर्म करे । इस प्रकार निरूहण करनेसे गुदाकी विगुणता दूर होकर मल, मूत्र और वायुका बन्ध शीघ्र दूर होजाता है । तथा शिरा और मलद्वारा शुद्ध और विगुणता रहित होजाता है ॥ १५ ॥

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकं ग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् ।
अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात् प्रसन्ना गुडशीधुपायी ॥ १६ ॥

निशोथ और थोहरके पत्ते और तिल आदिका शाक तथा ग्राम्य और जलज जीवोंका मांसरस और यवोंका अन्न तथा अन्य मलमूत्रके निकालनेवाले और वायुको स्वच्छ करनेवाले अन्न पान, प्रसन्ना और गुडकी शीधु पीना हितकारी होता है१६॥

भूयोऽनुबन्धे तु भवेद्विरेच्यो मूत्रप्रसन्नादधिमण्डयुक्तैः ।
स्वस्थन्तु पश्चादनुवासयेत्तं रौक्ष्याद्विसङ्गोऽनिलवर्चसोश्चेत् ॥ १७ ॥

यदि इस प्रकार उपाय करनेसे एक वार आराम होकर दूसरी वार फिर बंध पडजावे तो गोमूत्र, प्रसन्ना और दधिमण्डके योगसे विरेचनद्रव्य पिलाकर विरेचन करावे । फिर स्वास्थ्य होनेपर यदि रूक्षतासे वायु और मलका बंध प्रतीत हो तों अनुवासन करावे ॥ १७ ॥

उदावर्तनाशक चूर्ण ।

द्विरुत्तरं हिङ्गु वचाग्निकुष्ठं सुवर्चिका चैव विडङ्गचूर्णम् ।
सुखाम्बुनानाहविसूचिकार्तिहृद्रोगगुल्मोर्द्ध्वसमीरणघ्नम् ॥ १८ ॥

हींग, वच, चित्रक, कूठ, जवाखार और वायविडंग यह क्रमसे एक दूसरेसे दुगुनें लेना चाहिये । जैसे हींग एक तोला, वच दो तोला, चित्रक ४ तोला, कूठ आठ तोला, जवाखार १६ तोला और वायविडंग ३२ तोला इन सबको बारीक पीसकर सुखोष्ण जलके साथ लेवे तो विसूचिकाकी पीडा, हृद्रोग, गुल्म और ऊर्ध्ववातकी शान्ति होती है ॥ १८ ॥

वचाभयाचित्रकयावशूकान् सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान् ।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान् पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी ॥ १९ ॥

वच, हरड, चित्रक, जवाखार, पीपल, अतीश और कूठ इन सबको बारीक पीसकर गरम जलके साथ लेनेसे अफारा, विमूढवात (उदावर्त्त) यह दूर होते हैं। इस औषधके सेवन करते हुए मांसरस और यवोंका ओदन (अथवा शालीचावलोंका भात) सेवन करना चाहिये ॥ १९ ॥

हिंगूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।
यथोत्तरं भागविवृद्धमेतत्प्लीहोदराजीर्णविसूचिकासु ॥ २० ॥

हींग एक भाग, वच दो भाग, विडनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरड ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग, कूठ ८ भाग इन सबका चूर्ण बना गरम जल अथवा प्रसन्नाके साथ सेवन करनेसे प्लीहरोग, उदररोग, अजीर्ण और विसूचिका दूर होती है ॥ २० ॥

उदावर्तनाशक घृत ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः श्यामाकपूतीककरञ्जयोश्च ।
सिद्धः कषाये द्विपलांशिकानां प्रस्थो घृतात्स्यात् प्रतिरुद्धवाते ॥ २१ ॥

शालपर्ण्यादि पंचमूल, पुनर्नवा, श्यामाक (सौंक) और पूतिकरंज इन सबको दोदो पल लेकर क्वाथ बनावे । इनके क्वाथसे एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे । इस घृतके सेवन करनेसे उदावर्त्त रोग दूर होता है ॥ २१ ॥

उदावर्तनाशक क्षार ।

फलञ्च मूलञ्च विरेचनोक्तं हिंग्वर्कमूलं दशमूलमग्र्यम् ।
स्नुक्चित्रकौ चैव पुनर्नवा च तुल्यानि सर्वैर्लवणानि पञ्च ॥ २२ ॥
स्नेहैः समूत्रैः सह जर्जराणि शरावसन्धौ विपचेत्सुलिप्ते ।
पक्वं सुपिष्टं लवणं तदन्नैः पानैस्तथानाहरुजाघ्नमद्यात् ॥ २३ ॥

विरेचनवर्गमें कहे हुए सब प्रकारके फल और मूल, हींग, आक, दशमूल, चित्ता, थोहर, पुनर्नवा इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे । सबके समान पांचों नमकोंका चूर्ण मिलावे । फिर सब प्रकारके स्नेह और सब प्रकारके मूत्र मिलाकर उपरोक्त चूर्णको संपुटमें रख संपुटकी संधियोंको भले प्रकार बन्द करके कपडमट्टी कर गजपुटमें फूंक देवे । शीतल होनेपर संपुटमेंसे द्रव्यको निकालकर पीस लेवे । इस लवण (क्षार) को अन्नपानके साथ सेवन करनेसे अफारा और पेटकी पीडा दूर होती है ॥ २२ ॥ २३ ॥

वमनद्वारा जीतनेयोग्य रोग।

हृत्स्तम्भमूर्द्धामयगौरवार्त्ते चोद्गारसङ्गेन सपीनसेन।
आनाहमामप्रभवं जयेत्तु प्रच्छर्दनैर्लङ्घनपाचनैश्च ॥ २४ ॥

हृदयका स्तम्भन होना, मस्तकका भारीपन और मस्तकपीडा, डकार आते २ रुकजाना, पीनस तथा अफारा और आमसे उत्पन्न हुए रोगोंको वमन तथा लंघनों द्वारा जीतना चाहिये ॥ २४ ॥

एरंडतैलद्वारा विरेच्य रोग।

गुल्मोदरब्रध्नार्शःप्लीहोदावर्त्तयोनिशुक्रगदे।
मेदःकफसंसृष्टे मारुतरक्तेऽवगाढे च ॥ २५ ॥
गृध्रसिपक्षवधादिषु विरेचनार्हेषु वातरोगेषु।
वाते विबद्धमार्गे मेदःकफपित्तरक्तेन ॥ २६ ॥
पयसा मांसरसैर्वा त्रिफलारसयूषमूत्रमदिराभिः।
दोषानुबन्धयोगात्प्रशस्तमेरण्डजं तैलम् ॥ २७ ॥
तद्वातनुत्स्वभावात् संयोगवशाद्विरेचनाच्च जयेत्।
मेदोऽसृक्पित्तकफान्मिश्रानिलरोगाजित् स्यात् ॥ २८ ॥

गुल्म, उदररोग, ब्रध्न (बध), बवासीर, प्लीहा, उदावर्त, योनिरोग, शुक्रविकार, मेद अथवा कफयुक्त वातरक्त, गंभीर वातरक्त, गृध्रसी, पक्षाघात आदि विरेचन योग्य वातरोगोंमें और मेद, कफ तथा पित्त रक्तद्वारा विबद्धवातमें दोषोंका अनुबन्ध विचारकर दूध अथवा मांसरस या त्रिफलेके क्वाथ अथवा अन्य रस और यूष वा गोमूत्रके साथ एरण्ड तैल मिलाकर पिलाना अर्थात् उपरोक्त दूध आदि अनुपानोंमें एरण्ड तैल पिलाकर विरेचन कराना हितकारक होता है। क्योंकि एरण्ड तैल स्वभावसेही वातनाशक है वह संयोगवश विरेचनद्वारा मेद, रक्तपित्त और कफसे मिश्रित वातरोगोंको जीतलेता है ॥ २५–२८ ॥

बलकोष्ठव्याधिवशादापञ्चपला भवेन्मात्रा।
मृदुकोष्ठबलानां सह भोज्यं तत्प्रयोज्यं स्यात् ॥ २९ ॥

शरीरबल, कोष्ठबल, व्याधि आदि विचारकर एरण्डतैलकी मात्रा पांच पलतक होसकती है। मृदुकोष्ठ और दुर्बल मनुष्योंको एरण्डतैल भोजनमें मिलाकर और अल्प मात्रासे देना चाहिये ॥ २९ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम्।

मूत्रकृच्छ्रके हेतु।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात्।
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात् स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ॥ ३०॥

अत्यन्त व्यायाम करनेसे, तीक्ष्ण औषध, रूक्ष, मद्य, अति स्त्रीसंग और नित्य अत्यंत वेगवाले घोडे आदिकी सवारी करना तथा आनूपजीवोंका और मछलीका मांस अधिक सेवन करना। फिर भोजन करना और अजीर्णसे मनुष्योंके शरीरमें आठ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होते हैं॥ ३०॥

मूत्रकृच्छ्रकी सम्प्राप्ति।

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य वस्तौ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात्॥ ३१॥

अपने २ कारणोंसे कुपितहुए वातादि दोष पृथक् पृथक् अथवा सब मिलकर वस्तिमें प्राप्त हों जब मूत्रमार्गको पीडन करते हैं तब मनुष्य अत्यन्त कष्टके साथ मूतता है॥ ३१॥

तीव्रा हि रुग्वङ्क्षणवस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात्।
पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात्॥ ३२॥

वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें—वंक्षण, वस्ति और लिंगमें तीव्र पीडा होकर थोडा २ मूत्र बार बार आता है। पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें—पीला, लाल मूत्र अत्यन्त पीडा और दाहके साथ कष्टसे बारबार थोडा २ आता है॥ ३२॥

वस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे।
सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं तु कृच्छ्रम्॥ ३३॥

वस्ति और लिंगमें भारीपन तथा सूजन हो, मूत्र गाढा और सफेद, चिकना कठिनतासे उतरे यह कफजनित मूत्रकृच्छ्रके लक्षण हैं। तीनों दोषोंके संपूर्ण लक्षण जिस मूत्रकृच्छ्रमें हों उसको सन्निपातका मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये॥ ३३॥

अश्मरीका निदान।

विशोषयेद्वस्तिगतं तु शुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा।
यदा तदाश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः॥ ३४॥

---

१ वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मलाभिघातज, अश्मरीजनित, शुक्राभिघातज और शर्कराजनित यह आठ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होते हैं।

किसी कारणसे वस्तिमें प्राप्त हुए वीर्य और मूत्रको वायु सुखादे तो उस वीर्य और मूत्रसे पथरी उत्पन्न होजाती है। फिर वह क्रमसे बढने लगती है अथवा कफ और पित्तको वस्तिस्थानमें वायु सुखादेवे तो भी पथरी उत्पन्न होजाती है। यह पथरी गोरोचनके समान होती है ॥ ३४ ॥

अश्मरीजनित मूत्रकृच्छ्र।

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या श्लक्ष्णा त्रिपुटचप्यथवापि मृद्वी।

मूत्रस्य चेन्मार्गमुपैति रुद्ध्वा मूत्रं रुजं तस्य करोति वस्तौ ॥ ३५ ॥

ससीवनीमेहनवस्तिशूलं विशीर्णधारञ्च करोति मूत्रम्।

मृद्नाति मेढ्रं स तु वेदनार्तो मुहुः शकृन्मुञ्चति मेहते च ॥ ३६ ॥

क्षोभात्क्षते मूत्रयतीह सासृक्तस्याः सुखं मेहति च व्यपायात्।

एषाश्मरी मारुतभिन्नमूर्तिः स्याच्छर्करा मूत्रपथात् क्षरन्ती ॥ ३७ ॥

पथरी (अश्मरी) कदंबके फूलके समान अथवा पत्थरके समान या चिकनी घुटी हुई अथवा तिकोनी या मृदु तथा अनेक प्रकारकी होती है। जब पथरी मूत्र-मार्गके द्वारपर आजाती है तो मूत्रको रोककर वस्तिमें अत्यंत पीडा करती है तथा सीवन, लिंग और वस्तिमें विदीर्ण होनेके समान अत्यंत शूल होने लगता है। मूत्रकी धार टूट टूटकर आती है रोगी मारे पीडाके वारवार लिंगेन्द्रियको दबाता है और वारवार मल और मूत्रका त्याग करता है उस समय मूत्रके अत्यंत क्षोभ होनेसे पथरीद्वारा जखम होकर मूत्रमें रक्त आने लगता है, जब पथरी निकलजाय अथवा मूत्रमार्गसे हटजाय तो मूत्र सुखपूर्वक आने लगता है। यह पथरी वायुसे भेदन होकर रेतके समान मूत्रद्वारसे खरने लगती है ॥ ३५-३७ ॥

शुक्राभिघातज मूत्रकृच्छ्र।

रेतोऽभिघाताभिहतस्य पुंसः प्रवर्त्तयेत्तस्य तु मूत्रकृच्छ्रम्।

स्याद्वेदनावंक्षणवस्तिमेढ्रे तस्यातिशूले वृषणातिवृत्ते ॥ ३८ ॥

शुक्रेण संरुद्धगतिः प्रवाहो मूत्रं सकृच्छ्रेण विमुञ्चतीह।

तमण्डयोः स्तब्धमिति ब्रुवन्ति रेतोऽभिघाते प्रवदन्ति कृच्छ्रम् ॥ ३९ ॥

शुक्रके अभिघातसे मूत्रकृच्छ्र केवल पुरुषोंको ही होता है। बालक और स्त्रियोंको नहीं होता। शुक्राभिघातजनित मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण, वस्ति, लिंगेन्द्रिय और वृषणोंमें अत्यंत शूल तथा पीडा होने लगती है और मूत्रका मार्ग शुक्रसे रुकाहुआ होनेसे मूत्रका प्रवाह रुकरुककर और कष्टके साथ थोडा थोडा मूत्र उतरता है, और अण्ड-कोशोंको स्तब्ध कर देता है उसको शुक्राभिघातजनित मूत्रकृच्छ्र कहते हैं॥ ३८॥ ३९॥

शुक्रं मलाश्चैव पृथक्पृथग्वा मूत्राशयस्थाः प्रतिवारयन्ति ।
तद्व्याहतं मेहनवस्तिशूलं मूत्रं सशुक्रं हि करोति बद्धम् ।
स्तब्धश्च शूनो भृशवेदनश्च तुदेत वस्तिर्वृषणौ च तस्य ॥ ४० ॥

जब वातादि दोष पृथक पृथक अथवा सब मिलकर मूत्राशयमें स्थित होकर शुक्रको रोक देते हैं तो उसके रुकनेसे लिंगेन्द्रिय और वस्तिमें शूल उत्पन्न कर वीर्यके साथ ही मूत्रको भी रोकदेते हैं । उससे वस्ति और वृषणोंमें स्तब्धता, सूजन, अत्यंत पीडा सूई चुभनेकासा तोद होने लगता है ॥ ४० ॥

क्षतज मूत्रकृच्छ्र ।

क्षताभिघातात्क्षतजं क्षयाद्वा प्रकोपितं वस्तिगतं विबद्धम् ॥ ४१ ॥
तीव्रार्त्तिमूत्रेण सहाश्मरीत्वमायाति तस्मिन्नातिसञ्चिते च ।
आध्मातताां विन्दति गौरवञ्च वस्तेर्लघुत्वञ्च विनिःसृतेऽस्मिन् ॥ ४२ ॥

किसी प्रकारके क्षत (उपदंश आदि) से अथवा चोट आदि लगनेसे वा रस आदि धातुक्षय होनेसे क्षतज रक्तादि कुपित होकर वस्तिमें प्राप्त हो बद्ध होजाते हैं तब पथरीके समान कठोरपनको प्राप्त हो मूत्र आनेके समय मूत्रसे मिलकर भारी पीडाको करते हैं । यदि क्षतज दोष अति संचित होजायँ तो वस्तिमें अफारा और भारीपनको करते हैं । दोष (क्षतज दोषकी बनीहुई ग्रंथी) के निकल जानेसे वस्ति हल्की होजाती है । यह क्षतज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

वातज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्नेहोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान् युञ्ज्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ ४३ ॥

वायुके मूत्रकृच्छ्रमें अभ्यंग, स्नेहवस्ति, निरूहणवस्ति, स्नेहयुक्त उपनाह, स्वेद, उत्तरवस्ति, वातनाशक क्वाथोंका परिषेचन, शालपर्णी आदि वातनाशक सिद्ध किये मांसरसोंका प्रयोग करे ॥ ४३ ॥

पुनर्नवैरण्डशतावरीभिः पत्तूरवृश्चीरबलाश्मभिद्भिः ।
द्विपञ्चमूलेन कुलत्थकोलयवैश्च तोयोत्क्वथिते कषाये ॥४४॥
तैलं वराहर्क्षवसा घृतञ्च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च साध्यम् ।
तन्मात्रयाशु प्रतिहन्ति पीतं शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४५ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी जडका छिलका, शतावर, शालिश्च शाक, सफेद पुनर्नवा, बला, पाषाणभेद, दशमूल, कुल्थी बेर और यव इन सबके कल्क और क्वाथ तथा पांचों

नमक मिलाकर सिद्ध किये तेल सूअरकी चर्बी, रीछकी चर्बी और घृतकी उचित मात्रा सेवन करनेसे वातजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

एतानि चान्यानि वरौषधानि सर्वाणि शस्तान्यपि चोपनाहे ।
स्युर्लाभतस्तैलफलानि चैव स्नेहाम्लयुक्तानि सुखोष्णवन्ति ॥ ४६ ॥

यह उपरोक्त सिद्ध कियेहुए तैल चर्बी आदि तथा अन्यान्य वातनाशक उत्तम द्रव्योंसे उपनाह करना वा तेल, फल, स्नेह, खटाईमें मिलाकर वातनाशक द्रव्योंकों गर्म कर उससे उपनाह स्वेद करना वातजनित मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है ॥ ४६ ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्बस्तिपयोविरेकाः ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्य्याः ॥ ४७ ॥

पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें—शीतलद्रव्योंसे सेचन, शीतल लेपन, शीतल अवगाहन तथा ग्रीष्मऋतुमें करनेयोग्य शीतलविधि, दूधयुक्त वस्तिकर्म, शीतल विरेचन अथवा दाख, विदारीकन्द और ईखके रसमें घृत और दूध मिलाकर अथवा इन्हींसे सिद्ध किये घृत और दूध वस्ति और विरेचन कर्ममें प्रयोग करने चाहिये ॥ ४७ ॥

शतावरीकाशकुशाश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकसेरुकाणाम् ।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्री ॥ ४८ ॥

शतावर, कांसकी जड, कुशाकी जड, गोखरू, विदारीकन्द, शालीधान्यकी जड, ईखकी जड और कसेरू इन सबका क्वाथ बना शीतल कर शहद और मिसरी मिला पीवे तो पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र दूर हो ॥ ४८ ॥

पिबेत्कषायं कमलोत्पलानां शृंगाटकानामथवा विदार्य्याः ।
दण्डोत्पलानामथवापि मूलं पूर्वेण कल्पेन तथा सुशीतम् ॥ ४९ ॥

नीलकमल, लालकमल अथवा सिंघाडे या विदारीकन्द वा दण्डोत्पलकी जडका क्वाथ शीतल कर शहत और मिसरी मिला पिलावे अथवा इनका शीतकषाय बना पिलावे ॥ ४९ ॥

एर्वारुबीजं त्रपुषात्कुसुम्भात्सकुंकुमः स्याद् वृषकश्च पेयः ।
द्राक्षारसेनाश्म रशर्करासु सर्वेषु कृच्छ्रेषु प्रशस्त एषः ॥ ५० ॥

ककडीके बीज, खीरेके बीज, कुसुंभेके बीज, केशर, (अथवा कुंगुबूटी) और बांसा इन सबका द्राक्षाके रसमें शर्बत बना मिसरी मिलाकर पीवे तो सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं। और पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें विशेषरूपसे हित हैं ॥ ५० ॥

एर्वारुबीजं मधुकं सदार्वि पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन।
दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकां पित्तकृते तु कृच्छ्रे ॥ ५१ ॥

ककडीके बीज, मुलैठी और दारुहल्दीके कल्कको तण्डुलजलमें घोलकर पीवे तो पित्तका मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। अथवा दारुहल्दी, आँवलेका रस और शहद मिलाकर पीवे तो पित्तका मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ५१ ॥

कफजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः।
तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५२ ॥

कफजनित मूत्रकृच्छ्रमें क्षार, उष्ण और तीक्ष्ण औषधी तथा उष्ण तीक्ष्ण अन्न-पान, स्वेदन, यवान्न, वमन और निरूहण तथा तक्रप्रयोग एवं तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तैल, अभ्यंग और पानमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ५२ ॥

व्योषं श्वदंष्ट्रा त्रुटिसारसास्थि कोलप्रमाणं मधु मूत्रयुक्तम्।
पिबेत्त्रुटिं क्षौद्रयुतां कदल्या रसेन कैटर्य्यरसेन वापि ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टे इन सबका चूर्ण एक तोला लेकर शहदमें मिला पिलावे। अथवा छोटी इलायची और केलेके जडका रस शहद मिला पिलावे या केवटीमोथेकी जडका स्वरस शहद और छोटी इलायची मिला पिलावे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ५३ ॥

तक्रेण युक्तं शितिसारकस्य बीजं पिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः।
पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५४ ॥

अथवा तेंदूके बीजोंको छांछके साथ पीवे वा तण्डुलजलके साथ प्रवालभस्मका सेवन करे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ५४ ॥

सप्तच्छदारग्वधकेबुकैला धवं करञ्जं कुटजं गुडूचीम्।
पक्त्वा जले तेन पिबेद्यवागूं सिद्धं कषायं मधुसंयुतं वा ॥ ५५ ॥

अथवा सप्तपर्ण, अमलतासका गूदा, छोटी इलायची, केबुक (केबुआवृक्ष), धव, करंज, कुडाकी छाल और गिलोय इसके जलमें सिद्ध कीहुई यवागू वा इनके क्वाथको शहद मिला पीनेसे कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ५५ ॥

सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे तु वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्य्यम्।
त्रिभ्योधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु बस्तिः ॥ ५६ ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें वायुका पूर्वापर विचार कर क्रमानुसार तीनों दोषोंकी मिलीजुली चिकित्सा करनी चाहिये। यदि वातादि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये और पित्तकी अधिकता हो तो प्रथम विरेचन कराना चाहिये और वायुकी अधिकतामें वस्तिकर्म कराना चाहिये ॥ ५६ ॥

अश्मरी (पथरी) की चिकित्सा।

क्रिया हिता त्वश्मरिशर्कराभ्यां कृच्छ्रे यथैवेह कफानिलाभ्याम्।
कार्य्याश्मरीभेदनपातनाय विशेषयुक्तं शृणु कर्म सिद्धम् ॥ ५७ ॥

कफ और वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें जो चिकित्सा कही है अश्मरी (पथरी) और शर्करारोगमें भी उसी चिकित्साका प्रयोग करना हितकारक है। पथरीको भेदन और पातन करनेके लिये जिस विशेष कर्मका प्रयोग करना चाहिये उस अनुभूत कर्मको सुनो ॥ ५७ ॥

पथरी और शर्करानाशक योग।

पाषाणभेदं वृषकं श्वदंष्ट्रा पाठाभयाव्योषशटीनिकुम्भाः।
हिंस्राखराश्वासितिमारकाणामेर्वारुकाणां त्रपुषस्य बीजम् ॥ ५८ ॥
उत्कुञ्चिका हिंगु सवेतसाम्लं स्याद्द्वे बृहत्यौ हवुषा वचा च।
चूर्णं पिबेदश्मरिभेदपक्कं सर्पिश्च गोमूत्रचतुर्गुणं तैः ॥ ५९ ॥

पाषाणभेद, अडूसा, गोखरू, पाठा, हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, दन्ती, हींसके बीज, अजमोद, शालिंचशाकके बीज, ककडीके बीज, खीरेके बीज, उत्कुंचिका (कालाजीरा,) हींग, अम्लवेत, कटेली, बडी कटेली, हाऊबेर और वच इन सबका चूर्ण कर गरम जल या दूधके साथ सेवन करे अथवा इनके कल्क और क्काथसे गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्धकरे। इस घृतके पीनेसे भी पथरीका भेदन होकर पथरी और शर्करा दूर होते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

मूलं श्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुबूकात्क्षीरेण पिष्टं बृहतीद्वयञ्च।
आलोडच दध्ना मधुरेण पेयं दिनानि सप्ताश्मरिभेदनाय ॥ ६० ॥

गोखरू, तालमखाना, एरण्डकी जड इनको दूधमें पीसकर सेवन करे अथवा छोटी और बडी कटेलीकी जडको बारीक पीसकर मीठे दहीमें मिला पीवे तो सात दिनमें अश्मरीका भेदन होता है ॥ ६० ॥

पुनर्नवायोरजनीश्वदंष्ट्राफल्गुप्रवालाश्च सदर्भपुष्पाः।
क्षीराम्बुमद्येक्षुरसैः सुपिष्टं पेयं भवेदश्मरिशर्करासु ॥ ६१ ॥

पुनर्नवा, लोहभस्म, हल्दी, गोखरू, गूलर, मूंगेकी भस्म, दाभके फूल इन सबको पीसकर दूध, जल, मद्य और ईखके रसमें मिलाकर पीवे तो पथरी और शर्करा दूर होती है ॥ ६१ ॥

त्रुटिं सुराह्वं लवणानि पञ्च यवाग्रजं कुन्दुरुकाश्मभेदौ ।
कम्पिल्लकं गोक्षुरकस्य बीजमेर्वारुबीजं त्रपुषस्य बीजम् ॥ ६२ ॥
चूर्णीकृतं चित्रकहिङ्गुमांसीयमानि तुल्यं त्रिफलाद्विभागम् ।
अम्लैः सशुक्तैरसमद्ययूषैः पेयं हि गुल्माश्मरिभेदनार्थम् ॥ ६३ ॥

छोटी इलायची, देवदारु, पांचों लवण, जवाखार, कुन्दरुगोंद, पाषाणभेद, कमीला, गोखरू, ककडीके बीज, खीरेके बीज, चित्रक, हींग, जटामांसी और अजवायन इनको समभाग लेकर चूर्ण करे और हरड बहेडे और आँवलेका चूर्ण पहिले चूर्णसे दुगुना लेवे । सबको मिलाकर अम्लरस, सिरका, मद्य, मांसरस और यूषके साथ पीवे तो गुल्म और पथरीका भेदन होकर वह दूर होते हैं ॥६२॥६३॥

शिग्रोस्तु यूषो मृदुमूलकल्काद्बिल्वप्रमाणो घृततैलभृष्टः ।
शीतोश्मभित्स्याद्दधिमण्डयुक्तः पेयः प्रकामं लवणेन युक्तः ॥ ६४ ॥

सुहांजनेकी नरम जडके दो तोला कल्कसे सिद्ध कियाहुआ यूष घी और तेलमें भूनकर शीतल होनेपर दधिमण्ड मिला नमकयुक्त करे । इसके पीनेसे पथरी दूर होती है ॥ ६४ ॥

जलेन शोभाञ्जनमूलकल्कः शीतो हितश्चाश्मरिशर्कराभ्याम् ।
सितोपलावासमयावशूकाः कृच्छ्रेषु सर्वेष्वपि भेषजं स्यात् ॥ ६५ ॥

सुहांजनेकी जडकी कल्कको जलमें घोलकर शीतल ही पीवे तो अश्मरी और शर्करा दूर होती है अथवा मिसरी और जवाखार मिलाकर जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं ॥ ६५ ॥

पीत्वा च मद्यं निगदं रथेन हयेन वा शीघ्रजवेन यायात् ।
तैः शर्करा प्रच्यवतेऽश्मरी तु शाम्येन्न चेच्छल्यविदुद्धरेत्ताम् ॥६६॥

निगद नामक मद्यको पीकर शीघ्र २ गमन करनेवाला रथ अथवा घोडे आदिकी सवारीपर चढकर नित्य घूमाकरे तो पथरीका भेदन होकर वह निकल जाती है । यदि इन सब उपायोंके करनेसे भी पथरी शान्त न हो तो शल्यतंत्रका जाननेवाला वैद्य युक्तिपूर्वक पथरीको शस्त्रद्वारा निकाल देवे ॥ ६६ ॥

रेतोविघातप्रभवे तु कृच्छ्रे समीक्ष्य दोषं प्रतिकर्म कुर्य्यात् ॥ ६७ ॥

शुक्राभिघातसे उत्पन्न हुए मूत्रकृच्छ्रमें यथोचित दोषोंकी परीक्षा करके उनकी शान्तिका उपाय करे ॥ ६७ ॥

वातादिमूत्रभेदसे मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा।

कार्पासमूलं वृषकाश्मभेदौ बलास्थिरादीनि गवेधुका च।
वृश्चीर ऐन्द्री च पुनर्नवा च शतावरी मध्वशनाखुपर्ण्यौ।
तत्क्वाथसिद्धं पवने नरस्य पित्तेऽधिके क्षीरमथापि सर्पिः ॥ ६८ ॥
कफे च यूषादिकमन्नपानं संसर्गजे सर्वहितः क्रमः स्यात्।
एवं न चेच्छाम्यति तस्य युञ्ज्यात्सुरां पुराणां मधुकासवं वा ॥६९॥

कपासकी जड, अडूसा, पाषाणभेद, खरैटी, शालिपर्णी आदि गणकी औषधियें, गवेधुका, सफेद पुनर्नवा, इन्द्रायणकी जड, लाल पुनर्नवा, शतावर, मुलैठी, विजैसार और मूषिकपर्णी इन सब द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ दूध सेवन करनेसे वातप्रधान मूत्रकृच्छ्र दूर होता है और इन्हीं सब द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीनेसे पित्त प्रधान मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। एवं कफकी अधिकतामें इन्हीं द्रव्योंके क्वाथसे सिद्ध किये यूष और अन्नपान आदिका सेवन करना चाहिये। सब दोषोंके संसर्गमें सब प्रकार मिलीजुली क्रिया करनी चाहिये। यह सब प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी मूत्रकृच्छ्र शान्त न हो तो उसको पुरानी मद्य और मध्वासव सेवन करावे ६८-६९॥

विहङ्गमांसानि च बृंहणाय बस्तींश्च शुक्राशयशोधनार्थम्।
शुद्धस्य तृप्तस्य च वृष्ययोगैः प्रियानुकूलाः प्रमदा विधेयाः ॥ ७० ॥

बृंहण करनेके लिये रोगीको पक्षियोंका मांसरस सेवन करावे और शुक्राशयकी शुद्धिके लिये वस्तिकर्मका (मूत्रमार्गद्वारा नलीप्रवेश करना) प्रयोग करे। फिर शुद्ध हुए मनुष्यको वृष्ययोगोंद्वारा तृप्त कर प्यारी और अनुकूल स्त्रियोंसे गमन करावे ॥ ७० ॥

रक्तोद्भवे तूत्पलनालतालकाशेक्षुबालेक्षुकशेरुकाणि।
पिबेत्सिताक्षौद्रयुतानि खादेदिक्षुं विदारीं त्रपुषाणि चैव ॥ ७१ ॥

यदि किसी उपदंशादिके दोषसे अथवा अन्य रक्तजनित विकारसे मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हुआ हो तो कमलनाल, नालमूली (मुसली), कांसकी जड, ईखकी जड, तालमखाना और कसेरू इन सबको मिसरी और शहदमें मिलाकर पीवे अथवा ईखकी जड, विदारीकंद और खीरेके बीज इनके क्वाथमें शहद और मिसरी मिलाकर पीवे॥७१॥

घृतं श्वदंष्ट्रास्वरसेन सिद्धं क्षीरेण चैवाष्टगुणेन पेयम्।
स्थिरादिकानां कतकादिकानामेकैकशो वा विधिनैव तेन ॥ ७२ ॥

अथवा गोखरूका रस आठ सेर, दूध आठ सेर, घी एक सेर इन सबको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर उचित मात्रासे सेवन करे। अथवा शालपर्णी आदि पंचमूलके क्वाथसे अथवा निर्मलीके फलके रससे, पूर्वोक्त विधिसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करे ॥ ७२ ॥

क्षीरेण बस्तिर्मधुरौषधैः स्यात्तैलेन वा स्वादुफलोत्थितेन।
यन्मूत्रकृच्छ्रे विहितं तु पैत्ते कार्य्यं तु तच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥ ७३ ॥

रक्तविकारजानित मूत्रकृच्छ्र (क्षतज) में दूध अथवा मधुरगणोंसे वा मीठे फलोंके तैलसे वस्तिकर्म करे और पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें कहेहुए सब प्रकारके योगोंका प्रयोग करे ॥ ७३ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें कुपथ्य।

व्यायामसन्धारणशुष्कभक्ष्यपिष्टान्नवातार्ककरव्यवायान्।
खर्जूरशालूककपित्थजम्बूविषं कषायञ्च रसं भजेन्न ॥ ७४ ॥

मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगमें व्यायाम आदि शारीरिक परिश्रम और मलमूत्रके वेगोंका रोकना, सूखे अन्नपानका सेवन, पिष्ट पदार्थोंका सेवन, पवन, धूप, स्त्रीसंग, खजूर, शालूक, कैथ, जामुन, विष और कषायरसका सेवन न करे ॥७४॥

हृद्रोगके कारण।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकबस्तिचिन्ताभयत्रासमदातिचाराः।
छर्द्यामसन्धारणकर्षणानि हृद्रोगकर्तॄणि तथाभिघातः ॥ ७५ ॥

व्यायाम, तीक्ष्ण विरेचन, तीक्ष्ण बस्ति, वमन, मलके वेगका रोकना, उपवास आदि, कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, मद्यका अत्यंत सेवन या उन्मत्तता और अभिचार (टोना, शाप आदि) का होना यह सब हृद्रोगके उत्पत्तिके कारण होते हैं ॥७५॥

हृद्रोगके उपद्रव।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्काश्वासास्यवैरस्यतृषाः प्रमेहाः।
छर्दिः कफोत्क्लेशरुजोऽरुचिश्च हृद्रोगजाः स्युर्विविधास्तथान्ये ॥ ७६ ॥

विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर, खांसी, हिचकी, श्वास, मुखका स्वाद बिगडजाना, तृषा, प्रमेह, वमन, कफके उत्क्लेशमें वेदना, अरुचि तथा और भी इसी प्रकारके अन्य उपद्रव हृद्रोगसे उत्पन्न होते हैं ॥ ७६ ॥

वातभेदजहृद्रोगके लक्षण।

हृच्छून्यभावद्रवशोषभेदस्तम्भाः समोहाः पवनाद्विशेषः।

हृदयकी शून्यता, धकधकी, शोष, हृदयमें भेदनकीसी पीडा, स्तम्भता और मोह यह वातजनित हृद्रोगके लक्षण हैं।

पित्तजहृद्रोगके लक्षण।

पित्तात्तमोदूयनदाहमोहाः सन्त्रासतापज्वरपीतभावाः ॥ ७७ ॥

नेत्रोंके आगे अंधकार, ग्लानि, दाह, मोह, संत्रास,संताप, ज्वर और नेत्र आदिकोंका पीतवर्ण होना यह पित्तज हृद्रोगके लक्षण हैं॥ ७७ ॥

कफजहृद्रोगके लक्षण।

स्तब्धं गुरु स्यात्स्तिमितञ्च मर्म कफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः।

हृदयकी स्तब्धता, भारीपन, स्तैमित्य, मर्मस्थानमें कफका लिपायमानसा प्रतीत होना, मुखसे लार बहना, ज्वर, खांसी और तन्द्रा यह कफजनित हृद्रोगके लक्षण हैं।

सन्निपातज और कृमिज हृद्रोगके लक्षण।

विद्यात्त्रिदोषन्त्वपि सर्वलिङ्गं तीव्रार्त्तितोदं कृमिजं सकण्डूम् ॥ ७८ ॥

सन्निपातके हृद्रोगमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं तथा तीव्र वेदना होती है। एवं कृमिज हृद्रोगमें सुई चुभनेकीसी पीडा और खुजली होती है ॥ ७८ ॥

वातजहृद्रोगकी चिकित्सा।

तैलंससौवीरकमस्तुतक्रं वाते प्रपेयं लवणं सुखोष्णम्।

मूत्राम्बुसिद्धं लवणैश्च तैलमानाहगुल्मार्तिहृदामयघ्नम् ॥ ७९ ॥

वातज हृद्रोगमें–सौवीरक, दहीका जल और तक्रके साथ सिद्ध किया तैल पीना चाहिये। तथा सेंधानमक, गोमूत्र और जलके साथ सिद्ध करके शीतगरम रहनेपर सेवन करे। अथवा पंचलवणसे सिद्ध किये तेलका सेवन करे तो वातज हृद्रोग, अफारा और गुल्मरोग दूर होता है ॥ ७९ ॥

पुनर्नवां दारु सपञ्चमूले रास्नां यवान्बिल्वकुलत्थकोलम्।

पक्त्वा जले तेन विपाच्य तैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्गदोऽयम् ॥ ८० ॥

पुनर्नवा, देवदारु, लघु पंचमूल, रासना, यव, कच्चे बेलकी गिरि, कुल्थी और बेर इनके क्वाथमें सिद्धकिये तैलके अभ्यंग और पान करनेसे वातजनित हृद्रोगको दूर करता है ॥ ८० ॥

हरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्वयःकयस्थालवणैश्च कल्कैः।

सहिङ्गुभिः साधितमग्र्यसर्पिर्गुल्मे सहृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥ ८१ ॥

हरड, सोंठ, पुहकरमूल, काकोली, छोटी इलायची, सेंधानमक और हिंगके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत गुल्म पार्श्वपीडा और वातजनित हृद्रोगको दूर करता है ॥ ८१ ॥

सपुष्कराह्वं फलपूरमूलं महौषधं शठ्यभया च कल्काः ।
क्षाराम्बुसर्पिर्लवणैर्विमिश्राः स्युर्वातहृद्रोगविकर्त्तिकाघ्नाः ॥ ८२ ॥

पुहकरमूल, बिजौरेकी जड, सोंठ, कचूर और हरडका कल्क, जवाखार तथा सेंधानमकके जलसे सिद्ध कियाहुआ घृत वातजनित हृद्रोग और विकर्तिकाको नष्ट करता है ॥ ८२ ॥

क्वाथः कृतः पौष्करमातुलुङ्गपलाशभूतीशकटीसुराह्वैः ।
सशुण्ठ्यजाजी द्विवचा यमानी सक्षार उष्णो लवणश्च पेयः ॥ ८३ ॥

पोहकरमूल, बिजौरेकी जड, ढाककी फली, अजवायन, कचूर, देवदारुका क्वाथ, सोंठ, जीरा, वच, सफेद वच, अजवायन, जवाखार और सेंधानमक मिला पीवे तो वातजनित हृद्रोग दूर होता है ॥ ८३ ॥

पथ्याशटीपुष्करपञ्चकोलान् समातुलुङ्गा यमकेन कल्कः ।
गुडप्रसन्नालवणैश्च भृष्टो हृत्पार्श्वगुल्मोदरयोनिशूले ॥ ८४ ॥

हरड, कचूर, पोहकरमूल, पंचकोल और बिजौरेकी जडका कल्क बना गुड, प्रसन्ना और मद्य मिलाकर घृत और तेलमें भूनकर सेवन करे तो हृदयकी पीडा, पार्श्वपीडा, गुल्म, उदररोग और योनिशूल नष्ट होते हैं ॥ ८४ ॥

त्र्यूषणादि घृत ।

स्यात्त्र्यूषणं द्वे त्रिफले सपाठे निदिग्धिकागोक्षुरकौ बले द्वे ।
ऋद्धिस्त्रुटिस्तामलकी स्वगुप्ता मेदे मधूकं मधुकं स्थिरा च ॥ ८५ ॥
शतावरी जीवकपृश्निपर्ण्यौ द्रव्यैरिमैरक्षसमैः सुपिष्टैः ।
प्रस्थं घृतस्येह पचेद्विधिज्ञः प्रस्थेन दध्नस्त्वथ माहिषस्य ॥ ८६ ॥
मात्रां पलञ्चार्द्धपलं पिचुं वा प्रयोजयेन्माक्षिकसंप्रयुक्तम् ।
श्वासे सकासे त्वथ पाण्डुरोगे हलीमके हृद्ग्रहणीप्रदोषे ॥ ८७ ॥

पीपल, मिरच, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, द्राक्षा, कुम्भेरके फल, फालसा, कटेला, गोखरू, बला, नागबला, ऋद्धि, इलायची, बडी इलायची, भूमिआँवला, कौंचके बीज, मेदा, महामेदा, महुआ, मुलैठी, शालपर्णी, शतावर, जीवक, पृष्ठपर्णी इन सबको एक एक तोला लेकर बारीक पीसलेवे फिर इसको एक सेर घी, एक सेर दही और

एक सेर भैंसका दूध तथा दो सेर जल मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस घृतको और तोला अथवा दो तोला या एक तोला शहदमें मिलाकर नित्य सेवन कियाकरे तो श्वास, खाँसी, पाण्डुरोग, हलीमक, हृद्रोग और ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं॥ ८५-८७॥

पित्तजहृद्रोगकी चिकित्सा।

शीताः प्रदेहाः परिषेचनञ्च तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे तु पित्तापहमन्नपानम्॥ ८८॥

पित्तजनित हृद्रोगमें शीतल लेप परिषेचन और विरेचन देना हितकारक है। विरेचनद्वारा शुद्ध शरीर होनेके अनन्तर द्राक्षा, मिसरी, शहद और फालसेके रसके साथ अन्नपानका सेवन करना चाहिये॥ ८८॥

यष्ट्याह्विका तिक्तकरोहिणीभ्यां कल्कं पिबेच्चापि सिताजलेन।
क्षतेषु सर्पींषि हितानि सर्पिर्गुडाश्च ये तान्प्रसमीक्ष्य सम्यक्॥ ८९॥
दद्याद्भिषक् धन्वरसांश्च गव्यक्षीराशिनां पित्तहृदामयेषु।
तैरेव सर्वे प्रशमं प्रयान्ति पित्तामयाः शोणितसंश्रया ये॥ ९०॥

मुलैठी और कुटकीका कल्क करके मिसरीके शरबतके साथ सेवन करे तो पित्तजनित हृद्रोग दूर होता है। अथवा उरःक्षतरोगमें कहेहुए घृत और सर्पिर्गुडोंको भले प्रकार विचारकर सेवन करावे और जंगलीजीवोंके मांसरस तथा गौका दूध पिलाना पित्तज हृद्रोगमें हितकारी होता है और इन्हीं प्रयोगोंसे रक्ताश्रित सब प्रकारके पित्तरोग शान्त होते हैं॥ ८९॥ ९०॥

द्राक्षाबलाश्रेयसिशर्कराभिः खर्जूरवीरर्षभकोत्पलैश्च।
काकोलिमेदायुगजीवकैश्च क्षीरे च सिद्धं महिषीघृतं स्यात्॥ ९१॥

द्राक्षा, बला, गजपीपल और मिसरी। अथवा खजूर, क्षीरकाकोली, ऋषभक और नीलोफर। या काकोली, मेदा, महामेदा और जीवक। इन तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगके कल्कके साथ अथवा सबको मिलाकर चौगुने दूधके साथ भैंसके घृतको सिद्ध करे। इस घृतके सेवन करनेसे पित्तजनित हृद्रोग दूर होता है॥ ९१॥

कशेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकं मधुकं बिसस्य।
ग्रन्थिश्च सर्पिः पयसा पचेत्तैः क्षौद्रान्वितं पित्तहृदामयघ्नम्॥ ९२॥

कसेरू, जलकी कायी, सोंठ, पंड्यारेका छिलका, मुलैठी और भिस इन सबका कल्क कर कल्कसे चारगुना घृत घृतसे चारगुना दूध मिलाकर पकावे। घृतमात्र

शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस घृतको शीतल होनेपर चौथाई भाग शहद मिलाकर नित्य चार तोला चाटाकरे तो पित्तका हृद्रोग दूर होता है ॥ ९२ ॥

स्थिरादिकल्कैः पयसा च सिद्धं द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि।
सर्पिर्हितं स्वादुफलेक्षुजाश्च रसाः सुशीता हृदि पित्तदुष्टे ॥ ९३ ॥

शालपर्ण्यादि पंचमूलका कल्क बीस तोला, घृत एक सेर, दूध अथवा ईखका रस या दाखका रस चार सेर मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस घृतके सेवन करनेसे पित्तजनित हृद्रोग दूर होता है तथा द्राक्षा आदि मीठे फलोंका रस अथवा ईखका रस व अन्य मधुर रस पित्तजहृद्रोगमें हितकारक होते हैं ॥ ९३ ॥

कफजनितहृद्रोगकी चिकित्सा।

स्विन्नस्य वान्तस्य विलङ्घितस्य क्रिया कफघ्नी कफमर्मरोगे।
कालत्थधान्यश्च रसैर्यवान्नैः पानानि तीक्ष्णानि च शर्कराणि ॥ ९४ ॥

कफके हृद्रोगमें स्वेदन, वमन और लंघन करानेके अनन्तर कफनाशक द्रव्योंका प्रयोग तथा कफनाशक आहार विहारका सेवन करना चाहिये और कुलथी तथा धनियेंके क्वाथके साथ यवान्न सिद्धकर सेवन कराना और तीक्ष्ण अन्न पानोंका शर्कराके साथ प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ९४ ॥

मूत्रे शृताः कट्फलशृङ्गवेरपीतद्रुपथ्यातिविषाः प्रदेयाः।
कृष्णाशटीपुष्करमूलरास्नावचाभयानागरचूर्णकश्च ॥ ९५ ॥

कायफल, सोंठ, सरलवृक्षकी छाल, हरड और अतीश इन सबको गोमूत्रमें पकाकर पीना कफजनित हृद्रोगको दूर करता है। अथवा पीपल, कचूर, पोहकरमूल, रासना, वच, हरड और सोंठ इन सबका चूर्णकर गोमूत्र अथवा गरम जलके साथ सेवन करना कफजनित हृद्रोगको दूर करता है ॥ ९५ ॥

उदुम्बराश्वत्थवटार्जुनाख्ये पलाशरोहीतकखादिरे च।
क्वाथे त्रिवृत्त्र्यूषणचूर्णसिद्धो लेहः कफघ्नोऽशिशिराम्बुयुक्तः ॥ ९६ ॥

गूलर, पीपल, बड, अर्जुन, ढाक इन सबके छिलके, रोहितघासकी जड और खैरका छिलका इन सबके क्वाथमें निशोथ, सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण डालकर अवलेह बनावे। इस अवलेहको गरमजलके साथ सेवन कियाजाय तो कफजनित हृद्रोग दूर होता है ॥ ९६ ॥

शिलाह्वयं वा भिषगप्रमत्तः प्रयोजयेत्कल्पविधानदृष्टम्।
प्राश्या तथागस्त्यहरीतकी च रसायनं ब्राह्यमथामलक्याः ॥ ९७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य शिलाजतु, रसायन अथवा अगस्त्यहरीतकी या ब्रह्मरसायन अथवा आमलकीयरसायन कल्पस्थानमें कहीहुई विधिके अनुसार वमन विरेचनादिद्वारा रोगीको शुद्धकाय कर फिर इन रसायनोंका प्रयोग करावे तो कफजनित हृद्रोग दूर होता है ॥ ९७ ॥

सन्निपातज हृद्रोगकी चिकित्सा।

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्यादन्नञ्च सर्वत्र हितं विधेयम् ।
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्य्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम् ॥ ९८ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए हृद्रोगमें दोषोंकी हीनता, अधिकता और मध्यावस्था आदि विचारकर दोषानुसार लंघन आदि क्रिया और दोषानुसार हितकारक अन्नपानका सेवन कराना चाहिये। एवं दोषोंकी हीनता और अधिकता विचारकर यथाक्रम चिकित्सा करे ॥ ९८ ॥

अवस्थाविशेषसे हृद्रोगकी चिकित्सा।

भुक्तेऽधिकं जीर्य्यति शूलमल्पं जीर्णे स्थितं चेत्सुरदारुकुष्ठम् ।
सतिल्वकं द्वे लवणे विडङ्गमुष्णाम्बुना सातिविषं पिबेत्सः ॥ ९९ ॥

यदि त्रिदोषज हृद्रोगमें भोजन करते ही हृदयमें अधिक पीडा होनेलगे और भोजनके जीर्ण होते समय पीडा भी अल्प होजाय तथा भोजनके पाचन होजानेके अनन्तर पीडा भी बन्द होजाय तो ऐसी अवस्थामें देवदारु, कूठ, पठानीलोध, सेंधानमक, संचरनमक, बायविडंग और अतीशका चूर्ण कर गरम जलसे सेवन करना चाहिये ॥ ९९ ॥

जीर्णेऽधिके स्नेहविरेचनं स्यात्फलैर्विरेच्यो यदि जीर्य्यमाणे ।
त्रिष्वेव कालेष्वधिके तु शूलं तीक्ष्णं हितं मूलविरेचनं स्यात् ॥१००॥

यदि भोजनके जीर्ण होजानेपर शूलकी अधिकता हो तो उस मनुष्यको स्नेह विरेचन कराना चाहिये और जो भोजनके परिपाक होते समय पीडाकी अधिकता हो तो हरीतकी आदि फलद्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये । एवं सब समयमें शूलकी साम्यावस्था रहती हो तो इन्द्रायणकी जड आदि मूलद्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये ॥ १०० ॥

कृमिजन्य हृद्रोगकी चिकित्सा।

प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः प्रकुप्यत्यामाशये शोधनमेव तस्मात् ।
कार्य्यं तथा लङ्घनपाचनञ्च सर्वं क्रिमिघ्नं कृमिहृद्गदे च ॥ १०१ ॥

कृमियोंसे होनेवाले हृद्रोगमें प्रायः वायु रुद्धगति होकर आमाशयमें कोपको प्राप्त होती है। इसलिये कृमिजन्य हृद्रोगमें प्रथम शोधन करना चाहिये तथा लंघन और पाचन प्रयोग करनेके अनन्तर कृमिनाशक क्रिया करना हितकारी है ॥ १०१ ॥

पीनसादिनासारोगनिदान।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्त्तुवैषम्याशिरोऽभितापैः।
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतैरवश्ययामैथुनबाष्पधूमैः।
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ १०२ ॥

मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, अजीर्ण, धूल आदिका मुखनासिकामें पडना, अत्यंत जोरसे बोलना, क्रोध, ऋतुओंका बदलना, शिरकी पीडा, अत्यंत जागना, अधिक सोना, अधिक जल पीना, मैथुन, पृथ्वीकी भाफ और धूमका लगना आदि कारणोंसे मस्तकके दोष घनीभूत हो वायुको बढाकर प्रतिश्यायको उत्पन्न करते हैं ॥ १०२ ॥

वातजप्रतिश्यायके लक्षण।

घ्राणार्तितोदैः क्षवथुर्जलाभः स्रावोऽनिलात्सस्वरमूर्द्धरोगः ॥ १०३ ॥

नाकमें पीडा, सुई चुभानेकेसे चभके, सूजन, जलके समान नाक, मुख और आंखोंसे स्राव होना, स्वरभंग और मस्तकमें पीडा यह वातजनित प्रतिश्याय (जुखाम) के लक्षण हैं ॥ १०३ ॥

पित्तज प्रतिश्यायके लक्षण।

नासाग्रपाकज्वरवक्त्रशोषतृष्णोष्णपीतस्रवणानि पित्तात्।

नाकके अग्रभागका पकजाना, ज्वरसा प्रतीत होना, मुखका सूखना, प्यास, पीले वर्णका तथा उष्ण स्राव होना पित्तजनित प्रतिश्यायके लक्षण हैं।

कफज प्रतिश्यायके लक्षण।

कासारुचिस्रावघनप्रसेकाः कफाद्गुरुः स्रोतसि चापि कण्डूः ॥ १०४ ॥

खांसी, अरुचि, नाकसे गाढा स्राव होना, मुखसे कफका निकलना, शरीर भारी होना और मस्तक आदिमें तथा नाकमें खुजली होना यह कफजनित प्रतिश्यायके लक्षण हैं ॥ १०४ ॥

सन्निपातज प्रतिश्यायके लक्षण।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपातात्स्युः पीनसे तीव्ररुजेऽतिदुःखे।

संपूर्ण प्रतिश्यायोंके लक्षणोंवाला तीव्रवेदनायुक्त कष्टकारी सन्निपातज प्रतिश्याय होता है।

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण।

सर्वोऽतिवृद्धोऽहितभोजनात्तु दुष्टप्रतिश्याय उपेक्षितः स्यात् ॥ १०५ ॥

सब प्रकारके प्रतिश्याय ही अत्यंत बढजानेपर कुपथ्य सेवन करनेसे और चिकित्सा न करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय होजाते हैं॥ १०५॥

ततश्च रोगाः क्षवथुः सनासाशोषः प्रतीनाहपरिस्रवौ च।

घ्राणस्य पूतित्वमपीनसश्च सपाकशोथार्बुदपूयरक्ताः॥ १०६॥

अरूंषिमूत्रश्रवणाक्षिरोगखालित्यहर्य्यर्जुनलोमभावाः।

तृट्श्वासकासज्वररक्तपित्तवैस्वर्य्यशोषाश्च ततो भवन्ति॥ १०७॥

दुष्ट प्रतिश्यायसे छींक आना, नाकका सूखना, नाकका बन्द होजाना, मुख और नासिकासे अनेक प्रकारका स्राव होना तथा दुर्गन्ध आना, अपीनस, (गाढा, चर्बीके समान पीला कफका स्राव होना), मुख नाकका पकजाना, सूजन, अर्बुद, राध और रक्तका स्राव होना, अरूंषिकानामक फुंसियें होना, मूत्रस्राव, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य (गंजापन), रोमोंका कपिल अथवा श्वेत होना, प्यास, श्वास, खांसी, ज्वर, रक्तपित्त, स्वरभंग तथा शोषरोग उत्पन्न होता है॥ १०६॥ १०७॥

रोधाभिघातस्रवशोषपाकैर्घ्राणं युतं यश्च न वेत्ति गन्धम्।

दुर्गन्धि चास्यं बहुशः प्रकोपि दुष्टप्रतिश्यायमुदाहरेत्तम्॥ १०८॥

जिस प्रतिश्यायमें नाकका बन्द होजाना, नाकमें जखमसे प्रतीत होना तथा स्राव, नाकका सूखना, नासापाक और गन्धज्ञानका नष्ट होना तथा मुखसे अत्यन्त दुर्गंधका आना, प्रतिश्यायका दुष्ट वेग होना और बारंबार कोप होना यह सब दुष्ट प्रतिश्यायके लक्षण हैं॥ १०८॥

छींक और नासाशोष।

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तु मूर्ध्नि विष्वक् पथस्थः क्षवथुं करोति।

क्रुद्धः स संशोष्य कफन्तु नासाशृङ्गाटकाघ्राणविशोषणञ्च॥ १०९॥

हृदय और मस्तकके संपूर्ण मार्गोंको स्पर्शकर मस्तकमें स्थित हुआ वायु मस्तकस्थ मार्गमें स्थित हो क्षवथु (छींक) नामक रोगको उत्पन्न करता है। वही वायु कफको सुखाकर नासिका और प्राणमार्गमें शोषको उत्पन्न करता है॥ १०९॥

प्रतिनाह और परिस्राव।

उच्छ्वासमार्गन्तु कफः सवातो रुन्ध्यात् प्रतीनाहमुदाहरेत्तम्।

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम्॥ ११०॥

कफ वायुके साथ मिलकर उच्छ्वास मार्गको रोक देवे उसको प्रतिनाह कहते हैं। अर्थात् कफ वायु नाककेद्वारा श्वास प्रतिश्वासका बन्द होजाना प्रतिनाह कहाता है नाकके मार्गसे गाढा, पीला अथवा सफेद स्राव होनेको परिस्राव कहते हैं॥ ११०॥

अपीनस और पूतिनासा।

यो मस्तुलुङ्गाद्घनपीतपक्वः कफः स्रवेद्वाढमपीनसः सः।
वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यमुपेक्षया तु स्यात्पूतिनस्यं श्वयथुर्भ्रमश्च ॥ १११ ॥

नाकद्वारा चिकना, भारी, मस्तुलुंग समान पीला, पकाहुआ, गाढा, स्राव हो उसको अपीनस कहते हैं। प्रतिश्यायका यत्न न करनेसे नाककी विवर्णता, दुर्गंध, सूजन और भ्रम होनेको पूतिनासा कहते हैं ॥ १११ ॥

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्यति यस्य नासा।
न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन ॥ ११२ ॥

जिसके नाकमें अनाह (नाकबन्द होजाना) शोष, क्लेद, धूआंसा निकलना तथा सन्ताप हो और नाकसे किसी प्रकारकी गन्धका ज्ञान न हो उसको अपीनस रोगसे ग्रसाहुआ जानना चाहिये ॥ ११२ ॥

घ्राणपाक और नासाशोथ।

सदाहरागः श्वयथुः सपाकः स्याद्घ्राणपाकोऽपि च रक्तपित्तात्।
घ्राणाश्रितासृक्प्रभृतीन् प्रदूष्य कुर्वन्ति नासाश्वयथुं मलाश्च ॥११३॥

नाकमें दाह, अरुणता, सूजन और पाक हो उसको घ्राणपाक कहते हैं यह घ्राणपाक रोग रक्तपित्तसे उत्पन्न होता है वातादि दोष घ्राणाश्रित रक्त आदिको दूषित कर नाकमें सूजनको उत्पन्न करते हैं ॥ ११३ ॥

नासार्बुद और पूयरक्त।

घ्राणे तथोच्छ्वासगतिं निरुध्य मांसास्रदोषादपि चार्बुदानि।
घ्राणात्स्रवेद्वा श्रवणान्मुखाद्वा पित्तात्कमस्रन्त्वपि पूयरक्तम् ॥ ११४ ॥

वातादि दोष रक्तको दूषितकर नाकमें श्वासकी गतिको रोकनेवाली गांठसी उत्पन्न कर दें उसको नासार्बुद कहते हैं। नाकसे अथवा कानोंसे या मुखसे पित्त मिलेहुए रक्तका स्राव हो उसको पूयरक्त कहते हैं ॥ ११४ ॥

अरुंषिका नासादीप्त।

कुर्य्यात्सपित्तः पवनस्त्वगादीन् संदूष्य चारूंषि सपाकवन्ति।
नासा प्रदीप्तेव नरस्य यस्य दीप्तं तु तं रोगमुदाहरन्ति ॥ ११५ ॥

पित्तयुक्त वायु त्वचा आदिको दूषितकर पाकयुक्त छोटी २ फुन्सियोंको उत्पन्न करे उसको अरुंषिका कहते हैं। जिसका नाक गरम अग्निके समान प्रज्वालित रहे उसको नासादीप्तरोग कहते हैं ॥ ११५ ॥

वातजप्रतिश्याय (पीनस, जुकाम) की चिकित्सा ।

वातात्सकासवैस्वर्य्ये सक्षारं पीनसे घृतम् ।
पिबेद्रसं पयश्चोष्णं स्नैहिकं धूममेव वा ॥ ११६ ॥

वातजनित प्रतिश्यायमें खांसी और स्वरभेद हो तो जवाखार मिलाकर घृतपान करे तथा गर्म मांसरस और गर्मगर्म दूध एवं स्नैहिक धूमपान करना हितकारी है११६

शताह्वात्वग्बलामूलं श्योणाकैरण्डबिल्वजम् ।
सारग्वधां पिबेद्वर्त्तिं मधूच्छिष्टवसाघृतैः ॥ ११७ ॥

सोंठ, दालचीनी और खरैटीकी जड अथवा सोनापाठा, एरण्डकी जड और बेलकी जडका छिलका अथवा अमलतासकी जड इन तीन योगोंमेंसे किसी एकको मोम, चर्बी और घृतके साथ वत्ती बनाकर धूमपान करे तो वातजनित प्रतिश्याय (जुकाम) दूर होता है ॥ ११७॥

अथवा सघृतान् सक्तून् कृत्वा मल्लकसम्पुटे ।
नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रकल्पयेत् ॥ ११८ ॥

अथवा घृत मिलेहुए यवके सत्तुओंको मल्लक संपुटमें रख धूमपान करे तो नवीन प्रतिश्याय दूर होता है ॥ ११८ ॥

शंखमूर्द्धललाटार्त्तौ पाणिस्वेदोपनाहनम् ।
स्वभ्यक्ते क्षवथुस्रावरोधादौ सङ्करादयः ॥ ११९ ॥

यदि कनपटी, शिर और ललाटमें पीडा होती हो तो हाथोंको अग्निपर सेककर मस्तक और कनपटियोंको उन गर्म गर्म हाथोंसे स्वेदन करे तथा गर्म चिकने हलुवे आदिसे उपनाह स्वेद करे । यदि छींक और स्रावका अवरोध होकर मस्तक आदिकोंमें पीडा हो तो तैलादिकोंकी मालिश कर संकर आदि स्वेदका प्रयोग करे ॥११९

घ्रेयाश्च रौहिषाजाजीवचातर्कारिचोरकाः ।
त्वक्पत्रमरिचैलानां चूर्णैर्वा सोपकुञ्चिकैः ॥ १२० ॥

रोहिषतृण, कालाजीरा, वच, आणी, चोरक इन सबका चूर्ण बना नस्य लेवे । अथवा दालचीनी, तेजपत्र, कालीमिर्च, छोटी इलायची और काले जीरेका चूर्ण कर सूंघे ॥ १२० ॥

अणुतैल ।

स्रोतःशृंगाटनासाक्षिशोषे तैलं सनावनम् ।

---

१ दो शरावोंके सम्पुटमें रख नाल लगाकर धूमपान करनेको मल्लकसंपुट कहते हैं ।

प्रभाव्याजे तिलान् क्षीरे तेन पिष्टांस्तदूष्मणा ॥ १२१ ॥
मन्दस्विन्नान् सयष्ट्याह्वचूर्णांस्तेनैव पीडयेत्।
दशमूलस्य निष्क्वाथे रास्नामधुककल्कवत् ॥ १२२ ॥
सिद्धं ससैन्धवं तैलं दशकृत्वोऽणु तत्स्मृतम्।
स्निग्धस्यास्थापनैर्दोषं निर्हरेद्वातपीनसे ॥ १२३ ॥

स्रोत, कण्ठ, काक और नासिका तथा नेत्रोंमें शोष प्रतीत हो तो नीचे लिखे तेलकी नावन (नसवार) लेना चाहिये। काले तिलोंको बकरीके दूधमें भावना देकर दूधमें घोटलेवे। फिर बकरीके दूधको हांडीमें चढाकर हांडीके मुखपर कपडा बांध उन तिलोंकी पीठीको उस कपडेपर रख देवे। फिर नीचेसे आग जलावे। जब दूधकी भाफसे वह तिलोंकी पीठी धीरे धीरे स्वेदित होजाय तो उस तिलोंकी पीठी मुलैठीका चूर्ण मिलाकर उसमें बकरीके दूधका छिडका दे पीठीको जोरसे कपडेमें डालकर निचोडे। उस निचोडनेसे जो तेल निकले उस तेलसे चारगुना दशमूलका काथ मिलावे तथा तेलसे चौथा भाग रासना मुलैठी और सेंधेनमकका कल्क मिला पकावे। जब पककर ठीक होजाय तो उसमें फिर दशमूलका काथ और बकरीका दूध तथा रासना, मुलैठी और सेंधेनमकका कल्क मिला पकावे इस प्रकार दशबार पकावे इस तेलको अणुतैल कहते हैं। इस तैलकी वातजनित प्रतिश्यायमें नस्य देना परम हितकारी है। तथा वातजप्रतिश्यायमें प्रथम रोगीको स्निग्धकर आस्थापनद्वारा दोषको हरण करना चाहिये ॥ १२१-१२३ ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्च लघ्वन्नं ग्राम्यादीनां रसैर्हितम्।
उष्णाम्बुना स्नानपाने निवातोष्णप्रतिश्रयः ॥ १२४ ॥
चिन्ताव्यायामवाक्चेष्टाव्यवायविरतो भवेत्।
वातजे पीनसे धीमानिच्छन्नेवात्मनो हितम् ॥ १२५ ॥

वातजनित प्रतिश्यायमें ग्राम्यादि जीवोंका मांसरस स्निग्ध, अम्ल और उष्ण करके हलके अन्नके साथ सेवन कराना हितकारक है। तथा स्नान और पानमें गर्मजलका प्रयोग एवं निर्वात और गर्मस्थानमें निवास करना हितकारी है। तथा वातज प्रतिश्यायमें चिन्ता, व्यायाम, अधिक बोलना, अधिक चेष्टा और मैथुनको अपने हितकी इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य त्याग देवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा।

पैत्ते सर्पिः पिबेत्सिद्धं शृङ्गवेरशृतं पयः।
पाचनार्थं पिबेत्पक्के कार्य्यं मूर्द्धविरेचनम् ॥ १२६ ॥

पित्तजनित पीनसमें तिक्तक आदि घृत और सोंठसे सिद्धकिया दूध पीनसको पकानेके लिये पीवे और पीनसके पकजानेपर मूर्धविरेचन अर्थात् नस्यद्वारा मस्तकका दोष निकाल देना हितकारी है ॥ १२६ ॥

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।
दन्त्या च साधितं तैलं नस्यं सम्पक्वपीनसे ॥ १२७ ॥

पाटला, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपल, चमेलीके पत्ते और दंती इन सबके कल्कसे तेलको सिद्ध करे। पकी हुई पीनसमें इस तेलकी नस्य लेना परम हितकारी है ॥ १२७ ॥

पूयास्रे रक्तपित्तघ्नः कषाया नावनानि च ।
पाकदाहाद्यरूक्षेषु शीता लेपाः ससेचनाः ॥ १२८ ॥

पीव और लोहूमें रक्तपित्तनाशक क्वाथ और सूंघनी हितकारक है। नासिकाके दाह और पाकमें तथा रूक्षतामें शीतल लेप और सेचन करना हितकारी है ॥ १२८ ॥

स्नेहनस्योपचाराश्च कषायाः स्वादुशीतलाः ।
मन्दपित्ते प्रतिश्याये स्निग्धैः कुर्य्याद्विरेचनम् ॥ १२९ ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायमें स्निग्ध नस्य तथा मीठे और शीतल क्वाथोंका प्रयोग करना हितकारी होता है। यदि पित्तकी अधिकता न हो तो स्निग्ध विरेचन करना चाहिये ॥ १२९ ॥

घृतं क्षीरं यवाः शालिर्गोधूमा जाङ्गला रसाः ।
शीताम्लास्तिक्तशाकानि यूषा मुद्गादिभिर्हिताः ॥ १३० ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायमें घृत, दूध, शालीचावल, गेहूं तथा बकरेका मांसरस और जंगली जीवोंका मांसरस शीतल अम्ल और तिक्त शाक तथा मूंग आदिके यूष हितकारक होतेहैं ॥ १३० ॥

कफजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा।

गौरवारोचकेष्वादौ लङ्घनं कफपीनसे ।
स्वेदाः सेकाश्च पाकार्थं लिप्ते शिरसि सर्पिषा ॥ १३१ ॥

कफजनित प्रतिश्यायमें भारीपन और अरुचि हो तो प्रथम लंघन कराना चाहिये। फिर मस्तकको घृतसे चिकना कर कफको पकानेके लिये स्वेदन करे ॥ १३१ ॥

लशुनं मुद्गचूर्णेन व्योषक्षारघृतैर्युतम् ।
देयं कफघ्नं वमनमुत्क्लिष्टश्लेष्मणे हितम् ॥ १३२ ॥

यदि कफजनित प्रतिश्यायमें कफका उत्क्लेश हो तो मूंगका चूर्ण, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और घृतके साथ लहसुनका प्रयोग करे तथा कफनाशक द्रव्योंसे वमन करावे ॥ १३२ ॥

अपीनसे पूतिनस्ये घ्राणस्रावे सकण्डुके ।
धूमः शस्तोऽवपीडश्च कटुभिः कफपीनसे ॥ १३३ ॥

कफजनित पीनसमें अपीनस, पूतीनस, घ्राणस्राव और खुजली हो तो धूमपान और चरपरे द्रव्योंकी सूंघनी लेना चाहिये ॥ १३३ ॥

मनःशिला वचा व्योषं विडङ्गं हिङ्गु गुग्गुलुः ।
चूर्णैः प्रायः प्रधमनं कटुभिश्च फलैस्तथा ॥ १३४ ॥

मनशिल, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, बायबिडंग, हींग और गूगलको बारीक पीसकर नलकीमें डालकर नाकमें प्रधमन करे । अथवा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बेहडा, आँवला इन सबको चूर्णकर नाकमें प्रधमन करे तो कफजनित प्रतिश्याय और अपीनस, पूतीनस्यादि विकार दूर होतेहैं ॥ १३४ ॥

भार्ङ्गीमदनतर्कारीसुरसादिविपाचितम् ।
तैलं सर्षपजं बल्यं कफपीनसशान्तये ॥ १३५ ॥

भारंगी, मैनफल,जयन्ती और सुरसादिगणसे सिद्ध किया हुआ सरसोंका तेल कफजनित प्रतिश्यायको शान्त करता है और मस्तकको बल देता है ॥ १३५ ॥

आर्त्तकालवचालंबा विडङ्गं कुष्ठपिप्पली ।
कृत्वा कल्कं करञ्जञ्च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ।
पाकान्मुक्ते घने नस्यमेतन्मेदोऽन्विते कफे ॥ १३६ ॥

कूठ, काला अगर, वच, मैनशिल, बायबिडंग, कूठ, पीपल और करंजुएके फलोंका कल्ककर सरसोंके तेलको सिद्ध करे । जब कफका प्रतिश्याय पकजाय तथा घन और मेदयुक्त दोष निकले तो इस तेलकी नस्य देना चाहिये ॥ १३६ ॥

स्निग्धस्य व्याहते वेगे छर्दनं कफपीनसे ।
वमनीयशृतक्षीरतिलमाषयवाग्रुभिः ॥ १३७ ॥

यदि कफजनित प्रतिश्यायमें कफ बद्ध होकर रुकजाय तो रोगीको स्निग्ध कर वमन करादेना चाहिये । वमनीयगणके साथ सिद्ध किया दूध, तिल, उडद और यवोंका क्वाथ आदि पिलाकर वमन कराना चाहिये ॥ १३७ ॥

वार्त्ताककुलकव्योषकुलत्थाढकिमुद्गजाः।
यूषाः कफघ्नमन्नञ्च शस्तमुष्णाम्बुसेचनम् ॥ १३८ ॥

कफके प्रतिश्यायमें बैंगन, पटोल, त्रिकुटा, कुल्थी, अरहर और मूंगका यूष तथा कफनाशक अन्न और गरमजलका सेचन हितकारी है ॥ १३८ ॥

सन्निपातज और दुष्टप्रतिश्यायादि-
नासारोगोंकी चिकित्सा।

सर्वजित्पीनसे दुष्टे कार्श्ये शोफे च शोफजित्।
क्षारोऽर्बुदाधिमांसेषु क्रियाः सर्वेष्ववेक्ष्य च ॥ १३९ ॥

सन्निपातज और दुष्ट प्रतिश्यायमें सर्वदोषनाशक क्रिया और सूजनमें शोथनाशक क्रिया तथा नासार्बुद और नासाधिमांसमें दोषोंकी न्यूनाधिकता विचारकर उचित रीतिसे चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३९ ॥

शिरोरोगका निदान।

भृशार्तिशूलं स्फुरतीह वातात्पित्तात्सदाहार्त्तिकफाद् गुरुः स्यात्।
सर्वैस्त्रिदोषं क्रिमिभिस्तु कण्डूर्दौर्गन्ध्यतोदार्त्तियुतं शिरः स्यात्॥४०॥

वातजनित शिरोरोग[1] (मस्तकपीडा) में अत्यंत पीडा, शूल और मस्तकका कड-कना यह लक्षण होते हैं। पित्तजनित शिरोरोगमें दाह और पीडा होती है। कफके शिरोरोगमें मस्तक अत्यंत भारी होता है। सन्निपातके शिरोरोगमें सब दोषोंके मिले-जुले लक्षण होते हैं। कृमिजन्य शिरोरोगमें मस्तकमें अत्यंत खाज, दुर्गंध सुई-चुभनेकीसी पीडा और शूल होता है ॥ १४० ॥

वातज शिरोरोगकी चिकित्सा।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहान् स्वेदान् सनावनान्।
पानान्नमुपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १४१ ॥

वातजनित शिरोरोगमें स्नेहन, स्वेदन, नस्यकर्म तथा वातनाशक अन्नपान और उपनाहस्वेदका प्रयोग करना चाहिये ॥ १४१ ॥

तैलभृष्टैरगुर्वाद्यैः सुखोष्णैश्चोपनाहनम्।
जीवनीयैः सुमनसा मत्स्यैर्मांसैश्च शस्यते ॥ १४२ ॥

ज्वरचिकित्साध्यायमें जो अगर आदि तैल कहआये हैं उन तैलोंके द्रव्योंका कल्क तेलमें भूनकर उस गरम गरम कल्कसे मस्तकको स्वेदन करे। तथा इसी प्रकार जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कको तेलमें भूनकर उससे मस्तकको उपनाह-

---

१ सूर्यावर्त्त आदि शिरोरोगोंका वर्णन सिद्धिस्थानके ९ वें अध्यायमें आवेगा।

स्वेद करे। अथवा मालती आदि पुष्पोंके कल्कसे इसी प्रकार उपनाह करे। या मछलीके मांसको तेलमें भूनकर उससे मस्तकको स्वेदन करे॥१४२॥

रास्नास्थिरादिभिः सिद्धं सक्षीरं नस्यमर्त्तिनुत्।
तैलं रास्नाद्विकाकोलीशर्कराभिरथापि वा॥ १४३॥

रासना और लघुपंचमूलके कल्कसे तथा दूधमें सिद्ध कियेहुए तेलकी नस्य लेना वातजनित मस्तकपीडाको दूर करता है। तथा रासना, काकोली, क्षीरकाकोली, शर्करा और दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तेल वातजन्य मस्तकपीडाको दूर करता है॥ १४३॥

बलादि तैल।

बलामधूकयष्ट्याह्वविदारीचन्दनोत्पलैः।
जीवकर्षभकद्राक्षाशर्कराभिश्च साधितः॥ १४४॥
प्रस्थस्तैलस्य सक्षीरो जाङ्गलार्द्धतुलारसे।
नस्यं सर्वोर्द्धजत्रूत्थवातपित्तामयापहम्॥ १४५॥

बला, महुआ, मुलैठी, विदारीकंद, लालचन्दन, नीलोफर, जीवक, ऋषभक, द्राक्षा और शर्कराका कल्क एक पाव, तेल एक सेर, दूध २॥ सेर जंगली जीवोंका मांसरस २॥ सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तेल नस्यकर्मोंमें प्रयुक्त करनेसे ऊर्ध्वजत्रुगत संपूर्ण वात पित्तके रोग नष्ट होते हैं॥ १४४॥ १४५॥

मायूरघृत।

दशमूलबलारास्नात्रिफलामधुकैः सह।
मायूरं पक्षपित्तान्त्रशकृत्तुण्डाङ्घ्रिवर्जितम्॥ १४६॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत्।
मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम्॥ १४७॥
कर्णाक्षिनासिकाजिह्वाताल्वास्यगलरोगनुत्।
मायूरमिति विख्यातमूर्द्धजत्रुगदापहम्॥ १४८॥

दशमूल, बला, रासना, त्रिफला और मुलैठी इन १६ औषधियोंको एक सेर लेवे। और पंख, पित्त, आंत, मल, तुण्ड और पांवके विना मोरका मांस एक सेर लेवे। इन सबको ३२ सेर पानीमें पकाकर चार सेर पानी शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस रसमें एक सेर घृत, चार सेर दूध और मधुरगणकी प्रत्येक औषधी एक एक

तोला लेकर बारीक पीस मिलावे । सबको एकत्र कर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । यह शिरोरोगको दूर करनेवाला है तथा कान, नेत्र, नासिका जिह्वा, तालु और गलेके रोगको नष्ट करता है । यह घृत ऊर्ध्वजत्रुओंके रोगोंको हरनेवाला मायूरघृत नामसे प्रसिद्ध है ॥ १४६-१४८ ॥

महामायूर घृत ।

एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन कल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ॥ १४९ ॥
जीवन्तीत्रिफलामेदामधुकर्द्धिपरूषकैः ।
समङ्गाचविकाभार्ङ्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ॥ १५० ॥
आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः ।
मृणालबिसशालूकशृङ्गीजीवकपद्मकैः ॥ १५१ ॥
शतावरीविदारीक्षुबृहतीशारिवायुगैः ।
मूर्वाश्वदंष्ट्र्षभकशृङ्गाटककशेरुकैः ॥ १५२ ॥
रास्नास्थिरातामलकीसूक्ष्मैलाशटिपुष्करैः ।
पुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ॥ १५३ ॥
मधूकाक्षोटवातामसुञ्जाताभिषुकैरपि ।
द्रव्यैरेभिर्यथालाभं पूर्वकल्केन साधितम् ॥ १५४ ॥
तत्पक्कं नावनेऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ प्रयोजयेत् ।
शिरोरोगेषु सर्वेषु कासे श्वासे च दारुणे ॥ १५५ ॥
मन्यापृष्ठग्रहे शोषे स्वरभेदे तथार्दिते ।
योन्यसृक्शुक्रदोषेषु शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम् ॥ १५६ ॥
ऋतुस्नाता तथा नारी पीत्वा पुत्रं प्रसूयते ।
महामायूरमित्येतद् घृतमात्रेयपूजितम् ॥ १५७ ॥

उपरोक्त दशमूल आदि औषधियोंका और मोरके मांसका क्वाथ ४ सेर, दूध चार सेर, घृत एक सेर तथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, मुलैठी, ऋद्धि, फालसा, वाराहक्रांता, चव्य, भारंगी, कुम्भेर, देवदारु, कौंचके बीज, महामेदा, ताडवृक्ष और खजूरकी कोंपल, कमलकी जड, कमलकी डंडी, कमलका कन्द, काकडासिंगी, जीवक, पद्माख,

शतावर, विदारीकन्द, ईखकी जड, बडी कटेली, दोनों शारिवा, मूर्वा, गोखरू, ऋषभक, सिंघाडे, कसेरू, रासना, शालपर्णी, भूमिआँवला, छोटी इलायची, कचूर, पोहकरमूल, पुनर्नवा, वंशलोचन, काकोली, जवासा, महुएके फल, अखरोट, बादाम, मुंजातक और अभिषुक इन सब द्रव्योंको अथवा इनमेंसे जितने मिलसकें एक एक तोला लेकर कल्क करे। इस कल्कको उपरोक्त क्वाथ घृत, दूध आदिमें मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेवे इस घृतको नस्य, अभ्यंग, पान और बस्तिमें प्रयुक्त करनेसे सब प्रकारके शिरोरोग, खांसी, दारुण श्वास, मन्यास्तम्भ, पीठका जकडना, शोष, स्वरभंग, अर्दित, योनिदोष, रक्तदोष और शुक्रदोष दूर होते हैं। तथा इसके सेवनसे वंध्यापन नष्ट होता है एवं ऋतुस्नानसे शुद्ध हुई स्त्री इसके सेवन करनेसे गर्भवती होकर पुत्रको उत्पन्न करती है इस महामायूर घृतकी महर्षि आत्रेयजीने अत्यंत प्रशंसा की है॥ १४९-१५७॥

आखुभिः कुक्कुटैर्हंसैः शशैश्चापि हि बुद्धिमान्।
कल्पेनानेन विपचेत् सर्पिरूर्ध्वगदापहम्॥ १५८॥

अथवा उपरोक्त विधिसे मूषक, मुर्गा, हंस, शशा इनमेंसे किसी एकके मांसको लेकर उपरोक्त मायूरघृतके द्रव्योंके साथ घृत सिद्ध करे तो यह घृतभी ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको दूर करता है॥ १५८॥

पित्तजशिरोरोगकी चिकित्सा।

पैत्ते घृतं पयः सेकाः शीता लेपाः सनावनाः।
जीवनीयानि सर्पींषि पानान्नञ्चापि पित्तनुत्॥ १५९॥

पित्तजनित शिरोरोगमें घृत, दूध, शीतल द्रव्योंसे सेचन, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और पित्तनाशक अन्नपानोंका प्रयोग करना हितकारक है॥ १५९॥

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याच्छृतैर्वा परिषेचनम्॥ १६०॥

चन्दन, खस, मुलैठी, बला, व्याघ्रनखी और नीलोफरको दूधमें पीसकर मस्तकपर लेप करे अथवा इन्हीं द्रव्योंको दूध या जलमें पकाकर शीतल कर मस्तकपर धारा देवे॥ १६०॥

त्वक्पत्रशर्कराकल्कः सुपिष्टस्तण्डुलाम्बुना।
कार्य्योऽवपीडसर्पिश्च नस्यं तत्स्यात्तु पैत्तिके॥ १६१॥

---

१ फलविशेष।

दालचीनी, तेजपत्र और खांडको चावलोंके जलमें पीसकर पोटली बनावे। उस पोटलीका रस नाकमें टपकावे। उसके अनन्तर घृतकी नसवार देवे तो पित्तजनित शिरोरोग दूर होता है ॥ १६१ ॥

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धं घृतं शुभम्।
नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वापि पित्तजे ॥ १६२ ॥

मुलैठी, लालचन्दन और शारिवाका कल्क एक पाव, घी एक सेर, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतकी नस्य लेना पित्तज शिरोरोगको दूर करता है। तथा शर्करा, दाख और मुलैठीसे सिद्ध किये हुए घृतका भी नस्य पित्तज शिरोरोगको दूर करता है ॥ १६२ ॥

कफज शिरोरोगकी चिकित्सा।

कफजे स्वेदितं धूमनस्यप्रधमनादिभिः।
शुद्धं प्रलेपपानान्नैः कफघ्नैः समुपाचरेत् ॥ १६३ ॥

कफजनित शिरोरोगमें प्रथम स्वेदन करके फिर धूम नस्य और प्रधमनादिद्वारा शिरोविरेचन करावे तथा कफनाशक प्रलेपन और अन्नपानका प्रयोग करावे १६३

अन्यशिरोरोगोंमें क्रिया।

पुराणसर्पिषः पानैस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरेव च।
कफानिलोत्थिते दाहः शेषयो रक्तमोक्षणम् ॥ १६४ ॥

पुराने घीके पीनेसे और तीक्ष्ण वस्ति करनेसे कफ और वायुसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग दूर होता है। दाग देनाभी कफवातके शिरोरोगको दूर करता है और सन्निपातज तथा कृमिजन्य शिरोरोगोंमें रक्तमोक्षण करना हितकारक है ॥ १६४ ॥

एरण्डनलदक्षौमगुग्गुल्वगुरुचन्दनैः।
धूमवर्तिं पिबेद्गन्धैः सकुष्ठतगरैस्तथा ॥ १६५ ॥

एरण्डकी जड, खस, गूगुल, अगर और लाल चन्दनका चूर्ण कर धूमवर्त्तिका प्रयोग करे अथवा काली अगर, कूठ और तगरको पीसकर धूमवर्त्ती बनावे। इन दोनों प्रकारकी धूमवर्तियोंके प्रयोग करनेसे कफजनित शिरोरोग दूर होता है॥१६५

सन्निपातभवे कार्य्या सन्निपातहिता क्रिया।
क्रिमिजे चैव कर्त्तव्यं तीक्ष्णं मूर्द्धविरेचनम् ॥ १६६ ॥

सन्निपातके शिरोरोगमें सन्निपातनाशक क्रिया करनी चाहिये। कृमिजन्य शिरोरोगमें तीक्ष्ण मूर्द्धविरेचन कराना हितकारक है ॥ १६६ ॥

त्वग्दन्ती व्याघ्रकरजं विडङ्गं नवमालिका।
अपामार्गफलं बीजं नक्तमालशिरीषयोः।
क्षवकोऽश्मन्तको बिल्वं हरिद्रा हिङ्गु यूथिका॥ १६७॥
फणिज्झकश्च तैस्तैलमविमूत्रे चतुर्गुणे।
सिद्धं स्यान्नावनं चूर्णश्चैषां प्रधमनं हितम्॥ १६८॥

दालचीनी, दन्ती, व्याघ्रनखी, बायबिडंग, नवमालिका (वनमालती), अपामार्गके बीज, करंजुएके फल, शिरसके बीज, क्षवक (नकछिकनी या राई), अश्मंतक, बिल्वकी गीरी, हलदी, फूलप्रियंग, जुही और फणिज्झकतुलसी इन सब द्रव्योंके कल्क और चारगुने भेडके मूत्रसे सिद्धकिये हुए तेलके नस्य लेनेसे सन्निपातज और कृमिजन्य शिरोरोगको दूर करता है। अथवा इन्हीं द्रव्योंके बारीक चूर्णको दोनों नथनोंमें प्रधमन करना (नली द्वारा फूंकना) भी कृमिजन्य मस्तक पीडाको दूर करता है॥ १६७॥ १६८॥

फलं शिग्रुकरञ्जाभ्यां सव्योषश्चावपीडकम्।
कषायः स्वरसः क्षारश्चूर्णकल्कोऽवपीडकः।
शुक्तितिक्तकटुक्षौद्रकषायैः कवलग्रहः॥ १६९॥

सुहांजनेके बीज और करंजके बीजोंके चूर्णको त्रिकुटेके चूर्णमें मिलाकर जलके संयोगसे पोटली बना दोनों नथनोंमें टपकाना तथा इन्हीं द्रव्योंके क्वाथ, स्वरस, क्षार-चूर्ण, कल्क और अवपीडन करना शिरोरोगमें हितकारी है। एवं कटु तिक्त द्रव्योंके क्वाथमें शहद मिलाकर मुखमें धारण कर कुल्ला करना भी शिरोरोगको शान्त करता है॥

वातज मुखरोगके लक्षण।

मुखामये मारुतजे तु शोषकार्कश्यरौक्ष्याणि चला रुजश्च।
कृष्णारुणं निष्पतनं सशीतं प्रस्रंसनस्पन्दनतोदभेदाः॥ १७०॥

वातजनित मुखरोगमें मुखमें सूखापन, कठोरता, रूक्षता, चंचल पीडा, काला, लाल और कुछ २ शीतल मुखसे स्राव होना, दांतोंका हिलजाना मुखमें फडकनसी प्रतीत होना तोद और भेद यह लक्षण होते हैं॥ १७०॥

पित्तज मुखरोगके लक्षण।

तृष्णा ज्वरस्फोटकतालुदाहा धूमायनञ्चाप्यवदीर्णता च।
पित्तात्समूर्च्छा विविधा रुजश्च वर्णाश्च शुक्लारुणवर्णवर्ज्याः॥ १७१॥

पित्तजनित मुखरोगमें प्यास, ज्वर, मुखमें छाले वा पकनेवाले फोडे, तालुमें दाह, मुखमें धूमके समान उठना प्रतीत हो, मुखका अवदारण (दांतोंका निकलना वा हिलना अथवा जखमोंका फटना), मूर्च्छा अनेक प्रकारकी पीडा तथा सफेद और लालवर्णके सिवाय अन्य काले, पीले आदि अनेक प्रकारके वर्ण होना यह लक्षण होते हैं ॥ १७१ ॥

कफज मुखरोगके लक्षण ।

कण्डूर्गुरुत्वं सितविज्जलत्वं स्नेहोऽरुचिर्जाड्यकफप्रसेकौ ।
उत्क्लेशमन्दानलता च तन्द्रा रुजश्च मन्दाः कफवक्त्ररोगे ॥ १७२ ॥

कफजनित मुखरोगमें खुजली, भारीपन, श्वेतवर्ण, गाढा और चिकना स्राव, अरुचि, जडता, कफका निकलना, कफका उत्क्लेश, मंदाग्नि, तन्द्रा और मन्दमन्द पीडा यह लक्षण होतेहैं ॥ १७२ ॥

सन्निपातज मुखरोगके लक्षण ।

सर्वाणि रूपाणि तु वक्त्ररोगे भवन्ति यस्मिन्स तु सर्वजः स्यात् ।
संस्थानदूष्याकृतिनामभेदाच्चैते चतुःषष्टिविधा भवन्ति ॥ १७३ ॥

सान्निपातज मुखरोगमें तीनों दोषोंके मिले जुले लक्षण होते हैं । संस्थान दूष्य और आकृति तथा नामभेदसे मुखरोग चौंसठ प्रकारका होता है ॥ १७३ ॥

शालाक्यतन्त्रे विहितानि तेषां निमित्तरूपाकृतिभेषजानि ।
यथाप्रदेशं तु चतुर्विधस्य क्रियां प्रवक्ष्यामि मुखामयस्य ॥ १७४ ॥

इन मुखरोगोंके निदान और लक्षण आदिका शालाक्यतंत्र[1] अर्थात् शस्त्राचिकित्सामें विशेषरूपसे वर्णन किया है। अब हम केवल वातादिभेदसे चार प्रकारके मुखरोगोंकी चिकित्साका वर्णन करते हैं॥ १७४ ॥

मुखरोगचिकित्सा ।

धूमः प्रधमनं शुद्धिरधश्छर्दनलङ्घनम् ।
भोज्यञ्च मुखरोगेषु यथास्वं दोषनुद्धितम् ॥ १७५ ॥

मुखरोगमें शिरका, तिक्त कसैले और मधुररसोंसे कवल धारणकरना तथा धूमप्रयोग, प्रधमन, विरेचनद्वारा मलाशयकी शुद्धि, वमन, लंघन आर दोपानुसार अन्नपानक्रमद्वारा उपचार करना चाहिये ॥ १७५ ॥

पिप्पल्यादि कवल ।

पिप्पल्यगुरु दार्वी त्वक् यवक्षारो रसाञ्जनम् ।

---

१ शालाक्यतंत्र सुश्रुतमें देखो ।

पाठां तेजोवतीं पथ्यां समभागं सुचूर्णितम् ॥ १७६ ॥
मुखरोगेषु सर्वेषु सक्षौद्रं तद्विधारयेत् ।
शीधुमाधवमाध्वीकैः श्रेष्ठोऽयं कवलग्रहः ॥ १७७ ॥

पीपल, अगर, दारुहल्दी, दालचीनी, जवाखार, रसौत, पाटला, तेजबल, हरड इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको शहद, शीधु, माध्वीक मद्य अथवा मध्वासवमें मिलाकर मुखमें केवल धारण करना सब प्रकारके मुखरोगोंको दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

तेजोवत्यादि चूर्ण ।

तेजोह्वामभयामेलां समङ्गां कटुकां घनम् ।
पाठां ज्योतिष्मतीं लोध्रं दार्वीं कुष्ठञ्च चूर्णयेत् ॥ १७८ ॥
दन्तानां घर्षणाद्रक्तस्रावकण्डूरुजापहम् ॥ १७९ ॥

तेजोवती (तेजबल या चव्य), हरड, छोटी इलायची, मंजीठ, कुटकी, नागरमोथा, पाठा, मालकांगुनी, पठानीलोध, दारुहल्दी और कूठ इन सबको समान भाग ले चूर्ण करे इस चूर्णको दांतोंकी जडोंमें मलनेसे रक्तस्राव, खुजली और पीडा दूर होती है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

पंचकोलादिगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः ।
पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः ।
गुडे पुराणे द्विगुणे क्वथिते गुटिकाः कृताः ॥ १८० ॥
कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि ।
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्य्याः स्युरमृतोपमाः ॥ १८१ ॥

पंचकोल, तालीशपत्र, इलायची, मिर्च, दालचीनी, पलाशका क्षार, मोषावृक्षका क्षार, जवाखार इन सबका चूर्ण कर सबसे दुगुने गुडमें पका बेरके समान गोलियें बनावे । इन गोलियोंको सात दिन तक मोषा (घंटापाढर) की भस्ममें दबाकर रक्खे फिर एक गोली नित्य मुखमें रखनेसे सब प्रकारके मुखरोग और कण्ठरोगोंको दूर करनेमें अमृतके समान है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

कालकचूर्ण ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसाञ्जनम् ।
तेजोह्वा त्रिफला लोध्रं चित्रकश्चेति चूर्णितम् ॥ १८२ ॥

सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ १८३ ॥

घरका धूआं, जवाखार, पाटला, सोंठ, मिर्च, पीपल, रसौत, तेजोवती, हरड, बहेडे, आँवले, लोध और चित्रकका बराबर लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करनेसे सब प्रकारके कंठ (कुष्ठ) रोग दूर होतेहैं। यह कालकनामका चूर्ण दंतरोग, मुखरोग और गलरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

पीतकचूर्ण।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।
दार्वीत्वक् चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ १८४ ॥
मूर्च्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्त्तितम् ॥ १८५ ॥

मनशिल, जवाखार, हरताल, सैंधानमक, दारुहल्दी, दालचीनी इन सबके चूर्णको शहद और घृतमण्डमें मिलाकर मुखमें धारण करे तो यह पीतकचूर्ण कण्ठरोग और मुखरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

मृद्वीकादिचूर्ण।

मृद्वीका कटुका व्योषं दार्वी त्वक् त्रिफला घनम् ।
मूर्च्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ॥ १८६ ॥

मुनक्का, कुटकी, सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, हरड, बहेडे, आँवले और नागरमोथेका चूर्ण कर घृतमण्डमें मिला मुखमें धारण करे तो मुखरोग दूर होताहै ॥ १८६ ॥

पाठां रसाञ्जनं मूर्वां तेजोह्वेति च चूर्णितम् ।
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे भिषग्जितम् ।
योगास्त्वेते त्रयः प्रोक्ता वातपित्तकफापहाः ॥ १८७ ॥

पाटला, रसौत, मूर्वा और तेजोवतीको समान भाग लेकर शहत और घृतमण्डमें मिला मुखमें धारण करे तो सब प्रकारके कण्ठरोग दूर होते हैं। यह तीन योग अर्थात् कालकचूर्ण वातजनित मुखरोगको, पीतकचूर्ण पित्तजनित मुखरोगको और मृद्वीकादिचूर्ण कफजनित मुखरोगको दूर करता है ॥ १८७ ॥

कटुकातिविषापाठादार्वीमुस्तकलिङ्गकाः ।
गोमूत्रक्कथिताः पेयाः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ १८८ ॥

कुटकी, अतीश, पाटला, दारुहल्दी, मोथा और इन्द्रजौको गोमूत्रमें मिला क्वाथ कर पीवे तो कण्ठरोगको दूर करता है॥ १८८॥

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया।
सक्षौद्रो मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ १८९॥

दारुहल्दीका क्वाथ शहद मिला मुखमें धारण करनेसे मुखरोग, रक्तविकार और नाडीव्रण नष्ट होते हैं ॥ १८९ ॥

तालुशोषे सतृष्णास्य सर्पिषोत्तरभक्तिकम्।
नावनं मधुराः स्निग्धाः शीताश्चैव रसा हिताः ॥ १९० ॥

तालुके शोष और प्यासमें उत्तरभक्तिक घृतका सेवन करना हितकारी है। तथा मधुर, स्निग्ध और शीतल मांसरस भी गुणकारक होता है ॥१९० ॥

मुखपाकका यत्न।

मुखपाके शिराकर्म्म शिरःकायविरेचनम्।
मूत्रतैलघृतक्षौद्रक्षीरैश्च कवलग्रहः ॥ १९१ ॥

मुखपाकमें शिरामोक्षण, शिरोविरेचन और कायविरेचन करना तथा गोमूत्र, तेल, घृत, शहद और दूधका कवल धारण करना हितकारी है ॥ १९१ ॥

सक्षौद्रास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः।
कषायतिक्तकाः शीताः क्वाथाश्च मुखधावनाः ॥ १९२ ॥

त्रिफला, पाटला, मुनक्का, चमेलीके पत्ते इन सबके क्वाथसे शहद मिलाकर कुल्ले करना तथा कसैले और कषाय तिक्त और शीतल द्रव्योंके क्वाथसे कुल्ले करना मुख-पाकको दूर करता है ॥ १९२ ॥

खदिरादिगुटिका तथा तैल।

तुलां खदिरसारस्य द्वितुलामरिमेदसः।
प्रक्षाल्य जर्जरीकृत्य चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥१९३॥
द्रोणशेषं कषायं तं पक्त्वा भूयः पचेच्छनैः।
ततस्तस्मिन् घनीभूते चूर्णीकृत्याक्षभागिकम् ॥ १९४ ॥
चन्दनं पद्मकोशीरं मञ्जिष्ठाधातकीघनम्।
प्रपौण्डरीकं यष्ट्याह्वत्वगेलापद्मकेशरम् ॥ १९५ ॥

लाक्षारसाञ्जनं मांसीत्रिफलालोध्रवालकम्।
रजन्यौ फलिनीमेलां समङ्गां कट्फलं वचाम्॥ १९६॥
यवासागरुपत्तङ्गगैरिकाञ्जनमावपेत्।
लवङ्गलखकक्कोलजातिकोशान् पलोन्मितान्॥ १९७॥
कर्पूरकुडवश्चापि पुनः शीतेऽवतारिते।
ततस्तु गुलिकाः कार्य्याः शुष्काश्चास्येन धारयेत्॥ १९८॥
तैलश्चानेन कल्केन कषायेण च साधयेत्।
दन्तानां चलनं भ्रंशं सौषिर्य्यंक्रिमिरोगनुत्॥ १९९॥
मुखपाकास्यदौर्गन्ध्यजाड्यारोचकनाशनम्।
स्रावोपलेपपैच्छिल्यवैस्वर्य्यगलरोगनुत्।
दन्तास्यगलरोगेषु सर्वेषां तत्परायणम्॥ २००॥

खैरसार ५ सेर, अरिमेद (बिडखादिर), खैरका सार १० सेर इन दोनोंको धोकर ऊपरका गर्दा दूर कर ६४ सेर जलमें पकावे। जब १६ सेर बाकी रहे तो उतारकर छानले फिर इस छने हुए पानीको मंदमंद अग्निसे पकावे। जब पकते २ गाढा होजाय तो उसमें लालचन्दन, पद्माख,खस, मंजीठ, धावेके फूल, नागरमोथे, पंडचारेके छिलके, मुलैठी, दालचीनी, इलायची, कूठ,नागकेशर, लाख, रसौत, जटामांसी, हरड, बहेडे, आँवले, पठानीलोध, नेत्रवाला, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, बडी इलायची, मंजीठ, कायफल, वच, जवासा,अगर,पतंग और गेरू तथा अंजन यह प्रत्येक एक एक तोला लेके बारीक चूर्ण बना उपरोक्त खैरसारकी चासनीमें मिलावे फिर उतार कर शीतल होनेपर लौंग, नखीनामक गंधद्रव्य, कंकोल, जावित्री यह चार चार तोला ले बारीक चूर्णकर मिलावे तथा एक पाव शुद्ध कपूर मिलावे फिर इसकी तीन तीन मासेकी गोलियें बनाकर सुखालेवे। एक गोली नित्य मुखमें धारण करे। अथवा इन्हीं उपरोक्त द्रव्योंके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल मुखमें धारण करे तो दांतोंका हिलना, दांतोंका गिरना, दांतोंमें छिद्र होना, दंतकृमि, मुखपाक, मुखदुर्गंध, मुखकी जडता, अरुचि, मुखस्राव, उपलेप, पिच्छिलता, स्वरभंग और कण्ठरोग यह सब दूर होते हैं। यह खदिरादिगुटिका, दांत, मुख और गलेके संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें परमोत्तम है॥ १९३-२००॥

अरुचिके ५ भेद।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनगन्धरूपैः।

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे चार प्रकारकी अरुचि उत्पन्न होती है और पांचवीं भय, शोक, अत्यंत लोभ, क्रोध, मनके बिगाडनेवाले भोजन, गंध और रूपसे उत्पन्न होतीहै ।

वातज अरुचिके लक्षण ।

अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तकषायवक्त्रस्य मतोऽनिलेन ॥ २०१ ॥

वातजनित अरुचिमें दंतहर्ष और मुखका स्वाद कसैला होताहै ॥ २०१ ॥

पित्तज अरुचि ।

कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रम् ।

पित्तज अरुचिमें, मुखका स्वाद कटु, अम्ल, गरम और विरस, दुर्गंधयुक्त तथा नमकीन होता है ।

कफज अरुचिके लक्षण ।

माधुर्य्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबन्धसंबद्धयुतं कफेन ॥ २०२ ॥

कफजनित अरुचिमें मुख मीठा, लवाबदार, भारी और शीतल होता है तथा मलका विबंध होता है ॥ २०२ ॥

मनोविकारजन्य और त्रिदोषज अरुचि ।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशयगन्धजे स्यात् ।

स्वाभाविकश्चास्यरसोऽरुचिश्च त्रिदोषजं नैकरसं भवेत्तु ॥ २०३ ॥

जो अरुचि-शोक, भय, अतिलोभ अथवा हृदयके बिगाडनेवाले अन्न, गंध तथा रूपसे उत्पन्न होती है उस अरुचिमें मुखका स्वाद स्वाभाविक रहता है । और सन्निपातकी अरुचिमें तीनों दोषोंके अनेक प्रकारके रसोंवाला मुखका स्वाद होता है२०३

अरोचकचिकित्सा ।

अरुचौ कवलग्राहा धूमाः समुखधावनाः ।

मनोज्ञमन्नपानञ्च हर्षणाश्वासनानि च ॥ २०४ ॥

अरुचिमें कवल धारण, घूमपान, कुल्ले करना, मनोज्ञ अन्न पान, हर्ष उत्पन्न करनेवाली और धीरज देनेवाली वार्तालाप करना हितकारक है ॥ २०४ ॥

अरुचिनाशक योग ।

कुष्ठसौवर्चलाजाजी शर्करा मरिचं विडम् ।

धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम् ॥ २०५ ॥

लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।

आर्द्रा दाडिमनिर्य्यासाश्चाजाजीशर्करायुताः ॥ २०६ ॥

सतैलमाक्षिकास्त्वेते चत्वारः कवलग्रहाः।
चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ २०७ ॥

कूठ, संचरनमक, काला जीरा, खांड, मिर्च और बिडलवणका चूर्ण कर तेल और शहदके साथ मिलाकर मुखमें धारण करनेसे वातजनित अरुचि दूर होती है। आँवले इलायची, पद्माख, खस, पीपल, नील कमल और लालचंदनके तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे पित्तजनित अरुचि दूर होती है। पठानीलोध, तेजोवती, हरड, त्रिकुटा और जवाखारके चूर्णको उसी प्रकार तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे कफकी अरुचि दूर होती है। एवं अदरखका रस, अनारका रस, काला जीरा और खांडको तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे सन्निपातकी अरुचि दूर होती है ॥ २०५-२०७ ॥

कारवी मरिचाजाजी द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम्।
सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ २०८ ॥

कलौंजी, काली मिर्च, काला जीरा, द्राक्षा, अम्लवेत, अनारदाना, संचरनमक गुड और शहद इन सबको मिलाकर मुखमें केवल धारण करनेसे सब प्रकारकी अरुचि दूर होती है ॥ २०८ ॥

वस्तिः समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे।
कुर्य्याद्धृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च मनोघ्नजे ॥ २०९ ॥

वायुकी अरुचिमें वस्तिकर्म, पित्तकी अरुचिमें विरेचन और कफकी अरुचिमें वमन कराना चाहिये। तथा मनके विकारसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मनके अनुकूल और हृदयको प्रसन्न करनेवाली अन्नपान क्रिया आदि करना चाहिये ॥ २०९ ॥

वातजकर्णरोगके लक्षण।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणञ्च वातात्।

वातजनित कर्णरोगमें कानोंमें शब्द होना, कानोंमें तीव्र पीडा, कानके मैलका सूखजाना, पतला स्राव होना तथा सुनाई न देना यह लक्षण होते हैं।

पित्तजकर्णरोगके लक्षण।

शोफः सरागोदरणं विदाहः सपीतपूतिश्रवणञ्च पित्तात् ॥ २१० ॥

पित्तजनित कर्णरोगमें-सूजन, लालवर्ण, कानमें फटनेकीसी पीडा होना, दाह और दुर्गंधयुक्त पीले वर्णका स्राव होना यह लक्षण होते हैं ॥ २१० ॥

कफजकर्णरोगके लक्षण।

वैश्रुत्यकण्डू स्थिरशोफशुक्लस्निग्धा स्रुतिः श्लेष्मभवेऽल्परुक् च।

कफक कर्णरोगमें वैश्रुत्य अर्थात् कुछकाकुछ सुनाई देना या न सुनना, खुजली, स्थिर सूजन, सफेद और चिकना स्राव होना तथा मन्द मन्द पीडा होना यह लक्षण होते हैं।

सन्निपातज कर्णरोग।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपातात् स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्गः ॥ २११ ॥

जिस कर्णरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण प्रतीत हों उसको सन्निपातका कर्णरोग जानना। तथा सन्निपातक कर्णरोगमें जो स्राव होता है वह अनेक प्रकारका और अधिक तथा नानावर्णवाला होता है ॥ २११ ॥

कर्णरोगकी चिकित्सा।

कर्णशूले तु वातघ्नी हिता पीनसवत्क्रिया।
प्रदेहाः पूरणं नस्यं पाकस्रावे व्रणक्रियाः ॥ २१२ ॥

कानके शूलमें पीनसरोगके समान वातनाशक क्रिया, प्रलेप, कर्णपूरण और नस्यक्रिया हितकारक है। कानके पकनेपर और कर्णस्रावमें व्रणरोगके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ २१२ ॥

भोज्यानि च यथादोषं कुर्य्यात्स्नेहांश्च पूरणान्।
हिङ्गुतुम्बुरुशुण्ठीभिस्तैलं च सार्षपं पचेत्।
एतद्धि पूरणं श्रेष्ठं कर्णशूलनिवारणम् ॥ २१३ ॥

कर्णरोगमें दोषानुसार भोजन और स्नेहोंद्वारा कर्णपूरण करना चाहिये जैसे हींग, नैपाली धनियां और सोंठके कल्कसे पकायाहुआ सरसोंका तेल कानमें भरनेसे कानका शूल दूर होता है ॥ २१३ ॥

देवदारुवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः।
तैलं सिद्धं बस्तमूत्रे कर्णशूलनिवारणम् ॥ २१४ ॥
वराटकान् समाहृत्य दहेन्मृद्भाजने नवे।
तद्भस्म च्योतयेत्तेन गन्धतैलं विपाचयेत्।
रसाञ्जनस्य शुण्ठ्याश्च कल्काभ्यां कर्णशूलनुत् ॥ २१५ ॥

देवदारु, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सेंधेनमकके कल्कसे बकरीका मूत्र मिलाकर तेलको सिद्ध करे। इस तैलको कानमें डालनेसे कानकी पीडा नष्ट होती है पीली कौडियोंको इकट्ठीकर नवीन मिट्टीके बरतनमें भर फूक देवे। फिर कौडियोंकी

भस्म निकालकर आठगुने जलमें घोलकर इक्कीस बार छान लेवे। इस जलसे और रसौत तथा सोंठके कल्कसे तेलको पकावे। सिद्ध होनेपर इस तेलको कानमें टपकावें तो कानकी पीडा दूर होती है ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

क्षारतैल।

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु महौषधम् ॥ २१६ ॥
शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिग्रु रसाञ्जनम्।
सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ॥ २१७ ॥
भूर्जग्रन्थि विडं मुस्तं मधु शुक्तं चतुर्गुणम्।
मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च ॥ २१८ ॥
सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैः क्षारतैलं विपाचयेत्।
बाधिर्य्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः ॥ २१९ ॥
क्रिमयः कर्णशूलश्च पूरणादस्य नश्यति।
मुखकर्णाक्षिरोगेषु यथोक्तं पीनसे विधिम्।
कुर्य्याद्भिषक् समीक्ष्यादौ दोषकालबलाबलम् ॥ २२० ॥

सूखी मूलीका क्षार, सोंठका क्षार, हींग, सोंठ, सौंफ, वच, कूठ, दारुहल्दी, सोहांजनेकी छाल, रसौत, संचरनमक, जवाखार, सज्जीखार, उद्भिदनमक, सेंधानमक, भोजपत्रकी गांठ, विडनमक और नागरमोथाका कल्क करके पावभर शहदसे बना सिरका चार सेर, बिजौरेका रस, केलेका रस प्रत्येक चार सेर, तेल एक सेर इन सबको मिलाकर पकावे। तेल मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तेलको कानमें टपकानेसे बधिरता, कर्णनाद, कानसे राधका दारुणस्राव, कानके कृमि और कर्णशूल यह सब दूर होते हैं। यह क्षारतैल दोष, बल और काल विचारकर वैद्य मुखरोग, कर्णरोग, अक्षिरोग और पीनसरोगमें प्रयुक्त करे ॥ २१६-२२० ॥

नेत्ररोगनिदान।

वातजनेत्ररोगके लक्षण।

अल्पाश्रुरागाऽनुपदेहता च प्रस्पन्दतोदातिरुजश्च वातात्।

वातजनितनेत्ररोगमें-अल्प अश्रुपात होना, नेत्र लाल होना, नेत्रोंका चिपकेहुए न होना, नेत्र फडकना, चींटींके काटनेकेसे चमके लगना और पीडा होना यह लक्षण होते हैं ॥

पित्तजनेत्ररोगके लक्षण।

पित्तात्तु दाहार्त्तिरुजोऽतिरागाः पीतोपदेहः सुभृशोष्णमस्रम् ॥ २२१ ॥

पित्तजनितनेत्ररोगमें-दाह, पीडा, यातना, अत्यंत लाली, पीले वर्णकी चिपचिपाहट और गरम तथा पीतवर्ण अश्रुओंका स्राव होना यह लक्षण होते हैं ॥२२१॥

कफजनेत्ररोगके लक्षण।

शुक्लोपदेहो बहुपिच्छिलास्रुनेत्रस्य खेदाद्गुरुता सकण्डूः।

कफजनितनेत्ररोगमें-सफेदवर्णका क्लेद, बहुत और गाढा कीच नेत्रोंमें भरा हुआ होना, गाढे क्लेदका स्राव, नेत्रोंमें भारीपन और खुजली यह लक्षण होते हैं॥

सन्निपातजनेत्ररोग।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपातान्नेत्रामयाः षण्णवतिस्तु भेदात् २२२ ॥

सन्निपातके नेत्ररोगमें-तीनों दोषोंके मिलेजुले लक्षण होते हैं। संपूर्ण नेत्ररोगोंके ९६ छयानवें भेद हैं ॥ २२२ ॥

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टा शालाक्यतन्त्रेषु चिकित्सितञ्च।

पराधिकारे तु न विस्तरोक्तिः शस्तेति तेनात्र न नः प्रयासः ॥ २२३ ॥

उन सब प्रकारके नेत्ररोगोंका विशेष वर्णन और चिकित्सा शालाक्यतंत्रोंमें वर्णन की है अर्थात् शालाक्य शास्त्रके जाननेवालोंने विशेष वर्णन किया है परन्तु हमने अपने शास्त्रमें पराई युक्तिका विशेषकर वर्णन करना वृथा प्रयास समझा है इसलिये वह क्रिया उन्हीं (सुश्रुत, वाग्भट) शास्त्रोंमें देखना चाहिये ॥ २२३ ॥

नेत्ररोगचिकित्सा।

नेत्ररोगे समुत्पन्ने तरुणे तु विडालकः।

कार्य्यो दाहोपदेहाश्रुशोफरागनिवारणः ॥ २२४ ॥

नेत्ररोगोंमें उत्पन्न होते ही विडालनामक लेपके करनेसे दाह, क्लेद, अश्रुपात, सूजन और लाली दूर होजाती है ॥२२४॥

वातजनेत्ररोगकी चिकित्सा।

नागरं सैन्धवं सर्पिर्मण्डेन च रसक्रिया।

निघृष्टं वातिके तद्वन्मुस्तसैन्धवगैरिकम् ॥ २२५ ॥

तथा शावरकं लोध्रं घृतभृष्टं विडालकः।

कार्य्या हरीतकी तद्वद् घृतभृष्टा रुजापहा ॥ २२६ ॥

वातजनेत्ररोगमें-सोंठ और सेंधानमकको घृतमें मिलाकर अथवा सेंधानमक, गेरू और नागरमोथेको घृतमें मिला टिकियासी बना नेत्रोंपर रखनेसे वातजनित नेत्ररोग दूर होता है। यह दोनों उत्तम बिडालक योग हैं अथवा सफेद लोधके कल्कको घीमें सिद्धकर गरम २ टिकियासी नेत्रपर रक्खे या हरडके कल्कको घीमें भूनकर नेत्रोंपर लगावे तो यह रसक्रिया वातजनित नेत्ररोगको दूर करनेके लिये उत्तम योग है ॥ २२५ ॥ २२६ ॥

पित्तजनेत्ररोगकी चिकित्सा।

पैत्तिके चन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिर्विडालकः।
कार्य्यः पद्मकयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा।
गैरिकं सैन्धवं मुस्तं रोचना च रसक्रिया ॥ २२७ ॥

पित्तके नेत्ररोगमें-लाल चंदन, शारिवा और मंजीठके कल्कसे नेत्रोंपर बिडालक अर्थात् बाहरी गाढा लेप करे। अथवा पद्माख, मुलैठी, जटामांसी और काली अगर लेकर नेत्रोंपर गाढा लेप करे। पित्तजनित नेत्ररोगमें-गेरू, सेंधानमक, नागरमोथा और गोरोचनकी रसक्रिया करना हितकारक है ॥ २२७ ॥

कफजनित नेत्ररोगकी चिकित्सा।

कफे कार्य्यस्तथा क्षौद्रप्रियङ्गुः समनःशिलः ॥ २२८ ॥

कफजनितनेत्ररोगमें-शहद, प्रियंगु और मनसिलका नेत्रोंपर बिडालक नामका लेप करना चाहिये ॥ २२८ ॥

सन्निपातजनित नेत्ररोगकी चिकित्सा।

सन्निपाते तु सर्वैः स्याद्बहिरक्ष्णोः प्रलेपनम्।
पक्ष्मण्यस्पृश्यता कार्या सम्पाके त्वञ्जनं त्र्यहात् ॥ २२९ ॥

सन्निपातके नेत्ररोगमें-तीनों दोषोंके नाश करनेवाले बाहरी लेप करने चाहिये। संपूर्ण नेत्ररोगोंमें तीन दिन तक किसी प्रकारका भी नेत्रोंके भीतर डालनेका अंजन प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। तीन दिनके अनन्तर दोषोंके पकजानेपर नेत्रोंको धोकर नेत्रोंके भीतर अंजन डाले। परन्तु पलकोंपर न लगावे ॥ २२९ ॥

वातजनेत्ररोगमें आश्च्योतन।

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिः शुभः।
कोष्णः सैरण्डतर्कारीबृहतीमधुशिग्रुभिः ॥ २३० ॥

वातजनितनेत्ररोगमें-बिल्वादि पंचमूल, एरण्डकी जड, अरणी, बडी कटेली, सुहांजनेके छिलके इन सबका क्वाथ बनाकर नेत्रोंपर आश्च्योतन (सेचन) करे ॥ २३० ॥

रक्तपित्तजनित नेत्ररोगपर सेचन।

द्राक्षादार्वीसमञ्जिष्ठालाक्षाद्विमधुकोत्पलैः ।
क्वाथः सशर्करः शीतः पूरणं रक्तपित्तनुत् ॥ २३१ ॥

द्राक्षा, दारुहल्दी, मंजीठ, लाख, महुएके फूल, मुलैठी और नीलोफरका मिसरीयुक्त क्वाथ शीतल करके नेत्रोंपर सेचन करे तो रक्तपित्तजानित नेत्ररोग दूर होता है ॥ २३१ ॥

कफज और सन्निपातजनेत्ररोगपर सेचन।

नागरं त्रिफलामुस्तनिम्बवासारसः कफे ।
कोष्णमाश्च्योतनं मिश्रैरौषधैः सन्निपातके ॥ २३२ ॥

सोंठ, हरड, बहेडे, आँवले, नागरमोथा, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका क्वाथ गरम गरम नेत्रोंपर सेचन करे तो कफजनित नेत्ररोग शान्त हो। सन्निपातके नेत्ररोगोंमें त्रिदोषनाशक योगोंके क्वाथसे सेचन करे ॥ २३२ ॥

वातजनेत्ररोगहर वर्ति।

बृहत्येरण्डमूलत्वक्शिग्रोः पुष्पं ससैन्धवम् ।
अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ २३३ ॥

बडी कटेलीकी जडका छिलका, एरण्डकी जडका छिलका, सुहांजनेके फूल, सेंधा-नमक इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनावे। इस बत्तीको जलमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे वातजनित नेत्ररोग दूर होता है ॥ २३३ ॥

पित्तजनेत्ररोगहर वर्ति।

सुमनः क्षारकाः शंखास्त्रिफला मधुकं बला ।
पित्तरक्तापहा वर्त्तिः पिष्टा दिव्येन वारिणा ॥ २३४ ॥

मालतीके फूलोंकी भस्म, शंखभस्म, त्रिफला, मुलैठी और बलाकी जडको आकाशके जलमें घोटकर बत्ती बनावे। यह बत्ती नेत्रोंमें आंजनेसे रक्तापित्तजानित नेत्ररोगको दूर करती है ॥ २२४ ॥

कफजनेत्ररोगहर वर्ति।

सैन्धवं त्रिफला व्योषं शंखनाभिः समुद्रजः ।
फेनः शैलेयकं सर्जो वर्त्तिः श्लेष्माक्षिरोगनुत् ॥ २३५ ॥

सेंधानमक, त्रिफला, त्रिकुटा, शंखकी नाभि, समुद्रफेन, शैलज और राल इन सबको पीसकर बत्ती बनावे। यह बत्ती कफजनित नेत्ररोगको दूर करती है॥२३५॥

१-दृष्टिप्रसादनी वर्ति।

प्रपौण्डरीकं यष्टयाह्वं दार्वीञ्चाष्टपलांशिकाम् ।
जले पक्त्वा रसे पूते पुनः पक्के रसे घने ॥ २३६ ॥
कर्षश्च श्वेतमरिचा द्रोणीपुष्पा नवोत्पलम् ।
चूर्णं क्षिप्त्वा कृता वर्त्तिः सर्वघ्नी दृक्प्रसादनी ॥ २३७ ॥

पंडचारेकी छाल, मुलैठी और दारुहल्दीको आठ आठ पल लेकर १६ गुने जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर इस काथको पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय तो इसमें सुहांजनेके बीजोंका चूर्ण एक कर्ष, द्रडगल (गुम्मा) के फूल एक कर्ष, नवीन नीलकमलके फूल एक कर्ष इनको बारीक पीसकर उपरोक्त पाकमें मिलाकर वत्ती बनावे। यह बत्ती सब प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करनेवाली तथा नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

२-दृष्टिप्रसादनी वर्त्ति।

अमृता मधुकं निम्बपटोलं छागलं शकृत् ।
वासा प्रपौण्डरीकं च दार्वी कालानुसारिणी ॥ २३८ ॥
एषामष्टपलान्भागान् सुधौताञ्जर्जरीकृतान् ।
तोये पक्त्वा रसे पूते भूयः पक्के घने रसे ॥ २३९ ॥
सितामरिचयोः कर्षं जातिपुष्पान्नवोत्पलम् ।
चूर्णं कृत्वा कृता वर्त्तिः सर्वघ्नी दृक्प्रसादनी ॥ २४० ॥

अमृता (हरड), मुलैठी, नीम, पटोलपत्र, बकरीकी मेंगन, वांसा, पंड्यारेकी छाल, दारुहलदी और तगर इनको आठ आठ पल लेकर जलसे धोडाले। फिर कूटकर १६ गुने जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस छने-हुए जलको फिर पकावे। जब गाढा होनेपर आवे तो मिसरी, सफेद मिर्च, चमेलीके फूल, नवीन नीलकमल यह सब एक एक कर्ष लेकर बारीक पीस उपरोक्त पाकमें मिलावे। फिर इसकी वत्तियें बनाकर रक्खे। इस बत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं। और दृष्टि प्रसन्न रहती है ॥ २३८-२४० ॥

शंखनाभ्यादिवर्ति।

शंखप्रवालवैडूर्य्यलौहताम्रप्लवास्थिभिः ।
स्रोतोऽञ्जश्वेतमरिचैर्वर्त्तिः सर्वाक्षिरोगनुत् ॥ २४१ ॥

शंखकी नाभी, मूंगेकी भस्म, वैडूर्यभस्म, लोहभस्म और ताम्रभस्म, मेढककी हड्डी, काला सुरमा, सफेद मिर्च इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनावे। इस बत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ २४१ ॥

चूर्णांजन।

शाणार्द्धं मरिचाद्द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः।
शाणार्द्धं सैन्धवाच्छाणं नवसौवीरकाञ्जनात् ॥२४२॥
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम्।
कण्डूकाचकफार्त्तानां मलानाञ्च विशोधनम् ॥ २४३ ॥

सफेद मिर्च, पीपल, समुद्र झाग चार चार माशे, सेंधानमक दो माशे, सफेद सुरमा चार माशे इन सबको चित्रा नक्षत्रमें पीसकर सिरसके रसमें भावना देकर अंजन बनावे। यह अंजन नेत्रोंमें आंजनेसे काच, खुजली, क्लेद, कफविकार और नेत्रोंके मलको दूर करता है। यह परमोत्तम चूर्णांजन है। किसीके मतमें इसको सिरसके रसकी भावना दिये ही विना चित्रानक्षत्रमें सूक्ष्म चूर्णकर लेना चाहिये२४२॥२४३

एलांजन।

बस्तमूत्रे त्र्यहं स्थाप्यमेलाचूर्णं सुभावितम्।
चूर्णाञ्जनञ्च तैमिर्य्यक्रिमिपैल्यमलापहम् ॥ २४४ ॥

बकरीके मूत्रमें इलायचीके चूर्णको तीन दिन भावना देवे। फिर सूक्ष्म चूर्ण कर नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग, नेत्रकृमि और नेत्रोंका मल दूर होता है ॥ २४४ ॥

चक्षुष्यांजन।

सौवीरमञ्जनं तुत्थं ताप्यो धातुर्मनःशिला।
चक्षुष्यं मधुकं लोहमणयः पौष्पमञ्जनम् ॥ २४५ ॥

सफेद सुरमा, नीलाथोथा, सोनामक्खी, मैनशिल, मुलैठी, लोहभस्म और मोती वैडूर्य आदि मणियें और चमेलीके फूलोंको बारीक पीस अंजन करे तो नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ २४५ ॥

सैन्धवाद्यञ्जन।

सैन्धवं शौकरी दंष्ट्रा कतकश्चाञ्जनं शुभम्।
तिमिरादिषु चूर्णं वा वर्त्तिर्वेयमनुत्तमा ॥ २४६ ॥

सेंधानमक, सूअरका दांत, निर्मलीके बीज इन तीनोंको पीसकर बत्ती बनावे यह बत्ती तिमिररोगको दूर करनेमें परमोत्तम है। अथवा इन्ही तीनों द्रव्योंका सूक्ष्म चूर्ण बना नेत्रमें अंजन करे ॥ २४६ ॥

सुखावती वर्त्ति।

कतकस्य फलं शंखः सैन्धवं त्र्यूषणं सिता।
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥ २४७ ॥
कुक्कुटाण्डकपालञ्च वर्त्तिरेषा व्यपोहति।
तिमिरं पटलं काचं मलञ्चाशु सुखावती ॥ २४८ ॥

निर्मलीके फल, शंखकी नाभि, सेंधानमक, त्रिकुटा, मिसरी, समुद्रझाग, रसौत, शहद, बायविडंग, मैनसिल, मुर्गेके अण्डेका छिलका इन सबको बारीक पीसकर चूर्णांजन अथवा बत्ती बनावे। इसको नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग, पटलरोग, कांच और नेत्रोंका मल दूर होता है। यह सुखावती वर्त्ती नेत्रोंको परम हितकारी है ॥४८॥

दृष्टिप्रदा वर्त्ति।

त्रिफला कुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसो रजः।
नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनञ्च सरितां पतेः ॥ २४९ ॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने।
सप्तरात्रं स्थितं भूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्तयेत्।
एषा दृष्टिप्रदा वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ॥ २५० ॥

हरड, बहेडे, आँवले, मुर्गेके अण्डोंका सफेद छिलका, कशीश, लोहरज (लोह भस्म), नीलकमल, बायबिडंग, समुद्रझाग इन सबको तांबेकी खरलमें बकरीके दूधसे घोट बकरीके दूधकी सात दिन तक भावना देतारहे। फिर सात दिनके बाद बकरीके दूधसे ही बत्तियें बनावे। यह बत्ती नेत्रोंमें आंजनेसे अंधे और फूटी आखों-वालोंको भी ज्योति देनेवाली है ॥ २४९ ॥ २५०॥

तिमिररोगनाशक अंजन।

वदने कृष्णसर्पस्य निहितं मासमञ्जनम्।
ततस्तस्मात्समुद्धृत्य सशुष्कं चूर्णयेद् बुधः ॥२५१॥
सुमनःक्षारकैः शुष्कैरर्द्धांशैः सैन्धवेन च।
एतन्नित्याञ्जनं कार्यं तिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥ २५२ ॥

एक काले सांपको मारकर उसके मुखमें अंजनकी डली रख एक महीना रक्खा रहनेदें। महीनेके बाद उस अंजनको निकालकर सुखा लेवे और उसका बारीक चूर्ण करे। यह अंजन एक तोला, चमेलीके फूलोंकी भस्म आधा तोला और सैंधानमक

आधा तोला मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे । इसको नित्य नेत्रोंमें आंजनेसे घोर तिमिररोग भी दूर होता है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

रसायन अंजन ।

पिप्पल्यः किंशुकरसो वसा सर्पस्य सैन्धवम् ।
जीर्णं घृतञ्च सर्वाक्षिरोगघ्नी स्यादुपक्रिया ॥ २५३ ॥

पीपलका चूर्ण, ढाकका रस, काले सांपकी चर्वी, सेंधानमक और पुराना घृत इन सबको मिलाकर बारीक पीसकर अंजन करे तो यह रसायन अंजन सबप्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करता है ॥ २५३ ॥

रसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसा क्षौद्रं रसो धात्र्या रसक्रिया ।
शस्ता सर्वाक्षिरोगेषु काचार्बुदमलेषु च ॥ २५४ ॥

काले सांपकी चर्वी, शहद और आमलेके रसको उत्तम रीतिसे मिलाकर नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग, काच और नेत्रार्बुद तथा नेत्रोंका मल दूर होता है॥

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तु रसक्रिया ।
पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नी तैमिर्य्यपटलापहा ॥ २५५ ॥

आंवलेका रस, रसौत, शहद और घृतको विधिवत् मिला नेत्रोंमें अंजन करे तो पित्त और रक्तजनित नेत्ररोग, तिमिर और पटलरोग नष्ट होते हैं ॥ २५५ ॥

धात्रीसैन्धवपिप्पल्यः स्युरल्पमरिचाः समाः ।
क्षौद्रयुक्ता निहन्त्यान्ध्यं पटलञ्च रसक्रिया ॥ २५६ ॥

आँवले, सेंधानमक और पीपल एक एक तोला, सफेद मिरच तीन माशे इन सबको बारीक पीस शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजे तो यह रसक्रिया अंधता और पटलरोगको दूर करती है ॥ २५६ ॥

खालित्यरोगका निदान ।

तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिं दग्ध्वाशु कुर्य्यात् खलितं नरस्य ।
किञ्चित्तु दग्ध्वा पलितानि कुर्य्याद्धरित्प्रभत्वञ्च शिरोरुहाणाम्॥२५७

तेज (पित्त) वायुके साथ मिलकर केशभूमि (शिर) में प्राप्त होकर केशोंकी जड़ोंको दग्ध कर खालित्य (गंजापन) को उत्पन्न करती है । यदि केशभूमिको वातयुक्त तेज संपूर्ण रूपसे दहन न करे तो सफेद अथवा पीले वर्णके केशोंको बना-देता है ॥ २५७ ॥

खालित्यकी चिकित्सा।

इत्यूर्द्धजत्रूत्थगदैकदेशः प्रोक्तश्चिकित्सां तु परां निबोध।
विस्तारतः संग्रहतश्च सम्यग्यथाक्रमं सौम्य मयोच्यमानाम् ॥ २५८ ॥

हे सौम्य ! इसप्रकार उर्ध्वजत्रुगत रोगोंको अर्थात् शिरोरोग, मुखरोग, कर्णरोग आदि रोगोंका एक एक देशसे संक्षेप और विस्तारपूर्वक वर्णन करचुके हैं। अब यथाक्रम खालित्य और पलित आदि रोगोंकी चिकित्साको सुनो ॥ २५८ ॥

खालित्ये पलिते वल्यां हरिल्लोम्नि च शोधितम्।
नस्यस्तलः शिरोवक्त्रप्रलेपैश्चाप्युपाचरेत् ॥ २५९ ॥

खालित्य (शिरके बाल उडजाना), पलित (बालोंका सफेद होजाना), वली (शरीरमें सलवट पडना) और बालोंके पीले होजानेमें रोगीको प्रथम शोधन कराके फिर नस्य, तेल, शिरप्रलेप और मुखलेप आदि क्रिया करे ॥ २५९ ॥

सिद्धं विदारीगन्धाद्यैर्जीवनीयैरथापि च।
नस्यं स्यादणुतैलं वा खालित्यपलितापहम् ॥ २६० ॥

शालपर्ण्यादिगणसे और जीवनीयगणसे सिद्ध किये हुए तेल अथवा पूर्वोक्त अणुतैलकी नस्य लेना, वा जीवनीय आदि गणसे सिद्ध किये तैलकी मालिश करना खालित्य और पलित रोगोंको दूर करती है ॥ २६० ॥

नस्यं स्याद्भिषजा सम्यग्योजितं पलितापहम्।
क्षीरात् सहचराद्भृङ्गराजाच्च सुरसाद्रसात् ॥ २६१ ॥
प्रस्थैस्तु कुडवस्तैलाद्यष्ट्याह्वपलकल्कितः।
सिद्धः शैलासने भाण्डे मेषशृङ्गे च संस्थितः ॥ २६२ ॥

दूध, सहचर, भांगरेका रस और तुलसीका रस एक एक सेर, तेल एक पाव, मुलैठीका कल्क चार तोले इन सबको मिलाकर पकावे। तेल सिद्ध होनेपर किसी पक्के पत्थरके पात्रमें वा मेढके सींगमें भरकर रक्खे। इस तेलकी नस्य लेनेसे पलित रोग दूर होता है ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

भिषजात्क्षीरपिष्टौ वा दुग्धिकाकरवीरकौ।
उत्पाटच पलितं देयौ तावुभौ पलितापहौ ॥ २६३ ॥

सफेद बालोंको उखाडकर उनकी जडोंके स्थानमें दूधीको दूधमें पीसकर अथवा कनेरकी छालको दूधमें पीसकर लेप करे तो आगेको सफेद बाल नहीं होते॥ २६३॥

मार्कवस्वरसात्क्षीराद्विप्रस्थं मधुकात्पलम् ।
तैः पचेत्कुडवं तैलात्तन्नस्यं पलितापहम् ॥ २६४ ॥

भांगरेका रस एक सेर, दूध एक सेर, मुलैठीका कल्क चार तोले, तेल एक पाव इन सबको मिलाकर पकावे। तेल मात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस तेलकी नस्य लेनेसे पलितरोग दूर होता है ॥ २६४ ॥

आदित्यबल्ल्या मूलानि कृष्णशैरेयकस्य च ।
सुरसस्य च पत्राणि पत्रं कृष्णशणस्य च ॥ २६५ ॥
मार्कवं काकमाची च मधूकं देवदारु च ।
पृथग्दशपलांशानि पिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥ २६६ ॥
प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा लोध्रं कृष्णागुरूत्पलम् ।
आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥ २६७ ॥
नीली भल्लातकास्थीनि कासीसमदयन्तिका ।
सोमराज्यसनः शस्तं कृष्णा पिण्डीतचित्रकौ ॥ २६८ ॥
पुष्कराज़ुनकाश्मर्य्याण्याम्रजम्बूफलानि च ।
पृथक् पञ्च पलांशानि तैः पिष्टैराढकं पचेत् ॥ २६९॥
वैभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्य्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः ॥ २७० ॥
लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत् ।
पाने नस्तः क्रियायाञ्च शिरोऽभ्यङ्गे तथैव च ॥ २७१ ॥
एतचक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् ।
महानीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम् ॥ २७२ ॥

आदित्यभक्ताकी जड, काले वांसेकी जड, काली तुलसीके पत्ते, काले फूलोंके सणके पत्ते, भांगरे, मकोय, मुलैठी और देवदारुके दश दश पल, पीपल, हरड, बहेडे, आँवले, रसौत, पञ्यारेका छिलका, मंजीठ, लोध, काली अगर, नील कमल, आमकी गुठली, काली मिट्टीका कीच, कमलकी डण्डी, लाल चन्दन, नीलके पत्ते, भिलावेकी गुठली, कसीस, मल्लिका, बावची, विजैसार, लोहचूर्ण, मैनफल, चित्तेकी छाल, पोहकरमूल, अर्जुन वृक्षकी छाल, कुम्भेरके फल, कच्चे आम, जामुन इन

सबको पांच पांच पल लेवे। इन सब औषधियोंका कल्क बना बहेडेका तेल चार सेर, आमलेका रस १६ सेर इन सबको मिलाकर लोहेके पात्रमें भर नित्य धूपमें रखदिया करे। जब संपूर्ण रस सूखकर तेलमात्र शेष रहे तो इस तेलको छानकर लोहपात्रमें भरकर रक्खे। फिर रोगीके वमन विरेचन और शिरोविरेचन करके शुद्ध देह होनेपर यह तेल पीने और नस्य कर्म तथा शिरमें मालिशके लिये प्रयुक्त करे तो नेत्रोंकी ज्योतिको और आयुको बढावे तथा सब प्रकारके शिरोरोगको नष्ट करे। यह महानीलतेल पलितरोग दूर करनेमें परमोत्तम कहा है॥ २६९-२७२॥

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः।
कार्षिकैस्तैलकुडवो द्विगुणामलकीरसः।
सिद्धः सप्रतिमर्शः स्यात्सर्वमूर्द्धगदापहः॥ २७३॥

पंड्यारेकी छाल, मुलैठी, पीपल, लालचन्दन, नीलकमल यह सब एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। तेल एक कुडव आँवलेका रस दो कुडव सबको मिलाकर तेल सिद्ध करे। इस तेलकी नस्य और शिरपर मालिशसे सब प्रकारके शिरोरोग दूर होते हैं॥ २७३॥

क्षीरं पियालयष्ट्याह्वे जीवकाद्यो गणस्तिलाः।
कृष्णावक्रे प्रलेपः स्याद्धरिल्लोमनिवारणः॥ २७४॥

दूध, चिरौंजी, मुलैठी, जीवनीयगणकी दश औषधियें और काले तिलोंको पीसकर लेप करनेसे बालोंका हरापन और पीलापन दूर होता है॥ २७४॥

यष्ट्याह्वतिलकिञ्जल्कक्षौद्रमामलकानि च।
बृंहयेद्रञ्जयेच्चैतत्केशान्मूर्द्धप्रलेपनम्॥ २७५॥

मुलैठी, काले तिल, कमलकी केसर, शहद और आँवले इन सबको पीसकर केशोंमें लेप करनेसे केश बढते तथा काले होते हैं॥ २७५॥

पचेत्सैन्धवशुक्ताम्लैरयश्चूर्णं सतण्डुलम्॥ २७६॥
तेनालिप्तं शिरः शुद्धमस्निग्धमुषितं निशि।
तत्प्रातस्त्रिफलाधौतं स्यात्कृष्णं मृदु मूर्द्धजम्।
अतश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्च रागः सत्रिफलो वरः॥ २७७॥

सेंधानमक, सिरका, कांजी, लोहचूर्ण और चावलोंको मिलाकर पकावे। पहिले शिरको स्वच्छ कर धो डाले परन्तु चिकनाई न लगावे फिर इस पकायेहुए द्रव्यका

लेप करे । दूसरे दिन प्रातःकाल त्रिफलेके जलसे शिरको धो डाले तो शिरके बाल काले और नर्म होजाते हैं । इसके उपरान्त लोहचूर्ण और त्रिफलेको कांजीमें पीसकर शिरपर लेप किया जावे तो केश उत्तम काले वर्णके होजाते हैं ॥ २७६ ॥ २७७ ॥

अथ स्वरभेदचिकित्सा ।

वातजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

सर्पींष्युपरिभक्तानि स्वरभेदेऽनिलात्मके ।
तैलैश्चतुष्प्रयोगैश्च बलारास्नामृताह्वयैः ॥ २७८ ॥

वातजनित स्वरभंगमें–भोजन करनेके अनन्तर घृतपान करना चाहिये और बलातैल अथवा रासनातैल या गुडूची आदि तैल अथवा बला, रासना और गिलोयका तेल या अवलेह अथवा चूर्ण या घृतका प्रयोग करनेसे वातजनित स्वरभंग दूर होता है ॥ २७८ ॥

बर्हितित्तिरिदक्षाणां पञ्चमूलशृतान् रसान् ।
मायूरं क्षीरसर्पिर्वा पिबेत् त्र्यूषणमेव वा ॥ २७९ ॥

वातजनित स्वरभंगमें–मोर तीतर और मुर्गेका मांसरस लघुपंचमूलके क्वाथमें सिद्धकर पिलाना हितकारी है । तथा मायूरघृत वा क्षीरघृत तथा त्र्यूषणादिघृत पिलाना हितकारक है ॥ २७९ ॥

पित्तजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

पैत्तिके तु विरेकः स्यात्पयश्च मधुरशृतम् ।
सर्पिर्गुडाजीवनीयं वासासिद्धं घृतं तथा ॥ २८० ॥

पित्तज स्वरभंगमें–विरेचनद्वारा शुद्धकर मधुरगणसे सिद्ध किया दूध पिलाना हितकारक है तथा सर्पिर्गुड और जीवनीयगणसे सिद्ध किया घृत और वासा आदि घृतका प्रयोग करना भी पित्तजनित स्वरभंगको दूर करता है ॥ २८० ॥

कफजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

कफजे स्वरभेदे तु तीक्ष्णं मूर्द्धविरेचनम् ।
विरेको वमनं धूमो यवान्नकटुसेवनम् ॥ २८१ ॥

कफके स्वरभंगमें–तीक्ष्ण मूर्द्धविरेचन और कायविरेचन, वमन, धूमपान, यवान्न तथा पीपल आदि चरपरे द्रव्योंका सेवन हितकारक है ॥ २८१ ॥

चव्यभार्ङ्ग्यभयाव्योषक्षारमाक्षिकचित्रकान् ।
लिह्याद्वा पिप्पलीपथ्ये तीक्ष्णं मद्यं पिबेच्च सः ॥ २८२ ॥

चव्य, भारंगी, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और चित्रकके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे अथवा पीपल और हरडको शहदमें मिलाकर चाटे तथा तीक्ष्ण मद्यका सेवन करे तो कफजनित स्वरभंग दूर होता है ॥ २८२ ॥

रक्तजस्वरभंगकी चिकित्सा।

रक्तजे स्वरभेदे तु सघृता जाङ्गला रसाः ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसाः सघृतक्षौद्रशर्कराः ॥ २८३ ॥
यच्चोक्तं क्षयकासघ्नं तच्च सर्वं चिकित्सितम् ।
पित्तजस्वरभेदघ्नं शिरावेधश्च रक्तजे ॥ २८४ ॥

रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें घृतके साथ जंगलीजीवोंका मांसरस पिलाना चाहिये। तथा दाखका रस, विदारीकंदका रस या ईखका रस, घी, शहद और खांड मिला पिलावे। और क्षयकी खांसीको नष्ट करनेवाली सब प्रकारकी चिकित्सा करे। तथा पित्तके स्वरभेदमें कहीहुई चिकित्साको करे। यदि रक्त दूषित हो तो फस्त खुलावे ॥ २८३ ॥ २८४ ॥

सन्निपातके स्वरभेदका यत्न।

सन्निपाते हिताः सर्वाः क्रिया न तु शिराविधिः ॥ २८५ ॥

सन्निपातके स्वरभेदमें सब प्रकारकी मिलीजुली चिकित्सा करनी चाहियें। परन्तु शिरामोक्षण कराना हितकारी नहीं ॥ २८५ ॥

कुर्याच्छेषेषु रोगेषु क्रियां स्वां स्वां चिकित्सिताम् ।
शेषेष्वादौ च निर्दिष्टा सिद्धौ चान्या प्रवक्ष्यते ॥ २८६ ॥

ऊर्ध्वजत्रुगत जो और रोग हैं, उनमें दोषादि विचारकर बुद्धिपूर्वक चिकित्सा करना चाहिये। ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंमेंसे कुछ पहिले कहचुके हैं,बाकीको सिद्धिस्थानमें कहेंगे ॥ २८६ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र-वातपित्तकफा नृणां वस्तिहृन्मूर्द्धसंश्रयाः ।
तस्मात्तु स्थानसामीप्याद्धर्त्तव्या वमनादिभिः ॥ २८७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें वात, पित्त और कफका प्रधान आश्रय-वस्ति, हृदय और मस्तक होता है। इसलिये स्थान, सामीप्य आदि विचारकर उनको वमनादि द्वारा शुद्धकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २८७ ॥

अध्यात्मलोको वाताद्यैर्लोको वातरवीन्दुभिः ।
पीड्यते धार्य्यते चैव विकृताविकृतैस्तथा ॥ २८८ ॥

जैसे—इस बाहरी जगत्में वायु, सूर्य और चन्द्रमाके विकृत होनेसे जगत् पीडित होता है और अविकृत होनेसे सौम्यावस्थामें रहता है। इसी प्रकार इस अध्यात्मलोक अर्थात् शरीरके भीतर भी वात, पित्त, कफ विकृत होनेसे शरीरको पीडित करते हैं और सौम्यावस्थामें रहनेसे शरीरको धारण और पालन करते हैं ॥ २८८ ॥

विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम् ।
दोषाः सहजसात्म्यत्वाद्विषं घोरमहीनिव ॥ २८९ ॥

जैसे—सांपका विष दूसरे सांपको व्यापक होकर नष्ट नहीं कर सकता उसी प्रकार वातादि दोष विरुद्ध गुणवाले होतेहुए भी परस्परके सात्म्य होनेसे एक दूसरेको नष्ट नहीं करता ॥ २८९ ॥

त्रिमर्मजानां रोगाणां निदानाकृतिभेषजम् ।
विस्तरेण पृथग्दिष्टं त्रिमर्मीये चिकित्सिते ॥ २९० ॥

इति श्रीचरकसंहितायां चिकित्सि० त्रिमर्मीयचिकित्सितं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस त्रिमर्मीयचिकित्सानामक अध्यायमें बस्ति, हृदय और मस्तक इन तीन प्रधान मर्मोंमें होनेवाले रोगोंके निदान, लक्षण, औषधि पृथक् पृथक् विस्तारपूर्वक वर्णन कीगई हैं ॥ २९० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां त्रिमर्मीयचिकित्सितं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।



अथात ऊरुस्तम्भचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ॥

श्रिया परमया ब्राह्मया परया च तपःश्रिया ।
अहीनं चन्द्रसूर्य्याभ्यां सुमेरुमिव पर्वतम् ॥ १ ॥

धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्त्तिक्षमालयम् ।
अग्निवेशो गुरुं काले संशयं परिपृष्टवान् ॥ २ ॥
भगवन् पञ्चकर्माणि समस्तानि पृथक्तथा ।
निर्दिष्टान्यामयानान्तु सर्वेषामेव भेषजम् ॥ ३ ॥
दोषजोऽस्त्यामयः कश्चिद्यस्यैतानि भिषग्वर ।
न स्युः शक्तानि शमने साध्यस्य क्रियया ततः ॥ ४ ॥

जैसे प्रबल तेजयुक्त सूर्य और चन्द्रमासे सुमेरु पर्वत प्रबल कांतियुक्त होता है उसी प्रकार ब्रह्मतेज और तपके तेजसे परमकांतियुक्त, बुद्धि, धारणाशक्ति, स्मृति, ज्ञान, विज्ञान, कीर्ति और क्षमाके घर भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश समय पाकर इस प्रकार अपने संशयको पूछने लगे कि हे भगवन् ! वमन, विरेचनादि पंचकर्म और उनसे रोगोंकी शान्ति तथा व्याधिनाशक चिकित्सा श्रीमान्‌ने विस्तारपूर्वक प्रथम वर्णन कर दी है । परन्तु हे भिषग्वर ! जो साध्य होनेपर पंचकर्मादि सब क्रियाओंके करनेसे भी साध्य न होसके ऐसा कौनसा रोग है ॥ १-४ ॥

अस्त्यूरुस्तम्भ इत्युक्ते गुरुणा तस्य कारणम् ।
सलिङ्गभेषजं भूयः पृष्टस्तेनाब्रवीद्गुरुः ॥ ५ ॥

यह सुनकर गुरु कहने लगे कि, ऐसा ऊरुस्तम्भ रोग है जो पंच कर्मोंद्वारा शान्त नहीं होसकता फिर इसके विषयमें प्रश्न करनेपर ऊरुस्तम्भनिदान, लक्षण और औषधिको भगवान् आत्रेयजी इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥ ५ ॥

ऊरुस्तंभके हेतु और सम्प्राप्ति ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानि जीर्णाजीर्णे समश्नतः ।
द्रवशुष्कदधिक्षीरग्राम्यानूपौदकामिषैः ॥ ६ ॥
पिष्टव्यापन्नमद्यातिदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
लङ्घनाध्यशनायासभयवेगविधारणैः ॥ ७ ॥
स्नेहाद्यामं चितं कोष्ठे वातादीन्मेदसा सह ।
रुद्ध्वाशु गौरवादूरू यात्यधोगैः शिरादिभिः ॥ ८ ॥
पूरयेत्सक्थिजंघोरु दोषो मेदो बलोत्कटः ।
अविधेयं परिस्पन्दं जनयत्यल्पविक्रमम् ॥ ९ ॥

महासरसि गम्भीरे पूर्णेऽम्बु स्तिमितं यथा।
तिष्ठति स्थिरमक्षोभ्यं तद्वदूरुगतः कफः ॥ १० ॥

चिकने, गर्म, भारी और शीतल द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे, विषम भोजन, तथा भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, द्रव, शुष्क, दही, दूध तथा ग्राम्य, आनूप और जलसंचारी जीवोंके अत्यन्त सेवनसे, पिष्ट पदार्थके अत्यंत खानेसे, दूषित मद्यके पीनेसे, दिनमें सोनेसे, रातको जागनेसे, अत्यंत लंघन करनेके अनन्तर एकदम अधिक भोजन करनेसे, अधिक परिश्रम, भय और वेगोंको रोकनेसे, और अत्यंत स्नेहपान करनेसे कोष्ठमें आम संचित होकर मेदयुक्त हो वात, पित्त, कफके मार्गको रोकनेसे भारी होजाती है फिर वह मेदसंयुक्त आम नीचेको गमन कर अधोगत शिराओं द्वारा ऊरु अर्थात् जांघोंमें प्रवेश होकर मेदसे बलवान् हुए दोष घोररूपसे नितम्ब, जंघा और ऊरुओंमें स्थित होजाते हैं। फिर नितम्ब, जांघें और ऊरु, हिलने डुलनेसे रहित होकर क्रियाहीन और दुबले होजाती हैं जैसे महासरोवर परिपूर्ण होनेसे उसका जल स्थिरभावसे टिका रहता है उसी प्रकार ऊरुगत कफ स्थिरभावसे परिपूर्ण होकर टिका रहता है। ऊरुस्तम्भ आमदोष और मेदमिश्रित होनेसे प्रायः कफप्रधानही होता है ॥ ९-१० ॥

गौरवायाससङ्कोचदाहरुक्सुप्तिकम्पनैः।
भेदस्फुरणतोदैश्च युक्तो देहं निहन्त्यसून् ॥ ११ ॥

ऊरुस्तम्भमें शरीरका भारीपन, थकावट प्रतीत होना, जंघाका संकोच, दाह, ऊरुओंमें तीव्र पीडा, जांघोंका सुन्नसा होना, कम्पन, भेदनकीसी पीडा, फड़कन और तोद यह लक्षण होते हैं। यह रोग बलवान् होनेसे प्राणोंको नष्ट करदेता है ११

ऊरू श्लेष्मा समेदस्को दोषो द्वावभिभूय तु।
स्तम्भयेत्स्थैर्य्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तु सः ॥ १२ ॥

ऊरुस्तम्भ रोगमें कफ आर मेदकी प्रबलता होनेसे वात और पित्त हीन होजाता है। कफ और मेदकी स्थिरता और शीतलताके कारण ऊरुओंका स्तम्भ होजाता है। इस लिये इस रोगको ऊरुस्तम्भ कहते हैं ॥ १२ ॥

ऊरुस्तम्भके पूर्वरूप।

प्राग्रूपं ध्याननिद्रातिस्तैमित्यारोचकज्वराः।
लोमहर्षश्च छर्दिश्च जंघोर्वोः सदनं तथा ॥ १३ ॥

ध्यानसा लगा रहना, निद्रा, स्तैमित्य, अरोचक, ज्वर, लोमहर्ष, छर्दी, जंघा और ऊरुओंका सुन्नसा होजाना यह ऊरुस्तम्भके पूर्वरूप हैं ॥ १३ ॥

वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात् स्नेहनात्पुनः ।
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ १४ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें वातव्याधि वा आमवातकी शंकासे अज्ञानवश मूर्ख वैद्य वातनाशक स्नेहन द्रव्योंका प्रयोग करते हैं जिससे कफकी वृद्धि होकर भी रोग बढजाता है। तथा ऊरु और पांव सुन्नसे होजाते हैं। रोगी अपने पांवों और जांवोंको बडे कष्टसे हिला सकता है ॥ १४ ॥

ऊरुस्तम्भके लक्षण।

जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वच्चादाहवेदना ।
पदञ्च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ १५ ॥
संस्थाने पीडने गत्यां चलने चाप्यनीश्वरः ।
अन्यनेयौ हि संभग्नावूरुपादौ च मन्यते ॥ १६ ॥

जंघा और ऊरुओंमें अत्यन्त ग्लानि, सर्वदा दाह, पीडा पैरके उठाने धरनेमें अत्यन्त व्यथा प्रतीत होनी, शीतल स्पर्शका अनुभव न होना, रोगी पांवको स्थिरभावसे रख न सके और दबा न सके, पांवोंकी गति स्थिर न रहे, रोगी चलनेमें असमर्थ हो यदि दूसरा चलाए तो पांव और घुटने टूटे हुए मालूम हों ॥ १५ ॥ १६ ॥

ऊरुस्तम्भमें साध्यासाध्य।

यदा दाहार्त्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत् ।
ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ १७ ॥

ऊरुस्तम्भ अधिक दिनका होनेसे बल पाकर दाह, पीडा, तोद और कम्पन आदि उपद्रवों सहित होनेसे रोगीकी मृत्यु करता है। अर्थात् ऊरुस्तम्भ असाध्य होजाता है और उपद्रवरहित नवीन ऊरुस्तम्भ साध्य होता है ॥ १७ ॥

ऊरुस्तम्भमें स्नेहनविरेचनादिका निषेध।

तस्य न स्नेहनं कार्य्यं न वस्तिर्न विरेचनम् ।
न चैव वमनं यस्मात्तन्निबोधत कारणम् ॥ १८ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें स्नेहन, वस्तिकर्म, विरेचन और वमन कभी भी नहीं कराने चाहिये। जिन हेतुओंसे स्नेहन आदि नहीं कराने चाहिये उन कारणोंको सुनो ॥ १८

वृद्धये श्लेष्मणो नित्यं स्नेहनं वस्तिकर्म च ।
तत्स्थस्योद्धरणे चैव न समर्थं विशोधनम् ॥ १९ ॥

स्नेहन और वस्तिकर्म करनेसे अवश्यही कफकी वृद्धि होती है और वमन विरे-

चनके करानेसे ऊरुस्तम्भका दोष उखडकर निकल नहीं सकता । इसलिये विना आवश्यकता वमन विरेचन कराना वृथा होता है ॥ १९ ॥

कफं कफस्थानगतं पित्तञ्च वमनात्सुखम् ।
हर्त्तुमामाशयस्थौ च स्रंसनात्तावुभावपि ॥ २० ॥
पक्वाशयस्थाः सर्वे च वस्तिभिर्मूलनिर्जयात् ।
शक्या न त्वाममेदोभ्यां स्तब्धा जङ्घोरुसंस्थिताः ॥ २१ ॥

यदि कफ अपने स्थान आमाशयमें हों और पित्त अपने स्थानमें हो तो यह वमन विरेचनद्वारा दोनों सुखपूर्वक निकल सकते हैं। आमाशयमें स्थितहुए कफ और पित्त स्रंसनद्वारा सुखपूर्वक निकल सकते हैं और पक्वाशयमें स्थितहुए वायु अथवा वातादि तीनों दोष वस्तिकर्मद्वारा सुखपूर्वक जडसे निकल जाते हैं। परन्तु ऊरुस्तम्भ रोगमें जंघा और ऊरु आम और मेदसे स्ताम्भित होनेसे उनमें स्थित वात, पित्त, कफ इन वमन, विरेचन, स्नेहन और वस्ति आदि उपायोंसे निकल नहीं सकते। इस लिये ऊरुस्तम्भमें वमनादि शोधनक्रिया निष्फल होती हैं। और स्नेहन क्रिया कफ-मेदवर्द्धक होनेसे हानिकारक होती हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

वातस्थाने हि ते शैत्याद्दृयोः स्तम्भाश्च तद्गताः ।
न शक्याः सुखमुद्धर्त्तुं जलं निम्नादिव स्थलात् ॥ २२ ॥

ऊरु और जंघा वायुका स्थान है। वायुकी शीतलताके कारण ही ऊरु और जंघाओंका स्तम्भ होता है। जैसे—नीचे गढेमेंसे विना परिश्रम जल नहीं निकाला जा सकता, उसी प्रकार ऊरु और जंघा देहके नीचे भागमें हैं, उनमें स्थित हुए दोष भी सहज ही नहीं निकाले जासकते ॥ २२ ॥

ऊरुस्तम्भकी चिकित्साका निर्देश।

तस्य संशमनं नित्यं क्षपणं शोषणं तथा ।
युक्त्यपेक्षी भिषक्कुर्य्यादधिकत्वात्कफामयोः ॥ २३ ॥

ऊरुस्तम्भमें संशमन क्रिया करना ही हितकारक है इसमें जिस प्रकार दोषका क्षय और शोषण हो वही ऊरुस्तम्भमें संशमनीय चिकित्सा है। इसलिये वैद्यको युक्ति-पूर्वक कफ और आमकी अधिकताको जीतना चाहिये ॥ २३ ॥

ऊरुस्तंभमें पथ्य।

सदा रूक्षोपचाराय यवश्यामाककोद्रवान् ।

---

१ जो द्रव्य आम और कच्चे पक्के मलको निकालनेवाला हो उसको स्रंसन कहते हैं।

शाकैरलवणैरद्भिर्जलतैलोपसाधितैः ॥ २४ ॥
सुनिषण्णकनिम्बार्कवेत्रारग्वधपल्लवैः।
वायसीवास्तुकैरन्यैस्तिक्तैश्च कुलकादिभिः ॥ २५ ॥
क्षारारिष्टप्रयोगाच्च हरीतक्यास्तथैव च।
मधूदकस्य पिप्पल्या ऊरुस्तम्भविनाशनाः ॥ २६ ॥

ऊरुस्तम्भमें सदाही रूक्ष उपचार करना चाहिये। इसलिये रोगीको यवके सत्तू, शौंक (सांवा) के चावलोंका भात और कोद्रवका अन्न सेवन कराना चाहिये। और व्यञ्जनके लिये लवण रहित जल और तेलमें पकाये हुए शाक देना चाहिये। चौपतिया शाक, निंबशाक, आकके पत्तोंका शाक तथा बेत, अमलतासके पत्र, मकोय, बथुवा, परवल और कडुवे शाक तथा क्षार, अरिष्ट, हरड, शहत मिश्रित जल, पीपल यह सब हितकारक और ऊरुस्तम्भनाशक होते हैं ॥ २४-२६ ॥

ऊरुस्तम्भनाशक योग।

समङ्गां शाल्मलीं बिल्वं मधुना सह ना पिबेत्।
तथा श्रीवेष्टकोदीच्यदेवदारुनतान्यपि।
चन्दनं धातकीं कुष्ठं तालीशं नलदं तथा ॥ २७ ॥

वाराहक्रान्ता, सेमलकी छाल और बिल्वकी छालके क्वाथको शहदके साथ पीवे अथवा सरलकाष्ठ, नेत्रवाला, देवदारु और तगरका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे। या लालचंदन, धावेके फूल, कूठ, तालीशपत्र और खसका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे तो ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ २७ ॥

मुस्तं हरीतकीं लोध्रं पद्मकं तिक्तरोहिणीम्।
देवदारु हरिद्रे द्वे वचां कटुकरोहिणीम् ॥ २८ ॥
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं सरलं देवदारु च।
चव्यचित्रकमूलानि देवदारु हरीतकीम् ॥ २९ ॥
भल्लातकं समूलाश्च पिप्पलीं पञ्च तान् पिबेत्।
सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान् कल्कानूरुग्रहापहान् ॥ ३० ॥

१-नागरमोथा, हरड, लोध, पद्मकाष्ठ और कुटकी। २-देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, वच और कुटकी। ३-पीपल, पीपलामूल, सरलकाष्ठ और देवदारु। ४-चव्य, चित्रककी जड, देवदारु और हरड। ५-भिलावा, पीपलामूल और पीपल। इन आधे

आधे श्लोकोंमें कहे पांच योगोंमेंसे किसी एक योगके कल्कको शहद मिलाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ २८–३० ॥

शार्ङ्गेष्टां मदनं दन्तीं वत्सकस्य फलं वचाम्।
मूर्वामारग्वधां पाठां करञ्जं कुलकं तथा ॥ ३१ ॥
पिबेन्मधुयुतं तुल्यं चूर्णं वा वारिणाप्लुतम्।
सक्षौद्रं दधिमण्डं वाप्यूरुस्तम्भविनाशनम् ॥ ३२ ॥

करञ्जके फल, मैनफल, दन्ती, इन्द्रयव, और वच। मूर्वा, अमलतास, पाटला, करंजुएके फल और परवल। इन दोनों योगोंमेंसे किसी एक योगका क्वाथ बना शहदमिला पीवे। अथवा इनका चूर्ण बना शहदयुक्त जलके साथ अथवा शहदयुक्त दधिमण्डके साथ पीवे तो ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मूर्वामतिविषां कुष्ठं चित्रकं कटुरोहिणीम्।
पूर्ववद्वा पिबेत्तोये रात्रिस्थितमथापि वा ॥ ३३ ॥

मुर्वा, अतीश, कूठ, चित्रककी छाल और कुटकीका चूर्ण कर शहद मिले जलके साथ या इनका क्वाथ बना शहद मिला पीवे। अथवा इन सब औषधियोंको सायंकाल जलमें भिगोदे और प्रातःकाल उस जलको छान शहद मिला पीवे ॥ ३३ ॥

स्वर्णक्षीरीमतिविषां मुस्तं तेजोवतीं वचाम्।
सुराह्वं चित्रकं कुष्ठं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥ ३४ ॥
लेहयेन्मधुना चूर्णं सक्षौद्रं वा जलान्वितम्।
फलीं व्याघ्रनखं हेम पिबेद्वा मधुसंयुतम् ॥ ३५ ॥
त्रिफलां पिप्पलीं मुस्तं चव्यं कटुकरोहिणीम्।
लिह्याद्वा मधुना चूर्णमूरुस्तम्भार्दितो नरः ॥ ३६ ॥

स्वर्णक्षीरी, अतीश, नागरमोथा, चव्य, वच, देवदारु, चित्रक, कूठ, पाटला और कुटकीका चूर्ण शहद मिला चाटे। अथवा शहदयुक्त जलके साथ पीवे या प्रियंगु व्याघ्रनखी और नागकेशरके चूर्णको शहद मिला पीवे। अथवा त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकीका चूर्ण बना शहद मिला चाटे तो ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ ३४–३६ ॥

अपतर्पणजश्चेत्स्याद्दोषः सन्तर्पयेद्धि तम्।
युक्त्या जाङ्गलजैर्मांसैः पुराणैश्चैव शालिभिः ॥ ३७ ॥

ऊरुस्तम्भमें अपतर्पण करनेसे यदि रूक्षता उत्पन्न होजाय तो रोगीको संतर्पण करना चाहिये। जंगली जीवोंके मांसरसके साथ पुराने शालिचावलोंका भात सेवन करावे तो सन्तर्पण हो ॥ ३७ ॥

रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्त्तिपूर्वकः।
स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्य्यो वातामयापहः ॥ ३८ ॥

यदि रूक्षताके कारण ऊरुस्तम्भवाले रोगीकी निद्राका नाश होजाय और वायुका कोप होकर पीडा होने लगे तो स्नेह द्रव्योंसे वातनाशक स्वेदन करना चाहिये। अथवा वातनाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया करना चाहिये ॥ ३८ ॥

पीलुपर्णी पयस्या च रास्ना गोक्षुरको वचा।
सरलागुरुपाठाश्च तैलमेभिर्विपाचयेत्।
सक्षौद्रात्प्रसृतं तस्मादञ्जलिं वापि ना पिबेत् ॥ ३९ ॥

मूर्वा, क्षीरकाकोली, रासना, गोखरू, वच, सरलकाष्ठ, अगर और पाठाके कल्कसे तेलको सिद्ध करे। इस तेलको शहद मिलाकर दो पल प्रमाण पीवे तो ऊरुस्तम्भ रोगीकी रूक्षता दूर हो और ऊरुस्तम्भ भी शान्त हो ॥ ३९ ॥

कुष्ठं श्रीवेष्टकोदीच्ये सरलं दारु केशरम्।
अजगन्धाश्वगन्धा च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥ ४० ॥
सक्षौद्रं मात्रया तच्चाप्यूरुस्तम्भार्दितः पिबेत्।
रौक्षान्मुक्त ऊरुस्तम्भात्ततश्च स विमुच्यते ॥ ४१ ॥

कूठ, श्रीवेष्टक, सुगन्धवाला, देवदारु, नागकेशर, अजवायन और असगंध इन सबके कल्कसे सरसोंके तेलको सिद्धकर उस तेलमें शहद मिला उचित मात्रासे पीवे इसके पीनेसे ऊरुस्तम्भकी रूक्षता और ऊरुस्तम्भ दोनों दूर होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

सैन्धवादि तैल।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात्।
द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाढके ॥ ४२ ॥
आरनालात्पचेत्प्रस्थं तैलस्यैतैरपत्यदम्।
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोऽर्त्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ ४३ ॥

सेंधानमक २ पल, सोंठ ५ पल, वच २ पल, चित्रक २ पल, भिलावेकी गिरियां २०, कांजी २ आढक, तेल एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष

रहनेपर उतारकर छानलेवे। यह तेल सन्तानको देनेवाला तथा गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ बवासीर और सब प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अष्टकट्वरतैल।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वरः।
तैलप्रस्थः समो दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ ४४ ॥

पीपलामूल एक पल, सोंठ एक पल, दहीका घोल ८ प्रस्थ, तेल एक प्रस्थ, दही एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर तेल सिद्ध करे। इस तेलके पान करनेसे गृध्रसी और ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

इत्याभ्यन्तरमुद्दिष्टमूरुस्तम्भस्य भेषजम्।
श्लेष्मणः क्षपणं त्वन्यद्बाह्यं शृणु चिकित्सितम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार यह ऊरुस्तम्भरोगमें आभ्यन्तर अर्थात् खानेकी औषधियोंका वर्णन कियाजाचुका अब ऊरुस्तम्भके कफको नष्ट करनेवाले बाहरी स्वेद लेपादिको सुनो ॥

वल्मीकमृत्तिका मूलं करञ्जस्य फलं त्वचम्।
इष्टकानां ततश्चूर्णैः कुर्य्यादुत्सादनं भृशम् ॥ ४६ ॥
मूलैर्वाप्यश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक्।
पिचुमर्दस्य वा मूलैरथवा देवदारुणः ॥ ४७ ॥
क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतैर्भिषक्।
गाढमुत्सादनं कुर्य्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥ ४८ ॥

सांपकी बम्बीकी मट्टी, करञ्जकी जड और फल तथा त्वचा, ईंटका चूर्ण इन सबको पीसकर ऊरुस्तम्भमें जंघा और ऊरुओंपर खूब मालिश करे। अथवा असगन्धकी जडका चूर्ण या पाढकी जडका चूर्ण अथवा देवदारुकी जडका चूर्ण या नीमकी जडका चूर्ण शहद, सफेद सरसों और सर्पकी बम्बीकी मिट्टी मिला मिट्टी खूब मले तथा लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ ४६-४८ ॥

दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्षपैश्चापि बुद्धिमान्।
तर्कारीशिग्रुसुरसविश्ववत्सकनिम्बजैः ॥ ४९ ॥
पत्रमूलफलैस्तोयं शृतमुष्णञ्च सेचनम्।
पिष्ट्वा ससर्षपं मूत्रेऽध्युषितं स्यात्प्रलेपनम् ॥ ५० ॥

दन्ती, द्रवंती, कालीतुलसी और सफेद सरसोंको पीसकर शहदमें मिला ऊरुस्तम्भमें मर्दन करे तथा लेप करे। अथवा जयन्ती, सोंठ, काली तुलसी, सोहांजनेके

बीज, इन्द्रयव और नीमके पत्तोंका ऊरुस्तम्भमें जांघों और ऊरुओंपर लेप करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंको मूल, पत्र और फलोंसहित लेकर क्वाथ करे। उस गरम गरम क्वाथसे जंघाओं और ऊरुओंको सेचन करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंके पत्र, मूल, फलोंको और सफेद सरसोंको गोमूत्रमें भिगोकर रात्रिभर रहने दे। प्रातःकाल उसी गोमूत्रमें घोटकर गर्म गर्म लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर हो ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वत्सकः सुरसं कुष्ठं गन्धास्तुम्बुरुशिग्रुकौ ।
हिंस्रार्कमूलवल्मीकमृत्तिकाः सकुठेरुकाः ॥ ५१ ॥
दधिसैन्धवसंयुक्तं कार्य्यमेतैः प्रलेपनम् ।
ऊरुस्तम्भविनाशाय भिषजा जानता क्रमम् ॥ ५२ ॥

इन्द्रयव, काली तुलसी, कूठ, असगन्ध, नैपालीधानियां, सुहांजनेके बीज, हींसकी जडका छिलका, आककी जडका छिलका, सांपकी बम्बीकी मट्टी और बनतुलसी इन सबको सेंधानमक युक्त कर दहीमें पीस क्रमपूर्वक लेप करे तो ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

श्योणाकं खदिरं बिल्वं बृहत्यौ सरलासनौ ।
शोभाञ्जनकतर्कारीश्वदंष्ट्रासुरसार्ज्जकान् ॥ ५३ ॥
अग्निमन्थकरञ्जौ च जलेनोत्क्वाथ्य सेचयेत् ।
प्रलेपो मूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ॥ ५४ ॥

सोनापाठाकी छाल, खैरका छिलका, बेलकी जडका छिलका, बडी कटेलीकी जड, सरलकाष्ठ, विजैसार, सुहांजनेकी छाल, अरणी, गोखरू, सुरसा, तुलसी, अर्जक तुलसी, अग्निमन्थ, करंजुएके बीज इन सबका जलमें क्वाथकर उस गर्म क्वाथद्वारा जांघोंका सेचन करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंको गोमूत्रमें पीसकर गर्म गर्म लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

कफक्षयार्थं सह्येषु व्यायामेष्वनुयोजयेत् ।
स्थलान्याक्रामयेत्कालं शर्कराः सिकतास्तथा ॥ ५५ ॥
प्रतारयेत्प्रतिस्रोतां नदीं शीतजलां शिवाम् ।
सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः पुनः ॥ ५६ ॥

---

१ शक्त्येष्विति पाठान्तरम्।

कफके क्षीण करनेके लिये और रोगी सहनशक्तिवाला हो इसलिये रोगीको इधर उधर फिरनेका यथासमय परिश्रम कराना चाहिये । अथवा रोगीको ऊंचे स्थानपर या कंकरोंके अथवा बालुके ढेर पर चढावे । यदि उचित हो तो बल कालादि विचार कर निर्मल जलवाली नदीकी धाराके आगेको तैरावे, अथवा निर्मल शीतल स्थिर जलवाले तालावमें बारबार तैरावे तो जंघा खुलकर ऊरुस्तंभ दूर होता है ॥५५॥५६

तथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्रहो व्रजेत् ।
श्लेष्मणः क्षपणं यत्स्यान्न च मारुतमावहेत् ॥ ५७ ॥

तथा जिस प्रकार कफ शोषण होकर ऊरुस्तम्भकी शान्ति हो उस प्रकार चिकित्सा करना चाहिये । जिस क्रियासे कफका क्षय हो और वायु बढने न पावे वही ऊरुस्तम्भरोगकी चिकित्सा है ॥ ५७ ॥

तत्सर्वं सर्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ।
शरीरं बलमग्निश्च कार्य्यैषा रक्षता क्रिया ॥ ५८ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें सदा ही सब प्रकार कफनाशक और वातकी शमन करनेवाली चिकित्सा शरीर, बल और अग्निकी रक्षा करतेहुए करना चाहिये ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकः—हेतुः प्राग्रूपलिङ्गानि कर्मायोग्यत्वमेव च ।
द्विविधं भेषजञ्चोक्तमूरुस्तम्भाचिकित्सिते ॥ ५९ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने ऊरुस्तम्भचिकित्सितं
नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि, इस ऊरुस्तम्भचिकित्सत अध्यायमें ऊरुस्तम्भके हेतु, पूर्वरूप, लक्षण, पंचकर्मकी अयोग्यता तथा आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकारकी चिकित्साका वर्णन किया है ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-
निवासिवैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां
ऊरुस्तम्भचिकित्सितं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातो वातव्याधिचिकित्सितं नामाध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम वातव्याधिचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

वायुकी उत्कृष्टता।

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम् ।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्त्तितः ॥ १ ॥

प्राणियोंके शरीरमें वायु ही आयु है, वायु ही बल और वायुही संपूर्ण विश्व है और वायु ही प्रभुनामसे उच्चारण कियाजाता है ॥ १ ॥

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ।
वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें अव्याहतगति होकर अपने स्थानमें और प्रकृतिस्थ वायु रहता है वह मनुष्य रोगराहित और बलसंपन्न सौ वर्ष जीता है ॥ २ ॥

वायुके ५ भेद।

प्राणोदानसमानाख्यव्यानापानैः स पञ्चधा ।
देहं तन्त्रयते सम्यक्स्थानेष्वव्याहतश्चरन् ॥ ३ ॥

प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान इन भेदोंसे वायु पांच प्रकारका होता है। यह पांच प्रकारके वायुही अपने अपने स्थानोंमें अव्याहतगतिसे रहतेहुए देहका पालन पोषण और रचनाको करते हैं ॥ ३ ॥

प्राणवायुके स्थान और कर्म।

स्थानं प्राणस्य शीर्षोरःकर्णजिह्वाक्षिनासिकाः ।
ष्ठीवनक्षवथूद्गारश्वासाहारादिकर्म च ॥ ४ ॥

प्राणवायु-शिर, छाती, कण्ठ, जिह्वा मुख और नासिकामें रहता है, थूकना, छींक, उद्गार, श्वास और आहारका ग्रहण करना आदि प्राणवायुके कर्म हैं ॥ ४ ॥

उदानवायुके स्थान व कर्म।

उदानस्य पुनः स्थानं नाभ्युरः कण्ठ एव च ।
वाक्प्रवृत्तिः प्रयत्नौजोबलवर्णादिकर्म च ॥ ५ ॥

उदानवायु-नाभि, हृदय और कण्ठमें निवास करता है और बोलना, शरीरकी चेष्टा आदि प्रयत्न तथा ओज, बल और वर्ण आदिकोंकी वृद्धि करना इसका कर्म है॥५॥

समानवायुके स्थान व कर्म।

स्वेददोषाम्बुवाहानि स्रोतांसि समधिष्ठितः ।
अन्तरग्नेश्च पार्श्वस्थः समानोऽग्निबलप्रदः ॥ ६ ॥

स्वेदवाही दोषवाही और जलवाही स्रोत समानवायुके स्थान हैं। पांच प्रकारकी अग्निके समीप रहकर अग्निके बलको बढाना यह समानवायुके कर्म हैं ॥ ६ ॥

व्यानवायुका स्थान व कर्म ।

देहं व्याप्नोति सर्वं तु व्यानः शीघ्रगतिर्नृणाम् ।
गतिप्रसरणाक्षेपनिमेषादिक्रिया सदा ॥ ७ ॥

व्यानवायु-संपूर्ण देहमें व्याप्त है और शीघ्रगमनशील है। इस वायुसे ही मनुष्योंकी गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेष आदि क्रिया होती हैं ॥ ७ ॥

अपानवायुके स्थान व कर्म ।

वृषणौ वस्ति मेढ्रञ्च नाभ्यूरू वंक्षणौ गुदम् ।
अपानस्थानयन्त्रस्थः शुक्रमूत्रशकृत्क्रियः ॥ ८ ॥
सृजत्यार्त्तवगर्भौ च युक्ताः स्थानस्थिताश्च ते ।
स्वकर्म कुर्वते देहो धार्य्यते तैरनामयः ॥ ९ ॥

दोनों वृषण, वस्ति, मेढ्र (लिंग), नाभि, ऊरु, वंक्षण और गुदा यह अपानवायुके स्थान हैं। तथा मलाशयकी अंतडी अपानवायुका प्रधान स्थान है। वीर्य, मूत्र मल और वायुका त्याग करना तथा मासिक ऋतु और गर्भका परित्याग करना इसका काम है। यह पांचों वायु अपने अपने स्थानमें स्थित और यथाप्रमाण रहतेहुए अपने अपने कार्यको करते रहते हैं। यह वायु ही प्रकृतिस्थ रहनेसे शरीरको नीरोग और धारण करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

विकृतवायुके कर्म ।

विमार्गस्था ह्ययुक्ता वा रोगैः स्वस्थानकर्मजैः ।
शरीरं पीडयन्त्येते प्राणानाशु हरन्ति वा ॥ १० ॥

यह पांचों वायु विमार्गगामी होने, अर्थात् अपने अपने स्थानको छोडकर अन्यस्थानमें गमन करनेसे, अथवा विहतगति होनेसे अपने अपने स्थानोंमें अपने अपने कर्मों द्वाराअनेक रोगोंको उत्पन्न कर शरीरका पीडन करते हैं तथा शरीरका नाश करते हैं ॥ १० ॥

संख्यामप्यतिवृत्तानां तज्जानां हि प्रधानतः।
अशीतिर्नखभेदाद्या रोगाः सूत्रे निदर्शिताः ॥ ११ ॥
तानुच्यमानान्पर्य्यायैः सहेतूपक्रमाञ्छृणु।
केवलं वायुमुद्दिश्य स्थानभेदात्तथावृतम् ॥ १२ ॥

सूत्रस्थानमें वातजनित असंख्य रोगोंमें अस्सी प्रकारके प्रधान रोगोंका नख आदि भेदसे वर्णन कर आये हैं। अब पर्यायक्रमसे उन वातव्याधियोंके हेतु और चिकित्साका वर्णन करते हैं। केवल वायुका उद्देश कर स्थानभेदसे और आवृतवायुके विषयको जिस प्रकार हम कहते हैं उसे सुनो ॥ ११ ॥ १२ ॥

वातव्याधियोंके हेतु।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः।
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रवणादति ॥ १३ ॥
लङ्घनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः।
धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ १४ ॥
दुःखशय्यासनात्क्रोधाद्दिवास्वप्नाद्भयादपि।
वेगसन्धारणादामादभिघातादभोजनात्।
मर्माघाताद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानापतंसनात् ॥ १५ ॥
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली।
करोति विविधान् व्याधीन्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रितान् ॥ १६ ॥

रूक्ष, शीतल, अल्प और हलके अन्न पानके सेवनसे, मैथुन, रात्रिमें अधिक जागरण, वमनादि पांचकर्ममें विषम उपचार होना, अत्यंत मल निकालना, रक्तस्राव, अत्यंत लंघन, अत्यंत जलमें तैरना, अधिक भ्रमण, अधिक व्यायाम, अत्यंत शारीरिक चेष्टा, धातुओंका क्षय, चिन्ता, शोक, व्याधि आदिसे अत्यंत कृश होना, वेगोंका धारण करना, अजीर्ण, अभिघात, भोजन न करना, मर्मस्थानमें चोट लगना, हाथी, ऊंट और घोडा आदि शीघ्र गमन करनेवाली सवारीपर चढना, या इन हाथी, घोडे आदिको रोकनेका यत्न करना अथवा इनके साथ भागना या इनके ऊपरसे गिरजाना आदि कारणोंसे देहके संपूर्ण स्रोत खाली हो जाते हैं। उस समय बढाहुआ वायु अवकाशको पाकर उन छिद्रोंमें प्रवेश कर सर्वांगसंश्रित रोग अथवा एकांगगत अनेक प्रकारकी व्याधियोंको उत्पन्न करता है ॥ १३-१६ ॥

पूर्वरूप और अपाय।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम्।
आत्मरूपं तु तद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः॥ १७॥

वातव्याधियोंके अव्यक्त अर्थात् अप्रगटलक्षणोंको उनके पूर्वरूप कहते हैं वायुके चलस्वभाव होनेसे वातव्याधिके लक्षणोंका व्यक्त होना, कभी अपगत होना और कभी अल्प होना यह सब रूपमें आजाते हैं। अथवा चलस्वभावके कारण व्यक्तलक्षणोंका फिर अभाव होना व्याधिका लघुत्व है सर्वथा अभाव नहीं है॥ १७॥

कुपितवायुके कर्म।

सङ्कोचः पर्वणां स्तम्भो भेदोऽस्थिपर्वणामपि।
लोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः॥ १८॥
खाञ्ज्यपाङ्गुल्यकुब्जत्वं शोषोऽङ्गानामनिद्रता।
गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता॥ १९॥
शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्डनम्।
भेदस्तोदार्त्तिराक्षेपो मोहश्चायास एव च॥ २०॥
एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः।
हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत्॥ २१॥

कुपित वायुके यह लक्षण होते हैं। जैसे—संधियोंका संकोच, स्तम्भ, हडफूटन, पर्वभेद, रोमहर्ष, अण्टसण्ट बकना, पाणिग्रह, पीठका जकडजाना, शिरोग्रह, खंज, पंगुता, कुबडापन, अंगशोष, निद्रानाश, गर्भनाश, शुक्रनाश, रजोनाश, कडकना, अंगोंका सुन्न होजाना, मस्तकविकृति, नासा, नेत्र, ऊर्ध्वजत्रु और गरदनका टेढा होजाना, भेद तोद, शूल, आक्षेप, मोह, श्रम प्रतीत होना और इसी प्रकारके अन्यान्य उपद्रव होना यह कुपित वायुके कर्म हैं। हेतु और स्थानीवशेषसे वातव्याधियोंमें भिन्नता होती है॥ १८-२१॥

कोष्ठाश्रितकुपितवातके कर्म।

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः।
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शपार्श्वशूलश्च मारुते॥ २२॥

मूत्र और मलका विबंध, ब्रध्नरोग, हृद्रोग, गुल्मरोग, बवासीर और पार्श्वपीडा यह कोष्ठाश्रित कुपित वायुके लक्षण हैं॥ २२॥

सर्वांगगत कुपित वायु व लकवा।

सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम्।

वेदनाभिः परीताश्च फुस्दन्तीवास्य सन्धयः ॥ २३ ॥

सर्वांगस्थित वायु कुपित हो तो अंगोंमें स्फोटन, सब अंगोंका कडकना, भेदनकीसी पीडा, संपूर्ण संधियोंका वेदनासे फटनासा प्रतीत होना यह लक्षण होते हैं॥२३॥

गुदस्थ कुपित वातके लक्षण।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः।

जङ्घोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषौ गुदे स्थिते ॥ २४ ॥

गुदामें स्थित वायु कुपित होजाय तो मल, मूत्र तथा अधोवायुका विबंध शूल, अफारा, पथरी, शर्करा और जंघा, ऊरु, त्रिकस्थान, पैर तथा पीठमें अत्यंत पीडा और शोष यह लक्षण होते हैं ॥ २४ ॥

आमाशयस्थ कुपित वातके लक्षण।

हृन्नाभिपार्श्वोदररुक्तृष्णोद्गारविषूचिकाः।

कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते ॥ २५ ॥

आमाशयस्थ वायु कुपित होय तो हृदय नाभि, पार्श्व और उदरमें पीडा, प्यास, उद्गार, विषूचिका, खांसी, कण्ठ और मुखका सूखना तथा श्वास यह लक्षण होते हैं॥

पक्वाशयस्थ कुपित वायुके लक्षण।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च।

कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम्।

पक्वाशयगत वायु कुपित होय तो अंत्रकूजन, शूल, आटोप, मूत्रकृच्छ्र, मलकी कठोरता, अफारा और त्रिकस्थानमें पीडा यह लक्षण होते हैं॥

श्रोत्रादिइंद्रियगत कुपित वातके कर्म।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्य्याद् दुष्टसमीरणः ॥ २६ ॥

यदि श्रोत्रादि इन्द्रियगत वायु कुपित हो तो इन्द्रियोंका नाश करता है ॥ २६ ॥

त्वचागत कुपित वातके लक्षण।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते।

आतन्यते सरागा च पर्वरुक् त्वक्स्थितेऽनिले ॥ २७ ॥

त्वचागत वायु कुपित होय तो त्वचा रूक्ष, फटीहुईसी, सुन्न, कृश, काली, तोद्युक्त, तनीहुईसी या लालवर्णकी होती है। तथा पर्वोंमें पीडा होती है ॥ २७ ॥

रुधिरगत कुपित वातके लक्षण।

रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः।

गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ २८ ॥

रुधिरगत वायुके कुपित होनेसे—तीव्र पीडा, सन्ताप, विवर्णता, कृशता, अरुचि, शरीरमें अरूंषिकानामक छोटी २ फुन्सियोंका होना, भोजनके अनन्तर शरीरका स्तब्धसा होजाना यह लक्षण होते हैं ॥ २८ ॥

मांसमेदगत वायुके लक्षण ।

गुर्वङ्गं तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं यथा ।
सरुक् श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ २९ ॥

मांस और मेदगत कुपित वायुके होनेसे—अंगोंमें भारीपन, दण्डों और मुक्कोंके मारनेकी सी पीडा प्रतीत होना, अत्यन्त शूल और अधिक थकावट प्रतीत होना यह लक्षण होते हैं ॥ २९ ॥

मज्जागत कुपित वातके लक्षण ।

भेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः ।
अस्वप्नः सन्तता रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ ३० ॥

मज्जागत वायुके कुपित होनेसे—अस्थि, पर्व और सन्धियोंमें शूल, मांस और बलकी क्षीणता, निद्रानाश, निरन्तर पीडा होती है । यही अस्थिगत कुपित वायुके भी लक्षण हैं ॥ ३० ॥

शुक्रगतकुपित वातके लक्षण ।

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा ।
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ ३१ ॥

शुक्रगत कुपित वायु होनेसे—वीर्य शीघ्र निकल जाता है तथा गर्भ गिरजाता है, अथवा विकृत गर्भ होता है, या शुक्र और गर्भ रुकजाते हैं यह लक्षण होते हैं ३१

स्नायुगत वातके लक्षण ।

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात् स्नायुगतोऽनिलः ।
बाह्याभ्यन्तरमायामं खल्लिं कुब्जत्वमेव च ॥ ३२ ॥

स्नायुगत कुपित वायुसे—सर्वांगोंका जकडजाना अथवा पक्षाघात आदि एकांगरोग होना, बाह्यायाम या अन्तरायाम, खल्ली और कुबडापन यह रोग उत्पन्न होते हैं ३२

शिरागत कुपित वातके लक्षण ।

शरीरं मन्दरुक् शोफं शुष्यति स्पन्दतेऽपि वा ।
सुप्तास्तन्व्यो महत्यो वा शिरा वाते शिरागते ॥ ३३ ॥

शिरागत वायुके कुपित होनेसे—शरीरमें मन्द मन्द पीडा, सूजन, शरीरका सूखजाना, फडकना और संपूर्ण शिराओंका सुन्न, पतली अथवा मोटी होजाना यह लक्षण होते हैं ॥ ३३ ॥

संधिगत वातके लक्षण।

वातपूर्णदृतिस्पर्शः शोथः सन्धिगतेऽनिले।
प्रसारणाकुञ्चनयोरप्रवृत्तिः सवेदना॥ ३४॥

सन्धिगत कुपित वायुसे संपूर्ण सन्धियें वायुसे पूर्ण मसकके समान स्पर्शमें प्रतीत हों और सूजीहुई हों तथा संधियोंका फैलना और संकोच बन्द होजाय तथा सन्धियोंमें अत्यन्त पीडा हो॥ ३४॥

अर्द्धांगगत (अर्दित) वातके लक्षण।

अतिवृद्धः शरीरार्द्धमेकं वायुः प्रपद्यते।
यदा तदोपशोष्यासृग्बाहुं पादञ्च जानु च॥ ३५॥
तस्मिन् सङ्कोचयत्यर्द्धे मुखं जिह्मं करोति च।
वक्रीकरोति नासाभ्रूललाटाक्षिहनूस्तथा॥ ३६॥
ततो वक्रं व्रजत्यास्ये भोजनं वक्रनासिकम्।
स्तब्धं नेत्रं कथयतः क्षवथुश्च निगृह्यते॥ ३७॥
दीना जिह्वा समुत्क्षिप्ताऽबला सज्जाति चास्य वाक्।
दन्ताश्चलन्ति बाध्यन्ते श्रवणौ भिद्यते स्वरः॥ ३८॥
पादहस्ताक्षिजङ्घोरुशंखश्रवणगण्डरुक्।
अर्द्धे तास्मिन्मुखार्द्धे वा केवले स्यात्तदार्दितम्॥ ३९॥

जब वायु अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो शरीरके वाम अथवा दक्षिण आधे अंगमें प्रवेश करती है तब उस आधे अंगका रक्त भुजा,, पांव और घुटनेको संकुचित कर उसी ओरके आधे मुखको भी टेढा कर देता है उससे नासा, भ्रू (भौहैं) ललाट, नेत्र और ठोडी भी टेढी होजाती हैं, जब वह मनुष्य भोजन करने लगता है तो मुखमें भोजन डालते समय उसका मुख और नाक विशेषरूपसे टेढा प्रतीत होता है। बोलते समय नेत्र स्तब्ध होजाते हैं और यह मनुष्य छींक नहीं ले सकता। जीभ दीन और बाहर निकलीसी प्रतीत होने लगती है। तथा इसकी वाणी दुर्बल अथवा बन्द होजाती है। दांत अपने आप चलायमान अर्थात् शब्द करने लगते हैं। कान सुननेसे बन्द होजाते हैं स्वर भिन्न होजाता और पांव, हाथ, नेत्र, जंघा, ऊरू कनपटी और गुह्य स्थानमें पीडा होने लगती है। यह रोग संपूर्ण शरीरके आधे भागमें होय तो इसको अर्द्धांगवात (फालिज) कहते हैं यदि केवल आधे मुखमेंही होय तो इसको अर्दित रोग (लकवा) कहते हैं॥ ३५-३९॥

मन्यास्तंभ।

मन्ये संश्रित्य वातोऽन्तर्यदा नाडीः प्रपद्यते ।
मन्यास्तम्भं तदा कुर्य्यादन्तरायामसंज्ञितम् ॥ ४० ॥

मन्या (गलेके दोनों ओरके पार्श्वभाग) में कुपितहुआ वायु मन्याकी नाडियोंके भीतर प्राप्त हो मन्याको नीचे जकड देता है इसको अन्तरायाम मन्यास्तम्भ कहते हैं॥

अंतरायाम और बहिरायामके लक्षण।

अन्तरायस्यते ग्रीवा मन्या च स्तभ्यते भृशम् ।
दन्तानां दंशनं लाला पृष्ठाक्षेपः शिरोग्रहः ॥ ४१ ॥
जृम्भावदनसङ्गाश्चाप्यन्तरायामलक्षणम् ।
इत्युक्तस्त्वन्तरायामो बहिरायाम उच्यते ॥ ४२ ॥

गर्दन भीतरकी ओरको खिचकर स्तब्ध होजाय, ऊपरके दांत नीचेके दांतोंसे जुटजांय, लार गिरनेलगे, पीठके भीतर खिचाव प्रतीत हो, मस्तकका स्तम्भ होजाय, जँभाई और मुखका बन्द होजाना यह अन्तरायामके लक्षण हैं। अब बहिरायामके लक्षणको कहते हैं ॥ ४१ ॥ ४२॥

धनुस्तंभके लक्षण।

पृष्ठमन्याश्रिता बाह्याः शोषयित्वा शिरावलीः ।
श्रितः कुर्य्याद्धनुस्तम्भं बहिरायामसंज्ञकम् ॥ ४३ ॥
चापवन्नाम्यमानस्य पृष्ठतो नीयते शिरः ।
उर उत्क्षिप्यते मन्या स्तब्धा ग्रीवा च मृद्यते ॥ ४४ ॥
दन्तानां दंशनँ जृम्भा लालास्रावश्च वाग्ग्रहः ।
जातवेगो निहन्त्येष वैकल्यं वा प्रयच्छति ॥ ४५ ॥

पृष्ठाश्रित वायु मन्याश्रित बाहरकी शिराओंको सुखाकर बहिरायाम नामक धनुस्तम्भ रोगको प्रकट करता है। उसके ये लक्षण होते हैं। जैसे-शरीर पीठकी ओरको धनुषके समान टेढा होजाय, मस्तक पीठकी ओर झुकजाय, छाती ऊपरको उठआवे, दोनों ओरकी मन्या जकडजावें, गर्दन मली हुइके समान प्रतीत हो, दोनों ओरके दांत आपसमें मिलजांय, जंभाई, लारका बहना, वाणीका रुकजाना यह लक्षण होते हैं। यह रोगविशेष बलवान् होनेसे रोगीको मारडालता है, अथवा पूर्णबलवान् होनेसे अंगोंको विकल करदेता है ॥ ४३-४५ ॥

हनुस्तंभ।

हनुमूले स्थिते बन्धात्स्रंसयत्यनिलो हनुम्।
विवृतास्यत्वमथवा कुर्य्यात्संवृतमाननम् ॥ ४६ ॥
हनुग्रहश्च संस्तभ्य हनु संवृतवक्रताम्।
हनुमूले स्थितो वायुः करोति बहुकष्टदम् ॥ ४७ ॥

हनु (ठोडी) की जडमें प्राप्त हुआ कुपित वायु ठोडीके बंधनोंको शिथिल करके मुखको खुला या बन्द ही रखकर हनुको स्तब्ध करदेता है। ठोडी स्तब्ध होजाय, मुख मिचाहुआ बन्द रहजाय, गलेकी नसें तनजांय तथा अत्यंत पीडा हो इत्यादि कष्टकारक लक्षण होते हैं। इस रोगको हनुस्तम्भ अथवा हनुग्रह कहते हैं॥४६॥४७॥

आक्षेपकके लक्षण।

मुहुराक्षिपति क्रुद्धो गात्राण्याक्षेपकोऽनिलः।
पाणिपादञ्च संशोष्य शिराः सस्नायुकण्डराः ॥ ४८ ॥

वायु संपूर्ण शरीरमें कुपित होकर अंगोंको इधर उधर बारंबार फेंके या भीतरी कंपनसा प्रतीत हो हाथ, पांव, शिरा, स्नायु और कण्डरा सूखजावें। यह आक्षेपक वायुके लक्षण हैं ॥ ४८ ॥

दण्डापतानकके लक्षण।

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीः स्तभ्नाति मारुतः।
दण्डवत्स्तब्धगात्रस्य दण्डकः सोऽनुपक्रमः ॥ ४९ ॥

कुपितहुआ वायु हाथ, पांव, मस्तक, पीठ और नितम्बोंको जकडकर रोगीको डण्डेके समान तानकर जकड देवे। उसको दण्डापतानक अथवा दण्डक कहते हैं॥४९

इसकी असाध्यता।

स्वस्थः स्यादर्दिताद्यानां मुहुर्वेगागमे गते।
पीडयते पीडनैस्तैस्तैर्भिषगेतान्विवर्जयेत् ॥ ५० ॥

आर्दित आदि संपूर्ण वातव्याधियोंमें रोगोंका वेग बारंबार बलपूर्वक आना और बारंबार शान्त होजाना,, रोगका वेग चलेजानेपर संपूर्ण शरीर स्वस्थ (नीरोग) प्रतीत होना और फिर वेग आनेपर अत्यन्त पीडित होना इस प्रकार जिस रोगीपर बारंबार वातव्याधिका दौरा होता हो वैद्य उस रोगीको त्याग देवे ॥ ५० ॥

पक्षाघात, एकांग और सर्वांग वातव्याधिके लक्षण।

हत्वैकं मारुतः पक्षं दक्षिणं वाममेव वा।
कुर्य्याच्चेष्टानिवृत्तिं हि रुजं वाक्स्तम्भमेव च ॥ ५१ ॥

गृहीत्वा वा शरीरार्द्धं शिराः स्नायुं विशोष्य च ।
पादं संकोचयत्येकं हस्तं वा तोदशूलनुत् ।
एकाङ्गरोगं तं विद्यात्सर्वाङ्गं सर्वदेहजम् ॥५२ ॥

वायु कुपित होकर शरीरके दक्षिण अथवा वाम ओरके आधे भागको स्तब्ध अथवा निश्चेष्ट कर देवे जिससे उस आधे पक्षमें पीडा हो, या पीडा भी प्रतीत न हो तो इसको पक्षाघात कहते हैं । अथवा आधे शरीरकी शिरा और स्नायुओंको सुखाकर एक पांवको अथवा एक हाथको शूलरहित और सुन्न बनादेवे । अथवा सुखा देवे तो उसको एकांगरोग कहते हैं और संपूर्ण शरीरमें कुपित वायु सर्वांगोंको आहत करदेवे तो उसको सर्वांग रोग कहते हैं ॥ ५१॥५२ ॥

गृध्रसीरोगके लक्षण ।

स्फिक्पूर्वाकटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात् ॥ ५३ ॥
गृध्रसीः स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ।
वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता ॥ ५४ ॥

वायु प्रथम दोनों नितम्बोंमें शूल, स्तम्भ और तोदको उत्पन्न करे फिर क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जांघ और पांवोंमें प्राप्त होकर स्तम्भ, शूलादि उत्पन्न करे उसको गृध्रसी रोग कहते हैं । गृध्रसी रोग वायुसे अथवा वात कफसे उत्पन्न होती है । इसमें तन्द्रा, भारीपन और अरुचि यह लक्षण होते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

खल्लीरोगके लक्षण ।

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी ।
स्थानानामनुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत् ॥ ५५ ॥

पांव, जंघा, ऊरु हाथोंके पहुंचोंमें तोडनेकीसी पीडा उत्पन्न कर टेढे बनादे उसको खल्लीरोग कहते हैं । इसी प्रकार अन्य अन्य स्थानोंमें भी जो वातव्याधि उत्पन्न हो उसको स्थान, लक्षण आदि विचारकर जिस अंगमें वह व्याधि हो उस अंगानुसार और व्याधिके लक्षणानुसार उसका नाम रक्खे ॥ ५५ ॥

सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ।
वायोर्धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेन च ॥ ५६ ॥

इन संपूर्ण वातव्याधियोंमें वायु अत्यंत प्रबल होता है और कफ पित्तका संसर्ग भी जानना चाहिये धातुओंके क्षय होनेके कारण अथवा मार्गोंके अवरोध होनेसे वायुका कोप होता है ॥ ५६ ॥

वातपित्तकफा देहे सर्वस्रोतोऽनुसारिणः ।
वायुरेव हि सूक्ष्मत्वाद्द्वयोस्तत्राप्युदीरणः ॥ ५७ ॥
कुपितस्तौ समुद्धूय तत्र तत्राक्षिपन् गदान् ।
करोत्यावृतमार्गत्वाद्रसादींश्चोपशोषयन् ॥ ५८ ॥

शरीरके संपूर्ण स्रोतोंमें वात, पित्त, कफ यह तीनों दोष अनुसरण अर्थात् गमन करते हैं, परन्तु इनमें वायु सूक्ष्म होनेसे छिद्रोंके मध्यमें प्राप्त होताहुआ दिखाई नहीं देता । वायु कफ और पित्तको उदीर्ण करता है । वायु ही कफ और पित्तको उठाकर स्रोतोंमें प्राप्तकर छिद्रोंको रोकदेता है । जब कफ और पित्तद्वारा छिद्रोंके रुकजानेसे वायुका अवरोध होता है तो वह रसादिक धातुओंको शोषण करता हुआ अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पित्तावृतवातके लक्ष ।

लिङ्गं पित्तावृते दाहस्तृष्णाशूलं भ्रमः क्लमः ।
कट्वम्ललवणोष्णैश्च विदाहः शीतकामिता ॥ ५९ ॥

वायुका मार्ग पित्तके द्वारा रुकजानेसे दाह, शूल, भ्रम और क्लान्ति उत्पन्न होती है उस समय कटु, अम्ल, लवण और उष्ण पदार्थोंके सेवम करनेसे विदाह तथा शीतल वस्तुओंकी इच्छा उत्पन्न होती है ॥ ५९ ॥

कफावृतवातके लक्षण ।

शीतगौरवशूलानि कट्वाद्युपशयोऽधिकम् ।
लङ्घनायासरूक्षोष्णकामिता च कफावृते ॥ ६० ॥

यदि कफवाहीस्रोतोंमें कफद्वारा वायुका मार्ग रुकजाय तो शीत लगना, भारीपन और शूल उत्पन्न हो, तथा चरपरे आदि कफनाशक पदार्थोंके सेवनसे शान्ति प्रतीत हो और लंघन, परिश्रम तथा रूक्ष और उष्ण द्रव्योंके सेवनकी इच्छा उत्पन्न होती है ॥ ६० ॥

रक्तावृतवात ।

रक्तावृते सदाहार्त्तिस्त्वङ्मांसान्तरजो भृशम् ।
भवेत्सरागः श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च ॥ ६१ ॥

रक्तवाहीस्रोतोंमें रक्तद्वारा वायुका मार्ग रुकजानेसे दाह, पीडा, त्वचा और मांसमें लाल रंगकी पीडायुक्त सूजन तथा मण्डल (गोल २ चकत्ते) उत्पन्न होते हैं ६१

मांसावृतवात।

कठिनाश्च विवर्णाश्च पिडकाः श्वयथुस्तथा।
हर्षः पिपीलिकानाञ्च सञ्चार इव मांसगे ॥ ६२ ॥

मांसवाही स्रोतोंमें मांसद्वारा वायुके रुकजानेसे कठोर और विवर्ण, पिडिका (फुंसियां) सूजन, मांसमें सरसराहट और चींटियोंके चलनेकासा संचार प्रतीत होता है ॥ ६२ ॥

मेदावृतवातके लक्षण।

चलः स्निग्धो मृदुः शीतः शोफोऽङ्गेष्वरुचिस्तथा।
आढ्यवात इति ज्ञेयः स कृच्छ्रो मेदसावृतः ॥ ६३ ॥

मेदवाहीस्रोतोंमें मेदद्वारा वायुके रुकजानेसे अंगोंका चलायमान होना, अंगोंमें चिकनी, नरम और शीतल सूजन तथा अरुचि होती है। यह आढ्यवात नामवाला कष्टसाध्य रोग होता है ॥ ६३ ॥

अस्थिगत आवृतवात।

स्पर्शमस्थ्यावृते तूष्णं पीडनञ्चाभिनन्दति।
संभज्यते सीदति च सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ६४ ॥

हड्डियोंमें वायुके रुकजानेसे गरम स्पर्श और दबानेसे आराम प्रतीतहो, संपूर्ण शरीरमें भेदन करनेकीसी पीडा प्रतीतहो, हड्डियें सुन्नसी होजांय और सूई चुभनेकासा तोद होता है ॥ ६४ ॥

मज्जावृत वात।

मज्जावृते विनामः स्याज्जृम्भणं परिवेष्टनम्।
शूलन्तु पीडयमाने च पाणिभ्यां लभते सुखम् ॥ ६५ ॥

मज्जास्थानमें मज्जाद्वारा वायुके आवृत होनेसे शरीरका नमजाना, जंभाई, परिवेष्टन (लपेटनेकीसी पीडा) और शूल यह लक्षण होते हैं। इसमें हाथोंद्वारा शरीरको दबानेसे सुख प्रतीत होता है ॥ ६५ ॥

शुक्रावृत वात।

शुक्रावेगेऽतिवेगो वा निष्फलत्वञ्च शुक्रगे।

शुक्रवाहीस्रोतोंमें शुक्रद्वारा वायुके अवरोध होनेसे वीर्यका अवरोध अथवा अतिवेग और शुक्र निष्फल होता है ॥

अन्नावृत वात।

भुक्ते कुक्षौ च रुग्जीर्णे शाम्यत्यन्नावृतेऽनिले ॥ ६६ ॥

अन्नवाही स्रोतोंमें अन्नद्वारा वायुके आवृत होनेसे कुक्षिमें शूल उत्पन्न होजाता है और अन्नके जीर्ण होजानेपर वह शूल भी शान्त होजाता है ॥ ६६ ॥

मूत्रावृतवात।

मूत्राप्रवृत्तिराध्मानं वस्तौ मूत्रावृतेऽनिले ॥ ६७ ॥

मूत्रमार्गमें मूत्रद्वारा वायुके आवृत होनेसे मूत्रका रुकजाना और वस्तिका फूलना यह लक्षण होते हैं ॥ ६७ ॥

मलावृतवात।

वर्चोवृते विबन्धोऽधः स्वे स्थाने परिकृन्तति।
व्रजत्याशु जरां स्नेहो भुक्ते चानह्यते नरः।
चिरात्पीडितमन्येन दुःखं शुष्कं शकृत्सृजेत् ॥ ६८ ॥
श्रोणीवंक्षणपृष्ठेषु रुग्विलोमश्च मारुतः।
अस्वस्थं हृदयञ्चैव स च वर्चोवृतेऽनिलः ॥ ६९ ॥

मलवाहीस्रोतमें मलद्वारा वायुके रुकजानेसे मलका विबन्ध, मलाशयमें कतरनेकीसी पीडा उत्पन्न हो, स्नेहपदार्थ तत्काल जीर्ण होजाय, भोजन करनेसे अफारा उत्पन्न हो, दूसरा मनुष्य इस रोगीके पेटको दबावे तो कष्टके साथ सूखा थोडासा मल आवे, नितम्ब, वंक्षण और पीठमें शूल हो वायुकी गति उल्टी होजाय, हृदय अस्वस्थ हो यह लक्षण होते हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

इन रोगोंकी साध्यासाध्यता।

सन्धिच्युतिर्हनुस्तम्भः कुञ्चनं कुब्जतार्दितम्।
पक्षाघातोऽङ्गसंशोषः पङ्गुत्वं खुडवातता ॥ ७० ॥
स्तम्भनञ्चाढ्यवातश्च रोगा मज्जास्थिगाश्च ये।
एते स्थानस्य गाम्भीर्य्याद्यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा ॥ ७१ ॥
नवान् बलवतस्त्वेतान् साधयेन्निरुपद्रवान्।
क्रियामतः सिद्धतमां वातरोगापहां शृणु ॥ ७२ ॥

संधिभ्रंश (संधियोंका ढीला पडजाना), हनुस्तम्भ, आकुंचन, कुबडापन, अर्दितवायु, पक्षाघात, अंगशोष, पंगुपन, खुडवात, स्तम्भन, आढ्यवात, मज्जागतवात, अस्थिगतवात यह सब रोग स्थानकी गंभीरता होनेसे विधिवत् यत्न कियाजाय तो साध्य होजाते हैं। और नहीं भी होते। संपूर्ण वातव्याधियें बलवान् मनुष्यके शरीरमें नवीन और उपद्रवरहित हों तो साध्य हो सकते हैं। अन्यथा असाध्य होते हैं। अब इन वातव्याधियोंकी सिद्धचिकित्साको श्रवण करो ॥ ७०-७२ ॥

वातव्याधिमें सामान्य चिकित्सा।

केवलं निरुपस्तम्भमादौ स्नेहैरुपाचरेत् ।
वायुं सर्पिर्वसातैलमज्जापानैर्नरं ततः ॥ ७३ ॥

यदि वातजनित व्याधि कफ और पित्तसे आवृत न हो तो प्रथम स्नेहनद्वारा चिकित्सा करे । वातव्याधिवाले रोगीको घृत, वसा, तेल और मज्जा पिलाके वायुको जीते ॥ ७३ ॥

स्नेहे क्लान्तं समाश्वास्य पयोभिः स्नेहयेत्पुनः ।
यूषैर्ग्राम्याम्बुजानूपै रसैर्वा स्नेहसंयुतैः ॥ ७४ ॥

यदि रोगी स्नेहके अधिक सेवन करनेसे क्लान्त होजाय अर्थात् स्नेहपान न कर-सके तो उसको दूधके योगसे स्निग्ध करना चाहिये । अथवा स्नेहयुक्त यूष, ग्राम्य, जलज और अनूप देशज जीवोंका मांसरस स्नेह मिलाकर पान करावे ॥ ७४ ॥

पायसैः कृसरैरम्ललवणैः सानुवासनैः ।
नावनैस्तर्पणैश्चान्नैः सुस्निग्धं स्वेदयेत्ततः ॥ ७५ ॥

तथा रोगीको खीर घृतयुक्त खिचडी, अम्लरस, नमकीन, चिकने द्रव्य खिलावे और तेलकी नस्य तथा तर्पण अन्नोंद्वारा तृप्त और स्निग्ध करके स्वेदन करे ॥७५॥

स्नेहस्वेदनके गुण।

स्वभ्यक्तस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः ।
तथान्यैर्विविधैः स्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत् ॥ ७६ ॥
स्नेहार्द्रस्विन्नमङ्गन्तु वक्रं स्तब्धमथापि वा ।
शनैर्नमयितुं शक्यं यथेष्टं शुष्कदारुवत् ॥ ७७ ॥

भली प्रकार तैल आदि शरीरपर मलकर स्नेहयुक्त नाडीस्वेद अथवा प्रस्तरस्वेद वा संकरस्वेद अथवा अन्य अनेक प्रकारके स्वेदोंद्वारा रोगीकी प्रकृति आदि विचार कर विधिवत् स्वेदन करे । स्नेहन और स्वेदन करनेसे नरम हुए अंग अथवा मुख इस प्रकार नम्र और ठीक हो सकते हैं। जैसे सूखी लकडीको स्निग्ध और स्विन्न करके जिस प्रकार चाहे मनुष्य धीरे धीरे नवा सकता है ॥ ७६॥७७ ॥

हर्षतोदरुगायासशोथस्तम्भग्रहादयः ।
स्विन्नस्याशु प्रशाम्यन्ति मार्दवञ्चोपजायते ॥ ७८ ॥

वातव्याधिमें स्नेहनकिये रोगीको स्वेदन करनेसे उसके शरीरकी वातजनित सर-सराहट, तोद, शूल, आयाम, सूजन, स्तम्भ और जकडन आदि सब दूर होकर शरीर मृदु और हलका होजाता है ॥ ७८॥

स्नेहश्च धातून्संशुष्कान् पुष्णात्याशु प्रयोजितः।
बलमग्निबलं पुष्टिं प्राणांश्चाप्यभिवर्द्धयेत् ॥ ७९ ॥
असकृत्तं पुनः स्नेहैः स्वेदैश्चाप्युपपादयेत्।
तथा स्नेहमृदौ कोष्ठे न तिष्ठन्त्यनिलामयाः ॥ ८० ॥

स्नेहका भली प्रकार प्रयोग कियाहुआ वायुसे सूखी हुई धातुओंको पुष्ट करता है तथा जठराग्निके बल, पुष्टि और प्राणोंकी वृद्धि करता है। इसलिये वातरोगीको वारंवार स्नेह और स्वेदोंद्वारा उत्पन्न करना चाहिये। स्नेहपानसे मृदुहुए कोष्ठमें वातजनित रोग ठहर नहीं सकते ॥ ७९ ॥ ८० ॥

वातव्याधिमें विरेचनक्रम।

यद्यनेन सदोषत्वात्कर्मणा न प्रशाम्याति।
मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैरौषधैस्तं विशोधयेत् ॥ ८१ ॥

यदि दोषोंकी अधिकताके कारण वारंवार स्नेहन और स्वेदन करनेपर भी वातव्याधिकी शान्ति न हो तो उस रोगीको स्नेहयुक्त मृदु विरेचन करावे ॥ ८१ ॥

घृतं तिल्वकसिद्धं वा सातलासिद्धमेव वा।
पयसैरण्डतैलं वा पिबेद्दोषहरं शिवम् ॥ ८२ ॥

लोध अथवा सातलासे सिद्ध किये घृतद्वारा विरेचन करावे अथवा गरम दूधमें एरण्ड तैल मिला पिलाना भी वातव्याधिमें उत्तम योग है ॥ ८२ ॥

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हि मलश्चितः।
स्रोतो बद्धाऽनिलं रुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ॥ ८३ ॥

स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्ण आदि पदार्थोंको अधिक प्रमाणसे खावे तो संचित हुआ मल ऊपरसे स्रोतोंको रोककर वायुको भी रोकदेता है इसलिये वह आहार वायुको अनुलोमन करनेवाला होता है। अर्थात् स्निग्ध आदि आहार रूक्ष स्रोतोंमें फिरतेहुए वायुको अनुलोमन कर देता है ॥ ८३ ॥

दुर्बलो यो विरेच्यः स्यात्तं निरूहैरुपाचरेत्।
पाचनैर्दीपनीयैर्वा भोज्यैर्वातयुतं नरम् ॥ ८४ ॥

जो दुर्बल वातरोगी विरेचन करानेके योग्य न हो और उसका मल निकालनाही उस समय हितकारक हो तो उसको निरूहण वस्ति प्रयोग करे। तथा पाचन और दीपन द्रव्योंद्वारा चिकित्सा करे ॥ ८४ ॥

शुद्धस्य चोत्थिते चाग्नौ स्नेहस्वेदौ पुनर्हितौ ।
स्वाद्वम्ललवणस्निग्धैराहारैः सततं पुनः ॥ ८५ ॥
नावनैर्धूमपानैश्च सर्वानेवोपपादयेत् ।
इति सामान्यतः प्रोक्तं वातरोगचिकित्सितम् ॥ ८६ ॥

विरेचन और वस्तिकर्मद्वारा शुद्ध देह होनेके अनन्तर जब अग्नि बलवान् होजाय तो फिर स्नेहन और स्वेदन कराना चाहिये। सब प्रकारके वातरोगमें स्वादु, अम्ल, नमकीन और स्निग्ध आहारोंका निरन्तर सेवन करना और स्निग्ध नस्य तथा स्निग्ध धूमपानोंका सेवन करना सदैव हितकारी है। इस प्रकार वातव्याधियोंकी सामान्य चिकित्सा कथन कीगयी है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

वातव्याधियोंकी विशेषचिकित्सा।

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षारं पिबेन्नरः ।
पाचनैर्दीपनीयैस्तैरम्लैर्वा पाचयेन्मलान् ।
गुदपक्वाशयस्थे तु कर्मोदावर्त्तनुद्धितम् ॥ ८७ ॥

अब वातव्याधिकी विशेष चिकित्साको कथन करते हैं। यदि वायु कोष्ठमें आश्रित हो तो क्षार पिलाना तथा दीपन, पाचन और अम्लद्रव्योंद्वारा मलोंको पाचन करना चाहिये। यदि गुदा अथवा पक्वाशयमें वायु स्थित हो तो उदावर्त्त-नाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८७ ॥

आमाशयस्थे शुद्धस्य यथादोषहराः क्रियाः ।
सर्वाङ्गकुपितेऽभ्यङ्गो बस्तयः सानुवासनाः ॥ ८८ ॥

आमाशयमें स्थित वायु हो तो प्रथम स्निग्ध, वमन, विरेचन करा फिर दोषोंके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये। यदि सर्वांगमेंही वायुका कोप हो तो वातनाशक तैलों या अभ्यंग, निरूहणवस्ति और अनुवासन बस्तिका प्रयोग करना चाहिये॥८८॥

स्वेदाभ्यङ्गानि वातानि हृद्यश्चान्नं त्वगाश्रिते ।
शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ ८९ ॥

त्वचामें आश्रित वायु हो तो वातनाशक तैलोंका अभ्यंग, स्वेद, निर्वातस्थानमें निवास तथा हृद्य और स्निग्ध अन्नोंका सेवन करना चाहिये। रक्तमें स्थित वायु हो तो शीतललेप विरेचन और रक्तमोक्षण कराना हितकारक है ॥ ८९ ॥

विरेको मांसमेदःस्थे निरूहाः शमनानि च ।
बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत् ॥ ९० ॥

मांस और मेदगतवायु हो तो विरेचन, निरूहण और शमन औषध प्रयोग करना चाहिये। अस्थि और मज्जागत वायु हो तो बाह्य और अभ्यंतर स्नेहोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ९० ॥

हर्षोऽन्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ।
विबद्धमार्गं दृष्ट्वा वा शुक्रं दद्याद्विरेचनम् ।
विरिक्तप्रतिभुक्तस्य पूर्वोक्तां कारयेत्क्रियाम् ॥ ९१ ॥

वीर्यगत वायु हो तो कर्षकारक, बल और वीर्यको उत्पन्न करनेवाले अन्नपानोंका प्रयोग करना चाहिये। यदि शुक्रका मार्ग रुकगया हो तो प्रथम विरेचन करावे तद-नन्तर बल और शुक्रके बढानेवाले अन्नपानोंका सेवन करे ॥ ९१ ॥

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम् ।
सिताकाश्मर्य्यमधुकैर्हितमुत्थापने पयः ॥ ९२ ॥

यदि वायुद्वारा गर्भ सूखजाय अथवा वायुसे बालकोंका शरीर सूखजाय तो उनके पुष्ट करनेके लिये मिसरी, कुंभेरके फल (कुंभेरके अभावमें द्राक्षा) और मुलैठीके कल्कसे सिद्ध किया दूध घृत मिला पिलाना चाहिये ॥ ९२ ॥

हृदि प्रकुपिते सिद्धमंशुमत्या पयो हितम् ।
मत्स्यान्नाभिप्रदेशस्थे सिद्धान् बिल्वशलाटुभिः ॥ ९३ ॥

हृदयस्थवायु कुपित होय तो शालपर्णीसे सिद्ध किया दूध पिलाना हितकारक है। नाभिस्थानमें कुपित वायु होय तो बेलकी गिरी और मछलीका मांस सिद्ध कर खिलावे ॥ ९३ ॥

वायुना वेष्ट्यमाने तु गात्रे स्यादुपनाहनम् ॥ ९४ ॥

वायुसे सब अंग वेष्ट्यमान हों तो उपनाहस्वेद कराना हितकारी है ॥ ९४ ॥

तैलं संकुचितेऽभ्यङ्गो माषसैन्धवसाधितम् ।
बाहुशीर्षगते नस्यं पानञ्चोत्तरभक्तिकम् ।
बस्तिकर्म त्वधो नाभेः शस्यते चावपीडकः ॥ ९५ ॥

यादि वातके कोपसे अंग संकुचित होजाय तो उडद और सेंधानमकसे सिद्ध किये हुए तैलसे मालिश करना चाहिये। बाहुगत और शिरोगत वायु कुपित हो तो नस्य कर्म और उत्तरभक्तिके घृतपान कराना हितकारक है । नाभिके अधोगत वायुका कोप हो तो वस्तिकर्म तथा अवपीडन नस्य प्रयोग करना हितकारक है ॥ ९५ ॥

अर्दिते नावनं मूर्ध्नि तैलं तर्पणमेव च।
नाडीस्वेदोपनाहाश्चाप्यानूपपिशितैर्हिताः ॥ ९६ ॥

अर्दितरोगमें नस्य, मस्तकपर तेलका मलना, तर्पण और आनूपसंचारी जीवोंके मांससे नाडीस्वेद तथा उपनाहस्वेद करना हितकारी है ॥ ९६ ॥

स्वेदनं स्नेहसंयुक्तं पक्षाघाते विरेचनम्।
अन्तराकण्डराङ्गुल्योः शिरावस्त्यग्निकर्म च ॥ ९७ ॥

पक्षाघातमें स्नेहन, स्वेदन तथा स्निग्ध विरेचन कराना हितकारक है। तथा कण्डरा और अंगुलियोंके मध्यमें शिरावस्ति (नसमें पिचकारी लगाना) और अग्निकर्म करना हितकारक है ॥ ९७ ॥

गृध्रसीषु प्रयुञ्जीत खल्ल्यां तूष्णोपनाहनम्।
पायसैः कृसरैश्चैव शस्तं तैलघृतान्वितैः ॥ ९८ ॥

गृध्रसीरोगमें भी कण्डरा और अंगुलियोंके मध्यभागमें शिरावस्ति तथा अग्नि-कर्म करना हितकारक है। और खल्लीरोगमें तैल और घृतमिली खीर तथा खिचडीसे उपनाहस्वेद करना चाहिये ॥ ९८ ॥

व्यात्तानने हनुं स्विन्नामङ्गुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च।
प्रदेशिनीभ्यां चोन्नाम्य चिबुकोन्नामनं हितम् ॥ ९९ ॥
स्रस्तां सङ्गमयेत्स्थानं स्तब्धां स्विन्नां विनामयेत्।
प्रत्येकं स्थानदूष्यादिक्रियावैशेष्यमाचरेत् ॥ १०० ॥

हनुस्तम्भरोगमें यदि मुख खुला रहगया हो तो ठोडीको आनूपसंचारी जीवोंके मांससे स्वेदन करके अंगूठेसे दबाकर तर्जनीसे ठोडीको ऊपरकी ओर ढकेले जिससे खुलाहुआ मुख बन्द होसके। यदि ठोडी पीछेको हटी हो तो उसको आगेको लावे स्रस्त होगयी हो तो ठीक स्थानपर पहुंचावे। कठोर होगयी हो तो स्वेदनद्वारा ही नम्र करे इस प्रकार वातरोगोंमें स्थान दूष्य आदि विचारकर विशेष क्रियाको करना चाहिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

वातव्याधिनाशक अनेक योग।

सर्पिस्तैलवसामज्जसेकाभ्यञ्जनबस्तयः।
स्निग्धाः स्वेदा निवातञ्च स्थानं प्रावरणानि च ॥ १०१ ॥
रसाः पयांसि भोज्यानि स्वाद्वम्ललवणानि च।
बृंहणं यच्च तत्सर्वं प्रशस्तं वातरोगिणाम् ॥ १०२ ॥

वातव्याधिमें घृत, तैल, वसा, मज्जा, सेक, अभ्यंग, वास्तिकर्म, स्निग्ध, स्वेद, वातरहित स्थानमें निवास, गर्मवस्त्रोंसे शरीरको लपेटना, मांसरस, दूध तथा मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थोंका सेवन करना चाहिये । और जितने प्रकारके बृंहण द्रव्य हैं वह सब वातरोगियोंके लिये हितकारक हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

बलायाः पञ्चमूलस्य दशमूलस्य वा रसे ।
अजशीर्षाम्बुजानूपमांसादपिशितैः पृथक् ॥ १०३ ॥
साधयित्वा रसान् स्निग्धान् दध्यम्लव्योषसंस्कृतान् ।
भोजयेद्वातरोगार्त्तं तैर्व्यक्तलवणैर्नरम् ॥ १०४ ॥

वातरोगीको बृंहण करनेके लिये बला अथवा शालपर्ण्यादि पंचमूल या दशमूलके काथमें बकरेका मस्तक अथवा जलज जीवोंका मांस वा आनूपसंचारी जीवोंका मांस तथा मांसखानेवाले जीवोंका मांस पकाकर वह रस सेवन करावे । इन रसोंको घृतयुक्त तथा दहीकी खटाई त्रिकुटेका चूर्ण और सेंधानमक मिला (संस्कार) कर पिलाना चाहिये । अथवा इन्हीं मांसरसोंको लवणयुक्त कर भोजनके साथमें देना चाहिये ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

एतैरेवोपनाहांश्च पिशितैः संप्रकल्पयेत् ।
घृततैलयुतैः साम्लैः क्षुण्णस्विन्नैरनस्थिभिः ॥ १०५ ॥

इन्हीं उपरोक्त मांसोंसे वातरोगियोंको उपनाहस्वेद करना चाहिये । परन्तु इन मांसोंको आस्थि रहितकर घृत, तैल, खटाई युक्त कर पकालेवे । फिर गर्म गर्मसे उपनाह स्वेद करे ॥ १०५ ॥

पत्रोत्काथः पयस्तैलद्रोण्यः स्युरवगाहने ।
स्वभ्यक्तानां प्रशस्यन्ते सेकाश्चानिलरोगिणाम् ॥ १०६ ॥

वातरोगियोंको प्रथम तैलाभ्यक्त करके फिर वातनाशक पत्रोंके काथमें अथवा दोषानुसार दूध या तेलकी द्रोणीमें विठावे । और दोषानुसार काथ, दूध और तैलों-द्वारा परिसेचन करे ॥ १०६ ॥

आनूपौदकमांसानि दशमूलं शतावरीम् ।
कुलत्थान् बदरान्माषांस्तिलान् रास्नां यवान्बलाम् ।
वसादध्यारनालाम्लैः सह कुम्भ्या विपाचयेत् ॥ १०७ ॥
नाडीस्वेदं प्रयुञ्जीत पिष्टैश्चैवोपनाहनम् ।

तैश्च सिद्धं घृतं तैलमभ्यङ्गः पानमेव च ॥ १०८ ॥

अनूपसंचारी जीवोंका मांस, जलसंचारी जीवोंका मांस, दशमूल, शतावर, कुल्थी, बेर, उडद, तिल, रासना, यव, बला इन सब द्रव्योंको वसा, दही, कांजी और सिरका मिलाकर कुंभी (घडा) में पकावे। और उसके मुखपर नाल लगाकर चारों ओरसे बन्द कर देवे। उस नालद्वारा जो भाफ निकले उससे वातरोगीको स्वेदन करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंको पीसकर उससे उपनाह स्वेद करे या इन्हीं द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ घृत और तेल पीने तथा अभ्यंगमें प्रयुक्त करे तो वातव्याधि दूर होती है ॥ १०७॥ १०८ ॥

मुस्तं किण्वं तिलाः कुष्ठं सुराह्वं लवणं नतम् ।
दधिक्षीरचतुःस्नेहैः सिद्धं स्यादुपनाहनम् ॥ १०९ ॥

नागरमोथा, सुराबीज, तिल, कूठ, देवदारू, सेंधानमक, तगर, दही, दूध, तैल, घृत, वसा और मज्जा इन सबको मिलाकर पकावे। इससे उपनाह करे तो वातव्याधि शान्त होती है ॥ १०९ ॥

उत्कारिकावेशवारक्षीरमाषतिलौदनैः ।
एरण्डबीजगोधूमयवकोलस्थिरादिभिः ॥ ११० ॥
सस्नेहैः सरुजं गात्रमालिप्य बहुलं भिषक् ।
एरण्डपत्रैः प्रच्छाद्य रात्रौ कल्ये विमोक्षयेत् ॥ १११ ॥
क्षीराम्बुना ततः सिक्तं पुनश्चैवोपनाहनम् ।
मुञ्चेद्रात्रौ दिवाबद्धं चर्मभिश्च सलोमभिः ॥ ११२ ॥

उत्कारिका (मांसकी बनाईहुई पूडियें), वेसवार (मसालेयुक्त पालर, कांजी विशेष) दूध, उडद, तिल, भात, एरण्डके बीज, गेहूं, यव, बेर और शालपर्ण्यादि पंचमूल इन सबको बारीक पीस चतुःस्नेह मिलाकर बहुतसा ले जिस अंगपर वातव्याधि हो गर्मगर्म लेप करे ऊपरसे एरण्डके पत्तोंको लपेटकर रात्रिभर रहने देवे प्रातःकाल लेपको उतार देवे। फिर उपरोक्त क्षीरादि अथवा शालपर्ण्यादि काथद्वारा परिषेचन कर उपरोक्त उपनाहस्वेद करे। फिर रात्रिको वातनाशक तैलकी मालिश कर यही लेप करे। लेपके ऊपर एरण्डके पत्र लपेट ऊपरसे रोमयुक्त चमडेकी पट्टी बाँधे। इस प्रकार प्रातःकालके किये लेपको सायंकाल उतारे और फिर उष्ण तेल नारायण तैलादि मलकर पट्टी बाँधे। इस प्रकार करनेसे आवृत और कफ पित्तादिसे युक्त वातव्याधि शान्त होती हैं ॥ ११०-११२ ॥

फलानां तैलयोनीनामम्लपिष्टानशीतलान् ।
प्रदेहानुपनाहांश्च गन्धैर्वातहरैरपि ।
पायसैः कृसरैश्चैव कारयेत्स्नेहसंयुतैः ॥ ११३ ॥

जिन फलोंमेंसे तेल निकलते हैं उन संपूर्ण फलोंको पीसकर इकट्ठे करके गर्मगर्म लेप तथा उपनाहस्वेद करे । एवं वातनाशक गंध, खीर, खिचडी आदिको स्नेहयुक्त कर प्रदेह और उपनाह करे ॥ ११३ ॥

रूक्षशुद्धानिलार्त्तानामतः स्नेहान् प्रचक्षते ।
विविधा विविधव्याधिप्रशमायामृतोपमान् ॥ ११४ ॥

अब पित्त, कफादि रहित रूक्ष शुद्ध (केवल) वायुसे पीडित मनुष्योंके रोगकी शान्तिके लिये अनेक प्रकारकी वातव्याधि नाशक अमृतके समान स्नेहोंका वर्णन करते हैं ॥ ११४ ॥

वातव्याधिनाशक घृत ।

द्रोणेऽम्भसः पचेद्भागान् दशमूलाच्चतुष्पलान् ।
यवकोलकुलत्थानां भागैः प्रस्थोन्मितैः सह ॥ ११५ ॥
पादशेषे रसे पिष्टैर्जीवनीयैः सशर्करैः ।
तथा खर्जूरकाश्मर्य्यद्राक्षाबदरफल्गुभिः ॥ ११६ ॥
सक्षीरैः सर्पिषः प्रस्थः सिद्धः केवलवातनुत् ।
निरत्ययः प्रयोक्तव्यः पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ ११७ ॥

दशमूलकी संपूर्ण औषधियें चार चार पल, यव, बेर, कुलथी, एक एक प्रस्थ इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग शेष रहे तो उतारकर छानले । फिर जीवनीयगणकी दश औषधियें, खांड, खजूर, कुंभेर, द्राक्षा, बेर और गूलर इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । घृत एक सेर लेवे, दूध चार सेर इन सबको मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतार छानले । इस घृतको पीने और मालिश करने तथा वस्तिकर्ममें प्रयोग करनेसे वातविकार शान्त होते हैं ॥ ११५–११७ ॥

चित्रकादिघृत ।

चित्रकं नागरं रास्नां पौष्करं पिप्पलीं शटीम् ।
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरं परम् ॥ ११८ ॥

चित्रक, सोंठ, रासना, पोहकरमूल, पीपल और कचूर इन सबके कल्कसे सिद्ध किया घृत वातरोगोंके दूर करनेमें परमोत्तम कहा है ॥ ११८ ॥

ऊर्ध्वगत वातनाशक घृत।

बलाबिल्वशृते क्षीरे घृतमण्डं विपाचयेत्।
तस्य शुक्तिः प्रकुञ्चो वा नस्यं मूर्द्धगतेऽनिले ॥ ११९ ॥

बला और बेलकी गिरीसे सिद्ध किये हुए दूधमें पकायाहुआ घृतमण्ड दो तोला अथवा ४ तोले लेकर पीवे अथवा नाकद्वारा पीवे तो ऊर्द्ध्वजत्रुगत वायुके रोग दूर होतेहैं ११९

वातनाशक स्नेह।

ग्राम्यानूपौदकानान्तु भित्त्वास्थीनि पचेज्जले।
तं स्नेहं दशमूलस्य कषायेण पुनः पचेत् ॥ १२० ॥
जीवकर्षभकास्फोताविदारीकपिकच्छुभिः।
वातघ्नैर्जीवनीयैश्च कल्कैर्द्विक्षीरभागिकम् ॥ १२१ ॥
तत्सिद्धं नावनाभ्यङ्गात्तथा पानानुवासनात्।
शिरापर्वास्थिकोष्ठस्थं प्रणुदत्याशु मारुतम् ॥ १२२ ॥
ये स्युः प्रक्षीणमज्जानः क्षीणशुक्रौजसश्च ये।
बलपुष्टिकरं तेषामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥ १२३ ॥

ग्राम्यसंचारी, जलज और अनूपसंचारी जीवोंकी हड्डियोंको कूटकर जलमें पकावे जब पकते २ उन हड्डियोंमेंसे चिकनाई निकलकर पानीपर तैरने लगे तो उस चिकनाईको उतारकर उसमें दुगुना दूध चौगुना दशमूलका क्वाथ और उस स्नेहसे चौथाभाग जीवक, ऋषभक, सारिवा, विदारीकंद, कौंचके बीज अथवा अन्य वातनाशक द्रव्य या जीवनीयगणका कल्क मिलाकर पकावे। स्नेहमात्र शेष रहने पर उतारकर छानले। इस स्नेहके नस्य, अभ्यंग, पान और अनुवासनमें प्रयोग करनेसे शिरा, जोड, हड्डी और कोष्ठमें स्थितहुई वायु शीघ्र नष्ट होजाती है। जो मनुष्य क्षीणमज्जा और क्षीणवीर्य तथा क्षीणओज हैं उनके लिये यह स्नेह बल और पुष्टिको करनेवाला तथा अमृतके समान गुणकारी है ॥ १२०-१२३ ॥

तद्वत्सिद्धा वसा नक्रमत्स्यकूर्मचुलूकजाः।
प्रत्यग्रा विधिनानेन नस्यपानेषु शस्यते ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार नक्र (गरम मच्छ) मछली, कच्छू और सूसकी हड्डियोंमेंसे पूर्वोक्त विधिद्वारा स्नेह (मज्जा) निकालकर और उपरोक्त द्रव्योंसे सिद्ध कर नस्य, पान आदिमें प्रयोग करनेसे वातव्याधियें शान्त होती हैं ॥ १२४ ॥

महास्नेह।

प्रस्थः स्यात् त्रिफलायास्तु कुलत्थकुडवद्वयम्।
कृष्णगन्धात्वगाढक्योः पृथकपञ्चपलं भवेत्॥ १२५॥
रास्नाचित्रकयोर्द्वे द्वे दशमूलं पलोन्मितम्।
जलद्रोणे पचेत्पादशेषे प्रस्थोन्मितं पृथक्॥ १२६॥
सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम्।
कोलदाडिमवृक्षाम्लरसं तैलं वसां घृतम्॥ १२७॥
मज्जानञ्च पयश्चैव जीवनीयपलानि षट्।
कल्कं दत्त्वा महास्नेहं सम्यगेनं विपाचयेत्॥ १२८॥
शिरामज्जास्थिगे वाते सर्वाङ्गैकाङ्गरोगिषु।
वेपनाक्षेपशूलेषु तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत्॥ १२९॥

त्रिफला एक प्रस्थ, कुल्थी दो कुडव, सुहांजनेकी छाल और अरहरकी जड पांच-पांच पल, रासना और चित्रक दो दो पल, दशमूलकी औषधियें एक एक पल लेकर सबको कूटलेवे और एक द्रोण जलमें पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस क्वाथमें सुरा, कांजी, दही, दहीका जल, सौवीरक, तुषोदक, बेरका रस, दाडिमका रस, इमलीका रस, तेल, वसा, घृत, मज्जा और दूध यह सब एक एक प्रस्थ लेवे। जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधी छः छः पल लेकर कल्क बनावे इन सबको मिला पकावे जब स्नेहमात्र शेष रहे तो उतारकर छान लेवे। इस स्नेहको मालिश करनेसे शिरागतवात, मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत और कम्पनवात तथा आक्षेप और शूल यह सब वातविकार नष्ट होते हैं। इसको महास्नेह कहते हैं॥ १२५–१२९॥

निर्गुण्डीतैल।

निर्गुण्डया मूलपत्राभ्यां गृहीत्वा स्वरसं ततः।
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीकुष्ठानिलार्तिषु।
हितं पामापचीनाञ्च पानाभ्यञ्जनपूरणम्॥ १३०॥

संभालूकी जड और पत्तोंका स्वरस निकालकर उसके बराबरका तैल मिला पकावे तैलमात्र शेष रहनेपर उतार लेवे। इस तैलकी मालिश करनेसे नाडीव्रण, कुष्ठ, वातव्याधि, पामा (खुजली) और अपची रोग नष्ट होता है। यह तैल पान अभ्यंग और पूरणमें प्रयोग कियाजाता है॥ १३०॥

कार्पासास्थिकुलत्थानां रसे सिद्धश्च वातनुत् ॥ १३१ ॥

कपासके बीज और कुल्थीके रससे सिद्ध किया तैल वातरोगको दूर करता है१३१

मूलकादि तैल ।

मूलकस्वरसे क्षीरसमे स्थाप्यं त्र्यहं दधि ।
तस्याम्लस्य त्रिभिः प्रस्थैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३२ ॥
यष्ट्याह्वशर्करारास्नालवणार्द्रकनागरैः ।
सुपिष्टैः पलिकैः पानात्तदभ्यङ्गाच्च वातनुत् ॥ १३३ ॥

मूलीका स्वरस और दूध इन दोनोंको एक समान लेकर उसमें थोडासा दही मिला तीन दिन रक्खा रहनेदे जब जमकर दहीके समान होजाय और खटाई आजाय तो यह अम्ल द्रव्य तीन प्रस्थ और तेल एक प्रस्थ तथा मुलैठी, खांड,रासना, सेंधा-नमक, अदरख और सोंठ इन सबको एक एक पल लेकर कल्क बनावे । इन सबको मिलाकर तैल सिद्ध करे । इस तेलके पीने और मालिश करनेसे संपूर्ण वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

पंचमूलादि तैल ।

पञ्चमूलकषायेण पिण्याकं बहुवार्षिकम् ।
पक्त्वा तस्य रसं पूत्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३४ ॥
पयसाष्टगुणेनैतत् सर्ववातविकारनुत् ।
संसृष्टे श्लेष्मणा चैतद्वाते शस्तं विशेषतः ॥ १३५ ॥

पंचमूलका क्वाथ और बहुत पुराना तिलोंकी खलको पकाकर उसके रसको छान लेवे । यह रस ४ प्रस्थ और पंचमूलका क्वाथ ४ प्रस्थ, तेल एक प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे । तेल मात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । यह तैल सब प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है । तथा कफके संसर्गवाले वातरोगमें विशेष हितकारक है ॥ १४४ ॥ १३५ ॥

शरीरकी शीततानाशक तेल ।

यवकोलकुलत्थानां श्रेयस्याः शुष्कमूलकात् ।
बिल्वाच्चाञ्जलिमेकैकं द्रवैरम्लैर्विपाचयेत् ॥ १३६ ॥
तेन तैलं कषायेण फलाम्लैः कटुभिस्तथा ।
पिष्टैः सिद्धं महावातैरार्त्तः शीते प्रयोजयेत् ॥ १३७ ॥

यव, बेर, कुल्थी, रासना, सूखीमूली, कच्चे बेलकी गिरी यह प्रत्येक सोलह सोलह तोला दहीका जल इन सबसे आठगुना मिलाकर पकावे। चौथाभाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । अनारका रस, बिजौरेका रस, कांजी यह प्रत्येक एक एक प्रस्थ, सोंठ, मिर्च, पीपलका कल्क बीस तोला, तेल एक सेर इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस तेलकी महावातसे शीतलहुए शरीरपर मालिश करे तो यह तेल अत्यंत गुणको करता है॥१३६॥१३७॥

सर्ववातविकाराणां तैलान्यन्यान्यतः शृणु ।
चतुष्प्रयोगाण्यायुष्यबलवर्णकराणि च ॥ १३८ ॥
रजःशुक्रप्रदोषघ्नान्यपत्यजननानि च ।
निरत्ययानि सिद्धानि सर्वदोषहराणि च ॥ १३९ ॥

अब सब प्रकारके वातविकारोंको शान्त करनेवाले अन्य तैलोंको सुनो जो नस्य, पान, अभ्यंग और वस्ति इन चार प्रकारसे प्रयोग किये जा सकते हैं। इन तैलोंके प्रयोगसे आयु, बल, वर्णकी वृद्धि, रज और वीर्यविकारोंकी शांति होती है तथा यह सिद्ध तैल संतानके उत्पन्न करनेवाले संपूर्ण दोषोंको हरनेवाले हैं ॥ १३८॥ १३९ ॥

सहाचरादितैल।

सहाचरतुलायाश्च रसे तैलाढकं पचेत् ।
मूलकल्काद्दशपलं पक्त्वा क्षीरे चतुर्गुणम् ॥ १४० ॥
सिद्धेऽस्मिन् शर्कराचूर्णादष्टादशपलं भिषक् ।
विनीय दारुणेष्वेतद्वातव्याधिषु योजयेत् ॥ १४१ ॥

पीला कटसरईया (पीला वांसा)की जडका रस (या क्वाथ) ९ सेर, तेल ४ सेर, दूध १६ सेर, पीलेवांसेकी जडका कल्क ४० तोला इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उसमें १८ पल मिसरीका चूर्ण मिलावे । इस तेलको नस्य, पान आदिमें प्रयोग करनेसे दारुण वातव्याधियें भी दूर होती हैं॥१४०॥१४१॥

श्वदंष्ट्रादितैल।

श्वदंष्ट्रास्वरसप्रस्थौ द्वौ समौ पयसा सह ।
षट्पलं शृङ्गवेरस्य गुडस्याष्टपलं तथा ॥ १४२ ॥
तैलप्रस्थं विपक्कं तैर्दद्यात्सर्वानिलार्त्तिषु ।
जीर्णे तैले च दुग्धेन पेयाकल्पः प्रशस्यते ॥ १४३ ॥

गोखरूका स्वरस २ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ, सोंठका कल्क ६ पल, कपासके बीजोंका

कल्क ८ पल, तेल १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर तैल सिद्ध करे। इस तैलको उचित मात्रासे पान करे तो वातव्याधि शान्त होती है और बल वर्णकी वृद्धि होती है॥ ४३

बलातैल।

बलाशतं गुडूच्याश्च पादं रास्नाष्टभागिकम्।
जलाढकशते पक्त्वा दशभागस्थिते रसे॥ १४४॥
दधिमस्त्विक्षुनिर्य्यासशुक्तैस्तैलाढकं समैः।
पचेत्साजपयोऽर्द्धांशैः कल्कैरेभिः पलोन्मितैः॥ १४५॥
शठीसरलदार्वेलामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः।
पद्मकातिविषामुस्तासूर्प्यपर्णीहरेणुभिः॥ १४६॥
यष्ट्याह्वसुरसाव्याघ्रनखर्षभकजीवकैः।
पलाशरसकस्तूरीनलिकाजातिकोषकैः॥ १४७॥
पृक्काकुंकुमशैलेयजातीकटुफलाम्बुभिः।
त्वक्कुन्दुरुककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः॥ १४८॥
लवङ्गनखकक्कोलकुष्ठमांसीप्रियङ्गुभिः।
स्थौणेयतगरध्यामवचामदनपल्लवैः॥ १४९॥
सनागकेशरैः सिद्धे क्षिपेच्चात्रावतारिते।
पत्रकल्कं ततः पूतं विधिना तत्प्रयोजयेत्॥ १५०॥
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं गुल्मान्क्षतं क्षयम्।
प्लीहशोषावपस्मारमलक्ष्मीञ्च प्रणाशयेत्॥ १५१॥
बलातैलमिदं श्रेष्ठं वातव्याधिविनाशनम्।
अग्निवेशाय गुरुणा कृष्णात्रेयेण भाषितम्॥ १५२॥

बला १०० पल, गिलोय २५ पल, रास्ना १२॥ पल, इन सबको १०० आढक (१० मन) जलमें पकावे। दशवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। फिर इस जलमें दही १ आढक, दहीका जल एक आढक, ईखका रस एक आढक, कांजी १ आढक, तेल ४ आढक, बकरीका दूध २ प्रस्थ और इन नीचे लिखे द्रव्योंके एक एक पल लेकर कल्क करे। वह ये हैं-कचूर, सरलकाष्ठ, देवदारु, बडी इलायची, मंजीठ, अगर, चंदन, पद्मकाष्ठ, अतीश, नागरमोथा, माषपर्णी, मुग्धपर्णी, रेणुका, मुलैठी, तुलसी, व्याघ्रनखी, ऋषभक, जीवक, ढाकका रस, कस्तूरी, नलिका, जावित्री,

स्पृक्का, केशर, छारछबीला, जायफल, सुगंधवाला, दालचीनी, कुन्दरू, कपूर, सिल्हक वृक्षका गोंद, सरल वृक्षका गोंद, लौंग, नख, कंकोल, कूठ, जटामांसी, प्रियंगु, गठौना, तगर, ध्यामकतृण, वच, मदन (मैनफल) केवटीमोथा इन सबको एक एक पल लेकर कस्तूरी, केशर, कपूर आदि सुगंध द्रव्योंके सिवाय अस द्रव्योंको पीसकर कल्क बनालेवे। यह कल्क और उपरोक्त बलादि क्वाथ आदि संपूर्ण द्रव्योंको मिलाकर पकावे। जब संपूर्ण द्रव्य जलकर तेल मात्र शेष रह जावे तो इसमें कस्तूरी आदि गन्धद्रव्योंको भी पीसकर डालदेवे इस तैलको स्वच्छकर किसी उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे। यह बलातैल अभ्यंग, नस्य और पान आदि कर्मोंमें प्रयुक्त करनेसे श्वास, खांसी, ज्वर, हिचकी, छर्दी, गुल्म, क्षत, क्षय, प्लीहा, शोष, अपस्मार और अलक्ष्मीको दूर करता है। यह बलातैल वातव्याधियोंको नष्ट करनेमें सर्वोत्तम माना है। इसको भगवान् कृष्णात्रेयजीने अग्निवेशके प्रति कथन किया है॥ १४४-१५२॥

अमृतादितैल।

तुलाः पञ्च गुडूच्यास्तु द्रोणेष्वष्टस्वपां पचेत्।
पादशेषे समं क्षीरं तैलस्य द्व्याढकं पचेत्॥ १५३॥
एलामांसीनतोशीरशारिवाकुष्ठचन्दनैः।
बलातामलकीमेदाशतपुष्पर्द्धिजीवकैः॥ १५४॥
काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्यतिबलानखैः।
महाश्रावणिजीवन्तीविदारीकपिकच्छुभिः॥ १५५॥
शतावरीमहामेदाकर्कटाख्याहरेणुभिः।
वचागोक्षुरकैरण्डरास्नाकालासहाचरैः॥ १५६॥
वीराशल्लकिमुस्तत्वक्पत्रर्षभकबालकैः।
महैलाकुंकुमस्पृक्कात्रिदशाह्वैश्च कार्षिकैः॥ १५७॥
मञ्जिष्ठायास्त्रिकर्षेण मधुकाष्टपलेन च।
कल्कैस्तत्क्षीणवीर्य्याग्निबलसंमूढचेतसः॥ १५८॥
उन्मादारत्यपस्मारैरार्त्तांश्च प्रकृतिं नयेत्।
वातव्याधिहरं श्रेष्ठं तैलाग्र्यममृताह्वयम्।
कृष्णात्रेयेण गुरुणा भाषितं वैद्यपूजितम्॥ १५९॥

गिलोय २० सेर लेकर १२८ सेर पानीमें पकावे, ३२ सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छान ले। फिर इसमें आठ सेर दूध, आठ सेर तैल मिलावे। तथा इला-

यची, जटामांसी, तगर, खस, शारिवा, कूठ, लालचंदन, भूमिआमला, मेदा, सौंफ, ऋद्धि, जीवक, काकोली, क्षीरकाकोली, गोरखमुंडी, अतिबला, नखी, महामुण्डी, जीवन्ती, विदारीकंद, कौंचके बीज, शतावर, महामेदा, काकडासिंगी, रेणुका, वच, गोखरू, एरण्डकी जड, रास्ना, असगंध, पीलेफूलकी कटसरइया, शालपर्णी, शल्यकीवृक्षका गोंद, नागरमोथा, दालचीनी, पत्रज, ऋषभक, नेत्रवाला, बडी इलायची, केशर, असवर्ग और देवदारु यह सब एक एक कर्ष लेवे। मजीठ तीन कर्ष, मुलैठी आठ पल इन सबका कल्क बनाकर उपरोक्त क्वाथ, तेल, दूध इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। इस तेलके प्रयोगसे क्षीणवीर्य, क्षीणबल, क्षीणाग्नि, उन्माद, चित्तका बिगडना, अपस्मार यह सब विकार दूर होकर मनुष्य बल, वीर्य, अग्नि सम्पन्न होजाता है। यह अमृतादिनामक तेल वातव्याधियोंको दूर करनेमें सर्वश्रेष्ठ मानाहुआ है और भगवान् कृष्णात्रेयजीने वैद्योंके पूजित इस तैलको कथन किया है ॥ १५३-१५९ ॥

रास्नादितैल।

रास्नासहस्रनिर्य्यूहे तैलद्रोणं विपाचयेत् ।
गन्धैर्हैमवतैः पिष्टैरेलाद्यैश्वानिलार्त्तिनुत् ॥ १६० ॥

रासनाका क्वाथ १००० पल (६४ सेर) तैल एक द्रोण (१६ सेर) और उपरोक्त अमृतादि क्वाथमें कहेहुए इलायची आदि संपूर्ण द्रव्योंका कल्क तथा हिमवान् पर्वतमें होनेवाले उत्तम गंधद्रव्य इन सबको मिलाकर पकावे। इस तेलके नस्य, अभ्यंग आदिके प्रयोगसे सम्पूर्ण वातरोग दूर होते हैं ॥ १६० ॥

बलादि चार प्रकारके तैल।

एष कल्पस्तु बलयोः प्रसारण्यश्वगन्धयोः ।
कल्पोऽयमष्टगन्धायां प्रसारण्यां बलाद्वये ।
क्वाथकल्कपयोभिर्वा बलादीनां पचेत्पृथक् ॥ १६१ ॥

इसी रासनातेलके समान बला, अतिबला, प्रसारिणी, असगन्धका तेल बनाकर वातरोगोंमें प्रयोग कियाजाता है। यहांपर बला अथवा नागबला, प्रसारिणी वा असगन्धका क्वाथ रास्नाके समान लेना चाहिये। तथा कल्क और दूध आदिक भी पृथक् २ अमृततेलके समान ही लेना चाहिये। यह बलातेल, नागबलातेल, प्रसारिणी तेल और असगन्धादितेल अमृततेलके समान गुण करनेवाले हैं ॥ १६१ ॥

मूलकादि तैल।

मूलकस्वरसं क्षीरं तैलं दध्यम्लकाञ्जिकम् ।
तुल्यं विपाचयेत्कल्कैर्बलाचित्रकसैन्धवैः ॥ १६२ ॥

पिप्पल्यतिविषारास्नाचविकागुरुशिग्रुकैः।
भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ १६३ ॥
पुष्कराह्वशटीबिल्वशताह्वानतदारुभिः।
तत्सिद्धं पीतमत्युग्रान् हन्ति वातात्मकान् गदान् ॥ १६४ ॥

मूलक (सलजम) का स्वरस, दूध, तेल, दहीका जल, कांजी इन सबको समान भाग लेवे और तेलसे चौथाई भाग नीचे लिखे द्रव्योंका कल्क मिलावे। जैसे-बलाकी जड, चित्रक, सेंधानमक, पीपल, अतीस, रास्ना, चव्य, अगर, सुहांजनेकी जड, भिलावेकी गिरी, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ, पोहकरमूल, कचूर, बेलकी गिरी, सौंफ तगर और देवदारु इन सबको पीसकर कल्क बनावे। यह कल्क उपरोक्त रस, तेल आदिमें मिलाकर तैल सिद्ध करे। इस तैलको पीने और नस्य आदि कर्मोंमें प्रयोग करनेसे बढेहुए वातरोग भी शान्त होते हैं ॥ १६२-१६४ ॥

वृषमूलादि तैल।

वृषमूलगुडूच्योश्च द्विशतस्य शतस्य च।
अश्वगन्धाचित्रकयोः क्वाथे तैलाढकं पचेत् ॥ १६५ ॥
सक्षीरं वायुना भग्ने दद्याज्जर्जरिते तथा।
प्राक्तैलाद्यापसिद्धश्च स्यादेतद्द्विगुणोत्तरम् ॥ १६६ ॥

बांसेकी जड दो सौ पल, गिलोय दो सौ पल, असगन्ध एक सौ पल, चित्रक एक सौ पल इन सबको कूटकर आठगुने जलमें पकावे। चौथाई भाग शेष रहनेपर उतारकर छान ले इसमें एक आढक तेल तथा एक आढक दूध मिलाकर पकावे। यदि इसमें उपरोक्त अमृततैलमें कहेहुए द्रव्योंका कल्क भी मिलावे तो दोगुना गुणकारक होजाता है। और कल्कके अभावमें ऐसेही सिद्ध किया तैल भी वातरोगोंको दूर करता है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

रास्नादितैल।

रास्नाशिरीषयष्ट्याह्वशुण्ठीसहचरामृताः।
श्योनाकदारुशम्याका हयगन्धात्रिकण्टकाः ॥ १६७ ॥
एषां दशपलान् भागान् कषायमुपकल्पयेत्।
ततस्तेन कषायेण सर्वगन्धैश्च कार्षिकैः ॥ १६८ ॥
दध्यारनालमाषाम्बुमूलकेक्षुरसैः शुभैः।
पृथक्प्रस्थोन्मितैः सार्द्धं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १६९ ॥

प्लीहमूत्रग्रहश्वासकासमारुतरोगनुत्।
एतन्मूलकतैलाढ्यं वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ १७० ॥

रास्ना, सिरसकी छाल, मुलैठी, सोंठ, कालावांसा, गिलोय, सोनापाठा, देवदारु, अमलतास, असगन्ध, गोखरू यह सब दशदश पल लेवे। इनको आठगुने जलमें पकाय चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर दही, कांजी, उडदोंका क्काथ, मूलीका रस यह एक एक प्रस्थ लेवे। सर्व गन्धद्रव्य एक एक कर्ष लेवे, इन सबको एक प्रस्थ तैलमें मिलाकर पकावे। इस तैलके मलनेसे तथा अन्य प्रकारसे प्रयोग करनेसे या वास्तिद्वारा प्रयोग करनेसे मूत्ररुकना, खांसी, श्वास और सब प्रकारके वायुके रोग नष्ट होते हैं। यह तेल मूलकतेलसे भी श्रेष्ठ है तथा बल, वर्ण और आयुको बढानेवाला है ॥ १६७-१७० ॥

यवक्काथादि तैल।

यवकोलकुलत्थानां मत्स्यानां शिग्रुबिल्वयोः।
रसेन मूलकानाञ्च तैलं दधिपयोऽन्वितम् ॥ १७१ ॥
साधयित्वा भिषग्दद्यात् सर्ववातामयापहम्।
लशुनस्वरसे सिद्धं तैलमेभिश्च वातनुत् ॥ १७२ ॥

यव, बेर, कुल्थी, मछली, सुहांजना, बेलकी गिरी और मूली इन सबके अलग २ क्काथ एक एक सेर लेवे। दही एक सेर, दूध एक सेर और तेल एक सेर सबकों मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। यह तेल संपूर्ण वातरोगोंको दूर करता है। इसी प्रकार लहसुनके स्वरससे सिद्ध कियाहुआ तेल भी वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

इन तैलोंसे सन्तानकी उत्पत्ति।

तैलान्येतान्यृतुस्नातामङ्गनां पाययेत च।
पीत्वाऽन्यतममेषां हि वन्ध्यापि जनयेत्सुतम् ॥ १७३ ॥

यदि ऋतुस्नाता स्त्री इन बला आदिक तेलोंमेंसे किसी एक तेलका पान करे तो वंध्या भी पुत्रको उत्पन्न करनेवाली होजाती है ॥ १७३ ॥

अन्यतैलोंका निर्देश।

यच्च शीतज्वरे तैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम्।
अनेकशतशस्तच्च सिद्धं स्याद्वातरोगनुत् ॥ १७४ ॥

शीतज्वरमें जो अगरू आदिक तैलोंका कथन कर आये हैं वह अनेक बार पकाकर प्रयोग करनेसे वातव्याधियोंको दूर करते हैं। अथवा यों कहिये कि, वह अगरू

आदि तैल जो शीतज्वरोंमें पहले कहे हैं उन्हें वातरोगोंको दूर करनेमें हमने सैकडों बार आजमाया है ॥ १७४ ॥

वक्ष्यन्ते यानि तैलानि वातशोणितकेऽपि च ।
तानि चानिलशान्त्यर्थं सिद्धिकामः प्रयोजयेत् ॥ १७५ ॥

आगे जो वातरक्तरोगमें तैलोंका कथन करेंगे सिद्धिकी इच्छावाला वातरोगोंकी शान्तिके लिये उन तैलोंका प्रयोग करे ॥ १७५ ॥

वातरोगोंमें तैलोंकी प्रधानता।

नास्ति तैलात्परं किञ्चिदौषधं मारुतापहम् ।
व्यवाय्युष्णगुरुस्नेहात् संस्काराद्बलवत्तरम् ॥ १७६ ॥
गणैर्वातहरैस्तस्माच्छतशोथ सहस्रशः ।
सिद्धं क्षिप्रतरं हन्ति सूक्ष्ममार्गस्थितान्गदान् ॥ १७७ ॥

तैलके समान वातव्याधियोंको दूर करनेवाली और कोई औषधि नहीं है, व्यवायी, उष्ण, भारी और स्निग्ध होनेसे वायुको शान्त करता है। यदि तैलको वातनाशक द्रव्योंद्वारा संस्कार कियाजाय तो यह और भी विशेषरूपसे वातव्याधियोंको नष्ट करनेमें बलवान् होजाता है। इसलिये वातनाशक गणोंसे तैलोंको १०० बार अथवा१००० बार या सैकडों प्रकारसे सिद्ध करके वातव्याधियोंमें प्रयोग करे। यह सूक्ष्म मार्गोंमें प्रवेश होजानेवाला होनेसे सूक्ष्म मार्गोंके रोगोंको शीघ्र नष्ट करदेता है ॥१७६॥१७७

क्रिया साधारणी सर्वा संसृष्टे चापि शस्यते ।
वातपित्तादिभिः स्रोतःस्वावृतेषु विशेषतः ॥ १७८ ॥

यह साधारणी क्रिया जिस प्रकार केवल वातव्याधिमें हितकारक है वैसेही वायुके साथ पित्त और कफका संसर्ग होनेपरभी हितकारक है। अब पित्तादिसे आवृत वायुकी विशेष रूपसे चिकित्साका कथन करते हैं ॥ १७८ ॥

पित्तावृतवातकी चिकित्सा।

पित्तावृते विशेषेण शीतामुष्णां तथा क्रियाम् ।
व्यत्यासात्कारयेत्सर्पिर्जीवनीयश्च शस्यते ॥ १७९ ॥

यदि पित्तद्वारा वायुका मार्ग आवृत होगया हो तो विपरीतक्रमसे शीतल और उष्णक्रिया करे। तथा जीवनीयगणसे सिद्ध घृतका भी प्रयोग हितकारी है ॥१७९॥

धन्वमांसं यवाः शालिर्यापनाः क्षीरवस्तयः ।
विरेकः क्षीरपानञ्च पञ्चमूलीबलाश्रितम् ॥ १८० ॥

मधुयष्टिबलातैलघृतक्षीरैश्च सेचनम् ।

पञ्चमूलकषायेण कुर्य्याद्वा शीतवारिणा ॥ १८१ ॥

पित्तावृत वायुमें जंगली जीवोंका मांसरस, शालिचावल, यापनवस्ति, क्षीरवस्ति, विरेचन पंचमूल और बलासे सिद्ध किए दूधका पान करना तथा मुलैठीका क्वाथ बलातैल वातनाशक घृत, वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये दूध पंचमूलका क्वाथ अथवा शीतल जल इनसे सेचन करना हितकारक है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

कफावृतवातकी चिकित्सा।

कफावृते यवान्नानि जाङ्गला मृगपक्षिणः ।

स्वेदास्तीक्ष्णा निरूहाश्च वमनं सविरेचनम् ॥ १८२ ॥

जीर्णसर्पिस्तथा तैलं तिलसर्षपजं शुभम् ।

संसृष्टे कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ विनिर्जयेत् ॥ १८३ ॥

कफद्वारा वायुका अवरोध होनेसे यवान्न, जंगली जीवोंका मांसरस, स्वेदन, तीक्ष्ण, निरूहण, वमन और विरेचन करना हितकारक है । तथा पुराना घृत और सरसोंके तेलका प्रयोग करना भी हितकारक है। कफ और पित्तके संसर्गमें पहिले पित्तको जीत लेना चाहिये ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

आमाशयगतं मत्वा कफं वमनमाचरेत् ।

पक्काशये विरेकन्तु पित्ते सर्वत्रगे तथा ॥ १८४ ॥

यदि कफ आमाशयमें हो तो वमन करादेना चाहिये और यदि कफका संसर्ग पक्काशयमें हो तो विरेचन कराना चाहिये और पित्त चाहे किसी स्थानमें हो तो उसमें विरेचन करानाही हितकारक है । अथवा सर्व शरीरगत पित्तमें विरेचन करानाही हितकारक है ऐसा मानना चाहिये ॥ १८४ ॥

स्वेदैर्विष्यन्दितः श्लेष्मा यदा पक्काशयाच्च्युतः ।

पित्तं वा दर्शयेल्लिङ्गं वस्तिभिस्तौ विनिर्हरेत् ॥ १८५ ॥

स्वेदप्रयोगोंसे यदि कफ इधर उधरसे पिघलकर अपने स्थानसे पतित होकर पक्काशयमें पहुंचजाय और साथमें पित्तके भी चिह्न दिखाई पडे तो उनको वस्तिकर्म द्वारा निकाल डालना चाहिये ॥ १८५ ॥

श्लेष्मणाऽनुगतं वातमुष्णैर्गोमूत्रसंयुतैः ।

निरूहैः पित्तसंसृष्टं निर्हरेत् क्षीरसंयुतैः ॥ १८६ ॥

मधुरौषधसिद्धैश्च तैलैस्तमनुवासयेत् ।

शिरोगते तु सकफे धूमनस्यादि कारयेत् ॥ १८७ ॥

कफसंयुक्त वातमें उष्ण द्रव्योंमें गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्ति करना चाहिये और पित्तसंयुक्त वातमें गोमूत्रके बदले दूध मिलाकर निरूहणवस्ति करना चाहिये। निरूहणवस्तिद्वारा दोषोंके निकलजानेपर मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये-हुए तैलद्वारा अनुवासन करे । यदि कफयुक्त वायु शिरोगत हो तो धूमप्रयोग और नस्य आदि प्रयोग कराना चाहिये ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

उरस्थवातमें क्रिया ।

हृते पित्ते कफे यः स्यादुरःस्रोतोऽनुगोऽनिलः ।
सशेषः स्यात्क्रिया तत्र कार्य्या केवलवातिकी ॥ १८८ ॥

कफपित्तके निकलजानेपर भी यदि छातीके स्रोतोंमें वातका अनुबन्ध हो तो केवल वातनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १८८ ॥

रक्तादिधातुओंसे आवृतवातकी पृथक् २ चिकित्सा ।

शोणितेनावृते कुर्य्याद्वातशोणितकीं क्रियाम् ।
प्रमेहवातमेदोघ्नीमामवाते प्रयोजयेत् ॥ १८९ ॥

रक्तावृतवातमें वातरक्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । आमसंयुक्त वातमें प्रमेह, वात और मेदनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १८९ ॥

स्वेदाभ्यङ्गा रसाः क्षीरं स्नेहा मांसावृते मताः ।
महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थे पूर्ववद्रेतसावृते ॥ १९० ॥

मांसावृतवातमें स्वेद, अभ्यंग, मांसरस, दूध और स्नेहद्रव्योंका प्रयोग हितकारक होता है । अस्थि और मज्जागत वातमें पूर्वोक्त महास्नेहका प्रयोग करना हितकारक है।और शुक्रावृतवातमें शुक्रगतवायुकी जो चिकित्सा कही है सो करनी चाहिये१९०

अन्नावृतवातकी विशेष चिकित्सा ।

अन्नावृते तु वमनं पाचनं दीपनं लघु ।
मूत्रलानि तु मूत्रस्थे स्वेदाः सोत्तरवस्तयः ॥ १९१ ॥

अन्नावृतवातमें वमन कराना तथा पाचन और दीपन एवं हलके द्रव्योंका प्रयोग करना हितकारक है । मूत्रावृतवातमें मूत्रके लानेवाली औषधियें, स्वेद और उत्तर-वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९१ ॥

एरण्डतैलं वर्चःस्थे स्निग्धोदावर्त्तवत्क्रिया ॥ १९२ ॥

मलावृतवातमें स्निग्ध और उदावर्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा एरण्ड-तैलका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९२ ॥

स्वस्थानस्थो बली दोषः प्रोक्तं स्वैरौषधैर्जयेत् ।
वमनैर्वा विरेकैर्वा वस्तिभिः शमनेन वा ।
इत्युक्तमावृते वाते पित्तादिभिर्यथायथम् ॥ १९३ ॥

यदि दोष अपने २ स्थानमेंही कुपित हों तो उन्हें उन्हींके अनुसार चिकित्सा और औषधियोंद्वारा जीतना चाहिये । जैसे—अपने स्थानमें कफका कोप हो तो वमन कराना चाहिये । पित्तका कोप हो तो विरेचन और अपने स्थानमें वायुका कोप हो तो वस्तिकर्म कराना हित है । इस प्रकार पित्तादिकोंसे आवृत वायुकी यथोचित चिकित्साका वर्णन कियागया है ॥ १९३ ॥

पांचों वायुओंके परस्पर आवरण ।

मारुतानां हि पञ्चानामन्योन्यावरणे शृणु ।
लिङ्गं व्याससमासाभ्यामुच्यमानं मयाऽनघ ।
प्राणो वृणोत्यपानादीन् प्राणं वृण्वन्ति तेऽपि च ।
उदानाद्यास्तथान्योऽन्यं सर्व एव यथाक्रमम् ॥ १९४ ॥

पांचों वायु परस्पर जब मार्गको रोक लेती हैं तो उनके जो लक्षण होते हैं संक्षेप और विस्तारसे कहे जाते हुए उनको हे अनघ ! श्रवण करो । प्राणवायु जब अपान आदि वायुओंको रोक लेती है और वे अपानादि वायुएँ प्राणवायुको रोक लेती हैं तथा उदानादि वायुएँ भी आपसमें परस्पर जिस प्रकार एक दूसरेको यथाक्रम आवृत्त करलेती हैं उनको यथाक्रम श्रवण करो ॥ १९४ ॥

वायुओंके परस्पर आवरणके २० भेद ।

विंशतिर्वरणान्येतान्युल्बणानां परस्परम् ।
मारुतानां हि पञ्चानां तानि सम्यक्प्रतर्कयेत् ॥ १९५ ॥

बढनेपर इन पांचों वायुओंके परस्पर आवरणसे जो बीस भेद होते हैं उनको बुद्धिमान् भली प्रकार तर्क करे अर्थात् जाने ॥ १९५ ॥

प्राणावृत व्यानवायुके लक्षण और चिकित्सा ।

सर्वेन्द्रियाणां शून्यत्वं ज्ञात्वा स्मृतिबलक्षयम् ।
व्याने प्राणावृते लिङ्गं कर्म तत्रोर्ध्वजत्रुकम् ॥ १९६ ॥

जब व्यानवायुसे प्राणवायु आवृत होजाती है तो संपूर्ण इन्द्रियोंमें शून्यता तथा ज्ञान, स्मृति और बलका क्षय होता है । इसमें ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंकी जो चिकित्सा है सो करना हितकारक है ॥ १९६ ॥

व्यानावृत प्राणवात ।

स्वेदोऽत्यर्थं लोमहर्षस्त्वग्दोषः सुप्तगात्रता ।

प्राणे व्यानावृते तत्र स्नेहयुक्तं विरेचनम् ॥ १९७ ॥

प्राणवायु व्यानवायुसे आवृत हो तो देहमें अत्यंत पसीने, रोमहर्ष, त्वचाके विकार, शरीरका सुन्नसा होना यह लक्षण होते हैं । इसमें स्नेहयुक्त विरेचन करना हितकारक है ॥ १९७ ॥

प्राणावृत समानके लक्षण ।

प्राणावृते समाने स्युर्जडगद्गदमूकताः ।

चतुष्प्रयोगाः शस्यन्ते स्नेहास्तत्र सयापनाः ॥ १९८ ॥

समानवायु प्राणवायुद्वारा आवृत हो तो बोलनेमें जडता, गद्गद शब्द, मूकता यह लक्षण होते हैं । इसमें पान, अभ्यंग, अनुवासन और नस्य इन चार प्रकारोंसे स्नेहका प्रयोग करना चाहिये । तथा यापनवस्ति करना भी हितकारक है ॥ १९८ ॥

समानावृत प्राणके लक्षण, चिकित्सा ।

समानेनावृते प्राणे ग्रहणी पार्श्ववेदना ।

शूले चामाशये तत्र दीपनं सर्पिरिष्यते ॥ १९९ ॥

समान वायुसे प्राणवायु आवृत होय तो ग्रहणी रोग, पार्श्वपीडा, आमाशयमें शूल यह लक्षण होते हैं । इसमें दीपन घृतोंका प्रयोग करना हितकारक है ॥१९९॥

प्राणावृत उदान लक्षण ।

शिरोग्रहः प्रतिश्यायो निःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः ।

हृद्रोगो मुखशोषश्चाप्युदाने प्राणसंवृते ।

ततोर्द्धभागिकं कर्म्म कार्य्यमाश्वासनं तथा ॥ २०० ॥

बलवान् प्राणवायुसे उदानवायु आवृत होजाय तो शिरोग्रह, प्रतिश्याय, निःश्वास और उच्छ्वासकी रुकावट, हृद्रोग, मुखशोष यह लक्षण होते हैं । इसमें ऊर्ध्वदैहिक चिकित्सा अर्थात् छातीपर तैल मर्दन और स्निग्ध नस्य आदिसे शरीरके उपरले भागकी चिकित्सा और आश्वासन करना हितकारक है ॥ २०० ॥

उदानावृत प्राण० ।

कर्मौजोबलवर्णानां नाशो मृत्युरथापि वा ।

उदानेनावृते प्राणे तं शनैः शीतवारिणा ।

सिञ्चेदाश्वासयेच्चैव सुखञ्चैवोपपादयेत् ॥ २०१ ॥

उदान वायुसे प्राण वायु रुकजाय तो कर्म, शक्ति, ओज और बल, वर्णका नाश होता है अथवा मृत्यु ही होजाती है। इसमें धीरे धीरे शीतल जलसे मुख आदि स्थानोंको सिंचन करे और आश्वासन देवे तथा अन्य उपकारी उपायोंको करे ॥ २०१ ॥

प्राणावृत अपान०।

ऊर्द्ध्वगेनावृतेऽपाने च्छर्दिश्वासादयो गदाः।
स्युर्वाते तत्र वस्त्यादिभोज्यश्चैवानुलोमनम् ॥ २०२ ॥

बलवान् प्राणवायुसे अपान वायु रुकजाय तो वमन और श्वास आदिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसमें वस्तिकर्म और अनुलोमनकर्त्ता भोजनोंका सेवन करना हितकारक है ॥ २०२ ॥

अपानावृत प्राणवा०।

मोहोऽल्पोऽग्निरतीसार ऊर्ध्वगेऽपानसंवृते।
वाते स्याद्वमनं तत्र दीपनं ग्राहि चाशनम् ॥ २०३ ॥

यदि बलवान् अपान वायुसे प्राण वायु आवृत होजाय तो मोह, अग्निकी मंदता और अतिसार होते हैं। इसमें वमन कराना तथा दीपन और संग्राही आहारका सेवन कराना हित है ॥ २०३ ॥

व्यानावृत अपान०।

वम्याध्मानमुदावर्त्तगुल्मार्त्तिपरिकर्त्तिकाः।
लिङ्गं व्यानावृतेऽपाने तं स्निग्धैरनुलोमयेत् ॥ २०४ ॥

व्यानवायुसे अपानवायु आवृत होजाय तो वमन, अफारा, उदावर्त्त, गुल्म और कतरनेकीसी पीडा होती है। इसमें स्निग्ध और अनुलोमन क्रिया हितकारक है॥२०४॥

अपानावृतव्यान०।

अपानेनावृते व्याने भवेद्विण्मूत्ररेतसाम्।
अतिप्रवृत्तिस्तत्रापि सर्वं संग्रहणं मतम् ॥ २०५ ॥

बलवान् अपानवायुद्वारा व्यानवायु लपेटमें आजाय तो विष्ठा, मूत्र और वीर्यकी अत्यंत प्रवृत्ति होने लगती है। इसमें भी संग्राही चिकित्सा करना हितकारक है॥२०५

समानावृत व्यान०।

मूर्च्छातन्द्राप्रलापोऽङ्गसादोऽग्न्योजोबलक्षयः।
समानेनावृते व्याने व्यायामो लघुभोजनम् ॥ २०६ ॥

बलवान् समान वायुद्वारा व्यानवायु आवृत होजाय तो मूर्च्छा, तंद्रा, प्रलाप, अंगोंका सुन्नसा होजाना तथा जठराग्नि, ओज और बलका क्षय होता है। इसमें व्यायाम और हलके भोजनका कराना हितकारक होता है ॥ २०६ ॥

उदानावृत व्यान०।

स्तब्धताऽल्पाग्निता स्वेदश्चेष्टाहानिर्निमीलनम् ।
उदानेनावृते व्याने तत्र पथ्यं मितं लघु ॥ २०७ ॥

उदानवायुसे व्यानवायु आवृत होजाय तो शरीरका जकडना, अग्निकी अल्पता, पसीनेका न आना, चेष्टाकी हानि और नेत्रोंका मिचासा जाना यह लक्षण होते हैं। इसमें थोडा और हल्का भोजन करना हितकारी है ॥ २०७ ॥

इतर आवरणोंका उपसंहार।

पञ्चान्योन्यावृतानेवं वातान् बुध्येत लक्षणैः ।
एषां स्वकर्मणां हानिर्वृद्धिर्वाऽऽवरणे मता ॥ २०८ ॥
यथास्थूलं समुद्दिष्टमेतदावरणे पृथक् ।
सलिङ्गभेषजं सम्यक् शृणु त्वं बुद्धिवृद्धये ॥ २०९ ॥

इन पांचों वायुओंके परस्पर आवृत होनेसे इस प्रकारके लक्षणोंको जानना चाहिये। इनके परस्पर आवृत होनेसे इनके अपने अपने कर्मोंकी हानि अथवा वृद्धि आवरणमें होती है। स्थूल रूपसे इन आठ प्रकारके आवरणोंका कथन किया है। वैद्यकी बुद्धिकी वृद्धिके लिये इन आठ प्रकारके आवरणोंके लक्षण और चिकित्साका निर्देश भी कर दिया है। सो वैद्योंको बुद्धिपूर्वक जानना चाहिये ॥ २०८॥२०९ ॥

अन्य १२ आवरणोंका निर्देश।

स्थानान्यवेक्ष्य वातानां वृद्धिं हानिञ्च कर्मणाम् ।
द्वादशावरणान्यन्यान्यभिलक्ष्य भिषग्जितम् ॥२१०॥
कुर्य्यादभ्यञ्जनस्नेहपानवस्त्यादि सर्वशः ।
क्रममुष्णमनुष्णं वा व्यत्यासादवचारयेत् ॥ २११ ॥

बारह प्रकारके और वायुओंके आवरणोंको निर्देश करते हैं, उनमें दोषोंके स्थान और उनके अपने अपने कर्मोंकी वृद्धि और हानिके विचारसे बारह प्रकारके आवरणोंको जानकर उनमें अभ्यंजन, स्नेहन, नस्य और पान तथा वस्तिआदि क्रमको उनकी शांतिके लिये करना चाहिये। तथा विपरीत भावसे उष्ण और शीतल क्रियाको करना हितकारक होता है ॥ २१० ॥ २११ ॥

उदाने योजयेदूर्द्ध्वमपानं चानुलोमयेत् ।
समानं शमयेच्चैव त्रिधा व्यानन्तु योजयेत् ॥ २१२ ॥

उदानवायु आवृत होय तो वमन और नस्य आदि ऊर्ध्व क्रिया करना चाहिये। अपान वायु आवृत हो तो अनुलोमन क्रिया करना चाहिये। समान वायु आवृत हो

तो शमन क्रिया करना हितकारक है। व्यानवायु आवृत हो तो संशोधन अनुलोमन वस्ति और संशमन यह सब प्रकारकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१२ ॥

प्राणो रक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपि स्थाने ह्यस्य स्थितिर्ध्रुवा ।
स्वं स्थानं गमयेदेवं वातानेतान्विमार्गगान् ॥ २१३ ॥

प्राण वायुकी उदानादि अन्य चार वायुओंकी अपेक्षा प्रथम चिकित्सा करनी चाहिये। क्योंकि प्राण वायुका अपने स्थानमें स्थित रहना ही मनुष्यके जीवनके लिये अत्यावश्यक है और इन सब विमार्गगामी वायुओंको प्राण वायुकी स्थितिकी रक्षापूर्वक अपने २ स्थानमें पहुंचा देना चाहिये ॥ २१३ ॥

पित्तावृतप्राणके लक्षण।

मूर्च्छा दाहो भ्रमः शूलं विदाहः शीतकामिता ।
छर्दनञ्च विदग्धस्य प्राणे पित्तसमावृते ॥ २१४ ॥

यदि प्राण वायु पित्तसे आवेष्टित होजाय तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम, शूल, विदाह, शीतल वस्तुओंकी इच्छा तथा विदग्ध अन्नका वमन यह लक्षण होते हैं ॥ २१४ ॥

कफावृतप्राणवायुके लक्षण।

ष्ठीवनं क्षवथूद्गारं निश्वासोच्छ्वाससंग्रहः ।
प्राणे कफावृते रूपाण्यरुचिश्छर्दिरेव च ॥ २१५ ॥

यदि प्राणवायु कफसे आवृत होय तो मुखसे कफका गिरना, छींक, डकार, श्वास और प्रतिश्वासका रुकना, अरुचि और वमन यह लक्षण होते हैं ॥ २१५ ॥

पित्तावृत उदानके लक्षण।

मूर्च्छाद्यानि च रूपाणि दाहो नाभ्युरसोः क्लमः ।
ओजोभ्रंशश्च सादश्चाप्युदाने पित्तसंवृते ॥ २१६ ॥

उदान वायु पित्तसे आवेष्टित हो तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम, शूल, विदाह, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, विदग्ध अन्नका वमन, नाभि और वक्षस्थलमें दाह, क्लान्ति, ओजका नाश तथा शरीरका सुन्नसा होजाना यह लक्षण होते हैं ॥ २१६ ॥

कफावृत उदानके लक्षण।

आवृते श्लेष्मणोदाने वैवर्ण्यं वाक्स्वरग्रहः ।
दौर्बल्यं गुरुगात्रत्वमरुचिश्चोपजायते ॥ २१७ ॥

उदान वायु कफसे आवृत हो तो विवर्णता, वाणी और स्वरका रुकना, दुर्बलता, अंगोंमें भारीपन, अरुचि यह लक्षण होते हैं ॥ २१७ ॥

पित्तावृत समानके लक्षण।

अतिस्वेदस्तृषादाहो मूर्च्छा चारुचिरेव च ।

पित्तावृते समाने स्यादुपघातस्तथोष्मणः ॥ २१८ ॥

समान वायु पित्तसे आवृत हो तो अत्यन्त स्वेदका आना, प्यास, दाह, मूर्च्छा, अरुचि और अग्निका भ्रंश यह लक्षण होते हैं ॥ २१८ ॥

कफावृत समानके लक्षण।

अस्वेदो वह्निमान्द्यञ्च लोमहर्षस्तथैव च।
कफावृते समाने स्याद्गात्राणाञ्चातिशीतता ॥ २१९ ॥

समान वायु कफसे आवृत हो तो पसीनेका न आना, मन्दाग्नि, रोमहर्ष, अंगोंका अत्यन्त शीतल होना यह लक्षण होते हैं ॥ २१९ ॥

पित्तावृतव्यानके लक्षण।

व्याने पित्तावृते तु स्याद्दाहः सर्वाङ्गगः क्लमः।
गात्रविक्षेपसङ्गश्च ससन्तापः सवेदनः ॥ २२० ॥

व्यान वायु पित्तसे आवृत हो तो सब अंगोंमें दाह, क्लम, अंगोंका इधर उधर फेंकना, वाणीका रुकना, सन्ताप और पीडा यह लक्षण होते हैं ॥ २२० ॥

कफावृत व्यानके लक्षण।

गुरुता सर्वगात्राणां सर्वसन्ध्यस्थिजा रुजाः।
व्याने कफावृते लिङ्गं गतिसङ्गस्तथाधिकः ॥ २२१ ॥

व्यान वायु कफसे आवृत हो तो सब अंगोंमें भारीपन, संपूर्ण शरीरकी सन्धियोंमें और अस्थियोंमें पीडा और गतिका अवरोध यह लक्षण होते हैं ॥२२१ ॥

पित्तावृत अपानके लक्षण।

हारिद्रमूत्रवर्चस्त्वक्तापश्च गुदमेढ्रयोः।
लिङ्गं पित्तावृतेऽपाने रजसः संप्रवर्त्तनम् ॥ २२२ ॥

अपान वायु पित्तसे आवृत हो तो मल और मूत्र तथा त्वचा हलदीके समान वर्णवाले हों, गुदा और लिंगेन्द्रिय तपायमान हो यदि यह स्त्रियोंको होय तो अत्यन्त रजकी प्रवृत्ति होने लगती है ॥ २२२ ॥

कफावृत अपानके लक्षण।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम्।
श्लेष्मणा संवृतेऽपाने कफमेहस्य चागमः ॥ २२३ ॥

अपान वायु कफसे आवृत हो तो फटाहुआ, कफमिश्रित, आममिश्रित और भारी मल आने लगता है तथा कफजनित प्रमेह होता है ॥ २२३ ॥

पित्तकफमिश्रितावरण ।

लक्षणानान्तु मिश्रत्वं पित्तस्य च कफस्य च ।
उपलक्ष्य भिषग्विद्वान्मिश्रमावरणं वदेत् ॥ २२४ ॥

कफ और पित्तके मिलेहुए लक्षण होंय तो विद्वान् वैद्य दोनोंसे मिश्रित आवरण कहे॥

यद्यस्य वायोर्निर्दिष्टं स्थानं तत्रेतरौ स्मृतौ ।
दोषौ बहुविधान्व्याधीन्दर्शयेतां यथा निजान् ॥ २२५ ॥

वायुके जो जो स्थान कथन किये हैं उन उन स्थानोंमें पित्त और कफका आवरण होय तो कफ और पित्त उस स्थानानुसार अपने लक्षणोंवाली व्याधियोंको उत्पन्न करते हैं ॥ २२५ ॥

प्राण और उदानकी गुरुता ।

आवृतं श्लेष्मपित्ताभ्यां प्राणश्चोदानमेव च ।
गरीयस्त्वेन पश्यन्ति भिषजः शास्त्रचक्षुषः ॥ २२६ ॥
विशेषाज्जीवितं प्राणे उदाने संश्रितं बलम् ।
स्यात्तयोः पीडनाद्धानिरायुषश्च बलस्य च ॥ २२७ ॥

कफ और पित्तसे आवृत प्राण वायु तथा उदान वायुको शास्त्रके जाननेवाले वैद्य गुरुतर कथन करते हैं क्योंकि मनुष्योंका जीवन प्राण वायुकी आश्रय और बल उदान वायुके आश्रयसे होता है। इसलिये प्राण और उदानके पीडन होनेसे आयु और बलकी हानि होती है ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

आवृत वायुओंके यत्न न करनेसे हानि ।

सर्वेऽप्येते परिज्ञेयाः परिसंवत्सरात्तथा ।
उपेक्षणादसाध्याः स्युरथवा दुरुपक्रमाः ॥ २२८ ॥

संपूर्ण वायुओंके आवृत होनेसे सावधान रहना चाहिये क्योंकि इनका यत्न न करनेसे एक वर्षकी होजानेपर यह असाध्य होजाती हैं अथवा दुश्चिकित्स्य होजाती हैं२२८॥

हृद्रोगो विद्रधिः प्लीहा गुल्मातीसार एव च ।
भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात् ॥ २२९ ॥
तस्मादावरणं वैद्यः पवनस्योपलक्षयेत् ।
पञ्चात्मकस्य वातेन पित्तेन श्लेष्मणापि वा ॥ २३० ॥
भिषग्जितैरतः सम्यगुपलक्ष्य समाचरेत् ।
अनभिष्यन्दिभिः स्निग्धैः स्रोतसां शुद्धिकारिभिः ॥२३१॥

आवृत वायुकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् शीघ्र यत्न न करनेसे हृद्रोग, विद्रधि, प्लीहा, गुल्म और अतिसार उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये वैद्यको पंचात्मक वायुके तथा कफ और पित्तके आवरणको जानकर अनभिष्यंदी, स्निग्ध और स्रोतोंको शुद्ध करनेवाली क्रियाद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२९-२३१ ॥

सर्वस्थानगत आवृत वायुओंकी चिकित्सा।

कफपित्ताविरुद्धं यद्यच्च वातानुलोमनम्।
सर्वस्थानावृतेऽप्याशु तत्कार्य्यं मारुते शुभम् ॥ २३२ ॥

यदि वायु सर्व स्थानोंमें आवृत हो तो कफ और पित्तके अविरुद्ध तथा वातको अनुलोमन करनेवाली शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये। अथवा सब स्थानोंमें आवृत वायुकी चिकित्सा अनुलोमन और कफ वातसे अविरोधी तथा शीघ्र करनी हितकारक है॥२३२

यापना वस्तयः प्रायो मधुराः सानुवासनाः।
प्रसमीक्ष्य बलाधिक्यं मृदु वा स्रंसनं हितम् ॥ २३३ ॥
रसायनानां सर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते।
शैलस्य जतुनोऽत्यर्थं पयसा गुग्गुलोस्तथा ॥ २३४ ॥
लेहं वा भार्गवप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुङ्नरः।
अभयामलकीयोक्तानेकादश मिताशनः ॥ २३५ ॥

सर्वस्थानगत आवृतवायुमें क्षीरवस्ति, मधुरप्राय वस्ति, अनुवासन वस्ति और बलाबल विचारकर मृदु विरेचन करना हितकारक है तथा सब प्रकारके रसायनोंका प्रयोग करना अथवा शिलाजीतका निरन्तर दूधके साथ सेवन करना या गूगुलके साथ सेवन करना हितकारक है। अथवा भार्गवके कथन किये हुए च्यवनप्राशका सेवन करे और केवल दूधका ही आहार करे या अभयामलकीय अध्यायमें कही हुई ११ प्रकारकी रसायनोंमेंसे किसी एक रसायनका सेवन करे और मित भोजन किया करे ३३-३५

अपानेनावृते सर्वे दीपनं ग्राहि भेषजम्।
वातानुलोमनं यच्च पक्वाशयविशोधनम् ॥ २३६ ॥

यदि प्राणादि वायुयें अपान वायुसे आवृत्त हों तो सब प्रकारके दीपन और ग्राही तथा वातको अनुलोमन करनेवाले औषध अन्नपानका प्रयोग और पक्वाशयका शोधन करनेवाले द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २३६ ॥

इति संक्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम्।
प्राणादीनां भिषक्कुर्य्याद्वितर्क्य स्वयमेव तत् ॥ २३७ ॥
पित्तावृते तु पित्तघ्नैर्मारुतस्याविरोधिभिः।

कफावृते कफघ्नैस्तु मारुतस्यानुलोमनैः ॥ २३८ ॥

इस प्रकार प्राणादि आवृत वायुओंकी चिकित्साका संक्षेपसे वर्णन कियागया है इन्हें वैद्य अपनी बुद्धिसे ही विस्तारपूर्वक तर्क कर औषधियोंकी कल्पना करे। पित्तावृत वायुमें वायुसे अविरोधी और पित्तनाशक द्रव्योंद्वारा चिकित्सा करे तथा कफावृतवातमें वातसे अविरोधी कफनाशक अनुलोमन आदि औषधोंद्वारा चिकित्सा करे ॥३७॥३८॥

लोके वाय्वर्कसोमानां दुर्विज्ञेया यथा गतिः ।
तथा शरीरे वातस्य पित्तस्य च कफस्य च ॥ २३९ ॥
क्षयं वृद्धिं समत्वञ्च तथैवावरणं भिषक् ।
विज्ञाय पवनादीनां न प्रमुह्यति कर्मसु ॥ २४० ॥

जैसे जगत्में वायु, सूर्य और चन्द्रमाकी गति दुर्विज्ञेय है उसी प्रकार शरीरमें भी वात, पित्त, कफकी गति भी दुर्विज्ञेय है। जो वैद्य इन वातादि दोषोंको क्षय वृद्धि समता और आवरणताको जान लेता है वह चिकित्साके समय इन वातादि दोषोंको जानकर इनकी चिकित्साके क्रममें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ २३९ ॥ २४० ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ—पञ्चात्मनः स्थानवशाच्छरीरे स्थानानि कर्माणि च देहधातोः।
प्रकोपहेतुः कुपितश्च रोगान् स्थानेषु चान्येषु वृतोऽवृतश्च ॥ २४१ ॥
प्राणेश्वरः प्राणभृतां करोति क्रिया च तेषामखिला निरुक्ता ।
तान् देशसात्म्यर्तुबलान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारी ॥ २४२॥

इति श्रीचर० चिकि० वातचिकित्सितनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि, इस वातचिकित्सितनामक अध्यायमें पंचात्मक वायुके स्थान स्थानवशसे शरीरमें वायुके स्थान और देहधातुके कर्म प्रकोपके कारण कुपितवायु जिस प्रकार अपने स्थानमें या अन्य स्थानमें रोगोंको उत्पन्न करती है तथा आवृत वायु और अनावृत वायु जिस प्रकार रोगोंको उत्पन्न करती है यह प्राणेश्वर वायु जिस प्रकार जिन २ स्थानोंमें मनुष्योंके शरीरमें क्रिया करती है उन सबका वर्णन किया गया है। वैद्यजन उन संपूर्ण क्रियाओंको देश, सात्म्य ऋतु और बल आदि विचारकर शास्त्रानुसारी चिकित्साको करे ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां वातचिकित्सितं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

जानत जो नर वातके, स्थान ज्ञान विधि भेद ।
करहि चिकित्सा सिद्ध सो, वात व्याधि उच्छेद ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।



अथातो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम वातशोणितचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

हुताग्निहोत्रमासीनमृषिमध्ये पुनर्वसुम् ।
पृष्टवान् गुरुमेकाग्रमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥ १ ॥
अग्निमारुततुल्यस्य संसर्गस्यानिलासृजोः ।
हेतुलक्षणभैषज्यान्यथास्मै गुरुरब्रवीत् ॥ २ ॥

अग्निहोत्र करचुकनेके अनन्तर आनन्दसे ऋषिगणोंके मध्यमें एकग्राचित्त बैठे हुए अग्निके समान प्रकाशमान अपने गुरु पुनर्वसुजीसे अग्निवेशने अग्नि और वायुके समान तीव्र स्वभाववाले वातरक्तके विषयमें प्रश्न किया और भगवान् पुनर्वसुजी इस प्रकार वातरक्तके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥

वातरक्तके हेतु ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः ।
क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ ३ ॥
कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः ।
दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ ४ ॥
विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ॥ ५ ॥
अचंक्रमणशीलानां कुप्यते वातशोणितम् ।
अभिघातादशुद्ध्या च प्रदुष्टे शोणिते नृणाम् ॥ ६ ॥
कषायकटुतिक्ताल्परूक्षाहारादभोजनात् ।
हयोष्ट्रखरयानाम्बुक्रीडाप्लवनलङ्घनात् ॥ ७ ॥
उष्णे चात्यध्वगमनाद्व्यवायाद्वेगनिग्रहात् ।
वायुर्विवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि ॥ ८ ॥

कृत्स्नं संदूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ।
खुडं वातबलासाख्यमाढ्यवातञ्च नामभिः ॥ ९ ॥

नमकीन, खट्टे, चरपरे, खारे, स्निग्ध, गर्म और अजीर्णकर्त्ता द्रव्योंके अत्यंत सेवनसे क्लेदित, सूखे, जलसंचारी और अनूपसंचारी जीवोंके मांसोंका अत्यंत सेवन करनेसे पिण्याक और मूलीका अत्यंत सेवन करनेसे कुलथी, उडद, सेम, शाक, पलल और ईखके अत्यंत सेवन करनेसे दही, कांजी, सौवीरक, सिरका, तक्र, सुरा और आसवोंको अधिक प्रमाण अत्यंत सेवन करनेसे विरुद्ध भोजन और भोजनके ऊपर भोजन करनेसे तथा क्रोध, दिनमें सोना, अत्यंत जागना और हरसमय निष्प्रयास बैठेही रहना आदि मिथ्या आहार विहारके करनेसे मनुष्योंके शरीरमें और विशेषकर सुकुमार मनुष्योंके शरीरमें वातरक्तका कोप होता है तथा चोट आदि लगनेसे और संचित मलोंको शोधन न करनेसे, रक्तके दूषित होनेसे और उसमें कसैले, कटु, तिक्त, अल्प तथा रूक्ष आहारोंके सेवन करनेसे अथवा निराहार रहनेसे घोडा ऊंट आदि शीघ्र गमन करनेवाले यानपर सवारी करनेसे बलपूर्वक जलक्रीडा करनेसे जलमें अत्यंत तैरनेसे अथवा वेगयुक्त जलकी धाराके आगेका बलपूर्वक लंघन करनेसे गर्मऋतुमें अत्यंत मार्ग चलनेसे अधिक मैथुन करनेसे मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे बढीहुई वायु वृद्धिको प्राप्तहुए रक्तसे मार्गमें अवरुद्ध होकर संपूर्ण रक्तको दूषित करदेती है इसीको वातरक्तरोग कहते हैं इसीको खुडवात और बलास तथा आढ्यवात भी कहते हैं ॥ ३-९ ॥

वातरक्तके स्थान ।

तस्य स्थानं करौ पादावङ्गुल्यः पर्वसन्धयः ।
कृत्वादौ हस्तपादेषु मूलं देहे विधावति ॥ १० ॥

हाथ, पांव, अंगुलियें, पर्व और संधियें वातरक्तके स्थान हैं यह रोग पहिले हाथपावोंमें प्राप्त होकरही अपनी जडको बांधता है फिर संपूर्ण शरीरमें फैलजाता है॥१०

वातरक्तकी संप्राप्ति ।

सौक्ष्म्यात्सर्वसरत्वाच्च देहं गच्छन्शिरायणैः ।
पर्वस्वभिहतं क्षुब्धं वक्रत्वादवतिष्ठते ॥ ११ ॥
स्थितं पित्तादिसंसृष्टं तास्ताः सृजति वेदनाः ।
करोति दुःखं तेष्वेव तस्मात्प्रायेण सन्धिषु ।
भवन्ति वेदनास्तास्ता अत्यर्थं दुःसहा नृणाम् ॥ १२ ॥

वातरक्त वायुकी सूक्ष्मता और रुधिरकी सर्वगामिता होनेसे शिरामार्गद्वारा संपूर्ण देहमें गमन करता है परन्तु पर्वोंमें उपस्थित होनेसे पर्वोंको टेढा करदेता है। फिर उन पर्वोंसे अभिहत और क्षुब्ध होकर पर्वस्थानमेंही टिका रहता है इस प्रकार स्थित हुआ वातरक्त पित्तादिसे मिलकर पित्तादिसंसृष्ट अनेक प्रकारकी पीडाओंको उत्पन्न करता है वह पित्तादिसंसृष्ट वातरक्त सन्धियोंमें स्थित होनेसे प्रायः सन्धियोंमें ही अनेक प्रकारकी दुःसह पीडाओंको उत्पन्न करता है। यह पीडा मनुष्योंके लिये दुःसह होती है॥

वातरक्तके पूर्वरूप।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक्।
सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडकोद्गमः ॥ १३ ॥
जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु।
निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ १४ ॥
कण्डूः सन्धिषु रुग्भूत्वा भूत्वा नश्यति चासकृत्।
वैवर्ण्यमण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ १५ ॥

अत्यन्त पसीनोंका आना अथवा पसीनेका सर्वथा न आना, देहका वर्ण काला होना, स्पर्शका ज्ञान न रहना, घावमें अत्यन्त पीडा होना, जोड ढीलेसे पडजाना, आलस्य, अङ्गोंका सुन्नसा होना, जानु, जंघा, ऊरु, कमर, हाथ, पांव और सन्धियोंमें फुंसियोंका होना तथा इन्हीं अवयवोंमें सूई चुभनेकीसी पीडा, फडकन, भेदनकीसी पीडा, भारीपन और सुन्नसा होजाना तथा सन्धियोंमें खुजली और बार बार सन्धियोंमें पीडा होना तथा शान्त होजाना, विवर्णता, शरीरमें चकत्तेसे पडजाना यह वातरक्तके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ १३-१५ ॥

उत्तान और गम्भीर वातरक्तके भेद।

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं तत्प्रचक्षते।
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ॥ १६ ॥

वह वातरक्त उत्तान और गम्भीर भेदसे दो प्रकारका होता है। त्वचा और मांसके आश्रित वातरक्तको उत्तानवातरक्त कहते हैं। और आभ्यंतर अर्थात् शिराओंमें आश्रित हुए वातरक्तको गम्भीरवातरक्त कहते हैं ॥ १६ ॥

उत्तानवातरक्तके लक्षण।

कण्डूदाहरुगायासतोदस्फुरणकुञ्चनैः।
अन्विता श्यावरक्ता त्वग् बाह्ये ताम्रा तथेष्यते ॥ १७ ॥

खुजली, दाह, पीडा, श्रम, तोद, फडकन और कुंचन होना तथा त्वचाका रंग काला या ताम्रवर्णका होना यह उत्तान वातरक्तके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

गम्भीरवातरक्तके लक्षण।

गम्भीरे श्वयथुः स्तब्धः कठिनोऽन्तर्भृशार्तिमान्।
श्यावस्ताम्रोऽथवा दाहतोदस्फुरणपाकवान् ॥ १८ ॥

गंभीर वातरक्तमें सूजन, संधियोंका स्तम्भ, कठोरता, भीतर अत्यन्त पीडा होना, श्याम और ताम्रवर्णकी सूजन तथा दाह, तोद, फडकन और पाक ये लक्षण होते हैं॥१८॥

रुग्विदाहान्वितोऽभीक्ष्णं वायुः सन्ध्यस्थिमज्जसु।
छिन्दन्निव चरत्यन्तर्वक्रीकुर्वंश्च वेगवान् ॥ १९ ॥
करोति खञ्जं पङ्गुं वा शरीरे सर्वतश्चरन्।
सर्वैर्लिङ्गैश्च विज्ञेयं वातासृगुभयाश्रयम् ॥ २० ॥

रक्तयुक्त वात शूल और दाह करती हुई, सदैव सन्धि, अस्थि और मज्जामें छेदनकीसी पीडा करतीहुई विचरती है और वेगपूर्वक हाथोंकी अंगुलियोंकी संधियोंको अत्यन्त टेढी बना देती है। यदि यह वातरक्त संपूर्ण शरीरमें गमन करे तो सर्वत्र विचरतीहुई खंजता और पंगुपनको उत्पन्न करती है। यदि इस वातरक्तमें उत्तान और गंभीरके सब प्रकारके लक्षण हों तो इसको उभयाश्रित जानना ॥ १९ ॥ २० ॥

वातरक्तके वातादिभेद।

तत्र वातेऽधिके वा स्याद्रक्ते पित्ते कफेऽपि वा।
संसृष्टेषु समस्तेषु यच्च तच्छृणु लक्षणम् ॥ २१ ॥

दोनों प्रकारके वातरक्त, वाताधिक, रक्ताधिक, पित्ताधिक और कफाधिक तथा द्विदोषाश्रित वा सर्वदोषाश्रित इन भेदोंसे सात प्रकारके होते हैं। अब उनके पृथक् पृथक् लक्षणोंको सुनो ॥ २१ ॥

वाताधिक वातरक्तके लक्षण।

विशेषतः शिरायामशूलस्फुरणतोदनम्।
शोथस्य कार्ष्ण्यं रौक्ष्यञ्च श्यावता वृद्धिहानयः ॥ २२ ॥
धमन्यङ्गुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक्।
कुञ्चनस्तम्भने शीतप्रद्वेषश्चानिलेऽधिके ॥ २३ ॥

वाताधिक वातरक्तमें विशेषरूपसे नसोंका मोटापन अथवा संकोच, शूल, तोद, स्फुरण, शरीरमें रूक्षता, कालापन अथवा श्यामवर्णयुक्त सूजन, कभी रोगकी वृद्धि,

कभी हीनता, धमनी और अंगुलियोंकी संधिका संकोच, अंगोंका जकडना, अत्यंत नसोंका संकुचित होना, स्तम्भ, शीतसे अत्यन्त द्वेष यह लक्षण होते हैं ॥ २२ ॥२३ ॥

रक्ताधिक वातरक्तके लक्षण ।

श्वयथुर्भृशरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ।
स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदान्वितोऽसृजि ॥ २४ ॥

रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यंत पीडा और तोद होता है तथा वह सूजन ताम्रवर्णकी और चिमचिमाहटयुक्त होती है। स्निग्ध अथवा रूक्ष किसी प्रकारकी क्रिया करनेसे भी पीडाकी शांति न हो सूजनमें खुजली और क्लेदयुक्त हो, यह लक्षण होते हैं२४॥

पित्ताधिक वातरक्तके लक्षण ।

विदाहो वेदना मूर्च्छा स्वेदस्तृष्णा मदो भ्रमः ।
रागः पाकश्च भेदश्च शोफे चोक्तानि पैत्तिके ॥ २५ ॥

पित्ताधिक वातरक्तमें विदाह, वेदना, मूर्च्छा, पसीना, प्यास, मद, भ्रम, लाली, पाक, भेदनकीसी पीडायुक्त सूजन यह लक्षण होते हैं ॥ २५ ॥

कफाधिक, द्वंद्वज, सन्निपातज वातरक्तके लक्षण ।

स्तैमित्यं गौरवं स्नेहः सुप्तिर्मन्दा च रुक् कफे ।
हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद् द्वन्द्वं त्रिदोषजम् ॥ २६ ॥

कफाधिक वातरक्तमें—स्तैमित्य, भारीपन, चिकनाहट, शून्यता और मन्द पीडा यह लक्षण होते हैं। दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलनेसे द्वंद्वज और तीन दोषोंके हेतु लक्षण हों तो त्रिदोषज वातरक्त जानना ॥ २६ ॥

वातरक्तकी साध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ।
त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ २७ ॥

एक दोषानुयायी वातरक्त यदि नवीन हो तो साध्य होता है। द्विदोषज वातरक्त याप्य होता है और त्रिदोषज असाध्य होता है, तथा अत्यन्त उपद्रवोंसे युक्त वातरक्त भी असाध्य जानना ॥ २७ ॥

अस्वप्नारोचकाश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ।
मूर्च्छा च मदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ २८ ॥
हिक्कापाङ्गुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः ।
अङ्गुलीवक्रतास्फोटादाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ २९ ॥
एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन वापि यत् ।

संप्रस्रावि विवर्णञ्च स्तब्धमर्बुदकृच्च यत् ॥ ३० ॥

निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका सडना, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मत्तता, प्यास, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी, पंगुता, विसर्प, पाक, तोद, भ्रम, क्लम, अंगुलियोंका टेढापन, फोडे, दाह, मर्मोंका रुकना अथवा मर्मोंमें पीडा, अर्बुद इन सब उपद्रवोंयुक्त वातरक्त त्याज्य अर्थात् असाध्य समझकर त्याग देने योग्य होता है। अथवा वातरक्तमें अन्य उपद्रव न होनेपर भी बेहोशी होय तो असाध्य जानना। जिस वातरक्तमें स्राव, विवर्णता, अंगोंकी स्तब्धता, शरीरमें अर्बुदोंकी उत्पत्ति हो उसको भी असाध्य जानना॥

वर्जयेच्चैव सङ्कोचकरमिन्द्रियतापनम्।

अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ ३१ ॥

तथा जिसमें संकोच, हाथ और इन्द्रियोंमें निरन्तर ताप रहे वह भी असाध्य होता है। यदि उपरोक्त उपद्रव वातरक्तमें सम्पूर्ण रूपसे न हो तो वह वातरक्त याप्य साध्य होता है। यदि वातरक्तमें उपद्रव बिल्कुल होही नहीं तो उसको साध्य जानना ॥ ३१ ॥

रक्तमार्गं निहन्त्याशु शाखासन्धिषु मारुतः।

निविश्यान्योन्यमावाध्य वेदनाभिर्हरेदसून् ॥ ३२ ॥

जब वायु वातरक्तमें शाखा संधियोंमें पहुंच कर रक्तके मार्गको हनन कर देती है अर्थात् हाथपावोंकी संधियोंमें पहुंचकर रक्तकी गतिको रोक देती है उस समय वायु और रक्त परस्पर वेदनाको उत्पन्न कर वातरोगीके प्राणोंको नष्ट करदेता है ॥ ३२ ॥

वातरक्तके चिकित्साका क्रम।

तत्र मुञ्चेदसृक्शृङ्गजलौकःसूच्यलाबुभिः।

प्रच्छन्नैर्वा शिराभिर्वा यथादोषं यथाबलम् ॥ ३३ ॥

वातरक्तमें यथादोष, सिंगी, जोंक, सूची, तुंबी, पछना अथवा फस्त द्वारा जिस समय जैसा उचित हो रक्त निकालना चाहिये ॥ ३३ ॥

रुग्दाहशूलतोदार्त्तादसृक्स्राव्यं जलौकसा।

शृङ्गैस्तु वै हरेत्सुप्तिकण्डूचिमिचिमायनात्।

देशाद्देशं व्रजत्स्राव्यं शिराभिप्रच्छनेन वा ॥ ३४ ॥

यदि वातरक्तमें वेदना, दाह, शूल और तोद हो तो जोंकद्वारा रक्त निकालना चाहिये। यदि वातरक्तमें सुप्ति, खाज और चिमाचिमाहटयुक्त पीडा हो तो सिंगी-द्वारा रक्त निकालना चाहिये। यदि वातरक्त एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमन करे तो शिरावेधन और पछनेद्वारा रक्त निकालना चाहिये ॥ ३४ ॥

रक्तस्रावकके अयोग्य वातरक्त।

अङ्गग्लानौ न तु स्राव्यं रूक्षे वातोत्तरश्च यत् ॥ ३५ ॥
गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पं स्नायुशिरामयान् ।
ग्लानिश्चापि ससंकोचां कुर्य्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ ३६ ॥
खाञ्ज्यादीन् वातरोगांश्च मृत्युं चात्यपसेचनात् ।
कुर्य्यात्तस्मात्प्रमाणेन स्निग्धादृक्कं विनिर्हरेत् ॥ ३७ ॥

यदि वातरक्तमें अंगग्लानि हो और रूक्ष मनुष्यके शरीरमें वातोल्बण वातरक्त हो तो रक्तका निकालना उचित नहीं क्योंकि ऐसे वातरक्तमें रक्त निकालनेसे रक्तक्षयके कारण वायु गम्भीर सूजन, स्तम्भ, कम्प, स्नायुरोग, ग्लानि और संकोच तथा खंज आदि वातजनित रोगोंको उत्पन्न करता है। बल्कि ऐसे रोगीका अधिक रक्त निकलजानेसे मृत्यु ही होजाती है। इसलिये पहिले वातरक्तके रोगीको स्निग्ध करके फिर प्रमाणसे रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

विरेच्यः स्नेहयित्वादौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः।
रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्वस्तिकर्म च ॥ ३८ ॥
सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाः प्रायोऽविदाहिनः।
वातरक्ते प्रशस्यन्ते विशेषं तु निबोध मे ॥ ३९ ॥

वातरक्तके रोगीको स्निग्ध करके फिर स्नेहयुक्त अथवा रूक्ष मृदु विरेचन करावे। और बारंबार वस्तिकर्मका प्रयोग करता रहे। तथा स्नेहपान, सेक, लेप और अविदाही अन्नका प्रयोग करना चाहिये। अब इन सब कर्मोंको विशेषरूपसे वर्णन करते हैं सो सुनो ३८॥३९॥

वातरक्तकी विशेष चिकित्सा।

बाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिषेकोपनाहनैः।
विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ ४० ॥

बाह्य (उत्तान) वातरक्तमें तैलाभ्यंग, परिषेक और उपनाह स्वेदका प्रयोग करना चाहिये गंभीर वातरक्तमें विरेचन, आस्थापन और स्नेहपान कराना हितकारक है ॥४०॥

वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा।

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः।
सुखोष्णैरुपनाहैश्च वातोत्तरमुपाचरेत् ॥ ४१ ॥

वातोल्बण वातरक्तमें घृत, तेल, वसा और मज्जा पीने तथा अभ्यंग और वस्ति कर्ममें प्रयुक्त करने चाहिये। तथा सुखोष्ण उपनाह स्वेदोंका प्रयोग करना वाताधिक वातरक्तको शान्त करता है ॥ ४१ ॥

रक्तपित्तोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा।

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैः सेकैः सवस्तिभिः ।
शीतैर्निर्वापनैश्चापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥ ४२ ॥

रक्तपित्ताधिक वातरक्तमें विरेचन, घृत, दूधका पान, सेचन तथा वस्तिकर्म करना चाहिये। तथा शीतल और दाहनाशक द्रव्यों द्वारा रोगको जीते ॥ ४२ ॥

कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा।

वमनं मृदुनाऽत्यर्थं स्नेहसेकादिलङ्घनम् ।
कोष्णलेपाश्च शस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥ ४३ ॥

कफाधिक वातरक्तमें अत्यंत मृदु वमन, स्नेह, सेक और लंघन तथा किंचित् उष्ण लेपोंका करना हितकारक होता है ॥ ४३ ॥

कफवातोत्तरे शीतैः प्रलिप्ते वातशोणिते ।
विदाहशोथरुक्कण्डूविवृद्धिः स्तम्भनाद्भवेत् ॥ ४४ ॥
वातपित्तोत्तरे दाहः क्लेदोऽवदारणं भवेत् ।
उष्णैस्तस्माद्भिषग्दोषबलं बुद्धा चरेत्क्रियाम् ॥ ४५ ॥

कफवातोत्तर वातरक्तमें शीतल द्रव्योंका लेप करनेसे स्तम्भन होकर सूजन, विदाह, पीडा और खुजलीकी वृद्धि होती है। वातपित्तोत्तर वातरक्तमें शीतल लेपके करनेसे दाह, क्लेद और अवदारणकीसी पीडा होती है। इसलिये इनमें वैद्य दोष बल विचार कर उष्ण लेपोंकाही प्रयोग करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वातरक्तमें त्याज्य वस्तु।

दिवास्वप्नं ससन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ।
कटूष्णं गुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लञ्च वर्जयेत् ॥ ४६ ॥

वातरक्तके रोगीको दिनमें सोना, संताप, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, भारी, अभिष्यंदी, नमकीन और अम्ल पदार्थोंका त्याग करदेना चाहिये ॥ ४६ ॥

वातरक्तमें पथ्य।

पुराणयवगोधूमनीवाराः शालिषष्टिकाः ।
भोजनार्थे रसार्थे वा विष्किरप्रतुदा हिताः ॥ ४७ ॥
आढक्यं चणका मुद्गा मसूराः समुकुष्ठकाः ।
यूषार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ ४८ ॥
सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाचीशतावरीः ।

वास्तुकोपोदिकाशाकं शाकं सौवर्चलं तथा ॥ ४९ ॥
घृतमांसरसे भृष्टं शाकं सात्म्याय दापयेत् ।
व्यञ्जनार्थं तथा गव्यं माहिषाजं पयो हितम् ॥ ५० ॥

वातरक्तमें–भोजनके लिये पुराने यव, गेहूं, नीवार, शालि और षष्टिक चावल देना चाहिये । रसके लिये विष्किर और प्रतुद पक्षियोंका मांसरस हितकारी है तथा यूषके लिये अरहर, चना, मूंग, मसूर और मोठका यूष बनाकर बहुतसा घृत मिला सेवन करावे । शाकके लिये चौपातिया शाक, बेतकी कोंपल, मकोह, शतावर, बथुआ, पोई, हुलहुल इनका साग देना चाहिये । परन्तु यह संपूर्ण शाक अथवा मांसरस बहुतसे घीमें भूनकर यथासात्म्य देना चाहिये । पीनेके लिये गौ अथवा भैंसका दूध देना चाहिये ॥ ४७–५० ॥

इति संक्षेपतः प्रोक्तं वातरक्तचिकित्सितम् ।
एतदेव पुनः सर्वं व्यासतः संप्रवक्ष्यते ॥ ५१ ॥

इस प्रकार संक्षेपसे वातरक्तकी चिकित्साका वर्णन किया गया है अब उसीको विस्तारपूर्वक सुनो ॥ ५१ ॥

श्रावण्यादिघृत ।

श्रावणीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकैः समैः ।
सिद्धं समधुकैः सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ॥ ५२ ॥

गोरखमुण्डी, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक और मुलैठीको समभाग लेकर कल्क बनावे इस कल्कसे चारगुना घृत और घृतसे चारगुना दूध लेवे, सबको मिलाकर पकावे, घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस घृतके सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होता है ॥ ५२ ॥

बलादिघृत ।

बलामतिबलां मेदामात्मगुप्तां शतावरीम् ।
काकोलीं क्षीरकाकोलीं रास्नामृद्धिश्च पेषयेत् ॥ ५३ ॥
घृतं चतुर्गुणक्षीरं तैः सिद्धं वातरक्तनुत् ।
हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलाज्वरनाशनम् ॥ ५४ ॥

बला, अतिबला, मेदा,-कौंचके बीज, शतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और ऋद्धिका कल्क कर उससे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतके सेवन करनेसे वातरक्त, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

भूम्यामलकीघृत ।

तामलक्या द्विकाकोल्याः पिप्पलीत्रायमाणयोः ।
कशेरुकाकषायेण कल्कैरेभिः पचेद् घृतम् ॥ ५५ ॥

भूमिआमलकी, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कसेरूके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत वातरक्तको शान्त करता है ॥ ५५ ॥

पारूषकघृत ।

दत्त्वा परूषकद्राक्षाकाश्मर्य्येक्षुरसान्समान् ।
पृथग्विदार्य्याश्च रसं तथा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥
एतत्प्रयोगिकं सर्पिः पारूषकमिति स्मृतम् ।
वातरक्ते क्षते क्षीणे वीसर्पे पैत्तिके ज्वरे ॥ ५७ ॥

फालसेका रस, द्राक्षाका रस, कुम्भेरके फलोंका रस और ईखका रस एक एक सेर, विदारीकन्दका रस चार सेर, दूध चार सेर, घृत एक सेर इन सबको मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस पारूषक घृतके सेवनसे वातरक्त, क्षत, क्षीण, वीसर्प और पित्तज्वर दूर होते हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

द्विपञ्चमूलीघृत ।

द्वे पञ्चमूले वर्षाभूमेरण्डं सपुनर्नवम् ।
मुद्गपर्णीं महामेदां माषपर्णीं शतावरीम् ॥ ५८ ॥
शंखपुष्पीमवाक्पुष्पीं रास्नामतिबलां बलाम् ।
पृथग्द्विपलिकं कृत्वा जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५९ ॥
पादशेषे समं क्षीरं धात्रीक्षुच्छागलान् रसान् ।
घृताढकेन संयोज्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६० ॥
कल्कानावाप्य मेदे द्वे काश्मर्य्यं फलमुत्पलम् ।
त्वक्क्षीरीं पिप्पलीं द्राक्षां पद्मबीजं पुनर्नवाम् ॥ ६१ ॥
नागरं क्षीरकाकोलीं समङ्गां बृहतीद्वयम् ।
वीरां शृङ्गाटकं भव्यमुरुवालं निकोचकम् ॥ ६२ ॥
बदराक्षोटवातामसुञ्जाताभिषुकांस्तथा ।
एतैर्घृताढके सिद्धे क्षौद्रं शीते प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥
सम्यक्सिद्धञ्च विज्ञाय सुगुप्तं सन्निधापयेत् ।

कृतरक्षाविधिं तच्च प्राशयेदक्षसम्मितम् ॥ ६४ ॥
पाण्डुरोगं ज्वरं हिक्कां स्वरभेदं भगन्दरम् ।
पार्श्वशूलं क्षयं कासं प्लीहानं वातशोणितम् ॥ ६५ ॥
क्षतशोषमपस्मारमश्मरीं शर्करास्तथा ।
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च मूत्रसङ्गं च नाशयेत् ॥ ६६ ॥
बलवर्णकरं धन्यं वलीपलितनाशनम् ।
जीवनीयमिदं सर्पिर्वृष्यं वन्ध्यासुतप्रदम् ।
अग्निवेशाय गुरुणा कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ६७ ॥

लघु पंचमूल, बृहत्पंचमूल, श्वेत पुनर्नवा, एरण्डकी जड, लाल पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, महामेदा, माषपर्णी, शतावर, शंखपुष्पी, सौंफ, रास्ना, अतिबला और बलाको दो दो पल लेकर कूटले फिर एक द्रोण जलमें पकावे चौथाई भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले । फिर इस क्वाथमें दूध, आँवलेका रस, ईखका रस, बकरेके मांसका रस यह सब एक एक आढक, घृत एक आढक और नीचे लिखेहुए कल्क द्रव्य एक प्रस्थ, जैसे मेदा, महामेदा, कुंभेरके फल, नीलकमल, वंशलोचन, पीपल, द्राक्षा, कमलगट्टा, पुनर्नवा, सोंठ, क्षीरकाकोली, वाराहक्रान्ता, बडीकटेली, छोटीकटेली, काकोली, सिंघाडे, भव्यफल, उरुमाल (कांसके बीज), निचोक, बेर, अखरोट, बादाम, मुंजातक फल और अभिषुक फलका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे । सिद्ध होनेपर उतारकर छानलेवे फिर इस घृतमें घृतसे चौथाई भाग शहद मिलावे । फिर इसको किसी उत्तम पात्रमें विधिवत् ढककर रक्खे । इसमेंसे नित्य एक तोला घृत सेवन करनेसे पाण्डुरोग, ज्वर, हिचकी, स्वरभंग, भगन्दर, पार्श्वशूल, क्षय, खांसी, प्लीहा, वातरक्त, क्षत, शोष, अपस्मार, पथरी, शर्करा, सर्वांगवात, एकांगवात, मूत्राघातरोग नष्ट होते हैं तथा बल और वर्णकी वृद्धि करनेवाला, वली और पलितको नष्ट करनेवाला तथा धन्य, जीवनदायक, वीर्यवर्द्धक और वंध्या स्त्रीको संतान देनेवाला यह द्विपंचमूलादिघृत अग्निवेशके प्रति गुरुदेव कृष्णात्रेयजीने कहा है ॥ ५८–६७ ॥

द्राक्षाघृत ।

द्राक्षामधुकतोयाभ्यां सिद्धं वा ससितोपलम् ॥ ६८ ॥

द्राक्षा और मुलैठीके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत मिसरी मिला सेवन करनेसे वातरक्त दूर होता है ॥ ६८ ॥

गुडूचीघृत ।

पिबेद् घृतं तथा क्षीरं गुडूचीस्वरसे शृतम् ॥ ६९ ॥

गिलोयके क्काथ और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत अथवा दूध मिसरी मिला सेवन करनेसे वातरक्त नष्ट होता है ॥ ६९ ॥

जीवकादिस्नेह।

जीवकर्षभकौ मेदामृष्यप्रोक्तां शतावरीम् ।
मधुकं मधुपर्णीश्च काकोलीद्वयमेव च ॥ ७० ॥
मुद्गमाषाख्यपर्णिन्यौ दशमूलं पुनर्नवाम् ।
बलामृताविदार्य्यश्च साश्वगन्धाश्मभेदकाः ॥ ७१ ॥
एषां कषायकल्काभ्यां सर्पिस्तैलञ्च साधयेत् ।
लाभतश्च वसा मज्जा धन्वप्रतुदवैष्किरान् ॥ ७२ ॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्सिद्धं वातशोणितम् ।
सर्वदेहाश्रितं हन्ति व्याधीन्घोरांश्च वातजान् ॥ ७३ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, कौंचके बीज, शतावर, मुलैठी, कुंभेरके फल, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, मूषकपर्णी, दशमूलकी दश औषधियें, पुनर्नवा, बला, गिलोय, विदारीकन्द, असगंध और पाषाणभेदके क्काथ और कल्कद्वारा घृतको सिद्ध करे। इस घृतमें पकते समय घृतसे चारगुना दूध और यदि मिल सके तो प्रतुद और विष्किर पक्षियोंकी चर्बी और मज्जा भी घृतके समान मिलावे। पकते २ जब संपूर्ण जल, दूध आदि द्रव्य जलकर स्नेहमात्रशेष रहे तो उतारकर छानले। इस स्नेहके सेवन करनेसे संपूर्ण प्रकारकी सर्व देहगत वातव्याधियें और वातरक्त दूर होते हैं ॥७०-७३

स्थिरादि स्नेह मन्थ।

स्थिरा श्वदंष्ट्रा बृहती शारिवा सशतावरी ।
काश्मर्य्याण्यात्मगुप्ता च वृश्चीरं द्वे बले तथा ॥ ७४ ॥
एषां क्काथे चतुःक्षीरे पृथक्तैलं पृथग्घृतम् ।
मेदाशतावरीयष्टिजीवन्तीजीवकर्षभैः ॥ ७५ ॥
पक्त्वा मात्रा ततः क्षीरं त्रिगुणा ह्यर्द्धशर्करा ।
खजेन मथिता पेया वातरक्ते त्रिदोषजे ॥ ७६ ॥

शालपर्णी, गोखरू, बडी कटेली, शारिवा, शतावर, कुंभेरके फल, कौंचके बीज, सफेद पुनर्नवा, बला और अतिबलाका क्काथ ८ सेर, दूध ८ सेर तथा मेदा, शतावर, मुलैठी, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक इनका कल्क आधसेर घृत अथवा तैल १ सेर दोनों मिलाकर या सबको मिलाकर सिद्ध करे। सिद्ध होजानेपर यह घृत अथवा तैल छानकर किसी

उत्तम पात्रमें रक्खे। इस स्नेहमें तीनगुना दूध, आधा भाग खांड मिलाकर मथनीसे खूब मथडाले। इसके सेवनसे तीनों दोषोंका वातरक्त दूर होता है ॥ ७४-७६ ॥

वातरक्तनाशक योग।

तैलं पयः शर्कराञ्च पाययेद्वा सुमूर्च्छिताम्।
सर्पिस्तैलसिताक्षौद्रैर्मिश्रं वापि पिबेत्पयः ॥ ७७ ॥

सर्वदोषज वातरक्तमें तेल, दूध, मिसरीको मथकर पीवे अथवा घी, तेल, मिसरी, शहद और दूध मिलाकर मंथनकर पीवे तो सर्वदोषज वातरक्त शांत होता है ॥७७॥

अंशुमत्या शृतः प्रस्थः पयसः ससितोपलः।
पाने प्रशस्यते तद्वत्पिप्पलीनागरैः शृतः ॥ ७८ ॥

शालपर्णीसे सिद्ध किये दूधको मिसरी मिलाकर पीवे। अथवा पीपल और सोंठसे सिद्ध कियेहुए दूधको मिसरी मिलाकर पीवे तो वातरक्त शान्त होता है ॥ ७८ ॥

बलाशतावरीरास्नादशमूलैः सपीलुभिः।
श्यामैरण्डस्थिराभिश्च वातार्त्तिघ्नं शृतं पयः ॥ ७९ ॥

बला, शतावर, रास्ना, दशमूल, पीलूफल, शारिवाकी जड, एरण्डकी जड और शालपर्णीसे सिद्ध किया दूध वातरक्तकी पीडाको शान्त करता है ॥ ७९ ॥

पित्ताधिक वातरक्तकी चिकित्सा।

धारोष्णं मूत्रयुक्तं वा क्षीरं दोषानुलोमनम्।
पिबेद्वा सत्रिवृच्चूर्णं पित्तरक्तावृतानिलः ॥ ८० ॥

धारोष्ण दूधको गोमूत्र मिलाकर पीवे तो वातरक्तमें दोषोंका अनुलोमन होता है यदि पित्तरक्तसे आवृत वायु हो तो धारोष्ण दूधकेसाथ निशोथका चूर्ण पीना चाहिये॥

क्षीरेणैरण्डतैलं वा प्रयोगेण पिबेन्नरः।
बहुदोषो विरेकार्थं जीर्णे क्षीरौदनाशनः ॥ ८१ ॥
कषायमभयानां वा घृतभृष्टं पिबेन्नरः।
क्षीरानुपानं त्रिवृता चणद्राक्षारसेन वा ॥ ८२ ॥

बहुदोषयुक्त वातरक्तमें एरण्डतैल दूधमें मिलाकर पीना चाहिये। इससे विरेचन होनेके अनन्तर क्षुधा लगनेपर दूध भातका सेवन करे। अथवा हरडके क्वाथको घीमें छोंककर पीवे और दूधका अनुपान करे। अथवा निशोथके चूर्णको द्राक्षाके रसके साथ पीवे तो विरेचनद्वारा दोषकी शान्ति होती है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

काश्मर्य्यं त्रिवृतां द्राक्षां चूर्णं द्राक्षारसेन वा।

काश्मर्यं त्रिवृतां द्राक्षां त्रिफलां सपरूषकाम् ॥ ८३ ॥

श्रृतां पिबेद्विरेकाय लवणक्षौद्रसंयुताम् ।

त्रिफलायाः कषायं वा पिबेत्क्षौद्रेण संयुतम् ॥ ८४ ॥

कुम्भेरके फल निशोथ और द्राक्षाके चूर्णको द्राक्षाके रससे पीवे । अथवा कुम्भेरके फल, निशोथ, द्राक्षा, त्रिफला और फालसेका काथ सेंधानमक और शहद मिलाकर पीवे या त्रिफलाका काथ शहद मिला पीवे तो पित्तप्रधान वातरक्त अथवा पित्तरक्ता-वृत वात शान्त होता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा।

धात्रीहरिद्रमुस्तानां कषायं वा कफाधिके ॥ ८५ ॥

आँवले, हल्दी और नागरमोथेका काथ कफाधिक वातरक्तको शांत करता है ॥ ८५ ॥

मलावृत वातरक्तकी चिकित्सा।

योगैश्च कल्पविहितैरसकृत्तं विरेचयेत् ।

मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्ज्ञात्वा वातं मलावृतम् ।

निर्हरेद्वा मलं तस्य सघृतः क्षीरवस्तिभिः ।

न हि वस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ ८६ ॥

मलावृत वातरक्तमें कल्पस्थानमें कहे योगानुसार बारबार मृदुविरेचन तथा स्नेह-योगद्वारा विरेचन कराकर मल निकाले अथवा घृतयुक्त क्षीरवस्तिद्वारा मलको निकाले। वातरक्तमें वस्तिकर्मके समान और चिकित्सा नहीं है ॥ ८६ ॥

वस्तिवंक्षणपार्श्वोरुपर्वास्थिजठरार्त्तिषु ।

उदावर्त्ते च शस्यन्ते निरूहाः सानुवासनाः ॥ ८७ ॥

वस्ति, वंक्षण, पार्श्व, ऊरु, पर्व, अस्थि और उदरमें पीडा होय अथवा उदावर्त होय तो प्रथम निरूहणवस्ति करके फिर अनुवासनका प्रयोग करे ॥ ८७ ॥

नस्याभ्यञ्जनसेके च दाहशूलोपशान्तये ।

दद्यात्तैलानि चेमानि वस्तिकर्माणि बुद्धिमान् ॥ ८८ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको नीचे लिखे तेलोंको वातरक्तके दाह तथा शूलकी शान्तिके लिये वस्तिकर्ममें नस्यमें अभ्यंगमें और सेचनमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ८८ ॥

मधुयष्टी तैल।

मधुयष्ट्यास्तुलायास्तु कषाये पादशेषिते ॥ ८९ ॥

तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ।

शतपुष्पावरीमूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः ॥ ९० ॥
स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ।
काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यृद्धिपद्मकैः ।
जीवकर्षभजीवन्तीत्वक्पत्रनखबालकैः ॥ ९१ ॥
प्रपौण्डरीकमाञ्जिष्ठासारिवैन्द्रीवितुन्नकैः ।
चतुःप्रयोगात्तद्धन्ति तैलं मारुतशोणितम् ॥ ९२ ॥
सोपद्रवं साङ्गशूलं सर्वगात्रानुगं तथा ।
वातासृक्पित्तदाहार्त्तिज्वरघ्नं बलवर्द्धनम् ॥ ९३ ॥

पांच सेर मुलैठीको चालीस सेर जलमें पकावे, दश सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छानले इस क्वाथमें तेल चार सेर, दूध चार सेर और सौंफ, शतावर, मूर्वा, पयस्या, अगरु, चन्दन, शालपर्णी, हंसपादी, जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, भूमिआँवला, ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋषभक, दालचीनी, पत्रज, नख, नेत्रवाला, पंडचारेकी छाल, मंजीठ, शारिवा, इन्द्रायणकी जड और धनियांको एक एक पल लेकर कल्क बनावे और उपरोक्त तैलादिकोंमें मिला पकावे । तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस तैलके नस्य, अभ्यंग, वस्ति और पानमें उपयोग किये जानेसे संपूर्ण देहमें व्याप्त उपद्रवयुक्त वातरक्त, अंगशूल, पित्तजनित दाह, पीडा, ज्वर यह सब दूर होते हैं और बलकी वृद्धि होती है ॥ ८९-९३ ॥

सुकुमार तैल ।

मधुकस्य शतं द्राक्षाखर्जूराणि परूषकम् ।
मधुकौदनपाक्यौ च प्रस्थं मुञ्जातकस्य च ॥ ९४ ॥
काश्मर्य्याढकमित्येतच्चतुर्द्रोणे पचेदपाम् ।
शेषेऽष्टभागे पूते च तस्मिन्तैलाढकं पचेत् ॥ ९५ ॥
तथामलककाश्मर्य्याविदारीक्षुरसैः समैः ।
चतुर्गुणेन पयसा कल्कं दत्त्वा पलोन्मितम् ॥ ९६ ॥
कदम्बामलकाक्षोटपद्मबीजकशेरुकम् ।
शृङ्गाटकं शृङ्गवेरं लवणं पिप्पलीं सिताम् ॥ ९७ ॥
जीवनीयैश्च संसिद्धं क्षौद्रप्रस्थेन संसृजेत् ।
नस्याभ्यञ्जनपानेषु वस्तौ चापि नियोजयेत् ॥ ९८ ॥

वातव्याधिषु सर्वेषु मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ।
सर्वाङ्गैकाङ्गवाते च क्षतक्षीणे क्षतज्वरे ॥ ९९ ॥
सुकुमारकमित्येतद्वातास्रामयनाशनम् ।
स्थिरवर्णकरं तैलमारोग्यबलपुष्टिदम् ॥ १०० ॥

मुलैठी १०० पल, द्राक्षा एक प्रस्थ, खजूर एक प्रस्थ, फालसे एक प्रस्थ, महुएके फूल एक प्रस्थ, बला एक प्रस्थ, मुंजातक एक प्रस्थ, कुंभेरके फल एक आढक इन सबको चार द्रोण जलमें पकावे। आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस छनेहुए क्काथमें एक आढक तेल मिलावे। तथा भूमिआंवलेका रस, कुंभेरके फलोंका क्काथ, विदारीकन्दका रस और ईखका रस यह सब एक एक आढक, दूध चार आढक तथा कदंबकी छाल, आंवले, अखरोट, कमलगट्टे, कसेरू, सिंघाडे, सोंठ, सेंधानमक, पीपल, मिसरी और जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधियें एक एक पल लेकर कल्क बनावे। यह कल्क और उपरोक्त तेल, क्काथ, रस और दूध सब मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तेलका नस्य, पान, अभ्यंग और वस्तिकर्ममें प्रयोग करनेसे सब प्रकारके वातरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, सर्वांगगत वातरोग, एकाङ्गगत वातरोग, क्षत, क्षीण, क्षतजनित ज्वर और संपूर्ण वातरक्तके विकारोंको नाश करता है तथा अवस्थास्थापक, वर्ण, बल, आरोग्यता और पुष्टिको बढानेवाला है इसको सुकुमार तैल कहते हैं ॥ ९४-१०० ॥

अमृतादितैल।

गुडूचीं मधुकं ह्रस्वं पञ्चमूलं पुनर्नवाम् ।
रास्नामैरण्डमूलञ्च जीवनीयानि लाभतः ॥ १०१ ॥
पलानां शतकैर्भागैर्बलापञ्चशतं तथा ।
कोलबिल्वं यवान्माषान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १०२ ॥
काश्मर्याणां सुशुष्काणां द्रोणं द्रोणशतेऽम्भसि ।
साधयेज्जर्जरं धौतं चतुर्द्रोणञ्च शेषयेत् ॥ १०३ ॥
तैलद्रोणं पचेत्तेन दत्त्वा पञ्चगुणं पयः ।
पिष्ट्वा त्रिपलिकञ्चैवं चन्दनोशीरकेशरान् ॥ १०४ ॥
पत्रैलागुरुकुष्ठानि तगरं मधुयष्टिकाम् ।
मञ्जिष्ठाष्टपलञ्चैव तत्सिद्धं सार्वयौगिकम् ॥ १०५ ॥

वातरक्के क्षते क्षीणे भारार्त्ते क्षीणरेतसि ।
वेपनाक्षिप्तभग्नानां सर्वाङ्गैकाङ्गरोगिणाम् ॥ १०६ ॥
योनिदोषमपस्मारमुन्मादं खञ्जपङ्गुताम् ।
हन्यात्पुंसवनं चैतत्तैलाग्र्यममृताह्वयम् ॥ १०७ ॥

गिलोय, मुलैठी, लघु पंचमूल, पुनर्नवा, एरण्डकी जड, रास्ना और जीवनीयगणकी जो औषधियें मिलसकें यह प्रत्येक औषधी सौ सौ पल लेवे और बला ५०० पल लेवे तथा बेर, बेलकी गिरी, यव, उडद, कुलथी यह प्रत्येक एक एक आढक लेवे कुंभेरके सूखे फल एक द्रोण लेवे। इन सबको स्वच्छ करके १०० द्रोण जलमें पकावे। चार द्रोण जल शेष रहनेपर उतारकर क्वाथको छानलेवे। फिर इसमें तेल एक द्रोण, दूध पांच द्रोण, और लाल चन्दन, खस, नागकेशर, तेजपत्र, छोटी इलायची, अगर, कूठ, तगर, मुलैठी इन सबको तीन तीन पल और मंजीठ आठ पल लेकर कल्क बनावे। यह कल्क और उपरोक्त दूध, तैल, क्वाथ यह सब मिलाकर पकावे। तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। इस सार्वयौगिक तैलके चतुर्विध प्रयोग करनेसे वातरक्त, क्षत, क्षीण, बोझेके उठानेसे उत्पन्न हुई पीडा, शुक्रकी क्षीणता, आक्षेप, कंप, चोट आदि लगनेसे उत्पन्न हुई पीडा, सर्वांगवात, एकांगवात, योनिदोष, अपस्मार, खंजता और पंगुपन इन सबको नाश करता है तथा यह तेल वंध्यादोष निवृत्तकर संतान पैदा करनेमें परमोत्तम मानागया है इसको अमृतातेल कहते हैं ॥ १०१-१०७ ॥

महापद्म तैल।

पद्मवेतसयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः ।
पृथक्पञ्चपलैर्दर्भबलाचन्दनकिंशुकैः ॥ १०८ ॥
जले श्रृतैः पचेत्तैलप्रस्थं सौवीरसम्मितम् ।
लोध्रकालीयकोशीरजीवकर्षभकैः समैः ॥ १०९ ॥
मदयन्तीलतापत्रपद्मकेशरपद्मकैः ।
प्रपौण्डरीककाश्मर्य्यमांसीमेदाप्रियङ्गुभिः ॥ ११० ॥
कुंकुमस्य पलार्द्धेन मञ्जिष्ठायाः पलेन च ।
महापद्ममिदं तैलं वातसृग्ज्वरनाशनम् ॥ १११ ॥

कमल, वेतस, मुलैठी, बेर, पद्माख, नीलकमल यह सब पांच पांच पल लेवे। सबको कूटकर अठगुने जलमें पकावे चौथाई भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। फिर इस क्वाथमें तेल एक प्रस्थ, सौवीरक (कांजी) एक प्रस्थ तथा लोध, अगर, खस,

जीवक, ऋषभक, मालतीके पत्र, माधवीके पत्र, कमलकी केशर, पद्मकाष्ठ, पंड्यारेका छिलका, कुम्भेरके फल, जटामांसी, मेदा और प्रियंगु इन सबको एक एक कर्ष लेवे केशर आधा पल और मंजीठ एक पल लेकर कल्क बनावे । यह कल्क और उपरोक्त क्वाथ तैलादि मिलाकर पकावे । तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस महापद्मनामक तैलके प्रयोगसे वातरक्त और ज्वर दूर होता है ॥ १०८-१११

महाखुड्डाक तैल ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम् ।
स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ॥ ११२ ॥
खुड्डाकपद्मकमिदं तैलं वातास्रदाहनुत् ।
आत्रेयेणाग्निवेशाय भाषितं हितकाम्यया ॥ ११३ ॥

पद्माक, खस, मुलैठी और हल्दीका क्वाथ चार सेर, तेल एक सेर और राल, मंजीठ, काकोली, क्षीरकाकोली, चन्दन यह सब एक एक पल लेकर कल्क करे । इन सबको मिलाकर पकावे । तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस खुड्डाकपद्म तैलके प्रयोगसे वातरक्त और दाह दूर होती है । यह तैल जगत्के हित चाहनेवाले भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशसे कथन किया है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

मधुयष्टि तैल ।

शतेन यष्टिमधुकात्साध्यं दशगुणं पयः ।
तस्मिंस्तैले चतुर्द्रोणे मधुकस्य पलेन तु ।
सिद्धं मधुककाश्मर्यरसैर्वा वातरक्तनुत् ॥ ११४ ॥

मुलैठी एक सौ पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे । आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इसमें दो प्रस्थ तेल और बीस प्रस्थ दूध मिलावे तथा मधुरगणके संपूर्ण द्रव्योंको एक एक पल लेकर कल्क बनावे । फिर इसको तैलपाकविधिसे पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । अथवा मुलैठीके क्वाथ और कुम्भेरके क्वाथसे इसी प्रकार तैलको सिद्ध करे । यह दोनों प्रकारके तेल वातरक्तको दूर करते हैं ॥

शतपाकमधुपर्णी तैल ।

मधुपर्ण्याः पलं पिष्ट्वा तैलप्रस्थं चतुर्गुणे ।
क्षीरे साध्यं शतकृत्वस्तदेव मधुकाच्छतः ॥ ११५ ॥
सिद्धं देयं त्रिदोषे स्याद्वातास्रश्वासकासनुत् ।
हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥ ११६ ॥

---

१ मुलैठी लता भी ठीक है.

मधुपर्णी (कुम्भेरके फल या गिलोय) एक पल लेकर पीस लेवे। तेल एक प्रस्थ और दूध चार प्रस्थ मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तेलमें फिर एक पल मधुपर्णीका कल्क और चार प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इसी प्रकार एक सौ वार एक एक पल मधुपर्णीके कल्कसे पकाता रहे फिर इस तेलको छानकर प्रयोग करे तो तीनों दोषोंका वातरक्त, श्वास, खाँसी, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह नष्ट होते हैं॥

सहस्रपाकी तैल।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरसमं तथा।
सहस्रशतपाकं वा वातासृग्वातरोगनुत् ॥ ११७ ॥
रसायनं श्रेष्ठतममिन्द्रियाणां प्रसादनम्।
जीवनं बृंहणं स्वर्य्यं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ ११८ ॥

बलाका क्वाथ चार सेर, दूध चार सेर, बलाका कल्क चार तोला और तैल एक सेर (८० तोला) इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इसी प्रकार एक सौ वार या सहस्रवार बला (खरेटी) से पकाया हुआ तैल वातव्याधि और वातरक्तको नष्ट करता है तथा यह तैल श्रेष्ठ रसायन इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाला जीवनदायक पुष्टिकारक और शुक्रविकारनाशक है ॥ ११७॥११८

अन्य तैल।

गुडूचीरसदुग्धाभ्यां तैलं द्राक्षारसेन वा।
सिद्धं मधुककाश्मर्यरसैर्वा वातरक्तनुत् ॥ ११९ ॥

गिलोयके क्वाथ और दूधसे सिद्ध कियाहुआ तैल अथवा द्राक्षाके रस और दूधसे सिद्धकिया तैल अथवा मुलैठी और कुम्भेरके रससे सिद्ध किया तैल वातरक्तनाशक है॥

आरनाल तैल।

आरनालाढके तैलं पादं सर्जरसं घृतम्।
प्रभूते मथितं तोये ज्वरदाहार्त्तिनुत्परम् ॥ १२० ॥

कांजी एक आढक, तेल एक प्रस्थ, राल एक कुडव इन सबको मिलाकर एकत्र पकावे। इस तैलको अधिकांश जलमें मथकर शरीरपर मालिश करनेसे वातरक्तका ज्वर, दाह और पीडा शान्त होती है॥ १२०॥

पिण्ड तैल।

समधूच्छिष्टमाञ्जिष्ठं ससर्जरसशारिवम्।
पिण्डतैलं तदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम् ॥ १२१ ॥

मोम, मंजीठ, राल, शारिवा इन सबके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ तैल मालिश करनेसे वातरक्तकी पीडा दूर होती है ॥ १२१ ॥

पित्ताधिक वातरक्तके यत्न।

दशमूलशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम्।
परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ १२२ ॥

दशमूलसे सिद्धकिये हुए दूधका परिषेचन करना अथवा दशमूलसे सिद्ध घृतका परिषेचन वातरक्तकी पीडाको शीघ्र दूर करदेता है परन्तु वह सेचन सुहाते सुहाते गरम द्रव्यसे करना चाहिये ॥ १२२ ॥

स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वा चतुर्भिः परिषेचयेत्।
स्तम्भाक्षेपकशूलार्त्तं कोष्णैर्दाहे तु शीतलैः ॥ १२३ ॥

घृत, तैल, वसा, मज्जा इन चार स्नेहोंको मधुरगणके द्रव्योंसे सिद्धकर वातरक्त रोगीके शरीरपर गरम गरम सेचन करे तो शरीरका स्तम्भ, आक्षेप, शूल और पीडा दूर होती है यदि शीतल कर सेचन करे तो वातरक्तकी दाह दूर होती है॥ १२३॥

तद्वद्गव्याविकच्छागैः क्षीरैस्तैलविमिश्रितैः।
निःक्राथैर्जीवनीयानां पञ्चमूलस्य वा भिषक् ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार गौ, भेड, बकरीके दूधसे सिद्ध किया तैल जीवनीयगणके काथके साथ मिलाकर अथवा पंचमूलके काथके साथ मिलाकर सेचन करे तो वातरक्तकी पीडा शान्त होती है ॥ १२४ ॥

दाहनाशक यत्न।

द्राक्षेक्षुरसमद्यादि दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकम्।
सेकार्थे तण्डुलक्षौद्रशर्कराम्बु च शस्यते ॥ १२५ ॥
कुमुदोत्पलपद्माद्यैर्मणिहारैः सचन्दनैः।
शीततोयानुगैर्दाहे प्रोक्षणं स्पर्शनं हितम् ॥ १२६ ॥
चन्द्रपादाम्बुसंसिक्ते क्षौमपद्मदलच्छदे।
शयने पुलिनस्पर्शे शीतमारुतवीजिते ॥ १२७ ॥
चन्दनार्द्रस्तनकराः प्रिया नार्य्यः प्रियंवदाः।
स्पर्शशीताः सुखस्पर्शा घ्नन्ति दाहं रुजं क्लमम् ॥ १२८ ॥

वातरक्तमें दाहशांतिके लिये, द्राक्षाका रस, ईखका रस, मद्य, दही, दहीका जल, खट्टी कांजी, तण्डुलजल, शहद और खांड मिलाकर परिषेचन करना हितकारक है।

तथा कुमुद, नील कमल, लाल कमल आदि शीतल फूलों और मणियोंका हार, चंदनका लेप, शीतल जलका स्पर्श, और छींटे देना हितकारक है। एवं चन्द्रमाकी किरण और शीतल जलके फुआरोंसे शीतल स्थान, रेशमी वस्त्र और कमलके फूलोंसे तथा पत्रोंसे बिछी हुई शीतल शय्या, नदीका किनारा, शीतल जलसे भिंगेहुए पंखेकी वायु, शीतल चंदनसे चर्चित शीतलांगी स्त्रियोंका स्पर्श, मधुर २ बातोंका सुनना, शीतल और सुखदायक वस्त्रोंका स्पर्श पित्तप्रधान वातरक्तकी दाह, पीडा और क्लान्तिको नष्ट करता है १२५-१२८

लाली, दाह, शूल नाशक अन्य यत्न।

सरागे सरुजे दाहे रक्तं मुक्त्वा प्रलेपयेत्।
मधुकाश्वत्थत्वङ्मांसीवीरोदुम्बरशाद्वलैः॥ १२९॥
जलजैर्यवचूर्णैर्वा सयष्ट्याह्वपयोघृतैः।
सर्पिषा जीवनीयैर्वा पिष्टैर्लेपोऽर्त्तिदाहनुत्॥ १३०॥

यदि वातरक्तमें लाली, पीडा और दाह हो तो पहिले रक्त निकालकर फिर मुलैठी, पीपलवृक्षकी छाल, जटामांसी, काकोली, गूलरकी छाल और शाद्वल नामक घास अथवा कमलके फूल और यव या मुलैठी, दूध और घृत अथवा जीवनीयगणका कल्क और घृत इनमेंसे किसी एकको बारीक पीसकर लेप करे तो पीडा और दाह शान्त होती है १३०

एलाः पियालं मधुकं बिसं मूलञ्च वेतसात्।
आजेन पयसा पिष्टा प्रलेपो दाहरागनुत्॥ १३१॥

इलायची, चिरौंजी, मुलैठी, कमलकी डण्डी, वेतसकी जड इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे तो वातरक्तकी दाह और लाली दूर होती है॥ १३१॥

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठादार्वीमधुकचन्दनैः।
सितोपलैरकासक्तुमसूरोशीरपद्मकैः॥ १३२॥
लेपो रुग्दाहवीसर्परुक्शोफविनिवारणः।
पित्तरक्तोत्तरे त्वेते लेपान्वातोत्तरे शृणु॥ १३३॥

पंडचारेकी छाल, मंजीठ, दारुहलदी, मुलैठी, लाल चंदन, मिसरी, सरपतेकी जड, यवोंके सत्तू, मसूर, खस और पद्मकाष्ठ इन सबको बारीक पीसकर लेप करनेसे वातरक्तका शूल, दाह, विसर्प, लाली और सूजन नष्ट होती हैं। यह जितने उपरोक्त लेप और सेचनादि हैं, पित्ताधिक वातरक्तमें करने चाहिये। वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा आगे सुनो १३३

वाताधिक वातरक्तके यत्न।

वातघ्नैः साधितैः स्निग्धैः सक्षीरैर्मुद्गपायसैः।
तिलसर्षपपिण्डैर्वाप्युपनाहा रुजापहाः॥ १३४॥

औदकप्रसहानूपवेशवाराः सुसंस्कृताः ।
जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताः स्युरुपनाहने ॥ १३५ ॥
स्तम्भतोदरुगायासशोथाङ्गग्रहनाशनाः ।
जीवनीयौषधैः स्नेहः सपयस्को रसोऽपि वा ॥ १३६ ॥

वाताधिक वातरक्तमें वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए चिकनाईयुक्त खीर, खिचडी, मूंग, तिल, सरसों आदिके पिण्डसे उपनाहस्वेद करे तो वायुकी पीडा शान्त होती है। अथवा जलज, प्रसह और आनूप जीवोंके मांसको हल्दी आदि मिलाकर तथा जीवनीयगणकी औषधियोंसे युक्तकर घृत, तेलकी चिकनाई मिला सिद्ध करे फिर इस मांसपिण्डसे उपनाहस्वेद करे तो स्तम्भ, तोद, शूल, परिश्रम, सूजन और अंगोंका जकडना यह सब नष्ट होते हैं। तथा जीवनीयगणसे सिद्ध किया हुआ घी और दूध गर्म गर्म सेचन कियाजाय तो वह भी हितकारी है ॥ १३४–१३६ ॥

घृतं सहचरामूलं जीवन्ती च्छागलं पयः ।
लेपः पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ १३७ ॥
क्षीरपिष्टमुमालेपमेरण्डस्य फलानि च ।
कुर्य्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं शताह्वं वाऽनिलेऽधिके ॥ १३८

घी, काले वांसेकी जड, जीवन्ती और बकरीके दूधको मिलाकर गर्म कर लेप करना, अथवा तिलोंके कल्कको घीमें भूनकर और दूधमें घोटकर गर्म कर लेप करे या अलसी अथवा एरण्डके बीजोंको दूधमें पीस गर्मकर लेप करे अथवा सौंफको दूधमें पीस गर्म गर्म लेप करे तो वाताधिक वातरक्तकी शूल दूर होती है ॥ ३७ ॥ ३८

समूलाग्रच्छदैरण्डक्वाथे द्विप्रस्थिकं पृथक् ।
घृतं तैलं वसा मज्जा चानूपे मृगपक्षिणाम् ॥ १३९ ॥
कल्कार्थे जीवनीयानि गव्यं क्षीरमथाजकम् ।
हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताह्वाश्वहनच्छदान् ॥ १४० ॥
बिल्वमात्रं पृथक्पुष्पं काकुभञ्चापि साधयेत् ।
मधूच्छिष्टपलान्यष्टौ दद्याच्छीतेऽवतारिते ॥ १४१ ॥
शूलेनैवार्दिताङ्गानां लेपः सन्धिगतेऽनिले ।
वातरक्ते स्रुते भग्ने खञ्जे कुब्जे च शस्यते ॥ १४२ ॥

एरण्डकी जड, कोंपल, पत्र इन सबका क्वाथ आठ प्रस्थ, घृत, तैल, अनूपसंचारी जीवोंका मेद और मज्जा एक एक प्रस्थ, गौका दूध चार प्रस्थ, बकरीका दूध चार प्रस्थ तथा जीवनीयगणको संपूर्ण औषधियें, हल्दी, नीलकमल, कूठ, इलायची, सौंफ, कनेरके पत्ते और अर्जुन वृक्षकी छाल यह सब एक एक पल इन सबको मिलाकर स्नेह सिद्ध करे। फिर उतारकर इसमें आठ पल मोम मिलावे। इस स्नेहका लेपन और सेचन करनेसे शूलसे पीडित अंग, संधिगत वायु, वायुरक्त, भग्न, खंज, कुबडापन, स्रावयुक्त वातरक्त यह सब रोग दूर होते हैं ॥ १३९-१४२ ॥

कफाधिक वातरक्तमें चिकित्सा।

शोफगौरवकण्ड्वाद्यैर्युक्ते त्वस्मिन्कफोत्तरे।
मूत्रक्षारसुरापक्वघृतमभ्यञ्जने हितम् ॥ १४३ ॥
पद्मकं त्वक्समधुकं शारिवा चेति तैर्घृतम्।
सिद्धं समधु शुक्तं स्यात्सेकाभ्यङ्गः कफोत्तरे ॥ १४४ ॥

कफाधिक वातरक्तमें भारीपन, सूजन और खुजली होय तो गोमूत्र, क्षार और मद्य मिलाकर पकायाहुआ घृत मालिश करना चाहिये। अथवा पद्मकाष्ठ, दालचीनी, मुलैठी, शारिवा इन सबका कल्क और ईखके रसका सिरका मिलाकर सिद्ध किया घृत सेचन और लेपन करनेसे कफप्रधान वातरक्तकी खुजली और सूजन आदि दूर होती है। कोई इस घृतमें सिरकेके साथ शहदका डालना भी कहते हैं४३-४४॥

क्षीरं तैलं गवां मूत्रं जलञ्च कटुकैः शृतम्।
परिषेकाः प्रशस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥ १४५ ॥
लेपः सर्षपनिम्बार्कहिंस्राक्षीरतिलैर्हितः।
श्रेष्ठः सिद्धः कपित्थत्वग्घृतक्षीरैः ससक्तुभिः ॥ १४६ ॥

दूध, तेल, गोमूत्र और जलको त्रिकुटेके चूर्णसे सिद्धकर कफाधिक वातरक्तमें सेचन करना चाहिये। सफेद सरसों,नीमकी छाल,आककी जडकी छाल,हींसकी जडकी छाल, दूध और तिल इन सबको मिलाकर लेप करना अथवा कैथका गूदा,दालचीनी, घी दूध और सत्तू मिलाकर लेप करना कफाधिक वातरक्तमें हितकारी है४५॥४६॥

वातकफाधिक वातरक्तका यत्न।

द्वे हरिद्रे वचागौरधूमकुष्ठशताह्विकाः।
प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥ १४७ ॥
तगरं त्वक्शताह्वैला कुष्ठं मुस्तं हरेणुका।

दारु व्याघ्रनखं चाम्लपिष्टं वातकफार्तिनुत् ॥ १४८ ॥

कफवाताधिक वातरक्तमें हल्दी, दारुहल्दी, वच, सफेद सरसों, घरका धूम, कूठ और सौंफको मिलाकर लेप करना हितकारी है। अथवा तगर, दालचीनी, सौंफ, इलायची, कूठ, नागरमोथा, रेणुका, देवदारु और व्याघ्रनखीको कांजी अथवा सिरकेमें मिलाकर लेप करनेसे वातकफाधिक वातरक्तकी पीडा दूर होती है १४७॥१४८

मधुशिग्रोर्हितं तद्वद्बीजं धान्याम्लसंयुतम् ।

मुहूर्त्तं लिप्तमम्लैश्च सिञ्चेद्वातकफोत्तरे ॥ १४९ ॥

मीठे सुहांजनके बीज, धानोंकी कांजीमें पीसकर लेप करे। दो घडीके अनन्तर गरम कांजीसे सेचन करे तो कफवाताधिक वातरक्तकी पीडा शान्त होती है ॥ १४९ ॥

त्रिदोषज वातरक्तमें यत्न ।

त्रिफलाव्योषपत्रैलास्त्वक्क्षीरं चित्रकं वचाम् ।

विडङ्गं पिप्पलीमूलं लोमशं वृषकत्वचम् ॥ १५० ॥

ऋद्धिं तामलकीं चव्यं समभागानि पेषयेत् ।

कल्कं लिप्तमयस्पात्रे मध्याह्ने भक्षयेत्ततः ॥ १५१ ॥

वर्जयेद्दधिशुक्तानि क्षारं वैरोधकानि च ।

वातास्रे सर्वदोषेऽपि हितं शूलार्दिते परम् ॥ १५२ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, पत्रज, इलायची, वंशलोचन, चित्रक, वायविडंग, वच, पीप॰लामूल, जटामांसी, अडूसा, दालचीनी, ऋद्धि, भूमिआंवला और चव्य इन सबको सम भाग लेकर बारीक पीसले। इस कल्कको जलके संयोगसे लोहके पात्रमें लेप करे। लेप सूखनेपर मध्याह्नमें इस पात्रमेंसे उस औषधको निकालकर मात्रानुसार खावे तथा दही, सिरका, क्षार और विरुद्ध भोजनका त्याग रक्खे तो सर्वदोषजनित वातरक्तकी पीडा भी शान्त होती है ॥ १५०–१५२ ॥

बुद्ध्वा स्थानविशेषांश्च दोषाणाञ्च बलाबलम् ।

चिकित्सितमिदं कुर्य्यादूहापोहविकल्पवित् ॥ १५३॥

दोषोंके स्थानविशेष, बलाबल और विकलपको तर्कवितर्कद्वारा निश्चय करके उनके अनुसार ही औषधियोंका घटाव बढाव आदि करताहुआ बुद्धिमान् वैद्य चिकित्सा करे॥

कुपिते मार्गसंरोधान्मेदसो वा कफस्य वा ।

अतिवृद्ध्यानिलेनादौ शस्तं स्नेहनबृंहणम् ॥ १५४ ॥

व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपानैर्विरेचनैः।
तक्राभयाप्रयोगैश्च क्षपयेत्कफमेदसी ॥ १५५ ॥

यदि मेद अथवा कफद्वारा मार्ग रुकजानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर बढजाय तो पहिले स्नेहन और बृंहण क्रिया करना हितकारी नहीं इसलिये ऐसे समय पहिले कफ और मेदको क्षीण करना हितकारक है उस कफ और मेदके क्षय करनेके लिये व्यायाम, शोधन, अरिष्ट और गोमूत्रका प्रयोग करना तथा विरेचन कराना तक्र तथा हरडका प्रयोग करना हितकारक होता है ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

बोधिवृक्षकषायं तु पिबेत्तं मधुना सह।
वातरक्तं जयत्याशु त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ १५६ ॥

बोधिवृक्ष (पीपल) के छिलकेका क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे त्रिदोषज दारुण वातरक्तकी शीघ्र शान्ति होती है ॥ १५६ ॥

पुराणयवगोधूममध्वरिष्टासवैस्तथा।
शिलाजतुप्रयोगैश्च गुग्गुलोर्माक्षिकस्य च ॥ १५७ ॥

पुराने यव, गेहूं, शीधु, अरिष्ट, आसव तथा शिलाजीत, गूगुल और शहदका प्रयोग करनेसे कफ मेदकी शान्ति होती है तथा त्रिदोषज वातरक्त भी शान्त होता है १५७

पश्चाद्वाते क्रियां कुर्य्याद्वातरक्तप्रसादनीम्।
गम्भीरे रक्तमाक्रान्तं स्याच्चेद्वा तद्विवर्जयेत् ॥ १५८ ॥

जब कफ और मेद शान्त होजाय तो वातरक्तनाशक स्नेहादिकी क्रिया करना हितकारक होता है। गंभीरवातरक्तमें यदि वायुद्वारा रक्त अत्यंत आक्रान्त होजाय तो उस रोगीको त्याग देना चाहिये ॥ १५८ ॥

रक्तपित्तातिवृद्ध्या तु पाकमाशु नियच्छति।
भिन्नं स्रवति वा रक्तं विदग्धं पूयमेव वा ॥ १५९ ॥
तयोः क्रिया विधातव्या व्यधशोधनरोपणैः।
कुर्य्यादुपद्रवाणाञ्च क्रियां स्वात्स्वाचिकित्सितात् ॥ १६० ॥

रक्तपित्तकी अत्यंत वृद्धि होनेसे वातरक्त शीघ्र पाकको प्राप्त होजाता है उस समय त्वचा फटकर विदग्ध रक्त तथा राध निकलने लगती है। ऐसे समय पाक और स्रावकी शान्तिके लिये व्यधन, शोधन और रोपण क्रिया करना हितकारी है। और वातरक्तमें जो उपद्रव होते हैं उनकी उपद्रवानुसार स्वतन्त्र चिकित्सा करना चाहिये॥

अध्यायका उपसंहार।

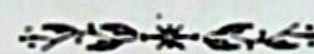
तत्र श्लोकाः—हेतुस्थानानि मूलञ्च यस्मात्प्रायश्च सन्धिषु ।
कुप्यति प्राक् च तद्रूपं द्विविधस्य च लक्षणम् ॥ १६१ ॥
पृथग्भिन्नस्य लिङ्गञ्च दोषाधिक्यमुपद्रवाः ।
साध्यं याप्यमसाध्यञ्च क्रिया साध्यस्य चाखिला ॥ १६२ ॥
वातरक्तस्य निर्दिष्टाः समासव्यासतस्तथा ।
महर्षिणाग्निवेशाय तथैवावस्थिकी क्रिया ॥ १६३ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने वातरक्तचिकित्सितं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं कि—इस वातरक्त चिकित्सितनामक अध्यायमें वातरक्तके हेतु, स्थान, मूल, जिसलिये इसका कोप सन्धियोंमें होता है, पूर्वरूप, उत्तान और गम्भीर दो भेद, उनके लक्षण, विशेषरूपसे भिन्न २ लक्षण, दोषोंकी अधिकताके भेदसे उपद्रव, साध्य, याप्यसाध्य, असाध्य, क्रियासाध्य यह सब तथा समयानुसार अवस्थाभेदसे चिकित्सा महर्षि आत्रेयजीने संक्षेप और विस्तारसे अग्निवेशके प्रति वर्णन की है ॥ १६१-१६३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पाटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां वातरक्तचिकित्सितं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः।



अथातो योनिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम योनिव्यापत् चिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

दिव्यौषधिजलस्वादुधातुचित्रशिलावति ।
पुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुरसिद्धनिषेविते ॥ १ ॥
विहरन्तं तपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थदर्शिनम् ।
कृष्णात्रेयं जितात्मानमग्निवेशोऽथ पृष्टवान् ॥ २ ॥

दिव्य औषधियोंसे शीतल, मधुर जल, चित्र विचित्र धातु और शिलाओंसे शोभायमान तथा देवता, सिद्ध और ऋषियोंसे सेवन किये हुए पुण्यजनक हिमवान् पर्वतके पार्श्वमें तप, योगके वलसे तत्वज्ञान और परमार्थदर्शी विहार करतेहुए जितात्मा कृष्ण आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछने लगे ॥ १ ॥ २ ॥

भगवन् ! यदपत्यानां मूलं नार्य्यः परं नृणाम् ।
तद्विघातो गदैश्चासां क्रियते योनिमाश्रितैः ॥ ३ ॥
तस्मात्तेषां समुत्पत्तिमुत्पन्नानाञ्च लक्षणम् ।
औषधं श्रोतुमिच्छामि प्रजानुग्रहकाम्यया ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! संपूर्ण मनुष्योंकी रति और सन्तानकी उत्पत्तिका मूलस्वरूप स्त्रियें ही हैं उन स्त्रियोंकी योनिमें रोगोंके उपस्थित होनेसे सन्तान आदि सुखका भी निघात होता है इसलिये उन योनियोंमें होनेवाली रोगोंकी उत्पत्ति और उत्पन्न हुए रोगोंके लक्षण और उनकी चिकित्सा प्रजागणके हितके लिये कृपाकर कथन कीजिये॥ ३॥४॥

इति शिष्येण पृष्टस्तु प्रोवाचर्षिवरोऽत्रिजः ।
विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ॥ ५ ॥
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ।
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥ ६ ॥

शिष्यके इस प्रकार पूछनेपर महर्षि आत्रेयजी कहने लगे कि–रोग संग्रह अर्थात् " सूत्रस्थानके अष्टोदरीय अध्यायमें " बीस प्रकारके योनिरोगोंका कथन कर आये हैं वह रोग स्त्रियोंके मिथ्या आहार विहारसे और मासिक ऋतुके दुष्ट होनेसे तथा बीजदोषसे और दैवसे उत्पन्न होते हैं । उन सबके पृथक् २ वर्णनको श्रवण करो ॥

वातदूषित योनिके लक्षण ।

वातलाहारचेष्टाया वातलायाः समीरणः ।
विवृद्धो योनिमाश्रित्य योनेस्तोदं सवेदनम् ॥ ७ ॥
स्तम्भं पिपीलिकासृप्तिमिव कर्कशतां तथा ।
करोति सुप्तिमायासं वातजांश्चापरान् गदान् ॥ ८ ॥
सा स्यात्सशब्दरुक्फेनतनुरूक्षार्त्तवानिलात् ॥ ९ ॥

वातप्रधान स्त्रीके वातकारक आहार और चेष्टादिकोंके सेवनसे वायु विकृत होकर योनिमें आश्रित हो पीडा, तोद, स्तम्भ, चीटियोंके चलनेकीसी सरसराहट, कर्कशता,

सुप्ति (शून्यता) तथा थकावट और वातजनित रोगोंको करती है। उस वातयुक्त योनिवाली स्त्रीको झागदार, शूल और शब्दयुक्त रूक्ष तथा थोडा २ मासिक रज आता है॥

दूषितपित्तयोनिके लक्षण।

व्यापत्तथाम्ललवणक्षाराद्यः पित्तजा भवेत्।
दाहपाकज्वरोष्णार्त्ता नीलपीतासितार्त्तवा।
भृशोष्णकुणपस्रावा योनिः स्यात्पित्तदूषिता ॥ १० ॥

उसी प्रकार पित्तप्रधान स्त्रीके खटाई, नमक और क्षार आदि उष्ण पदार्थोंके अत्यंत सेवनसे पित्तजनित योनिरोग उत्पन्न होता है। पित्तजनित योनिरोगमें-दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, नील, पीत और असितवर्णका मासिक ऋतु आता है तथा मासिक ऋतुका स्राव-गर्म और मुर्देकी सी गंधवाला होता है यह पित्तदूषित योनिके लक्षण है॥१०॥

कफदूषितयोनिके लक्षण।

कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धो योनिञ्चेद् दूषयेत्स्त्रियाः।
सशीतां पिच्छिलां कुर्य्यात्कण्डूग्रस्ताल्पवेदनाम्।
पाण्डुवर्णां तथा पाण्डुपिच्छिलार्त्तववाहिनीम् ॥ ११ ॥

कफप्रधान स्त्रियोंके शरीरमें कफकारक और अभिष्यन्दी पदार्थोंके सेवनसे कफ अत्यंत बढकर योनिको अत्यंत दूषित कर देती है। फिर उससे योनि किंचित् शीतल पिच्छिल खुजलीयुक्त होती है तथा मन्दमन्द पीडा और पाण्डुवर्णयुक्त होजाती है उस योनिसे पाण्डुवर्ण और पिच्छिल मासिकरज आता है॥ ११ ॥

त्रिदोषदूषितयोनिके लक्षण।

समश्नतया रसान्सर्वान्दूषयित्वा त्रयो मलाः ॥ १२ ॥
योनिगर्भाशयस्थाः स्वैर्योनिं युञ्जन्ति लक्षणैः।
सा भवेद्दाहशूलार्त्ता श्वेतपिच्छिलवाहिनी ॥ १३ ॥

स्त्रियोंके त्रिदोषकारक आहार विहारके सेवन करनेसे तीनों दोष कुपित होकर उनकी योनि और गर्भाशयमें प्राप्त हो अपने लक्षणोंयुक्त योनिरोगको उत्पन्न करते हैं जिससे योनि दाह और शूलसे पीडित होजाती है तथा उसमेंसे सफेद और पिच्छिल स्राव होने लगता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

रक्तपित्तदूषितयोनिके लक्षण।

रक्तपित्तकरैर्नार्य्या रक्तं पित्तेन दूषितम्।
अतिप्रवर्त्तते योन्यां लब्धे बीजेऽपि साऽप्रजा ॥ १४ ॥

स्त्रियोंको रक्तपित्तकर्त्ता पदार्थोंके सेवन करनेसे रक्तपित्तदूषित योनिरोग होता है उससे योनिद्वारा रक्तका अत्यंत स्राव होने लगता है रक्तपित्तदूषित योनिवाली स्त्री यदि बीजको ग्रहणकर भी लेवे तो भी गर्भ नहीं रहसकता अर्थात् स्राव ही होजाताहै। कोई ऐसा मानतेहैं कि इस स्त्रीको गर्भ होजानेपर भी ऋतुस्राव बन्द नहीं होता इससे बहु संतानवाली नहीं होती ॥ १४ ॥

अरजस्का योनि।

योनिगर्भाशयस्थं चेत्पित्तं संदूषयेदसृक्।
साऽरजस्का मता कार्श्यवैवर्ण्यजननी भृशम् ॥ १५ ॥

यदि योनि और गर्भाशयस्थ पित्त आर्तवको दूषित करे तो उस योनिको अरजस्का कहते हैं। क्योंकि इस योनिसे रजका स्राव नहीं होता। इस योनिवाली स्त्री विवर्णतायुक्त और अत्यंत कृश होजातीहै ॥ १५ ॥

अचरणा योनि।

योन्यामधावनात्कण्डूं जाताः कुर्वन्ति जन्तवः।
सा स्यादचरणा कण्ड्वा तयातिनरकाङ्क्षिणी ॥ १६ ॥

योनिको न धोनेसे योनिमें सूक्ष्म कीडे उत्पन्न होकर खुजलीको करते हैं। उस अत्यंत खाजके होनेसे स्त्रीको हरसमय पुरुषके संभोग करनेकी अत्यंत पीडा होती है॥

अतिचरणा योनि।

पवनोऽतिव्यवायेन शोफसुप्तिरुजः स्त्रियाः।
करोति कुपितो योनौ सा चातिचरणा मता ॥ १७ ॥

अत्यंत मैथुनके करनेसे वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनिमें सूजन सुप्ति और पीडाको उत्पन्न करती है उस योनिको अतिचरणा कहते हैं ॥ १७ ॥

प्राक्चरणा योनि।

मैथुनाद्तिबालायाः पृष्ठजङ्घोरुवंक्षणम्।
रुजयन्दूषयेद्योनिं वायुः प्राक्चरणा हि सा ॥ १८ ॥

अति छोटी अवस्थामें स्त्री यदि मैथुन करे तो उसके वायु कुपित हो पीठ, कमर, ऊरू और वंक्षणमें पीडा उत्पन्न कर योनिको दूषित कर देती है। इसको प्राक्चरणा योनि कहते हैं ॥ १८ ॥

उपप्लुता योनि।

गर्भिण्याः श्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दिश्वासविनिग्रहात्।
वायुः क्रुद्धः कफं योनिमुपनीय प्रदूषयेत् ॥ १९ ॥

पाण्डुं सतोदमास्रावं श्वेतं स्रवति वा कफम् ।
कफवातामयव्याप्ता सा स्याद्योनिरुपप्लुता ॥ २० ॥

यदि गर्भवती स्त्री अत्यन्त कफकारी पदार्थोंका सेवन करे तथा वमन और श्वासके वेगको रोक लेवे तो उस वमन और श्वासके रोकनेसे कुपित हुआ वायु बढे हुए कफको योनिमें लेजाकर उसको दूषित करदेता है उससे गर्भकी अवस्थामेंही पाण्डुवर्ण, तोदयुक्त, सफेद वर्णका स्राव योनिद्वारा होने लगता है। अथवा केवल कफका ही स्राव होता है। इस प्रकार वात और कफकी पीडासे व्याकुल योनिको उपप्लुता कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

परिप्लुता योनि।

पित्तलाया नृसंवासे क्षवथूद्गारधारणात् ।
पित्तसंमूर्च्छितो वायुर्योनिं दूषयति स्त्रियाः ॥ २१ ॥
शूना स्पर्शाक्षमा सार्त्तिर्नीलपीतमसृक् स्रवेत् ।
श्रोणिवंक्षणपृष्ठार्त्तिज्वरार्त्तायाः परिप्लुता ॥ २२ ॥

पित्तप्रधान प्रकृतिवाली स्त्री यदि मैथुनके समय हिचकी और डकारके वेगको रोक लेवे तो उसके शरीरमें पित्तयुक्त वायु कुपित होकर योनिको दूषित कर देता है, उससे योनिमें सूजन, स्पर्शका न सहना और पीडा यह लक्षण होते हैं, तथा नीले और पीले वर्णका रक्तस्राव होता है और उस स्त्रीके नितम्ब वंक्षण और पीठमें पीडा उत्पन्न होजाती है और ज्वर भी होता है। इन लक्षणोंवाली योनिको परिप्लुता योनि कहते हैं २१॥२२

उदावृता योनि।

वेगोदावर्त्तनाद्योनिमुदावर्त्तयतेऽनिलः ।
सा रुगार्त्ता रजः कृच्छ्रेणोदावृत्तं विमुञ्चति ॥ २३ ॥
आर्त्तवे सा विमुक्ते तु तत्क्षणं लभते सुखम् ।
रजसो गमनादूर्द्ध्वं ज्ञेयोदावर्त्तिनी बुधैः ॥ २४ ॥

अधोवेगोंके रोक लेनेसे कुपित हुआ वायु योनिका वेग ऊपरकी ओर कर देता है वह योनि बडे कष्टके साथ थोडेसे रुधिरको त्याग करती है और योनिमें अत्यंत शूल होता है उसको उदावृता योनि कहते हैं। उदावृता योनिसे मासिक ऋतुका रज निकल चुकनेपर उसको शान्ति प्राप्त होती है। मासिक रजका वेग ऊपरकी ओर होनेसे उसको बुद्धिमान् उदावर्तिनी योनि कहते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

कर्णिनी योनि।

अकाले वाहमानाया गर्भेण पिहितोऽनिलः ।

कर्णिकां जनयेद्योनौ श्लेष्मरक्तेन मूर्च्छितः ।
रक्तमार्गावरोधिन्या सा तया कार्णिनी मता ॥ २५ ॥

छोटी अवस्थामें अथवा बेसमय गर्भ धारण करनेसे गर्भद्वारा पीडित हुआ वायु योनिमें कर्णिका उत्पन्न कर देता है। यह कर्णिका कफ और रक्तसे संसृष्ट होती है और रक्तके मार्गको रोकनेवाली होती है। इस योनिको कर्णिनी कहते हैं॥ २५ ॥

पुत्रघ्नी योनि ।

रौक्ष्याद्वायुर्यदा गर्भं जातं जातं विनाशयेत् ।
दुष्टशोणितजं नार्य्याः पुत्रघ्नी नाम सा मता ॥ २६ ॥

जिस स्त्रीके दूषित रजसे उत्पन्न हुए गर्भको रूक्षतासे कुपितहुआ वायु नष्ट करदे और जबजब गर्भ उत्पन्न हो तब ऐसेही नष्ट कर दिया करे तो उस स्त्रीकी योनिको पुत्रघ्नी योनि कहते हैं ॥ २६ ॥

अंतर्मुखीयोनिके लक्षण ।

व्यवायमतितृप्ताया भजन्त्यास्त्वन्न पीडितः ।
वायुर्मिथ्यास्थिताङ्गाया योनिस्रोतसि संस्थितः ॥ २७ ॥
वक्रयत्याननं योन्याः सास्थिमांसानिलार्त्तिभिः ॥ २८ ॥
भृशार्तिमैथुनासक्ता योनिरन्तर्मुखी मता ॥ २९ ॥

अत्यंत भोजनके अनन्तर यदि मूर्खतापूर्वक विकृतरूपसे शयनकर मैथुन करावे तो योनिके बीचमें रहनेवाला वायु योनिके मुखको टेढा कर देता है। तब योनिके अस्थि और मांसमें वायुकी पीडा और योनिमें भी अत्यंत पीडा करता है। फिर वह स्त्री मैथुन करनेमें असमर्थ होजाती है। इस योनिको अंतर्मुखी योनि कहते हैं२७–२९

सूचीमुखी ।

गर्भस्थायाः स्त्रिया रौक्ष्याद्वायुर्योनिं प्रदूषयन् ।
मातृदोषादणुद्वारां कुर्य्यात्सूचीमुखी तु सा ॥ ३० ॥

माताके दोषसे रूक्ष वायु गर्भमें स्थित कन्याकी योनिको दूषित कर देता है। उससे उस कन्याकी योनि बहुत सूक्ष्म छिद्रवाली होती है उस योनिको सूचीमुखी योनि कहतेहैं॥

शुष्का योनि ।

व्यवायकाले रुन्धन्त्या वेगात्प्रकुपितोऽनिलः ।
कुर्य्याद्विण्मूत्रसङ्गार्त्तिं शोषं योनिमुखस्य च ३१ ॥

मैथुनके समय जो स्त्री मलमूत्रोंके वेगोंको रोकलेती है उससे कुपित हुआ वायु योनिको सूखी बना देता है। इस योनिको शुष्का योनि कहते हैं ॥ ३१ ॥

वामिनी।

षडहात्सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयं गतम्।
सरुजं नीरुजं वापि या स्रवेत्सा च वामिनी ॥ ३२ ॥

जिस स्त्रीकी योनि गर्भाशयमें प्राप्तहुए वीर्यको पीडाके साथ अथवा विना ही पीडासे छः या सात दिनके बाद निकाल डाले उसको वामिनी योनि कहते हैं ॥ ३२ ॥

षण्डीके लक्षण।

बीजदोषात्तु गर्भस्था मारुतोपहताशया।
नृद्वेषिण्यस्तनी चैव षण्डी स्यादनुपक्रमा ॥ ३३ ॥

वीर्यके दोषके कारण वायु गर्भमें स्थितहुई कन्याके गर्भाशयको हनन कर देता है। वह कन्या स्तन रहित और योनि रहित तथा पुरुषसे द्वेष करनेवाली होती है इस स्त्रीको षण्डी कहते हैं। यह असाध्य होती है अर्थात् उसकी कोई चिकित्सा नहीं ॥ ३३ ॥

महायोनिके लक्षण।

विषमाद्दुःखशय्यायां मैथुनात्कुपितोऽनिलः।
गर्भाशयस्य योन्याश्च मुखं विष्टम्भयेत्स्त्रियाः ॥ ३४ ॥
असंवृतमुखी सार्त्ती रूक्षफेनास्रवाहिनी।
मांसोत्सन्ना महायोनिः पर्ववंक्षणशूलिनी ॥ ३५ ॥

विकृत शय्यापर शयन करके मैथुन करनेसे वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनिके मुखको विष्टब्ध कर देता है जिससे योनिका मुख खुलासा रहजाता है। इससे झागदार मासिक ऋतुका स्राव होता है और योनिका अन्तर्वर्ती मांस उन्नत रहता है स्त्रीके संधि और पेंडूमें शूल रहता है। इस योनिको महायोनि कहते हैं ॥३४॥३५॥

इत्येतैर्लक्षणैः प्रोक्ता विंशतिर्योनिजा गदाः।
न शुक्रं धारयत्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रुता ॥ ३६ ॥
तस्माद्गर्भं न गृह्णाति स्त्री गच्छत्यामयान्बहून्।
गुल्मार्शःप्रदरादींश्च वाताद्यैश्चातिपीडनम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार इन लक्षणोंसे बीस प्रकारके योनिरोग होते हैं। इन रोगोंसे बिगडी हुई योनि वीर्यको धारण नहीं कर सकती। इसलिये इन बीस प्रकारके योनिरोगोंवाली स्त्रियें गर्भको धारण न करके गुल्म, बवासीर और प्रदरादिक तथा वातजनित बहुतसे रोगोंसे पीडित रहती हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

आसां षोडश यास्तासामाद्ये द्वे पित्तदोषजे।
परिप्लुता वामिनी च वातपित्तात्मिके मते ॥ ३८ ॥

कर्णिन्युपप्लुते वातकफाच्छेषास्तु वातजाः ।
देहं वातादयस्तासां तैर्लिङ्गैः पीडयन्ति हि ॥ ३९ ॥

इन बीस प्रकारके योनिरोगोंमें चार पहिलेके साधारण छोडकर बाकी सोलह योनिरोगोंमें रक्तपित्तज योनि और अरजस्का यह दो योनिरोग पित्तज होते हैं । परिप्लुता और वामिनी योनि वातपित्तात्मक होती है । कर्णिनी और उपप्लुता वातकफात्मक होती है । इनके सिवाय अचरणा, अतिचरणा, प्राकचरणा, उदावर्त्तिनी, पुत्रघ्नी, अंतर्मुखी, सूचीमुखी, शुष्का, षंडी और महायोनि यह सब वातात्मिका होती हैं । इनमें वातादि दोष अपने २ लक्षणोंसे शरीरको पीडित करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वातज योनिरोगोंकी चिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदबस्त्यादिवातलास्वनिलापहम् ।
कारयेद्रक्तपित्तघ्नं शीतं पित्तकृतासु च ॥ ४० ॥
श्लेष्मलासु च रूक्षोष्णं कर्म कुर्य्याद्विचक्षणः ।
सान्निपाते विमिश्रन्तु संसृष्टासु च कारयेत् ॥ ४१ ॥

वातजनित योनिरोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, वस्तिकर्म आदि वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । और पित्तजनित योनिरोगोंमें रक्तपित्तनाशक शीतल क्रिया करनी चाहिये और कफजनित योनिरोगोंमें रूक्ष और उष्ण क्रिया करना हितकारक है तथा चतुर वैद्य त्रिदोषज और द्वन्द्वज योनिरोगोंमें दोषानुसार मिलीजुली चिकित्सा करे४०॥४१

स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेत्पुनः ।
पाणिना नामयेज्जिह्मां संवृतां वर्धयेत्पुनः ॥ ४२ ॥
प्रवेशयेन्निःसृताञ्च विवृतां परिवर्त्तयेत् ।
योनिः स्थानापवृत्ता हि शल्यभूता स्त्रिया मता ॥ ४३ ॥

वातज योनिरोगोंमें योनिको स्नेहन और स्वेदन करके यदि वह विषमस्थ हो तो उसको ठीक स्थानमें स्थापित करदेना चाहिये । टेढी योनिको हाथसे नँवाकर सीधी करदेना चाहिये। संकीर्ण योनिको यथोचित विवृत करदेवे। बाहर निकली हुई योनिको भीतरकी ओर करदेवे। विवृत योनिको यथोचित रीतिपर समवृत्त करदेना चाहिये । क्योंकि अपने स्थानसे पतितहुई योनि स्त्रियोंको शल्यकी समान दुःखदाई होतीहै४२-४३

सर्वां व्यापन्नयोनिन्तु कर्मभिर्वमनादिभिः ।
मृदुभिः पञ्चभिर्नारीं स्निग्धस्विन्नामुपाचरेत् ॥ ४४ ॥

सर्वतः सुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते ।
वातव्याधिहरं कर्म वातार्त्तानां सदा हितम् ॥ ४५ ॥

सब प्रकार व्यापन्नयोनियोंमें प्रथम स्नेहन और स्वेदन करके वमनादि पंचकर्मोंको मृदुरीतिसे प्रयुक्त करे । जब स्त्री सब प्रकार शुद्ध होजाय तो बाकी रहे कर्मको विधिवत् करना चाहिये । अर्थात् योनि विकृत हो तो उसको उचित रीतिपर ठीक करदेना चाहिये । यदि योनि वायुसे व्यापन्न हो तो वातनाशक क्रिया करना चाहिये ४४॥४५

औदकानूपजैर्मांसैः क्षीरैः सतिलतण्डुलैः ।
सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् ॥ ४६ ॥
युक्तां लवणतैलेन साश्मप्रस्तरसङ्करैः ।
स्विन्नां कोष्णाम्बुसिक्ताङ्गीं वातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ॥ ४७ ॥

वातजनित योनिरोगमें जलज और आनूप जीवोंके मांस, दूध, तिल, चावल और वातनाशक औषधियें इन सबको मिलाकर नाडीस्वेद और कुम्भीस्वेद करना चाहिये । तथा ऐसी स्त्रीको नमक और तैलके योगसे अश्मघनस्वेद, प्रस्तरस्वेद और संकरस्वेदके प्रयोगद्वारा स्वेदन करे, फिर गर्म जलके साथ सेचन करे और गर्म जलसे स्नान करा वातनाशक मांसरसोंके साथ भोजन करावे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

बलादितैल या घृत ।

बलाद्रोणद्वयक्वाथे घृततैलाढकं पचेत् ।
स्थिरापयस्याजीवन्तीवीरर्षभकजीवकैः ॥ ४८ ॥
श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमाषाख्यपर्णिभिः ।
शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभिरेव च ॥ ४९ ॥
पिष्टैश्चतुर्गुणक्षीरसिद्धं पेयं यथाबलम् ।
वातपित्तकृतान् रोगान् हत्वा गर्भं दधाति तत् ॥ ५० ॥

बलाका क्वाथ दो द्रोण लेकर इस क्वाथमें एक आढक घृत अथवा तेल मिलावे और नीचे लिखी हुई शालपर्ण्यादि औषधियोंका कल्क मिलावे । जैसे शालपर्णी, वयस्या (दुग्धिका या क्षीरविदारी), जीवन्ती, काकोली, ऋषभक, जीवक, गोरखमुण्डी, पीपलामूल, पीलुपर्णी, माषपर्णी, खांड, क्षीरकाकोली और काकनासा । यह प्रत्येक एक एक पल लेकर कल्क बनावे । यह कल्क और चार आढक दूध उपरोक्त घृत और क्वाथमें मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर या तैल हो तो तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । यह घृत मात्रानुसार पीनेसे वात और पित्तजनित योनि-

रोग दूर होकर स्त्री गर्भको धारण करती है। यदि उन्हीं औषधियोंसे तैल सिद्ध किया हो तो उसको वस्तिकर्म, अभ्यंग, नस्य और पीनेमें प्रयुक्त करना चाहिये॥

काश्मर्य्यादि घृत।

काश्मर्य्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूषकैः।
पुनर्नवाहरिद्राभ्यां काकनासासहाचरैः॥ ५१॥
शतावर्य्या गुडूच्याश्च प्रस्थमक्षसमैर्घृतात्।
साधितं योनिवातघ्नं गर्भदं परमं पिबेत्॥ ५२॥

कुम्भेर, त्रिफला, द्राक्षा, कसौंदीकी जडका छिलका, फालसे, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, काकनासा, काला वांसा, शतावर और गिलोय इन सबको एक एक तोला लेकर कल्क बनावे। घी एक सेर, दूध चार सेर, पानी चार सेर इन सबको मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस घृतको पीनेसे संपूर्ण वातजनित योनिरोग दूर होकर स्त्री गर्भको धारण करती है॥ ५१॥ ५२॥

पिप्पल्यादि कल्क।

पिप्पल्यः कुश्चिकाजाजी वृषकं सैन्धवं वचाम्।
यवक्षाराजमोदे च शर्करां चित्रकं तथा॥ ५३॥
पिष्ट्वा सर्पिषि भृष्टानि पाययेत प्रसन्नया।
योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये॥ ५४॥

पीपल, कलौंजी, कालाजीरा, वांसा, सेंधानमक, वच, जवाखार, अजमोद, खांड और चित्रक इन सबके कल्कको घीमें भूनकर प्रसन्नाके साथ पीवे तो योनिशूल, पार्श्वशूल, हृच्छूल, गुल्म और बवासीर यह सब नष्ट होते हैं॥ ५३॥ ५४॥

वृषकादि योग।

वृषकं मातुलुङ्गस्य मूलानि मदयन्तिकाम्।
पिबेत्सलवणैर्मद्यैः पिप्पलीकुश्चिके तथा॥ ५५॥

अडूसेकी जडका छिलका, बिजौरेकी जड, मालतीके पत्र इन सबको पीसकर सेंधानमक और मद्यके साथ पीवे अथवा पीपल और कलौंजीके चूर्णको सेंधानमक और मद्यके साथ पीवे तो वातजनित योनिशूल दूर होता है॥ ५५॥

श्वदंष्ट्रावृषकं रास्नां पिबेच्छूले पयः शृतम्।
गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचयेत्॥ ५६॥

गोखुरू, बांसेकी जड और रास्नासे सिद्ध कियेहुए दूधको पीनेसे वातजनित योनि-

शूल दूर होता है । तथा गिलोय त्रिफला और दन्तीके क्वाथसे योनिको सेचन करे तो योनिशूल दूर होता है ॥ ५६ ॥

सैन्धवं तगरं कुष्ठं बृहती देवदारु च ।
समांशैः साधितं कल्कैस्तैलं धार्य्यं रुजापहम् ॥ ५७ ॥

सेंधानमक, तगर, कूठ, बडी कटेली और देवदारु इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे । इस कल्कसे सिद्ध कियेहुए तैलमें भिगोयाहुआ रुईका फोहा योनिमें रक्खे तो वातजनित योनिशूल दूर होता है ॥ ५७ ॥

गुडूचीमालतीरास्नाबलामधुकचित्रकैः ।
निदिग्धिकादेवदारुयूथिकाभिश्च कार्षिकैः ॥ ५८ ॥
तैलप्रस्थं गवां मूत्रे क्षीरे च द्विगुणे पचेत् ।
वातार्त्तानाञ्च योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ५९ ॥

गिलोय, मालतीके पत्र, रासना, बला, मुलैठी, चित्रक, कटेली, देवदारु, जूहीके फूल इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । तेल एक प्रस्थ, गोमूत्र दो प्रस्थ और दूध दो प्रस्थ मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस तेलमें भिगोयाहुआ फोहा योनिमें रखनेसे वातजनित योनिपीडा दूर होती है ॥

वातार्त्तायाः पिचुं दद्याद्योनौ च प्रणयेत्सदा ।
हिंस्राकल्कन्तु वातार्त्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत् ॥ ६० ॥

हींसकी जडके कल्कको घृतमें पीसकर गर्म करे फिर योनिको वातनाशक तैलद्वारा स्निग्ध कर उसमें हींसकी जडके कल्कमें भिंगोयाहुआ फोहा धारण करे तो वातजनित योनिपीडा दूर होती है ॥ ६० ॥

पित्तजयोनिरोगोंकी चिकित्सा।

पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफातुरा ।
पित्तलानान्तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ६१ ॥

पित्तज योनिरोगोंमें वड, पीपल, गूलर, पिलखन और वेतसके छिलकोंका कल्क और कफका संसर्ग हो तो शारिवाकी जड आदिका कल्क योनिमें धारण करना चाहिये । पित्तजनित योनिरोगोंमें योनिका सेचन, अभ्यंग और पिचु (फोहा) धारण करना हितकारक होता है ॥ ६१ ॥

शीताः पित्तहरा कार्य्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ।
पित्तघ्नौषधसिद्धानि कार्य्याणि भिषजा तथा ॥ ६२ ॥

तथा शीतल, पित्तनाशक क्रिया करना चाहिये और स्नेहनके लिये पित्तनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६२ ॥

बृहद् शतावरी घृत।

शतावरीमूलतुलाश्चतस्रः संप्रपीडयेत्।
रसेन क्षीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम् ॥ ६३ ॥
जीवनीयैः शतावर्य्या मृद्वीकाभिः परूषकैः।
पियालैश्चाक्षकैः पिष्टैर्द्वियष्टिमधुकैः पचेत् ॥ ६४ ॥
सिद्धे शीते च मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्टकम्।
सितादशपलोन्मिश्राल्लिह्यात्पाणितलं ततः।
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनञ्च तत् ॥ ६५ ॥
क्षतं क्षयं रक्तपित्तं कासं श्वासं हलीमकम्।
कामलां वातरक्तञ्च वीसर्पं हृच्छिरोग्रहम्।
उन्मादायांससंन्यासं वातपित्तात्मकं जयेत् ॥ ६६ ॥

शतावरकी बीस सेर जडोंको कूटकर उसका रस निचोड लेवे। यह रस और रसके समान दूध तथा चार सेर घृत मिलाकर पकावे और इसमें नीचे लिखेहुए द्रव्योंका कल्क मिलावे। जैसे–जीवनीयगणकी दशऔषधियें, शतावर, मुनक्का, फालसे, चिरोंजी, मुलैठी और जलज मुलैठी इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे। यह कल्क भी उपरोक्त घृतमें मिलावे और पकावे। जब पकते पकते घृतमात्र शेष रहे तो उतारकर छानले जब वह घृत शीतल होजाय तो इसमें आठ पल शहद आठ पल पीपलका चूर्ण और आठ पल मिसरी मिला किसी उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे। इसमेंसे दो तोला प्रमाण नित्य खाया करे तो योनिविकार, रक्तविकार, शुक्रविकार दूर होते हैं यह घृत वीर्यवर्द्धक और सन्तानको देनेवाला है तथा क्षत, क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, मस्तकपीडा, उन्माद, श्रम, संन्यास और वातपित्तात्मक रोगोंको नष्ट करता है ॥ ६३–६६ ॥

एवमेव क्षीरसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम्।
गर्भदं पित्तलानाञ्च योनीनां स्याद्भिषक्जितम् ॥ ६७ ॥

इसी प्रकार जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ दूध और घृत अथवा

---

१ आयाम अभ्यन्तरायाम और बाह्यायाम।

दूधसे निकाला हुआ घृत जीवनीयगणके साथ सिद्धकर पीनेसे पित्तजनित योनिरोग दूर होकर स्त्री गर्भवती होजाती है ॥ ६७ ॥

कफजनित योनिरोगकी चिकित्सा ।

योन्याः श्लेष्मप्रदुष्टाया वर्तिः संशोधनी हिता ।
वाराहे बहुशः पित्ते भावितैर्नक्तकैः कृता ॥ ६८ ॥

कफजनित योनिरोगोंमें संशोधनीवर्त्तीका प्रयोग करना तथा सूअरके पित्तमें और करंजुके बीजोंके कल्कमें बारबार भिगोईहुई वर्त्तीका प्रयोग करना हितकारक है॥६८॥

भावितं पयसार्कस्य माषचूर्णं ससैन्धवम् ।
वर्तिः कृता मुहुर्धार्य्या ततः सेव्या सुखाम्बुना ॥ ६९ ॥

उडदोंके चूर्णको सेंधानमकयुक्त कर आकके दूधमें भावना दे और बत्ती बनावे इस वर्त्तीको योनिमें बारंबार धारण करे और बत्ती निकालनेके अनन्तर गर्मजलसे योनिको सेचन कर धोता रहे तो कफदूषित योनि शुद्ध होती है ॥ ६९ ॥

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।
वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्य्या योनिविशोधनी ॥ ७० ॥

पीपल,मिर्च,उडद,सौंफ,कूठ, सैंधानमक इन सबको समभाग लेकर छोटी अंगुलीके समान मोटी बत्ती बनावे।यह बत्ती योनिमें धारण करनेसे योनिको शोधन करती है॥७०॥

उदुम्बरशलाटूनां द्रोणमद्रोणसंयुतम् ।
सपञ्चवल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम् ॥ ७१ ॥
निशां स्थाप्य जले तस्मिंस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैः शाल्मलेन च ॥ ७२ ॥
पिष्टैः सिद्धश्च तत्तैलं पिचुं योनौ निधापयेत् ।
सशर्करैः कषायैश्च शीतैः कुर्वीत सेचनम् ॥ ७३ ॥
पिच्छिला विवृता कालदुष्टा योनिश्च दारुणा ।
सप्ताहाच्छुध्यति क्षिप्रमपत्यञ्चापि विन्दति ॥ ७४ ॥

गूलरके कच्चे फल और पंचवल्कल, पटोल, निंब और मालतीके पत्र यह सब मिलाकर एक द्रोण लेवे । इन सबको कूटकर एक द्रोण जलमें भिंगोवे । फिर प्रातःकाल मसलकर निचोड लेवे । इस निचोडे हुए रसमें धव, खैर, ढाक और सेंमलका गोंद तथा लाख मिलावे । और एक प्रस्थ तेल मिलाकर पकावे । जब सब पानी जलकर तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान लेवे । इस तेलमें रुईका फोहा भिंगोकर योनिमें रक्खे और उपरोक्त गूलर आदि ९ द्रव्योंके क्काथमें खांड मिलाकर शीतल

होनेपर योनिका सेचन करे। अर्थात् इस जलका योनिपर तरडा देवे तो पिच्छिला योनि, विवृता योनि, कालदुष्टा योनि और दारुणायोनि सात दिनमें शुद्ध होजाती हैं और वह स्त्री उत्तम संतानको उत्पन्न करती है ॥ ७१-७४ ॥

उदुम्बरस्य दुग्धेन षट्कृत्वो भावितांस्तिलान् ।
तैलं क्काथे च तस्यैव सिद्धं धार्य्यश्च पूर्ववत् ॥ ७५ ॥

गुलरके दूधमें तिलोंको छः भावना दकर सुखालेवे। फिर इन तिलोंका तेल निकालकर इस तेलको गूलरके कल्क और क्काथसे सिद्ध करे। इसमें भिगोकर फोहा योनिमें रखनेसे उपरोक्त पिच्छिलादि विकार दूर होते हैं ॥ ७५ ॥

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः ।
जम्ब्वाम्रमध्यकासीसलोध्रकट्फलतिन्दुकैः ॥ ७६ ॥
सौराष्ट्रिकादाडिमत्वगुदुम्बरशलाटुभिः ।
अक्षमात्रैरजामूत्रे क्षीरे च द्विगुणे पचेत् ॥ ७७ ॥
तैलप्रस्थं पिचुं तस्माद्योनौ च प्रणयेत्ततः ।
कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गस्नेहबास्तिश्च दापयेत् ॥ ७८ ॥
पिच्छिलस्राविणी योनिर्विप्लुतोपप्लुता तथा ।
उत्ताना चोन्नता शूना सिद्धेत्सस्फोटशूलिनी ॥ ७९ ॥

धावेके फूल, आँवले, पत्रज, स्रोतोज (काला सुरमा), मुलैठी, नीलकमल, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, हीराकसीस, लोध,कायफल, तिन्दुक, सोरठमिट्टी, अनारका छिलका, गूलरके कच्चे फल इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे। तेल एक प्रस्थ, बकरीका मूत्र दो प्रस्थ, बकरीका दूध दो प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तैलमें फोहा भिगोकर योनिमें रक्खे तथा कमर, पीठ और त्रिकस्थानमें इस तेलकी मालिश करे। उचित हो तो बस्तिकर्म भी करे इससे पिच्छिला, स्रावणी, विप्लुता, उपप्लुता, उत्ताना, उन्नता तथा सूजन, फोडे और शूल आदि युक्त योनिविकार शान्त होते हैं ॥ ७६-७९ ॥

करीरधवनिम्बार्कवेणुकोशाम्रजाम्बवैः ।
जिङ्गिनीवृषमूलानां क्काथैर्माद्वीकशीधुभिः ॥ ८० ॥
सशुक्तैर्धावनं मिश्रैर्योन्याः स्रावविनाशनम् ।
कुर्य्यात्सतक्रगोमूत्रशुक्तैर्वा त्रिफलारसैः ॥ ८१ ॥

करीर, धव, निम्ब, खैर, आक, बांस, कोशाम्र, जामुन, जीगन और अडूसा इनकी जडोंको लेकर क्वाथ करे इस क्वाथमें अंगूरोंकी मद्य शीधु और सिरका मिलाकर योनिको धोवे तो योनिका स्राव बन्द होता है अथवा छाछ, गोमूत्र और सिरका मिलाकर धोवे या केवल त्रिफलाके क्वाथसे ही धोवे तो योनिका स्राव दूर होता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

पिप्पल्ययोरजः पथ्या प्रयोगा मधुना हिताः ॥ ८२ ॥

पीपल लोहभस्म और हरडका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटे तो योनिस्राव दूर होता है॥

तीनों दोषोंमें क्रियाक्रम ।

श्लेष्मलायां कटुप्रायाः समूत्रा बस्तयो हिताः ।
पित्ते समधुरक्षीरा वाते तैलाम्लसंयुताः ॥
सन्निपातसमुत्थायाः कर्म्म साधारणं मतम् ॥ ८३ ॥

कफकी योनिस्रावमें कटुद्रव्योंसे युक्तकर गोमूत्रद्वारा वस्तिकर्म करना हितकारक है, पित्तजनित योनिविकारमें मधुरद्रव्योंसे युक्त दूध द्वारा वस्तिकर्म करना चाहिये और वातजनित योनिविकारमें तेल और अम्लद्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है और सन्निपातजनित योनिविकारोंमें सब प्रकारकी मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये॥८३

प्रदरकी चिकित्सा ।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धं समीक्ष्य च ।
ततः कुर्य्याद्यथादोषं रक्तस्थापनमौषधम् ॥ ८४ ॥

जिस योनिमें बराबर रक्तका स्राव होतारहे उसमें रक्तके वर्णको देखकर जिस दोषका अनुबंध हो उस दोषकी चिकित्सा करे और दोषानुसार रक्तको स्थापन करनेवाली औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८४ ॥

वातप्रदरका यत्न ।

तिलचूर्णं दधि घृतं फाणितं सौकरी वसा ।
क्षौद्रेण संयुतं पेयं वातासृग्दरनाशनम् ॥ ८५ ॥

तिलोंका चूर्ण, दही, घृत, फाणित और सुअरकी चर्बी, शहद मिलाकर पीनेसे वातजनित प्रदर (योनिसे रक्तस्राव) दूर होता है ॥ ८५ ॥

वराहस्य रसो मेध्यः सकौलत्थोऽनिलाधिके ।
शर्करातैलयष्ट्याह्वनागरैर्वा युतं दधि ॥ ८६ ॥

कुल्थीके क्वाथमें वराहके मांसका रस सिद्ध करके पीवे अथवा खांड, तेल, मुलैठी और सोंठ दहीमें मिला पीवे तो वातजनित प्रदर दूर होता है ॥ ८६ ॥

पित्तजनित प्रदरकी चिकित्सा।

पयस्योत्पलशालूकबिसकालीयकाम्बुजान्।
सपयः शर्करां क्षौद्रं पैत्तिकेऽसृग्दरे पिबेत्॥ ८७॥

क्षीरविदारी, नीलकमल, शालूक, मृणाल और लाल कमलको अथवा इनमेंसे किसी एकका कल्क कर दूध मिसरी और शहद मिला पीवे तो पित्तजनित प्रदर दूर होता है॥

पुष्यानुग चूर्ण।

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्ये शिलोद्भेदं रसाञ्जनम्।
अम्बष्ठाशाल्मलीवेष्टं समङ्गावत्सकत्वचम्॥ ८८॥
बाह्लीकातिविषे बिल्वं मुस्तं लोध्रं सगैरिकम्।
कट्फलं मरिचं शुण्ठीं मृद्वीकां रक्तचन्दनम्॥ ८९॥
कट्वङ्गवत्सकानन्तां धातकीं मधुकार्जुनम्।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ ९०॥
तानि क्षौद्रेण संयोज्य पिबेन्ना तण्डुलाम्बुना।
अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते॥ ९१॥
दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्।
योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम्॥ ९२॥
स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च प्रसह्य विनिवर्त्तयेत्।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम्॥ ९३॥

पाटला, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, पाषाणभेद, रसौत, पाढ, मोचरस, वाराहक्रांता, कुडाकी छाल, हींग, अतीश, बेलगिरी, नागरमोथा, लोध, गेरू, कायफल, मिर्च, सोंठ, मुनक्का, लालचंदन, सोनापाठा, इन्द्रयव, शारिवा, धावेके फूल, मुलैठी, अर्जुनवृक्षकी छाल समभाग ले पुष्यनक्षत्रमें इकट्ठा कर बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीवे तो बवासीर और अतिसारका रक्त, पित्तातिसार, बालकोंको होनेवाले आगन्तु दोष, योनिदोष, रजोदोष, योनिसे सफेद, नीला, पीला, काला और लाल स्राव होना यह सब नष्ट होता है इस पुष्यानुग चूर्णको महर्षि आत्रेयजीने श्रेष्ठ माना है॥ ८८-९३॥

तण्डुलीयकमूलञ्च सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना।
रसाञ्जनञ्च लाक्षाञ्च छागेन पयसा पिबेत्॥ ९४॥

चौराईकी जडका चूर्ण शहद और तण्डुलजलके साथ पीवे अथवा रसौत और लाखको बकरीके दूधके साथ पीवे तो पित्तज प्रदरकी शांति होती है ॥ ९४ ॥

पत्रकल्कौ घृते भृष्टौ राजादनकपित्थयोः ।
पित्तानिलहरौ पैत्ते सर्वथैवास्रपित्तजित् ॥ ९५ ॥

अमलतासके पत्रोंका और कैथके पत्रोंका कल्क कर घीमें भून सेवन करे तो वातपित्तजनित प्रदर और रक्तपित्त दूर होता है ॥ ९५ ॥

कफजनित प्रदरकी चिकित्सा।

मधुकं त्रिफलां लोध्रं मुस्तं सौराष्ट्रिकां मधु ।
मद्यैर्निम्बगुडूच्यौ तु कफजेऽसृग्दरे पिबेत् ॥ ९६ ॥

मुलैठी, त्रिफला, लोध, नागरमोथा, फिटकिरी इन सबका क्वाथ कर शहद मिला पीवे तो कफजनित प्रदर दूर होता है । अथवा नीमकी छाल और गिलोयको मद्यके साथ सेवन करे तो कफजनित प्रदर दूर होता है ॥ ९६ ॥

पित्तज प्रदरपर योग।

विरेचनं महातिक्तं पित्तजेऽसृग्दरे पिबेत् ।
हितं गर्भपरिस्रावे यच्चोक्तं तच्च कारयेत् ॥ ९७ ॥

पित्तजनितप्रदरमें कुष्ठाधिकारमें कहाहुआ महातिक्तक घृत पिलाकर विरेचन कराना चाहिये तथा जातिसूत्रीयाध्यायमें जो गर्भस्रावकी चिकित्सा कह आये हैं उसका प्रयोग करना भी पित्तजप्रदरको दूर करता है ॥ ९७ ॥

योनिरोगमें अन्य कर्म।

काश्मर्य्यकुटजक्वाथे सिद्धमुत्तरवस्तिना ।
रक्तयोन्यरजस्कानां पुत्रघ्न्याश्च हितं घृतम् ॥ ९८ ॥

कुंभेरके फल और कुडाकी छालका क्वाथ लेकर उसमें सिद्ध कियाहुआ घृत लेकर उससे रक्तयोनि, अरजस्का योनि और पुत्रघ्नी योनिमें उत्तरवस्ति करना चाहिये॥९८॥

मृगाजाविवराहासृग्दध्यम्लक्षौद्रसर्पिषा ।
अरजस्का पिबेत्सिद्धं जीवनीयैः पयोऽपि वा ॥ ९९ ॥

हिरन, बकरी, भेड और वराहका रुधिर, दही, खटाई, शहद और घी मिला पीवे। अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीवे तो अरजस्कायोनिका विकार दूर होता है ॥

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्राक्चरणासु च ।
कफवाते च दातव्यं तैलमुत्तरवस्तिना ॥ १०० ॥

कर्णिनी, अचरणा, शुष्का और प्राक्चरणायोनिमें तथा कफवातोंसे दूषितयोनिमें वातनाशक तैलोंसे उत्तरवस्ति करना हितकारक है ॥ १०० ॥

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं त्रिःसप्तभावितम् ।
मधुना किण्वचूर्णं वा दद्यादचरणापहम् ॥ १०१ ॥

रेशमी कपडेका गोपित्तमें वा मछलीके पित्तमें इकीस बार भावना देकर योनिमें स्थापित करे । अथवा सुराबीजको शहदमें मिलाकर योनिमें स्थापन करे तो अचरणा-योनिका विकार तथा स्रोतोंका शोधन, खुजली, क्लेद और सूजन दूर होता है ॥१०१॥

स्रोतसां शोधनं कण्डूक्लेदशोफहरञ्च तत् ।
वातघ्नैः शतपाकैस्तु तैलैः प्रागतिचारणी ॥ १०२ ॥
आस्थाप्या चानुवास्या च स्वेद्यैश्चानिलसूदनैः ।
स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहैश्च युक्तितः ॥ १०३ ॥

वातनाशकद्रव्योंसे शतपाक किया तैल प्राक्चरणा और अतिचरणायोनिमें आस्थापन और अनुवासनके लिये प्रयोग करना चाहिये । तथा वातनाशक स्नेह-द्रव्योंसे स्वेदन करना और वातनाशक चिकने द्रव्योंका आहार तथा युक्तिपूर्वक उप-नाह स्वेद कियाजाय तो प्राक्चरणा और अतिचरणा योनिके विकार दूर होते हैं ॥

शताह्वयवगोधूमकिण्वकुष्ठप्रियङ्गुभिः ।
बलाखुपर्णिकाश्वाह्वैः संयावो धारणः स्मृतः ॥ १०४ ॥
वामिन्याप्लुतयोन्योश्च कर्त्तव्यः स्वेदनोऽपि वा ।
क्रमः कार्य्यस्ततः स्नेहः पिचुभिस्तर्पणं भवेत् ॥ १०५ ॥

सौंफ, यव, गेहूं, सुराबीज, कूठ, प्रियंगु, बला, मूषकपर्णी और असगंधके कल्क कर घृतमें मिला गरम करे इसको वामिनीयोनि और उपप्लुतायोनिमें धारण करे अर्थात् इस उपरोक्त कल्कद्वारा इन दो प्रकारके योनिविकारोंमें उपनाह स्वेद करे फिर स्नेहमें भिगोयाहुआ फोहा योनिमें रक्खे।ऐसा करनेसे योनिका संतर्पण होता है१०५

शल्लकीजिङ्गिनीजम्बूधवत्वक्पञ्चवल्कलैः ।
कषायैः साधितः स्नेहः पिचुः स्याद्विप्लुतापहः ॥ १०६ ॥

शल्लकी वृक्ष, जींगन, जामुन, धव इन सबकी छाल और वड आदि पांच वृक्षोंकी छाल इन सबके क्राथमें साधित किये हुए तेलका फोहा योनिमें धारण करनेसे विप्लुतायोनिका विकार शान्त होता है ॥ १०६ ॥

कर्णिन्यां वर्त्तिकाकुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः ।

बस्तमूत्रकृता धार्य्या सर्वञ्च श्लेष्मनुद्धितम् ॥ १०७ ॥

कूठ, पीपल, आककी कांपल, सेंधानमक इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर पोटली बना योनिमें धारण करे तो कर्णिनी योनि और कफजनित योनिके विकार दूर होते हैं॥

त्रैवृतं स्नेहनं स्वेदो ग्राम्यानूपौदका रसाः ॥

दशमूलपयोवस्तिश्चोदावर्त्तानिलार्त्तिषु ॥ १०८ ॥

त्रैवृतेनानुवास्या च वस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः ।

तदेव च महायोन्यां स्रस्तायाञ्च विधीयते ॥ १०९ ॥

उदावृत योनिमें वातजनित पीडा हो तो निशोथके चूर्णको स्नेहमें मिलाकर योनिमें धारण करना, स्नेहन करना, स्वेदन करना अथवा निशोथके चूर्णसे विरेचन कराना तथा ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंका मांसरस और दशमूलसे सिद्ध किये दूध-द्वारा वस्तिकर्म करना हितकारक है, तथा निशोथके साथ सिद्ध कियेहुए स्नेहकी वस्ति और उत्तरवस्ति करना भी हितकारक है । और यही क्रिया स्रस्त अर्थात् शिथिल योनिमें और महायोनिमें हितकारक है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

वसा ऋक्षवराहाणां घृतञ्च मधुरः शृतम् ।

पूरयित्वा महायोनिं बध्नीयात्क्षौमलक्तकैः ॥ ११० ॥

रीछ और वराहकी चर्बी तथा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ घृत महायोनिमें भरकर ऊपरसे रेशमी कपडा और लाखका रंगा कपडा बांधे ॥ ११० ॥

प्रसुप्तां सर्पिषाभ्यज्य क्षीरस्विन्नां प्रवेश्य च ।

बध्नीयाद्वेशवारस्य पिण्डेनामूत्रकालतः ॥ १११ ॥

यदि योनि सुन्न पडगयी हो और बाहर निकल आई हो तो उसको घृतसे चिकना कर और दूधसे स्वेदन कर भीतरको प्रवेश करके उसके ऊपर हल्दीकी पिण्डी बांधदेवे । मूत्र आनेपर पिण्डीको खोल देना चाहिये और फिर उसी प्रकार बांध देना चाहिये १११

यच्च वातविकाराणां कर्मोक्तं तच्च कारयेत् ।

सर्वव्यापत्सु मतिमान् महायोन्यां विशेषतः ॥ ११२ ॥

जो क्रिया वातविकारोंको शान्त करनेवाली है वह वातनाशक क्रिया सब प्रकारके योनि-रोगोंमें प्रयुक्त करनी हितकारक है और महायोनिमें तो विशेषकर हित करनेवाली होती है।

न हि वाताहते योनिर्नारीणां संप्रदुष्यति ।

शमयित्वा तमन्यस्य कुर्य्याद्दोषस्य भेषजम् ॥ ११३ ॥

वायुके विना स्त्रियोंकी योनि दूषित नहीं होती, इसलिये मिलेजुले दोषोंमें भी प्रथम वायुको शान्त करके फिर अन्य दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ११३ ॥

पाण्डुरवर्ण प्रदरकी चिकित्सा।

मूलकल्कन्तु रोहीतात्पाण्डुरे प्रदरे पिबेत् ।
जलेनामलकाद्वीजं कल्कं वा ससितामधुम् ॥ ११४ ॥
मधुनामलकाच्चूर्णं रसं वा लेहयेच्च ताम् ।
न्यग्रोधत्वक्कषायेण लोध्रकल्कं तथा पिबेत् ॥ ११५ ॥
आस्रावे क्षौमपट्टं वा भावितं तेन धारयेत् ।
प्लक्षत्वक्चूर्णपिण्डं वा धारयेन्मधुना कृतम् ॥ ११६ ॥

पाण्डुरवर्णका प्रदर होय तो रोहिततृणकी जडको जलमें पीसकर पीवे अथवा आंवलेकी गुठलीको पीसकर शहद और मिसरी मिलाकर चाटे । अथवा शहदके साथ आँवलेका चूर्ण या आँवलेका रस पीवे । अथवा वडके छिलकेके क्वाथमें लोधका कल्क मिलाकर पीवे। अथवा रेशमके वस्त्रको वडकी छाल और लोधके क्वाथमें भिगोकर योनिमें रक्खे । अथवा पिलखनकी छालके चूर्णको शहदमें मिला एक बारीक वस्त्रमें पोटली बना योनिमें धारण करे ॥ ११४–११६ ॥

योन्या स्नेहाक्तया लोध्रप्रियंगुमधुकस्य च ।
धार्य्या मधुयुता वर्त्तिः कषायाणाञ्च सर्वशः ॥ ११७ ॥

पहिले योनिको स्नेहसे चिकनी कर फिर लोध, फूलप्रियंगु और मुलैठीके चूर्णको शहदमें मिलाकर बत्ती बना योनिमें धारण करे । और संपूर्ण कषाय द्रव्योंके क्वाथसे योनिमें वर्ति करे तो योनिस्राव बन्द होता है ॥ ११७ ॥

स्रावच्छेदार्थमभ्यक्तां धूपयेद्वा घृताप्लुतैः ।
सरलागुग्गुलुयवैः सतैलकटुमत्स्यकैः ॥ ११८ ॥

योनिस्राव बन्द करनेके लिये पहिले योनिको चिकनी कर फिर सरलका गोंद, गूगल, यव, तेल,कट्ठू और मछलीके चर्बी इन सबको पीसकर योनिको धूपित करे॥

कासीसत्रिफलाकाक्षी साम्रा जम्ब्वस्थिधातकी ।
पैच्छिल्ये क्षौद्रसंयुक्तश्चूर्णो वैशद्यकारकः ॥ ११९ ॥

कसीस, त्रिफला, सौराष्ट्रमृत्तिका, आम और जामुनकी गुठली, धावेके फूल इन सबका चूर्ण कर शहद मिला योनिमें धारण करनेसे योनिकी पिच्छिलता दूर होकर योनि स्वच्छ होजाती है ॥ ११९ ॥

पलाशसर्जजम्बुत्वक्समङ्गामोचधातकीः ।

पिच्छिला परिक्लिन्नास्तम्भनः कल्क इष्यते ॥ १२० ॥

पलाशकी छाल, राल, जामुनकी छाल, वाराहीक्रान्ता, मोचरस और धावेके फूलोंको पीसकर कल्क बनावे । यह कल्क बारीक मलमलमें बांध योनिमें धारण करे तो योनिकी पिच्छिलता, क्लेद और स्राव दूर होता है ॥ १२० ॥

स्तब्धानां कर्कशानाञ्च पिण्डो मार्दवकारकः ।

धारयेद्वेशवारं वा पायसं कृसरं तथा ॥ १२१ ॥

वेसवार (धनियां सरसों और सेंधानमक मिलाकर पीसाहुआ), अथवा खिचडी या खीरका पिण्ड बनाकर योनिमें रखनेसे योनिकी कठोरता और स्तब्धता दूर होती है ॥

दुर्गन्धानां कषायः स्यात्तौवरः कल्क एव वा ।

चूर्णं वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥ १२२ ॥

योनिकी दुर्गंध दूर करनेके लिये सुगंधित द्रव्योंका क्वाथ, धनियेका कल्क और उत्तम सुगंधित तैल तथा सर्वगंधका चूर्ण धारण करना चाहिये ॥ १२२ ॥

एवं योनिषु शुद्धासु गर्भं विन्दन्ति योषितः ।

अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपाक्रमणे सति ॥ १२३ ॥

इस प्रकार योनि शुद्ध होनेपर स्त्रियें विकाररहित वीर्यको ग्रहणकर गर्भको धारण करती हैं । और रज, वीर्य शुद्ध होनेसे स्वाभाविक ही जीवका संचार होकर गर्भरहजाता है १२३

पुरुषचिकित्सानिर्देश ।

पञ्चकर्मविशुद्धस्य पुरुषस्यापि चेन्द्रियम् ।

परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्घ्नैरुपाचरेत् ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार यदि पुरुषका वीर्य दूषित हो तो उसको वमन, विरेचनादि पंच कर्म द्वारा शुद्ध कर फिर वीर्यके वर्णको देख उसीके दोषानुसार चिकित्सा करे ॥ १२४ ॥

योनिरोगोंका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र—सलिङ्गा व्यापदो योनेः सनिदानचिकित्सिताः ।

उक्ता विस्तरशः सम्यङ्मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ १२५ ॥

यहां पर कहते हैं कि तत्त्वदर्शी महर्षि आत्रेयजीने इस प्रकार योनिव्यापक भिन्न२ व्यापत्ति, लक्षण, निदान और चिकित्साका उत्तम रीतिसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया है॥

इति योनिरोगचिकित्सितम् ।

---

१ दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, कंकोल, लौंग, अगर और छारछबीला ।

अग्निवेशका वीर्यदोषमें प्रश्न।

पुनरेवाग्निवेशस्तु पप्रच्छ भिषजां वरम्।
आत्रेयमुपसङ्गम्य शुक्रदोषास्त्वयाऽनघ ॥ १२६ ॥
रोगाध्याये समुद्दिष्टा ह्यष्टौ पुंसामशेषतः।
तेषां हेतुं भिषक्श्रेष्ठ! दुष्टादुष्टस्य चाकृतिम् ॥ १२७ ॥
चिकित्सितञ्च कार्त्स्न्येन क्लैब्यं यच्च चतुर्विधम्।
उपद्रवेषु योनीनां प्रदरो यश्च कीर्त्तितः ॥ १२८ ॥
तेषां निदानं लिङ्गञ्च चिकित्साञ्चैव तत्त्वतः।
समासव्यासभेदेन प्रब्रूहि भिषजां वर ॥ १२९ ॥

इसके अनन्तर वैद्योंमें श्रेष्ठ महर्षि आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछने लगे कि, हे निष्पाप वैद्यवर! आपने सूत्रस्थानके अष्टोदरीय नामक रोगसंग्रहाध्यायमें वीर्यके आठ प्रकारके विकारोंका कथन कियाथा। हे भिषक्श्रेष्ठ! उन आठ प्रकारके वीर्यदोषोंके हेतु, दुष्ट और अदुष्ट वीर्यके लक्षण, संपूर्ण रूपसे उनकी चिकित्सा और चार प्रकारकी नपुंसकता और योनिरोगोंमें जो प्रदररोग कहा है उसका विशेषरूपसे निदान और चिकित्सा इन सबको संक्षेप और विस्तारसे यथावत् वर्णन कीजिये ॥१२६-१२९॥

तस्मै शुश्रूषमाणाय प्रोवाच मुनिपुङ्गवः।
बीजं यस्माद्व्यवायेषु हर्षयोनिसमुत्थितम्।
शुक्रं पौरुषमित्युक्तं तस्माद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ १३० ॥

सुननेकी इच्छावाले उस अग्निवेशसे आत्रेयजी कहने लगे कि, हर्ष और योनिस्पर्शसे उठनेवाला वीर्य ही पुरुषार्थका मूल है यह तो पहिले ही कहचुके। अब इस वीर्यमें होनेवाले विकारोंको सुनो ॥ १३० ॥

दूषितवीर्यको गर्भमें असमर्थता।

यथा बीजमकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम्।
न विरोहति सन्दुष्टं तथा शुक्रं शरीरिणाम् ॥ १३१ ॥

जैसे अकालवृष्टि कृमि, कीट और अग्नि आदिसे दूषितहुआ बीज पैदा नहीं होता उसी प्रकार दोषोंसे दूषित हुआ मनुष्योंका वीर्य भी गर्भको उत्पन्न नहीं करता १३१

वीर्य दूषित होनेके कारण।

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानाञ्च सेवनात्।
अकाले वाप्ययोनौ वा मैथुनं न च गच्छतः ॥ १३२ ॥

रूक्षतिक्तकषायातिलवणाम्लोष्णसेवनात् ।
नारीणामरसज्ञानां स्रवणाज्जरया तथा ॥ १३३ ॥
चिन्ताशोकादविस्रम्भाच्छस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ।
भयात्क्रोधादतीसाराद्व्याधिभिः कर्षितस्य च ॥ १३४ ॥
वेगाघातात्क्षताच्चापि धातूनां संप्रदूषणात् ।
दोषाः पृथक्समस्ता वा प्राप्य रेतोवहाः शिराः ।
शुक्रं संदूषयन्त्याशु तद्वक्ष्यामि विभागशः ॥ १३५ ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, अत्यन्त व्यायाम करनेसे, असात्म्य आहार विहारके सेवनसे, अकालमें मैथुन करनेसे, अयोनि मैथुन करनेसे, बिल्कुल मैथुन न करनेसे तथा रूक्ष तिक्त और कषाय रसोंका अत्यन्त सेवन करनेसे, अकामा और अनभिज्ञ स्त्रीसे संगम करनेसे, प्रमेहसे, वृद्धावस्थासे, चिन्ता और शोकसे, अविस्रंभ अर्थात् मैथुनके समय किसी प्रकारका भय होनेसे, शस्त्र, क्षारकर्म और अग्निकर्मका मिथ्या प्रयोग होजानेसे, भयसे, क्रोधसे, अतिसारसे अथवा किसी अन्य व्याधिद्वारा शरीरके कर्षित होनेसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, क्षतसे और किसी प्रकार वीर्यवाही नसके बिगड जानेसे और धातुओंके दूषित होनेसे दोष कुपित होकर पृथक् २ अथवा सब मिलकर वीर्यवाही नसोंमें प्राप्त हो वीर्यको दूषित करदेते हैं। उनको आगे पृथक् २ कहते हैं॥

दूषित शुक्रके आठ भेद ।

फेनिलं तनु रूक्षञ्च विवर्णं पूति पिच्छिलम् ।
अन्यधातूपसंसृष्टमवसादि तथाष्टमम् ॥ १३६ ॥

झागदार, अत्यन्त पतला, रूक्ष, विवर्ण, दुर्गंधयुक्त, पिच्छिल मल मूत्रादि वा रस रक्तादि धातुओंसे मिलाहुआ और अवसादि (गांठदार) यह आठ प्रकारका शुक्र दूषित होता है ॥ १३६ ॥

वातदूषित शुक्रके लक्षण ।

फेनिलं तनु रूक्षञ्च कृच्छ्रेणाल्पञ्च मारुतात् ।
भवत्युपहतं शुक्रं न तद्गर्भाय कल्पते ॥ १३७ ॥

वातदूषित शुक्र झागदार, पतला, थोडा रूक्ष तथा कष्टके साथ बहुत थोडा २ निकले। यह शुक्र वायुसे उपहत होनेके कारण गर्भकारक नहीं होसकता ॥ १३७॥

पित्तदूषित शुक्रके लक्षण ।

सनीलमथवा पीतमत्युष्णं पूतिगन्धि च ।
दहल्लिङ्गं विनिर्याति शुक्रं पित्तेन दूषितम् ॥ १३८ ॥

पित्तदूषित वीर्य-नीलवर्णयुक्त, पीला, अत्यन्त गरम, दुर्गंधयुक्त होता है। यह निकलते समय लिंगेन्द्रियमें अग्निके समान दाह करता हुआ निकलता है ॥ १३८ ॥

कफदूषित शुक्रके लक्षण।

श्लेष्मणा बद्धमार्गन्तु भवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ॥ १३९॥

कफदूषित वीर्य कफसे बद्धमार्ग होनेसे पिच्छिल (गाढा, गिलगिला) होता है॥

अन्यधातूपसंसृष्ट।

स्त्रीणामत्यर्थगमनादभिघातात्क्षतादपि।

शुक्रं प्रवर्त्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् ॥ १४० ॥

अत्यन्त स्त्रीगमन करनेसे, अभिघातसे और क्षयके कारण वीर्य रुधिरसे मिला-हुआ निकलता है इसको अन्यधातुसंश्लिष्ट कहते हैं ॥ १४० ॥

अवसादि शुक्रके लक्षण।

वेगसन्धारणाच्छुक्रं वायुना विहितं पथि।

कृच्छ्रेण याति ग्रथितमवसादि तथाष्टमम्।

इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सलक्षणाः ॥ १४१ ॥

वीर्यके वेगको रोकलेनेसे वीर्यके मार्गमें वायु प्राप्त होकर वीर्यको ग्रंथित कर देता है। फिर वह गांठदार वीर्य बडी कठिनतासे निकलता है। उसको अवसादित वीर्य कहते हैं। इस प्रकार वीर्यके आठ दोषोंको लक्षण सहित कहा है ॥ १४१ ॥

शुद्ध शुक्रके लक्षण।

स्निग्धं घनं पिच्छिलञ्च मधुरञ्च विदाहि च।

रेतः शुद्धं विजानीयाच्छ्वेतं स्फटिकसन्निभम् ॥ १४२ ॥

जो वीर्य चिकना, घना, पिच्छिल, अविदाही और स्फटिकमणिके समान सफेद हो उसको शुद्धवीर्य जानना ॥ १४२ ॥

दूषितवीर्यकी सामान्यचिकित्सा।

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैः सुखैर्हितैः।

रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापदिकैस्तथा।

दुष्टं यथा भवेद्रेतस्ततस्तत्समुपाचरेत् ॥ १४३ ॥

दूषित शुक्रकी चिकित्सा वाजीकरणाध्यायमें कहेहुए सुखकारी योगोंसे रक्तपित्त-नाशक योगोंसे और योनिदोषनाशक योगोंसे करना चाहिये ॥ १४३ ॥

घृतञ्च जीवनीयं यच्च्यवनप्राश एव च।

गिरिजस्य प्रयोगश्च रेतोदोषानपोहति ॥ १४४ ॥

जीवनीयघृत, च्यवनप्राश और शिलाजीतका प्रयोग करनेसे वीर्यके दोष दूर होते हैं ४४

वातदूषित वीर्यकी चिकित्सा।

वातान्विते हिताः शुक्रे निरूहाः सानुवासनाः ॥ १४५ ॥

वातदूषित वीर्यमें निरूहण और अनुवासन वस्ति करना हितकारी है ॥ १४५ ॥

पित्तदूषित वीर्यकी चिकित्सा।

अभयामलकीयञ्च पैत्ते शस्तं रसायनम्।
मागध्यमृतलोहानां त्रिफलाया रसायनम् ॥ १४६ ॥

पित्तदूषित वीर्यमें अभयामलकीयाध्यायमें कहे हुए रसायनोंका प्रयोग करना तथा पिप्पलीरसायन, अमृतालोह और त्रिफलारसायनोंका प्रयोग करना हितकारक है १४६

कफदूषित वीर्यमें चिकित्सा।

कफोत्थितं शुक्रदोषं हन्याद्भल्लातकस्य च ॥ १४७ ॥

कफदूषित वीर्यमें भल्लातक रसायनका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १४७ ॥

अन्यधातूपसृष्टवीर्यकी चिकित्सा।

अन्यधातूपसंसृष्टं शुक्रं वीक्ष्य भिषक् क्रियाम्।
यथादोषं प्रयोज्यं स्याद्दोषधातुभिषगूजितम्।

अन्यधातुसे सम्मिलित शुक्र हो तो वैद्य दोषानुसार उचित चिकित्सा करे। दूषित शुक्रोंमें दोष, धातु आदि विचारकर उनके अनुसार ही चिकित्सा करना चाहिये॥

सर्पिः पयो रसाः शालिर्यवगोधूमषाष्टिकाः।
प्रशस्ताः शुक्रदोषेषु वस्तिकर्म्म विशेषतः।
इत्यष्ट शुक्रदोषाणां मुनिनोक्तं चिकित्सितम् ॥ १४८ ॥

सब प्रकारके शुक्रदोषोंमें घृत, दूध, मांसरस, शालीचावल, जौ, गेंहूं और साठी-चावल, हितकारक होते हैं। विशेषकर वीर्य विकारोंमें वस्तिकर्मका प्रयोग श्रेष्ठ होता है। इस आठ प्रकार शुक्रदोषोंकी चिकित्साको आत्रेयजीने कहा है ॥ १४८ ॥

क्लैब्यरोगका वर्णन।

रेतोदोषोद्भवं क्लैब्यं यस्माच्छुद्ध्यैव सिद्ध्यति।
ततो वक्ष्यामि ते सम्यगग्निवेश! यथायथम् ॥ १४९ ॥

वीर्यके दोषसे ही मनुष्योंको नपुंसकता उत्पन्न होती है और वीर्यके शुद्ध होनेपर नपुंसकता भी दूर होजाती है। हे अग्निवेश! अब क्लैब्य (नपुंसकता) का वर्णन करते हैं सो तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥ १४९ ॥

चार प्रकारसे नपुंसकताकी प्राप्ति।

बीजध्वजोपघाताभ्यां जरया शुक्रसंक्षयात्।
क्लैब्यं सम्पद्यते तस्य शृणु सामान्यलक्षणम् ॥ १५० ॥

नपुंसकता चार प्रकारके कारणोंसे होती है। जैसे बीजके उपघात होनेसे, लिंगेन्द्रियकी नसमें किसी प्रकारकी चोट लगजानेसे, बुढापेसे और वीर्यके क्षय होनेसे। अब नपुंसकताके लक्षणोंको सुनो ॥ १५० ॥

नपुंसकताके सामान्य लक्षण।

सङ्कल्पप्रवणो नित्यं प्रियां वश्यामपि स्त्रियम्।
न याति लिङ्गशैथिल्यात् कदाचिद्याति वा यदि ॥ १५१ ॥
श्वासार्त्तः स्विन्नगात्रश्च मोघसंकल्पचेष्टितः।
म्लानशिश्नश्च निर्बीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम्।
सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेण प्रवक्ष्यते ॥ १५२ ॥

जो पुरुष स्त्रीगमनकी इच्छा रखतेहुए भी अपनी प्यारी और वश्यस्त्रीसे भी लिंगकी शिथिलताके कारण मैथुन न करसके अथवा किसी प्रकार स्त्रीगमन करनेमें प्रयास भी करे तो श्वास चढजाय, अंगोंमें पसीने आजांय, संकल्प निष्फल होजाय और चेष्टाहीन होजाय, लिंगेन्द्रिय शिथिल,सिकडी हुई और निर्बीज हो यह नपुंसकताके सामान्य लक्षण हैं। अब विशेष लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

बीजोपघातक्लैब्यके हेतु, लक्षण।

शीतरूक्षाल्पसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात्।
शोकचिन्ताभयत्रासात् स्त्रीणाञ्चात्यर्थसेवनात् ॥ १५३ ॥
अभिचारादविस्रम्भाद्रसादीनाञ्च संक्षयात्।
वातादीनाञ्च वैषम्यात्तथैवानशनाच्छ्रमात् ॥ १५४ ॥
नारीणामरसज्ञत्वात् पञ्चकर्म्मापचारतः।
बीजोपघाताद्भवति पाण्डुवर्णः सुदुर्बलः ॥ १५५ ॥
अल्पप्राणोऽल्पहर्षश्च प्रमदासु भवेन्नरः।
हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः ॥ १५६ ॥
छर्द्यतीसारशूलार्त्तः कासज्वरनिपीडितः।
बीजोपघातजं क्लैब्यं ध्वजभङ्गकृतं शृणु ॥ १५७ ॥

शीतल, रूक्ष, अल्पसंश्लिष्ट, विरुद्ध और अजीर्णमें भोजन करनेसे, शोक, चिन्ता, भय और त्राससे, स्त्रियोंका शक्तिसे बढकर सेवन करनेसे, अविचार और अविस्त्र-म्भसे, रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंकी विषमतासे, उपवास करनेसे, श्रमसे, अज्ञ और अवस्थाहीन स्त्रीके साथ गमन करनेसे और बीजमें किसी प्रकारका उपघात होनेसे मनुष्य पाण्डुवर्ण और अत्यन्त दुर्बल होजाता है। वह मनुष्य अल्प-प्राण और अल्पहर्षवाला होनेसे यदि स्त्रीगमन करे तो उसको हृद्रोग (हृदयमें धड-कन या पीडा) तमकश्वास, कामला, व्यथा, थकावट, वमन, अतिसार, शूल, खांसी और ज्वरसे दुःख होता है। यह बीजोपघात नपुंसकके लक्षण होते हैं। अब ध्वज-भंगके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १५३-१५७ ॥

ध्वजभग नपुंसताके हेतु लक्षण।

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजनात्।
अत्यम्बुपानाद्विषमात् पिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १५८ ॥
दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिकर्षणात्।
कन्यानाञ्चैव गमनादयोनिगमनादपि ॥ १५९ ॥
दीर्घरोगां चिरोत्सृष्टां तथैव च रजस्वलाम्।
दुर्गन्धां दुष्टयोनिञ्च तथैव च परिस्रुताम् ॥ १६० ॥
ईदृशीं प्रमदां मोहाद्यो गच्छेत्कामहर्षितः।
चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १६१ ॥
अधावनाद्वा मेढ्रस्य शस्त्रदन्तनखक्षतात्।
काष्ठप्रहारनिष्पेषाच्छूकानाञ्चातिसेवनात्।
रेतसश्च प्रतीघाताद्ध्वजभङ्गः प्रवर्त्तते ॥ १६२ ॥

अत्यन्त खटाई, नमक, क्षार पदार्थोंके सेवनसे, विरुद्ध भोजन तथा अजीर्णमें भोजन करनेसे, अत्यंत जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्न, भारी पदार्थ, दही, दूध और अनूप मांसका अत्यन्त सेवन करनेसे, रोगद्वारा शरीरके कर्षित होनेसे, बारह वर्षसे कम अवस्थावाली कन्यामें गमन करनेसे, अयोनि मैथुन करनेसे, जिस स्त्रीकी योनि-पर अत्यन्त बडे २ बाल हों, बहुत देरमें स्खलित होती हो, जो रजस्वला हो, जिसकी योनिसे दुर्गंध आतीहो, जिसकी योनिमें सदैव पानीका बहाव रहाकरे ऐसी स्त्रियोंमें कामसे हर्षित हो मोहवश गमन करनेसे, चौपायोंसे मैथुन करनेसे, इन्द्रियमें किसी प्रकार चोट आदि आघात लगनेसे, इन्द्रीको सदैव विना धोये रखनेसे, शस्त्र, दांत,

नख आदिका घाव होनेसे, इन्द्रीमें काष्ठ आदिका प्रहार होनेसे, इन्द्रीके पिसजानेसे इन्द्रीको अत्यन्त स्थूलकारक प्रयोगोंके करनेसे और वीर्यके प्रतिघात होनेसे ध्वजभंग-नामक नपुंसकता उत्पन्न होती है ॥ १५८–१६२ ॥

ध्वजभंगके लक्षण ।

भवन्ति यानि रूपाणि तस्य वक्ष्याम्यतः परम् ।
श्वयथुर्वेदना मेढ्रे रागश्चैवोपलक्ष्यते ।
स्फोटाश्च तीव्रा जायन्ते लिङ्गपाको भवत्यपि ॥ १६३ ॥
मांसवृद्धिर्भवेच्चास्य व्रणाः क्षिप्रं भवन्त्यपि ।
पुलाकोदकसङ्काशः स्रावः श्यावारुणप्रभः ॥ १६४ ॥
वलयीकुरुते चापि कठिनश्च परिग्रहः ।
ज्वरस्तृष्णा भ्रमो मूर्च्छा च्छर्दिश्चास्योपजायते ॥ १६५ ॥
रक्तं कृष्णं स्रवेच्चापि नीलमाविललोहितम् ।
अग्निनेव च दग्धस्य तीव्रो दाहः सवेदनः ॥ १६६ ॥
वस्तौ वृषणयोर्वापि सीवन्यां वंक्षणेषु च ।
कदाचित्पिच्छिलो वापि पाण्डुस्रावश्च जायते ॥ १६७ ॥
श्वयथुश्च भवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः ।
चिराच्च पाकं व्रजति शीघ्रं वाथ प्रमुच्यते ॥ १६८ ॥
जायन्ते क्रिमयश्चापि क्लिद्यते पूतिगन्धि च ।
विशीर्य्यते मणिश्चास्य मेढ्रमुष्कावथापि च ॥ १६९ ॥
ध्वजभङ्गकृतं क्लैब्यमित्येतत्समुदाहृतम् ।
एवं पञ्चविधं केचिद्ध्वजभङ्गं वदन्त्यपि ॥ १७० ॥

ध्वजभंग नपुंसकताके जो लक्षण होते हैं अब उनका कथन करते हैं। जैसे–लिंगेन्द्रियमें सूजन, पीडा, लालवर्ण होना, तीव्र फोडोंका होना, लिंगका पकजाना, लिंगका मांस बढजाना और लिंगमें झटपट घावोंका होजाना लिंगमेंसे चावलोंके मांडके समान स्राव होना, स्राव काला अथवा लालवर्णका होना, लिंगमें बल पडजाना, लिंगके ऊपरका मांस कठोरसा होजाना तथा उस मनुष्यको ज्वर, प्यास, भ्रम, मूर्च्छा और छर्दी हो यदि इसमें पित्तकी अधिकता हो, लाल, काला, नीला, आविलरूप (गदला) और ताम्रवर्णका स्राव हो, वस्ति दोनों वृषणों और सीवन तथा वंक्षणमें अग्निदग्धके

समान तीव्र दाह और पीडा हो। यदि इसमें कफकी अधिकता हो तो पिच्छिल अथवा पाण्डुवर्णका स्राव होना, सूजन, मन्दमन्द पीडायुक्त गिलगिलाहटदार थोडासा स्राव होना, देरमें पकना, कभी शीघ्रतासे चिकित्सा करनेपर आराम प्रतीत हो और इसके व्रणोंमें कृमि, क्लेद, दुर्गंधि उत्पन्न होजाती है। यदि इसका उपाय शीघ्र न कियाजाय तो इन्द्रियकी सुपारी और अण्डकोश गलगलकर झिरने लगते हैं। यह ध्वजभंग नपुंसकके लक्षण हैं। कोई इस ध्वजभंगको पांच प्रकारका मानते हैं। चरकमें फिरंग और उपदंश ध्वजभंगके अन्तर्गत ही माना है ॥ १६३–१७० ॥

जरासम्भव नपुंसकताके कारण और लक्षण।

क्लैब्यं जरासम्भवं हि प्रवक्ष्याम्यथ तच्छृणु।
जघन्यमध्यप्रवरं वयस्त्रिविधमुच्यते ॥ १७१ ॥
अथ प्रवयसां शुक्रं प्रायशः क्षीयते नृणाम्।
रसादीनां संक्षयाच्च तथैवावृष्यसेवनात् ॥ १७२ ॥
बलवीर्य्येन्द्रियाणाञ्च क्रमेणैव परिक्षयात्।
परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्लमात् ॥ १७३ ॥
जरासम्भवजं क्लैब्यमित्येतैर्हेतुभिर्नृणाम्।
जायते तेन सोऽत्यर्थं क्षीणधातुः सुदुर्बलः ॥ १७४ ॥
विवर्णो विह्वलो दीनः क्षिप्रं व्याधिमथाश्नुते।
एतज्जरासम्भवं हि चतुर्थं क्षयजं शृणु ॥ १७५ ॥

अब हम जरासंभव नपुंसकोंके लक्षणोंको कहते हैं सो श्रवण करो। मनुष्यको बाल्य, मध्य और वृद्ध यह तीन प्रकारकी अवस्था होती हैं। वृद्धअवस्थामें स्वभावसे ही मनुष्योंका वीर्य क्षीण होजाता है। रसादि धातुओंके क्षय होनेसे और वृष्य पदार्थोंका सेवन न करनेसे बल, वीर्य और इन्द्रियोंका क्रमपूर्वक क्षय होता जाता है। तथा बल वीर्य आदिकोंके क्षय होनेसे आयुका क्षय, आहारमें अशक्ति, श्रम और क्लम यह सब वृद्धावस्थामें मनुष्योंके वीर्यक्षय, तथा जरासंभव नपुंसकताके कारण होते हैं। इन कारणोंसे क्षीणधातु और दुर्बल हुआ मनुष्य विवर्ण, विह्वल, दीन और शीघ्र व्याधियोंसे पीडित होजाता है। इसको जरासंभव नपुंसक कहते हैं। अब क्षयज क्लैब्य (नपुंसकता) के लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १७१–१७५ ॥

क्षयजक्लीबताके हेतु लक्षण।

अतिप्रचिन्तनाच्चैव शोकात् क्रोधाद्भयादपि।
ईर्ष्योत्कण्ठादथोद्वेगात् सदा विशति यो नरः ॥ १७६ ॥

कृशो वा सेवते रूक्षमन्नपानमथौषधम्।
दुर्बलप्रकृतिश्चैव निराहारो भवेद्यदि ॥ १७७ ॥
असात्म्यभोजनाच्चापि हृदये यो व्यवस्थितः।
रसः प्रधानधातुर्हि क्षीयेताशु नरस्ततः ॥ १७८ ॥
रक्तादयश्च क्षीयन्ते धातवस्तस्य देहिनः।
शुक्रावसानास्तेभ्यो हि शुक्रं धाम परं मतम् ॥ १७९ ॥
चेतसो वातिहर्षेण व्यवायं सेवते तु यः।
शुक्रं तु क्षीयते तस्य ततः प्राप्नोति स क्षयम्।
घोरं व्याधिमवाप्नोति मरणं वा स गच्छति ॥ १८० ॥

जो अत्यन्त चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, ईर्षा और उत्कंठा अथवा उद्वेगके कारण सदा ध्यानपरायणसा रहता है और जो मनुष्य कृशशरीर होते हुए भी रूक्ष अन्नपान और रूक्ष औषधका सेवन करता है, जो स्वभावसे ही दुर्बल मनुष्य अत्यन्त उपवास करता है वा असात्म्य भोजन करे उसका हृदयस्थ प्रधान रसधातु क्षीण होजाता है। उस रसधातुके क्षीण होनेसे मनुष्यकी रक्तसे वीर्यपर्यन्त संपूर्ण धातुएं क्षीण होजाती हैं। क्योंकि संपूर्ण धातुओंका परमधाम अर्थात् तेज वीर्य ही होता है। जो मनुष्य अति हर्षपूर्वक अत्यंत मैथुन करता है उसका वीर्य भी अत्यन्त क्षीण होजाता है। इन कारणोंसे मनुष्यका वीर्य और शारीरिक धातुएं क्षीण होजाती हैं तथा उसको क्षय-जनित नपुंसकता उत्पन्न होती है उससे मनुष्यको क्षय होजाता तथा उसके शरीरमें अनेक प्रकारकी घोर व्याधियें उत्पन्न होती हैं अथवा इस प्रकार धातुओंके क्षय होनेसे मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १७६-१८० ॥

शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता।
एतन्निदानलिङ्गाभ्यामुक्तं क्लैब्यं चतुर्विधम् ॥ १८१ ॥

इसलिये आरोग्यताकी इच्छावाले मनुष्यको विशेषतापूर्वक शुक्रकी रक्षामें सावधान रहना चाहिये। इस प्रकार चार प्रकारकी क्लैब्यताके निदान और लक्षणोंको कहा है॥

केचित्क्लैब्ये त्वसाध्ये द्वे ध्वजभङ्गक्षयोद्भवे।
वदन्ति शेफसश्छेदाद् वृषणोत्पाटनेन वा ॥ १८२ ॥

कोई इनमें ध्वजभंग और क्षयज इन दो प्रकारकी क्लीबताको असाध्य मानते हैं और लिंगके गिरजानेसे अथवा लिंगकी नसके कटजानेसे तथा फोतोंके फटकर झरजानेसे जो नपुंसकता होती है वह भी असाध्य होती है ॥ १८२ ॥

मातृपितृदोषज नपुंसकता।

मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्चाकृतात्मनः।
गर्भस्थस्य यदा दोषाः प्राप्य रेतोवहाः सिराः।
शोषयन्त्याशु तन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ॥ १८३ ॥
तत्र सम्पूर्णसर्वाङ्गः स भवत्यपुमान् पुमान्।
एते त्वसाध्या व्याख्याताः सन्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ १८४ ॥

मातापिताके वीर्यदोषसे और पूर्वजन्मके किये हुए अशुभकर्मोंसे गर्भस्थ मनुष्यकी वीर्यवाही नसोंमें वातादि दोष प्राप्त होकर उनको सुखादेते हैं। वीर्यवाही नसोंके सूखनेसे वीर्य भी नष्ट होजाता है। इस लिये वह मनुष्य सर्वांगसंपूर्ण होते हुए भी पुरुषत्वहीन होता है अर्थात् नपुंसक होता है। यह लिंगभेदजनित नपुंसक और वृषणोत्पाटन तथा मातृपितृदोषज नपुंसक सन्निपातसमुच्छ्रित होनेसे असाध्य होते हैं १८३॥१८४

क्लैब्य (नपुंसकता) रोगकी चिकित्सा।

चिकित्सितमतस्तूर्ध्वं समासव्यासतः शृणु।
शुक्रदोषेषु निर्दिष्टं भेषजं यन्मयानघ।
क्लैब्योपशान्तये कुर्य्यात्क्षीणक्षतहितञ्च यत् ॥ १८५ ॥
वस्तयः क्षीरसर्पींषि वृष्ययोगाश्च ये मताः।
रसायनप्रयोगाश्च सर्वानेतान् प्रयोजयेत्।
समीक्ष्य देहदोषाग्नीन् बलभेषजकालवित् ॥ १८६ ॥

अब साध्य नपुंसकोंकी संक्षेप और विस्तारसे चिकित्साको कहते हैं सो सुनो। हे अनघ ! शुक्रदोषकी शांतिके लिये जिन औषधियोंका हम वर्णन करआये हैं, क्लैब्यदोषकी शांतिके लिये भी उन्हीं औषधोंका प्रयोग करना चाहिये। तथा क्षतक्षीण रोगमें जो चिकित्सा औषधि आदि कही है उसका प्रयोग करना भी हितकारक है तथा वैद्य रोगीका देह, दोष, अग्निबल विचार और औषधकालकी परीक्षा करके वस्तिकर्म, औषधियोंसे सिद्ध किये घृत तथा वृष्य योग और रसायन प्रयोगोंका सेवन करे॥८५॥८६॥

व्यवायहेतुजं क्लैब्यं यत्स्याद्धेतुविपर्य्ययात्।
दैवव्यपाश्रयैश्चैव भेषजैश्चाभिचारजम्।
समासेनैतदुद्दिष्टं भेषजं क्लैब्यशान्तये ॥ १८७ ॥

जो अत्यन्त मैथुन करनेसे नपुंसक हुआहो उसको मैथुनका परित्याग करा वृष्य योगोंका सेवन करावे। अभिचार अर्थात् किसी मन्त्रतंत्रादिसे उत्पन्नहुई क्लीबतामें

दैवव्यपाश्रय अर्थात् अभिमंत्रित औषधियोंका प्रयोग करे। संक्षेपसे नपुंसकताकी शांतिके लिये औषध चिकित्साका कथन करदिया है ॥ १८७ ॥

बीजोपघातज क्लैब्यकी चिकित्सा।

विस्तरेण प्रवक्ष्यामि क्लैब्यानां भेषजं पुनः।
सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्य स्नेहयुक्तं विरेचनम्।
अनुवासनं ततः कुर्य्यादथवास्थापनं पुनः॥ १८८ ॥
प्रदद्यान्मतिमान्वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत्।
पलाशैरण्डमुस्ताद्यैः पश्चादास्थापयेत्ततः॥ १८९ ॥

अब विशेषतासे क्लैब्यरोगसे पीडित मनुष्योंकी चिकित्साको कहते हैं-प्रथम क्लैब्यरोगी, स्वेदन और स्नेहन करके स्नेहयुक्त विरेचन देवे। फिर बुद्धिमान् वैद्य उस रोगीको अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे। पीछे ढाकका छिलका, एरंडकी जडका छिलका और नागरमोथा आदि द्रव्योंके क्काथसे आस्थापनवस्ति करे॥१८८॥१८९॥

वाजीकरणयोगाश्च पूर्वं ये समुदाहृताः।
भिषजा ते प्रयोज्याः स्युः क्लैब्ये बीजोपघातजे ॥ १९० ॥

इस प्रकार वस्तिकर्म आदि करनेके अनन्तर वाजीकरणाध्यायमें कहेहुए वाजीकरण योगोंका वैद्य विधिवत् प्रयोग करे तो बीजोपघातजनित नपुंसकता दूर होती है॥१९०॥

ध्वजभंगकी चिकित्सा।

ध्वजभङ्गकृतं क्लैब्यं ज्ञात्वा तस्याचरेत्क्रियाम्।
प्रदेहान् परिषेकांश्च कुर्य्याद्वा रक्तमोक्षणम्।
स्नेहपानञ्च कुर्वीत सस्नेहं वा विरेचनम् ॥ १९१ ॥
अनुवासं ततः कुर्य्यादथवास्थापनं पुनः।
व्रणवच्च क्रियाः सर्वास्तत्र कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ १९२ ॥

ध्वजभंगजनित नपुंसकतामें-प्रलेप, परिषेक और दुष्ट रुधिरका निकालना हितकारक है। तथा स्नेहपान और स्नेहयुक्त विरेचन कराना फिर अनुवासन, उसके अनन्तर आस्थापन क्रिया करना हितकारक है। ध्वजभंगके घावोंमें चतुर वैद्य संपूर्ण क्रिया व्रणरोगके समान करे ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

जरासम्भव और क्षयज क्लैब्यकी चिकित्सा।

जरासम्भवजे क्लैब्ये क्षयजे चैव कारयेत्।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य सस्नेहं शोधनं हितम् ॥ १९३ ॥

क्षीरसर्पिर्वृष्ययोगा वस्तयश्चैव यापनाः।
रसायनप्रयोगाश्च तयोर्भेषजमुच्यते ॥ १९४ ॥

जरासंभव और क्षयज नपुंसकतामें स्नेहन और स्वेदन करके उचित रीतिपर मृदु, स्निग्ध, शोधन क्रिया करना चाहिये। तथा इन दोनों प्रकारके क्लैब्योंमें वृष्ययोगोंसे सिद्ध किये हुए घृत और दूध, वृष्ययोग,क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग करना चाहिये॥

विस्तरेणैतदुद्दिष्टं क्लैब्यानां भेषजं मया ॥ १९५ ॥

इस प्रकार विस्तारपूर्वक हमने नपुंसकोंके लिये औषध चिकित्साका वर्णन किया है॥

प्रदररोगके सामान्य हेतु और सम्प्राप्ति।

यः पूर्वमुक्तः प्रदरः शृणु हेत्वादिभिस्तु तम्।
यात्यर्थं सेवते नारी लवणाम्लगुरूणि च।
कटून्यथ विदाहीनि स्निग्धानि पिशितानि च ॥ १९६ ॥
ग्राम्यौदकानि मेध्यानि कृसरं पायसं दधि।
शुक्तमस्तुसुरादीनि भजन्त्याः कुपितोऽनिलः ॥ १९७ ॥
रक्तं प्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशयगताः शिराः।
रजोवहाः समाश्रित्य रक्तमादाय तद्रजः।
यस्माद्विवर्द्धयत्याशु रक्तपित्तं समारुतम् ॥ १९८ ॥
तस्मादसृग्दरं प्राहुरेतत्तन्त्रविशारदाः।
रजः प्रदीर्य्यते यस्मात्प्रदरस्तेन स स्मृतः ॥ १९९ ॥

पहिले प्रदररोगको कह आये हैं अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको सुनो। जो स्त्री अत्यंत नमक, खटाई, भारी पदार्थ, चरपरे पदार्थ, विदाही अन्नपान, स्निग्ध द्रव्य, मांस, ग्राम्य और जलजजीवोंके मांस, अभिष्यन्दी पदार्थ, खिचडी, खीर, दही, सिरका, दधिमण्ड और सुरा आदिका निरन्तर और अत्यंत सेवन करती हैं उनके शरीरमें वायुका कोप होता है और रक्त अत्यन्त बढजाता है उस समय कुपित हुआ वायु रक्तमें मिलकर गर्भस्थ मासिक रजवाहिनी सिराओंमें आश्रित होकर रजकी वृद्धि करता है। वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले इस वायुयुक्त रक्तपित्तको रक्तप्रदर कहते हैं। क्योंकि इस रोगमें स्त्रीके रजका प्रदरण (स्रवण) होता है इसलिये इस रोगको प्रदर कहते हैं९६–९९.

प्रदररोगके चार भेद।

सामान्यतः समुद्दिष्टं कारणं लिङ्गमेव च।
चतुर्विधं व्यासतस्तु वाताद्यैः सन्निपाततः।

अतः परं प्रवक्ष्यामि हेत्वाकृतिभिषग्जितम् ॥ २००॥

संक्षेपसे प्रदररोगके कारण और लक्षणोंको कथन कर दिया है और विशेषतासे प्रदररोग चार प्रकारका होता है। जैसे–वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज। अब इन चार प्रकारके प्रदरोंके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करते हैं ॥ २०० ॥

वातजप्रदरके हेतु, लक्षण।

रूक्षादिभिर्मारुतस्तु रक्तमादाय पूर्ववत् ।
कुपितः प्रदरं कुर्य्याल्लिङ्गं तस्य च मे शृणु ॥ २०१॥
फेनिलं तनु रूक्षञ्च श्यावमारुणमेव च ।
किंशुकोदकसङ्काशं सरुजं वाथ नीरुजम् ॥ २०२ ॥
कटीवंक्षणहृत्पार्श्वपृष्ठश्रोणिषु मारुतः ।
कुरुते वेदनां तीव्रामेतद्वातात्मकं विदुः ॥ २०३ ॥

रूक्ष आदि वातकारक पदार्थोंके सेवनसे वायु कुपित होकर रक्तमें प्राप्त हो रक्तकी प्रवृत्ति कर देता है अर्थात् वातजनित प्रदररोगको उत्पन्न करता है। उसके ये लक्षण होते हैं–वातजनित प्रदरका रक्त झागदार, पतला, रूक्ष, श्याम, अरुण और केसुओंके जलके समान होता है। वह पीडाके साथ अथवा विनाही पीडासे भी स्रवता है। और उस स्त्रीके कमर, वंक्षण, हृदय, पार्श्व, पीठ और नितम्बोंमें वातजनित तीव्र पीडा उत्पन्न होती है। इन लक्षणोंवाला वायुका प्रदर जानना ॥२०१–२०३॥

पित्तज प्रदरके हेतु, लक्षण।

अम्लोष्णलवणक्षारैः पित्तं प्रकुपितं यदा ।
पूर्ववत्प्रदरं कुर्य्यात्पैत्तिकं लिङ्गतः शृणु ॥ २०४ ॥
सनीलमथवा पीतमत्युष्णमसितं तथा ।
नितान्तरक्तं स्रवति मुहुर्मुहुरथार्त्तिमत् ॥ २०५ ॥
विदाहरागतृण्मोहज्वरभ्रमसमायुतम् ।
असृग्दरं पैत्तिकं तु श्लैष्मिकं तु प्रवक्ष्यते ॥ २०६ ॥

खट्टे, गर्म, नमकीन और खारे पदार्थोंके अत्यंत सेवन करनेसे कुपितहुआ पित्त मासिक रजवाहिनी शिराओंमें प्राप्त होकर रक्तकी वृद्धि कर पित्तज प्रदरको उत्पन्न करता है। उसके लक्षणोंको श्रवण करो–पित्तजनित प्रदरमें रक्तका वर्ण नीला, पीला और काले वर्णका होता है तथा यह रक्त अत्यंत गरम और वारंवार पीडाके साथ

निरन्तर स्राव होता रहता है। इसमें विदाह, राग, प्यास, ज्वर और भ्रम यह लक्षण होते हैं। इसको पित्तजनित प्रदर कहते हैं अब कफजनित प्रदरके लक्षणोंको श्रवण करो॥

कफज प्रदरके हेतु लक्षण।

गुर्वादिभिर्हेतुभिश्च पूर्ववत्कुपितः कफः।
प्रदरं कुरुते तस्य लक्षणं तत्वतः शृणु ॥ २०७ ॥
पिच्छिलं पाण्डुवर्णञ्च गुरु स्निग्धञ्च शीतलम्।
स्रवत्यसृक् श्लेष्मलञ्च तथा मन्दरुजाकरम्।
छर्द्यरोचकहृल्लासश्वासकाससमन्वितम् ॥ २०८ ॥

भारी पदार्थोंके खानेसे तथा कफके उपकारक आहारविहारके सेवनसे कुपित हुआ कफ पूर्वके समान रजवाही नसोंमें प्रवेश हो कफजनित प्रदरको दूर करता है। उसके यह लक्षण होते हैं। कफजनित प्रदरका रक्त पिच्छिल, पाण्डुवर्ण, भारी, चिकना, शीतल और कफयुक्त रुधिरका स्राव होता है। इसमें मंद पीडा, वमन, अरुचि, हल्लास, श्वास और खांसी यह लक्षण होते हैं ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

त्रिदोषज प्रदर हेतु, लक्षण।

वक्ष्यते क्षीरदोषाणां सामान्यमिह कारणम्।
यत्तदेव त्रिदोषस्य कारणं प्रदरस्य तु ॥ २०९ ॥

इसके आगे स्तन्यदोषोंके जो सामान्य कारण कहेंगे वही त्रिदोषजनित प्रदरके कारण जानना चाहिये। त्रिदोषज लक्षणोंसे युक्त प्रदर एक अवस्थावाला नहीं होता उसमें त्रिदोषजनित अनेकरूप होते हैं ॥ २०९ ॥

त्रिलिङ्गसंयुतं विद्यान्नैकावस्थमसृग्दरम्।
नारी त्वतिपरिक्लिष्टा यदा प्रक्षीणशोणिता।
सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्धस्तदानिलः॥ २१० ॥
रक्तमार्गेण सृजति प्रत्यनीककरं कफम्।
दुर्गन्धं पिच्छिलं पीतं विदग्धं पित्ततेजसा ॥ २११ ॥
वसां मेदश्च यावद्धि समुपादाय वेगवान्।
सृजत्यपत्यमार्गेण सर्पिर्मज्जावसोपमम् ॥ २१२ ॥
शश्वत्स्रवत्यथास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम्।
क्षीणरक्तां दुर्बलाञ्च तामसाध्यां विवर्जयेत् ॥ २१३ ॥

रक्तस्राव होनेसे स्त्री क्रमपूर्वक अत्यंत परिक्लिष्ट और क्षीणरक्त होती है। उस समय संपूर्ण दोषोंको कुपित करनेवाले हेतुओंके आचरण करनेसे वृद्धिको प्राप्तहुए वात, पित्त, कफ कोपको प्राप्त हो रक्तमार्गसे रजवाहिनी नसोंमें प्राप्त होकर योनिद्वारा रक्तको साध्य असाध्य कफको निकालते हैं। उस त्रिदोषजनित प्रदरका रक्त पित्तके तेजसे दुर्गंधित पिच्छिल और विदग्ध होता है। वेगवान् वायु शरीरकी चर्बी और मेदको लेकर घृत, मज्जा और वसाके समान वर्णवाला स्राव योनिमार्गसे निरन्तर कराता है। इस प्रकार त्रिदोषजनित प्रदरसे स्त्रीको प्यास, दाह और ज्वर होता है इस क्षीणरक्ता दुर्वला स्त्रीको असाध्य जानकर त्यागदेना चाहिये ॥२१०-२१३॥

शुद्ध रजके लक्षण।

मासान्निष्पिच्छदाहार्त्तिपञ्चरात्रानुबन्धि च।
नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ २१४ ॥
गुञ्जाफलसवर्णञ्च पद्मालक्तकसन्निभम्।
इन्द्रगोपकसङ्काशमार्त्तवं शुद्धमेव तत् ॥ २१५ ॥

जिस स्त्रीका महीने २ ऋतुधर्मवती होकर पांचरात्रिपर्यन्त पिच्छिलता और दाहरहित तथा पीडारहित न बहुत ज्यादा न बहुत कम ठीक समयानुसार मासिक ऋतुका रुधिर गिरे उसको शुद्ध रज जानना। यह रक्त गुंजाफलके समान लालवर्णका, लालकमलके समान अथवा लाखके रसके समान या बीरवहूटीके समान लालवर्णका होता है उसको शुद्ध रज जानना चाहिये ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

प्रदररोगकी चिकित्साका निर्देश।

योनीनां वातलाद्यानां यदुक्तमिह भेषजम्।
चतुर्णां प्रदराणाञ्च तत्सर्वं कारयेद्भिषक् ॥ २१६ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज योनिरोगोंमें जो चिकित्साका कथन किया है वही चिकित्सा चार प्रकारके प्रदररोगमें भी वैद्य करे ॥ २१६ ॥

रक्तातिसारिणां यच्च तथा शोणितपित्तिनाम्।
रक्तार्शसाञ्च यत्प्रोक्तं भेषजं तच्च कारयेत् ॥ २१७ ॥

रक्तातिसार और रक्तपित्तमें तथा रुधिरकी बवासीरमें जो औषधि प्रयोग कथन किये हैं वही प्रदररोगको दूर करनेके लिये सेवन कराने चाहिये ॥ २१७ ॥

अथ स्तन्यदोषचिकित्सा।

धात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ता विस्तरतः पुरा।
स्तन्यसञ्जननञ्चैव स्तन्यस्य च विशोधनम् ॥ २१८ ॥

वातादिदुष्टे लिङ्गञ्च क्षीणस्य च चिकित्सितम्।
तत्सर्वमुक्तं ये त्वष्टौ क्षीरदोषाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २१९ ॥
वातादिष्वेव तान्विद्याच्छास्त्रचक्षुर्भिषक्तमः।
त्रिविधास्तु यतः शिष्यास्ततो वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ २२० ॥

पहिले धाईके स्तन्य अर्थात् स्त्रीके स्तनोंके दूधका वर्णन जातिसूत्रीयाध्यायमे विशेष रूपसे कहचुके है तथा उसी अध्यायमें दूधके बढानेवाली और दूधके दोषोंको शोधन करनेकी चिकित्सा भी कही जा चुकी है। और वातादिदोषोंसे दूषितहुए स्तनोंके दूधके लक्षण और चिकित्सा भी कही जा चुकी है तथा अष्टोदरीय अध्यायमें आठ प्रकारके क्षीरदोषोंका वर्णन भी किया जा चुका है। शास्त्रको जाननेवाला बुद्धिमान् वैद्य वातादि दोषोंके लक्षण देखकर जैसा विकार हो वैसी चिकित्सा करे। परन्तु मध्यम और हीन बुद्धिके वैद्य उस प्रकार वर्णन कियेहुए निदान चिकित्साद्वारा यथोचित लाभ नहीं उठा सकते। उनके लिये अब फिर स्थूलरूपसे वर्णन करते हैं क्योंकि शिष्य उत्तम मध्यम और निकृष्ट भेदोंसे तीन प्रकारके होते हैं २१८–२२०

स्तन्यदोषोंके हेतु।

अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात्।
लवणाम्लकटुक्षारप्रक्लिन्नानाञ्च सेवनात् ॥ २२१ ॥
मनःशरीरसन्तापादस्वप्नान्निशि चिन्तनात्।
प्राप्तवेगप्रतीघातादप्राप्तोदीरणेन च ॥ २२२ ॥
परमान्नं गुडकृतं कृशरं दधि मत्स्यकम्।
अभिष्यन्दीनि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च ॥ २२३ ॥
भुक्त्वा भुक्त्वा दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात्।
अनायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्शनैः ॥ २२४ ॥
दोषाः क्षीरवहाः प्राप्य शिराः स्तन्यं प्रदूष्य च।
कुर्य्युरष्टविधं भूयो दोषास्तान्मे निबोधत ॥ २२५ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे, अथवा अजीर्णसे असात्म्य, विषम, विरुद्ध और अत्यंत भोजनके करनेसे, नमकीन, खट्टे, चरपरे, खारे और क्लेदकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे, मानसिक संताप और शारीरिक संतापसे, रात्रिमें न सोनेसे, अत्यंत चिन्ता होनेसे, आयेहुए मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, वेग विना ही मलमूत्रादिके त्याग

करनेका यत्न करनेसे, गुडसे बनेहुए पक्कान्न, खिचडी, दही, मछली, अभिष्यंदी, ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंका मांस अधिक सेवन करनेसे, नित्यप्रति भोजन करतेही दिनमें सोजानेसे अथवा विना भोजन कियेही दिनमें सोजानेसे, अत्यंत मद्यके पीनेसे, किसी प्रकारका प्रयास न कर आलसी बैठे रहनेसे, किसी प्रकारकी चोट लगनेसे, क्रोधसे और रोगद्वारा शरीरके कृश होजानेसे वातादि दोष कुपित होकर क्षीरवाही शिराओंमें प्राप्त हो स्तनोंके दूधको दूषित कर आठ प्रकारके स्तन्य दोषोंको करते हैं उनको मुझसे श्रवण करो ॥ २२१-२२५ ॥

वातादिभेदसे उनके लक्षण।

वैरस्यं फेनसंघातं रौक्ष्यञ्चेत्यनिलात्मके।
पित्ताद्वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्नेहपैच्छिल्यगौरवम्।
कफाद्भवति रूक्षाद्यैरनिलः स्वैः प्रकोपनैः ॥ २२६ ॥
क्रुद्धः क्षीराशयं प्राप्य रसं स्तन्यस्य दूषयेत्।
विरसं वातसंसृष्टं कृशीभवति तत्पिबन्।
न चास्य स्वदते क्षीरं कृच्छ्रेण च विवर्द्धते ॥ २२७ ॥

वातदूषित स्तन्यके स्तनोंका दूध विरस, झागदार और रूक्ष होता है। पित्तदूषित स्तन्य विवर्ण और दुर्गंधित होता है। कफदूषित स्तन्य स्निग्ध, पिच्छिल और भारी होता है। वायु अपने रूक्ष आदि कारणोंसे कोपको प्राप्त हो दुग्धाशयमें प्राप्त होजाता है तब स्तन्य रसको दूषित कर देता है। उस वातसंसृष्ट विरस दूधके पीनेसे बालक कृश होजाता है। और दूध पीनेमें बालककी रुचि नहीं रहती, वह बालक बडी कठिनतासे कुछ कुछ वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

वातदूषित स्तन्यके दोष।

तथैव वायुः कुपितः स्तन्यमन्तर्विलोडयन्।
करोति फेनसंघातं तत्तु कृच्छ्रात्प्रवर्तते ॥ २२८ ॥
तेन क्षामस्वरो बालो बद्धविण्मूत्रमारुतः।
वातिकं शीर्षरोगं वा पीनसं वाधिगच्छति ॥ २२९ ॥
पूर्ववत्कुपितः स्तन्ये स्नेहं शोषयतेऽनिलः।
रूक्षं तत्पिबतो रौक्ष्याद्बलह्रासश्च जायते ॥ २३० ॥

जब वही वायु कुपित होकर स्तनोंके भीतर प्राप्त हो दूधको मन्थन करता है उससे दूध झागदार और थोडा २ निकलता है। उसके पीनेसे बालकको स्वरभंग, मलमू-

त्रका विबंध, वातजनित शिरोरोग और प्रतिश्याय होता है। वही वायु कुपित होकर स्तन्यके स्नेहभागको शोषण करडाले तो उससे दूध रूक्ष होजाता है। उस रूक्ष दूधको पीनेसे रूक्षताके कारण बालकके बलका ह्रास होता है ॥ २२८-२३० ॥

पित्तदूषित स्तन्यके लक्षण ।

पित्तमुष्णादिभिः क्रुद्धं स्तन्याशयमभिप्लुतम् ।
करोति स्तन्यवैवर्ण्यनीलपीतासितादिकम् ॥ २३१ ॥
विवर्णगात्रः स्विन्नः स्यात्तृष्णालुर्भिन्नविट् शिशुः ।
नित्यमुष्णशरीरश्च नाभिनन्दति तत्स्तनम् ॥ २३२ ॥
पूर्ववत्कुपिते पित्ते दौर्गन्ध्यं क्षीरमृच्छति ।
पाण्ड्वामयस्तत्पिबतः कामला च भवेच्छिशोः ॥ २३३ ॥

उष्ण आदि पित्तकारक हेतुओंसे कुपित हुआ पित्त स्तनोंमें प्राप्त होकर दूधके रसको बिगाड देता है। जिससे दूध विवर्ण, नीला, पीला और काला आदिवर्णोंवाला होजाता है। इस पित्तदूषित दूधके पीनेसे बालक विवर्ण, सदैव स्वेदयुक्त और तृषातुर रहता है तथा इस बालकको पतले दस्त लगते हैं शरीर गर्म रहता है और यह दूध पीनेकी इच्छा नहीं करता। जब वह पित्त उसी प्रकार कुपित हो दूधको बिगाडता है तब दूधमेंसे दुर्गंध आने लगती है। इस दूधके पीनेसे बालकको पाण्डुरोग और कामलारोग उत्पन्न होता है ॥ २३१-२३३ ॥

कफदूषित स्तन्यके लक्षण ।

क्रुद्धो गुर्वादिभिः श्लेष्मा क्षीराशयगतः स्त्रियाः ।
स्नेहान्वितत्वात्तत्क्षीरमतिस्निग्धं करोति तु ॥ २३४ ॥
छर्दनः कुन्थनस्तेन लालालुर्जायते शिशुः ।
नित्योपदिग्धैः स्रोतोभिर्निद्राक्लमसमन्वितः ।
श्वासकासपरीतस्तु प्रसेकतमकान्वितः ॥ २३५ ॥
अभिभूय कफः स्तन्यं पिच्छिलं कुरुते यदा ।
लालालुः शूनवक्त्राक्षिर्जडः स्यात्तु पिबञ्छिशुः ॥ २३६ ॥
कफः क्षीराशयगतो गुरुत्वात्क्षीरगौरवम् ।
अतिस्नेहान्वितं पीत्वा बालो हृद्रोगमृच्छति ।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् कुर्य्यात् क्षीरसमाश्रितान् ॥ २३७

भारी पदार्थोंके सेवन आदि कारणोंसे कुपित हुआ कफ स्तन्याशयमें प्राप्त होकर दूधको चिकनाईयुक्त अथवा अत्यंत चिकना बना देता है इस दूधके पीनेसे बालकको वमन, कुंथन, लारका बहना तथा कफद्वारा बालकके स्रोत लिहसजानेसे उसको अत्यंत निद्रा, आलस्य, श्वास, खांसी, लारका बहना और तमकश्वास उत्पन्न होता है जब वह कफ दूधको बिगाडकर पिच्छिल बना देता है तो उसके पीनेसे बालकके मुखसे लार बहे, मुख और नेत्र सूजनयुक्त हों तथा शरीरमें जडता होती है। कफ दुग्धाशयमें प्रवेश कर दूधमें भारीपन उत्पन्न करदेता है। उससे दूध भारी और अत्यंत चिकना होता है। उसके पीनेसे बालकको हृद्रोग तथा दूध सम्बन्धी कफजनित अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २३४-२३७ ॥

त्रिदोषदूषित स्तन्य।

क्षीरे वातादिभिर्दुष्टे सम्भवन्ति तदात्मकाः।

सन्निपातदूषित दूधमें अनेक प्रकारके वातादिजनित मिले जुले लक्षण होते हैं।

दूषित स्तन्यकी चिकित्सा।

तत्रादौ स्तन्यशुद्ध्यर्थं धात्रीं स्नेहोपपादिताम्।
संस्वेद्य विधिवद्वैद्यो वमनेनोपपादयेत् ॥ २३८ ॥

स्तन्यदोषमें दूधकी शुद्धिकें लिये प्रथम धायको स्नेहन करे। फिर भली प्रकार स्वेदन करके वैद्य विधिपूर्वक वमन करावे ॥ २३८ ॥

वचाप्रियङ्गुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्षपैः।
कल्कैर्निम्बपटोलानां क्वाथैः सलवणैर्वमेत् ॥ २३९ ॥
सम्यग्वान्तां यथान्यायं कृतसंसर्जनां ततः।
दोषकालबलापेक्षी स्नेहयित्वा विरेचयेत् ॥ २४० ॥

वच, फूलप्रियंगु, मुलैठी, मैनफल, इन्द्रयव और सफेद सरसों इन सबका कल्क कर सेंधानमक मिला गर्म जलसे पीवे अथवा नीमकी छाल और पटोलकी जडका क्वाथ नमक मिलाकर गर्मगर्म पीवे इससे वमन होती है। जब देखे कि भली प्रकार वमन होगई है तो फिर विधिवत् पेयादि सेवन करावे। फिर उचित रीतिसे स्नेहन और स्वेदन कर दोष, काल और बल आदि विचारकर विरेचन करावे ॥ २३९ ॥ २४० ॥

त्रिवृतामभयां वापि त्रिफलारससंयुताम्।
पाययेन्मधुसंयुक्तामभयाञ्चापि केवलाम्।
पाययेन्मूत्रसंयुक्तां विरेकार्थञ्च शास्त्रवित् ॥ २४१ ॥

निशोथ अथवा हरडका कल्क त्रिफलेके क्वाथके साथ अथवा केवल त्रिफलेका क्वाथ शहद मिला गोमूत्रके साथ शास्त्रको जाननेवाला वैद्य विरेचनके लिये पिलावे ॥२४१॥

अथ सम्यग्विरिक्ताश्च कृतसंसर्जनां पुनः।
ततो दोषावशेषघ्नैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ २४२ ॥

जब इस धायको यथोचित विरेचन होजाय तो पेयादि क्रमसे उसकी रक्षा करे। और बाकी रहे दोषको दोषनाशक अन्नपानोंद्वारा हरण करे ॥ २४२ ॥

शालयो यष्टिका वा स्युः श्यामाका भोजने हिताः।
प्रियङ्गवः कोरदूषा यवा वेणुयवास्तथा ॥ २४३ ॥

तथा शालीचावल, साठीचावल, श्यामाकचावल, कांगुनी, कोद्रव, यव, वेणुयव यह सब भोजनके लिये हितकारी हैं ॥ २४३ ॥

वंशवेत्रकलायाश्च सस्नेहा यूषसंस्कृताः।
मुद्गान्मसूरान्यूषार्थे कुलत्थांश्च प्रकल्पयेत् ॥ २४४ ॥

बाँस और बेतकी कोंपल, मटर, मूंग, मसूर और कुलथी इन सबका स्नेहयुक्त यूष (दाल) बनाकर यूषके लिये कल्पना करे ॥ २४४ ॥

निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताकामलकैः श्रृतान्।
सव्योषसैन्धवान्यूषान् दापयेत् स्तन्यशोधनान् ॥ २४५ ॥

नीमके पत्र, बेतकी कोंपल, पटोल, बैंगन और आमलेके साथ सिद्ध किये यूप, त्रिकुटेका चूर्ण और सेंधानमक मिलाकर सेवन करे तो स्तन्यदोषकी शुद्धि होती है॥

शशान् कपिञ्जलानेणान् संस्कृतांश्च प्रकल्पयेत्।
शार्ङ्गेष्टासप्तपर्णत्वगश्वगन्धाश्रृतं जलम् ॥ २४६ ॥
पाययेताथवा स्तन्यशुद्धये कटुरोहिणीम्।
अमृतासप्तपर्णत्वक्क्वाथश्चैव सनागरम् ॥ २४७ ॥
किराततिक्तकक्वाथं श्लोकपादेरितान्पिबेत्।
त्रीनेतान् स्तन्यशुद्ध्यर्थमिति सामान्यभेषजम्।
कीर्त्तितं स्तन्यदोषाणां पृथगन्यं निबोधत ॥ २४८ ॥

खरगोश, सफेद तीतर और एणका मांसरस विधिवत् संस्कार करके सेवन करावे तथा करंज, सतवनकी छाल और असगन्धसे सिद्ध किया जल पिलावे । या कुटकीका क्वाथ पिलावे। अथवा गिलोय और सप्तपर्णकी छालका क्वाथ सोंठका चूर्ण

मिला पिलावे तो स्तन्यदोष दूर होकर दूध शुद्ध होजाता है । अथवा चिरायतेके क्वाथको स्तन्यदोषकी शुद्धिके लिये पीवे । यह आधे २ श्लोकमें कहे तीन प्रकारके क्वाथ स्तन्यदोषको शुद्ध करते हैं । सामान्यरूपसे स्तन्यदोषोंकी चिकित्साको कथन करदिया है अब विशेषरूपसे श्रवण करो ॥ २४६-२४८ ॥

स्तन्यदोषोंकी विशेष चिकित्सा।

पाययेद्धि रसक्षीराद्राक्षामधुकशारिवाः ।
श्लक्ष्णपिष्टां पयस्याञ्च समालोड्य सुखाम्बुना ॥ २४९ ॥
पञ्चकोलकुलत्थैश्च पिष्टैरालेपयेत् स्तनौ ।
शुष्कौ प्रक्षाल्य निर्दुह्यात्तथा स्तन्यं विशुध्यति ॥ २५० ॥

धायका दूध यदि विरस हो तो उसको मुनक्का, मुलैठी और शारिवा तथा क्षीरविदारी या क्षीरकाकोली इन सबको बारीक पीस सुखोष्ण जलमें घोलकर पिलावे पंचकोल और कुलथीको बारीक पीसकर स्तनोंपर लेप करे जब सूखजाय तो उतारकर धोयदेय । इस प्रकार बारबार लेप करनेसे भी स्तन्यदोषकी शुद्धि होती है॥४९॥५०॥

फेनसंघातवत्क्षीरं यस्यास्तां पाययेत च ।
पाठानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाः पिष्ट्वा सुखाम्बुना ॥ २५१ ॥

जिस धायका दूध अत्यन्त झागदार हो उसको पाढ, सोंठ, करंजकी छाल और मूर्वाके कल्कको सुखोष्ण जलमें घोलकर पिलावे ॥ २५१ ॥

अञ्जनं तगरं दारु बिल्वमूलं प्रियङ्गवः ।
स्तनयोः पूर्ववत्कार्य्यं लेपनं क्षीरशोधनम् ॥ २५२ ॥

रसांजन, तगर, देवदारु, बेलगिरी और फूलप्रियंगु इन सबको पीसकर स्तनोंपर लेपन करे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होता है ॥ २५२ ॥

किराततिक्तं शुण्ठी सामृता क्वाथयेद्भिषक् ।
तं क्वाथं पाययेद्धात्रीं स्तन्यदोषनिबर्हणम् ॥ २५३ ॥

चिरायता, सोंठ और गिलोयका क्वाथकर वैद्य धायको पिलावे तो दूधके दोष दूर होते हैं॥

स्तनौ चालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्षपैः ।
षड्विरेकाश्रितीयोक्तैरौषधैः स्तन्यशोधनैः ॥ २५४ ॥
रूक्षक्षीरा पिबेत्क्षीरं तैर्वा सिद्धं घृतं पिबेत् ।
पूर्ववज्जीवकाद्यञ्च पञ्चमूलं प्रलेपनम् ।
स्तनयोः संविधातव्यं सुखोष्णं स्तन्यशोधनम् ॥ २५५ ॥

यव, गेहूं और सफेद सरसोंका कल्ककर स्तनोंपर लेप करे अथवा षड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायमें कहीहुई स्तन्यशोधक औषधियोंसे सिद्ध किये हुए दूध और घृतको रूक्ष दूधवाली स्त्री पान करे। अथवा जीवक आदिगण वा लघुपंचमूलके कल्कको सुखोष्ण कर दोनों स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होजाता है और रूक्षता दूर होती है ॥ २५४ ॥ २५५ ॥

यष्टीमधुकमृद्वीकापयस्यासिन्धुवारिकाः।
शीताम्बुना पिबेत्कल्कं क्षीरवैवर्ण्यनाशनम् ॥ २५६ ॥

द्राक्षामधुककल्केन स्तनौ वास्याः प्रलेपयेत्।
प्रक्षाल्य वारिणा चैव निर्दुह्यात्तौ पुनः पुनः ॥ २५७ ॥

मुलैठी, मुनक्का, क्षीरकाकोली और संभालूकी जडका छिलका शीतलजलमें घोटकर पीवे तो स्तनोंके दूधकी विवर्णता दूर होती है तथा मुनक्का और मुलैठीके कल्कको स्तनोंपर लेप करे। लेपके सूखजानेपर जलके साथ धोदेवे। इस प्रकार बारबार लेप करे तो स्तनोंके दूधकी विवर्णता दूर होती है ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

विषाणिकाजशृङ्गौ च त्रिफलां रजनीं वचाम्।
पिबेत्क्षीराम्बुना पिष्ट्वा क्षीरदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ २५८ ॥

काकडासिंगी, सिंगी, हरड, बहेडे, आमले, हल्दी और वच इन सबको दूधमें पकाकर अथवा दूधके साथ पीसकर पीनेसे स्तनोंके दूधकी दुर्गन्ध दूर होती है ॥२५८॥

लिह्याद्वाप्यभयाचूर्णं सव्योषं माक्षिकप्लुतम्।
क्षीरदौर्गन्ध्यनाशार्थं धात्री पथ्याशिनी तथा ॥ २५९ ॥

हरड और त्रिकुटेके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे और पथ्य भोजनका सेवन करती रहे तो धायके दूधकी दुर्गंध दूर होती है ॥ २५९ ॥

शारिवोशीरमञ्जिष्ठाश्लेष्मातकसचन्दनैः।
पत्राम्बुचन्दनोशीरैः स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत् ॥ २६० ॥

शारिवा, खस, मंजीठ, लसोढेकी जडका छिलका और चंदन अथवा पत्रज, नेत्रवाला, लालचन्दन और खस इनको बारीक पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे दूधकी दुर्गंध दूर होती है ॥ २६० ॥

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाः पिष्ट्वा सुखाम्बुना।
पीत्वा ससैन्धवाः क्षिप्रं क्षीरशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ २६१ ॥

देवदारु, नागरमोथा, पाटला और सेंधानमक इन सबको बारीक पीसकर सुखोष्ण जलके साथ पीवे तो स्तनोंके दूधकी स्निग्धता (कफजनित दोष) दूर होकर स्तनोंका दूध शीघ्र शुद्ध होजाता है ॥ २६१ ॥

पाययेत्पिच्छिलक्षीरां शार्ङ्गेष्टामभयां वचाम् ।
मुस्तनागरपाठाश्च पीताः स्तन्यविशोधनाः ॥ २६२ ॥

यदि स्तनोंका दूध पिच्छिल हो तो महाकरंजका छिलका या हरड अथवा वच या नागरमोथा, सोंठ और पाढ इनका क्वाथ कर पीवे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होता है २६२

तक्रारिष्टमपि पिबेदर्शसां यन्निदर्शितम् ।
विदारीबिल्वमधुकैः स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत् ॥ २६३ ॥

अर्शरोगचिकित्सिताध्यायमें जो तक्रारिष्ट कथन करआये हैं उसके पीनेसे कफज-नित स्तन्यदोष दूर होजाते हैं। तथा विदारीकंद, बिल्वकी जडका छिलका और मुलैठी इनको पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे स्तनोंकी दूधकी पिच्छिलता दूर होती है २६३

त्रायमाणामृतानिम्बपटोलत्रिफलाश्रृतम् ।
गुरुक्षीरा पिबेदेतत्स्तन्यदोषविशुद्धये ।
पिबेद्वा पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ॥ २६४ ॥

त्रायमाण, गिलोय, निम्ब, पटोलपत्र और त्रिफलेका क्वाथ पीनेसे स्तनोंके दूधका भारीपन दूर होता है। अथवा पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठका क्वाथ बनाकर पीवे तो स्तनोंके दूधका भारीपन दूर होता है ॥ २६४ ॥

बलानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाभिर्लेपयेत्स्तनौ ।
पृश्निपर्णीपयस्याभ्यां स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत् ॥ २६५ ॥

बला, सोंठ, महाकरंजकी छाल और मूर्वाका कल्क कर स्तनोंपर लेप करे अथवा पृष्ठपर्णी और क्षीरकाकोलीके कल्कका स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंके दूधकी गुरुता दूर होती है ॥ २६५ ॥

अष्टावेते क्षीरदोषा हेतुलक्षणभेषजैः ।
निर्दिष्टाः क्षीरदोषोत्थास्तथोक्ताः केचिदामयाः ॥ २६६ ॥

इस प्रकार आठ प्रकारके स्तन्यदोषोंके हेतु लक्षण और औषधोंका कथन कर-दिया है। अब दूधके दोषसे होनेवाले बालकोंके सम्पूर्ण रोगोंको कथन करते हैं ॥

क्षीरदोषज बालरोगोंकी चिकित्सा ।

दोषदूष्यमलाश्चैव महतां व्याधयश्च ये ।

त एव सर्वे बालानां मात्रा त्वल्पतरा मता ॥ २६७ ॥

बालकोंके शरीरमें दोष, दूष्य, मल और व्याधि यह सम्पूर्ण युवा मनुष्योंके समान ही होते हैं । परन्तु बालकोंके लिये औषधिकी मात्रा अत्यन्त अल्प होती है ॥२६७॥

निवृत्तिर्वमनादीनां मृदुत्वं परतन्त्रता ।
वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यं वीक्ष्य बालेषु शास्त्रवित् ।
भेषजञ्चाल्पमात्रन्तु यथाव्याधि प्रयोजयेत् ॥ २६८ ॥
मधुराणि कषायाणि क्षीरवन्ति मृदूनि च ।
प्रयोजयेद्भिषग्बाले मतिमानप्रमादतः ॥ २६९ ॥

बुद्धिमान् वैद्य बालकोंको वमन, विरेचनादि न करावे । क्योंकि बालक एक तो स्वभावसेही कोमल होते हैं दूसरे पराधीन होते हैं और बोलचालकर अथवा अन्य चेष्टासे भी अपने कष्टको समझानेमें असमर्थ होते हैं इसालिये बालकोंको उनकी व्याधि आदि विचारकर अल्पमात्रसे औषधि देनी चाहिये और मीठे क्राथ अथवा दूधके साथ मिलाकर आसानीसे पीजानेवाली औषधि अथवा मीठी औषधि वा मीठेमें मिलाकर उनके रोगानुसार अप्रमत्त अर्थात् सावधान होकर देना चाहिये ॥ २६९ ॥

अत्यर्थस्निग्धरूक्षोष्णमम्लं कटु विपाकि च ।
गुरु चौषधपानान्नमेतद्बालेषु गर्हितम् ॥ २७० ॥

अत्यन्त चिकनी, अत्यन्त रूक्ष, अति गर्म तथा खट्टी, कटुपाकी और भारी औषधि तथा अन्नपान बालकोंको देना अहितकारक होता है ॥ २७० ॥

समासात्सर्वरोगाणामेतद्बालेषु भेषजम् ।
निर्दिष्टं शास्त्रविद्वैद्यः प्रविविच्य प्रयोजयेत् ॥ २७१ ॥

संक्षेपसे बालकोंके संपूर्ण रोगोंकी चिकित्साका वर्णन करादिया है। शास्त्रको जाननेवाला वैद्य बुद्धिपूर्वक बालरोगोंकी मीमांसा कर तदनुसार औषधि प्रयोग करे ॥

सलिङ्गव्यापदो योनेः सनिदानचिकित्सिताः ।
उक्ता विस्तरशः सम्यङ्मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ २७२ ॥

इस प्रकार संपूर्ण योनिरोगोंका निदान और चिकित्सा विस्तारपूर्वक तत्त्वदर्शी महात्मा आत्रेयजीने वर्णन किया है ॥ २७२ ॥

स्थानका उपसंहार।

इति सर्वविकाराणामुक्तमेतच्चिकित्सितम् ।
स्थानमेतद्धि तन्त्रस्य रहस्यं सारमुत्तमम् ॥ २७३ ॥

अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय एव च।
नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरकसंस्कृते॥ २७४॥
तानेतान् कापिलबलः शेषान् दृढबलोऽकरोत्।
तन्त्रस्यास्यवहाऽर्थस्य पूरणार्थं यथातथम्॥ २७५॥

अब इस चिकित्सास्थानका उपसंहार करते हैं कि, इस प्रकार संपूर्ण रोगोंकी चिकित्साको भलेप्रकार इस स्थानमें वर्णन करदिया है। इस आयुर्वेदीय संहिताका रहस्य और उत्तम सार यह चिकित्सास्थानही है। इस चरकतन्त्रमें चिकित्सास्थानके अंतिम १७ अध्याय तथा क़ल्प और सिद्धिस्थान अग्निवेशके संग्रह कियेहुए नहीं मिलते। परन्तु अग्निवेशके मूत्रतन्त्रमें इनका संग्रह है फिर चिकित्साके १७ अध्यायोंको कापिलबलने इस चरकतन्त्रमें जोडदिया और सिद्धि तथा कल्पस्थानके बारह बारह अध्यायोंको दृढबलने इस ग्रन्थको पूर्ण करनेके लिये यथा तथा संग्रह कर इस चरकतन्त्रमें मिलादिया है॥ २७३-२७५॥

उक्तानुक्तरोगोंमें चिकित्साका निर्देश।

रोगा येऽप्यत्र नोद्दिष्टा बहुत्वान्नामरूपतः।
तेषामप्येतदेव स्याद्दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम्॥ २७६॥

इस चिकित्सास्थानमें जिस रोगोंका नामरूपसे विशेष वर्णन नहीं कियागया उन संपूर्ण रोगोंको वैद्यजन वात, पित्त और कफके लक्षणोंद्वारा उन रोगोंकी कल्पना कर उनके अनुसार औषधि कल्पना करे॥ २७६॥

दोषदूष्यनिदानानां विपरीतं हितं ध्रुवम्।
उक्तानुक्तान् गदान् सर्वान् सम्यग्युक्तं नियच्छति॥२७७॥

इस स्थानमें कहेहुए अथवा विना कहे संपूर्ण रोगोंमें दोष, दूष्य और रोगोत्पादक कारणोंसे विपरीत चिकित्सा करना चाहिये। ऐसा करनेसेही सम्पूर्ण रोगोंकी शान्ति होती है॥

देशकालप्रमाणानां सात्म्यासात्म्यस्य चैव हि।
सम्यग्योगोऽन्यथान्येषां पथ्यमप्यन्यथा भवेत्॥ २७८॥

देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और असात्म्यका विचार करके जो हितकारक अन्नपानका प्रयोग कियाजाताहै उसे पथ्य कहते हैं। इससे विपरीत अन्नपानका सेवन कुपथ्य होता है॥

आस्यादामाशयस्थान् हि रोगान्नस्तः शिरोगतान्।
गुदात्पक्वाशयस्थांश्च हन्त्याशुतरमौषधम्॥ २७९॥

जो रोग मुखसे लेकर आमाशय पर्यन्त और नाकसे लेकर मस्तकपर्यन्त, तथा

गुदासे लेकर पक्काशयपर्यन्त आश्रित होते हैं उन सम्पूर्ण रोगोंमें आभ्यन्तर औषधियोंका प्रयोग करनेसे वह रोग शीघ्र शान्त होजाते हैं ॥ २७९ ॥

शरीरावयवोत्थेषु वीसर्पपिडकादिषु ।
यथादेशं प्रदेहादीन् शमनं स्याद्विशेषतः ॥ २८० ॥

शरीरके बाहरी भागमें होनेवाले सम्पूर्ण विसर्प पिडिका आदि रोगोंमें स्थानादि विचारकर प्रायः लेपोंद्वारा चिकित्सा करनेसे वह रोग शान्त होते हैं ॥ २८० ॥

अनेकविध चिकित्सासंबंधी विचार।

दिनातुरौषधव्याधिजीर्णलिङ्गर्त्ववेक्षणम् ।
कालं विद्याद्दिनापेक्षः पूर्वाह्णे वमनं तथा ॥ २८१ ॥
रोग्यवेक्ष्य यथाप्रातर्निरन्नो बलवान्पिबेत् ।
भेषजं लघुपथ्यान्नैर्युक्तमद्यात्तु दुर्बलः ॥ २८२ ॥

दिन, रोगी, औषधि, व्याधि, जीर्ण, लक्षण, ऋतु और काल विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये। इनमें दिनविचार उसको कहते हैं जैसे वमनकारक औषध दिनके पूर्वभागमें पीना चाहिये। रोगविचार उसको कहते हैं जैसे रोगीकी अवस्था देखकर बलवान् रोगीको प्रातःकाल खालीपेट औषध सेवन कराना चाहिये और दुर्बल रोगीको हलका तथा पथ्य भोजनके साथ,सेवन कराना चाहिये यह रोगी विचार है २८१॥२८२

औषध सेवनके काल।

भैषज्यकालो भक्तादौ मध्ये पश्चान्मुहुर्मुहुः ।
सामुद्गं भक्तसंयुक्तं ग्रासग्रासान्तरे दश ॥ २८३ ॥

अब औषधविचारको कहते हैं जैसे औषधसेवनके दश काल हैं। १ भोजनके प्रथम। २ भोजनके मध्यमें। ३ भोजनके अन्तमें। ४ बारंबार। ५ यूषमें मिलाकर। ६ भातमें मिलाकर। ७ ग्रासमें मिलाकर। ८ ग्रास ग्रासके अनन्तर। ९ प्रातःकाल। १० सायंकाल यह औषधके दश काल हैं ॥ २८३ ॥

अपाने विगुणे पूर्वं समाने मध्यभोजनम् ।
व्याने तु प्रातरशितमुदाने भोजनोत्तरम् ॥ २८४ ॥
वायौ प्राणे प्रदुष्टे तु ग्रासे ग्रासान्तरिष्यते ।
श्वासकासपिपासासु त्ववचार्य्य मुहुर्मुहुः ॥ २८५ ॥
समुद्गं हिक्किने देयं लघुनान्नेन संयुतम् ।
सम्भोज्यं त्वौषधं भोज्यैर्विचित्रैररुचौ हितम् ॥ २८६ ॥

अपानवायु विगुण हो तो भोजनके प्रथम औषधका सेवन करना चाहिये। समान वायु दूषित हो तो भोजनके मध्यमें औषध सेवन करना चाहिये। व्यानवायु दूषित हो तो प्रातःकाल औषध सेवन करना चाहिये। उदानवायु दूषित हो तो भोजनके अन्तमें और प्राणवायु दूषित हो तो ग्रास ग्रासके अन्तमें अथवा ग्रासमें मिलाकर औषध सेवन करना हितकारक है। श्वास खांसी और प्यासमें वारवार औषध सेवन करना हितकारक है। हिचकी रोगमें हलके अन्नके साथ मूंगके यूषमें मिली औषधका सेवन करना चाहिये अरुचिमें भोजनके साथ मिलाकर औषध सेवन करना चाहिये२८६॥

ज्वरे पेयाः कषायाश्च क्षीरसर्पिर्विरेचनम्।
षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य तु ॥ २८७ ॥

अब व्याधिविचारको कहते हैं। जैसे—ज्वरमें छः छः दिनके बाद समयका विचार कर पेया, कषाय दूध और घृतका प्रयोग कियाजाता है अर्थात् प्रथम छः दिन लंघन करानेके अनन्तर पटोल आदि यूष पेयाका सेवन करावे फिर क्वाथ ज्वरके जीर्ण होनेपर दूध इस प्रकार समयको देखकर व्याधिकालानुसार औषधका सेवन करना कहाजाता है॥

क्षुद्वेगमोक्षौ लघुता विशुद्धिर्जीर्णलक्षणम्।
तदा भेषजमादेयं स्याद्धि दोषवदन्यथा ॥ २८८ ॥

अत्यंत क्षुधाका बढना मलमूत्रादि वेगोंका स्वच्छ रीतिसे त्याग होना शरीरमें हलकापन, शुद्ध डकार आना अथवा जिह्वा आदि लक्षणोंका शुद्ध होना यह जीर्णके लक्षण हैं। जीर्ण कालमें औषधका सेवन कराना चाहिये अन्यथा दोषकारक होता है। यह जीर्ण लक्षणका विचार कहागया ॥ २८८ ॥

कालविचार।

यदा पयश्च दोषाणां वर्ज्यं सेव्यं च यत्र यत्।
ऋतावपेक्ष्यं यत्कर्म पूर्वं सर्वमुदाहृतम् ॥ २८९ ॥

अव ऋतुविचारको कहते हैं। जैसे—वर्षादिकालमें दोषोंका संचय, अपचय आदि होना जैसे कि सूत्रस्थानमें कह आये हैं। जिस ऋतुमें जो पदार्थ वर्जनीय है जैसे वसन्त ऋतुमें कफकारक पदार्थोंका सेवन नहीं करना इत्यादि तस्याशितीय अध्यायमें पहिले वर्णन कर आये हैं ऐसा विचारकर औषध अन्न विहारका सेवन करना ऋतु विचार कहाजाता है ॥ २८९ ॥

उपक्रमाणां करणं प्रतिषेधे च कारणम्।
व्याख्यातमबलानां स विकल्पानामवेक्षणे ॥ २९० ॥
मुहुर्मुहुश्च रोगाणामवस्था आतुरस्य च।

अवेक्षमाणस्तु भिषक् चिकित्सायां न मुह्यति ॥ २९१ ॥
इत्येवं षड्विधं कालमनपेक्ष्याभिषग्जितम् ।
प्रयुक्तमहिताय स्याच्छस्यस्याकालवर्षवत् ॥ २९२ ॥

ऐसे समय चिकित्सा करना चाहिये । ऐसे कालमें चिकित्सा करनेसे यह हानि होती हैं । दुर्बल रोगियोंकी अवस्था काल विचारकर चिकित्सा करना चाहिये । इस प्रकार चिकित्सकको चिकित्साकालका विचार करना चाहिये । वारंवार रोगोंकी अवस्था काल, विचारकर जो वैद्य चिकित्सा करता है वह चिकित्सामें मोहको और प्राप्त नहीं होता इस प्रकार षड्विध कालकी विना अपेक्षा किये जो वैद्य चिकित्सा करता है वह खेतीमें विना समय पडीहुई वर्षाके समान हानिकारक होती है इसको कालविचार कहते हैं ॥ २९०-२९२ ॥

व्याधीनामृत्वहोरात्रवयसां भोजनस्य तु ।
विशेषो भिद्यते यस्तु कालापेक्षः स उच्यते ॥ २९३ ॥

व्याधियोंमें ऋतु, दिन, रात्रि, अवस्था और भोजनकी उपेक्षा करके जो विशेष समयका भेद दिखानेवाला समयविशेष है उसीको कालविचार कहते हैं ॥ २९३ ॥

वसन्ते श्लेष्मजा रोगाः शरत्काले तु पित्तजाः ।
वर्षासु वातजाश्चैव प्रायः प्रादुर्भवन्ति हि ।
निशान्ते दिवसान्ते च वयोऽन्ते वातजा गदाः ॥ २९४ ॥
प्रातः क्षपादौ कफजास्तयोर्मध्ये तु पित्तजाः ।
जीर्णान्ते वातजा रोगा जीर्यमाणे तु पित्तजाः ।
श्लेष्मजा भुक्तमात्रे तु लभन्ते प्रायशो बलम् ॥ २९५ ॥

वसन्तऋतुमें कफजनित रोग उत्पन्न होते हैं । शरदऋतुमें प्रायः पित्तजनित रोग उत्पन्न होते हैं । वर्षाऋतुमें प्रायः वातजनित रोग उत्पन्न होते हैं तथा रात्रिके अन्तमें दिनके अन्तमें और अवस्थाके अन्तमें वातजनित रोग उत्पन्न होते हैं । प्रातःकाल, रात्रिके प्रथम भागमें और अवस्थाके प्रथम भागमें कफके रोग उत्पन्न होते हैं दिनके मध्यभागमें रात्रिके मध्यभागमें और अवस्थाके मध्यभागमें प्रायः पित्तजनित रोग उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार भोजन जीर्ण होनेके अनन्तर वातजनित रोग भोजन जीर्ण होनेके समय अर्थात् परिपाककालमें पित्तजनित रोग और भोजन करतेही कफ-जनित रोग प्रायः बलको प्राप्त होते हैं ॥ २९४ ॥ २९५ ॥

मात्रा आदि विचार।

नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथापोऽल्पा महानलम्।
दोषवच्चातिमात्रं स्याच्छस्यस्यात्युदकं यथा ॥ २९६ ॥
सम्प्रधार्य्य बलं तस्मादामयस्यौषधस्य च।
नैवातिबहुलात्यल्पं भैषज्यमवचारयेत् ॥ २९७ ॥

प्रबल व्याधिमें अल्प औषधि इस प्रकार गुण नहीं करसकती जैसे-प्रचण्ड अग्निमें थोडेसे जलका छींटा उसके बुझानेके लिये काम नहीं आसकता और अल्प व्याधिमें अधिक मात्रासे औषधि देना इस प्रकार हानि करता है जैसे-अल्प अंकुरित खेतीमें अत्यंत वेगयुक्त वृष्टि खेतीको समूल नष्ट कर देती है। इस लिये रोग, औषध और रोगीका बलाबल विचार न बहुत अल्प, न बहुत अधिक मात्राका प्रयोग करना चाहिये॥

सात्म्य विचार।

औचित्याद्यस्य यत्सात्म्यं देशस्य पुरुषस्य च।
अपथ्यमपि नैकान्तात्तत्त्यजल्लँभते सुखम् ॥ २९८ ॥

जिस देशमें जो द्रव्य उचित हो अर्थात् जो द्रव्य जिस देशके मनुष्योंको सात्म्य हो और वह उस देशमें प्रचलित है तथा उन लोगोंको प्रकृतिके अनुसार उपयोगी है वह यदि शास्त्रानुसार कुपथ्य भी प्रतीत हो तो एकाएकी छुडादेना हानिकारक होता है इस लिये यदि वह छुडानाही उचित हो तो धीरे धीरे घटाते घटाते युक्तिपूर्वक छुडानेसे स्वास्थ्य नहीं विगाडता ॥ २९८ ॥

बाह्लीकाः पह्लवाश्चीनाः शूलीका यवनाः शकाः।
मांसगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वानरोचिताः ॥ २९९ ॥
क्षीरसात्म्यास्तथा प्राच्या मत्स्यसात्म्याश्च सैन्धवाः।
अश्मकावन्तिकानान्तु तैलाज्यं सात्म्यमुच्यते ॥ ३०० ॥

बाह्लीकदेश (बलख बुखारा) पह्लवदेश (काबुल आदिदेश) चीन, शूलीक (तिब्बत) यवन और शक (तुर्किस्थान) देश आदि देशोंमें मांस, गेहूं, माध्वीक, शस्त्र और अग्नि यह सब सात्म्य होते हैं अर्थात् इनके प्रकृतिके अनुकूल होते हैं। पूरबके रहनेवाले मनुष्योंको दूध पीना सात्म्य है। और सिन्धुनदी आदि दरयावके किनारे रहनेवालोंको मछली सात्म्य है। अश्मकदेश अर्थात् पत्थरोंवाले देशमें और अवन्ती देश (मालवा प्रान्त) के मनुष्योंको तेल और घृत सेवन करना सात्म्य है॥

कन्दं मूलं फलं सात्म्यं विद्यान्मलयवासिनाम्।
सात्म्यं दक्षिणतः पेया मन्थश्चोत्तरपश्चिमे ॥ ३०१ ॥

मलयाचल आदि पहाडी मनुष्योंको कन्द, मूल, फल सात्म्य होते हैं। दक्षिण देशवालोंको पेयाका सेवन करना सात्म्य होता है। उत्तर और पश्चिमके लोगोंको मन्थ सात्म्य होता है ॥ ३०१ ॥

मध्यदेशे भवेत्सात्म्यं यवगोधूमगोरसाः ।
तेषां तत्सात्म्ययुक्तानि भेषजान्यवचारयेत् ॥ ३०२ ॥
सात्म्यं ह्याशु बलं धत्ते नातिदोषञ्च बह्वपि ।
योगैरेवं चिकित्सन् हि देशाद्यज्ञोऽपराध्यति ॥ ३०३ ॥

मध्य देशके मनुष्योंको यव और गेहूंसे बने पदार्थ, दूध, दही, मक्खन यह सात्म्य होते हैं। इस प्रकार इन सब देशके मनुष्योंका सात्म्य आदि विचार पथ्य और औषधका सेवन कराना चाहिये। क्योंकि सात्म्य भोजन, अत्यंत सेवन किया जानेपर भी अधिक दोष नहीं करता और उचित रीतिपर सेवन किया जानेसे शीघ्र बलको देने वाला होता है। जो वैद्य-देश, काल सात्म्य आदि विचार किये विनाही किताबोंमें लिखे योगोंसे चिकित्सा करने लगता है वह मूर्ख अपराधका भागी होता है ३०२।३०३

क्रियाविचार।

वयोबलशरीरादिभेदा हि बहवो मताः ।
तथान्तः संधिमार्गाणां दोषाणां गूढचारिणाम् ॥ ३०४ ॥
भवेत्कदाचित्कार्य्यापि विरुद्धाभिमता क्रिया ।
अन्तर्गन्तं गूढपित्तं स्वेदसेकोपनाहनैः ॥ ३०५ ॥
नीयन्ते बहिरुष्णैर्हि तथोष्मं शमयन्ति तम् ।
बाह्यैश्च शीतैः सेकाद्यैरुष्मान्तर्याति पीडितः ।
सोऽन्तर्गूढं कफं हन्ति शीतं शतैस्तथा जयेत् ॥ ३०६ ॥

रोगियोंकी अवस्था, बल और शरीर आदि भेद अनेक प्रकारके होते हैं तथा उसी प्रकार सन्धिगत, मार्गगत और गूढसंचारी दोषोंके भी अनेक प्रकारके भेद होते हैं। इसलिये कभी २ विरुद्ध क्रिया भी हितकारक होजाती है। जैसे पित्तमें उष्ण-क्रियाका करना हानिकारक होता है। परन्तु फोडे आदिमें गूढरूपसे दाहादि लक्षण-वाले पित्त होते हुए भी स्वेदन, सेक और उपनाह आदि उष्ण क्रिया करनेसे फोडेके अन्दरका छिपाहुआ पित्त बाहर निकलजानेसे दाह आदिकी शान्ति होती है। यहां पर पित्तरोगमें उष्णक्रिया भी हितकारक होती है। यदि ऐसे स्थानमें शीतल लेप और शीतल सेचन आदि पित्तनाशक क्रिया कीजाय तो पित्त फोडेके भीतर रहकर

पीडाकी वृद्धिको करता है। तब जब कफ व्रणके भीतर हो तो उसमें घृत आदिका शीतल लेप करना भी कफको नष्टकर व्रणको सुखा देता है। यहांपर शीतल क्रिया भी शीतस्वभाव कफको नष्ट करदेती है ॥ ३०४-३०६ ॥

श्लक्ष्णपिष्टो घनो लेपश्चन्दनस्यापि दाहकृत् ॥ ३०७ ॥
त्वग्गतस्योष्मणो रोधाच्छीतकृच्चान्यथा गुरोः।
छर्दिघ्ना मक्षिकाविष्ठा मक्षिकैव तु वामयेत् ॥ ३०८ ॥
द्रव्येषु स्विन्नदग्धेषु चैव तेष्वेव विक्रिया।
तस्माद्दोषौषधादीनि परीक्ष्य दश तत्त्वतः।
कुर्य्याच्चिकित्सितं प्राज्ञो न योगैरेव केवलैः ॥ ३०९ ॥

इसी प्रकार चन्दन शीतलस्वभाव होतेहुए भी उसको उत्तम रीतिसे रगडकर बहुत गाढा लेप कर दियाजाय तो वह त्वचाकी गर्माईको भीतरही रोककर दाहके करनेवाला होजाता है और यदि अगरको घिसकर पतलासा लेप किया जाय तो यह गर्म स्वभाववाला होनेपरभी पित्तजनित दाहकी शान्ति करता है। इसी प्रकार मक्खीके खानेसे छर्दि उत्पन्न होती है परन्तु मक्खीकीही विष्ठा छर्दिको नष्ट करती है। इस प्रकार संपूर्ण द्रव्य स्विन्न अथवा दग्ध किये जानेपर उनमें अलग २ विकृत अथवा अन्य प्रकारके गुण उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये वैद्य दोष और औषध आदिकोंकी पूर्वोक्तरीतिसे दश विधि परीक्षणीय विषयका विचारकरके चिकित्साकरे और केवल ग्रन्थमें लिखीहुई किसी एक औषधिके गुणोंको देखकर विना विचारेही उस औषधिका प्रयोग करने न लगजाय ॥ ३०७-३०९ ॥

निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति हेतुना।
क्षीणे मार्गीकृते देहे शेषः सूक्ष्म इवानलः।
तस्मात्तमनुबध्नीयात्प्रयोगेणानपायिना ॥ ३१० ॥

रोग निवृत्त होनेपरभी उसका सूक्ष्म अंश रहाहुआ अल्पकारणसे ही वह व्याधिको फिर उत्पन्न करदेता है। जैसे सूक्ष्म अग्नि शेष रहनेपर थोडेसे ईंधनको पाकर भी बलवान् होजाती है उसीप्रकार रोग निवृत्त होनेपरभी क्षीण शरीरमें अल्प हेतुसे फिर व्याधि उत्पन्न होजाती है। इस लिये रोग निवृत्त होनेपर भी कुछ कालतक रोगनाशक औषधका सेवन कराते रहना चाहिये ॥ ३१० ॥

सिद्ध्यर्थं प्राक्प्रयुक्तस्य सिद्धस्याप्यौषधस्य तु ॥ ३११ ॥
काठिन्यादूनभावाद्वा दोषोऽन्तःकुपितो महान्।

पथ्यैर्मृद्वल्पतां नीतो मृदुदोषकरो भवेत् ॥ ३१२ ॥
पथ्यमप्यश्नतस्तस्माद्यो व्याधिरुपजायते ।
ज्ञात्वैवं वृद्धिमभ्यासमथवान्यस्य कारयेत् ॥ ३१३ ॥

किसी मनुष्यके आभ्यंतर दोष अत्यन्त कुपित हों और उनमें उनकी शांतिके लिये किसी सिद्ध औषधीका प्रयोग करनेसे वह व्याधि शान्त होजाय यदि उस समय औषधकी कठोरतासे अथवा औषधकी अल्पतासे रोगका अनुबंध रहजाय उस समय रोगी हितकारक पथ्यका सेवन करता रहे तो रोगहीन होकर रहताहुआ अधिक विकारको नहीं करता अर्थात् पथ्यसेवन करनेसे धीरे २ शान्त होजाता है। यदि पथ्य सेवन करतेहुए भी रोगकी वृद्धि होय तो अन्य प्रकारसे पथ्यका अभ्यास करना चाहिये ॥३११–३१३॥

सातत्यात्स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् ।
कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ ३१४ ॥
मनसोऽर्थानुकूल्याद्धि तुष्टिरोजो रुचिर्बलम् ।
सुखोपभोगता च स्याद्व्याधेश्चातो बलक्षयः ॥ ३१५ ॥

यदि निरन्तर एकही प्रकारका पथ्य सेवन करनेसे अथवा पथ्य स्वादु न होनेसे रोगीको पथ्यमें अरुचि होजाय तो उसको अन्य प्रकारसे जिस प्रकार रोगीको वह पथ्प प्रिय प्रतीत होने लगे उस प्रकार बनाकर सेवन करावे । क्योंकि मनके अनुकूल अर्थात् मनोऽभिलाषित पथ्यके सेवन करनेसेही तुष्टि, ओज, मुखकी रुचि बल बढजाते हैं । तथा सुखपूर्वक औषधका सेवन किया जासकता है इसलिये व्याधिका बलभी क्षीण होजाता है ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

लौल्याद्दोषक्षयाद्व्याधेर्वैधर्म्याच्चापि यारुचिः ।
तासु पथ्योपचारः स्याद्योगेनाद्यं विकल्पयेत् ॥ ३१६ ॥

जीभकी लोलुपतासे अर्थात् दोषोंके क्षय होनेसे अथवा व्याधिके वैधर्म्यसे जो अरुचि उत्पन्न होती है उसमेंभी पहिलेके समान मनोऽभिलषित पथ्यद्वारा शान्त करे अथवा जिस प्रकारके भोजनोंसे अरुचि उत्पन्न हुई हो उससे अन्य प्रकार अन्नपानकी कल्पना कर पथ्यका सेवन करावे ॥ ३१६ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निदानं लिङ्गमेव च ।
चिकित्सा चापि निर्दिष्टा शिष्याणां हितकाम्यया ॥ ३१७ ॥

शुक्रदोषास्तथा चाष्टौ निदानाकृतिभेषजैः।
क्लैब्यान्युक्तानि चत्वारि चत्वारः प्रदरास्तथा ॥ ३१८ ॥
तेषां निदानलिङ्गञ्च भैषज्यञ्चैव कीर्तितम्।
क्षीरदोषास्तथा चाष्टौ हेतुलिङ्गभिषग्जितैः ॥ ३१९ ॥
तेषां चिकित्सा निर्दिष्टा समासव्यासतो मया।
रेतसो रजसश्चैव कीर्त्तितं शुद्धिलक्षणम् ॥ ३२० ॥
उक्तानुक्तचिकित्सा च सम्यग्योगस्तथैव च।
देशादिगुणशंसा च कालः षड्विध एव च ॥ ३२१ ॥
देशे देशे च यत्सात्म्यं यथा वैद्योऽपराध्यति।
चिकित्सा चापि निर्दिष्टा दोषाणां गूढचारिणाम् ॥ ३२२ ॥

अब इस अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस योनिव्याधि चिकित्सितीयाध्यायमें वीस प्रकारके योनिरोग, उनके निदान, लक्षण और चिकित्साका वर्णन किया गया है। आठ प्रकारके वीर्यदोष उनके निदान लक्षण और चिकित्साका वर्णन किया है। चार प्रकारके क्लैब्यरोग तथा चार प्रकारके प्रदर और उनके निदान, लक्षण तथा चिकित्साका कथन किया है। आठ प्रकारके क्षीरदोष उनके हेतु, लक्षण और चिकित्सा यह सब संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किया है। वीर्य और रजकी चिकित्सा उनकी शुद्धिके लक्षण कथन किये हैं। उक्त रोगोंकी और अनुक्त रोगोंकी चिकित्साका क्रम औषध योगोंके प्रयोगका विधान, देश आदिकोंके गुण, छः प्रकारके काल, जिस २ देशमें जो २ द्रव्य सात्म्य है जिस प्रकार चिकित्सा करनेसे वैद्य अपराधी होता है। गूढचारी दोषोंकी चिकित्सा यह सब वर्णन किया है ३१७–३२२

यो हि सम्यङ् न जानाति शास्त्रं शास्त्रार्थमेव च।
न कुर्य्यात्स क्रियां चित्रमचक्षुरिव चित्रकृत् ॥ ३२३ ॥

जों वैद्य शास्त्र और शस्त्रके विषयको विधिवत् नहीं जानता वह अन्धे चित्रकारके समान संपूर्ण चिकित्साक्रियामें हानिकारक होता है ॥ ३२३ ॥

अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते।
चिकित्सितामिदं स्थानं षष्ठं परिसमापितम् ॥

इति श्रीचरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने योनिचिकित्सितं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस अग्निवेशके रचेहुए और चरकके प्रतिसंस्कार कियेहुए इस चरक संहिता-नामक ग्रन्थमें चिकित्सितस्थाननामक छठा स्थान समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सितस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां योनिव्यापच्चिकित्सितं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा—यद्यपि आयुर्वेदको, कियो समयने हास ।
तदपि चिकित्सित चरकमें, है पूरण परकाश ॥ १ ॥
अगणित व्याधिनके विषय, स्थूल सूक्ष्म दरशाय ।
भरे चिकित्सित स्थानमें, विलखो बुद्धि लगाय ॥ २ ॥
यथा भगन्दर शोथमें, ध्वजभंगे उपदंश ।
अम्लपित्त ग्रहणीविषे, कह्यो सूक्ष्म सरवंश ॥ ३ ॥
चरकरचित यह तन्त्रको, इहि विधि जान भेद ।
भिषक् शिरोमणि सिद्ध सो, हरहि जगतको खेद ॥ ४ ॥
नाना रोग विवेकसो, कल्प सकहि सत भाय ।
रामप्रसाद प्रसादनी, जे पढि हैं मनलाय ॥ ५ ॥

इति चिकित्सितस्थानं समाप्तम् ॥ ६ ॥



॥ श्रीः ॥

कल्पस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः

अथातो मदनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम मदनकल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

अथ खलु वमनविरेचनार्थं मदनफलादित्रिवृतादीनां वमनविरेचनद्रव्याणां सुखोपभोग्यतमैः सहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैस्तद्योगानाञ्च क्रियाविधेः सुखोपायस्य सम्यगुपकल्पनार्थं कल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम वमन विरेचनके लिये मैनफल और निशोथ आदि वमन विरेचन द्रव्योंकी इस प्रकार कल्पना करते हैं । जिससे वह सम्पूर्ण द्रव्य सुखोपभोग्य द्रव्योंके साथ मिलाये जाकर सुखपूर्वक वमन विरेचनादि क्रियायें भले प्रकार कर-सकें । इस प्रकार कल्पनाके लियेही इस कल्पस्थानका कथन करते हैं ॥ १ ॥

वमन विरेचनकी निरुक्ति ।

तत्र दोषहरणमूर्द्धभागं वमनसंज्ञकमधोभागं विरेचनसंज्ञकमुभयं वा शरीरमलविरेचनाद्विरेचनशब्दं लभते ॥ २ ॥

उनमें मुखद्वारा जो दोष निकाले उसको वमन कहते हैं और अधोमार्गसे दोषोंका निकालना विरेचन कहाजाता है । अथवा शरीरके मलको रेचन करनेसे ऊर्ध्वविरेचन और अधोविरेचन इस प्रकार दोनोंको ही विरेचन कहना चाहिये ॥ २ ॥

वामकरेचकद्रव्योंका कर्म ।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यवायिविकाशीनि औषधानि स्ववीर्य्येण हृदयमुपेत्य धमनीरनुसृत्य सम्यगूयुक्त्या स्थूलानुस्रोतोभ्यः केवलं शरीरगतं दोषसंघातमाग्नेयत्वाद्विष्यन्दयन्ति तैक्ष्ण्याद्विच्छिदन्ति ॥ ३ ॥

यह दोनों प्रकारके विरेचन द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी और विकाशी गुणोंवाले होनेसे अपने वीर्यके प्रभावसे हृदयमें प्राप्त हो फिर धमनियोंका आश्रय लेकर

भली प्रकार योगके किये जानेसे स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोंमेंसे आग्नेय स्वभाव होनेके कारण केवल शरीरगत दोषोंको पतले बनाकर चलायमान करदेते हैं और तीक्ष्ण स्वभाववाले होनेसे उनको अपने अपने स्थानसे छुडा देते हैं ॥ ३ ॥

स विच्छिन्नः परिप्लवः स्नेहभाविते काये स्नेहाक्तभाजनस्थमिव क्षौद्रमसज्जन्प्रवणभावादामाशयमागत्य उदानप्रणुन्नोऽग्निवाय्वात्मकत्वादूर्ध्वभागप्रभावादौषधस्य ऊर्ध्वमुत्क्षिप्यते। सलिलपृथिव्यात्मकत्वादधोभागप्रभावाच्च औषधस्य अधः प्रवर्त्तते उभयतश्च उभयगुणत्वादिति लक्षणोद्देशः ॥ ४ ॥

यदि वमन विरेचनसे प्रथम मनुष्यके शरीरको स्निग्धकर लिया हो तो वह वमन अथवा विरेचन द्रव्यसे छुडाये हुए दोष शरीरमें इस प्रकार नहीं चिपट सकते, जैसे-चिकने पात्रमें शहद नहीं चिपटता। वह दोष चलायमान होकर आमाशयमें ढलकर आजाते हैं। फिर विरेचन द्रव्यके अग्निवाय्वात्मक होनेसे वह द्रव्य अपने प्रभावसे दोषोंको मुखद्वारा बाहर निकाल देता है और जलात्मक तथा पृथिव्यात्मक गुणसे वह विरेचक द्रव्य दोषोंको विरेचनद्वारा अधोमार्गसे निकाल देते हैं। जिन द्रव्योंमें उभयात्मक गुण हैं अर्थात् जो द्रव्य वामक और रेचक दोनों गुणोंवाले हैं वह मलोंको उखाडकर ऊर्ध्वभाग और अधोभाग इन दोनों मार्गोंसे निकाल देते हैं। इस प्रकार वमन विरेचन द्रव्योंके लक्षणोंका कथन किया है ॥ ४ ॥

वामक और विरेचकद्रव्य।

तत्र फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनानाम्, श्यामात्रिवृच्चतुरङ्गुलतिल्वकमहावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रवन्तीनाञ्च,नानाविधदेशकालसम्भवस्वादुरसवीर्य्यविपाकप्रभावग्रहणानाम्, देहदोषप्रकृतिवयोबलाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनां नानात्मकत्वाच्च,विचित्रगन्धवर्णरसस्पर्शानामुपयोगसुखार्थमसंख्येयसंयोगानामपि च सतां द्रव्याणाम्, विकल्पमार्गोपदर्शनार्थं षड्विरेचनयोगशतानि व्याख्यास्यामः ॥५

इनमें मैनफल, जीमूतक (देवदाली लता), इक्ष्वाकु (कडवी तुंबी), धामार्गव (बडी कडवी तोरी), कुडाके बीज और कृतवेधन (छोटी कडवी तोरी) यह छः द्रव्य वमनकारक होतेहैं। काली निशोथ, अमलतास, तिल्वक (लोध अथवा गुलाब चीन), महावृक्ष (थोहर), सातला, शंखिनी, दंती और द्रवंती ये नौ द्रव्य विरेचनमें

प्रधान हैं। यह दोनों प्रकारके वमन, विरेचन द्रव्य भारतके सब देशोंमें समयपर मिलते हैं अथवा सब समय मिल सकते हैं। इनको मीठे रसवाले द्रव्यमें मिला सेवन करनेसे इनके वीर्य, विपाक और प्रभावमें किसी प्रकारका फर्क नहीं पडता। इन द्रव्योंसे असंख्य योग वामक और विरेचक बनते हैं। क्योंकि मनुष्योंके देह, दोप, प्रकृति, अवस्था, अग्नि, बल, भोजन, सात्म्य, रोग और रोगकी अवस्था आदि भेदसे मनुष्य भी अनेक प्रकारके होते हैं। तथा इन वमन, विरेचन द्रव्योंकी योग कल्पना, विचित्र गंध, वर्ण, रस और स्पर्श आदिमें सुखपूर्वक प्रयोग कियाजाय इस प्रकारकी असंख्य कल्पनायें होते हुए भी उनमेंसे निदर्शनके लिये छःसौ प्रकारके योगोंका वर्णन करते हैं॥ ५॥

तानि तु द्रव्याणि देशकालगुणभाजनसम्पद्वीर्य्यबलाधानात्क्रियासमर्थतमानि भवन्ति ॥ ६ ॥

इन द्रव्योंको देश, काल, गुण और आधारकी संपदा अर्थात् उत्तमता होनेसे यह वीर्यबलसम्पन्न होते हैं। इस लिये क्रिया करनेमें भी उत्तम रीतिसे अर्थात् विशेषरूपसे समर्थ होते हैं॥ ६॥

जांगलदेशके लक्षण।

त्रिविधः खलु देशो जाङ्गलोऽनूपः साधारणश्चेति। तत्र जाङ्गलः पर्य्याकाशभूयिष्ठः। तरुभिरपि कदरखदिरासनाश्वकर्णधवतिनिशशल्लकीसालसोमवल्कबदरीतिन्दुकाश्वत्थवटामलकीवनगहनः, अनेकशमीककुभशिंशपाप्रायः स्थिरशुष्कपवनबलविधूयमानप्रनृत्यत्तरुणविटपः, प्रततमृगतृष्णाकूपोपगूढस्तनुखरपरुषसिकताशर्कराबहुलः, लावतित्तिरिचकोरानुचरितभूमिभागो वातपित्तबहुलस्थिरकठिनमनुष्यप्रायो जाङ्गलो ज्ञेयः॥ ७॥

देश तीन प्रकारके होते हैं। जैसे—जांगलदेश, आनूपदेश और साधारणदेश। इनमें जांगलदेशके ऊपर सुविस्तृत आकाश रहता है और उस देशमें खैरके वृक्ष, सफेद खैरके वृक्ष, विजैसार, अश्वकर्ण, धव, तिनिश, शल्लकी, शाल, सोमवल्कल, बेर, तेन्दू, पीपल, बड और आमला इन वृक्षोंके घनघोर वन होते हैं तथा अनेक शमी (जांड) के वृक्ष, ककुभ, (अर्जुनवृक्ष) और शीशोंके वृक्ष अधिक होते हैं। वृक्षोंकी शाखा स्थिर, सूखी, पवनके वेगसे विधूयमान होकर मानो तरुण वृक्ष नाच रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है। और किसी विस्तृत भूमि जलकी समान पृथ्वीकी रेती चमकती प्रतीत होती है। जगह २ छिपे हुए कूएँ होते हैं तथा थोडा, खर्दरा, कठोर, अधिक चमकीली, ककरीली रेती होती है। इस भूमिमें लवा, तीतर चकोर, अधिक होते हैं

यह जांगल देशके लक्षण है। जांगल देश वातपित्त प्रधान होता है। इस देशके रहनेवाले मनुष्य दृढ और कठोर प्रायः होते हैं ॥ ७ ॥

अनूपदेशके लक्षण।

अथानूपो हिन्तालतमालनारिकेलकदलीवनगहनः, सरित्समुद्रपर्य्यन्तप्रायः शिशिरपवनबहुलो वञ्जुलवानीरोपशोभिततीराभिः सरिद्भिरुपगतभूमिभागः, अक्षितिधरनिकुञ्जोपशोभितो मन्दपवनानुवीजितः क्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपुष्पितवनगहनो भूमिभागः स्निग्धतरुप्रतानोपगूढहंसचक्रवाकबलाकानन्दीमुखपुण्डरीककादम्बमद्गुभृङ्गराजशतपत्रमत्तकोकिलमुदिततरुणविटपः,सुकुमारपुरुषः पवनकफप्रायो ज्ञेयः॥८॥

अनूपदेशमें हिंताल (ताडवृक्ष), तमाल, नारियल और केलाके बहुत सघन वन होते हैं। इस देशके चारों ओर प्रायः नदी समुद्र होते हैं और शीतल पवन अधिक आता है। तथा बेत और वानीरके वनोंसे सुशोभित नदियोंके किनारे अथवा समुद्रके किनारे वा पृथ्वीके भाग दिखाई देते हैं। इस देशमें पर्वत और पर्वतोंके निकुंजोंसे शोभायमान पृथ्वी नही होती परन्तु मन्दमन्द पवनसे हिलाये हुए और जीवन प्राप्त वृक्षोंका गहन वन तथा अनेक पुष्प आदिकोंसे सुशोभित बगीचोंसे पृथ्वीके भाग शोभायमान होते हैं। इस देशमें चिकने वृक्ष और प्रतानोंमें छिपेहुए हंस, चकवा, बगुला, नन्दीमुख, पुण्डरीक, कादम्ब, मद्गु, भृंगराज और शतपत्र आदिकोंसे शोभायमान जलाशय होते हैं। तथा मतवाली कोकिलाओंके मनोहर शब्दोंसे तरुण वृक्ष शोभायमान दिखाई देते हैं। इस देशके मनुष्योंका शरीर कोमल और सुकुमार होता है। यह देश वातकफप्रधान होता है। इस देशको आनूपदेश कहते हैं ॥ ८ ॥

साधारण देश।

अनयोरेव द्वयोर्देशयोर्वीरुद्वनस्पतिवानस्पत्यशकुनिमृगगणयुतस्थिरसुकुमारवर्णसंहननोपपन्नसाधारणगुणयुक्तपुरुषः साधारणो ज्ञेयः ॥९॥

जिस देशमें जांगलदेश और अनूपदेशके मिलेजुले लक्षण हों उसको साधारणदेश कहते हैं। इस देशमें वनस्पति, वीरुध और आम्र, वट आदि अनेक-प्रकारके वानस्पत्य होते हैं तथा दोनों देशोंमें होनेवाले पक्षी और मृगगण इस देशमें होते हैं। इस देशके पुरुषोंका शरीर दृढ, सुकुमार,बलयुक्त और हृष्टपुष्टांग होता है तथा इन मनुष्योंकी प्रकृति साधारण होती है इसलिये इस देशको साधारण अथवा धन्वदेश भी कहते हैं ॥९॥

औषधिग्रहणयोग्य उत्तम भूमि।

तत्र देशे जाङ्गलसाधारणे वा यथाकालं शिशिरातपपवनसलिलसेविते

समे शुचौ प्रदक्षिणे श्मशानचैत्यदेवयजनागारश्वभ्रारामवल्मीकोषर-
विरहिते कुशरोहिषास्तीर्णे स्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्तिके मृदा-
वफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्बलवत्तरैर्द्रुमैरौषधयो जाताः प्रशस्यन्ते ॥ १० ॥

इनमें जांगल और साधारण देशकी औषधियें गुणमें उत्तम होती हैं इसलिये यथासमय इन देशोंमेंसे औषधियोंको ग्रहण करना चाहिये। जिस स्थानमें भूमि समतल, पवित्र और उत्तम हो तथा उसमें श्मशान, मन्दिर, पूज्यवृक्ष, देवमंदिर, यज्ञस्थान, गढा, बगीचा, सांपकी बम्बी और ऊषरमट्टी यह न हों। जिस स्थानमें कुशा, रोहिषतृण आच्छादित हों और मट्टी चिकनी, काली, सुवर्णके समान अथवा पीलेरंगकी मीठी और मृदु हो तथा वह पृथ्वी हलसे जोती न जाती हो कीडे आदिकोंसे उपहत न हो, बलवान् वृक्षोंसे दबीहुई न हो उस पृथ्वीमें यथासमय सर्दी, धूप, पवन, जल आदिका संचार होता हो ऐसी भूमिसे जांगल अथवा साधारण देशमें औषधीको ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकारकी भूमिमेंसे ग्रहण की हुई औषधी श्रेष्ठ होती है॥

औषधग्रहणप्रकार।

तत्र यानि कालजातानि उपगतसम्पूर्णप्रमाणरसवीर्य्यगन्धानि काला-
तपाग्निसलिलपवनजन्तुभिरनुपहतगन्धवर्णरसस्पर्शप्रभावाणि प्रत्यग्राणि
उदीच्यां दिशि स्थितानि तेषां शाखापलाशमचिरप्ररूढं वर्षावसन्त-
योर्ग्राह्यं ग्रीष्मे मूलानि शिशिरे वा शीर्णप्ररूढपर्णानां शरदि त्वक्-
कन्दक्षीराणि हेमन्ते साराणि पुष्पफलमिति मङ्गलाचारः कल्याण-
वृत्तः शुचिः शुक्लवासाः संपूज्य देवताश्विनौ गोब्राह्मणांश्च कृतो-
पवासः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा गृह्णीयात् ॥ ११ ॥

ऐसी भूमिमें उत्पन्न हुई औषधी जो अपने ठीक ऋतुमें उत्पन्न हुई हो तथा संपूर्णरूपसे प्रमाणयुक्त रस, वीर्य संपन्न, गंधादियुक्त, काल, धूप, अग्नि, जल, वायु और कीडे आदिसे जिस औषधका गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव विकृत न हुआ हो जो संपूर्ण औषधोंमें श्रेष्ठ, उत्तम, अग्रभागयुक्त, सर्वाङ्गसंपन्न और उत्तर दिशामें स्थित हो उस औषधको ग्रहण करना चाहिये। जब मनुष्य औषधी ग्रहण करनेके लिये जाय तो शुद्ध होकर मंगलाचरण कर पवित्र और श्वेतवस्त्रोंको धारण करे तथा देवता अश्विनीकुमार और ब्राह्मणोंका पूजन कर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुखकरके औषधीको ग्रहण करना चाहिये। जिस औषधीके डाली और पत्ते ग्रहण करने हों तो वर्षा और वसन्त ऋतुमें ग्रहण करना चाहिये क्योंकि उस समय शाखा और पत्र सुन्दर सर्वगुण संपन्न होते हैं ग्रीष्म और शीतकालमें औषधियोंके मूल अर्थात् जड लेनी

चाहिये उस समय पत्रोंके झडजानेसे जडमें विशेष गुण रहता है। शरद ऋतुमें वृक्षोंके छिलके, कन्द और दूध लेना चाहिये। हेमन्त ऋतुमें वृक्षोंका गोंद, फूल और फल ग्रहण करना चाहिये इस प्रकार ग्रहण किये यह सब द्रव्य अपने २ गुणोंसे संपन्न होते हैं॥

औषधरक्षणविधि।

गृहीत्वा चानुरूपगुणवद्भाजने संस्थाप्यागारेषु प्रागुदग्द्वारेषु निवातप्रवातैकदेशेषु नित्यपुष्पोपहारबलिकर्मवत्सु अग्निसलिलोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनभिगमनीयानि स्ववच्छन्नानि शिक्ये चासज्य स्थापयेत्। तत्तानि च यथादोषं प्रयुञ्जीत॥ १२॥

इस प्रकार औषधियोंको लेकर उनको अनुकूल पात्रमें रखकर जिस घरका पूर्व अथवा उत्तरकी ओर दरवाजा हो जिसमें अधिक वायु न आती हो जो स्थान वायुसे रहित भी न हो ऐसे स्थानमें उस औषधीको टांग देना चाहिये। और नित्य फूल, हार, बलि कर्म आदिसे सुपूजित घरमें उस औषधीको रखना चाहिये। तथा उस औषधको भली प्रकार छोटे २ टुकडेकर विधिवत् ऐसे स्थानमें रखे जिसमें अग्नि, जल, धूप, धूआं, धूल, मूषक आदि जानवर अथवा चौपाये जानवर न जा सकें ऐसे स्थानमें औषधीको रखना चाहिये। फिर जब आवश्यकता हो तो दोषानुसार इन औषधियोंका प्रयोग करे॥ १२॥

वातरोगोंमें अनुपान।

सुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकधान्याम्लफलाम्लदध्यम्लादिभिर्वाते॥ १३॥

वातजनितरोगोंमें औषधी सुरा, सौवीरक, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्ल, फलाम्ल और दहीके जलके साथ प्रयोग करना चाहिये॥ १३॥

पित्तजरोगोंमें अनुपान।

मृद्वीकामलकमधुकपरूषकफलफाणितक्षीरादिभिश्च पित्ते॥ १४॥

पित्तजनितरोगोंमें मुनक्का, आमले, मुलैठी, फालसा, असार, फाणित और दूध आदिकोंके साथ औषध प्रयोग करना चाहिये॥ १४॥

कफजरोगोंमें अनुपान।

श्लेष्मणि तु मधुमूत्रकषायादिभिर्भावितानि आलोडितानि च इति उद्देशः॥

कफजनित रोगोंमें शहत, गोमूत्र तथा कषाय, तिक्त और कटुरसोंके साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिये॥ १५॥

तं विस्तरेण द्रव्यदेहदोषसात्म्यादीनि प्रविभज्य व्याख्यास्यामः॥ १६॥

इस प्रकार औषध प्रयोगका कथन कर अब इन्हीं द्रव्योंके प्रयोगको द्रव्य, देह दोष और सात्म्य आदि भेदोंसे विभागकर विस्तारसे कथन करते हैं ॥ १६ ॥

वमनद्रव्योंमें मैनफलको श्रेष्ठता और उनके ग्रहणका क्रम।

वमनद्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमानि आचक्ष्यते। अनपायित्वात्तानि वसन्तग्रीष्मयोरन्तरे पुष्याश्वयुग्भ्यां मृगशिरसा वा गृह्णीयान्मैत्रे मुहूर्त्ते करणे च। यानि पक्वानि हरितानि पाण्डूनि अक्रिमीणि अकृशानि अहृस्वानि अजग्धानि तानि प्रमृज्य कुशपुटे बद्ध्वा गोमयेनालिप्य यवतुषमाषशालिकुलत्थमुद्गपर्णीनामन्यतमे निदध्यादष्टरात्रम् अत ऊर्द्ध्वं मृदूभूतानि तानि मधिवष्टगन्धानि उद्धृत्य शोषयेत्। सुशुष्काणां फलानां पिप्पलीरुद्धरेत्तासां घृतदधिमधुपललविमृदितानां पुनः शुष्कानां तासां नवकलशं सुप्रमृष्टवालुकमरजस्कमाकण्ठं पूरयित्वा स्ववच्छन्नं स्वनुगुप्तं शिक्ये आसज्य स्थापयेत् ॥ १७ ॥

वमन द्रव्योंमें मैनफल सबसे उत्तम होता है । क्योंकि यह किसी प्रकारका अवगुण नहीं करता । मैनफलके फलोंको वसन्तऋतुके अंतमें और ग्रीष्मके आदिमें ग्रहण करना चाहिये तथा पुष्य, अश्विनी, मृगशिर इन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रमें और मैत्र मुहूर्तमें जो फल उत्तम पकेहुए, हरे, पीले कृमि आदि दोष रहित, पुष्ट, स्थूल और किसी जीवके खाए कुतरे हुए न हों उनको प्रातःकाल जाकर तोड लावे । फिर कुशामें लपेटकर ऊपरसे गोबरका लेप करे एक बडा गोलासा बना जवोंकी राशिमें अथवा तुषोंमें वा उडद, शालीचावल, कुलथी और मुद्गपर्णी इनमें किसी एकके ढेरमें अथवा अन्य किसी ऐसेही पदार्थके ढेरमें दबाकर रक्खे ।फिर आठ दिनके बाद जब वह मृदु और सुगंधित होजाँय निकालकर सुखा लेवे । जब वह सूख जाँय तो उनकी गिरी (बीजों) को निकाल ले इन बीजोंको घी, दही, शहत और तिलकल्कमें मिलाकर अच्छीतरह मसल ले फिर उन मैनफलके बीजोंको स्वच्छ करके सुखावे । सूखनेपर बालूसे मांजेहुए स्वच्छ नवीन कलशमें कंठपर्यन्त भरकर भली प्रकार ढककर उत्तम एकांत स्थानमें छीकेपर विधिवत् रखदेवे ॥ १७ ॥

वमनकरानेका क्रम।

अथ च्छर्दनीयमातुरं द्व्यहं त्र्यहं वा स्नेहस्वेदोपपन्नञ्च छर्दयेदिति॥ १८॥

इसके अनन्तर जब किसी रोगीको वमन कराना हो तो पहिले उसको दो तीन दिन स्नेहन और स्वेदन कराके फिर वमन करावे ॥ १८ ॥

९ वामक योग ।

ग्राम्यानूपौदकमांसरसक्षीरदधिमाषतिलशाकादिभिः समुत्क्लेशितश्लेष्माणं व्युषितं जीर्णाहारं पूर्वाह्णे कृतबलिहोममङ्गलप्रायश्चित्तं निरन्नमनतिस्निग्धं यवाग्वा घृतमात्रां च पीतवन्तं, तासां फलपिप्पलीनामन्तर्नखमुष्टियावद्वा साधु मन्येत जर्जरीकृत्य यष्टिमधुकषायेण कोविदारकर्बुदारनीपविदुलबिम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पुष्पीकषायाणामन्यतमेन वा रात्रिमुषितं विमृद्य पूतं मधुसैन्धवयुक्तं सुखोष्णं कृत्वा पूर्णशरावं मन्त्रेणानेनाभिमन्त्रयेत् ॥ १९ ॥

जब रोगीको वमन कराना हो तो उससे पहिले दिन ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंके मांसरस, दूध, दही, उडद, तिल और शाक आदि भरपेट खिलाकर उसके कफको उत्क्लेशित करे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल प्रथम दिनका आहार जीर्ण होनेपर बलि, होम, मंगलाचरण और प्रायश्चित्त करा भोजन विना खिलाये घीयुक्त यवागूको पूर्ण मात्रासे पिलावे। और इस वमनके दिनसे पहिले दिन दो तोला अथवा जितना उचित हो उतना उपरोक्त मैनफलके बीजोंको लेकर बारीक पीसकर चालीस तोला मुलैठीके क्काथमें अथवा लाल कचनार, सफेद कचनार, नीप, कालवेतस, बिंबीफल, शणपुष्पी, सदापुष्पी और अपामार्ग इनमेंसे किसी एकके आधसेर क्काथमें मिलाकर रखदेवे। फिर वमनके दिन घृतयुक्त यवागू पीनेके अनन्तर मैनफलके बीजोंके कल्क और इस क्काथको उत्तम रीतिसे घोलकर छान लेवे इसमें शहद और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण गरम करके उस संपूर्ण आधसेर क्काथको इस नीचे लिखे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे ॥ १९ ॥

मन्त्र ।

ओम् ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ।
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पान्तु ते ॥ २० ॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ २१ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, भूमि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषि, औषधियोंके समूह और भूतोंके समूह तेरी रक्षा करें। जैसे ऋषियोंको रसायन, देवताओंको अमृत, उत्तम नागोंको सुधा गुणकारी होते हैं उसी प्रकार तुमको यह औषध गुणकारी हो ॥ २० ॥ २१ ॥

इत्येवमभिमन्त्र्योदङ्मुखमातुरं पाययेत्। श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्यायवन्तं विशेषेण पुनरापित्तागमनात्तेन साधु वमति ॥ २२॥

इस प्रकार इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर उत्तराभिमुख रोगीको बिठाकर यह संपूर्ण औषधी पिलादेवे। विशेषकर कफज्वर, गुल्म और प्रतिश्यायमें वमन कराना हितकारक होता है। जब देखे कि वमनमें पित्त निकलने लगे हैं तो वमन उत्तमरूपसे होगया ऐसा जानना ॥ २२ ॥

हीनवेगमें क्रिया।

हीनवेगन्तु पिप्पल्यामलकसर्षपकल्कलवणोदकैः पुनः पुनः प्रवर्त्तयेदापित्तदर्शनादित्ययं सर्वच्छर्दनयोगविधिः ॥ २३ ॥

यदि वमनका वेग मन्द होजाय तो उस रोगीको मैनफलके प्रयोगके अनंतर आमले और सरसोंका कल्क बना सेंधानमकयुक्त कर गर्म जलके साथ बार बार पिलावे जब तक पित्त निकलने लगे तो वमनका वेग ठीक प्रवृत्त होजाता है। सब प्रकारके वमनयोगोंमेंही वमनके बंद होनेपर यह आमला आदि कल्क गर्मजलके साथ बार बार पिलानेसे वमनका वेग यथोचित्त प्रवृत्त होजाता है इस प्रकार यह वमन विधि कही है॥

वमनमें उष्णद्रव्योंमें मधु देनेकी आज्ञा।

सर्वेषु तु मधुसैन्धवं कफविलायनच्छेदार्थं वमनेषु विदध्यात् । न चोष्णविरोधो मधुनश्छर्दनयोगयुतस्याविपक्वप्रत्यागमनाद्दोषहरणाच्च २४॥

सब प्रकारके वमनयोगोंमें कफको निकालने और छेदन करनेके लिये शहद और सेंधानमक मिला औषध पिलाना चाहिये। वामक द्रव्योंमें गर्म पदार्थोंके साथ शहद मिलाकर पिलानेका निषेध नहीं है। क्योंकि वमन द्रव्योंके साथ पियाहुआ शहद परिपाक होनेसे पहिलेही दोषोंको निकालताहुआ स्वयं भी निकलजाता है ॥ २४ ॥

वामकयोग।

फलपिप्पलीनां द्वौ द्वौ भागौ कोविदारादिकषायेण त्रिःसप्तकृत्वः भावयेत्तेन रसेन तृतीयं भागं पिष्ट्वा हरीतकीभिर्विभीतकैरामलकैर्वा तुल्यं वर्त्तयेत्। तासामेकां द्वे वा पूर्वोक्तानां कषायाणामन्यतमस्याञ्जलिमात्रेण विमृद्य बलवच्छ्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरोदरारुचिषु पाययेदिति समानं पूर्वेण ॥ २५ ॥

दो पल मैनफलके बीजोंको लेकर कचनार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथकी इक्कीस भावना देवे फिर और एक पल मैनफलके बीज लेकर कच-

नार आदि किसी द्रव्यके काथके साथ पीसकर उन इक्कीस भावना दियेहुए बीजोंके चूर्णमें मिलादेवे। फिर इनको पीसकर हरड अथवा बहेडा आमलेके समान गोलियें बनावे इनमेंसे एक या दो गोली कचनार आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकके बीस तोला काथमें घोलकर पीजावे। इससे वमन होकर बलवान् कफका प्रसेक ग्रंथि ज्वर उदररोग और अरुचि यह सब नष्ट होजाते हैं इसमें अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना॥ २५॥

४ वामकयोग।

फलपिप्पलीक्षीरं तेन वा क्षीरयवागूमधोभागे रक्तपित्ते हृद्दाहे च तृषितस्य वा दध्न उत्तरकं कफच्छर्दिस्तमकप्रसेकेषु तस्यैव पयसः। शीतस्य सन्तानिकाञ्जलिं पित्ते प्रकुपिते उरःकण्ठहृदये च तनुकफोपदिग्धे इति समानं पूर्वेण॥ २६॥

उपरोक्त मैनफलके बीजोंसे सिद्ध किया दूध पिलाकर अधोगत रक्तपित्तमें वमन कराना चाहिये। मैनफलके बीजोंसे सिद्ध किये दूधसे बनाईहुई यवागू पिलाकर हृदयके दाहमें वमन करना चाहिये और बहुतसे मैनफलके बीजोंको पीसकर दूधमें पकावे। इस दूधको जमाकर दहीकी मलाई उतारले इस मलाईसे कफजनित रोगोंमें, तमकश्वासमें और कफके गिरनेमें वमन कराना चाहिये। तथा मैनफलके बीजोंसे सिद्धकिये दूधको शीतलकर इसकी बीस तोला मलाई खिलाकर कुपितहुए पित्तमें वमन करावे। और वक्षःस्थल, कण्ठ तथा हृदय पतले कफसे लिपेहुएहों तो भी इस दूधकी मलाई खिलाकरही वमन कराना चाहिये। अन्य संपूर्ण क्रिया पहिलेके समान करना चाहिये॥ २६॥

एक वामकयोग।

फलपिप्पलीशृतक्षीरान्नवनीतमुत्पन्नं फलादिकल्ककषायसिद्धं कफाभिभूताग्निं विशुष्कदेहञ्च मात्रया पाययेदिति समानं पूर्वेण॥ २७॥

मैनफलके बीजोंको दूधमें पकाकर उस दूधकी दही जमावे। इस दहीमेंसे मथकर मक्खन निकाले यह मक्खन एक भाग, मैनफल, मुलैठी और कचनार आदि द्रव्योंका कल्क यह सब मक्खनसे चौथा भाग लेवे और इन मैनफल आदि द्रव्योंका क्वाथ चार भाग लेवे। सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस घृतको उचित मात्राके साथ मुलैठीके क्वाथमें मिलाकर पिलावे तो वमन होकर कफसे व्याप्तहुई अग्नि शुद्ध होकर सम्पूर्ण देह शुद्ध होजाता है। और सम्पूर्ण विधि पहलेके समान ही जाननी॥ २७॥

एक वामकयोग।

फलपिप्पलीनां फलादिकषायेण त्रिःसप्तकृत्वः परिभावितेन पुष्परजः-

प्रकाशेन चूर्णेन सरसि बृहत्सरोरुहं सायाह्नेऽवचूर्णयेत्। तद्रात्रिव्युषितं प्रभाते पुनरवचूर्णितमुद्धृत्य हरिद्राकृसरक्षीरयवागूनामन्यतमं सैन्धवगुडफाणितयुक्तमाकण्ठं पीतवन्तमाघ्रापयेत् सुकुमारमुत्क्लिष्टपित्तकफमौषधद्वेषिणमिति समानं पूर्वेण ॥ २८ ॥

मैनफलके बीज, मुलैठी और कचनार आदि द्रव्योंके क्वाथमें मैनफलके बीजोंके चूर्णकी इक्कीस भावना देवे। फिर बहुत बारीक सूक्ष्म चूर्ण करे। यह चूर्ण एक बडे तालाव पुष्करिणी आदिमें जाकर जो उसमें बहुत बडा कमलका फूल हो उस फूलपर यह चूर्ण लगाकर चला आवे। दूसरे रोज प्रातःकाल फिर मैनफलका चूर्ण बुरकाकर उस फूलको युक्तिपूर्वक तोड लावे। फिर रोगीको हल्दी, खिचडी, दूध, यवागू, सेंधानमक, गुड, फाणित आदि द्रव्य यहांतक भरपेट पिलावे कि रोगी कण्ठपर्यन्त पूर्ण होजाय। फिर रोगीको वह कमलका फूल सुंघावे। इससे सुकुमार प्रकृति मनुष्यके शरीरमें उत्क्लेशित हुई कफ और पित्त निकल जाती है तथा जो रोगी सुकुमार स्वभाव होनेसे औषध पीनेमें द्वेष रखते हैं उनको यह सुंघानेवाला प्रयोग करा वमन कराना चाहिये। अन्य सम्पूर्ण क्रिया पहिलेके समान करना ॥ २८ ॥

१-एक वामकयोग।

फलपिप्पलीनां भल्लातकविधिपरिस्रुतं स्वरसं पक्त्वा फाणितेनातन्तुलीभावाल्लेहयेत् ॥ २९ ॥

मैनफलके बीजोंका मिलावेकी विधिके समान स्वरस निकालकर पकावे। जब गाढा होजाय तो फाणितके साथ मिलाकर चाटे तो इससे आमाशयगत दोष वमनद्वारा निकलजाते हैं अन्य सब क्रिया पूर्ववत् जानना ॥ २९ ॥

२-एकवामकयोग।

तापशुष्कं वा चूर्णीकृतं जीमूतादिकषायेण पित्ते कफस्थानगते पाययेदिति समानं पूर्वेण ॥ ३० ॥

मैनफलके बीजोंके स्वरसको धूपमें सुखाकर चूर्ण कर लेवे फिर इस चूर्णको जीमूत आदि क्वाथके साथ मिलाकर कफस्थानगत पित्तमें वमन करावे। अन्य सब क्रिया पूर्ववत् करे ॥ ३० ॥

६ वामकयोग।

फलपिप्पलीचूर्णानि पूर्ववत्कोविदारादीनां षण्णामन्यतमकषायप्लुतानि वर्तिक्रियाः कोविदारादिकषायोपसर्जनाः पेया इति समानं पूर्वेण ॥ ३१ ॥

मैनफलके बीजोंके चूर्णको कचनार आदि सब द्रव्योंके स्वरसमें अथवा कचनार आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकके स्वरसमें घोटकर गोलियें बनावे। यह गोली कचनार आदि किसी द्रव्यके क्वाथमें घोलकर पीवे तो वमन होकर आमाशयगत दोष दूर होता है। अन्य सब क्रिया पहिलेके समान करना ॥ ३१ ॥

२० वामकयोग।

फलपिप्पलीषु आरग्वधकुटजस्वादुकण्टकपाठापाटलिशार्ङ्गेष्ठामूर्वासप्तपर्णनक्तमालपिचुमर्दपटोलसुषवीगुडूचीसोमवल्कदीपिकानां पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेराणां च अन्यतमकषायेण सिद्धो लेह इति समानं पूर्वेण ॥ ३२ ॥

अमलतास, कुडा, विकंकत, पाढ, सोनापाठा, महाकरंज, मूर्वा, सप्तपर्ण, लताकरंज, नीम, पटोलकी जड, सुखवी, गिलोय, सोमवल्कल, अजवायन, पीपल, पिपलामूल, गजपीपल, चित्रक और सोंठ इन २० द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें मैनफलके बीजोंका अवलेह बनावे। इस अवलेहको शहद आदि मिलाकर चाटे तो आमाशयगत संपूर्ण दोष वमनद्वारा निकलजाते हैं। अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ३२॥

बीस २ मोदक और उत्कारिकावामक योग।

फलपिप्पलीषु एलाहरेणुकाशतपुष्पाकुस्तुम्बुरुतगरकुष्ठत्वक्चोरकमरुबकगुग्गुलुवालुकश्रीवेष्टकपरिपेलवमांसीशैलेयकस्थौणेयकसरलपारावतपद्यशोकरोहिणीनां विंशतेरन्यतमस्य कषायेण साधितोत्कारिकाकल्पेन यथा मोदको वा मोदककल्पेन यथादोषरोगविभक्ति प्रयोज्या इति समानं पूर्वेण ॥ ३३ ॥

इलायची, रेणुका, सौंफ, धनियां, तगर, कूठ, तज, चोरक, महुवा, गूगल, सुगन्धवाला, श्रीवास, नागरमोथा, जटामांसी, शैलेय, थुनेरा, सरलकाष्ठ, हंसपदी, अशोक और कुटकी इन २० द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें मैनफलके बीजोंका चूर्ण सानकर उत्कारिका अथवा मोदक बनावे। यह मोदक, उत्कारिका घृत मिसरी आदि मिलाकर विधिवत् बनाने चाहिये। इनमेंसे उत्कारिका अथवा मोदक दोषानुसार खिलावे। अन्य क्रिया संपूर्ण पहिलेके समान जाननी ॥ ३३ ॥

एक एक शष्कुली अपूपयोग।

फलपिप्पलीस्वरसकषायपरिभावितानि तिलशालितण्डुलपिष्टानि तत्कषायोपसर्जनानि शष्कुलीकल्पेन वापूपा इति समानं पूर्वेण ॥ ३४ ॥

मैनफलके स्वरस और मैनफलके बीजोंक क्काथमें तिल और शालीचावलोंको भावना देकर बारीक पीस चूर्ण करे इस चूर्णमें मैनफलका क्वाथ मिला उसन लेवे। फिर इसकी शष्कुली अथवा पूडा बनाकर विधिवत् प्रयोग करे। अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ ३४ ॥

पंद्रह २ अपूपशष्कुली योग।

एतेनैव च कल्पेन सुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरकालमालकपर्णासक-क्षवकफणिज्जकशृङ्गवेरगृञ्जनभूस्तृणककासमर्दभृङ्गराजानामिक्षुवा-लिकेक्षुकाण्डेक्षूणाश्चान्यतमस्य कषायेण कारयेत् ॥ ३५

इसी प्रकार सुमुख तुलसी, सुरस तुलसी, कुठेरक तुलसी, गण्डीर तुलसी, काल-मालक तुलसी, पर्णास तुलसी, फणिज्जक तुलसी, अदरक, गाजर, भूतृण, कसौंदी, भांगरा, इक्षुवालिका, ईख और कांडेक्षु इन १५ औषध द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्काथमें मैनफलके बीजोंका चूर्ण उसनकर शष्कुली अथवा पूडा बनावे। अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ ३५ ॥

वमनके १० योग।

यथा बदरषाण्डवरागलेहमोदकोत्कारिकातर्पणपानकमांसरसयूषम-द्यानि मदनफलपाचितानि तेनोपसंसृज्य यथादोषरोगविभक्ति दद्यात् तैः साधु वमतीति ॥ ३६ ॥

तथा बदर षांडव, राग, लेह, मोदक, पूडी, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य इनमेंसे किसी एकको मैनफलके साथ पकाकर अथवा मैनफलका क्काथ मिलाकर वा मैनफलका कल्क मिला दोषानुसार कल्पना कर पिलावे तो उत्तम वमन होती है॥

मैनफलके प्रयोग।

मदनः करहाटश्च राटः पिण्डीतकः फलम्।
श्वसनश्चेति पर्य्यायैरुच्यते तस्य कल्पना ॥ ३७ ॥

मदन, करहाटक, राट, (राडा) पिण्डीतक फल और श्वसन यह सब मैनफलके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ३७ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकाः—नव योगाः कषायेषु वर्त्तिष्वष्टौ पयोमुखे।
पञ्च फाणितचूर्णे द्वौ घ्रेये वर्त्तिक्रियासु षट् ॥ ३८ ॥
विंशतिर्विंशतिर्लेहमोदकोत्कारिकासु च।

शष्कुलीपूपयोश्चोक्ता योगाः षोडश षोडश ॥ ३९ ॥
दशान्ये षांडवाद्येषु त्रयस्त्रिंशदिदं शतम् ।
योगानां विधिवद् दृष्टं फलं कल्पे महर्षिणा ॥ ४० ॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने मदनकल्पो नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि मदनकल्पनामक अध्यायमें नव प्रकारके क्वाथ योग, आठ प्रकारके वर्त्ती (गोली) योग, पांच प्रकारके दूध, मक्खन आदि योग, एक प्रकारका फाणित, एक प्रकारका चूर्ण, एक प्रकारकी सुंघनी, छः प्रकारकी वर्त्तीं, २० प्रकारके अवलेह, २० प्रकारके मोदक, २० प्रकारकी उत्कारिका (सुहाली), २० प्रकारकी शष्कुली (पूडी), अन्य १६ प्रकारकी शष्कुली, १६ प्रकारके पूडे, दश प्रकारके खाण्डव आदि वामकयोग कहे हैं । यह सब मिलाकर १३३ प्रकारके मैनफलके कल्पोंको महर्षि आत्रेयजीने कथन किया है ॥३८-४०॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां मदनकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।



अथातो जीमूतकल्पं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

जीमूतके नाम ।

कल्पं जीमूतकस्येमं फलपुष्पाश्रयं शृणु ।
खरागरी च वेणी च तथा स्याद्देवताडकः ॥ १ ॥

अब जीमूतकल्पको श्रवण करो । जीमूतके फल और फूल वमन करानेमें लिये-जाते हैं जीमूत-खरागरी, वेणी देवताडक (घोशलता, देवदाली), यह जीमूतके पर्याय वाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

---

१ देवदाली, कडवो तोरीकी जाति, (वन्दोलडोडा)।

५ योग।

जीमूतकं त्रिदोषघ्नं यथा स्वौषधकल्पितम् ।
प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासहिक्काकोष्ठामयेषु च ॥ २ ॥
यथोक्तगुणयुक्तानां देशजानां यथाविधि ।
पयः पुष्पेषु निर्वृत्तं फले पेयाशृतं पयः ॥ ३ ॥
लोमने क्षीरसन्तानं दध्युत्तरमलोमने ।
शृते पयसि दध्यम्लं जातं हरितपाण्डुके ॥ ४ ॥

जीमूत उचित द्रव्योंके साथ कल्पना किया हुआ त्रिदोषको नष्ट करता है। इसका प्रयोग, ज्वर, श्वास और हिचकी आदि रोगोंमें करना चाहिये। जीमूतको प्रथम कल्पमें कहे अनुसार उत्तम भूमिसे विधिपूर्वक लावे। १-इसके फूल डालकर सिद्ध किया दूध पीवे। २-फल मिलाकर पकायाहुआ दूध पीवे। ३-दोषोंका अनुलोमन करनेके लिये जीमूतसे सिद्ध किये दूधकी मलाई खावे। ४-दोषोंका प्रतिलोम होनेपर जीमूतसे सिद्ध किया दूध पीकर ऊपरसे दही पीवे। ५-पाण्डु और नेत्रोंके हरे होनेपर जीमूतसे सिद्ध किये दूधका खट्टा दही पीवे ॥ २-४ ॥

१ योग।

जीर्णानाञ्च सुशुष्काणां न्यस्तानां भाजने शुचौ ।
चूर्णस्य पयसा शुक्तिं वातपित्तार्दितः पिबेत् ॥ ५ ॥

जीमूतके फल जब पककर सूखजावें तो उनको उत्तम पवित्र पात्रमें डालकर रक्खे फिर जब आवश्यकता हो तो इन फलोंका चूर्ण कर दो तोला चूर्ण लेकर जितनी मात्रा समयानुकूल उचित हो वातपित्त रोगसे पीडित रोगीको दूधके साथ मिलाकर पिलावे॥५

१ सुरामण्ड योग।

आसुत्य च सुरामण्डे मृदित्वा प्रसुतं पिबेत् ।
कफजेऽरोचके कासे पाण्डुरोगे सयक्ष्मणि ॥ ६ ॥

जीमूतके फलको सुरामण्डमें भिगोकर रक्खे फिर १५ दिनके बाद इस फलको सुरामें खूब मसलकर सुराको छान लेवे। इसको पीकर वमन करानेसे कफकी अरुचि, खांसी, पाण्डुरोग और यक्ष्माकी शान्ति होती है ॥ ६ ॥

१२ योग।

द्वे वापोथ्याथवा त्रीणि गुडूच्यामलकस्य वा ।
कोविदारादिकानां वा निम्बस्य कुटजस्य वा ।
कषायेष्वासुतं पूत्वा तेनैव विधिना पिबेत् ॥ ७ ॥

जीमूतके दो अथवा तीन फलोंको कूटकर कोविदार आदि आठ द्रव्य, नीम, इन्द्रयव, गिलोय और आमले इन १२ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्काथमें भिगोकर बन्द करके रखदेवे। जब आसवके समान उनका रस क्काथमें आजाय तो मसलकर छान लेवे। इसको पीकर वमन करे और मदनकल्पकी विधिका अनुसरण करे॥ ७॥

७ योग।

अथवाऽऽरग्वधादीनां सप्तानां पूर्ववत्पिबेत्।
एकैकशः कषायेण पित्तश्लेष्मज्वरार्दितः॥ ८॥

अमलतास, कुडा, विकंकत, सोनापाठा, पाटला, महाकरञ्ज और मूर्वा इन सात द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्काथमें जीमूतके फलोंको कूटकर भिगोवे। आसवके समान खमीर उठनेपर मसलकर छान लेवे। पित्त और कफ ज्वरसे पीडित रोगीको पिलाकर वमन करावे। सब विधि पहिलेके समान जानना॥ ८॥

८ योग।

वर्त्तयः फलवत्योऽष्टौ कोलमात्रास्तु ता मताः।
जीमूतकस्य वा कल्कं चूर्णं वा शिशिराम्बुना।
ज्वरे पित्तभवे वातदुष्टे श्लेष्मणि चानुगे॥ ९॥

मैनफलके समानही कचनार आदि द्रव्योंके क्काथसे जीमूतके फलोंकी आठ प्रकार वर्त्ती (बत्ती या वटिका) कल्पना करे और कोविदार आदि द्रव्योंके क्काथमें घोलकर पीवे अथवा जीमूतके कल्क वा चूर्णको शीतलजलके साथ पीकर पित्तप्रधान, वातमध्य, कफानुग ज्वरमें वमन करावे॥ ९॥

४ योग।

जीवकर्षभकेक्षूणां शतावर्य्या रसेन वा।
पित्तश्लेष्मज्वरे दद्याद्वातपित्तज्वरेऽथवा॥ १०॥

जीवक, ऋषभक, ईख अथवा सतावरके रसके साथ जीमूतका कल्क पिलाकर पित्तकफज्वरमें अथवा वातपित्तज्वरमें वमन करावे॥ १०॥

तथा जीमूतकक्षीरात्समुत्पन्नं पचेद्घृतम्।
फलादीनां कषायेण श्रेष्ठं तद्वमनं मतम्॥ ११॥

जीमूतके साथ सिद्ध कियेहुए दूधमेंसे घृत निकालकर इस घृतमें चौगुना मदन-

---

१ लालकचनार, सफेदकचनार, नीप, कालवेतस, कंदूरी, शणपुष्पी, सदापुष्पी और अपामार्ग।
२ मैनफल, मुलैठी, कचनार आदि आठ द्रव्य।

फलादि द्रव्योंका क्वाथ मिलाकर घृत सिद्ध करे । अथवा इस घृतको मदन फल आदि दश द्रव्योंके क्वाथमें मिलाकर पीवे तो उत्तम वमन होता है ॥ ११ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ—षट् क्षीरे मदिरामण्डे एको द्वादश चापरे ।
सप्त चारग्वधादीनां कषायेऽष्टौ च वर्त्तिषु ॥ १२ ॥
जीवकादिषु चत्वारो घृतश्चैकं प्रकीर्त्तितम् ।
कल्पे जीमूतकानाञ्च योगास्त्रिंशन्नवाधिकाः ॥ १३ ॥
इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने जीमूतकल्पं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस जीमूतकल्पनामक अध्यायमें दूध आदि ६ योग, सुरामण्डका १ योग, संधानके १२ योग, अमलतास आदि ७ योग, बत्तीके ८ योग, जीवकादि ४ योग और घृतका १ योग । सब मिलाकर ३९ योगोंका वर्णन किया है ॥ १२ ॥ १३ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासि-वैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषा-टीकायां जीमूतकल्पं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः ।



अथात इक्ष्वाकुकल्पं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम इक्ष्वाकुकल्पकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

इक्ष्वाकुकल्प ।

सिद्धं वक्ष्याम्यथेक्ष्वाकुकल्पं येषां प्रशस्यते ।
पञ्चचत्वारिंशदुक्ता योगा अस्मिन् महर्षिणा ॥ १ ॥

इक्ष्वाकु कल्प सिद्ध फलके देनेवाला है जिसके लिये इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ है उसको वर्णन करते हैं । इसमें इक्ष्वाकु (कडवी तुंबी) के ४५ योग महर्षि आत्रेयजीने वर्णन किये हैं ॥ १ ॥

कडुवे तुम्बेके नाम और गुण ।

लम्बाथ कटुकालाबुस्तुम्बी पिण्डफला तथा ।
इक्ष्वाकुफलिनी चैव प्रोच्यते तस्य कल्पना ॥ २ ॥
कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्त्ते कफकर्शिते ।
प्रताम्यति नरे चैव वमनार्थं तदिष्यते ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकु, लम्बा, कटुक, अलाबु, कडवी तुंबी, पिण्डफला, फलिनी यह इक्ष्वाकुके पर्यायवाचक शब्द हैं । खांसी, श्वास, विष, वमन, ज्वर, कफ और पित्तजनित बेहोशीमें इक्ष्वाकु द्वारा वमन कराना श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ ३ ॥

दूध आदि आठ योग ।

अपुष्पस्य प्रवालानां मुष्टिं प्रादेशसंमिताम् ।
क्षीरप्रस्थे शृतं दद्यात्पित्तोद्रिक्ते कफज्वरे ॥ ४ ॥

पुष्परहित कडवे तुंबेकी उत्तम बेल एक बालिश्त,नई कोंपल शाखा एक पल इनको कूटकर एक सेर दूध और एक सेर पानीमें मिलाकर पकावे । जब दूधमात्र शेष रहजाय तो उतारकर छान लेवे । इसके पीनेसे वमन होकर पित्तोल्वण पित्तकफज्वर नष्ट होता है ॥

पुष्पादिषु च चत्वारः क्षीरजीमूतके यथा ।
योगा हरितपाण्डूनां सुरामण्डेन पञ्चमः ॥ ५ ॥

जैसे फूल आदिकोंके साथ सिद्ध कियेहुए चार प्रकारके योग जीमूतके कहे हैं उसी प्रकार कडवे तुंबेके भी चार प्रकारके योग कल्पना किये जाते हैं । यह चार योग हरित पांडुरोगमें प्रयोग करने चाहिये । और जिस प्रकार सुरामण्डमें जीमूतफलका संधानकर प्रयोग किया जाता है, ऐसेही कडवीतुंबीके फलको भिगोकर सुरामण्डका प्रयोग किया जाता है ॥ ५ ॥

फलस्वरसभागञ्च त्रिगुणक्षीरसाधितम् ।
उरःस्थिते कफे दद्यात्स्वरभेदे सपीनसे ॥ ६ ॥

कडवीतुंबीका स्वरस एक भाग, दूध ३ भाग मिलाकर पकावे । दूधमात्र शेष रहनेपर पिलाकर कफजनित छातीके रोग, स्वरभंग और प्रतिश्यायमें वमन करावे ६॥

हृतमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं यदा दधि ।
जातं स्यात्कफजे कासे श्वासे वम्याञ्च तां पिबेत् ॥ ७ ॥

पकीहुई कडवीतुंबीके बीचमें छेदकर उसमें दूध भरकर जमा देवे । जब दही जमजाय तो उस दहीको मथकर कफकी खांसी, कफजनित श्वास और कफजनित वमनमें पिलाकर वमन करावे ॥ ७ ॥

मस्तुका १ योग तक्रका १ योग।

मस्तुना वा फलान्मध्यं पाण्डुकुष्ठविषार्दितः ।

तेन तक्रं विपक्कं वा सक्षौद्रलवणं पिबेत् ॥ ८ ॥

कडवीतुंबीके गूदेको श्वास, पाण्डुरोग, कुष्ठ और विषरोगमें दहीके जलमें पकाकर पिलावे। अथवा कडवीतुंबीके गूदेको छाछमें पकाकर शहद और सेंधानमक मिला पिलावे

बकरीके दूधका १ योग।

अजाक्षीरेण बीजानि भावयेत्पाययेत च ।

विषगुल्मोदरग्रन्थिगण्डेषु श्लीपदेषु च ॥ ९ ॥

इक्ष्वाकुके बीजोंके चूर्णको बकरीके दूधकी भावना देकर विषरोग,गुल्मरोग,उदररोग , ग्रंथीरोग, गण्डमाला और श्लीपदरोगमें पिला वमन कराना चाहिये ॥ ९ ॥

१ गन्धयोग।

तुम्ब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम् ।

छादयेन्माल्यमाघ्राय गन्धसम्पत्सुखोचितः ॥ १० ॥

कडवीतुंबीके फलोंका चूर्णकर कडवीतुंबीके फलोंके रसमें भावना देवे। फिर सुखाकर बारीक चूर्ण करे इस चूर्णको सुगंधित फूलमालामें लगा सुकुमारप्रकृति मनुष्योंको सुंघावे तो सुखपूर्वक वमन होजाता है॥ १० ॥

गुडादि ४ योग।

भक्षयेत्फलमध्यं वा गुडेन पललेन च ।

इक्ष्वाकुफलतैलं वा सिद्धं वा पूर्ववद्घृतम् ॥ ११ ॥

कडवीतुंबीके गूदेको गुड अथवा तिलकल्कके साथ मिलाकर खावे अथवा कडवी तुंबीके कल्कके साथ सिद्ध किया तेल अथवा जीमूतके समान बनायाहुआ कडवी तुंबीका घृत पीवे तो उत्तम रीतिसे वमन होजाती है ॥ ११ ॥

वर्धमान ६ योग।

पञ्चाशद्दशवृद्धानि फलादीनां यथोत्तरम् ।

पिबेद्विमृद्य बीजानि कषायेष्वासुतं पृथक् ॥ १२ ॥

कडवी तुंबीके दश बीज, मैनफल आदि द्रव्योंके काथके साथ संधानकर पीसके पीवे। फिर क्रमसे दश दश बीज बढाता हुआ ५ दिनमें ५० बीजों तक बढावे। इससे वमन द्वारा शरीरके सम्पूर्ण दोष दूर होते हैं ॥ १२ ॥

काथके ९ योग। वर्त्तीके ८ योग।

यष्ट्याह्वकोविदाराद्यैर्मुष्टिमन्तर्नखं पिबेत् ।

कषायैः कोविदाराद्यैर्मात्राश्च फलवत्स्मृताः ॥ १३ ॥

मुलैठी और कोविदार आदि आठ द्रव्योंके क्वाथमें दो तोला कडवीतुंबीके बीजोंको पीसकर बत्तियें बनावे और दोषानुसार उनका प्रयोग कर वमन करावे। मैनफलमें कहीहुई विधिके अनुसार इसकी ८ प्रकारकी वर्त्तियोंकी कल्पना करे॥१३॥

अवलेहके ५ योग।

बिल्वमूलकषायेण तुम्बीबीजाञ्जलिं पिबेत्।
पूतंस्यास्य त्रयो भागाश्चतुर्थः फाणितस्य तु॥ १४॥
सघृतं बीजभागश्च पिष्टमर्द्धांशिकास्तथा।
महाजालिनिजीमूतकृतवेधनवत्सकान्॥ १५॥
तं लेहं साधयेद्दर्व्या घट्टयेन्मृदुनाग्निना।
यावत्स्यात्तन्तुमत्तोये पतितश्च न शीर्य्यते।
तं लिह्यान्मात्रया लेहं मन्थश्चापि पिबेदनु।
कल्प एषोऽग्निमन्थादौ चतुष्के पृथगुच्यते॥ १६॥

बेलकी जडके क्वाथमें ४ पल कडवी तुंबीके बीजोंको पकावे। फिर छानकर यह क्काथ ३ भाग, फाणित एक भाग, घृत १ भाग, कडवी तुंबीका चूर्ण आधाभाग, देवदालीका चूर्ण आधाभाग, कडवी तोरीका चूर्ण आधाभाग, इन्द्रयव आधाभाग इन सबको मिलाकर मन्द आंचपर पकावे। जब यह पकते २ कडछीमें लगने लगे और तारसा बंधजाय तथा पानीमें डालनेसे पानीमें न घुले तो इसको उतारकर रक्खे। इसमेंसे उचित मात्रानुसार चाटकर ऊपरसे मन्थ पीवे। इसी प्रकार अग्निमंथ,सोनापाठा,कुंभेर और पाटलाकी जडके क्काथके साथ पृथक् २ यह अवलेह बनाया जाता है१४-१६

मंथके १ योग।

सक्तुर्भिर्वा पिबेन्मन्थं तुम्बीस्वरसभावितैः।
कफजेऽथ ज्वरे कासे कण्ठरोगेष्वरोचके॥ १७॥

अथवा कडवी तुंबीके रसमें भावना दिये यवके सत्तुओंका मंथ पीवे। इससे वमन होकर कफज्वर, श्वास, खांसी, कण्ठरोग और अरुचि यह सब दूर होते हैं॥ १७॥

मांसरसका १ योग।

गुल्मे मेहे प्रसेके च कल्पं मांसरसैः पिबेत्।
नरः साधु वमत्येवं न च दौर्बल्यमश्नुते॥ १८॥

---

१ घृतस्यापि त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च। इति पाठान्तरम्।

गुल्मरोगमें, प्रमेहमें और कफके गिरनेमें कडवी तुंबीसे सिद्ध किया मांसरस पीवे। इन योगोंसे उत्तम प्रकार वमन होकर शरीर दुर्बल नहीं होता ॥ १८ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकाः-पयस्यष्टौ सुरामण्डमस्तुतक्रेषु च त्रयः।
घ्रेयं सपललं तैलं वर्द्धमानासवेषु षट् ॥ १९ ॥
घृतमेकं कषायेषु नवान्ये मधुकादिषु।
अष्टौ वर्त्तिक्रिया लेहाः पञ्च मन्थो रसस्तथा ॥ २० ॥
योगा इक्ष्वाकुकल्पे ते चत्वारिंशच्च पञ्च च।
उक्ता महर्षिणा सम्यक् प्रजानां हितकाम्यया ॥ २१ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थान इक्ष्वाकुकल्पो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस इक्ष्वाकुकल्पमें दूधके साथ ८ योग, सुरामण्डके साथ १ योग, दहीके जल और तक्रके साथ ३ योग, सूंघनेका १ योग, गुड, तिल, कल्क, तेल और वर्द्धमान प्रणालीसे तथा संधानक्रमसे ६ योग, घृतसे १ योग, मुलैठी आदि क्राथोंसे ९ योग, वटिकाविधानसे ८ योग, अवलेहविधिसे ९ योग, मंथसे १ योग, मांसरसके साथ १ योग इसप्रकार सब मिलाकर प्रजागणके हितके लिये महर्षिने ४५ योगोंको कथन किया है ॥ १९-२१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां इक्ष्वाकुकल्पो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

अथातो धामार्गवकल्पं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

धामार्गवके नाम।

कर्कोटकी कटुफला महाजालिनिरेव च।
धामार्गवस्य पर्य्याया राजकोशातकी तथा ॥ १ ॥

धामार्गव, कर्कोटकी, कटुफला, महाजालिंनी और राजकोशातकी यह कडवी तोरीके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

धामार्गवके गुण।

गरे गुल्मोदरे कासे वातश्लेष्मामये स्थिते।
कफे च कण्ठवक्त्रस्थे कफसञ्चयजेषु च।
रोगेष्वेषु प्रयोज्याः स्युः स्थिराश्च गुरवश्च ये ॥ २ ॥

गरदोष, गुल्म, उदररोग, खांसी, बद्धमूल, वात और कफके रोग, कण्ठ और मुखमें हुए कफके विकार, सब प्रकारके संचय तथा अन्यभी जो भारी और शिरागत रोग हैं उनमें धामार्गवका वमन करना हितकारक होता है ॥ २ ॥

धामार्गवके ६० योग।

फलं पुष्पं प्रवालञ्च विधिना तस्य संहरेत्।
प्रवालस्वरसं शुष्कं कृताश्च गुलिकाः पृथक्।
कोविदारादिभिः पेयाः कषायैर्मधुकस्य च ॥ ३ ॥

धामार्गवके फल, फूल, प्रवाल आदि विधिपूर्वक उचित समयमें ग्रहण करके रक्खे। धामार्गवके प्रवालोंका स्वरस, धूपमें सुखाकर चूर्ण अथवा गोली बना लेवे। अथवा इस स्वरसको अग्निपर पकाकर गोली बनावे इस गोलीको मुलैठीके क्काथसे अथवा कोविदार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्काथमें मिलाकर पीवे तो उत्तम रीतिसे वमनहो॥३॥

पुष्पादिषु पयोयोगाश्चत्वारः पञ्चमी सुरा।
पूर्ववज्जीर्णशुष्काणामतः कल्पः प्रवक्ष्यते ॥ ४ ॥

कडवी तोरीके फूल, फल और पल्लवोंके योगसे दूध आदि सिद्धकर ४ प्रकारकी जीमूतके समान कल्पना करे। तथा इसके फलोंको सुरामण्डमें भिगोकर आसवके समान ५ वीं कल्पना करे। जीमूतके समान इसके सूखे फलोंके अन्य कल्प कथन करते हैं॥४॥

मधुकस्य कषायेण बीजं कण्टोद्धृतं फलम्।
सगुडं व्युषितं रात्रिं कोविदारादिभिस्तथा ॥ ५ ॥
दद्याद्गुल्मोदरार्त्तेभ्यो ये चाप्यन्ये कफामयाः।
दद्यादन्नेन वा युक्तं छर्दिहृद्रोगशान्तये ॥ ६ ॥

धामार्गवके बीजोंका छिलका दूरकर मुलैठीके क्काथमें अथवा कचनार आदि-आठ द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्काथमें कूटकर रात्रिको भिगो देवे। प्रातःकाल उसमें गुड मिलाकर कफगुल्म, कफके उदररोग तथा अन्य कफके विकारमें पिलाकर वमन करावे। और हृद्रोगमें तथा छर्दीमें अन्नके साथ मिलाकर देवे। किसी

पुस्तकमें अन्नकी जगह अम्ल पाठ है। अर्थात् छर्दी और हृद्रोगमें कांजीमें मिलाकर पिलावे तो वमन होकर दोषकी शान्ति होती है ॥ ५ ॥ ६ ॥

चूर्णैर्वाप्युत्पलादीनि भावितानि प्रभूतशः।
रसक्षीरयवाग्वादितृप्तो घ्रात्वा वमेत्सुखम् ॥ ७ ॥

धामार्गवके बीजोंका चूर्णकर नीलकमल आदि फूलोंपर पूर्वोक्त क्रमसे बुरकावे। फिर रोगीको मांसरस, दूध, यवागू आदि अत्यन्त भरपेट खिलाकर वह चूर्णयुक्त कमल सुंघावे। उसके सूंघनेसे सुकुमारप्रकृति मनुष्योंको सुखपूर्वक वमन होजाती है ॥

चूर्णीकृतस्य वर्त्तिं वा कृत्वा बदरसम्मिताम्।
विनीयाञ्जलिमात्रे तु पिबेद्गोशकृतो रसे ॥ ८ ॥

कडवी तोरीके बीजोंके चूर्णको बारीक पीसकर बेरके समान गोलियां बनावे। एक गोली २० तोले गौके गोबरके रसमें मिलाकर पीवे तो उत्तम रीतिसे वमन होकर विष विकार आदि दूर होते हैं ॥ ८ ॥

पृषतर्क्षकुरङ्गाश्वगजोष्ट्राश्वतरस्य च।
श्वदंष्ट्रखरखङ्गानाश्चैवं पेया शकृद्रसे ॥ ९ ॥

इसी प्रकार पृषतमृग, रीछ, हिरण, घोडा, हाथी, ऊंट, खच्चर, वघेरा, गधा और गेंडेकी विष्ठाके रसमें भी धामार्गवके चूर्णको पीकर वमन किया जाता है ॥ ९ ॥

जीवकर्षभकौ वीरामात्मगुप्तां शतावरीम्।
काकोलीं श्रावणीं मेदां महामेदां मधूलिकाम् ॥ १० ॥
एकैकशोऽभिसंचूर्ण्य सह धामार्गवेण तु।
शर्करामधुसंयुक्ता लेह्या हृद्दाहकासिनाम् ॥ ११ ॥

जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, कौंचके बीज, शतावर, काकोली, गोरखमुण्डी, मेदा, महामेदा और मुलैठी इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एकके चूर्णमें धामार्गवके बीजोंका चूर्ण और खांड तथा शहद मिला अवलेह बनावे। यह अवलेह हृदयकी दाह और खांसीवालेको चटाना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥

सुखोदकानुपानाः स्युः पित्तोष्मसहिते कफे।
धान्यतुम्बुरुयूषेण कल्कस्तस्य विषापहः ॥ १२ ॥

पित्तकी उष्णतायुक्त कफमें धामार्गवके चूर्णको गर्मजलके साथ पिलावे। और धनियां तथा नेपाली धनियेंके क्वाथ और मूंगके यूषके साथ धामार्गवका कल्कपीनेसे वमन होकर विषविकार दूर होता है ॥ १२ ॥

जात्याः सौमनसायिन्या रजन्याश्चोरकस्य वा ।
वृश्चिकस्य महाक्षुद्रसहाहैमवतस्य च ।
बिम्ब्याः पुनर्नवाया वा कासमर्दस्य वा पृथक् ॥ १३ ॥
एकं धामार्गवं द्वे वा कषाये परिमृद्य तु ।
तच्छृतं क्षीरजं सर्पिः साधितं वा फलादिभिः ।
घृतं मनोविकारेषु पिबेद्वमनमुत्तमम् ॥ १४ ॥

मालतीके फूल, हल्दी, वृश्चिक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, वच, कन्दूरी, पुनर्नवा और कसौंदी इनके क्वाथमें एक अथवा दो कडवी तोरीका कल्क मिलाकर दूधको सिद्ध करे। इस दूधका घी निकालकर मदनफलादि कल्कके साथ पीनेसे वमन होकर मनोविकार दूर होते हैं। यह वमनकारक उत्तम योग है ॥ १३ ॥ १४ ॥

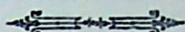
अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ—पल्लवेन च चत्वारः क्षीर एकः सुरासवे ।
कषायैर्विंशतिः कल्कैर्दश द्वौ च शकृद्रसे ॥ १५ ॥
अन्न एकस्तथा घ्रेये दश लेहास्तथा घृते ।
कल्पे धामार्गवस्योक्ताः षष्टिर्योगा महर्षिणा ॥ १६ ॥
इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने धामार्गवकल्पो
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस धामार्गवकल्पनामक अध्यायमें धामार्गवके पल्लवोंसे ४ योग, दूधसे १ योग, सुरासवसे १ योग, कषाय और कल्कसे २० योग, गोबर आदि रससे बारह योग, अन्नसे १ योग, सूंघनेसे १ योग, अवलेहसे दश योग और घृतसे दशयोग कल्पना किये हैं। इस प्रकार सब मिलाकर कडवी तोरीके ६० योग महर्षिने कथन किये हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां कल्पस्थाने धामार्गवकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः।



अथातो वत्सककल्पं व्याख्यास्यामः। इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम वत्सककल्पकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

अथ वत्सकनामानि भेदं स्त्रीपुंसयोस्तथा।
कल्पञ्चास्य प्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम्॥ १॥

अब वत्सकके नाम, स्त्री पुरुष भेद और वत्सक (कुडा) के कल्पोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहैं॥ १॥

कुटजके नाम।

वत्सकः कुटजः शक्रो वृक्षको गिरिमल्लिका।
बीजानीन्द्रयवास्तस्य तथोच्यन्ते कलिङ्गकाः॥ २॥

वत्सक, कुटज, शक्र, वृक्षक, गिरिमल्लिका यह कुडाके नाम हैं। इसके बीजोंको इंद्रयव और कलिंग कहते हैं॥ ३॥

स्त्रीपुरुषभेद।

बृहत्फलः श्वेतपुष्पः स्निग्धपत्रः पुमान् भवेत्।
श्यामा चारुणपुष्पी स्त्री फलवृन्तैस्तथाणुभिः॥ ३॥

जिस कुटज वृक्षमें बडी २ लंबी फलिएँ हों और फूल सफेद हों तथा पत्र चिकने हों उसे पुरुषजातिका कुटज (कुडा) वृक्ष जानना। और जिसमें फूल काले या लाल वर्णके हों, फली और डंडी छोटी हों उसको स्त्रीजातिकी कुडा जानना॥ २॥

कुटजके गुण।

रक्तपित्तकफघ्नस्तु सुकुमारेष्वनत्ययः।
हृद्रोगज्वरवातासृग्विसर्पादिषु शस्यते॥ ४॥

कुटज–रक्तपित्त और कफको नष्ट करता है और यह सुकुमार मनुष्योंको भी किसी प्रकारकी हानि नहीं करता। तथा हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त और विसर्पादि रोगोंमें इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ माना है॥ ४॥

कुटजके १८ योग।

काले फलानि संगृह्य तयोः शुष्काणि संक्षिपेत्।
तेषामन्तर्नखं मुष्टिं जर्जरीकृत्य तापयेत्।
मधुकस्य कषायेण कोविदारादिभिस्तथा॥ ५॥

निशि स्थितं विमृद्यैतल्लवणक्षौद्रसंयुतम्।
पित्ते तद्वमनं श्रेष्ठं पित्तश्लेष्मनिबर्हणम्॥ ६॥

उचित समयमें कुडाकी फलियोंको तोडकर सुखाले। फिर इन फलियोंमेंसे जो इन्द्रजौ निकलें उनको एक मुट्ठी लेकर (दोसे पांच तोला तक) कूटकर मुलैठीके अथवा कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्काथमें पकाकर सायंकाल रख देवे प्रातःकाल मसलकर छानले इसमें सेंधानमक और शहद मिला पीकर वमन करे यह वमन पित्तमें करना श्रेष्ठ है और कफपित्तको दूर करती है॥ ५॥ ६॥

अष्टाहं पयसार्केण तेषां चूर्णानि भावयेत्।
जीवकस्य कषायेण ततः पाणितलं पिबेत्॥ ७॥
फलजीमूतकैक्ष्वाकुजीवन्तीनां पृथक्तथा।
सर्षपाणां मधूकानां लवणस्याथवाम्बुना।
कृसरेणाथवा युक्तं विदध्याद्वमनं भिषक्॥ ८॥

कुडाके बीजोंके चूर्णको आकके दूधमें आठ दिनतक भावना देवे फिर सुखाकर चूर्ण करले। इस चूर्णको एक कर्ष लेकर जीवकके क्काथके साथ पीवे। अथवा इस आकके दूधसे भावना दियेहुए चूर्णको देवदाली (वंदाल), कडवी तुंबी, मैनफल, जीवंती इनमेंसे किसी एकके क्काथके साथ पीवे। अथवा सर्सोंके क्काथ, वा मधूक (महुआ या मुलैठी) के क्काथके साथ अथवा नमकयुक्त गर्म जलके साथ पीवे अथवा वैद्य खिचडीमें मिलाकर खवावे तो उत्तम वमन होती है॥ ७॥ ८॥

उपसंहार।

तत्र श्लोकः—कषायैर्नव चूर्णैश्च पञ्चोक्ताः सलिलैस्त्रयः।
एकश्च कृसरायां स्याद्योगास्तेऽष्टादश स्मृताः॥ ९॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने वत्सककल्पं
नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

यहां उपसंहारमें कहते हैं कि इस वत्सक कल्पमें क्काथोंके योगसे नौ, चूर्णके योगसे पांच, जलके योगसे तीन और खिचडीके योगसे एक। इस प्रकार सब मिलाकर १८ योग कुडाके कहे हैं॥ ९॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां वत्सककल्पं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः ।



अथातः कृतवेधनकल्पं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम कृतवेधन (जंगली कडवी काली तोरी) के कल्पकी व्याख्या करते हैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

कृतवेधनके नाम ।

कृतवेधननामानि कल्पश्चास्य निबोधत ।
क्ष्वेडः कोशातकी चोक्तं मृदङ्गफलमेव च ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! कृतवेधनके नाम और कल्पोंको श्रवण करो । क्ष्वेड, कोशातकी और मृदंगफल यह कृतवेधनके नाम हैं ॥ १ ॥

कृतवेधनके गुण ।

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णं गाढेष्विष्टं गदेषु च ।
कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥ २ ॥

कृतवेधन अत्यंत कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होती है । इसका गंभीर रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये तथा कुष्ठ, पाण्डु, प्लीहा, सूजन, गुल्म और गरदोष आदि विकारोंमें प्रयोग करे ।

६० योगोंकी कल्पना ।

क्षीरादिकुसुमादीनि सुरा चैतेषु पूर्ववत् ।
सुशुष्काणान्तु बीजानामेकं द्वौ वा यथाबलम् ।
कषायैर्मधुकादीनां नवभिः फलवत्पिबेत् ॥ ३ ॥

कृतवेधनके फूल, फल, पत्र अथवा डंडीसे पकाये दूधके चार प्रकारके प्रयोगोंमेंसे किसी एक योगके पीनेसे उत्तम वमन होजाती है । इसका क्रम यह है कि इसके फूलोंको दूध और जल मिलाकर पकावे, दूधमात्र शेष रहनेपर छानकर पीवे तो वमन हो । यही क्रम फलादिकोंमें भी जानना । कृतवेधनके फूल, फल, पत्र, डंडी सुरामे भिगोकर ८ दिन रक्खे फिर इस सुराको पीनेसे उत्तम वमन होती है । कृतवेधनके सूखे हुए एक अथवा दो बीज[1] वा जितने बलानुसार उचित समझे उतने बीज पीस-

---

१ यहां पर बीज, किसीके मतमें फल है ।

कर मैनफलके समान मुलैठीके क्काथ अथवा कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्काथके साथ पीकर वमन करे ॥ ३ ॥

क्काथयित्वा फलं तस्य पूत्वा लेहं निधापयेत् ।
कृतवेधनकल्कांशं फलाद्यर्द्धांशसंयुतम् ।
पृथक् चारग्वधादीनां त्रयोदशभिरासुतम् ॥ ४ ॥

कृतवेधनके फलोंका क्वाथकर उसे छानलेवे फिर उस क्वाथका पाककर अवलेह बनावे। इस अवलेहको वमन करानेमें प्रयुक्त करे। अथवा कृतवेधनका कल्क १ तोला, मैनफल, मुलैठी और कोविदारा आदि आठ द्रव्य इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एकका कल्क६माशे इन दोनोंको मिलाकर गर्मपानीमें घोलकर पीवे तो उत्तम वमन हो जाता है।इसीप्रकार अमलताश आदि१३द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्काथमें कृतवेधनके फलोंको कूटकर आसवकी भांति साडकर छान लेवे फिर उसको पीकर वमन करे॥४॥

शाल्मलीमूलवृन्तानां पिच्छाभिर्दशभिस्तथा ।
वर्त्तयः फलवत्षट्सु फलादीनां घृतं तथा ॥ ५ ॥

सेमलकी मुसली और सेमलके फूलोंकी टोपियें और कृतवेधनके बीजोंका कल्क मैनफल, मुलैठी और कोविदार आदि ८ द्रव्य इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्कायमें मिलाकर पेया बनावे। यह दश प्रकारकी पेया उत्तम वमन करानेवाली हैं तथा कोविदार आदि६द्रव्योंके क्वाथमें कृतवेधनके बीजोंका चूर्ण घोटकर छः प्रकारकी वमनकारक बत्तियें बनाई जाती हैं। और मैनफल आदि१०द्रव्योंका क्वाथ और कृत वेधनके फलोंका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत भी उत्तम वमनकारक होता है॥

कोशातकानि पञ्चाशत्कोविदाररसैः पचेत् ।
तं कषायं फलादीनां कल्कैर्लेहं पुनः पचेत् ॥ ६ ॥
क्ष्वेडस्य तत्र भागः स्याच्छेषाण्यर्द्धांशिकानि च ।
कषायैः कोविदाराद्यैरेवं पक्त्वा पचेत्पृथक् ॥ ७ ॥

कृतवेधनके ५० फलोंको कचनारके क्वाथमें पकावे। फिर इस क्वाथको छानकर मैनफल आदि द्रव्योंका कल्क मिलाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहमें मैनफल आदि द्रव्योंका कल्क एक एक कर्ष और इसमें कृतवेधनका कल्क दोभाग मिलावे। अवलेह सिद्ध होनेपर वमनके लिये प्रयोग करे। इसी प्रकार कोविदार आदि आठ द्रव्योंसे ही अलग २ अवलेह सिद्ध कियेजाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

---

१ मैनफल आदि गण अपामार्ग तण्डुलीयाध्यायमें सूत्रस्थानमें कहा है।

कषायेषु फलादीनामानूपं पिशितं पृथक् ।
कोशातकीफलं पक्त्वा तद्रसं लवणैः पिबेत् ॥ ८ ॥

मैनफलादिगणके द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें कृतवेधनके फल और उसके समान अनूपसंचारी जीवोंका मांस मिलाकर पकावे । सिद्ध होनेपर इस रसको छान ले । इस रसमें सेंधानमक मिला पीवे तो उत्तम वमन होता है ॥ ८ ॥

फलादिपिप्पलीतुल्यं तद्वत्क्ष्वेडरसं पिबेत् ।
क्ष्वेडं क्वाथे पिबेत् सिद्धं मिश्रमिक्षुरसेन च ॥ ९ ॥

अनूपसंचारी जीवोंका मांस और कृतवेधन दोनोंको समभाग लेकर पकावे सिद्ध होनेपर रसको छानले । इस रसमें बराबरका मैनफल, मुलैठी, नीम, जीमूत कृत-वेधन अथवा पीपल इनमेंसे किसी एकका क्वाथ मिलाकर पीवे । अथवा इन छः द्रव्योंके क्वाथमें कृतवेधनके फलोंको पकाकर सिद्ध करे । फिर इस क्वाथको छानकर ईखका रस मिला पिलावे तो उत्तम प्रकारसे वमन होजाती है ॥ ९ ॥

उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ—क्षीरे द्वौ द्वौ सुरा चैका क्वाथा द्वात्रिंशतिस्तथा ।
दश पिच्छा घृतश्चैकं षट् च वर्तिक्रियाः शुभाः ॥ १० ॥
लेहेऽष्टौ सप्त मांसे च योग इक्षुरसेऽपरः ।
कृतवेधनकल्पेऽस्मिन् षष्टिर्योगाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ११ ॥
इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने कृतवेधनकल्पो नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस कृतवेधन कल्पके उपसंहारमें कहते हैं कि, दूधमें चार योग, सुरासे १, क्वाथसे २२ योग, पेयासे दश योग, घृतसे १ योग, बत्तियोंसे उत्तम ६ योग, अवलेहसे ८ योग, मांससे सात योग और ईखके रससे १ योग इस प्रकार सब मिलाकर कडवी तोरीके ६० योग कहे हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

इति वमनकल्पः।

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासि-वैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां कृतवेधनकल्पो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।



अथातः श्यामात्रिवृत्कल्पं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम श्यामात्रिवृतकल्पकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे।

विरेचने त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।
तस्याः संज्ञा गुणाः कर्म्मभेदकल्पश्च वक्ष्यते ॥ १ ॥

विरेचन अर्थात् जुलाब करानेके लिये काली निशोथकी जड बुद्धिमानोंने सबसे उत्तम मानी है । अब उसके नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पोंका वर्णन करते हैं॥१॥

निशोथके नाम ।

त्रिभण्डी त्रिवृता चैव श्यामा कूटरुणा तथा ।
सर्वानुभूतिः सुवहा शब्दैः पर्य्यायवाचकैः ॥ २ ॥

त्रिभंडी, त्रिवृता, श्यामा, कूटरुणा, सर्वानुभूति और सुवहा यह निशोथके पर्यायवाचक शब्द हैं अर्थात् निशोथके नाम हैं ॥ २ ॥

निशोथके गुण ।

कषाया मधुरा रूक्षा विपाके कटुका च सा ।
कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकोपनी ॥ ३ ॥

निशोथ-कसैली, मीठी, रूक्ष, विपाकमें कटु, कफपित्तनाशक और रूक्ष होनेसे वायुका कोप करती है ॥ ३ ॥

सेदानीमौषधैर्युक्ता वातपित्तकफापहैः ।
कल्पे वैशिष्यमासाद्य सर्वरोगहरा भवेत् ॥ ४ ॥

यह निशोथका-वात, पित्त और कफनाशक द्रव्योंके साथ मिलाकर प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारके विशेष गुण होते हैं और यह संपूर्ण रोगोंको हरनेवाली होती है॥

निशोथके दो भेद ।

मूलं तु द्विविधं तस्याः श्यामञ्चारुणमेव च ।
तयोर्मुख्यतरं विद्धि मूलं यदरुणप्रभम् ।
सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तच्छुभम् ॥ ५ ॥

निशोथकी जड दो प्रकारकी होती है । १ काली और २ लाली । उनमें जो

लालवर्णकी निशोथ है वह अति उत्तम मानी जाती है । सुकुमार मनुष्योंको, बालकोंको, वृद्धोंको और मृदुकोष्ठमनुष्योंको लाल निशोथका प्रयोग करनाही श्रेष्ठ है॥५॥

मोहयेदाशुकारित्वाच्छ्यामा कण्ठं क्षिणोत्यपि ।
तक्ष्ण्यात्कर्षति हृत्कण्ठमाशु दोषं हरत्यपि ।
शस्यते बहुदोषाणां क्रूरकोष्ठाश्च ये नराः ॥ ६ ॥

कालीनिशोथ शीघ्रकारी होनेसे मोह और कण्ठकी क्षीणताको उत्पन्न करती है । अपने तीक्ष्णभावसे हृदय और कण्ठको कर्षण करती है। परन्तु दोषोंको शीघ्र निकाल देती है । बहुत दोषवाले मनुष्योंको और क्रूर कोष्ठवालोंको काली निशोथका प्रयोग करनाही श्रेष्ठ होता है ॥ ६ ॥

निशोथ लानेका क्रम ।

गुणवत्यां तयोर्भूमौ जातं मूलं समुद्धरेत् ।
उपोष्य प्रयतः शुक्ले शुक्लवासाः समाहितः ॥ ७ ॥
गम्भीरानुगतं श्लक्ष्णं न तिर्य्यग्विसृतं च यत् ।
गृहीत्वा विसृजेत्काष्ठं त्वचं शुष्कां निधापयेत् ॥ ८ ॥

दोनों प्रकारकी निशोथकी जडोंको उत्तम गुणवाली भूमिमेंसे शुक्लपक्षमें श्वेत वस्त्रोंको धारणकर सूर्याभिमुख हो विधिवत् प्रातःकाल उखाडकर लावे । निशोथकी जो जड पृथ्वीमें गहरी पहुंची हुई हो तथा कोमल, सीधी और सुडौल हो उसके बीचका काष्ठभाग त्यागकर केवल ऊपरकी मोटी त्वचा ग्रहण करे। फिर उस त्वचाको सुखाकर उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे ॥ ७ ॥ ८ ॥

निशोथकी मात्रा ।

स्निग्धस्विन्नो विरेच्यस्तु पेयामात्राशितः सुखम् ।
अक्षमात्रं तयोः पिण्डं विनीयाम्लेन ना पिबेत् ॥ ९॥

पहिले रोगीको स्नेहन, स्वेदन कर फिर निशोथके एक कर्ष कल्कको कांजीके साथ पिलावे । विरेचन होलेनेके अनन्तर पेयादि क्रमका पालन करे ॥ ९ ॥

निशोथसे अनेकविध विरेचक योग।

गोऽज्यजामाहिषामूत्रसौवीरकतुषोदकैः ।
प्रसन्नया त्रिफलया शृतया च पृथक् पिबेत् ॥ १० ॥

एक कर्ष निशोथको गोमूत्र अथवा भैंस बकरी वा भेडके मूत्रमें वा सौवीरक अथवा तुषोदक वा प्रसन्ना अथवा त्रिफलेके क्वाथके साथ पीवे ॥ १० ॥

एकैकं सैन्धवादीनां द्वादशानां सनागरम्।
त्रिवृत्त्रिगुणसंयुक्तं चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ॥ ११ ॥

अथवा सैंधवादि १२ द्रव्योंमेंसे किसी एकके साथ एक भाग सोंठ, ३ भाग निशोथका कल्क मिलाकर पीवे और ऊपरसे गर्मजल पीना चाहिये अथवा ऐसा समझिये कि सैंधवादि १२ द्रव्योंमेंसे कोई एक द्रव्य एक भाग, सोंठयुक्त निशोथका कल्क ३ भाग मिलाकर गर्मजलसे पीवे ॥ ११ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली।
सरलः किलिमं हिङ्गु भार्ङ्गी तेजोवती तथा ॥ १२ ॥
मुस्तं हैमवती पथ्या चित्रको रजनी वचा।
स्वर्णक्षीर्य्यजमोदा च शृङ्गवेरञ्च तैः पृथक्।
एकैकार्द्धांशसंयुक्तं पिबेद् गोमूत्रसंयुतम् ॥ १३ ॥

पीपल, पीपलामूल, मिर्च, गजपीपल, सरल, देवदारु, हींग, भारंगी, चव्य, नागरमोथा, सफेद बच, हरड, चित्रक, हल्दी, बच, चोख, अजमोद और सोंठ इन १८ द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यका आधा भाग और निशोथका कल्क भाग एक इनको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीवे ॥ १२ ॥ १३ ॥

मधूकार्द्धांशसंयुक्तं शर्कराम्बुयुतं पिबेत्।
जीवकर्षभकौ मेदां श्रावणीं कर्कटाह्वयम् ॥ १४ ॥
मुद्गमाषाख्यपर्ण्यौ च महतीं श्रावणीं तथा।
काकोलीं क्षीरकाकोलीं क्षुद्रां छिन्नरुहां तथा ॥ १५ ॥
क्षीरशुक्लां पयस्याञ्च यष्ट्याह्वं विधिना पिबेत्।
वातपित्तहितान्येतान्यन्यानि तु कफानिले ॥ १६ ॥

मुलैठीका कल्क एक भाग, निशोधका कल्क२ भाग इन दोनोंको मिलाकर खांडके शर्बतके साथ पीवे अथवा जीवक, ऋषभक, मेदा, गोरखमुण्डी, काकडासिंगी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, महामुण्डी (बडी गोरखमुण्डी), काकोली, क्षीरकाकोली, कटेली,

---

१ कोई सेंधानमक तथा संचरक, बिड, औद्भिद और सामुद्रिक यह पांच नमक, ढाकका क्षार, मूलीका क्षार, सज्जीखार, जवाखार, तिलोंका क्षार, पुटखण्डेका क्षार और सुहांजनेका क्षार इन १२ द्रव्योंको सैंधवादि १२ मानते हैं। कोई संचरनमकके विना सैंधवादि ४ नमक और ८ प्रकारके मूत्रोंको सैंधवादि १२ द्रव्य मानत हैं।

गिलोय, क्षीरविदारी, विदारीकंद और मुलैठी इनमेंसे किसी एकका कल्क एक भाग, निशोथका चूर्ण एक भाग, मिलाकर जलके साथ अथवा खांडके शर्बतके साथ पीवे। यह जीवकादि १५ योग और एक मुलैठीका योग यह १६ योग वातपित्तमें विरेचन करानेके लिये हितकारक हैं। इनके सिवाय उपरोक्त संपूर्ण योग वातकफके विकारोंमें विरेचनके लिये हितकर्त्ता हैं ॥ १४-१६ ॥

क्षीरमांसेक्षुकाश्मर्य्यद्राक्षापीलुरसैः पृथक् ।
सर्पिषा वा तयोश्चूर्णमभयार्द्धांशिकं पिबेत् ॥ १७ ॥

निशोथका चूर्ण-दूध, मांसरस, ईखका रस, कुंभेरके फलोंका रस, पीलूके फलोंका रस और घी इनमेंसे किसी एकके साथ काली अथवा लाल निशोथका चूर्ण पीवे। अथवा आधा भाग हरडका चूर्ण मिला निशोथका चूर्ण पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै॥

लिह्याद्वा मधुसर्पिर्भ्यां संयुक्तं ससितोपलम् ।
अजगन्धा तुगाक्षीरी विदारी शर्करा त्रिवृत् ॥ १८ ॥
चूर्णितं क्षौद्रसर्पिर्भ्यां लीढ्वा सा तु विरिच्यते ।
सन्निपातज्वरस्तम्भदाहतृष्णार्दितो नरः ॥ १९ ॥

अथवा निशोथका चूर्ण, शहत, घृत और मिसरीके साथ चाटे। अथवा अजवायन, वंशलोचन, विदारीकंद, मिसरी और निशोथका चूर्ण शहद तथा घीमें मिला चाटे तो उत्तम विरेचन होता है सन्निपातजनित ज्वर, स्तम्भ, दाह और प्याससे पीडित मनुष्यके लिये यह उत्तम विरेचन है ॥ १८ ॥ १९ ॥

श्यामात्रिवृत्कषायेण कल्केन च सशर्करम् ।
साधयेद्विधिवल्लेहं लिंह्यात्पाणितलं ततः ॥ २० ॥

काली निशोथका क्वाथ और मिसरी मिलाकर सिद्ध किया अवलेह, अथवा मिसरीके चासनीमें निशोथका कल्क मिलाकर बनाया हुआ अवलेह दो तोला प्रमाण चाटे तो उत्तम विरेचन हो ॥ २० ॥

सक्षौद्रां शर्करां पक्त्वा कुर्य्यान्मृद्भाजने नवे ।
क्षिपेच्छीते त्रिवृच्चूर्णं त्वक्पत्रमरिचैः सह ।
मात्रया लेहयेदेतदीश्वराणां विरेचनम् ॥ २१ ॥

खांडकी चासनी बनाकर अवलेहके समान गाढी होनेपर नीचे उतार ले। इसमें दालचीनी, तेजपत्र और मिर्चका चूर्ण एक भाग, निशोथका चूर्ण तीन भाग और शहद ४॥ भाग मिलाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहको उत्तम नवीन मट्टीके पात्रमें

भरकर रक्खे इस अवलेहको मात्रानुसार खिलाकर राजा अथवा धनाढ्य पुरुषोंको विरेचन करावे । कोई इसको शहद और मिसरी दोनोंको एकत्र पाककर चासनी बना अवलेह सिद्ध करना मानते हैं ॥ २१ ॥

कुडवांशान् रसानिक्षुद्राक्षापीलुपरूषकान् ।
सितोपलात् पलं क्षौद्रात् कुडवार्द्धञ्च साधयेत् ॥ २२ ॥
तं लेहं योजयेच्छीतं त्रिवृच्चूर्णेन शास्त्रवित् ।
एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणां विरेचनम् ॥ २३ ॥

ईखका रस, दाखका रस, पीलूके फलोंका रस और फालसेका रस एकएक कुडव, मिसरी एक पल मिलाकर अवलेह बनावे । गाढा होनेपर नीचे उतार आधा कुडव शहद मिलावे । इस अवलेहमें निशोथका चूर्ण मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य उचित मात्रासे बढेहुए पित्तवाले धनाढ्य पुरुषोंको विरेचन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

शर्करामोदकान् वर्त्तिर्गुलिकामांसपूपकान् ।
अनेन विधिना कुर्य्यात्पैत्तिकानां विरेचनम् ॥ २४ ॥

इसी प्रकार निशोथका खांडके योगसे मोदक, बत्ती, गुटिका और मांस पूपालिका आदि बनाकर पित्तप्रधान रोगियोंको विरेचन करावे ॥ २४ ॥

पिप्पलीं नागरं क्षारं श्यामात्रिवृतया सह ।
लेहयेन्मधुना सार्द्धं श्लेष्मलानां विरेचनम् ॥ २५ ॥

पीपल, सोंठ, जवाखार और कालीनिशोथ शहद मिला चाटे तो कफविकारयुक्त रोगीको उत्तम विरेचन होता है २५ ॥

तैलभृष्टावलेह ।

मातुलुङ्गाभयाधात्रीश्रीपर्णीकोलदाडिमात् ।
सुमृष्टान् स्वरसांस्तैले साधयेत्तत्र चावपेत् ॥ २६ ॥

बिजौरा, हरड, आमले, कुंभेर, बेर और अनार इन सबका रस मिसरी मिलाकर पकावे । जब अवलेहकी भांति गाढा होजाय तो इसको तेलमें भूनकर निशोथका चूर्ण मिलावे इस अवलेहसे कफविकारवाले रोगियोंको विरेचन कराना चाहिये ॥ २६ ॥

सहकारादि अवलेह ।

सहकारात्कपित्थाच्च साध्यमम्लञ्च यत्फलम् ।
पूर्ववद्वहलीभूते त्रिवृच्चूर्णञ्च साधयेत् ॥ २७ ॥

त्वक्पत्रकेशरैलानां चूर्णञ्च मधुमात्रया।
लेहोऽयं कफपूर्णानामीश्वराणां विरेचनम् ॥ २८ ॥

आम, कैथ, बेर और इमली आदि खट्टे फलोंका रस, मिसरी मिलाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहको तैलमें भून निशोथका चूर्ण मिलावे। तथा दालचीनी. पत्रज, नागकेशर और इलायचीका चूर्ण मिलावे। फिर शहद युक्त कर यह अवलेह कफविकारयुक्त धनाढ्य पुरुषोंको विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ २७ ॥ २८ ॥

पानकादि ५ योग।

पानकानि रसान्यूषान् मोदकान् रागखाडवान्।
अनेन विधिना कुर्य्याद्विरेकार्थे कफाधिके ॥ २९ ॥

इसी विधिसे पानक, मांसरस, यूष, मोदक और रागखाण्डव बनाकर कफविकारयुक्त रोगियोंको विरेचन करावे ॥ २९. ॥

विरेचकतर्पण।

त्वगेलाभ्यां समं नीतं तैस्त्रिवृत्तैश्च शर्करा।
चूर्णं फलरसक्षौद्रसक्तुभिस्तर्पणं पिबेत् ॥ ३० ॥
वातपित्तकफोत्थेषु रोगेष्वल्पानलेषु च।
नरेषु सुकुमारेषु निरपायं विरेचनम् ॥ ३१ ॥

दालचीनी, बडी इलायची इन दोनोंके चूर्णके समान निशोथका चूर्ण मिलावे। इस सम्पूर्ण चूर्णके बराबर खांड मिलावे। फिर इसको खट्टे फलोंके रस, शहद और जौके सत्तुओंमें मिला तर्पग बना पीवे। यह तर्पण वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए रोगोंमें और मन्दाग्निमें सुकुमार मनुष्योंको विरेचनके लिये पिलावे। इससे किसी प्रकारका उपद्रव न होकर सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

रेचक मोदक।

शर्करा त्रिफला श्यामा त्रिवृन्मागधिका मधु।
मोदकः सन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ३२ ॥

त्रिफला, निशोथ और पीपल इन सबका समान भाग चूर्ण लेकर खांड और शहदके योगसे लड्डू बनावे। यह मोदक सन्निपात, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त और ज्वरको नष्ट करते हैं ॥

शोभन गुडक।

त्रिवृच्चूर्णामृतास्तिस्रस्तिस्रश्च त्रिफलात्वचः।
विडङ्गपिप्पलीक्षारं समास्तिस्रश्च चूर्णिताः ॥ ३३ ॥
लिह्यात्सर्पिर्मधुभ्याञ्च मोदकं वा गुडेन च।

भक्षयेन्निष्परीहारमेतच्छोधनमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
गुल्मं प्लीहोदरं श्वासं हलीमकमरोचकम् ।
कफवातकृतांश्चान्यान् व्याधीनेतद्व्यपोहति ॥ ३५ ॥

निशोथका चूर्ण ९ मासे, गिलोय ९ मासे, त्रिफला ९ मासे, वायविडंग ३ मासे पीपल ३ मासे, जवाखार ३ मासे इन सबका चूर्णकर घी और शहदके साथ मिलाकर चाटे अथवा गुडमें मिलाकर मोदक बनावे। इनके सेवनमें आहार विहारका विशेष परहेज नहीं। यह उत्तम विरेचक योग है इनके सेवनसे गुल्म, प्लीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक, अरुचि और कफवातजनित अन्य सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं॥

कल्याणगुडक।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकान् ।
मरिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पलीहस्तिपिप्पलीः ॥ ३६ ॥
लवणान्यजमोदा च चूर्णितं कार्षिकं पृथक् ।
तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥ ३७ ॥
धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन् गुडार्द्धतुलां तथा ।
पक्त्वा मृद्वग्निना खादेद्बदरोदुम्बरोपमान् ॥ ३८ ॥
गुडान्कृत्वा न चास्य स्याद्विहाराहारयन्त्रणा।
कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥ ३९ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च हन्युः पुंसवनाश्च ते ।
कल्याणका इति ख्याताः सर्वेष्वृतुषु यौगिकाः ॥ ४० ॥

वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनियां, चित्रक, मिर्च, इन्द्रयव, जीरा, पीपल, गजपीपल, सेंधानमक और अजमोद इन सबका चूर्ण एक एक कर्ष लेवे। तिलोंका तेल और निशोथका चूर्ण आठ २ पल, आंवलेका रस ३ प्रस्थ, गुड आधा तुला (२॥ सेर) प्रथम आंवलेका रस और गुड मिलाकर मन्द अग्निसे पकावे। जब अवलेहके समान गाढा होजाय तो इसमें वायविडंग आदि सम्पूर्ण द्रव्योंका चूर्ण मिला देवे और तेलको मूर्च्छितकर चूर्ण डालनेसे पहिलेही मिला देवे। फिर सबको मिलाकर बेर अथवा गूलरके समान गोलियें बनाकर रक्खे। इनके खातेहए विरेचनके समान विशेष आहार विहारका परहेज नही। इनसे नित्य एक दो दस्त होजाते हैं। इनके सेवनसे कुष्ठ, बवासीर, कामला. प्रमेह, गुल्म, उदररोग, भगन्दर,

ग्रहणी और पाण्डुरोग यह सब नष्ट होते हैं और सब प्रकारके रज, वीर्य विकार दूर होकर सन्तान उत्पन्न होती है ॥ ३६-४० ॥

व्योषादियोग।

व्योषत्वक्पत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः ।
समभागा भिषग् दद्याद्द्विगुणञ्च सुकूलकम् ॥ ४१ ॥
त्रिवृतोऽष्टगुणं भागं शर्करायाश्च षड्गुणम् ।
चूर्णितं गुडिकान् कृत्वा क्षौद्रेण पलसम्मितान् ॥ ४२ ॥
भक्षयेत्कल्यमुत्थाय शीतञ्चानुपिबेज्जलम् ।
मूत्रकृच्छ्रे ज्वरे वम्यां कासे श्वासे भ्रमे क्षये ॥ ४३ ॥
तापे पाण्ड्वामयेऽल्पेऽग्नौ शस्ता निर्यन्त्रिताशिनः ।
योगः सर्वविषाणाञ्च मतः श्रेष्ठो विरेचने ॥ ४४ ॥

त्रिकुटा, तज, पत्रज, नागरमोथा, इलायची, वायविडंग, आमले और हरड इन सबको एक एक कर्ष लेवे । दन्ती २ कर्ष, निशोथका चूर्ण ८ कर्ष, खांड ६ कर्ष इन सबका चूर्ण कर शहदमें मिलावे। इसमेंसे एक पल अथवा जितना उचित हो उतना खाकर ऊपरसे शीतल जल पीवे । इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन, खांसी, श्वास, भ्रम, क्षय, ताप, पाण्डुरोग और सब प्रकारके विषरोग दूर होते हैं यह योग विरेचनके लिये परमश्रेष्ठ है ॥ ४१-४४ ॥

त्रिवृत्पलं द्विप्रसुतं पथ्याधान्योरुबूकयोः ।
दशैतान्मोदकान् कुर्य्यादीश्वराणां विरेचनम् ॥ ४५ ॥

निशोथका चूर्ण एक पल, हरड, धनियां और एरण्डकी जड यह सब चार पल इन सबका चूर्णकर शहद अथवा गुडमें मिला दश गोलियें बनावे । इनमेंसे एक गोली धनाढ्य पुरुषोंको विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ ४५ ॥

शुभा गुडिका ।

त्रिवृद्धैमवती श्यामा नीलिनी हस्तिपिप्पली ।
समूला पिप्पली मुस्तमजमोदा दुरालभा ॥ ४६ ॥
कार्षिकं नागरपलं गुडस्य पलविंशतिम् ।
चूर्णितं मोदकान्कुर्य्यादुदुम्बरफलोपमान् ॥ ४७ ॥

हिङ्गुसौवर्चलव्योषयमानीविडजीरकैः ।
वचाजगन्धात्रिफलाचव्यचित्रकधान्यकैः ॥ ४८ ॥
मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णैस्तान्सतुम्बुरुदाडिमैः ।
त्रिकवंक्षणहृद्वस्तिकोष्ठार्शःप्लीहशूलिनाम् ।
हिक्काकासारुचिश्वासकफोदावर्तिनां शुभाः ॥ ४९ ॥

लाल निशोथ, सफेद वच, काली निशोथ, नीलिनी, गजपीपल, पिपलामूल, पीपल, नागरमोथा, अजमोद और जवासा इन सबको एकएक कर्ष लेवे सोंठका चूर्ण एक पल, गुड बीस पल इन सबको मिलाकर गूलरके फलके समान गोलियें बनावे । फिर हींग, कालानमक, त्रिकुटा, अजवायन, बायविडंग, जीरा, वच, त्रिफला, अजमोद, चव्य, चित्रक, धनियां, नैपाली धनियां और अनारदाना इन सबका बारीक चूर्णकर उस चूर्णमें उपरोक्त गोलियोंको लपेटकर रक्खे। १९ दिनके बाद इन गोलियोंका सेवन करे तो यह त्रिकशूल, वंक्षण, हृदय, वस्ति और कोष्ठकी पीडा, अर्शरोग, तिल्ली, हिचकी, खांसी, अरुचि, श्वास, कफ, उदररोग इन सबको दूर करता है ४६–४९

वर्षाऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृतां कौटजं बीजं पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
क्षौद्रद्राक्षारसोपेतं वर्षास्वेतद्विरेचनम् ॥ ५० ॥

निशोथ, इन्द्रयव, पीपल और सोंठ इनको शहद और दाखके रसमें मिलाकर वर्षाऋतुमें विरेचन करावे ॥ ५० ॥

शरदऋतुम विरेचन ।

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करोदीच्यचन्दनम् ।
द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्वशीतलं जलदात्यये ॥ ५१ ॥

निशोथ, जवासा, नागरमोथा, खांड, नेत्रवाला, लालचंदन और मुलैठी इनका दाखके रसके साथ अथवा दाखके शीत कषायके साथ शरदऋतुमें विरेचनके लिये देवे ॥५१॥

हेमंतमें विरेचनयोग ।

त्रिवृतां चित्रकं पाठामजाजीं सरलं वचाम् ।
स्वर्णक्षीरीं च हेमन्ते पिष्ट्वा तूष्णाम्बुना पिबेत् ॥ ५२ ॥

निशोथ, चित्रक, पाटला, जीरा, सरलकाष्ठ, वच और चोक इन सबको बारीक पीस गरमजलके साथ पिलाकर हेमन्तऋतुमें विरेचन करावे ॥ ५२ ॥

ग्रीष्ममें विरेचन ।

शर्करा त्रिवृता तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ ५३ ॥

ग्रीष्मऋतुमें यदि विरेचनकरानाहोतो मिसरी और निशोथको शीतलजलके साथपीवे॥

सर्वऋतुओंमें विरेचन।

त्रिवृत्रायन्तिहपुषां सातलां कटुरोहिणीम्।
स्वर्णक्षीरीञ्च संचूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत् त्र्यहम्।
एष सर्वर्त्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहृत्॥ ५४॥

निशोथ, जवासा, हाउबेर, सातला, कुटकी और चोक इन सबका चूर्णकर गोमूत्रमें ३ दिन भावना देवे। फिर चूर्णकर स्नेहन और स्वेदन किये रोगीको सब ऋतुमें विरेचनके लिये देना चाहिये। यह संपूर्ण मलविकारको निकाल देता है॥ ५४॥

रूक्ष मनुष्योंको विरेचन।

दुरालभा त्रिवृच्छयामा वत्सकं हस्तिपिप्पली।
नीलिनी त्रिफला मुस्तं कटुका च सुचूर्णिता॥ ५५॥
सर्पिर्मांसरसोष्णाम्बुयुक्तं पाणितलं ततः।
पिबेत्सुखतमं ह्येतद्रूक्षाणामपि शस्यते॥ ५६॥

जवासा, निशोथ, सारिवा, इन्द्रयव, गजपीपल, नीलिनी, त्रिफला, नागरमोथा इन सबका चूर्ण घीमें मिलाकर मांसरसके साथ अथवा गरम जलके साथ पीवे तो रूक्ष मनुष्योंको उत्तम विरेचन हो इसकी मात्रा १ से ५ तोले तक है॥ ५५॥ ५६॥

सिद्धचूर्ण।

त्र्यूषणा त्रिफला हिङ्गु कार्षिकं त्रिवृता पलम्।
सौवर्चलार्द्धकर्षञ्च पलार्द्धं चाम्लवेतसात्॥ ५७॥
तच्चूर्णं शर्करातुल्यं मद्येनाम्लेन वा पिबेत्।
गुल्मपार्श्वार्त्तिनुत्सिद्धं जीर्णे चाद्याद्रसौदनम्॥ ५८॥

त्रिकुटा, त्रिफला और हींग यह ७ द्रव्य एक एक तोला, निशोथ ४ तोले, संचरनमक ६ मासे, अम्लवेत २ तोला इन सबका बारीक चूर्णकर चूर्णके बराबर मिसरी मिलावे। फिर यह चूर्ण मद्य अथवा कांजीके साथ पीवे तो गुल्म और पार्श्वपीडाको दूर करता है। इस औषधके जीर्ण होनेपर मांसरस और पुराने चावलोंका भोजन करना चाहिये॥ ५७॥ ५८॥

सप्तलादिचूर्ण।

सप्तलां त्रिफलां दन्तीं त्रिवृतां व्योषसैन्धवम्।
कृत्वा चूर्णं तु सप्ताहं भाव्यमामलकीरसे।
तद्योज्यं तर्पणे यूषे पिशिते रागयुक्तिषु॥ ५९॥

सातला, त्रिफला, त्रिकुटा, दन्ती, निशोथ और सेंधानमक इन सब द्रव्योंको समान भाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको आमलेके रसमें सात दिनतक भावना देकर सुखा लेवे। फिर इसको तर्पण, यूष, मांसरस और रागके साथमें खिलावे तो यह संपूर्ण उदररोगोंको और गुल्म आदिकोंको दूर करता है। सब जगह त्रिफला और त्रिकुटा तीनतीन गुना लेना चाहिये ॥ ५९ ॥

गुल्मनाशक घृत।

तुल्याम्लं त्रिवृताकल्कसिद्धं गुल्महरं घृतम्।
मूलं श्यामात्रिवृतयोः पचेदामलकैः सह।
जले तेन कषायेण पक्त्वा सर्पिः पिबेन्नरः ॥ ६० ॥

कांजी १ सेर, निशोथका कल्क १ पाव, घृत १ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। यह घृत गुल्मरोगको दूर करता है। काली-निशोथ, लालनिशोथ इन दोनोंके चूर्णको आमले और आठ गुना जल मिलाकर पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस घीके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन निवृत्त होता है ॥ ६० ॥

निर्य्यूहेण तयोर्युक्त्या सिद्धसर्पिः पिबेत्तथा।
साधितं वा पयस्ताभ्यां सुखं तेन विरिच्यते ॥ ६१ ॥

काली निशोथ और लालनिशोथके क्वाथमें सिद्ध किया घृत अथवा दूध पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ६१ ॥

त्रिवृतारिष्ट।

त्रिवृन्मुष्टींस्तु सनखानष्टौ द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषं कषायं तं शीतं गुडतुलायुतम् ॥ ६२ ॥
स्निग्धे स्थाप्यं घटे क्षौद्रपिप्पलीफलचित्रकैः।
प्रलिप्ते विधिना मासं जातं तन्मात्रया पिबेत्
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं गुल्मश्वयथुनाशनम् ॥ ६३ ॥

८० तोला निशोथको एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथा भाग शेष रहे तो उतार-कर छानले। फिर इस क्वाथमें ५ सेर गुड मिलाकर किसी एक चिकने घडेमें प्रथम पीपल, मैनफल और चित्रकका चूर्ण शहदमें मिला लेप करे। फिर उस घडेमें यह गुड मिला क्वाथ डालकर ऊपरसे बन्द करदेवे। एक महीनेके बाद निकालकर इस त्रिवृत अरिष्टको पीवे तो ग्रहणीरोग, पांडुरोग, गुल्मरोग सूजन यह सब नष्ट होते हैं ॥

सुरां वा त्रिवृतापादकल्कां तत्क्वाथसंयुताम् ॥ ६४ ॥

अथवा निशोथका क्वाथ और मद्य दोनों बराबर लेकर उसमें चौथा भाग निशोथका कल्क मिलाकर १ महीनेपर्यन्त रक्खे । फिर छानकर उचित मात्रासे पीवे तो गुल्म आदि अनेक रोग दूर होते हैं और इससे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ६४ ॥

सौवीरक ।

यवैः श्यामात्रिवृत्क्वाथस्विन्नैः कुल्माषमम्भसा ।

आसुतं षडहं पूर्णे जातं सौवीरकं पिबेत् ॥ ६५ ॥

कालीनिशोथ और लालनिशोथको लेकर क्वाथ करे । इस क्वाथमें यव डालकर पकावे । जब यव पकजाय तो इसको उतारकर छानलेवे । इसमें कुल्माषजल अर्थात् कांजी मिलाकर किसी पात्रमें डालदेवे । और यवके पत्रोंमें अथवा अन्य घासमें दबाकर रक्खे । छः दिनके बाद इसको निकाल लेवे । यह उत्तम सौवीरक पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ६५ ॥

तुषोदक, आसव ।

भृष्टान्मासतुषाञ्छुद्धान् यवांस्तच्चूर्णसंयुतान् ।

आसुतानम्भसा तद्वत्पिबेज्जातं तुषोदकम् ॥ ६६ ॥

उत्तम छडेहुए यवोंको भूनलेवे यह भूनेहुए यव और यवोंके तुष तथा निशोथका चूर्ण मिला गर्म जलमें डाल किसी पात्रमें बन्द कर दे । २१ दिनके बाद निकालकर छानले इसके पीनेसे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ६६ ॥

तथा मदनकल्पोक्तान् षाडवादीन्पृथग्दश ।

त्रिवृच्चूर्णेन संयोज्य विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥

इसी प्रकार मैनफलके कल्पमें कहेहुए १० प्रकारके खाण्डव आदि निशोथके चूर्णसे भी दश प्रकारके अलग २ बनाये जाते हैं । अर्थात् निशोथके चूर्णसे खांडव, राग, लेह, मोदक, पूडी, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य इन दशविध योगोंको बनाकर इनमेंसे किसी एकका विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ ६७ ॥

त्वक्केशराम्रातकदाडिमैलासितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः ।

मद्यैस्तथान्यैश्च मनोऽनुकूलैर्युक्तानि देयानि विरेचनानि ॥ ६८ ॥

तज, नागकेशर, अंबाडा, अनार, इलायची, मिसरी, शहद और मद्य तथा मनोभिलषित द्रव्योंके साथ मिलाकर निशोथके चूर्णका विरेचन दिया जासकता है ६८

शीताम्बुना पीतवतश्च तस्य सिञ्चेन्मुखं च्छर्दिविघातहेतोः ।

हृद्यांश्च मृत्पुष्पफलप्रवालादम्लश्च दद्यादुपजिघ्रणार्थम् ॥ ६९ ॥

विरेचन कर्त्ता द्रव्यको पीसकर रोगीको छर्दी न होजाय उसके मुखपर बारबार शीतलजलके छींटे देता रहे और हृदयको प्रसन्न करनेवाले सुगंधित द्रव्य, पानीमें भिगोई हुई सुगंधित मट्टी, फूल, फल, कोमल पत्र, केशर आदि और नींबूको सुंघावे॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकाः—एकोऽम्लादिभिरष्टौ च दश द्वौ सैन्धवादिभिः।
मूत्रेऽष्टादश यष्टयौ द्वौ जीरकादौ चतुर्दश॥ ७०॥
क्षीरादौ सप्त लेहेऽष्टौ चत्वारः सितयापि च।
पानकादिषु पञ्चैव षड्तौ पञ्च मोदकाः॥ ७१॥
चत्वारश्च घृतक्षीरे द्वौ चूर्णे तर्पणे तथा।
द्वौ मद्ये काञ्जिके द्वौ च दशान्ये षाडवादिषु॥ ७२॥
श्यामायास्त्रिवृतायाश्च कल्पेऽस्मिन् समुदाहृतम्।
शतं दशोत्तरं सिद्धं योगानां परमर्षिणा॥ ७३॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने श्यामात्रिवृत्कल्पो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस श्यामात्रिवृत कल्पमें अम्ल आदिसे नौ योग, सैंधव आदिसे १२ योग, गोमूत्रसे १८ योग, मुलैठीसे २ योग, जीवक आदिसे १४ योग, दुग्ध आदिकोंसे ७ योग, लेहसे ८ योग, मिसरीसे ४ योग, पानक आदिसे ५ योग, ऋतु भेदसे ६ योग, मोदकोंके ५ योग, दूध और घृतसे ४ योग, तर्पणके दो योग, मद्यके २ योग, कांजीसे दो योग, खाण्डव आदिकोंसे १० योग। इस प्रकार सब मिलाकर महर्षि आत्रेयजीने निशोथके ११०योगोंका वर्णन किया है७०-७३॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीता०कल्पस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासि-वैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां श्यामात्रिवृतकल्पो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातश्चतुरङ्गुलकल्पं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम चतुरंगुलकल्पकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

अमलतासके नाम।

आरग्वधो रजवृक्षः सम्पाकश्चतुरङ्गुलः।
प्रग्रहः कृतमालश्च कर्णिकारोऽवघातकः॥ १॥

आरग्वध, राजवृक्ष, संपाक, चतुरंगुल, प्रग्रह, कृतमाल, कर्णिकार और अवघातक यह सब अमलतासके पर्यायवाचक शब्द हैं॥ १॥

अमलतासके गुण।

ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्त्तादिरोगिषु।
राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरशीतलः॥ २॥

अमलतासका विरेचन ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त और उदावर्त्त आदि रोगोंमें अत्यंत हितकारक है यह विरेचन मृदु और मधुर होनेसे शीतल और अत्यंत पथ्य है॥२॥

बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे।
योज्यो मृद्वनपायित्वाद्विशेषाचतुरङ्गुलः॥ ३॥

अमलतासका विरेचन निर्विकार होनेसे और मृदु होनेसे बालक वृद्ध और सुकुमारोंके लिये अत्यंत हितकारी है॥ ३॥

अमलतासके ग्रहण करनेकी विधि।

फलकाले फलं तस्य ग्राह्यं परिणतञ्च यत्।
तेषां गुणवतां भारं सिकतासु निधापयेत्॥ ४॥
सप्तरात्रात्समुद्धृत्य शोषयेदातपे भिषक्।
ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ भाण्डे निधापयेत्॥ ५॥

जिस समय अमलतासके फल पके हुए हों उनको तोडकर ले आवे। इन उत्तम उत्तम भारी सुन्दर अमलतासकी फलियोंको बालूके ढेरमें दबादेवे। ७ दिनके बाद निकालकर धूपमें सुखाले ठीक सूखजानेपर इन फलियोंका गुद्दा निकालले गुद्देको किसी स्वच्छ पात्रमें ढककर रख देवे॥ ४॥ ५॥

अमलतासके १२ वैरेचनिक योग।

द्राक्षारसयुतो देयो दाहोदावर्त्तपीडिते ।
चतुर्वर्षसुखे बाले यावद्द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥

दाह और उदावर्त्तरोगमें अमलतासका गूदा द्राक्षाके रसमें घोलकर पिलाना चाहिये । चार वर्षसे लेकर १२ वर्षकी अवस्थातक बालकके लिये अमलतासका विरेचन सुखकारी होता है ॥ ६ ॥

चतुरङ्गुलमज्ज्ञस्तु प्रसृतं वाथवाञ्जलिम् ।
सुरामण्डेन संयुक्तमथवा कोलसीधुना ॥ ७ ॥
दधिमण्डेन वा युक्तं रसेनामलकस्य वा ।
कृत्वा शीतकषायं तं पिबेत्सौवीरकेण वा ॥ ८ ॥

अमलतासका गूदा दो पल प्रमाण लेकर अथवा चार पल लेकर सुरामण्डमें अथवा बेरसे बनाईहुई शीधुमें भिगोकर एक दिन रहनेदे । फिर मसलकर मात्रानुसार पीवे तो उत्तम विरेचन सुखपूर्वक होजाता है । अथवा इसी प्रकार दधिमण्ड वा आमलेके रसके साथ अथवा शीतलजलमें एक दिन भिगोकर वा सौवीरकमें भिगोकर दूसरे दिन मसलकर पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्रिवृतो वा कषायेण मज्जकल्कं तथा पिबेत् ।
तथा बिल्वकषायेण लवणक्षौद्रसंयुतम् ॥ ९ ॥

अथवा निशोथके क्वाथमें अमलतासका गूदा घोलकर वा बेलके क्वाथमें घोलकर सेंधानमक और शहद मिलाकर पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ९ ॥

कषायेणाथवा तस्य त्रिवृच्चूर्णं गुडान्वितम् ।
साधयित्वा शनैर्लेहं लेहयेन्मात्रया नरम् ॥ १० ॥

अथवा अमलतासके क्वाथके साथ निशोथका चूर्ण और गुड मिलाकर मंदमंद अग्निसे अवलेह सिद्ध करे । यह अवलेह मात्रानुसार मनुष्यको चटावे तो उत्तम विरेचन होजाता है ॥ १० ॥

चतुरङ्गुलसिद्धाद्वा क्षीराद्यदुदियाद्घृतम् ।
मज्ज्ञः कल्केन धात्रीणां रसे तत्साधितं पिबेत् ॥ ११ ॥

अमलतासका गूदा आधसेर, दूध चार सेर, जल आठ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। फिर इस दूधमें एक सेर घृत और एक पाव अमलतासके गूदेका कल्क तथा चार सेर आमलेका रस मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घीके पीनेसे भी उत्तम विरेचन होता है॥ ११ ॥

तदेव दशमूलस्य कुलत्थानां यवस्य च ।
कषाये साधितं कल्कैः सर्पिः श्यामादिभिः पिबेत् ॥ १२ ॥

अमलतासके गूदेसे सिद्ध किया दूध चार सेर, घी एक सेर, दशमूल, कुलथी और यवोंका क्वाथ चार सेर तथा निशोथ, त्रिफला, दंती, नीलिनी, सातला, कमीला, वच, इन्द्रायणकी जड, दूधली, कांजके बीज, पीलू, अमलतास, दाख, द्रवंती और निचुल इन सबको एकएक कर्ष लेकर कल्क बनावे। इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस घृतके पीनेसे सुखपूर्वक उत्तम विरेचन होताहै १२

दन्तीक्वाथेऽञ्जलिं मज्ज्ञः शम्पाकस्य गुडस्य च ।
दत्त्वा मासार्द्धमासस्थमरिष्टं पाययेत च ॥ १३ ॥
यस्य यत्पानमन्नञ्च हृद्यं स्वाद्वपि वा कटु ।
लवणं वा भवेत्तेन युक्तं दद्याद्विरेचनम् ॥ १४ ॥

दंतीका क्वाथ ४ सेर, अमलतासका गूदा आधसेर, गुड १ सेर इन सबको किसी चिकने पात्रमें भरकर विधिवत् बन्द कर १५ दिन अथवा १ महीना धरा रहने दे। फिर इस आरिष्टको छानकर रोगीको पिलावे। जिस रोगीको जो पीनेकी वस्तु और अन्न हृदयको प्यारा लगे अथवा मिठाई, चरपरे द्रव्य, नमकीन अथवा खट्टे जैसे द्रव्य उसको प्रिय हों उन्हींके साथमें यह अरिष्ट भी पिलाया जाय तो उत्तम विरेचन होता है १३॥१४

उपसंहार।

तत्र श्लोकौ—द्राक्षारसे सुरासीध्वोर्दधि चामलकीरसे ।
सौवीरककषायाभ्यां बिल्वशम्पाकयोस्तथा ॥ १५ ॥
लेहोऽरिष्टो घृते द्वे च योगा द्वादश कीर्त्तिताः ।
चतुरङ्गुलकल्पेऽस्मिन् सुकुमाराः प्रकीर्त्तिताः ॥ १६ ॥

इति श्रीचरकसंहि० कल्पस्थाने चतुरङ्गुलकल्पो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

इस चतुरंगुल कल्पके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस चतुरंगुल कल्पमें द्राक्षारस मद्य, बेरकी सीधू, दधिमण्ड, आमलेका रस, सौवीरक, निशोथका क्वाथ, बिल्व और अमलतासका क्वाथ, अवलेह, अरिष्ट और दोप्रकारके घृत इन सबको मिलाकर बारह प्रकारके मृदुसुखकारी विरेचनयोग कहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पं०रामप्रसादवैद्य-विरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां चतुरंगुलकल्पो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः।

अथातस्तिल्वककल्पं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम तिल्वक (लोध) के कल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

लोधके नाम।

तिल्वकस्तु मतो लोध्रो बृहत्पत्रस्तिरीटकः॥ १॥

तिल्वक, लोध्र, बृहत्पत्र और तिरीटक यह लोधके पर्यायवाचक शब्द हैं॥ १॥

लोधके १६ योग।

तस्य मूलत्वचं शुष्कामन्तर्वल्कलवर्जिताम्।
चूर्णयेत्तु त्रिधा कृत्वा द्वौ भागौ क्वाथयेत्ततः।
लोध्रस्यैव कषायेण तृतीयं तेन भावयेत्॥ २॥
भागं तं दशमूलस्य पुनः क्काथेन भावयेत्।
शुष्कं चूर्णं पुनः कृत्वा तत ऊर्द्धं प्रयोजयेत्॥ ३॥
दधितक्रसुरामण्डमूत्रैर्बदरसीधुना।
रसेनामलकानां वा ततः पाणितलं पिबेत्॥ ४॥

लोधकी जडके काष्ठभागको त्यागकर ऊपरका मोटा छिलका ले सुखालेवे। इस सुखेहुए लोधका चूर्णकर अलग २ तीन भाग करे। दो भाग चूर्णका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे तीसरे भाग चूर्णकी भावना देवे। फिर दशमूलके क्वाथकी भावना देवे। तदनंतर सुखाकर चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको दही, तक्र, सुरा, मण्ड, गोमूत्र, बेरसे बनीहुई सीधु और आमलेका रस इनमेंसे किसी एकके साथ एक तोला पीवे तो उत्तम विरेचन होता है॥ २-४॥

सुरां लोध्रकषायेण जातां पक्षस्थितां पिबेत्॥ ५॥

लोधका क्वाथ और मद्य इन दोनोंको समभाग ले किसी पात्रमें भर १५ दिन रक्खे फिर इसके पीनेसे भी सुखपूर्वक विरेचन होजाता है॥ ५॥

मेषश्रृङ्ग्यभयाकृष्णाचित्रकैः सलिले श्रृते।
तत्तुलां सुनुयात्तच जातं सौवीरकं यदा।
भवेदञ्जलिना तस्य लोध्रकल्कं पिबेत्तदा॥ ६॥

मढासिंगी, हरड, पीपल, चित्रक इन सबको आध २ सेर लेकर आठगुने जलमें डाल क्काथ करे । चतुर्थांश शेप रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें ५ सेर गुड मिलावे और यवोंसे बनाई हुई कांजी दो सेर इसमें डाले, १५ दिनपर्यन्त बन्दकर रक्खे फिर यह उत्तम सौवीरक बनजाता है । इसमेंसे एक पाव सौवीरक लेकर उसमें लोधका कल्क मिला पीनेसे उत्तम विरेचन होजाता है ॥ ६ ॥

दन्तीचित्रकयोर्द्रोणे सलिलस्याढकं पृथक् ।
तं क्काथ्य च गुडस्यैकां तुलां लोध्रस्य चाञ्जलिम् ।
आवपेत्तत्परं पक्षान्मद्यपानाद्विरेचनम् ॥ ७ ॥

चार सेर दंतीको १६ सेर जलमें पकावे और ४ सेर चित्रकको १६ सेर जलमें पकावे । जब चौथा २ भाग शेष रहे तो इन दोनोंका अलग २ उतारकर छान लेवे। फिर इन दोनों क्वाथोंको मिलाकर इनमें ५ सेर गुड और २० तोले लोधका चूर्ण मिलाकर किसी चिकने पात्रमें डाल बन्द कर देवे । १५ दिनके अनन्तर निकालकर छानले । इस अरिष्टके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ७ ॥

तिल्वकस्य कषायेण दशकृत्वः सुभाविताम् ॥ ८ ॥
मात्रां कम्पिल्लकस्यैव कषायेण पुनः पिबेत् ।
चतुरङ्गुलकल्पेन लेहोऽन्यः कार्य्य एव च ॥ ९ ॥
त्रिफलायाः कषायेण ससर्पिर्मधुफाणितः ।
लोध्रचूर्णयुतः सिद्धो लेहः श्रेष्ठो विरेचने ॥ १० ॥

लोधके क्वाथसे लोधके चूर्णको दशबार भावना देवे। फिर इस चूर्णको कमीलेका क्वाथकी दशबार भावना देकर चूर्ण बना लेवे । इस चूर्णको कमीलेके क्काथके साथ अथवा उपरोक्त किसी अरिष्टके साथ पीनेसे विरेचन होजाताहै । अमलतासके अवलेहके समान लोधका भी अवलेह बनावे अर्थात् लोधका क्वाथ, निशोथका चूर्ण और गुड मिलाकर अवलेह सिद्धकरे। यह अवलेह भी विरेचन करनेके लिये प्रयोग किया-जाता है। त्रिफलेका क्वाथ, घृत, गुड और लोधका चूर्ण मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । इस अवलेहमें शहद मिला चाटनेसे उत्तम विरेचन होता है ॥ ८-१० ॥

तिल्वकस्य कषायेण कल्केन च सशर्करः ।
सघृतः साधितो लेहः स च श्रेष्ठो विरेचने ॥ ११ ॥

लोधके कषायके साथ लोधका कल्क, खांड और घी मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । इस अवलेहके खानेसे भी श्रेष्ठ विरेचन होजाता है ॥ ११ ॥

अष्टाष्टौ त्रिवृतादीनां मुष्टींश्च सनखान् पृथक् ।
द्रोणेऽपां साधयेत्पादशेषे प्रस्थं घृतात्पचेत् ॥ १२ ॥
पिष्टैस्तैरेव बिल्वांशैः समूत्रलवणैरथ ।
ततो मात्रां पिबेत्काले श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ १३ ॥

निशोथ, त्रिफला, दंती, नीलिनी, सातला, वच, कमीला, इन्द्रायणकी जड, दूधी, करंजुएकी गिरी, पीलूफल, अमलतास, दाख, द्रवंती और निचुल इन सबको आठ आठ तोला लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथा भाग शेष रहे तो उतार कर छानलेवे इस क्वाथमें एक प्रस्थ घृत और इन उपरोक्त निशोथ आदि द्रव्योंका दो दो तोला कल्क, सेंधानमक दो तोला और गोमूत्र चार सेर इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस घृतको मात्रानुसार पीनेसे परमश्रेष्ठ विरेचन होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

लोध्रकल्केन मूत्राम्ललवणैश्च पचेद् घृतम् ।
चतुरङ्गुलकल्पेन सर्पिषी द्वे च साधयेत् ॥ इति ॥ १४ ॥

लोधका कल्क, गोमूत्र, सेंधानमक और कांजी मिलाकर सिद्ध किया घृत अथवा लोधका क्वाथ, गोमूत्र, कांजी और लवण मिला सिद्ध किया घृत विरेचन करानेमें श्रेष्ठ होता है। इन दोनों प्रकारके घृतोंमें अमलतासका क्वाथ और उपरोक्त निशोथ आदि द्रव्योंका कल्क तथा दशमूल, कुलथी और यवोंका क्वाथ भी मिलाना चाहिये। संपूर्ण क्वाथ घृतसे चौगुने और सब द्रव्योंका कल्क घीसे चौथा भाग मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारले। फिर इन दोनों घृतोंमेंसे किसी एकको पीवे तो उत्तम विरेचन हो ॥ १४ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ-पञ्च दध्यादिभिस्त्वेकः सुरासौवीरकेण च ।
एकोऽरिष्टस्तथा योग एकः कम्पिल्लकेन च ॥ १५ ॥
लेहास्त्रयो घृतेनापि चत्वारः सम्प्रदर्शिताः ।
योगास्ते लोध्रमूलानां कल्पे षोडश दर्शिताः ॥ १६ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने तिल्वककल्पो
नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस तिल्वककल्पमें दही आदि द्रव्योंसे पांच योग, मद्यसे एक योग, सौवीरकसे एक योग, अरिष्टसे एक योग, कमीलेसे एक योग, अवलेहके तीन योग और घृतके चार योग इस प्रकार सब मिलाकर लोधके सोलह योगोंका वर्णन किया है ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां तिल्वककल्पो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातः सुधाकल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम सुधाकल्पकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

सुधाको तीक्ष्णत्व ।

विरेचनानां सर्वेषां सुधा तीक्ष्णतमा मता ।
संघातन्तु भिनत्त्याशु दोषाणां कष्टविभ्रमात् ॥ १ ॥
तस्मान्नैषा मृदौ कोष्ठे प्रयोक्तव्या कदाचन ।
न दोषनिचये चाल्पे सति वान्यपरिक्रमे ॥ २ ॥

संपूर्ण विरेचनोंमें सुधा (थोहर, सेहुंड) का विरेचन अत्यन्त तीक्ष्ण मानाजाता है। यह दोषोंके संघातको एकदम तोडकर मनुष्योंको कष्टकारी विभ्रम उत्पन्न करदेता है। इसलिये इसका विरेचन मृदुकोष्ठवाले मनुष्योंको कभी नहीं देना चाहिये। और अल्पदोषमें तथा जो दोष अन्य विरेचनद्वारा निकल सकते हों उनमें भी थोहरका विरेचन देना नहीं चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

पाण्डुरोगोदरे गुल्मे कुष्ठे दूषीविषार्दिते ।
श्वयथौ मधुमेहे च दोषविभ्रान्तचेतसि ॥ ३ ॥
रोगैरेवंविधैर्ग्रस्तं ज्ञात्वा सप्राणमातुरम् ।
प्रयोजयेन्महावृक्षं सम्यक् स ह्यवचारितः ॥ ४ ॥
सद्यो हरति दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम् ॥ ५ ॥

पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्मरोग, कुष्ठ, दूषीविष, सूजन, मधुमेह, उन्माद तथा किसी प्रकारके जो अन्य बलवान् रोग हैं उन रोगोंमें यदि रोगी बलवान् हो तो

थोहरके विरेचनका विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिये। थोहर विधिवत् प्रयोग किये· जानेपर दोषोंके महान् संचयको भी शीघ्र हरलेता है ॥ ३-५ ॥

थोहरके भेद और नाम।

द्विविधः स मतो यैश्च बहुभिश्चैव कण्टकैः।
सुतीक्ष्णैः कण्टकैरल्पैः प्रवरो बहुकण्टकः।
स नाम्ना तु गुडानन्दी सुधा निस्त्रिंशपत्रकः॥ ६ ॥

थोहर दो प्रकारका होता है। एक बहुतसे और तीक्ष्ण कांटोंवाला और दूसरा अल्पकांटोंवाला। इन दोनोंमें बहुत कांटोंवाला थोहर श्रेष्ठ होता है। इसके स्नुक्, गुडा, नन्दी, सुधा और निस्त्रिंशपत्र यह पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ६ ॥

थोहरके २० योग।

तं विपाट्याहरेत्क्षीरं शस्त्रेण मतिमान् भिषक्।
द्विवर्षा वा त्रिवर्षा वा शिशिरान्ते विशेषतः॥ ७ ॥
बिल्वादीनां बृहत्या वा कण्टकार्य्यापि चैकशः।
कषायं तं समांशेन कृत्वाङ्गारेषु शोषयेत् ॥ ८ ॥
ततः कोलसमां मात्रां पिबेत्सौवीरकेण वा।
तुषोदकेन कोलानां रसेनामलकस्य वा॥ ९ ॥
सुरया दधिमण्डेन मातुलङ्गरसेन वा॥ १० ॥

शिशिरऋतुके अन्तमें और वसन्तके आदिमें दो तीन वर्षके थोहरवृक्षकी जडको शस्त्रसे छेदनकर उसका दूध निकाललेवे। उस दूधको प्रथम बिल्वादि पंचमूलके क्काथमें फिर बडी कटेलीके क्वाथमें पीछे कटेलीके क्वाथमें डालकर अंगारोंकी आग्निपर पकावे। इसका यह क्रम है कि प्रथम थोहरके दूधमें बिल्वादिपंचमूलका क्वाथ डाल कर पकावे। जब वह जलजाय तो कटेलीका क्वाथ डाले। कटेलीके क्वाथके जलजानेपर जब थोहरका दूध भी गाढा होजाय तो उसकी जंगली बेरके समान गोलियें बनालेवे। इन गोलियोंमेंसे एक गोली सौवीरके साथ अथवा तुषोदकके साथ वा बेरसे बनी शीधुके साथ अथवा आँवलेके रसके साथ या मद्यके साथ अथवा दधिमण्डके साथ वा बिजौरेके रसके साथ पीवे तो तीक्ष्ण विरेचन होजाता है ॥ ७-१० ॥

सातलां काञ्चनक्षीरीं श्यामादीनि कटुत्रिकम्।
यथोपपत्ति सप्ताहं सुधाक्षीरेण भावयेत् ॥ ११ ॥
कोलमात्रं घृतेनातः पिबेन्मांसरसेन वा ॥ १२ ॥

सातला, स्वर्णक्षीरी, निशोथ¹ आदिगण, त्रिकुटा इन सबमेंसे जो मिलसके उन सबका चूर्ण कर उस चूर्णको सात दिन तक थोहरके दूधमें भावना देकर घोटता-जाय फिर बेरके समान गोलियां बना एक गोली खाकर ऊपरसे घृत अथवा मांस-रस पीवे तो उत्तम विरेचन होजाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

त्र्यूषणं त्रिफलां दन्तीं चित्रकं त्रिवृतां तथा।
स्नुक्क्षीरभावितं सम्यग्विदध्याद्गुडपानके ॥ १३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, दंती, चित्रक, निशोथ इन सबका चूर्ण कर थोहरके दूधकी भावना देकर गोलियें बनावे एक गोली गुडके शर्वतके साथ खावे तो उत्तम विरेचन होता है॥

त्रिवृतारग्वधं दन्तीं शंखिनीं सप्तलां समाम्।
निशि स्थितं गवां मूत्रे शोषयेदातपे ततः।
सप्ताहं भावयित्वैवं स्नुक्क्षीरेणापरं पुनः ॥ १४ ॥
सप्ताहं भावयेच्छुष्कं ततस्तेनापि भावितम्।
गन्धमाल्यं तदाघ्राय प्रावृत्य पटमेव च ॥ १५ ॥
सुखमाशु विरिच्यन्ते मृदुकोष्ठा नराधिपाः ॥ १६ ॥

निशोथ, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें रात्रिके समय भिगो देवे फिर सबेरे सुखावे। फिर चूर्ण कर रात्रिको गोमूत्रमें भिगोवे इस प्रकार इस चूर्णको सात भावना देवे। फिर इसी प्रकार थोहरके दूधमें सात बार भावना देवे फिर इस चूर्णको सुखाकर बहुत बारीक पीसले इस सूक्ष्म चूर्णको सुगंधित फूल माला आदिमें लगाकर सुंघाकर रोगीको सर्वतः वस्त्रसे ढक-कर रक्खे तो इससे मृदुकोष्ठ मनुष्योंको, राजा आदि सुकुमार मनुष्योंको सुख-पूर्वक विरेचन होजाता है ॥ १४-१६ ॥

श्यामात्रिवृत्कषायेण स्नुक्क्षीरघृतफाणितैः।
लेहं पक्त्वा विरेकार्थं लेहयेन्मात्रया नरम् ॥ १७ ॥

कालीनिशोथके क्वाथ और थोहरके दूधसे घृत और फाणित मिलाकर पकावे अवलेह सिद्ध होनेपर उतारले इस अवलेहको उचितमात्रासे रोगीको खिलावे तो तीक्ष्ण विरेचन होजाता है ॥ १७ ॥

पाययेत सुधाक्षीरं यूषैर्मांसरसैर्घृतैः।
भावितान्शुष्कमत्स्यान्वा मांसं वा भक्षयेन्नरः ॥ १८ ॥

---

१ अपामार्गतण्डुलीयाध्यायमें कहा है और तिल्वककल्पमें भी १२।१३ श्लोककी टीकामें कहा है॥

थोहरके दूधको यूष, मांसरस, अथवा घृतमें मिलाकर पिलावे अथवा थोहरके दूधमें भावना देकर सुखाई हुई मछली वा थोहरके दूधसे भावित मांसके खानेसे भी उत्तम विरेचन होजाता है ॥ १८ ॥

क्षीरेणामलकैः सर्पिश्चतुरङ्गुलवत्पचेत् ।
सुरां वा कारयेत्क्षीरं घृतं वा पूर्ववत्पचेत् ॥ इति ॥ १९ ॥

थोहरके दूधसे सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसमेंसे घी निकाले इस घीमें चार गुणा आँवलेका रस, घीसे चतुर्थांश थोहरका दूध मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतार कर छानले । अथवा इस प्रकार निकालाहुआ घृत १ सेर, निशोथ आदि द्रव्योंका कल्क १ पाव, दशमूल, कुलथी और जवोंका क्वाथ ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे यह दोनों घृतभी उत्तम विरेचन करते हैं । अथवा थोहरका दूध मद्यमें मिलाकर १९ दिन धरा रहनेदे फिर इस मद्यको छानकर पीवे तो उत्तम विरेचन हो १९

उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ—सौवीरकादिभिः सप्तसर्पिषा च रसेन च ।
पानकं घ्रेयलेहौ च योगा यूषादिभिस्त्रयः ॥ २० ॥
द्वौ शुष्कमत्स्यमांसाभ्यां सुरैका द्वे च सर्पिषी ।
सुधाकल्पस्य योगास्ते विंशतिः समुदाहृताः ॥ २१ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने सुधाकल्पो
नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस सुधाकल्पमें सौवीरकादिसे ७ योग, घृतके साथ १ योग, पानकसे १ योग, सूंघनेसे १ योग, अवलेहका १ योग, यूषादि ३ योग, सूखी मछली और मांससे २ योग, सुरासे एक योग और घृतसे दो योग इस प्रकार सब मिलकर २० योग कहेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां सुधाकल्पो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः।

अथातः सप्तलाशङ्खिनीकल्पं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम सप्तला और शंखिनीके कल्पोंकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान आत्रेयजी कहने लगे॥

सप्तलाशंखिनीके नाम।

सप्तला चर्म्मसाह्वा च बहुफेनरसा च सा।
शङ्खिनी तिक्तला चैव यवतिक्ताक्षिपीडकः॥ १॥

सप्तला, चर्मसाह्वा, बहुफेनरसा ये सातलाके नाम हैं और शंखिनी, तिक्तला, यवतिक्ता तथा अक्षिपीडक यह शंखिनीके नाम हैं॥ १॥

सप्तलाशंखिनीके गुण।

ते गुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु
विकासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्ये श्लेष्माधिकेषु तु॥ २॥

शंखिनी और सप्तला गुल्मरोग, विषविकार, हृद्रोग, कुष्ठरोग, सूजन, गरदोष और उदररोग आदिमें प्रयोग कीजातीहै। तथा विकाशी, तीक्ष्ण और रूक्ष होनेसे कफजनित व्याधियोंमें भी इसका प्रयोग किया जाताहै॥ २॥

नातिशुष्कं फलं ग्राह्यं शंखिन्या निस्तुषीकृतम्।
सप्तलायाश्च मूलानि गृहीत्वा भाजने क्षिपेत्॥ ३॥

शंखिनीके पकेहुए जो अत्यंत सूखे न हों ऐसे तुषरहित फल लेने चाहिये। और सातलाकी जड ग्रहण करना चाहिये। इन दोनोंको उत्तम पात्रमें डालकर युक्तिपूर्वक रख देना चाहिये॥ ३॥

सप्तलाशंखिनीके प्रयोग।

अक्षमात्रं तयोः पिण्डं प्रसन्ना लवणायुतम्।
हृद्रोगे कफवातार्थे गुल्मे चैव प्रयोजयेत्॥ ४॥
पियालपीलुकर्कन्धुकोलाम्रातकदाडिमैः।
द्राक्षापनसखर्जूरबदराम्लपरूषकैः॥ ५॥

---

१ सप्तला कोई थोहरका भेद सातला मानते हैं। कोई नीलिनीकोहो सप्तला कहते हैं।
२ शंखिनीसे यवतिक्ताका ग्रहण करते हैं।

मैरेयदधिमण्डेऽम्ले सौवीरकतुषोदके।
शीधौ चाप्येष कल्पः स्यात्सुखं शीघ्रविरेचने ॥ ६ ॥

फिर इन दोनों द्रव्योंको पीसकर इनका एक तोलेका गोली बना प्रसन्ना और सेंधेनमकके साथ हृद्रोग और कफवातजानित गुल्मरोगमें प्रयुक्त करे। अथवा चिरौंजी, पीलू, बेर, जंगली बेर, अंबाडा और अनार इन सबका क्वाथ या रस लेकर उसके साथ अक्षमात्र शंखिनी सप्तलाकी गोली खावे। अथवा द्राक्षा, पनस, खजूर, बेरका रस और फालसेका रस इनसे उस गोलीको सेवन करे। वा मैरेय, दधिमण्ड, जौ, सौवीरक, तुषोदक और शीधु इनमेंसे किसीके साथ गोली खावे तो विरेचन होकर हृद्रोग और कफवात गुल्म दूर होता है। तथा इसके योगसे सुखपूर्वक शीघ्र विरेचन होजाता है ॥ ४–६ ॥

तलं विदारिगन्धाद्यैः पयसि क्वथिते पचेत्।
सप्तला शंखिनीकल्के त्रिवृच्छ्यामार्द्धभागिके।
दधिमण्डेन सन्धाय सिद्धं तत्पाययेत च ॥ ७ ॥

तेल एक सेर, शालपर्णी आदि गणसे सिद्ध किया दूध ४ सेर, सप्तला और शंखिनीका कल्क २० तोला, लाल और काली निशोथका कल्क आधा पाव, दहीका मण्ड ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। इस तेलको दहीके मण्डमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन होता है ॥ ७ ॥

शंखिनीचूर्णभागौ द्वौ नीलीचूर्णस्य चापरः ॥ ८ ॥
हरीतकीकषायेण तैलं तत्पीडितं पिबेत्।
अतसीसर्षपैरण्डकरञ्जेष्वेष संविधिः ॥ ९ ॥

शंखिनीका चूर्ण २ भाग, नीलनीका चूर्ण १ भाग, यह दोनों तिलोंमें मिलाकर उन तिलोंको कोल्हूमें पीडितकर तेल निकलवा लेवे। इस तेलमें हरडोंका क्वाथ मिलाकर पीवे। इसी प्रकार तिलोंके बदलेमें अलसी, सरसों, एरण्डके बीज और करंजके बीजोंकी गिरी इन चारोंमेंसे किसी एकमें शंखिनी और नीलनीका चूर्ण उपरोक्त विधिसे मिलाकर तेल निकाले। इस तेलको हरडोंके क्वाथमें मिलाकर पीनेसे उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

शंखिनीसप्तलासिद्धात्क्षीराद्यदुदियाद् घृतम्।
कल्कभागं तयोरेव त्रिवृच्छ्यामार्द्धसंयुतम्।
क्षीरेणालोड्य सम्पक्वं पिबेत्तच्च विरेचनम् ॥ १० ॥

सातला और शंखिनीसे सिद्ध कियेहुए दूधको जमाकर उसका घृत निकाल लेवें। यह घी १ सेर सप्तला और शंखिनीका कल्क १० तोला, काली और लाल निशोथका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। इस घृतको उचित मात्रासे दूधमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन हो जाताहै ॥ १० ॥

तथा दन्तीद्रवन्त्योः स्यादजशृङ्ग्यजगन्धयोः ॥ ११ ॥
क्षीरिण्या नीलिकायाश्च तथैव च करञ्जयोः।
मसूरविदलायाश्च प्रत्यक्श्रेण्यास्तथैव च ॥ १२ ॥

इसी प्रकार दंती और द्रवंतीके साथ सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसका घृत निकाललेवे। इस १सेर घृतमें सातला और शंखिनीका कल्क १० तोला, दोनों प्रकारके निशोथका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर मिलाकर घृत सिद्ध करे। अथवा मेढासिंगी और अजवायनसे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत, शंखिनी, सप्तलाके कल्कद्वारा पूर्वोक्त रीतिसे सिद्धकरे। अथवा क्षीरिणी और नीलिकासे सिद्ध किया हुआ घृत लेकर वा वच और करंजसे सिद्ध किये दूधका घृत लेकर उस घृतमें सातला, शंखिनी और दोनों प्रकारके निशोथका कल्क मिलाकर उपरोक्त विधिसे घृत सिद्ध करे। अथवा शंखिनी और सप्तलाके दूधसे निकालाहुआ घृत १ सेर उसमें शंखिनी, सप्तलाका कल्क १० तोला, मसूरकी दाल और दंतीका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह सब घृत उत्तम विरेचन करनेवाले हैं। इनमेंसे किसी १ घृतको ४ तोला लेकर पावभर दूधमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥१२॥

विडङ्गार्द्धांशकल्केन तद्वत्साध्यं घृतं पुनः।
शंखिनीसप्तलाधात्रीकषाये साधयेद् घृतम् ॥ १३ ॥

शंखिनी और सप्तलासे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत १ सेर, वायविडंगका कल्क आध पाव, शंखिनी सप्तलाका कल्क आध पाव और दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। अथवा शंखिनी, सातला और आँवलेके क्वाथसे उसीप्रकार घृत सिद्ध करे। यह संपूर्ण घृत दूधमें मिला पीनेसे उत्तम विरेचन करते हैं ॥ १३ ॥

त्रिवृत्कल्पेन सर्पिश्च त्रयो लेहाश्च पूर्ववत्।
सुराकम्पिल्लयोर्योगः कार्य्यो लोध्रवदेव च ॥ १४ ॥

शंखिनी और सप्तलाके त्रिवृत् कल्पाध्यायमें कहेहुए विधानसे घृतपाक और तीन प्रकारके अवलेह सिद्ध कर विरेचनके लिये प्रयोग करे। तिल्व कल्प अर्थात् इसी कल्पके नवमें अध्यायमें सुरा और कमीलेके योगसे लोधके जो दो प्रकारके विरेचन

योग बनतेहैं उसी प्रकार शंखिनी और सप्तलाके भी सुरा और कमीलेके योगसे दो प्रकारके योग बनाना चाहिये ॥ १४ ॥

दन्तीद्रवन्त्योः कल्पेन सौवीरकतुषोदके।
अजगन्धाजशृङ्गयोश्च तद्वत्स्यातां विरेचने ॥ १५ ॥

आगे दंती और द्रवंतीके कल्पमें जिस प्रकार सौवीरक और तुषोदक, अजवायन और मेंढासिंगीके योगसे बनते हैं उसी प्रकार शंखिनी और सप्तलाके भी सौवीरक और तुषोदक बनावे। यह सौवीरक और तुषोदक भी उत्तम विरेचनकर्त्ता योग हैं१५

अध्यायका उपसंहार।

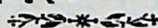
तत्र श्लोकौ—कषाया दश षट् चैव षट तैलेऽष्टौ च सर्पिंषि।
पञ्च मद्ये त्रयो लेहा योगाः काम्पिल्लके तथा ॥ १६ ॥
सप्तलाशंखिनीभ्यां ते त्रिंशदुक्ता नवाधिकाः ॥
योगाः सिद्धाः समस्ताभ्यामेकशोऽपि च ते हिताः ॥ १७ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने सप्तलाशंखिनीकल्पो
नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस शंखिनीसप्तलाकल्पमें क्वाथके योगसे १६ योग, तैलसे ६ योग, घीके ८ योग, मद्यके ५ योग, लेहके ३ योग, कमीलाका १ योग। इस प्रकार सब मिलकर ३९ योग कहे हैं। यह ३९ योग अकेली शंखिनी और अकेली सातलासे अलग २ भी होसकते हैं और दोनोंको मिलाकर भी। यह उपयोग विरेचनके लिये उत्तम हितकर्त्ता है। दोनोंको अलग २ करनेसे यह ७८ योग होजाते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां शंखिनीसप्तलाकल्पो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः।



अथातो दन्तीद्रवन्तीकल्पं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम दंती और द्रवंतीके कल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

दंती द्रवन्तीके नाम।

दन्त्युदुम्बरपर्णी स्यान्निकुम्भोऽथ मुकूलकः।
द्रवन्ती नामतश्चित्रा न्यग्रोधी मूषिकाह्वया॥ १॥

दंती, उदुम्बरपर्णी और मुकूलक यह दंती (छोटे जमालगोटेकी जड) के नाम हैं। तथा द्रवंती, चित्रा, न्यग्रोधी और मूषिकाह्वया यह द्रवंतीके नाम हैं॥ १॥

इनके ग्रहण और शोधनक्रम।

तयोर्मूलानि संगृह्य स्थिराणि बहलानि च।
हस्तिदन्तप्रकाराणि श्यावताम्राणि बुद्धिमान्॥ २॥
पिप्पलीमधुलिप्तानि स्वेदयेन्मृत्कुशान्तरे।
शोषयेदातपेऽर्काग्नौ हता ह्येषां विकारिता॥ ३॥

दंती, द्रवंतीका मूल जो स्थिर, पुष्ट, हाथीके दांतके समान चमकीले तथा श्यामतायुक्त ताम्रवर्ण हों उनको बुद्धिमान् वैद्य उखाड कर उचित समयमें ले आवे। फिर इन जडोंपर पीपलका चूर्ण लगाकर कुशासे लपेट देवे। ऊपरसे मट्टीका लेप कर दे। फिर इनको अग्निमें किंचित् स्वेदित करे। फिर मट्टी आदि दूर कर गरम-पानीसे धोडाले और धूपमें सुखा लेवे। ऐसा करनेसे इनका विकार नष्ट होजाताहै और यह शुद्ध होजाती हैं॥ २॥ ३॥

दंती और द्रवंतीके गुण।

तीक्ष्णोष्णान्याशुकारीणि विकाशीनि गुरूणि च।
विलापयन्ति दोषौ द्वौ मारुतं कोपयन्ति च॥ ४॥

दंती और द्रवंती यह दोनों तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी, विकाशी और भारी हैं तथा कफ और पित्तको नष्ट करती हैं एवं अत्यंत विरेचन होनेपर वायुको प्रकुपित करती हैं४॥

द्रवंतीके प्रयोग।

दधितक्रसुरामण्डैः पिण्डमक्षसमं तयोः।
पियालकोलबदरपीलुशीधुभिरेव च॥ ५॥
पिबेद्गुल्मोदरी दोषैरभिखिन्नश्च यो नरः।
गोमृगाजरसैः पाण्डुः कृमिकुष्ठी भगन्दरी॥ ६॥

दंती और द्रवंती इन दोनोंका एक तोला कल्क, दही, छाछ, सुरामण्ड, बेरका काथ, पीलूका काथ और शीधु इनमेंसे किसी एकके साथ पीवे तो यह विरेचन मनुष्योंके गुल्मरोग, उदररोग और अभिष्यंदता इन सबमें हितकारक है। अथवा गौके

दूध वा हिरनके मांसरसके अथवा बकरेके मांसरसके साथ कृमिरोग, पाण्डुरोग, कुष्ठ-रोग और भगन्दररोगवाले मनुष्योंको पिलाना हितकारी है ॥ ५ ॥ ६ ॥

तयोः कल्के कषाये च दशमूलरसायुते ।
कक्ष्यालजीविसर्पेषु दाहे च विपचेद् घृतम् ॥ ७ ॥

दंती और द्रवंतीके कल्क और क्वाथ तथा दशमूलका क्वाथ मिलाकर सिद्ध किया घृतका छराली (बगलमें होनेवाली गिल्टी), विसर्प और दाहमें विरेचनके लिये प्रयोग करना हितकारक है ॥ ७ ॥

तैलं मेहे च गुल्मे च सोदावर्त्ते कफानिले ।
चतुःस्नेहं शकृच्छुक्रवातसङ्गानिलार्त्तिषु ॥ ८ ॥

इसी प्रकार दंती, द्रवंतीके कल्क, क्वाथ और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध किया तैल, प्रमेह, गुल्म, उदावर्त्त और कफवातव्याधिमें पिलाना हितकारक है । और इसी प्रकार दंती, द्रवंतीके कल्क, क्वाथ और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध किया चतुःस्नेह मलके विबंध, वीर्यके विबंध और वायुके विबंधको दूर करताहै तथा वातजनित व्याधियोंको दूर करताहै ॥ ८ ॥

रसे दन्त्यजशृङ्ग्योश्च गुडक्षौद्रघृतान्वितः ।
लेहः सिद्धो विरेकार्थे दाहसन्तापमेहनुत् ॥ ९ ॥

दंती और मेंढासिंगीके क्वाथमें गुड और घी मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । इस अवलेहमें शहद मिलाकर चाटनेसे विरेचनहोकर संताप, दाह और प्रमेह नष्टहोजाताहै॥

वाततर्षे ज्वरे पैत्ते स्यात्स एवाजगन्धया ॥ १० ॥

अजवायन और दंतीके क्वाथमें चतुर्थांश गुड और घी मिलाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहको शहद मिलाकरचाटे तो विरेचनहोकर वायुकी तृषा, पित्तज्वर नष्ट होतेहैं॥

मूलं दन्तीद्रवन्त्योश्च पचेदामलकीरसे ।
त्रींस्तु तस्य कषायस्य भागौ द्वौ फाणितस्य च ।
तप्ते सर्पिषि तैले वा भर्जयेत्तत्र चावपेत् ॥ ११ ॥
कल्कं दन्तीद्रवन्त्योश्च श्यामादीनाञ्च भागशः ।
तत्सिद्धं प्राशयेल्लेहं सुखं तेन विरिच्यते ॥ १२ ॥

दंती, द्रवंतीकी जडका कल्क और आमलेका रस मिलाकर पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तो उतारकर छानलेवे । यह क्वाथ तीन भाग और फाणित (राब) दो भाग घृत और तेल आँठवां भाग मिलाकर पकावे । जब गाढा होनेपर आवे तो

इसमें दन्ती, द्रवंती और निशोथ आदि गणकी औषधियोंका चूर्ण मिलाकर अवलेह सिद्ध करे। इस अवलेहके चाटनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

रसे च दशमूलस्य तथा वैभीतके रसे।
हरीतकीरसे चैव लेहानेवं पचेत्पृथक् ॥ १३ ॥

दशमूल, बहेडे और हरड इन तीनोंमेंसे किसी एकके क्वाथमें दंती, द्रवंतीको पकावे चौथाई भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस रसमें पूर्वोक्त द्रव्य मिलाकर अवलेह सिद्ध करे। यह तीनों प्रकारके अवलेह विरेचन करानेमें उत्तम योग हैं ॥१३॥

तयोर्बिल्वसमं चूर्णं तद्रसेनैव भावितम्।
असृष्टविषि वातोत्थे गुल्मे चाम्लयुतं शुभम् ॥ १४ ॥

दंती, द्रवंतीके एक पल चूर्णको दंती द्रवंतीके रसमें भावना देकर चूर्ण करले यह चूर्ण मलके विबंधमें और वातगुल्ममें कांजीके साथ पिलावे तो परम हितकारी हो॥ १४॥

पाटयित्वेक्षुकाण्डं वा कल्केनालिप्य चान्तरा।
स्वेदयित्वा ततः खादेत्सुखं तेन विरिच्यते ॥ १५ ॥

एक मोटे पौंडा (गन्ना) को बीचमेंसे चीरकर उसमें दंती और द्रवंतीका कल्क भरे। फिर उस पौंडेको उसी प्रकार जोडकर बांध देवे। इसको अग्निमें भूनकर फिर इसका रस निकाल लेवे। इस रसके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है। अथवा दंती, द्रवंतीके कल्कको ईखके रसमें घोलकर पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है॥

मूलं दन्तीद्रवन्त्योश्च सह मुद्गैर्विपाचयेत्।
लावतित्तिरिकाणाञ्च ते रसाः स्युर्विरेचने ॥ १६ ॥

दन्ती, द्रवन्तीको डालकर सिद्ध किया मूंगका यूष अथवा लवा या तीतरका मांसरस पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होता है॥ १६ ॥

तयोर्वापि कषायेण यवागूं जाङ्गलं रसम्।
माषयूषांश्च संस्कृत्य दद्यात्तेन विरिच्यते ॥ १७ ॥
तत्कषायात् त्रयो भागा द्वौ सितायास्तथैव च।
एको गोधूमचूर्णानां कार्य्या चोत्कारिका शुभा ॥ १८ ॥
मोदको वास्य कल्केन कार्य्यस्तत्र विरेचने।
तयोर्वापि कषायेण मद्यमस्योपकल्पयेत् ॥ १९ ॥

दन्ती द्रवन्तीके क्वाथमें सिद्ध कीहुई यवागू अथवा जंगली जीवोंका मांसरस वा

उडदोंका यूष घृतमें भूनकर पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाता है। दन्ती, द्रवंतीका क्वाथ तीनभाग, मिसरी २ भाग, गेहूंका चूर्ण १ भाग इन सबको मिलाकर पूडियें बनावे। इन पूडियोंके खानेसे उत्तम विरेचन होता है। अथवा दंती, द्रवंतीके कल्कको मिसरी और गेहूंके योगसे हलवा या लड्डू बनावे तो उत्तम विरेचन होता है। अथवा दंती, द्रवन्तीका क्वाथ और बराबरकी मद्य मिलाकर आठ दिनतक धर रक्खे फिर इसके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होती है ॥ १७-१९ ॥

दन्तीक्काथेन चालोड्य दन्तीतैलेन साधितम्।
गुडलावणिकान् भक्ष्यान्विविधान् भक्षयेन्नरः ॥ २० ॥

गुड और सैंधानमक युक्त जितने प्रकारके भक्ष्य पदार्थ हैं अर्थात् पूडा, पूडी पकौडी आदि बनाना चाहे तो उनको दंतीके क्वाथमें घोलकर दंतीसे सिद्ध किये तैलमें पकावे। इनके खानेसे भी उत्तम विरेचन होजाता है ॥ २० ॥

द्रवन्तीं मरिचं दन्तीं यमानीमुपकुञ्चिकाम्।
नागरं हेमदुग्धीञ्च चित्रकञ्चेति चूर्णितम् ॥ २१ ॥
सप्ताहं भावयेन्मूत्रे गवां पाणितलं ततः।
पिबेद् घृतेन चूर्णन्तु विरिक्तश्चापि तर्पणम् ॥ २२ ॥
सर्वरोगहरं मुख्यं सर्वेष्वृतुषु शोभनम्।
चूर्णं तदनपायित्वाद्बालवृद्धेषु पूजितम् ॥ २३ ॥
दुर्भक्ताजीर्णपार्श्वार्तिगुल्मप्लीहोदरेषु च।
गण्डमालासु वाते च पाण्डुरोगे च शस्यते ॥ २४ ॥

द्रवंती, मिर्च, दंती, अजवायन, कालाजीरा, सोंठ, चोक, चित्रक इन सबका चूर्ण कर गोमूत्रमें ७ दिन भावना देवे। इस चूर्णको एक तोला खाकर ऊपरसे घी पीवे और विरेचन होनेके अनन्तर खांडका शर्बत पीवे। अथवा यवके सत्तू मिसरी और जल मिलाकर पतलासा तर्पण बना पीवे। यह चूर्ण संपूर्ण रोगोंके दूर करनेमें मुख्य है। और विकार रहित होनेसे संपूर्ण ऋतुओंमें तथा बालक, वृद्ध आदि सुकुमार प्रकृतियोंको इस चूर्णका विरेचन अत्यन्त हितकारी है। चूर्ण भोजनके अजीर्ण, पार्श्वपीडा, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, गण्डमाला, वातव्याधि और पाण्डुरोगको दूर करता है २१-२४

पलं चित्रकदन्त्योश्च हरीतक्याश्च विंशतिः।
पिप्पली त्रिवृता क्षौद्रगुडस्याष्टपलेन तत् ॥ २५ ॥

विनीय मोदकान् कुर्य्याद्दशैकं भक्षयेत्ततः ।
उष्णाम्बु च पिबेच्चानु दशमे दशमेऽह्नि च ॥ २६ ॥
एते निष्परिहाराः स्युः सर्वरोगनिबर्हणाः ।
ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकण्डूकोठानिलापहाः ॥ २७ ॥

चित्रक एक पल, दंती एक पल, हरड २० नग, पीपल एक पल, निशोथ एक पल, शहद एक पल, गुड ८ पल इन सबको मिलाकर १० लड्डू बनावे । इनमेंसे दश २ दिनका अन्तर देकर एक लड्डू गर्मजलके साथ सेवन करे । (अथवा एक एकके मोदककी दस दस गोलियें बना एक गोली नित्य गर्मजलके साथ सेवन करे ।) इनके सेवनमें विशेषरूपसे किसी आहार विहारका परहेज नहीं । इनके सेवनसे सब-प्रकारके रोग नष्ट होते हैं । तथा संग्रहणी, पाण्डु, बवासीर, खुजली, कोढ और वात-रोग यह सब नष्ट होते हैं ॥ २५–२७ ॥

दन्तीद्विपलनिर्य्यूहो द्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ।
शोधनं पित्तकासे च पाण्डुरोगे च शस्यते ॥ २८ ॥

दो पल दंतीका क्वाथ कर उस क्वाथमें आधसेर द्राक्षाका रस मिलाव । इनको मिलाकर पकावे । जब पकते २ अवलेह बनजाय तो यह अवलेह पित्तकी खांसी और पाण्डुरोगमें शोधनके लिये देवे । कोई दंतीके क्वाथ और द्राक्षाके क्वाथको मिलाकर पिलाना श्रेष्ठ मानते हैं ॥ २८ ॥

दन्तीकल्कं समगुडं शीतवारियुतं पिबेत् ।
विरेचनं मुख्यतमं कामलाहरमुत्तमम् ॥ २९ ॥

दंतीके कल्कको बराबरके गुडमें मिलाकर शीतल जलके साथ खाय तो उत्तम विरेचन हो यह विरेचन कामलारोगको दूर करता है ॥ २९ ॥

शुण्ठीमरिचपिप्पल्याः कार्षिकाः स्युः पृथक् पृथक् ।
द्विगुणे शर्करैले च शंखिनी स्याच्चतुर्गुणा ॥ ३० ॥
नीलिनीमष्टगुणितां द्विरष्टगुणितां तथा ।
दन्तीं द्रवन्तीं त्वक्शाणमेकञ्चात्र प्रदापयेत् ॥ ३१ ॥
तस्मादर्द्धपलं चूर्णाल्लिह्यान्माध्वीकसंयुतम् ।
शीतोदकानुपानन्तु निरपायं विरेचनम् ॥ ३२ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल इन सबको एक एक तोला लेवे । खांड और इलायची दो

दो तोला, शंखिनी चार तोला, नीलिनी आठ तोला, दंती, द्रवंती सोलह सोलह तोला तथा दालचीनी चार माशा इन सबको मिलाकर चूर्ण करे। इसमेंसे दो तोला चूर्ण अथवा जितना उचित हो शहद मिलाकर चाटे। ऊपरसे शीतल जल पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ३०-३२ ॥

श्यामादन्तीरसे गौडः पिप्पलीफलचित्रकैः।
लिप्तेऽरिष्टोऽनिलकफप्लीहपाण्डूदरापहः ॥ ३३ ॥

एक उत्तम मट्टीके घडेमें पीपल, मैनफल और चित्रकके कल्कका लेप करके सुखालेवे फिर इस घडेमें काली निशोथ और दंतीका क्वाथ तथा गुड मिलाकर भरदेवे। विधिवत् बन्दकर किसी धान्य आदिकी राशिमें गाडदेवे। २१ दिनके बाद निकालकर इस अरिष्टको पीवे तो वात, कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग और उदररोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

तथा दन्तीद्रवन्त्योश्च कषायेणाजगन्धयोः।
गौडः कार्य्योऽजशृङ्ग्या वा रसैः सुखविरेचनः ॥ ३४ ॥

दंती, द्रवन्ती और अजवायन इन सबके क्वाथमें गुड मिलाकर उपरोक्त रीतिसे अरिष्ट बनावे अथवा मेंढासिंगी और द्रवन्तीके क्वाथमें गुड मिला अरिष्ट बनावे। इन अरिष्टोंके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ३४ ॥

तच्चूर्णं क्काथमाषाम्बुकिण्वतोयसमुद्भवा।
मदिराकफगुल्माल्पवह्निपार्श्वकटिग्रहे ॥ ३५ ॥

दन्ती, द्रवन्तीका चूर्ण और क्वाथ, उडदोंका क्वाथ, सुराबीज और जल इन सबको मिलाकर इनसे बनाई मद्य कफ, गुल्म, मंदाग्नि, पार्श्वपीडा और कमरकी पीडाको दूर करती है ॥ ३५ ॥

अजगन्धाकषायेण सौवीरकतुषोदके।
सुराकम्पिल्लके योगा लोध्रवच्च तयोः स्मृताः ॥ ३६ ॥

अजवायनके क्वाथमें दंती और द्रवंतीका कल्क तथा तुषरहित जवोंका क्काथ तथा अजवायनके क्काथके बराबर कांजी इन सबको मिलाकर १ चिकने घडेमें बन्द कर रखे। ६ दिनके अनन्तर यह सौवीरक तय्यार होजायगा और इसी प्रकार तुषोंसहित यवसे बनायाहुआ तुषोदक कहाता है। यह दंतीद्रवंतीका बनाहुआ सौवीरक और तुषोदक पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है। अथवा दंती, द्रवंतीका क्वाथ और सुरा इन दोनोंको मिलाकर आठ दिन रक्खे इसके पीनेसे भी सुखपूर्वक विरेचन होजाता है अथवा दंती, द्रवंतीके चूर्णको दंती द्रवंतीके क्वाथमें दस भावना देवे, फिर कमीलेके क्वाथमें इसी चूर्णको दस भावना देवे। यह लोध्रके समान

दंती द्रवंतीका भी काम्पिल्य योग तक्र अथवा जलके साथ एक तोला पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३६ ॥

दंती द्रवंतीके योगोंका उपसंहार।

भवन्ति चात्र–दध्यादिषु त्रयः पञ्च पियालादैस्त्रयो रसे।
स्नेहेषु वै त्रयो लेहाः षट् चूर्णे त्वेक एव च॥ ३७ ॥
इक्षावेकस्तथा मुद्गमांसानाञ्च रसास्त्रयः।
यवाग्वादौ त्रयश्चैव उक्त उत्कारिकाविधौ ॥ ३८ ॥
एकश्च मोदके मद्ये चैकं तत्काथतैलके।
चूर्णमेकं पुनश्चैको मोदकः पञ्च चासवे ॥ ३९ ॥
एकः सौवीरकेऽथैकयोगः स्यात्तु तुषोदके।
एका सुरा कम्पिल्लके चैकः पञ्च घृते स्मृताः ॥ ४० ॥
दन्तीद्रवन्तीकल्पेऽस्मिन् प्रोक्ताः षोडशकास्त्रयः।
नानाविधानां योगानां भक्तिदोषामयान् प्रति ॥ ४१ ॥

अब इस दंती द्रवंती कल्पके उपसंहारमें कहते हैं कि, दही आदिसे ३ योग, चिरौंजी आदिसे ५ योग, क्वाथोंसे तीन योग, स्नेहसे ३ योग, अवलेहसे ६ योग, चूर्णसे १ योग, गन्नेमें १ योग, मूंगके यूष और मांसरससे ३ योग, यवागू आदिसे ३ योग, पूड़ियोंका १ योग, मोदकका १ योग, मद्यका १ योग, क्वाथ और तेलका १ योग, चूर्णका १ योग, फिर मोदकका १ योग, आसवके ५ योग, सौवीरकका १ योग, तुषोदकका १ योग, सुराका १ योग, कमीलेका १ योग और घृतके ५ योग इस प्रकार सब मिलाकर दंती द्रवंतीके ४८ योगोंका वर्णन किया है। यह अनेक प्रकारके योग भोजनसे उत्पन्न हुए अजीर्ण आदि नानाविध उदररोगोंको दूर करते हैं ॥ ३७–४१॥

वमन विरेचन योगोंकी संख्या।

त्रिशतं पञ्चपञ्चाशद्योगानां वमने स्मृतम्।
द्वे शते नवकाः पञ्च योगानां तु विरेचने ॥ ४२ ॥
ऊर्द्ध्वानुलोमभागानामित्युक्तानि शतानि षट्।
प्राधान्यतः समाश्रित्य द्रव्याणि दश पञ्च च ॥ ४३ ॥

इस कल्पस्थानमें वमनके ३५५ योग कहे हैं और विरेचनके २४५ योग हैं। इस प्रकार दोनोंको मिलाकर ऊर्ध्व विरेचन और अधोविरेचनके ६०० योगोंका कथन किया है। इन योगोंमें निशोथ आदि १५ द्रव्योंको प्रधान मानाहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

योगोंमें द्रव्यकी प्रधानता।

यद्धि येन प्रधानेन द्रव्यं समनुसृज्यते ।
तत्संज्ञकः स संयोगो भवतीति विनिश्चितम् ॥ ४४ ॥
फलादीनां प्रधानानां गुणभूताः सुरादयः ।
ते हितान्यनुवर्त्तन्ते मनुजेन्द्रमिवेतरे ॥ ४५ ॥
विरुद्धवीर्य्यमप्येषां प्रधानानामबाधकम् ।
समानवीर्य्यं त्वधिकं क्रियासामान्यमिष्यते ॥ ४६ ॥

जो प्रधान द्रव्य जिस अन्य द्रव्यके साथ मिलाया जाता है वह उस प्रधान द्रव्यकी गुणकी प्रधानतासे उस द्रव्यका संयोग होता है जैसे-मैनफल आदि प्रधान द्रव्योंको सुरा आदि अन्य द्रव्योंमें मिला देनेसे वह सुरा आदि द्रव्य भी मैनफल आदिके वामकादि गुणको ग्रहण कर लेते हैं और जैसे-अन्य मनुष्य राजाके अनुगामी होकर सब कार्य करतेहैं उसी प्रकार सुरा आदिकभी मैनफल आदि प्रधान द्रव्यके अनुगामी होकर उनके अनुसारही क्रिया करते हैं। इन प्रधान द्रव्योंके गुणोंको विरुद्ध वीर्य द्रव्य भी बिगाड नहीं सकते और समान वीर्य द्रव्य प्रधान द्रव्यके साथमें मिला दिये जांय तो प्रधान द्रव्य और भी विशेषरूपसे क्रियाके करनेवाले होते हैं ॥ ४४-४६ ॥

विरुद्धवीर्य द्रव्योंके मिलानेका हेतु।

इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थं प्रति चामयम् ।
अतो विरुद्धवीर्याणां प्रयोग इति निश्चितम् ॥ ४७ ॥

जो विरुद्धवीर्य द्रव्य मनके अनुकूल सुन्दरवर्ण, रस स्पर्श और गंधवाला होताहै मनोभिलषित करनेके लिये उसी विरुद्धवीर्य द्रव्यका वमन, विरेचनादिकोंमें संयोग कियाजाताहै। और जो मनोनुकूल गन्ध, वर्णादियुक्त न हो तथा रोगविशेषमें भी किसी प्रकार लाभदायक न हो और उससे वमन विरेचनादि क्रियामेंभी कुछ गुण न पहुंचता हो तो उस विरुद्धवीर्य द्रव्यको प्रधान द्रव्यके योगमें मिलाना नहीं चाहिये। वह इस प्रकार गुणकारी विरुद्धवीर्य द्रव्यका प्रयोग कियाजाता है। जैसे-किसी विरेचनद्रव्यमें वातकोपकारक रूक्षगुण हो तो उसको घृतआदि वातनाशक स्निग्ध द्रव्यमें मिलाकर देदेनेसे विरेचनक्रियाभी उत्तम होजाती है और रूक्षता आदि हानिकारक दोषभी नहीं रहता। इस प्रकार प्रधान द्रव्यका विरुद्ध वीर्यद्रव्यसे संयोग कियाजाता है ॥ ४७ ॥

भावना देनेका गुण।

भूयश्चैषां बलाधानं कार्यं स्वरसभावनैः ।

सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद्बहुकर्मकृत्।
स्वरसैस्तुल्यवीर्य्यैर्वा तस्माद् द्रव्याणि भावयेत् ॥ ४८ ॥

प्रधानद्रव्यको उसीके स्वरसकी भावना देनेसे वह द्रव्य विशेष बलवान् होजाता है। इस प्रकार भावना दियेजानेसे अल्प द्रव्यभी विशेष कर्मको करनेवाला होजाता है। इस-लिये द्रव्यके चूर्णको उसीके स्वरससे वा अन्य समानवीर्यद्रव्यसे भावना देनी चाहिये॥

इनके संस्कारादि विषयमें ज्ञातव्य।

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्पकर्मताम्।
कुर्य्यात् संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥ ४९ ॥

संयोग, वियोग, काल, संस्कार और युक्तिके बलसे अल्प द्रव्य भी महान् अर्थको करनेवाला और महान् द्रव्यभी अल्प अर्थको करनेवाला होजाता है ॥ ४९ ॥

प्रदेशमात्रमेतावद्द्रष्टव्यमिह षट्शतम्।
स्वबुद्ध्यैवं सहस्राणि कोटीर्वापि प्रकल्पयेत् ॥ ५० ॥

इस प्रकार इन ६०० वमन, विरेचनके योगोंका निदर्शनमात्र कथन किया है बुद्धि-मान् वैद्य दोष, काल, द्रव्य, संस्कार युक्तिविशेषसे ऐसी हजारों और करोडों योगोंकी कल्पना कर सकते हैं ॥ ५० ॥

योगोंके ३ भेद।

बहुद्रव्यविकल्पत्वाद्योगसंख्या न विद्यते।
तीक्ष्णमध्यमृदूनान्तु तेषां शृणुत लक्षणम् ॥ ५१ ॥

द्रव्योंके विकल्पभेदसे तथा रोगविकल्पसे द्रव्योंके योगोंकी गणना नहीं हो सकती इसलिये इन सब वमन, विरेचनकारक द्रव्योंके तीक्ष्ण, मध्य और मृदु यह ३ विभाग किये हैं। अब इनके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ५१ ॥

तीक्ष्णयोगके लक्षण।

सुखं क्षिप्रं महावेगमसक्तं यत्प्रवर्त्तते।
नातिग्लानिकरं पायौ हृदये न च रुक्करम् ॥ ५२ ॥
अन्नाशयमनुक्षिण्वन् कृत्स्नं दोषं निरस्यति।
विरेचनं निरूहो वा तत्तीक्ष्णमिति निर्दिशेत् ॥ ५३ ॥

जिस प्रयोगके करनेसे शीघ्र मलका समुदाय ढीला होकर महावेगके साथ निक-लने लगे और उस महावेगके कारण किंचित् ग्लानि, गुदा और हृदयमें किंचित् व्यथा उत्पन्न करे तथा आमाशय आदिकोंको क्षीण करके संपूर्ण दोष निकालडाले। इस प्रकारके विरेचन अथवा निरूहणको तीक्ष्ण प्रयोग कहते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

द्रव्यमें तीक्ष्णताका कारण।

जलाग्निकीटैरस्पृष्टं देशकालगुणान्वितम् ।
ईषन्मात्राधिकैर्युक्तं तुल्यवीर्यैः सुभावितम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तीक्ष्णत्वं याति भेषजम् ॥ ५४ ॥

जो द्रव्य अग्नि, जल और कीडे आदिसे दूषित न हुआहो तथा देश, काल, गुण-संपन्न हो और तुल्यवीर्य द्रव्यसे भावित कियागया हो उस द्रव्यका स्नेहन, स्वेदन करनेके अनन्तर अधिकमात्रासे प्रयोग कियाजाय तो वह तीक्ष्ण वेगको धारण करलेताहै॥

मध्यप्रयोगके लक्षण ।

किञ्चिदेभिर्गुणैर्हीनं पूर्वोक्तैर्मात्रया तथा ।
स्निग्धस्विन्नस्य वा सम्यङ् मध्यं भवति भेषजम् ॥ ५५ ॥

जो द्रव्य इन ऊपर कहे गुणोंसे किंचित् हीन हो और हीनमात्रासे प्रयोग कियागया हो वह स्निग्ध और स्वेदन कियेहुए रोगीको भली प्रकार प्रयोग कियागया हो तो वह द्रव्य मध्यवेगका धारण करता है ॥ ५५ ॥

हीनयोगके लक्षण ।

मन्दवीर्य्यं विरूक्षस्य हीनमात्रन्तु भेषजम् ।
अतुल्यवीर्य्यैः संयुक्तं मृदु स्यान्मन्दवेगवत् ॥ ५६ ॥
अकृत्स्नदोषहरणादशुद्धं तद्बलीयसाम् ।
मध्यावरबलानान्तु प्रयोज्यं सिद्धिमिच्छता ॥५७ ॥

जो द्रव्य मंदवीर्य हो और रूक्ष शरीर रोगीको दियाजाय तथा विरुद्धवीर्य द्रव्योंसे भावना दिया हो वह द्रव्य मृदु और मंदवेगवाला होता है ।मंदवेगवाला द्रव्य अर्थात् हीनयोग उत्तम रीतिसे दोषोंको निकाल नहीं सकता । बल्कि बलवान् मनुष्यके शरीरमें हीनयोग अशुद्धिको पैदा कर देता है। इसलिये सिद्धिकी इच्छावाले वैद्यको निर्बल रोगियोंको और मध्यबल रोगियोंको यह मंदवेग, मृदु विरेचनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

तीनप्रकारकी व्याधि आदि विचार।

तीक्ष्णो मध्यो मृदुर्व्याधिः सर्वमध्याल्पलक्षणः ।
तीक्ष्णादीनि बलापेक्षी भेषजान्येषु योजयेत् ॥ ५८ ॥

संपूर्ण लक्षणोंवाली व्याधि तीक्ष्ण कही जातीहै और मध्यम लक्षणवाली व्याधिको मध्यम कहते हैं। अल्पलक्षणवाली व्याधिको मृदुव्याधि कहतेहैं । इसी प्रकार तीन प्रकारकी व्याधि और बलभेदसे तीन प्रकारके रोगी तथा तीक्ष्णादि भेदसे तीन प्रकारकी औषध विचारकर विधिवत् प्रयोग करना चाहिये ॥ ५८ ॥

वमनमें विशेष कर्तव्य।

देयन्त्वनिर्हृते पूर्वपीते पश्चात्पुनः पुनः।
भेषजं वमनार्थाय प्राय आपित्तदर्शनात् ॥ ५९ ॥
बलं त्रैविध्यमालक्ष्य दोषाणामातुरस्य च।
पुनः प्रदद्याद्भैषज्यं सर्वशो वा विवर्जयेत् ॥ ६० ॥

जिस मनुष्यको वमनकारक औषधके पीजानेसे यथोचित दोष न निकले उसको बारबार वमनकारक द्रव्य पिलाते रहना चाहिये। जब पित्त निकलने लगे तब वमन उत्तम होगया ऐसा जानना चाहिये। रोगीके उत्तम, मध्य और हीनबलको विचार तथा इसीप्रकार दोषोंके बलको विचारकर बारबार औषधका प्रयोगकर दोषोंको निकाले। जब दोष निकलजाँय अथवा काल आदि विचारले तब शोधक औषधीका सर्वथा प्रयोग बन्द कर देना चाहिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

निर्हृते वापि जीर्णे वा दोषनिर्हरणे बुधः।
भेषजेऽन्यत्प्रयुञ्जीत प्रार्थयन्सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ६१ ॥

यदि वमनकारक औषध निकलगई हो अथवा पचजाय या वमनका वेग न हो तो बुद्धिमान् वैद्य उत्तम सिद्धिकी इच्छा करताहुआ उस रोगीको फिर वमन करानेके लिये औषधी पिलावे ॥ ६१ ॥

अपक्वं वमनं दोषात्पच्यमानं विरेचनम्।
निर्हरेद्वमनस्यातः पाकं न प्रतिपालयेत् ॥ ६२ ॥

वमनकारी औषध परिपाक होनेसे पहिलेही दोषोंको लेकर निकलजाती है और विरेचनकारक औषधी पाचन होकर दोषोंको निकालती है। इसलिये वमनकारक औषधीके परिपाकके समयकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये अर्थात् औषधी पीनेके थोडी देर बादतक वमन हो तो उस वमनके लानेका यत्न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

विरेचनमें कर्तव्य।

पीते प्रस्रंसने दोषान्न निर्हृत्य जरां गते।
वमिते चौषधे धीरः पाययेदातुरं पुनः ॥ ६३ ॥

विरेचन औषधी पीनेके बादमें जब वह औषध पाचन होजाय तो उस औषधकी मददके लिये अन्य विरेचनकर्त्ता औषधी देवे। परन्तु विरेचन औषधी खिलानेके बादही झटपट और विरेचनकारक औषधी नहीं देना चाहिये। सौंफका अर्क आदि गर्मकरके अथवा अन्य उपयोगी द्रव्य देते रहना चाहिये। यदि विरेचनकी औषधी

वमन होकर निकलजाय तो उसको और विरेचनकारक औषधी पिलाना चाहिये। यदि जीर्ण होजाय तो विरेचन करानेवाली अन्य मददगारऔषधी पिलाकर विरेचन करावे॥

दीप्ताग्निं बहुदोषञ्च दृढस्नेहगुणं नरम् ।
दुःशोध्यं तदहर्भुक्तं श्वो भूयः पाययेत्पुनः ॥ ६४ ॥

जिस मनुष्यकी अग्नि अत्यंत बलवान् हो अथवा बहुदोषयुक्त हो वा अत्यन्त स्नेहसे स्निग्धकाय हो उसका प्रायः साधारण औषधीके प्रयोगसे शोधन नहीं हो सकता। क्योंकि अग्नि दीप्त होनेसे औषध पचजाती है। बहुदोष होनेसे अल्पबल औषध क्रिया नहीं करसकती। स्निग्ध शरीरमें रूक्ष औषध अपना काम नहीं करसकती ऐसे समय उस रोगीको उसदिन और शोधन औषध न देकर भोजन करावे। फिर दूसरे दिन शोधन औषध पिलाकर शोधन कराना चाहिये ॥ ६४ ॥

दुर्बलो बहुदोषश्च दोषपाकेन यो नरः ।
विरिच्यते रसैर्भोज्यैर्भूयस्तमनुसारयेत् ॥ ६५ ॥

जो दुर्बल रोगी बहुदोषयुक्त हो उसके दोष यदि विरेचनके दिन न निकलसकें और उसकी विरेचनकी औषधी पचजाय और दोषोंके पाचन होनेके अनन्तर मल निकलने लगे तो उस रोगीको दूसरे दिन विरेचनकारक औषधी न पिलाकर विरेचनका रस, यूष तथा आहारद्रव्योंका भोजन कराकर मल निकालना चाहिये ॥ ६५ ॥

वमनैश्च विरेकैश्च विशुद्धस्याप्रमाणतः ।
भोजनान्तरपानाभ्यां दोषशेषं शमं नयेत् ॥ ६६ ॥

जो रोगी वमन विरेचन होजानेपर भी यथोचित शुद्ध न हो तो उसके शेष दोषोंका सारक द्रव्योंसे संस्कार किये भोजन और पानकादि पदार्थोंका सेवन कराके निकाल डाले ॥

दुर्बलं शोधितं पूर्वमल्पदोषञ्च मानवम् ।
अपरिज्ञातकोष्ठञ्च पाययेदौषधं मृदु ॥ ६७ ॥
श्रेयो मृद्वसकृत्पीतमल्पबाधां निरत्ययम् ।
न चातितीक्ष्णं यत्क्षिप्रं जनयेत्प्राणसंशयम् ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य दुर्बल हो अथवा अल्प दोषयुक्त हो वा उसके कोष्ठकी मृदुता क्रूरताका परिचय न हो उसको प्रथम मृदुविरेचन देनाही श्रेष्ठ होताहै। क्योंकि मृदूद्रव्य बार २ देनेसे भी कुछ हानि नहीं होती। परन्तु आतितीक्ष्ण योगका प्रयोग करना अच्छा नहीं तीक्ष्ण योगसे ऐसे मनुष्योंके प्राणतक नाश होनेका भय है ॥६७॥ ६८ ॥

दुर्बलोऽपि महादोषो विरेच्यो बहुशोऽल्पशः ।
मृदुभिर्भेषजैर्दोषा हन्युर्ह्येनमनिर्हृताः ॥ ६९ ॥

दुर्बल रोगीके शरीरमें यदि दोष बलवान् हो तो उसको मृदु थोडी २ औषध कईबार पिलाकर दोषोंको निकाल देना चाहिये। क्योंकि निर्बल रोगीको एकबार पिलाई हुई बलवान् औषध यदि पचजाय तो उसके प्राणोंको नष्ट करदेती है॥६९॥

यस्योर्द्ध्वं कफसंसृष्टं पीतं यात्यनुलोमिकम्।
वमितं कवलैः शुद्धं लङ्घितं पाययेत्तु तम्॥ ७० ॥

जिस रोगीको पिलाई हुई वमनकारक औषध ऊपरके भागसे कफावृत होकर ऊर्ध्वगतिको प्राप्त न हो और अनुलोमन होकर अधोमार्गसे निकलजाय उसको कवल धारण करा कुल्ले करावे। जब मुख शुद्ध होजाय तो लंघन कराके कफसे क्षीण होनेपर फिर वमन करावे॥ ७० ॥

विबन्धेऽल्पे चिराद्दोषे स्रवत्युष्णं पिबेज्जलम्।
तेनाध्मानं सतृट्छर्दिर्विबन्धश्चैव शाम्यति॥ ७१ ॥

यदि वमन, विरेचन द्रव्य पीनेके अनन्तर दोष थोडे २ और विलंबसे निकले तो बारबार गरमजल पिलावे। जिससे अफारा, प्यास, वमन और दोषोंका विबंध खुल जाय। अथवा सौंफ और गुलकन्द ३ तोला खिलाकर ऊपरसे बारबार सौंफ और गुलाबका अर्क गरमकर पिलाता जाय॥ ७१ ॥

भेषजं दोषरुद्धश्चेन्नोर्द्ध्वं नाधः प्रवर्त्तते।
सोद्गारं साङ्गशूलं वा स्वेदं तत्रावचारयेत्॥ ७२ ॥

यदि शोधन द्रव्य पीयाजानेके अनन्तर दोषोंद्वारा वह ऐसा रुकजाय कि, न तो वमन द्वाराही निकले और न विरेचन हो तथा डकारें आनेलगें और अंगोंमें शूल हो तो उसको स्वेदन कर नम्र करनेसे दोषोंका अवरोध खुलजाता है॥ ७२ ॥

सुविरिक्तस्तु सोद्गारमाश्वेवौषधमुल्लिखेत्।
अतिप्रवर्त्तनं जीर्णे सुशीतैः स्तम्भयेद्भिषक्॥ ७३ ॥

यदि भलीप्रकार विरेचन हो लेनेके अनन्तर भी रोगीको डकारें आतीरहें और उन डकारोंमें उस औषधीकी गंध आवे तो उसके आमाशयमें ठहरीहुई उस औषधको वमनद्वारा निकाल देवे। यदि विरेचनका अत्यंत योग होनेलगे अर्थात् दस्तोंकी अत्यंत प्रवृत्ति होजाय तो उसको शीतल क्रियाद्वारा शान्त करना चाहिये॥ ७३ ॥

कदाचिच्छ्लेष्मणा रुद्धं तिष्ठत्युरसि भेषजम्।
क्षीणे श्लेष्मणिं सायाह्ने रात्रौ वा तत्प्रवर्त्तते॥ ७४ ॥

कभी कभी ऐसा भी होताहै कि कफद्वारा मार्ग रुककर शोधन औषध छातीमें ही रुकी रहती है। जब सायंकाल कफ क्षीण होजाता है अथवा रात्रिको विरेचन-

द्वारा निकल जाता है अर्थात् कफद्वारा रुकनेसे शोधन द्रव्यका वेग रुका रहता है फिर रातको विरेचन होने लगता है ॥ ७४ ॥

रूक्षानाहारयोर्जीर्णे विष्टभ्योर्ध्वं गतेऽपि वा ।
वायुना भेषजे त्वन्यत् सस्नेहलवणं पिबेत् ॥ ७५ ॥

यदि रूक्षताके कारण अथवा उपवासके कारण औषधी पचजाय अथवा विष्टम्भ होकर वायुसे ऊपरको चलीआवे तो उस रोगीको वही औषध चिकनाई और नमक मिलाकर फिर पिलावे ॥ ७५ ॥

तृण्मोहभ्रममूर्च्छाद्याः स्युश्चेज्जीर्य्यति भेषजे ।
पित्तघ्नं स्वादु शीतञ्च भेषजं तत्र शस्यते ॥ ७६ ॥

शोधन औषधके जीर्ण होजानेपर यदि प्यास, बेहोशी, भ्रम और मूर्च्छा आदि उत्पन्न होजाँय अथवा विरेचन होलेनेके अनन्तर प्यास, मोह, मूर्च्छादि उपद्रव होने लगें तो उनको मधुर, शीतल और पित्तनाशक द्रव्योंद्वारा शान्त करे ॥ ७६ ॥

लालाहृल्लासविष्टम्भलोमहर्षाः कफावृते ।
भेषजं तत्र तीक्ष्णोष्णं कट्वादिकफनुद्धितम् ॥ ७७ ॥

यदि शोधन द्रव्य अर्थात् वमन या विरेचनकारक द्रव्य कफसे आवृत होकर रोगीको लार गिरना, हृल्लास, विष्टम्भ और रोमांच होनेलगे तो उसको उष्ण, तीक्ष्ण और चरपरे तथा कफनाशक औषध प्रयोग करना हितकारक है ॥ ७७ ॥

लंघनयोग्य मनुष्य।

सुस्निग्धं क्रूरकोष्ठञ्च लङ्घयेदविरेचितम् ।
तेनास्य स्नेहजः श्लेष्मा सङ्घश्चैवोपशाम्यति ॥ ७८ ॥

जो रोगी अत्यंत स्निग्ध होगया हो और उसका कोठा अत्यंत कठोर हो तो उस रोगीको विरेचन करानेसे पहिले लंघन कराने चाहिये। लंघन करानेसे स्नेहजनित कफका संघात (विबंध) निवृत्त होजाता है (तदनन्तर विरेचन द्रव्यका प्रयोग करना हितकारक है) ॥ ७८ ॥

वस्तियोग्य रोगी।

रूक्षबह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामशालिनाम् ।
दीप्ताग्नीनाञ्च भेषज्यमविरिच्यैव जीर्य्यति ॥ ७९ ॥
तेभ्यो वस्तिं पुरा दत्त्वा पश्चाद्दद्याद्विरेचनम् ।
वस्तिप्रवर्त्तितं दोषं हरेच्छीघ्रं विरेचनम् ॥ ८० ॥

जिन मनुष्योंका रूक्षता और अधिक वायुके कारण कोष्ठ अत्यंत क्रूर होता है अथवा अत्यंत व्यायाम, परिश्रम आदिके कारण दोष क्षीण होकर जठराग्नि तीक्ष्ण होती है वा जिनके वातजनित शूल उपस्थित हुआ हो ऐसे मनुष्योंको दीहुई विरेचक औषधी दस्त होनेके विनाही पचजाती है इसलिये ऐसे रोगियोंके पहिले वस्तिकर्म करके दोषोंको शान्त करे। जब दोष अनुलोमन होकर निकलनेलगे फिर विरेचन द्रव्य देवे। वस्तिद्वारा चलेहुए दोष विरेचनसे शीघ्र निकल जाते हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

शोधनके अयोग्य मनुष्य।

रूक्षाशनाः कर्म्मनित्या ये नरा दीप्तपावकाः।
तेषां दोषाः क्षयं यान्ति कर्म्मवातातपाग्निभिः ॥ ८१ ॥
विरुद्धाध्यशनाजीर्णान् दोषानपि जयन्ति ते।
स्नेह्यास्ते मारुताद्रक्ष्या नाव्याधौ तान्विशोधयेत् ॥ ८२ ॥

जो मनुष्य रूक्ष पदार्थोंका सेवन करते हैं तथा नित्य प्रति धूप, परिश्रम आदि सहन करते हैं उनकी इन कारणोंसे जठराग्नि अत्यंत दीप्त होती है। और वायु, धूप अग्नि और अत्यंत परिश्रम आदि करनेसे दोष क्षीण होजाते हैं। तथा विरुद्ध भोजन, भोजनपर भोजन, अजीर्णमें भोजनसे उत्पन्न हुए दोष भी शान्त होजाते हैं ऐसे मनुष्योंको स्नेहन करना चाहिये। और उनके शरीरमें वायुका कोप न हो इस प्रकार रक्षा करना चाहिये। ऐसे मनुष्योंको वातका कोप और रूक्षताके सिवाय अन्य कोई व्याधी प्रायः नहीं होसकती। इसलिये इनको वमन विरेचनद्वारा शोधन करना उचित नहीं ८२॥

नातिस्निग्धशरीराय दद्यात्स्नेहविरेचनम्।
स्नेहोत्क्लिष्टशरीराय रूक्षं दद्याद्विरेचनम् ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य अत्यंत स्निग्ध हैं उनको स्नेह विरेचन कदापि देना नहीं चाहिये। स्नेहसे उत्क्लिष्ट शरीरवालोंको रूक्ष विरेचन देना चाहिये ॥ ८३ ॥

एवं ज्ञात्वा विधिं धीरो देशकालप्रमाणवित्।
विरेचनं विरेच्येभ्यः प्रयच्छन्नापराध्यति ॥ ८४ ॥

इस प्रकार देश, काल, प्रमाण और विधिको जानकर विरेचनयोग्य मनुष्योंको विरेचन करानेवाला वैद्य अपराधका भागी नहीं होता। अन्यथा अर्थात् देश कालादि विना विचारे शोधन करानेवाला वैद्य अपराधी होता है ॥ ८४ ॥

विभ्रंशो विषवद्यस्य सम्यग्योगो यथामृतम्।
कालेष्ववश्यं पेयश्च तस्माद्यत्नात्प्रयोजयेत् ॥ ८५ ॥

जिस शोधन योगका अयोग्य रीतिपर प्रयोग किया जाता है वह विषके समान हानिकारक होता है और भलीप्रकार विधियुक्त प्रयोग करनेसे अमृतके समान गुणकारी होता है । इसलिये उचित रीतिपर समय आदिका विचार रखते हुए देश, काल आदि तथा दोष बलादि अनेक विधि तर्कना कर युक्तिपूर्वक औषध प्रयोग करना चाहिये॥

द्रव्यप्रमाणन्तु यदुक्तमस्मिन्मध्येषु तत्कोष्ठवयोबलेषु ।
तन्मूलमालम्ब्य भवेद्विकल्प्यं तेषां विकल्पोऽभ्यधिकोनभावः ॥८६॥

वमन, विरेचन द्रव्योंमें जिस द्रव्यका जिस प्रकार प्रमाण कहा है उसको कोष्ठ अवस्था और बल आदि विचारकर उनके अनुसार मात्राकी कल्पना करना चाहिये अर्थात् कोष्ठ, अवस्था, बल आदि विचारकर औषधिकी मात्रामें न्यूनता और अधिकता करना चाहिये ॥८६॥

मानपरिभाषा ।

षड्वंश्यस्तु मरीचिः स्यात्षण्मरीच्यस्तु सर्षपः ।
अष्टौ ते सर्षपा रक्तिस्तण्डुलश्चापि तद्द्वयम् ॥ ८७ ॥
धान्यमाषो भवेदेको धान्यमाषद्वयं यवः ।
अण्डकास्ते तु चत्वारस्ताश्चतस्रस्तु माषकः ॥ ८८ ॥
हेमश्च धानकश्चोक्तो भवेच्छाणन्तु ते त्रयः ।
शाणौ द्वौ द्रंक्षणं विद्यात् कोलं बदरमेव च ॥ ८९ ॥
विद्याद् द्वौ द्रंक्षणौ कर्षं सुवर्णञ्चाक्षमेव च ।
बिडालपदकं तच्च पिचुं पाणितलं तथा॥ ९० ॥
तिन्दुकञ्च विजानीयात्कवलग्रहमेव च ।
द्वे सुवर्णे पलार्द्धं स्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा ॥ ९१ ॥
द्वे पलार्द्धे पलं मुष्टिः प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका ।
बिल्वं षोडशिकञ्चाम्रं द्वे पले प्रसृतं विदुः ॥ ९२ ॥
अष्टमानन्तु विज्ञेयं कुडवौ द्वौ तु मानिका ।
पलं चतुर्गुणं विद्यादञ्जलिं कुडवं तथा ॥ ९३ ॥
चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुः प्रस्थमथाढकम् ।
पात्रं तदेव विज्ञेयं कंसः प्रस्थाष्टकं तथा ॥ ९४ ॥

कंसश्चतुर्गुणो द्रोणश्चार्म्मणं लल्वनश्च तत्।
स एव कलशः ख्यातो घटमुन्मानमेव च ॥ ९५ ॥
घटन्तु द्विगुणं शूर्पो विज्ञेयः कुम्भ एव च।
गोणीं शूर्पद्वयं विद्यात्खारीं भारीं तथैव च ॥९६॥
द्वात्रिंशच्चैव जानीयाद्वाहं शूर्पाणि बुद्धिमान्।
तुलां शतपलं विद्यात्परिमाणविशारदः ॥ ९७ ॥

झरोखे द्वारा मकानके अन्दर सूर्यकी किरण पडनेसे जो अति सूक्ष्म उडते हुए कणसे दिखाई पडते हैं उनको वंशी कहते हैं उन ६ वंशियोंकी १ मरीची होती है। ६ मरीचियोंकी १ सरसों। ८ सरसोंकी १ रत्ती अथवा तण्डुल होता है। २ तण्डुलोंका १ धान्यमाष अथवा उडद होता है। २ धान्यमाषोंका १ यव। ४ यवोंका १ अण्डक। ४ अण्डकोंका १ माषक (मासा) होताहै इसको हेम और धानक भी कहते हैं। ३ धानकोंका १ साण (टंक) होताहै। २ साणोंका १ द्रंक्षण होताहै, इसको कोल और वदर (आधुनिक व्यवहारमें ६ मासा,) होता है। २ द्रंक्षणोंका १ कर्ष (१ तोला) होताहै, इसको अक्ष, विडालपदक, सुवर्ण, पिचु, पाणितल, तिन्दुक और कवलग्रह भी कहते हैं। २ कर्षोंका १ पलार्द्ध होता है इसको शुक्ति और अष्टमिका भी कहतेहैं। २ पलार्द्धका १ पल होता है, इसको मुष्टि, प्रकुंच, चतुर्थिका, बिल्व, षोडशिका और आम्र भी कहते हैं। २ पलका १ प्रसृत होताहै। २ प्रसृतका १ कुडव होता है, इसको अष्टमान भी कहतेहैं। २ कुडवकी १ मानिका होती है। अथवा ऐसा समझिये कि ४ पलकी १ अंजली होतीहै। इसको कुडव कहते हैं। ४ कुडवका १ प्रस्थ होताहै। ४ प्रस्थका १ आढक होता है इसीको पात्र, भाजन और कंसभी कहते हैं। दो कंसोंका १ प्रस्थाष्टक होताहै। ४ कंसोंका १ द्रोण होता है। इसको अर्मण, लल्वण, कलश, घट और उन्मान भी कहते हैं। दो घटोंका १ शूर्प होता है इसको कुम्भ भी कहते हैं। दो शूर्पोंकी १ द्रोणी (गोणी) होतीहै, इसको खारी और भारी भी कहते हैं। ३२ शूर्पोंका १ वाह होता है। और १०० पलकी १ तुला होती है। बुद्धिमानोंको इस प्रकार परिमाण जानना चाहिये ॥ ८७-९७ ॥

अनेकविध विचार।

शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवमादिप्रकीर्त्तितम्।
द्विगुणं तद् द्रवेष्विष्टं तथा सद्योद्धृतेषु च ॥ ९८ ॥
यद्धि मानं तुला प्रोक्ता पलं वा तत्प्रयोजयेत्।
अनुक्ते परिमाणे तु तुल्यं मानं प्रकीर्त्तितम् ॥ ९९ ॥

यह उपरोक्त संपूर्ण प्रमाण सूखे द्रव्योंकाही कहा है। तथा गीले और तुरन्तके लाये हुए द्रव्योंका और पतले द्रव्योंका प्रयोगमें दो गुना प्रमाण जानना । अर्थात् हरएक योगमें सब द्रव्य जिस प्रमाणमें डालेजायं उसमें यदि कोई द्रव्य गीला अथवा तत्काल उखाडकर डालना हो तो द्विगुना लेना चाहिये। परन्तु तुला और पल यह सब जगह एकसाही प्रयोग करना चाहिये। अर्थात् द्विगुना नहीं लेना। जिस योगमें औषधियोंका तोल न कहा हो उसमें सब बराबर लेना चाहिये ॥ ९८॥ ९९ ॥

द्रवकार्य्येऽपि चानुक्ते सर्वत्र सलिलं स्मृतम् ।
यतश्च पादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्च सः ॥ १०० ॥

जिस जगह पतले द्रव्योंका कथन न किया हो उस जगह पतला करनेके लिये अथवा पीनेके लिये वा अन्य द्रव कार्यके लिये जल लेना चाहिये। जिस स्थानमें पाद कहा हो उस जगह पादशब्दसे चौथाभाग लेना चाहिये ॥ १०० ॥

जलस्नेहौषधानान्तु प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ १०१ ॥

जिस जगह जल, स्नेह औषधियोंका प्रमाण न कथन किया हो उस स्थानमें औषधियोंके कल्कसे ४ गुना स्नेह और स्नेहसे ४ गुना जल लेना चाहिये ॥ १०१ ॥

३ प्रकारके स्नेहपाक।

स्नेहपाकस्त्रिधा ज्ञेयो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।
तुल्ये कल्केन निर्य्यासे भेषजानां मृदुः स्मृतः ॥ १०२ ॥
शम्पाक इव निर्य्यासे मध्यो दर्वी विमुञ्चति ।
शीर्य्यमाणे तु निर्यासे वर्त्तमाने खरस्तथा ॥ १०३ ॥

स्नेहपाक ३ प्रकारका कहा है। जैसे-मृदु, मध्य और खर। जहां तैलादि स्नेह सिद्ध किया जानेपर नीचेकी गोंद पिच्छलसी नर्म रहजाय और कडछीआदिसे न लगे उसको मृदु स्नेहपाक कहते हैं। अथवा ऐसे कहिये कि तैलादि सिद्ध करनेपर गोंद कल्कके समान पतली रहजाय उसको मृदुस्नेहपाक कहते हैं। और जो अमलतासके गुद्देके समान लेईसी बनकर कडछीसे लगकर न छूटे इस प्रकार स्नेहकी गोंद होनेपर उसको स्नेहका मध्यपाक कहते हैं। तथा स्नेहपाकमें कल्कद्रव्यका सब गीलापन जलकर वह द्रव्य कडछीसे बालूके समान अलग गिरने लगे उसको खरपाक कहते हैं॥

उनके प्रयोग।

खरोऽभ्यङ्गे स्मृतः पाको मृदुर्नस्तःक्रियासु च ।
मध्यपाकन्तु पानार्थे वस्तौ च विनियोजयेत् ॥ १०४ ॥

यह जो तीन प्रकारका स्नेहपाक कहा है इनमें खरपाक मालिशमें प्रयोग करना चाहिये। मृदुपाक नस्यक्रियामें प्रयोग किया जाताहै और मध्यपाक पीने तथा वस्तिकर्ममें प्रयोग करना चाहिये ॥ १०४ ॥

मानञ्च द्विविधं प्राहुः कालिङ्गं मागधं तथा।
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमेवं मानविदो विदुः ॥ १०५ ॥

मानविवेक (तोल) के जाननेवालोंने कालिंगमान और मागधमान यह दो प्रकारके मान कहे हैं। इन दोनोंमानोंमें मागधमान श्रेष्ठहै। (यहांपर मागधमानही कहाहै)॥

कल्पका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ–कल्पार्थः शोधनं संज्ञा पृथग्घेतुः प्रवर्त्तते।
देशादीनां फलादीनां गुणा योगाः शतानि षट् ॥ १०६ ॥
विकल्पहेतुर्नामानि तीक्ष्णमध्याल्पलक्षणम्।
विधिश्चावस्थिको मानं स्नेहपाकश्च दर्शितः ॥ १०७ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां कल्पस्थाने दंतीद्रवंतीकल्पो
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

यहां कल्पके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि, इस कल्पस्थानमें कल्पका विषय शोधनकी संज्ञा, शोधनके हीन और अधिक प्रवृत्तिके कारण तथा देशोंके गुण और मैनफल आदि द्रव्योंके गुण और ६०० प्रकारके शोधनयोग, उनके विकल्प, हेतु, नाम तथा तीक्ष्ण, मध्य और अल्पके लक्षण, अनेक प्रकारकी अवस्थाविशेषसे क्रिया, मान, परिभाषा और स्नेहपाक इन सबका वर्णन किया है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासि-
वैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां
दंतीद्रवंतीकल्पवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा–वमन विरेचन कल्पना, औषध भेद प्रकार ॥
योग ज्ञान अरु मानविध, द्वादश, कल्पमझार ॥ १ ॥
देश काल रुज हेतु बल, शोधन त्रिविध प्रयोग ॥
विधिवत् जानहिं जे भिषक, हरहिं जगत्के रोग ॥ २ ॥

इति कल्पस्थान समाप्त ॥

॥ श्रीः ॥

सिद्धिस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः कल्पनासिद्धिं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम कल्पनासिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

का कल्पना पञ्चसु कर्मसूक्ता क्रमश्च कः किञ्च कृताकृतेषु ।
लिङ्गं तथैवातिकृतेषु संख्या का किं गुणाः केषु च का च वस्तिः॥ १ ॥
किं वर्जनीयं प्रतिकर्म काले कृते कियान् वा परिहारकालः ।
प्रणीयमानश्च न याति वस्तिः केनैति शीघ्रं स चिराच्च केन ।
साध्या गदाः स्वैः शमनैश्च केचित् कस्मात् प्रयुक्तैर्न समं व्रजन्ति॥२॥

भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछने लगे कि,हे भगवन् ! १–स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, नस्य और वस्ति इन पंचकर्मोंकी कल्पना अर्थात् पंचकर्मोंकी क्रिया क्या है? २–पंचकर्मोंमें किस प्रकार क्या करना चाहिये ? ३–इन पंचकर्मोंके भले प्रकार होजाने और मिथ्यायोगके क्या लक्षण हैं ? ४–इनकी संख्या क्या है?५–पंचकर्मोंमें किसके क्या गुण हैं?६–वस्ति क्या है ? ७–अतियोगादिकोंमें चिकित्साके समय क्या क्या वस्तुयें वर्जनीय हैं ? ८–पंचकर्मद्वारा शुद्ध शरीर होनेपर स्वाभाविक आहारविहारका कितने रोजतक त्याग करना चाहिये ? ९–वस्ति किस कारण प्रवेश नहीं कर-सकती?१०–की हुई वस्ति किस कारणसे शीघ्र निकलजाती है ? ११–वस्तिके विलम्बमें प्रत्यागमन होनेका कारण क्या है ? १२–कोई २ साध्यरोग भी अपने शमन करनेवाली औषधियोंके प्रयोगसे क्यों शांत नहीं होते? ॥ १ ॥ २ ॥

प्रचोदितः शिष्यवरेण सम्यगित्यग्निवेशेन भिषग्वरिष्ठः ।
पुनर्वसुस्तन्त्रविदाह तस्मै सर्वप्रजानां हितकाम्ययेदम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार शिष्यश्रेष्ठ अग्निवेशके प्रश्न करनेपर वैद्योंमें श्रेष्ठ, आयुर्वेदतंत्रके जाननेवाले पुनर्वसुजीने प्रजाके हितके लिये इस प्रकार कहना आरंभ किया॥ ३ ॥

स्नेहनकी अवधि ।

त्र्यहावरं सप्तदिनं परन्तु स्निग्धो नरः स्वेदयितव्य इष्टः ।
नातः परं स्नेहनमादिशन्ति सात्म्यीभवेत् सप्तदिनात् परन्तु ॥ ४ ॥

मृदुकोष्ठवाले मनुष्योंको ३ दिन स्नेहपान करावे, मध्यकोष्ठवालेको ५ दिन और क्रूर कोष्ठवालेको ७ दिन स्नेहपान कराना चाहिये। ७ दिनके उपरांत शास्त्रके ज्ञाता स्नेहपान करानेको अच्छा नहीं मानते। क्योंकि ७ दिनके उपरांत स्नेह सात्म्य होकर साधारण आहारके समान हो जाता है। इस लिये ३ दिनसे कम और ७ दिनसे अधिक स्नेहपान करानेकी विधि नहीं है। स्नेहपानकरानेके अनन्तर स्वेदन करे॥

स्नेहनस्वेदनके गुण।

स्नेहोऽनिलं हन्ति मृदुं करोति देहं मलानां विनिहन्ति सङ्गम्।
स्निग्धस्य सूक्ष्मेष्वयनेषु लीनं स्वेदस्तु दोषं नयति द्रवत्वम्॥ ५॥

स्नेहन वायुको नष्ट करता है देहको नर्म करता है और मलकी रुकावटको खोल दता है स्नेहनके अनन्तर स्वेदन करनेसे सूक्ष्म छिद्रोंमें लीनहुए दोष पिघलकर पतले होकर निकल जाते हैं॥ ५॥

शोधनके पूर्व सेवनीय द्रव्य।

ग्राम्यौदकानूपरसैः समांसैरुत्क्लेशनीयः पयसा च वम्यः।
रसैस्तथा जाङ्गलजैः सयूषैः स्निग्धः कफावृद्धिकरैर्विरेच्यः॥ ६॥

वमन करानेसे पहिले मनुष्यको ग्राम्य, जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस रस तथा दूध अधिक २ मात्रासे पिलाकर उसके कफको उत्क्लेशित (वमनाभिमुख) करलेना चाहिये। इसी प्रकार जिस मनुष्यको विरेचन देना हो उसको पहिले जंगली जीवोंका मांसरस तथा यूष जो कफके बढानेवाले न हों उनके द्वारा स्निग्धहुए मनुष्यके दोषोंको शिथिल करलेना चाहिये॥ ६॥

श्लेष्मोत्तरश्छर्दयति ह्यदुःखं विरिच्यते मन्दकफस्तु सम्यक्।
अधःकफेऽल्पे वमनं हि गच्छेद्विरेचनं वृद्धकफे तथोर्द्ध्वम्॥ ७॥

इस प्रकार कफकी अधिकता होनेपर वमन सुखपूर्वक होजाता है और कफके मंद होनेसे विरेचन सुखपूर्वक होजाता है। यदि मनुष्यके शरीरमें कफकी अल्पता हो तो पीया हुआ वमन द्रव्य भी अधोमार्गसे (दस्तद्वारा) निकल जाता है। और अधिक कफवालेका विरेचनकर्त्ता द्रव्यभी ऊर्ध्वमार्गसे (वमनद्वारा) निकल जाता है॥ ७॥

स्निग्धाय देयं वमनं यथोक्तं वान्तस्य पेयादिरनुक्रमश्च।
स्निग्धस्य सुस्विन्नतनोर्यथावद्विरेचनं योग्यतमं प्रयोज्यम्॥ ८॥

स्नेहद्वारा स्निग्धहुए रोगीको यथोक्तविधिसे वमन करावे और वमन होने अनन्तर पेयादि क्रमका पालन करे। तथा विरेचन करानेके लिये भी रोगीको पहिले विधिवत स्नेहन और स्वेदन करके फिर उचित रीतिपर विरेचन कराना चाहिये॥ ८॥

शोधनान्तमें सेवनीय द्रव्य।

पेयां विलेपीमकृतं कृतञ्च यूषं रसं त्रिर्द्विरथैकशश्च।

क्रमेण सेवेत विशुद्धकायः प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः॥ ९ ॥

यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः सन्धुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण।

महान् स्थिरः सर्वसहस्तथैव शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः॥ १० ॥

शोधन प्रधान, मध्य और अधम इन तीन प्रकारका होता है। इन तीनोंही प्रकारके शोधनोंमें किसी प्रकारके शोधनसे शुद्धहुआ मनुष्य पहिले पेया फिर क्रमसे विलेपी आदि संस्कार करके अथवा विनाही संस्कारकिये यूष और मांसरस थोडा २ एक, दो अथवा तीनबार करके पीवे। जैसे बहुत सूक्ष्म अग्निमें थोडासा घास और गोबरका चूर्ण आदि धीरे धीरे डालकर जैसे २ अग्नि प्रज्वलित होजाती है वैसे २ उसमें लकडी आदि लगाते जाते हैं उससे वह अग्नि महान् होजाती है। उसी प्रकार वमन विरेचनसे शुद्ध होनेके अनन्तर प्रथम रूक्षयूष, फिर पेया, फिर विलेपी, फिर पतलासा भात इस प्रकार क्रमसे देतेहुए शुद्धकाय मनुष्यकी जठराग्नि भी धीरे २ स्थिर बलवान् और सब प्रकारके आहारको सहन करनेवाली होजाती है॥९-१०॥

शोधनके हीन, मध्य और उत्तम वेग।

जघन्यमध्यप्रवरेषु वेगाश्चत्वार इष्टा वमने षडष्टौ।

दशैव ते द्वित्रिगुणा विरेके प्रस्थस्तथा द्वित्रिचतुर्गुणश्च॥ ११ ॥

वमनके उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन भेदोंसे तीन प्रकारके वेग होते हैं। उनमें वमनके ८ वेग होना अर्थात् वमनकारक औषधके पीनेसे भली प्रकार आठ वमन होजाना उत्तम वेग कहाता है। और ६ वमनका होना मध्यम वेग होता है तथा ४ वमनका होना निकृष्ट वेग कहा जाता है। इसी प्रकार विरेचक द्रव्यके पीनेसे ३० दस्तोंका होना विरेचनका उत्तम वेग होता है। २० वेगका होना मध्यम और दशका होना निकृष्ट गिना जाता है। वमनद्वारा वान्तद्रव्य (छर्दहुआ मल) तौलमें ६४ तोला हो तो उत्तम वेग, ४८ हो तो मध्यम वेग और ३२ तोला हो तो कनिष्ठ वेग जानना। इसी प्रकार विरेचनमें ४ प्रस्थ मल निकलना उत्तम परिमाण कहा जाता है। तीन प्रस्थ मध्यम और २ प्रस्थ निकृष्ट प्रमाण होता है॥ ११॥

उत्तम शोधनकी परीक्षा।

पित्तान्तमिष्टं वमनं तथोर्ध्वमधः कफान्तञ्च विरेकमाहुः।

द्वित्रीन् सविट्कानपनीय वेगान् मेयं विरेके वमने तु पीतम्॥ ११॥

जबतक वमनमें पित्त न निकले तबतक वमन ठीक नहीं हुआ ऐसा जानना। इसी प्रकार विरेचनके अन्तमें कफ (आंव) न निकले तो विरेचन ठीक नहीं हुआ ऐसा

जानना। जब वमनमें पित्त निकल लेवे तो वमन ठीक होगया जानना और विरेचनमें आंव निकलनेसे विरेचन ठीक हुआ जानना। विरेचनमें विरेचकद्रव्य पीनेके अनन्तर जो एक दो वार मल आता है उसको विरेचनके योगोंकी संख्यामें गणना नहीं करना। इसी प्रकार वमनमें पीहुई औषधि जो पहिलेही वेगमें निकलती है वह वमनके वेगोंमें नहीं गणना की जाती ॥ १२ ॥

उत्तम वान्तके लक्षण।

क्रमात् कफः पित्तमथानिलश्च यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः।
हृत्पार्श्वमूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ तथा लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ १३ ॥

जिस वमनमें प्रथम कफ निकले और फिर पित्त तदनन्तर वायु निकले अर्थात् कफ और पित्त निकलकर फिर शुद्ध डकार आने लगे तो वमनको शुद्ध हुआ जानना। वमनसे उत्तम रीतिपर शुद्ध हुए मनुष्यके यह लक्षण होते हैं। जैसे—हृदय, पार्श्व, मस्तक, इन्द्रियें और देहके संपूर्ण छिद्र शुद्ध और निर्मल होजांय तथा शरीरमें स्वच्छता और हलकापन प्रतीत हो, मन और इन्द्रिय आदि सब प्रसन्न हों यह उत्तम वमन होजानेके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

वमनके अयोग्य और अतियोगके लक्षण।

दुश्छर्दिते स्फोटककोठकण्ठहृत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रता च।
तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्राबलातिहानिर्वमनेऽति च स्यात् ॥ १४ ॥

वमनकारक द्रव्यके पीनेसे यदि ठीक वमन न हो तो शरीरमें फोडे, चकत्ते खुजली हृदय और इन्द्रियोंकी ग्लानि तथा शरीरका भारीपन यह लक्षण होते हैं। और वमनका अतियोग होनेसे अर्थात् अत्यंत अधिक वमन होजानेसे प्यास, मोह, मूर्च्छा, वायुका कोप, निद्रानाश और बलकी हानि यह लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

सम्यक्विरिक्तके लक्षण।

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादो लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम्।
प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां सम्यग्विरिक्तस्य भवेत् क्रमेण ॥ १५ ॥

उत्तम विरेचन होनेसे संपूर्ण स्रोतोंमें शुद्धता, इन्द्रियोंमें प्रसन्नता, शरीरमें हलकापन, ओजकी वृद्धि, जठराग्निका बलवान् होना, शरीरका निरोग होना तथा मल, पित्त, कफ और वायु इन सबका यथोचित निकलना यह लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥

दुर्विरिक्तके लक्षण।

स्याच्छ्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपः सादस्तथाग्नेर्गुरुता प्रतिश्या।
तन्द्रा तथा छर्दिररोचकश्च वातानुलोम्यं न च दुर्विरिक्ते ॥ १६ ॥

विरेचक द्रव्यके पीनेसे यदि यथोचित विरेचन हों तो कफ, पित्त और वायुका कोप होना, अग्निका मंद पडजाना, शरीरमें भारीपन, प्रतिश्याय, तंद्रा, वमन, अरुचि और यथोचित अधोवायुका न निकलना यह लक्षण होते हैं॥ १६ ॥

अतिविरिक्तके लक्षण।

कफास्रपित्तक्षयजानिलोत्थाः सुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः।
निद्राबलाभावतमःप्रवेशः सोन्मादहिक्का च विरेचितेऽति ॥ १७ ॥

अत्यंत विरेचन होनेसे अर्थात् विरेचनका अतियोग होजानेसे कफ, रक्त और पित्तका क्षय होकर वातके रोग उत्पन्न होना तथा अंगोंका सुन्नसा होना, अंगडाई, क्लम, कंप, निद्रानाश, बलका हीन होजाना, अंधकारमें प्रवेश होना, उन्माद और हिचकी यह सब उपद्रव उत्पन्न होतेहैं ॥ १७ ॥

शोधनके अंतमें कर्तव्य।

संसृष्टभक्तं नवमेऽह्नि सर्पिस्तं पाययेताप्यनुवासयेद्वा।
दद्यात् त्र्यहान्नानि बुभुक्षिताय तैलाक्तगात्राय ततो निरूहम् ॥ १८ ॥

उत्तम रीतिपर वमन विरेचन द्वारा शुद्धकाय होजानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे ९ दिन पर्यन्त अर्थात् प्रथम पेया, फिर विलेपी, तदनन्तर घृतरहित हल्के चावल, मूंगका यूष आदि ९ दिन पर्यन्त भात या पतलीसी खिचडीका पथ्य सेवन करता रहे। फिर नवम दिन घीका सेवन करावे तथा अनुवासन कर्म करे ॥ १८ ॥

निरूहणका समय।

प्रत्यागते मांसरसेन भोज्यः समीक्ष्य वा दोषबलं यथार्हम्।
नरस्ततो निश्यनुवासनार्हो नित्याशितः स्यादनुवासनीयः ॥ १९ ॥

फिर ३ दिनके अनन्तर शरीरपर भली प्रकार तेल लगाकर निरूहणवस्ति करे। परन्तु निरूहण वस्ति करनेसे प्रथम उसको थोडासा भोजन करादेवे अथवा जिस समय उसको अधिक भूख न हो उस समय निरूहण वस्ति करे। जब निरूहणका प्रत्यागमन होजाय विरेचन द्वारा सब निकलजाय फिर दोष, बल आदि विचारकर हिरन आदि जीवोंके मांसरससे भोजन करावे। यदि वह मनुष्य अनुवासनके योग्य हो तो उसीदिन रात्रिको हल्कासा भोजन करनेके अनन्तर अनुवासन कर्म करे ॥ १९ ॥

ऋतुभेदसे अनुवासनका समय।

शीते वसन्ते च दिवानुवास्यो रात्रौ शरद्ग्रीष्मघनागमेषु।
तानेव दोषान् परिरक्षता ये स्नेहस्य पाने परिकीर्त्तिताः प्राक् ॥ २० ॥

शीतकालमें और वसन्तऋतुमें दिनमें अनुवासन करना चाहिये। और शरद ग्रीष्म

और वर्षाऋतुमें रात्रिके समय अनुवासन कर्म करना चाहिये । सूत्रस्थानके स्नेहाध्यायमें स्नेहपानके जो दोष कहे हैं अनुवासनके समय भी उन सब दोषोंको त्याग देना चाहिये ॥ २० ॥

अनुवासनमें अन्नक्रम ।

प्रत्यागते चाप्यनुवासनीये दिवा प्रदेयं व्युषिताय भोज्यम् ।
सायञ्च भोज्यं परतस्त्र्यहे वा त्र्यहेऽनुवास्योऽहनि पञ्चमे वा ॥ २१ ॥

अनुवासनका तेल निकल जानेपर रात्रिको निराहार रखकर प्रातःकाल भोजन कराना चाहिये । यदि अनुवासन वस्ति द्वारा दिया हुआ तैल दिनमें निकले तो उसको दिनमें भोजन न देकर रात्रिमें भोजन करावे । फिर तीन २ दिन व्यतीत होनेपर इसी क्रमसे अनुवासन करे अथवा पांचवें दिन अनुवासन करे ॥ २१ ॥

त्र्यहे द्व्यहे वाप्यथ पञ्चमे वा दद्यान्निरूहादनुवासनं च ।
एकं तथा त्रीन् कफजे विकारे पित्तात्मके पञ्च तु सप्त वापि ॥ २२ ॥
वातेन चैकादश वा पुनर्वा वस्तीनयुग्मान् कुशलो विदध्यात् ॥ २३ ॥

निरूहणके अनन्तर इस प्रकार दोषादि विचारकर दो अथवा तीन दिनके बाद या पांचवें दिन अनुवासन वस्ति प्रयोग करना चाहिये । कफजनित विकारोंमें एक अथवा तीन वस्ति प्रयोग करे । पित्तजनित विकारोंमें पांच अथवा सात वस्ति करे और वातजनित विकारोंमें नव अथवा ग्यारह वस्तियोंका प्रयोग करे । इस प्रकार कुशल वैद्य वस्तिका अयुग्मरीतिपर अर्थात् १, ३, ५, ७ आदि रीतिसे प्रयोग करे और युग्म २, ४, ६ आदि क्रमसे प्रयोग न करे ॥ २२ ॥ २३ ॥

निरूहणका अकाल ।

नरो विरिक्तस्तु निरूहदानं विवर्जयेत्सप्तदिनान्यवश्यम् ।
शुद्धो विरेकेण निरूहदानं तद्व्यस्य शून्यं विकृषेच्छरीरम् ॥ २४ ॥

विरेचन करानेके अनन्तर उस मनुष्यको ७ दिनतक निरूहण वस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये । क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध शरीर होनेसे मलरहित शून्य शरीरमें प्रयोग किया हुआ निरूहण शून्य शरीरको आकर्षण करता है । इसलिये विरेचनके अनन्तर ७ दिनतक निरूहण नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥

निरूहणवस्तिके गुण ।

वस्तिर्वयःस्थापयिता सुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च ।
सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूनां निरत्ययः सर्वगदापहश्च ।

विट्श्लेष्ममूत्रानिलपित्तकर्षी स्थिरत्वकृच्छुक्रबलप्रदश्च॥ २५ ॥

वस्ति अवस्थाको स्थिर करती है तथा सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर और वर्णको बढातीहै। वस्तिकर्म बालक, वृद्ध और युवा मनुष्योंके सम्पूर्ण शारीरिक हितके करनेवाली तथा अनपायी (किसी प्रकारका उपद्रव न करनेवाली), संपूर्ण रोगनाशक, तथा विष्ठा, कफ, मूत्र, वायु और पित्तको कर्षण कर निकाल देनेवाली शरीरको दृढ तथा वीर्यसंपन्न करनेवाली और बलके देनेवाली होती है ॥ २५ ॥

विष्वक्स्थितं दोषचयं निरस्य सर्वान्विकाराञ्छमयेन्निरूहः ।

देहे निरूहेण विशुद्धमार्गे संस्नेहनं वर्णबलप्रदश्च ॥ २६ ॥

निरूहण वस्ति सम्पूर्ण देहके दोषोंको निकालकर सम्पूर्ण व्याधियोंको शान्त करदेती है, निरूहण वस्ति द्वारा शरीर शुद्ध होनेपर यदि स्नेह प्रयोग कियाजाय तो वर्ण और बलकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥

अनुवासनके गुण।

न तैलदानात्परमस्ति किञ्चिद्द्रव्यं विशेषेण समीरणार्ते ।

स्नेहाद्धि रौक्ष्यं लघुतां गुरुत्वादौष्ण्याच्च शैत्यं पवनस्य हत्वा ॥ २७॥

तैलं दधत्याशु मनःप्रसादं वीर्य्यं बलं वर्णमथाग्निपुष्टिम् ।

मूले निषिक्ते हि यथा द्रुमः स्यान्नीलच्छदः कोमलपल्लवाग्रः॥२८॥

काले महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नरः स्यादनुवासनेन ।

अपत्यसन्तानविवृद्धकारी काले यशस्वी बहुकीर्त्तिमांश्च॥२९॥

अनुवासनद्वारा तैलका प्रयोग करनेके समान और कोई भी द्रव्य वायुको नष्ट करनेवाला नहीं है। तैल अपने स्नेहभावसे रूक्षताको और गुरुतासे वायुके हलकेपनको तथा उष्णभावसे शीतताको हरकर मनको शीघ्र प्रसन्नता करनेवाला है एवं वीर्य, बल, वर्ण और जठराग्निको पुष्ट करनेवाला है। जैसे वृक्षकी जडमें जल सींचनेसे वृक्ष हरे कोमल पत्रों और शाखाओंसे युक्त होकर समयपर महान् और पुष्प फलोंसे संपन्न होजाता है। उसी प्रकार अनुवासन द्वारा विधिवत् तैलका प्रयोग करनेसे मनुष्य भी संतान आदि युक्त बलवान् और यशस्वी तथा कीर्तिमान् होजाता है॥

स्तब्धाश्च ये संकुचिताश्च येऽपि ये पङ्गवो येऽपि च रुग्णभग्नाः ।

येषाञ्च शाखासु चरन्ति वाताः शस्तो विशेषेण हितेषु वस्तिः ॥ ३०॥

जो मनुष्य वायुसे स्तब्ध, संकुचित, पंगु, रुग्ण और भग्न होगये हैं, तथा जिनके शरीरमें सम्पूर्ण शाखाओंमें वायु संचार करती है, उन मनुष्योंको निरूहण वस्तिका प्रयोग विशेषरूपसे हितकारी है ॥ ३० ॥

आध्मापने विग्रथिते पुरीषे शूले च भक्तानभिनन्दने च ।
एवंप्रकाराश्च भवन्ति कुक्षौ ये चामयास्तेषु च वस्तिरिष्टः ॥ ३१ ॥

जिन मनुष्योंको अफारा और मलका गांठदार होना, शूल, वातजनित अन्नमें अरुचि तथा इसी प्रकारके अनेक रोग कुक्षिमें हों तो ऐसे मनुष्योंको वस्तिप्रयोग करना हितकारक है ॥ ३१ ॥

याश्च स्त्रियो वातकृतोपसर्गाद्गर्भं न गृह्णन्ति नृभिः समेताः ।
क्षीणेन्द्रिया ये च नराः कृशाश्च तेषाञ्च वस्तिः परमः प्रदिष्टः॥ ३२॥

जो स्त्रियें वायुके कियेहुए उपसर्गसे यथोचित रीतिपर पुरुष संग करनेपर गर्भको धारण नहीं करतीं तथा जो मनुष्य क्षीण इन्द्रिय और कृश हैं उनको भी वस्तिकर्म अत्यंत हितकारक कहा है ॥ ३२ ॥

उष्णाभिभूतेषु वदन्ति शीताञ्छीताभिभूतेषु तथा सुखोष्णान् ।
तत्प्रत्यनीकौषधसंप्रयुक्तान् सर्वत्र बस्तीन् प्रविभज्य युञ्ज्यात् ॥ ३३॥

शीतप्रधान रोगोंमें सुखोष्ण द्रव्योंसे वस्ति प्रयोग करना चाहिये । और उष्ण रोगोंमे शीतवीर्य द्रव्योंसे वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है । इस प्रकार सुखोष्णवीर्य द्रव्योंसे सम्पूर्ण शीतरोगोंमें और शीतप्रधान द्रव्योंसे संपूर्ण पित्तजनित रोगोंमें वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ३३ ॥

शोधनीय रोगोंमें बृंहणका निषेध ।

न बृंहणीतान्विदधीत वस्तीन्विशोधनीयेषु गदेषु वैद्यः ।
कुष्ठप्रमेहादिषु मेदुरेषु नरेषु ये चापि विशोधनीयाः ॥ ३४ ॥

कुष्ठ प्रमेह आदि रोगोंमें तथा मेदसंश्लिष्ट रोगोंमें एवं अन्य भी जो संशोधन करनेके योग्य हैं उन शोधनीय रोगोंमे वैद्य बृंहण वस्तिका प्रयोग न करे । इन सबमें शोधन करनाही हित होता है । शोधनयोग्य रोगोंमें बृंहणका प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारसे रोगोंकी वृद्धि होती है ॥ ३४ ॥

संशोधनके अयोग्य रोगी ।

क्षीणक्षतानां न विशोधनीयान्न शोषिणां नो भृशदुर्बलानाम् ।
न मूर्च्छितानाञ्च न शोधितानां येषाञ्च दोषेषु निबद्धवायुः ॥ ३५ ॥

क्षीण, क्षत और शोषरोगसे पीडित मनुष्यको, मूर्च्छासे पीडित मनुष्यको और जिन रोगियोंको शोधन करचुके हैं तथा जिसके दोषोंमें वायुका प्रबल संबंध नहीं है ऐसे मनुष्योंको संशोधनवस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

वातजरोगोंमें वस्तिकर्मकी श्रेष्ठता ।

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा मर्मोर्ध्वसर्वावयवाङ्गजाश्च ।
ये सन्ति तेषां न तु कश्चिदन्यो वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥ ३६ ॥
विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानां विक्षेपसंहारकरः स यस्मात् ।
तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्यद्वस्तेर्विना भेषजमस्ति किञ्चित् ।
तस्माच्चिकित्सार्द्धमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपि वस्तिमेके ॥ ३७ ॥

जो रोग शाखागत, कोष्ठगत, मर्मस्थानगत, ऊर्ध्वजत्रुगत सर्वांग तथा शरीरके किसी एक अवयवमें होते हैं इन सबकी उत्पत्तिका कारण वायुही होता है । तथा विष्ठा, मूत्र और पित्तादि दोषोंका संचय, विक्षेप और संहार करनेवाली भी वायुही होती है उस बढीहुई वायुकी शान्तिके लिये वस्तिकर्मसे बढकर और कोई औषधि नहीं है । इसलिये वस्तिकर्मको चिकित्साका आधा भाग कहते हैं । कोई वस्तिकर्मको ही संपूर्णरूपसे एकमात्र चिकित्सा मानते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

उत्तम वस्तियोग ।

नाभिप्रदेशञ्च कटिञ्च गत्वा कुक्षिं समालोड्य पुनश्च पार्श्वम् ॥ ३८ ॥
संस्नेह्य कायं शिथिलांश्च कृत्वा दोषान् पुरीषं ग्रथितं विमथ्य ।
संसक्तवेगः सपुरीषदोषः प्रत्यागतो वस्तिरिति प्रशस्तः ॥ ३९ ॥

जो वस्तिका प्रयोग कियाहुआ नाभि, कमर, पसली और कूखमें पहुंचकर तथा दोनों पार्श्वभागोंमें आन्दोलन करके शरीरको स्निग्ध कर दोषोंको शिथिल करडाले और दोषोंके संचयको तथा बंधेहुए मलको मथन करके अव्याहत अर्थात् सरल रीतिसे मलको और दोषोंको लेकर निकलजाये उस वस्तिके प्रयोगको श्रेष्ठ जानना ॥

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं रुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि ।
रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च बलञ्च तत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥ ४० ॥

निरूहण वस्तिके ठीक प्रयोग होजानेसे मल, मूत्र और अधोवायुका शुद्धरीतिपर परित्याग होताहै अन्नपर रुचि और जठराग्निकी वृद्धि होती है तथा आमाशय, ग्रहणी, पक्वाशय और वस्ति स्थानमें हलकापन प्रतीत हो, रोगकी शान्ति हो, शरीरके संपूर्ण स्वभाव प्रकृतिस्थ हों तथा बलकी वृद्धि हो यह लक्षण होते हैं ॥ ४० ॥

निरूहणके असम्यक्प्रयोगके लक्षण ।

स्याद्रुक् शिरोहृद्गुदकुक्षिलिङ्गे शोफः प्रतिश्यायविकर्तिके च ।
हृल्लासिका मारुतमूत्रसङ्गः श्वासो न सम्यक् च निरूहिते स्यात् ॥ ४१ ॥

निरूहण वस्तिका ठीक प्रयोग न होनेसे मस्तक, हृदय, गुदा, कुक्षी और लिंगमें पीडा हो, सूजन, प्रतिश्याय और पेटमें कतरनेकीसी पीडा, हृल्लास, वात और मूत्रका विबंध तथा श्वास यह लक्षण होते हैं ॥ ४१ ॥

लिङ्गं यदेवातिविरेचितस्य भवेत्तदेवातिनिरूहितस्य ॥ ४२ ॥

जो लक्षण अत्यंत विरेचन होनेसे अर्थात् विरेचनके अतियोगसे होते हैं सोई निरूहणके अतियोगके लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥

अनुवासनके सुयोगके लक्षण।

प्रत्येत्य सक्तं सशकृच्च तैलं रक्तादिबुद्धीन्द्रियसंप्रसादः।
स्वप्नानुवृत्तिर्लघुता बलञ्च सृष्टाश्च वेगाः स्वनुवासिते स्युः ॥ ४३ ॥

अनुवासनका सम्यक् प्रयोग होनेसे तेल विना किसी रुकावटके सुखपूर्वक विष्ठाके साथ निकल आवे, रक्तादि धातुयें, बुद्धि, इन्द्रिय, मन यह सब प्रसन्न हों, सुखपूर्वक नींद आवे, शरीरमें हलकापन, बल और मूत्रादि वेगोंकी सुखपूर्वक ठीक प्रवृत्ति हो यह सम्यक् अनुवासनके लक्षण हैं ॥ ४३ ॥

अनुवासनके अयोगके लक्षण।

अधःशरीरोदरबाहुपृष्ठपार्श्वेषु रुग्रूक्षखरञ्च गात्रम्।
ग्रहश्च विण्मूत्रसमीरणानामसम्यगेतान्यनुवासिते स्युः ॥

अनुवासनका ठीक प्रयोग न होनेसे शरीरके अधोभाग, उदर, बाहु, पीठ और पार्श्वोंमें शूल हो, शरीर रूक्ष और कठोर हो, मल, मूत्र और वायुका बंधसा होजाय यह असम्यक् अनुवासनके लक्षण हैं।

अनुवासनके अतियोगके लक्षण।

हृल्लासमोहक्लमसादमूर्च्छाविकर्तिका चाप्यनुवासिते स्युः ॥ ४४ ॥

हृल्लास, मोह, क्लम, अंगोंका सुन्नसा होजाना, मूर्च्छा, कतरनेकीसी पीडा यह अनुवासनके अतियोगके लक्षण हैं ॥ ४४ ॥

अनुवासनके ठहरनेका समय।

यस्येह यामाननुवर्त्तते त्रीन् स्नेहान्नरः स्यात्सविशुद्धदेहः।
आश्वागतेऽन्यस्तु पुनर्विधेयः स्नेहो न संस्नेहयति ह्यतिष्ठन् ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें अनुवासनका स्नेह ३ प्रहर ठहरकर फिर निकले वह विशुद्धदेह होता है अर्थात् अनुवासनका स्नेह शरीरमें ३ प्रहर ठहरनेसे देहको शुद्ध बनादेता है। और यदि अनुवासनका तेल शीघ्र लौटआवे तो उसको फिर अनुवासन वस्तिका प्रयोग करना चाहिये क्योंकि वस्तिका स्नेह शरीरमें न ठहरनेसे शरीरको चिकना नहीं कर सकता ॥ ४५ ॥

वस्तियोंकी संख्या और उनके प्रयोग।

त्रिंशत्स्मृताः कर्मसु बस्तयो हि कालस्ततोऽर्द्धेन ततश्च योगः।
सान्वासना द्वादश वै निरूहाः प्राक्स्नेह एकः परतश्च पञ्च ॥ ४६ ॥

कर्म वस्तिमें ३० वस्तियोंका प्रयोग कहा है। कालवस्तिमें १५ वस्तियोंका प्रयोग होता है। एवं योगवस्तिमें आठ वस्तियोंका प्रयोग होता है। इन वस्तियोंके प्रयोगका यह क्रम है-स्नेहन और स्वेदनके पश्चात् एक स्नेहवस्तिका प्रयोग करना चाहिये। फिर वमन करावे। वमनके पीछे फिर एक स्नेहवस्ति करे। फिर विरेचन देवे। विरेचनके अनन्तर समयपर फिर स्नेहवस्ति प्रयोग करे। तदनन्तर एकबार निरूहणवस्ति फिर उसके अनन्तर समयपर स्नेहवस्तिका प्रयोग करे। इस प्रकार १२ निरूहण और १२ अनुवासन वस्तियें करे। दोनों मिलाकर २४ हुईं। इसके अनन्तर ५ स्नेहवस्ति करे। एक स्नेहवस्ति सबसे प्रथम प्रयोग करना चाहिये इस प्रकार सब मिलाकर ३० वस्तियोंको कर्मवस्ति कहते हैं। परन्तु इन ३० वस्तियोंका प्रयोग पेयादिक्रम पालनकर यथोचित समय समयमें किया जाता है लगातार एकहीबार नहीं किया जाता ॥ ४६ ॥

काले त्रयोऽन्तः पुरतस्तथैकः स्नेहा निरूहान्तरिताश्च षट्सु।
योगे निरूहास्त्रय एव देयाः स्नेहाश्च पञ्चैव परादिमध्याः ॥ ४७ ॥

कालवस्ति वर्षा आदि कालमें वातादि निवृत्त करनेके लिये प्रयुक्त करना चाहिये। कालवस्तिका यह क्रम है कि, प्रथम एक स्नेहवस्ति करे। फिर समयानुसार निरूहण वस्ति करे। फिर उचित समयपर स्नेहवस्ति करे। इस प्रकार ६ निरूहण और छः अनुवासन, दोनों मिलकर १२ और उसके उपरांत तीन स्नेहवस्तियोंका प्रयोग करना। यह सब मिलाकर १५ हुए। इन १५ वस्तियोंके प्रयोगको कालवस्ति कहते हैं। योगवस्तिमें प्रथम १ स्नेहन, फिर १ निरूहण इसप्रकार ३ निरूहण और ३ स्नेहन वस्ति प्रयुक्त करे। तथा १ प्रथम और १ सबके पीछे यह दो स्नेहन मिलाकर ८ वस्तिका प्रयोग योगवस्ति कहाजाताहै। योगवस्ति प्रायः वाजीकरणके लिये प्रयोग की जाती है ॥ ४७ ॥

त्रीन्पञ्च वाहुश्चतुरोऽथ षड्वा वाताधिकेभ्यस्त्वनुवासनीयान्।
स्नेहान् प्रदायाशु भिषग्विदध्यात्स्रोतोविशुद्ध्यर्थमतो निरूहान् ॥४८॥

वायुकी अधिकतामें ३, ४, ५, अथवा ६ स्नेहवस्ति देकर स्रोतोंकी शुद्धिकी लिये निरूहण वस्तियोंका प्रयोग करे ॥ ४८ ॥

शिरोविरेचनक्रम।

विशुद्धकायस्य ततः क्रमेण स्निग्धन्तु तैः स्वेदितमुत्तमाङ्गम्।

विरेचयेत्त्रिर्द्विरथैकशो वा बलं समीक्ष्य त्रिविधं मलानाम् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार वमन, विरेचन और बस्तिकर्मसे देह शुद्ध होनेपर ७ दिन बीचमें डालकर पेयादि क्रमका पालन करता हुआ समयपर मस्तकको स्निग्ध और स्वेदन करके फिर दोषोंका त्रिविध बल विचारकर तथा रोगीकी अवस्था विचारकर तीन बार अथवा दोबार या एकबार शिरोविरेचनका प्रयोग करे। शिरोविरेचन नस्यको तीनबार प्रयोग करना उत्तम मात्रा कही जाती है। दोबार मध्यम और एकबार अधम मात्रा मानी जाती है ॥ ४९ ॥

शिरोविरेचनके योग, अयोग, अतियोग।

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणां स्रोतोविशुद्धिश्च भवेद्विशुद्धे।
गलोपलेपः शिरसो गुरुत्वं निष्ठीवनञ्चाप्यथ दुर्विरिक्ते ॥ ५० ॥

छातीमें, शिरमें तथा इन्द्रियोंमें हल्कापन और शुद्धता तथा मुख, नासिका आदि छिद्रोंका विशुद्ध होना यह शिरोविरेचनके उत्तम प्रयोग होनेका लक्षण हैं। और गलेका भारी और लिपासा होना, शिरमें भारीपन, बारंबार मुखसे थूक आना यह शिरोविरेचनके ठीक प्रयोग न होनेके लक्षण हैं ॥ ५० ॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणार्त्तितोदश्चात्यर्थशुद्धेस्तिमिरञ्च पश्येत्।
स्यात्तर्पणं तत्र मृदु द्रवञ्च स्निग्धस्य तीक्ष्णं तु पुनर्न योगे ॥ ५१ ॥

शिर, नेत्र, कनपटी और कानोंमें पीडा, तोद, आंखोंके आगे अंधकार आना यह शिरोविरेचनके अतियोगके लक्षण हैं। शिरोविरेचनके अतियोग होनेसे उपद्रवोंकी शांतिके लिये तर्पण तथा मृदु, द्रव और स्निग्ध तर्पणोंका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु ऐसे समय तर्पणादि योगमें किसी प्रकारके तीक्ष्ण द्रव्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ५१ ॥

पंचकर्मके गुण और परहेजका समय।

इत्यातुरस्वस्थविधिः प्रयोगे बलायुषोर्वृद्धिकृदामयघ्नः।
कालस्तु वस्त्यादिषु याति यावांस्तावान् भवेद् द्विः परिहारकालः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार रोगी अथवा स्वस्थ मनुष्योंको पंचकर्मका प्रयोग करनेसे बल और आयुकी वृद्धि होती है तथा संपूर्ण रोगोंका नाश होता है। इन वमन, विरेचन आदि पंचकर्ममें जितना समय लगे उससे दुगुने दिनोंतक पेयादिक्रमसे पथ्यपूर्वक रहना चाहिये ॥ ५२ ॥

पंचकर्मके अनन्तर त्याज्य।

अत्याशनस्थानवचांसि यानं स्वप्नं दिवा मैथुनवेगरोधान्।
शीतोपचारातपशोकरोषांस्त्यजेदकालाहितभोजनं च ॥ ५३ ॥

पंचकर्मके अनन्तर अत्यन्त भोजन करना, बहुत बैठे रहना, अधिक बोलना, अधिक घूमना वा सवारीपर चढना, दिनमें सोना, मैथुन करना, वेगोंका रोकना, शीतल उपचार, धूप, शोक, क्रोध, वेसमय भोजन करना और अहित भोजन इन सब वस्तुओंको त्यागदेना चाहिये ॥ ५३ ॥

वस्तिके सुखपूर्वक प्रवेश न होनेके कारण।

बद्धे प्रणीते विषमे च नेत्रे मार्गे तथार्शःकफविड्विबन्धे।

न याति वस्तिं न सुखं निरेति दोषावृतोऽल्पो यदि वाल्पवीर्य्यः॥५४॥

वस्तिका मुख बंद होनेसे अथवा वस्ति (पिचकारी) विषमभावसे प्रवेश करनेसे, बवासीरके मस्सोंद्वारा गुदाकी वली रुकीहुई होनेसे अथवा कफ, विष्ठा आदिके बंधसे गुदामार्ग रुकाहुआ होनेसे वस्ति सुखपूर्वक प्रवेश नहीं होसकती और सुखपूर्वक बाहर नहीं निकलसकती तथा दोषोंद्वारा वस्तिका मार्ग बन्द होजानेसे अथवा वस्तिद्रव्य अल्प और निर्वीर्य होनेसे भी वस्ति सुखपूर्वक कार्य नहीं कर सकती॥५४॥

वस्तिके द्रव्यके लौट आनेका कारण।

प्राप्ते तु वर्चोऽनिलमूत्रवेगे वाते विवृद्धेऽल्पबले गुदे वा।

अत्युष्णतीक्ष्णश्च मृदौ प्रकोष्ठे प्रणीतमात्रः पुनरेति वस्तिः ॥ ५५ ॥

मल, मूत्र और अधोवायुका वेग उपस्थित होनेसे, वायुकी अत्यन्त वृद्धि होनेसे, गुदाकी वली निर्बल और शिथिल होनेसे,कोठेके अत्यन्त नरम होनेसे तथा वस्तिद्रव्य अत्यन्त गरम और तीक्ष्ण होनेसे प्रयोग कियाहुआ वस्तिद्रव्य तत्काल बाहर आताहै।

अपनी २ औषधोंसे भी रोगोंके शांत न होनेका कारण।

मेदःकफाभ्यामनिलो निरुद्धः शूलाङ्गसुप्तिश्वयथून् करोति।

स्नेहन्तु युञ्जन्नबुधस्तु तस्मै संवर्द्धयत्येव हि तान्विकारान् ॥ ५६ ।

जब वायु बढेहुए मेद और कफसे रुकजाता है उस समय शूल, अंगोंका सोन और सूजन होतीहै। ऐसे समय मूर्ख वैद्य वातविकार समझकर जो स्नेह वस्तिक प्रयोग करताहै तो यह शूल आदि विकार अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ५६ ॥

रोगास्तथान्येऽप्यवितर्क्यमाणाः परस्परेणावगृहीतमार्गाः।

सन्दूषिता धातुभिरेव चान्यैः स्वैर्भेषजैर्नोपशमं व्रजन्ति ॥ ५७ ॥

इस प्रकार एक दोषका मार्ग अन्य दोषसे रुकजानेपर और भी इसी प्रकारके अनेक रोग उत्पन्न होजातेहैं। उन सब रोगोंका यथार्थ निश्चय करना कठिन होताहै। ऐसे समय दोष धातुओंके द्वारा रुद्धमार्ग होनेसे अथवा परस्पर संरुद्ध मार्ग होनेसे अपनी २ औषध करनेपर भी शांत नहीं होते ॥ ५७ ॥

सर्वञ्च रोगप्रशमाय कर्म्म हीनातिमात्रं विपरीतकालम्।
मिथ्योपचाराच्च न तं विकारं शान्तिं नयेत्पथ्यमपि प्रयुक्तम् ॥ ५८ ॥

यदि रोगकी औषधका यथोचित प्रयोग न कियाजाय अथवा हीनयोग, अतियोग, वा मिथ्यायोग अथवा विपरीतभावसे, वा विपरीतकालमें प्रयोग कियाजाय तो पथ्य सेवन करनेपरभी रोगकी शान्ति नहीं होती ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकः—प्रश्नानिमान्द्वादश पञ्चकर्माण्युद्दिश्य सिद्धाविह कल्पनायाम्।
प्रजाहितार्थं भगवान्महार्थान् सम्यग् जगादर्षिवरोऽत्रिपुत्रः॥५९॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने कल्पना-
सिद्धिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अब यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि, इस कल्पनासिद्धि नामक अध्यायमें ऋषियोंमें श्रेष्ठ आत्रेय भगवान्ने पंचकर्म विषयक इन १२ प्रश्नोंके महान् अर्थवाले उत्तरोंको प्रजाके हितके लिये भली प्रकार वर्णन कियाहै ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां कल्पनासिद्धिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।



अथातः पञ्चकर्मीयसिद्धिं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम पंचकर्मीयसिद्धिनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

येषां यस्माच्च कर्माण्यग्निवेश ! न कारयेत्।
येषाञ्च कारयेद्यानि तत्सर्वं संप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! जिन मनुष्योंको पंचकर्म कराना नहीं चाहिये और जिनको पंचकर्म कराना उचित है अब उन सबका कथन करते हैं ॥ १ ॥

पंचकर्मके अयोग्य मनुष्य।

चण्डः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च।
सद्वैद्यनृपतिद्वेष्टा तद्द्विष्टः शोकपीडितः ॥ २ ॥

याहच्छिको मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः ।
वैरी वैद्याभिमानी च श्रद्धाहीनः सशंकितः ॥ ३ ॥
भिषजामविधेयश्च नोपक्रम्यो भिषग्विदा ।
एतानुपचरन्वैद्यो बहून्दोषानवानुयात् ॥ ४ ॥

क्रोधी, खोटा, साहस करनेवाला, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सद्वैद्यसे वैर रखनेवाला, राजद्रोही अथवा राजा जिससे विरोध रखता हो वा वैद्यसे जिसका द्वेष हो शोकपीडित, मनमानी बातोंको करनेवाला, मरनेकी इच्छा रखनेवाला, इन्द्रियोंसे हीन, वैरी, अपने आपको वैद्य माननेवाला, श्रद्धाहीन, वैद्यके हरएक कर्ममें शंका करनेवाला ऐसे मनुष्योंकी वैद्यको चिकित्सा करना योग्य नहीं । ऐसे मनुष्योंकी चिकित्सा करनेसे वैद्यको अनेक दोष प्राप्त होते हैं ॥ २-४ ॥

एभ्योऽन्ये समुपक्रम्या नराः सर्वैरुपक्रमैः ।
अवस्थां प्रविभज्यैषां वर्ज्यं कार्य्यं च वक्ष्यते ॥ ५ ॥

इनके सिवाय और मनुष्य सब प्रकार चिकित्सा करनेके योग्य होते हैं । अब वमन, विरेचनादि अवस्थाभेदसे जो त्याज्य रोगी हैं उनका वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

वमनके अयोग्य मनुष्य ।

अच्छर्दनीयास्तावत्क्षतक्षीणातिस्थूलकृशबालवृद्धदुर्बलश्रान्तपिपासितक्षुधितकर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ताप्रसक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृतकोष्ठदुश्छर्दनोर्ध्वरक्तपित्तप्रसक्तच्छर्द्यूर्ध्ववातास्थापितानुवासितहृद्रोगोदावर्त्तमूत्राघातप्लीहगुल्मोदराष्ठीलास्वरोपघाततिमिरशिरःशङ्खकर्णाक्षिपार्श्वशूलार्त्ताः ॥ ६ ॥

क्षतक्षीण, अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, थकाहुआ, प्यासा अथवा क्षुधासे पीडित, अत्यंत कामके करनेसे, भारके उठानेसे थका हुआ, उपवास कियाहुआ, मैथुन, अध्ययन, व्यायाम और चिन्ता इनसे व्याकुल, दुर्बल, गर्भवती, सुकुमार, जिसका कोठा वमन करनेमें अति कठिनतासे प्रवृत्त होसके जिसको कष्टसे वमन होसकती हो । ऊर्ध्वगत रक्तपित्तवाला, जिसको वमनका रोग हो, ऊर्ध्ववातग्रस्त, आस्थापन कियाहुआ अनुवासित, हृद्रोगयुक्त तथा उदावर्त्त,मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म उदररोग, वाताष्ठीला, स्वरभंग, तिमिररोग, शिरोरोग, कनपटीके रोग, कर्णरोग,नेत्ररोग, पसलीके रोग और शूलरोग इन रोगोंसे युक्त मनुष्यको वमन नहीं कराना चाहिये । यह उपरोक्त संपूर्ण मनुष्य वमन करानेके योग्य नहीं हैं ॥ ६ ॥

इनको वमनकरानेके दोष।

तत्र क्षतस्य च भूयः क्षणनाद्रक्तातिप्रवृत्तिः स्यात्। क्षीणातिस्थूलकृशबालवृद्धदुर्बलानामौषधैर्बलासहत्वात्प्राणोपरोधः। श्रान्तपिपासितक्षुधितानाञ्च तद्वत्। कर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ताप्रसक्तक्षामाणां रौक्ष्याद्वातरक्तच्छेदक्षतभयं स्यात्। गर्भिण्या गर्भव्यायामादामगर्भभ्रंशाच्च दारुणरोगप्राप्तिः। सुकुमारस्य हृदयस्य विकर्षणादूर्ध्वमधो वा रुधिरातिप्रवृत्तिः। संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयोरतिमात्रप्रवाहनाद्दोषाः समुत्क्लिष्टा ह्यन्तःकोष्ठे जनयन्त्यन्तर्वीसर्पं स्तम्भजाड्यं वैचित्र्यं मरणं वा। ऊर्ध्वरक्तपित्तस्य उदानमुत्क्षिप्य प्राणान् हरेद्रक्तञ्चातिप्रवर्त्तयेत्। प्रसक्तच्छर्देस्तु तद्वदूर्ध्ववातास्थापितानुवासितानामूर्ध्ववातातिप्रवृत्तिर्हृद्रोगिणो हृदयोपरोधः। उदावर्त्तिनो घोरतर उदावर्त्तः स्याच्छीघ्रतरहन्ता। मूत्राघातादिभिरार्त्तानां तीव्रतरः शूलप्रादुर्भावः। तिमिराणां तिमिरातिवृद्धिः शिरःशूलादिषु शूलातिवृद्धिः। तस्मादेते न वाम्याः॥ ७॥

इनमें उरःक्षत रोगीको वमन करानेसे उरक्षतरोग अर्थात् छातीके घाव अधिक बढते हैं। और घावोंके खुलनेसे मुखद्वारा रक्तकी प्रवृत्ति होने लगती है। क्षीण, अतिस्थूल, कृश, बालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्य वमनके वेगको सम्हार नहीं सकते इसलिये वमन इन मनुष्योंके प्राणोंका सहसा उपरोध करता है। श्रान्त, प्यासयुक्त और क्षुधायुक्तोंको भी वमन करानेसे यही दोष होतेहैं। काम करनेसे, भारके उठानेसे, रास्ता चलनेसे, उपवास करनेसे, मैथुनसे, अध्ययन करनेसे, व्यायाम करनेसे, चिन्तासे चिन्तित होनेसे जो मनुष्य व्याकुल हैं अथवा इन उपरोक्त कर्मोंसे युक्त हैं तथा दुर्बल हैं इनको वमन कराया जावे तो रूक्षताके कारण वायु और रक्तका कोप तथा कण्ठ आदि स्थानोंमें छेद वा क्षत होनेका भय होताहै। गर्भिणीको वमन करानेसे गर्भव्यापी रोग अथवा कच्चे गर्भका गिरजाना वा ऐसेही अन्य दारुणरोग उत्पन्न होते हैं। सुकुमार मनुष्योंको वमन करानेसे उनका हृदय खिंचजानेसे ऊर्ध्वभागसे और अधोभागसे रक्तकी प्रवृत्ति होने लगती है। जिनका कोष्ठ सहजही उत्क्लेशित नहीं होसकता जिनको कष्टसे वमन होता है उनको वमन करानेसे आमाशयका अतिमात्र खिंचावसा होकर वमन तो नहीं होता परन्तु आमाशयमें दोष उत्क्लेशित होकर विसर्प, स्तम्भ, जडता, चित्तका बिगडना तथा मृत्युतक कर देते हैं। ऊर्ध्वगत रक्त-

पित्तमें वमन करानेसे उदानवायु उत्क्षेपित होकर रक्तकी अधिक प्रवृत्ति और प्राण नाश होता है। प्रसक्त वमी रोगीको वमन करानेसे इसी प्रकार उदानवायुका कोप होता है। ऊर्ध्ववातग्रस्त आस्थापन कियाहुआ और अनुवासन कियेहुए रोगीको वमन करानेसे ऊर्ध्ववातकी अधिक प्रवृत्ति होती है। हृद्रोगमें वमन करानेसे हृदयका उपरोध होता है। उदावर्त्तमें वमन करानेसे घोरतर उदावर्त्त होकर शीघ्र प्राणोंका नाश होता है। मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला और स्वरभंगमें वमन करानेसे अत्यन्त शूलकी उत्पत्ति होती है। तिमिर आदि रोगमें वमन करानेसे तिमिर रोगकी वृद्धि होती है। मस्तकशूल तथा कनपटी, कान, नेत्र अथवा पार्श्वशूलमें वमन कराया जाय तो शूलकी अत्यन्त वृद्धि होती है। इसलिये इन रोगोंमें वमन नहीं कराना चाहिये ॥ ७ ॥

इनमेंभी वमनकी आज्ञा।

सर्वेष्वपि खलु एतेष्वपि विषगरविरुद्धाभ्यवहारामकृतेषु अप्रतिषिद्धं शीघ्रकारित्वाद्दोषाणामिति ॥ ८ ॥

जिन २ रोगोंमें वमन कराना नहीं चाहिये यदि उनको विषजनित, गरजनित, विरुद्ध भोजनजनित अथवा आंवजनित विकार उपस्थित हों और उनका वमनके सिवाय और शीघ्र उपाय न होसकता हो तो ऐसे समय अवम्य मनुष्योंको भी वमन करानेका निषेध नहीं है। क्योंकि यह विष आदि विकार आशुकारी होनेसे शीघ्र प्राणोंको नष्ट कर देते हैं ॥ ८ ॥

वमनकरानेके योग्य रोगी।

शेषास्तु वाम्याः। पीनसकुष्ठनवज्वरराजयक्ष्मकासश्वासगलग्रहगलगण्डश्लीपदमेहमन्दाग्निविरुद्धाजीर्णान्नविषूचिकालसकविषगरपीतदष्टदिग्धविद्धाधःशोणितपित्तकफप्रसेकदुर्नामहृल्लासारोचकाविपाकापच्यपस्मारोन्मादातिसारशोषपाण्डुरोगमुखपाकदुष्टस्तन्यादयः श्लेष्मव्याधयो विशेषेण रोगाध्यायोक्ताश्च तेषु हि वमनं प्रधानतममित्युक्तं केदारसेतुभेदे शाल्यादिशोषदोषविनाशवत् ॥ ९ ॥

उपरोक्त अवम्य अर्थात् जिनको वमन करानेका निषेध है उनके सिवाय और मनुष्य वमन करानेके योग्य होते हैं तथा पीनस, कुष्ठ, नवज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलग्रह, गलगण्ड, श्लीपद, प्रमेह, मंदाग्नि, विरुद्धभोजन, अजीर्णान्न, विषूचिका, अलसक, विषपान, गरयुक्त, विषयुक्त जानवरका काटा हुआ, विषयुक्त शस्त्रसे छिदाहुआ, अधोगत रक्तपित्त, मुखसे कफका गिरना, अर्शरोग, हृल्लास, अरुचि,

आविपाक, अपची, मृगी, उन्माद, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग, मुखपाक, दुष्टस्तन्य आदि धायके रोग, कफके रोग और विशेषकर सूत्रस्थानके महारोगाध्यायमें कहेहुए कफजनित २० रोग इन सबमें विशेषरूपसे वमनका करनाही हितकारक है। जैसे खेतका बाँध टूट जानेसे खेतके संपूर्ण जलके निकलनेपर धान आद संपूर्ण खेती नष्ट होजाती है उसी प्रकार वमनद्वारा संपूर्ण दोष निकल जाते हैं ॥ ९ ॥

विरेचनके अयोग्य मनुष्य।

अविरेच्यास्तु–सुभगक्षतगुदमुक्तनालाधोभागरक्तपित्तविलंघितदुर्ब-लेन्द्रियाल्पाग्निनिरूढकामादिव्यग्राजीर्णनवज्वरमदात्ययिताध्मातश-ल्यार्दिताभिहतातिस्निग्धरूक्षदारुणकोष्ठाः क्षतादयश्च गर्भिण्यन्ताः॥ १०॥

सुकुमार, जिनकी गुदामें घाव हो, जिनका मलद्वार शिथिल हो वा कांच निकलती हो, अधोगत रक्तपित्त, उपवाससे कर्षित दुर्बल इन्द्रिय, बहुत अल्प अग्निवाला जिसको निरूहण किया हो, कामादिकोंसे व्यग्रचित्त, अजीर्णयुक्त तथा नवीनज्वर, मदात्यय, अफारा, शल्यपीडित, आहत, अतिस्निग्ध, अतिरूक्ष, दारुणकोष्ठ, तथा क्षत, क्षीण, अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, भ्रान्तचित्त, प्यासयुक्त, क्षुधायुक्त, कर्म, भार और मार्गसे थकाहुआ, उपवाससे दुर्बल, मैथुन, अध्ययन और व्यायामसे थकाहुआ चिन्तायुक्त, क्षाम और गर्भवती स्त्री इन सबको विरेचन नहीं कराना चाहिये ॥ १० ॥

इनके विरेचन करानेके दोष।

तत्र सुभगस्य सुकुमारोक्तो वमनदोषः स्यात्। क्षतगुदस्य क्षते गुदे वायुः प्राणोपरोधकरीं वरां रुजं जनयेत्। मुक्तनालमतिप्रवृत्त्या हन्यात्। अधोभागरक्तपित्तिनाञ्च तद्वदेव विलंघितदुर्बलेन्द्रिया-ल्पाग्निनिरूढा औषधवेगं न ते सहेरन्। कामादिव्यग्रमनसो न प्रव-र्त्तते कृच्छ्रेण वा प्रवर्त्तमानमधोगदोषान्कुर्य्यादजीर्णिन आमदोषः स्यात्। नवज्वरस्य अविपक्वान् दोषान्न निर्हरेद्वातमेव च कोपयेत्। मदात्ययितस्य मद्यक्षीणे देहे वायुः प्राणोपरोधं कुर्य्यात्। आध्मातस्य आध्मायमानस्य वा पुरीषकोष्ठनिचितो वायुर्विसर्पन् सहसा आनाहं तीव्रतरं मरणं वा जनयेत्। शल्यार्दिताभिहतयोः क्षते वायुराश्रितो जीवितं हिंस्यादतिस्निग्धस्य अतियोगभयं भवेत्। रूक्षस्य वायुरङ्ग-ग्रहं कुर्य्यात्। दारुणकोष्ठस्य विरेचनोद्धता दोषा हृच्छूलपर्वभेदा-

नाहाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छाक्लमाञ्जनयित्वा प्राणान् हन्युः । क्षतादीनां गर्भिण्यन्तानां छर्दनोक्तो दोषः स्यात् । तस्मादेते न विरेच्याः॥ ११॥

सुकुमार मनुष्यको विरेचन करानेसे हृदयका कर्षण होता है । गुदामें घाववालेको विरेचन करानेसे प्राणोंको उपरोध करनेवाली अत्यंत पीडा होती है । शिथिल गुदावालोंको प्राणोंकी हानि होती है। अधोगामी रक्तपित्तमें विरेचन देनेसे रक्तकी अधिक प्रवृत्ति होती है । उपवाससे कृश, दुर्बलेन्द्रिय, अल्पाग्नि और निरूहण करानेके अनन्तर विरेचन देनेसे मनुष्य औषधके वेगको सहन नहीं कर सकता। कामादिसे विभ्रांत पित्तवालेको अधोवेगकी प्रवृत्ति नहीं होती, यदि हो भी तो दोषोंका अधोमार्गमें कोप होजाता है । अजीर्णमें दस्त देनेसे आंवदोपकी उत्पत्ति होती है । नवीन ज्वरमें विरेचन देनेसे दोष कच्चे होनेके कारण नहीं निकलते और वायुका कोप होता है। मदात्ययरोगमें मद्यसे क्षीणदेह होनेसे विरेचन करानेसे वायु प्राणोंका अवरोध करता है । अफारेयुक्त और आध्मायमान मनुष्यको विरेचन देनेसे मलाशयमें स्थित हुआ वायु विसर्पित होकर शीघ्र तीव्र अफारा और मृत्युतकको करता है । तीर आदि लगनेसे और आहत मनुष्यके घावोंमें वायु आश्रित होता है विरेचन करानेसे वह वायु कुपित होकर जीवनको नष्ट करता है । अत्यंत स्निग्धको विरेचन करानेसे विरेचनका अतियोग होजाता है । रूक्ष मनुष्यको विरेचन करानेसे वायु किसी अंगको ग्रहण कर पीडाको उत्पन्न करती है । क्रूर कोष्ठवालेको विरेचन करानेसे उद्धतहुए दोष हृत्शूल, पर्वभेद, अफारा, अंगमर्द, छर्दी, मूर्च्छा और क्लमको उत्पन्न करते हैं तथा प्राणोंको भी नष्ट कर देते हैं । क्षतसे लेकर गर्भिणी पर्यंत जो पहिले कह आये हैं उनको विरेचन करानेसे छर्दीमें कहेहुए दोष उत्पन्न होते हैं इसलिये इन संपूर्ण मनुष्योंको विरेचन नहीं कराना चाहिये ॥ ११ ॥

विरेचनयोग्य मनुष्य ।

शेषास्तु विरेच्याः । कुष्ठज्वरमेहोर्ध्वरक्तपित्तभगन्दरोदरार्शोब्रध्नप्लीहगुल्मार्बुदगलगण्डग्रन्थिविषूचिकालसकमूत्राघातक्रिमिकोष्ठविसर्पपाण्डुरोगशिरःपार्श्वशूलोदावर्त्तनेत्रास्यदाहहृद्रोगव्यङ्गनीलीकनेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्वासकासकामलापस्मारोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोषतैमिर्य्यारोचकाविपाकच्छर्दिश्वयथूदरविस्फोटकादयः पित्तव्याधयो विशेषेण रोगाध्यायोक्ताश्च एतेषु हि विरेचनं प्रधानतममित्युक्तमग्न्युपशमेऽग्निगृहवत् ॥ १२ ॥

इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको विरेचन कराना चाहिये। तथा कुष्ठ, ज्वर, प्रमेह, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त, भगन्दर, उदररोग, बवासीर, ब्रध्नरोग, प्लीहारोग, गुल्मरोग, अर्बुद, गलगण्ड, ग्रंथिरोग, विषूचिका, अलसक, मूत्राघात, कोष्ठकृमि, विसर्प, पाण्डुरोग, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, उदावर्त्त, नेत्रपीडा, मुखपीडा, हृद्रोग, व्यंग, नीलिका और नेत्रोंके रोग, नासिकारोग, मुखरोग, कानोंके रोग, हलीमक, श्वास, खांसी, कामला, अपस्मार रोग, उन्माद, वातरक्त, योनिरोग, शुक्ररोग, तिमिररोग, अरोचक, अविपाक, छर्दि, सूजन, उदररोग, विस्फोटक आदि रक्ताश्रित रोग तथा सूत्रस्थानके महारोगाध्यायमें कहे हुए पित्तजनित ४० रोग इन सबमें विशेष कर विरेचन देना हितकारी है। जैसे अग्निके शान्त होनेपर अग्निगृह भी स्वयं शान्त होजाता है उसी प्रकार विरेचनद्वारा दोषोंके निकालनेसे शरीरके रोग शान्त होजाते हैं॥ १२॥

आस्थापनके अयोग्य।

अनास्थाप्यास्तु—अजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्लिष्टदोषाल्पाग्नियानक्लान्तातिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तातिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमितविरिक्तक्षतकृतनस्तःकर्म्मक्रुद्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तच्छर्दिनिष्ठीविकाश्वासकासहिक्काबद्धच्छिद्रोदकोदराध्मातालसकाविषूचिकामप्रजातिसारमधुमेहकुष्ठार्त्ताः॥ १३॥

अजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, स्नेह पीयाहुआ, दोषोंके उत्क्लिष्ट होनेपर, अल्पाग्निवाला, घोडा आदि सवारीसे थकाहुआ, अति दुर्बल, भूखा, प्यासा, थकाहुआ, अतिकृश, भात खानेके अनन्तर जल पीकर वमन और विरेचनके अनन्तर, क्षतयुक्त नस्यकर्मके अनन्तर, क्रोधी, भयातुर, उन्मत्त, मूर्च्छित, वमन रोगयुक्त, जिसके मुंहसे बारबार कफ गिरता हो, श्वास रोगी, खांसीयुक्त, हिचकीयुक्त, बद्धोदरवाला, छिद्रोदर, जलोदरयुक्त, अलसकरोग, विषूचिका, आमगर्भा अर्थात् आठ महीनेसे प्रथम गर्भवतीको, अतिसारवालेको तथा मधुमेह और कुष्ठवाले रोगियोंको आस्थापनका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥ १३॥

इनमें आस्थापनके दोष।

तत्र अजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहानां दूष्योदरं मूर्च्छा श्वयथुर्वा स्यात्। उत्क्लिष्टदोषमन्दाग्न्योररोचकस्तीव्रः। यानक्लान्तस्य क्षोभव्यापन्नो वस्तिराशु देहं शोषयेत्। अतिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तानां पूर्वोक्तो दोषः स्यात्। अतिकृशस्य कार्श्यं पुनर्जनयेत्। पीतोदकभुक्तभक्तयोरुत्क्लिश्योर्ध्वमधो वा वायुर्वस्तिमुत्क्षिप्य क्षिप्रं वस्तौ घोरान्

विकाराञ्जनयेत्। वमितविरिक्तयोस्तु रूक्षशरीरं निरूहः क्षतं क्षार इव दहेत्। कृतनस्तःकर्म्मणो विभ्रंशं भृशसंरुद्धस्रोतसः कुर्य्यात्। क्रुद्धभीतयोर्वस्तिरूर्द्ध्वमुपप्लवेत्। मत्तमूर्च्छितयोर्भृशं विचलितायां संज्ञायां चित्तोपघातव्यापत्स्यात्। प्रसक्तच्छर्दीनिष्ठीविकाश्वासकास-हिक्कार्त्तानामूर्ध्वीभूतो वायुरूर्ध्वं वस्तिं नयेत्। बद्धाच्छिद्रोदकोदरा-ध्मातानां भृशतरमाध्माप्य वस्तिः प्राणान् हिंस्यात्। अलसकवि-षूचिकामप्रजातामातिसारिणामकृतदोषः स्यात्। मधुमेहकुष्ठिनो-र्व्याधेः पुनर्वृद्धिस्तस्मादेतेऽनास्थाप्याः ॥ १४ ॥

अजीर्णरोगी और अति स्निग्ध तथा स्नेह पीयेहुएको आस्थापन देनेसे उदररोग मूर्च्छा अथवा सूजन उत्पन्न होजाती है। दोषोंके उत्क्लेशित होनेपर और मन्दाग्निमें आस्थापन करनेसे तीव्र अरुचि उत्पन्न होती है। सवारी आदिसे थकेहुएको आस्थापन वस्ती देनेसे क्षोभको प्राप्त होकर उसके शरीरको सुखा देती है। अतिदुर्बल, क्षुधा, तृषा और श्रम आदिकोंसे कार्षित हुए मनुष्योंको आस्थापन देनेसे भी देहमें वस्ति शरीरको शोषण करती है। जल पीनेके अनन्तर और भोजन किया रहनेपर भी आस्थापनका प्रयोग करनेसे ऊर्ध्वभाग अथवा अधोभागमें वायु कुपित होकर वस्तिस्थानमें घोर विकारोंको उत्पन्न करती है। वमन और विरेचनके अनन्तर शरीर पहिलेही रूक्ष होता है उस समय निरूहणका प्रयोग करनेसे घावपर क्षार लगा-देनेसे दाह होती है वैसेही दाह उत्पन्न होजाती है। नस्य कर्मके अनन्तर स्थापन वस्ति करनेसे संपूण स्रोत रुककर नस्यकर्मका गुण नष्ट होजाता है। क्रोधी और भयभीतको आस्थापन देनेसे वस्तिका ऊर्ध्वगमन होता है। उन्मत्त और मूर्च्छामें आस्थापन वस्तिका प्रयोग करनेसे चित्तका उपघात होकर मृगी आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं। वमन, निष्ठीवन, श्वास, खांसी और हिचकीमें आस्थापनवस्तिका प्रयोग करनेसे वायु ऊर्ध्वगमन करताहुआ वस्तिको भी ऊपरकी ओर आकर्षण करता है। बद्धोदर, छिद्रोदर, जलोदर और अफारेमें वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्ति अत्यन्त आध्मापित होकर अथवा अफारेको अत्यन्त बढाकर प्राणोंको नष्ट कर देती है। अल-सक, विषूचिकारोगमें और आमातिसारमें आस्थापन वस्ति देनेसे आमदोषकी वृद्धि होती है। ८ महीनेसे पहिले गर्भवतीको आस्थापन वस्तिके प्रयोग करनेसे कच्चागर्भ गिरजाता है। मधुमेह और कुष्ठमें आस्थापन देनेसे रोगकी वृद्धि होती है। इसलिये इन सबको आस्थापन नहीं देना चाहिये ॥ १४ ॥

आस्थापनके योग्य मनुष्य।

शेषास्त्वास्थाप्याः। सर्वाङ्गैकाङ्गकुक्षिरोगवातवर्चोमूत्रशुक्रसंगबल-वर्णमांसरेतःक्षयदोषाध्मानाङ्गसुप्तिक्रिमिकोष्ठोदावर्त्तातिसारपर्वाभि-तापप्लीहगुल्महृद्रोगभगंदरोन्मादज्वरब्रध्नशिरःकर्णशूलहृदयपार्श्वपृष्ठ-कटिग्रहवेपनाक्षेपकगौरवातिलाघवरजःक्षयार्त्तविषमाग्निस्फिग्जानु-जंघोरुगुल्फपार्ष्णिप्रपदयोनिबाह्वङ्गुलिस्तनाङ्गदन्तनखपर्वास्थिशूल-शोषस्तम्भान्त्रकूजनपरिकर्तिकादयः वातव्याधयो विशेषेण रोगाध्या-योक्ताश्च एतेषु आस्थापनं प्रधानतममित्युक्तं वनस्पतिमूलच्छेदवत् ॥ १५॥

इनके सिवाय अन्य रोगोंमें आस्थापन देना चाहिये। तथा सर्वांगवात, एकांग-वात, कुक्षिशूल, वात, मल, मूत्र और शुक्रका विबंध, बलक्षय, मांसक्षय, वीर्यक्षय, अफारा, अंगसाद (अंगोंका सोना),क्रृमिकोष्ठ, उदावर्त्त, पक्वातिसार, पर्वोंमें शूल, प्लीहरोग, गुल्मरोग, हृद्रोग, भगन्दर, उन्माद, ज्वर, ब्रध्नरोग, शिरःशूल, कर्णशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कमरकी पीडा, पीठकी पीडा, कंप, आक्षेपकवायु,अंगोंका भारी-पन, वातजनित अत्यंत हलकापन, रजक्षय, रजका विबंध, विषमाग्नि,नितम्बोंकी पीडा, जानुशूल, जंघाशूल,ऊरुशूल,गुल्फशूल, पार्ष्णिपीडा, पादाग्रपीडा,योनिशूल,बाहुशूल, अंगुलियोंकी पीडा, दोनों स्तनोंके मध्यकी पीडा, दंतपीडा, नखपीडा, पर्वोंकी पीडा, अस्थिशूल, शोष, स्तम्भ, अंत्रकूजन और परिकर्तिका आदि रोगोंमें तथा सूत्रस्था-नके महारोगाध्यायमें कहेहुए अस्सी प्रकारके वातरोग इन सबमें विशेषकर आस्था-पन वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है। इन संपूर्ण रोगोंकी प्रधान चिकित्सा आस्थापन करनाही है। जैसे–वृक्षको जडसे उखाड देनेसे वा जडके काट देनेसे संपूर्ण वृक्ष एकवारही नष्ट होजाताहै उसी प्रकार आस्थापनवस्तिके करनेसे यह संपूर्ण रोग भी समूल नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

अनुवासनके अयोग्य।

य एवानास्थाप्याः त एव अननुवास्याः स्युः। विशेषतस्त्वभुक्तभक्त-नवज्वरपाण्डुरोगकामलाप्रमेहार्शःप्रतिश्यायारोचकमन्दाग्निदुर्बलप्ली-हकफोदरोरुस्तम्भवर्चोभेदविषगरपीतकफाभिष्यन्दगुरुकोष्ठश्लीपद-गलगण्डापचीक्रिमिकोष्ठिनः ॥ १६ ॥

जो मनुष्य आस्थापन वस्तिके अयोग्य हैं अर्थात् जिनको आस्थापन वस्तिका प्रयोग नहीं करना उन्हीं मनुष्योंको अनुवासन वस्ति भी नहीं करना चाहिये और

विशेषकर भोजनके विना किये, नवीनज्वर, पाण्डुरोग, कामला, प्रमेह, अर्श, प्रतिश्याय, अरुचि, मंदाग्नि, दुर्बलता, प्लीहरोग, कफोदर, ऊरुस्तम्भ, मलभेद, विषरोग, गरविकार, कफका अभिष्यंद, कोष्ठकी गुरुता, श्लीपद, गलगण्ड, अपची और कृमिकोष्ठ इनको विशेष अनुवासन देनेका निषेध है ॥ १६ ॥

इनमें अनुवासनके दोष।

तत्राभुक्तभक्तस्यानावृतमार्गत्वादूर्द्धमतिवर्त्तते स्नेहः । नवज्वरपाण्डुरोगकामलाप्रमेहिणां दोषानुत्क्लेश्योदरं जनयेदर्शसस्य अर्शांस्यभिष्यन्द्याध्मानं कुर्य्यात् । अरोचकार्त्तस्य अन्नवृद्धिं पुनः हन्यात् । मन्दाग्निदुर्बलयोर्मन्दतरमग्निं कुर्य्यात् । प्रतिश्यायप्लीहादिमतां भृशञ्चोत्क्लिष्टदोषाणां भूय एव दोषं वर्द्धयेत्तस्मादेते नानुवास्याः ॥ १७॥

विना भोजन किये अनुवासनके करनेसे मार्ग खुला रहनेसे वास्तिका स्नेह ऊपरको चढजाता है । नवीनज्वर, पाण्डुरोग, कामला और प्रमेहमें अनुवासन वस्ति करनेसे दोष उत्क्लेशित होकर उदररोगको उत्पन्न करते हैं । बवासीरमें अनुवासन करनेसें स्नेह अर्शको अभिष्यंदित करके अफारेको उत्पन्न करता है । अरुचिमें अनुवासन करनेसे अन्नमें इच्छा नहीं रहती । मंदाग्नि और दुर्बलतामें अनुवासन करनेसे अग्नि अत्यंत मंद होजाती है । प्रतिश्याय और प्लीहा आदि रोगोंमें अनुवासन करनेसे संपूर्ण दोष उत्क्लेशित होकर और भी रोगोंकी वृद्धि होती है इसलिये इनमें अनुवासन नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

अनुवासन योग्य मनुष्य।

य एवास्थाप्यास्त एवानुवास्याः । विशेषतस्तु रूक्षतीक्ष्णाग्नयः केवलवातरोगार्त्ताश्च । एतेषु ह्यनुवासनं प्रधानतममित्युक्तं वनस्पतिमूलच्छेदनवन्मूले द्रुमसेकवच्च ॥ १८ ॥

जिन मनुष्योंको आस्थापन करना लिखा है उन्हींको अनुवासनका प्रयोग करना चाहिये और विशेषकर रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि और केवल वातरोगसे पीडित मनुष्योंको अवश्यही अनुवासन करना चाहिये । इन रोगोंकी विशेष चिकित्सा अनुवासन करनाही है । जैसे—जडके काट देनेसे वनस्पति नष्ट होजाती है उसी प्रकार अनुवासनके करनेसे रूक्षतादि और संपूर्ण वातजनित रोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ १८ ॥

शिरोविरेचनके अयोग्य मनुष्य।

अशिरोविरेचनार्हा अजीर्णिभुक्तभक्तपीतस्नेहमद्यतोयपातुकामाः स्नातशिराः स्नातुकामः क्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तमत्तमूर्च्छितशस्त्रदण्डाहतव्यवाय-

व्यायामपानक्लान्तनवज्वरशोकाभितप्तविरिक्तानुवासितगर्भिणीनव-प्रतिश्यायार्त्ता अनृतुदुर्दिने चेति ॥ १९ ॥

यह आगे कहेहुए मनुष्य शिरोविरेचनके अयोग्य होते हैं। जैसे—अजीर्णयुक्त भोजन कियाहुआ, स्नेहपानकर, जिसको जल अथवा मद्य पीनेकी इच्छा है, जिसने उस समय शिर धोया हो, स्नान करनेकी इच्छावाला, भूखा, प्यासा, थकित, उन्मत्त, मूर्च्छित, शस्त्रसे भग्नहुआ, दण्डसे आहत, मैथुनसे थकाहुआ. व्यायाम करके थकाहुआ, मद्यसे क्लान्त, तरुणज्वरवाला, शोकसे अभितप्त, जिसने विरेचन लिया हो, अनुवासन कियाहुआ, गर्भवती और नवीन प्रतिश्यायसे पीडित मनुष्योंको शिरोविरेचन नहीं कराना चाहिये तथा वर्षाकालमें और दुर्दिन अर्थात् आंधी आदिसे खराब दिनमें शिरोविरेचन (नस्यकर्म) करना उचित नहीं ॥ १९ ॥

इनमें नस्यकर्मके दुर्गुण।

तत्राजीर्णिभुक्तभक्तयोर्दोष ऊर्ध्ववहानि स्रोतांस्यावृत्य कासश्वासच्छर्दिप्रतिश्यायाञ्जनयेत्। पीतस्नेहमद्यतोयपातुकामानां कृते च पिबतां मुखनासास्रावाक्ष्युपदेहतिमिराशिरोरोगाञ्जनयेत्। स्नातशिरसः कृते च स्नाने शिरसः प्रतिश्यायं क्षुधार्त्तस्य वातप्रकोपतृष्णार्त्तस्य पुनस्तृष्णाभिवृद्धिं मुखशोषञ्च। श्रमार्त्तमत्तमूर्च्छितानामास्थापनोक्तो दोषः स्यात्। शस्त्रदण्डहतयोस्तीव्रतरां रुजं जनयेत्। व्यवायव्यायामक्लान्तानां शिरःस्कन्धनेत्रोरःपीडनम्। नवज्वरशोकाभितप्तयोरूष्मा नेत्रनाडीभिरनुसृत्य तिमिरं ज्वरवृद्धिञ्च कुर्य्यात्। विरिक्तस्य वायुरिन्द्रियोपघातं कुर्य्यात्। अनुवासितस्य कफः शिरोगुरुत्वञ्च कण्डूकिमिदोषाञ्जनयेत्। अन्तर्वत्नीगर्भं स्तम्भयेत्स काणः कुणिः पक्षहतः पीठसर्पी वा स्यात्। नवप्रतिश्यायार्त्तस्य स्रोतांसि व्यापादयेत्। अनृतुदुर्दिने शीतं पूतिनासिकाशिरोरोगश्च स्यात्। तस्मादेते न शिरोविरेचनार्हाः ॥ २० ॥

अजीर्णमें और भोजन करनेके अनन्तर शिरोविरेचन देनेसे दोष ऊर्ध्ववाही स्रोतोंको रोककर खांसी, श्वास, वमन और प्रतिश्यायको उत्पन्न करते हैं। स्नेहपानके अनन्तर और जल पीनेकी अथवा मद्य पीनेकी इच्छावालेको शिरोविरेचन दियाजाय तो मुख और नासिकासे स्राव, आंखोंमें क्लेदका लिपाहुआसा होना, तिमिररोग और शिरो-

रोग उत्पन्न होता है। शिर धोनेके अनन्तर अथवा शिर सहित स्नान करनेके अनन्तर तत्काल स्नान करनेसे प्रतिश्याय उत्पन्न होता है। क्षुधासे पीडितको शिरोविरेंचनसे वातका कोप होता है। तृषार्त्तको तृषाकी वृद्धि और मुखशोष होता है। परिश्रान्त, उन्मत्त और मूर्छितको शिरोविरेचन देनेसे अपस्मार आदि रोग उत्पन्न होते हैं। शस्त्रहत और डण्डे आदिसे आहत मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे तीव्र पीडा उत्पन्न होती है। मैथुन अथवा व्यायामसे थकेहुएको शिरोविरेचन देनेसे मस्तक, कंधे, नेत्र और छातीमें पीडा उत्पन्न होती है। तरुणज्वरमें शिरोविरेचन देनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है। शोकसे तपायमान मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे नेत्रनाडीमें शिरोविरेचनी नस्यकी गर्मी पहुंचकर तिमिररोगको उत्पन्न करती है। विरेचन दियें हुए मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे वायु कुपित होकर इन्द्रियोंको नष्ट करताहै। अनुवासित मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे कफ, शिरमें भारीपन, खुजली और कृमिरोग उत्पन्न करताहै। गर्भवती स्त्रीको शिरोविरेचन देनेसे गर्भ स्तब्ध होजाताहै। तथा काना, कुनखी, शरीरका आधा अंग माराहुआ अथवा पिंवला गर्भ होजाताहै। नवीन प्रतिश्यायमें शिरोविरेचन देनेसे दुष्टप्रतिश्याय होजाताहै। बेसमय और दुर्दिनमें शिरोविरेचन देनेसे शीत, नाकसे दुर्गंधीका आना और शिरोरोग उत्पन्न होतेहैं। इसलिये इन सबको शिरोविरेचनी नस्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

शिरोविरेचन योग्य मनुष्य।

शेषास्त्वर्हाः। शिरोदन्तमन्याहनुग्रहपीनसगलशुण्डिकाशालूकशुक्रतिमिरवर्त्मरोगव्यङ्गोपजिह्विकार्द्धावभेदकग्रीवास्कन्धास्यनासिकाकर्णाक्षिमूर्द्धकपालशिरोरोगार्दितापतन्त्रकापतानकगलगण्डदन्तशूलहर्षचालाक्षिरोगार्बुदस्वरपरिपक्वाश्च एतेषु। शिरोविरेचनं प्रधानतममित्युक्तम्। तद्ध्युत्तमाङ्गमनुप्रविश्य मज्जपेशीकासक्तं दोषं विकारकरमपकर्षति ॥ २१ ॥

इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको उचित समयमें शिरोविरेचन कराना चाहिये। तथा शिरोरोग, दंतरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, पक्व पीनस, गलशुण्डिका, शालूक, शुक्र (नेत्ररोग), तिमिर, वर्त्मरोग, व्यंग, उपजिह्वा, अर्द्धावभेदक, गर्दनके रोग, स्कन्धपीडा, मुखपीडा, नासिकाके रोग, कर्णशूल, नेत्रपीडा, मस्तकपीडा, कपालके रोग, अर्दित, अपतंत्रक, अपतानक, गलगण्ड, दंतपीडा, दंतहर्ष, दांतोका चलायमान होना, नेत्ररोग, अर्बुद, स्वरभंग, वाणीका रुकना, गद्गद (अकलापन) आदि रोगोंमें तथा ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंमें और वातादिसे उत्पन्न हुए परिपक्व रोगोंमें शिरोविरेचन कराना परम

हितकारक है। क्योंकि शिरोविरेचन मस्तक आदिमें पहुंचकर मज्जा और पेशियोंमें चिपटेहुए दोषोंको आकर्षणकर निकाल देताहै ॥ २१ ॥

प्रावृट्शरद्वसन्तेष्वितरेषु आत्ययिकेषु रोगेषु नावनं कुर्य्यात् ग्रीष्मे पूर्वाह्ने शीते मध्याह्ने वर्षास्वदुर्दिने चेति ॥ २२ ॥

प्रावृट्, शरद और वसन्तऋतुमें जिसदिन बारिस और बादल आदि न हो उसदिन शिरोविरेचन करना अर्थात् नस्यकर्म करना हितकारक है। यदि कोई शीघ्र नष्ट करनेवाला आत्ययिक रोग उत्पन्न होजाय तो ग्रीष्म ऋतुमें प्रातःकाल और शिशिरऋतुमें दुपहरके समय और वर्षाऋतुमें जिसदिन बादल आदि न हों उसदिन नस्यकर्म कराना चाहिये ॥ २२ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकाः—इति पञ्चविधं कर्म विस्तरेण निदर्शितम्।
येभ्यो यत्त्वहितं यस्मात्कर्म येभ्यश्च यद्धितम् ॥ २३ ॥
न चैकान्ते न निर्दिष्टे तत्राभिनिविशेद् बुधः।
स्वयमप्यत्र वैद्येन तर्क्यं बुद्धिमता भवेत् ॥ २४ ॥
उत्पद्येत हि सावस्था देशकालबलं प्रति।
यस्यां कार्य्यमकार्य्यं स्यात्कर्म कार्य्यञ्च वर्जयेत् ॥ २५ ॥
छर्दिहृद्रोगगुल्मार्त्ते वमनं स्वे चिकित्सिते।
अवस्थां प्राप्य निर्दिष्टां कुष्ठिनां वस्तिकर्म च ॥ २६ ॥
तस्मात्सत्यपि निर्दिष्टे कुर्य्यादूह्यं स्वयं धिया।
विना तर्कणया सिद्धिर्यदृच्छा सिद्धिरेव सा ॥ २७ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने पञ्चकर्मीयसिद्धिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस पंचकर्मीयनामक अध्यायमें विस्तारपूर्वक पंचकर्मकी विधि कहीगयी है। जिसको जो कर्म जिस प्रकार हानिकारक हैं तथा जिसको जो हितकारक है वह भी यथोचित रीतिपर कहदिये गये हैं। परन्तु जिन संपूर्ण नियमोंको यहांपर लिखा गया है बुद्धिमान् वैद्य केवल इन्हींके आश्रय न रहकर जिस समय जो उचित हो उसकी उसी प्रकार अपनी बुद्धिसे भेदसे तर्कना कर युक्तिपूर्वक क्रिया करनी चाहिये। देश, काल और बलके भेदसे कभी ऐसी अवस्था

उपस्थित होजाती है कि जिन कर्मोंका जिस रोगमें निषेध है वह भी करने पडते हैं। और जो कर्तव्य कर्म हैं उनको भी त्याग दिया जाता है। जैसे—छर्दी, हृद्रोग और गुल्मरोगमें वमन करानेका निषेध है परन्तु अवस्थानुसार वमन कराना पडता है । कुष्ठरोगमें वस्तिकर्मका निषेध होनेपर भी अवस्थाविशेषसे वस्तिकर्म किया भी जाता है। इसलिये जो विषय जिस स्थानमें नहीं भी कहागया उसको भी बुद्धिमान् वैद्य देश, काल आदि विचार अपनी बुद्धिसे तर्कना करके प्रयोग करे। विना इस प्रकार बुद्धिकी तर्कना किये जो सिद्धि प्राप्त होजाय उसको यदृच्छाप्राप्त अर्थात् भाग्यसे प्राप्त सिद्धि जानना। इसलिये सब कर्मोंमें बुद्धिमान् वैद्य समयानुसार तर्कनाकर क्रियाका प्रयोग करे ॥ २३–२७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां पंचकर्मीयसिद्धिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो बस्तिसूत्रीयसिद्धिं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम वस्तिसूत्रीयसिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

कृतक्षणं शैलवरस्य रम्ये स्थितं धनेशायतनस्य पार्श्वे ।
महर्षिसङ्घैर्वृतमग्निवेशः पुनर्वसुं प्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥ १ ॥
वस्तिर्नरेभ्यः किमपेक्ष्य दत्तः स्यात् सिद्धिमान्किम्मयमस्य नेत्रम् ।
कीदृक्प्रमाणाकृति किंगुणश्च केषाश्च किंयोनिगुणश्च वस्तिः ॥ २ ॥
निरूहकल्पः प्रणिधानमात्राः स्नेहस्य वा काः शमने विधिः कः ।
के वस्तयः केषु मता इतीदं श्रुत्वोत्तरं प्राह वचो महर्षिः ॥ ३ ॥

पर्वतोंके राजा हिमालयके अंगभूत कैलासनामक रमणीय पर्वतके एक निकुञ्जमें कुबेरके स्थानके पार्श्वभागमें ऋषिगणोंसे सर्वतः सुशोभित पुनर्वसुजीसे अग्निवेश हाथ जोडकर पूछने लगे कि, भगवन्! किस अवस्थामें किस प्रकार वस्तिका प्रयोग करनेसे मनुष्योंको फलदायक होतीहै ? वस्तिका नेत्र किस द्रव्यसे बनाया जाता है ?

वस्तिका नेत्र (मुखनली) कैसा और किस प्रमाणसे किस आकारका बनाना चाहिये? उसका गुण क्या है? किसको किस द्रव्यसे वस्ति प्रयोग कियाहुआ क्या क्या गुण करताहै? निरूहकी भिन्न कलपना किस प्रकार है अनुवासनकी मात्राके क्या प्रमाण है? पीडा आदि शांतिके लिये विधि क्या है? किस मनुष्यके लिये किस प्रकारकी वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है? इस प्रकार अग्निवेशके कियेहुए प्रश्नोंको सुन॰ कर महर्षि पुनर्वसुजी इस प्रकार उत्तर देनेलगे ॥ १-३ ॥

समीक्ष्य दोषौषधदेशकालसात्म्याग्निसत्त्वादिवयोबलानि ।
वस्तिः प्रयुक्तो नियतं गुणाय स्युः सर्वकर्माणि च सिद्धिमन्ति ॥ ४ ॥

दोष, औषध, देश, काल, सात्म्य, अग्नि और सत्त्वआदि तथा अवस्था और बल विचारकर वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्ति गुणदायक होती है। तथा सब कर्मोंमें सिद्धिके देनेवाली होती है ॥ ४ ॥

वस्तिनेत्रका प्रमाण।

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैः।
नलैर्विषाणैर्मणिभिश्च तैस्तैः कार्य्याणि नेत्राणि त्रिकर्णिकानि ॥ ५ ॥

सुवर्ण, चांदी, शीशा, तांबा, पीतल, कांसे, हड्डी, लोहा, लकडी, बांस, हाथी-दांत, नरसल, सींग और मणी इनमेंसे किसी वस्तुका वस्तिकी नेत्र[1] (मुंहनाल) और कर्णिका यह बनाना चाहिये ॥ ५ ॥

षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानि षड्विंशतिर्द्वादशवर्षजानाम् ।
स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनवाहिच्छिद्राणि वर्त्या पिहितानि चापि ॥ ६ ॥

छः बारह और वीस वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यके लिये वस्तिका नल लम्बाईमें क्रमसे ६, ८ और बारह अंगुलका होना चाहिये। और वस्तिके मुखका छिद्र छः अंगुल लंबी हो तो मूंगके बराबर मोटा और ८ अंगुल लम्बी हो तो मटरके बराबर तथा १२ अंगुल लंबी हो तो छोटे झाडी बेरके समान मोटा छिद्र होना चाहिये। उस छिद्रद्वारा कोई जीव वस्तिमें छिपकर न बैठजाय इस लिये उस छिद्रके मुखपर कुछ बत्ती आदि लगाये रखना चाहिये ॥ ६ ॥

---

१ गुदाद्वारा जो पिचकारी लगाई जाती है उसको वस्तिकर्म कहते हैं। यद्यपि सिरावस्ति आदि (नसमें लगानेकी पिचकारी) अनेक प्रकारकी पिचकारियें प्रयोगमें आती हैं परन्तु इस स्थानमें गुदामेंही लगानेकी पिचकारीकाही कथन है उस पिचकारी मुखके ओरकी वह नली जो गुदामें प्रवेश कीजाता है उसको वस्तिका नेत्र कहते हैं।

वस्तिकी परिधि ।

यथा वयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्ति ।
ऋजूनि गोपुच्छसमाकृतीनि श्लक्ष्णानि च स्युर्गुलिकामुखानि ॥ ७ ॥

रोगीकी जो अवस्था हो उसी अवस्थानुसार मनुष्यके अंगूठेके बराबर मोटाई पीछेकी ओरसे और कनिष्ठिका अंगुलीके बराबर मोटाई वस्तिके मुखनालकी मुखकी ओरसे होनी चाहिये। बस्तिका नल सरल और गोपूछके समान ऊपसे मोटा तथा मुखकी ओरसे पतला और चिकना सुडौल तथा गोल होना चाहिये ॥ ७ ॥

वस्तिकर्णिकावस्तिपुटक ।

स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागे मूलाश्रिते वस्तिनिबन्धने द्वे ।
जरद्गवो माहिषहारिणो वा स्याच्छौकरो वस्तिरजस्य वापि ॥ ८ ॥
दृढस्तनुर्नष्टशिरो विगन्धः कषायरक्तः सुमृदुः सुशुद्धः ।
नृणां वयो वीक्ष्य यथानुरूपं नेत्रेषु योज्यस्तु सुबद्धसूत्रः ॥ ९ ॥

उस नलीका जो भाग गुदामें प्रवेश किया जाता है उस ओर नेत्रनलीके चौथे भागमें मुखकी ओर एक कर्णिका ओर नीचेकी ओर दो कर्णिका वस्ति बंधनके लिये होनी चाहिये । किसी बूढे बैल अथवा भैंसा, हरिण, सूअर या बकरा इनमेंसे जिसका आसानीसे मिल सके उसकी मूत्रवस्तिकी थैली निकालकर उसका बस्तिपुटक अर्थात् वस्तिका पेटा बनावे। यह पेटा दुर्गंधरहित तथा नस रहित और हरड, नासपाल आदिके क्राथसे रंग देकर सुखाया हुआ और नर्म बनायाहुआ होना चाहिये । तथा रोगीकी अवस्थानुसार इस वस्तिके पेटेका लम्बाव, चौडाव, छोटा, बडा होना चाहिये फिर इस नर्म वस्तिपुटकमें रोगीकी अवस्थानुसार पूर्वोक्त सुवर्ण आदि किसी द्रव्यकी बनी नेत्रनली लगाकर सूत्रके डोरेसे विधिवत् बांध देना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

वस्तेरभावे प्लवजो गलो वा स्यादङ्कपादः सुघनः पटो वा ।
नेत्रस्य चालाभत एव नाडी हितास्थिजा वंशभवा नलो वा ॥ १० ॥

बैल आदिकी वस्ति (मूत्राशय) न मिलनेपर मेंढक आदिके चमडेसे वस्ति बनाना चाहिये । अथवा चौपाये जानवरोंके भीतरी नर्म चमडेकी वस्ति बनावे । यदि इन सबका मिलना कठिन हो तो किसी सघन वस्त्र जिसमें पानी न छन सके उसका वस्तिपुटक बनावे । सुवर्ण आदि किसी वस्तुका वस्तिनेत्र (वस्तिकी मुंहनाल) न मिलने-

---

१ नेत्रके मुखपर छिद्रवाली एक छोटीसी जगहको कार्णिका कहते हैं । कार्णिकायुक्त नेत्र, खड या चमडेकी पिचकारीके मुखकी ओर लगा रहता है । वर्तमान समयमें सब प्रकारकी वस्तियें डाक्टरी रीतिसे बनाई हुई मिलती हैं उन्हींसे काम लेना चाहिये ।

पर हित हड्डीकी पोली नलीसे काम ले अथवा बांसकी नली वा नरसलकी नली लेकर पूर्वोक्त प्रमाणसे वस्तिका नेत्र बना बस्तिपुटकमें लगा विधिवत् वस्तिकर्म करे ॥१०॥

वस्तिकर्मविधि ।

आस्थापनार्हं पुरुषं विधिज्ञः समीक्ष्य पुण्येऽहनि शुक्लपक्षे ।
प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्त्तयोगे जीर्णान्नमेकाग्रमुपक्रमेत ॥ ११ ॥

आस्थापनके योग्य रोगीको वैद्य शुभदिन, शुक्लपक्ष, शुभनक्षत्र और उत्तम मुहूर्त तथा शुभयोगमें भोजन पचजानेके अनन्तर सावधानीसे आस्थापनवस्ति करे ॥११॥

बलां गुडूचीं त्रिफलां सरास्नां द्वे पञ्चमूले च पलोन्मितानि ।
अष्टौ पलान्यर्द्धतुलाञ्च मांसाच्छागात्पचेदप्सु चतुर्थशेषम् ॥ १२ ॥
पूतं यवानीफलबिल्वकुष्ठवचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम् ।
कल्कैर्गुडक्षौद्रघृतैः सतैलैर्युतं सुखोष्णैस्तु पिचुप्रमाणैः ॥ १३ ॥
गुडात्पलं द्विप्रसृतां तु मात्रां स्नेहस्य युक्त्या मधुसैन्धवादि ।
स्नेहं सुनिर्मथ्य ततोऽनुकल्पं प्रक्षिप्य वस्तौ मथितं खजेन ॥ १४ ॥
वस्तिं ततः सव्यकरे निधाय सुबद्धमुच्छ्वास्य च निर्व्वलीकम् ।
अङ्गुष्ठमध्येन मुखं पिधाय नेत्राग्रसंस्थामपनीय वर्त्तिम् ॥ १५ ॥

बला, गिलोय, त्रिफला, रास्ना, लघु पंचमूल और बृहत्पंचमूल यह सब द्रव्य एकएक पल लेवे। बकरेका मांस ८ पल और आधा तुला (२ सेर) लेकर इन सबको आठगुने जलमें पकावे चौथाभाग रहजानेपर उतारकर छानले । इस क्वाथमें अजवायन, मैनफल, बेलगिरि, कूठ, वच, सौंफ, नागरमोथा और पीपल इन सबका एकएक तोला कल्क मिलावे। तथा गुड २ पल, तेल २ पल, घृत २ पल, शहद और सेंधानमक इन सबको युक्तिपूर्वक मिला देवे फिर सबका एकत्र मथकर सुखोष्ण करले। यह सुखोष्ण किया हुआ कल्क, स्नेहयुक्त क्वाथ वस्तिमें भरकर खूब हिला लेवे। फिर इस वस्तिको बायें हाथमें लेकर विधिवत् वस्तिको फुलाकर वस्तिके नेत्रके अग्रभागको स्वच्छकर उसके आगेकी बत्ती आदि जो लगीहो उसे निकाल डाले और इसके मुखको अंगूठेके मध्यभागसे बन्दकर रक्खे ॥ १२–१५ ॥

तैलाक्तगात्रं कृतमूत्रविट्कं नातिक्षुधार्त्तं शयने मनुष्यम् ।
समेऽथवेषन्नतशीरसे वा नात्युच्छ्रिते स्वास्तरणोपपन्ने ॥ १६ ॥
सव्येन पार्श्वेन सुखं शयानं कृत्वर्जुदेहं स्वभुजोपधानम् ।
निकुंच्य सव्येतरदस्य सक्थि वामं प्रसार्य्य प्रणयेत्ततस्तम् ॥ १७॥

स्निग्धे गुदे नेत्रचतुर्थभागं स्निग्धं शनैर्मृद्वृजुपृष्ठवंशम् ।
अकम्पनावेपनलाघवादीन् पाण्योर्गुणांश्चापि हि दर्शयंस्तम् ॥ १८ ॥
प्रपीडय चैकग्रहणेन दत्तं नेत्रं शनैरेव ततोऽपकर्षयेत् ॥ १९ ॥

फिर रोगीको मलमूत्रादि त्याग करानेके अनन्तर तेलकी मालिश करा तथा रोगीको अधिक क्षुधा न लगीहो ऐसी अवस्थामें उत्तम सीधी समान भूमिमें अथवा मस्तककी ओर कुछ नीची भूमिमें सुन्दर शय्या जो बहुत ऊंची, बहुत नीची और ढीली न हो तथा कोमल और स्वच्छ हो उसके ऊपर रोगी बाईं करवट लेटे और बाईं बाहंका अपने सिरके नीचे सिरहाना देवे । फिर उसकी दहिनी टांगको पेटकी ओरको सिकोडे और बाईं टांगको सीधी फैलावे । फिर गुदाको चिकनीकर और वस्तिके मुखको चिकनाकर वस्तिका चौथा भाग, धीरे २ गुदामें विधिवत् प्रयोग करे। गुदामें वस्तिके नलको ठीक सीधा पीठकी बांसकी ओर रक्खे और वह वस्तिका नेत्र गुदामें प्रवेश करतेहुएअपने हाथोंको कंपावे नहीं तथा स्थिर और हलका हाथ रक्खे । इस प्रकार वस्तिके नलको गुदामें प्रवेश कर बांयें हाथसे नलको पकड रक्खे और दहिने हाथ वस्ति (पिचकारी)को दबाता जावे जिससे वस्तिका द्रव्य गुदामें पहुंच जाय। धीरेसे वस्तिकी नलीको गुदामेंसे निकाल लेवे । परन्तु वस्तिको इतने जोरसे न दबावे कि जिससे संपूर्ण औषधी एकवार बलपूर्वक पहुंचकर हानि पहुंचावे और ऐसा धीरे धीरे भी न दबावे जिससे वस्तिकर्ममें अधिक देर लगे।तथा खाली वस्तिको भी न दबावे जिससे गुदामें वस्तिकी पवन पहुंचे। इस प्रकार वस्ति द्रव्यको सावधानीसे गुदामें पहुंचाकर वस्तिके नलको धीरेसे निकाल लेवे ॥ १६-१९ ॥

वस्तिके विधानमें असावधानीके दोष ।

तिर्य्यक्प्रणीते तु न याति धारा गुदे व्रणः स्याच्चलिते च नेत्रे ।
दत्तः शनैर्नाशयमेति वस्तिः कण्ठं प्रधावत्यतिपीडितश्च ।
शीतस्त्वतिस्तम्भकरो विदाहं मूर्च्छाञ्च कुर्य्यादतिमात्रमुष्णः ॥ २० ॥
स्निग्धोऽतिजाड्यं पवनञ्च रूक्षस्तन्वल्पमात्रालवणस्त्वयोगम् ।
करोति मात्राभ्यधिकोऽतियोगं क्षामन्तु सान्द्रः सुचिरेण चैति ॥ २१ ॥
दाहातिसारो लवणोऽतिकुर्य्यात्तस्मात्प्रयुक्तं सममेव दद्यात् ॥ २२ ॥

वस्तिका मुख यदि गुदामें तिरछा प्रवेश किया जाय तो औषधीकी धारा ठीक सीधी नहीं पहुंच सकती । यदि वस्तिका मुख गुदामें हिलता डुलता रहे तो गुदामें घाव होनेका भय है । यदि वस्तिको बहुत देरमें धीरे धीरे प्रधमन कियाजाय तो वह पक्वाशयमें वा उचित स्थानमें नहीं पहुंच सकती । यदि वस्तिको अत्यन्त जोरसे

दबादिया जाय तो वस्तिद्रव्य कण्ठकी ओर चला जाताहै। अत्यन्त शीतल द्रव्यसे वस्ति कीजाय तो स्तम्भको करती है। अत्यन्त गर्म वस्ति विदाह और मूर्च्छाको करनेवाली होतीहै। अत्यन्त स्निग्धवस्ति जडताको उत्पन्न करती है। रूक्षवस्ति वायुको कुपित करती है। वस्तिमें नमककी अल्पमात्रा होनेसे वस्तिका ठीक योग नहीं होता। अधिक मात्रासे वस्तिका अतियोग होता है। अल्पमात्रा वा अत्यन्त गाढी वस्ति विलंबसे निकलती है। अत्यन्त लवणयुक्त वस्ति अतिसार और दाहको उत्पन्न करती है। इसलिये वस्तिको योग्यरीतिपर युक्तिपूर्वक ठीक योगसे प्रयोग करना चाहिये ॥२२॥

पूर्वं हि योज्यं मधुसैन्धवाभ्यां स्नेहं विनिर्मथ्य ततोऽनुकल्कम् ।
विमथ्य संयोज्य पुनर्द्रवैस्तद्वस्तौ निदध्यान्मथितं खजेन ॥ २३ ॥

पहिले स्नेह, लवण और शहदको विधिवत् मन्थनकर एककर लेवे जिससे लवण शहद और घृत तेलादि एक बनजावे फिर इसमें कल्क मिला मन्थन करे जब कल्क मिलजाय तब क्वाथद्रव्य वा अन्य जो पतले पदार्थ मिलाने हो वह मिलाकर मथनीसे खूब मथ डाले। फिर इसको वस्तिमें भरकर वस्तिकर्म करना चाहिये ॥२३॥

वस्तिमें लेटनेका विधान।

आमाशयोऽग्निर्ग्रहणीगुदश्च तत्पार्श्वसंस्थस्य सुखोपलब्धिः ।
लीयन्त एवं वलयश्च तस्मात्सव्यं शयानोऽर्हति वस्तिदानम् ।
विड्वातवेगो यदि चार्द्धदत्ते निष्कृष्य मुक्ते प्रणयेदशेषम् ॥ २४ ॥

आमाशय, जठराग्नि, ग्रहणी, मलाशयमेंकी स्थूल अंतडी यह मनुष्यके बायें पार्श्वकी ओर हैं तथा गुदाकी तीनों वलियें भी बाईं ओरको ही लीन होगयी हैं। इसलिये बाईं करवट लेटाकर वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। बाईं करवट लेटाकर वस्तिकर्म कियाहुआ वस्तिद्रव्य सुखपूर्वक वेगसे यथास्थान पहुंच जाता है। यदि वस्तिके करते समय आधा द्रव्य प्रवेश होनेपर मल या वायुका वेग आवे तो वस्तिकें नलको निकालकर विष्ठा या वातके त्याग होलेनेके अनन्तर फिर वस्तिकर्मकर संपूर्ण द्रव्य भीतर पहुंचावे ॥ २४ ॥

उत्तानदेहश्च कृतोपधानः स्याद्वीर्य्यमाप्नोति तथास्य देहम् ।
एकोऽपकर्षत्यनिलं स्वमार्गात्पित्तं द्वितीयस्तु कफं तृतीयः ॥ २५ ॥

वस्तिकर्म करलेनेके अनन्तर रोगी तकियेपर सिर रखके आरामसे चित्त लेटजावे। ऐसा करनेसे औषधका वीर्य रोगीके शरीरमें यथोचित संचार करताहै। एक वस्ति वायुको, दूसरी वस्ति पित्तको और तीसरी कफको अपने मार्गसे कर्षणकर निकाल देती है ॥ २५ ॥

बस्तिके अनन्तरकर्म।

प्रत्यागते कोष्णजलावसिक्तः शाल्यन्नमद्यात्तनुना रसेन ।
जीर्णे तु सायं लघु चाल्पमात्रं भुक्तेऽनुवास्यः परिबृंहणार्थम् ॥२६॥

जब बस्ति द्रव्य मलको लेकर बाहर निकल चुके तो सुखोष्ण जलसे शरीरको सेचन कर फिर पतलेसे मांसरस अथवा किसी उचित यूषके साथ शालीचावलोंका भोजन करावे। सायंकालको भूख लगनेपर हलका और अल्पमात्रासे भोजन करावे। फिर बृंहणके लिये अनुवासन करावे ॥ २६ ॥

अनुवासन विधि।

निरूहपादांशसमेन तैलेनाम्लानि लघ्वौषधसाधितेन ।
दत्त्वा स्फिचौ पाणितलेन हन्यात्स्नेहस्य शीघ्रागमरक्षणार्थम् ॥ २७ ॥

अनुवासनका तेल निरूहण बस्तिकी मात्रासे चौथा भाग लेना चाहिये। यह तेल हल्के द्रव्योंसे और कांजीसे सिद्ध कियाहुआ होना चाहिये। फिर उसके दोनों नितम्बोंको दोनों हाथोंसे इस प्रकार दबावे जिससे वह तेल शीघ्र निकलने न पावे २७॥

ईषत्पदांगुष्ठयुगञ्च कर्षेदुत्तानदेहस्य तनौ प्रमृज्यात् ।
स्नेहेन पार्ष्ण्यङ्गुलिपिण्डिकाश्च ये चास्य गात्रावयवा रुगार्त्ताः ॥२८॥
तांश्चावमृज्यात्ससुखं ततश्च निद्रामुपासीत कृतोपधानः ॥ २९ ॥

दोनों पांवोंके अंगूठोंको थोडा २ खींचे तथा उसको सीधा लेटाकर पांवोंके तलुवोंको धीरे धीरे मसले, एडी, उंगुली, दोनों पिण्डली और जिस २ अंगमें पीडा प्रतीत होतीहो उन सबको तेलसे मसले, जिस प्रकार सब अंगोंको धीरे २ मसलते हुए उसको निद्रा आजाय इस प्रकार उसकी सेवा करे। निद्रा आनेपर धीरेसे उसके ऊपर वस्त्र दे देवे ॥ २८ ॥ २९ ॥

निरूहणमें स्नेहकी मात्रा।

भागाः कषायस्य तु पञ्च पित्ते स्नेहस्य षष्ठः प्रकृतौ स्थिते च ।
वाते विवृद्धे तु चतुर्थभागो मात्रा निरूहेषु कफेऽष्टभागः ॥ ३० ॥

पित्तजनित रोगमें यदि वायु प्रकृतिस्थ हो तो ५ भाग क्वाथ और ६ ठां भाग स्नेह लेना चाहिये। यदि वायुकी वृद्धि हो तो क्वाथसे चौथा भाग स्नेह लेना चाहिये और कफकी अधिकतामें ७ वां भाग क्वाथ और आठवां भाग स्नेह लेना चाहिये। यह निरूहणमें स्नेहका प्रमाण है ॥ ३० ॥

निरूहणकी मात्रा।

निरूहमात्रा प्रसृतार्द्धमाद्ये वर्षे ततोर्द्धं प्रसृताभिवृद्धिः ।
आद्वादशात् स्यात्प्रसृताभिवृद्धिरष्टादशाद्द्वादशतः परं स्युः ।

आसप्ततेरुक्तमिदं प्रमाणमतः परं षोडशवद्विधेयम्।
निरूहमात्रा प्रसृतप्रमाणा बाले च वृद्धे च मृदुर्विशेषः ॥ ३१ ॥

१ वर्षके बालकको निरूहणमें १ पल द्रव्यका प्रमाण है। इसके अनन्तर प्रति- वर्ष एक एक पल मात्रा बढाता जाय। १२ वर्षसे लेकर १८ वर्षपर्यन्त एक एक वर्षमें दो दो पलकी मात्रा बढावे। १८ वर्पसे ७० वर्पतक यही मात्रा रहने देवे। फिर ७० से उपरांत १६ वर्पकी मात्रा (२० पल) रहने दे। बालकको एक प्रसृति (२ पल) और वृद्धावस्थामें प्रायः मृदुमात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१ ॥

शयनक्रम।

नात्युच्छ्रितं नाप्यतिनीचपादं सपादपीठं शयनं प्रशस्तम्।
प्रधानमृद्वास्तरणोपपन्नं प्राक्शीर्षकं शुक्लपटोत्तरीयम् ॥ ३२ ॥

जिस मनुष्यको वस्तिका प्रयोग कियाजाय उसको ऐसी शय्यापर लेटाना चाहिये जो न तो अत्यन्त ऊंची और न उसके पाये अति नीचे हों शय्यापर चढते समय या शय्यासे उतरनेके समय भी शय्याके समीप पांव रखनेके लिये कोई गद्दी आदि ऐसी होनी चाहिये जिसपर पांव रखकर उतरते चढते समय किसी प्रकार हलचल न पडे। शय्याके ऊपर ठीक लम्बा चौडा और नर्म बिछौना होना चाहिये तथा शिरकी ओर और पांवोंकी ओर बहुत सुन्दर नर्म तकिये रहना चाहिये और ओढ- नेके वस्त्र आदिके हाथ पांव पोछनेके रुमाल यह सब उत्तम सफेद होने चाहिये। शय्याका सिरहना पूर्वकी ओर करके इस विधिसे शय्याको बिछावे ॥ ३२ ॥

भोजनादिक्रम।

भोज्यं पुनर्व्याधिमवेक्ष्य सम्यक्प्रकल्पयेद्यूषपयोरसाद्यैः ॥ ३३ ॥
सर्वेषु विद्याद्विधिमेतदाद्यं वक्ष्यामि वस्तीनत उत्तरीयान्।
सम्यक्प्रणीताः खलु वस्तयो ये वातामयघ्नाश्च बलप्रदाश्च ॥ ३४ ॥

वस्तिकर्म करनेके अनन्तर व्याधिके दोष बल आदि विचारकर उसको यूष, दूध अथवा मांसरस आदि उसके भोजनके लिये कल्पना करे सब प्रकारकी वस्ति- योंमें प्रथम यही विधि की जाती है। उसके उपरान्त अन्य वस्तियोंको वर्णन करते हैं। जिन वस्तियोंका सम्यक् प्रयोग किया जानेपर वातजनित व्याधियें नष्ट होती हैं और शरीरमें बल प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वातनाशक वस्तियोंके योग।

द्विपञ्चमूलस्य रसोऽम्लयुक्तः सच्छागमांसस्य सपूर्वशेषः।
त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो निरूहः सर्वानिलव्याधिहरः प्रदिष्टः ॥ ३५ ॥

दोनों पंचमूल और बकरेके मांसको आठगुने जलमें पकावे, चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे फिर यह क्राथ तीनभाग और तेल चौथा भाग, कांजी क्राथका सोलहवां भाग इन सबको मिलाकर निरूहण वास्तिका प्रयोग करे तो संपूर्ण वातव्याधियें नष्ट होती हैं। किसीके मतमें तीन भाग तेल और चार भाग क्राथ मिलाना ऐसा लिखा है ॥ ३५ ॥

स्थिरादिवर्गस्य बलापटोलत्रायन्तिकैरण्डयवैर्युतस्य ।
प्रस्थो रसश्छागरसार्द्धयुक्तः साध्यः परः प्रस्थरसश्च यावत् ॥ ३६ ॥
प्रियङ्गुकृष्णो घनकल्कयुक्तः सतैलसर्पिर्मधुसैन्धवश्च ।
स्याद्दीपनो मांसबलप्रदश्च चक्षुर्बलश्चापि ददाति सद्यः ॥ ३७ ॥

शालपर्णी आदिगण, बला, पटोलका जड, त्रायमाण, एरण्डकी जड और यव इन सबको मिलाकर आध सेर लेवे। कूटकर ४ सेर जलमें पकावे। १ सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छान ले। यह क्राथ १ सेर, बकरेका मांसरस आध सेर इन दोनोंको मिला फिर पकावे। १ सेर (८० तोला) रहनेपर उतारकर छानले। फिर इसमें फूलप्रियंगु पीपल और नागरमोथा इनका ३ पल कल्क क्राथसे चौथा भाग तेल आठवां भाग घी तथा ५ तोला शहद और ६ मासे सेंधानमक मिलाकर खूब मथडाले। इस द्रव्यसे निरूहणवस्ति कीहुई अग्निको दीपन करती है मांस और बलको बढाती है तथा नेत्रोंमें शीघ्र बलके देनेवाली है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

एरण्डमूलत्रिपलं पलानि ह्रस्वानि मूलानि च यानि पञ्च ।
रास्नाश्वगन्धातिबलागुडूची पुनर्नवारग्वधदेवदारू ॥ ३८ ॥
भागा पलांशा मदनाष्टयुक्ता जलद्विकंसे क्वथितेऽष्टशेषे ।
पेष्या शताह्वा हवुषाप्रियङ्गु सपिप्पलीकं मधुकं वचा च ॥ ३९ ॥
रसाञ्जनं वत्सकबीजमुस्तं भागाक्षमात्रं लवणांशयुक्तम् ।
समाक्षिकस्तैलयुतः समूत्रो वस्तिर्नृणां दीपनलेखनीय ॥ ४० ॥

एरण्डकी जडका छिलका ३ पल, लघुपंचमूलकी पांचों औषधी एक एक पल तथा रास्ना, असगंध, अतिबला, गिलोय, पुनर्नवा, अमलतासका गूदा, देवदारु यह सब एक एक पल और मैनफल ८ पल इन सबको ८ सेर जलमें पकावे आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर इसमें सौंफ हाउबेर फूलप्रियंगु, मुलैठी, वच, रसौत, इन्द्रयव और नागरमोथा यह एकएक तोला और नमक ३ मासे इन सबको बहुत बारीक पीसकर उस क्राथमें मिलावे। फिर तेल, गोमूत्र और शहद मिलाकर वस्ति-

प्रयोग करे। यह वस्ति मनुष्योंकी जठराग्निको दीपन करती और मलको उखाडकर निकाल देती है ॥ ३८-४० ॥

एरण्डतेलकी वस्तिके गुण।

जङ्घोरुपादत्रिकपृष्ठशूलं कफावृतं मारुतनिग्रहं च।
विण्मूत्रवातग्रहणं सशूलमाध्मानतामश्मरिशर्करञ्च ॥ ४१ ॥
आनाहमर्शोग्रहणीप्रदोषानेरण्डवस्तिः शमयेत्प्रयुक्तः।
वैद्येन सम्यक्कुशलेन चैष पुनर्वसूक्तः कृपया नराणाम् ॥ ४२ ॥

एरण्डके तेलसे वैद्य विधिवत् वस्तिप्रयोग करे तो जंघा, ऊरु, पांव, त्रिक और पीठकी जकडन तथा पीडा दूर होजाती है और कफावृतवायु नष्ट होतीहै तथा विष्ठा और मूत्रका बंध और अधोवायुका रुकना तथा शूल, अफारा, पथरी, शर्करा यह दूर होते हैं। एवं आनाह, अर्श और ग्रहणीके विकार यह सब दूर होते हैं। यह वस्तिप्रयोग भगवान् पुनर्वसुजीने मनुष्योंके ऊपर कृपाकरके कथन किया है। एरण्ड तैलकी वस्ति केवल एरण्डके तेलसेही नहीं दीजाती किन्तु उपरोक्त दशमूल वा शालपर्ण्यादि क्काथमें अन्य तेलके बदलेमें एरण्डतेल मिलाकर वस्तिकर्म करना चाहिये ४१॥४२

चतुष्पले तैलघृतस्य भृष्टश्छागाच्छतार्द्धाद्दधिदाडिमाम्लः।
रसः स पेष्यो बलवर्णमांसरेतोऽग्निदश्चान्ध्यशिरोरुजाघ्नः ॥ ४३ ॥

वीस पल बकरेके मांसको आठगुने जलमें पकावे छठां भाग शेष रहनेपर उतारकर छान ले। इस मांसरसमें दही, अनारका रस और थोडासा सेंधानमक मिलाकर दो पल तेल और दो पल घीमें भून लें। इसमें मैनफल मिलाकर निरूहण करनेसे बल, वर्ण, मांस, शुक्र और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै तथा मस्तकपीडा दूर होतीहै ॥४३॥

जलद्विकंसेऽष्टपलं पलाशात्पक्त्वा रसोऽर्द्धाढकमात्रशेषः।
कल्कैर्बलामागधिकापलाभ्यां युक्तः शताह्वाद्विपलेन चापि ॥ ४४ ॥
ससैन्धवक्षौद्रयुतः सतैलो देयो निरूहो बलवर्णकारी।
आनाहपार्श्वामययोनिदोषान् गुल्मानुदावर्त्तरुजश्च हन्यात् ॥ ४५ ॥

आठ पल ढाककी छालको दो आढक जलमें पकावे। जब आधा आढक शेष रहे तो उतारकर छानले फिर इसमें बला और पीपल एक एक पल, सौंफ दो पल, इनका बारीक कल्क कर तेल, शहद और थोडा सेंधानमक मिला खूब मथडाले फिर इससे वस्ति करे तो इससे बल, वर्णकी वृद्धि होती है तथा अफारा, पार्श्वपीडा, योनिदोष, गुल्म, उदावर्त्त यह सब दूर होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

यष्ट्याह्वमूलाष्टपलेन सिद्धं पयः शताह्वाफलपिप्पलीभिः ।
युक्तं ससर्पिर्मधुवातरक्तवैस्वर्य्यवीसर्पहितो निरूहः ॥ ४६ ॥

मुलैठी ८ पल लेकर २ सेर दूध और ४ सेर पानी मिलाकर पकावे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले फिर इसमें सौंफ, मैनफल, पीपल, घृत, शहद मिलाकर निरूहण वस्ति करना वातरक्त, स्वरभंग और विसर्परोगमें हितकारी है ॥ ४६ ॥

पित्तनाशक वस्ति।

यष्ट्याह्वलोध्राभयचन्दनैश्च शृतं पयोऽग्र्यं कमलोत्पलैश्च ।
सशर्करं क्षौद्रयुतं सुशीतं पित्तामयान् हन्ति सजीवनीयम् ॥ ४७ ॥

मुलैठी, लोध, हरड, लालचन्दन, कमल और नीलकमल इनसे सिद्ध किया दूध शीतल होनेपर खांड, शहद और जीवनीयगणका क्वाथ तथा कल्क मिलाकर वस्ति प्रयोग करे तो पित्तजनित संपूर्ण व्याधियें शान्त होती हैं ॥ ४७ ॥

द्विकार्षिकांश्चन्दनपद्मकर्द्धियष्ट्याह्वरास्नावृषशारिवाश्च ।
सलोध्रमाञ्जिष्ठमथाप्यनन्ता बला स्थिराद्यं तृणपञ्चमूलम् ॥ ४८ ॥
निःक्वाथ्य तोयेन रसेन तेन शृतं पयोऽर्द्धाढकमम्बुहीनम् ।
जीवन्तिमेदर्द्धिशतावरीभिर्वीराद्विकाकोलिकशेरुकाभिः ॥ ४९ ॥
सितोपलाजीवकपद्मरेणुप्रपौण्डरीकैः कमलोत्पलैश्च ।
लोध्रात्मगुप्तामधुकैर्विदारीमुञ्जातकैः केशरचन्दनैश्च ॥ ५० ॥
पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहं ससैन्धवं शीतलमेव दद्यात् ।
प्रत्यागते धन्वरसेन शालीन् क्षीरेण वाऽद्यात्परिषिक्तगात्रः ॥ ५१ ॥
दाहातिसारौ प्रदरास्रपित्तहृत्पाण्डुरोगान्विषमज्वरांश्च ।
सगुल्ममूत्रग्रहकामलादीन्सर्वामयान्पित्तकृतान्निहन्ति ॥ ५२ ॥

लाल चन्दन, पद्माख, ऋद्धि, मुलैठी, रास्ना, वांसा, शारिवा, लोध, मंजीठ, नीलदूर्वा, वलाकी जड, शालपर्ण्यादि पंचमूलकी पांचों औषधियें और तृणपंचमूलकी पांचों औषधियें इन सबको दो दो कर्ष लेकर अठगुने जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर इस क्वाथमें २ सेर दूध मिलाकर पकावे । जब पानी जलकर दूधमात्र शेष रहे तो इस दूधमें जीवन्ती, मेदा, ऋद्धि, सतावर, कुंभेर, काकोली, क्षीरकाकोली, कसेरू, मिसरी, जीवक, कमलकी केसर, पंडयारा, कमल, नीलकमल, लोध, कौंचके वीज, मुलैठी, विदारीकन्द, मुंजातक, नागकेशर और

लालचन्दन यह प्रत्येक छः छः मासे लेकर बहुत बारीक कर उस दूधमें मिलावे। तथा घी शहद और सेंधानमक मिलाकर मथडाले। इस शीतल दूधसे निरूहण-वस्तिका प्रयोग करे। जब वस्तिद्रव्यका प्रत्यागमन होजाय अर्थात् दस्तद्वारा संपूर्ण द्रव्य निकलजाय तो सुखोष्ण जलसे देह शुद्ध करे। फिर जंगली जीवोंके मांसरस अथवा दूधके साथ शालीचावलोंका भात खिलावे। इस वस्तिके प्रयोगसे पित्तज-नित दाह, अतिसार, प्रदर, रक्तपित्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और कामला आदि पित्तजनित संपूर्ण रोग दूर होते हैं ॥ ४८–५२ ॥

द्राक्षादिकाश्मर्य्यमधूकसेव्यैः सशारिवाचन्दनशीतपाक्यैः।
पयः शृतं श्रावणिमुद्गपर्णीतुगात्मगुप्तामधुयष्टिकल्कैः ॥ ५३ ॥
गोधूमचूर्णैश्च तथाक्षमात्रैः सक्षौद्रसर्पिर्मधुयाष्टितैलैः।
पथ्याविदारीक्षुरसैर्गुडेन वस्तिं युतं पित्तहरं विदध्यात् ॥ ५४ ॥
हृन्नाभिपार्श्वोदरदेहदाहे दाहेऽन्तरस्थे च सकृच्छ्रमूत्रे।
क्षीणे क्षते रेतसि चापि नष्टे पैत्तेऽतिसारे च नृणां प्रशस्तः ॥ ५५ ॥

द्राक्षा आदि फल (मुनक्का, कुंभेरफल, फालसा, हरड, बहेडा, आमला, उन्नाभ, बडा बेर, जंगलीबेर और पीलू), कुंभेरके फल, महुआ, खस, सारिवा, लालचंदन, और खरैटी इन सबके कल्कसे दूधको सिद्ध करे। इस दूधमें गोरखमुण्डी, मुग्ध-पर्णी, कौंचके बीज और मुलैठीका कल्क तथा गेहूंका चूर्ण यह एकएक तोला मिलावे। फिर इसमें शहद, घृत, मुलैठीसे सिद्ध कियाहुआ तैल, हरड, विदारीकंदका रस, ईखका रस और गुड मिलाकर वस्तिकर्म करे तो संपूर्ण पित्तविकार दूर होतेहैं तथा हृदय, नाभि, पार्श्व और उदरकी दाह, अंतर्दाह, मूत्रकृच्छ्र, क्षत क्षीण, वीर्यकी क्षीणता और पित्तजनित अतिसार इन सब रोगोंमें मनुष्योंको इस द्राक्षादि वस्ति करना अत्यंत श्रेष्ठ मानाहै ॥ ५३–५५॥

कफरोगनाशक वस्ति।

कोशातकारग्वधदेवदारुमूर्वाश्वदंष्ट्राकुटजार्कपाठाः।
पक्त्वा कुलत्थान् बृहतीञ्च तोये रसस्य तस्य प्रसृता दश स्युः ॥५६॥
तां सर्षपैलामदनैः सकुष्ठैरक्षप्रमाणैः प्रसृतैश्च युक्तान्।
फलाह्वतैलस्य समाक्षिकस्य क्षारस्य तैलस्य च सार्षपस्य ॥ ५७ ॥
दद्यान्निरूहं कफरोगिणे ज्ञो मन्दाग्नये चाप्यशनाद्विषे च।
पटोलपथ्यामरदारुभिर्वा सपिप्पलीकैः क्वथितैर्जलाग्र्यैः ॥ ५८ ॥

कडवी तोरी, अमलतास, देवदारु, मूर्वा, गोखरू, कुटकी, अर्जक तुलसी, पाटला, कुलथी और बडी कटेली इन सबको एकएक पल लेकर ८० पल जलमें पकावे। २० पल शेष रहनेपर उतारकर छान ले। फिर इसमें सरसों, इलायची, मैनफल और कूठ यह एकएक कर्ष मिलावे। मैनफलका तेल २ पल, शहद २ पल, सरसोंका तेल २ पल और जवाखारका जल २ पल इन सबको मिलाकर कफरोग, मंदाग्नि और अरुचिवालोंको वस्तिकर्म करावे। अथवा पटोलकी जड, हरड, देवदारु और पीपलामूलके क्वाथसे उपरोक्त रीतिपर निरूहण करे ॥ ५६-५८ ॥

द्विपञ्चमूले त्रिफलां सबिल्वां फलानि गोमूत्रयुतः कषायः।
कालिङ्गपाठाफलमुस्तकल्कः ससैन्धवः क्षारयुतः सतैलः ॥ ५९ ॥
निरूहमुख्यः कफजान्विकारान् सपाण्डुरोगालसकामदोषान्।
हन्यात्तथा मारुतमूत्रसङ्गं वस्तेस्तथाटोपमथापि घोरम् ॥ ६० ॥

दशमूल, त्रिफला, बेलगिरी और मैनफल इन सब द्रव्योंके क्वाथमें गोमूत्र तथा इन्द्रयव, पाठा, मैनफल और नागरमोथा इन सबका कल्क तथा सेंधानमक, जवाखार और सरसोंका तेल मिलाकर निरूहण वस्ति करे तो कफजनित विकार, पाण्डुरोग, अलसक, आमदोष यह सब नष्ट होतेहैं। तथा वातजनित मूत्रका विबंध और वस्तिका अफारा यह सब दूर होतेहैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥

रास्नामृतैरण्डविडङ्गदारुसप्तच्छदोशीरसुराह्वनिम्बैः।
श्यामाकभूनिम्बपटोलपाठातिक्ताखुपर्णीदशमूलमुस्तैः ॥ ६१ ॥
त्रायन्तिकाशिग्रुफलत्रिकैश्च क्वाथः सपिण्डीतकतोयमूत्रः।
यष्ट्याह्वकृष्णाफलिनीशताह्वारसाञ्जनश्वेतवचाविडङ्गैः ॥ ६२ ॥
कालिङ्गपाठाम्बुदसैन्धवैश्च कल्कैः ससर्पिर्मधुतैलमिश्रः।
अयं निरूहः क्रिमिकुष्ठमेहब्रध्नोदराजीर्णकफातुरेभ्यः ॥ ६३ ॥
रूक्षौषधैरत्यपतर्पितेभ्य एतेषु रोगेष्वपि सत्सु दत्तः।
निहत्य वातं ज्वलनं प्रदीप्य विजित्य रोगांश्च बलं करोति ॥ ६४ ॥

रास्ना, गिलोय, एरण्डकी जड, वायविडंग, देवदारु, सप्तपर्णकी छाल, खस, देवदारु, निम्बकी छाल, श्यामाक, चिरायता, पटोलपत्र, पाठा, कुटकी, दंती, दशमूल, नागरमोथा, त्रायमाण, सोहंजना और त्रिफला इन सब द्रव्योंको आठगुने जलमें पकाकर चौथा भाग शेष रहनेपर उतारले। इस क्वाथमें मैनफलका क्वाथ, गोमूत्र तथा मुलैठी, पीपल, प्रियंगु, सौंफ, रसौत, सफेद वच, वायविडंग, इन्द्रयव, पाठा,

नागरमोथा और सेंधानमक इन सबका बारीक कल्क, घृत, शहद तथा तैल मिलाकर निरूहण वस्ति करे। यह निरूहण वस्ति कृमी, कुष्ठ, प्रमेह, बद, उदररोग, अजीर्ण और कफविकारको नष्ट करती है। जो मनुष्य, रूक्ष औषधोंसे अपतर्पित हैं उनके भी इन उपरोक्त रोगोंमें विधिवत् प्रयोग किये जानेसे यह रोग नष्ट होते हैं। तथा यह वस्ति वायुका नाश करती, अग्निको प्रज्वलित करती है तथा रोगोंको जीतती है और बलको बढाती है ॥ ६१-६४ ॥

पुनर्नवैरण्डवृषाश्मभेदवृश्चीरभूतीकबलापलाशाः ।
द्विपञ्चमूलानि पलांशिकानि क्षुण्णानि धौतानि पलानि चाष्टौ ॥ ६५ ॥
बिल्वं यवान्कोलकुलत्थधान्यफलानि चैकप्रसृतोन्मितानि ।
पयोजलार्द्धाढकयोः शृतं तत्क्षीरावशेषं सितवस्त्रपूतम् ॥ ६६ ॥
वचाशताह्वामरदारुकुष्ठयष्ट्याह्वसिद्धार्थकपिप्पलीनाम् ।
कल्कैर्यवान्या मदनैश्च युक्तं नात्युष्णशीतं गुडसैन्धवाक्तम् ॥ ६७ ॥
क्षौद्रस्य तैलस्य च सर्पिषश्च तथैव युक्तं प्रसृतत्रयेण ।
दद्यान्निरूहं विधिना विधिज्ञस्तं सर्वसंसर्गकृतामयघ्नम् ॥ ६८ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी जड, वांसा, पाषाणभेद, सफेद पुनर्नवा, अजवायन, बला, ढाक और दशमूलकी दश औषधियें इन सबको एक एक पल ले बेलगिरी ८ पल, यव, बेर, कुल्थी, धनियां और मैनफल यह दो दो पल ले। इन सबको २ सेर दूध और ४ सेर जल मिलाकर पकावे। दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस दूधमें वच, सौंफ, देवदारु, कूठ, मुलैठी, सरसों, पीपल, अजवायन और मैनफल इन सबको एक एक कर्ष लेकर बारीक कल्क बना मिलावे। तथा गुड और सेंधानमक मिलावे। और शहद, तेल और घृत यह तीनों दो दो पल मिलावे। सबको मथकर न बहुत शीतल न बहुत गर्म रहनेपर विधिपूर्वक वस्तिप्रयोग करे। इस वस्तिसे सब प्रकारकी द्विदोषज व्याधियें नष्ट होती हैं ॥ ६५-६८ ॥

वातादिभेदसे निरूहणक्रम।

स्निग्धोष्ण एकः पवने निरूहो द्वौ स्वादुशीतौ पयसा च पित्ते ।
त्रयः समूत्राः कटुकोष्णतीक्ष्णाः कफे निरूहा न परं विधेयाः ॥ ६९ ॥

वातव्याधिमें एक समय एक स्निग्ध और उष्ण निरूहण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। पित्तविकारमें मधुर, शीतल और दूधयुक्त एक समय दो निरूहण वस्तियें करना चाहिये। कफजनित व्याधिमें कटु, उष्ण, तीक्ष्ण द्रव्योंसे और गोमूत्रके साथ

एक कालमें ३ निरूहण वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । इससे ज्यादे एक समय वस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ६९ ॥

वातादिभेदसे निरूहणके अनन्तर पथ्य ।

रसेन वाते प्रतिभोजनं स्यात्क्षीरेण पित्ते तु कफे च यूषैः ।
तथानुवास्येषु च बिल्वतैलं स्याज्जीवनीयं फलसाधितञ्च ॥ ७० ॥

वातजनित रोगोंमें निरूहणके पश्चात् मांसरसका पथ्य, पित्तव्याधिमें दूधका पथ्य और कफजनित व्याधिमें कुलथी आदिका यूष देना चाहिये । इसी प्रकार यदि वातव्याधिमें निरूहणके अनन्तर अनुवासन करना पडे तो बिल्वादि दशमूलसे सिद्ध किया तैल, पित्तव्याधिमें जीवनीयगणसे सिद्ध किया तैल और कफव्याधिमें मैनफलआदि गणसे सिद्ध किये तैलका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

इतीदमुक्तं निखिलं यथावद्वस्तिप्रदानस्य विधानमग्र्यम् ।
योऽधीत्य विद्वानिह वस्तिकर्म करोति लोके लभते स सिद्धिम् ॥७१॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने वस्तिसूत्रीयसिद्धि-
र्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार वस्तिके विधानको तथा वस्तिके प्रधान २ योगोंको यथार्थरूपसे कथन कर दिया है । जो विद्वान् इसको पढकर विधिवत् वस्तिकर्मका प्रयोग करता है सो ससारमें सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां वस्तिसूत्रीयसिद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातः स्नेहव्यापादिकां सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम स्नेहव्यापादिकासिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

स्नेहवस्तीन्निबोधेमान्वातपित्तकफापहान् ।
मिथ्याप्रणिहितानाञ्च व्यापदः सचिकित्सिताः ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! अब वात पित्त और कफको शांत करनेवाली स्नेहवस्तियोंकी विधिको श्रवण करो, और इन वस्तियोंके मिथ्यायोग होनेसे जो उपद्रव होतेहैं उनको तथा उनकी चिकित्साको भी सुनो ॥ १ ॥

वातघ्न अनुवासन योग।

दशमूलं बलां रास्नामश्वगन्धां पुनर्नवाम् ।
गुडूच्येरण्डभूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषाम् ॥ २ ॥
शतावरीं सहचरं काकनासां पलांशिकाम् ।
यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मिताम् ॥ ३ ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ।
तैलाढकं समक्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत्॥ ४ ॥

दशमूल, बला, रास्ना, असगन्ध, पुनर्नवा, गिलोय, एरण्डकी जडका छिलका, अजवायन, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, शतावर, कालावांसा और काकनासा यह सब एकएक पल लेवे। जौ, उडद, अलसी, बेर और कुलथी यह प्रत्येक दो दो पल लेवे। इन सबको मिलाकर ४ द्रोण जलमें पकावे। एक द्रोण शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस १ द्रोण क्वाथमें १ आढक तैल, १ आढक दूध, जीवनीयगणकी सम्पूर्ण औषधियोंका एकएक पल कल्क लेवे। फिर सबको मिलाकर पकावे। तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तैलसे अनुवासनवस्ति करे तो सब प्रकारके वात-विकार नष्ट होते हैं ॥ २-४ ॥

आनूपानां वसातद्वज्जीवनीयोपसाधिता ॥ ५ ॥

इसी प्रकार अनूपसंचारी जीवोंकी चर्बीको उपरोक्त द्रव्योंके क्वाथ और जीवनी-यगणके कल्कसे तैलके समान सिद्ध करे। फिर इससे अनुवासन करे तो सम्पूर्ण वातविकार दूर होते हैं ॥ ५ ॥

शताह्वायवबिल्वाम्लैः सिद्धं तैलं समीरणे ।
सैन्धवेनाग्निवर्णेन तप्तञ्चानिलनुद्घृतम् ॥ ६ ॥

सोंफ, जौ और बेलकी गिरिका कल्क, तथा कांजी मिलाकर सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करे। इस तैलके अनुवासन करनेसे वातव्याधियें दूर होती हैं। अथवा सेंधानमकको आगमें तपाकर लाल होनेपर घृतमें बुझावे इस प्रकार कईबार बुझाकर सुहाते सुहाते उस घृतसे अनुवासन वस्ति करे तो सम्पूर्ण वातरोग शान्त होते हैं ६॥

जीवंत्यादि युग्मकस्नेह ।

जीवन्तीं मदनं मेदां श्रावणीं मधुकं बलाम् ।
शताह्वर्षभकौ कृष्णां काकनासां शतावरीम् ॥ ७ ॥
स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शटीं वचाम् ।
पिष्ट्वा तैलं घृतं क्षीरे साधयेत्तच्चतुर्गुणे ॥ ८ ॥
बृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्द्धनम् ।
मूत्ररेतोरजोदोषान् हरेत्तदनुवासनात् ॥ ९ ॥

जीवन्ती, मैनफल, मेदा, गोरखमुण्डी, मुलैठी, बला, सौंफ, ऋषभक, पीपल, काकनासा, शतावर, कौंचके बीज, क्षीरकाकोली, काकडासिंगी, कचूर और वच इन सबका कल्क आधसेर, तेल १ सेर, घी १ सेर दूध ८ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस स्नेहसे कियाहुआ अनुवासन, बृंहण, वातपित्तनाशक, बलको बढानेवाला, वीर्यवर्द्धक, जठराग्निका बल बढानेवाला तथा मूत्र, वीर्य और रजके दोषोंको हरनेवाला होताहै ॥ ७-९ ॥

पित्तनाशक अनुवासनयोग ।

लाभतश्चन्दनाद्यैश्च पिष्टैः क्षीरचतुर्गुणम् ।
तैलपादं घृतं सिद्धं पित्तघ्नमनुवासनम् ॥ १० ॥

ज्वरकी चिकित्सामें जो चन्दनादि तैलके द्रव्य कहे हैं उन सबको अथवा उनमेंसे जितने मिलसकें लेकर कल्क बनावे । यह कल्क १ पाव, तैल १ पाव, घृत १ सेर, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस स्नेहसे अनुवासन करे तो पित्तविकार दूर होते हैं ॥ १० ॥

वातकफजनित रोगनाशक अनुवासन ।

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं बलाम् ।
ह्रीबेरं मधुकं भार्ङ्गीं देवदारु सकट्फलम् ॥ ११ ॥
नागरं पुष्करं मेदां चविकां चित्रकं शटीम् ।
विडङ्गातिविषे श्यामां हरेणुं नीलिनीं स्थिराम् ॥ १२ ॥
बिल्वाजमोदे कृष्णाञ्च दन्तीं रास्नाञ्च पेषयेत् ।
साध्यमेरण्डतैलं वा तैलं वा कफरोगनुत् ॥ १३ ॥
व्रध्नोदावर्त्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ।
आनाहमश्मरीञ्चैव हन्यात्तदनुवासनात् ॥ १४ ॥

सेंधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, निचुल (हिंजुल), बला, मुलैठी, भारंगी, देवदारु, कायफल, सोंठ, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चित्रक, वायविडंग, अतीस, कालीनिशोथ, रेणुका, नीलिनी, शालपर्णी, बेलगिरी, अजमोद, पीपल, दंती, रास्ना इन सबको एकएक कर्ष लेकर कल्क बनावे। इस कल्कसे एरण्डतैल अथवा तिलोंके तेलको सिद्ध करे। इस तेलसे अनुवासनवस्तिकरनेसे कफवातके रोग नष्ट होते हैं तथा बद, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह, वातरक्त, अफारा पथरी ये सब नष्ट होतेहैं॥

कफनाशक तैलयोग।

मदनैर्वाम्लसंयुक्तैर्बिल्वाद्येन गणेन वा।
तैलं कफहरैर्वापि कफघ्नं कल्पयेद्भिषक्॥ १५॥

मैनफलका कल्क और कांजी अथवा बिल्वादि पंचमूलके कल्क और क्काथसे सिद्ध किया तैल अथवा कफनाशक पिप्पल्यादिगणके कल्कऔर क्काथसे सिद्ध किया तैल अनुवासन करनेसे कफविकारोंको नष्ट करता है॥ १५॥

विडङ्गैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृताः।
जातिप्रवालनिर्गुण्डीदशमूलाखुपर्णिकाः॥ १६॥
निम्बपाठासहचरशम्पाककरवीरकम्।
एषां क्काथेन विपचेत्तैलमेभिश्च कल्कितैः॥ १७॥

वायविडंग, एरण्डकी जडकी छाल, हल्दी, पटोलपत्र, त्रिफला, गिलोय, चमेलीके पत्ते, संभालू, दशमूल, दंती, नीमकी छाल, पाठा, कालावांसा, अमलतास और कनेरकी छाल इन सबके कल्क और क्काथसे सिद्ध किया तैल अनुवासनमें प्रयोग करनेसे कफरोग दूर होते हैं॥ १६॥ १७॥

फलबिल्वत्रिवृत्कृष्णारास्नाभूनिम्बदारुभिः।
सप्तपर्णवचोशीरदार्वीकुष्ठकलिङ्गकैः॥ १८॥
लतायष्टिशताह्वाग्निशटीचोरकपौष्करैः।
तत्कुष्ठानि क्रिमीन्मेहानर्शांसि ग्रहणीगदम्॥ १९॥
क्लीबत्वं विषमाग्नित्वं मलं दोषत्रयं तथा।
प्रयुक्तं प्रणुदत्याशु पानाभ्यङ्गानुवासनैः॥ २०॥

मैनफल, बेलकी गिरी, निशोथ, पीपल, रास्ना, चिरायता, देवदारु, सप्तपर्णकी छाल, वच, खस, दारुहल्दी, कूठ, इन्द्रयव, फूलप्रियंगु, मुलैठी, सौंफ, चित्रक, कचूर, चोरक, पोहकरमूल इन सबके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल पान, अभ्यंग

और अनुवासनमें प्रयोग करनेसे कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, बवासीर, ग्रहणी, नपुंसकता, विषमाग्नि, मल और त्रिदोषको नष्ट करता है ॥ १८॥२० ॥

स्नेहवस्तिके गुण।

व्याधिव्यायामकर्माध्वक्षीणाबलनिरौजसाम् ।
क्षीणशुक्रस्य चातीव स्नेहवस्तिर्बलप्रदः ॥ २१ ॥
पादजङ्घोरुपृष्ठस्य कट्याश्च स्थिरतां पराम् ।
जनयेदप्रजानाञ्च प्रजां स्त्रीणां तथा नृणाम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, अन्य श्रमकारक कर्म और मार्ग चलनेसे क्षीण हो-गये हैं वा अन्य किसी मैथुनादि कारणसे क्षीण हो गये हैं, जो मनुष्य निर्बल ओज-रहित और क्षीणवीर्यवाले हैं उनको स्नेहवस्तिका प्रयोग कराना अत्यन्तही बलको देनेवाला है। तथा पांव, जंघा, ऊरु, पीठ और कमरको यह स्नेहवस्ति अत्यन्त दृढ बना देती है। जिन स्त्रीपुरुषोंको सन्तान नहीं होती उनको यह स्नेहवस्ति सन्तानको देनेवाली है। अर्थात् विधिवत् स्नेहवस्ति करनेसे क्षीणता और रजवीर्यके विकार दूर होकर सन्तान होने लगती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

स्नेहवस्तिमें छः व्यापद्।

वातपित्तकफान्यन्नपुरीषैरावृतस्य च ।
अभुक्ते च प्रणीतस्य स्नेहवस्तेः षडापदः ॥ २३ ॥

स्नेहवस्तिके प्रयोगमें मिथ्यायोग होनेसे छः प्रकारकी आपद् अर्थात् विघ्न होता है। जैसे—वस्तिका वातसे आवृत होना, पित्तसे आवृत होना, कफसे आवृत होना, अन्नसे आवृत होना और पुरीषसे आवृत होना तथा विना भोजन किये वस्तिका प्रयोग करनेसे उस द्रव्यकी खाली पेटमें कण्ठकी ओर आकर्षित होना यह छः आपत्तियें स्नेहवस्तिमें होसकती हैं ॥ २३ ॥

इन ६ आपदोंके कारण।

शीतोऽल्पो वाधिके वाते पित्तेऽत्युष्णः कफे मृदुः ।
अतिभुक्ते गुरुर्वर्चःसञ्चयेऽल्पबलस्तथा ॥ २४ ॥
दत्तस्तैरावृतः स्नेहो न यात्यभिभवादधः ।
अभुक्तेनावृतत्वाच्च यात्यूर्ध्वं तस्य लक्षणम् ॥ २५ ॥

बहुत बढीहुई वायुमें शीतल वा अल्प वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य वायुसे आवृत होकर प्रत्यागमन अर्थात् बाहर नहीं निकलता। इसी प्रकार बढेहुए पित्तमें अतिउष्ण वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य पित्तसे आवृत होकर रुक-

जाताहै। एवं कफकी अधिकतामें मृदुवस्तिका प्रयोग करनेसे वह द्रव्य कफसे आवृत होकर बाहर नहीं निकलनेपाता।बहुत भोजन करनेके अनन्तर गुरुवस्तिका प्रयोग करनेसे वह अन्नावृत होजाती है और भारी मलके संचयमें अल्प बल वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्तिद्रव्य मलावृत होजाता है। अत्यंतभूखमें वस्तिकर्म करनेसे वह खालीपेटमें ऊपरकी ओर चढजाताहै।इस प्रकार इन छः व्यापदोंमें वस्ति द्रव्य बाहरको नहीं लौटता॥ २५॥

वातावृतवस्तिका लक्षण।

अङ्गमर्दज्वराध्मानशीतस्तम्भोरुपीडनैः।
पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्यात्स्नेहं वातावृतं भिषक्॥ २६॥

अंगडाई, ज्वर, अफारा, शीत, स्तम्भता, दोनों ऊरुस्थलोंमें पीडा, पार्श्वपीडा, पिण्डलियोंमें वेष्टनकीसी पीडा यह सब लक्षण वातावृत स्नेहवस्तिके हैं। अर्थात वस्तिद्रव्य वायुसे आवृत होजाय तो स्नेहवस्ति करनेके उपरांत यह अंगडाई आदि लक्षण होजाते हैं॥ २६॥

वातावृतवस्तिकी चिकित्सा।

स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तं रास्नापीतद्रुतिल्वकैः।
सौवीरकसुराकोलकुलत्थरससाधितैः॥ २७॥
निरूहैर्निर्हरेत्सम्यक् समूत्रैः पञ्चमूलिकैः।
ताभ्यामेव च तैलाभ्यां सायं भुक्तेऽनुवासयेत्॥ २८॥

वातावृतवस्तिमें वस्तिद्रव्यको बाहर निकालनेके लिये रास्ना, सरलकाष्ठ और लोध्रका कल्क, सौवीरक, सुरा, बेर और कुल्थीका क्वाथ इन सबको मिलाकर एरण्ड-तैलसे स्निग्धकर कांजी और सेंधानमक मिला गर्मगर्म निरूहण करे। अथवा गोमूत्र और पंचमूलके क्वाथसे निरूहणवस्ति करे। इन्हीं दो प्रकारके निरूहण द्रव्योंके क्वाथ कल्कसे सिद्ध किये तैलोंसे भोजन करनेके अनन्तर अनुवासनवस्ति करे॥२७॥२८॥

पित्तावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा।

दाहरागतृषामोहतमकज्वरदूषणैः।
विद्यात्पित्तावृतं स्वादु तिक्तैस्तं वस्तिभिर्हरेत्॥ २९॥

शरीरमें दाह, लालवर्ण, प्यास, मोह, तमकश्वास और ज्वर यह लक्षण स्नेहवस्ति करनेके अनन्तर होजाय तो पित्तावृत स्नेह जानना। इसमें मधुर और पित्तद्रव्योंसे निरूहण कर स्नेहको निकालना चाहिये॥ २९॥

कफावृतस्नेहके लक्षण, चिकित्सा।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः।
संमूर्च्छाग्लानिभिर्विद्याच्छ्लेष्मणा स्नेहमावृतम्॥ ३०॥

तंद्रा, शीत ज्वर, आलस्य, मुखसे लारका गिरना, अरुचि, भारीपन, मूर्च्छा और ग्लानि यह लक्षण स्नेहवस्तिके अनन्तर होजाँय तो कफावृतस्नेह जानना ॥ ३० ॥

कषायकटुतीक्ष्णोष्णैः सुरामूत्रोपसाधितैः ।
फलतैलयुतैः साम्लैर्वस्तिभिस्तं विनिर्हरेत् ॥ ३१ ॥

कफावृतस्नेहमें चरपरे, कडुवे, कसैले और उष्ण द्रव्योंका कल्क, सुरा और गोमूत्रमें मिलाकर उसमें मैनफलका कल्क, तेल और कांजी मिला निरूहण वस्ति करके स्नेहको निकाले ॥ ३१ ॥

अन्नावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा।

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिज्वरशूलाङ्गमर्दनैः ।
आमलिङ्गैः सदाहैस्तं विद्यादत्यशनावृतम् ॥ ३२ ॥

छर्दी, मूर्च्छा, अरुचि, ग्लानि, ज्वर, शूल, अंगडाई, आमके लक्षण और दाह यह सब लक्षण हों तो अन्नावृत स्नेह जानना ॥ ३२ ॥

कटूनां लवणानाञ्च क्काथैश्चूर्णैश्च पाचनम् ।
विरेको मृदुरत्रामविहिता च क्रिया हिता ॥ ३३ ॥

अन्नावृतस्नेहमें कटु और लवण द्रव्यके क्वाथ और चूर्णसे आमदोषको पाचन, करना चाहिये।तथा मृदुविरेचन और आमनाशक क्रिया करना हितकारक है ॥ ३३॥

मलावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा।

विण्मूत्रानिलसङ्गार्त्तिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः ।
स्नेहं विडावृतं ज्ञात्वा स्नेहस्वेदैः सवर्त्तिभिः ॥ ३४ ॥
श्यामाबिल्वादिसिद्धैश्च निरूहैः सानुवासनैः ।
निर्हरेद्विधिना सम्यगुदावर्त्तहरेण च ॥ ३५ ॥

यदि स्नेहवस्ति ग्रहण करनेके अनन्तर विष्ठा, मूत्र और अधोवायुका विबंध हो तथा भारीपन, अफारा और हृदयमें पीडा होय तो विष्ठासे आवृत हुआ स्नेह जानना।मलावृतस्नेहमें उसके निकालनेके लिये स्नेहन, स्वेदन और वर्तिप्रयोग करना चाहिये। तथा काली निशोथका कल्क और बिल्वादि पंचमूलका क्वाथ मिलाकर निरूहण वस्ति करे और इसी कल्क और क्काथके सिद्धकिये तैलका अनुवासन करे। तथा मलावृतस्नेहवस्तिमें उदावर्तनाशक संपूर्ण क्रिया करना हितकारक है ॥ ३४॥ ३५॥

ऊर्ध्वगतस्नेहवस्तिके लक्षण और चिकित्सा।

अभुक्ते शून्यपायौ वा वेगात्स्नेहोऽतिपीडितः ।
धावत्यूर्द्ध्वं ततः कण्ठादूर्द्ध्वेभ्यः खेभ्य एत्यपि ॥ ३६ ॥

विना भोजन किये खाली पेट स्नेहवस्ति करनेसे वह स्नेह शून्यगुदासे पीडित होकर वेगसे ऊपरको गमन करताहै। फिर कण्ठसे ऊपर अर्थात् मुख और नासिकाद्वारा निकलने लगताहै ॥ ३६ ॥

मूत्रश्यामात्रिवृत्सिद्धो यवकोलकुलत्थकान्।
तत्सिद्धतैल इष्टोऽत्र निरूहः सानुवासनः ॥ ३७ ॥

वस्तिका स्नेह ऊर्ध्वगत होनेपर गोमूत्र, दोनों प्रकारके निशोथका कल्क तथा यव, बेर और कुल्थीका क्काथ इन सबको मिलाकर निरूहण करे और इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासनकर्म करे ॥ ३७ ॥

कण्ठादागच्छतः स्तम्भः कण्ठग्रहविरेचनैः।
छर्द्दिघ्नीभिः क्रियाभिश्च तस्य कार्य्यं निवर्त्तनम् ॥ ३८ ॥

यदि ऊर्ध्वगत स्नेह कण्ठद्वारा निकलने लगे तो कण्ठको भीतरकी ओर घूंट आकर्षण करनेके समान दबाकर स्नेहको रोके तथा वमननाशक और विरेचनकारक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ३८ ॥

उपेक्षणीय स्नेह।

यस्य नोपद्रवं कुर्य्यात्स्नेहवस्तिरनिःसृतः।
सर्वोऽल्पो वावृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता ॥ ३९ ॥

जिस मनुष्यके रूक्ष शरीरमें अनुवासन वस्तिद्वारा प्राप्त किया स्नेह रूक्षताके कारण बाहर न निकले तथा कोईउपद्रव भी न करे तो उस मनुष्यके शरीरमें संपूर्ण स्नेह अथवा स्नेहका थोडा भाग होतो उपेक्षा करना चाहिये अर्थात् उसको निकालनेका यत्न न करे॥

स्नेह मुक्तहोनेपर कर्म।

मुक्तस्नेहं द्रवोष्णश्च लघुपथ्योपसेवनम्।
भुक्तवान्मात्रया योज्यमनुवास्य त्र्यहात्त्र्यहात् ॥ ४० ॥

इस प्रकार आवृतस्नेह निकलजानेके अनन्तर उस मनुष्यको मात्रानुसार हलका सुखोष्ण पथ्य सेवन कराना चाहिये फिर तीन तीन दिनके अनन्तर मात्रानुसार अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे ॥ ४० ॥

वस्तिकर्ममें जल।

धान्यनागरसिद्धं हि तोयं दद्याद्विचक्षणः।
व्युषिताय निशाः कल्यमुष्णं वा केवलं जलम् ॥ ४१ ॥

इस मनुष्यको धनियां और सोंठसे सिद्ध किया जल पीनेको देवे अथवा रात्रिमें धनियां और सोंठको जलमें भिगोकर वह जल पीनेको देवे। अथवा केवल गर्मजल पिलावे॥

गर्मजलके गुण ।

स्नेहाजीर्णं जरयति श्लेष्माणं तद्भिनत्ति च ।
मारुतस्यानुलोम्यञ्च कुर्य्यादुष्णोदकं नृणाम् ॥ ४२ ॥
वमने वा विरेके च निरूहे सानुवासने ।
तस्मादुष्णोदकं देयं वातश्लेष्मप्रशान्तये ॥ ४३ ॥

गर्मजल स्नेहके अजीर्णको पचाता है, कफको भेदन करता और वायुको अनुलोमन करताहै । इसलिये वमन, विरेचन, निरूहण और अनुवासनमें कफवातकी शांतिके लिये गर्मजल पिलानाही श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

स्नेहपाचनका काल ।

रूक्षनित्यस्तु दीप्ताग्निर्व्यायामी मारुताशयी ।
वंक्षणश्रोण्युदावर्त्तवातार्त्ताश्च दिने दिने ॥ ४४ ॥
एषाञ्चाशु जरां स्नेहो यात्यम्बु सिकतास्विव ।
अतोऽन्येषां त्र्यहात्प्रायः स्नेहं पचति पावकः ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य नित्य रूक्ष द्रव्योंका सेवन करनेवाले हैं, जिनकी अग्नि दीप्त है, जो नित्य व्यायाम करते हैं, जिनके कोष्ठमें वायुका बल है, जिनके वंक्षण और श्रोणी वातग्रस्त हैं तथा जिनको उदावर्त्त हैं और जो नित्य वातग्रस्त रहते हैं इन सबको दियाहुआ स्नेह इस प्रकार शीघ्र जीर्ण होजाताहै जैसे—बालू (रेत) में डालाहुआ जल शीघ्र शोषण होजाताहै । इनके सिवाय और मनुष्योंकी जठराग्नि स्नेहको प्रायः तीन दिनमें पाचन कर सकती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अनुवासनीय स्नेह विधान ।

न त्वामं प्रणयेत्स्नेहं स ह्यभिष्यन्दयेद्गुदम् ।
सावशेषञ्च कुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति ॥ ४६ ॥

अनुवासन वस्तिमें विना सिद्ध कियाहुआ अर्थात् कच्चा स्नेह कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिये । क्योंकि कच्चे स्नेहसे गुदा अभिष्यन्दित अर्थात् क्लेदित होजाती है । और वस्तिका संपूर्ण स्नेहही मलाशयमें प्रवेश कर देना नहीं चाहिये, उसमें थोडासा स्नेह पिचकारीमें बाकी रहनेदेना उचित है । क्योंकि वस्तिका संपूर्ण स्नेह भीतर चलेजानेपर साथही वायु प्रवेशकर जाता है इसलिये अनुवासन करते समय थोडा स्नेह वस्तिमें बचालेना चाहिये ॥ ४६ ॥

उभयस्नेहप्रयोगका निषेध ।

न चैव गुदकण्ठाभ्यां दद्यात्स्नेहमनन्तरम् ।

उभयस्मात्समं गच्छन्वाय्वग्नीन्दूषयेत्समम् ॥ ४७ ॥

एकही समय गुदाद्वारा अनुवासनस्नेह और मुखद्वारा स्नेहपान इन दोनों स्नेहोंका प्रयोग करनाउचितनहीं।दोनों स्नेहोंका एकसमय प्रयोगकरनेसे जठराग्नि दूषित हो जाती है४७

केवल एक प्रकारकी वस्तिके निरन्तर सेवनका निषेध।

स्नेहवस्तिं निरूहं वा नैकमेवातिशीलयेत् ।
तस्मान्निरूह्यः स्नेह्यः स्यान्निरूढश्चानुवासितः ।
उत्क्लेशाग्निवधौ स्नेहान्निरूहात्पवनाद्भयम् ॥ ४८ ॥
स्नेहशोधनयुक्त्यैव वस्तिकर्म त्रिदोषनुत् ॥ ४९ ॥

स्नेहवस्ति अथवा निरूहणवस्ति इन दोनोंमेंसे किसी एक वस्तिका निरन्तर अकेले ही प्रयोग करना उचित नहीं । क्योंकि, केवल स्नेहवस्तिकाही निरन्तर प्रयोग करते रहनेसे स्नेहद्वारा उत्क्लेशित होकर अग्निका नाश होजाता है । और केवल निरूहण वस्तिकाही प्रयोग करते रहनेसे वायुके बढजानेका भय है । इसलिये जिसको निरूहण वस्तिका प्रयोग करना हो उसको प्रथम अनुवासन वस्तिद्वारा स्निग्ध करना चाहिये और निरूहण वस्तिके अनन्तर फिर अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे । इस प्रकार स्नेह-वस्ति (अनुवासनवस्ति) और शोधनवस्ति (निरूहणवस्ति) का क्रमानुसार प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार युक्तिसे प्रयुक्त की हुई वस्ति तीनों दोषोंको नष्ट करती है ॥

मात्रावस्तिका प्रयोग।

कर्मव्यायामभाराध्वपानस्त्रीकर्षितेषु च ।
दुर्बले वातभग्ने च मात्रावस्तिः सदा मतः ॥ ५० ॥
ह्रस्वायाः स्नेहमात्राया मात्रावस्तिः समो भवेत् ।
यथेष्टाहारचेष्टस्य सर्वकालं निरत्ययः ॥ ५१ ॥
बल्यं सुखोपचर्य्यञ्च सुखं सृष्टपुरीषकृत् ।
स्नेहमात्राविधानं हि बृंहणं वातरोगनुत् ॥ ५२ ॥

जो मनुष्य श्रमकारी कर्म, व्यायाम, भार, मार्गचलनेकी थकावट सवारी और स्त्रीसंग आदि कारणोंसे कर्षित हैं तथा जो दुर्बल और भग्न वातरोगी हैं उनको मात्रा-वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । मात्रावस्ति स्नेहकी लघुमात्राके समान होती है । मात्रावस्तिके अनन्तर यथेष्ट अहारका सेवन करे । मात्रावस्ति किसी कालमें भी किसीप्रकारका उपद्रव नहीं करती तथा बलकारक, सुखसाध्य, सुखकारक, सुखपूर्वक मलको निकालनेवाली होती है । मात्रानुसार स्नेह प्रयोग करनेसे शरीरमें बल आता है और संपूर्ण वातरोग नष्ट होते हैं ॥ ५०-५२ ॥

अध्यायका उपसंहार।

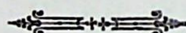
तत्र श्लोकौ-वातादीनां शमायोक्ताः प्रवराः स्नेहवस्तयः।
तेषाञ्चाज्ञप्रयुक्तानां व्यापदः सचिकित्सिताः॥ ५३॥
प्राग्भोज्यं स्नेहवस्तेर्यद्ध्रुवं येऽर्हास्त्र्यहाश्च ये।
स्नेहवस्तिविधिश्चोक्तो मात्रावस्तिविधिस्तथा॥ ५४॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने स्नेहव्यापादिकासिद्धि-
र्नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस स्नेह व्यापादिका सिद्धि नामक अध्यायमें वातादि दोषोंकी शान्तिके लिये उत्तम २ स्नेह वस्तियोंका वर्णन उनके अयोग्य रीतिपर प्रयोग करनेसे उत्पन्न होनेवाले विकार, उनकी चिकित्सा तथा वस्ति प्रयोगसे प्रथम जिस प्रकारका आहार करना चाहिये जो स्नेहवस्ति प्रयोग करनेके योग्य हैं जिनको तीन दिनमें स्नेहकी मात्रा पचती है तथा स्नेहवस्तिकी विधि और मात्रावस्तिकी विधि यह संपूर्ण वर्णन कियागया है॥ ५३॥ ५४॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-
निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-
भाषाटीकायां स्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः।



अथातो नेत्रवास्तिव्यापादिकासिद्धिं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम नेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

अथ नेत्राणि वस्तींश्च शृणु वर्ज्यानि कर्मसु।
नेत्रस्याज्ञप्रणीतस्य व्यापदः सचिकित्सिताः॥ १॥

जिस प्रकारकी वस्तिनेत्र (वस्तिकी मुखनाल), और वस्तिएं, वस्तिकर्ममें वर्जनीय हैं, उनका श्रवण करो और अज्ञानी वैद्यके हाथसे उनके प्रयोग करनेसे जो जो बिगाड होते हैं उनको तथा उनकी चिकित्साको श्रवण करो॥ १॥

त्याज्य वस्तिनेत्र।

ह्रस्वं दीर्घं तनु स्थूलं जीर्णं शिथिलबन्धनम्।
पार्श्वच्छिद्रं तथा वक्रमष्टौ नेत्राणि वर्जयेत्॥ २॥

प्रमाणसे छोटा, प्रमाणसे बडा, पतला, मोटा, पुराना, शिथिलबंधन, जिसके किनारोंमें छिद्र हों और टेढा यह आठप्रकारके वास्तिनेत्र (वस्तिनलके अग्रभाग) त्याज्य होते हैं अर्थात् वस्तिकर्ममें ग्रहणकरने योग्य नहीं॥ २॥

उनके उपद्रव।

अप्राप्त्यतिगातिक्षोभकर्षणक्षणनस्रवाः।
गुदपीडा गतिर्जिह्मा तेषां दोषा यथाक्रमम्॥ ३॥

यदि वस्तिनल छोटा हो तो यथास्थान पहुंच नहीं सकता। लंबा होनेसे अपने योग्य स्थानसे आगे बढकर हानि करताहै। बहुत पतला वस्तिनेत्र होनेसे यथोचित कार्य नहीं कर सकता। मोटा होनेसे उसके मुखद्वारा मल आकर्षित होने लगता है। जीर्ण नल गुदामें ही टूट जाता है, शिथिलबंधन होनेसे नल वस्तिसे खुलजाताहै या वस्ति द्रव्य गिरने लगताहै। छिद्रयुक्त वस्तिनल होनेसे गुदामें पीडा होती है। और टेढे नलसे वस्तिकी गति भी टेढी होजातीहै। इस लिये इस आठ प्रकारके वस्तिके मुखनलोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥ ३॥

त्याज्य वस्ति।

मांसलच्छिद्रविषमस्थूलजालकवातलाः।
छिन्नः क्लिन्नश्च तानष्टौ वस्तीन् कर्मसु वर्जयेत्॥ ४॥

मांसल, छिद्रयुक्त, विषम, स्थूल, जालक, वातल (वायु भराहुआ), छिन्न और क्लेदयुक्त यह आठ प्रकारके वस्तिपुटक ग्रहण नहीं करने चाहिये॥ ४॥

विषमादि वस्तियोंके विकार।

गतिवैषम्यविस्रत्वस्रावदौर्गन्ध्यविट्स्रवाः।
फेनिलच्युतधार्य्यत्वं वस्तेः स्याद्वास्तिदोषतः॥ ५॥

वस्तिपुट विषम हो तो वस्तिकी गति विषम होती है। मांसल होनेसे विस्र (दुर्गंध) युक्त होताहै। छिद्रयुक्त होनेसे स्राव होता है। स्थूल होनेसे यथोचित हाथसे पकड कर प्रधमन नहीं हो सकता जालक होनेसे स्रवताहै। वातल होनेसे वस्तिद्रव्यमें झाग होजातीहै। छिन्न होनेसे वस्तिद्रव्य बाहिर गिर पडताहै। और क्लिन्न होनेसे वस्ति द्रव्य यथोचित निकलता नहीं वस्तिमें रहजाताहै। इसलिये इन आठ प्रकारकी वस्तिके पुटक त्याज्य होते हैं॥ ५॥

वस्तिके प्रणेताके दोष ।

सवातातिद्रुतोत्क्षिप्ततिर्य्यग्गुक्षिप्तकम्पिताः ।

अतिबाह्यगमन्दातिवेगदोषाः प्रणेतृतः ॥ ६ ॥

वस्ति प्रयोग करनेवाले वैद्यकी अज्ञतासे वस्तिकर्ममें यह उपद्रव होते हैं । जैसे-वस्तिद्रव्यके साथ वस्तिमेंसे वायुका प्रवेश होना, अत्यन्त जल्दी वस्ति करना, ऊपरको उठाकर वस्तिका प्रयोग करना, तिरछी वस्तिका प्रवेश करना, वस्तिकर्म करते समय हाथसे वस्तिको कंपादेना, वस्तिको मंदगातिसे और मंदवेगसे प्रवेश करना, बस्तिका अति शीघ्र वेग प्रचलित करना यह वस्तिकर्म करनेवाले वैद्यके दोष हैं ॥६

इनके लक्षण और उपाय ।

अनुच्छ्वासानुबन्धे वा दत्तो निश्शेष एव वा ।

प्रविश्य कुपितो वायुः शूलतोदकरो भवेत् ।

तत्राभ्यङ्गो गुदे स्वेदो वातघ्नान्यशनानि च ॥ ७ ॥

वस्तिकर्म करनेसे पहिले वस्तिको दबाकर उसके भीतरकी संपूर्ण वायुको निकाल देना चाहिये । और वस्तिकर्म करनेके अनन्तर किंचित् वस्तिद्रव्य वस्तिमें रहजानेपर उसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये ऐसा न करनेसे वस्तिकी वायु पेटमें भरकर शूल और चमकेको उत्पन्न करती है ऐसा होनेपर तैलाभ्यंग मलद्वारमें स्वेदन तथा वातनाशक अन्नपानोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

द्रुतं प्रणीते निष्कृष्टे सहसोत्क्षिप्त एव वा ॥ ८ ॥

स्यात्कटीगुदजङ्घार्त्ति वस्तिस्तम्भोरुभेदनम् ।

भोजनं तत्र वातघ्नं स्नेहाः स्वेदाः सवस्तयः ॥ ९ ॥

वस्तिका अतिशीघ्र प्रयोग करनेसे अथवा शीघ्रता पूर्वक खींचलेनेसे वा सहसा वस्ति द्रव्यको शीघ्र वेगसे उत्क्षेपित करनेसे कमर, गुदा और जंघामें पीडा उत्पन्न होजाती है तथा वस्तिका स्तम्भ और ऊरुओंमें भेदनकीसी पीडा होती है । ऐसा होनेपर वातनाशक द्रव्योंका भोजन तथा वातनाशक स्नेह, स्वेद और वातनाशक वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

तिर्य्यग्बन्धावृतद्वारे बद्धे वापि न गच्छति ।

नेत्रं तदूर्द्ध्वं निष्कृष्य संशोध्य च पुनर्नयेत् ॥ १० ॥

वस्तिके तिरछा बन्धन होनेसे वा वस्तिको तिरछा प्रवेश करनेसे वस्तिकी नलीका द्वार बंद होकर वस्तिद्रव्य गमन नहीं करता । ऐसा होनेपर अथवा अन्य किसी प्रकार वस्ति द्रव्य गमन करनेसे रुकजाय तो वस्तिकी नालको गुदासे निकालकर नलकीको

स्वच्छ, शुद्धकर लेवे। जब उसमेंसे यथोचित वस्तिद्रव्य चलने लगे तो फिर विधिवत् वस्तिप्रयोग करे ॥ १० ॥

पीड्यमानेऽन्तरामुक्ते गुदे प्रतिहतोऽनिलः।
उरःशिरोरुजं सादमूर्वोश्च जनयेद्बली।
वस्तिः स्यात्तत्र बिल्वादिफलश्यामानि मूत्रवान् ॥ ११ ॥

यदि वस्तिकर्म करते करते वस्तिक्रिया समाप्त होनेसे पहिलेही अधबीचमें वस्ति निकाल लीजाय तो गुदामें प्रतिहत होकर छाती और शिरमें पीडा जांघों और ऊरुस्थलोंका सो सा जाना इन उपद्रवोंको वह कुपित हुआ बलवान् वायु उत्पन्न करता है। ऐसा होनेपर बिल्वादि पंचमूल, मैनफल, निशोथ और गोमूत्रके साथ निरूहण वस्ति करे ॥ ११ ॥

स्याद्दाहो दवथुः शोफः कम्पनाभिहते गुदे।
कषायमधुराः शीताः सेकास्तत्र सवस्तयः ॥ १२ ॥

वस्तिप्रयोग करते समय वस्तिको कंपादेनेसे गुदामें चोट लगजाती है। उससे सूजन, दाह और संताप उत्पन्न हो जाताहै। ऐसा होनेपर कसैले, मधुर और शीतल द्रव्योंसे परिसेचन, अनुवासन और निरूहण करना हितकारक है ॥ १२ ॥

अतिमात्रप्रणीतेन नेत्रेण क्षणनाद्वलेः ॥ १३ ॥
स्याच्छर्दिदाहनिस्तोदगुदवर्चःप्रवर्त्तनम्।
तत्र सर्पिः पिचुः क्षीरं पिच्छावस्तिश्च शस्यते ॥ १४ ॥

वस्तिके मुखनाल अत्यन्त जोरसे प्रवेश करनेसे गुदाकी वलियोंको छिल देती है। जिससे पीडा, दाह और सूई चुभनेकीसी पीडाके साथ मल निकलने लगताहै। ऐसा होनेपर औषधियोंसे सिद्ध किये घृत, व्रणनाशक घृत या तेलोंमें भिगोया हुआ फोहा, दूध और अतिसारमें कही हुई पिच्छावस्तिका प्रयोग हितकारी होताहै ॥ १४ ॥

न वा वहति मन्दस्तु बाह्यस्त्वाशु निवर्त्तते।
स्नेहस्तत्र पुनः सम्यक्प्रणेयः सिद्धिमिच्छता ॥ १५ ॥

वस्ति बहुत धीरे २ प्रधमन करनेसे भीतरको नहीं जाती, वस्तिनलके निकालनेके अनन्तर शीघ्रही बाहर लौट आती है। ऐसा होनेपर सिद्धिकी इच्छावाला वैद्य फिर दूसरीवार विधिवत् स्नेहवस्तिका प्रयोग करे ॥ १५ ॥

अतिप्रपीडितः कोष्ठे तिष्ठत्यायाति वा गलम्।
तत्र वस्तिर्विरकेश्च गलपीडादि कर्म च ॥ १६ ॥

वस्तिको अत्यन्त जोरसे एकहीबार दबाकर वस्तिकर्म करनेसे वस्तिद्रव्य आमाशयमें जाकर उपस्थित होजाताहै अथवा कण्ठकी ओर गमन करताहै। ऐसा होनेपर शोधन वस्ति. विरेचन और गलकी ओरसे श्वासद्वारा वेगको नीचेकी ओर दबाना चाहिये॥

उपसंहार।

तत्र श्लोकः–नेत्रवस्तिप्रणेतॄणां दोषानेतान्सभेषजान्।
विद्वांस्तत्त्वेन मतिमान्वस्तिकर्माणि कारयेत्॥ १७॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने नेत्रवस्तिव्यापादिका-
सिद्धिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस नेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिनामक अध्यायमें नेत्रके दोष और वस्तिके दोष, वस्तिके प्रणेताके दोष, वस्तिकर्ममें इन उपरोक्त दोषोंकी चिकित्सा वर्णन कीगई है। बुद्धिमान् वैद्य इन सबको यथोचित रीतिपर समझकर वस्तिका प्रयोग करे॥१७॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासि-
वैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां
नेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिर्नाम पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः।



अथातो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

अथ शोधनयोः सम्यग्विधिमूर्द्धानुलोमयोः।
असम्यक्कृतयोश्चैव दोषान्वक्ष्यामि सौषधान्॥ १॥

अब वमन और विरेचनके भले प्रकार प्रयोगकी विधि और मिथ्यायोगके दोष तथा उनकी चिकित्साको वर्णन करते हैं॥ १॥

शोधनका समय।

अत्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः।
तदन्तरे प्रावृडाद्यास्तेषां साधारणास्त्रयः॥ २॥
प्रावृट्शुचिनभौ ज्ञेयौ शरदूर्जसहौ पुनः।

तपस्यश्च मधुश्चैव वसन्तः शोधनं प्रति।
एतानृतून्विचिन्त्यैव दद्यात्संशोधनं नृणाम् ॥ ३ ॥

ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर इन तीन ऋतुओंमें क्रमसे अत्यंत गर्मी, अत्यन्त वर्षा और अत्यन्त शीत होती है। इन तीन ऋतुओंकी सन्धिमें प्रावट्, शरद् और वसन्त इन तीन ऋतुओंमें वर्षा, शीत और उष्णतामें प्रायः सम होती हैं। इनमें आषाढ और श्रावण इन दो महीनोंको प्रावृट् कहते हैं। कार्तिक और मार्गशीर्षको शरदृऋतु कहते हैं फाल्गुन और चैत्र यह वसन्तऋतु है ये तीन ऋतुएं शोधनके लिये हितकारी कही गई हैं, परन्तु इन ऋतुओंमें भी सर्दी, गर्मी विचारकर, देश, काल आदि भेदसे मनुष्योंकी प्रकृति देखकर वमन कराना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्य व्याधौ व्याधिवशेन तु।
कर्मणां वमनादीनामन्तरेष्वन्तरेषु च ॥ ४ ॥

स्वस्थ मनुष्यको ऋतु आदि विचारकर वमन, विरेचन कराना चाहिये। परन्तु रोगी मनुष्यको यदि किसी व्याधिवश वमन, विरेचन करना पडे तो संपूर्णही ऋतुओंमें कर सकते हैं ॥ ४ ॥

स्नेहनस्वेदनादि क्रम।

स्नेहस्वेदौ प्रयुञ्जीत स्नेहाद्यन्ते प्रयोजयेत्।
विसर्पपिडकाशोफकामलापाण्डुरोगिणः।
अभिघातविषार्त्तांश्च नातिस्निग्धान्विरेचयेत् ॥ ५ ॥

वमन विरेचन करानेसे पहिले स्नेहन और स्वेदन करे। और स्नेहन स्वेदनके अनन्तर वमनादिकर्म कराना चाहिये। परन्तु विसर्प, पिडिका, सूजन, कामला, पाण्डु, अभिघात और विषार्त्त मनुष्योंको विनाही अतिस्निग्ध किये वमन विरेचन देना चाहिये॥

नातिस्निग्धशरीराय दद्यात्स्नेहविरेचनम्।
स्नेहोत्क्लिष्टशरीराय रूक्षं दद्याद्विरेचनम् ॥ ६ ॥

अत्यन्त स्निग्ध शरीरवाले मनुष्यको स्नेह विरेचन देना उचित नहीं। स्नेहसे उत्क्लेशित मनुष्यको रूक्ष विरेचन देना चाहिये ॥ ६ ॥

शोधनद्रव्यपानका समय।

स्नेहस्वेदोपपन्नेन जीर्णे मात्रावदौषधम्।
एकाग्रमनसा पीतं सम्यग्योगाय कल्पते ॥ ७ ॥

स्नेहन और स्वेदनसे उपपन्न हुआ मनुष्य प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होनेपर

प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो मात्रानुसार शोधन औषधिको पीवे तो वह औषधि वमन विरेचनके उत्तम प्रयोगको करनेवाली होती है ॥ ७ ॥

स्नेहन, स्वेदन और शोधनमें दृष्टान्त।

स्निग्धात्पात्राद्यथा तोयमयत्नेन प्रणुद्यते।
कफादयः प्रणुद्यन्ते स्निग्धाद्देहात्तथौषधैः ॥ ८ ॥

जिस प्रकार चिकने पात्रमेंसे विना किसी विशेष यत्नके जल छूटजाता है उसी प्रकार स्निग्धदेह मनुष्यको शोधन औषध प्रयोग करनेसे कफादिक शीघ्र छूटजाते हैं ८

आर्द्रं काष्ठं यथा वह्निर्विष्यन्दयति सर्वतः।
तथा स्निग्धस्य वै दोषान्स्वेदो विष्यन्दयेत्स्थिरान् ॥ ९ ॥

जैसे गीली लकडीको आगमें डालनेसे अग्निके तेजसे वह सब जगहसे विष्यन्दित (गीले स्रावयुक्त) हो जाती है उसी प्रकार स्निग्ध मनुष्यके स्थिर हुए दोषोंको स्वेदन करना चलायमान कर देता है ॥ ९ ॥

क्लिष्टं वासो यथोत्क्लेश्य मलैः संशोध्यतेऽम्भसा।
स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्य शोध्यते शोधनैर्मलः ॥ १० ॥

जैसे सज्जी आदि क्षारसे उत्क्लेशितहुआ मैल साधारण जलके साथ धोनेसे निकल-जाता है उसी प्रकार स्नेहन और स्वेदनसे उत्क्लेशित हुआ मल वमन, विरेचनद्वारा शरीरसे अलग हो जाता है अर्थात् निकलजाता है ॥ १० ॥

अजीर्णमें शोधनपीनेके दोष।

अजीर्णे वर्द्धते ग्लानिर्विबन्धश्चैव जायते।
पीतं संशोधनञ्चैव विपरीतं प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥

अजीर्णमें वमन विरेचनकारक द्रव्यके पीनेसे ग्लानिकी वृद्धि होती है और विबन्ध उत्पन्न हो जाता है तथा उस पिये हुए शोधन द्रव्यकी विपरीत गति होती है। अर्थात् वमनकारक द्रव्य अधोगामी हो जाता है और विरेचनकारक द्रव्य ऊर्ध्वगामी हो जाता है। इसलिये प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होजानेपर शोधनकर्त्ता द्रव्य पीना चाहिये ॥ ११ ॥

मात्रावत् औषध।

अल्पमात्रं महावेगं बहुदोषहरं सुखम्।
लघुपाकं सुखास्वादं प्रीणनं व्याधिनाशनम् ॥ १२ ॥
अविकाराविपन्नञ्च नातिग्लानिकरञ्च तत्।
गन्धवर्णरसोपेतं विद्यान्मात्रावदौषधम् ॥ १३ ॥

जो औषध अल्पमात्रा होनेपर भी महावेगवाली हो तथा सुखपूर्वक बहुदोषोंको हरनेवाली, लघुपाकी, सुखपूर्वक खायी जानेवाली, प्रीतिकारक, व्याधिनाशक, विकाररहित, उपद्रवोंको न करनेवाली, अधिक ग्लानिको न करनेवाली, गंध, वर्ण और रससंपन्न हो उसको मात्रावत औषध कहतेहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

औषधपानक्रम।

विधूय मानसान् दोषान् कामक्रोधभयादिकान्।
एकाग्रमनसा पीतं सम्यग्योगाय कल्पते ॥ १४ ॥

औषध पीनेके समय काम, क्रोध, भय आदिक मनके दोषोंको त्यागकर एकाग्रचित्त हो औषध पीना चाहिये। इस प्रकार औषध पीनेसे औषधका सम्यक् योग होता है ॥ १४ ॥

शोधनपीनेसे प्रथमदिनमें आहार।

नरः श्वो वमनं पाता भुञ्जीत कफवर्द्धनम्।
सुजरं द्रवभूयिष्ठं लघु शीतं विरेचनम्।
उत्क्लिष्टाल्पकफत्वेन क्षिप्रं दोषाः स्रवन्ति हि ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यको दूसरे दिन प्रातःकाल वमन करना हो उसको प्रथम दिन कफवर्द्धक आहार सेवन कराना चाहिये। और जिस मनुष्यको दूसरे दिन विरेचन कराना हो उसको जल्दी पचनेवाला, अधिक पतला, हल्का और शीतल आहार कराना चाहिये। इस प्रकार क्रम पालन करनेसे कफका उत्क्लेश होकर वमनद्वारा शीघ्र दोष निकल जातेहैं और कफ क्षीण होकर विरेचनद्वारा निकलजाते हैं ॥ १५ ॥

शुद्धिके लक्षण।

पीतौषधस्य तु भिषक् शुद्धिलिङ्गानि लक्षयेत्।
ऊर्द्ध्वं कफानुगे पित्ते विट्पित्तेऽनुकफे त्वधः ॥ १६ ॥

वमन, विरेचनकारक औषध पीनेके अनन्तर वैद्य शुद्धिके लक्षणोंकी परीक्षा करे। जैसे-वमनकारक औषध पीनेके अनन्तर प्रथम कफ उदीर्ण होकर निकलजाय फिर वमनके अंतमें पित्त निकले तो शुद्ध वमन होगई ऐसा जानना। और विरेचन द्रव्य पीनेके अनन्तर पहिले मल फिर पित्त और अन्तमें कफ अर्थात् आंव निकलजाय तो विरेचनसे रोगीका देह शुद्ध होगया ऐसा जानना ॥ १६ ॥

वमनमें ज्ञातव्य।

हृतदोषं वदेत्कार्श्यं दौर्बल्यं चेतसलाघवम्।
वामयेत्तु ततः शेषमौषधं न त्वलाघवे ॥ १७ ॥

स्तैमित्येऽनिलसङ्गे च निरुद्गारेऽपि वामयेत्।
आलाघवादणुत्वाच्च कफस्याग्निकरं भवेत्।
वमिते वर्धते वह्निः शमं दोषा व्रजन्ति हि ॥ १८ ॥

यदि वमन करानेसे रोगीका शरीर कृश, दुर्बल और हलका होजाय तो फिर और बमन करानेकी आवश्यकता नहीं है। उस समय उसके आमाशयमें बाकी रही हुई जो औषध है उसको वमनद्वारा निकलजाने देवे। यदि रोगीके शरीरमें भारीपन रहे और आमाशय दोषसे भराहुआ प्रतीत हो तो उसको और वमन कराना चाहिये। यदि शरीरमें स्तैमित्य, अधोवायु और डकारका रुकना लक्षण हो तो भी उसको वमन कराना चाहिये। जबतक शरीरमें हलकापन न आये और कफका थोडा अंश भी बाकी रहे तबतक वमन करातेही रहना चाहिये शुद्ध वमन होजानेके अनन्तर जठराग्निकी वृद्धि होती है। वमन करानेसे अग्निकी वृद्धि होकर दोष शान्त होजाते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

वमितं लङ्घयेत्सम्यग्जीर्णलिङ्गान्यलक्षयन्।
तानि दृष्ट्वा तु पेयादिक्रमं कुर्य्यान्न लङ्घनम् ॥ १९ ॥

यदि वमन करानेपर भी कफके जीर्ण होनेके लक्षण दिखाई न दें तो बाकी रहे दोषको पाचन करनेके लिये रोगीको लंघन कराना चाहिये। जब लंघनद्वारा कफका परिपाक होकर कफ नष्ट होजाय तो उसको लंघन बन्द करके पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये ॥ १९ ॥

शोधनके अन्तमें क्रम।

संशोधनाभ्यां शुद्धस्य हृतदोषस्य देहिनः।
यात्यग्निर्मन्दतां तस्मात्क्रमं पेयादिमाचरेत् ॥ २० ॥

वमनविरेचनद्वारा शुद्ध देह और दोषरहित होनेपर मनुष्यकी अग्नि मंद होजाती है अर्थात् शुद्धदेह होनेसे जठराग्निभी अल्प रहजातीहै उस समय शुद्ध मनुष्यको पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये ॥ २० ॥

कफपित्ते विशुद्धेऽल्पं मद्यपे वातपैत्तिके।
तर्पणादिक्रमं कुर्य्यात्पेयाभिष्यन्दयेद्धितान् ॥ २१ ॥

मद्य पीनेवाले. वातपित्तप्रकृतिवाले मनुष्योंको कफपित्तके अल्प शुद्ध होनेपर पेयादिक्रमके विनाही अल्पमात्रासे तर्पण आदि क्रमसे उपचार करे क्योंकि ऐसे मनुष्योंको पेया पिलाना उनके शरीरको अभिष्यंदित करताहै ॥ २१ ॥

औषधजीर्णके लक्षण।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णोर्जोमनस्विता।
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ २२ ॥

वायुका अनुलोमन होना, स्वस्थता, क्षुधा, प्यास, पराक्रम, मनकी प्रसन्नता, इन्द्रियोंमें हल्कापन, डकारका शुद्ध होजाना यह औषधी जीर्ण होनेके लक्षण हैं ॥२२॥

अजीर्ण औषधके लक्षण।

क्लमो दाहोऽङ्गमर्दश्च भ्रममूर्च्छा शिरोरुजा।
अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ २३ ॥

क्लान्ति, दाह, अंगडाई, भ्रम, मूर्च्छा, शिरमें पीडा, अरति और बलकी हानि यह जीर्णाविशेष (विना जीर्ण हुई) औषधके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

अकालेऽल्पातिमात्रश्च पुराणं न च भावितम्।
असम्यक्संस्कृतश्चैव व्यापद्येतौषधं ध्रुवम् ॥ २४ ॥

जो औषध अकालमें (वेसमयमें) पीयाजाय अथवा अधिक मात्रा वा अल्पमात्रासे पीयाजाय तथा पुरानी, विना भावना दीहुई अथवा यथोचित संस्कारकी हुई न हो वह औषध अवश्य उपद्रवको करतीहै ॥ २४ ॥

अयोग और अतियोगके १० उपद्रव।

आध्मानं परिकर्त्तिश्च स्रावो हृद्गात्रयोर्ग्रहः।
जीवादानं सविभ्रंशस्तम्भः सोपद्रवः क्लमः।
अयोगादतियोगाच्च दशैता व्यापदो मताः ॥ २५ ॥

अफारा, परिकर्त्तिका, मुखसे लार बहना, हृदय और अंगोंमें जकडन, जीवादान (जीवसंज्ञक रक्तका निकलना अथवा जीवन शक्तिका क्षीण होना), गुदाका विभ्रंश, स्तम्भ, उपद्रव (विरेचनका ऊर्ध्वगमनादिहोना) और क्लान्ति यह दश उपद्रव शोधनके अयोग और अतियोगसे उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥

परिचारिकादिदोष।

प्रेष्यभैषज्यवैद्यानां वैगुण्यादातुरस्य च।
शुद्धोत्क्लिष्टेन दुर्गन्धमहृद्यमतिबाध्यते ॥ २६ ॥

परिचारक, औषध, वैद्य और रोगीकी विगुणता (दुष्टता) के कारण शुद्ध दोष भी उत्क्लेशित होकर दौर्गंध्य और हृदयकी अप्रियताको उत्पन्न कर कष्टके देनेवाले होजाते हैं ॥ २६ ॥

योगातियोगायोग।

योगः सम्यक्प्रवृत्तिः स्यादतियोगोऽतिवर्त्तनम् ।
अयोगः प्रातिलोम्येन न चाल्पं वा प्रवर्त्तनम् ॥ २७ ॥

औषधका यथोचित योग होनेसे दोष भले प्रकार निकलजातेहैं। और अतियोग होनेसे दोष अत्यंत निकलते हैं। तथा अयोग होनेसे दोष प्रतिलोमी होकर या तो बिल्कुल नहीं निकलते या निकले भी तो बहुत थोडे निकलते हैं ॥ २७ ॥

अजीर्णविरेचनका दोष।

श्लेष्मोत्क्लिष्टेन दुर्गन्धमहृद्यं नाति वा बहु ।
विरेचनमजीर्णे च पीतमूर्द्धं प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥

पहिले दिनका अजीर्ण होनेपर यदि विरेचन कारक औषधि पान कीजाय तो वह वमनद्वारा निकलने लगती है और कफके उत्क्लेश होनेसे अल्प अथवा अधिक दुर्गंधता और हृदयग्लानि होतीहै ॥ २८ ॥

वमनका अयोग।

क्षुधार्त्तमृदुकोष्ठाभ्यां स्वल्पोत्क्लिष्टकफेन वा ।
तीक्ष्णं पीतं स्थितं क्षुब्धं वमनं स्याद्विरेचनम् ।
अयोगे तत्र कर्त्तव्यं समासेनाभिधीयते ॥ २९ ॥
प्रातिलोम्येन दोषाणां हरणात्तेष्वकृच्छ्रतः ।
अयोगसंज्ञे कृच्छ्रेण न चागच्छति चाल्पशः ॥ ३० ॥

जिस मनुष्यको अति भूख लगी हो, जिसका कोठा बहुत नर्म हो, जिसका कफ, यथोचित उत्क्लेशित न हुआ हो, उसको वमनकारक तीक्ष्ण औषधि पिलाई हुई उदीर्ण न होकर और क्षुभित होकर विरेचनद्वारा निकलने लगतीहै। ऐसा होनेपर यद्यपि वामक औषध विरेचनद्वारा भी निकल जाता है तौ भी वह वमनका अयोगही कहाजाता है। क्योंकि ऐसे समय दोष कष्टसे निकले या अल्प निकलते हैं अथवा वमनके मार्गसे नहीं निकलते इस लिये उनको वमनका अयोगही कहना चाहिये ॥

पीतौषधो न शुद्धश्चेज्जीर्णे तस्मिन्पुनः पिबेत् ।
औषधं न त्वजीर्णेऽन्यद्भयं स्यादतियोगतः ॥ ३१ ॥

प्रथम पान कीहुई औषधसे रोगी शुद्ध न हुआ हो तो उस औषधके जीर्ण होनेपर फिर उसको दुबारा औषधि पिलाना चाहिये। यदि प्रथम औषधके विना जीर्णहुए फिर दुबारा औषधि पिला दीजाय तो उससे विरेचनके अतियोग होनेका भय है ३१

कोष्ठस्य गुरुतां ज्ञात्वा लघुत्वं बलमेव च।
अयोगे मृदु वा दद्यादौषधं तीक्ष्णमेव वा ॥ ३२ ॥

यदि शोधनका अयोग हुआ हो तो उसमें कोष्ठकी गुरुता, लघुता और बलाबल विचारकर फिर मृदु अथवा तीक्ष्ण औषधका प्रयोग करे ॥ ३२ ॥

वमनं न तु दुश्छर्द्यां दुष्कोष्ठं न विरेचनम्।
पाययेतौषधं भूयो हन्यात्पीतं पुनर्हितौ ॥ ३३ ॥

जिस मनुष्यको वमन अति कष्टतासे होती हो उसको वमन नहीं कराना चाहिये। और जिसका अत्यन्त कठोर कोठा हो उसको विना नम्रकोष्ठ किये विरेचन नहीं देना चाहिये। इनको वमन, विरेचनकी औषध पिलानेसे वमन, विरेचन नहीं होते। उनके अयोगमें फिर शोधक औषध देनेसे शोधन तो नहीं होता परन्तु इनके प्राणोंकें नाश होनेका भय होता है ॥ ३३ ॥

विरेचनका प्रयोग।

अस्निग्धास्विन्नदेहस्य रूक्षस्यानवमौषधम्।
दोषानुत्क्लिश्य निर्हर्तुमशक्तं जनयेद्गदान् ॥ ३४ ॥
विभ्रंशं श्वयथुं हिक्कां तमसो दर्शनं भृशम्।
पिण्डिकोद्वेष्टनं कण्डूमूर्वोः सादं विवर्णताम् ॥ ३५ ॥

जो स्निग्ध और स्वेदित न कियागया हो तथा रूक्ष शरीरवाला हो उसको पुरानी औषध शोधनके लिये दीजाय तो वह औषध केवल दोषोंको तो उत्क्लेशित करदेती है परन्तु हीनवीर्य होनेसे दोषोंको यथोचित निकाल नहीं सकती। फिर दोषोंके उत्क्लेशित होनेसे वह विना निकले दोष रोगोंको उत्पन्न करते हैं। जैसे-विभ्रंश, सूजन, हिचकी, अन्धकार दिखाई देना, पिण्डलियोंका उद्वेजन, खुजली, ऊरुओंका सुन्नसा होजाना और विवर्णता इन रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

स्निग्धस्विन्नस्य चात्यल्पं दीप्ताग्नेर्जीर्णमौषधम्।
शीतैर्वा स्तम्भयेत्सामे दोषानुत्क्लिश्य नाहरेत् ॥ ३६ ॥
तानेव जनयेद्रोगान्न योगः सर्व एव सः।
विज्ञाय मतिमांस्तत्र यथोक्तां कारयेत् क्रियाम् ॥ ३७ ॥

रोगीको स्नेहन और स्वेदन करनेपर भी यदि अल्पमात्रा दी जाय अथवा दीप्त अग्नि होनेके कारण औषध जीर्ण होजाय या शीतल उपचार करनेसे अथवा बढी हुई आमद्वारा वह औषध स्तंभित होजाय तो वह दोषोंको उत्क्लेशित तो करदेती है

परन्तु निकाल नहीं सकती तथा उपरोक्त विभ्रंश आदि रोगोंको उत्पन्न करती है और शोधनका संपूर्ण रूपोंसे अयोग होता है। इस प्रकार अयोगोंको बुद्धिमान् वैद्य यथोचित समझकर निम्नालिखित क्रिया करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शोधनके अयोगमें कर्तव्य।

तं तैललवणाभ्यक्तं स्विन्नं प्रस्तरसङ्करैः।
पाययेत पुनर्जीर्णे समूत्रैर्वा निरूहयेत् ॥ ३८ ॥
निरूढश्च रसैर्धन्वैर्भोजयित्वाऽनुवासयेत्।
फलमागधिकादारुसिद्धतैलेन मात्रया।
स्निग्धं वातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णेन शोधयेत् ॥ ३९ ॥

शोधनका अयोग होनेपर नमकयुक्त तेलकी मालिशकर प्रस्तरस्वेद और संकर-स्वेदद्वारा स्वेदित करे। जब पहिली औषधि जीर्ण होचुके तो फिर औषधि पिलावे अथवा गोमूत्रयुक्त द्रव्योंसे निरूहण वस्ति करे। निरूहणवस्तिके अनन्तर शुद्ध होनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करावे। फिर अनुवासन वस्ति देवे। अनुवासनके तैल, मैनफल, पीपल और द्रव्य तथा क्वाथसे उचित रीतिपर सिद्ध-किये होने चाहियें। तथा वातनाशक तैलोंको स्निग्धकर फिर तीक्ष्ण शोधन कराके दोष और औषधको हरण करे ॥ ३८॥३९ ॥

अतियोगके दोष, चिकित्सा।

न चातितीक्ष्णेन ततो ह्यतियोगस्तु जायते।
अतितीक्ष्णं क्षुधार्त्तस्य मृदुकोष्ठस्य भेषजम् ॥ ४० ॥
हृत्वाशु विट्पित्तकफान्धातून्विस्रावयेद्द्रवान्।
बलस्वरक्षयं दाहं कण्ठशोषं क्लमं तृषाम्।
कुर्य्याच्च मधुरैस्तत्र शेषमौषधमुल्लिखेत् ॥ ४१ ॥

क्षुधासे व्याकुल अथवा मृदुकोष्ठवाले मनुष्यको तीक्ष्ण शोधन नहीं देना चाहिये क्योंकि ऐसे मनुष्योंको तीक्ष्ण शोधन देनेसे शोधनकर अतियोग हो जाताहै। अति-योग होनेसे वह औषध प्रथम विष्ठा, पित्त और कफको निकालकर फिर पतली धातु-ओंको निकालने लगती है। उससे बल और वरका क्षय, दाह, कण्ठका सूखना, क्लम, प्यास यह उपद्रव होतेहैं। ऐसे समय मधुर पदार्थोंसे अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए क्वाथोंसे वमन कराकर शेष औषधको निकाल देवे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

वमने तु विरेकः स्याद्विरेके वमनं मृदु।
परिषेकावगाहाद्यैः सुशीतैस्तम्भयेच्च तम् ॥ ४२ ॥

कषायमधुरैः शीतैरन्नपानौषधैस्तथा ।
रक्तपित्तातिसारघ्नैर्दाहज्वरहरैरपि ॥ ४३ ॥

वमनके अतियोगमें विरेचन देकर औषधको निकाले और विरेचनके अतियोगमें वमन द्वारा शेष औषधको निकालडाले तथा शीतल परिसेचन और अवगाहन आदि द्वारा अतियोगका स्तम्भन करे। एवं कसैले मीठे और शीतल अन्न, पान, औषधों द्वारा तथा रक्तपित्त नाशक और दाह ज्वर नाशक द्रव्यों द्वारा शोधनके अतियोगको स्तम्भन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

विरेचनका अतियोगनाशक योग।

अञ्जनं चन्दनोशीरमज्जासृक्शर्करोदकम् ।
लाजचूर्णैः पिबेन्मन्थमतियोगहरं परम् ॥ ४४ ॥

रसौत, लालचन्दन, खस इन सबको पीसकर बकरीके रक्त और खांडके शरबतमें मिलाकर उसमें खीलोंका चूर्ण मिला मंथ बनावे। इस मंथके पीनेसे विरेचनका अतियोग दूर होताहै ॥ ४४ ॥

शुङ्गाभिर्वा वटादीनां सिद्धां पेयां समाक्षिकाम् ।
वर्चःसंग्राहिकैः सिद्धं क्षीरं भोज्यञ्च दापयेत् ॥ ४५ ॥

वट आदि वृक्षोंके शुंगोंसे सिद्ध कीहुई पेया शीतलकर शहद मिला पीनेसे विरेचनका अतियोग दूर होताहै। तथा संग्राही द्रव्योंसे सिद्धकिये दूधको शीतल कर उसमें शहद मिलावे अथवा उससे शालीचावलोंका भात करावे तो विरेचनका अतियोग शान्त होताहै ॥ ४५ ॥

जाङ्गलैर्वा रसैर्भोज्यं पिच्छावस्तिं च दापयेत् ।
मधुरैरनुवास्यश्च सिद्धेन क्षीरसर्पिषा ॥ ४६ ॥

विरेचनके अतियोग होनेके अनन्तर जंगलीजीवोंके मांसरसके साथ भोजन और अतिसार रोगमें कहीहुई पिच्छावस्ति तथा जीवनीय आदि मधुर द्रव्योंसे सिद्धकिये हुए दूधके घृतसे अनुवासन करना हितकारक है ॥ ४६ ॥

वमनके अतियोगमें क्रिया।

वमनस्यातियोगे तु शीताम्बुपरिषेचितम् ।
पिबेत्फलरसैर्मन्थं सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ ४७ ॥

वमनके अतियोगमें शीतलजलसे परिसेचन करना, शीतलजलके मुखपर छींटे देना और अनार आदि फलोंके रससे मंथ बना उसमें घृत, शहद और मिसरी मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ४७ ॥

सोद्गारायां भृशं वम्यां मूर्च्छायां धान्यमुस्तयोः ।
समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ ४८ ॥

यदि वमनके अतियोगमें डकारके साथ अत्यंत वमन आती हो और मूर्च्छा भी होनेलगे तो धनिया, नागरमोथे, महुआ और रसौतके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटावे ॥

अंतर्गतजिह्वाका यत्न ।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः ।
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्यूषक्षीररसैर्हिताः ।
फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥ ४९ ॥

यदि वमन करते २ जिह्वा भीतरको चलीजाय तो उसको चिकने, अम्लरसयुक्त, नमकीन और हृदयको प्रिय यूषोंसे अथवा दूधसे वा मांसरससे कवल धारण कराना हितकारक है। अथवा जिस रोगीकी जिह्वा वमनके अतियोगमें भीतरको चलीगई हो उसके सामने बैठकर दूसरे मनुष्य अनार, निम्बू आदि खट्टे फलोंको खावें अथवा अनारके रस वा निंबूके रससे कवल कराना भी हितकारक है ॥ ४९ ॥

निःसृतजिह्वाका यत्न ।

निःसृतान्तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ॥ ५० ॥

जिस मनुष्यकी जिह्वा वमन करते २ बाहरको निकल आवे तो उसकी जीभपर तिल और द्राक्षाका कल्क लेप करके भीतरको प्रवेश करे ॥ ५० ॥

वाग्ग्रह ।

वाग्ग्रहानिलरोगेषु घृतमांसोपसाधिताम् ।
यवागूं तनुकां दद्यात्स्नेहस्वेदौ च बुद्धिमान् ॥ ५१ ॥

यदि वमनके अतियोगमें वाणी रुकजाय अर्थात् बोलना बन्द होजाय और वायुका कोप हो तो घृत और मांसरसके साथ सिद्ध कीहुई पतली यवागू पिलावे तथा बुद्धिमान् वैद्य स्नेहन और स्वेदन करे ॥ ५१ ॥

वमितश्च विरिक्तश्च मन्दाग्निश्च विलंघितः ।
अग्निप्राणविवृद्ध्यर्थं क्रमं पेयादिकं भजेत् ॥ ५२ ॥

वमन, विरेचनद्वारा संशुद्ध होनेसे अल्प अग्निवाले मनुष्यको तथा लंघन किये मनुष्यको अग्निबल बढानेके लिये पेयादि क्रमका पालन करना चाहिये ॥ ५२ ॥

विरेचनके अयोगमें अफारा ।

बहुदोषस्य रूक्षस्य हीनाग्नेरल्पमौषधम् ।
सोदावर्त्तस्य चोत्क्लिश्य दोषान्मार्गान्निरुध्य च ॥ ५३ ॥

भृशमाध्मापयेन्नाभिं पृष्ठपार्श्वशिरोरुजाम्।
श्वासविण्मूत्रवातानां सङ्गं कुर्य्याच्च दारुणम् ॥ ५४ ॥
अभ्यङ्गं स्वेदवर्त्त्यादिसनिरूहानुवासनम्।
उदावर्त्तहरं सर्वं कर्माध्मातस्य शस्यते ॥ ५५ ॥

बहुदोषोंसे युक्त, रूक्ष और हीन अग्निवाले मनुष्यको अथवा उदावर्त्त रोगीको अल्पमात्रावाला विरेचन देनेसे दोष उत्क्लेशित होजाते हैं। वे उत्क्लेशित दोष न निकलनेसे उनका मार्ग रुककर नाभिके चारों ओर अफारा उत्पन्न होजाता है तथा पीठ पार्श्वभाग और शिरमें पीडा होने लगती है। श्वास, मल, मूत्र और अधोवायुका दारुणरूपसे विबन्ध होजाता है। ऐसा होनेपर तैलमर्दन, स्वेदन, वर्त्तिप्रयोग, निरूहण और अनुवासन तथा उदावर्त्तनाशक संपूर्ण क्रिया करनी हितकारक है ॥५३-५५॥

परिकर्तिकाके हेतु और चिकित्सा।

स्निग्धेन गुरुकोष्ठेन सामे बलवदौषधम्।
क्षामेण मृदुकोष्ठेन श्रान्तेनाल्पबलेन वा ॥ ५६ ॥
पीतं गत्वा गुदं साममाशु दोषं निरस्य च।
तीव्रशूलां सपिच्छास्रां करोति परिकर्तिकाम् ॥ ५७ ॥
लङ्घनं पाचनं सामे रूक्षोष्णं लघुभोजनम्।
बृंहणीयो विधिः सर्वः क्षामस्य मधुरस्तथा ॥ ५८ ॥

स्निग्ध मनुष्यको अथवा गुरुकोष्ठवालेको वा आमदोषवालेको अथवा क्षीण वा मृदुकोष्ठ वा श्रान्त अथवा अल्प बलवालेको विरेचनकी बलवान् औषध देनेसे उसके आमसहित दोष उदीर्ण होकर गुदामार्गसे शीघ्र निकलने लगते हैं। उस समय पेटमें तीव्र शूल, पिच्छा और रुधिरयुक्त परिकर्तिका होने लगती है। ऐसे समय यदि आमदोषयुक्त मनुष्य हो तो उसको लंघन, पाचन, रूक्ष, उष्ण और हलका भोजन करना चाहिये। यदि क्षीण मनुष्यको ऐसा उपद्रव होय तो बृंहणीय विधिका सेवन करना चाहिये तथा जीवनीय मधुर द्रव्योंसे उपचार करे ॥ ५६-५८ ॥

आमाजीर्णकी चिकित्सा।

आमाजीर्णे तु बन्धश्वेतक्षाराम्लं लघु शस्यते।
पुष्पकासीसमिश्रं वा क्षारेण लवणेन च ॥ ५९ ॥
सदाडिमरसं सर्पिः पिबेद्वातेऽधिके सति।
दध्यम्लं भोजने पाने संयुक्तं दाडिमत्वचा ॥ ६० ॥

आमके अजीर्णसे यदि विबन्ध होजाय तो क्षार और अम्लयुक्त हलका भोजन कराना हितकारक है और वायुकी अधिकतामें पुष्पकासीस वा क्षार और लवण मिलाकर अनारका रस युक्त कर घृत पिलाना चाहिये। अथवा भोजन और पानमें खट्टा दही और अनारके फलका छिलका मिलाकर पीवे तो वाताधिक आमका पाचन होकर आमाजीर्ण दूर होता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

देवदारुतिलानां वा कल्कमुष्णाम्बुना पिबेत् ।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षकदम्बैर्वा श्रृतं पयः ॥ ६१ ॥
कषायमधुरं वस्तिं पिच्छावस्तिमथापि वा ।
यष्टीमधुकसिद्धं वा स्नेहवस्तिं प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

अथवा देवदारु और तिलका कल्क गर्म जलके साथ पीवे। वा पीपल, गूलर, पिलखन और कदम्बकी छालसे सिद्ध किया दूध पीवे या कसैले और मधुर द्रव्योंकी वस्ति अथवा अतिसारमें कहीहुई पिच्छावस्ति वा मुलेठीसे सिद्ध की हुई स्नेहवस्ति करे तो आमाजीर्ण अर्थात् आंवका कच्ची अवस्थामें गिरना वा उससे विबन्ध होना यह दूर होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अधिकदोषोंमें अल्पशोधनके दोष चिकित्सा।

अल्पन्तु बहुदोषस्य दोषमुत्क्लिश्य भेषजम् ।
अल्पाल्पं स्रावयेत्कण्डूं शोफकुष्ठानि गौरवम् ॥ ६३ ॥
कुर्य्याच्चाग्निवधोत्क्लेशस्तैमित्यारुचिपाण्डुताम् ।
परिस्रावगतं दोषं शमयेद्वामयेदपि ॥ ६४ ॥
स्नेहितं वा पुनस्तीक्ष्णं पाययेच्च विरेचनम् ।
शुद्धे चूर्णासवारिष्टान्संस्कृतांश्च प्रदापयेत् ॥ ६५ ॥

अधिक दोषवाले मनुष्यको अल्प विरेचन देनेसे उसके दोष उदीर्ण होकर थोडे थोडे निकलते हैं। और खुजली, सूजन, कुष्ठ, भारीपन, अग्निकी मंदता, उत्क्लेश, स्तैमित्य, अरुचि, पाण्डुता और परिस्राव यह लक्षण होते हैं। ऐसा होनेसे दोषोंको शमन करे अथवा वमन करना चाहिये। वमन करनेसे भी यदि दोष शान्त न हों तो उस मनुष्यको स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण विरेचन देवे। जब शुद्ध होजाय तो उसको चूर्ण, आसव और अरिष्ट अथवा संस्कार कियेहुए यूष आदि देने चाहियें॥६३-६५

रेचक औषध पीकर वेगोंके रोकनेके उपद्रव और चिकित्सा।

पीतौषधस्य वेगानां निग्रहान्मारुतादयः ।
कुपिता हृदयं गत्वा घोरं कुर्वन्ति हृद्ग्रहम् ॥ ६६ ॥

सहिक्काश्वासपार्श्वार्त्तिदैन्यलालाक्षिविभ्रमैः।
जिह्वां खादति निःसंज्ञो दन्तान्किटिकिटापयन् ॥ ६७ ॥
न गच्छेद्विभ्रमं तत्र वामयेदाशु तं भिषक्।
मधुरैः पित्तमूर्च्छार्त्तं कटुभिः कफमूर्च्छितम् ॥ ६८ ॥
पाचनीयैस्ततश्चास्य दोषशेषं विपाचयेत्।
कायाग्निश्च बलञ्चास्य क्रमेणाभिविवर्द्धयेत् ॥ ६९ ॥

औषध पीकर वेगोंको रोक लेनेसे वातादि दोष कुपित होकर हृदयको प्राप्त हों घोर हृद्ग्रह रोगको करते हैं तथा हिचकी, खांसी, पार्श्वपीडा, दीनता, लारका बहना, नेत्रोंका विभ्रम, जिह्वाका काटना, बेहोशी और दांतोंका कटकटाना इन उपद्रवोंको उत्पन्न करते हैं। ऐसे समय वैद्य उद्भ्रान्त न होकर उस रोगीको शीघ्र वमन करावे। यदि उसमें पित्तकी मूर्च्छा हो तो मधुर द्रव्योंसे और कफकी मूर्च्छा हो तो चरपरे द्रव्योंसे वमन कराना चाहिये। यदि इस प्रकार वमन करानेसे भी दोष संपूर्ण रूपसे शान्त न हों तो उनको पाचन द्रव्योंके योगसे शान्त करे और क्रमपूर्वक इसके अग्निबलको वढावे ॥ ६६-६९ ॥

वमनके अतियोगमें हृद्ग्रह।

पवनेनातिवमतो हृदयं यस्य पीडयते।
तस्मै स्निग्धाम्ललवणं दद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ॥ ७० ॥

वमनके अधिक होनेसे जिसके हृदयको वायु पीडन करे उसको स्निग्ध, अम्ल और नमकीन मांसरस आदि पिलाकर अथवा अन्य स्निग्ध, अम्ल आदि द्रव्य देकर वायुको शान्त करे और यदि कफकी अधिकता हो तो स्निग्ध, अम्ल औषध न देकर रूक्ष तिक्त आदि उपचार करे ॥ ७० ॥

वामक औषधके वेग रोकनेके दोष व चिकित्सा।

पीतौषधस्य वेगानां निग्रहेण कफेन वा।
रुद्धोऽति चाविशुद्धस्य गृह्णात्यङ्गानि मारुतः ॥ ७१ ॥
स्तम्भवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्त्तिमूर्च्छितैः।
तत्र वातहरं सर्वं स्नेहस्वेदादि कारयेत् ॥ ७२ ॥

यदि वमनकारक औषध पीकर वमनके आयेहुए वेगको रोकलेवे तो कफ कुपित होकर वायुको रोकलेता है। वह कफद्वारा रुकाहुआ वायु अविशुद्ध मनुष्यके अंगोंको ग्रहणकर स्तंभ, तोद, उद्वेष्टन और घोर मूर्च्छाको उत्पन्न करता है। ऐसा होनेपर वातनाशक क्रिया और स्नेहन, स्वेदन आदि करना चाहिये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

अल्प दोषमें तीक्ष्ण।

अतितीक्ष्णं मृदौ कोष्ठे लघुदोषस्य भेषजम्।
दोषान् हृत्वा विनिर्मथ्य जीवं हरति शोणितम्॥ ७३॥

अल्पदोषवाले मनुष्यके मृदुकोष्ठमें अति तीक्ष्ण औषध पहुंचकर प्रथम संपूर्ण दोषोंको दूरकर फिर द्रव्य धातुओंको मन्थनकर जीवसंज्ञक रक्तको निकालती है ७३

जीवसंज्ञक रक्तकी परीक्षा शोधनके दोष।

तेनान्नं मिश्रितं दद्याद्वायसाय शुनोऽपि वा।
भुंक्ते तच्चेद्वदेज्जीवं न भुंक्ते पित्तमादिशेत्॥ ७४॥
शुक्लं वा भावितं वस्त्रमाधानं कोष्णवारिणा।
प्रक्षालितं विवर्णं चेत्पित्तं शुद्धन्तु शोणितम्॥ ७५॥

जीवसंज्ञक रक्तकी यह परीक्षा है कि, उस रक्तको अन्नमें मिलाकर काग वा कुत्ते आगे रक्खे। यदि उसको काग, कुत्ता आदि खाजांय तो वह जीवसंज्ञक (शुद्ध-रक्त) जानना। यदि न खांय तो रक्तपित्तका रक्त जानना। क्योंकि रक्तपित्तके रक्तको काग आदि नहीं खाते। दूसरी यह परीक्षा है कि उस रक्तमें श्वेत वस्त्रको डुबोकर गर्मजलसे धोदेवे। यदि कपडेका दाग दूर न हो और विवर्ण होजाय तो रक्त-पित्तका विकार जानना। यदि शुद्ध होजाय तो जीवनसंज्ञक रक्त जानना॥ ७४॥ ७५॥

जीवसंज्ञक रक्त निकालनेकी चिकित्सा।

तृषामूर्च्छामदार्त्तस्य कुर्य्यादामरणात्क्रियाम्।
तस्य पित्तहरीं सर्वामतियोगे च या हिता॥ ७६॥

विरेचनके अतियोगमें प्यास, मूर्च्छा और मत्तता होजाय तो उस रोगीकी मरण-पर्यन्त भी पित्तनाशकही संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये। तथा विरेचनके अतियो-गको दूर करनेवाली जो शीतल क्रिया कही है वह करना हितकारक है॥ ७६॥

मृगगोमहिषाजानां सद्यस्कं जीवतामसृक्।
पिबेज्जीवाभिसन्धानं जीवं तद्ध्याशु गच्छति।
तदेव दर्भमृदितं रक्तं वस्तिं प्रदापयेत्॥ ७७॥

यदि शोधनके अतियोगमें जीवसंज्ञक शुद्ध रक्त निकलजाय तो उस रोगीको मृग, हरिण, भैंस, बकरी आदिका तत्काल निकालाहुआ रक्त पिलाना चाहिये। उससे जीवसंज्ञक रक्तके अति निकालनेका दोष दूर होकर शीघ्र जीवत्वकी वृद्धि होती है। अथवा इन्ही मृगादिकोंके रुधिर और कुशाकी जडोंके कल्कको मर्दन कर उससे वस्तिप्रयोग करे॥ ७७॥

श्यामाकाश्मर्य्यबदरीदूर्वावीरैः शृतं जलम् ॥ ७८ ॥

घृतमण्डाञ्जनयुतं वस्तिं शीतं प्रदापयेत् ।

पिच्छावस्तिं सुशीतं वा घृतमण्डानुवासनम् ॥ ७९ ॥

सारिवाँ, कुंभेरके फल, बेर, हरीदूब और क्षीरकाकोली इनके क्वाथमें घृतमण्ड और रसौत मिलाकर शीतल वस्तिका प्रयोग करे । अथवा शीतल पिच्छावस्तिका प्रयोग करके फिर घृतमण्डसे अनुवासन करे तो विरेचनके आतियोगसे जीवसंज्ञक रक्तका निकलना और उससे उत्पन्न हुई क्षीणता दूर होती है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

गुदभ्रंशं कषायैश्च स्तम्भयित्वा प्रवेशयेत् ।

सामगन्धर्वशब्दांश्च संज्ञानाशेऽस्य कारयेत् ॥ ८० ॥

यदि विरेचनके अतियोगसे गुदाभ्रंश होजाय अर्थात् कांच निकलने लगे तो बड आदि क्षीरी वृक्षोंके क्वाथसे सेचन कर गुदाको रोककर भीतरको प्रवेश करे । यदि विरेचनके अतियोगमें संज्ञानाश होजाय अर्थात् बेहोशी होजाय तो उसके कानके समीप उत्तम स्वरसहित गायन वा वेदका गायन करे ॥ ८० ॥

शोधन विभ्रंश।

यदा विरेचनं पीतं विडन्तरवतिष्ठते ।

वमनं भेषजान्तं वा दोषानुत्क्लेश्य नावहेत् ॥ ८१ ॥

तदा कुर्वन्ति कण्ड्वादीन् दोषाः प्रकुपिता गदान् ।

सविभ्रंशो मतस्तत्र स्याद्यथाव्याधि भेषजम् ॥ ८२ ॥

यदि केवल एक दो वार मल निकलकर विरेचन क्रिया बन्द होजाय और पित्त, कफ न निकले और इसी प्रकार वमनक्रियामें पीहुई केवल औषध निकलकर वमन होना बन्द होजाय और कफ, पित्त न निकले ऐसा होनेसे उसके दोष उत्क्लेशित मात्र होजातेहैं परन्तु शोधन नहीं होता । ऐसा होनेसे उस मनुष्यके शरीरमें खुजली आदि उत्पन्न होतेहैं इसको वमन, विरेचनका विभ्रंश कहतेहैं। ऐसा होनेमें दोषानुसार अथवा उत्क्लेशित दोषोंसे उत्पन्नहुए रोगानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । वा फिर उचित रीतिपर शोधन कराना भी हितकारी है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अतिस्निग्धको स्नेह विरेचनके दोष।

पीतं स्निग्धेन सस्नेहं तद्दोषैर्मार्दवाद्धृतम् ।

न वाहयति दोषांस्तु स्वस्थानात्स्तम्भयेच तान् ॥ ८३ ॥

वातसङ्गगुदस्तम्भशूलैः क्षरति चाल्पशः।

तीक्ष्णं वस्तिं विरेकं वा दद्याल्लङ्घनपाचनम् ॥ ८४ ॥

जो अति स्निग्ध मनुष्य स्नेह विरेचन पानकरे तो मृदुताके कारण दोष चलायमान नहीं होते. अपने स्थानसे चलेहुए भी वहींपर स्तम्भित होजातेहैं और विरेचन नहीं होता, ऐसा होनेसे अधोवायुका विबंध, गुदस्तम्भ, गुदामें शूलका होना और थोडे २ मलका निकलना यह उपद्रव होतेहैं। ऐसा होय तो तीक्ष्णवस्ति वा रूक्ष विरेचन अथवा लंघन और पाचनद्रव्योंका प्रयोग करना हितकारी है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

रूक्षतामें रूक्षविरेचनके दोष चि०।

रूक्षं विरेचनं पीतं रूक्षेणाल्पबलेन वा ।

मारुतं कोपयित्वाशु कुर्य्याद् घोरानुपद्रवान् ॥ ८५ ॥

स्तम्भशूलानि घोराणि सर्वगात्रेषु मारुतः ।

स्नेहस्वेदादिकस्तत्र कार्य्यो वातहरो विधिः ॥ ८६ ॥

रूक्ष और अल्पबल मनुष्यको रूक्षविरेचन देनेसे वह वायुको कुपित करके घोर उपद्रवोंको उत्पन्न करताहै तथा वह कुपित वायु संपूर्ण शरीरमें घोर स्तम्भ और शूल तथा मोहको उत्पन्न करता है । ऐसा होनेपर स्नेह, स्वेदादि वातनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

गुरुकोष्ठको मृदुशोधनके दोष और चि०।

स्निग्धस्य गुरुकोष्ठस्य मृदूत्क्लेश्यौषधं कफम् ।

पित्तं वातञ्च संरुध्य सतन्द्रागौरवं क्लमम् ॥ ८७ ॥

दौर्बल्यञ्चाङ्गसादञ्च कुर्य्यादाशु तदुल्लिखेत् ।

लङ्घनं पाचनञ्चात्र स्निग्धे तीक्ष्णञ्च शोधनम् ॥ ८८ ॥

स्निग्ध शरीर और भारी कोष्ठवाले मनुष्यको यदि मृदु औषध पिलावे तो वह औषध उसके कफको उत्क्लेशित कर पित्त और वातको रोकदेतीहै तब तन्द्रा, भारीपन, क्लान्ति, दुर्बलता और अंगोंका सोजाना यह उपद्रव उत्पन्न होतेहैं। ऐसा होनेपर शीघ्र वमन कराना चाहिये। तथा लंघन और पाचनद्वारा कोष्ठकी स्निग्धता और गुरुताको शान्त कर फिर स्नेहन स्वेदन करके तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ—इत्येता व्यापदः प्रोक्ताः सर्वा हि सचिकित्सिताः ।

वमनस्य विरेकस्य कृतस्याकुशलैर्नृणाम् ॥ ८९ ॥

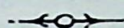
एतान्विज्ञाय मतिमानवस्थाश्चैव तत्त्वतः ।
कुर्य्यात्संशोधनं सम्यगारोग्यार्थी नृणां सदा ॥ ९० ॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने वमनविरेचनव्यापत्सिद्धि-
र्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस अध्यायमें इस प्रकार वमन, विरेचनकी संपूर्ण व्यापत्तियें, उनके उपद्रव और मूर्ख वैद्यके दियेहुए वमन, विरेचनोंसे डकार इन सबको चिकित्सासहित कथन किया है। बुद्धिमान् वैद्य इन विषयोंको यथोचित समझकर और यथार्थरूपसे अवस्था आदि विचारकर मनुष्योंकी आरोग्यताके लिये शोधन (वमन, विरेचन) का प्रयोग करे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासि वैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।



अथातो वस्तिव्यापत्तिसिद्धिं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम वस्तिव्यापत्सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

धीधैर्य्योदार्य्यगाम्भीर्य्यक्षमादमतपोनिधिम् ।
पुनर्वसुं शिष्यगणः पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ १ ॥
काः कति व्यापदो वस्तेः किं समुत्थानलक्षणाः ।
काश्चिकित्सा इति प्रश्नाञ्छ्रुत्वा तानब्रवीद्गुरुः ॥ २ ॥

बुद्धि, धैर्य, उदारता, गांभीर्य, क्षमा, दम और तपस्याके कोषरूप महर्षि पुनर्वसुजीसे शिष्यगण विनयपूर्वक पूछनेलगे कि हे भगवन् ! वस्तिकी व्यापत्तियें कितनी हैं और कौनसी हैं ? उनके कारण क्या हैं और लक्षण क्या हैं तथा चिकित्सा क्या है ? इस प्रकार शिष्योंके प्रश्नको सुनकर गुरु कहनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥

वस्तिकी व्यापत्तियें (विकार) ।

नातियोगौ क्लमाध्मातौ हिक्का हृत्प्राप्तिरूर्द्धता ।
प्रवाहिका शिरोऽङ्गार्त्तिः परिकर्त्तः परिस्रवः ॥ ३ ॥

द्वादश व्यापदो वस्तेरसम्यग्योगसम्भवाः।
आसामेकैकशो रूपं चिकित्साञ्च निबोधत ॥ ४ ॥

अयोग, अतियोग, क्लान्ति, आध्मान, हिचकी, हृत्प्राप्ति, ऊर्ध्वगमन, प्रवाहिका, शिरोवेदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका और परिस्राव यह बारह प्रकारके विकार वस्तिके मिथ्यायोगसे उत्पन्न होते हैं। अब इनके पृथक् लक्षण और चिकित्साको श्रवण करो॥

अयोग।

गुरुकोष्ठेऽनिलप्राये रूक्षे वातोल्बणेऽपि वा।
शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रवमात्रो घनोऽपि वा ॥ ५ ॥
बस्तिः संक्षोभ्य तं दोषं दुर्बलत्वादनिर्हरन्।
करोति गुरुकोष्ठत्वं वातमूत्रशकृद्ग्रहम् ॥ ६ ॥
नाभिवस्तिरुजं दाहं हृल्लेपं श्वयथुं गुदे।
कण्डूगण्डानि वैवर्ण्यमरुचिं वह्निमार्दवम् ॥ ७ ॥

वातप्रधान, गुरुकोष्ठ, रूक्ष और वाताधिक्य मनुष्यको यदि शीतल थोडे नमकवाली, थोडे स्नेहवाली, अत्यन्त पतली वा अत्यन्त गाढीवस्तिका प्रयोग कियाजाय तो वह वस्ति दोषोंको संक्षोभित तो कर देती है परन्तु निर्बल होनेसे निकाल नहीं सकती तथा कोष्ठमें भारीपन, अधोवायु, मल और मूत्रकी रुकावट, नाभि और वस्तिस्थानमें पीडा, दाह, हृदयका उपलेप, गुदामें सूजन, खुजली, ग्रंथियें, विवर्णता, अरुचि, अग्निकी मन्दता इन उपद्रवोंको उत्पन्न करती है ॥ ५-७ ॥

अयोगकी चिकित्सा।

तत्रोष्णायाः प्रमथ्यायाः पानं स्वेदाः पृथग्विधाः।
फलवर्त्त्योऽथवा कालं ज्ञात्वा शस्तं विरेचनम् ॥ ८ ॥
बिल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुलत्थवान्।
सुरादिमूत्रवान्वस्तिः स प्राक्प्रेषितमानयेत् ॥ ९ ॥

ऐसा होनेसे गर्मगर्म प्रमथ्याको पीवे तथा अनेक प्रकारके स्वेदन, फलवर्ती अथवा काल आदि विचारकर विरेचन करना हितकारक है ॥ अथवा बेलकी जड, निशोथ, देवदारु, यव, बेर और कुल्थीके कल्क और सुरा आदि द्रव्य तथा गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्तिद्वारा पहिले दीहुई वस्तिको निकालडाले ॥ ८ ॥ ९ ॥

---

१ हरडके क्काथको गर्म गर्म पीवे। कोई कहते हैं कि ८ तोला चावलोंको कूटकर ६४ तोला पानीमें पकावें १६ तोला बाकी रहनेपर उतारकर गर्म गर्म पान करे।

अतियोगके लक्षण और यत्न।

स्निग्धस्विन्नेऽतितीक्ष्णोष्णो मृदुकोष्ठेऽतियुज्यते ।
तस्य लिङ्गं चिकित्साञ्च शोधनाभ्यां समाचरेत् ॥ १० ॥

अत्यन्त स्नेहन और स्वेदनके अनन्तर मृदुकोष्ठवाले मनुष्यको अति तीक्ष्ण वस्ति प्रयोग करनेसे अतियोग होता है। अतियोगके संपूर्ण लक्षण और चिकित्सा वमन विरेचनके अतियोगके समान जानना ॥ १० ॥

पृश्निपर्णीं स्थिरां पद्मं काश्मर्य्यं मधुकं बलाम् ।
पिष्ट्वा द्राक्षां मधूकञ्च क्षीरे तण्डुलधावने ॥ ११ ॥
द्राक्षायाः पक्वलोष्टस्य प्रसादो मधुकस्य च ।
विनीय सघृतं वस्तिं दद्याद्दाहेऽतियोगजे ॥ १२ ॥

पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, पद्मकाष्ठ, कुंभेर, मुलहठी और बला इनमेंसे किसी एकका कल्क अथवा सबका मिलाहुआ कल्क वा द्राक्षा और महुएका कल्क करे फिर दूध मिले चावलोंके धोवनमें मुनक्का अथवा महुएका कल्क वा आगमें तपाईहुई मट्टीका ढेला बुझाकर रखदे। उसमेंसे स्वच्छ नितरेहुए धोवनमें उपरोक्त कल्क और घृत मिला वस्तिप्रयोग करे तो वस्तिके अतियोगसे उत्पन्नहुई दाह आदिक नष्ट होजाती है ११॥१२

क्लमके लक्षण व चिकित्सा।

आमदोषे निरूहेण मृदुना दोष ईरितः ।
रुणद्धि मार्गं वातस्थं हन्त्यग्निं मूर्च्छयत्यपि ॥ १३ ॥
क्लमं विदाहं हृच्छूलं मोहवेष्टनगौरवम् ।
कुर्य्यात्स्वेदैर्विरूक्षैस्तं पाचनैश्चाप्युपाचरेत् ॥ १४ ॥

आमदोषयुक्त मनुष्यको मृदु निरूहण देनेसे दोष उत्क्लेशित होकर वायुके मार्गको रोकलेते हैं तथा अग्निको नष्ट वा मूर्च्छित करदेते हैं उससे क्लान्ति, विदाह, हृदयमें पीडा, मोह, वेष्टनकीसी पीडा और भारीपन यह लक्षण होते हैं। ऐसा होनेपर रूक्ष स्वेदन और पाचनद्रव्योंद्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

पिप्पलीकत्तृणोशीरदारुमूर्वाश्रृतं जलम् ।
पिबेत्सौवर्चलोन्मिश्रं दीपनं हृद्विशोधनम् ॥ १५ ॥

पीपल, रोहिषतृण, खस, देवदारु और मूर्वा इनके क्वाथमें संचरनमक मिलाकर पीवे तो दीपन और हृदयकी शुद्धि होती है ॥ १५ ॥

वचानागरसर्जेलादधिमण्डेन मूर्च्छिताः।
पेयाः प्रसन्नया वा स्युररिष्टेनासवेन वा ॥ १६ ॥
दारु त्रिकटुकं पथ्यां पलाशं चित्रकं शटीम्।
पिष्ट्वा कुष्ठञ्च मूत्रेण पिबेत्क्षारांश्च दीपनान् ॥ १७ ॥

वच, सोंठ, सज्जीखार और इलायचीके चूर्णको दहीके मण्डमें मिलाकर बनाई हुई पेया अथवा इसी चूर्णको प्रसन्ना, अरिष्ट अथवा आसवमें मिलाकर पीवे तो अग्निदीपन और हृदयकी शुद्धि होकर क्लम दूर होता है। अथवा देवदारु, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, पलाशके बीज, चित्रक, कचूर और कूठ इनको गोमूत्रमें मिलाकर पीवे वा दीपन क्षारोंको पीवे तो क्लमके विकार दूर होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

वस्तिमस्य विदध्याच्च समूत्रं दाशमूलिकम्।
समूत्रमथवा व्यक्तलवणं मधुतैलिकम् ॥ १८ ॥

अथवा दशमूलके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति करे वा गोमूत्रमें अल्प लवण मिलाकर शहद और तैलयुक्तकर वस्ति करे तो वस्ति कर्मके मिथ्यायोगजनित क्लम, व्यापत्ति दूर होती है ॥ १८॥

आध्मानके हेतु, लक्षण-चिकित्सा।

अल्पवीर्य्यो महादोषे रूक्षे क्रूराशये कृतः।
बस्तिर्दोषावृतो रुद्धमार्गो रुन्ध्यात्समीरणम् ॥ १९ ॥
स विमार्गोऽनिलः कुर्य्यादाध्मानं मर्मपीडनम्।
विदाहं गुरुकोष्ठस्य मुष्कवंक्षणवेदनाम्।
रुणद्धि हृदयं शूलैरितश्चेतश्च धावति ॥ २० ॥

क्रूरकोष्ठवाले और बढेहुए दोषोंयुक्त मनुष्यको अल्पवीर्य और रूक्षबास्तिका प्रयोग करनेसे वस्तिके दोषसे आवृत हुआ वायु ऊपर और नीचेके सब स्रोतोंको रोककर विमार्गगामी हो मर्मोंको पीडन करताहुआ अफारेको उत्पन्न करता है। उससे विदाह, कोष्ठमें भारीपन, फोते आदिकोंमें और वंक्षणमें पीडा, हृदयका उपरोध यह लक्षण होवे हैं तथा यह रोगी शूलसे पीडित हुआ इधर उधर गमन करता है ॥१९॥२०॥

फलश्यामादिभिः कुष्ठकृष्णालवणसर्षपैः।
धूममाषवचाकिण्वक्षारचूर्णैर्गुडैः कृताम् ॥ २१ ॥
कराङ्गुष्ठनिभां वर्तिं यवमध्यां निधापयेत्।

स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्य तैलाक्तां स्नेहिते गुदे ॥ २२ ॥
अथवा लवणागारधूमसिद्धार्थकैः कृताम् ॥ २३ ॥
बिल्वादिना निरूहः स्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान् ।
सरलामरदारुभ्यां सिद्धश्चैवानुवासनम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार उपद्रवयुक्त अफारा होनेपर अपामार्गतण्डुलीयाध्यायमें कहेहुए मैनफल आदि गण और निशोथ आदि गणकी औषधियें कूठ, पीपल, सेन्धानमक, सरसों, गृहधूम, उडद, वच, सुरावीज और जवाखार इन सबको बारीक पीस गुड मिला अंगूठेके समान मोटी वर्त्ति बनावे। और इस वर्त्तिके भीतर यवोंका चूर्ण भरे फिर इसको तैलमें भिगोकर स्निग्ध की हुई गुदामें प्रवेश करे अथवा लवण, गृहधूम और सफेद सरसोंसे पूर्वोक्त रीतिपर बनाई हुई वर्त्तिका विधिवत् प्रयोग करे। वा बिल्वादि पंचमूलके क्वाथमें पीलू और सफेद सरसोंका कल्क मिला गोमूत्र युक्तकर निरूहण वस्तिका प्रयोग करे ऐसा करनेसे वस्तिके मिथ्यायोगजनित आध्मानरोग दूर होता है॥

हिचकीव्यापल्लक्षण और चिकित्सा।

मृदुकोष्ठेऽबले वस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हरन् ।
कुर्य्याद्धिक्कादिकं तत्र हिक्काघ्नं बृंहणञ्च यत् ॥ २५ ॥
बलास्थिरादिकाश्मर्य्यत्रिफलागुडसैन्धवैः ।
सप्रसन्नारनालाम्लैस्तैलं पक्त्वानुवासयेत् ॥ २६ ॥

मृदुकोष्ठवाले दुर्बल मनुष्यको अतितीक्ष्ण वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्ति उसके दोषोंको अत्यन्त हरण करके हिचकीको उत्पन्न करती है ऐसा होनेपर हिचकीनाशक और बृंहणचिकित्सा करना चाहिये । तथा बला, शालपर्ण्यादि पंचमूल, कुम्भेर, त्रिफला, गुड, सैंधानमक इनका कल्क और प्रसन्ना तथा कांजी मिलाकर सिद्ध किये तैलद्वारा अनुवासनवस्तिका प्रयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

कृष्णालवणयोरक्षं पिबेदुष्णाम्बुना युतम् ।
धूमलेहरसक्षीरस्वेदाश्चान्नञ्च वातनुत् ॥ २७ ॥

अथवा पीपल और सेंधानमकका १ तोला चूर्ण गर्मजलके साथ पीवे तो हिचकी दूर होती है तथा इस हिचकीमें धूमपान, अवलेह, मांसरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्नपान हितकारक होते हैं ॥ २७ ॥

हृद्व्यापत्तके लक्षण और यत्न।

अतितीक्ष्णः सवातो वा न वा सम्यक् प्रपीडितः ।

घट्टयेद्धृदयं बस्तिस्तत्र कासक्षणोत्कटैः ॥ २८ ॥
स्यात्साम्ललवणस्कन्धकरीरबदरीफलैः।
शृतैर्वस्तिर्हितः सिद्धं वातघ्नैश्चानुवासनम् ॥ २९ ॥

वस्तिके अतितीक्ष्ण होनेसे अथवा पवनयुक्त वस्तिके प्रयोग करनेसे वा एकवार वेगपूर्वक वस्तिको पीडन करनेसे वह वस्ति हृदयको घट्टन (धकधकी) करती है। ऐसा होनेपर कांस, कुशा और ईखकी जडका क्वाथ और अम्लवर्ग, सेंधानमक, वांसके कोमल अंकुर और बेलके फलोंके कल्कसे तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलद्वारा अनुवासनवस्ति करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वगमनव्यापत्ति।

वातमूत्रपुरीषाणां दत्तवेगान्निगृह्णतः।
अति वा पीडितो वस्तिर्मुखेनायाति वेगवान् ॥ ३० ॥
मूर्च्छाविकारं तस्यादौ दृष्ट्वा शीताम्बुना मुखम्।
सिञ्चेत्पार्श्वोदरञ्चाधः प्रमृज्याद्वीजयेच्च तम् ॥ ३१ ॥

अधोवायु, मूत्र और मलके उपस्थित वेगमें वेगोंको रोककर वस्ति ग्रहण करे अथवा अत्यन्तवेगसे वस्तिको दबाया जाय तो वस्तिद्रव्य मुखकी ओर गमन करता है उससे मूर्च्छा अथवा मूर्च्छाके समान अन्य विकार होने लगते हैं। ऐसा होनेपर शीतल जलसे मुखपर छींटे देना और उसके पसवाडों और उदरको हाथसे धीरे धीरे नीचेकी ओरको मसलताजाय और पंखेकी पवन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

केशेष्वालम्ब्य चाकाशे धनुषा त्रासयेच्च तम्।
गोखराश्वगजैः सिंहै राजप्रेष्यैस्तथोरगैः॥ ३२ ॥
उल्काभिरेवमन्यैश्च वस्तिमस्य न्यसेदधः।
वस्त्रपाणिग्रहैः कण्ठं रुन्ध्यान्न म्रियते यथा ॥ ३३ ॥
प्राणोदाननिरोधाद्धि प्रसिद्धतरमार्गगः।
अपानः पवनो वस्तिं तमाश्वेवापकर्षति ॥ ३४ ॥

तथा उसके केशोंको खींचकर मस्तककी ओर लावे जिससे उसको कष्ट प्रतीत हो वा उसको धनुषका भय दिखलावे। अथवा गौ, गधा, घोडा, हाथी, सिंह, राजाके चपरासी, सांप, उल्का और बिच्छू आदिकोंसे डरावे। ऐसा करनेसे उस वस्तिका वेग नीचेकी ओर उत्तर जाता है। अथवा जिस प्रकार रोगी मर न जावे ऐसी रीतिसे वस्त्र अथवा हाथोंद्वारा उसके कण्ठको दबावे। इस प्रकार गला घोंटनेसे

प्राण और उदान वायुका निरोध होकर अपानवायु रुककर अपने मार्गसे नीचेको गमन करती हुई वस्तिद्रव्यको भी नीचे ले जाती है ॥ ३२-३४ ॥

ततः क्रमुककल्काक्षं पाययेताम्लसंयुतम् ।
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्च वस्तिस्तस्यानुलोमयेत् ॥ ३५ ॥

इसके अनन्तर एक तोला सुपारीके कल्कको कांजीके साथ पिलावे। यह कांजीयुक्त कल्क, उष्णता तीक्ष्णता और सरत्वगुणसे वस्तिको अनुलोमन कर नीचेकी ओर निकाल देता है ॥ ३५ ॥

पक्वाशयस्थिते स्विन्ने निरूहो दशमूलिकः ।
यवकोलकुलत्थैश्च विधेयो मूत्रसाधितः ॥ ३६ ॥
बिल्वादिपञ्चमूलेन सिद्धो वस्तिरुरःस्थिते ।
शिरःस्थे नावनं धूमः प्रच्छाद्यं सर्षपैः शिरः ॥ ३७ ॥

जब पक्वाशयमें वस्तिद्रव्य स्थित हो तो उसको निकालनेके लिये स्वेदन करके दशमूलका क्काथ, यव, बेर और कुलथीका क्काथ, गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्तिका प्रयोग करे। यदि वस्तिद्रव्य वक्षस्थलमें अटकाहुआ हो तो बिल्वादिपंचमूलके क्वाथसे निरूहण करे। यदि वस्तिद्रव्य तालुस्थानमें पहुंचगया हो तो नस्य और धूमपानका प्रयोग तथा शिरके ऊपर सरसोंका लेप करना श्रेष्ठ होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्रवाहिकाव्यापत्तिके लक्षण और चिकित्सा।

स्निग्धस्विन्ने महादोषे वस्तिर्मृद्वल्पभेषजः ।
उत्क्लेश्याल्पं हरेद्दोषं जनयेच्च प्रवाहिकाम् ॥ ३८ ॥
स वस्तिः पायुशोफाय जङ्घोरुसदनाय च ।
निरुद्धमारुतो जन्तुरभीक्ष्णं संप्रवाहते ॥ ३९ ॥

महादोषवाले स्निग्ध और स्वेदित रोगीको यदि मृदु और अल्पबल द्रव्यसे वस्तिप्रयोग कियाजाय तो वह वस्ति दोषोंको उत्क्लेशित करके अल्पमात्र दोषोंको हरण कर प्रवाहिका (निवाही या पेचिश) को उत्पन्न करती है। उससे गुदामें सूजन, जंघा और ऊरुओंका सुन्नसा होना और वायुकी रुकावट होकर वह रोगी एकसाथ वारवार थोडे थोडे मलको तथा अल्प अल्प आंवदोषको पीडाके सहित प्रवाहण करता रहताहै। अर्थात् त्यागता रहताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

स्वेदाभ्यङ्गान्निरूहांश्च शोधनीयानुलोमिकान् ।
विदध्याल्लङ्घयित्वा तु वृत्तिं कुर्य्याद्विरिक्तवत् ॥ ४० ॥

ऐसा होनेपर रोगीको स्वेदन और अभ्यंग करके शोधनीय और अनुलोमनीय निरूहणवस्तिका प्रयोग करे। तथा रोगीको लंघन कराके दोष पाचन होनेके अनंतर विरिक्त मनुष्यके समान पेयादिक्रमका पालन करावे ॥ ४० ॥

शिरःशूलव्यापत्ति।

दुर्बले तीव्रदोषे च दुष्कोष्ठे च तनुर्मृदुः।
शीतोऽल्पश्चावृतो दोषैर्वस्तिस्तद्विहतोऽनिलः ॥ ४१ ॥
मार्गैर्गात्राणि सन्धावन्नूर्ध्वं मूर्द्धन्युपाहितम्।
ग्रीवां मन्ये च गृह्णाति शिरः कण्ठं भिनत्ति च।
बाधिर्य्यं कर्णनादश्च पीनसं नेत्रविभ्रमम् ॥ ४२ ॥

दुर्बल, तीव्रदोषयुक्त नर्मकोठेवाले मनुष्यों, पतला, मृदु, शीतल और अल्प निरूहणवस्तिके प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य दोषों द्वारा आवृत हो जाता है। उससे विहतहुआ वायु ऊपरके मार्गोंसे गमन करता हुआ ग्रीवा और मन्याको जकड देताहै तथा शिर और कण्ठमें भेदनकीसी पीडाको करताहै और बहरापन, कर्णनाद, प्रतिश्याय तथा नेत्रोंका विभ्रम इन उपद्रवोंको करताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

कुर्य्यादभ्यञ्जनं तैललवणेन यथाविधि।
युञ्ज्यात् प्रधमनैर्नस्यैर्धूमैरास्यं विरेचयेत्।
तीक्ष्णानुलोमिकेनाथ स्विन्नं भुक्तेऽनुवासयेत् ॥ ४३ ॥

ऐसा होनेपर तेल और सेंधनमकसे विधिपूर्वक मालिश करे तथा प्रधमन, नस्य, धूमपान, शिरोविरेचन आदि प्रयोग करे तथा स्वेदित करके तीक्ष्ण निरूहणका प्रयोग करे। भोजन करनेके अनन्तर अनुलोमन करता अनुवासनवस्तिका प्रयोग करे ४३

अंगशूलव्यापत्ति।

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्य यस्य वस्तिर्विधीयते।
अतितीक्ष्णो गुरुश्चैव सोऽतिमात्रं प्रवर्त्तयेत् ॥ ४४ ॥
स्रुतेषु तस्य दोषेषु निरूढस्यातिमात्रशः।

---

१ स्नेहस्वेदैरनापाद्यगुरुतीक्ष्णातिमात्रया। यस्यवस्तिःप्रयुज्येतनातिमात्रंप्रयुज्यते ॥ १ ॥ स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यरुद्धस्रोतःसुमारुतः। प्रपन्नोऽङ्गरुजंकुर्य्यात्तंतैललवणान्वितम् ॥२॥ उष्णाम्बुप्रस्तरकाद्यैःस्वेदैस्तमुपपादयेत्। सविल्वतैललवणानिरूहस्तस्यशस्यते। तैलावगाहस्विन्नस्यकारयेदनुवासनम् ॥ ३ ॥ प्रयुज्यविधिनासम्यक्स्निग्धंकार्यंततःपरम्। विरेचनैर्निरूहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः ॥ ४ ॥ एतच्छ्लोकचतुष्टयंकस्मिंश्चित्पुस्तकेऽधिकमुपलभ्यतेपरन्त्वग्रिमपद्यचतुष्टयेनगतार्थत्वान्नमूलेनिवेशितम ॥

स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्य वायुः संप्रति हन्यते ॥ ४५ ॥
विलोमेन समुद्भूतो रुजत्यङ्गानि देहिनः।
गात्रवेष्टननिस्तोदभेदस्फुरणजृम्भणैः ॥ ४६ ॥
तं तैललवणाभ्यक्तं सेचयेदुष्णवारिणा।
एरण्डपत्रनिष्क्वाथैः प्रस्तरैश्चोपपादयेत् ॥ ४७ ॥

रोगीको उचितरीतिपर स्निग्ध और स्वेदन करके अधिकमात्रासे अतितीक्ष्ण वस्ति प्रयोग करनेसे वह अधिकमात्रासे प्रवृत्त होती है अर्थात् अत्यंत वेगपूर्वक दोष अधिक मात्रा शीघ्र निकलजाते हैं। फिर संपूर्ण दोषोंके अतिमात्रा निकलजानेसे वायु प्रतिहत होकर उस रोगीके कोठेमें उदावर्त्त और स्तम्भको उत्पन्न करता है। वह ऊपरको गमन करता हुआ वायु स्रोतोंको रोककर अंगोंमें प्राप्त हो अंगशूल, वेष्टन, तोद, भेद, स्फुरण और जृंभणको उत्पन्न करता है। ऐसा होनेपर लवणयुक्त तैलसे मालिश कर गर्मजलका सेक करे अथवा एरण्डके पत्रोंके क्वाथसे प्रस्तरस्वेद करे वा अन्य क्वाथोंसे नाडीस्वेद आदि स्वेदोंद्वारा शूलकी शान्ति करे ॥ ४४-४७ ॥

यवान् कुलत्थान् कोलानि पञ्चमूले तथोभये।
जलाढकद्वये पक्त्वा पादशेषेण तेन च।
कुर्य्यात्स बिल्वतैलोष्णलवणेन निरूहणम् ॥ ४८ ॥
निरूहणे समाश्वस्तं द्रोण्यां समवगाहयेत्।
ततो भुक्तवतस्तस्य कारयेदनुवासनम्।
यष्टीमधुकतैलेन बिल्वतैलेन वा भिषक् ॥ ४९ ॥

यव, कुल्थी, बेर और दशमूलके दश द्रव्योंको एकसेर लेकर ८ सेर जलमें पकावे। दो सेर रहनेपर उतारकर छानले। फिर इसमें बिल्वतैल और लवण मिलाकर सुखोष्ण रहते हुए निरूहणका प्रयोग करे। तथा तैलकी द्रोणीमें बिठाकर फिर स्वेदन करे। तदनन्तर अल्प भोजन कराके मुलैठी और बिल्वतैलसे अनुवासनका प्रयोग करे। फिर विधिवत् हित भोजनका पालन कराके यथासमय स्नेहन स्वेदन करावे। और फिर स्निग्ध विरेचन निरूहण और अनुलोमन कर्त्ता अनुवासन वस्तिका प्रयोग करावे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

परिकर्तिका व्यापत्ति।

मृदुकोष्ठाल्पदोषस्य रूक्षतीक्ष्णोऽतिमात्रवान्।
वस्तिर्दोषान्निरस्याशु जनयेत्परिकर्त्तिकाम् ॥ ५० ॥

त्रिकवंक्षणवस्तीनां तोदं नाभेरधो रुजम् ।
विबन्धाल्पाल्पमुत्थानं गुदनिर्लेखनं भवेत् ॥ ५१ ॥

मृदुकोष्ठ और अल्पदोषवालेको रूक्ष, तीक्ष्ण और अधिक मात्रासे वस्तिप्रयोग किया जाय तो वह वस्ति दोषोंको निकालकर परिकर्त्तिका अर्थात् कतरनेकीसी पीडा, उत्पन्न कर देती है तथा त्रिक वंक्षण और वस्तिस्थानमें सूई चुभनेकीसी पीडा, नाभिके नीचे शूल,विबन्ध और अल्प २ मल निकले, गुदामें विदारणकीसी पीडा हो (अत्यंत कतरनेकीसी पीडायुक्त प्रवाहिकाके समानही परिकर्त्तिका होती है) ॥ ५० ॥ ५१॥

स्वादुशीतौषधैस्तत्र पय इक्ष्वादिभिः शृतम् ।
यष्टयाह्वतिलकल्काभ्यां वस्तिः स्यात्क्षीरभोजिनः ॥ ५२ ॥

परिकर्त्तिका व्यापत्तिमें मधुरगण और शीतल औषधियोंसे अथवा ईखके रस आदिसे सिद्ध किये दूधमें मुलैठी और तिलकल्क मिला वस्तिकर्म करे और भोजनके लिये रोगीको केवल दूधही देवे ॥ ५२ ॥

ससर्जरसयष्टयाह्वजिङ्गिनीकर्दमाञ्जनम् ।
विनीय दुग्धे वस्तिः स्यात्तिक्ताम्लमृदुभोजिनः ॥ ५३ ॥

यदि वायुका भी संसर्ग हो और रक्तभी आनेलगे तो राल मुलैठी जींगनका छिलका, चिकने तालावकी पपडी और रसौत इनसे पकायेहुए दूधकी वस्ति करना हितकारक है । तथा ऐसे समय तिक्त और अम्लरसके साथ चावलोंका नर्मसा भोजन करावे ॥ ५३ ॥

परिस्राव व्यापत्ति ।

पित्तरक्तेऽम्ल उष्णो वा तीक्ष्णो वा लवणोऽथवा ।
वस्तिर्लिखति पायुं तु तीक्ष्णोऽति विदहत्यपि ॥ ५४ ॥
स विदग्धः स्रवत्यस्रं पित्तश्चानेकवर्णवत् ।
सार्य्यंते बहुवेगेन मोहं गच्छति चासकृत् ॥ ५५ ॥

यदि मनुष्यको रक्तपित्त वा रक्तकी बवासीरमें अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण और लवणयुक्त वस्तिका प्रयोग करे तो वह वस्ति गुदाको विदीर्ण कर तीक्ष्ण होनेसे विदाहको उत्पन्न करती है । और विदग्ध होनेसे अनेक वर्णके पित्तके स्रावको उत्पन्न करती है उस स्रावके अति वेगसे रोगीको एकाएकी बेहोशी होनेलगती है ॥५४॥५५

आर्द्रशाल्मलिवृन्तैस्तु क्षुण्णैराजं पयः शृतम् ।
सर्पिषा योजितं शीतं वस्तिमस्मै प्रदापयेत् ॥ ५६ ॥

वटादि पल्लवेष्वेष कल्पो यवतिलेषु च।
सुवर्चलोपोदिकयोः कर्बुदारे च शस्यते ॥ ५७ ॥
गुदसेकाः प्रदेहाश्च शीताः स्युर्मधुराश्च ये।
रक्तपित्तातिसारघ्नी क्रिया चात्र प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

इस रोगमें सेंवलके गीले वृन्तोंको कूटकर उनसे बकरीके दूधको सिद्ध करे। उस दूधको घीमें मिलाकर शीतलही वस्तिका प्रयोग करे अथवा वटादि क्षीरी वृक्षोंके कोमलपत्र, यव, तिल, हुलहुल, पोईके पत्र, लाल कचनार इनके क्काथसे और कल्कसे गुदापर सेचन और लेपन करे। अथवा इनसे सिद्ध किये दूधमें घृत मिलाकर उससे शीतलही वस्तिका प्रयोग करे तथा अन्य शीतल और मधुर द्रव्योंसे गुदापर सेचन और लेपन करे। तथा रक्तपित्तातिसारनाशक क्रिया करे ॥ ५६-५८ ॥

अध्यायका उपसंहार।

इत्येता व्यापदः प्रोक्ता वस्तेः साकृतिभेषजाः।
बुद्ध्वा कार्त्स्न्येन तान्वस्तीन्नियुञ्जन्नापराध्यति ॥ ५९ ॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक है कि, इस वस्तिव्यापत्सिद्धिनामक अध्यायमें वस्तिके मिथ्यायोगसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके लक्षण और औषधि क्रम कथन कर दिया है इसको संपूर्ण रूपसे समझकर वस्तिके प्रयोग करनेवाला वैद्य अपराधका भागी नहीं होता ॥ ५९ ॥

तीक्ष्णत्वं मूत्रबिल्वादिलवणक्षारसर्षपैः।
प्राप्तकालं विधातव्यं क्षीराद्यैर्मार्दवं तथा ॥ ६० ॥

समय आदि विचारकर वस्तिको तीक्ष्ण अथवा मृदु किया जा सकता है। यदि वस्तिको तीक्ष्ण करना हो तो उसमें गोमूत्र, बिल्वफल, मैनफल आदि, लवण, क्षार और सरसोंका कल्क मिलाना चाहिये और यदि वस्तिको मृदु करना हो तो उसमें दूध, घृत आदि मधुर द्रव्योंका प्रयोग करे ॥ ६० ॥

आपादतलमूर्द्धस्थान् दोषान् पक्काशये स्थितः।
वीर्य्येण वस्तिरादत्ते खस्थोऽर्को भूरसानिव ॥ ६१ ॥

जैसे आकाशमें स्थितहुआ सूर्य पृथ्वीके संपूर्ण रसोंको आकर्षण कर देता है उसी प्रकार विधिवत् वस्तिका प्रयोग करनेसे पक्काशयमें स्थितहुई वस्ति भी पांवोंसे शिरतकके दोषोंको आकर्षण करलेती है ॥ ६१ ॥

यद्वत्कुसुम्भसंमिश्रात्तोयाद्रागं हरेत्पटः।
तद्वद्द्रवीकृतात्कायान्निरूहो निर्हरेन्मलान् ॥ ६२ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने वस्तिव्यापत्सिद्धि-
र्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जैसे जलमें मिलेहुए कसुंभेके फूलोंके रंगको स्वच्छ वस्त्र अपनेमें खैंच लेता है उसी प्रकार संपूर्ण मिले शरीरमें हुए दोषोंको वस्तिभी द्रवीभूत करके आकर्षण करलेती है॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-
निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-
भाषाटीकायां वस्तिव्यापत्सिद्धिर्नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातः प्रासृतयोगिकासिद्धिं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम प्रासृतयोगिका सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

अथेमान् सुकुमाराणां निरूहान् स्नेहनान् मृदून्।
कर्मणा विप्लुतानाञ्च वक्ष्यामि प्रसृतैः पृथक् ॥ १ ॥

अब सुकुमार और अधिक कामकाजसे थकेहुए मनुष्योंके लिये मृदु निरूहण और स्नेह प्रयोगोंका प्रसृत (२ पल) आदि प्रमाणसे पृथक् २ मृदुवस्तियोंका कथन करते हैं॥

पंचप्रासृतिकवस्ति।

क्षीराद्द्वौ प्रसृतौ कार्य्यौ मधुतैलघृतात्त्रयः।
खजेन मथितो वस्तिर्वातघ्नो बलवर्णकृत् ॥ २ ॥

दूध २ प्रसृत (४ पल), शहद, तेल और घी यह तीनों एक एक प्रसृत (दो दो पल) इन सबको मथानीसे मथकर वस्तिप्रयोग करे यह वस्ति वातनाशक और बल, वर्णको बढानेवाली है ॥ २ ॥

अष्टप्रासृतिकवस्ति।

एकैकः प्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषः।
बिल्वादिमूलक्काथाद्द्वौ कौलत्थाद्द्वौ सवातनुत्,॥ ३ ॥

तेल प्रसन्ना शहद और घृत यह एक एक प्रसृत बिल्वादि पंचमूलका काथ दो प्रसृत और कुल्थीका काथ २ प्रसृत इनको मथानीसे मथकर वस्ति प्रयोग करे। यह वस्ति वायुको नष्ट करनेवाली है ॥ ३ ॥

नवप्राकृतिकवस्ति।

पञ्चमूलरसात्पञ्च द्वौ तैलात्क्षौद्रसर्पिषोः।
एकैकः प्रसृतो वस्तिः स्नेहनीयोऽनिलापहः ॥ ४ ॥

बिल्वादि पंचमूलका काथ ५ प्रसृत, तेल २ प्रसृत, शहद १ प्रसृत, घृत एक प्रसृत इन सबको मिलाकर वस्तिकर्म करे यह वस्ति स्नेहन और वायुको नष्ट करनेवाली है॥४

शुक्रवर्द्धकवस्ति।

सैन्धवार्द्धाक्ष एकैकः क्षौद्रतैलपयोघृतात्।
प्रसृतौ हपुषाख्याच निरूहः शुक्रकृत्परः ॥ ५ ॥

सेंधानमक ६ मासे और शहद, तेल, दूध, घृत यह सब एक एक प्रसृत, नेत्रवालाका काथ १ प्रसृत इन सबको मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि होती है ५

पंचतिक्तकवस्ति।

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भसः।
चत्वारः प्रसृता एको घृतात्सर्षपकल्कतः।
निरूहः पञ्चतिक्तोऽयं मोहाभिष्यन्दकुष्ठनुत् ॥ ६ ॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल, रास्ना और सप्तपर्णकी छाल इन सबका काथ ४ प्रसृत घृत १ प्रसृत, सरसोंका कल्क १ तोला इन सबको मिलाकर वस्तिकर्म करे तो यह वस्ति, मोह, अभिष्यंद और कुष्ठको नष्ट करतीहै ॥ ६ ॥

कृमिनाशकवस्ति।

विडङ्गत्रिफलाशिग्रूफलमुस्ताखुपर्णिकात् ॥ ७ ॥
कषायात्प्रसृताः पञ्च तैलादेको विमथ्य तान्।
विडङ्गपिप्पलीकल्कान्निरूहः क्रिमिनाशनः ॥ ८ ॥

वायविडंग, त्रिफला, सहिंजनेके बीज, नागरमोथे और दन्ती इन सबका काथ ५ प्रसृति, तेल १ प्रसृति, वायविडंग और पीपलका कल्क २ तोला इन सबको मिलाकर निरूहणवस्ति करे तो इससे मलाशयमें होनेवाले सब प्रकारके कृमि दूर होतेहैं ७-८

वृष्यवस्ति।

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषः।
एकैकः प्रसृतो वस्तिः कृष्णाकल्को वृषत्वकृत् ॥ ९ ॥

क्षीरकाकोली, शालपर्णी और रास्नाका क्वाथ, ईखका रस, विदारीकंदका रस, शहद और घृत यह सब एक एक प्रसृति तथा पीपलका कल्क मिला सबको मथन करे। इस वस्तिके प्रयोग करनेसे वृष्यता (वीर्यकी वृद्धि) होती है ॥ ९ ॥

अन्य अनेकरोगोंमें वस्तियोग।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाञ्जिकात्।
प्रसृताः सर्षपैः पिष्टैर्विट्सङ्गानाहभेदनः ॥ १० ॥

तेल, गोमूत्र, दधिमण्ड और खट्टी कांजी यह सब ४ प्रसृति, इसमें सरसोंका कल्क मिलाकर वस्तिकर्म करे तो यह वस्ति अफारा और मलके विबन्धको भेदन कर दूर करदेती है ॥ १० ॥

श्वदंष्ट्राश्मभिदेरण्डरसात्तैलात्सुरासवात्।
प्रसृताः पञ्चयष्ट्याह्वात् कौन्ती मागधिका सिता।
कल्को वस्तिस्तु सानाहे मूत्रकृच्छ्रे परो मतः ॥ ११ ॥

गोखरू, पाषाणभेद, एरण्डकी जड इन सबका क्वाथ ३ प्रसृति, तेल १ प्रसृति, मद्य १ प्रसृति और इसमें रेणुका, पीपल, तथा मिसरीका २॥ तोला कल्क मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति अफारा और मूत्रकृच्छ्रको दूर करती है ॥ ११ ॥

एते सलवणाः कोष्णा निरूहाः प्रसृता नव ॥ १२ ॥

यह जो ऊपर ९ प्रकारके वस्तियोग कहेहैं इनमें सेंधानमक मिलाकर और इनको किंचित् गर्म करके प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

वस्तिविषयक अन्य विवेचना।

मृदुवस्तौ जडीभूते तीक्ष्णोऽन्यो वस्तिरिष्यते।
तीक्ष्णैर्विकर्षितैः स्वादु प्रत्यास्थापनमिष्यते ॥ १३ ॥

यदि मृदुवस्ति रुकजाय तो तीक्ष्णवस्तिका प्रयोग करना चाहिये और यदि तीक्ष्ण वस्तिसे रोगी विशेष कर्षित होजाय अर्थात् तीक्ष्णवस्तिके अतियोगसे व्याकुल रोगी होजाय तो उसको मृदु और आस्थापनवस्ति प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

वातोपसृष्टस्योष्णैः स्युर्गुददाहादयो यदि।
द्राक्षाम्बुना त्रिवृत्कल्कं दद्याद्दोषानुलोमनम्।
तद्धि पित्तशकृद्वातान् हृत्वा दाहादिकाञ्जयेत् ॥ १४ ॥

वातपीडित मनुष्यको उष्णवस्तिका प्रयोग करनेसे यदि उसी गुदामें दाह आदिक उपद्रव होजाँय तो उसका द्राक्षाके रसके साथ निशोथका कल्क पिलावे। उसके

पीनेसे दोषका अनुलोमन होता है और यह पित्त और मलको निकालकर दाहादिकोंकी शांति करताहै ॥ १४ ॥

शुद्धश्चापि पिबेच्छीतां यवागूं शर्करायुताम् ॥ १५ ॥

शुद्ध होनेके अनन्तर मिसरी मिलाकर शीतल यवागूको पीवे ॥ १५ ॥

अथवातिविरिक्तः स्यात्क्षीणविट्कः स भक्षयेत् ।
माषयूषेण कुल्माषान्पिबेद्दध्यथवा सुराम् ॥ १६ ॥

अत्यंत विरेचन होनेसे जिस मनुष्यका मल क्षीण होगयाहो उसको उडदोंके यूषके साथ भोजन करावे तथा कुल्माष (उबालाहुआ गेहूं) अथवा दही या सुराका सेवन करावे ॥ १६ ॥

सामं चेदतिसार्येत शूलारोचकवान्नरः ।
स तदा हपुषाकुष्ठनतदारुवचाः पिबेत् ॥ १७ ॥

वस्तिकर्मके अनन्तर मनुष्यको शूल, अरुचि और आमातिसार होजाय तो उसको हाउबेर, कूठ, तगर, देवदारु और वचका चूर्ण पिलावे ॥ १७ ॥

६ मलोंके अतिसार।

शकृद्वातमसृक्पित्तं कफं वा योऽतिसार्य्यते ।
पक्वस्तत्र स्ववर्गीयैर्वस्तिः श्रेष्ठं भिषग्जितम् ॥ १८ ॥

मल, अधोवायु, रक्तपित्त वा कफका अतिसार हो तो उसके पक्व होनेपर रोगीको उस रोगकी ही औषधियोंद्वारा शान्त करना चाहिये। तथा उस रोगके नाश करनेवाले द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना भी श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

इन ६ के ३० भेद।

षण्णामेषां द्विसंसर्गात् त्रिंशद्भेदा भवन्ति ते ।
केवलैः सह चेत् त्रिंशद्विद्यात्सोपद्रवानपि ॥ १९ ॥
शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्वरान् ।
सतृष्णादाहमूर्च्छान्तांश्चैषां विद्यादुपद्रवान् ॥ २० ॥

आम, विष्ठा, वायु, रक्त, पित्त और कफ इन छः प्रकारके मलोंके दो दो भेदोंकी मिलावट करनेसे ३० प्रकारके भेद होजाते हैं। जैसे आमविष्ठा, आमवायु, आमरक्त, आमपित्त, आमकफ, विष्ठावायु, विष्ठारक्त, विष्ठापित्त, विष्ठाकफ, वायुरक्त, वायुपित्त, वायुकफ, रक्तपित्त, रक्तकफ और पित्तकफ। यह १५ और ६ प्रकारके उपरोक्त मल मिलानेसे इक्कीस भेद हुए। इन इक्कीसोंमें नीचे लिखे ९ उपद्रव मिलावे जैसे

शूल, प्रवाहिका, अफारा, परिकर्त्तिका, अरुचि, ज्वर, प्यास, दाह और मूर्च्छा यह ९ उपद्रव अतिसारके होते हैं इनको मिला देनेसे ३० भेद होजाते हैं ॥१९॥२०॥

इनकी चिकित्सा।

तत्रामे वमनं कार्य्यं व्योषाम्ललवणैर्युतम्।
पाचनं शस्यते वस्तिरामे हि प्रतिषिध्यते ॥ २१ ॥

आमातिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण और कांजी नमकके साथ पिलाकर वमन कराना हितकारक है। और इन्हीं द्रव्योंसे पाचनवस्ति देनेसे भी आमातिसार नष्ट होता है२१

वातघ्नग्राहिवर्गीयैर्वस्तिः शकृति शस्यते।
स्वाद्वम्ललवणैः शस्तः स्नेहवस्तिः समीरणे ॥ २२ ॥

मलातिसारमें वातनाशक तथा संग्राही द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है। वातातिसारमें मधुर, अम्ल और लवण द्रव्योंसे स्नेहयुक्त वस्तिकर्म करना हितकारक है ॥२२॥

रक्ते रक्तेन पित्तन्तु कषायस्वादुतिक्तकैः।
सार्य्यमाणे कफे वस्तिः कषायकटुतिक्तकैः ॥ २३ ॥

रक्तातिसारमें बकरेके रक्तसे वा लालचन्दनसे अथवा रक्तातिसारनाशक द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये। पित्तातिसारमें मधुर, तिक्त और कसैले द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये। कफातिसारमें कसैले, चरपरे और कडुवे द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है ॥ २३ ॥

शकृता वायुना चामे तेन वर्चस्यथानिले।
संसृष्टेऽन्तरपानं स्याद्व्योषाम्ललवणैर्युतम् ॥ २४ ॥

आमविष्ठाके अतिसारमें अथवा आम और वायुसे मिलेहुए अतिसारमें वा आम, विष्ठा और वायु इन तीनोंके संघातयुक्त अतिसारमें वस्तिके अनन्तर कांजी और सेंधेनमकके साथ त्रिकुटेका चूर्ण पिलाना चाहिये ॥ २४ ॥

पित्तेनामेऽसृजा वापि तयोरामेन वा पुनः।
संसृष्टयोर्भवेत्पानं सव्योषकटुतिक्तकम् ॥ २५ ॥

पित्त और आमके अतिसारमें अथवा आम और रक्तके अतिसारमें वा पित्त, रक्त और आम इन तीनोंके संघातयुक्त अतिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण, स्वादु और तिक्त द्रव्योंके साथ पिलाना चाहिये ॥ २५ ॥

तथाऽऽमे कफसंसृष्टे कषायव्योषतिक्तकम्।
आमे तनुकफे व्योषकषायलवणैर्युतम् ॥ २६ ॥

आम और कफके अतिसारमें त्रिकुटेके चूर्णको कसैले और कडुवे द्रव्योंसे पीना चाहिये। यदि आमके साथ कफका अल्पभाग हो तो त्रिकुटेके चूर्णको कसैले और नमकीन क्वाथके साथ पीवे ॥ २६ ॥

वातेन विषि पित्ते वा विट्पित्ते च तथाऽनिले।
मधुराम्लकषायः स्यात्संसृष्टे वस्तिरुत्तमः ॥ २७ ॥

वात और विष्ठाके अतिसारमें अथवा वात, विष्ठा और पित्त इन तीनोंके मिले-हुए अतिसारमें मधुर, अम्ल और कसैले द्रव्योंका पाचन देना हितकारक है। अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सान्निपातिक अतिसारमें वस्ति करना ही श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

शकृच्छोणितयोः पित्तशकृतो रक्तपित्तयोः।
वस्तिरन्योन्यसंसर्गे कषायस्वादुतिक्तकैः ॥ २८ ॥

रक्त और विष्ठाके अतिसारमें अथवा पित्त और विष्ठाके अतिसारमें वा रक्त और पित्तके अतिसारमें कसैले, मधुर और तिक्तद्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है॥ २८॥

कफेन विषि पित्ते वा कफे विट्पित्तशोणितैः।
व्योषतिक्तकषायः स्यात्संसृष्टे वस्तिरुत्तमः ॥ २९ ॥

कफ और विष्ठाके संसर्गमें अथवा कफ और पित्तके अतिसारमें वा विष्ठा और पित्तके अतिसारमें अथवा कफ, विष्ठा, पित्त और रक्तके सांघातिक अतिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण, कसैले और तिक्त द्रव्योंके साथ सेवन कराना हितकारक है। तथा इन्हीं द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना भी श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

स्याद्वस्तिर्व्योषतिक्ताम्लः संसृष्टे वायुना कफे।
मधुरव्योषतिक्तस्तु रक्ते कफविमिश्रिते ॥ ३० ॥

अल्पवायुयुक्त कफके अतिसारमें त्रिकुटेका कल्क, कडुवे और खट्टे रसोंमें मिला-कर वस्तिकर्म करे। रक्त और कफसे मिश्रित अतिसारमें त्रिकुटेके कल्कको मधुर और तिक्तद्रव्योंके क्वाथमें मिलाकर वस्तिकर्म करे ॥ ३० ॥

मारुते कफसंसृष्टे व्योषाम्ललवणो भवेत्।
वस्तिर्वातेन रक्ते तु कार्य्यः स्वाद्वम्लतिक्तकः ॥ ३१ ॥

अल्पकफयुक्त वायुके अतिसारमें त्रिकुटेका कल्क नमकयुक्त खट्टे रसोंमें मिला-कर वस्तिकर्म करे। वायु और रक्त मिले अतिसारमें मधुर, अम्ल और तिक्त द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ३१ ॥

त्रिचतुःपञ्चषड्योगानेवमेव विकल्पयेत्।

युक्तिश्चैषातिसारोक्ता सर्वरोगेष्वपि स्मृता ॥ ३२ ॥

इस प्रकार आम, विष्ठा, वात, पित्त, रुधिर और कफ इन छः प्रकारके मलोंके तीन, चार, पांच अथवा छः योगोंकी कल्पना करे। जैसे इन छः मलोंके आपसमें तीनोंके मिलान कियेजानेसे यह दश प्रकारके होजाते हैं। जैसे १ आम, विष्ठा, वात। २ आम, विष्ठा, पित्त। ३ आम, विष्ठा, रक्त। ४ आम, विष्ठा, कफ। ५ विष्ठा, वात, रक्त। ६ विष्ठा, वात, पित्त। ७ विष्ठा, वात, कफ। ८ वात, रक्तपित्त। ९ वात, रुधिर, कफ। १० रुधिर, पित्त, कफ। और इसी प्रकार चारोंके संसर्गसे कल्पना करे तो ६ भेद होते हैं। तथा पांचोंके संसर्गसे कल्पना कीजाय तो तीन भेद होते हैं। छः का संसर्ग करनेसे एक भेद होता है। इन सबको मिलानेसे बीस भेद होते हैं। यह अतिसारमें कहीहुई कल्पनायुक्त अन्य ज्वरादि संपूर्ण रोगोंमें भी कल्पना करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

युगपत्षड्रसं षण्णां संसर्गे पाचनं भवेत्।
निरामाणाञ्च पञ्चानां वस्तिः षाड्रसिको मतः ॥ ३३ ॥

इन छः मलोंके संसर्गमें मधुर, अम्ल, लवण, कषाय, तिक्त और कटु इन छः रसोंको एक साथ प्रयोग किये जानेसे इन छःओंका पाचन होता है और इनमें आमके सिवाय और पांच प्रकारके मलोंमें छः रसोंकी वस्ति कल्पना कर प्रयोग करना हितकारक है। परन्तु आममें तो पाचन देनाही हितकारक है ॥ ३३ ॥

उपरोक्त अतिसारनाशक घृत।

उदुम्बरशलाटूनि जम्ब्वाम्रोदुम्बरत्वचः।
शंखं सर्जरसं प्लाक्षीं कर्दमञ्च पलांशिकम् ॥ ३४ ॥
पिष्ट्वा तैः सर्पिषः प्रस्थं क्षीरद्विगुणितं पचेत्।
अतीसारेषु सर्वेषु पेयमेतद्यथाबलम् ॥ ३५ ॥

गूलरके कच्चे फल और जामुनकी छाल, आमकी छाल, गूलरकी छाल, शंखका चूर्ण, राल, लाख और जलस्थानका कीच इन सबको एक एक पल लेवे। इन सबका कल्क बनाकर एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध इन सबको मिलाकर पकावे। यह घृत उपरोक्त सब प्रकारके अतिसारोंमें बलानुसार पिलाना अतिहितकारी है ॥

यवागू।

कच्छूराधातकीबिल्वसमङ्गारक्तशालिभिः।
मसूराश्वत्थशुङ्गैश्च यवागूः स्याज्जले शृतैः ॥ ३६ ॥

कौंचके बीज, धावेके फूल, बेलकी गिरी, वाराहक्रान्ता, लाल चावल, मसूर,

पीपलके शुंग (कालियें या अंकुर) इन सबके काथमें सिद्ध कीहुई यवागू उपरोक्त अतिसारोंमें हितकारक है ॥ ३६ ॥

बालोदुम्बरकट्वङ्गसमङ्गाप्लक्षपल्लवैः ।
मसूरधातकीपुष्पबलाभिश्च तथा भवेत् ॥ ३७ ॥

सुगंधवाला, गूलरके कच्चे फल, सोनापाठा, वाराहीकंद, पिलखनके पत्र, मसूर, धावेके फूल और खरैटी इन सबके काथमें सिद्ध कीहुई यवागू भी उपरोक्त संपूर्ण अतिसारोंको दूर करती है ॥ ३७ ॥

स्थिरादीनां बलादीनामिक्ष्वादीनामथापि वा ।
काथेषु समसूराणां यवाग्वः स्युः पृथक्पृथक् ॥ ३८ ॥

शालपर्ण्यादि पंचमूल अथवा बला आदि वातनाशक गण वा ईख आदि तृण अथवा मसूरके क्वाथमें पृथक् २ यवागुओंको सिद्ध कर पिलानेसे भी उपरोक्त अतिसार दूर होता है ॥ ३८ ॥

कच्छुरामूलशाल्यादितण्डुलैर्वापि साधिताः ।
दधितक्रारनालाम्लक्षारेष्विक्षुरसेऽपि वा ॥ ३९ ॥
शीताः सशर्कराः क्षौद्राः सर्वातीसारनाशनाः ।
ससर्पिर्मरिचाजाजीमधुरा लवणाः शिवाः ॥ ४० ॥

कौंचकी जड और कौंच बीजोंके क्वाथमें शालि आदि चावलोंकी यवागू सिद्ध कर अथवा दही, तक्र, कांजी, जवाखार और ईखका रस इनमेंसे किसी एकके साथ सिद्ध कीहुई यवागूको शीतलकर मिसरी और शहद मिलाकर पीवें तो सब प्रकारके अतिसार दूर होते हैं। इन उपरोक्त यवागुओंमें दोषानुसार घृत, मिर्च, जीरा, शहद और लवण इनमेंसे जो जिस दोषानुसार हितकारी हो सो मिलाना चाहिये॥ ३९॥ ४०॥

वातादिभेदसे रसमें कल्पना।

भवन्ति चात्र–स्निग्धाम्ललवणमधुरं पानं वस्तिश्च मारुते कोष्णः ।
शीतं तिक्तकषायं मधुरं पित्ते च रक्ते च ॥ ४१ ॥

यहांपर कहते हैं कि, वायुमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषधको किंचित् गर्म करके पीना या वस्तिकर्म करना हितकारक है। पित्तमें और रक्तमें शीतल, तिक्त, कषाय और मधुर द्रव्यको शीतलही पीना और शीतलही वस्तिमें प्रयोग करना हितकारक है ॥ ४१ ॥

तिक्तोष्णकषायकटुश्लेष्मणि संग्राहिवातनुच्छकृति ।

पाचनमामे पानं पिच्छासृग्वस्तयो रक्ते ॥ ४२ ॥

कफमें तिक्त, उष्ण कषाय और कटुद्रव्योंका प्रयोग करना हितकारी है । मलके भेदन होनेसे संग्राही और वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । आमदोषमें पाचन द्रव्यका सेवन करना चाहिये । रक्तमें पिच्छावस्ति और रक्तवस्ति करना हितकारक है ॥ ४२ ॥

अतिसारं प्रत्युक्तं मिश्रं द्वन्द्वामयोगजेष्वपि च ।
तत्रोद्रेकविशेषाद्दोषेषूपक्रमः कार्य्यः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार सन्निपातज, द्वंद्वज और आमज अतिसारोंका कथन किया गयाहै । इनमें दोषोंकी न्यूनाधिकता विचारकर दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ४३ ॥

अध्यायका उपसंहार।

प्रासृतिकासव्यापत्क्रियानिरूहास्तथातिसारहिताः ।
रसकल्पघृतयवाग्वश्चोक्ता गुरुणा प्रसृतसिद्धौ ॥ ४४ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने प्रासृतयोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि, इस प्रासृतयोगिकासिद्धिनामक अध्यायमें प्रासृतयोग, भिन्न २ व्यापत्तियें और उनकी चिकित्सा, अतिसारनाशक अनेक प्रकारके निरूहरसोंकी कल्पना, यवागू, घृत यह सब भगवान् आत्रेयजीने कथनकिये हैं॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां प्रासृतयोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।



अथातस्त्रिमर्मीयां सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम त्रिमर्मीयासिद्धिकी व्याख्याकरतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे॥

सप्तोत्तरं मर्मशतमस्मिञ्शरीरे स्कन्धशाखाश्रितमग्निवेश ! तेषामन्यतमपीडायां समधिका पीडा भवति चेतनानि बद्धवैशेष्यात् ॥ १ ॥

हे अग्निवेश! इस शरीरमें १०७ मर्मस्थान हैं वह सब स्कन्ध (मस्तक, गर्दन और मध्य शरीर) और शाखा (हाथ पांव) के आश्रित हैं। इन १०७ मर्मोंमें, अन्य शरीरसे अधिक पीडा होती है क्योंकि मर्मोंमें चेतना शक्ति विशेषरूपसे निबद्ध है अर्थात् स्थित रहती है ॥ १ ॥

मर्मोंका गुरुत्व।

तत्र शाखाश्रितेभ्यो मर्मभ्यः स्कन्धाश्रितानि गरीयांसि शाखानां तदाश्रितत्वात्। स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि हृद्वस्तिशिरांसि तन्मूलत्वाच्छरीरस्य ॥ २ ॥

शाखाश्रित मर्मोंकी अपेक्षा स्कन्धास्थित मर्म भारी होतेहैं क्योंकि शाखा भी स्कन्धाश्रितही होतीहैं। स्कन्धाश्रित मर्मोंमें भी अन्य मर्मोंसे हृदय वस्ति और शिर अत्यन्त गुरु होते हैं। क्योंकि यही शरीरकरके मूल हैं और इन्हींके आश्रय शरीरका जीवन है२॥

तत्र हृदि दश च धमन्यः प्राणोदानमनोबुद्धिचेतनामहाभूतानि च नाभ्यामरा इव प्रतिष्ठितानि ॥ ३ ॥

जैसे नाभिसे अमरा नाडी लगीरहती है उसी प्रकार हृदयसे १० धमनीसंज्ञक नाडियें लगीहुई हैं और प्राण, उदान, मन, बुद्धि तथा चेतना यह सब हृदयमेंही रहते हैं। हृदय शरीरके और सब अंगोंकी अपेक्षा पांच भूतोंका मुख्य स्थान है ॥३॥

शिरसि इन्द्रियाणि इन्द्रियप्राणवहानि च स्रोतांसि सूर्य्यमिव गभस्तयः संश्रितानि ॥ ४ ॥

जैसे प्रकाशकारक किरणें सूर्यमें आश्रित रहती हैं उसी प्रकार शिर (दिमाग) में संपूर्ण इन्द्रियें और इन्द्रियोंके प्राणवाही स्रोत स्थित रहते हैं ॥ ४ ॥

वस्तिस्तु स्थूलगुदमुष्कसेवनीशुक्रमूत्रवाहिनीनां नाडीनां मध्ये मूत्राधारोऽम्बुवहानां सर्वस्रोतसामुदधिरिवापगानां प्रतिष्ठितो भवति। बहुभिश्च तन्मूलैर्मर्मसंज्ञकैः स्रोतोभिर्गगनमिव दिनकरकरैर्व्याप्तमिदं शरीरम् ५

स्थूल अंतडी, अण्डकोश, सीवन, वीर्यवाही और मूत्रवाही नाडियोंके मध्यस्थानमें वस्ति होती है। जैसे संपूर्ण नदियोंका केन्द्रस्थान समुद्र है उसी प्रकार संपूर्ण जलवाही स्रोतोंका केन्द्रस्थान वस्ति (मूत्राशय) है। जैसे—सूर्यकी किरणोंसे आकाश व्याप्त होता है उसी प्रकार इन तीन मूल मर्मोंके आश्रित अन्य मर्मोंके जालसे व्याप्त यह शरीर है ॥ ५ ॥

तेषां त्रयाणामन्यतमस्यापि भेदादाश्वेव शरीरभेदः स्यादाश्रयनाशादा-

श्रितस्य नाशः । तदुपाघातात्तु घोरव्याधिप्रादुर्भावस्तस्मादेतानि विशेषेण रक्ष्याणि । बाह्याभिघाताद्वातादिदोषेभ्यश्च ॥ ६ ॥

इन तीन मर्मोंमें किसी मर्मका भेदन होनेसे शरीरका भी तत्काल भेदन होजाता है । क्योंकि आश्रयका नाश होनेसे आश्रितका स्वयं नाश होजाता है । इन तीन मर्मोंमें चोट आदि किसी प्रकारका उपघात होनेसे विशेष घोर व्याधियें उत्पन्न होजाती हैं । इसलिये इन तीनों मर्मोंकी विशेषरूपसे बाह्य चोट आदि अभिघातसे और भीतर वातादि दोषोंसे विशेष ध्यानपूर्वक रक्षा करते रहना चाहिये ॥ ६ ॥

हृदयमें अभिघातसे उपद्रव ।

तत्र हृदये अभिहते कासश्वासबलक्षयकण्ठशोषक्लोमापकर्षणजिह्वानिर्गममुखतालुशोषापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयः स्युः ॥ ७ ॥

हृदयमें चोट लगनेसे, खांसी, श्वास, बलक्षय, कण्ठका सूखना, क्लोमका अपकर्षण, जीभका बाहर निकल आना, मुखका सूखना, तालुशोष, अपस्मार, उन्माद प्रलाप, चित्तका बिगडना यह उपद्रव होते हैं ॥ ७ ॥

शिरमें अभिघातके उपद्रव ।

शिरसि अभिहते मन्यास्तम्भार्दितचक्षुर्विभ्रममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमूकगद्गदत्वाक्षिनिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भणलालास्रावस्वरहानिवदनजिह्मत्वादीनि ॥ ८ ॥

शिरमें अभिघात पहुँचेनेसे मन्यास्तम्भ, अर्दितरोग, नेत्रोंका विभ्रम, मोह, वेष्टनकीसी पीडा, चेष्टानाश, खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, हलकापन, नेत्रोंका मिचना, गण्डस्थलोंका फडकना, जंभाई, मुखसे लारका बहना और मुखका टेढा होजाना आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

वस्तिमें चोटलगनेके उपद्रव ।

वस्तौ तु वातमूत्रवर्चोनिग्रहवंक्षणमेहनवस्तिशूलकुण्डलोदावर्त्तगुल्मब्रध्नानिलाष्ठीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहादयः ॥ ९ ॥

वस्ति (मूत्राशय) में चोट लगनेसे अधोवायु, मूत्र और मलका विबंध, वंक्षणमें शूल, लिंगशूल, वस्तिशूल, वातकुण्डलिका (मूत्रको चक्कर देकर रोकनेवाली वातजनित व्याधि) उदावर्त्त, गुल्म, वातष्ठीला, उपस्तंभ, नाभि, कुक्षी, गुदा और श्रोणीमें जकडन तथा ऐसेही अन्य अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

मर्मोंकी चिकित्सा ।

वाताद्युपसृष्टानां तु एषां लिंगानि चिकित्सिते सक्रियादिविधीनि

उक्तानि। किन्तु एतानि विशेषतोऽनिलाद्रक्ष्याणि अनिलो हि पित्तकफसमुदीरणे हेतुः। प्राणमूलञ्च मर्म तच्च वस्तिकर्मसाध्यतमम्। तस्मान्न वस्तिसमं किञ्चित्कर्म मर्मपरिपालनमस्ति ॥ १० ॥

इन तीनों मर्मोंमें होनेवाले वातादिजनित रोगोंके लक्षण और चिकित्साको चिकित्सास्थानके त्रिमर्मीय अध्यायमें कथन करआये हैं। इन तीनों मर्मोंको विशेषकर वायुसे रक्षित रखना चाहिये। क्योंकि वायुही पित्तकफको भी उत्तेजित करनेका हेतुभूत है। यह मर्म प्राणोंके मूलभूत हैं। इनमें वायु आदि दोषोंकी अन्य प्रकार चिकित्साकी अपेक्षा वस्तिकर्म करना अत्यन्त श्रेष्ठ है अथवा मर्मोंकी अन्य चिकित्साओंमें वस्तिकर्म सर्वोत्तम है। इसलिये वस्तिकर्मके समान मर्मोंकी रक्षा करनेवाला और कोई भी उपाय नहीं है ॥ १० ॥

तत्र षडास्थापनस्कन्धान्विमाने द्वौ चानुवासनस्कन्धौ इह च विहितान् वस्तीन् बुद्ध्या विचार्य्य महामर्मपरिपालनार्थं प्रयोजयेद्वातव्याधिचिकित्साञ्च ॥ ११ ॥

इसलिये जो विमानस्थानमें छः स्थापन स्कन्ध कह आये हैं। और सिद्धिस्थानमें दो प्रकारके अनुवासन स्कन्ध कहे हैं, उन सबको बुद्धिसे विचारकर इन तीन महामर्मोंकी पालनाके लिये प्रयोग करना चाहिये। इन मर्मोंमें किसी प्रकारकी वातजनित पीडा उपस्थित होनेपर वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

वातोपसृष्टहृदयकी चिकित्सा।

भूयश्च हृदि उपसृष्टे वातेन हिङ्गुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तां पेयां मातुलुङ्गस्य रसेन वाम्येन वाऽम्लेन हृद्येन वा पाययेत्। स्थिरादिपञ्चमूलीरसः सशर्करः पानार्थे बिल्वादिपञ्चमूलरससिद्धा च यवागूः हृद्रोगविहितञ्च कर्म ॥ १२ ॥

यदि वायु हृदयको पीडित करें तो हिंग्वादि चूर्ण वा और कोई लवणभास्कर आदि चूर्ण बिजौरे नींबूके रससे अथवा अन्य खटाईसे युक्त कर पीवे। अथवा हृदयप्रिय द्रव्योंसे वा इन्हीं खटाई आदि द्रव्योंसे बनाई हुई पेया पीवे। अथवा शालपर्ण्यादि पंचमूलके क्वाथमें खांड मिलाकर पीवे वा बिल्वादि पंचमूलके क्वाथसे सिद्ध कीहुई यवागू पीवे तथा हृद्रोगकी शांतिके लिये जो चिकित्सा कह आये हैं उसका उपयोग करना भी हितकारक है ॥ १२ ॥

वातोपसृष्टशिरकी चिकित्सा।

मूर्ध्नि तु वातोपसृष्टे अभ्यङ्गस्वेदनोपनाहनस्नेहपाननस्तःकर्मावपीडनधूमादीनि ॥ १३ ॥

यदि मस्तक वायुसे पीडित हो तो तेलका अभ्यंग, स्वेदन, उपनाह, स्नेहपान, नस्यकर्म, अवपीडन और धूमपानादि कर्म हितकारक है ॥ १३ ॥

वातोपसृष्टवस्तिकी चिकित्सा।

वस्तौ तु कुम्भीस्वेदो वर्त्तयश्च। श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धो निरूहः। बिल्वादिस्वरससिद्धः शरकाशेक्षुदर्भगोक्षुरकमूलशतक्षीरैश्च। त्रपुषैर्वारुखराश्वाबीजयवक्षभककल्कितो निरूहः। क्षारयवातिल्वकभृष्टकल्कितो वा निरूहः। पीतदारुकासिद्धतैलानुवासनम्। तैल्वकञ्च सर्पिर्विरेकार्थम् ॥ १४ ॥

यदि मूत्राशय वातसे दूषित हो तो कुम्भीस्वेद और वर्त्तिविधान तथा निशोथ आदि गणमें गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्ति करे। अथवा बिल्वादि पंचमूलके क्वाथसे वा शरकण्डेकी जड, कांसकी जड, ईखकी जड, कुशाकी जड और गोखरूकी जडसे सिद्ध कियेहुए दूधसे वस्तिका प्रयोग करे। अथवा खीरेके बीज, ककडीके बीज और अजमोदके क्वाथमें ऋषभकका कल्क मिलाकर निरूहण वस्ति करे। तथा सरलकाष्ठके साथ सिद्ध किये तैलका अनुवासन करना हित है। और तिल्वक कल्पमें कहेहुए विरेचनकर्त्ता घृत पिलाकर विरेचन कराना श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

औत्तरवस्तिका तैल।

शतावरीगोक्षुरकबृहतीकण्टकारिकागुडूचीपुनर्नवोशीरमधुकद्विशारिवालोध्रश्रेयसीकुशकाशमूलकषायक्षीरचतुर्गुणं बलावृषर्षभकखराह्वोपकुञ्चिकावत्सकत्रपुषैर्वारुबीजशितिमारकमधुकवचाशतपुष्पाश्मभेदवर्षाभूमदनफलकल्कसिद्धं तैलमुत्तरवस्तिनिरूहः शुद्धस्निग्धस्विन्नस्य वस्तिशूलमूत्रविकारहर इति ॥ १५ ॥

शतावर, गोखरू, बडी कटेली, छोटी कटेली, गिलोय, पुनर्नवा, खस, मुलैठी और दोनों प्रकारकी शारिवा, लोध, गोरखमुण्डी, कुशा और कांसकी जड इन सबका क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर, तेल १ सेर और बला, अडूसा, ऋषभक, अजमोद, कलौंजी, इन्द्रयव, खीरेके बीज, ककडीके बीज, शालिंच शाक, मुलैठी, वच, सौंफ, पाषाणभेद, सफेद पुनर्नवा और मैनफल इन सबका कल्क एक पाव इन सब द्रव्योंको मिलाकर तैल सिद्ध करे। प्रथम रोगीको निरूहण करके शुद्ध होनेपर स्निग्ध और स्वेदन कर इस तैलद्वारा उत्तरवस्ति करे तो वस्तिका शूल और मूत्रविकार दूर होतेहैं ॥ १५ ॥

भवन्ति चात्र—हृदि मूर्ध्नि च वस्तौ च नृणां प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तस्मात्तेषां सदा यत्नात्कुर्वीत परिपालनम् ॥ १६ ॥

आघातवर्जनं नित्यं स्वस्थवृत्तानुवर्त्तनम्।
उत्पन्नार्त्तिविघातश्च मर्म्मणां परिपालनम्॥ १७॥

अब यहां कहतेहैं कि हृदय, मूर्द्धा और वस्तिस्थानमें मनुष्योंके प्राणोंका निवासस्थान है। इसलिये इन तीनों मर्मस्थानोंकी यत्नपूर्वक सदैव पालना करते रहना चाहिये तथा सब प्रकारकी चोट आदिसे नित्य बचाकर रक्खे और आरोग्य मनुष्योंके जो जीवनवर्द्धक नियम हैं उनका सेवन करतारहै तथा उत्पन्नहुई व्याधिकी. शांतिका यत्न करे और सदा मर्मोंकी रक्षा करतारहै॥ १६॥ १७.॥

अत ऊर्द्ध्वं विकारा ये त्रिमर्म्मीये चिकित्सिते।
न प्रोक्ता मर्मजास्तेषां कांश्चिद्वक्ष्यामि सौषधान्॥ १८॥

जो जो मर्मोंमें होनेवाले रोग अथवा मर्मस्थानोंसे संबंध रखनेवाले रोग चिकित्सास्थानके त्रिमर्मीयाध्यायमें नहीं कहे हैं सो अब उनके लक्षण और चिकित्साकी कथन करते हैं॥ १८॥

अपतंत्रकके लक्षण।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्द्ध्वं प्रपद्यते।
पीडयन् हृदयं गत्वा शिरःशंखौ च पीडयन्॥ १९॥
धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा।
कृच्छ्रेण चाप्युच्छ्वसिति स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः॥२०॥
कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः॥ २१॥

अपने कोपकारक कारणोंसे कुपितहुआ वायु निज स्थानको छोड ऊपरको गमन करताहै। तथा हृदयमें प्रवेश कर हृदयको पीडित करताहै और मस्तक तथा कनपटीमें पहुंचकर मस्तक और कनपटीमें पीडा उत्पन्न करताहै। तथा अंगोंको धनुषके समान झुकाकर आक्षिप्त करताहै और मोहको उत्पन्न करताहै उस समय रोगी कठिनतासे श्वास लेताहै। आँखें स्तब्ध अथवा बंद होजाती हैं। कबूतरके समान कण्ठ कूजन होने लगताहै और संज्ञा जाती रहती है इसको अपतंत्रक रोग कहते हैं॥१९-२१॥

अपतानकके लक्षण।

दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञाञ्च हत्वा कण्ठेन कूजति।
हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः।
वायुना दारुणं प्राहुरेके तदपतानकम्॥ २२॥

वायुके कोपसे दृष्टिका स्तंभित होना, संज्ञानाश, कण्ठकूजन होना और हृदयसे

वायु मुक्त होजानेपर आरोग्यता प्रतीत होना हृदय वायुसे आवृत होनेपर फिर बेहोशी होजाना इस प्रकार लक्षणोयुक्त वातजनित दारुण रोगको कोई अपतानक कहते हैं २२

इनकी चिकित्सा।

श्वसनं कफवाताभ्यां रुद्धं तस्य विमोचयेत् ।
तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यका श्वास वायु और कफसे रुका हुआ हो उसको तीक्ष्ण प्रधमन (विरेचनीय नस्य) देकर श्वासको खोल देना चाहिये। तीक्ष्ण नस्य द्वारा संज्ञावाहक छिद्रोंके खुलजानेसे बेहोशी दूर होकर होश भी आजाती है ॥ २३ ॥

मरिचं शिग्रुबीजानि विडङ्गञ्च फणिज्झकम् ।
एतानि सूक्ष्मचूर्णानि दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ २४ ॥

मिर्च, सुहांजनेके बीज, वायविडंग, फणिज्झक तुलसी इन सबको बारीक पीसकर नस्य देनेसे शिरोविरेचन होकर संपूर्ण छिद्र खुलजाते हैं और बेहोशी दूर होती है २४॥

हिंगुतुम्बुरुपथ्या च पौष्करं लवणत्रयम् ।
यवक्वाथाम्बुना पेयं हृत्पार्श्वार्त्यपतन्त्रके ॥ २५ ॥

हींग, नैपाली धांनेयां, हरड, पोहकरमूल, सेंधानमक, संचरनमक और बिडलवण इन सबका चूर्ण कर यवोंके क्वाथ अथवा गर्म जलके साथ पीवे तो हृदयकी पीडा, पार्श्वपीडा और अपतंत्रक रोग दूर होता है ॥ २५ ॥

हिंग्वम्लवेतसं शुण्ठीं ससौवर्चलदाडिमम् ।
पिबेद्वातकफघ्नञ्च कर्म हृद्रोगनुद्धितम् ॥ २६ ॥
शोधना वस्तयस्तीक्ष्णा हितास्तस्य च कृत्स्नशः ।
सौवर्चलाभयाव्योषैः सिद्धन्तु स्याद्घृतं हितम् ॥ २७ ॥

हींग, अमलवेत, सोंठ, संचरनमक, नासपाल इनके चूर्णको गर्मजलके साथ पीवे तो अपतंत्रक, अपतानक, वातकफके विकार और हृद्रोग दूर होते हैं। रोगोंमें वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया करना भी उपकारक है। तथा शोधन तीक्ष्ण वस्तिका प्रयोग करना भी हितकारी है। और संचरनमक, हरड तथा त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर सिद्ध किया घृत भी सब प्रकार हित करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

तंद्रारोगके हेतु, लक्षण।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनाद्भयात् ।
शोकाद्व्याध्यनुषङ्गाच्च वायुनोदीरितः कफः ॥ २८ ॥

यदासौ समवस्कन्द्यं हृदयं हृदयाश्रयान्।
समावृणोति ज्ञानादींस्तदा तन्द्रोपजायते ॥ २९ ॥
हृदये व्याकुलीभावो वाक्चेष्टेन्द्रियगौरवम्।
मनोबुद्ध्यप्रसादश्च तंद्राया लक्षणं मतम् ॥ ३० ॥

मधुर, स्निग्ध, भारी और अम्लरसोंका सेवन करनेसे चिन्ता, भय, और शोकसे तथा ज्वरादि रोगोंके अनुषंगसे वायु कफको उदीर्ण कर हृदयको अच्छादित करदेता है तथा हृदयाश्रित ज्ञानादिकोंको आवृत करके तंद्रानामक रोगको उत्पन्न करता है। उसमें हृदयका व्याकुल होना, वाणी, चेष्टा और इन्द्रियोंमें भारीपन, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता यह तंद्राके लक्षण कहे हैं ॥ २८-३० ॥

तंद्राकी चिकित्सा।

कफघ्नं तत्र कर्त्तव्यं शोधनं शमनानि च।
व्यायामो रक्तमोक्षं च भोज्यश्च कटुतिक्तकम् ॥ ३१ ॥

तंद्रारोगमें कफनाशक चिकित्सा करना तथा शोधन, संशमन आदि क्रिया करना हितकारक है तथा व्यायाम रक्तमोक्षण कटु और तिक्त द्रव्योंका भोजन करना हितकारक है परन्तु ज्वरमें उत्पन्न हुई तंद्राकी यह चिकित्सा नहीं ॥ ३१ ॥

वस्तिरोग व मूत्रघातके १३ भेद।

मूत्रैकसादं जठरं कृच्छ्रं स्रोतसङ्गसंक्षयौ।
मूत्रातीतोऽनिलाष्ठीलावातवस्त्युष्णमारुतौ ॥ ३२ ॥
वातकुण्डलिकाग्रन्थिविड्घातो वस्तिकुण्डलम्।
त्रयोदशैते मूत्रस्य दोषास्तान् लिङ्गतः शृणु ॥ ३३ ॥

मूत्रैकसाद, मूत्रजठर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय, मूत्रातीत, वातष्ठीला, वातवस्ति, उष्णवात, वातकुण्डलिका मूत्रग्रंथी विड्विघात और वस्तिकुण्डल यह तेरह प्रकारके मूत्रदोष मूत्राशयके विकार होते हैं। अब इनके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवणकरो ३२॥३३

मूत्रैकसादके लक्षण, चिकित्सा।

पित्तं कफो द्वयं वापि वस्तौ संहन्यते यदा।
मारुतेन तदा मूत्रं रक्तपीतं घनं सृजेत् ॥ ३४ ॥
सदाहं श्वेतसान्द्रं वा सर्वैर्वा लक्षणैर्युतम्।
मूत्रैकसादं तं विद्यात्पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ॥ ३५ ॥

पित्त अथवा कफ वा पित्त और कफ दोनों जब वायुसे प्रेरित होकर मूत्राशयमें इकठे होजाते हैं तब लाल, पीला और गाढा मूत्र आने लगता है। अथवा दाहयुक्त सफेद और सान्द्र आने लगता है। वा इन दोनों प्रकारके संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त होकर मूत्र आता है इस रोगको मूत्रौकसाद जानना। इसको पित्त और कफनाशक चिकित्साद्वारा जीतना चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

मूत्रजठरके हेतु, लक्षण, चिकित्सा।

विधारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तितं यदा।
पूरयत्युदरं मूत्रं तदा तदनिमित्तरुक् ॥ ३६ ॥
अपाक्तिमूत्रविट्संगैस्तन्मूत्रजठरं वदेत्।
मूत्रवैरेचनीं तत्र चिकित्सां संप्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥
हिङ्गु द्विरुत्तरं चूर्णं त्रिमर्मीये प्रकीर्त्तितम्।
हन्यान्मूत्रादिसंघातं व्याधिञ्च गुदमेढ्रयोः ॥ ३८ ॥

मूत्रके आयेहुए वेगको रोकनेसे मूत्र वायुद्वारा प्रतिहत होकर ऊपरको उलटजाता है तब उदरको पूर्णकर विना किसी निमित्तके उदरमें पीडा उत्पन्न करताहै। फिर अन्नका न पचना, मूत्र और विष्ठाका रुकजाना यह लक्षण होते हैं। इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं। इसमें मूत्रका विरेचन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये। तथा पीछे त्रिमर्मीयाचिकित्सामें कहेहुए द्विरुत्तर हिंग्वादिचूर्णका प्रयोग करनेसे मूत्रादिकोंका संघात तथा गुदा और मेढ्रकी व्याधियें नष्ट होतीहैं ॥३६–३८॥

मूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

मूत्रितस्य व्यवायात्तु रेतो वातोद्धृतं च्युतम्।
पूर्वं मूत्रस्य पश्चाद्वा स्रवेत्तत्कृच्छ्रमुच्यते ॥ ३९ ॥

मूत्रका वेग आयाहुआ हो उस समय मूत्रको रोककर स्त्रीसंग करे तो वीर्य वायुसे विघटित होकर मूत्रमार्गमें स्थित होजाता है फिर मूत्रसे प्रथम अथवा मूत्रसे पीछे बडे कष्टके साथ वीर्यकी बूंद गिरती है। इस रोगको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥ ३९ ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण।

स्ववैगुण्यानिलाक्षेपैः किञ्चिन्मूत्रञ्च तिष्ठति।
मणिसन्ध्यौ स्रवेत्पश्चात्तदरुग्वाथवातिरुक्।
मूत्रोत्संगः स विच्छिन्नस्तच्छेषो गुरुशेफसः ॥ ४० ॥

---

१ इसी प्रकार मूत्रके वेगको रोककर स्त्रीसंग करनेसे मूत्रके साथ पीछे अथवा आगे सफेद बून्द विना पीडासे गिरे तो इसको मूत्रशुक्र कहतेहैं।

मूत्रमार्गके विगडजानेसे अथवा वायुके आक्षेपसे मूत्रत्यागके समय लिंगकी सुपारीके ऊपरकी तरफ मूत्र अटकजाय और अटक २ कर थोडी देरके बाद विना पीडासे अथवा अत्यंत पीडाके साथ मूत्र आवे और विच्छिन्न शेष रहीहुई मूत्रकी बूंद इन्द्रीमें भारीपनको करे तो इस रोगको मत्रोत्संग कहते हैं ॥ ४० ॥

मूत्रक्षयके लक्षण।

वाताकृतिर्भवेद्वातान्मूत्रे शुष्यति संक्षयः।

वायुके कोपसे वातप्रकृति मनुष्यका मूत्र सूखजाता है इसको मूत्रक्षय रोग कहते हैं इसमें सब लक्षण कुपित वायुके होते हैं ॥

मूत्रातीतके लक्षण।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्त्तते।
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ४१ ॥

मूत्र आनेपर जो मनुष्य रोकलेता है उसका रुकाहुआ मूत्र अत्यंत धीरे २ और थोडा २ आने लगता है इसको मूत्रातीत कहते हैं ॥ ४१ ॥

वातष्ठीलाके लक्षण।

आध्मापयन् वस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम्।
कुर्य्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४२ ॥

कोपको प्राप्तहुआ वायु वस्ति और गुदाको अफारायुक्त कर और रोक करके पेंडूके नीचेकी ओर तीव्र पीडायुक्त चंचल और ऊंची वायुकी गांठको उत्पन्न करता है इसको वातष्ठीला कहते हैं इससे मल और मूत्रका अवरोध होजाता है ॥ ४२ ॥

वातवस्तिके लक्षण।

मूत्रं धारयतो वस्तौ वायुः क्रुद्धो विधारयेत्।
मूत्ररोधार्तिकण्डूभिर्वातवस्तिः स उच्यते ॥ ४३ ॥

मूत्रके वेगको रोकनेसे कोपको प्राप्तहुआ वायु वस्तिमें प्राप्त होकर मूत्रका अवरोध, पीडा और खुजलीको उत्पन्न करे उसको वातवस्ति कहते हैं ॥ ४३ ॥

उष्णवातके लक्षण।

ऊष्मणा सोष्मकं मूत्रं शोषयन् रक्तपीतकम्।
उष्णवातः सृजेत्कृच्छ्राद्वस्त्युपस्थार्तिदाहवान् ॥ ४४ ॥

पित्तकी गर्म जब मूत्रको सुखादेती है तब मूत्र पीलेवर्णका थोडा २ गर्म और लालवर्णका बडे कष्टके साथ आता है तथा वस्ति और लिंगेन्द्रियमें पीडा और दाह होती है इस रोगको उष्णवात कहते हैं ॥ ४४ ॥

वातकुण्डलिकाके लक्षण।

गतिसंगादुदावृत्तः समूत्रस्थानमार्गयोः।
मूत्रस्य विगुणो वायुर्भग्नव्याविद्धकुण्डली।
मूत्रं विहन्ति संस्तम्भभग्नगौरववेष्टनैः।
तीव्ररुङ्मूत्रविट्संगैर्वातकुण्डलिकेति सा ॥ ४५ ॥

वायु विकृत होकर मूत्रस्थान और मूत्रकी गतिको रोककर ऊपरको उलटा गमन करता है तब वह वायु भेदनकीसी पीडायुक्त मूत्रको व्याहतकरके मूत्राशयमें कुण्डलाकार चक्कर देने लगता है उससे मूत्रकी गति रुककर मूत्राशयका स्तम्भ, भेदनकीसी पीडा, भारीपन, उद्वेष्टन, तीव्र पीडा, मूत्रका विबन्ध और मलका विबन्ध यह लक्षण होते हैं। इस रोगको वातकुण्डलिका कहते हैं ॥ ४५ ॥

मूत्रग्रंथिके लक्षण।

रक्तं वातकफाद् दुष्टं वस्तिद्वारे सुदारुणम्।
ग्रन्थिं कुर्य्यात्स कृच्छ्रेण सृजन्मूत्रं तदावृतम्।
अश्मरीसमशूलं तं मूत्रग्रन्थिं प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

वायु और कफके कुपित होनेसे वस्तिके द्वारमें रक्त दूषित होकर दारुण ग्रंथिको उत्पन्न करता है उस ग्रन्थिसे वस्तिका द्वार रुककर मूत्र बडे कष्टसे आता है और वस्तिद्वारमें पथरीके समान शूल होने लगता है। इस रोगको मूत्रग्रन्थि कहते हैं॥

विड्विघातके लक्षण।

रूक्षदुर्बलयोर्वाते नोदावृत्तं शकृद्यदा।
मूत्रस्रोतः प्रपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः।
विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ ४७ ॥

रूक्ष वा दुर्बल मनुष्यके शरीरमें कुपित हुई वायुसे विष्ठा विपरीत मार्गगामी होकर मूत्रवाही छिद्रोंमें प्राप्त होकर विष्ठामिश्रित मूत्र अथवा विष्ठाकी दुर्गंधयुक्त मूत्र बडे कष्टसे आने लगता है इस रोगको विड्विघात कहते हैं ॥ ४७ ॥

वस्तिकुण्डलके लक्षण।

द्रुताध्वलङ्घनायासादभिघातात्प्रपीडनात्।
स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ ४८ ॥
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि।
पीडितस्तु स्रवेद्धारां स्तम्भनोद्वेष्टनार्त्तिमान् ॥ ४९ ॥

वस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरशस्त्रविषोपमम् ।
पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ ५० ॥
तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलमूत्रविवर्णता ।
श्लेष्मणा गौरवं शोफः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ ५१ ॥
श्लेष्मरुद्धबिलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति ।
अविभ्रान्ताविलः साध्यो न तु यः कुण्डलीकृतः ।
स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहोच्छ्वास एव च ॥ ५२ ॥

जल्दी २ चलना, उपवास करना, अधिक परिश्रम करना, चोट लगना और दबजाना आदि कारणोंसे वस्ति (मूत्राशय) अपने स्थानसे उठकर गर्भकी समान स्थूल होकर स्थित हो और उसमें शूल, फडकना और दाह हो तथा मूत्र बहुत थोडा २ बूंद २ उतरे, ऊपरसे दबादेनेसे अर्थात् उस फूलीहुई वस्तिको पीडन करनेसे मूत्रकी धारा निकलने लगे, उस समय स्तम्भ, उद्वेष्टन और पीडा यह लक्षण होनेलगें, इस घोर शस्त्र और विषके समान व्याधिको वस्ति-कुण्डल कहते हैं । यह रोग प्रायः वातप्रबल होता है । यह अल्पबुद्धिवाले वैद्योंके लिये दुर्निवार है । यदि इसमें वायु पित्तको लेकर बढीहुई हो तो दाह, शूल और मूत्रकी विवर्णता भी होती है । यदि कफका संसर्ग हो तो वस्तिमें भारीपन, सूजन, मूत्र चिकना, गाढा और सफेद वर्णका होता है । इस रोगमें यदि मूत्राशय कफसे रुद्धमुख और पित्त कोपयुक्त हो तो इसको असाध्य जानना । यदि वस्ति कुण्डली-कृत न हो और अविभ्रान्त फडकनरहित, पीडा और उपद्रवोंसे रहित हो तो साध्य होती है । परन्तु कुण्डलीकृत वस्ति कफसे रुद्ध न होनेपर भी असाध्य होती है ॥ प्यास लगना, मोह, ऊर्ध्वश्वास यह लक्षण वस्तिकुण्डलरोगमें हों तो समझना वस्ति कुण्डलीभूत होगई है ॥ ४८-५२ ॥

इनकी चिकित्सा ।

दोषाधिक्यमवेक्ष्यैतान् मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।
वस्तिमुत्तरवस्तिञ्च सर्वेषामेव योजयेत् ॥ ५३ ॥

इन सब प्रकारके मूत्राघातोंमें दोषोंकी न्यूनाधिकता देखकर उचित रीतिपर मूत्र-कृच्छ्रनाशक चिकित्साद्वारा शान्ति करे । तथा वस्तिकर्म वा उत्तरवस्ति इन सब प्रकारके मूत्राघातोंकी शान्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये ॥ ५३ ॥

उत्तरवस्तिविधान ।

पुष्पनेत्रञ्च हैमं स्यात्सूक्ष्ममौत्तरवस्तिकम् ।

जातीपुष्पस्य वृन्तेन समं गोपुच्छसंस्थितम्।
रौप्यं वा सर्षपच्छिद्रं द्विकर्णं द्वादशाङ्गुलम् ॥ ५४ ॥
तेनाजवस्तियुक्तेन स्नेहस्यार्द्धपलं नयेत्।
यथावयो विशेषेण स्नेहमात्रां विकल्प्य वा ॥ ५५ ॥

उत्तरवस्तिकी नली (मूत्रमार्गसे मूत्राशयतक पहुंचनेकी नली) सुवर्णकी और चमेलीके फूलकी डण्डीके समान मोटी होनी चाहिये और गोपुच्छके समान क्रमपूर्वक आगेसे पतला और पीछेसे किंचित् मोटा उसका मुख होना चाहिये। सुवर्णके अभावमें यह नली चांदीकी बनाई जा सकती है सरसोंके दानेके समान इसके भीतर छिद्र अथवा पोलापन रहता है. और इसमें दो कर्णिका (सूक्ष्म छिद्र) होती हैं। यह लम्बावमें १२ अंगुलकी सलाईसी होती है। इसकी वस्ति बकरेकी वस्तिसे बनानी चाहिये। इस वस्तिद्वारा दो तोला स्नेह पहुंचाया जाना चाहिये। अथवा रोगीकी अवस्था आदि विचारकर दो तोलासे कम या जितना उचित हो प्रयोग करना चाहिये॥५४॥५५॥

स्नातस्य भुक्तभक्तस्य रसेन पयसापि वा।
सृष्टविण्मूत्रवेगेन पीठे जानुसमे मृदौ ॥ ५६ ॥
ऋजोः सुखोपविष्टस्य हृष्टे मेढ्रे घृतान्विते।
शलाकयान्विष्य गतिं यद्यप्रतिहता व्रजेत् ॥ ५७ ॥
ततः शेफःप्रमाणेन पुष्पनेत्रं प्रवेशयेत्।
गुदवन्मूलमार्गेण प्रणयेदनुसेवनीम् ॥ ५८ ॥

उत्तरवस्ति करनेसे प्रथम रोगीको स्नान करा मांसरस अथवा दूधके साथ भातका भोजन करावे। फिर समयपर मल मूत्र त्याग करनेके अनन्तर एक हाथ ऊंचे कोमल आसनके ऊपर सुखपूर्वक बिठावे अथवा शिरके नीचे कुछ तकिया आदि रखकर शिरको ऊंचाकर सीधा लिटावे। फिर इस प्रकार सुखपूर्वक बैठेहुए वा लेटेहुए रोगीके लिंगको हृष्ट और घृतसे चिकना करे। फिर एषणी शलाका (मूत्रमार्गसे वस्तितक पहुंचनेवाली भीतरसे पोली चांदीकी सलाई) को उत्तम औषधीसे सिद्ध घृत लगाकर लिंगके छिद्रद्वारा भीतरको प्रवेश करे। यदि वह सलाई रास्तेमें किसी जगह नही अटके और सीधी मूत्राशयतक पहुंचजाय तो उसको निकालकर लिंगके बरा-

---

१ आज कल प्रायः रबडकी नलियें (कैथिटर) काममें लाईजाती हैं। एषणीशलाका बीचमेंसे पोली नहीं होती है और वस्तिनली बीचमेंसे पोली होती है यह चांदीसे बनी हुई भी बडी बडी अंग्रेजी दुकानोंपर बिकती हैं।

बर दूसरी वस्तिनली प्रवेश करे। जिस प्रकार गुदामें पिचकारी करते समय साव-धानीसे हाथ आदि न हिलाकर वस्तिकर्म कियाजाता है उससे भी अधिक सावधानी रखताहुआ मूत्रमार्गद्वारा मूत्रनलीको प्रवेश करना चाहिये क्योंकि विना सावधानीसे उत्तरवस्तिकी नली प्रवेश कीजाय तो मूत्रनलीमें अनेक घोर उपद्रव होसकते हैं ॥ इस नलीका मुख सीवनकी ओर रहना चाहिये ॥ ५६-५८ ॥

हिंस्याद्वस्तिगतं वस्तिं मूले स्नेहो न गच्छति।
सुखं प्रपीडय निष्कम्पं निष्कर्षेन्नेत्रमेव च ॥ ५९ ॥

यदि उत्तरवस्ति अधिक वेगसे प्रवेश की जाय तो वह वस्ति मूत्राशयमें आघात करती है और उससे महान् अनर्थ होसकता है। यदि अत्यन्त धीरेसे वस्तिमें स्नेह छोडाजाय तो वह स्नेह वस्तिस्थानतक नहीं पहुंचसकता इसलिये हाथको विना कम्पाये युक्तिपूर्वक समभावसे वस्तिका स्नेह मूत्रवस्तिमें पहुंचावे और फिर धीरेसे हाथको विना कंपाये वस्तिकी नलीको निकाललेवे ॥ ५९ ॥

वस्तिके स्नेह न निकलनेपर वर्तिप्रयोग।

प्रत्यागते द्वितीयन्तु तृतीयञ्च प्रदापयेत्।
अनागच्छन्नुपेक्ष्यस्तु रजनीं व्युषितस्य च ॥ ६० ॥
पिप्पलीलवणागारधूमापामार्गसर्षपैः।
वार्त्ताकुरसनिर्गुण्डीशम्याकैः ससहाचरैः ॥ ६१ ॥
मूत्राम्लपिष्टैः सगुडैर्वर्तिं कृत्वा प्रवेशयेत्।
अग्रे तु सर्षपाकारं पश्चाद्द्वौ माषसम्मिताम् ॥ ६२ ॥
नेत्रदीर्घां घृताभ्यक्तां सुकुमारामभङ्गुराम्।
नेत्रवन्मूत्रनाड्यान्तु पायौ वाङ्गुष्ठसम्मिताम् ॥ ६३ ॥

जब वस्तिद्रव्य प्रत्यागत होजाय अर्थात् वस्तिस्नेह और मूत्र निकलजाय तो दूसरीबार फिर उसी प्रकार स्नेहवस्ति करे। दूसरी वस्तिका स्नेह निकलनेपर तीसरी बार फिर वस्तिकर्म करना चाहिये। यदि वस्तिका स्नेह न निकले तो एक रात्रि-पर्यन्त उस स्नेहके निकलनेकी उपेक्षा करे। फिर दूसरे दिन उसके निकालनेके लिये पीपल, सेंधानमक, गृहधूम, अपामार्गके वीज, सरसों, बैंगनका रस, संभालू, अम-लतासका गूदा और पीयाबांसा इन सब द्रव्योंको गोमूत्र, कांजी और गुडके साथ बारीक पीसकर बत्ती बनावे। यह बत्ती आगेसे सरसोंके दानेके समान मोटी और पीछेसे दो उडदोंके बराबर मोटी होनी चाहिये इस बत्तीको विधिवत् मूत्रमार्गमें प्रवेश करे। यह वर्त्ती मूत्रवस्तिके नेत्रके समान लंबी, घृतमें भिगोईहुई, साफ और कोमल होनी चाहिये। जो वर्ती मूत्रमार्गसे प्रवेश कीजाती है उसका आकार पुष्पनेत्र

मूत्रद्वारा प्रवेश करनेकी सलाईके समान होता है और जो वत्तीं गुदाद्वारा प्रवेश कीजाती है वह अंगूठेके समान मोटी चाहिये ॥ ६०-६३ ॥

स्नेहे प्रत्यागते ताभ्यां सानुवासनिको विधिः ।
परिहारस्य सव्यापत्सम्यग्दत्तस्य लक्षणम् ॥ ६४ ॥

उत्तरवस्तिका स्नेह प्रत्यागत होजानेके अनन्तर उस रोगीका अनुवासनवस्तिके समान आहार विहारसे पालन करना चाहिये और उत्तरवस्तिमें किसी प्रकारकी व्यापत्ति (उपद्रव) होजानेपर भी अनुवासनमें कहीहुई व्यापत्तियोंके समान चिकित्सा करनी चाहिये । अनुवासन वस्तिके भलेप्रकार होजानेसे जो लक्षण होते हैं उत्तर-वस्तिके भले प्रकार होनेसे भी उसीके समान लक्षण जानना ॥ ६४ ॥

स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका समय ।

स्त्रीणामार्त्तवकाले तु प्रतिकर्म तदाचरेत् ।
गर्भासना सुखं स्नेहं तदादत्ते ह्यपावृता ।
गर्भयोनिस्तदा शीघ्रं जिते गृह्णाति मारुते ॥ ६५ ॥

यदि स्त्रियोंको उत्तरवस्ति करना हो तो जिस समय मासिक ऋतु आया हो उस समय उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि उस समय गर्भाशयका मुख खुला होनेसे सुखपूर्वक स्नेहको योनि ग्रहण करलेती है । उस समय वह स्नेह गर्भाशयकी वायुको जीतलेता है इसलिये वह स्त्री शीघ्र सुखपूर्वक गर्भको धारण करलेती है॥ ६५ ॥

उत्तरवस्तियोग्य रोग ।

वस्तिजेषु विकारेषु योनिविभ्रंशजेषु च ।
योनिशूलेषु तीव्रेषु योनिव्यापत्स्वसृग्दरे ॥ ६६ ॥
अप्रस्रवति मूत्रे च बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि ।
विदध्यादुत्तरं वस्तिं यथास्वौषधसंस्कृतम् ॥ ६७ ॥

स्त्रियोंके सब प्रकारके वस्ति (मूत्राशय) के विकारोंमें, योनिविभ्रंश जनित विकारोंमें, तीव्र योनिशूलमें, योनिव्यापत्तियोंमें, रक्तप्रदरमें, मासिक ऋतुके विबंधमें और मूत्रकी बूंद २ आनेमें रोगानुसार औषधियोंसे सिद्ध किये स्नेहोंद्वारा स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

स्त्रियोंके लिये वस्तिनलका प्रमाण ।

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तु प्रमदानां दशाङ्गुलम् ।
मूत्रस्रोतःपरीणाहं मूत्रस्रोतोऽनुवाहि च ॥ ६८ ॥

स्त्रियोंको जो उत्तरवस्ति दीजाती है तो उनका वस्तिनल दश अंगुल लंबा बनाना

चाहिये । और स्त्रीके मूत्रछिद्रके समान मोटाईमें होना चाहिये जो मूत्रछिद्रमें सुखपूर्वक प्रवेश होसके ॥ ६८ ॥

गर्भमार्गे तु नारीणां विधेयं चतुरङ्गुलम् ।
द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गे तु बालायास्त्वेकमङ्गुलम् ॥ ६९ ॥

स्त्रियोंके गर्भमार्गमें उत्तरवस्ति करनेके लिये ४ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये और मूत्रमार्गमें उत्तरवस्ति देना हो तो दो अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये । बाला (लडकियों) के लिये १ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये॥ ६९

स्त्रियोंके वस्तिप्रवेशविधि ।

उत्तानायाः शयानायाः सम्यक् सङ्कोच्य सक्थिनी ।
अथास्याः प्रणयेन्नेत्रमनुवंशगतं सुखम् ॥ ७० ॥
द्विस्त्रिश्चतुर्वा तां स्नेहानहोरात्रेण योजयेत् ।
वस्तिं वस्तौ प्रणीते च वस्तिश्चानन्तरो भवेत् ॥ ७१ ॥

जब स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका प्रयोग कराना हो तो स्त्रीको चित्त लेटाकर उसकी दोनों जांघोंको पीछेको हटाकर सिकोडकर फिर वस्तिनलका मूत्रमार्गसे प्रवेश करे । उस नलका मुख पीठकी बांसकी ओर रखना चाहिये और धीरेसे सुखपूर्वक प्रवेश करे। दिनरात्रिमें दो तीनवार अथवा चारवार इसी प्रकार उत्तरवस्ति द्वारा स्नेहका प्रयोग करे । जब पहिली दीहुई वस्तिका स्नेह लौटआवे फिर दूसरी वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । इसी प्रकार क्रमानुसार दो तीन बार वस्तिका प्रयोग करे ॥ ७० ॥ ७१॥

त्रिरात्रं कर्म कुर्वीत स्नेहमात्रां विवर्द्धयन् ।
अनेनैव विधानेन कर्म कुर्य्यात्पुनस्त्र्यहात् ॥ ७२ ॥

इस विधिसे तीन दिन उत्तरवस्ति क्रिया करे । पहिले दिनसे दूसरे दिन स्नेहकी मात्रा किंचित् अधिक लेना चाहिये फिर दूसरे तीसरे दिन कुछ अधिक ले । इस प्रकार स्नेहकी मात्रा बढाता रहे । तीन दिनके अनन्तर वस्तिक्रिया बन्द करदे और तीन दिन बीत जानेबाद फिर इसी प्रकार स्नेहवस्ति करे ॥ ७२ ॥

शंखकके लक्षण और चिकित्सा ।

अतः शिरोविकाराणां कश्चिद्भेदः प्रवक्ष्यते ।
रक्तपित्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्च्छिताः ।
तीव्ररुग्दाहरागं हि शोफं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ ७३ ॥
सशिरोविषवद्वेगी निरुध्याशु गलं तथा ।

त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नाम नामतः ॥ ७४ ॥
जीवेत् त्र्यहं चेद्भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ।
शिरोविरेकसेकादि सर्वं वीसर्पनुच्च यत् ॥ ७५ ॥

अब हम शिरोविकारोंके कुछेक भेदोंका कथन करते हैं। रक्त, पित्त और वायु कुपित होकर शंख (कनपटी) स्थानमें प्राप्त होकर तीव्र पीडा, दाह, लाली और दारुण सूजनको उत्पन्न करते हैं। यह रोग विषके समान शीघ्र वेगवाला है। शीघ्र गलको रोक देताहै और तीन दिनमें जीवनको भी नष्ट करता है। इस रोगको शंखक रोग कहते हैं। यदि रोगी तीन दिन पर्यन्त जीता रहसके तो वैद्य यह कहकर कि यह असाध्य रोगी है फिर चिकित्सा करे। इसमें शिरोविरेचन, सेक आदि तथा विसर्प-रोगनाशक संपूर्ण रोगकी चिकित्सा करना हितकारक है ॥ ७३–७५ ॥

अर्द्धावभेदकके लक्षण और चिकित्सा।

रूक्षात्यध्यशनात्पूर्ववातावश्यायमैथुनैः ।
वेगसन्धारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ ७६ ॥
केवलः स कफो वाऽर्द्धं गृहीत्वा शिरसोऽनिलः ।
मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटार्द्धे च वेदनाम् ।
शस्त्राशनिनिभां कुर्य्यात्तीव्रां सोऽर्द्धावभेदकः ॥ ७७ ॥
नयनं वाथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ।
चतुःस्नेहोत्तमां मात्रां शिरःकायविरेचनम् ।
नाडीस्वेदो घृतं जीर्णं वस्तिकर्मानुवासनम् ॥ ७८ ॥
उपनाहः शिरोवस्तिर्दहनं वात्र शस्यते ।
प्रतिश्याये शिरोरोगे यच्चोद्दिष्टं चिकित्सितम् ॥ ७९ ॥

रूक्ष पदार्थोंका सेवन, भोजन कियेपर फिर भोजन करना, अतिभोजन, पूरवकी पवन, ओस, अथवा शिशिरऋतु, मैथुन, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, परिश्रम और कसरत आदि कारणोंसे कुपितहुआ वायु अकेलाही अथवा कफको साथमें लेकर मस्तकके आधे भागमें स्थित होकर एकओरके मन्या, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र और आधे मस्तकमें शस्त्रसे काटने अथवा वज्रसे अवभेदन करनेके समान तीव्र पीडाको उत्पन्न करताहै इसको अर्धावभेदक रोग कहते हैं। यदि यह अत्यंत बढजाय तो नेत्र अथवा कानको नष्ट करता है। इस अर्धावभेदक रोगमें चतुःस्नेहकी उत्तम मात्रा पान करना चाहिये तथा शिरोविरेचन, कायविरेचन, नाडीस्वेद, जीर्णघृतका प्रदेह,

वस्तिकर्म, अनुवासन वस्ति, उपनाहस्वेद, शिरोवस्ति अथवा दाह पर्यन्त क्रिया करे अर्थात् आवश्यकता हो तो दाग भी देवे। और प्रतिश्याय तथा शिरोरोगमें कहीहुई चिकित्साका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७६-७९ ॥

सूर्यावर्तके लक्षण और चिकित्सा।

सन्धारणादजीर्णाद्यैर्मस्तिष्कं रक्तमारुतौ।
दुष्टौ दूषयतस्तच्च दुष्टं ताभ्यां विमूर्च्छितम् ॥ ८० ॥
सूर्योदयांशुसन्तापाद् दुःखं विष्यन्दते शनैः।
ततो दिने शिरःशूलं दिनवृद्ध्या च वर्द्धते ॥ ८१ ॥
दिनक्षये ततः स्त्याने मस्तिष्के संप्रशाम्यति।
सूर्य्यावर्त्तः स एव स्यात्सर्पिरौत्तरभाक्तिकम् ॥ ८२ ॥
शिरःकायविरेकौ च मूर्ध्नि च स्नेहधारणम्।
जाङ्गलैरुपनाहश्च घृतक्षीरैश्च सेचनम् ॥ ८३ ॥

मल, मूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे तथा अजीर्ण आदि कारणोंसे दूषित हुए रक्त और वायु मस्तकको दूषित कर देते हैं इस प्रकार मस्तकमें प्राप्त हुआ रक्त और वायु दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपायमान होकर जैसे जैसे सूर्यकी गर्मी बढती जाती है वैसे २ गर्मीसे पिघलतेहुए वह वातयुक्त रक्त मूर्च्छित होकर अत्यंत कष्ट देताहै। ज्यों २ सूर्यकी गर्मी कम होतीजातीहै त्यों २ यह पीडा भी शान्त होती जाती है। इस प्रकार सूर्यकी गर्मीसे बढनेवाली और घटनेवाली पीडाको सूर्यावर्त्त कहते हैं। इस सूर्यावर्त्त रोगमें भोजन करनेके अनन्तर घृतपान करना चाहिये। तथा शिरोविरेचन, कायविरेचन, मस्तकपर तैल धारण करना, जंगली जीवोंके मांससे उपनाह स्वेद करना और क्षारयुक्त घृतका सेचन करना हितकारी है ॥ ८०-८३ ॥

बर्हितित्तिरिलावादिशृतं क्षीरोत्थितं घृतम्।
नावनं जीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम् ॥ ८४ ॥

मोर, तीतर और लवा आदि किसी जंगली जीवके मांसके क्वाथसे सिद्ध कियेहुए दूधसे निकला हुआ घृत, जीवनीयगणका कल्क और मोर आदि जीवोंके मांसका रस तथा घीसे अठगुना दूध इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत नस्य देनेसे सूर्यावर्त्त रोगको दूर करता है ॥ ८४ ॥

अनन्तवातके लक्षण और चिकित्सा।

उपवासातिशोकातिरूक्षशीताल्पभोजनैः।

दुष्टा दोषास्त्रयो मन्यां पश्चाद्घाटेत वेदनाम् ॥ ८५ ॥
तीव्रां कुर्वन्ति नामाक्षिभ्रूशंखेष्ववतिष्ठते ।
स्पन्दनं गण्डपार्श्वस्थं नेत्ररोगं हनुग्रहम् ।
सोऽनन्तवातस्तं हन्याच्छिरोऽर्कावर्त्तनाशनः ॥ ८६ ॥

उपवास और अत्यंत शोक करनेसे तथा अत्यंत रूक्ष, शीतल और अल्प भोजनके करनेसे तीनों दोष कुपित होकर मन्याके पिछले भागमें अत्यंत तीव्र पीडाको उत्पन्न करते हैं। वह पीडा आँख, भृकुटी, कनपटीमें स्थित होकर गण्डस्थलके पार्श्वमें स्पन्दनको उत्पन्न करती है तथा नेत्ररोग और हनुग्रहको उत्पन्न करती है इसको अनन्तवात कहते हैं सूर्यावर्त्तनाशकाक्रियाद्धारा इसकी शान्ति करनी चाहिये ॥ ८५॥८६ ॥

शिरकंपके लक्षण।

वातो रूक्षादिभिः क्रुद्धः शिरःकम्पमुदीरयेत् ॥ ८७ ॥

रूक्षादि कारणोंसे कुपित हुआ वायु शिरकी नसोंमें प्राप्त होकर शिरः कंपनामक रोगको उत्पन्न करता है ॥ ८७ ॥

इनकी चिकित्सा।

तत्रामृताबलारास्नामहाश्वेताश्वगन्धकैः।
स्नेहस्वेदादि वातघ्नं शस्तं नस्यञ्च तर्पणम् ॥ ८८ ॥

शिरःकंपमें अमृता, बला, रास्ना और श्वेतापराजिताके कल्कद्वारा स्निग्ध स्वेदन और इनके कल्कसे सिद्ध किये घृतोंद्वारा स्नेहन करना, स्वेदन करना और वातनाशक नस्य तथा तर्पण करना हितकारक है ॥ ८८॥

नस्यके गुण।

नस्तःकर्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु सूक्ष्मावित् ।
द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्व्याप्य हन्ति ताम् ॥ ८९ ॥

शिरके रोगोंमें नस्यकर्म करना सबसे श्रेष्ठ है. क्योंकि, शिरका द्वार नासिका और नस्य नासिकाद्वारा शिरमें पहुंचकर शिरके रोगोंको नष्ट कर देती है ॥ ८९ ॥

नस्यके ५ भेद।

नावनश्चावपीडश्च ध्मापनं धूम एव च ।
प्रतिमर्षश्च विज्ञेयो नस्तःकर्म तु पञ्चधा ॥ ९० ॥

नावन, अवपीडन, ध्मापन, धूम और प्रतिमर्ष यह नस्यके पांच भेद हैं ॥ ९० ॥

स्नेहनः शोधनश्चैव द्विविधं नावनं स्मृतम् ।
शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधा मतः ॥ ९१ ॥

चूर्णं स्याद् ध्मापनं नाम देहस्रोतोविशोधनम्।
विज्ञेयस्त्रिविधो धूमः प्रागुक्तः शमनादिकः ॥ ९२ ॥
प्रतिमर्षो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभयार्थकृत्।
एवं तद्रेचनं कर्म तर्पणं शमनं त्रिधा ॥ ९३ ॥

स्नेहन और शोधन भेदसे नावन नस्य दो प्रकार होता है। शोधन और स्तंभन भेदसे अवपीडननस्य दो प्रकारका होता है दोमुखी नलकी द्वारा नस्यचूर्णको देहस्रोतोंकी शुद्धिके लिये नासिकामें फूंकनेको ध्मापन नस्य कहते हैं। धूमनस्य शमनादि भेदसे तीन प्रकारकी होती है यह पहिले कह आये हैं। प्रतिमर्षमें स्नेहका प्रयोग किया जाता है यह संशमन और संशोधन इन दोनों गुणोंको करता है तथा निर्दोष होता है। इस प्रकार रेचन, तर्पण और शमन यह नस्यके तीन प्रकारके कर्म हैं ॥ ९१-९३ ॥

नस्यभेदसे साध्य रोग।

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वाद्याः श्लैष्मिका ये शिरोगदाः।
शिरसो रेचनं तेषु नस्तःकर्म प्रशस्यते ॥ ९४ ॥

मस्तककी स्तंभता, सुप्ति, मस्तकका भारीपन और कफजन्य शिरोरोगोंमें रेचनी नस्यका प्रयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ९४ ॥

ये च वातात्मका रोगाः शिरःकम्पार्दितादयः।
शिरसस्तर्पणं तेषु नस्तःकर्म प्रवक्ष्यते ॥ ९५ ॥

शिरःकंप, अर्दित आदि वातजनित रोगोंमें तर्पण, नस्य अर्थात् स्नेहद्वारा मस्तकको तृप्त करना श्रेष्ठ है ॥ ९५ ॥

रक्तपित्तादिरोगेषु शमनं नस्यमिष्यते।

रक्तपित्तादि रोगोंमें शमन नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥

ध्मापनं धूमपानञ्च यथायोग्येषु शस्यते।
दोषादिकं समीक्ष्यैव भिषक्सम्यक् च कारयेत् ॥ ९६ ॥

दोष भेद आदि विचारकर वैद्य विधिवत् ध्मापन और धूमनस्यका ध्मापन और धूमपान योग्य रोगोंमें प्रयोग करे ॥ ९६ ॥

विरेचन नस्य।

फलादिभेषजं प्रोक्तं शिरसो यद्विरेचनम्।
तच्चूर्णं कल्पयेत्तेन पचेत्स्नेहं विरेचनम् ॥ ९७ ॥

जो फलमूल आदि शिरोविरेचन द्रव्योंकी कथन कर आये हैं उनका बारीक चूर्ण कर अथवा उनके कल्कद्वारा स्नेह सिद्धकर शिरोविरेचन करना चाहिये ॥ ९७ ॥

तर्पण नस्य।

यदुक्तं मधुरस्कन्धे भेषजं तेन तर्पणम्।

साधयित्वा भिषक् स्नेहं नस्तः कुर्य्याद्विधानवित् ॥ ९८ ॥

विमानस्थानमें मधुरस्कन्धमें जिन द्रव्योंका कथन कर आये हैं उन द्रव्योंसे सिद्ध किये स्नेहसे विधिको जाननेवाला वैद्य तर्पण नस्यका प्रयोग करे ॥ ९८ ॥

नस्यकर्म विधि।

प्राक्सूर्य्ये मध्यसूर्य्ये वा कुर्य्यात्तर्पणमेव च।

उत्तानस्य शयानस्य शयने स्वास्तृते सुखम् ॥ ९९ ॥

प्रलम्बशिरसः किञ्चित्किञ्चित्पादोन्नतस्य च।

दद्यान्नासापुटे स्नेहं तर्पणं बुद्धिमान् भिषक् ॥ १०० ॥

तर्पण औषधी सूर्योदयसे पहिले अथवा मध्याह्नमें प्रयोग करनी चाहिये। रोगीको सीधा लेटाकर शिरको जरा पीछकी ओर नीचाकर सुखपूर्वक लिटा दोनों पांव किंचित् ऊपरको रक्खे फिर बुद्धिमान् वैद्य उसके दोनों नासापुटोंमें तर्पण स्नेहका प्रयोग करे॥

अनवाक्शिरसो नस्यं न शिरः प्रतिपद्यते।

अत्यवाक्शिरसो नस्यं मस्तुलुङ्गे च तिष्ठते ॥ १०१ ॥

अत एव शयानस्य शुद्ध्यर्थं स्वेदयेच्छिरः।

संस्वेद्य नासामुन्नाम्य वामेनाङ्गुष्ठपर्वणा ॥ १०२ ॥

हस्तेन दक्षिणेनाथ दद्यादुभयतः समम्।

प्रणाड्या पिचुना वापि नस्तः स्नेहं यथाविधि ॥ १०३ ॥

कृते च स्वेदयेद्भूय आकर्षेच्च पुनः पुनः।

तत्स्नेहं श्लेष्मणा सार्द्धं तथा स्नेहो न तिष्ठति ॥ १०४ ॥

शिरको पीछेकी ओर विना झुकाये जो तर्पण नस्य प्रयोग कियाजाता है वह शिरमें न पहुंचकर बाहर निकल जाताहै जो शिरको अत्यंत नीचा झुका दिया जाय तो वह स्नेह मस्तकके भेजेमें पहुंच जाताहै। इसलिये मस्तकशुद्धिके लिये प्रथम रोगीके मस्तकको स्वेदन करे। फिर बायें अंगूठेके पोरवेसे नासिकाको जरा उठाकर दहिने हाथसे नाकके छिद्रोंमें नलीके साथ अथवा रूईका फोहा स्नेहमें भिगोकर विधिपूर्वक दोनों नासिकाओंमें स्नेह टपकावे। इस प्रकार नस्यकर्म करके फिर स्वेदन करे। स्वेदन

करनेसे वह संपूर्ण स्नेह कफको लेकर बाहर निकल आता है । और मस्तकमें नहीं ठहर सकता ॥ १०१--१०४ ॥

स्वेदेनोत्क्लेशितः श्लेष्मा नस्तःकर्मण्युपस्थितः ।
भूयः स्नेहस्य शैत्येन शिरसि स्त्यायते ततः ।
श्रोत्रमन्यागलाद्येषु विकाराय स कल्पते ॥ १०५ ॥

स्वेदनद्वारा उत्क्लेशित हुआ कफ मस्तकसे चलायमान होजाता है वह स्नेहकी शीततासे गाढा होकर कान गर्दन और गल आदिमें विकारोंको उत्पन्न करता है ऐसा होनेपर फिर स्वेदन करना चाहिये ॥ १०५ ॥

नस्यके अनन्तरकर्म ।

ततो नस्तःकृते धूमं पिबेत्कफविनाशनम् ।
हितान्नभुङ्निवातोष्णसेवी स्यान्नियतेन्द्रियः ॥ १०६ ॥

नस्यकर्मके अनन्तर कफनाशक धूमका प्रयोग करना हितकारी है तथा हितकारक अन्नका सेवन करना और निर्वात स्थानमें रहना और उष्णपदार्थोंका सेवन तथा जितेन्द्रिय रहना चाहिये ॥ १०६ ॥

अवपीडन और प्रधमापन ।

विधिरेषोऽवपीडस्य कार्य्यः प्रध्मापनस्य च ।
षडङ्गुल्याथवा नाड्या धमेच्चूर्णं मुखेन वा ॥ १०७ ॥

यह विधि अवपीडन (गीली औषधीका रस नाकमें टपकाना) नस्यमें करनी चाहिये और प्रधमापन नस्यके चूर्णको छः अंगुलकी नलमें रख मुखद्वारा नासापुटमें फूंक मारकर पहुंचा देना चाहिये ॥ १०७ ॥

शिरोविरेचनके अनन्तर कर्म ।

विरिक्तशिरसं तूर्णं पाययित्वाम्बु भोजयेत् ।
लघु त्रिष्वविरुद्धञ्च निवातस्थमतन्द्रितः ॥ १०८ ॥

शिरोविरेचनके अनन्तर रोगीको गर्म जल पिलाकर हल्का और त्रिदोपके अविरोधी अथवा तीनों प्रकारके नस्यके अविरोधी भोजन करावे और निर्वातस्थानमें सावधानीसे रक्खे तथा दिनमें सोने न देवे ॥ १०८ ॥

विरेकशुद्धौ दोषस्य कोपनं यस्य सेवते ।
स दोषो विचरंस्तत्र करोति स्वान् गदान् बहून् ।
यथास्वं विहितं तेषु क्रियां कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ १०९ ॥

अकालकृतजातानां रोगाणामनुरूपतः ॥ ११० ॥

शिरोविरेचनसे शुद्ध होजानेपर जिस दोषके कुपित करनेवाले हेतुओंका सेवन कियाजाय वही दोष विचरण करताहुआ अपने गुणवाले अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है। उन रोगोंमें यथा दोषानुसार चिकित्सा कर बुद्धिमान् उन रोगोंको शान्त करे। विना समय नस्य प्रयोग करनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनकी भी उन रोगोंके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०९ ॥ ११० ॥

नस्यकर्मका अकाल और उनमें हुए रोगोंके यत्न ।

अजीर्णे भोजने भुक्ते तोयपीतेऽथ दुर्दिने ।
प्रतिश्याये नवे स्नाने स्नेहपानेऽनुवासने ।
नावनं स्नेहनं रोगान् करोति श्लैष्मिकान् बहून् ।
तत्र श्लेष्महरः सर्वस्तीक्ष्णोष्णादिविधिर्हितः ॥ १११ ॥

अजीर्णमें, भोजनके अनन्तर, जल पीनेके अनन्तर, वर्षा आदिसे दूषित दिनमें, प्रतिश्यायमें, स्नानके अनन्तर, स्नेहपानके अनन्तर, अनुवासनके अनन्तर, जो नस्य कर्म किया जाता है वह अकालकृत नस्यकर्म है अर्थात् इन समयोंमें नस्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये। अर्थात् ऐसे समयोंमें नस्यकर्म करनेसे अनेक प्रकारके कफ-जनित रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगोंमें प्रायः कफनाशक और तीक्ष्ण उष्णादि विधिका सेवन करना हितकारक है ॥ १११ ॥

क्षामे विरेचने गर्भे व्यायामाभिहतेष्वपि ॥ ११२ ॥
वातो रूक्षेण नस्येन क्रुद्धस्ताञ्जनयेद्गदान् ।
तत्र वातहरः सर्वो विधिः स्नेहनबृंहणः ॥ ११३ ॥
स्वेदादिः स्याद्घृतं क्षीरं गर्भिण्यास्तु विशेषतः ॥ ११४ ॥

क्षीण मनुष्य, विरेचनके अनन्तर, गर्भवती स्त्री और व्यायामसे थकेहुए मनुष्योंको यदि रूक्ष नस्यका प्रयोग किया जाय तो वायु कुपित होकर वातजनित रोगोंको उत्पन्न करती है। ऐसा होनेपर वातनाशक संपूर्ण क्रिया और स्नेहन, बृंहण-स्वेद आदि क्रिया हितकारी है तथा स्नेहन, बृंहण, घृत और दूधका प्रयोग भी हितकारी है। और गर्भिणी स्त्रियोंके लिये तो विशेषकर स्नेहन, बृंहण, घृत दूधका प्रयोग करना हितकारक है ॥ ११२-११४ ॥

ज्वरशोकाभितप्तानां तिमिरं मद्यपस्य च ।
रूक्षैः सेकाञ्जनैर्लेपैः पुटपाकैश्च शोधयेत् ।

तेन ज्वरादयस्तत्र प्रशमं यान्ति तस्य तु ॥ ११५ ॥

ज्वरसे पीडित और शोकसे संतप्त तथा मद्य पीनेवाले मनुष्यको तिमिर प्रतीत होने लगे तो उसको रूक्ष, सेक, अंजन, लेप, पुटपाकोंद्वारा शोधन करे । ऐसा करनेसे उसके ज्वरादि शान्त हो जाते हैं ॥ ११५ ॥

प्रतिमर्ष नस्यके गुण ।

स्नेहनं शोधनञ्चैव द्विविधं नस्यमुच्यते ।

प्रतिमर्षश्च नस्यार्थं करोति न च दोषवान् ॥ ११६ ॥

स्नेहन और स्वेदन भेदसे नस्य दो प्रकारका होता है । प्रतिमर्ष नस्य इन स्नेहन और शोधन दोनों गुणोंको करता है और किसी प्रकारका अवगुण नहीं करता ॥

नस्तः स्नेहाङ्गुलिं दद्यात्प्रातर्निशि च सर्वदा ।

न चोत्सिंहेदरोगाणां प्रतिमर्शः स दार्ढ्यकृत् ॥ ११७ ॥

नित्य प्रति स्नेहमें अंगुली भिगोकर रात्रिके समय और प्रातःकालमें नाकके छिद्रोंमें लगावे और निश्वासद्वारा बलपूर्वक अंगुलीके स्नेहको आकर्षण करे अर्थात् सूंघे । इसको प्रतिमर्ष, शमन नस्य कहते हैं । यह शमन प्रतिमर्ष नस्य आरोग्य मनुष्योंको भी दृढता संपादन करनेवाला है ॥ ११७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ—त्रीणि यस्मात्प्रधानानि मर्माण्यभिहतेषु च ।

तेषु लिङ्गं चिकित्साश्च रोगभेदाश्च सौषधाः ॥ ११८ ॥

विधिरुत्तरवस्तेश्च नस्तःकर्मविधिस्तथा ।

षड्व्यापद्भेषजं सिद्धौ मर्माध्याये प्रकीर्त्तितम् ॥ ११९ ॥

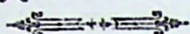
इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने त्रिमर्मीय-

सिद्धिर्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस त्रिमर्मीय सिद्धिनामक अध्यायमें हृदय आदि तीन प्रधान मर्मोंमें किसी प्रकारका आघात लगनेसे जो उपद्रव होते हैं उन सबके लक्षण चिकित्सा और इन तीनों मर्मोंके भिन्न भिन्न रोग, उनके भेद, चिकित्साविधि, उत्तरवस्तिकी विधि, नस्यकर्म विधि, छः प्रकारकी व्यापत्तियें और उनकी चिकित्सा यह सब वर्णन किया है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालराज्यांतर्गतटकसालनिवासि-
वैद्यपंचाननवैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृतप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां
त्रिमर्मीयसिद्धिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।



अथातो वस्तिसिद्धिं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम वस्तिसिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

सिद्धानां वस्तीनां शस्तानां तेषु तेषु रोगेषु ।
शृण्वाग्निवेश गदतः सिद्धिं सिद्धिप्रदां भिषजाम् ॥ १ ॥

जो जो प्रत्यक्ष फलको देनेवाली वस्तियें जिन २ रोगोंमें उपयोग की जाती है, और वह सिद्धवस्तियें वैद्योंको सदैव सिद्धिको देनेवाली हैं हे अग्निवेश ! अब उनको सुनो ॥१॥

बलदोषकालरोगप्रकृतीः प्रविभज्य योजितः सम्यक् ।
स्वैः स्वैरौषधवर्गैः स्वान्स्वान् रोगान्नियच्छति ॥ २ ॥

बल, दोष, काल और प्रकृतिको विचारकर संपूर्ण वातादि रोगोंमें उन रोगोंको नाश करनेवाली औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए वस्तियोग भले प्रकार प्रयोग करनेसें उन संपूर्ण रोगोंको दूर करती हैं ॥ २ ॥

कर्मान्यद्वस्तिसमं न विद्यते शीघ्रसुखविशोधित्वात् ।
आश्वपतर्पणयोगात् सर्वेषां निरत्ययत्वाच्च ॥ ३ ॥

वस्तिके बराबर और कोई क्रिया शीघ्रही सुखपूर्वक शोधन करनेवाली नहीं है। यह शीघ्र दोषोंको निकाल देती है और कोई उपद्रव भी नहीं करती है ॥ ३ ॥

सत्यपि दोषहरत्वे कटुतीक्ष्णोष्णादिभेषजादीनाम् ।
सदुःखोद्गाराहृद्यत्वकोष्ठाबाधाविरेके स्युः ॥ ४ ॥

यद्यपि दोषोंको हरण करनेके लिये कटु, तीक्ष्ण और उष्ण आदि औषधियें हैं परन्तु वह दुःखसे खायीजाती हैं और अहृद्य अर्थात् हृदयको बिगाडती हैं और डकारे आने लगती हैं। तथा विरेचन होनेमें कोष्ठमें अनेक प्रकारकी बाधा होती हैं ॥ ४ ॥

आस्थापन योग्य मनुष्य ।

अविरेच्यौ शिशुवृद्धौ हि तावदप्राप्तहीनधातुबलौ ।
आस्थापनमेव तयोः सर्वार्थकृदुत्तमं कर्म ।
बलवर्णहर्षमार्दवगात्रस्नेहान्नृणां ददत्याशु ॥ ५ ॥

बालक और वृद्ध विरेचन करानेके योग्य नहीं होते क्योंकि बालक तो अप्राप्त धातुबल होता है और वृद्ध क्षीणधातु तथा हीनबल होता है । इसलिये बालक और

वृद्धोंको आस्थापनवस्तिका प्रयोग करनाही सब प्रकार गुणकारी और उत्तम चिकित्सा है। आस्थापनवस्ति इनके बल, वर्ण, हर्ष, शरीरकी मृदुता और अंगोंमें चिकनाई इन सब गुणोंको शीघ्र करनेवाली है ॥ ५ ॥

त्रिविध वस्ति।

अनुवासनं निरूहश्चोत्तरवस्तिश्च स त्रिविधः ॥ ६ ॥

वस्ति–अनुवासन, निरूहण और उत्तरवस्ति इन भेदोंसे तीन प्रकारकी होती है ॥ ६ ॥

वस्तिके गुण।

शाखावातार्त्तानां संकुचितस्तब्धभग्नसन्धीनाम्।
विट्सङ्गाध्मानारुचिपरिकर्त्तिरुगादिषु च शस्तः ॥ ७ ॥

वस्तिप्रयोग करनेसे शाखागत वात, अंगसंकोच, स्तम्भ, संधियोंका ढीला पडना अथवा टूटना, विष्ठाका अवरोध, अरुचि, परिकर्त्तिका आदि पीडाओंकी शान्तिके लिये अति श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

उष्णार्त्तानां शीताञ्शीतार्त्तानां तथा सुखोष्णांश्च।
तद्योगौषधयुक्तान् वस्तीन् सर्वत्र विनियुञ्ज्यात् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य उष्णतासे पीडित हैं उनको शीतलवस्तिका प्रयोग करना चाहिये और जो शीतसे पीडित हैं उनको सुखोष्णवस्तिका प्रयोग करना चाहिये। जिस रोगमें वस्तिका प्रयोग करना हो उस रोगको शान्त करनेवाली औषधियोंसे सिद्ध कर सब रोगोंमें वस्ति प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

शोधनीयरोगोंमें बृंहणका निषेध।

वस्तीन्न बृंहणीयान् दद्याद्व्याधिषु विशोधनीयेषु।
मेदस्विनो विशोध्या ये च नराः कुष्ठमेहार्त्ताः ॥ ९ ॥

शोधनके योग्य रोगोंमें बृंहणवस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये। और मेदस्वी वमन, विरेचनद्वारा शोधन योग्य, कुष्ठ रोगी और मधुमेहवालेको कभी भी आस्थापन (बृंहण) वस्ति नहीं देना चाहिये ॥ ९ ॥

बृंहणीयोंमें शोधनका निषेध।

न क्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कदेहानाम्।
युञ्ज्याद्विशोधनीयान् दोषनिबद्धायुषो ये च ॥ १० ॥

क्षत, क्षीण, दुर्बल, मूर्च्छित, कृश और सूखी हुई देहवाले मनुष्योंको संशोधन वस्ति नहीं देना चाहिये। और जो मनुष्य जन्मसे ही रोगग्रस्त रहते हैं अथवा जिनकी आयुसे दोष बंधे हुए हैं उनको भी संशोधनवस्ति नहीं देना चाहिये ॥ १० ॥

रोगविशेषसे वस्तिविशेष ।

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्च मधुघृतपयोयुताः सर्वे ।
शस्ताः सतैलमूत्रारनाललवणाश्च कफवाते ॥ ११ ॥

क्षय आदि वाजीकरण योग्य रोगोंमें और रक्तपित्तमें शहद, घृत और दूध मिलाकर वस्तिप्रयोग करना चाहिये । और कफवातमें तेल, गोमूत्र कांजी और नमक मिलाकर वस्ति प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥

वस्तिमें प्रयोगकियेजानेके द्रव्य ।

युञ्ज्याद्द्रव्याणि वस्तिष्वम्लं मूत्रं पयः सुरा क्काथान् ।
अविरोधाद्धातूनां रसयोनित्वाच्च जलमुष्णम् ॥ १२ ॥

कांजी, गोमूत्र, दूध, सुरा और क्काथ आदि जो द्रव्य वस्तिमें प्रयोग करे उनमें जो रोगीकी धातुका विरोधी हो वह नहीं मिलाना चाहिये । जल सब धातुओंका अविरोधी है और रसोंका योनि है इसलिये किंचित् उष्ण जल वस्तिमें प्रयोग करना चाहिये॥

सुरदारुशताह्वैला कुष्ठं मधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः ।
ऊर्द्ध्वानुलोमभागाः ससर्षपाः शर्करालवणम् ॥ १३ ॥
आवापो वस्तीनामतः प्रयोज्यानि येषु यानि स्युः ।
युक्तानि सह कषायैस्तदुत्तरतः प्रवक्ष्यामि ॥ १४ ॥

देवदारु, सौंफ, इलायची, कूठ, मुलैठी, पीपल, शहद, स्नेह और मैनफल आदि वमनकारक द्रव्य, निशोथ आदि विरेचनकारक द्रव्य और सरसों, खांड, सेंधानमक यह सब कल्क बनाकर वस्तिमें मिलाने योग्य हैं । इनमेंसे जिस समय जो द्रव्य वस्तिमें प्रयोग करना उचित हो उसका प्रयोग करे । अब वस्तिमें प्रयोग करनेके क्काथ द्रव्योंको कथन करते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

चिरजातकठिनबलिषु व्याधिषु तीक्ष्णा विपर्य्यये मृदवः ।
सप्रतिवापकषायैर्योज्यास्त्वनुवासननिरूहाः ॥ १५ ॥

बहुत पुराने, कठिन और बलवान् रोगोंमें तीक्ष्ण द्रव्योंके कल्क, क्काथोंसे सिद्ध कीहुई निरूहण और अनुवासन वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । जो रोग थोडे दिनसे उत्पन्न हुए हों और जो व्याधि दुर्वल हैं उनमें मृदुवीर्य द्रव्योंके कल्क क्काथोंसे निरूहण और अनुवासन करना चाहिये ॥ १५ ॥

अर्द्धश्लोकैरतः सिद्धान्नानाव्याधिषु वर्गशः ।
वस्तीन्वीर्य्यसमैर्भागैर्यथार्हानिह ताञ्शृणु ॥ १६ ॥

अब अनेक रोगोंकी शांतिके लिये आधे २ श्लोकमें यथावीर्य और भागानुसार जिन रोगनाशक योगोंका वर्णन करते हैं उन हितयोगोंको सुनो ॥ १६ ॥

वातनाशक योग।

बिल्वाग्निमन्थश्योणाकाः काश्मर्यः पाटलिस्तथा।
शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहत्यौ वर्धमानकः ॥ १७ ॥
यवाः कुलत्थाः कोलास्थि स्थिरा चेति त्रयोऽनिले।
शस्यन्ते स चतुःस्नेहा पिशितस्य रसान्विताः ॥ १८ ॥

१-बेलकी गिरी, अरणी, सोनापाठा, कुंभेर और पाढ। २-शालपर्णी, पृश्निपर्णी और कटेली दोनों, एरण्डकी जड। ३-कुलथी, यव, बेरकी गुठली और शालपर्णी। यह तीन योग वातनाशक हैं। इनके पृथक् २ क्वाथोंमें चतुःस्नेह और मांसरस मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे वातरोग शान्त होजाते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

पित्तनाशक योग।

नलवञ्जुलवानीरशतपत्राणि शैवलम्।
मञ्जिष्ठा शारिवानन्ता पयस्या मधुयष्टिका ॥ १९ ॥
चन्दनं पद्मकोशीरं तुङ्गश्च पैत्तिके त्रयः।
सशर्करा घृतक्षौद्राः सक्षीरा वस्तयो हिताः ॥ २० ॥

१-नरसलकी जड, वंजुल (पानीमें होनेवाली लताविशेष), बेत, कमल और पानीकी काई। २-मंजीठ, शारिवा, कृष्णशारिवा, क्षीरकाकोली और मुलैठी। ३-लालचंदन, पद्मकाष्ठ, खस और तुंगकी छाल। इन तीन योगोंमेंसे किसी एकके क्वाथमे खांड, शहद, घृत और दूध मिलाकर वस्ति करनेसे पित्तरोग शान्त होते हैं॥१९॥२०

कफनाशक वस्तियोग।

अर्कस्तथैव चालर्क एकाष्ठीला पुनर्नवा।
हरिद्रा त्रिफला मुस्तं पीतदारु कुटन्नटम् ॥ २१ ॥
पिप्पल्यश्चित्रकश्चेति त्रयस्ते श्लेष्मरोगिणाम्।
सक्षारक्षौद्रगोमूत्रा नातिस्नेहान्विता हिताः ॥ २२ ॥

१-सफेद आक और लाल आककी जडकी छाल, अगस्तिया वृक्षकी छाल और पुनर्नवा। २-हल्दी, त्रिफला, नागरमोथा, दारुहल्दी और केवटी मोथा। ३-पीपल और चित्रककी जडकी छाल। इन तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगके क्वाथमें जवाखार, शहद, गोमूत्र और किंचित् कडुवा तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे कफके रोग दूर होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

पक्काशयशोधक योग।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकवत्सकाः ।
श्यामा च त्रिफला चैव स्थिरा दन्ती द्रवन्त्यपि ॥ २३ ॥
प्रकीर्य्या चोदकीर्य्या च नीलिनी क्षीरिणी तथा ।
सप्तला शंखिनी लोध्रं फलं काम्पिल्लकस्य च ॥ २४ ॥
चत्वारो मूत्रसिद्धास्ते पक्काशयविशोधनाः ।
व्यस्तैरपि समस्तैश्च चतुर्योगा उदाहृताः ॥ २५ ॥

१-मैनफल, जीमूतक, इक्ष्वाकु, धामार्गव और कुडा। २-श्यामा, निशोथ, त्रिफला, शालपर्णी, दन्ती और द्रवन्ती। ३-करंज, लताकरंज, नीलिनी और क्षीरिणी। ४-सातला, शंखिनी, लोध, मैनफल और कमीला इन चार योगोंमेंसे किसी एक योगका कल्क और क्काथ गोमूत्रमें मिलाकर वस्ति करनेसे पक्काशयकी शुद्धि होती है। यह पक्काशयशोधक चार योग कहे हैं। इनका पृथक्२अथवा मिलाकर प्रयोग करनेसे पक्काशय शुद्ध होजाता है ॥ २३-२५ ॥

वीर्यवर्द्धक योग।

काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी शतावरी ।
विदारी मधुयष्ट्याह्वा शृङ्गाटककशेरुके ॥ २६ ॥
आत्मगुप्ता फलं माषाः सगोधूमा यवास्तथा ।
जाङ्गलानूपजं मांसमित्येते शुक्रवर्द्धनाः ॥ २७ ॥

१-काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी और शतावर। २-विदारीकन्द, मुलैठी, सिंघाडे और कसेरू। ३-कौंचके बीज, उडद, गेंहू और यव। ४-जंगली और अनूपसंचारी जीवोंके मांस। यह चार योग वीर्यवर्द्धक हैं। इनमेंसे किसी एकका क्काथ अथवा सबका क्काथ, कल्क मिलाकर वस्ति करनेसे वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

संग्राही योग।

जीवन्ती चाग्निमन्थश्च धातकी पुष्पवत्सकौ ।
प्रग्रहः खदिरः कुष्ठं शमी पिण्डीतको यवाः ॥ २८ ॥
प्रियंगू रक्तमूली च तरुणी स्वर्णयूथिका ।
वटाद्याः किंशुकं लोध्रमिति सांग्राहिका मताः ॥ २९ ॥

१-जीवन्ती, अरणी, धावेके फूल और कुडा। २-प्रग्रह (कर्णिकार), खैर, कूठ, शमीवृक्ष, पिण्डीतक और यव। ३-पुष्पप्रियंगु, रक्तमूली (लाजवन्ती), घीकुंवार और स्वर्णयूथिका। ४-वड आदि क्षीरी वृक्ष, ढाक और लोध। यह चार योग संग्राही हैं ॥

परिस्रावनाशक योग।

परिस्रावे शृतं क्षीरं सवृक्षीरपुनर्नवम्।
आखुपर्णिकया वापि तण्डुलीयकयुक्तया ॥ ३० ॥

सफेद पुनर्नवा और लालपुनर्नवासे सिद्ध किया दूध अथवा आखुपर्णी और चवलाईकी जडसे सिद्ध किया दूध वस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे परिस्रावको दूर करता है॥३०॥

दाहनाशक योग।

कोलकतककाण्डेक्षुदर्भकालेक्षुशालिभिः।
दाहघ्नः सघृतक्षीरो द्वितीयश्चोत्पलादिभिः ॥ ३१ ॥

बेरके पत्र, वा बेरकी मींगी, निर्मलीफल, कांडेक्षु, कुशाकी जड, ईखकी जड और शालीधान्यकी जडके कल्कसे सिद्ध किये दूध और घृतद्वारा वस्ति करनेसे दाहकी शान्ति होती है। तथा उत्पलादिगणके साथ सिद्ध कियाहुआ दूध, घृत भी दाहको दूर करता है ॥ ३१ ॥

कर्बुदाराढकीनीपविदुलैः क्षीरसाधितैः।
वस्तिः प्रदेयो भिषजा शीतः समधुशर्करः ॥ ३२ ॥

सफेद कचनार, अरहरकी जड, कदम्बकी छाल और बेतसकी छालसे सिद्ध किया दूध ठंडा होनेपर उसमें शहद और मिसरी मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे भी दाह शान्त होता है ॥ ३२ ॥

परिकर्तिका व प्रवाहिका नाशक योग।

परिकर्त्तैस्तथा वृन्तैः श्रीपर्णीकोविदारजैः।
देयो वस्तिः सुवैद्यैस्तु यथावद्विदितक्रियैः ॥ ३३ ॥
मुष्टिः शाल्मलिवृन्तानां क्षीरसिद्धो घृतान्वितः।
हितः प्रवाहणे तद्वद्वृन्तैः शाल्मलिकस्य च ॥ ३४ ॥

कुम्भेर और लाल कचनारके फूलोंकी डण्डियोंके कल्कसे सिद्ध किया दूध घृत मिलाकर वस्ति करनेसे परिकर्त्तिका दूर होती है। अथवा सेंमलके फूलोंके ऊपरकी टोपीयुक्त डण्डीका एक पल कल्क लेकर उससे सिद्ध किया दूध घृत युक्तकर वस्ति करनेसे परिकर्त्तिका दूर होती है। और इसी प्रकार सेंमलके फूलोंकी डण्डियोंसे सिद्ध किये दूधसे वस्ति कीजानेपर प्रवाहिका दूर होती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अतियोग नाशक योग।

अश्वावरोहिकाः काकनासाराजकशेरुकैः।
सिद्धाः क्षीरेऽतियोगे स्युः क्षौद्राञ्जनघृतैर्युताः ॥ ३५ ॥

न्यग्रोधाद्यैश्चतुर्भिश्च तेनैव विधिना परः ।
वस्तिः प्रवाहणे देयो भिषजा कल्पितो धिया ॥ ३६ ॥

असगंध, काकनासा और भद्रमोथेके कल्कसे सिद्ध किया दूध ठंढा करके उसमें शहद, अंजन (काला सुरमा या रसौत) और घृत मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे विरेचनका अतियोग दूर होता है । इसी प्रकार वड, गूलर, पीपल, पिलखन और वेतसके छिलकोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पूर्वोक्त विधिसे शीतलकर शहद आदि मिलाकर विधिवत् वस्ति प्रयोग करे तो विरेचनका अतियोग दूर होता है ३५॥३६॥

बृहती क्षीरकाकोली पृश्निपर्णी शतावरी ।
काश्मरी बदरी दूर्वा तथोशीरप्रियङ्गवः ॥ ३७ ॥
जीवनीयैः श्रृतौ क्षीरौ द्वौ घृताञ्जनसंयुतौ ।
वस्ती प्रदेयौ भिषजा शीतौ समधुशर्करौ ॥ ३८ ॥

१-बडी कटेली, क्षीरकाकोली, पृश्निपर्णी और शतावर। २-कुंभेरके फल, बेरके पत्ते, दूब, खस और प्रियंगु इन दोनोंमेंसे किसी एकके क्काथ वा कल्कसे सिद्ध किये दूधमें जीवनीयगणका कल्क, घृत, अंजन, शहद और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे विरेचन आदिका अतियोग दूर होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

गोऽव्यजामहिषीक्षीरैर्जीवनीययुतैस्तथा ।
तेनैव विधिना वस्तिर्देयः सक्षौद्रशर्करः ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार गौ, भैंस, भेड, बकरी इन सबके दूध और जीवनीयगणके कल्क,घृत, शहद और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे अतियोगका विकार शान्त होता है ॥

अतियोगमें रक्तक्षय होनेपर योग ।

शशैणदक्षमार्जारमहिषाव्यजशोणितैः ।
सद्यस्कैर्मृदुभिर्वस्तिर्जीवादाने प्रशस्यते ॥ ४० ॥

अतियोगमें शुद्ध रक्तके निकलजानेपर शशा, काला हिरण, मुर्गा, बिल्ली, भैंसा, मेंढा और बकरी इनमेंसे किसी एकका तत्कालमें निकालाहुआ रक्त वस्तिद्वारा प्रयोग करना चाहिये ॥ ४० ॥

मधूकमधुकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्यचन्दनैः ।
शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः ॥ ४१ ॥

अथवा महुएके फूल, मुलैठी,दाख, दूर्वा, कुंभेरके फल और लालचंदन वा खांड, लालचंदन, दाख, मुलैठी, आमले और नीलकमल इनके कल्क और दूध, घृत, मिलाकर वस्तिप्रयोग करना अतियोगद्वारा रक्त निकलजानेमें हितकारक है ॥४१॥

रक्तपित्तप्रमेहे तु कषायः सोमवल्कजः।
वस्तिदयो विधिज्ञेन भिषजा युक्तिकल्पितः॥ ४२॥

रक्तपित्त और प्रमेहमें सफेद खैरके क्वाथकी वस्तिविधिको जाननेवाला वैद्य युक्तिपूर्वक प्रयोग करे॥ ४२॥

अध्यायका उपसंहार।

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनां चतुष्काश्चापरे त्रयः।
पक्वाशयविशुद्ध्यर्थं वृष्याः सांग्राहिकास्तथा॥ ४३॥
परिस्रावे तथा दाहे परिकर्त्ते प्रवाहणे।
अतियोगे मताः पञ्च जीवादाने तथा त्रयः॥ ४४॥
रक्तपित्ते द्वयं मेह एकत्रिंशच्च पञ्च च।
सुलभाश्चौषधक्लेशा वस्तयो गुणवत्तमाः॥ ४५॥
गुल्मातिसारोदावर्त्तस्तम्भसंकुचितादिषु।
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगेषु रोगेष्वेवंविधेषु च॥ ४६॥
यथास्वमौषधैः सिद्धान्वस्तीन्दद्याद्विचक्षणः।
पूर्वोक्तेन विधानेन कुर्य्याद्रोगान् पृथग्विधान्॥ ४७॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने वस्तिसिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस वस्तिसिद्धिनामक अध्यायमें वातनाशक तीन योग, पित्तनाशक तीन योग, कफनाशक तीन योग, पक्वाशयको शोधनकरनेवाले चार योग, वीर्यवर्द्धक तीन योग, संग्राही तीन योग, परिस्रावनाशक तीन योग, दाहनाशक दो योग, परिकर्त्तिकानाशक दो योग, प्रवाहिकानाशक एक योग, अतियोगमें पांच योग, रक्तक्षयमें तीन योग, रक्तपित्त और प्रमेहमें एक योग इस प्रकार ३६ योग सुलभ और सिद्ध वस्तियोंके वर्णन किये हैं। तथा गुल्म, अतिसार, उदावर्त्त, स्तम्भ, संकोच, सर्वांगवात, एकांगवात तथा और इसी प्रकारके रोगोंमें उन रोगोंके नाश करनेवाली औषधियोंसे रोगानुसार पृथक् २ वस्तियोंका वर्णन किया है उनको बुद्धिमान् वैद्य रोगानुसार पूर्वोक्त विधिसे प्रयोग करे॥ ४३-४७॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसालनिवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां वस्तिसिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः ।



अथातः फलमात्रासिद्धिं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम फलमात्रासिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

भगवन्तमुदारसत्त्वधीश्रुतिविज्ञानसमृद्धमत्रिजम् ।
फलवस्तिवरत्वनिश्चये सविवादा मुनयोऽप्युपागमन् ॥ १ ॥
भृगुकौशिककाप्यशौनकाः सपुलस्त्यासितगौतमादयः ।
कतमत्प्रवरं फलादिषु स्मृतमास्थापनयोजनास्विति ॥ २ ॥

श्रुति, विज्ञान, समृद्धिसंपन्न, उदारसत्त्व, उदारबुद्धि भगवान् आत्रेयजीके समीप पहुंचकर भृगु, कौशिक, काप्य, शौनक, पुलस्त्य, असित, गौतम तथा और ऋषि भी आपसमें विवाद करतेहुए इस प्रकार जाननेकी इच्छा करनेलगे कि, आस्थापनमें प्रयोग करनेके लिये फलोंमें सबसे उत्तम कौन फल है ॥ १ ॥ २ ॥

आस्थापनविषयक फलोंमें ऋषियोंका विवाद ।

कफपित्तहरं परं फलेष्वथ जीमूतकमाह शौनकः ।
मृदुवीर्य्यतया भिनत्ति तदिति चोवाच नृपोऽथ वामकः ॥ ३ ॥
कटुतुम्बीफलमुत्तमं मतं वमने दोषसमीरणश्च तत् ।
तदयोग्यमशैत्यतीक्ष्णताकटुरौक्ष्यादिति गौतमोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
कफपित्तनिबर्हणं परं स च धामार्गवमित्यमन्यत ।
तदमन्यत वातलं पुनर्बडिशो ग्लानिकरं बलापहम् ॥ ५ ॥
कुटजं प्रशशंस चोत्तमं न बलघ्नं कफपित्तहारि च ।
अतिविज्जलमूर्द्धभागिकं पवनक्षोभि च काप्य आह तत् ॥ ६ ॥
कृतवेधनमाह वातलं कफपित्तं प्रबलं हरेदिति ।
तदसाध्विति भद्रशौनकः कटुकश्चापि बलघ्नमित्यपि ॥ ७ ॥

उनमें शौनक कहनेलगे कि, कफपित्तका नाशक होनेसे सब फलोंमें जीमूत (देवदालीका फल) श्रेष्ठ है । राजर्षि वामक कहनेलगे कि, जीमूतफल मृदुवीर्य होनेसे मलको यथोचित भेदन नहीं करता है और कडवी तुंबीका फल वमन करानेमें

श्रेष्ठ है यह शीघ्र दोषोंको उखाडकर निकालदेता है। गौतम कहनेलगे कि, कडवी-तुंबी गर्म, तीक्ष्ण, कटु और रूक्ष होनेसे अयोग है इसलिये धामार्गव कफपित्तको दूर करनेमें परम श्रेष्ठ है। वडिश ऋषि कहने लगे कि धामार्गव वातल, ग्लानिकारक बलको हरनेवाला है इसलिये कुडाके बीज (इन्द्रयव) सब प्रकारके फलोंमें उत्तम है क्योंकि यह बलको भी नहीं हरते और कफपित्तको हरण करनेवाले हैं। काप्यऋषि कहने लगे कि, इन्द्रयव अत्यंत पिच्छिल, ऊर्ध्वगामी और वायुको क्षोभी करनेवाले होते हैं। परन्तु कृतवेधन वातकारक होनेपर भी प्रवल कफपित्तको नष्ट करता है इसलिये श्रेष्ठ है। भद्रशौनक कहने लगे कि, कृतवेधन श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि वह कटु और बलको नष्ट करनेवाला है ॥ ३-७ ॥

आत्रेयजीका समाधान।

इति तद्वचनानि हेतुभिः सुविचित्राणि निशम्य बुद्धिमान्।
प्रशशंस फलेषु निश्चयं परमं चात्रिसुतोऽब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥

फलदोषगुणान् सरस्वती प्रति सर्वैरपि सम्यगीरिता।
न तु किञ्चिददोषनिर्गुणं गुणभूयस्त्वमतो विचिन्त्यते ॥ ९ ॥

इस प्रकार ऋषियोंके विचित्र वाक्य और हेतुवादको सुनकर बुद्धिमान् आत्रेयजी ऋषियोंकी प्रशंसाकर फलोंके विषयमें परम निश्चयात्मक वाक्यको इस प्रकार कहने लगे कि, आप सबने इन फलोंके गुण और दोषोंको बहुत उत्तम रीतिसे वर्णन किया है परन्तु कोई भी फल निर्दोष और निर्गुण नहीं होता इसलिये विशेषरूपसे उनके गुणोंकी अधिकताका विचार करना चाहिये कि, किस समय किस रोगके लिये किस द्रव्यका प्रयोग अधिक गुणकारक होसकता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

इह कुष्ठहिता गरागरी हितमिक्ष्वाकु तु मेहिने मतम्।
कुटजस्य फलं हृदामये प्रवरं कोठफलश्च पाण्डुषु ॥ १० ॥

उदरे कृतवेधनं हितं मदनं सर्वगदाविरोधि तु।
मधुकं सकषायतिक्तकं तदरूक्षं कटुकञ्च विज्जलम् ॥ ११ ॥

कफपित्तहृदाशुकारि चाप्यनपायं पवनानुलोमि च।
फलनामविशेषतस्त्वतो लभतेऽन्येषु फलेषु सत्स्वपि ॥ १२ ॥

जीमूतफल कुष्ठरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है। इक्ष्वाकुफल प्रमेहमें श्रेष्ठ है। कुटजफल हृद्रोगमें श्रेष्ठ है। कूठफल (कटुतुंबी) पाण्डुरोगमें श्रेष्ठ है। कृतवेधन उदररोगमें श्रेष्ठ है। और मैनफल सब रोगोंमें अविरोधी होनेसे सर्वश्रेष्ठ है। मैनफल-मधुर

किंचित् कसैला, तिक्त, अरूक्ष, कटु, पिच्छिल, कफपित्तको हरनेवाला, शीघ्र कार्यकर्ता, अनपायी और वायुको अनुलोमन करानेवालाहै इसलिये सब फलोंमें मैनफलही उत्तमहै॥

शिष्योंका प्रश्न ।

गुरुणा च वचस्युदाहृते मुनिसङ्घैरिति पूजिते ततः ।
प्रणिपत्य मुदा समन्वितः सहितः शिष्यगणोऽनुपृष्टवान् ॥ १३ ॥
सर्वकर्म्मगुणकृद्गुरुणोक्तो वस्तिरूर्द्धमतमर्थवेदिना ।
नाभ्यधोगुदगतश्च शरीरात्सर्वतः कथमपोहति दोषान् ॥ १४ ॥

इस प्रकार गुरु आत्रेयजीके वचनको सुनकर मुनियोंका समूह प्रसन्न हुआ और आत्रेयजीकी प्रशंसा करने लगा ऐसी अवस्था देखकर अग्निवेश आदि शिष्य प्रसन्न हो प्रणामपूर्वक पूछने लगे कि, हे गुरो ! आपने प्रथम कथन किया है कि, वस्ति सब कामोंकी करनेवाली और सर्वगुणकर्ता है वह वस्ति गुदाद्वारा नाभिसे नीचे शरीरके अधोभागमें पहुंचकर संपूर्ण शरीरमेंसे दोषोंको किस प्रकार आकर्षण करलेती है अर्थात् निकाल देती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

आत्रेयजीका उत्तर ।

तद्गुरुरब्रवीदिदं शरीरं तन्त्रयतेऽनिलः सङ्गविघातात् ।
केवल एव दोषसहितः स हि वायुः प्रकोपमुपयाति ॥ १५ ॥
तं पवनं सपित्तकफविट्कं शुद्धिकरोऽनुलोमयति वस्तिः ।
सर्वशरीरगश्च गदसङ्घातप्रकाशनात्प्रशान्तिमुपयाति ॥ १६ ॥

यह सुनकर आत्रेयजी कहने लगे कि, वायु शरीरके संपूर्ण द्रव्योंको एकत्र तंत्रित करनेवाला है और यही शरीरको धारण करता है। जब यह कुपित होता है तो एकाएकी अन्य दोषों और मलोंको भी कुपित कर देता है। और पक्वाशयमें प्राप्त होकर वायुको पित्त, कफ और मलके साथ अनुलोमन करके शुद्ध करदेता है वह विशुद्ध हुआ वायु संपूर्ण शरीरमें गमन करताहुआ रोगोंसहित शान्तताको प्राप्त होजाता है। क्योंकि वायु शरीरके संपूर्ण धातुओं और मलोंसे संबन्ध रखता है । मलाशय वायुका प्रधान स्थान है। वस्तिद्रव्य मलाशयमें प्राप्त होकर वायुको सम्पूर्णरूपसे शुद्ध बना देता है। पक्वाशय और वायुके शुद्ध होनेसे सम्पूर्ण दोषादि शुद्ध होकर रोग भी स्वयं शान्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

हस्तिआदिके विषयमें प्रश्नोत्तर ।

अथाभिगम्यार्थमखण्डितं धिया गजोष्ट्रगोऽश्वाव्यजवस्तिकर्म्म ।
अपृच्छदेनं स च वस्तिमब्रवीद्विधिश्च तस्याह पुनः प्रचोदितः ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर अखण्डित बुद्धिसे शिष्यगण पूछनेलगे कि, हाथी, ऊंट, गौ, घोडा, मेंढा और बकरी आदिको किस प्रकार वस्तिका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार पूछनेपर वस्तिके विषयमें आत्रेयजी कहनेलगे ॥ १७ ॥

अजाविके सौम्यगजोष्ट्रयोर्वा गवाश्वयोर्वस्तिमुशन्ति माहिषम् ।
अजाविकादन्तसुवस्तिमुत्तरं वदन्ति वस्तिं विपरीतरूपम् ॥ १८ ॥

बकरी, मेंढा, हाथी, ऊंट, गौ और घोडोंको यदि वस्तिप्रयोग करना हो तो हे सौम्य ! भैंसेके मूत्राशयका वस्तिपुट बनाना चाहिये। बकरी, मेंढा आदि जानवरोंकी वस्तिको सुवस्ति और उत्तरवस्तिको उत्तरसुवस्ति कहते हैं ॥ १८ ॥

हाथीआदिकोंकी वस्तिका प्रमाण।

सुवस्तिमष्टादश षोडशाङ्गुलं तथैव नेत्रं च दशाङ्गुलं क्रमात् ।
गजोष्ट्रगोऽश्वाव्यजवस्तिसन्धौ चतुर्थभागे च सकर्णिकं वदेत् ॥ १९ ॥

सुवस्तिकी मुखनाल अर्थात् नेत्रवाली हाथी और ऊंटके लिये १८ अंगुल और गौ घोडेके लिये १६ अंगुल, भेड, बकरीके लिये १० अंगुल होनी चाहिये। जिस प्रकार मनुष्योंको प्रयोग करनेकी वस्तिमें जोड और चौथे भागमें कर्णिका होती है उसी प्रकार सुवस्तिकी कल्पना भी करनी चाहिये ॥ १९ ॥

गौ, घोडा, हाथी, बकरीं आदिको निरूह और अनुवासनकी मात्रा।

प्रस्थस्त्वजाव्योर्हि निरूहमात्रा गवादिषु द्वित्रिगुणो यथाबलम् ।
निरूह उष्ट्रस्य तथाढकद्वयं गजस्य वृद्धिस्त्वनुवासनेऽष्टमः ॥ २० ॥

बकरी और भेडको निरूहणकी मात्रा एक प्रस्थ, गौ और घोडेके लिये बल और अवस्थानुसार निरूहकी मात्रा २ या ३ प्रस्थ, ऊंटके लिये निरूहणकी मात्रा २ आढक तक होसकती है। हाथीके लिये अवस्था और बलके अनुसार ऊंटकी अपेक्षा दुगुनी, या जितनी उचित हो उतनी मात्रा कल्पना करनी चाहिये। इसी प्रकार अनुवासनके लिये निरूहसे आठवां भाग मात्राकी कल्पना करनी चाहिये ॥ २० ॥

हस्तिआदिको निरूहण योग।

कलिङ्गकुष्ठे मधुकं सपिप्पली वचा शताह्वा मदनं रसाञ्जनम् ।
हितानि सर्वेषु गुडः ससैन्धवो द्विपञ्चमूलं सविकल्पना त्वियम् ॥ २१ ॥

इन्द्रयव, कूठ, मुलैठी, पीपल, वच, सौंफ और मैनफल इन सबके क्वाथमें रसौत, गुड और सेंधानमक मिलाकर हाथी, घोडा गौ, भैंस आदिको मात्रानुसार निरूहण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। इन्द्रयवादि क्काथके बदले दशमूलका क्काथ भी निरूहणमें प्रयोग कियाजाता है ॥ २१ ॥

गजेऽधिकोऽश्वत्थवटाश्वकर्णजाः सखादिराः सग्रहशालतालजाः।
तथा च उष्ट्रे धवशिग्रुपाटलीमधूकसाराः सनिकुम्भचित्रकाः॥ २२॥

हाथीको विशेषकर पीपल, वड और अश्वकर्णनामक शाल तथा खैर, अमलतास, शाल और ताडके क्वाथ कल्कसे निरूहण करना चाहिये। और ऊंटको धव, सुहांजना, पाढ, महुएका गोंद, दन्ती और चित्रकका निरूहण करना चाहिये॥ २२॥

पलाशभूतीकसुराह्वरोहिणीकषाय उक्तस्त्वधिको गवां हितः।
पलाशदन्तीसुरदारुकत्तृणद्रवन्त्य उक्तास्तुरगस्य चाधिकाः॥ २३॥

गौके लिये पलाश, अजवायन, देवदारु और कुटकीके क्वाथका अधिक भाग मिलाकर निरूहण करना चाहिये। घोडेके लिये पलाश, देवदारु, दन्ती, रोहिषतृण और द्रवन्तीका निरूहण हितकारी है॥ २३॥

खरोष्ट्रयोः पीलुकरीरखादिराः शम्पाकबिल्वादिगणस्य च च्छदाः।
अजाविकानां त्रिफलापरूषकं कपित्थकर्कन्धुसबिल्वकोलजम्॥ २४॥

गधे और ऊंटके लिये पीलू, करील और खर वा अमलतास और बिल्वादि गणके पत्रोंका निरूहण करना चाहिये। भेड, बकरीके लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैथ, झाडीबेर, बिल्वफल और बेरके क्वाथसे निरूहण करना चाहिये २४॥

अग्निवेशका प्रश्न-
राजसेवकआदिकोंके रोगग्रस्तरहनेका कारण।

अथाग्निवेशः सततोऽन्तरान्तरा हितञ्च पप्रच्छ गुरुस्तदाह च।
सदातुराः श्रोत्रियराजसेवकास्तथैव वेश्याः सह पण्यजीविभिः॥२५॥
द्विजो हि शिष्याध्ययनव्रताह्निकक्रियादिभिर्देहहितं न चेष्टते।
नृपोपसेवी नृपचित्तरक्षणात्परानुरोधाद्बहुचिन्तनाद्भयात्॥ २६॥
नृचित्तवर्त्तिन्युपचारतत्परा मृजाभिभूषानिरता पराङ्गना।
सदासनादत्यनुबद्धविक्रयक्रयादिलोभादपि पण्यजीविनः॥ २७॥

फिर अग्निवेश पूछने लगे कि, श्रोत्रिय, राजसेवक, वेश्यायें और दुकानदार प्रायः क्यों सदैव रोगग्रस्त रहा करते हैं। यह सुनकर आत्रेयजी कहने लगे कि, श्रोत्रिय ब्राह्मण सदैव शिष्योंको पढानेमें, चातुर्मासादि व्रत पालन करनेमें और आह्निककृत्यमें फंसे रहनेके कारण शरीरकी हितचेष्टामें ध्यान नहीं देसकते। और राजाके सेवक राजाकी सेवामें राजाकी इच्छानुसार उसके मनकी रक्षामें दूसरेके वशमें रहनेसे अत्यन्त चिन्तायुक्त और भयभीत रहते हैं इसलिये शरीरकी रक्षा नहीं करसकते।

वेश्या परचित्तकी अनुवर्त्तिनी, परसेवामें तत्पर, पराये मनको हरना और अंगशोभासे विभूषित आदिमें लगीरहती है इसलिये अपने शरीरकी यथोचित रक्षा नहीं करसकती। दुकानदारको सदा बैठेही रहना पडता है,अपने लेनदेनके कार्यमें लगारहता है और लोभके कारण अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनेका अवकाश नहीं पासकता॥

सदैव ते ह्यागतवेगनिग्रहं समाचरन्ते न च कालभोजनम्।

अकालनिर्हारविहारसेविनो भवन्ति येऽन्येपि सदातुराश्च ते॥ २८॥

यह पूर्वोक्त मनुष्य आयेहुए मलमूत्रादिके वेगोंको रोकलेते हैं। यथासमय भोजन नहीं करते। बेसमय मलमूत्रादिका त्याग और भ्रमण आदि कर्मोंको करते हैं। इसलिये यह सदैव रोगग्रस्त रहाकरते हैं। इनके सिवाय और जो मनुष्य भी इस प्रकारका आचरण रखते हैं वह भी सदैव प्रायः रोगग्रस्त रहते हैं॥ २८॥

इनकी चिकित्सा।

समीरणं वेगविधारणोद्धतं विबद्धसर्वाङ्गरुजाकरं भिषक्।

समीक्ष्य तेषां फलवर्तिमादितः सुकल्पितां स्नेहवतीं प्रयोजयेत्॥२९॥

निरूहितं धन्वरसेन भोजितं निकुम्भतैलेन ततोऽनुवासयेत्॥ ३०॥

इस प्रकार वेगविधारणसे वायुका कोप होता है। वायुके कोपसे विबन्ध और सर्वांगपीडा आदि व्याधियें उत्पन्न होती हैं। ऐसे मनुष्योंको प्रथम उत्तम कल्पना कीहुई खलवर्त्तीको स्नेहसे युक्तकर प्रयोग करना चाहिये। फिर निरूहणकरके जंगली जीवोंके मांसरससे भोजन करावे। तदनन्तर दन्तीसे सिद्ध किये तैलके द्वारा अनुवासन प्रयोग करना चाहिये॥ २९॥ ३०॥

बलाश्वगन्धासहबिल्वचित्रकान् द्विपञ्चमूले कृतमालकोत्पले।

यवान्कुलत्थांश्च पचेज्जलाढके रसः सपेष्यस्तु कलिङ्गकादिभिः।

सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवो हितः सदा नराणां बलवर्धनः परः॥ ३१॥

बला, असगन्ध, बेलकी गिरी, चित्रककी छाल, दशमूल, अमलतास, नीलकमल, यव, कुलथी इन सबको दो दो तोला लेकर एक आढक जलमें पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस क्वाथमें कुटज आदि द्रव्योंका कल्क, तेल, घृत, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे श्रोत्रिय आदि पूर्वोक्त मनुष्योंके रोग दूर होकर बलकी वृद्धि होती है, इन्हीं पूर्वोक्त संपूर्ण द्रव्योंसे सिद्ध किया स्नेह अनुवासन वस्तिमें प्रयोग करनेसे बलकी वृद्धि होती है॥ ३१॥

पुनर्नवैरण्डनिकुम्भचित्रकान् सदेवदारुत्रिवृतानिदिग्धिकाम्।

महान्ति मूलानि च पञ्च तद्भवान्विपाच्य मूत्रे दधिमस्तुसंयुते॥ ३२॥

सतैलसर्पिर्लवणैश्च पञ्चभिर्विमूर्च्छितं वस्तिमथ प्रयोजयेत् ।
तथैव शस्तं मधुकेन साधितं फलेन बिल्वेन शताह्वयाथवा ॥ ३३ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी जड, दंती, चित्रककी छाल, देवदारु, निशोथ, कटेली और वृंहत्पंचमूलका कल्क और क्काथ, दही, मस्तु, तेल, घृत और पांचों नमक मिला सिद्ध कर उचित प्रमाणसे वस्तिप्रयोग करै । इसीप्रकार मुलैठी अथवा विल्वफल वा सौंफके साथ घृत तेल आदि मिलाकर वस्तिप्रयोग करै वा इन्ही द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलसे अनुवासना करना भी हितकारक है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

वालकोंको अनुवासन निरूहण ।

सजीवनीयस्तु रसेऽनुवासने निरूहणे चालवणे शिशोर्हितः ।
न चान्यदाश्वङ्गबलाभिवर्द्धनं निरूहवस्तेः शिशुवृद्धयोः परम् ॥ ३४ ॥

जीवनीयगणके कल्क और मांसरससे सिद्ध कियेहुए तैलसे अनुवासन और इन्हीं द्रव्योंके कल्क, क्काथसे निरूहण करना वालकोंके लिये हितकारी है वालक और वृद्धोंके लिये जीवनी आदि द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई निरूहणवस्तिसे वढकर और कोई शीघ्र अंगवलवर्द्धक प्रयोग नहीं है ॥ ३४ ॥

उपसंहार ।

तत्र श्लोकः--फलकर्मवस्तिवरतत्त्वनिश्चयो वाज्यादीनाम् ।
सततातुराश्च दृष्टाः फलमात्रायां हितश्चैषाम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीचरकसंहितायां सिद्धिस्थाने फलमात्रासिद्धि-
र्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

यहां कहते हैं कि, इस फलमात्रासिद्धि नामक अध्यायमें वमनकारक फलोंमें वा वास्तिकर्ममें मैनफलकी श्रेष्ठता घोडे आदिकोंके लिये वस्तिप्रमाण, राजसेवक आदि मनुष्योंके सदैव रोगग्रस्त रहनेका कारण और उनके लिये हितकारक योग यह सब वर्णन किया है ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसाल-
निवासिवैद्यपञ्चानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-
भाषाटीकायां फलमात्रासिद्धिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः।

अथात उत्तरवस्तिसिद्धिं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः॥

अब हम उत्तरवस्ति सिद्धिनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे॥

शोधनोत्तर क्रिया।

अथ खल्वातुरं वैद्यः संशुद्धं वमनादिभिः।
दुर्बलं कृशमल्पाग्निं मुक्तसन्धानबन्धनम्॥ १॥
निर्हृतानिलविण्मूत्रकफपित्तं कृशाशयम्।
शून्यदेहं प्रतीकारासहिष्णुं परिपालयेत्॥ २॥
यथैव तरुणं पर्णं तैलपात्रं तथैव च।
गोपाल इव दण्डी गाः सर्वस्मादपचारतः॥ ३॥

वमन आदि संशोधनके अनन्तर अर्थात् वमनादिद्वारा रोगीके संपूर्ण दोष निकलकर जो रोगी शुद्धकाय होनेसे दुर्वल, कृश, अल्पाग्नि होगया हो और सन्धियें शिथिल अर्थात् दुवलसी होगई हों, वमन और विरेचनकेद्वारा वायु, विष्ठा, मूत्र, कफ और पित्तके निकलजानेसे आशय कृश होगया हो, मलादिकोंसे देह शून्य होकर वह रोगी औषधको सहन न करसकता हो तो ऐसे रोगीको औषधका प्रयोग न करके केवल सावधानीसे हित पेया, आहार, मांसरस आदिकेद्वारा रोगीका सब प्रकार पालन करता रहे। जैसे तेलसे भरेहुए नये घडेकी यत्नपूर्वक रक्षा कीजाती है और जैसे गोपाल दण्ड ले गौओंके पीछे रहकर उनकी सब प्रकार रक्षा करता है उसी प्रकार ऐसे रोगीकी विधिवत् रक्षा करतेहुए पालन करते रहना चाहिये॥ १-३॥

अग्निसन्दीपनादि क्रम।

अग्निसन्धुक्षणार्थन्तु पूर्वं पेयादिभिर्भिषक्।
रसोत्तरेणैव चरेत्क्रमेण क्रमकोविदः॥ ४॥

इस प्रकार रोगीकी रक्षा रखतेहुए उसके जठराग्निकी वृद्धिके लिये वैद्य प्रथम पेयादिक्रम पालन कराकर फिर मांसरस आदि दीपन और बृंहण द्रव्योंका विधिवत् प्रयोग करे॥

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानि ततोऽम्ललवणौ रसौ।
स्वादुतिक्तौ ततो भूयः कषायकटुकौ ततः॥ ५॥

इस प्रकार रोगीको पहिले चिकने, अम्ल, मधुर और हृदयको प्रिय रस सेवन करावे। फिर अम्ल और लवणरस सेवन करावे फिर स्वादु और तिक्त, उसके अनन्तर कषाय और कटुरसका क्रमपूर्वक धीरे २ सेवन करावे ॥ ५ ॥

अन्योऽन्यप्रत्यनीकानां रसानां स्निग्धरूक्षयोः।
व्यत्यासादुपयोगेन प्रकृतिं गमयेद्भिषक् ॥ ६ ॥
सर्वक्षमो निरासङ्गो रतियुक्तः स्थिरेन्द्रियः।
बलवान् सत्त्वसम्पन्नो विज्ञेयः प्रकृतिं गतः ॥ ७ ॥

इस विधिसे परस्पर विपरीत क्रमसे रोगीको रसोंका सेवन कराना चाहिये। किसी दिन स्निग्ध, किसी दिन रूक्ष, हल्के द्रव्यका सेवन करावे। ऐसे युक्तिपूर्वक धीरे धीरे सावधानीसे रोगीका पालन करते २ क्रमसे वैद्य रोगीको उसकी असली प्रकृतिपर पहुंचा दे जिससे वह सब प्रकारके आहार विहारको सहन करनेलगे और उसकी किसी प्रकारसे अस्थिरता न हो उसको रतियुक्त स्थिर इन्द्रिय बलवान् सत्त्व तथा प्रसन्न मनसे युक्त और शक्तिसंपन्न होनेसे प्रकृतिस्थ जानना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

एतां प्रकृतिमप्राप्तः सर्ववर्ज्यानि वर्जयेत्।
महादोषकराण्यष्टाविमानि तु विशेषतः ॥ ८ ॥

जबतक वह शोधन किया मनुष्य इस विधिसे अपनी असली प्रकृतिपर न पहुंचे तबतक वर्जनीय संपूर्ण आहार विहारोंको त्याग देवे विशेषकर यह आगे कहेहुए आठ व्यापार महादोषको करनेवाले हैं इसलिये इनको अवश्य ही त्यागदेना चाहिये॥८॥

वर्जनीय ८ व्यापार।

उच्चैर्भाष्यं रथक्षोभमतिचंक्रमणासने।
अजीर्णाहितभोज्ये च दिवास्वप्नं समैथुनम् ॥ ९ ॥

बहुत ऊंचा बोलना, रथ आदि हिलनेजुलनेवाली सवारीपर चढना, अधिक भ्रमण करना, बहुत बैठाही रहना, अजीर्णमें भोजन, अहित भोजन, दिनमें सोना और मैथुन करना। यह आठ व्यापार निर्बल रोगीको अवश्य त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥

इनके दोष।

तज्जा देहोर्द्ध्वसर्वाधोमध्यपीडामदोषजाः।
श्लेष्मजाः क्षयजाश्चैव व्याधयः स्युर्यथाक्रमम् ॥ १० ॥

बहुत ऊंचा बोलनेसे देहके उपरके भागमें व्याधियें प्रगट होती है, रथ आदि सवारियोंकी हलचल लगनेसे संपूर्ण शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं, बहुत भ्रमण करनेसे

शरीरके अधोभागमें रोग उत्पन्न होते हैं। अधिक बैठारहनेसे देहके मध्यभागमें रोग होते हैं। अजीर्णमें भोजन करनेसे आंवसे पैदा होनेवाले रोग उत्पन्न होते हैं। अहित भोजन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। दिनमें सोनेसे कफजनित रोग होते हैं और मैथुन करनेसे क्षय जनित रोग होते हैं॥

तेषां विस्तरतो लिङ्गमेकैकस्य सभेषजम्।
यथावत्संप्रवक्ष्यामि सिद्धान्वस्तींश्च यापनान् ॥ ११ ॥

अब इन सब व्याधियोंके विस्तारपूर्वक पृथक् २ लक्षण और चिकित्सा तथा प्रसंगवश सिद्धफलदायक यापनवस्तियोंका वर्णन करते हैं ॥ ११ ॥

उच्चभाषणजनित रोग।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यां शिरस्तापकर्णशंखनिस्तोदस्रोतोऽवरोधमुखताल्वकण्ठशोषतैमिर्य्यपिपासाज्वरतमकहनुमन्याग्रहनिष्ठीवनोरःपार्श्वशूलस्वरभेदहिक्काश्वासादयः स्युः ॥ १२ ॥

शुद्धकाय मनुष्यके उच्च भाषण और अतिभाषण करनेसे शिरमें संताप, कान और कनपटीमें सूई चुभनेकीसी पीडा ऊर्ध्वस्रोतोंका रुकना, मुख, तालु और कण्ठमें शोष होना, तिमिर, प्यास, ज्वर, तमकश्वास, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, वारंवार थूकका आना, छातीम शूल, पार्श्वपीडा, स्वरभंग, हिचकी और श्वास आदि रोग उत्पन्न होते हैं१२

क्षोभजनित रोग।

रथक्षोभात् सन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्णशिरःशूलतोदवह्निविक्षोभाटोपान्त्रकूजनाध्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिक्पार्श्ववंक्षणवृषणकटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवादौर्बल्याङ्गाभितापपादशोफप्रस्वापहर्षणादयः॥

रथ आदि सवारियोंकी हल चलसे संधि और पर्वोंमें शिथिलता, ठोडी, नासिका, कान और शिरमें पीडा और तोद, मंदाग्नि, आटोप, आंतोंका कूजना, अफारा, हृदय और इन्द्रियोंका उपरोध, नितम्ब, पार्श्व, वंक्षण, वृषण, कमर और पीठमें पीडा, संधि, कंधे, गर्दन इनमें दुर्बलता, अंगोंका अभिताप, पावोंमें सूजन, अंगोंका सोना और प्रहर्षण आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

अतिभ्रमणजनित रोग।

अतिचंक्रमणात् पादजंघोरुजानुवंक्षणश्रोणीपृष्ठशूलसक्थिसादनिस्तोदपिण्डीकोद्वेष्टनाङ्गमर्दांसाभितापशिराधमनीहर्षश्वासकासादयः स्युः ॥ १४

अधिक भ्रमण करनेसे पांव, जंघा, ऊरु, जानु, वंक्षण, श्रोणी और पठिमें पीडा नितम्बोंका सुन्नसा होजाना, सूई चुभकनेकीसी पीडा, पिण्डलियोंका उद्वेष्टन, अंगोंका

टूटना, दोनों अंसोंका तपना, शिरा और धमनियोंका हर्षित होना, श्वास और खांसी आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥

अतिबैठनेसे रोग।

अत्यासनाद्रथक्षोभजाः स्फिक्पार्श्ववंक्षणवृषणकटीपृष्ठवेदनादयः स्युः ॥

जो रोग रथ आदिके हलचलसे उत्पन्न होते हैं वही रोग अधिक बैठे रहनेसे होते हैं तथा नितम्ब, पार्श्व, वंक्षण (पेडू), वृषण (फोते), कमर और पीठमें पीडा आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

अजीर्णमें भोजनसे रोग।

अजीर्णाध्यशनाभ्यान्तु मुखशोषाध्मानशूलनिस्तोदपिपासागात्रसाद-
च्छर्द्यतीसारमूर्च्छाज्वरप्रवाहणामविषादयः स्युः ॥ १६ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे और भोजनपर भोजन करनेसे मुखशोष, अफारा, शूल, सूई चुभनेकीसी पीडा, प्यास, अंगोंका सोना, छर्दि, अतिसार, मूर्च्छा, ज्वर, प्रवाहिका और आमविष आदि दारुण रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥

अहितभोजनके दोष।

विषमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलाषदौर्बल्यवैवर्ण्यकण्डूपामागात्रावसाद-
वातादिप्रकोपजाश्च ग्रहण्यर्शोविकारादयः ॥ १७ ॥

विषम और अहित भोजनके करनेसे अन्नमें अरुचि, दुर्बलता, विवर्णता, खुजली, पामा, देहका सोना, वातादि दोषोंके कोपसे उत्पन्न हुए रोग, ग्रहणीरोग और बवासीर आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

दिनमें सोनेके दोष।

दिवास्वप्नादरोचकाविपाकाग्निनाशस्तैमित्यपाण्डुकण्डूपामादाहच्छ-
र्द्यङ्गमर्दहृत्स्तम्भजाड्यतन्द्रानिद्राप्रसङ्गग्रन्थिजन्मदौर्बल्यरक्तमूत्रा-
क्षिताताल्वलेपाः पिपासा च ॥ १८ ॥

दिनमें सोनेसे अरोचक, अन्नका परिपाक न होना, मन्दाग्नि, शरीरका गिलगिलासा होना, पाण्डु, खुजली, पामा, दाह, छर्दि, अंगमर्द, हृदयका स्तम्भ, जडता, तन्द्रा, निद्रा, शरीरमें गांठोंका पैदा होना, दुर्बलता, पेशाबका लाल वर्ण होना, नेत्रोंका लालवर्ण होना तालुमें कफका लेपसा होना और प्यास आदि रोग उत्पन्न होते हैं १८

मैथुनके दोष।

व्यवायादाशुबलसादोरुसादवस्तिशिरोगुदमेढ्रवंक्षणोरुजानुजङ्घापाद-
शूलहृदयस्पन्दननेत्रपीडाङ्गशैथिल्यशुक्रमार्गशोणितष्ठीवितस्वरावसाद-

कटीदौर्बल्यैकाङ्गसर्वाङ्गरोगमुष्कश्वयथुवातवर्चोमूत्रसङ्गशुक्रविसर्ग-जाड्यवेपथुबाधिर्य्यविषादादयः स्युः उत्पाट्यते इव गुदस्ताड्यत इव मेढ्रमवसीदतीव मनोवेपते हृदयं पीड्यन्ते सन्धयः तमः प्रविशति इव च १९

शोधित शरीरवाले निर्बल मनुष्यके मैथुन करनेसे बलका क्षय, ऊरुओंका सुन्नसा होजाना, वस्ति (मूत्राशय), शिर, गुदा, लिंग, वंक्षण, ऊरु, जानु, जंघा और दोनों पार्श्वोंमें पीडाका होना, हृदयका फडकना, नेत्रोंमें पीडा, अंगोंमें शिथिलता, वीर्यके मार्गसे रुधिरका निकलना, खांसी, श्वास, रुधिरका थूकना, स्वरका बैठजाना, कमरमें दुर्बलता, एकांग अथवा सर्वांगगत वातजनित रोगोंका होना, लिंग और फोतोंमें सूजन होना, अधोवात, विष्ठा और मूत्रका विबंध, वीर्यका हरसमय गिरना, जडता, कंप, बधिरता और विषाद (चित्तमें खेद होना) आदि रोग उत्पन्न होते हैं। तथा गुदामें उत्पाटनकीसी पीडा लिंगमें चोट लगनेकीसी पीडा, मनकी अप्रसन्नता हृदयका कांपना, संधियोंमें पीडा, नेत्रोंके आगे अन्धकारसा प्रतीत होना यह उपद्रव होते हैं॥

इत्येवमेभिरभिचारैरेते प्रादुर्भवन्ति उपद्रवाः ॥ २० ॥

इस प्रकार इन आठ प्रकारके अभिचारोंसे शोधनसे दुर्बल हुए मनुष्यके शरीरमें यह पूर्वोक्त उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ २० ॥

उनकी चिकित्सा।

तेषां सिद्धिः उच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानामभ्यङ्गस्वेदोपनाहधूमनस्योपरि-भक्तस्नेहपानरसक्षीरादिभिर्वातहरः सर्वो विधिर्मौनञ्च ॥ २१ ॥

ऊंचे बोलनेसे और अधिक बोलनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनमें अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम, नस्य और भोजनके अनन्तर घृतादि स्नेहोंका पान करना, वात-नाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये मांसरस और दूध पीना, संपूर्ण वातनाशक विधियोंका सेवन करना और मौन (चुप) रहना हितकारी है ॥ २१ ॥

रथक्षोभातिचंक्रमणात्यासनजानां स्नेहस्वेदादिवातहरं कर्म सर्वं निदा-नवर्जम् ॥ २२ ॥

रथ आदि सवारियोंकी हलचलसे और अत्यंत भ्रमणसे वा अधिक बैठे रहनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें स्नेहन और स्वेदन आदि संपूर्ण वातनाशक कर्म करना और रोगोत्पादक हेतुओंको त्याग देना हितकारक है ॥ २२ ॥

अजीर्णाध्यशनजानां निरवशेषतश्छर्दनं रूक्षस्वेदधूमपानलङ्घनीयपाच-नीयदीपनीयौषधावचारणञ्च ॥ २३ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे और भोजन कियेपर भोजन करनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें निःशेष वमन कराना, रूक्ष स्वेद, धूमपान, लंघन पाचन और दीपन औषधियोंके सेवन करना हितकारक है ॥ २३ ॥

विषमाहिताशनजानां यथास्वं दोषक्रियाः ॥ २४ ॥

विषम भोजन और आहित भोजनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें उन रोगोंको दूर करने-वाली दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

दिवास्वप्नजानां धूमपानलङ्घनवमनशिरोविरेचनव्यायामरूक्षाशनादि-दीपनीयौषधोपयोगः।प्रकर्षणोन्मर्दनपरिषेचनादिश्च श्लेष्महरः सर्वोविधिः॥

दिनमें सोनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें धूमपान, लंघन, वमन, शिरोविरेचन, व्यायाम, रूक्ष भोजन आदि सेवन करना तथा दीपनीय औषधियोंका प्रयोग हितकारी है। और लंघन, उद्वर्त्तन, परिषेचन आदि कफनाशक संपूर्ण विधियोंका सेवन करना चाहिये॥

मैथुनजानां जीवनीयसिद्धयोः क्षीरसर्पिषोरुपयोगः । तथा वातहराः स्वेदाभ्यङ्गोपनाहा वृष्याश्चाहाराः स्नेहास्नेहविधयो यापनावस्तयोऽ-नुवासनञ्च । मूत्रवैकृतवस्तिशूलेषु च उत्तरवस्तिः । विदारीगन्धादि-गणजीवनीयगणक्षीरसंसिद्धं तैलं स्याद्यापनाश्च वस्तयः सर्वकालं देयास्तानुपदेक्ष्यामः ॥ २६ ॥

मैथुनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें जीवनीय द्रव्योंसे सिद्धकिये दूध और घृतका प्रयोग करना तथा वातनाशक स्वेद, अभ्यंग और उपनाह प्रयोग करना, वृष्य (वीर्यव-र्द्धक) आहारका सेवन करना, स्नेहपान करना, स्नेहविधिका सेवन करना, यापन और अनुवासनवस्तिका प्रयोग करना हितकारक है। यदि मैथुनसे मूत्रमें विकृति और वस्तिशूल आदि विकार हों तो उत्तरवस्तिका प्रयोग करे। शालपर्ण्यादिगण और जीवनीयगण तथा दूधके साथ सिद्धकिये तैल और यापनवस्तिका सब काममें प्रयोग करना हितकारक है। अब आगे उन यापनवस्तियोंका वर्णन करते हैं॥ २६ ॥

यापनवस्तिके योग।

मुस्तोशीरबलारग्वधरास्नामञ्जिष्ठाकटुरोहिणीत्रायमाणापुनर्नवाविभी-तकगुडूचीस्थिरादिपञ्चमूलानि पलिकानि खण्डशः कॢप्तानि अष्टौ च मदनफलानि प्रक्षाल्य जलाढके परिक्काथ्य पादशेषे रसः क्षीरद्विप्रस्थ-सयुक्तः पुनः श्रृतः क्षीरावशेषस्तुल्योजाङ्गलरसमधुघृतः शतकुसुम-

मधुककुटजफलरसाञ्जनप्रियङ्गुकल्कीकृतः ससैन्धवः सुखोष्णवस्तिः शुक्रमांसवलजननः क्षतक्षीणकाशगुल्मशूलविषमज्वरबध्नकुण्डलोदावर्त्तकुक्षिशूलमूत्रकृच्छ्रासृग्दरजोविसर्पप्रवाहिकाशिरोरुजाजानूरुजङ्घावस्तिग्रहाश्मर्य्युन्मादार्शःप्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्लेष्मव्याधिहरः सद्योबलजननो रसायनश्चेति ॥ २७ ॥

नागरमोथा, खस, अमलतास, रास्ना, मंजीठ, कुटकी, त्रायमाण, पुनर्नवा बहेडा, गिलोय और शालपर्णी आदि पंचमूलकी पांच औषधि यह सब अलग २ एकएक पल लेवे। मैनफल ८ पल इन सबके छोटे २ टुकडे करके जलसे धोडाले फिर एक आढक जलमें पकावे। जब चौथा भाग शेष रहे तब उतारकर छानले फिर इसमें दो प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे। जब दूध मात्र शेष रहे तब उतारकर उसमें दूधके बराबर जंगली जीवोंका मांसरस मिलावे तथा शहद, घृत मिलावे और इसमें सोंफ, मुलैठी, इन्द्रयव, रसौत, फूलप्रियंगू और सेंधेनमकका कल्क मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए वस्तिप्रयोग करे। इस वस्तिके प्रयोगसे वीर्य, मांस और बलकी वृद्धि होती है तथा यह वस्तियोग क्षतक्षीण, खांसी, गुल्म, शूल, विषमज्वर, ब्रध्न (बध), वातकुण्डल, उदावर्त, कुक्षिशूल, मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रदर, विसर्प, प्रवाहिका, मस्तकपीडा, जानु, जंघा, ऊरु और वस्तिकी पीडा, पथरी, उन्माद, बवासीर, प्रमेह, अफारा, रक्तपित्त और कफकी व्याधियोंको हरनेवाली है तथा शीघ्र बलको देनेवाली और रसायन है ॥ २७ ॥

एरण्डमूलपलाशात्षट्पलं शालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकागोक्षुरकारास्नाश्वगन्धागुडूचीवर्षाभूआरग्वधदेवदार्वितिपलिकानि खण्डशः क्लृप्तानि फलानि चाष्टौ प्रक्षाल्य जलाढके क्षीरपादे पचेत् । पादशेषं कषायं पूतं शतकुसुमादिकुष्ठमुस्तपिप्पलीहपुषाबिल्ववचावत्सकफलरसाञ्जनप्रियङ्गुयमानिसंक्षेपकाल्कितं मधुघृततैलसैन्धवयुक्तं सुखोष्णं निरूहमेकं द्वौ त्रीन्वा दद्यात् । सर्वेषां प्रशस्तो विशेषतो ललितसुकुमारक्षतक्षीणस्थविरचिरार्शसामपत्यकामानाञ्च ॥ २८ ॥

एरण्डकी जड ६ पल, ढाककी कच्ची फलियें ६ पल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सफेद पुनर्नवा, अमलतास और देवदारु यह प्रत्येक एकएक पल लेवे। मैनफल ८ पल लेवे इन सबके छोटे २ टुकडेकर गरमजलसे धोलेवे। फिर इनको थोडा २ कूटकर ४ सेर पानी और १ सेर

दूध मिलाकर पकावे। जब सवासेर बाकी रहे तो उतारकर छानलेवे। फिर इसमें सौंफ, कूठ, नागरमोथा, पीपल, हाउवेर, बेलकी गिरी, वच, इन्द्रयव, रसौत, मैनफल, फूलप्रियंगू और अजवायन यह प्रत्येक नौ नौ मासे लेकर कल्क बनावे। यह कल्क शहद, घृत, तेल और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए निरूहणवस्ति करे। इसके निरूहण प्रयोग एक अथवा दो वा तीन बार भी किये जाते हैं यह वस्ति सब प्रकारके मनुष्योंके लिये श्रेष्ठ है। और विशेषकर सुकुमार, ललित, क्षत क्षीण, वृद्ध और पुराने बवासीरवाले रोगीको हितकारी है तथा संतानकी इच्छावाले मनुष्यको विशेषकर हितकारी है ॥ २८ ॥

सहचरबलामूर्वामूलशारिवासिद्धेन पयसा तथा बृहतीकण्टकारीशतावरीच्छिन्नरुहाश्रृतेन पयसा मधुकमदनपिप्पलीकल्ककृतेन पूर्ववद्वस्तिः ॥

काला वांसा, बला, मूर्वा और शारिवाकी जडसे सिद्धकिये दूधमें अथवा बडी कटेली, छोटी कटेली, शतावर और गिलोयसे सिद्ध किये दूधमें मुलैठी, मैनफल और पीपलका कल्क तथा शहद, तेल, घृत और सेंधानमक मिला पूर्वोक्त रीतिसे वस्तिप्रयोग करे ॥ २९ ॥

तथा बलातिबलाविदारीशालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकादर्भमूलयवकाश्मर्य्यबिल्वमदनफलसिद्धेन पयसा मधुकमदनकल्कीकृतेन मधुघृतसौवर्चलयुक्तेन कासज्वरगुल्मप्लीहार्दितस्त्रीमद्यक्लिष्टानां सद्यो बलजननो रसायनश्च ॥ ३० ॥

बला, नागबला, विदारीकंद, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, डाभकी जड, यव, कुंभेरके फल, बेलकी गिरी और मैनफलसे सिद्ध किया दूध मुलैठी और मैनफलका कल्क मिलाकर तथा शहद, घृत और संचरनमक मिलाकर यापनवस्ति करे। यह वस्ति ज्वर, खांसी, गुल्म, प्लीहा, अर्दितरोग, स्त्रीसंगसे क्षीणहुए मनुष्योंको, स्त्रियोंको, मद्यसे थकेहुए मनुष्यको शीघ्र बलको देनेवाली और रसायन है ॥ ३० ॥

तथा बलातिबलारास्नारग्वधमदनबिल्वगुडूचीपुनर्नवैरण्डाश्वगन्धासहचरपलाशदेवदारुद्विपञ्चमूलानि पलिकानि यवकोलकुलत्थाद्विप्रसृतं शुष्कमूलकानाञ्च जलद्रोणसिद्धं निरूहप्रमाणं शेषं कषायं पूतं मधुकमदनशतपुष्पाकुष्ठपिप्पलीवचावत्सकफलरसाञ्जनप्रियंगुयमानीकल्कीकृतं गुडघृततैलक्षौद्रक्षीरमांसरसाम्लकाञ्जिकसैन्धवयुक्तं सुखोष्णं

वस्तिं दद्यात्। शुक्रमूत्रवर्चःसङ्गेऽनिलजे गुल्महृद्रोगाध्मानब्रध्नपार्श्व-पृष्ठकटीग्रहसंज्ञानाशबलक्षयेषु च ॥ ३१ ॥

बला, अतिबला, रास्ना, अमलतास, मैनफल, बेलकी गिरी, गिलोय, पुनर्नवा, एरण्डकी जड, असगंध, पीयावांसा, पलाशकी फलियें, देवदारु, दशमूलकी दश औषधियें यह सब एकएक पल लेवे। जौ, बेर और कुल्थी यह चारचार पल लेवे। सूखी मूली चार पल लेवे। इन सबको १६ सेर जलमें पकावे। दो सेर जल शेष रहनेपर अथवा जितना निरूहणके लिये प्रयोग करना हो उतना बाकी रहनेपर उतार कर छानलेवे। फिर इसमें मुलैठी, मैनफल, सौंफ, कूठ, पीपल, वच, इन्द्रयव, रसौत फूलप्रियंगु और अजवायन इन सबको नौ नौ मासे लेकर कल्क बनावे। यह कल्क तथा गुड, घृत, तेल, शहद, दूध, मांसरस, खट्टी कांजी और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति शुक्र, मूत्र और मलके विबंधको दूर करती है तथा वातजनित गुल्म, हृद्रोग, अफारा, ब्रध्न (बध), पार्श्वपीडा पीठ और कमरकी जकडन, संज्ञानाश और बलक्षय इन सबमें हितकारी है ॥ ३१ ॥

हपुषार्द्धकुडवाद्विगुणार्द्धक्षुण्णयवः क्षीरोदकसिद्धः क्षीरशेषो मधु घृत-तैललवणयुक्तः सर्वाङ्गविसृतवातरक्तसक्तविण्मूत्रस्त्रीखेदितहितो वात-हरो बुद्धिमेधाग्निबलजननश्च ॥ ३२ ॥

हाउबेर दो पल, अधकुटे यव ४ पल इन दोनोंको २ सेर दूध और ६ सेर जल मिलाकर पकावे। दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर इस दूधमें शहद घृत तेल और लवण मिलाकर वस्तिप्रयोग करे तो सर्वांगमें फैलाहुआ वातरक्त, विष्ठा और मूत्रका विबंध तथा स्त्रीसंगसे उत्पन्नहुई क्षीणता दूर होती है। यह वस्ति वायुको हरनेवाली तथा बुद्धि, मेधा, अग्नि और बलको बढानेवाली है ॥ ३२ ॥

ह्रस्वपञ्चमूलकषायः क्षीरोदकसिद्धः पिप्पलीमधुकमदनकल्कीकृतः सगुडघृततैललवणः क्षीणविषमज्वरकार्षितस्य वस्तिः ॥ ३३ ॥

दूध २ सेर, जल ४ सेर, लघु पंचमूलकी औषधियें १० पल इन सबको मिलाकर पकावे। दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। फिर इस दूधमें पीपल, मुलैठी और मैनफलका कल्क मिला तथा गुड, घृत, तेल और लवण मिलाकर वस्ति प्रयोग करे यह वस्ति क्षीणता और विषमज्वरसे कृशहुए मनुष्योंके लिये हितकारक है॥३३॥

बलातिबलापामार्गात्मगुप्ताष्टपलार्द्धक्षुण्णयवाञ्जलिकषायः पूर्वव-द्वस्तिः स्थविरदुर्बलक्षीणशुक्राणां पथ्यतमः ॥ ३४ ॥

बला, अतिबला, पुटखण्डेके बीज, कौंचके बीज यह प्रत्येक दो दो पल, अधकुटे यव ४ पल । इन सबको लेकर पूर्वोक्त रीतिसे दूध सिद्ध करे और उस दूधमें पीपल आदिका कल्क और गुड, घृत आदि सब पूर्व कहेहुए द्रव्योंको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति वृद्ध, दुर्बल और क्षीणवीर्य मनुष्योंके लिये अत्यंत पथ्य अर्थात् हितकारी है ॥ ३४॥

बलामधुकविदारीदर्भमूलमृद्वीकायवैः कषायमाजेन पयसा पक्त्वा मधुकल्कितं समधुघृतसैन्धवं ज्वरार्त्तेभ्यो वस्तिं दद्यात् ॥ ३५ ॥

बला, मुलैठी, विदारीकंद, कुशाकी जड और यव इनको दूध और जलके साथ सिद्धकिये क्काथमें मुलैठीका कल्क, शहद, घृत और सेंधानमक मिला ज्वरसे कृशहुए मनुष्यको वस्तिप्रयोग करना चाहिये ॥ ३५ ॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाश्मर्य्यपरूषकखर्जूरफलमधूकपुष्पैर-जाक्षीरजलप्रस्थाभ्यां सिद्धः कषायः पिप्पलीमधुकोत्पलकल्कितः सघृतसैन्धवः क्षीणेन्द्रियविषमज्वरकर्षितस्य वस्तिः शस्तः ॥ ३६ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, गोखरूकी जड, कुंभेरके फल, फालसे, खजूर, मैनफल, महुएके फूल इन सबको एकएक पल लेकर २ सेर बकरीका दूध और ६ सेर जल मिलाकर पकावे । २ सेर शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस दूधमें पीपल, मुलैठी और नीलकमलका कल्क, घृत और सेंधानमक मिलाकर क्षीणेन्द्रिय और विषम-ज्वरसे कृशहुए मनुष्यको वस्ति देना हितकारी है ॥ ३६ ॥

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलेन शालिषष्टिकयवगोधूममाषकषायपञ्चप्रसृ-तेन छागपयःशृतं पादशेषं कुक्कुटाण्डरससममधुघृतशर्करासैन्धवसौ-वर्चलयुक्तो वस्तिर्वृष्यतमो बलवर्णजननश्च ॥ ३७ ॥

स्थिरादि पांचमूलकी पांचों औषधियें पांचपल, शालीचावल, साठीचावल, यव और गेहूं इन सबका क्काथ २ सेर, बकरीका दूध १ सेर, जल २ सेर इसमें पूर्वोक्त स्थिरादि पंचमूलकी पांच पल औषधियोंको पकावे दूध मात्र शेष रहनेपर उतार कर छान ले । फिर इसमें मुर्गेके अण्डोंका रस, शहद, घृत, खांड, सेंधानमक और संचरनमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति अत्यंत वृष्य अर्थात् वीर्यवर्द्धक और बलको बढानेवाली है ॥ ३७ ॥

कल्पश्चैषां शिखिगोनर्दहंसाण्डरसे स्यात् ॥ ३८ ॥

शालपर्णी आदि वस्तिप्रयोगोंमें मुर्गेके अण्डेके बदलेमें मोर, हंस और सारसके अण्डोंकी कल्पना करनेसे भी अत्यंत वृष्यता और वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ३८ ॥

सतित्तिरिः समयूरो राजहंसपञ्चमूलीपयःसिद्धं शतकुसुममधुकरास्ना-कुटजफलापिप्पलीकल्कः घृततैलगुडसैन्धवयुक्तो वस्तिर्बलवर्णशुक्र-जननो रसायनश्च ॥ ३९ ॥

शालपर्णी आदि पंचमूलको दूध और जलमें पकाकर क्वाथ करे। दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस दूधमें तीतर, मोर और राजहंस इनमेंसे किसी एकका मांसरस तथा सौंफ, मुलैठी, रास्ना, इन्द्रयव और पीपलका कल्क, घी, तैल, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे बल, वर्ण और वीर्यकी वृद्धि होती है तथा आयु बढती है ॥ ३९ ॥

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरससिद्धं पयः पादशेषं पिप्पलीमधूकरास्नामदनम-धुकल्कशर्करामधुघृतयुक्तं स्त्रीष्वतिकामानां बलजननो वस्तिः ॥ ४० ॥

दोनों पंचमूल और मुर्गेके मांसरससे सिद्धकिये दूधमें पीपल, महुएके फूल, रास्ना, मैनफल और मुलैठीका कल्क, खांड, शहद और घृत मिलाकर वस्ति करनेसे स्त्रीसंगकी अत्यन्त इच्छा रखनेवाले मनुष्यके शरीरमें बलकी वृद्धि होती है ॥४०॥

मयूरमद्गुपित्तपक्षपादास्यान्त्रं त्यक्त्वा स्थिरादिभिः पलिकैः सह जले पयसि पक्त्वा क्षीरशेषं मदनविदारीशतकुसुममधुककल्कीकृतं मधु-घृतसैन्धवयुक्तं वस्तिं दद्यात्स्त्रीष्वतिप्रसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्यो हितो बल-वर्णकरः ॥ ४१ ॥

मोर व मद्गुका पित्ता, पांव, नेत्र और आंत आदिको त्यागकर केवल मांस और हड्डी आदि लेवे। यह मांस और शालपर्ण्यादि पंचमूलकी औषधियें ५ पल, दूध १ सेर, जल ३ सेर इनको पकाकर दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर उस दूधमें मैनफल, विदारीकन्द, सौंफ और मुलैठीका कल्क तथा शहद, घृत और सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे यह वस्तियोंमें अत्यन्त प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय मनुष्यको अत्यन्त हितकारी तथा बल और वर्णको बढानेवाली है ॥ ४१ ॥

कल्पश्चैष विष्किरप्रतुदप्रसहाम्बुचरेषु स्यादक्षीरोरोहितादिषु च मत्स्येषु च ॥ ४२ ॥

इसी प्रकार मोरके बदलेमें विष्किरपक्षी, प्रतुदपक्षी, गृध्र आदि प्रसहपक्षी और जलचर जीवोंके मांसरससे प्रयोग किया जाता है (परन्तु रोहू मछलीका मांस डालकर यदि यापनवस्ति सिद्ध कीजाय तो उसमें दूध न डालकर केवल मांसरससे ही पूर्वोक्त रीतिसे वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि रोहू आदि मछलियोंका मांस और दूध मिलनेसे रक्त दूषित होकर कुष्ठादि रोग उत्पन्न होते हैं) ॥ ४२ ॥

गोधानकुलमार्जारमूषिकशल्लकमांसानां दशपलान्भागान् सपञ्चमूलान्पयसि पक्त्वा तत्पयः पिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलशर्करामधुघृततैलयुक्तो वस्तिर्बल्यो रसायनः क्षीणक्षतस्य सन्धानकरो मथितोरस्करथगजहयभग्नवातबलासकप्रभृत्युदावर्त्तवातसक्तमूत्रवर्चःशुक्राणां हिततमश्च ॥ ४३ ॥

गोह, नकुल, बिलाव, मूसा और सेह इन सबका मांस दश पल, शालपर्णी आदि पंचमूल दश पल, दूध २ सेर, जल ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर इसमें पीपल और मैनफलका कल्क सेंधानमक, संचरनमक, खांड, शहद, घृत और तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति बलवर्द्धक और रसायन (आयुर्वर्द्धक) है तथा क्षीण और क्षत रोगीके छातीके घावोंको भरदेनेवाली यक्ष्मा आदि रोगोंसे जिनकी छाती मथित होगई है अथवा रथ, हाथी, घोडे आदिकी सवारीसे जिनका देह भग्न होगया है, जिनको वातबलासक प्रभृति वातकफके रोग हैं तथा उदावर्त वायुसे मल, मूत्र और वीर्यकी विबन्धता हो उनके लिये यह वस्ति अत्यन्त हितकारक है ॥ ४३ ॥

कूर्मादीनामन्यतमपिशितसिद्धं पयो गोवृषनागहयनक्रहंसकुक्कुटाण्डरसमधुघृतशर्करासैन्धवेक्षुरकात्मगुप्तफलकल्कसंसृष्टो वस्तिर्वृद्धानामपि बलजननः ॥ ४४ ॥

कच्छू आदि जलचर जीवोंके मांससे सिद्ध किया दूध और हाथी घोडे आदिका मांसरस तथा मगर, मच्छ, हंस और मुर्गेके अण्डोंका शोरुवा शहद, घृत, खांड सेंधानमक ईखका रस और कौंचके बीजोंका कल्क मिलाकर वस्ति करनेसे वृद्ध मनुष्योंमें भी युवा पुरुषके समान बल आजाता है ॥ ४४ ॥

गोवृषबस्तवराहवृषणकर्कटचटकासिद्धं क्षीरमुच्चटकेक्षुरकात्मगुप्तामधुघृतयुतं किञ्चिल्लवणितं वस्तिः ॥ ४५ ॥

गौका दूध और बैल, बकरा तथा वराहके फोते, कर्कट और चिडेका मांस और जल मिलाकर सिद्धकिया हुआ दूध, उटंगनके बीज, तालमखाने, कौंचके बीज, शहद, घृत और किंचित् नमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करना अत्यन्त वाजीकरण अर्थात् वीर्यवर्द्धक और कामोत्पादक होता है ॥ ४५ ॥

कर्कटकरसश्चटकाण्डरसयुक्तः समधुघृतशर्करो वस्तिरित्येते वस्तयः परमवृष्याः ॥ ४६ ॥

कर्कट (समुद्रमें होनेवाला केंकडा) का मांसरस और चिडियोंके अण्डोंका रस, शहद, घृत और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ४६ ॥

उच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ताशृतक्षीरप्रतिभोजनानुपानात् स्त्रीशतगामिनं नरं कुर्य्युः ॥ ४७ ॥

उटंगनके बीज, तालमखाने और कौंचके बीज इन सबको मिलाकर सिद्धकिया दूध पीनेसे अथवा भोजनके अनन्तर अनुपान करनेसे पुरुषोंको सौ स्त्रियोंसे गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होजाती है ॥ ४७ ॥

दशमूलमयूरहंसकुक्कुटक्काथात्पञ्चप्रसृतं तैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृतयुक्तं शतपुष्पामुस्तहपुषाकल्कीकृतः सलवणो वस्तिः पादगुल्फोरुजानुजङ्घात्रिकवंक्षणवस्तिवृषणानिलहरः ॥ ४८ ॥

दशमूल और मोरका मांस अथवा मोरके मांसके बदलेमें हंस या मुर्गेका मांस इन सबको मिलाकर क्काथ करे। यह क्काथ दश पल लेकर उसमें तेल, घी, चर्वी और मज्जा इन चारोंको दो दो पल मिलावे। फिर इसमें सौंफ, मोथा और हाउबेरका कल्क तथा सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे पांव, गुल्फ, ऊरु, जानु, जंघा, त्रिकस्थान, वंक्षण, मूत्राशय और फोतोंमें स्थितहुआ वायु अथवा वातजनित रोग दूर होकर शरीरमें वल और वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ४८ ॥

मृगविष्किरानूपविलेशयानामेतेनैव कल्पेन वस्तयो देयाः ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार हिरण, विष्किरपक्षी, अनूपसंचारी जीव और विलेशय जीवोंके मांस, रससे वस्तियोंकी कल्पनाकर प्रयोग करनेसे वल, वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ४९ ॥

मधुघृतद्विप्रसृतं तुल्योष्णोदकं शतपुष्पार्द्धपलं सैन्धवार्द्धाक्षयुक्तो वस्तिर्दीपनो बृंहणो बलवर्णकरो निरुपद्रवो वृष्यतमो रसायनः। क्रिमिकुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोब्रध्नप्लीहमेहहरः ॥ ५० ॥

शहद और घृत २ प्रसृत (४ पल), गर्मजल २ प्रसृत, सौंफका कल्क आधा पल, सेंधानमक ६ माशे इन सबको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति दीपन, बृंहण, बलवर्णकारक, उपद्रवरहित, वीर्यवर्द्धक और आयुको बढानेवाली है तथा कृमि, कुष्ठ, उदावर्त्त, गुल्म, बवासीर, बद, प्लीहा और प्रमेहको दूर करनेवाली है ॥ ५० ॥

तद्वत्समधुघृताभ्यां पयस्तुल्यो वस्तिः पूर्वकल्केन बलवर्णकरो वृष्यतमो निरुपद्रवो वस्तिमेढ्रपाकपरिकर्तिकामूत्रकृच्छ्रपित्तव्याधिहरो रसायनश्च ॥ ५१ ॥

इसी प्रकार शहद और घृत चार पल दूध चार पल, मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति बल और वर्णकर्ता, अत्यन्त वृष्य, उपद्रवरहित तथा वस्तिदाह, मेढ्र (लिंग) का पकना, परिकर्त्तिका, मूत्रकृच्छ्र और पित्तजनित व्याधिको हरनेवाली और आयुवर्द्धक है ॥ ५१ ॥

मधुघृताभ्यां मांसरसतुल्यो मुस्ताक्षयुक्तः पूर्ववद्वस्तिर्बलासपादहर्ष-गुल्मजानूरुनिकुञ्चनवस्तिवृषणमेढ्रपृष्ठशूलहरः ॥ ५२ ॥

शहद और घृत चार पल, मांसरस चार पल, मोथेका कल्क एक तोला इन सबको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति कफ, पादहर्ष, गुल्म, जानु और ऊरुओंका सिकुडना तथा मूत्राशय, फोते, लिंग और पीठकी पीडाको दूर करती है ॥ ५२ ॥

सुरासौवीरकुलत्थमांसरसमधुघृततैलसप्तप्रसृतं सुस्तशताह्वाकल्कितं सलवणो वस्तिः सर्ववातरोगहरः ॥ ५३ ॥

सुरा, सौवीरक, कुलथी, मांसरस, शहद, घृत, तेल इन सातोंको मिलाकर १४ पल लेवे फिर इसमें मोथा और सौंफका कल्क तथा सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति संपूर्ण वातजनित रोगोंको दूर करती है ॥ ५३ ॥

तथा द्विपञ्चमूलत्रिफलाबिल्वमदनफलकषायो गोमूत्रसिद्धः कुटजः मदनफलमुस्तपाठाकल्कितः सैन्धवयावशूकक्षौद्रतैलयुक्तो वस्तिः श्लेष्मव्याधिवस्त्याटोपवातशुक्रसंगपाण्डुरोगाजीर्णविषूचिकालसकेषु देय इति ॥ ५४ ॥

दशमूलकी दश औषधियें, हरड, बहेडे, आँवले, बेलगिरी और मैनफलको गोमूत्रमें पकाकर क्वाथ बनावे। फिर इसमें इन्द्रयव, मैनफल, नागरमोथा और पाढका कल्क तथा सेन्धानमक, जवाखार, शहद और तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करे तो यह वस्ति कफजनित व्याधि मूत्राशयका अफारा अधोवायु और वीर्यका विबंध, पाण्डुरोग, अजीर्ण, विषूचिका और अलसक आदि रोगोंको दूर करती है ॥ ५४ ॥

अतिवृष्य स्नेहयोग।

अत ऊर्ध्वं वृष्यतमान् स्नेहान् वक्ष्यामः ॥ ५५ ॥

अब हम अत्यन्त वीर्यवर्द्धक अनुवासनीय स्नेहोंका वर्णन करते हैं ॥ ५५ ॥

शतावरीगुडूचीक्षुविदार्य्यामलकद्राक्षाखर्जूराणां यन्त्रपीडितानां रस-प्रस्थमेकैकं तद्वद्घृततैलगोमहिष्यजाक्षीराणां द्वौ द्वौ दद्यात्। जीव-कर्षभकमेदामहामेदात्वक्क्षीरीश्रृङ्गाटकमधूलिकामधुकोच्चटकापिप्प-

लीपुष्करबीजनीलोत्पलकदम्बपुष्पपुण्डरीककेशरकल्कान्पृषततरक्षुमांसकुक्कुटचटकचकोरमत्ताक्षबर्हिजीवञ्जीवककलिङ्गहंसानां रसं वसामज्जादेश्च प्रस्थं दत्त्वा साधयेत्। ब्रह्मघोषशंखपटहभेरीनिनादैः सिद्धं सितच्छत्रकृतच्छायं गजस्कन्धमारोपयेद्भगवन्तं वृषध्वजमभिपूज्य तं स्नेहं त्रिभागमाक्षिकमङ्गलाशीःस्तुतिदेवतार्चनैर्वस्तिं गमयेत्। नृणां स्त्रीविहारिणां नष्टरेतसां क्षतक्षीणविषमज्वरार्त्तानां व्यापन्नयोनीनां वन्ध्यानां रक्तगुल्मिनीनां मृतापत्यानामनार्त्तवानाञ्च स्त्रीणां क्षीणमांसरुधिराणां पथ्यतमरसायनमुत्तमं वलीपलितनाशनं विद्यात् ५६

शतावरका रस, गिलोयका रस, ईखका रस, विदारीकन्दका रस, आँवलेका रस, दाखका रस और खजूरका रस यह प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेवे। घृत एक प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, गौका दूध २ प्रस्थ, भैंसका दूध २ प्रस्थ, बकरीका दूध २ प्रस्थ लेवे। तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, वंशलोचन, सिंहाडे, मधूलिका, मुलैठी, उटंगणके बीज, पीपल, कमलगट्टे, नीलकमल, कदंबके फूल, प्रपौंडरीक और नागकेशर यह सब दो दो कर्ष लेवे। पृषतमृग, तरफ, मुर्गा, चिडा, चकोर, मत्ताक्ष, मोर, जीवनजीवक, कुलिंग और हंसके मांसका रस, चर्बी, मज्जा आदिके सब एक एक प्रस्थ लेवे फिर उपरोक्त सब द्रव्योंको एकत्रित कर पकावे। जब पकते २ स्नेह सिद्ध होनेपर आवे तो वेदपाठ, शंखध्वनि, पटह और भेरियोंका शब्द करे जब स्नेह सिद्ध होजाय तब उसको उत्तम वस्त्रमें छानकर उत्तम पात्रमें राजाओंके योग्य श्वेत छत्र उस स्नेहके ऊपर धारणकर हाथीके ऊपर स्नेहको लेकर चढे फिर भगवान् शिवका पूजन करके उत्तम स्थानमें इस स्नेहसे तीसरा भाग शहद मिलावे फिर इसका वस्तिप्रयोग करनेसे स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति होती है, तथा यह स्नेह वस्ति नष्टवीर्य, क्षतक्षीण और विषमज्वरवालोंके लिये अत्यन्त हितकारी है। तथा योनिरोगवाली स्त्री, वन्ध्या स्त्री, रक्तगुल्मवाली स्त्री, मृतवत्सा, जिन स्त्रियोंको यथोचित मासिक रज नहीं होता तथा जो मनुष्य क्षीणमांस और क्षीणरक्त हैं उन सबके लिये यह स्नेहवस्ति अत्यन्त हितकारी रसायन, वलीपलितनाशक और पुष्टकारक है॥ ५६ ॥

बलादि वृष्यस्नेह।

बलागोक्षुरकरास्नाश्वगन्धाशतावरीसहचराणां शतं शतमायोज्य जलद्रोणशते प्रसाध्य तस्मिञ्जलद्रोणशेषे रसे वस्त्रपूते विदार्य्यामलकस्वरसयोर्वस्तमहिषवराहवृषकुक्कुटबर्हिहंसकारण्डवसारसानां घृततैलयो-

श्चैकं पृथक्प्रस्थं अष्टौ प्रस्थान् क्षीरस्य दत्त्वा चन्दनमधुकमधूलिका-त्वक्क्षीरीबिसमृणालोत्पलपटोलफलात्मगुप्तान्नपाकितालमज्जकखर्जूरमृद्वीकातामलकीकण्टकारीजीवकर्षभकक्षुद्रसहामहासहाशतावरी-मेदापिप्पलीह्रीबेरत्वक्पत्रकल्कांश्च दत्त्वा साधयेत् । ब्रह्मघोषादिना विधिना तत्सिद्धं वस्तिमादद्यात् । तेन स्त्रीशतं गच्छेन्न चात्रास्ते विहार-यन्त्रणा क्वचित् । एष वृष्यो वर्ण्यो बृंहण आयुष्यो वलीपलितनुत् । क्षतक्षीणनष्टशुक्रविषमज्वरार्त्तानां व्यापन्नयोनीनाञ्च पथ्यतमः ॥ ५७ ॥

बला, गोखरू, रास्ना, असगन्ध, शतावर और पीयावांसा इन सबको सौ सौ पल लेकर सौ द्रोण जलमें पकावे । जब १ द्रोण बाकी रहे उतारकर छानले फिर इसमें विदारीकन्दका रस १ प्रस्थ, आँवलेका रस १ प्रस्थ तथा बकरा, भैंसा, वराह, वृष, मुर्गा, मोर, हंस, चकवा और सारसके मांसका रस एक एक प्रस्थ लेवे । घृत एक प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ लेवे । तथा लालचन्दन, मुलैठी, मधूलिका, वंशलोचन, भिस, कमलकी डण्डी, नीलकमल, पटोलपत्र, मैनफल, कौंचके बीज, अन्नपाकी, तालकी मज्जा, खजूर, दाख, कटेली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतावर, मेदा, पीपल, नेत्रवाला, दालचीनी और तेजपत्र इन सबके कल्क १ कुडव मिलाकर स्नेह सिद्ध करे । इस स्नेहमें भी पूर्वके समान वेदध्वनि आदि करना चाहिये । फिर स्नेहसे तीसरा भाग शहद मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । इस वस्तिके प्रयोगसे मनुष्य सौ स्त्रियोंमें गमन करसकता है और इसमें किसी प्रकारके आहार विहारका भी विशेष नियम नहीं रखना पडता । यह स्नेहन वीर्यवर्द्धक, वर्णकारक, शरीरको पुष्ट करनेवाला, आयुवर्द्धक, सलवट और सफेद बालोंको दूर करनेवाला है । तथा क्षत, क्षीण, नष्टवीर्य और विषमज्वरसे पीडित मनुष्योंको तथा योनिरोगवाली स्त्रियोंको अत्यन्त पथ्य है ॥ ५७ ॥

सहचरादिरसायन स्नेह ।

सहचरपलशतमुदकद्रोणचतुष्टये पक्त्वा द्रोणशेषे रसे सुपूते विदारी-क्षुरसप्रस्थाभ्यामष्टगुणक्षीरं घृततैलप्रस्थं बलामधुकमधूकचन्दनमधू-लिकाशारिवामेदामहामेदाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुरुमञ्जिष्ठा-व्याघ्रनखीशटीसहचरसहस्रवीर्य्यावराङ्गलोध्राणामक्षमात्रैर्द्विगुणश-र्करैः कल्कैः साधयेद्ब्रह्मघोषादिना विधिना । तत्सिद्धं वस्तिं दद्या-

देष सर्वरोगहरो रसायनो ललितानां श्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनां क्षत-क्षयवातपित्तवेदनाश्वासकासहरस्त्रिभागमाक्षिको वलीपलितनुद्वर्णरूप-बलमांसशुक्रवर्द्धनः ॥ ५८ ॥

पीयावांसेका पंचांग १०० पल लेकर उसको जौकुटकर चार द्रोण जलमें पकावे। एक द्रोण शेष रहनेपर उतारकर छानले। फिर उसमें विदारीकंदका रस एक प्रस्थ, ईखका रस एक प्रस्थ, दूध आठ प्रस्थ, घी एक प्रस्थ, तेल एक प्रस्थ, तथा बला, मुलैठी, महुएके फूल, लालचंदन, मधूलिका (कणकुनामक गेहूं), शारिवा, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, क्षीरविदारी, अगर, मँजीठ, व्याघ्रनखी, कचूर, पीयावांसा, हरी दूब, दालचीनी इन सबका एक एक तोला कल्क और मिसरी दो तोला इन सबको मिलाकर पकावे। सिद्ध होनेपर पूर्वोक्त रीतिसे वेदध्वनि आदि कर इस सिद्धवस्तिका प्रयोग करे। यह स्नेहवस्ति संपूर्ण रोगोंको हरनेवाली और रसा-यन है। जो मनुष्य अत्यन्त सुकुमार और लाडले हैं और जो अन्तःपुरमें रहनेवाली सुकुमार स्त्रियें आदि हैं उनके लिये अत्यन्त उपयोगी है। तथा क्षत, क्षय, वात-पित्तजनित व्याधि, श्वास और खांसीको दूर करती है। यदि इस स्नेहमें तीसरा भाग शहद भी मिला दिया जाय तो वलीपलित दूर हो और बल, वर्ण, रूप, मांस और वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ५८ ॥

इत्येते रसायनाः स्नेहवस्तयः सति विभवे शतपाका सहस्रपाका वा कार्य्या वीर्य्यबलाधानार्थमिति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार यह रसायन स्नेहवस्तिमें जो मनुष्य धनवान् और सब प्रकार विभव-संपन्न हो तो इन्हीं स्नेहोंको उपरोक्त विधिसे १०० वार अथवा सहस्रवार सिद्धकर प्रयोग करें तो यह अत्यंत वीर्यसंपन्न होनेसे बहुत विशेष गुणके करनेवाले होजाते हैं (सौबार और सहस्रबार पाक करनेके लिये कल्क द्रव्य स्नेहसे सोलहवाँ भाग और द्रवपदार्थ दोगुना लेना ही यथेष्ट है) ॥ ५९ ॥

इन स्नेहवस्तियोंके विशेष गुण।

भवन्ति चात्र—इत्येता वस्तयः स्नेहाश्चोक्ता प्राणिषु सद्धिताः।
सुस्थानामातुराणाञ्च वृद्धानाञ्चाविरोधिनः ॥ ६० ॥
अतिव्यवायशीलानां शुक्रमांसबलप्रदाः।
सर्वरोगप्रशमनाः सर्वेष्वृतुषु यौगिकाः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार संपूर्ण मनुष्योंके लिये हितकारक इन स्नेहवस्तियोंका कथन किया-गया है। यह स्नेह स्वस्थ मनुष्योंके लिये और रोगियोंके लिये तथा वृद्ध मनुष्योंके

लिये अविरोधी हैं अर्थात् सबके ही लिये हितकारक हैं अत्यंत मैथुन करनेवालोंके लिये वीर्य मांस और बलके देनेवाले हैं। संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाले और सब ऋतुओंमें प्रयोग करने योग्य हैं॥ ६० ॥ ६१ ॥

नारीणामप्रजातानां नराणाञ्चाप्यपत्यदाः।
उभयार्थकरा दृष्टाः स्नेहवस्तिनिरूहयोः॥ ६२ ॥

जिन स्त्री पुरुषोंको संतान नहीं होती उनको संतानके देनेवाले और यह स्नेह, अनुवासन और निरूहणमें प्रयोग किये जानेसे दोनों प्रकारके गुण करनेवाले हैं॥६२॥

इनमें त्याज्य कर्म।

तत्र श्लोकः–व्यायामो मैथुनं मद्यं मधूनि शिशिराम्बु च।
सम्भोजनं रथक्षोभे वस्तिष्वेतेषु गर्हितम्॥ ६३ ॥

व्यायाम करना, स्त्रीसंग, मद्य, मधुर, पक्क पदार्थ, शीतल जल, अत्यंत भोजन, रथ आदि क्षोभकारक सवारीमें बैठना इन सबको वस्तिकर्ममें प्रकृतिस्थ होनेपर्यन्त त्याग देना चाहिये। इनके न त्यागनेसे अनेक प्रकारके रोग होनेका भय है॥ ६३ ॥

वस्तियोगोंका उपसंहार।

शिखिगोनर्दहंसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः।
विंशतिर्विष्किरैस्त्रिंशत्प्रतुदैः प्रसहैर्नव॥ ६४ ॥
विंशतिश्च तथा सप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः।
नव मत्स्यादिभिश्चैव शिखिकल्पेन वस्तयः॥ ६५ ॥
दशकर्कटकाद्यैश्च कूर्मकल्पेन वस्तयः।
मृगैः सप्तदशैकोनविंशतिर्विष्किरैर्दश॥ ६६ ॥
आनूपैर्दक्षशिखिवद्भूशयैश्च चतुर्दश।
एकोनविंशदित्येते सह स्नेहैः समासतः॥ ६७ ॥

मुर्गेके अण्डेके योगसे १ मोर सारस और हंसके अण्डोंसे ३ विष्किरपक्षियोंसे २० प्रतुद पक्षियोंसे ३० प्रसहोंके मांसके रससे ९ जलचरोंके मांससे २७ मछली आदिकोंसे ९ मोरके मांसके समान वस्तियोंके प्रयोग किये जाते हैं। कछुआ और केंकडा आदिसे १० मृगोंसे १७ विष्किरोंसे १९ अनूपसंचारी जीवोंसे १० भूशय जीवोंके मांससे १४ प्रकारकी वस्तियोंकी कल्पना कहीगई है इन सबको संक्षेपसे उनतीन स्नेह योगोंके भीतर वर्णन किये गये हैं यह सब योग विस्तारसे पृथक् २ कल्पना करनेपर २१६ होते हैं॥ ६४–६७ ॥

प्रोक्ता विस्तरशो भिन्ना द्वे शते षोडशोत्तरे।
एते माक्षिकसंयुक्ताः कुर्वन्त्यतिवृषं नरम्।
नातियोगं नवायोगं स्तम्भितास्ते च कुर्वते॥ ६८॥

इन स्नेहयोगोंमें शहद मिलाकर प्रयोग करनेसे यह अत्यंत वाजीकरण होजातेहैं और मनुष्यको कामबल संपन्न करदेते हैं। इन वस्तियोंके विधिवत् प्रयोग किये जानेसे अतियोग और अयोग भी नहीं होता इसलिये यह स्तंभित भी नहीं होती, अर्थात् भीतरही विबंधको प्राप्त होकर रुकती भी नहीं है॥ ६८॥

इनमें अन्यक्रम।

मृदुत्वान्न निवर्त्तेरन् वस्तयश्चेन्निरूहणे।
समूत्रैर्वस्तिभिस्तीक्ष्णैरास्थाप्यः क्षिप्रमेव च॥ ६९॥

यदि यह वस्तियें मृदुताके कारण रुकजांय तो गोमूत्रयुक्त तीक्ष्ण आस्थापन वस्तिका शीघ्र प्रयोग करना चाहिये॥ ६९॥

निरंतर यापनवस्तिके दोष।

शोफाग्निनाशपाण्डुत्वशूलार्शःपरिकर्त्तिकाः।
स्युर्ज्वरश्चातिसारश्च यापनात्यर्थसेवया॥ ७०॥
अरिष्टक्षीरशीध्वाद्या तत्रेष्टा दीपनी क्रिया।
युक्त्या तस्मान्निषेवेत यापनान्न प्रसङ्गतः॥ ७१॥

यापनवस्ति निरन्तर अत्यंत सेवित की जाय तो सूजन, जठराग्निका नाश, पांडुता, शूल, बवासीर, परिकर्तिका, ज्वर और अतिसार यह उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं। ऐसा होनेपर अरिष्ट, दूध, शीधु आदि अनेक प्रकारकी दीपन क्रिया करनी चाहिये। उपद्रवोंके भयसे यापनवस्तियोंको अप्रसंग क्रमसे सेवन न करे॥ ७०॥ ७१॥

इत्युच्चैर्भाष्यपूर्वाणां व्यापदः सचिकित्सिताः।
विस्तरेण पृथक् प्रोक्तास्तेभ्यो रक्षेन्नरं सदा॥ ७२॥

इस प्रकार उच्चभाषण आदि अनुचित व्यापारोंसे उत्पन्न हुए उपद्रवोंके लक्षण और चिकित्सा विस्तारपूर्वक पृथक् २ कथन करदी गई है। वैद्यको चाहिये कि, उन आपत्तियोंसे रोगीकी रक्षा करतारहे॥ ७२॥

सिद्धिस्थानकी निरुक्ति।

कर्मणां वमनादीनामसम्यक्करणापदाम्।

यत्रोक्तं साधनं स्थाने सिद्धिस्थानं तदुच्यते ॥ ७३ ॥

वमनादि कर्मोंमें मिथ्यायोग होनेसे जो आपत्तियें उत्पन्न होती हैं उन आपत्तियोंका साधन जिस स्थानमें कहाजाय उसको सिद्धिस्थान कहते हैं ॥ ७३ ॥

इत्यध्यायशतं विंशमात्रेयमुनिवाङ्मयम् ।
हितार्थं प्राणिनां प्रोक्तमग्निवेशेन धीमता ॥ ७४ ॥

इस प्रकार महात्मा अग्निवेशजीने महर्षि आत्रेयजीके वाणीमय अर्थात् महर्षि आत्रेयजीके कथन किये हुए १२० अध्यायोंमें मनुष्योंके कल्याणके लिये इस ग्रन्थको कथन कियाहै ॥ ७४ ॥

इस ग्रन्थके पढनेका फल।

दीर्घमायुर्यशः प्रज्ञामारोग्यञ्चापि पुष्कलम् ।
सिद्धिञ्चानुत्तमां लोके प्राप्नोति विधिना पठन् ॥ ७५ ॥

जो मनुष्य इस ग्रंथको पठन करेगा वह दीर्घायु, यश, बुद्धि सब प्रकार परम आरोग्यता इस लोकमें अनुपम सिद्धिको प्राप्त होगा ॥ ७५ ॥

विस्तारयति लेशोक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम् ।
संस्कर्त्ता कुरुते तन्त्रं पुराणञ्च पुनर्नवम् ॥ ७६ ॥
अतस्तन्त्रोत्तरमिदं चरकेणातिबुद्धिना ।
संस्कृतं तत्तु संसृष्टं विभागेनोपलक्ष्यते ॥ ७७ ॥

जो ग्रंथ पहिले संक्षेपसे कहाहुआ हो उसको विस्तारपूर्वक करदेना जो अतिविस्तारसे कहा हो उसको सुन्दरतासे संक्षेपमें करना । इस प्रकार संक्षेप विस्तारको उत्तम रीतिसे ग्रंथको सुगम बनादेना अर्थात् पुराने ग्रन्थको सुन्दर रीतिसे नवीन और दोषरहित सरल बनानेवालेको संस्कारकर्ता कहते हैं । सो इस ग्रन्थको प्रथम महात्मा अग्निवेशजीने निर्माण किया और महात्मा चरकऋषिने अपनी बुद्धिसे इस ग्रन्थको उत्तम रीतिसे संस्कार कर एक प्रकारसे नवीन बनादिया ऐसा इसके विभागोंसेही जानाजाता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

इदमन्यूनशब्दार्थं तन्त्रं दोषविवर्जितम् ।
अखण्डार्थं दृढबलो जातः पञ्चनदे पुरे ॥ ७८ ॥
कृत्वा बहुभ्यस्तन्त्रेभ्यो विशेषाच्च बलोच्चयम् ।
सप्तदशौषधाध्यायसिद्धिकल्पैरपूरयत् ॥ ७९ ॥

यह ग्रन्थ कहीं पर भी शब्द और अर्थमें अपूर्ण नहीं है तथा दोषरहित, अखण्डितार्थ है । ग्रंथमें जो चिकित्सास्थानके १७ अध्याय और सिद्धिस्थान तथा कल्पस्थान अग्निवेशके बनाये हुए नहीं थे उनको पंचनदनिवासी महात्मा दृढबलने अग्निवेश, भेड, जतु, कर्ण आदि ऋषियोंकी बनाई संहिताओंसे विशेष विचारपूर्व संकलन कर ये १७ अध्याय चिकित्साके तथा सिद्धिस्थान और कल्पस्थान अति उत्तमरीतिसे बना इस ग्रन्थमें लगाकर ग्रंथको अखण्डरूपसे पूर्ण किया ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

पैंतीस युक्तियोंका संग्रह।

पञ्चत्रिंशद्विचित्राभिर्भूषितं तन्त्रयुक्तिभिः ।
तत्राधिकरणं योगो हेत्वर्थोऽर्थः पदस्य च ॥ ८० ॥
प्रदेशोद्देशनिर्देशवाक्यशेषाः प्रयोजनम् ।
उपदेशापदेशातिदेशार्थापत्तिनिर्णयाः ॥ ८१ ॥
प्रसङ्गैकान्तानैकान्ताः सापवर्गो विपर्य्ययः ।
पूर्वपक्षविधानानुमतव्याख्यानसंशयाः ॥ ८२ ॥
अतीतानागतपेक्षा स्वसंज्ञा ह्यसमुच्चयाः ।
निदर्शनं निर्वचनं सन्नियोगो विकल्पनम् ॥ ८३ ॥
प्रत्युच्चारस्तथोद्धारः सम्भवस्तन्त्रयुक्तयः ।
तन्त्रे व्याससमासाभ्यां भवन्त्येतानि कृत्स्नशः ॥८४॥
तन्त्रे समासव्यासोक्ता भवन्त्येता हि कृत्स्नशः ।
एकदेशेन दृश्यन्ते समासाभिहितास्तु ताः ॥ ८५ ॥
यथाम्बुजवनस्यार्कः प्रदीपो वेश्मनो यथा ।
प्रबोधनप्रकाशार्कास्तथा तन्त्रस्य युक्तयः ॥ ८६ ॥

यह ग्रंथ अधिकरण, योग, हेत्वर्थ, पदार्थ, प्रदेश, उद्देश, निर्देश, वाक्यशेष, प्रयोजन, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, अर्थापत्ति, निर्णय, प्रसंग, एकान्त, अनैकान्त, अपवर्ग, विपर्यय, पूर्वपक्ष, विधान, अनुमत, व्याख्या, संशय, अतीत, अनागतपेक्षा, स्वसंज्ञा, असमुच्चय, निदर्शन, निर्वचन, सन्नियोग, विकल्पन, अत्युच्चार, उद्धार और संभव इन ३५ विचित्र युक्तियोंसे विभूषित है । यह संपूर्ण युक्तियें इस तंत्रमें संक्षेप और विस्तारसे सूत्रस्थान और विमानस्थान आदिकोंमें कथन कीगई हैं । क्योंकि यह संपूर्ण इस तंत्रमें संक्षेप और विस्तारसे पृथक् २ कहीं २ कथन कीगई हैं । उन सबके

ज्ञान निर्देशके लिये यहांपर संग्रहकरके लिख दी गईं। जैसे-कमलोंका वन रहतेहुए भी सूर्यके प्रकाश विना कमलोंके वनमें फूल नहीं दिखाई देते; जैसे-घरमें संपूर्ण वस्तुएं रहतेहुए भी विना दीपकसे दिखाई नहीं देता उसी प्रकार इस तंत्रमें वह संपूर्ण युक्तियें छिपीहुई रहनेसे सहजही जाननेमें कठिन पडतीं। इसलिये उनको सुगमतासे जाननेके लिये यहां पर संग्रहकर दिखादी हैं ॥ ८०-८६ ॥

एकस्मिन्नपि यस्येह शास्त्रे लब्धास्पदा मतिः।
स शास्त्रमन्यदप्याशु युक्तिज्ञत्वात्प्रबुध्यते ॥ ८७ ॥
अधीयानोऽपि शास्त्राणि तन्त्रयुक्त्या विचक्षणः।
नाधिगच्छति शास्त्रार्थानर्थान् भाग्यक्षये यथा ॥ ८८ ॥

इस एक ही शास्त्रमें जिसकी बुद्धि यथोचित्त प्रवेश करगई है अर्थात् जिसको यह चरकतंत्र एक ही ग्रन्थ संपूर्ण रूपसे आता है वह इसकी युक्तियोंको जाननेसे अन्य शास्त्रोंको भी शीघ्र जान सकता है। जो वैद्य अनेक शास्त्र भी पढा हो परन्तु उन शास्त्रोंके पढनेपर भी उनके भाव और युक्तियोंको न जानताहो वह मूर्ख शास्त्रके विषयोको इस प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता जैसे भाग्यहीन मनुष्य अर्थ प्राप्त नहीं करसकता॥८७॥८८

दुर्गृहीतं क्षिणोत्येव शास्त्रं शस्त्रमिवाबुधम्।
सुगृहीतं तदेव ज्ञं शास्त्रं शस्त्रं च रक्षति ॥ ८९ ॥
तस्मादेताः प्रवक्ष्यन्ते विस्तरेणोत्तरे पुनः।
तत्त्वज्ञानार्थमस्यैव तन्त्रस्य गुणदोषतः ॥ ९० ॥

जैसे अबोध मनुष्य शस्त्रको अज्ञानवश उल्टी रीतिसे उठाकर उससे अनेक प्रकारसे अपने शरीरकी हानि करलेता है वा अपने इष्टमित्रोंकी हानि करता है उसी प्रकार मूर्ख वैद्य विना युक्तियोंके जाने शास्त्रसे हानिको प्राप्त होता है। जैसे-बुद्धिमान्, शूरवीर, शस्त्रसे आत्मरक्षा आदि हितसाधन करसकता है उसी प्रकार बुद्धिमान् वैद्य शास्त्रसे आत्मरक्षा और संपूर्ण प्राणियोंका हितसाधन करसकता है। इसलिये इस ग्रंथके गुणदोप और तत्त्वज्ञानके लिये इन युक्तियोंको ग्रंथके अंतमें फिर वर्णन कर दिया है॥ ८९ ॥ ९० ॥

ग्रंथका फल।

इदमखिलमधीत्य सम्यगर्थान्विमृशति यो विमलः प्रयोगनित्यः।
स मनुजसुखजीवितप्रदानाद्भवति धृतिस्मृतिबुद्धिधर्मवृद्धः ॥ ९१ ॥

जिस वैद्यने यह संपूर्ण ग्रंथ यथार्थरूपसे पढकर अर्थबोध कर लिया है तथा जो इस विमल शास्त्रका नित्य प्रयोग करता है वह मनुष्य सुख और जीवनको देनेवाला होनेसे धारणा, स्मृति, बुद्धि और धर्ममें सर्व श्रेष्ठताको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

यस्य द्वादशसाहस्री हृदि तिष्ठति संहिता ।
सोऽर्थज्ञः स विचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्च सः ।
रोगांस्तेषां चिकित्साश्च स किमर्थं न बुध्यते ॥ ९२ ॥

जिस मनुष्यके हृदयमें यह १२००० श्लोकात्मक संहिता स्थित रहती है वह अर्थका जाननेवाला विचारज्ञ और चिकित्साकुशल होता है। ऐसे कौन रोग और उनकी चिकित्सा हैं जिनको इस तंत्रका जाननेवाला न जान सकता हो अर्थात् सब-कोही यथार्थ रूपसे जान सकता है ॥ ९२ ॥

चिकित्सा वह्निवेशस्य सुस्थातुरहितं प्रति ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥ ९३ ॥

इस अग्निवेशके रचेहुए तंत्रमें स्वस्थ और रोगी मनुष्योंके हितके लिये जो कुछ चिकित्सा कथन की है वह और तंत्रोंमें भी मिल सकती है परन्तु जो इसमें नहीं है सो कहीं भी नहीं है ॥ ९३ ॥

अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते ।
सिद्धिस्थानेऽष्टमे प्राप्ते तस्मिन् दृढबलेन तु ।
सिद्धिस्थानं स्वसिद्ध्यर्थं समासेन समापितम् ॥ ९४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने
उत्तरवस्तिसिद्धिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समाप्तमिदं चरकतन्त्रम् ॥

इस अग्निवेशके रचेहुए तथा चरकके संस्कार कियेहुए तंत्रमें इस आठवें सिद्धि-स्थानकी प्राप्तिमें दृढबलने अपनी सिद्धिके लिये सिद्धिस्थानको समाप्त किया ॥९४॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थाने पटियालाराज्यांतर्गतटकसाल-निवासिवैद्यपंचानन वैद्यरत्न पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्य-भाषाटीकायां सिद्धिस्थाने उत्तरवस्तिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

टीकानिर्माणसमय ॥

वह्निवेशकृतं तंत्रं चरकप्रतिसंस्कृतम् ।
वैद्यरामप्रसादेन प्रसादिन्या विभूषितम् ॥ १ ॥
वसुऋत्वङ्कचन्द्रेऽब्दे आश्विने बुधवासरे ।
कृष्णपक्षे च पञ्चम्यां टीका पूर्तिमगादियम् ॥ २ ॥

दोहा-

अग्निवेशकृत तंत्र यह, चरक सुशोभित कीन्ह ।
रामप्रसाद प्रसादनी, भाषायुत करदीन्ह ॥ १ ॥
उन्निससौ अठसठविषे, कृष्णाश्विन बुधवार ।
हिन्दीभाषायुत कियो, पन्नगतिथी मझार ॥ २ ॥

समाप्ता चेयं चरकसंहिता सभाषाटीका ॥



पुस्तकें मिलने के स्थान

१) खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४.

२) खेमराज श्रीकृष्णदास,
६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट
पुणे - ४११ ०१३.

३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि. ठाणे - महाराष्ट्र)

४) खेमराज श्रीकृष्णदास,
चौक - वाराणसी (उ.प्र.)





खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई